कविराज-श्रीगोविन्ददाससेनविरचिता

भैषज्यरत्नावली

'सिद्धिप्रदा'-हिन्दीव्याख्योपेता





प्रोफेसर सिद्धिनन्दन मिश्र





चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन-वाराणसी

।। श्रीः ।।

चौखम्बा आयुर्विज्ञान ग्रन्थमाला
८०

कविराज-श्रीगोविन्ददाससेनविरचितः

भैषज्यरत्नावली

'सिद्धिप्रदा'-हिन्दीव्याख्यासहिता

(द्वितीय भाग)

व्याख्याकार

प्रोफेसर सिद्धिनन्दन मिश्र

जी.ए.एम्.एस्., एच्.पी.ए. [एम्.डी. (आयु.)]
पी-एच्.डी., साहित्याचार्य

भू.पू. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष : रसशास्त्र एवं भैषज्यकल्पना
राजकीय आयुर्वेद कालेज, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
एवं
भू.पू. निदेशक फार्मेसी
गुलाबकुँअरबा आयु. कालेज, गुजरात आयुर्वेद यूनिवर्सिटी, जामनगर (गुजरात)
सम्प्रति सेवारत
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष : रसशास्त्र एवं भैषज्यकल्पना
तथा
जनरल मैनेजर : आयुर्वेद फार्मेसी
एस्.डी.एम्. कालेज ऑफ आयुर्वेद
कुथपडी, उडुपि (कर्नाटक)



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

भैषज्यरत्नावली-सिद्धिनन्दन मिश्र

ISBN : 978-93-80326-80-1 (Set)

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129

वाराणसी 221001

दूरभाष : (0542) 2335263

e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

website : www.chaukhamba.co.in

संस्करण : 2018

₹ 2000.00 (1-2 भाग)

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए

अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली 110002

दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537

e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर

पोस्ट बॉक्स न. 2113

दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पोस्ट बॉक्स न. 1069

वाराणसी 221001

मुद्रक :

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

THE
CHAUKHAMBA AYURVIJNAN GRANTHAMALA
80

BHAIṢAJYA RATNĀVALĪ

OF

KAVIRAJ GOVIND DAS SEN

Edited with

'Siddhiprada' Hindi Commentary

By

Prof. Siddhi Nandan Mishra
G.A.M.S., H.P.A., [M.D. (Ayu.)]
Ph.D., Sahityacharya
Ex. Prof. & Head : Rasashastra & Bhaishajya Kalpana
Government Ayurvedic College
Sampurnananda Sanskrit University, Varanasi
&
Ex. Director of Pharmacy
G.K. Ayurvedic College
Gujrat Ayurveda University, Jamnagar
Presently
Prof. & Head : Rasashastra & Bhaishajya Kalpana
&
General Manager : Ayurved Pharmacy
S.D.M. College of Ayurveda
Kuthpady, Udupi (Karnataka)



CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI

Publishers :

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. : 2335263

Also can be had from :

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : 32996391
e-mail : chaukhamba_neeraj@yahoo.com

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007
Tel. : 23856391

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001
Tel. : 2420404

समर्पणम्



विविधशास्त्रावगाहनदक्षाणां, विद्योतमान्कीर्तिपुञ्जानां, विविधबुधजनमानसमणीनां,
परमदानशीलानां, लोकोपकारिणां, धर्माधिकारिपदालङ्कृतानां, पद्मभूषणा-
द्यनेकोपाधिभिर्विभूषितानां, विपुलमतिमतां, परमश्रद्धेयानां,
पूज्यपादानां, 'डॉ. डी.वीरेन्द्रहेग्गडे महोदयानां'
कर-कमलयोः औषधियोगगुम्फितां 'भैषज्यरत्नावलीं'
मालां सादरं समर्पयति, श्रीमञ्जुनाथेश्वर-
कृपाकटाक्षपरितुष्टः ।

(सिद्धिनन्दनमिश्रः)



प्राक्कथन

इस वैज्ञानिक युग में मनुष्य की चिकित्सार्थ अनेक चिकित्सा-पद्धतियाँ यथा—आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध, होमियोपैथ, एलोपैथ एवं नेचुरोपैथ आदि हमारे देश में हजारों वर्षों से प्रचलित हैं। इन सभी में आयुर्वेद सर्वाधिक प्राचीनतम एवं सहस्राब्दियों से स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा एवं रुग्ण मानव की चिकित्सा सेवा करता आ रहा है। स्वस्थ पुरुष की कल्पना भी आयुर्वेद के अन्तर्गत ही प्रतिपादित की गयी है। आयुर्वेद सिर्फ रुग्ण व्यक्ति की चिकित्सा ही नहीं करता है, अपितु यह पुरुषों को नैष्ठिकी (मोक्ष-प्रदानार्थ साधन) चिकित्सा का उपाय भी बताता है। महर्षि सुश्रुत ने अपनी संहिता में स्वस्थ पुरुष का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है; यथा—

'समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते'॥ (सु.सू. १५।४५)

जिस मनुष्य के वात-पित्त-कफ दोष समावस्था में हों, जिसमें १३ प्रकार की अग्नियाँ समभाव से परिपाकादि गुणों से युक्त हो, शरीर की सप्त (रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र) धातुओं की क्रियाएँ समावस्था में हों तथा शरीर के मल-मूत्र-पुरीष-स्वेदादि अपने सामान्य रूप से विसर्जित होते हों और जिस व्यक्ति की आत्मा, इन्द्रियाँ एवं मन प्रसन्न हों उसे आयुर्वेद स्वस्थ मानता है।

महर्षि सुश्रुत ने अपनी संहिता में अष्टाङ्गायुर्वेद का निरूपण इस प्रकार किया है; यथा—'शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम्, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति'। (सु.सू. १।६)

महर्षि चरक ने निम्नलिखित शब्दों में आयु एवं आयुर्वेद की परिभाषा प्रतिपादित की है—

'हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते'॥ (च.सू. १:४१)

अर्थात् जिस शास्त्र में हितकर आयु, अहितकर आयु, सुखकर आयु, दुःखकर आयु तथा आयु का हितकर एवं आयु का अहितकर और आयु का मान अर्थात् आयु का प्रमाणादि का ज्ञान प्राप्त हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

ऐसे शाश्वत आयुर्वेद के लिए अनेक महर्षिओं के आरोग्यप्रद सद्वचनों से आयुर्वेद परिपूर्ण है।

यद्यपि चरकसंहिता में प्रायः सभी धातुओं का चिकित्सार्थ अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। जैसे—पुंसवनसंस्कारार्थ दो महीने के अन्दर गर्भवती स्त्री को पुष्य नक्षत्र में पतले स्वर्ण पत्र पर पुरुषाकृति चित्र बनाकर अग्नि में तप्त कर तथा सवत्सा गौ के दूध में निर्वापित कर पिलाने, तथा दाहिने नाक में २ बूँद डालने की परम्परा है, जो आज भी प्रचलित है। स्वर्णप्राशन में सद्योजात बच्चे (जातक) को नाभिनालच्छेदन एवं स्नान के बाद कठिन पत्थर पर शुद्ध स्वर्ण को मधु के साथ घिसकर चटाने की परम्परा थी। उत्तर भारत में प्रबुद्ध वर्गो के घर में यह परम्परा आज भी प्रचलित है। महर्षि चरक कहते हैं कि स्वर्ण सभी विषों (गरविषादि) का नाश करता है। स्वर्ण खाये हुए व्यक्ति पर विष का प्रभाव नहीं होता है। जैसे कमलपत्र पर जल का प्रभाव नहीं होता है। यथा—

'हेमसर्वविषाण्याशु गरांश्च विनियच्छति।
न सज्जते हेमपाङ्गे विषं पद्मदलम्बुवत्'॥ (च.चि. २३:२६९)

चरकसंहिता में दो स्थलों पर पारद का भी प्रयोग हुआ है। कुष्ठरोग चिकित्सा में आभ्यन्तर प्रयोग है तथा सवर्णीकरण चिकित्सा में पारद का बाह्य प्रयोग है। सुश्रुत में पारद का ३-४ स्थलों पर बाह्य प्रयोग है, तथा अष्टाङ्गसंग्रह एवं अष्टाङ्गहृदय में पारद के अनेक बाह्याभ्यन्तर प्रयोग बतलाये गये हैं। क्षेत्रीकरणार्थ पारद का आभ्यन्तर प्रयोग इस प्रकार है; यथा—

'शिलाजतुक्षौद्रविडङ्गसर्पिर्लोहाभयापारदताप्यभक्षः ।
आपूर्य्यते दुर्बलदेहधातुंस्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः' ॥ (अष्टाङ्गसंग्रह उ. ५०:२४५)
(अष्टाङ्गहृदय उ. ३९:१६१)

इन दोनों ग्रन्थों में एक ही श्लोक को उद्धृत किया गया है।

तब से आज तक पारदादि खनिजों एवं धातुओं तथा अन्य सभी उप धातुओं एवं हरताल-मन:शिला-शंखिया-नीलाञ्जनादि आदि द्रव्यों का विधि-सम्मत प्रामाणिक औषधि बनाकर निर्विकार रूप से सतत प्रयोग होता आ रहा है।

मध्ययुगीन काल में काष्ठौषधों से सफल चिकित्सा में विलम्ब तथा अत्युपयोगी नहीं होने के कारण केवल रसौषधियों से चिकित्सा की जाने लगी। इसके लिए तीन युक्तियाँ बताई गई हैं—(१) रसौषधों का अल्प मात्रा (१-२ रत्ती) में प्रयोग होता है। (२) रसौषधियों में किसी प्रकार का स्वाद (रुचि-अरुचि) नहीं है। (३) ये शीघ्र आरोग्य प्रदान करती हैं। अत: सामान्य काष्ठौषधियों से रसौषधियाँ अधिक लाभदायक है। यथा—

'अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गत: ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रस:' ॥ (र.र.समु. २८:१)

आज से ५०-६० वर्ष पहले जब भारतवर्ष में शुरु-शुरु एण्टीबायोटिक ड्रग्स का भी रसशास्त्र जैसा ही प्रारम्भ हुआ था। किन्तु ४० वर्षों में ही पेनिसिलिन आदि मुख्य एण्टिबायोटिक औषधि का दुष्प्रभाव (Side effect) होने लगा। अब पेनिसिलीन आदि औषधों का प्रयोग डाक्टर लोग प्राय: नहीं करते हैं। किन्तु, रसौषधियों का हजारों वर्षों के परीक्षण के बाद निर्विवाद रूप से भारत के सम्पूर्ण क्षेत्र में आज भी पूर्ववत् प्रयोग हो रहा है। अत: ऐसी प्रामाणिक औषधों का तथा प्रचलित काष्ठौषधों का सम्मिलित रूप से इस भैषज्यरत्नावली में संकलित किया गया है। हाँ, यदि औषधियाँ गलत तरीके से बनी हैं तो दुष्प्रभाव की सम्भावना है। किन्तु पारद एवं अन्य धातुओं का साइड इफेक्ट नहीं होता है।

इन सभी बातों से विद्वद्वैद्य समाज पूर्णत: अवगत है। किन्तु आज सम्पूर्ण विश्व में चिकित्सा में अग्रगण्य एलोपैथिक साइंस सर्वात्मना अपने प्रभाव से लोगों को अभिभूत किये हुए है। उनके पास सरकारी मान्यताएँ हैं तथा जनता भी उनकी पद्धति से प्रसन्न है। उनके पास अत्याधुनिक संयन्त्रों एवं साधनों से पूर्णत: विकसित रिसर्च सेंटर हैं। उनका विकास साधन-सम्पन्न विकसित देशों के रिसर्च पर आधारित है। एलोपैथी के क्षेत्र में भारत में भी कम ही रिसर्च होते हैं। विदेशी वैज्ञानिकों द्वारा संशोधित रिसर्च ही उनका मुख्य आधार है। अबतक तो एलोपैथी डाक्टरों द्वारा आयुर्वेद का सर्वात्मना विरोध ही होता रहा है। वास्तव में वे आयुर्वेद से भयभीत हैं। विरोध का उनका आधार कुछ इस प्रकार है—

(१) आयुर्वेद वैज्ञानिक-परीक्षण पर खरा नहीं उतरता है।

(२) पारद-स्वर्ण-रजत-ताम्र-नाग-वङ्ग-यशद धातुएँ विषैली हैं अत: उनका शरीर में आभ्यन्तर प्रयोग अनुचित है। ये सभी गुरु धातुएँ (Heavy metal) हैं तथा किडनी में इनका स्टोरेज होता है। ये धातुएँ पूर्णत: भस्म नहीं बनती हैं आदि-आदि।

(३) जो तत्त्व शरीर में है ही नहीं उनका शरीर में उपयोग ही क्यों ? शरीर उनको ग्रहण कैसे करेगा आदि।

(४) उनका संगठन बड़ा है उससे सरकार भी भयभीत रहती है।

जब पहली बार उन्हें ज्ञात हुआ कि रक्त में लौह कण हैं तो लोह का आक्साइड (भस्म) रूप में वे भी उपयोग करने लगे और आयुर्वेदीय लौहभस्म का विरोध करना उन्होंने बन्द कर दिया। अब जब उन्हें यह ज्ञात हुआ है कि पुरुष के शुक्र (Semen) में अल्प मात्रा में स्वर्ण उपलब्ध है तो सम्भवत: गुरुधातु की अनुपयोगिता जैसी उनकी आवाज भी कम हो जायेगी। भविष्य में जब वैज्ञानिकों का कोई दल ऐसा भी कहेगा कि शरीर में पारद भी अत्यल्प मात्रा उपलब्ध है तो उनका 'Heavy metal' का प्रलाप भी बन्द हो जायेगा। अस्तु।

हमारा आयुर्वेद हजारों वर्षों से परीक्षित एवं प्रामाणिक विज्ञान है। इसे महर्षिओं एवं आर्ष पुरुषों ने परीक्षणोपरान्त मानव चिकित्सा विज्ञान के रूप में प्रतिस्थापित किया है जो पूर्णत: वैज्ञानिक है। लाखों वैद्यों द्वारा कोटि-कोटि मानव की सेवा अनन्त काल से होती आ रही है। कभी कोई दुष्प्रभाव (Side effect) नहीं देखा जाता है। हाँ यदि औषधियाँ प्रामाणिक रीति से नहीं बनी हैं तो सब कुछ सम्भव है।

आजादी के पूर्व से ही वैद्यों की मांग पर ब्रिटिश सरकार ने सन्तोषार्थ आयुर्वेद डवलपमेण्ट के लिए सर्वप्रथम १९४५ ई. में भोर कमिटी बनायी किन्तु उस कमिटी का कोई प्रभाव नहीं रहा। पुनश्च १९४६ ई. में उसी ब्रिटिश सरकार ने डा. रामनाथ चोपड़ा की अध्यक्षता में एक और आयुर्वेद डवलपमेण्ट की कमिटी बनायी किन्तु उसका भी कोई प्रतिफल नहीं निकला। पुनश्च आजाद भारत में भारत सरकार द्वारा १९४९ ई. में पण्डित कमिटी की स्थापना की गई जिसकी रिपोंट पर आधारित जामनगर गुजरात में १९५२ ई. में आयुर्वेद रिसर्च संस्थान तथा १९५६ ई. में वहीं पर आयुर्वेद का स्नातकोत्तर सेण्टर स्थापित किया गया। उसके बाद १९५५ ई. में श्री दवे कमिटी की स्थापना हुई। उनकी अनुशंसा के आधार पर—(१) वैद्यों का रजिस्ट्रेशन, (२) प्रवेश योग्यता, (३) इण्डियन मेडिकल कांसिल जैसी आयुर्वेद-यूनानी की अलग-अलग कांसिल की स्थापना की जाय, (४) आयुर्वेदिक फार्माकोपिया एवं आयुर्वेदिक फार्मुलरी बनायी जाय, (५) एकरूप शिक्षा व्यवस्था तथा ५$\frac{1}{2}$ वर्ष का कोर्स बनाया जाय, (६) केन्द्र एवं राज्यों में स्वतन्त्र आयुर्वेद निदेशालय बनाया जाय—आदि मुख्य थे।

डॉ. उडुपा कमिटी से भी सरकार को अच्छे प्रस्ताव मिले थे।

(१) आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा का अंग माना जाय। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार इसे पूर्ण मान्यता दे।

(२) केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद् की स्थापना हो।

(३) आयुर्वेद का शुद्ध एवं मिश्रित दोनों पाठ्यक्रम चले।

(४) सभी आयुर्वेद विद्यालयों को विश्वविद्यालय से सम्बन्धित किया जाय।

(५) योग्य अध्यापक तैयार करने के लिए वाराणसी, पूना एवं त्रिवेन्द्रम में आयुर्वेद के पोस्ट ग्रैजुएट कालेज की स्थापना की जाय आदि।

श्री मोहनलाल व्यास कमिटी के आधार पर ही शुद्ध आयुर्वेद का वर्तमान पाठ्यक्रम स्वीकार किया गया है। अस्तु।

पण्डित कमिटी के आधार पर जामनगर (गुजरात) में डॉ. पी.एम. मेहता की अध्यक्षता में १९५२ ई. आयुर्वेद रिसर्च सेण्टर की स्थापना हुई। उसमें देश के विद्वान् चिकित्सकों को समादृत किया गया। इनमें वैद्य श्री रामरक्ष पाठक एवं वैद्य श्री गणेशदत्त सारस्वतादि प्रमुख थे, तथा सिद्ध चिकित्सा के डॉ. रमणन भी प्रमुख थे। आयुर्वेद अनुसन्धान में पर्यवेक्षक एवं सहयोगी रूप में पाण्डु रोग पर अनुसन्धान करना निश्चित किया गया तथा औषधि रूप में चरकसंहिता का 'पुनर्नवादि मण्डूर' और शार्ङ्गधरसंहिता का कुमार्यासव का चयन किया गया। माडर्न टीम में प्रख्यात ३-४ डाक्टर थे जिनकी उच्च तकनीकी से युक्त अच्छी लेबोरेटरीज थी। यह कार्य काफी वर्षों तक चलता रहा। माडर्न टीम ने इन दोनों औषधियों की रक्तकणवर्द्धन क्षमता की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उन्होंने इतना तक कहा था कि माडर्न साइंस के पास रक्तकणवर्धनार्थ ऐसी औषधियाँ नहीं हैं (इसकी विस्तृत जानकारी के लिए देखें—जामनगर की रिसर्च रिपोर्ट)। उसके बाद डॉ. पी.एम. मेहता के सेवा-निवृत्ति के बाद जामनगर की तीनों संस्थाओं (रिसर्च इन्स्टीट्युट, स्नातकोत्तर संस्थान तथा गुलाबकुँवरबा आयुर्वेद कालेज) के एकीकरण के बाद इंस्टीच्यूट ऑफ आयुर्वेदिक स्टडिज एण्ड रिसर्च (J.A.S.R.) बनाया गया और बाद में १९६८ ई. में गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हो गया। J.A.S.R. बनने के बाद से आयुर्वेद का रिसर्च समाप्त हो गया।

आयुर्वेद के ऐसे अनेक रिसर्च केन्द्र भारत सरकार द्वारा स्थापित कराकर मार्डन डाक्टरों की सम्मति से वैज्ञानिक मुहर लगाने की आवश्यकता है, तभी माडर्न युगीन डाक्टर पूर्णतः आयुर्वेद को स्वीकारने की स्थिति में होंगे। इस कार्य के लिए भारत सरकार को उदार मनोवृत्ति बनानी पड़ेगी।

भैषज्यरत्नावली

इन दिनों सम्पूर्ण भारत (उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम) में 'भैषज्यरत्नावली' को आयुर्वेद की मुख्य फार्मुलरी (Farmulary) के रूप में मान्यता है। इतनी प्रामाणिक एवं विस्तृत फार्मुलरी का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कोई प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध नहीं है, जिससे सम्पूर्ण भारत के वैद्य समाज को हमेशा कष्ट का सामना करना पड़ता है, जैसे—पुराने मानों (Measurements) का ज्ञान अप्रचलित होने के कारण कष्ट; औषध-निर्माण की प्रक्रिया का सरल एवं स्पष्टरूप में उल्लेख नहीं होने का आदि। औषधि का गन्ध-वर्ण-स्वाद, उसकी आधुनिक मात्रा, अनुपान एवं प्रमुख रोगों में उपयोग का स्पष्ट रूप से उल्लेख होना ही वैज्ञानिकता है। अतः ऐसा प्रामाणिक संस्करण नहीं होने से वैद्य समाज एक प्रामाणिक संस्करण के लिए प्रतीक्षारत था।

यह ग्रन्थ १८ वीं शताब्दी में कविराज स्व. श्री गोविन्ददास सेन द्वारा संकलित किया गया था, किन्तु उनके जीवन काल में इस ग्रन्थ का प्रकाशन नहीं हो सका था। उनकी मृत्यु के बाद उनके कोई सम्बन्धी या 'दौहित्र' कविराज श्री विनोदलाल सेन द्वारा यह संस्कृत टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुआ था, जिसका द्वितीय एवं तृतीय परिवर्धित-संशोधित संस्करण कविराज श्री आशुतोष सेन गुप्त के सम्पादकत्व में हुआ था, जिसमें २६०० योगों का समावेश किया गया था। उक्त संस्करण पुरानी लाइब्रेरिओं में देखा जाता है।

भैषज्यरत्नावली की अनेक व्याख्या समय-समय पर की गई है, जिसमें समय-समय पर उनके योगों में भी परिवर्धन किये गये। लखनऊ से श्री नवलकिशोर प्रेस द्वारा भी १९वीं शताब्दी में इसका परिवर्धित संस्करण निकला, जिसमें ३००० योगों का समावेश हुआ था। २०वीं शताब्दी में कविराज जयदेव विद्यालंकार द्वारा वि.सं. १९८२ में मोतीलाल बनारसीदास द्वारा लाहौर से उसका परिवर्धित संस्करण निकला, जिसमें ३३०० योगों को प्रविष्टी मिली थी। किन्तु १९५१ ई. में कविराज पं. अम्बिकादत्त शास्त्री द्वारा अनुवादित कर चौखम्भा वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुआ, जिसमें ४५०० योगों को तथा परिशिष्ट में २०० योगों को समाविष्ट किया गया। आज बाजार में दो ही—१. जयदेव विद्यालंकार और २. पं. अम्बिकादत्त शास्त्री द्वारा अनुदित व्याख्या वाली ही भैषज्यरत्नावली प्राप्त है।

मेरे द्वारा व्याख्यायित प्रस्तुत भैषज्यरत्नावली के लेखन का प्रारम्भ चौखम्बा सुरभारती के श्री नवनीत दास गुप्त के आग्रह के स्वरूप १९९० ई. में कर दिया था। किन्तु ग्रन्थ बड़ा है और मेरी लेखनी भी अनेक ग्रन्थों की व्याख्या में व्यस्त रहने के कारण इसका कार्य धीरे-धीरे हुआ। साथ ही सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से १९९१ में सेवा निवृत्ति के बाद Contract पर आयुर्वेद विश्वविद्यालय जामनगर में फार्मेसी निदेशक रूप में २००० तक कार्य करता रहा। पुनः २००० के उत्तरार्द्ध में S.D.M. College of Ayurveda Udupi में पुनः Contract रूप में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष तथा General Manager of Pharmary रूप में ज्वाइन कर व्यस्त हो गया, जिससे ग्रन्थ प्रकाशन में विलम्ब हुआ।

मैंने कविराज पं. अम्बिकादत्त शास्त्री द्वारा सम्पादित भैषज्यरत्नावली के पाठों को आधार मान कर इस ग्रन्थ की व्याख्या की है किन्तु उनके परिशिष्ट को स्वीकार नहीं किया है। फिर भी मैंने ६-८ प्रमुख योगों को इसमें समाविष्ट किया है; यथा—आरोग्यवर्धनी, त्रिभुवनकीर्ति, कुमार्यासवादि आदि जिससे विद्वान् वैद्यों को इन योगों को ढूँढने में अन्य ग्रन्थों का सहयोग नहीं लेना पड़े।

प्रकृत भैषज्यरत्नावली की व्याख्या की कुछ विशेषताऐं हैं। यथा—मैंने इनके प्रायः अधिकांश योगों को मूल ग्रन्थों से मिलाकर ढूँढ निकाला है जिससे उसकी प्रमाणिकता प्रतीत होती है। जैसे सितोपलादि चूर्ण मूलतः चरकसंहिता का है, वैसे ही अन्य योगों को भी ढूँढने का भरसक प्रयास किया है; तथापि कुछ ऐसे योग नहीं मिल पाये हैं जिससे उनके मूलस्रोत का ज्ञान नहीं हो पाया है। मेरी इस व्याख्या में औषध निर्माण हेतु सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग किया गया है। इस व्याख्या से अब यह पता चल पायेगा कि औषध का वर्ण कैसा है, स्वाद कैसा है, गन्ध कैसा है, आधुनिक मात्रा कितनी देनी है, अनुपान क्या होना चाहिए तथा इस औषधि को किन प्रमुख रोगों में देना चाहिए। इसके अतिरिक्त निर्माण में पुरानी मात्रा कर्ष, पल, प्रस्थ, आढक, द्रोण आदि को सर्वत्र आधुनिक मात्रा (मि.ग्रा., किलो., मि.ली., लीटर आदि) में परिवर्त्तित किया गया है जिससे औषधि निर्माताओं को पुराने मानों से होने वाली परेशानी से बचाया जा सके। फिर भी मेरी व्याख्या से ग्रन्थ की उपयोगिता अधिक सार्थक हुई है।

आभार प्रदर्शन

सर्वप्रथम इस ग्रन्थ की व्याख्या में अनेक दुरूह स्थलों पर निर्णायक मार्गदर्शन के लिए परमपूज्य गुरुदेव आचार्य पं. प्रियव्रत शर्मा जी का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ एवं उनके सुस्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन की कामना करता हूँ, जिससे मुझे उनका मार्गदर्शन सतत मिलता रहे।

ततः श्री धर्मस्थल मञ्जुनाथेश्वर एजुकेशनल सोसाइटी के अध्यक्ष एवं धर्माधिकारी परमपूज्य डॉ. डी.वीरेन्द्र हेगड़े 'पद्मभूषण' का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। मेरे प्रति उनका सद्विचार ऐसा ही बना रहे। श्री हेगड़े जी जैसे दानवीर, कर्मठ एवं सत्पुरुष अब कहीं-कहीं ही देखने को मिलते हैं। मैं उनके सुखद स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन की कामना करता हूँ।

पुनश्च श्री धर्मस्थल मञ्जुनाथेश्वर एजुकेशनल सोसाइटी के सम्माननीय विद्वान् सेक्रेटी प्रोफेसर एस. प्रभाकर जी की मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। उन्होंने मुझे सतत प्रोत्साहित किया है। वे मेरी कार्यशैली से सन्तुष्ट हैं। मैं उनके सुखद स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन की कामना करता हूँ जिससे S.D.M. सोसाइटी को उनका मार्गदर्शन लम्बे समय तक मिलता रहे।

धन्यवाद ज्ञापन

सर्वप्रथम सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के मेरे शिष्य डॉ. हरिश्चन्द्र सिंह कुशवाहा को धन्यवाद तथा शुभाशीर्वाद देता हूँ। क्योंकि डॉ. कुशवाहा गुरु-शिष्य परम्परा काल में जब जामनगर (गुजरात) में थे तो उन्होंने 'भैषज्यरत्नावली' के लेखन कार्य में कई महीनों तक मेरी मदद करते रहे हैं। मैं उन्हें एतदर्थ धन्यवाद एवं आशीर्वाद देता हूँ कि आप भी ग्रन्थ-लेखन में कुशलता प्राप्त कर आयुर्वेद की श्रीवृद्धि करें। यद्यपि आपने इस कार्य का प्रारम्भ कर दिया है। डॉ. विशि बंसल तत्कालीन व्याख्याता, S.D.M. College of Ayurveda रसशास्त्र को बहुत आशीर्वाद देता हूँ उन्होंने प्रूफ रीडिंग में मेरी मदद की है। मेरे शिष्य डॉ. एम. गोपीकृष्ण M.D. रसशास्त्र को बहुत धन्यवाद एवं आशीर्वाद देना चाहता हूँ, क्योंकि इन्होंने भैषज्यरत्नावली के लेखन कार्य में हमेशा सहयोग देते रहे हैं।

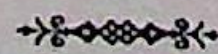
तदनन्तर फाइनल एम.डी. रसशास्त्र के मेरे प्रिय छात्रों—डॉ. पद्मिनी राव, डॉ. प्रकाश एम. देशपाण्डे तथा डॉ. सुनील जैन को धन्यवाद एवं शुभाशीष देता हूँ। क्योंकि इन तीनों छात्रों ने मेरे लेखन और प्रूफ रीडिंग कार्य में हमेशा मदद की है।

इस बृहदाकार ग्रन्थ का सम्पादन-मुद्रण सावधानीपूर्वक होने के बावजूद मानव-स्वभाव-सुलभवश त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। अत: माननीय वैद्यों, अध्यापकों तथा साथ ही विद्यार्थियों ज़ो इस ग्रन्थ के पाठक हैं, से मेरा निवेदन है कि वे इन त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे। जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँगा।

वसन्त पञ्चमी
दिनाङ्क १३:२:२००५ ई.

रसशास्त्रानुचर
प्रोफेसर सिद्धिनन्दन मिश्र

प्रकरण-सूची



अथ शूलरोगाधिकारः (३०)

शूलरोग में क्रियाक्रम (च.द.)

वमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्त्तयः।
क्षारचूर्णानि गुडिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥१॥

शूल रोग में बढ़े हुए कफ एवं उत्क्लेद के शान्त्यर्थ वमन, लंघन, स्वेदन, पाचन, फलवर्तियाँ, क्षार प्रधानौषध एवं गुटिकाओं का प्रयोग श्रेष्ठ होता है।

१. शूलरोग में स्वेदन (च.द.)

पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः।
पायसैः कृशरैः पिण्डैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः ॥२॥

शूल रोग से पीड़ित व्यक्ति में शूलस्थल पर वेदना के शमनार्थ निम्न प्रकार से स्वेदन करना सुखदायक होता है, यथा—(१) गरम खीर की पोटली से स्वेदन करना। (२) गरम खिचड़ी की पोटली से स्वेदन करना। (३) गेहूँ के आँटे को घी में भूनकर हलवा जैसा गरम पिण्ड (पोटली) बनाकर स्वेदन करना। (४) अस्थि रहित मांस को पकाकर घी मिलाकर पोटली से सेक करना। (५) या उत्कारिका की गरम पोटली से सेक करना हितकर है।

'यवमाषैरण्डबीजातसीकुसुम्भबीजादिभिः पिष्टस्विन्नैर्लप्सिकाकृति यः स्वेदनोपायः स उत्कारिका' इति अरुणदत्तः (अ.हृ.सू. १७) अर्थात् निस्तुष जौ का आटा, उड़द का आटा, एरण्डबीज मज्जाचूर्ण, अतसीबीजचूर्ण, कुसुम्भबीजचूर्ण को एक साथ मिलाकर जल के साथ गरम करके लप्सी जैसा बनाकर थोड़ा घृत से स्निग्ध कर स्वेदन करना लाभप्रद है।

२. वातज शूल चिकित्सा (भा.प्र.)

विज्ञाय वातशूलन्तु स्नेहस्वेदैरुपाचरेत्।
स्वल्पशूलाकुलस्य स्यात् स्वेद एव सुखावहः ॥३॥

निदान एवं लक्षणों से वातज शूल समझकर स्नेहन एवं स्वेदन का उपचार करना चाहिए। क्योंकि वातज शूल से स्वल्प पीड़ित व्यक्तियों में स्नेहोत्तर स्वेदन हितकर होता है।

३. मृत्तिका स्वेद (भा.प्र.)

मृत्तिकां सजलां पाकाद् घनीभूतां पटे क्षिपेत्।
कृत्वा तत्पोट्टलीं शूली यथास्वेदं निधापयेत् ॥४॥

साफ, चिकनी, कंकड़ आदि से रहित मिट्टी को पानी में घोल कर कपड़ा से छान लें। अब उसे कड़ाही में पका लें। गाढ़ा होने पर एक मोटे कपड़े पर रखकर पोटली बनाकर शूल स्थल पर सेंके। इस तरह स्वेदन करने से शूल नष्ट हो जाता है।

४. कार्पासास्थ्यादि स्वेद (भा.प्र.)

कार्पास्थिकुलत्थकैस्तिलयवैरेरण्डमूलातसी-
वर्षाभूशणबीजकाञ्जिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक्।
स्वेदः स्यादथ कूर्परोदरशिरःस्फिग्जानुपादाङ्गुली-
गुल्फस्कन्धकटीरुजो विजयते निःशेषवातार्त्तिहा ॥५॥

१. कपासबीज, २. कुलत्थबीज, ३. तिल, ४. यव, ५. एरण्डमूल, ६. अतसीबीज, ७. पुनर्नवामूल, ८. शणबीज तथा ९. काञ्जी—इन सभी का समभाग चूर्ण करके काञ्जी के साथ आग पर पकाकर अथवा इनमें से कोई उपलब्ध एक ही द्रव्य के चूर्ण से पूर्ववत् पकाकर पोटली में रखें और इसी गरम पोटली से स्वेदन करें। स्फिग् (चूतड़), जानुसन्धि, पैर की अंगुलियों में, गुल्फ, स्कन्ध एवं कटी के शूल स्थान में सेक (स्वेदन) करने से पीड़ा युक्त वातज शूल नष्ट हो जाता है।

५. कल्कस्वेद (च.द.)

बिल्वमूलतिलैरण्डं पिष्ट्वा चाम्लतुषाम्भसा।
गुडिकां भ्रामयेदुष्णां वातशूलविनाशिनीम् ॥६॥

बिल्वमूलचूर्ण, एरण्डमूलचूर्ण तथा तिलचूर्ण तीनों के समभाग को अम्ल काञ्जी में पकाकर गोला बना लें और कपड़े में बाँधकर गरम-गरम सेंकने से वातशूल नष्ट हो जाता है।

६. कुलत्थ यूष (च.द.)

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं
स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः।
ससैन्धवव्योषयुतः सलावः
सहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥७॥

कुलत्थबीज तथा बटेर (लावक पक्षी) मांस दोनों ५०-५० ग्राम १६ गुना जल में पकाकर सिद्ध कर लें। ४०० मि.ली. रहने पर क्वाथ सिद्ध रस छान लें। ततः घृत १० ग्राम और सैन्धवलवणचूर्ण, सोंठचूर्ण, पीपरचूर्ण, मरिचचूर्ण, हींग (घृत भृष्ट चूर्ण), सौवर्चललवण और अनारदानाचूर्ण—प्रत्येक ३-३ ग्राम, हींग १ ग्राम उसमें मिलाकर (छौंककर) वातजशूल से पीड़ित व्यक्ति को यह यूष पिलाना चाहिए। इसके पीने मात्र से शूल (उदरशूल) तुरन्त नष्ट हो जाता है।

७. बलादि क्वाथ (च.द.)

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।
सहिङ्गुलवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥८॥

१. बलामूल, २. पुनर्नवामूल, ३. एरण्डमूल, ४. बृहतीमूल, ५. कण्टकारीमूल, ६. गोक्षुर, ७. हींग और ८. सैन्धवलवण—प्रत्येक द्रव्य ३-३ ग्राम लें। इन्हें यवकुट कर १६ गुने जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर कपड़े से छानकर पीने से वातिक शूल सद्यः नष्ट हो जाता है।

८. हिंग्वादि चूर्ण (च.द.)

शूली निरन्नकोष्ठोऽद्भिरुष्णाभिश्चूर्णिताः पिबेत् ।
हिङ्गुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः ॥९॥

१. घृतभर्जितहींग, २. अतीसचूर्ण, ३. सोंठचूर्ण, ४. पीपरचूर्ण, ५. मरिचचूर्ण, ६. वचचूर्ण, ७. सौवर्चललवण और ८. हरीतकीचूर्ण—प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण करें। इस चूर्ण को ५ से १० ग्राम की मात्रा में लेकर निरन्नोदर (खालीपेट) सेवन करने से शूलरोग नष्ट हो जाता है।

९. तुम्बुर्वादि चूर्ण (च.द.)

तुम्बुरूण्यभया हिङ्गु पौष्करं लवणत्रयम् ।
पिबेद् यवाम्बुना वातशूलगुल्मापतन्त्रकी ॥१०॥

१. तुम्बुरु (नेपाली धनियाँ), २. हरीतकी, ३. घृतभृष्टहींग, ४. पुष्करमूल, ५. सैन्धवलवण, ६. सौवर्चललवण तथा ७. विडलवण—सभी १-१ भाग लें। इन्हें एकत्र कूट-पीसकर चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रह करें। ३ से ६ ग्राम इस चूर्ण को यवाम्बु से लें। इसके सेवन से शूल, गुल्म, अपतन्त्रक आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३-६ ग्राम। **अनुपान**—यवाम्बु से। **गन्ध**—हींग की गन्ध। **वर्ण**—किञ्चिद् हरित वर्ण का। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—शूल, गुल्म एवं अपतन्त्रक में।

१०. यमान्यादि चूर्ण (च.द.)

यमानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः ।
सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः ॥११॥

१. अजवायन, २. घृतभृष्टहींग, ३. सैन्धवलवण, ४. यवक्षार, ५. सौवर्चललवण तथा ६. हरीतकी—इन्हें एक साथ कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। सुरामण्ड के साथ ३ से ६ ग्राम सेवन करने पर वातज शूल नष्ट हो जाता है। सुरामण्ड से मद्य का ऊपरी द्रव भाग लेना चाहिए, जिसे प्रसन्ना कहते हैं। जो मद्य नहीं ले सकता है उसे उष्णजल से देना चाहिए।

मात्रा—३-६ ग्राम। **अनुपान**—मद्य (प्रसन्ना) या उष्ण जल से। **गन्ध**—हिंगु गन्धी। **वर्ण**—खाखी वर्ण। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—वातज शूल में।

११. विश्वादि क्वाथ-१ (च.द.)

विश्वमेरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
हिङ्गुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥१२॥

१. सोंठ १० ग्राम, २. एरण्डमूल १० ग्राम, ३. घृतभृष्टहींग १ ग्राम तथा ४. सौवर्चललवण ३ ग्राम लें। सोंठ एवं एरण्डमूल को यवकुट करें और २५ ग्राम यवकुट १६ गुना जल (४०० मि.ली.) के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें तथा उस क्वाथ में उपर्युक्त मात्रा में हींग और सौवर्चललवण का चूर्ण मिला कर गरम-गरम पिलाने से शूल तत्क्षण नष्ट हो जाता है।

मात्रा—८० मि.ली.। **अनुपान**—प्रक्षेप-हींग-सौवर्चल मिलाकर। **गन्ध**—हिंगुगन्धी। **वर्ण**—हल्का पीताभ। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—शूल रोग में।

१२. विश्वादि क्वाथ-२ (च.द.)

हिङ्गुपुष्करमूलाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलेन वा ।
विश्वैरण्डयवक्वाथः सद्यः शूलनिवारणः ॥१३॥

(१) पुष्करमूलक्वाथ में हिङ्गु और सौवर्चललवण मिलाकर पीने से शूलरोग नष्ट हो जाता है। अथवा—(२) सोंठ, एरण्डमूल, यव ८-८ ग्राम मिलाकर यवकुट करें और १६ गुना जल (४०० मि.ली.) में क्वाथ कर चौथाई शेष रहने पर छानकर गरम-गरम पीने से शूलरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६० मि.ली.। **अनुपान**—हींग, पुष्करमूल या हींग, सौवर्चललवण का प्रक्षेप देकर पीना है।

१३. रुबुकादि क्वाथ (च.द.)

तद्वद्रुबुयवक्वाथो हिङ्गुसौवर्चलान्वितः ॥१४॥

१. एरण्डमूल १० ग्राम, २. यव १० ग्राम, ३. घृतभृष्टहींग १ ग्राम एवं ४. सौवर्चललवण ३ ग्राम लें। ऊपर की तरह एरण्ड मूल एवं यव के यवकुट कर और उसमें १६ गुना (४०० मि.ली.) जल मिलाकर क्वाथ करें। चौथाई (१० मि.ली.) शेष रहने पर छान लें और उसमें १ ग्राम हींग एवं ३ ग्राम सौवर्चललवण मिलाकर गरम-गरम पीने से शूल रोग सद्यः नष्ट हो जाता है।

मात्रा—५० मि.ली.। **अनुपान**—हींग एवं सौवर्चल के प्रक्षेप से। **गन्ध**—हिंग गन्धी। **वर्ण**—पुआल के रंग का। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—शूल में।

१४. श्यामादि चूर्ण (च.द.)

श्यामा विडं शिग्रुफलानि पथ्या
विडङ्गकम्पिल्लकमश्वमूत्री ।

कल्कं शमं मद्ययुतञ्च पीत्वा
शूलं निहन्यादनिलात्मकन्तु ॥१५॥

१. निशोथ, २. विडलवण, ३. सहिजनबीज, ४. हरीतकी, ५. वायविडङ्ग, ६. कम्पिल्लक तथा ७. शल्लकी (अश्वमूत्री) —ये द्रव्य सभी १-१ भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें तथा काचपात्र में संग्रह करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में मद्य के साथ लेने से वातिक शूल नष्ट हो जाता है।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—मद्य के साथ। **गन्ध**—काष्ठ औषधीय गन्ध। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—वातज शूल में।

१५. हिङ्ग्वादि चूर्ण (च.द.)

हिङ्ग्वम्लकृष्णलवणयमानी-
क्षाराभयासैन्धवतुल्यभागम् ।
चूर्णं पिबेद्वारुणिमण्डमिश्रं
शूले प्रवृद्धेऽनिलजे शिवाय ॥१६॥

१. घृतभृष्टहींग, २. अम्लवेतस, ३. सौवर्चललवण, ४. अजवायन, ५. यवक्षार, ६. हरीतकी तथा ७. सैन्धवलवण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। उपर्युक्त ७ द्रव्यों का महीन चूर्ण कर छान लें और काचपात्र में संग्रह करें। ३ से ५ ग्राम की मात्रा में इस चूर्ण को वारुणि (मद्य) के साथ सेवन करने से वातज शूल नष्ट हो जाता है।

मात्रा—३-५ ग्राम। **अनुपान**—वारुणि मद्य से। **गन्ध**—हिंगु गन्धी। **वर्ण**—हरिताभ (खाखी वर्ण का)। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—वातज शूल में।

१६. वातशूलघ्न योग (च.द.)

बीजपूरकमूलञ्च घृतेन सह पाययेत्।
जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणतः ॥१७॥

बिजौरानिम्बू मूल का सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। १० ग्राम इस चूर्ण को गरम गोघृत में मिलाकर पीने से निश्चित रूप से वातज शूल नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१० ग्राम। **अनुपान**—गोघृत से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—ग्रे। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—वातज शूल में।

१७. सौवर्चलादि गुटिका (च.द.)

सौवर्चलाम्लिकाऽजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः ।
मातुलुङ्गरसैः पिष्टा गुडिका वातशूलनुत् ॥१८॥

१. सौवर्चललवण १०० ग्राम, २. निर्बीज इमली फल २०० ग्राम, ३. जीराश्वेत ४०० ग्राम तथा ४. मरिच ८०० ग्राम लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण करें और बिजौरानिम्बुस्वरस की भावना देकर २-२ ग्राम की गुडिका बनाकर छाया में सुखा लें। वातज शूल में १ से २ गुडिका गरम पानी से सेवन करने से शूल नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२ से ४ ग्राम। **अनुपान**—गरम पानी से। **गन्ध**—जीरा की महक। **वर्ण**—खाखी रंग। **स्वाद**—लवणाम्ल कटु। **उपयोग**—वातज शूल में।

१८. हिंग्वादि गुटिका (च.द.)

हिङ्ग्वम्लवेतसव्योषयमानीलवणत्रिकैः ।
बीजपूररसोपेतैर्गुटिका वातशूलनुत् ॥१९॥

१. घृतभृष्टहींग, २. अम्लवेतस, ३. सोंठ, ४ पीपर, ५. मरिच, ६. अजवायन, ७. सैन्धव, ८. सौवर्चल तथा ९. विडलवण प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। इन्हें कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें तथा बिजौरानिम्बुस्वरस की भावना देकर १-१ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। गरम पानी से १ से २ वटी सेवन करने से वातज शूल नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१ से २ वटी (१ से २ ग्राम)। **अनुपान**—गरम पानी से। **गन्ध**—हिंगु गन्धी। **वर्ण**—खाखी वर्ण का। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—वातज शूल में।

१९. तिलकल्क लेप (च.द.)

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि।
गुटिका शमयत्येषा शूलञ्चैवातिदुस्तरम् ॥२०॥

कृष्ण तिल को काञ्जी के साथ पीसकर गरम करें और गरम-गरम लेप करने से असाध्य शूल भी नष्ट हो जाता है।

२०. मदनादि लेपद्वय (च.द.)

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनः काञ्जिकान्वितः।
जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलः पार्श्वशूलनुत् ॥२१॥

१. मदनफलबीज को काञ्जी के साथ सिल पर पीसकर गरम-गरम नाभि पर लेप करने से वातज शूल नष्ट हो जाता है।

२. जीवन्तीमूल को कूटकर चूर्ण कर लें तथा उसे तिलतैल में घोलकर गरम करें। पार्श्वशूल नाशनार्थ पार्श्व में गरम-गरम लेप करें तो पार्श्वशूल नष्ट हो जाता है।

पित्तजशूल चिकित्सा (च.द.)

गुडः शालिर्यवाः क्षीरं सर्पिष्पानं विरेचनम्।
जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम्॥२२॥

गुड़, शालिचावल, जौ, गोदुग्ध, घृतपान, विरेचन, जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांस एवं मांस रस पित्तज शूल रोगियों के लिए हितकर औषध है।

पित्तज शूल में चिकित्सा क्रम (च.द.)

पैत्ते तु शूले वमनं पयोऽम्बुः
रसैस्तथेक्षोः सपटोलनिम्बैः ।
शीतावगाहाः पुलिनाः सवाताः
कांस्यादिपात्राणि जलप्लुतानि ॥२३॥

पित्तज शूल में पटोलपत्र एवं निम्ब पत्र कल्क पानी या शीतल दूध या इक्षु रस में घोलकर पिलावें और वमन करावें। शीतल जल में अवगाहन, नदी किनारे रहकर शीतल हवा का सेवन करना चाहिए और कांस्यपात्र, कटोरी या गहरी थाली में शीतल जल या बर्फ रखकर शूल स्थान पर रखना लाभदायक है।

विरेचनादि योग (च.द.)

विरेचनं पित्तहरञ्च शस्तं
रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम् ।
सन्तर्पणं लाजमधूपपन्नं
योगाः सुशीतामधुसम्प्रयुक्ताः ॥२४॥

त्रिवृत् आदि पित्तसारक द्रव्यों द्वारा यथाविधि विरेचन कराना, खरगोश और लावक पशु-पक्षियों का मांस रस पिलाना, धान के लावे के चूर्ण में मधु मिलाकर खिलाना तथा इससे संतर्पण कराना तथा मधु युक्त शीतल द्रव्यों का प्रयोग शूल में हितकर है।

२१. यवपेया प्रयोग (च.द.)

छर्द्यां ज्वरे पित्तभवेऽथ शूले
घोरे विदाहे त्वतितर्षिते च ।
यवस्य पेयां मधुना विमिश्रां
पिबेत्सुशीतां मनुजः सुखार्थी ॥२५॥

वमन में, पित्तज्वर में, पित्तजशूल में, भयंकर दाह में, अत्यन्त प्यास में, जौ की शीतल पेया में मधु मिलाकर पीने से मनुष्य रोग मुक्त हो जाता है।

२२. विविध स्वरस प्रयोग (च.द.)

धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्तीगोस्तनाम्बु वा ।
पिबेत् सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिषूदनम् ॥२६॥

आमला का रस या विदारीकन्दस्वरस या त्रायमाणस्वरस या द्राक्षास्वरस या क्वाथ में चीनी मिलाकर पीने से पित्तजशूल तत्क्षण नष्ट हो जाता है।

२३. धात्रीचूर्ण लेह (च.द.)

प्रलिह्यात् पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥२७॥

आमला का चूर्ण मधु मिलाकर चाटने से पित्तजशूल नष्ट हो जाता है।

२४. त्रिफलादि क्वाथ-१ (च.द.)

त्रिफलाऽऽरग्वधक्वाथं सक्षौद्रं शर्कराऽन्वितम् ।
पाययेद्रक्तपित्तघ्नं दाहशूलनिवारणम् ॥२८॥

आमला, हरीतकी, बहेड़ा और अमलतासफलमज्जा—प्रत्येक १०-१० ग्राम लें, चीनी १० ग्राम तथा मधु १० ग्राम लें। अमलतास एवं त्रिफला यवकुट को १६ गुने जल में क्वाथ करें, चौथाई शेष रहने पर छान लें और उसमें चीनी और मधु मिलावें। शीतल होने पर रक्तपित्त, दाह, पित्तजशूल के रोगियों को पिलावें। इसके पान से उपर्युक्त रोग शान्त हो जाते हैं।

२५. त्रिफलादि क्वाथ-२ (च.द.)

त्रिफलानिम्बयष्ट्याह्वकटुकाऽऽरग्वधैः शृतम् ।
पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोपशान्तये ॥२९॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. निम्बत्वक्, ५. मुलेठी, ६. कुटकी और ७. अमलतासफलमज्जा—सभी सम भाग में लें। इन्हें यवकुट कर संग्रह करें। इस क्वाथ द्रव्य को २५ ग्राम की मात्रा में लें और १६ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई बचे तो छान लें। ठण्डा होने पर २५ ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से दाह-शूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

२६. शतावरी स्वरस प्रयोग (च.द.)

शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नरः ।
दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहृत् ॥३०॥

शतावरी का रस या क्वाथ ५० मि.ली. तथा मधु ५० ग्राम मिलाकर पीने से दाह, पित्तज शूल तथा सभी पित्तज विकार शान्त हो जाता है।

२७. शतावर्यादि क्वाथ (च.द.)

शतावरीसयष्ट्याह्ववाट्यालकुशगोक्षुरैः ।
शृतशीतं पिबेत्तोयं सक्षौद्रगुडशर्करम् ॥
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम् ॥३१॥

१. शतावरी, २. मुलेठी, ३. बलामूल, ४. कुशमूल, ५. गोक्षुर—प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम लें; ६. गुड़ १० ग्राम, ७. मधु १० ग्राम और चीनी १० ग्राम लें। उपर्युक्त ५ द्रव्यों को यवकुट करें और १६ गुने जल में क्वाथ करें, चौथाई शेष रहने पर छान लें और उसमें गुड़-मधु-चीनी मिलाकर शीतल होने पर रक्तपित्त, दाह एवं पित्तजशूल एवं ज्वर से ग्रस्त रोगी को पिलाने से सद्यः लाभ होता है।

२८. बृहत्यादि क्वाथ (च.द.)

बृहत्यौ गोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुरालिकाः ।
पीताः पित्तभवं शूलं सद्यो हन्युः सुदारुणम् ॥३२॥

१. बृहती, २. कण्टकारी, ३. गोक्षुर, ४. एरण्डमूल, ५. कुशमूल, ६. काशमूल और ७. ईक्षुमूल—सभी समभाग में लेकर यवकुट कर संग्रहीत करें। २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर शीतल क्वाथ पीने से पित्तज भयंकर रोग सद्यः नष्ट हो जाते हैं।

२९. एरण्डतैल प्रयोग (च.द.)

तैलमेरण्डजं वाऽपि मधुकक्वाथसंयुतम्।
शूलं पित्तोद्भवं हन्ति गुल्मं पैत्तिकमेव च ॥३३॥

५० मि.ली. मुलेठी के क्वाथ में २५ मि.ली. एरण्डतैल मिलाकर पीने से पैत्तिकशूल एवं पैत्तिकगुल्म रोग नष्ट हो जाते हैं।

श्लेष्मशूल चिकित्सा (च.द.)

श्लेष्मात्मके छर्दनलङ्घनानि
शिरोविरेकं मधुसीधुपानम्।
मधूनि गोधूमयवानरिष्टान्
सेवेत रूक्षान् कटुकांश्च सर्वान् ॥३४॥

कफजशूल रोग में वमन, उपवास या लघु भोजन, शिरोविरेचन[1] के लिए ज्योतिष्मती आदि द्रव्यों द्वारा शिरोविरेचन कराना चाहिए। मद्य, सीधु का पान, गेहूँ एवं जौ की रोटी, निम्बपत्र तथा समस्त कफघ्न रूक्ष एवं कटु द्रव्यों का सेवन करना चाहिए।

३०. पञ्चकोलादिचूर्ण (च.द.)

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम्।
सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलनिवारणम् ॥३५॥

१. सैन्धव, २. सौवर्चल, ३. विडलवण, ४. पीपर, ५. पिपरामूल, ६. चव्य, ७. चित्रक और ८. सोंठ—प्रत्येक समभाग में लेकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम इस यवकुट को १६ गुने जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें तथा कफज शूल से पीड़ित व्यक्ति को गरम-गरम पिलावें।

३१. बिल्वादिक्वाथ (च.द.)

बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम्।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यःशूलनिवारणम् ॥३६॥

१. बिल्बमूल, २. एरण्डमूल, ३. चित्रकमूल, ४. सोंठ, ५. घृतभर्जित हींग तथा ६. सैन्धव—बिल्वमूल से सोंठ तक चारों द्रव्य १-१ भाग लेकर यवकुट कर संग्रहीत करें। इसमें से प्रतिदिन २५ ग्राम यवकुट को लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और उसमें आधा ग्राम घृतभृष्ट हींग तथा २ ग्राम लवण मिलाकर गरम-गरम पिलाने से कफज शूल सद्यः नष्ट हो जाता है।

३२. दशमूल क्वाथ

दशमूलकषायस्तु लवणक्षारसंयुतः।
पीतो हृदामयश्वासगुल्मशूलानि नाशयेत् ॥३७॥

१. बिल्वमूल, २. अग्निमन्थमूल, ३. सोनापाठामूल, ४. पाढलमूल, ५. गम्भारमूल, ६. शालपर्णी, ७. पृश्निपर्णी, ८. बृहती, ९. कण्टकारी और १०. गोक्षुर—प्रत्येक १-१ भाग लें; ११. सैन्धवलवण २ ग्राम तथा १२. यवक्षार २ ग्राम लें। दशमूल के दसों द्रव्यों को यवकुट कर संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना जल में भिंगोकर क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और उसमें लवण एवं क्षार मिलाकर गरम-गरम पिलाने से हृद्रोग, श्वास, कफज गुल्म एवं कफज शूल रोग नष्ट हो जाता है।

आमशूल चिकित्सा (च.द.)

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी।
सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्द्धनम् ॥३८॥

आमशूल में कफजशूल जैसी सभी क्रिया करनी चाहिए। इसमें आमनाशक और अग्निबलवर्द्धक पञ्चकोल आदि द्रव्यों का उपयोग लाभदायक होता है।

३३. चतुःसम चूर्ण (च.द.)

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरञ्च चतुःसमम्।
चूर्णं शूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥३९॥

१. अजवायन, २. सैन्धव, ३. हरीतकी तथा ४. सोंठ—चारों द्रव्य समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रह करें। ३ से ५ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से लेने से आमजन्य शूल एवं मन्दाग्नि को शीघ्र नाश करता है। यह परम दीपन योग है।

३४. मुस्तादि चूर्ण (च.द.)

मुस्तां वचां तिक्तकरोहिणीञ्च
तथाऽभयां निर्दहनीञ्च तुल्याम्।
पिबेत्तु गोमूत्रयुतां कफोत्थ-
शूले तथाऽऽमस्य च पाचनार्थम् ॥४०॥

१. नागरमोथा, २. वच, ३. कटुकी, ४. हरीतकी और ५. चित्रकमूल—इन सभी द्रव्यों को कूट-पीस कर सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें और कफज शूल शान्त्यर्थ एवं आमज शूल पाचनार्थ ३ से ५ ग्राम की मात्रा में ५० मि.ली. गोमूत्र के साथ पान करें।

३५. वातपैत्तिक शूल चिकित्सा (च.द.)

समाक्षिकं [1]बृहत्यादि पिबेत् पित्तानिलात्मके।
व्यामिश्रं वा विधिं कुर्याच्छूले पित्तानिलात्मके ॥४१॥

वात-पैत्तिक शूल में सुश्रुतसंहितोक्त बृहत्यादि क्वाथ मधु के

---

१. शिरोविरेचन द्रव्याणि यथा—'ज्योतिष्मतीक्षवकमरिचपिप्पलीविडङ्गशिग्रुसर्षपामार्गतण्डुलश्वेतामहाश्वेता' इति दशेमानि शिरोविरेचनोपगानि भवन्ति। (च.सू. ४)

१. बृहत्यादिगणः—बृहतीकण्टकारिकाकुटजफलपाठामधुकं चेति। पाचनीयो बृहत्यादिगणः पित्तानिलापहः। कफारोचकहृद्रोगमूत्रकृच्छ्ररुजापहः। (सु.सू. ३८।३१)

साथ पीने से लाभ करता है। अथवा पित्त एवं वात से उत्पन्न शूल में पूर्वोक्त विश्वादिक्वाथ या त्रिफलादिक्वाथ पिलाना चाहिए।

कफपित्तशूल चिकित्सा (च.द.)

पित्तजे कफजे वापि क्रिया या कथिता पृथक् ।
एकीकृत्य प्रयुञ्जीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥४२॥

कफजशूल एवं पित्तजशूल में पृथक्-पृथक् जिन-जिन द्रव्यों से पहले चिकित्सा करने का निर्देश दिया गया है, उन सभी द्रव्यों के मिश्रण से चिकित्सा करनी चाहिए।

३६. पटोलादि क्वाथ (च.द.)

पटोलत्रिफलाऽरिष्टक्वाथं मधुयुतं पिबेत् ।
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥४३॥

१. पटोलपत्र, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा और ५. निम्बत्वक्—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'पटोलादिक्वाथ' को २५ ग्राम लें और १६ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और इसमें २० ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से पित्त-कफजन्य ज्वर, छर्दि, दाह एवं शूलरोग नष्ट हो जाते हैं।

३७. वातश्लेष्मशूल चिकित्सा (च.द.)

रसोनं मद्यसम्मिश्रं पिबेत् प्राप्तः प्रकाङ्क्षितः ।
वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्ति वह्निदीपनम् ॥४४॥

रसोननिस्तुष ६ ग्राम लें। सिल पर लशुन को पीसकर कल्क बना लें। वात-कफजन्य शूल से पीड़ित व्यक्ति मद्य के साथ यदि इसे लेता है तो शूल शीघ्र नष्ट हो जाता है और अग्नि भी प्रदीप्त करता है।

३८. त्रिदोषजशूल चिकित्सा (च.द.)

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गुव्योषसंयुतम् ।
उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥४५॥

१. शंखभस्म, २. सैन्धव, ३. घृतभृष्टहींग, ४. सोंठचूर्ण, ५. पीपरचूर्ण और ६. मरिचचूर्ण—प्रत्येक समभाग लें। इन चारों द्रव्यों को कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें। ३ से ५ ग्राम की मात्रा में इस चूर्ण को उष्णोदक से पीने पर त्रिदोषज शूल नष्ट हो जाता है।

३९. विदार्य्यादि स्वरस (च.द.)

विदारीदाडिमरसः सव्योषलवणान्वितः ।
क्षौद्रयुक्तो जयत्याशु शूलं दोषत्रयोद्भवम् ॥४६॥

विदारीकन्दस्वरस या क्वाथ ५० मि.ली. में सोंठ, पीपर, मरिच, सैन्धवलवण—प्रत्येक ३-३ ग्राम लेकर मधु १० ग्राम मिलाकर पीने से त्रिदोषजशूल नष्ट हो जाता है।

४०. मण्डूर प्रयोग (च.द.)

गोमूत्रशुद्धं मण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।
बिलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥४७॥

अग्नि में प्रतप्त कर ७ बार गोमूत्र में निर्वापित किया मण्डूरचूर्ण (गोमूत्रशुद्ध मण्डूर) १०० ग्राम तथा त्रिफलाचूर्ण ३०० ग्राम दोनों को खरल में अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रह करें। इस मण्डूर-त्रिफलाचूर्ण को १ से ३ ग्राम की मात्रा में विषम मात्रा में मधु-घी के साथ मिलाकर चाटने से त्रिदोषजशूल नष्ट हो जाता है।

४१. एरण्डद्वादशक क्वाथ (च.द.)

एरण्डफलमूलानि बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
पर्णिन्यः सहदेवा च सिंहपुच्छीक्षुरालिका ॥४८॥
तुल्यैरेतैः शृतं तोयं यवक्षारयुतं पिबेत् ।
पृथग्दोषभवं शूलं हन्यात्सर्वभवं यथा ॥४९॥

१. एरण्डबीज, २. एरण्डमूल, ३. कण्टकारी, ४. बृहती, ५. गोक्षुर, ६. शालपर्णी, ७. पृश्निपर्णी, ८. माषपर्णी, ९. मुद्गपर्णी, १०. सहदेई, ११. पृश्निपर्णी तथा १२. इक्षुमूल—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और इस १०० मि.ली. शेष क्वाथ में १० ग्राम यवक्षारचूर्ण मिलाकर पीने से एकदोषज एवं त्रिदोषजशूल नष्ट हो जाता है।

४२. हिंग्वादि चूर्ण (योगरत्ना.)

हिङ्गु सौर्वचलं शुण्ठी पथ्या च द्विगुणोत्तरा ।
एतच्चूर्णं कटीकुक्षिपार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥५०॥

१. घृतभृष्टहींग १ भाग, २. सौवर्चललवण २ भाग, ३. सोंठ ४ भाग तथा ४. हरीतकी ८ भाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। २ से ५ ग्राम तक की मात्रा में गरम पानी से सेवन करने पर कटीशूल, कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, हृच्छूल तथा बस्तिशूल नष्ट हो जाता है।

४३. हिंग्वादि चूर्ण (च.द.)

हिङ्गु सौवर्चलं पथ्या विडसैन्धवतुम्बरु ।
पौष्करञ्च पिबेच्चूर्णं दशमूलयवाम्भसा ॥५१॥
पार्श्वहृत्कटिपृष्ठांसशूले तन्द्राऽपतानके ।
शोथे श्लेष्मप्रसेके च कर्णरोगे च शस्यते ॥५२॥

प्रक्षेप—१. घृतभृष्टहींग, २. सौवर्चलवण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. विडलवण, ५. सैन्धवलवण, ६. नेपाली धनियाँ और ७. पुष्करमूल—समभाग लें। इन्हें सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को १ से ३ ग्राम की मात्रा फाँककर दशमूल एवं यव का मिलित क्वाथ ५० मि.ली. पीने से पार्श्वशूल, हृच्छूल,

कटिशूल, पृष्ठशूल, अंशशूल, तन्द्रा, अपतानक, शोथ, कफस्राव एवं कर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं।

४४. रुचकादिचूर्ण (च.द.)

चूर्णं समं रुचकहिङ्गुमहौषधानां
शुण्ठ्यम्बुना कफसमीरणसम्भवासु।
हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्त्तिविसूचिकासु
पेयं तथा यवरसेन तु विडविबन्धे ॥५३॥
समं शुण्ठ्यम्बुनेत्येवं योजना क्रियते बुधैः।
तेनाल्पमानमेवात्र हिङ्गु सम्परिदीयते ॥५४॥

१. सौवर्चललवण, २. शुद्ध हींग, ३. सोंठ समभाग में मिलित चूर्ण २ से ५ ग्राम लेकर सोंठक्वाथ से लेने पर कफ-वात से उत्पन्न हृच्छूल, पार्श्वशूल, उदरशूल तथा विसूचिकारोग नष्ट हो जाते हैं। कोष्ठबद्धता रहने पर यवक्वाथ से लेना चाहिए तथा ५० ग्राम शुण्ठी यवकुट में २०० मि.ली. जल के साथ क्वाथ करें और उस क्वाथ में शुण्ठीचूर्ण १ ग्राम, सौवर्चल १ ग्राम और शुद्ध हींग २५० मि.ग्रा. मिलाकर पीने से उपर्युक्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

४५. एरण्डसप्तक क्वाथ (च.द.)

एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्ग-
पाषाणभित्त्रिकटमूलकृतः कषायः।
सक्षारहिङ्गुलवणो रुबुतैलमिश्रः
श्रोण्यंसमेढ्रहृदयस्तनरुक्षु पेयः ॥५५॥

१. एरण्डमूल, २. बिल्बमूलत्वक्, ३. बृहती, ४. कण्टकारी, ५. मातुलुङ्गमूल, ६. पाषाणभेद और ७. गोक्षुरमूल—समभाग लें। ८. यवक्षार, ९. घृतभृष्टहींग, १०. सैन्धवलवण तथा ११. एरण्डतैल। एरण्डमूल से गोक्षुर तक की सभी औषधियों को यवकुट कर संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें, चौथाई शेष रहने पर छान लें और उसमें यवक्षार, हींग और सैन्धव २-२ ग्राम तथा एरण्डतैल १० ग्राम मिलाकर पीने से कटीशूल, लिङ्गशूल, हृदयशूल एवं स्तनशूल नष्ट हो जाते हैं।

४६. मातुलुङ्गादि क्वाथ (यो.र.)

मातुलुङ्गरसो वाऽपि शिग्रुक्वाथस्ततः परः।
सक्षारो मधुना पीतः पर्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥५६॥

बिजौरा निम्बुफलरस या सहिजनत्वक् क्वाथ ५० मि.ली. में यवक्षार १ ग्राम तथा मधु १० ग्राम मिलाकर पिलाने से पार्श्वशूल, हृच्छूल एवं बस्तिशूल नष्ट हो जाते हैं।

४७. हिंग्वादि चूर्ण (च.द.)

हिङ्गुत्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम्।
मातुलुङ्गरसोपेतं प्लीहशूलापहं रजः ॥५७॥

१. घृतभृष्टहींग, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. कूठ, ६. यवक्षार और ७. सैन्धव—प्रत्येक १-१ भाग लें। इन सबको एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ से ५ ग्राम की मात्रा में बिजौरा निम्बु स्वरस से सेवन करने से प्लीहरोग एवं शूलरोग नष्ट हो जाते हैं।

४८. मृगशृङ्गभस्म प्रयोग (च.द.)

दग्धमनिर्गतधूमं मृगशृङ्गं गोघृतेन सह पीतम्।
हृदयनितम्बजशूलं हरति शिखा दारुनिवहमिव ॥५८॥

मृगशृङ्ग के छोटे-छोटे टुकड़े को शरावसम्पुट कर गजपुट में पाक करें। इस प्रकार अन्तर्धूमपाचित अर्थात् जलते समय मृगशृङ्ग से धुँआ बाहर नहीं निकले जिससे भस्म काली होगी। इसे पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस कृष्णवर्ण के मृगशृङ्ग भस्म को २ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में गरम गोघृत १० ग्राम के साथ मिलाकर पीने से हृदयशूल एवं कटीशूल उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस तरह सूखी लकड़ी के समूह को आग नष्ट कर देती है।

४९. शूलहर धूप (च.द.)

कम्बलावृतगात्रस्य प्राणायामं प्रकुर्वतः।
कटुतैलाक्तशक्तूनां धूपः शूलहरः परः ॥५९॥

चना एवं जौ के सत्तू में कटु तैल समभाग मिलावें और शूलरोग से पीड़ित व्यक्ति शरीर को कम्बल से ढककर बिना बिछावन की खाट पर लेटे और खाट के नीचे कटु तैल (सरसों तैल) भावित सक्तू को आग में जलाकर धूम का सेवन करे। इस बीच प्राणायाम से श्वास वेग को रोककर धूम सेवन करना चाहिए।

शूल में अपथ्य (च.द.)

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटु वैदलम्।
वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥६०॥

व्यायाम, मैथुन, मद्यपान, लवण, मूँग-मसूर-रहर-चना-उड़द आदि दाल, कटु द्रव्य का सेवन, मूत्र, पुरीष, शुक्र, उद्गार, वमन, छींक, जृम्भा आदि वेगों को रोकना तथा क्रोध आदि कर्मों को शूल रोगी नहीं करें।

परिणामशूल

परिणामशूल में सामान्य क्रम

वमनं तिक्तमधुरैर्विरेकश्चात्र शस्यते।
बस्तयश्च हिताः शूले परिणामसमुद्भवे ॥६१॥

परिणामशूल में आमाशयस्थ दोष होने पर वमन एवं लंघन, पक्वाशयस्थ दोष होने पर विरेचन एवं निरूहबस्ति का प्रयोग हितकर है।

५०. नागरादि कल्क (च.द.)

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् ।
उग्रं परिणतिशूलं तस्यापैति सप्तरात्रेण ॥६२॥

सोंठ ६ ग्राम, तिल ६ ग्राम, गुड़ १२ ग्राम, गोदुग्ध ४०० मि.ली. तथा जल १.६०० लीटर लें। सोंठ एवं तिल को कूटकर कल्क जैसा बना लें और उसमें गुड़ मिलाकर पाक करें। दूध में जब पानी जल जाय केवल दूध ही शेष रहे तो छानकर शूल के रोगी को पिला दें। ऐसे सात दिन तक पिलाने से शूल रोग नष्ट हो जाता है।

५१. शम्बूक भस्म (च.द.)

शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ।
पक्तिजं विनिहन्त्येतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥६३॥

शम्बूक (घोंघा = क्षुद्रशंख) भस्म १ ग्राम गरम पानी से लेने पर परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

५२. शक्तु प्रयोग (च.द.)

दध्नाऽनूनसरेणाद्यात् सतीनयवशक्तुकान् ।
अचिरान्मुच्यते शूलान्नरोऽन्नपरिवर्जनात् ॥६४॥

मलाई युक्त दही और मटर या जौ के सत्तू को एक साथ मिलाकर खाने से परिणामशूल नष्ट हो जाता है। अन्य अन्न का त्याग करना चाहिए।

५३. शक्तु प्रयोग (च.द.)

यः पिबति सप्तरात्रं शक्तूनेकान् कलाययूषेण ।
स जयति परिणामरुजं चिरजामपि किमुत नूतनजाम् ॥६५

जो व्यक्ति सात दिनों तक मटर के यूष के साथ चना, जौ, धान के लाज की सत्तू को मटर के क्वाथ में घोलकर पीता है उसका चिरकालोत्थ परिणामशूल नष्ट हो जाता है तो नवीन परिणामशूल की तो बांत ही क्या करनी है।

५४. तिलादि गुटिका (च.द.)

तिलनागरपथ्यानां भागं शम्बूकभस्मनाम् ।
द्विभागगुडसंयुक्तां गुडीं कृत्वाऽक्षभागिकाम् ॥६६॥
शीताम्बुपानं पूर्वाह्ले भक्षयेत् क्षीरभोजनः ।
सायाह्ने रसकं पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जयात् ॥
परिणामसमुत्थाच्च शूलाच्चिरभवादपि ॥६७॥

कालातिल, सोंठचूर्ण, हरीतकीचूर्ण, शम्बूकभस्म—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग तथा गुड़ ८ भाग लें। तिलादि द्रव्यों का चूर्ण करें। पुनः गुड़ की चासनी बनाकर चारों द्रव्यों को मिला दें और (१-१ तोले) १०-१० ग्राम की गुडिका बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातःकाल शीतल जल से सेवन करें। दूध-रोटी का भोजन करें। सायंकाल मांसरस का भोजन करना चाहिए। इस तरह इस गुटिका का पथ्यपूर्वक सेवन करने से व्यक्ति का असाध्य एवं चिरकालिक परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

५५. लौह-मण्डूर भस्म प्रयोग (च.द.)

लौहचूर्णं वरायुक्तं विलीढं मधुसर्पिषा ।
परिणामशूलं शमयेत् तन्मलं वा प्रयोजितम् ॥६८॥

लौहभस्म २५० मि.ग्रा., त्रिफलाचूर्ण २ ग्राम अथवा मण्डूर भस्म २५० मि.ग्रा., त्रिफलाचूर्ण २ ग्राम मिलाकर विषम मात्रा में मधु और घी के साथ सेवन करने से परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

५६. नारिकेललवण (भा.प्र.)

नारिकेलं सतोयञ्च लवणेन प्रपूरितम् ।
मृदाऽववेष्टितं शुष्कं पक्वं गोमयवह्निना ॥६९॥
पिप्पल्या भक्षितं हन्ति शूलं च परिणामजम् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥७०॥

नारियल (सुपक्व पानीदार) १ नग (२५० ग्राम) तथा सैन्धवलवण १२५ ग्राम लें। नारियल का छिलका हटा दें और उसके वृन्त भाग में छिद्र करें और छिद्र के द्वारा नारियल का आधा भाग नमक से भर दें। पुनः कपड़े आदि से छिद्र बन्दकर उस पर १ अंगुल कपड़मिट्टी का लेप करें। सूखने पर कक्कुटपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सावधानी से कपड़मिट्टी हटाकर जला हुआ नारियल का कठिन भाग हटा दें। पुनः जली हुई नारियल गिरि को ग्रहण करें। इसे खरल में पीसकर काचपात्र में संग्रह करें। १ से २ ग्राम की मात्रा में १ ग्राम पीपरचूर्ण के साथ सेवन करने से वातिक-पैत्तिक-श्लेष्मिक तथा सन्निपातज परिणामशूल नष्ट हो जाता है। इसे गरम पानी से सेवन करना चाहिए।

मात्रा—१-२ ग्राम। **अनुपान**—पिप्पली चूर्ण एवं गरम जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—सभी प्रकार के परिणामशूल में।

५७. सामुद्रादि चूर्ण (च.द.)

सामुद्रं सैन्धवं क्षारो रुचकं रोमकं बिडम् ।
दन्ती लौहरजः किट्टं त्रिवृच्छूरणकं समम् ॥७१॥
दधिगोमूत्रपयसा मन्दपाकविपाचितम् ।
तद्यथाऽग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥७२॥
जीर्णेऽजीर्णे तु भुञ्जीत मांसादिघृतसाधितम् ।
नाभिशूलं यकृच्छूलं गुल्मप्लीहकृतञ्च यत् ॥७३॥
विद्रध्यष्ठीलिकां हन्ति कफवातोद्भवं तथा ।
शूलानामपि सर्वेषामौषधं नास्ति तत्परम् ॥
परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकृन्मतम् ॥७४॥

१. सामुद्रलवण, २. सैन्धवलवण, ३. यवक्षार, ४. सौवर्चललवण, ५. रोमकलवण, ६. विड्लवण, ७. दन्तीमूल,

८. लौहभस्म, ११. मण्डूरभस्म, १२. त्रिवृच्चूर्ण और १३. सूरणचूर्ण—ये सभी १२ द्रव्य समभाग में लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः एक स्टील के बड़े पात्र में रखें। सम्मिलित चूर्ण के बराबर दही, गोमूत्र एवं गोदुग्ध (अर्थात् तीनों द्रव पृथक्-पृथक् सम्मिलत चूर्ण के बराबर होना चाहिए) एक साथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। सूखने पर कपड़छन चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। व्यक्ति की अग्नि की मात्रानुसार गरम पानी से इस चूर्ण को १ से २ ग्राम की मात्रा में सेवन करें। इस औषधि के जीर्ण एवं अजीर्ण होने पर घृत से सिद्ध मांसरस का प्रयोग करना चाहिए। इसके सेवन से नाभिशूल, प्लीहवृद्धिजन्य शूल, यकृच्छूल, गुल्मशूल, विद्रधि, अष्ठीला, कफ-वातज शूल नष्ट हो जाते हैं। सम्पूर्ण उदरशूल को नष्ट करने के लिए इस 'सामुद्रादिचूर्ण' से बढ़कर कोई अन्य औषधि नहीं है। विशेषकर परिणामशूल को नष्ट करने के लिए यह श्रेष्ठ औषधि है।

मात्रा—१-२ ग्राम। २. **अनुपान**—गरम पानी से। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—भूरा। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—सभी प्रकार के उदरशूलों में।

५८. पथ्यादि योग (च.द.)

पथ्या लोहरजः शुण्ठीचूर्णं माक्षिकसर्पिषा ।
परिणामरुजां हन्ति वातपित्तकफात्मिकाम् ॥७५॥

हरीतकीचूर्ण १ भाग, लोहभस्म १ भाग तथा सोंठचूर्ण १ भाग लें। इन्हें एक साथ खरल में मर्दन कर काचपात्र में संग्रह करें। इसे १ ग्राम की मात्रा में ५ ग्राम अथवा १० ग्राम घी के साथ मिलाकर सेवन करने से वातज-पित्तज-कफज परिणामशूल नष्ट हो जाते हैं।

५९. कृष्णाऽभयालौह चूर्ण (च.द.)

कृष्णाऽभयालौहचूर्णं गुडेन सह भक्षयेत् ।
पक्तिशूलं निहन्त्येयज्जठराण्यग्निमन्दताम् ॥
आमवातविकारांश्च स्थौल्यं चैवापकर्षति ॥७६॥

पीपरचूर्ण, हरीतकीचूर्ण और लौहभस्म तीनों समभाग लें। उपर्युक्त चूर्ण १ ग्राम और गुड़ ४ ग्राम दोनों को मिलाकर गरम पानी से सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से परिणामशूल, उदरशूल, अग्निमान्द्य, आमवात और स्थौल्य नष्ट हो जाते हैं।

६०. हिंग्वादि चूर्ण (व.से.)

सहिङ्गुतुम्बुरुव्योषयमानीचित्रकाभयाः ।
सक्षारलवणश्चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना ॥
विण्मूत्रानिलशूलघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ॥७७॥

घृतभृष्टहींग, २. नेपाली धनियाँ, ३. सोंठ, ४. पीपर, ५. मरिच, ६. अजवायन, ७. चित्रकमूल, ८. हरीतकी, ९. यवक्षार और १०. सैन्धवलवण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। इन दस द्रव्यों को एक साथ कूट-पीसकर छननी से छानकर काचपात्र में रखें। प्रातःकाल २ से ३ ग्राम की मात्रा में इस चूर्ण को गरम पानी से सेवन करने से पुरीष एवं मूत्रावरोध जन्य शूल एवं वातजशूल नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण अग्निदीपक है।

मात्रा—१ से ३ ग्राम। **अनुपान**—गरम पानी से। **गन्ध**—हिंगु गन्धी। **वर्ण**—खाखी वर्ण। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—विड्मूत्रसङ्ग जन्य शूल एवं वातशूल में।

६१. शूलहरण योग (र.सा.सं.)

हरीतकीं त्रिकटुकं कुचिला हिङ्गु सैन्धवम् ।
गन्धकञ्च समं सर्वं वटीं कुर्यात् सुखावहाम् ॥७८॥
लघुकोलप्रमाणान्तु शस्यते प्रातरेव हि ।
एकैका वटिका ग्राह्या गुल्मशूलविनाशिनी ॥७९॥
ग्रहण्यामतिसारे च साजीर्णे मन्दपावके ।
योजयेदुष्णपयसा सुखमाप्नोति निश्चितम् ॥
सुवर्णवद् भवेद् देहः सदोत्साहयुतो नृणाम् ॥८०॥

१. हरीतकीचूर्ण, २. सोंठचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. मरिचचूर्ण, ५. शुद्ध कुचलाचूर्ण, ६. सैन्धवलवण, ७. घृतभृष्टहींग तथा ८. शुद्ध गन्धक—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और जल की भावना देकर १-१ ग्राम की वटिका बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। भोजन के बाद (दिन और रात के भोजनोपरान्त) १-२ वटी गरम जल से सेवन करने से गुल्म, शूल, संग्रहणी, अतिसार एवं मन्दाग्नि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से शरीर सुवर्णवत् देदीप्यमान एवं प्रभायुक्त हो जाता है तथा व्यक्ति उत्साह-सम्पन्न हो जाता है।

मात्रा—१ से २ ग्राम (लघु कोल)। **अनुपान**—गरम जल से। **गन्ध**—हिंगुगन्धी। **वर्ण**—लवणीय। **उपयोग**—शूल, गुल्म, संग्रहणी एवं अतिसार में।

६२. विडङ्गादि मोदक (च.द.)

विडङ्गतण्डुलव्योषं त्रिवृद्दन्ती सचित्रकम् ।
सर्वाण्येतानि संहृत्य श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥८१॥
गुडेन मोदकान् कृत्वा भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ।
उष्णोदकानुपानन्तु दद्यादग्निविवर्द्धनम् ॥
जयेत् त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥८२॥

१. विडङ्ग, २. तण्डुलचूर्ण, ३. सोंठचूर्ण, ४. पीपरचूर्ण, ५. मरिचचूर्ण, ६. त्रिवृत्चूर्ण, ७. दन्तीमूलचूर्ण तथा ८. चित्रकमूलचूर्ण—ये सभी आठ द्रव्य १-१ भाग लें तथा गुड़ ३२ भाग अर्थात् सभी चूर्णों से ४ गुना। गुड़ की कड़ी चासनी करें। चूल्हे से नीचे गुड़ पात्र को उतारकर सभी चूर्णों को मिलाकर

१०-१० ग्राम की मोदक बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातः उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से त्रिदोषजशूल और परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१० ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—गुड़पाककवत् गन्ध। **वर्ण**—गुड़ जैसा। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—परिणामशूल में।

६३. शंखादि चूर्ण (र.सा.सं.)

शङ्खचूर्णस्य च पलं पञ्चैव लवणानि च।
क्षारटङ्गणकं जाती शतपुष्पा यमानिका ॥८३॥
हिङ्गु त्रिकटुकं चैव सर्वमेकत्र चूर्णयेत्।
आमवातं यकृच्छूलं परिमामसमुद्भवम्॥
अन्नद्रवकृतं शूलं शूलञ्चैव त्रिदेषजम्॥८४॥

१. शंखभस्म, २. सैन्धवलवण, ३. सौवर्चललवण, ४. विडलवण, ५. औद्भिद्लवण, ६. यवक्षार, ७. टंकणक्षार, ८. जायफल, ९. सौंफ, १०. अजवायन, ११. शुद्ध हींग, १२. सोंठ, १३. पीपर और १४. मरिच—सभी द्रव्य ५०-५० ग्राम लें। घी में हींग को भून लें। उपर्युक्त द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर छननी से छानकर काचपात्र में संग्रह करें। इस शंखादिचूर्ण को १ से ३ ग्राम की मात्रा गरम पानी से लेने से आमवात, यकृच्छूल, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल एवं त्रिदोषज शूल नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से ३ ग्राम। **अनुपान**—गरम पानी से। **गन्ध**—हिंगुगन्धी। **वर्ण**—खाखी वर्ण। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—परिणामशूल, अन्नद्रवशूल एवं सामान्य शूल में।

६४. शम्बूकादि वटी (च.द.)

शम्बूकं त्र्यूषणं चैव पञ्चैव लवणानि च।
समांशा गुटिका कार्या कलम्बकरसेन च ॥८५॥
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु यथाबलम्।
शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥८६॥

१. शम्बूक (क्षुद्रशंख = घोंघा) की भस्म, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. सैन्धवलवण, ६. सामुद्रलवण, ७. सौवर्चलवण, ८. विडलवण तथा ९. औद्भिद्लवण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर मर्दन करें और कलम्बकस्वरस की भावना देकर १-१ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातःकाल भोजन से पूर्व इस शम्बूकादिवटी को गरम जल से सेवन करने से शूल एवं परिणामशूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१ से २ ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—परिणाम-शूल एवं शूल में।

६५. शंखरस गुटिका

पलानि चिञ्चाक्षारस्य पञ्च पञ्च पलानि च।
लवणानां क्षिपेत्प्रस्थद्वयं जम्बीरवारिणः ॥८७॥
पलद्वादश शङ्खस्य भस्मीभूतं क्षिपेत्पुनः।
पूर्वत्रयेण सम्मर्द्य हिङ्गुव्योषचतुष्पलम् ॥८८॥
रसामृतसुगन्धानां पलार्द्धस्य पृथक् पृथक्।
दद्यात् समस्तं सम्मर्द्य जम्बीराम्ले दिनत्रयम् ॥८९॥
बदरास्थिप्रमाणेन गुडिकाः कारयेद्भिषक्।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय तोयमुष्णं पिबेदनु ॥९०॥
शूलञ्च सर्वगुल्मञ्च अजीर्णं परिणामजम्।
अन्त्रशूलं पक्तिशूलं हृच्छूलञ्च विशेषतः ॥९१॥
कुक्षिशूलं पार्श्वशूलं पृथग्वातादिसम्भवम्।
आमशूलमुदावर्त्तं नाशयेन्नात्र संशयः ॥९२॥

१. इमली क्षार, २. सैन्धव, ३. सौवर्चल, ४. सामुद्रलवण, ५. विडलवण, ६. औद्भिद्लवण—प्रत्येक २३० ग्राम (५-५ पल) लें, ७. निम्बुस्वरस १.५०० मि.ली., ८. शंखभस्म ५५० ग्राम, ९. घृतभृष्ट हींग, १०. सोंठचूर्ण, ११. पीपरचूर्ण, १२. मरिचचूर्ण—प्रत्येक ४६-४६ ग्राम तथा १३. शुद्ध पारद, १४. शुद्ध वत्सनाभविष और १५. शुद्ध गन्धक—प्रत्येक २३-२३ ग्राम लें।

सर्वप्रथम इमली क्षार, पाँचों लवण, शंखभस्म, हींग और त्रिकटु को उल्लिखित मात्रा में लें और निम्बुस्वरस में डुबोकर तीन दिनों तक छोड़ दें। ततः पारद एवं गन्धक की कज्जली बना लें और उसमें शुद्ध वत्सनाभविष मिलाकर मर्दन करें। चौथे दिन नीम्बुरसपूरित औषधि में कज्जली, वत्सनाभ मिलाकर मर्दन करें। पुनः निम्बुस्वरस की भावना देकर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर प्रातः-सायं उष्ण जल से लेने पर सभी प्रकार के शूल, गुल्म, अजीर्ण, परिणामशूल, पक्तिशूल, अन्त्रशूल, हृच्छूल, कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, वात-पित्तादि जन्य शूल, आमशूल और उदावर्तशूल को निःसन्देह नष्ट करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—हिंगु गन्धी। **वर्ण**—श्याव वर्ण। **स्वाद**—अम्ल। **उपयोग**—शूल, परिणामशूल तथा सभी गुल्मों में।

६६. शूलगजकेसरी (र.सा.सं.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं यामैकं मर्दयेद् दृढम्।
द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रसम्पुटं तं निरोधयेत् ॥९३॥
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे स्थापयेद् बुधः।
रुद्ध्वा गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥९४॥
सम्पुटं चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम्।
भक्षयेत्सर्वशूलार्त्तो हिङ्गु शुण्ठी सजीरका ॥९५॥

वचा मरिचजं चूर्णं सममुष्णजलैः पिबेत्।
असाध्यं साधयेच्छूलं श्रीशूलगजकेशरी ॥९६॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग तथा शुद्ध ताम्रपत्र ३ भाग लें। सर्वप्रथम कैंची से ताम्रपत्र के छोटे-छोटे टुकड़े करें और एक खरल में पारद एवं ताम्र को एक साथ मर्दन कर पिष्टि बनावें। दो दिनों तक दृढ़ मर्दन करें। ततः उस पिष्टि में शुद्ध गन्धक डालकर उसी खरल में मर्दन कर कज्जली बनावें। ततः निम्बुस्वरस में मर्दन कर ३-४ छोटे-छोटे गोले बनाकर अर्ध्वाधः लवण रखकर शरावसम्पुट करें। ततः गजपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर शराव निकालकर मर्दन करें और काचपात्र में इस (ताम्रभस्म = शूलगज केशरी) रस को संग्रहीत करें। इस 'शूलगजकेशरी' को २५० मि.ग्रा. की मात्रा में ताम्बूलपत्र के साथ सेवन करें (चबा जायें) ततः बाद में घृतभृष्टहींग, सोंठचूर्ण, जीराचूर्ण, वचाचूर्ण, मरिचचूर्ण पाँचों के समभाग मिश्रित चूर्ण को १ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से सेवन करें। यह शूलगजकेशरी असाध्य शूल को भी नष्ट करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—घृतभृष्टहींग, जीरा, वचा, सोंठ, मरीचचूर्ण और गरमपानी से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—असाध्य शूल भी नष्ट हो जाता है।

६७. शूलवज्रिणी वटी (र.सा.सं.)

रसगन्धकलोहानां पलार्द्धेन समन्वितम्।
त्रिफला रामठं शल्वं शटी त्रिकटुटङ्कणम् ॥९७॥
पत्रं त्वगेला तालीशं जातीफललवङ्गकम्।
यमानी जीरकं धान्यं प्रत्येकं तोलकं मतम् ॥९८॥
माषैका वटिका कार्या छागीदुग्धेन वा पुनः।
एकैका भक्षिता चेयं वटिका शूलवज्रिणी ॥९९॥
शूलमष्टविधं हन्ति प्लीहगुल्मोदरं तथा।
अम्लपित्तामवातञ्च पाण्डुत्वं कामलां तथा ॥१००॥
शोथं गलग्रहं वृद्धिं श्लीपदं सभगन्दरम्।
वृद्धबालकरी चैव मन्दाग्नेरपि दीपनी ॥१०१॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म—प्रत्येक २३-२३ ग्राम लें; ४. आमलाचूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ७. शुद्ध भृष्टहींग, ८. ताम्रभस्म, ९. कचूरचूर्ण, १०. सोंठचूर्ण, ११. पीपरचूर्ण, १२. मरिचचूर्ण, १३. शुद्ध टङ्कणचूर्ण, १४. तेजपत्ताचूर्ण, १५. दालचीनीचूर्ण, १६. छोटी इलायचीचूर्ण, १७. तालीशपत्रचूर्ण, १८. जायफलचूर्ण, १९. लौंगचूर्ण, २०. अजवाइनचूर्ण, २१. जीराचूर्ण एवं २२. धनियाँचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बना लें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को उक्त कज्जली के साथ खरल में मिलाकर बकरी के दूध की भावना देकर १-१ ग्राम की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी शीतल जल या बकरी के दूध के अनुपान के साथ इस शूलवज्रिणी रस का सेवन करने से अष्टविध शूल, प्लीहरोग, उदररोग, गुल्म, अम्लपित्त, आमवात, कामला और पाण्डु रोग नष्ट हो जाते हैं। शोथ, गलग्रह, वृद्धि, श्लीपद, भगन्दरादि रोगों को नष्ट कर वृद्धों को बालक बना देता है तथा मन्दाग्नि को प्रदीप्त करता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—हिंगु गन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ। **स्वाद**—कट्वात्मक। **उपयोग**—सभी प्रकार के शूल, गुल्म, प्लीह एवं उदर रोगों में तथा अरुचि नाशक है।

६८. शूलान्तक रस

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा।
एकैकशः समो भागस्तर्धं रसगन्धयोः ॥१०२॥
लोहाभ्रकविडङ्गानां भागस्तु द्विगुणो भवेत्।
एतत्सर्वं समादाय चूर्णयित्वा विचक्षणाः ॥१०३॥
त्रिफलायाः कषायेण गुडिकाः कारयेद्भिषक्।
तदेकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु ॥१०४॥
निहन्ति परिणामोत्थमम्लपित्तं वमिं तथा।
अन्नद्रवभवं शूलं सन्निपातसमुद्भवम् ॥
सर्वशूलानि हन्त्याशु शुष्कदार्वनलो यथा ॥१०५॥

१. सोंठचूर्ण १ भाग, २. मरिचचूर्ण १ भाग, ३. पीपरचूर्ण १ भाग, ४. आमलाचूर्ण १ भाग, ५. हरीतकीचूर्ण १ भाग, ६. बहेड़ाचूर्ण १ भाग, ७. नागरमोथाचूर्ण १ भाग, ८. निशोथचूर्ण १ भाग, ९. चित्रकमूलचूर्ण १ भाग, १०. शुद्ध पारद $\frac{१}{२}$ भाग, ११. शुद्ध गन्धक $\frac{१}{२}$ भाग, १२. लौहभस्म २ भाग, १३. अभ्रकभस्म २ भाग और १४. विडङ्गचूर्ण २ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बना लें। ततः उस कज्जली में उपर्युक्त सोंठ से विडङ्ग तक के सभी द्रव्यों के चूर्णों को मिलाकर त्रिफलाक्वाथ की भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस शूलान्तकरस की १-१ वटी काञ्जी या मण्ड के साथ सेवन करने से परिणामशूल, अम्लपित्त, वमन, अन्नद्रवशूल, सन्निपातजशूल और सर्वविधशूल उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे अग्नि सूखी लकड़ी को जला देती है।

मात्रा—२५० से ५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—काञ्जी या मण्ड। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कट्वम्ल। **उपयोग**—सभी प्रकार के शूल नाशक है।

६९. त्रिगुणाख्यरस (र.सा.सं.)

टङ्कणं हारिणं शृङ्गं स्वर्णं गन्धं मृतं रसम्।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥१०६॥
त्रिगुणाख्यो रसो नाम्ना माषैकं मधुसर्पिषा।
सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ॥
पक्तिशूलहरः ख्यातो याममात्रान्न संशयः ॥१०७॥

१. शुद्ध सुहागा १ भाग, २. मृगशृङ्गभस्म १ भाग, ३. स्वर्णभस्म १ भाग, ४. शुद्ध गन्धक १ भाग तथा ५. रससिन्दूर १ भाग लें। एक खरल में पहले रससिन्दूर का मर्दन करें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर आर्द्रक रस की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। पुनः एक बड़ा गोला बनाकर छाया में सुखा लें और शरावसम्पुट कर लघुपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर खरल में औषधि को पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'त्रिगुणाख्यरस' कहते हैं। इस औषधि की ६५ मि.ग्रा. मात्रा विषम मात्रा में मधु एवं घृत मिलाकर चाटें। ततः सैन्धवचूर्ण, जीराचूर्ण, घृतभृष्टहिंगुचूर्ण २ ग्राम, मधु-घृत से अनुपान रूप में चाटें। इसके सेवन से ३ घण्टे में ही परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६५ मि.ग्रा. से १२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—सैन्धव, जीरा एवं हिंगु चूर्ण तथा मधु-घी से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—परिणामशूल में।

७०. त्रिपुरभैरवरस (यो.र.)

भागो रसस्य भागश्च हेम्नः पिष्टिं विधाय च।
तथा द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥१०८॥
ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा पलमात्रं समन्ततः।
सिञ्चेन्मत्स्याक्षीनीरेण रुद्ध्वा यामचतुष्टयम् ॥१०९॥
पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः।
माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे ॥
अन्येष्वेरण्डतैलेन कटुत्रययुतो हितः ॥११०॥

१. शुद्ध पारद १२ ग्राम, २. शुद्धस्वर्णपत्र १२ ग्राम, ३. शुद्ध ताम्रपत्र १४५ ग्राम, ४. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम और ५. मीनाक्षीस्वरस यथावश्यक लें। सर्वप्रथम शुद्ध स्वर्णपत्र को कैंची से छोटे-छोटे टुकड़े करें। ततः एक खरल में १२ ग्राम स्वर्ण और १२ ग्राम पारद मिलाकर एक साथ मर्दन करें। जब अच्छी पिष्टि बन जाय तब उस पिष्टि का शुद्ध ताम्र पत्र पर दोनों ओर से लपेट दें। एक बड़े मिट्टी के शराव में ५० ग्राम शुद्ध गन्धक चूर्ण फैलावें तथा उस पर पारद-स्वर्ण पिष्टि लिप्त ताम्रपत्र को रखें। सम्पूर्ण लिप्त ताम्रपत्र रखने के बाद उस पर पुनः शुद्ध गन्धकचूर्ण से आच्छादित करें। उस आच्छादित गन्धक पर मीनाक्षीस्वरस से पूर्ण करें। ततः कपड़मिट्टी से सन्धिबन्धन करें। उसे सुखाकर पुनः गोबर-मिट्टी से सन्धि-बन्धन करें और सूखने के बाद इस सम्पुटित शराव को बालुकायन्त्र में रखकर १२ घण्टे तक पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सावधानी से औषधि को निकालकर खरल में मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'त्रिपुरभैरव रस' को ($\frac{1}{2}$ रत्ती) ६५ मि.ग्रा. की मात्रा में विषम मधु-घृत के साथ मर्दन कर चटाने से शूल एवं परिणामशूल का नाश होता है। अन्य शूलों में त्रिकटुचूर्ण १ ग्राम एवं एरण्डतैल १२ ग्राम के साथ मिलाकर सेवन करने से अधिक लाभ मिलता है।

मात्रा—६५ से १२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—विषम मात्रा में मधु-घृत से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—परिणामशूल तथा अन्य शूलों में।

७१. विद्याधराभ्ररस-१ (र.सा.सं.)

विडङ्गमुस्तत्रिफलागुडूची-
दन्तीत्रिवृद्वह्निकटुत्रिकञ्च।
प्रत्येकमेषां पिचुभागचूर्णं
पलानि चत्वार्ययसो मलस्य ॥१११॥
गोमूत्रशुद्धस्य पुरातनस्य
यद्वाऽयसस्तानि शिवाटिकायाः।
कृष्णाभ्रचूर्णस्य पलं विशुद्धं
निश्चन्द्रिकं श्लक्ष्णमतीव सूतात् ॥११२॥
पादोनकर्षं स्वरसेन खल्ले-
शिलातले मन्युमणीदलस्य।
सम्मर्द्य पश्चादतिशुद्धगन्ध-
पाषाणचूर्णेन पिचून्मितेन ॥११३॥
युक्त्या ततः पूर्वरजासि दत्त्वा
सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य यत्नात्।
संस्थापयेत्स्निग्धविशुद्धभाण्डे
ततः प्रयोज्यास्य रसायनस्य ॥११४॥
प्राङ्माषको वाऽप्यथवा द्वितीयो
गव्यं पयो वा शिशिरं जलं वा।
पिबेदयं योगवरः प्रभूत-
कालप्रणष्टानलदीपकश्च ॥११५॥
रोगं निहन्यात्परिणामशूलं
शूलं तथाऽन्नद्रवसंज्ञकञ्च।
यक्ष्माम्लपित्तं ग्रहणीं प्रवृद्धां
जीर्णज्वरं लोहितपित्तमुग्रम् ॥
न सन्ति ते यान्न निहन्ति रोगान्
योगोत्तमः सम्यगुपास्यमानः ॥११६॥

१. वायविडङ्ग, २. नागरमोथा, ३. आमला, ४. हरीतकी, ५. बहेड़ा, ६. गुडूची, ७. दन्तीमूल, ८. निशोथ, ९. चित्रकमूल, १०. सोंठ, ११. पीपर तथा १२. मरिच—उपर्युक्त

सभी द्रव्य १२-१२ ग्राम लें; १३. शुद्ध मण्डूरचूर्ण १८७ ग्राम, १४. अभ्रकभस्म ४६ ग्राम, १५. शुद्ध पारद ३ ग्राम और १६. शुद्ध गन्धकचूर्ण १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः सभी १२ काष्ठौषधों के सूक्ष्मचूर्ण तथा मण्डूरचूर्ण एवं अभ्रकभस्म और कज्जली को एक साथ मिलाकर अच्छी तरह से मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस विद्याधराभ्र रस को १ से २ ग्राम (१ से २ माशा) की मात्रा में विषम मात्रा में मधु-घी के साथ चाटकर गोदुग्ध या शीतल जल पीने से बहुत दिनों से नष्ट हुई पाचकाग्नि प्रदीप्त होती है। परिणामशूल, शूल, अन्नद्रवशूल, यक्ष्मा, अम्ल पित्त, ग्रहणी दोष, जीर्णज्वर और भयंकर रक्तपित्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—शुद्ध मण्डूरचूर्ण के अभाव में गोमूत्र शोधित लौह भस्म या शुद्ध लौह पत्र का भी प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु लौहपत्र को अयस्कृति बनाकर ही प्रयोग किया जा सकता है। अतः शुद्ध मण्डूरचूर्ण के अभाव में लौहभस्म प्रयोग करना चाहिए।

मात्रा—१ या २ वल्ल (३ या ६ रत्ती = ३७५ से ७५० मि.ग्रा)। **अनुपान**—विषम मात्रा में मधु एवं घृत तथा गोदुग्ध एवं जल से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—काफी का रंग। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—परिणामशूल, अग्निमान्द्य, अन्नद्रव-शूल, ग्रहणी-विकार एवं अम्लपित्त में।

७२. विद्याधराभ्ररस-२ (र.सा.सं.)

शुद्धसूतं तथा गन्धं फलत्रयकटुत्रयम्।
विडङ्गं मुस्तकं चैव त्रिवृता दन्तीचित्रकम् ॥११७॥
आखुपर्णी ग्रन्थिकञ्च प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य मृतायश्च चतुर्गुणम् ॥११८॥
घृतेन मधुना पिष्ट्वा वटिकां कोलसम्मिताम्।
एकैकां वटिकां खादेत् प्रातरुत्थाय नित्यशः ॥११९॥
अनुपानं गवां क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम्।
सर्वशूलं निहन्त्याशु वातपित्तभवं तथा ॥१२०॥
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव तथैव सान्निपातिकम्।
परिणामोद्भवं शूलमामवातोद्भवं तथा ॥१२१॥
कार्श्यं वैवर्ण्यमालस्यं तन्द्राऽरुचिविनाशनम्।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥१२२॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. आमलाचूर्ण, ४. हरीतकीचूर्ण, ५. बहेड़ाचूर्ण, ६. सोंठचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण, ८. पीपरचूर्ण, ९. वायविडङ्गचूर्ण, १०. नागरमोथाचूर्ण, ११. निशोथचूर्ण, १२. दन्तीमूलचूर्ण, १३. चित्रकमूलचूर्ण, १४. मूषापर्णीचूर्ण और १५. पिपरामूलचूर्ण—ये १५ द्रव्य प्रत्येक १२-१२ ग्राम लें; १६. अभ्रकभस्म १८७ ग्राम और १७. लौहभस्म १८७ ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बना लें। ततः १५ काष्ठौषधों के सूक्ष्म चूर्ण तथा अभ्रकभस्म एवं लौहभस्म को एक साथ मिलाकर खरल में मर्दन करें। पुनः विषम मात्रा में थोड़ा-थोड़ा मधु और घी के साथ मर्दन करें और कोल प्रमाण ६ ग्राम की वटी बना लें। सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातःकाल शौचादि से निवृत होकर १-१ वटी खाकर गोदुग्ध, जल अथवा नारियल के जल से सेवन करने से वात-पित्त-कफ-द्वन्द्वज-सन्निपातज, परिणाम-अन्नद्रवादि सभी प्रकार के शूल नष्ट हो जाते हैं। आमजशूल, आमवातोद्भवशूल, कृशता, विवर्णता, आलस्य, तन्द्रा एवं अरुचि आदि साध्या-साध्य रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्य अन्धकार का नाश कर देता है। कोल मात्रा आज अत्यधिक है अतः ३ से ६ रत्ती की मात्रा देनी चाहिए।

मात्रा—३७५ से ७५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—जल, नारियल का जल, गोदुग्ध से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रकार के शूल, आमवात एवं अरुचि में।

७३. त्रिफलालौह (र.सा.सं.)

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम्।
क्षीरेण पाययेद्धीमान् सद्यःशूलनिवारणम् ॥१२३॥

तीक्ष्णलौहभस्म १ भाग और त्रिफलाचूर्ण १ भाग लें। इन दोनों द्रव्यों को एक बड़े खरल में मर्दन करना चाहिए। अच्छी तरह से मर्दनोपरान्त काचपात्र में संग्रहीत करें। इसकी २५० से ५०० मि.ग्रा. (२ से ४ रत्ती) की मात्रा में गोदुग्ध के साथ सेवन करने से शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० से ५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—अम्लकषाय। **उपयोग**—परिणामशूल एवं अन्य शूलों में।

७४. शर्करा लौह (र.सा.सं.)

त्रिफलायास्तथा धात्र्याश्चूर्णं वा काललौहजम्।
शर्कराचूर्णसंयुक्तं सर्वशूलेषु योजयेत् ॥१२४॥

त्रिफलाचूर्ण १ भाग या आमलाचूर्ण १ भाग, काललौहभस्म १ भाग और शर्कराचूर्ण २ भाग लें। तीनों द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णो को अच्छी तरह से मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसकी मात्रा भी ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक देनी चाहिए। इसके प्रयोग से सभी प्रकार के शूलरोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—यहाँ पर त्रिफलाचूर्ण या आमलाचूर्ण की प्रधानता नहीं है। दोनों में से कोई एक चूर्ण ग्रहण करें। मिश्री पिसी हुई लेना अधिक उपयोगी है। लौह का एक भेद काललौह है। यदि काललौहभस्म उपलब्ध नहीं हो तो सामान्य लौहभस्म लेना चाहिए।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—गोदुग्ध एवं जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई वर्ण का। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सभी शूल रोगों में।

७५. सप्तामृतलौह (च.द.)

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजः समं लिहन्।
मधुसर्पिर्युतं सम्यग् गव्यं क्षीरं पिबेदनु ॥१२५॥
छर्दिं सतिमिरं शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्लमम्।
आनाहं मूत्रसङ्गञ्च शोथञ्चैव निहन्ति सः ॥१२६॥

१. यष्टिमधुचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बिभीतकचूर्ण तथा ५. लौहभस्म—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। उपर्युक्त पाँचों द्रव्यों को अच्छी तरह से मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को १ ग्राम से २ ग्राम तक की मात्रा में विषम मात्रा में मधु-घृत के साथ मिलाकर चाटने के बाद गोदुग्ध पीना चाहिए। इसके प्रयोग से वमन, तिमिर, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, क्लम, आनाह, मूत्रसङ्ग एवं शोथ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ मि.ग्रा. से २ ग्राम तक। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—हल्का कत्थई। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—परिणामशूल, अम्लपित्त एवं दृष्टिमांद्य में।

७६. शूलराज लौह (र.सा.सं.)

कर्षैकं कान्तलौहस्य शुद्धमभ्रं पलं तथा।
सितायाश्च पलं चैकं मधु सर्पिस्तथैव च ॥१२७॥
सर्वमेकीकृतं पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्ग चव्यचित्रकम् ॥१२८॥
प्रत्येकं तोलकं मानं चूर्णितं तत्र दापयेत्।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय शिशिराम्ब्वनुपानतः ॥१२९॥
सर्वदोषभवं शूलं कुक्षिशूलञ्च यद्भवेत्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च अम्लपित्तञ्च नाशयेत् ॥१३०॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं प्रमेहांश्च विसूचिकाम्।
शूलराजमिदं लौहं हरेण परिनिर्मितम् ॥१३१॥

१. कान्तलौहभस्म १२ ग्राम, २. अभ्रकभस्म ४६ ग्राम, ३. मिश्री ४६ ग्राम, ४. मधु ५० ग्राम तथा ५. घृत ५० ग्राम, ६. सोंठचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण, ८. पीपरचूर्ण, ९. आमलाचूर्ण, १०. हरीतकीचूर्ण, ११. बहेड़ाचूर्ण, १२. नागरमोथाचूर्ण, १३. वायविडङ्गचूर्ण, १४. चव्यचूर्ण और १५. चित्रकचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम लोहे की छोटी (बिना जोड़ वाली) कड़ाही में लोहे की मुशल से कान्तलोह भस्म, अभ्रकभस्म, मिश्री, घी एवं मधु मिलाकर मर्दन करें तथा ९ घण्टे तक मर्दन के बाद सोंठचूर्ण से चित्रकमूल तक के सभी १० द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। सुविधानुसार जल की भावना से ५०० मि.ग्रा. की वटी बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें अथवा चूर्ण रूप में भी रखा जा सकता है। इसकी मात्रा ५०० मि.ग्रा. होगी। इसे प्रातः-सायं १-१ वटी ताजा शीतल जल के साथ सेवन करने से सभी दोषों से उत्पन्न सभी प्रकार शूलरोग, कुक्षिशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, अम्लपित्त, अर्श, ग्रहणीदोष, प्रमेह और विसूचिका रोग नष्ट हो जाता है। इस 'शूलराजलौह' को भगवान् शंकर ने निर्मित किया है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सभी प्रकार के शूल, ग्रहणी विकार एवं अम्ल पित्त में।

७७. वैश्वानरलौह

द्विपलं तिन्तिडीक्षारं तथाऽपामार्गसम्भवम्।
शम्बूकभस्मसंयुक्तं लवणञ्च समं तथा ॥१३२॥
चतुर्णां समभागाः स्युस्तुल्यञ्च लौहचूर्णकम्।
चूर्णं सम्पिष्य खल्लादौ कारयेदेकतां भिषक् ॥१३३॥
शूलस्यागमवेलायां खादेन्माषद्वयं नरः।
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥१३४॥

१. इमलीत्वक्क्षार २ भाग, २. अपामार्गक्षार २ भाग, ३. शम्बूकभस्म २ भाग, ४. सैन्धवलवण २ भाग और लौहभस्म ८ भाग लें। सभी द्रव्यों को एक बड़े खरल में एक साथ अच्छी तरह से मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे २ ग्राम की मात्रा में ताजा पानी से लेने पर आठ प्रकार के साध्य-असाध्य शूल रोग नष्ट हो जाते हैं। जब शूल होने का आभास हो उसी समय में इस वैश्वानरलौह को लेना चाहिए।

मात्रा—२ ग्राम। **अनुपान**—ताजा जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—लौहभस्म जैसा वर्ण का। **स्वाद**—क्षारीय। **उपयोग**—सभी तरह के शूलरोग में।

७८. चतुःसमलौह (र.सा.सं.)

अभ्रं ताम्रं रसं लौहं गन्धकं संस्कृतं पलम्।
सर्वमेतत्समाहृत्य यत्नतः कुशलो भिषक् ॥१३५॥
आज्ये पलद्वादशके दुग्धे वत्सरसंख्यके।
पक्त्वा तत्र क्षिपेच्चूर्णं सुपूतं घनवाससा ॥१३६॥
विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च।
पिष्ट्वा पलोन्मितानेतांस्तथा संमिश्रतान्नयेत् ॥१३७॥
ततः पिष्ट्वा शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु विचक्षणः।
आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥१३८॥
घृतेन मधुनाऽऽलोड्य भक्षयेन्माषकादिकम्।
अष्टौ माषान् क्रमेणैव वर्द्धयेच्च समाहितः ॥१३९॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं नारिकेलजलं पयः।
जीर्णे लोहितशाल्यन्नं मुद्गमांसरसं तथा ॥१४०॥

हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च सामवातं कटीग्रहम्।
गुल्मशूलं शिरःशूलं योगेनानेन नाशयेत्॥१४१॥

१. अभ्रकभस्म, २. ताम्रभस्म, ३. शुद्ध पारद, ४. लौह-भस्म, ५. शुद्ध गन्धक—प्रत्येक द्रव्य ४६-४६ ग्राम लें तथा लौहभस्म १८७ ग्राम चारों द्रव्यों के बराबर लें। ५. गोघृत ५५० ग्राम (१२ पल), ६. गोदुग्ध ५५० मि.ली. (संवत्सर संख्या १२ पल की होती है); ७. वायविडङ्गचूर्ण, ८. आमलाचूर्ण, ९. हरीतकीचूर्ण, १०. बहेड़ाचूर्ण, ११. चित्रकमूलचूर्ण, १२. सोंठचूर्ण, १३. पीपरचूर्ण और १४. मरिचचूर्ण—इनके वस्त्रपूत चूर्ण—प्रत्येक ४६-४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य तीनों भस्मों को उसमें मिला दें। पुनः एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में कज्जली मिलाकर आग पर शनैः-शनैः पकावें। जब दूध सूख जाय तब उसमें विडङ्गादि घृत एवं दुग्ध आठ द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर ५०० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। शुभ दिन एवं प्रशस्त शुभ नक्षत्र में भगवान् सूर्य एवं औषधि तथा गुरु की पूजा कर मधु-घृत मिलाकर प्रातः-सायं औषधि सेवन करें। ८ रत्ती=१ ग्राम तक इस औषधि का सेवन करना चाहिए। दूध या नारियल जल के अनुपान से इसे सेवन करना चाहिए। खाए हुए अन्न के जीर्ण होने पर शालिचावल का भात, मूँग की यूष, मांसरस तथा अन्य हितकर पदार्थ का सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से हृच्छूल, पार्श्वशूल, आमवात, कटिग्रह, गुल्म, शूल, शिरःशूल—ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—गोदुग्ध अथवा नारियलजल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—हल्का कत्थई। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रकार के शूल, पार्श्व एवं कटिशूल, आमवात तथा अग्निमांद्य में।

७९. धात्रीलौह-१ (च.द.)

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लौहचूर्णस्य।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यादुपलघृष्टम्॥१४२॥
अमृताक्वाथेनैतच्चूर्णं भाव्यञ्च सप्ताहम्।
चण्डातपेषु शुष्कं भूयः पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम्॥
घृतमधुना सह युक्तं भुक्त्वादौ मध्यतोऽन्ते च।
त्रीनपि वारान् खादेत् पथ्यं दोषानुबन्धेन॥१४४॥
भुक्तादौ नाशयति रोगान् पित्तानिलोद्भूतान्।
मध्येऽन्नावष्टम्भं जयति नृणां विदह्यते नान्नम्॥१४५॥
पानान्नकृतान् दोषान् भुक्तान्ते शीलितं जयति।
एवं जीर्यति चान्ने शूलं नृणां सुकष्टमपि॥१४६॥
हरति च सहसा युक्तो योगश्चायं जरत्पित्तम्।
चक्षुष्यः पलितघ्नः कफपित्तसमुद्भवान् जयति॥१४७॥

आमलाचूर्ण ३७५ ग्राम, लौहभस्म १८७ ग्राम तथा मुलेठी चूर्ण ९२ ग्राम लें। इन द्रव्यों को पत्थर के एक बड़े खरल में रखकर मर्दन करें। ततः गुडूचीस्वरस की ७ भावना देकर ७ दिनों तक मर्दन करें। पुनः धूप में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। विषम मात्रा में घृत और मधु के साथ इस धात्रीलौह को ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक की मात्रा में भोजन से पूर्व, मध्य और अन्त में सेवन करना चाहिए। दोषानुसार पथ्य-व्यवस्था करनी चाहिए। भोजन के पूर्व इस औषधि का सेवन करने से पित्त एवं वात प्रकोपजन्य रोग नष्ट हो जाते हैं। भोजन के मध्य में इसे सेवन करने से विष्टम्भजन्य रोग नष्ट हो जाता है एवं भोजन किये हुए अन्न का विदाह नहीं होता है। भोजन के अन्त में इस 'धात्रीलौह' का सेवन करने से विरुद्ध अन्न-पान से उत्पन्न दोष एवं रोग नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह इस औषधि के प्रभाव से अन्न सम्यक्तया पच जाता है तथा व्यक्ति का कष्टप्रद शूल रोग नष्ट हो जाता है। यह योग अम्लपित्त एवं नेत्र के लिए हितकर तथा पलितघ्न है। इससे कफपित्तोद्भव रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—ताजा पानी, मधु एवं घृत से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ (लौहभस्म वर्ण जैसा)। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शूल एवं अम्ल पित्त में।

८०. धात्रीलौह-२ (च.द.)

षट्पलं शुद्धमण्डूरं यवस्य कुडवं तथा।
पाकाय नीरप्रस्थार्द्धं चतुर्भागावशेषितम्॥१४८॥
शतमूलीरसस्याष्टावामलक्या रसस्तथा।
तथा दधि पयो भूमिकूष्माण्डस्य चतुष्पलम्॥१४९॥
चतुष्पलं सर्पिरिक्षुरसं दद्याद्विचक्षणः।
प्रक्षेपं जीरकं धान्यं त्रिजातं करिपिप्पली॥१५०॥
मुस्तं हरीतकीञ्चैव लौहमभ्रं कटुत्रिकम्।
रेणुकं त्रिफलाञ्चैव तालीशं नागकेशरम्॥१५१॥
प्रत्येकं कार्षिकञ्चूर्णं पेषयित्वा विनिक्षिपेत्।
भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चैव समाहितः॥१५२॥
तोलैकं भक्षयेन्नित्यमनुपानं पयोऽथवा।
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा॥१५३॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
परिणामसमुत्थांश्च अन्नद्रवसमुद्भवान्॥१५४॥
द्वन्द्वजानपि शूलांश्च अम्लपित्तं सुदारुणम्।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं शुभम्॥१५५॥

शुद्ध मण्डूरचूर्ण २८० ग्राम, जौ १८७ ग्राम, जल (पाकार्थ) ३७५ मि.ली., अवशेषक्वाथ ९५ मि.ली., शतावरीक्वाथ ३७५ मि.ली., आमलास्वरस या क्वाथ ३७५ मि.ली., दही

१८७ ग्राम, दूध १८७ मि.ली., घी १८७ ग्राम और इक्षुरस १८७ मि.ली. तथा भूमिकूष्माण्डरस (विदारीकन्द) १८७ मि.ली. लें।

प्रक्षेप—१. जीराचूर्ण, २. धनियाँचूर्ण, ३. तेजपातचूर्ण, ४. दालचीनीचूर्ण, ५. छोटीइलायचीचूर्ण, ६. गजपीपरचूर्ण, ७. नागरमोथाचूर्ण, ८. हरीतकीचूर्ण, ९. लौहभस्म, १०. अभ्रकभस्म, ११. सोंठचूर्ण, १२. पीपरचूर्ण, १३. मरिचचूर्ण, १४. रेणुकाचूर्ण, १५. आमलाचूर्ण, १६. हरीतकीचूर्ण, १७. बहेड़ाचूर्ण, १८. तालीशपत्रचूर्ण और नागकेशरचूर्ण—ये सभी द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

सबसे पहले जौ को यवकुट कर ४ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहे तो छान लें। अब एक कड़ाही में शुद्ध मण्डूर, जौ-क्वाथ, शतावरीक्वाथ, आमलाक्वाथ, दही, दूध, घी, इक्षु-स्वरस, पातालगरुड़ीस्वरस—इन्हें उपर्युक्त मात्रा में कड़ाही में रखकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखकर गाढ़ा होने लगे तो चूल्हे से पात्र को नीचे उतारकर जीराचूर्ण से नागकेशरचूर्ण तक के सभी उन्नीस द्रव्यों के चूर्णों को प्रक्षिप्त कर अच्छी तरह से मिला लें। ततः अग्नि एवं धूप में अच्छी तरह से सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। अथवा १-१ ग्राम की वटी बनाकर धूप में सुखाकर संग्रहीत करें। इसे १२ ग्राम की मात्रा में भोजन के पूर्व, भोजन के मध्य और भोजनान्त में दूध के साथ लेने से आठ प्रकार शूल, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज शूल, परिणाम-शूल, अन्नद्रवशूल एवं द्वन्द्वज शूल, भयंकर अम्लपित्त और साध्यासाध्य सभी प्रकार के शूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से ५ ग्राम तक। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—इलायची जैसी गन्ध। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रकार के शूलों एवं अम्लपित्त में।

८१. लौहामृतम् (च.द.)

तनूनि लौहपत्राणि तिलोत्सेधसमानि च।
कशिकामूलकल्केन संलिप्य सर्षपेण वा ॥१५६॥
विशोष्य सूर्यकिरणैः पुनरेवावलेपयेत्।
त्रिफलाया जले ध्मातं वापयेच्च पुनः पुनः ॥१५७॥
ततः सञ्चूर्णितं कृत्वा कर्पटेन तु छानयेत्।
भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां यथाऽग्न्ये तत्प्रयोजयेत् ॥१५८॥
माषकं त्रिगुणं वाऽथ चतुर्गुणमथापि वा।
छागस्य पयसः कुर्यादनुपानमभावतः ॥१५९॥
गवां घृतेन दुग्धेन चतुःषष्टिगुणेन च।
पक्तिशूलं निहन्त्येतन्मासेनैकेन निश्चितम् ॥१६०॥
लौहामृतमिदं श्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
ककारपूर्वकं यच्च यच्चाम्लं परिकीर्त्तितम्।
सेव्यं तन्न भवेदत्र मांसं चानूपसम्भवम् ॥१६१॥

तीक्ष्णलौहपत्र १ किलो लें। तीक्ष्ण लोहे का ४ अंगुल लम्बा-चौड़ा पत्र लें जिसकी मोटाई तिल जितनी हो। उन पत्तों पर कल्क का मोटा लेप कर सुखा लें। ततः अग्नि में लाल वर्ण का प्रतप्त करें। उन्हें चिमटी से पकड़कर त्रिफलाक्वाथ में निवार्पित करें। ऐसा बार-बार निर्वापित कर इमामदस्ते में कूटे और वस्त्रपूतचूर्ण करें। बार-बार प्रतप्त कर त्रिफलाक्वाथ में निर्वापित कर कूटें। सम्पूर्ण लौहपत्र को कूटकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यों तो आचार्य चक्रपाणि के अनुसार यह चरकसंहिता की अयस्कृति कल्पना ही है। तथापि इसे १० बार त्रिफलाक्वाथ भावित कर गजपुट में पाक कर लें तो और भी अच्छा रहेगा। इस 'लौहामृत' को १२५ से २५० मि.ग्रा. की मात्रा से विषम मात्रा में मधु एवं घी से मर्दन कर चाटकर बकरी का गरम दूध का अनुपान लें। बकरी दूध के अभाव में गोघृत में ६४ गुना दूध मिलाकर अनुपान लेना चाहिए। इस 'लोहामृत' का १ माह तक प्रयोग करने के बाद निश्चित रूप से परिणामशूल में लाभ होता है। इस लोहामृत को पहले ब्रह्मा जी ने निर्माण किया था। इसके सेवनकाल में ककाराष्टक[1] या 'क' से प्रारम्भ होने वाले कुछ द्रव्यों, अम्ल द्रव्य एवं आनूपदेशज मांसरस का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा. तक। **अनुपान**—बकरी का दूध। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—परिणामशूल में।

८२. लौहगुडिका (च.द.)

लौहस्य रजसो भागास्त्रिफलायास्त्रयस्तथा।
गुडस्याष्टौ तथा भागा गुडान्मूत्रं चतुर्गुणम् ॥१६२॥
एतत्सर्वञ्च विपचेद् गुडपाकविधानवित्।
लिहेच्च तद्यथाशक्ति क्षये शूले च पाकजे ॥१६३॥

१. लौहभस्म १ भाग, २. आमलाचूर्ण १ भाग, ३. हरीतकी चूर्ण १ भाग, ४. बहेड़ाचूर्ण १ भाग, ५. गुड़ ८ भाग और ६. गोमूत्र ३२ भाग लें। सर्वप्रथम एक स्टील के पात्र में गुड़ और गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब अच्छी तरह से सुपक्वावस्था में आ जाय तो लौहभस्म एवं त्रिफलाचूर्ण मिलाकर चूल्हे से पात्र को नीचे उतार लें। इसे १ से ३ ग्राम की मात्रा में चाटकर गोदुग्ध पीना चाहिए। इसके सेवन से क्षय और परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

---

१. कलिङ्गं कारवेल्लं च कदली काकमाचिका।
कुसुम्भिका च कर्कोटी कूष्माण्डं कर्कटी तथा॥
कङ्गुः कन्दुक-कोल-कुक्कुट-कलक्रोडाः कुलत्थास्तथा।
कण्टकारी कटुतैलकृष्णगलकः कूर्मः कलायः कणा॥
कर्कारुश्च कठिल्लकश्च कतकं कर्कोटकं कर्कटी।
काली काञ्जिकमेव कादिकगणः श्रीकृष्णदेवोदितः॥ (र.र.स. ११)

मात्रा—१ से ३ ग्राम तक। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—गुड़वत्। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—परिणामशूल में।

८३. क्षीरमण्डूर (च.द्र.)

लौहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रार्द्धाढके पचेत्।
क्षीरप्रस्थेन तत्सिद्धं पक्तिशूलहरं नृणाम् ॥१६४॥

शुद्ध मण्डूरचूर्ण ३७५ ग्राम, ८. गोमूत्र १५०० मि.ली. तथा गोदुग्ध ७५० मि.ली. लें। एक लौह कढ़ाई में गोमूत्र के साथ शुद्ध मण्डूरचूर्ण मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। ततः गोमूत्र सूखने पर गोदुग्ध देकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब दूध सूख जाय तो बड़ी चम्मच से चलाते रहें। जब चूर्ण जैसा हो जाय तो थाली में फैलाकर धूप में अच्छी तरह से सुखा लें। पुनः काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ३ से ५ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ चाटें। इसके सेवन से परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

मात्रा—३ से ५ ग्राम तक। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—श्याव वर्ण। **स्वाद**—तीक्ष्ण। **उपयोग**—परिणामशूल में।

८४. रसमण्डूर (च.द.)

कुडवं पथ्याचूर्णं द्विपलं गन्धाश्मलौहकिट्टञ्च।
शुद्धरस्यार्द्धपलं भृङ्गस्य रसं च केशराजस्य ॥१६५॥
प्रस्थोन्मितञ्च दत्त्वा पात्रे लौहेऽथ दण्डसंघृष्टम्।
शुष्कं घृतमधुयुक्तं मृदितं स्थाप्यञ्च भाजने स्निग्धे ॥
उपयुक्तमेतदचिरान्निहन्ति कफपित्तजान् रोगान्।
शूलं तथाऽम्लपित्तं ग्रहणीञ्च कामलामुग्राम् ॥१६७॥

१. हरीतकीचूर्ण १८७ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ९३ ग्राम, ३. शुद्ध मण्डूरचूर्ण ९३ ग्राम, ४. शुद्ध पारद २३ ग्राम, ५. भृङ्गराजस्वरस ७५० मि.ली. तथा ६. केशराजस्वरस ७५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक को अच्छी कज्जली बना लें। अब लौह की छोटी (बिना जोड़ वाली) कड़ाही में कज्जली, हरीतकीचूर्ण, मण्डूरचूर्ण तीनों मिलाकर भृङ्गराजस्वरस थोड़ा-थोड़ा देकर लौहदण्ड से मर्दन करें। मर्दन करते-करते जब भृङ्गराजस्वरस और केशराजस्वरससूख जाय तो औषधि को खरोंचकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'रसमण्डूर' औषधि को ३७५ से ७५० मि.ग्रा. की मात्रा में विषम मात्रा में मधु-घृत मिलाकर चाट जाय तथा अनुपान रूप में गोदुग्ध सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से कफ एवं पित्त जनित शूलरोग, अम्लपित्त, संग्रहणी एवं कामला रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ से ७५० मि.ग्रा. तक। **अनुपान**—गोदुग्ध। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्णवर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—परिणामशूल, अम्लपित्त एवं कामला में।

८५. कोलादिमण्डूर (च.द.)

कोलाग्रन्थिकशृङ्गबेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितं
मण्डूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्त्वाऽथ सान्द्रीकृतम्।
तत्खादेदशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नभुग्
जेतुं वातकफामयान् परिणतौ शूलञ्च शूलानि च ॥

१. चव्य, २. पिपरामूल, ३. सोंठ, ४. पीपर, ५. यवक्षार—ये पाँचों द्रव्य १-१ भाग लें और ६. शुद्ध मण्डूरचूर्ण ५ भाग तथा ७. गोमूत्र ८० भाग अर्थात् सभी द्रव्यों का आठ गुना लेना चाहिए। पाँचों कष्ठौषधों का सूक्ष्मचूर्ण बना लें। ततः शुद्ध मण्डूर के सूक्ष्मचूर्ण के साथ एक बड़ी लोहे की कड़ाही में गोमूत्र मिलाकर पाक करें। जब गोमूत्र सूख जाय तो उस सुपक्व औषधि को थाली या ट्रे में फैलाकर धूप में सुखा लें। पुनः कूट-पीसकर छान लें और काचपात्र में संग्रह करें। इस 'कोलादि-मण्डूर' को ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक की मात्रा में मधु में मिलाकर भोजन के पूर्व, मध्य एवं पश्चात् में सेवन करें और बाद में गोदुग्ध पीने से वात-कफजन्य रोग एवं परिणामशूल तथा सभी तरह के शूल रोग नष्ट हो जाते हैं। औषधि सेवन काल में दूध-भात, दूध-रोटी का ही भोजन लेना चाहिए।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तीक्ष्ण। **उपयोग**—परिणामशूल में।

८६. चतुःसम मण्डूर

शुद्धां लौहमलाज्यमाक्षिकसिताभागाः समा मानतः
पात्रे ताम्रमये दिनान्तमथितं संस्थापयेदातपे।
पश्चात्तद्घनतां प्रणीय रजनीमेकां बहिःस्थापयेत्
पात्रे ताम्रमये निधेयमथवा पात्रे हविर्भाविते ॥१६९॥
पश्चान्माषचतुष्टयं प्रतिदिनं जग्ध्वा जलं शीतलं
पेयं भोजनपूर्वमध्यविरतौ स्वच्छन्दभोज्यैर्नरैः।
जेतुं शूलहुताशमान्द्यकसनश्वासाम्लपित्तज्वरो
न्मादापस्मृतिमेहसर्वजठराजीर्णादिसर्वा रुजः ॥१७०॥

शुद्ध मण्डूरचूर्ण, गोघृत, मधु और मिश्रीचूर्ण—सभी द्रव्य १-१ किलो लें। इन्हें ताम्र के बड़े खरल में रखकर १ दिन पर्यन्त मर्दन करें। ततः दूसरे दिन धूप में खरल को रखें। पुनः इस औषधि युक्त खरल को रात में खुले आकाश में (ओसयुक्त स्थान में) घन होने के लिए (जमने के लिए) रखें। इसके बाद उक्त औषधि में घृत मिलाकर मर्दन करें। ततः काचपात्र में संग्रहीत करें। तत्पश्चात् इस औषधि को भोजन के पूर्व, भोजन के मध्य एवं भोजन के पश्चात् शीतल जल से ४ ग्राम की मात्रा में सेवन करें। इस औषधि के सेवन काल में किसी तरह के पथ्य पालन का निर्देश नहीं है। इसके सेवन से शूल, अग्निमांद्य, कास, श्वास, अम्लपित्त, ज्वर, उन्माद,

अपस्मार, प्रमेह सभी प्रकार के उदररोग और अजीर्ण आदि सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से २ ग्राम। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—कत्थई वर्ण या शुद्ध मण्डूर के वर्ण का। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—परिणामशूल, शूल, अग्निमांद्य, अजीर्ण एवं उदररोगों में।

८७. भीमवटकमण्डूर (च.द.)

कोलाग्रन्थिकसहितं विश्वौषधमागधीयवक्षारैः।
प्रस्थमयोमलरजसामपि पलिकांशैश्चूर्णितैर्मिश्रैः ॥१७१
अष्टगुणमूत्रयुक्तं क्रमपाकात् पिण्डतां नयेत्सर्वम्।
कोलप्रमाणवटिकास्तिस्रो भोज्यादिमध्यविरतौ च॥
रससर्पिर्यूषपयोमांसैरश्नन्नरो निवारयति।
अन्नविवर्त्तनशूलं गुल्मं प्लीहाग्निसादांश्च ॥१७३॥

१. चव्यचूर्ण (कोला), २. पिपरामूलचूर्ण, ३. सोंठचूर्ण, ४. पीपरचूर्ण, ५. यवक्षार—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें तथा ६. शुद्धमण्डूरचूर्ण ७५० ग्राम लें। कुल मिलाकर १ किलो द्रव्य है। गोमूत्र ८ गुना अर्थात् ८ लीटर लें। एक बड़े लोहे की कड़ाही में चव्यादिचूर्ण, मण्डूर और गोमूत्र मिलाकर रखें। मन्दाग्नि युक्त चूल्हे पर चढ़ाकर धीरे-धीरे पकावें। जब गोमूत्र सूख जाय तो एण्डरनर मशीन में ३-४ दिन तक पीसें और ६-६ ग्राम की बड़ी-बड़ी वटी बनाकर धूप में अच्छी तरह से सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को भोजन के आदि में, मध्य में और भोजन के अन्त में मांसरस, गोघृत, यूष के साथ सेवन करें तथा मांसयुक्त भोजन करें। इसके सेवन से परिणामशूल, प्लीहावृद्धि, गुल्म और अग्निमांद्यादि रोगों का नाश होता है।

मात्रा—६ ग्राम तक (१ कोल)। **अनुपान**—मांसरस, यूष घृत। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ (शुद्ध मण्डूर जैसा)। **स्वाद**—तिक्त-तीक्ष्ण। **उपयोग**—परिणामशूल में।

८८. तारामण्डूरगुड़ (च.द.)

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफलात्र्यूषणानि च।
नव भागानि चैतानि लौहकिट्टसमानि च ॥१७४॥
गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्रार्द्धकगुडान्वितम्।
शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डमागतम् ॥१७५॥
स्निग्धे भाण्डे विनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया।
प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितम् ॥१७६॥
योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम्।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मन्दाग्नितामपि ॥१७७॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं कृमिगुल्मोदराणि च।
नाशयेदम्लपित्तञ्च स्थौल्यञ्चैवापकर्षति ॥१७८
वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकटूनि च।
पक्तिशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञितः॥
शूलार्त्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्त्तितः ॥१७९॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. चित्रकमूलचूर्ण, ३. चव्यचूर्ण, ४. आमलाचूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बिभीतकचूर्ण, ७. सोंठचूर्ण, ८. पीपरचूर्ण, ९. मरिचचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग और १०. शुद्ध मण्डूरचूर्ण ९ भाग, ११. गोमूत्र ३६ भाग तथा १२. गुड़ १८ भाग लें। सर्वप्रथम उपर्युक्त ९ काष्ठौषधिचूर्णो और शुद्ध मण्डूरचूर्ण (९ भाग) को एक बड़ी लोहे की कड़ाही में रखें और उनसे दुगुना गोमूत्र डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। बीच-बीच में चलाते रहें। जब अधिकांश गोमूत्र सूख जाय तो उसमें गुड़ मिलाकर पाक करें। जब औषधि गुड़ पाकवत् सिद्ध हो जाय अर्थात् कड़ी चासनी मोदक जैसी हो जाय तो इसे चूल्हे से नीचे उतारकर ६-६ ग्राम का मोदक जैसा बनाकर काचपात्र में संग्रह करें। इस 'तारामण्डूरगुड' को भोजन से पूर्व, भोजन के मध्य में और भोजन के बाद जल के साथ खाने से भयंकर परिणामशूल नष्ट हो जाता है तथा कामला, पाण्डुरोग, शोथ, मन्दाग्नि, अर्श, संग्रहणी, कृमि, गुल्म, उदररोग, अम्लपित्त, और स्थौल्य रोगों का नाश करता है। इस औषधि के सेवनकाल में शुष्क शाक, विदाही अन्न, अम्ल तथा कटु द्रव्य अपथ्य कर है। भगवती 'तारा देवी' ने शूल रोगियों की मुक्ति हेतु इस मण्डूर गुड़ का निर्माण किया है।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—शीतल जल। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—गुड़वर्णाभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—परिणाम-शूल, मन्दाग्नि, अर्श, गुल्म एवं उदररोग में।

८९. शतावरी मण्डूर (च.द.)

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम्।
शतावरीरसस्याष्टौ दध्नश्च पयसस्तथा ॥१८०॥
पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः।
विपचेत् सर्वमेकध्यं यावत्पिण्डत्वमागतम् ॥१८१॥
सिद्धन्तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोऽपि वा।
वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणामजम्॥
निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ॥१८२॥

शुद्ध मण्डूरचूर्ण ३७५ ग्राम, २. शतावरीक्वाथ ३७५ मि.ली., ३. दही ३७५ ग्राम, ४. गोदुग्ध ३७५ मि.ली. तथा ५. गोघृत ३७५ ग्राम लें। इन पाँचों द्रव्यों को एक लोहे की कड़ाही में एक साथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब पिण्डरूप हो जाय तो उतारकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'शतावरी मण्डूर' को २ से ४ ग्राम की मात्रा में शीतल जल के साथ भोजन के पूर्व, भोजन के मध्य एवं भोजन के बाद ३ बार लेने से वातिक एवं पैत्तिकशूल तथा परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२ से ४ ग्राम तक। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—मण्डूरभस्म जैसा वर्ण। **स्वाद**—किञ्चित् तिक्त। **उपयोग**—परिणामशूल में।

९०. शतावरीमण्डूर (बृहत्) (च.द.)

शतावरीरसप्रस्थे प्रस्थे च सुरभीजले।
अजायाः पयसः प्रस्थे प्रस्थे धात्रीरसस्य च ॥१८३॥
लौहकिट्टपलान्यष्टौ शर्करायाश्च षोडश।
दत्त्वाऽऽज्यकुडवं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥१८४॥
सिद्धे शीते घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत्।
विडङ्गत्रिफलाव्योषं यमानी गजपिप्पली ॥१८५॥
द्विजीरकघनानाञ्च श्लक्ष्णाण्यक्षसमानि च।
खादेदग्निबलापेक्षी भोजनादौ विचक्षणः ॥१८६॥
शूलं सर्वभवं हन्ति पित्तशूलं विशेषतः।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम् ॥१८७॥
कासं श्वासं तथा शोथं ग्रहणीदोषमेव च।
यकृत्प्लीहोदरानाहराजयक्ष्मविनाशकम् ॥१८८॥
विष्टम्भमामं दौर्बल्यमग्निमान्द्यञ्च यद्भवेत्।
एतान्रोगान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥१८९॥

१. शतावरीक्वाथ ७५० मि.ली., २. गोमूत्र ७५० मि.ली., ३. बकरीदूध ७५० मि.ली., ४. आमलास्वरस ७५० मि.ली. ५. शुद्ध मण्डूर सूक्ष्मचूर्ण ३७५ ग्राम, ६. चीनी ७५० ग्राम तथा ७. गोघृत १८७ ग्राम लें। एक स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में उपर्युक्त सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब गाढ़ा हो जाय तो निम्नलिखित प्रक्षेप द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण मिलाकर धूप में अच्छी तरह से सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें।

प्रक्षेप—१. वायविडङ्ग, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा, ५. सोंठ, ६. पीपर, ७. मरिच, ८. अजवायन, ९. गजपीपर, १०. श्वेतजीरा, ११. नागरमोथा—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लेकर चूर्ण करें और उपर्युक्त मण्डूर में मिलाकर धूप में सुखा लें। रोगी द्वारा अपने अग्निबल प्रमाणानुसार १२ ग्राम की मात्रा में ताजा शीतल जल से भोजन के पूर्व, भोजन के मध्य, भोजन के बाद लेने से सभी प्रकार के वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, गुदशूल, श्वास, कास, शोथ, संग्रहणी, यकृत्-प्लीहावृद्धि, उदररोग, आनाह, राजयक्ष्मा, विष्टम्भ, आमदोष, दौर्बल्य तथा अग्निमांद्य रोगों को नष्ट करता है। जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है।

मात्रा—३ से ६ ग्राम तक। **अनुपान**—शीतलजल से। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—किञ्चित् श्याव। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सभी प्रकार के शूल, परिणामशूल एवं भास्कर अम्लपित्त में।

९१. शतावरी मण्डूर (रसरत्नाकर)

मण्डूरस्यातितप्तस्य वराक्वाथप्लुतस्य च।
चूर्णीकृत्य पलान्यष्टौ शतावर्या रसस्य च ॥१९०॥
दध्नश्च पयसश्चाष्टावामलक्या रसस्य च।
चतुष्पलं घृतस्यापि शाणमात्रं विनिक्षिपेत् ॥१९१॥
सिद्धे प्रत्येकमेतेषामजाजीधान्यमुस्तकम्।
त्रिजातककणापथ्या उपयुक्तं निहन्ति च ॥१९२॥
शूलं दोषत्रयोद्भूतमम्लपित्तञ्च दारुणम्।
अरुचिञ्च वमिञ्चैव कासश्वासञ्च नाशयेत् ॥१९३॥

१. शुद्ध मण्डूरसूक्ष्मचूर्ण ३७५ ग्राम, २. शतावरीस्वरस ३७५ मि.ली., गाय का दही ३७५ ग्राम, ४. गोदुग्ध ३७५ मि.ली., ५. आमला ३७५ ग्राम और ६. गौघृत १८७ ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. श्वेतजीराचूर्ण, २. धनियाँचूर्ण, ३. नागरमोथा-चूर्ण, ४. दालचीनीचूर्ण, ५. तेजपत्ताचूर्ण, ६. छोटीइलायची-चूर्ण, ७. पीपरचूर्ण और ८. हरीतकीचूर्ण—ये प्रत्येक द्रव्य ३-३ ग्राम लें। त्रिफलाक्वाथ में निर्वापित कर मण्डूर को शुद्ध कर लें। ततः उसका सूक्ष्मचूर्ण बना लें। एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में मण्डूरचूर्ण, शतावरीक्वाथ, गाय का दही, गाय का दूध, आमलास्वरस, घी इन सभी द्रव्यों को एक साथ एक बर्तन में रखकर चूल्हे पर मन्दाग्नि से पाक करें। जब गाढ़ा हो जाय तो पात्र को उतारकर प्रक्षेप के सभी आठ द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर ट्रे में रखें और धूप में अच्छी तरह सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ताजा पानी से १ से २ ग्राम की मात्रा में सेवन करने से सभी प्रकार के शूल, एकदोषज या त्रिदोषज शूल, भयंकर अम्लपित्त, अरुचि, वमन, कास एवं श्वास रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से २ ग्राम तक। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—काष्ठौषधी गन्धी। **वर्ण**—मण्डूरचूर्ण जैसा। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—सभी प्रकार के शूल एवं अम्लपित्त में।

९२. गुडमण्डूर (भा.प्र.)

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम्।
त्रिपलं लौहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुसर्पिषा ॥१९४॥
समालोड्य समश्नीयादक्षमात्रप्रमाणतः।
आदिमध्यावसानेषु भोजनस्य निहन्ति तत् ॥१९५॥
अन्नद्रवं जरत्पित्तमस्रपित्तं सुदारुणम्।
परिणामसमुत्थञ्च शूलं संवत्सरोत्थितम् ॥१९६॥

१. गुड़ ४६ ग्राम, २. आमलाचूर्ण ४६ ग्राम,, ३. हरीतकी चूर्ण ४६ ग्राम, ४. शुद्ध मण्डूरचूर्ण १४० ग्राम, ५. मधु ४६ ग्राम तथा ६. घृत ४६ ग्राम लें। शुद्ध मण्डूर का सूक्ष्मचूर्ण कर लें। ततः आमला तथा हरीतकीचूर्ण, मधु एवं घृत मिलाकर मर्दन करें। पुनः धूप में अच्छी तरह सुखा लें। १ तोला=१२ ग्राम

मात्रा में जल के साथ भोजन के पूर्व, भोजन के मध्य, भोजन के अन्त में सेवन करने से अन्नद्रव शूल, अम्लपित्त, भयंकर रक्तपित्त और परिणामशूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२ से ३ ग्राम तक। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—शुद्ध मण्डूरचूर्ण जैसा। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अन्नद्रवशूल, परिणामशूल एवं अम्लपित्त में।

९३. हरीतकीखण्ड-१

चतुष्पलं हरीतक्यास्त्रिवृतायाश्चतुष्पलम्।
चतुर्जातं समुस्तञ्च तालीशं जीरकं तथा ॥१९७॥
जातीकोषं लवङ्गञ्च लौहमभ्रञ्च टङ्गणम्।
प्रत्येकं कर्षमानेन श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥१९८॥
प्रस्थेन गव्यदुग्धस्य पचेन्मृद्वग्निना भिषक्।
शर्कराया दशपलं पाकसिद्धिविधानवित् ॥१९९॥
दर्वीप्रलेपावस्थायां क्षिपेच्चूर्णं विचक्षणः।
पूजयेद् भास्करं शम्भुं द्विजातीनभिवादयेत् ॥२००॥
शूलमष्टविधं हन्ति अम्लपित्तं सुदुर्जयम्।
अन्नद्रवमयं शूलं कासं श्वासं तथा वमिम् ॥२०१॥
कान्तिपुष्टिकरो हृद्यो बलमेधाऽग्निवर्द्धनः।
ख्यातो हरीतकीखण्डः सर्वशूलनिकृन्तनः ॥२०२॥

१. हरीतकीचूर्ण १८७ ग्राम, २. निशोथचूर्ण १८७ ग्राम, ३. तेजपत्ताचूर्ण, ४. दालचीनीचूर्ण, ५. छोटीइलायचीचूर्ण, ६. नागकेशरचूर्ण, ७. नागरमोथाचूर्ण, ८. तालीशपत्र, ९. श्वेत जीरा, १०. जावित्रीचूर्ण, ११. लौंगचूर्ण, १२. लौहभस्म, १३. अभ्रकभस्म और १४. शुद्ध सुहागा—प्रत्येक १२-१२ ग्राम लें तथा गोदुग्ध ७५० मि.ली. एवं चीनी ५०० ग्राम लें। एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में हरीतकीचूर्ण, निशोथचूर्ण, गोदुग्ध एवं चीनी मिलाकर एक साथ प्राक करें। बीच में बड़ी चम्मच से चलाते रहें। जब पाक तैयार हो जाय तो पात्र चूल्हे से नीचे उतारकर प्रक्षेप द्रव्य तालीशपत्र से शुद्ध सोहागा तक सभी १२ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर उस पाक में मिला दें। ततः काचपात्र में संग्रहीत करें। भगवान् सूर्य, भगवान् शंकर और उक्त औषधि की विधानतः पूजा करें और ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त कर २-५ ग्राम की मात्रा में औषधि का सेवन करें। इस औषधि 'हरीतकी खण्ड' के सेवन से आठ प्रकार का शूल, दुर्जय अम्लपित्त, अन्नद्रवशूल, कास, श्वास, वमन, परिणामशूल नष्ट हो जाते हैं। शरीरकान्तिवर्धक है, हृद्य है, बल्य है, मेध्य है, अग्निवर्धक है। साथ ही सभी प्रकार के शूलों का नाशक है।

मात्रा—३-६ ग्राम तक। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—सुगन्ध पाकवत्। **वर्ण**—धूसर वर्ण। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—शूलनाशक (सभी शूलों में प्रयोग होता है)।

९४. हरीतकी खण्ड-२

त्रिफलाऽब्दं चतुर्जातं यमानी कटुकत्रयम्।
धान्यं मधुरिका चैव शतपुष्पा लवङ्गकम् ॥२०३॥
प्रत्येकं कार्षिकं ग्राह्यं त्रिवृता स्वर्णपत्रिका।
पलद्वन्द्वप्रमाणेन सर्वतुल्या हरीतकी ॥२०४॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि सिता तद्द्विगुणा मता।
दत्त्वैतानि विधानेन क्षीरेणोष्णेन सम्पिबेत् ॥२०५॥
हन्त्यम्लपित्तं शूलञ्च षडर्शांस्यनिलामयम्॥
कोष्ठवातं कटीशूलमानाहमपि दारुणम् ॥२०६॥

१. हरीतकीचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. बहेड़ाचूर्ण, ४. नागरमोथाचूर्ण, ५. तेजपत्ताचूर्ण, ६. दालचीनीचूर्ण, ७. छोटी इलायचीचूर्ण, ८. नागकेशरचूर्ण, ९. अजवायनचूर्ण, १०. सोंठ चूर्ण, ११. पीपरचूर्ण, १२. मरिचचूर्ण, धनियाँचूर्ण, १४. सौंफ चूर्ण, १५. सोयाचूर्ण तथा १६. लौंगचूर्ण—ये सभी द्रव्य १२-१२ ग्राम लें; निशोथचूर्ण ९३ ग्राम, १८. सनायपत्तीचूर्ण ९३ ग्राम, १९. हरीतकीचूर्ण ३८० ग्राम और चीनी २२८० ग्राम लें। एक स्टील के बड़े पात्र में चीनी में थोड़ा जल देकर चासनी करें। जब चासनी ३ तार की तैयार हो जाय तो पहले हरीतकी-चूर्ण उस चासनी में अच्छी तरह से मिला दें। ततः निशोथचूर्ण, सनायपत्तीचूर्ण क्रमशः मिला दें। पुनः आमला से लौंग चूर्ण तक के सभी द्रव्यों को प्रक्षेप रूप में मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके सेवन से अम्लपित्त, शूल, अर्श, वातरोग, कोष्ठगत कुपितवात, कटीशूल, भयंकर आनाह रोगों को नाश करता है।

मात्रा—५ ग्राम से १० ग्राम तक। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—सुगन्ध पाक जैसा। **वर्ण**—च्यवन-प्राशावलेह जैसा। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सभी प्रकार के शूल एवं अम्लपित्त में।

९५. पूगखण्ड-१

छिन्नं पूगफलं दृढं परिणतं पक्त्वा च दुग्धाम्बुभिः
प्रक्षाल्यातपशोषितं वसुपलं ग्राह्यं ततश्चूर्णितात्।
तत्सर्पिः कुडवे विपाच्य हि वरीधात्रीरसा ह्यञ्जली
द्वे प्रस्थे पयसः प्रदाय विपचेन्मन्दं तुलार्द्धां सिताम् ॥
हेमाम्भोधरचन्दनं त्रिकटुकं धात्रीप्रियालास्थिजौ
मज्जानौ त्रिसुगन्धि जीरकयुगं शृङ्गाटकं वंशजा।
जातीकोषफले लवङ्गमपरं धान्याककक्कोलकं
नाकूली तगराम्बु वारणशिफा भृङ्गाश्वगन्धे तथा ॥
सर्वं ह्यक्षमितं विचूर्ण्य विधिना पाके तु मन्दे ततः
प्रक्षिप्याथ विघट्टयन् मुहुरिदं दर्व्याऽवतार्य क्षणात्।
सिद्धं वीक्ष्य विधारयेदवहितः स्निग्धेऽथ मृद्भाजने
खादेत्प्रातरिदं जरामयहरं वृष्यं बुधः कार्षिकम् ॥

शूलाजीर्णगुदप्रवाहरुधिरं दुष्टाम्लपित्तं जपेद्
यक्ष्मक्षीणहितं महाग्निजननं तृट्छर्दिमूर्च्छाऽपहम्।
पाण्डुघ्नं बलवर्णदृष्टिकरणं गर्भप्रदं योषिता-
मेतत् पूगरसायनं प्रदरनुद् विण्मूत्रसङ्गापहम्॥

१. दुग्ध में पकाया तथा चूर्ण किया सुपारीचूर्ण ३७५ ग्राम, २. घृत १८७ ग्राम ३. शतावरीक्वाथ १८७ मि.ली., ४. धात्री (आमला) क्वाथ १८७ मि.ली., ५. गोदुग्ध १५०० मि.ली. तथा ६. चीनी २५०० ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. नागकेशरचूर्ण, २. नागरमोथाचूर्ण, ३. श्वेत-चन्दनचूर्ण, ४. सोंठचूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. मरिचचूर्ण, ७. आमलाबीचमज्जा, ८. चरौंजी, ९. दालचीनीचूर्ण, १०. तेज-पत्ताचूर्ण, ११. छोटीइलायची, १२. स्याहजीराचूर्ण, १३. श्वेतजीराचूर्ण, १४. सिंघाड़ाचूर्ण, १५. वंशलोचनचूर्ण, १६. जावित्रीचूर्ण, १७. जायफलचूर्ण, १८. लौंगचूर्ण, १९. धनियाँ-चूर्ण, २०. शीतलचीनीचूर्ण, २१. नाकुलीचूर्ण, २२. तगर-चूर्ण, २३. सुगन्धबालाचूर्ण, २४. खसचूर्ण, २५. भृङ्गराजचूर्ण और २६. अश्वगन्धाचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम बड़ी सुपक्व अच्छी सुपारी लेकर साफ करें और उसे छोटे-छोटे टुकड़े करें और १५०० मि.ली. दूध तथा १५०० जल मिलाकर उसमें सुपारी के टुकड़े को रखकर एक स्टेनलेस स्टील के भगौने में मन्दाग्नि पर पकावें। जब दूध सूख जाय तो भगौने को चूल्हे से उतारकर गरमजल से सुपारी को अच्छी तरह से साफ करें और धूप में अच्छी तरह से सुखा लें। यह चूर्ण ३७५ ग्राम होगा। अब इस चूर्ण को १८७ ग्राम घृत में भून लें। तत: एक भगौने में शतावरीक्वाथ एवं गोदुग्ध और चीनी मिलाकर पकावें। आमलाक्वाथ पाक तैयार होते समय डालें अन्यथा दूध फट जायेगा। पाक तैयार होते समय आमलाक्वाथ कर पाक करें तथा प्रक्षेप के २६ द्रव्यों के चूर्ण को पाक पर छिड़ककर अच्छी तरह से मिला लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'पूगखण्ड' को १२ ग्राम की मात्रा में प्रात:-सायं गोदुग्ध अथवा जल से सेवन करने पर सभी प्रकार के शूल, अजीर्ण, गुद रक्तस्राव, दुष्ट अम्लपित्त का नाश करता है। राजयक्ष्मा से क्षीण व्यक्ति के लिए हितकर है। अत्यन्त अग्निप्रद है। प्यास, वमन, मूर्च्छा नाशक है। पाण्डु नाशक है। बल, वर्ण, दृष्टि, गर्भप्रद हैं। वृद्धावस्था व रोग नाशक है। वृष्य है। यह पूग रसायन प्रदर नाशक है। पुरीष एवं मूत्र की रुकावट को दूर करता है। यह गर्भस्थापक है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गोदुग्ध एवं गोमूत्र से। **गन्ध**—सुगन्ध पाक जैसा। **वर्ण**—धूसर चूर्ण। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—शूल, अजीर्ण, गर्भप्रद, रक्तप्रदर नाशक, बल्य, वृष्य एवं रसायन है।

९६. पूगखण्ड-२

प्रस्थैकं पूगचूर्णस्य पयसश्चाढकं क्षिपेत्।
शर्करायाः पलशतं घृतस्य कुडवद्वयम्॥२११॥
चातुर्जातु त्रिकटुकं देवपुष्पं सचन्दनम्।
मांसी तालीशपत्रञ्च बीजं कमलसम्भवम्॥२१२॥
नीलोत्पलं तथा वांशी शृङ्गाटं जीरकं तथा।
विदारीकन्दजञ्चैव रजो गोक्षुरसम्भवम्॥२१३॥
शतमूलीरजश्चैव मालतीकुसुमं तथा।
धात्रीचूर्णं समं कर्षं कर्पूरं शुक्तिमानतः॥२१४॥
मन्देऽग्नौ विपचेद्वैद्यः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्।
खादेच्च प्रातरुत्थाय कोलमेकं प्रमाणतः॥२१५॥
छर्द्यम्लपित्तहृद् दाहभ्रममूर्च्छापहं नृणाम्।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठमामवातविनाशनम्॥२१६॥
मेहमेदोविकारघ्नं प्लीहपाण्डुगदापहम्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च गुदजं रुधिरं जयेत्॥२१७॥
रेतोवृद्धिकरं हृद्यं पुष्टिदं कामदं तथा।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते॥
नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मसु॥२१८॥

घटक—पूगचूर्ण (सुपारी) ७५० ग्राम, गोदुग्ध ६ लीटर द्रव द्वैगुण्य दूध लें, चीनी ४७०० ग्राम तथा घृत ३७५ ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. तेजपत्ताचूर्ण, २. दालचीनीचूर्ण, ३. छोटी इलायचीचूर्ण, ४. नागकेशरचूर्ण, ५. सोंठचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण, ८. लौंगचूर्ण, ९. श्वेतचन्दनचूर्ण, १०. जटामांसीचूर्ण, ११. तासीशपत्रचूर्ण, १२. कमलबीजचूर्ण, १३. नीलकमलचूर्ण, १४. वंशलोचनचूर्ण, १५. सिंघाड़ाचूर्ण, १६. जीराचूर्ण, १७. विदारीकन्दचूर्ण, १८. गोक्षुरचूर्ण, १९. शतावरी चूर्ण २०. चमेलीपुष्पचूर्ण, और २१. आमलाचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें तथा २२. कर्पूर २३ ग्राम लेना चाहिए। पूर्वोक्त विधि से सर्वप्रथम सुपारी के छोटे-छोटे टुकड़े करें। तत: एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में ३ लीटर दूध मिलाकर सुपारी के टुकड़े को मन्दाग्नि पर पकायें। जब दूध सूख जाय तो गरम जल से सुपारी के टुकड़े को अच्छी तरह से साफ करें और धूप में सुखाकर सूक्ष्म चूर्ण करें। अब उस सुपारीचूर्ण को घी में भून लें। पुन: एक पात्र में दुग्ध ३ लीटर में चीनी मिलाकर पाक करें। जब चीनी की कड़ी चासनी तैयार हो जाय तो चूल्हे से नीचे पात्र को उतारकर उस चासनी में भुनी हुई सुपारीचूर्ण डालकर अच्छी तरह मिलावें। तत: शेष प्रक्षेप द्रव्य तेजपत्ता से आमला चूर्ण तक सभी २१ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर छोड़ दें। जब शीतल हो जाय तब २३ ग्राम कपूर मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ६ ग्राम (१ कोल) की मात्रा में प्रात:-सायं गरम दूध या ताजा जल से सेवन करने से वमन, अम्लपित्त, हृद्रोग, दाह, भ्रम, मूर्च्छा,

सभी प्रकार के शूल रोग, आमवात, प्रमेह, मेदो विकार, प्लीहरोग, पाण्डुरोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, रक्तार्शरोग नष्ट हो जाते हैं। यह शुक्रवर्धक है, हृद्य है, पुष्टिकर है, कामशक्तिवर्धक है। इसके सेवन से बन्ध्याएँ भी पुत्र को जन्म देती हैं, वृद्ध पुरुष युवा जैसा मैथुन समर्थ हो जाता है। इस पूगखण्ड से बढ़कर वाजीकरणार्थ दूसरी कोई औषधि नहीं है।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—गरमदूध या शीतलजल से। **गन्ध**—सुगन्ध पाक जैसा। **वर्ण**—धूसरवर्ण। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—शूल एवं अम्लपित्त नाशक तथा बल्य, वाजीकरण एवं पुत्रप्रद है।

९७. आमलकी खण्ड (च.द.)

स्विन्नपीडितकूष्माण्डात्तुलाऽर्द्धं भृष्टमाज्यतः।
प्रस्थार्द्धं खण्डतुल्यन्तु पचेदामलकीरसात्॥२१९॥
प्रस्थे सुस्विन्नकूष्माण्डरसप्रस्थे विघट्टयन्।
दर्व्या पाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत्॥२२०॥
द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च।
पलं तालीशधन्याकचातुर्जातकमुस्तकम्॥२२१॥
कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च।
पक्तिशूलं निहन्त्येतद्दोषत्रयभवञ्च यत्॥२२२॥
छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्च श्वासं कासमरोचकम्।
हृच्छूलं रक्तपित्तञ्च पृष्ठशूलञ्च नाशयेत्॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञितम्॥२२३॥

१. कूष्माण्ड मज्जा २५००ग्राम, २. घृत ३७५ ग्राम, ३. मिश्री २५०० ग्राम, ४. कूष्माण्डस्वरस ७५० मि.ली. और ५. आमलकी क्वाथ ७५० मि.ली. लें।

प्रक्षेप—१. पीपर ९३ ग्राम, २. कृष्णजीरक ९३ ग्राम, ३. सोंठ ९३ ग्राम, ४. मरिच ४६ ग्राम, ५. तालीशपत्र १२ ग्राम, ६. धनियाँ १२ ग्राम, ७. छोटीइलायची १२ ग्राम, ८. तेजपत्ता १२ ग्राम, ९. दालचीनी १२ ग्राम, १०. नागकेशर १२ ग्राम, ११. नागरमोथा १२ ग्राम तथा १२. मधु ३७५ ग्राम लें। सर्वप्रथम कूष्माण्ड को छीलकर उसका छिलका एवं बीज पृथक् करें। ततः छोटे-छोटे टुकड़े करें या कद्दूकस पर घिसकर छोटे-छोटे टुकड़े करें। एक स्टेनलेस स्टील के बर्तन में थोड़ा पानी देकर उबालें। पुनः ठण्डा होने पर एक वस्त्रखण्ड पर कूष्माण्ड के टुकड़े को रखकर हाथ से दबाकर पानी निचोड़ लें। इसके बाद एक छोटी कड़ाही में घृत डालकर उस स्विन्न कूष्माण्ड टुकड़ों को भून लें। कूष्माण्ड घिसते समय भी हाथ से दबाकर उन टुकड़ों का पानी निचोड़ लें। स्वेदन के बाद और निचोड़े हुए कूष्माण्डस्वरस को एक जगह ७५० मि.ग्रा. लें तथा आमलकी स्वरस ७५० मि.ली. लेकर दोनों स्वरसों को एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखकर चूल्हे पर पकावें। उसी में मिश्री मिलाकर चासनी करें। जब मोदक की कड़ी चासनी हो जाय तो भूने हुए कूष्माण्ड टुकड़ों को मिलाकर पुनः पकावें तथा चूल्हे से नीचे उतारकर उसमें प्रक्षेप के ११ द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह चलाते रहें। जब ठण्डा हो जाय तो उसमें मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ५ से १० ग्राम की मात्रा में दूध या ताजा पानी के साथ सेवन करने से परिणामशूल, त्रिदोषजन्य शूल, वमन, अम्लपित्त, मूर्च्छा, श्वास, अरुचि, हृच्छूल, पृष्ठ-शूल, रक्तपित्त नष्ट हो जाते हैं। यह 'आमलकी खण्ड' श्रेष्ठ रसायन गुण से युक्त है।

मात्रा—५ से १० ग्राम। **अनुपान**—दूध या ताजा जल से। **गन्ध**—सुगन्ध युक्त पाक। **वर्ण**—श्याव वर्ण। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—परिणामशूल, अम्लपित्त एवं अरुचि में।

९८. नारिकेलखण्ड (च.द.)

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं
पलपरिमितसर्पिः पाचितं खण्डतुल्यम्।
निजपयसि तदेतत् प्रस्थमात्रे विपक्वं
गुडवदथ सुशीते शाणभागान् क्षिपेच्च॥२२४॥
धन्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरान्
शाणं त्रिजातमिभकेशरवद्विचूर्ण्य।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं
शूलं वमिं सकलपौरुषकारि हारि॥२२५॥

कच्चा पानीदार नारियलगिरी १८७ ग्राम, गोघृत ४६ ग्राम, मिश्री १८७ ग्राम और नारियल का पानी ७५० मि.ली. लें।

प्रक्षेप—१. धनियाचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. नागरमोथाचूर्ण, ४. वंशलोचनचूर्ण, ५. श्वेतजीराचूर्ण, ६. स्याहजीराचूर्ण, ७. तेजपत्ताचूर्ण, ८. दालचीनीचूर्ण, ९. छोटीइलायचीचूर्ण और १०. नागकेशरचूर्ण—प्रत्येक ३-३ ग्राम लें। पानीदार नारियल तोड़कर पानी पृथक् करें। नारियल की गिरी को लोहे के यन्त्र से खरोचकर छोटे-छोटे टुकड़े करें या कद्दूकस पर नारियल को घिस लें। घिसे हुए नारियल गिरि के १८७ ग्राम टुकड़े को छोटे पात्र में घी में हल्का भून लें। ततः नारियल के पानी ७५० मि.ली. में १८७ ग्राम मिश्री मिलाकर आग पर पकावें। उसी में भूने हुए नारियल को मिलाकर पकावें। जब चासनी कड़ी हो जाय तो पात्र चूल्हे से नीचे उतारें और प्रक्षेप के उपर्युक्त सभी ११ द्रव्यों के चूर्णों को उस पाक पात्र में डालकर अच्छी तरह से मिला लें। ततः काचपात्र में संग्रहीत करें। ५ से १० ग्राम की मात्रा में गरम दूध या ताजा पानी के साथ लेने से अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, शूल, वमन रोग को नष्ट करता है। सम्पूर्ण पौरुषबल को बढ़ाता है।

मात्रा— ५ से १० ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या ताजा जल से। **गन्ध**—सुगन्धयुक्त पाक। **वर्ण**—किञ्चित् श्याव। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त, शूल एवं परिणामशूल में।

९९. नारिकेलखण्ड बृहत् (च.द.)

नारिकेलपलान्यष्टौ शर्करा प्रस्थसंयुतम्।
तज्जलं पात्रमेकन्तु सर्पिः पञ्च पलानि च ॥२२६॥
शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थार्द्धं क्षीरमेव च।
सर्वमेकीकृतं पात्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥२२७॥
तुगा त्रिकटुकं मुस्तं चातुर्जातं सधान्यकम्।
द्वे कणे कर्षयुग्मञ्च जीरकञ्च पृथक् पृथक् ॥२२८॥
श्लक्ष्णचूर्णं विनिक्षिप्य स्थापयेद् भाजने मृदः।
खादेत्प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानपि ॥२२९॥
सर्वदोषभवं शूलमामवातं विनाशयेत्।
परिणामभवं शूलमम्लपित्तञ्च नाशयेत् ॥२३०॥
बलपुष्टिकरं हृद्यं वाजीकरणमुत्तमम्।
रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं छर्दिहृद्रोगनाशनम् ॥
अग्निसन्दीपनकरं सर्वरोगनिबर्हणम् ॥२३१॥

१. नारियल की गिरी ३७५ ग्राम, २. चीनी ७५० ग्राम, ३. नारियल जल ३ लीटर, ४. गोघृत २३५ ग्राम, ५. सोंठचूर्ण १८७ ग्राम तथा ६. गोदुग्ध ३७५ मि.ली. लें।

प्रक्षेप—१. वंशलोचनचूर्ण, २. सोंठचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. मरिचचूर्ण, ५. नागरमोथाचूर्ण, ६. तेजपत्ताचूर्ण, ७. छोटी इलायचीचूर्ण, ८. दालचीनीचूर्ण, ९. नागकेशरचूर्ण, १०. धनियाँचूर्ण, ११. पीपरचूर्ण, १२. गजपीपरचूर्ण और १३. श्वेतजीराचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य २३-२३ ग्राम लें। नारियल की गिरि ८ पल (३७५ ग्राम), चीनी १ प्रस्थ (७५० ग्राम), गोघृत २३५ ग्राम (५ पल), सोंठचूर्ण (१ कुडव) १८७ ग्राम, दूध ३७५ मि.ली.—सभी को एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में एक साथ मिलाकर पाक करें। जब पाक पूर्ण हो जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर प्रक्षेप द्रव्यों के चूर्ण मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। ३ ग्राम की मात्रा में इसे दूध या ताजा पानी से लेने पर सभी दोषों से उत्पन्न शूल रोग या एकदोषज या द्विदोषज शूल, पारिणामशूल, अम्लपित्त, रक्तपित्त, वमन, हृद्रोग नष्ट हो जाता है। यह नारिकेल खण्ड बल्य है, शरीरपुष्टिकर है, हृद्य है, वाजीकरण है।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या ताजा पानी से। **गन्ध**—सुगन्ध पाक जैसा। **वर्ण**—श्वेताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त, शूल, परिणामशूल एवं रक्तपित्त में।

१००. नारिकेलामृत

नारिकेलफलप्रस्थं सुपिष्टं भर्जितं घृते।
प्रस्थे प्रस्थं समादाय शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम् ॥२३२॥
द्विपात्रं नारिकेलाम्बु तत्समं क्षीरमेव च।
धात्र्याश्च स्वरसप्रस्थं खण्डस्यापि तुलां न्यसेत् ॥२३३॥
एकीकृत्य पचेत्सर्वं शनैर्मृद्वग्निना भिषक्।
सिद्धशीते प्रदातव्यं चूर्णमेषां सुशोभनम् ॥२३४॥
कटुत्रयं चतुर्जातं प्रत्येकञ्च पलोन्मितम्।
धात्री जीरकयुग्मञ्च धान्यकं ग्रन्थिपर्णकम् ॥२३५॥
तुगा पयोदचूर्णानि त्रिकर्षाणि पृथक्-पृथक्।
चतुष्पलानि मधुनः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥२३६॥
शिवं प्रणम्य सगणं धन्वन्तरिमथापरम्।
कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं मुद्गयूषं पिबेदनु ॥२३७॥
अम्लपित्तं निहन्त्युग्रं शूलञ्चैव सुदारुणम्।
परिणामभवं शूलं पृष्ठशूलञ्च नाशयेत् ॥२३८॥
अन्नद्रवभवं शूलं पार्श्वशूलं सुदुस्तरम्।
अग्निसन्दीपनकरं रसायनमिदं शुभम् ॥२३९॥
मूत्राघातानशेषांश्च रक्तपित्तं विशेषतः।
पीनसञ्च प्रतिश्यायं नाशयेन्नित्यसेवनात् ॥२४०॥
रोगानीकविनाशाय लोकानुग्रहहेतवे।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं नारिकेलामृतं शुभम् ॥२४१॥

१. पानीदार नारियलगिरी ७५० ग्राम, २. घृत ७५० ग्राम, ३. सोंठचूर्ण ७५० ग्राम, ४. नारियल का जल ६ लीटर, ५. गोदुग्ध ६ लीटर, ६. आमलास्वरस ७५० मि.ली. और ७. मिश्री ५ किलो तथा मधु १८७ ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. सोंठचूर्ण ४६ ग्राम, २. पीपरचूर्ण ४६ ग्राम, ३. मरिचचूर्ण ४६ ग्राम, ४. छोटीइलायचीचूर्ण ४६ ग्राम, ५. तेजपत्ताचूर्ण ४६ ग्राम, ६. दालचीनीचूर्ण ४६ ग्राम, ७. नागकेशरचूर्ण ४६ ग्राम, ८. आमलाचूर्ण ३५ ग्राम, ९. श्वेत- जीराचूर्ण ३५ ग्राम, १०. स्याहजीराचूर्ण ३५ ग्राम, ११. धनियाँचूर्ण ३५ ग्राम, १२. ग्रन्थिपर्ण ३५ ग्राम, १३. वंशलोचनचूर्ण ३५ ग्राम और १४. नागरमोथाचूर्ण ३५ ग्राम लें। उपर्युक्त नारियल को कद्दूकस पर घिसकर छोटे-छोटे टुकड़े कर लें। ततः एक स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में नारियल के घिसे टुकड़े के साथ सभी नारियल का जल, दूध, घृत, मिश्री, आमलास्वरस, सोंठचूर्ण को उस पात्र में रखकर चूल्हे पर मन्दाग्नि से पाक करें। पाक सम्पन्न हुआ समझकर पात्र को नीचे उतारें और प्रक्षेप द्रव्यों के चूर्णों एवं मधु को प्रक्षिप्त कर अच्छी तरह से मिला लें। ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। ततः इस औषधि तथा गणों के साथ भगवान् शिव एवं धन्वन्तरि की पूजा-अर्चना तथा प्रणाम करके १२ ग्राम की मात्रा में मूँगयूष या जल के साथ सेवन करने से अम्लपित्त, भयंकर शूल, परिणामशूल, शूल, पृष्ठशूल, अन्नद्रवशूल, भयंकर पार्श्वशूल, मूत्राघात, रक्तपित्त, पीनस

एवं प्रतिश्याय रोग नष्ट हो जाते हैं। यह 'नारिकेलामृत' अग्निदीपक है, रसायन है। यह सभी प्रकार के रोग समूहों को नष्ट करता है। भगवान् अश्विनीकुमारों ने लोक कल्याणार्थ इस नारिकेलामृत औषधि का निर्माण किया है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**— मूँग का यूष, गरम दूध एवं शीतल जल से। **गन्ध**—सुगन्धपाक जैसा। **वर्ण**—श्वेताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—परिणामशूल, शूल, अम्लपित्त तथा अन्नद्रव शूल नाशक एवं अग्निदीपक है।

१०१. गुड़पिप्पली घृत (च.द.)

सपिप्पलीगुडं सर्पिः पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे।
विनिहन्त्यम्लपित्तञ्च शूलञ्च परिणामजम् ॥२४२॥

गोघृत १ किलो, गोदुग्ध ४ लीटर, पीपर १२५ ग्राम, गुड़ १२५ ग्राम तथा जल ४ लीटर लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः मूर्च्छित घृत को पुनः स्टील के पात्र में रखें, उसी पात्र में ४ लीटर दूध मिलावें और पीपर के चूर्ण को गुड़ के साथ मिलाकर कल्क बना लें तथा घृतपात्र में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब दूध सूख जाय तो सम्यक्पाक हेतु ४ लीटर जल देकर और पकावें। पाक सम्पन्न होने पर परीक्षोपरान्त चूल्हे से पात्र को नीचे उतारकर थोड़ा गरम रहने पर ही छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ५ से १० ग्राम तक की मात्रा में गरम दूध के साथ सेवन करने से परिणामशूल और अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाते है।

मात्रा—५ से १० ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—प्रीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त एवं परिणामशूल में।

१०२. पिप्पलीघृत

क्वाथेन कल्केन च पिप्पलीनां
सिद्धं घृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तम्।
क्षीरानुपानस्य निहन्त्यवश्यं
शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम् ॥२४३॥

गोघृत १ किलो, क्वाथार्थ पिप्पली ४२५० कि.ग्रा., जल १६ लीटर तथा कल्कार्थ पिप्पली २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः पिप्पली को यवकुट कर क्वाथ बनावें और २५० ग्राम पीपर का कल्क भी बना लें। अब मूर्च्छित घृत में कल्क एवं क्वाथ मिलाकर पाक करें। पाकपरीक्षोपरान्त घृतपात्र को नीचे उतारकर घृत को छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस पिप्पलीघृत को ५ से १० ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध के साथ सेवन करने से बढ़ा हुआ परिणामशूल एवं शूल रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—५ से १० ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शूल एवं परिणामशूल में।

१०३. बीजपूराद्य घृत

बीजपूरकमेरण्डं रास्ना गोक्षुरकं बलाम्।
पृथक् पञ्चपलान्भागान् यवप्रस्थसमायुतान् ॥२४४॥
वारिद्रोणेन संसाध्य यावत्पादावशेषितम्।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन कल्कं दत्त्वाऽक्षसम्मितम् ॥२४५॥
तुम्बुरूण्यभ्याव्योषं हिङ्गु सौवर्चलं बिडम्।
सैन्धवं यावशूकं च सर्जिकाम्मल्वेतसम् ॥२४६॥
पुष्करं दाडिमञ्चैव वृक्षाम्लं जीरकद्वयम्।
मस्तुप्रस्थद्वयं दत्त्वा सर्वं मृद्वग्निना पचेत् ॥२४७॥
घृतमेतत्प्रशंसन्ति शूलं हन्ति त्रिदोषजम्।
वातशूलं यकृच्छूलं गुल्मप्लीहापहं परम् ॥२४८॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च अङ्गशूलञ्च नाशयेत्।
बलवर्णकरं हृद्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥२४९॥

क्वाथ— बिजौरानिम्बुमूल, २. एरण्डमूल, ३. रास्ना, ४. गोक्षुरबीज, ५. बलामूल—प्रत्येक द्रव्य २३५ ग्राम लें; ६. जौ ७५० ग्राम तथा ७. जल १२ लीटर (१ द्रोण) और घृत ७५० ग्राम लें।

कल्क—१. नेपालीधनियाँ, २. हरीतकी, ३. सोंठ, ४ पीपर, ५. मरिच, ६. हींग, ७. सौवर्चललवण ८. विडलवण, ९. सैन्धवलवण, १०.यवक्षार ११. सर्जिकाक्षार, १२. अम्ल-वेतस, १३. पुष्करमूल १४. अनारदाना, १५. वृक्षाम्ल, १६. श्वेतजीरा तथा १७. स्याहजीरा—प्रत्येक १०-१० ग्राम लें और १८. मस्तु १५००लीटर लें। सर्वप्रथम घी का मूर्च्छन करें। ततः क्वाथ वर्ग के सभी ६ द्रव्यों को यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छानकर मूर्च्छितघृत में मिलाकर पाक करें। कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बनाकर घृत में मिलाकर पाक करें। क्वाथ सूखने पर उसमें मस्तु १५०० मि.ली. डालकर पाक करें। मस्तु के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जल सूखने पर पाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह घृत ५ से १० ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ लेने पर त्रिदोषजशूल, वातजशूल, यकृच्छूल, गुल्म, प्लीहावृद्धि, हृच्छूल, पार्श्वशूल एवं अङ्गशूल को नष्ट करता है। यह घृत वर्णकारक है, हृद्य है और अग्निदीपक है।

मात्रा—५ से १० ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध से। **गन्ध**—

सुगन्धित घृत। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—लवणाभ। **उपयोग**—शूल, परिणामशूल एवं गुल्म में।

१०४. दाधिक घृत (च.द.)

पिप्पली नागरं बिल्वं कारवी चव्यचित्रकम्।
हिङ्गु दाडिमवृक्षाम्लवचाक्षाराम्लवेतसम् ॥२५०॥
वर्षाभूकृष्णलवणमजाजीबीजपूरकम्।
दधि त्रिगुणितं सर्पिस्तत्सिद्धं दाधिकं घृतम् ॥२५१॥
गुल्मार्शःप्लीहहृत्पार्श्वशूलयोनिरुजापहम्।
दोषसंशमनं श्रेष्ठं दाधिकं परमं स्मृतम् ॥२५२॥

कल्क— १. पीपर, २. सोंठ, ३. बिल्वफलमज्जा, ४. कलौंजी (मँगरैला), ५. चव्य ६. चित्रकमूल, ७. हींग, ८. अनारदाना, ९. वृक्षाम्ल, १०. वच, ११. यवक्षार, १२. अम्लवेतस, १३. पुनर्नवा, १४. सौवर्चललवण, १५. जीरा और १६. बिजौरा निम्बु—प्रत्येक द्रव्य १५-१५ ग्राम लें; १७. गोघृत १ किलो, १८. गोदधि ३ किलो तथा जल ४ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें और मूर्च्छित घृत में डालें तथा दही को मथकर उक्त घृत में पकावें। दही सूखने पर दधि का सम्यक् पाक हेतु ४ लीटर जल देकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाकविद् वैद्य पाक परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से घृत को छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसको ५ से १० ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध से लेने पर गुल्म, अर्श, प्लीह, हृच्छूल, पार्श्वशूल, योनिशूल का नाश करता है। यह 'दाधिक घृत' दोषों का संशमन करने में परम श्रेष्ठ है।

मात्रा— ५ से १० ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—घृत का स्वाद। **उपयोग**—गुल्म, हृच्छूल, पार्श्वशूल एवं दोषसंशामक है।

१०५. शूलगजेन्द्र तैल

एरण्डं दशमूलञ्च प्रत्येकं पलपञ्चकम्।
जले चाष्टगुणे पक्त्वा तैलस्यार्द्धाढकं पचेत् ॥२५३॥
विश्वं जीरं यमानीञ्च धान्यकं पिप्पलीं वचाम्।
सैन्धवं बदरीपत्रं प्रत्येकञ्च पलद्वयम् ॥२५४॥
यवक्वाथः पयश्चैव तैलाद् देयं गुणद्वयम्।
तैलमेतन्महातेजो नाम्ना शूलगजेन्द्रकम् ॥२५५॥
निहन्त्यष्टविधं शूलमुपद्रवसमन्वितम्।
अग्निप्रदं वमिहरं श्वासकासारुचीर्जयेत् ॥२५६॥
ज्वरघ्नं रक्तपित्तघ्नं प्लीहगुल्मविनाशनम्।
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वसन्मुदे ॥२५७॥

१. एरण्डमूल, २. बिल्वमूलत्वक्, ३. अग्निमन्थ, ४. सोनापाठा, ५. पाटलत्वक्, ६. गम्भारत्वक्, ७. शालपर्णी, ८. पृश्निपर्णी, ९. बृहती, १०. कण्टकारी, ११. गोक्षुर—प्रत्येक द्रव्य ५ पल अर्थात् २३५ ग्राम लें तथा १२. तिलतैल १५०० मि.ली., यव ३ किलो तथा गोदुग्ध ३ लीटर लें।

कल्क—१. सोंठ, २. श्वेतजीरा, ३. अजवायन, ४. धनियाँ, ५. पीपर, ६. वच, ७. सैन्धवलवण, ८. बेर की पत्ती —प्रत्येक द्रव्य ९२-९२ ग्राम लें; ९. यव ३ किलो तथा १०. गोदुग्ध ३ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः एरण्डमूलादि द्रव्यों को यवकुट कर आठ गुना (२० लीटर) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहे तो छानकर मूर्च्छित तैल में मिला दें और मन्दाग्नि से पाक करें। ततः जौ को दरड़ कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें, चौथाई शेष रहने पर छानकर तैल में मिलाकर पाक करें। तदनन्तर गोदुग्ध मिलाकर पाक करें। अन्त में दूध एवं कल्क के सम्यक् पाक हेतु ४ गुना जल मिलाकर पाक करें। सम्यक् पाक हो जाने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से उतारकर तैल को कपड़े से छान लें। शीतल होने पर तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें। यह महातेजस्वी शूलगजेन्द्र तैल की मालिश करने से अथवा आवश्यकतानुसार पान करने से उपद्रवों से युक्त आठ प्रकार के शूल रोग, वमन, श्वास, कास, अरुचि, ज्वर, रक्तपित्त, प्लीह, गुल्म रोग का नाश करता है। यह अग्निवर्धक है। इस तैल को श्रीमान् गहननाथ ने लोकहितार्थ निर्माण किया था।

मात्रा—पानार्थ १० से २५ मि.ली. तथा मर्दनार्थ आवश्यकतानुसार। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—तैल तथा गोदुग्धपाक की गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—किञ्चित् लवणीय। **उपयोग**—शूलरोग नाशक है।

अन्नद्रवशूल चिकित्सा

पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तं च विरेचनम्।
अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्तं यदीरितम्॥
आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम् ॥२५८॥

पित्त निकलने तक वमन कराना चाहिए तथा पुरीष से कफ निकलने पर्यन्त विरेचन कराना चाहिए। अन्नद्रव शूल में अम्लपित्त की तरह ही चिकित्सा करनी चाहिए। आमाशय एवं पक्वाशय के शुद्ध होने पर अन्नद्रव शूल शान्त हो जाता है।

१०६. धात्रीलौह प्रयोग

धात्रीफलभवं चूर्णमयश्चूर्णसमन्वितम्।
यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात्क्षौद्रेण तद्गदे ॥२५९॥

आमलाचूर्ण १०० ग्राम तथा लौहभस्म १० ग्राम अथवा—मुलेठीचूर्ण १०० ग्राम एवं लौहभस्म १० ग्राम लें! इसमें दो

योग हैं। आमले के चूर्ण और लौहभस्म अथवा मुलेठीचूर्ण और लौहभस्म को मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १ से २ ग्राम की मात्रा में मधु से लेने पर अन्नद्रव शूल शान्त हो जाता है।

मात्रा—१ से २ ग्राम। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**— निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—अम्ल। **उपयोग**—अन्नद्रवशूल में।

१०७. त्र्युट्याद्यरिष्ट

पलद्वयं स्यात् त्रुटिचूर्णजातं
कश्मीरजन्मामरपुष्पमेला ।
त्वक्क्षीरकाकोल्यपि जातिपत्री
यमानिका कोलमितान्यमूनि ॥२६०॥
पृथक्पृथक् साधु विचूर्णितानि
ततो जलं सत् कुडवार्द्धमानम् ।
स्निग्धे सुभाण्डे कुडवप्रमाणां
सञ्जीवनीं चापि सुरां निधाय ॥२६१॥
सप्ताहमेकं ननु रुद्धवक्त्रं
संस्थापयेद् यत्नत एव वैद्यः ।
ततः समुद्धृत्य च वस्त्रपूतं
विधाय पेयं च यथाऽनलं हि ॥२६२॥
त्रुट्याद्यरिष्टमिष्टं स्याच्छूलसंकष्टनाशनम् ।
शूलरोगवतां नूनं भिषग्भिः सुपरीक्षितम् ॥२६३॥

१. छोटी इलायचीबीज ९३ ग्राम, २. केशर ६ ग्राम, ३. लवङ्ग ६ ग्राम, ४. बड़ी इलायचीबीज ६ ग्राम, ५. दालचीनी ६ ग्राम, ६. क्षीरकाकोली ६ ग्राम, ७. जावित्री ६ ग्राम, ८. अजवायन ६ ग्राम, ९. मृतसंजीवनीसुरा १८७ मि.ली. तथा जल ९३ मि.ली. लें। काचपात्र (जार) में मृतसंजीवनीसुरा रखें। ततः जल २ पल लेकर मृतसंजीवनी के साथ मिलावें। छोटी इलायची से अजवायन तक के सभी ९ द्रव्यों को चूर्ण कर उसी जार में मिलाकर उसका मुख बन्द कर १ सप्ताह तक छोड़ दें। ८वें दिन इसे महीन कपड़े से छान लें। पुनः दूसरी साफ काच की बोतल में संग्रहीत करें। इस 'त्र्युट्याद्यरिष्ट' को अग्नि प्रमाण में शूलसंकट निवारणार्थ ३० से १०० बूँद तक लिया जाना चाहिए।

मात्रा—३० से १०० बूँद। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—श्वेताभ। **स्वाद**—तीक्ष्ण। **उपयोग**—शूल एवं अन्नद्रवशूल में।

शूलरोग में अपथ्य

विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विषमाशनम् ।
रूक्षतिक्तकषायाणि शीतलानि गुरूणि च ॥२६४॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं वैदलं लवणं तिलान् ।
वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥२६५॥

परस्पर विरुद्ध अन्न-पान, रात्रि जागरण, विषम भोजन, रूक्ष-तिक्त-कषाय-शीतल-गुरु अन्न, व्यायाम, मैथुन, मद्य, दाल, लवण, तिल, मल-मूत्र का वेगरोध, शोक एवं क्रोध शूल रोगियों के लिए अपथ्य है।

शूलरोग में पथ्य

छर्दिः स्वेदो लङ्घनं पायुवर्त्ति-
र्बस्तिर्निद्रा रेचनं पाचनं च ।
अब्दोत्पन्नाः शालयो वाट्यमण्ड-
स्तप्तक्षीरं जाङ्गलानां रसाश्च ॥२६६॥
पटोलशोभाञ्जनकारवेल्लं
वार्त्ताकुमाम्राणि पचेलिमानि ।
द्राक्षा कपित्थं रुचकं प्रियालं
शालिञ्च पत्राणि च वास्तुकानि ॥२६७॥
सामुद्रसौवर्चलहिङ्गुविश्वं
विडं शताह्वा लशुनं लवङ्गम् ।
एरण्डतैलं सुरभीजलं च
तप्ताम्बु जम्बीररसोऽपि कुष्ठम् ।
लघूनि च क्षाररजांसि चेति
वर्गो हितः शूलगदार्दितेभ्यः ॥२६८॥

वमन, स्वेदन, लंघन, गुदवर्ति, बस्ति, दिन में सोना, विरेचन, पाचन द्रव्य, १ वर्ष का पुराना चावल, भुने जौ का मण्ड, गरम दूध, जङ्गली पशु-पक्षिओं का मांसरस, परवल, सहिजन, करैला, बैंगन, कच्चे-पके आम, द्राक्षा (अंगूर), कैंथ, चिरौंजी, शालिञ्च शाक, बथुआ शाक, सामुद्र सौवर्चललवण, हींग, सोंठ, विडलवण, सौंफ, लशुन, लौंग, एरण्डतैल, गोमूत्र, गरमजल, जम्बीरीनिम्बुस्वरस, कूठ तथा हल्के क्षारों का प्रयोग शूल रोगियों के लिए पथ्य है।

अन्नद्रव शूल में पथ्य　　(च.द.)

माषेण्डरी सतुषिका स्विन्ना सर्पिर्युता हिता ।
गोधूममण्डकं तत्र सर्पिषा गुडसंयुतम् ॥२६९॥
ससितं शीतदुग्धेन मृदितं वा हितं मतम् ।
शालितण्डुलमण्डं वा कवोष्णं सिक्थवर्जितम् ॥२७०॥
वाट्यं क्षीरेण संसिद्धं घृतपूरं सशर्करम् ।
शर्करां भक्षयित्वा वा क्षीरमुत्क्वथितं पिबेत् ॥२७१॥
पटोलपत्रयूषेण खादेच्चणकसक्तुकान् ।
अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यतः ।
तस्मादत्रान्नपानानि मात्राहीनानि कल्पयेत् ॥२७२॥

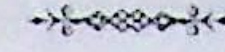
छिलके के साथ उड़द का पिसा हुआ आटा की पिट्ठी से

बनायी गयी पकौड़ी या पुआ आदि अन्नद्रवशूल रोग में हितकर है। गेहूँ का मण्ड में घी और गुड़ मिलाकर या चीनी और दूध मिलाकर ठण्डा कर सेवन करना चाहिए। शालिचावल का मण्ड किञ्चिदुष्ण पीना चाहिए। इसमें सिट्ठी (भात) नहीं रहनी चाहिए। भुने हुए जौ का मण्ड गरम गोदुग्ध के साथ मिलाकर, घेवर (घृतपूर) मिठाई का सेवन करना चाहिए। अथवा थोड़ी मिश्री खाकर ऊपर से गरम दूध पीना चाहिए। परवल के पत्र या फल का यूष बनाकर उसमें चना का सत्तू मिलाकर पीना चाहिए। अन्नद्रवशूल, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य जिसे हो, उसे इस तरह के अन्नपान का सेवन करना चाहिए। ये सब अन्नपान का सेवन अल्पमात्रा में करें।

परिणामशूल में अपथ्य (यो रत्ना.)

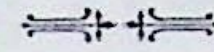
माषादिशिम्बीधान्यानि मद्यानि वनिता हिमम् ।
आतपं जागरं क्रोधं शुचं सन्धानमम्लकम् ॥
वर्जयेत्पक्तिशूलार्त्तस्तथाऽजीर्णे तिलानपि ॥२७३॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शूलरोगाधिकारः ।



परिणाम शूल से पीड़ित रोगी को उड़द आदि शिम्बी धान्य, अनेक प्रकार के मद्य, स्त्रीसंभोग, शीतल बर्फ, धूपसेवन, रात्रि-जागरण, क्रोध, शोक, सन्धान की हुई खट्टी चीजें, अजीर्ण होने पर भोजन एवं तिल—इन सभी चीजों का सेवन नहीं करना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य शूलरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथोदावर्त्तानाहरोगाधिकारः (३१)

उदावर्त्त में सामान्य वस्तु सेवन निर्देश (च.द.)

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाक-
ग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम्।
अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भि-
रद्यात् प्रसन्नागुडसीधुपायी ॥१॥

उदावर्त्त[2] रोग में त्रिवृत्, स्नुही, तिलादि पत्तों के शाक, ग्राम्य, आनूप एवं जलीय प्राणियों (मछली आदि) के मांसरस के साथ जौ की खिचड़ी का सेवन हितकर है। इसके अतिरिक्त अन्यतोवात, पुरीष एवं मूत्र की प्रवृत्ति कराने वाले द्रव्यों के साथ यवान्न का सेवन करना चाहिए। भोजन के बाद प्रसन्ना (सुरामण्ड) और गुड़ से निर्मित सीधु का पान कराना चाहिए।

वातादि जन्य उदावर्त्त में क्रिया (सुश्रुत)

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्नस्य शस्यते।
पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिकस्तु यः ॥२॥

वातोदावर्त्त में पहले रोगी को स्नेहन और स्वेदन कराकर बाद में आस्थापन (निरूह) बस्ति देना श्रेयस्कर है। पुरीषोदावर्त्त में आनाहरोग में कथित चिकित्सा करनी चाहिए।

१. हिंग्वादि चूर्ण (च.द.)

हिङ्गु कुष्ठं वचा सर्जि विडं चेति द्विरुत्तरम्।
पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्त्तविनाशनम् ॥३॥

१. शुद्ध हींग, २. कूठचूर्ण, ३. वचचूर्ण, ४. सर्जिक्षार और ५. विडलवण—ये पाँचों द्रव्य समभाग लेकर सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रह करें। इसे ३ से ५ ग्राम मद्य के साथ लेने से उदावर्त्त शान्त हो जाता है।

२. हरीतक्यादि चूर्ण (च.द.)

हरीतकीयवक्षारपीलूनि[1] त्रिवृता तथा।
घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्त्तविनाशनम् ॥४॥

१. हरीतकीचूर्ण, २. यवक्षारचूर्ण, ३. पीलुकाष्ठचूर्ण तथा ४. निशोथचूर्ण—इन्हें मिलाकर काचपात्र में संग्रह करें। ३ से ५ ग्राम की मात्रा में गरम घृत से पीने पर उदावर्त्त नष्ट हो जाता है।

३. नाराच चूर्ण (च.द.)

खण्डपलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम्।
प्राग्भोजने च समधु विडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥५॥
एतद् गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम्।
स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णो नाराचको नाम्ना ॥६॥

घटक—मिश्रीचूर्ण ४६ ग्राम, निशोथचूर्ण १२ ग्राम और पिप्पलीचूर्ण १२ ग्राम लें। इन तीनों द्रव्यों को मिलाकर काच-पात्र में संग्रहीत करें। ६ से १२ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर भोजन पूर्व चाटने से उदावर्त्त नष्ट हो जाता है।

४. पिप्पल्यादि क्वाथ

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्।
वह्निर्दन्ती त्रिवृच्चैषां कषायं गुडमिश्रितम् ॥७॥
प्रातः पिबन्नुदावर्त्तमानाहं श्वयथुं तथा।
पाण्डुरोगं च गुल्मं च जयेन्निःसंशयं गदी ॥८॥

१. पीपर, २. पिपरामूल, ३. मरिच, ४. सोंठ, ५. चित्रकमूल, ६. दन्तीमूल और ७. निशोथ प्रत्येक—समभाग लें। उपर्युक्त सातों द्रव्यों को यवकुट कर संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम इस यवकुट क्वाथ में १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और इसमें १२ ग्राम गुड़ मिलाकर गरम-गरम प्रातः पीने से उदावर्त्त, आनाह, शोथ, पाण्डु और गुल्म निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

५. हिंग्वादिवर्ति (च.द.)

हिङ्गुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पिष्टैर्वर्त्तिं विनिर्मिताम्।
घृताभ्यक्तां गुदे दद्यादुदावर्तविनाशिनीम् ॥९॥

हींग, मधूच्छिष्ट (मोम) और सैन्धवचूर्ण (समभाग)—इन तीनों द्रव्यों को खरल में महीन पीसकर गुदवर्ति (कनिष्ठाऽगुंली प्रमाण की वर्त्ति) बनाकर छाया में सुखा लें। उदावर्त्त से पीड़ित व्यक्ति की गुदा को तथा वर्त्ति को घृताभ्यक्त कर गुदा में प्रवेश करा दें। इससे तुरन्त बँधे हुए पुरीष की प्रवृत्ति होती है और उदावर्त्त नष्ट हो जाता है।

---

१. श्यामादन्तीद्रवन्तीत्वङ्महाश्यामास्नुहीत्रिवृत्।
सप्तलो शंखिनी श्वेता राजवृक्षः स तिल्वकः॥
कम्पिल्लकं करञ्जश्च स्वर्णक्षीरी त्वयं गणः।
सर्पिस्तैलरजःक्वाथकल्केष्वन्यतमेन च॥ (च.द.उदा. ४-५)

२. सर्वेष्वेतेषु विधिवदुदावर्त्तेषु कृत्स्नशः।
वायोः क्रिया विधातव्याः स्वमार्गप्रतिपत्तये॥ (सु.उत्त. ५५।१९)
सभी प्रकार के उदावर्त्त रोगों में वायु की प्रधानता होने से उस वायु को अपने मार्ग में लाने के लिए (पक्वाधानालयोऽपानः) यथाविधि वायु जीतने के सभी उपाय (स्नेहन-स्वेदनादि) करने चाहिए।

६. फलवर्त्ति (च.द.)

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः ।
गुडक्षारसमायुक्ताः फलवर्तिः प्रशस्यते ॥१०॥

१. मदनफलबीजचूर्ण, २. पिप्पलीचूर्ण, ३. कूठचूर्ण, ४. वचचूर्ण, ५. सफेद या पीलीसरसों, ६. गुड़ तथा ७. यवक्षार—प्रत्येक १-१ भाग लें। इन सभी चूर्णो को सिल पर एक साथ पीसकर अपनी कनिष्ठा अङ्गुली जैसी वर्ति बनाकर छाया में सुखाकर रख लें। आवश्यकतानुसार घृत में डुबोकर उदावर्त्त रोगी की गुदा में प्रवेश करने से पुरीष की प्रवृत्ति होकर उदावर्त्त नष्ट हो जाता है।

७. त्रिवृतादि गुटिका (च.द.)

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुः पञ्चभागिकाः ।
गुडिका गुडतुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहाः ॥११॥

१. निशोथचूर्ण २ भाग, २. पीपरचूर्ण ४ भाग, ३. हरीतकीचूर्ण ५ भाग तथा ४. गुड़ ११ भाग अर्थात् सभी के बराबर लें। सर्वप्रथम गुड़ के साथ सिल पर पीसकर ३-३ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। उदावर्त्त (विड्विबन्ध) से पीड़ित व्यक्ति द्वारा गरम पानी से २-२ वटी लेने से शीघ्र पुरीष की प्रवृत्ति होती है तथा उदावर्त्त रोग नष्ट हो जाता है।

८. गुडाष्टक (वङ्गसेन)

सव्योषं पिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम् ।
तच्चूर्णं गुडसम्मिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥१२॥
एतद् गुडाष्टकं नाम्ना बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
उदावर्त्तप्लीहगुल्मशोथपाण्ड्वामयापहम् ॥१३॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. पिपरामूल चूर्ण, ५. निशोथचूर्ण, ६. दन्तीमूलचूर्ण, और ७. चित्रकमूल-चूर्ण—प्रत्येक १०-१० ग्राम लें तथा ८. गुड़ ७० ग्राम लें। उपर्युक्त चूर्णो को सिल पर गुड़ के साथ मिलाकर अच्छी तरह पीसें तथा ३-३ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। उदावर्त्त से पीड़ित व्यक्ति को गरम पानी से २-२ वटी सेवन कराने से उदावर्त्त रोग नष्ट हो जाता है। इस गुडाष्टक के सेवन से प्लीहावृद्धि, गुल्म, शोथ, पाण्डु आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से बल, वर्ण एवं अग्नि की वृद्धि होती है।

९. रसोन प्रयोग (च.द.)

रसोनं मद्यसम्मिश्रं पिबेत् प्रातः प्रकाङ्क्षितम् ।
गुल्मोदावर्त्तशूलघ्नं दीपनं बलबर्द्धनम् ॥१४॥

रसोनरस ५ मि.ली. तथा मद्य १० मि.ली.—दोनों को मिलाकर प्रातःकाल पीने से अग्नि प्रदीप्त होती है, बल की वृद्धि होती है, साथ ही गुल्म, उदावर्त्त और शूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

१०. आगारधूमादि वर्त्ति (च.द.)

आगारधूमसिन्धूत्थतैलयुक्ताम्लमूलकम् ।
क्षुण्णं निर्गुण्डिपत्रं वा स्विन्ने पायौ क्षिपेद् बुधः ॥

(१) गृहधूम (अभाव में लकड़ी के कोयले का चूर्ण), सैन्धवलवण, तिलतैल और काञ्जीपात्र के तल में बैठी खट्टी मूली—चारों द्रव्य समभाग लेकर सिल पर पीसकर कनिष्ठा अंगुली जैसी वर्ति बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रह करें। (२) अथवा निर्गुण्डीपत्र को पीसकर कनिष्ठा अंगुली जैसी वर्त्ति बनाकर अच्छी तरह से सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। उदावर्त्त से पीड़ित व्यक्ति की गुदा को स्निग्ध कर स्वेदन करें तत्पश्चात् वर्ति को एरण्डतैल में डुबोकर गुदा में प्रवेश करावें। तत्पश्चात् अपान वायु के साथ पुरीष प्रवृत्ति होने से उदावर्त्त रोग नष्ट हो जाता है।

११. मूत्रोदावर्त्तघ्न योग (च.द.)

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ।
एलां वाऽप्यथ मद्येन क्षीरवारि पिबेच्च सः ॥१६॥
दुःस्पर्शास्वरसं वाऽपि कषायं ककुभस्य वा ।
एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् ॥
पञ्चमूलीशृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ॥१७॥

मूत्रोदावर्त्त की शान्ति हेतु ८ योग दिये गये हैं, जिससे अधिक मूत्र की प्रवृत्ति होती है। मूत्रवेगरोध जन्य उदावर्त्त में—

(१) २५ मि.ली. मद्य में ५ग्राम. कालानमक मिलाकर पीने से मूत्र की अधिक प्रवृत्ति होकर मूत्रोदावर्त्त नष्ट हो जाता है। (२) इसी प्रकार मद्य में एलाचूर्ण मिलाकर पिलाने से मूत्रोदावर्त्त रोग नष्ट होता है। (३) गोदुग्ध में समान भाग में ताजा जल मिलाकर पिलाने से मूत्रोदावर्त्त नष्ट हो जाता है। (४) जवासा स्वरस या क्वाथ पीने से मूत्रोदावर्त्त नष्ट हो जाता है। (५) अर्जुन त्वक् का क्वाथ पीने से मूत्रोदावर्त्त नष्ट हो जाता है। (६) ककड़ी के बीजों को जल से सिल पर पीसें और उसमें थोड़ा सैन्धवलवण मिलाकर पीने से मूत्रोदावर्त्त रोग नष्ट हो जाता है। (७) लघु पञ्चमूलक्वाथ को दूध में सिद्ध कर पीने से मूत्रोदावर्त्त रोग नष्ट हो जाता है। (८) अथवा द्राक्षा को पानी में क्वाथ कर पीने या अंगूरस्वरस पीने से मूत्रोदावर्त्त रोग नष्ट हो जाता है।

१२. मूत्रोदावर्त्तघ्न योग

यवक्षारं सितायुक्तं पिबेद्वा मृद्वीकारसैः ।
वरीकूष्माण्डयोस्तोयं सितायुक्तं पिबेदथ ॥१८॥

(१) द्राक्षारस या क्वाथ में यवक्षार एवं चीनी मिलाकर

पिलाने से मूत्ररोधजन्य उदावर्त्त रोग नष्ट हो जाता है। (२) शतावरीक्वाथ में चीनी मिलाकर पिलाने से मूत्रोदावर्त्त नष्ट होता है। (३) कूष्माण्डस्वरस में चीनी मिलाकर पिलाने से मूत्रोदावर्त्त नष्ट हो जाता है।

पलाश पुष्प प्रलेप

किंशुकानां प्रलेपो वा कवोष्णो मूत्ररोधहा।
अत्र सर्वं प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥१९॥

पलाशपुष्प को सिल पर जल से पीसकर उसे गरम कर सुखोष्ण बस्ति प्रदेश पर लेप करने से मूत्रावरोधजन्य उदावर्तरोग नष्ट हो जाता है। मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्राश्मरी रोगों की चिकित्सा करने से मूत्रावरोधजन्य उदावर्त में लाभ होता है।

पुरीषविघातजोदावर्त

विडविघातसमुत्थे तु विड्भेद्यन्नं तथौषधम्।
वर्त्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेदो बस्तिर्हितो मतः ॥२०॥

पुरीषवेगावरोधजन्य उदावर्त्त में मलप्रवर्तक अन्न एवं औषधियों का सेवन करना चाहिए। गुदवर्ति, मलप्रवर्तक स्नेहपान, स्नेहबस्ति, उष्णोदक से भरे पात्र में अवगाहन हितकर है।

१३. जृम्भाऽश्रुवेगरोधज उदावर्त्तघ्न योग (च.द.)

स्नेहस्वेदैरुदावर्त्तं जृम्भाजं समुपाचरेत्।
अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्वप्नो मद्यं प्रियाः कथाः ॥२१॥

जृम्भा (जम्हाई) के वेग को रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त रोग में स्नेहन-स्वेदन कर्म करना चाहिए। वेग को रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त में एकान्त में रोकर या लोगों के साथ बैठकर अश्रुपात करना चाहिए। इसमें शयन, मद्यपान या प्रियकथा सुननी चाहिए।

१४. छिक्कारोधज उदावर्त्त (च.द.)

क्षवजे क्षवपत्रेण घ्राणस्थेनानयेत्क्षवम्।
तथोर्ध्वजत्रुगोऽभ्यङ्गः स्वेदो धूमः सनावनः।
हितं वातघ्नमद्यं च घृतं चौत्तरभक्तिकम् ॥२२॥

छींक रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त रोग में नकछिकनी के पत्तों के चूर्ण को नस्य विधि से नाक में प्रवेश करने के बाद छींक आने से यह उदावर्त्त नष्ट हो जाता है। ऊर्ध्वजत्रु के ऊपर अभ्यङ्ग, स्वेदन, धूमपान, नस्य और वातप्रशमनार्थ मद्यपान करना चाहिए तथा घृतयुक्त भात का भोजन करना चाहिए।

१५. उद्गार-छर्दि-अवरोधज उदावर्त्त में (च.द.)

उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत्।
छर्द्याघातं यथादोषं नस्यस्नेहादिभिर्जयेत् ॥२३॥

डकार (उद्गार) रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त में यथाविधि स्नेहपान करना चाहिए। वमन रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त में यथादोष (दोषानुसार) नस्य एवं स्नेहन के द्वारा दोषों की चिकित्सा करनी चाहिए।

१६. छर्द्याघातज उदावर्त्त (च.द.)

भुक्त्वा प्रच्छर्दनं धूमो लङ्घनं रक्तमोक्षणम्।
रूक्षान्नपानं व्यायामो विरेकश्चात्र शस्यते ॥२४॥

वमन रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त में आकण्ठ भोजन कराकर वमन कराना, धूमपान, लंघन, रक्तमोक्षण, रूक्ष अन्नपान, व्यायाम एवं विरेचन लाभप्रद है।

१७. शुक्रवेगरोधज उदावर्त्त (च.द.)

बस्तिशुद्धिकरावापं चतुर्गुणजलं पयः।
आवारिनाशात्क्वथितं पीतवन्तं प्रकामतः ॥
रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्त्तिनं नरम् ॥२५॥

शुक्रवेगरोधजन्य उदावर्त्त में दूध में बस्तिशोधक तृणपञ्चमूलादि द्रव्यों के क्वाथ से पाक कर पिलाना चाहिए। दूध पीने के बाद मनोरम रमणियों के साथ सम्भोग कर शुक्रक्षरण करने से शुक्रोदावर्त्त नष्ट हो जाता है।

१८. शुक्रोदावर्त्त में पथ्य (च.द.)

अत्राभ्यङ्गावगाहाश्च मदिराश्चरणायुधाः।
शालिः पयो निरूहाश्च हितं मैथुनमेव च ॥२६॥

अभ्यङ्ग (सम्पूर्ण शरीर में तैल मालिश) करना चाहिए तदनन्तर वात-पित्त नाशक द्रव्यों के सुखोष्ण क्वाथ को बड़े टब में भरकर बैठना चाहिए। (नाभि पर्यन्त पानी में बैठकर) हाथों से शरीर का हल्का मर्दन करना चाहिए। ततः मद्यपान, मुर्गे का मांस रस, शालिचावल का भात, दुग्ध, निरूहादि बस्ति तथा मैथुन इस रोग में हितकर हैं।

१९. क्षुत्तृषाघातज उदावर्त्त में (च.द.)

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम्।
तृष्णाघाते पिबेन्मन्थ यवागूं वाऽपि शीतलाम् ॥२७॥

क्षुधा (भूख) रोकने से उत्पन्न उदावर्त्त में स्निग्ध, उष्ण एवं स्वल्प भोजन करना चाहिए। इसी तरह तृष्णा (प्यास) घात जन्य उदावर्त्त में मन्थ एवं शीतल यवागू का पान करना चाहिए।

२०. श्रमश्वास-निद्राघात उदावर्त्त में (च.द.)

रसेनाद्यात्सुविश्रान्तः श्रमश्वासातुरो नरः।
निद्राघाते पिबेत्क्षीरं स्वप्नः संवाहनानि च ॥२८॥

परिश्रम से थके हुए व्यक्ति के श्वास वेग को रोकने से उत्पन्न हुए उदावर्त्त में विश्राम करना चाहिए तथा मांसरस का भोजन करना चाहिए। निद्राघातजन्य उदावर्त्त में क्षीरपान, शयन तथा शरीर दबाना हितकर है।

२१. अधोवात निरोधज उदावर्त्त में (च.द.)

अधोवातनिरोधोत्थे ह्युदावर्ते हितं मतम्।
स्नेहपानं तथा स्वेदो वर्तिर्बस्तिर्हितो मतः ॥२९॥

अधोवायु (अपानवायु) निरोधज उदावर्त्त में स्नेहपान, फलवर्त्ति तथा बस्तिकर्म हितकर होता है।

आनाह चिकित्सा क्रम (च.द.)

उदावर्त्तक्रियाऽऽनाहे सामे लङ्घनपाचनम् ॥३०॥

सामान्यतया आनाह रोग में उदावर्त्त के समान ही चिकित्सा करनी चाहिए। किन्तु आमजन्य आनाह में लंघन कराकर पाचन औषधि से चिकित्सा करनी चाहिए।

२२. हिंग्वादि चूर्ण (चरक)

द्विरुत्तरा हिङ्गु वचा सकुष्ठा
सुवर्चिका चेति विडञ्च चूर्णम्।
सुखाम्बुनाऽऽनाहविसूचिकार्त्ति-
हृद्रोगगुल्मोर्ध्वसमीरणघ्नम् ॥३१॥

१. घृतभृष्टहींग १ भाग, २. वचचूर्ण २ भाग, ३. कूठचूर्ण ४ भाग, ४. सर्जिक्षार ८ भाग तथा ५. विडलवण १६ भाग लें। इन चूर्णों को मिलाकर पुनः छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ से ६ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से पीने के बाद आनाह, विसूचिका, हृद्रोग, गुल्म, उद्गाररोग नष्ट हो जाते हैं।

२३. वचादि चूर्ण (च.द.)

वचाऽभयाचित्रकयावशूकान्
सपिप्पलीकातिविषान् सकुष्ठान्।
उष्णाम्बुनाऽऽनाहविमूढवातान्
पीत्वा जयेदाशु हितौदनाशी ॥३२॥

१. वचचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. चित्रकमूलचूर्ण, ४. यवक्षार, ५. पीपरचूर्ण, ६. अतीसचूर्ण और ७. कूठचूर्ण—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें अच्छी तरह मिलाकर पुनः छननी से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वचादिचूर्ण को ३ से ६ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से लेने पर आनाह और विमूढ वात (वातस्तब्धता) शीघ्र नष्ट हो जाता है।

२४. त्रिवृतादि वटी (च.द.)

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भावयेत्।
वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठाश्चानाहभेदिकाः ॥३३॥

निशोथचूर्ण, हरीतकीचूर्ण तथा काला निशोथचूर्ण समभाग लेकर एक खरल में रखें और स्नुहीक्षीर की भावना दें। सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को १ से २ ग्राम देकर ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की वटी बनाकर ४-४ वटी लेने पर आनाह रोग नष्ट हो जाता है।

२५. पञ्चलवण चूर्ण (च.द.)

फलं च मूलं च विरेचनोक्तं
हिङ्ग्वर्कमूलं दशमूलमग्र्यम्।
स्नुक्चित्रकौ चैव पुनर्नवा च
तुल्यानि सर्वैर्लवणानि पञ्च ॥३४॥
स्नेहैः समूत्रैः सह जर्जराणि
शरावसन्धौ विपचेत्सुलिप्ते।
पक्वं सुपिष्टं लवणं तदन्नैः
पानैस्तथाऽऽनाहरुजाघ्नमग्र्यम् ॥३५॥

विरेचनाधिकार में कथित १. फलमूल, २. घृतभृष्टहींग, ३. अर्कमूल, ४. बिल्वमूल, ५. अग्निमन्थमूल, ६. सोनापाठामूल ७. पाढलमूल, ८. गम्भारमूल, ९. शालपर्णी, १०. पृश्निपर्णी, ११. बृहतीमूल, १२. कण्टकारी, १३. गोक्षुर, १४. स्नुहीमूल १५. चित्रकमूल तथा १६. पुनर्नवामूल—ये सभी द्रव्य १-१ भाग लें और चूर्ण करें; १७. सैन्धवलवण, १८. सामुद्रलवण, १९. सौवर्चललवण, २०. विड्लवण तथा २१. औद्भिद्लवण—ये पाँचों नमक उपर्युक्त सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर लें। सर्वप्रथम काष्ठौषधों का चूर्ण करें तथा लवणचूर्ण के साथ मिलाकर घृत की एक भावना दें। ततः गोमूत्र की १ भावना दें और गोला बनाकर सुखा लें। शरावसम्पुट कर कपड़मिट्टी से सन्धि-बन्धन कर वाराहपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने सम्पुट निकालें और खोलकर उसे खरल में पीसकर काचपात्र में संग्रह करें। इस पञ्चलवणचूर्ण को खाद्य एवं पेय पदार्थों के साथ मिलाकर सेवन करने से आनाह रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है।

२६. राठादि वर्त्ति (च.द.)

राठधूमविडव्योषगुडमूत्रैर्विपाचिता ।
गुदेऽङ्गुष्ठसमा वर्त्तिर्विधेयाऽऽनाहशूलनुत् ॥३६॥

१. मदनफलबीज, २. गृहधूम (अभाव में लकड़ी कोयला चूर्ण), ३. विड्लवण, ४. सोंठ, ५. पीपर, ६. मरिच और ७. गुड़—समभाग लें तथा गोमूत्र इन सभी से चार गुना लें। उपर्युक्त ६ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें तथा एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में उपर्युक्त चूर्ण-गुड़ एवं गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब गोमूत्र सूख जाय तो सिल पर खूब महीन पीसकर अंगूठे के प्रमाण में वर्त्ति बनाकर सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। एरण्डतैल या घृताभ्यक्त कर आनाह एवं शूल से पीड़ित रोगी की गुदा में इस वर्त्ति का प्रवेश कराने से आनाह तथा शूल रोग नष्ट हो जाता है।

२७. त्रिकट्वादि वर्त्ति (च.द.)

वर्त्तिस्त्रिकटुसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः ।
मधुनि गुडे वा पक्त्वा पाय्वीरिता चाङ्गुष्ठपरिमाणा ॥
वर्त्तिरियं दृष्टफला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता ।
आनाहोदावर्त्तप्रशमनकृज्जठरगुल्मविनाशिनी ॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. सैन्धवलवण, ५. सरसों, ६. गृहधूम, ७. कूठ, ८. मदनफलबीज, ९. मधु या गुड़—प्रत्येक समभाग लें। उपर्युक्त आठों द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण कर मधु या गुड़ के गाढ़े घोल में पकाकर घन करें जब यह सूख कर गाढ़ा हो जाय तो अंगूठे के प्रमाण जितनी बड़ी वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रह करें। आनाह या उदावर्त्त शान्त्यर्थ रोगी की गुदा एवं वर्त्ति को घृताभ्यक्त कर धीरे-धीरे गुदा में इस वर्त्ति को पूर्ण प्रवेश कर दें। यह वर्त्ति सद्यः दृष्ट फला है। वायु एवं पुरीष प्रवृत्ति के बाद रोगी स्वस्थ हो जाता है। इससे उदर रोग एवं गुल्म रोग भी शान्त हो जाते हैं।

२८. नाराचरस (रसकामधेनुः)

सूतगन्धकतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् ।
टङ्गणं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत् ॥३९॥
सर्वतुल्यानि बीजानि दन्तीनां निस्तुषाणि च ।
स्नुहीक्षीरेण संयुक्तं मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥४०॥
नारिकेलोदरे स्थाप्यं महागाढाग्निना ततः ।
तत्कालं पाचयेत् क्षिप्रं खल्लयित्वा निधापयेत् ॥४१॥
तन्मध्यनाभिलेपेन राजयोग्यं विरेचनम् ।
वटिका लेपमात्रेण दशवारं विरेचयेत् ॥
तद्गन्धघ्राणमात्रेण विरेको जायते ध्रुवम् ॥४२॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. मरिचचूर्ण १ भाग, ४. शुद्ध सुहागा २ भाग, ५. पीपरचूर्ण २ भाग, ६. सोंठचूर्ण २ भाग, ७. शुद्ध जयपाल ९ भाग और स्नुही क्षीर यथावश्यक लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः उसी खरल में सभी चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें और स्नुहीक्षीर की भावना देकर ३ दिनों तक मर्दन करें। ततः पानीदार नारियल का छिलका हटाकर खोपड़ीयुक्त नारियल में छेद करें और उस छिद्र से उक्त भावित सारी औषधियाँ डालकर ऊपर से मिट्टी का लेप कर गजपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर नारियल तोड़कर औषधि निकाल लें और खरल में पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को १ ग्राम की मात्रा में लें और पानी में घोलकर आनाहउदावर्त्त से पीड़ित रोगी की नाभि पर लेप करने से १० बार विरेचन होकर वह रोगमुक्त हो जाता है। रोगी को इन औषधियों का नस्य देने से बिरेचन होकर रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—लेपनार्थ १ से २ ग्राम। नस्यार्थ १२५ मि.ग्रा.। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कालाचूर्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—विरेचनार्थ।

२९. वैद्यनाथवटी (र.सा.सं.)

पथ्या त्रिकटु सूतं च द्विगुणं कानकं तथा ।
भेकपर्णीरसैरम्लैर्लोणिकाया रसैः कृता ॥४३॥
गुडिकोदरगुल्मादिपाण्ड्वामयविनाशिनी ।
कृमिकुष्ठगात्रकण्डूपिडकांश्च निहन्ति हि ॥
गुडी सिद्धफला चेयं वैद्यनाथेन भाषिता ॥४४॥

१. हरीतकीचूर्ण १ भाग, २. सोंठचूर्ण १ भाग, ३. मरिचचूर्ण १ भाग, ४. पीपरचूर्ण १ भाग, ५. रससिन्दूर १ भाग और ६. शुद्ध जयपालबीज २ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर को खरल करें। बाद में शेष सभी द्रव्यों को मिलाकर मण्डूकपर्णीस्वरस की भावना दें। ततः चाङ्गेरीस्वरस की १ भावना दें। तदुपरान्त लोणीशाकस्वरस की १ भावना देकर १२५ मि.ग्रा. (१ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस गुटिका का किसी वैद्यनाथ नामक आचार्य ने निर्माण किया था। इसके सेवन से उदररोग, गुल्म, पाण्डु, कृमि, कुष्ठ, कण्डू, पिडिका आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह गुडिका सिद्धफला है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—अम्लीय। **उपयोग**—उदर आनाह, उदावर्त्त, गुल्म एवं कृमि रोग में।

३०. इच्छाभेदी रस (र.सा.सं.)

शुद्धं पारदटङ्गणं समरिचं गन्धाश्मतुल्यं त्रिवृद्-
विश्वा च द्विगुणा ततो नवगुणं जैपालचूर्णं क्षिपेद् ।
खल्ले दण्डयुगं विमर्द्य विधिना चार्कस्य पत्रे ततः
स्वेदं गोमयवह्निना च मृदुना स्वेच्छावशाद् भेदकः ॥
गुञ्जैकप्रमितो रसो हिमजलैः संसेवितो रेचयेद्-
यावन्नोष्णजलं पिबेदपि वरं पथ्यं च दध्योदनम् ।
आमं सर्वभवं सुजीर्णमुदरं गल्मं विशालं हरेद्-
वह्नेर्दीप्तिकरो बलासहरणः सर्वामयध्वंसनः ॥४६॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध सुहागा १ भाग, ३. मरिचचूर्ण १ भाग, ४. शुद्ध गन्धक १ भाग, ५. त्रिवृच्चूर्ण २ भाग, ६. सोंठचूर्ण २ भाग तथा ७. शुद्ध जयपाल ९ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बना लें। ततः अन्य सभी द्रव्यों के चूर्णों को मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। इसके बाद अर्कपत्रस्वरस की १ भावना देकर १ बड़ा-सा गोला बना लें। गोला सूखने पर शरावसम्पुट में बन्दकर लघु पुट (कपोत) में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर

१. मन्युमणी इति पाठभेदः अर्थसाम्यमिति ।

औषधि को निकाल लें और खरल में मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस इच्छाभेदी रस को १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में शीतल जल से सेवन करने से यह प्रचुर मात्रा में रेचन कराता है। अधिक विरेचन रोकने के लिए गरम जल पिलाना चाहिए। सम्यग् विवेचन होने पर दही-भात का पथ्य खिलाना चाहिए। यह रस सभी प्रकार के आम विकार, अजीर्ण उदररोग तथा गुल्म नाशक है। यह अग्निदीपक एवं कफनाशक है तथा सभी रोगों को नष्ट करता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्यावर्वर्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—उदररोग, उदावर्त्त, आनाह एवं गुल्म।

३१. उदयमार्त्तण्डरस (यो.र.)

हिङ्गूलं जयपालटङ्कणविषाण्यन्त्यार्धभागोत्तरं
हिङ्गुलं क्रमशो विशोध्य मतिमानन्यत्तथा शुद्धिमत्।
सर्वं खल्वतले विमर्द्य मतिमान् गुञ्जाद्वयं दापयेद्
मार्त्तण्डोदयको ज्वरादिसहिते यः सोदराध्मानके॥
पाण्ड्वाजीर्णगदेऽनुपानवशतः पथ्यं च तक्रौदनं
व्योषेणार्द्ररसेन तत्र सितया युक्तो ज्वरे दारुणे।
मान्द्ये गुल्मकफानले च पवने शूले च शोफोदरे
वातास्रस्वरवर्णकुष्ठगुदजान् रोगानशेषाञ्जयेत्॥४८॥

१. शुद्ध हिङ्गुल ४० ग्राम, २. शुद्ध जयपाल २० ग्राम, ३. शुद्ध सुहागा १० ग्राम तथा ४. शुद्ध विषचूर्ण ५ ग्राम लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मर्दन करें तथा जल की भावना देकर २५० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'उदयमार्त्तण्ड रस' की २ रत्ती की मात्रा में अनुपान विशेष के द्वारा ज्वर, उदररोग, आध्मान, पाण्डु एवं अजीर्णरोग में देना चाहिए। भयंकर ज्वर में आर्द्रक स्वरस तथा त्रिकटुक्वाथ में चीनी मिलाकर इस औषधि का सेवन कराना चाहिए। इससे अग्निमान्द्य, गुल्म, कफ-वात जन्य रोग, वातजरोग, शूल, शोथ, उदररोग, वातरक्त, स्वरभङ्ग, वर्ण-विकार, कुष्ठ, अर्श एवं भगन्दर नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताजा पानी, आर्द्रक स्वरस, त्रिकटुक्वाथ से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—लाल। **स्वाद**—निःस्वाद। **उपयोग**—आनाह, गुल्म, शूल, आध्मान एवं ज्वर में।

३२. शुष्क मूलाद्य घृत (च. द.)

मूलकं शुष्कमार्द्रञ्च वर्षाभूमूलपञ्चकम्।
आरेवतफलञ्चापि पिष्ट्वा तेन पचेद् घृतम्।
तत्पीतमानं शमयेदुदावर्त्तमसंशयम्॥४९॥

१. सूखी मूली, २. सोंठ, ३. पुनर्नवामूल, ४. बृहती, ५. कण्टकारी, ६. शालपर्णी, ७. पृश्निपर्णी, ८. गोक्षुर तथा ९. अमलतासफलमज्जा—प्रत्येक २५-२५ ग्राम और १०. गोघृत १ किलो लें। उपर्युक्त सभी ९ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। तत्पश्चात् घृत का मूर्च्छन करें और उस मूर्च्छितघृत में कल्क मिलाकर पाक करें। कल्क पाकार्थ ४ लीटर जल मिलाकर पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो पाक के परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर घृत को कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। गरम दूध या गरम जल से ६ से १२ ग्राम की मात्रा में इस घी का पान कराने से उदावर्त्त निश्चित रूप से शान्त हो जाता है।

मात्रा— ६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—आध्मान में।

३३. स्थिराद्य घृत (च.द.)

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः
सम्पाकपूतीककरञ्जयोश्च ।
सिद्धः कषायो द्विपलांशिकानां
प्रस्थो घृतात्स्यात्प्रतिरुद्धवाते॥५०॥

१. शालपर्णी, २. पृश्निपर्णी, ३. बृहती, ४. कण्टकारी, ५. गोक्षुर, ६. पुनर्नवा, ६. अमलतासफलमज्जा तथा ८. पूतिकरञ्ज —प्रत्येक द्रव्य ९३-९३ ग्राम एवं ९. गोघृत ७५० ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त ८ द्रव्यों का यवकुट करें और १६ गुना (१२ लीटर) जल में क्वाथ करें। चौथाई (३ लीटर) शेष रहने पर छानकर मूर्च्छित घृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। गरम गोदुग्ध से ६ से १२ ग्राम की मात्रा में सेवन करने से उदावर्त्त और आनाह रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—उदावर्त्त और आनाह में।

उदावर्त्त में पथ्य

स्नेहस्वेदविरेकाश्च बस्तयः फलवर्त्तयः।
अभ्यङ्गश्च यवाः सर्वं सृष्टविण्मूत्रमारुतम्॥५१॥
ग्राम्यौदकानूपरसा रुवुतैलं च वारुणी।
बालमूलकसम्पाकत्रिवृत्तिलसुधादलम् ॥५२॥
शृङ्गबेरं मातुलुङ्गं यवक्षारो हरीतकी।
लवङ्गं रामठं द्राक्षा गोमूत्रं लवणानि च॥
इति पथ्यमुदावर्त्ते नृणामुक्तं महर्षिभिः॥५३॥

उदावर्त्त रोग में स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, बस्ति, फलवर्त्ति,

अभ्यङ्ग, यव का उपयोग, वायु-मूत्र-पुरीष का सम्यक्तया निःसरण करना, ग्रामीण एवं जलीय पशु-पक्षियों के मांस रस का सेवन, एरण्डतैल पान, वारुणी (मद्य का एक प्रकार), मुलायम छोटीमूली, अमलतास, त्रिवृत, तिल, सेहुण्डपत्र तैल, आर्द्रक, बिजौरानींबु, यवक्षार, हरीतकी, लौंग, हींग, द्राक्षा, गोमूत्र, पाँचों लवण इनका उपयोग उदावर्त्त रोग में हितकर है।

उदावर्त्त में अपथ्य

वमनं वेगरोधं च शमीधान्यानि कोद्रवम्।
नालितशाकं शालूकं जाम्बवं कर्कटीफलम्॥
पिण्याकमालुकं सर्वं करीरं पिष्टवैकृतम्॥५४॥
विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च।
उदावर्ते प्रयत्नेन वर्जयेन्मतिमान्नरः॥५५॥

उदावर्त्त रोगी को वमन, मूत्र, पुरीष, शुक्र, जृम्भा आदि वेगों को नहीं रोकना चाहिए। शमी तथा कोदो चावल, नालीत शाक (वङ्गदेशीय), कुमुदमूल, जामुन, ककड़ीफल, तिल, पिण्याक (खली), आलू, करीर, उड़द, मूंग आदि का पिठ्ठी, विष्टम्भकारक पदार्थ, विरुद्ध भोजन, कषाय रस एवं गुरु पदार्थ उदावर्त्त रोगी के लिए अपथ्यकर है।

आनाह में पथ्य

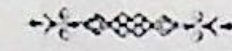
उदावर्त्ते हितं सर्वं पाचनं लङ्घनं तथा।
आनाहेऽपि यथायोग्यं सेवयेन्मतिमान्नरः॥५६॥

उदावर्त्त रोग में कहे गये पथ्य आनाह में भी हितकर है। वहाँ पर कही गयी आमदोष पाचनार्थ औषधियाँ तथा लंघन हितकर है। अतः आनाह में भी उदावर्त्त के पथ्यौषधियों का सेवन हितकर है।

आनाह में अपथ्य

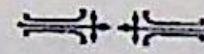
अपथ्यानि प्रदिष्टानि यान्युदावर्तिनां पुरा।
आनाहार्त्तः परिहरेत् तानि सर्वाणि यत्नतः॥५७॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदावर्तानाहाधिकारः।



पहले उदावर्त्त प्रकरण में जो वस्तुएँ अपथ्य कही गई हैं उन सभी द्रव्यों को आनाह रोग से पीड़ित व्यक्ति निश्चित रूप से छोड़ दें।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य उदावर्तानाहाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ गुल्मरोगाधिकारः (३२)

गुल्म में क्रियाकल्प (च.द.)

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम्।
बृंहणं यद्भवेत्सर्वं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥१॥

लंघन या लधु भोजन, दीपन, स्निग्ध, उष्ण, वातानुलोमक तथा बृंहण (वीर्यवर्धक) पदार्थों का सेवन सभी गुल्मों में हितकर है।

अन्यच्च

सिद्धमेकादशविधं शृणु मे गुल्मभेषजम्।
स्नेहनं स्वेदनं चैव निरूहमनुवासनम् ॥२॥
विरेकवमने चोभे लङ्घनं बृंहणं तथा।
शमनञ्चावसेकञ्च शोणितस्याग्निकर्म च।
कारयेदिति गुल्मानां यथारम्भं चिकित्सितम् ॥३॥

१. स्नेहन, २. स्वेदन, ३. निरूहबस्ति, ४. अनुवासन बस्ति, ५. विरेचन, ६. वमन, ७. लंघन, ८. बृंहण, ९. शमन, १०. रक्तमोक्षण तथा ११. अग्निकर्म—इस प्रकार ११ तरह के कर्मों द्वारा दोषों की कल्पना और रोगों के बलाबल का विचार कर गुल्मरोग की चिकित्सा प्रारम्भ करें।

गुल्मरोग में वातशान्ति की प्रधानता

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः
सर्वशो विधिवदाचरितव्या।
मारुते ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णं
दोषमल्पमपिकर्मनिहन्यात् ॥४॥

गुल्म रोगियों में सर्वप्रथम वातशामक चिकित्सा करनी चाहिए। क्योंकि वायु के प्रकृतिस्थ हो जाने पर (वायु को जीत लेने पर) सामान्य प्रयास से ही अन्य प्रवृद्ध हुए दोष शान्त हो जाते हैं।

गुल्म में स्वेदन (च.द.)

स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये ॥५॥

स्निग्धभोजन, स्नेहाभ्यङ्ग, स्नेहपान, स्नेहबस्ति आदि क्रियाओं द्वारा स्निग्ध हुए गुल्म रोगी के गुल्म की शान्ति के लिए स्वेदन कर्म करना चाहिए।

स्वेदन के गुण (च.द.)

स्त्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम्।
भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ॥६॥

सम्यक् स्निग्ध गुल्मरोगियों का स्वेदन करने से स्रोतसों की मृदुता, प्रकुपित वात का शमन, रूक्षता के कारण रोगियों में जो विबन्ध होता है वह स्निग्ध-स्विन्न होने के कारण नष्ट हो जाता है। अर्थात् आन्त्र में संचित मल निकल जाता है और गुल्म नष्ट हो जाता है।

गुल्म में उपयोगी स्वेदन (च.द.)

कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदान् कारयेत् कुशलो भिषक्।
उपानाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥७॥

वातघ्न औषधों के क्वाथ को घड़े में भरकर उसकी वाष्प से स्वेदन करना कुम्भस्वेद है। उड़द, यव आदि की गरम पिष्टि तथा क्षीरपाक आदि की वस्त्र पोटली से गुल्म प्रदेश में स्वेदन करना। ईंटे को गरम कर उससे सेंकना तथा उस पर वातघ्न क्वाथ डालने से जो वाष्प निकलती है उससे स्वेदन करना तथा वातहर द्रव्यों को कूट-पीसकर चूर्ण करें, ततः उसमें जल और घृत डालकर आग पर पकावें और गुल्म प्रदेश पर गरम-गरम उपनाह (लेप) करने से एवं साल्वण स्वेद से स्वेदन करना गुल्म में हितकर होता है।

गुल्म में रक्तमोक्षण (च.द.)

स्थानावसेको रक्तस्य बाहुमध्ये शिराव्यधः।
स्वेदोऽनुलोमनञ्चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥८॥

गुल्म प्रदेश में जोंक लगाकर रक्तमोक्षण करना, किसी तीक्ष्ण शस्त्र से प्रच्छन्न (पाछ) करना, अथवा शृङ्गी विधि से रक्त-मोक्षण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त बाहु के बीच की सिराओं को वेध कर अशुद्ध रक्त निकाल लेना चाहिए। रक्तमोक्षण के बाद गुल्म प्रदेश में स्वेदन तथा वातानुलोमक द्रव्यों से चिकित्सा (लेपादि) करनी चाहिए।

गुल्म रोगियों में पथ्य (च.द.)

पेया वातहरैः सिद्धा कौलत्था धान्वजा रसाः।
खडाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ॥९॥

वातघ्न दशमूलादि द्रव्यों के क्वाथ से सिद्ध पेया, कुलत्थ का यूष, जंगली पशु-पक्षिओं के मांसरस बृहत्पञ्चमूलादि से सिद्ध खडादियूष वातज गुल्मियों के लिए हितकर है।

१. मातुलुङ्गादि योग (च.द.)

मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवम्।
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥१०॥

वातज गुल्म की पीड़ा-शान्ति के लिए मद्य १०० मि.ली.। मातुलुङ्ग (बिजौरानिम्बु) रस, शुद्ध हींग, अनाररस, विडलवण और सैन्धवलवण—प्रत्येक १-१ ग्राम मिलाकर पिलाना चाहिए।

२. नागरादि योग　　(च.द.)

नागरार्धपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च।
तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत्॥
वातगुल्ममुदावर्त्तं योनिशूलञ्च नाशयेत्॥११॥

सोंठ २३ ग्राम, छिलकारहित तिल ९३ ग्राम तथा गुड़ ४६ ग्राम—इन्हें कूट लें और गुड़ के साथ मिलाकर गरम दूध के साथ खाने से वातज गुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल नष्ट हो जाता है।

३. एरण्डतैल प्रयोग　　(च.द.)

पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम्।
तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नरः॥१२॥

एरण्डतैल २५ मि.ली., वारुणीमद्य मण्ड ५० मि.ली. को साथ मिलाकर पीने से वातज गुल्म नष्ट हो जाता है। अथवा एरण्डतैल १५ से २५ मि.ली. और गाय का गरम दूध २०० मि.ली. को साथ मिलाकर पीने से वातज गुल्म नष्ट हो जाता है।

४. लशुन क्षीर　　(चरक)

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुष्पलम्।
क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषञ्च पाययेत्॥१३॥
वातगुल्ममुदावर्त्तं गृध्रसीं विषमज्वरम्।
हृद्रोगं विद्रधिं शोथं नाशयत्यासु तत्पयः॥
एवन्तु साधिते क्षीरे स्तोकमेवात्र दीयते॥१४॥

निस्तुष लशुन १८७ ग्राम, दूध ७५० मि.ली. तथा जल ७५० मि.ली.। सर्वप्रथम लशुन को सिल पर पीसें तथा स्टेनलेस स्टील के पात्र में दूध, जल और लशुन कल्क तीनों मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब जल सूख जाय तो चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और थोड़ा-थोड़ा गरम सुपक्व दूध गुल्म रोगी को पिलावें। गुल्म के अतिरिक्त उदावर्त्त, गृध्रसी, विषमज्वर, हृद्रोग, विद्रधि, शोथ को भी यह सुपक्व दूध नष्ट करता है। यह लशुन साधित गरम दूध धीरे-धीरे १०० मि.ली. तक एक साथ पिलाना चाहिए।

५. सर्जिकाकुष्ठ तथा केतकीक्षार योगद्वय　　(च.द.)

सर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिजोऽपि वा।
तैलेन पीतः शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम्॥१५॥

(१) सर्जिकाक्षार ५०० मि.ग्रा., कुष्ठचूर्ण ५०० मि.ग्रा. और एरण्डतैल २५ मि.ली. एक साथ मिलाकर पिलाने से वातजगुल्म नष्ट हो जाता है।

(२) केवड़े की छाल से निर्मित क्षार ५०० मि.ग्रा. और एरण्डतैल २५ मि.ली. को एक साथ मिलाकर पिलाने से वातज गुल्म नष्ट हो जाता है।

आवस्थिकी क्रियासूत्र　　(च.द)

वातगुल्मे कफे वृद्धे वान्तिश्चूर्णादि चेष्यते।
पित्ते विरेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोक्षणम्॥१६॥

वातज गुल्म की चिकित्सा में यदि कफ का प्रकोप हो तो कफनाशक वामक चूर्णों का प्रयोग करना हितकर है। पित्त प्रकोप में विरेचन कराना तथा रक्तप्रकोप में रक्तमोक्षण कराना लाभकर होता है।

हेतुसहित पित्तज़ गुल्म की चिकित्सा　　(च.द.)

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम्।
रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम्॥१७॥

स्निग्ध और उष्ण पदार्थों के अधिक सेवन से उत्पन्न पैत्तिक गुल्म में त्रिवृत् एवं आरग्वधादि औषधों के चूर्ण या क्वाथ से स्रंसन (रेचन) हितकर होता है तथा रूक्ष और उष्ण पदार्थों के अतिसेवन से उत्पन्न पैत्तिक गुल्म में घृतपान परम लाभप्रद है।

पित्तजगुल्म में स्नेहन की विशेषता　　(वङ्गसेन)

काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम्।
स्नेहितं स्रंसयेत्पश्चाद्योजयेद्बस्तिकर्मणा॥१८॥

पित्तजगुल्मी को सर्वप्रथम काकोल्यादिगण द्वारा सिद्ध घृत, महातिक्तघृत तथा वासादिघृत का पान कराकर, स्निग्ध करावें। तदनन्तर (पित्तजगुल्मी को) विरेचन कराना चाहिए। ततः बस्तिकर्म कराना चाहिए।

६. कम्पिल्लक प्रयोग

स्निग्धोष्णजे पित्तगुल्मे काम्पिल्लं मधुना लिहेत्।
रेचनार्थी रसं वाऽपि द्राक्षायाः सगुडं पिबेत्॥१९॥

स्निग्ध और उष्ण पदार्थों के अतिसेवन से उत्पन्न पित्तज गुल्म में विरेचन के इच्छुक रोगी को शुद्ध कम्पल्लिकचूर्ण ३ से ५ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ चटावें। अथवा द्राक्षारस या क्वाथ १०० मि.ली. तथा गुड़ १५ ग्राम मिलाकर पिलाना चाहिए।

७. त्रिवृच्चूर्ण कम्पिल्लक चूर्ण　　(यो.र.)

पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाऽम्बुना।
विरेचनार्थं ससितं काम्पिलं च समाक्षिकम्॥२०॥

पित्तज गुल्म की शान्ति के लिए त्रिवृच्चूर्ण ५ ग्राम और त्रिफलाक्वाथ १०० मि.ली. मिलाकर पिलाना चाहिए। अथवा कम्पिल्लकचूर्ण ३ से ५ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर विरेचनार्थ चटाना चाहिए।

८. द्राक्षादि तथा त्रिफलायोग (यो.र.)

द्राक्षाऽभयारसं गुल्मे पैत्तिके सगुडं पिबेत्।
सशर्करं वा विलिहेत्त्रिफलाचूर्णमुत्तम्॥२१॥

पित्तज गुल्म की शान्ति के लिए हरीतकी क्वाथ ५० मि.ली. तथा गुड़ १२ ग्राम मिलाकर पिलाना चाहिए। अथवा त्रिफलाचूर्ण ५ ग्राम, चीनी ५ ग्राम और मधु ५ ग्राम मिलाकर चटाना चाहिए।

९. द्राक्षादि पानक (अ.हृ.)

द्राक्षां पयस्यां मधुकं चन्दनं पद्मकं मधु।
पिबेत्तण्डुलतोयेन पित्तगुल्मोपशान्तये॥२२॥

पित्तज गुल्म की शान्ति के लिए तण्डुलोदक २०० मि.ली., द्राक्षा, विदारीकन्दचूर्ण, मुलेठीचूर्ण, श्वेतचन्दनचूर्ण, पद्मकाष्ठ-चूर्ण तथा मधु—प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम लें। इन्हें तण्डु-लोदक मिलाकर रात्रि पर्यन्त भींगने दें। प्रातः हाथ से मसलकर वस्त्रपूत कर पियें। आवश्यकतानुसार इसमें चीनी भी मिलायी जा सकती है।

१०. आमलकी क्वाथ

आमलकीकषायः स्यात्ससितः पित्तगुल्मनुत्॥२३॥

आमला का क्वाथ ५० मि.ली., चीनी १० ग्राम मिलाकर पिलाने से पित्तज गुल्म नष्ट हो जाता है।

विदह्यमान गुल्म में उपनाह (च.द.)

दाहशूलानिलक्षोभस्वप्ननाशारुचिज्वरैः।
विदह्यमानं जानीयाद् गुल्मं तदुपनाहयेत्॥२४॥

दाह-शूल, वातक्षोभ, स्वप्ननाश, अरुचि और ज्वरादि लक्षणों के उत्पन्न होने पर गुल्म विदह्यमान (पच्यमान) अवस्था में परिवर्तित हो गया, ऐसा जानकर गुल्म प्रदेश पर उपनाह (पुल्टिश) बाँधना चाहिए।

पक्वगुल्म की चिकित्सा (च.द.)

पक्वे तु व्रणवत् कार्यं व्यधशोधनरोपणम्।
स्वयमूर्ध्वमधो वाऽपि स चेद्दोषः प्रवर्त्तते॥२५॥
द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्नन्यानुपद्रवान्।
परन्तु शोधनं सर्पिः शुद्धे समधु तिक्तकम्॥२६॥

उपनाहादि से गुल्म के पक जाने पर उस गुल्म को व्यध (चीरा) लगाकर उसके अन्दर से पूय-रक्तादि दूषित पदार्थ निकाल देना चाहिए। ततः कृमिनाशक निम्बादिक्वाथ से प्रक्षालन करके व्रण शोधन-रोपण औषधों का प्रयोग कर पट्टी बाँधकर उसकी रक्षा करनी चाहिए। यदि दोषाधिक्य के कारण पूय स्वयं ऊर्ध्व या अधोभाग से निकलना शुरु हो जाय तो अन्य उपद्रवों से रोगी की रक्षा करते हुए १२ दिन तक शस्त्रक्रिया नहीं करनी चाहिए।

श्लेष्मज गुल्म की चिकित्सा (यो.र.)

स्नेहोपनाहनस्वेदैस्तीक्ष्णस्रंसनबस्तिभिः।
योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लैष्मगुल्ममुपाचरेत्॥२७॥

कफज गुल्म की चिकित्सा में वातज गुल्महर एवं कफजगुल्म हर औषधों को मिलाकर प्रयोग करना चाहिए तथा स्नेह, उपनाह, स्वेदन और तीक्ष्ण स्रंसन बस्ति का प्रयोग भी हितावह है।

कफज गुल्म में घृतपान (च.द.)

लङ्घनोल्लेखने स्वेदे कृतेऽग्नौ सम्बुभुक्षिते।
घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिना॥२८॥

लंघन, वमन (उल्लेख) एवं स्वेदन कर्म के बाद पाचकाग्नि के प्रदीप्त हो जाने पर कफ गुल्मी को क्षार-कटु औषधों से युक्त गोघृत का पान कराना चाहिए।

वमनार्ह गुल्मियों के लक्षण (च.द.)

मन्दोऽग्निर्वेदना मन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता।
सोत्क्लेशताऽरुचिर्यस्य स गुल्मी वमनोपगः॥२९॥

जिसकी अग्नि मन्द हो, उदर में वेदना भी मन्द-मन्द हो, कोष्ठ भारी एवं जकड़ा हुआ हो, उत्क्लेश तथा अरुचि हो ऐसे गुल्मी को वमन की औषधियों (मदनफलबीजादि) का चूर्ण देकर वमन कराना चाहिए।

कफज गुल्मियों के विशेषोपचार (च.द.)

मन्देऽग्नावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्।
गुडिकाचूर्णनिर्यूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मिनाम्॥३०॥

अग्नि के मन्द होने से, वायु के रुक जाने पर आमाशय को स्निग्ध जान कर (या रूक्ष हो तो स्नेहन करने के बाद) ऊपर कहे हुए गुटिका, चूर्ण, क्वाथादि का प्रयोग कफज गुल्मियों के लिए प्रयोग करें।

११. पिप्पल्यादि चूर्ण (च.द.)

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसैन्धवम्।
युक्ता पीता सुरा हन्ति गुल्ममाशु सुदुस्तरम्॥३१॥

१. पीपर, २. पिपरामूल, ३. चित्रकमूल, ४. श्वेतजीरा और ५. सैन्धवलवण—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें महीन चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ से ५ ग्राम की मात्रा में मद्य १०० मि.ली. के साथ सेवन करने से भयंकर गुल्म नष्ट हो जाता है।

१२. वचादि क्वाथ

वचा विश्वौषधं पिप्पल्यूषणं च यवानिका।
नक्तमेषां कृतः क्वाथः कोष्णः पेयः समाक्षिकः।
कथितं भिषजां वन्द्यः कफगुल्मस्य पाचनम्॥३२॥

१. वच, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. अजवायन तथा ६. हल्दी—समभाग लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में रख लें। ततः इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें तथा सुखोष्ण होने पर इस क्वाथ में १० से २० ग्राम मधु मिलाकर गरम-गरम क्वाथ पीने से कफज गुल्म का पाचन हो जाता है। ऐसा श्रेष्ठ वैद्यों का अभिप्राय है।

१३. त्रिफलादि चूर्ण

सुरया वा वराक्वाथे नव पीता विशेषतः।
त्रिफला चविका व्योषं कट्फलं वटवल्कलम् ॥३३॥
एषां चूर्णं समांशानां तूर्णां पूर्णं सुखप्रदम्।
श्लेष्मगुल्मामयार्त्तानां मतं सद्भिषजां परम् ॥३४॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. चव्य, ५. सोंठ, ६. पीपर, ७. मरिच, ८. कायफल तथा ९. वटत्वक्—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में गुल्म रोगियों को मद्य १०० मि.ली. के साथ या त्रिफलाक्वाथ के साथ पिलाने से सद्यः लाभप्रद है। कफज गुल्म से पीड़ित रोगियों में विद्वान् वैद्यों ने इसे अधिक लाभप्रद कहा है।

१४. तिलादि स्वेद (च.द.)

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च।
श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥३५॥

तिल, एरण्डबीज, अतसीबीज तथा सरसों—इन्हें गोमूत्र या काञ्जी के साथ पीसें और गरम कर गुल्म प्रदेश पर लेप करें तथा लोहे के पतले पत्र को चिमटे से पकड़कर गरम करें और लिप्त गुल्म प्रदेश पर इस लप्त लोह पत्र से सेंक करें। लोहपत्र को अधिक गरम नहीं करना चाहिए। यहाँ सुखोष्ण स्वेद करना अभीष्ट है।

१५. तक्र प्रयोग (च.द.)

यमानीचूर्णितं तक्रं विडेन लवणीकृतम्।
पिबेत्सन्दीपनं वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनम् ॥३६॥

२५० मि.ली. तक्र में २ ग्राम अजवायनचूर्ण और २ ग्राम विड्लवण मिलाकर कफज गुल्मी को पिलाने से अग्नि प्रदीप्त होती है तथा वायु, मूत्र और पुरीष का अनुलोमन होता है।

१६. इन्द्रज-त्रिदोषज गुल्म चिकित्सा (च.द.)

व्यामिश्रदोषे व्यामिश्रः सर्व एव क्रियाक्रमः।
सन्निपातोद्भवे गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥३७॥

दो दोषों के व्यामिश्रण (विशेष मिश्रण) होने से उत्पन्न अर्थात् द्वन्द्वज गुल्म में उन दोनों दोषों को नष्ट करने वाली चिकित्सा करनी चाहिए। तथा तीन दोषों से उत्पन्न गुल्म में त्रिदोष नाशक चिकित्सा करनी चाहिए। दोषानुसार चिकित्सा ही सफल होती है।

१७. वरुणादि क्वाथ (शार्ङ्गधर)

वरुणो बकपुष्पञ्च बिल्वापामार्गचित्रकाः।
अग्निमन्थद्वयं शिग्रुद्वयञ्च बृहतीद्वयम् ॥३८॥
सैरेयकत्रयं मूर्वा भेषशृङ्गी किरातकः।
अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी ॥३९॥
वरुणादगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः।
हन्ति गुल्मं शिरःशूलं तथाऽऽभ्यन्तरविद्रधीन् ॥४०॥

१. वरुणत्वक्, २. अगस्त्यफूल, ३. बेलछाल, ४. अपामार्गपञ्चाङ्ग, ५. चित्रकमूल, ६. अग्निमन्थ, ७. अग्निमन्थ बड़ी, ८. सहिजनछाल कटु, ९. सहिजनछाल मधुर, १०. बृहती, ११. कण्टकारी, १२. श्वेत सहचर, १३. पीत सहचर पुष्प, १४. नील सहचरपुष्प, १५. मूर्वा, १६. मेढासिंगी, १७. चिरायता, १८. अजशृंगी, १९. त्रिकोल २०. करञ्ज और २१. शतावर—इन्हें समभाग लें। इसे वरुणादि गण कहते हैं। यह वरुणादि गण क्वाथ कफ, मेद, गुल्म, शिर और आभ्यन्तर विद्रधि रोगों को नष्ट करता है।

१८. वचाद्य चूर्ण-१ (च.द.)

वचाबिडाभयाशुण्ठी हिङ्गु कुष्ठाग्निदीप्यकाः।
द्वित्रिषट्चतुरैकाष्टसप्तपञ्चांशिकाः क्रमात् ॥४१॥
चूर्णं मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम्।
शूलार्शःश्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ॥४२॥

१. वच २ भाग, २. विड्लवण ३ भाग, ३. हरीतकी ६ भाग, ४. सोंठ ४ भाग, ५. शुद्ध हींग १ भाग, ६. कूठ ८ भाग, ७. चित्रकमूल ७ भाग तथा अजवायन ५ भाग लें। उपर्युक्त निर्दिष्ट भागानुसार काष्ठौषध तथा लवण लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वचाद्यचूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में मद्य के साथ सेवन करने से गुल्म, आनाह, उदररोग, शूल, अर्श, श्वास और ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। यह परम अग्नि-दीपक हैं।

१९. वचाद्यचूर्ण-२ (च.द.)

वचा हरीतकी हिङ्गु सैन्धवं साम्लवेतसम्।
यवक्षारं यमानीञ्च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥४३॥
एतद्धि गुल्मनिचयं सशूलं सपरिग्रहम्।
भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्नेर्वृद्धिं करोति च ॥४४॥

१. वच, २. हरीतकी, ३. शुद्ध हींग, ४. सैन्धवलवण, ५. अमलवेतस, ६. यवक्षार और ७. अजवायन—प्रत्येक समभाग में लेकर कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें।

इस वचादि चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से सात दिनों तक सेवन करने से शूलादि उपद्रवों से युक्त गुल्म समूह (सभी गुल्म) नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से अग्निवृद्धि भी होती है।

२०. यमान्यादि चूर्ण (च.द.)

यमानी हिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः ।
सुरामण्डेन पातव्या गुल्मशूलनिसूदनाः ॥४५॥

१. अजवायन, २. शुद्ध हींग, ३. सैन्धवलवण, ४. यवक्षार, ५. सौवर्चललवण और ६. हरीतकी—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में सुरामण्ड (मद्य) के साथ पीने से गुल्म और शूलरोग नष्ट हो जाते हैं।

२१. हिंग्वादिचूर्ण-१ (चरक)

हिङ्गूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीं
हरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।
भागोत्तरं चूर्णितमेतदष्ट
गुल्मोदराजीर्णविसूचिकासु ॥४६॥

१. शुद्ध हींग १ भाग, २. वच २ भाग, ३. विड्लवण ३ भाग, ४. सोंठ ४ भाग, ५. जीराश्वेत ५ भाग, ६. हरीतकी ६ भाग, ७. पुष्करमूल ७ भाग और ८. कूठ ८ भाग लें। इन द्रव्यों को एक साथ कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से लेने पर गुल्म, उदररोग, अजीर्ण और विसूचिका रोग नष्ट हो जाते हैं।

२२. हिंग्वादि चूर्ण-२ (वृन्द)

हिङ्गु पुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी ।
श्यामा विडं सैन्धवञ्च यवक्षारं महौषधम् ॥४७॥
यवक्वाथोदकेनैतद् घृतभृष्टन्तु पाययेत् ।
तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥४८॥

१. शुद्ध हींग, २. पुष्करमूल, ३. नेपालीधनियाँ, ४. हरीतकी, ५. श्यामात्रिवृत्, ६. विडलवण, ७. सैन्धवलवण, ८. यवक्षार तथा ९. सोंठ—इन्हें समभाग में लें। हींग को तोड़कर घृत में भून लें। ततः सभी द्रव्यों को चूर्ण करें और कड़ाही में थोड़ा घी डालकर मन्दाग्नि पर गरम करें। पुनः हींगचूर्ण डालकर हल्का भून लें और सभी द्रव्यों को अच्छी तरह से मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में खाकर ५० मि.ली. यव क्वाथ पियें। इस चूर्ण का कुछ दिनों तक सेवन करने से शूल एवं उपद्रवों से युक्त गुल्म नष्ट हो जाता है।

२३. हिंग्वादिचूर्ण वटिका-३ (चरक)

हिङ्गु त्रिकटुकं पाठां हवुषामभयां शटीम् ।
अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥४९॥
दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम् ।
द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यञ्चैकत्र चूर्णयेत् ॥५०॥
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम् ।
प्राग्भक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ॥५१॥
पार्श्वहृद्बस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।
आनाहे मूत्रकृच्छ्रेषु गुदयोनिरुजासु च ॥५२॥
ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीह्नि पाण्ड्वामयेऽरुचौ ।
उरोविबन्धे हिक्कायां श्वासे कासे गलग्रहे ॥५३॥
भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा ।
बहुशो गुडिकाः कार्याः कार्म्मुकाः स्युस्ततोऽधिकाः ॥

१. शुद्ध हींग, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. पाठा, ६. हाउबेर, ७. हरीतकी, ८. कचूर, ९. अजमोदा, १०. अजवायन, ११. इमली, १२. अम्लवेतस, १३. अनारदाना, १४. पुष्करमूल, १५. धनिया, १६. श्वेत जीरा, १७. चित्रकमूल, १८. वच, १९. यवक्षार, २०. सर्जिक्षार, २१. सैन्धव लवण, २२. सौवर्चललवण और २३. चव्य—समभाग लें। इन सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में मद्य अथवा गरम पानी से भोजन से पूर्व सेवन करने से पार्श्वशूल, हृदयशूल, बस्तिशूल, वातज-कफज गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदाशूल, योनिशूल, ग्रहणी, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, अरुचि, उरःप्रदेश में कफ का विबन्ध, हिक्का, श्वास तथा गलग्रह रोग नष्ट हो जाते हैं। इस हिंग्वादिचूर्ण को बिजौरा निम्बु के स्वरस की भावना देकर २-२ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखाकर रख लें तो और अधिक लाभ होता है।

मात्रा—२ से ४ ग्राम। **अनुपान**—मद्य या गरम जल से। **गन्ध**—हिंगु गन्धी। **वर्ण**—खाखी वर्ण का। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—गुल्म, शूल, ग्रहणी तथा अरुचि में।

२४. लवङ्गादिचूर्ण

लवङ्गदन्तीत्रिवृता यमानी
शुण्ठीवचा धान्यकचित्रकाणि ।
फलत्रयं मागधिका च कट्वी
द्राक्षाचवी गोक्षुरयावशूकम् ॥५५॥
एलाऽजमोदा कुटजस्य बीजं
विधाय चूर्णानि समान्यमीषाम् ।
खादेत्ततः पाणितलं हिताशी
कोष्णं जलं चानुपिबेत् प्रयत्नात् ॥५६॥
निहन्ति गुल्मं सरुजं सदाह-
मर्शांसि शोथांश्च तथाऽऽमवातम् ।
सर्वोदराण्येव चिरोत्थितानि
चूर्णं लवङ्गादिजमाशु हन्ति ॥५७॥

१. लवङ्ग, २. दन्तीमूल, ३. निशोथ, ४. अजवायन, ५. सोंठ, ६. वच, ७. धनिया, ८. चित्रकमूल, ९. आमला, १०. हरीतकी, ११. बहेड़ा, १२. पीपर, १३. कटुकी, १४. द्राक्षा, १५. चव्य, १६. गोक्षुर, १७. यवक्षार, १८. छोटी इलायची, १९. अजमोदा और २०. इन्द्रयव—प्रत्येक समभाग में लें। इन सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को १२ ग्राम की मात्रा में (आधुनिक मात्रा में ५ ग्राम) गरम पानी से सेवन करने पर पीड़ा और दाह युक्त गुल्म, अर्श, शोथ, आमवात सभी प्रकार के पुराने उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५ ग्राम। **अनुपान**—गरम पानी से। **गन्ध**—लवङ्ग जैसी सुगन्ध। **वर्ण**—धूसर वर्ण का। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—गुल्क-शोथ–आमवात एवं उदर रोग में।

रक्तज गुल्म की चिकित्सा (च.द.)

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे।
स्निग्धस्विन्नशरीराय दद्यात् स्निग्धं विरेचनम् ॥५८॥

रक्तज गुल्म में प्राय: गर्भ की आशंका बनी रहती है अत: गर्भ का प्रसव काल (१० महीना) बीतने पर (मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्य:) शरीर का सम्यक् स्नेहन-स्वेदन करके स्निग्ध विरेचन देना चाहिए।

२५. शताह्वादि कल्क (च.द.)

शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्गीकणोद्भवः ।
कल्कः पीतो हरेद् गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम् ॥५९॥

१. सौंफ, २. करञ्जछाल, ३. देवदारु, ४. भारङ्गी तथा ५. पीपर—इन्हें समभाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर ६ ग्राम की मात्रा में तिल क्वाथ के साथ सेवन करने से रक्तज गुल्म नष्ट हो जाता है।

२६. तिलक्वाथ (च.द.)

तिलक्वाथो गुडव्योषहिङ्गुभार्गीयुतो भवेत्।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥६०॥

कालातिल का यवकुट ५० ग्राम, जल ४०० मि.ली. तथा अवशेष १०० मि.ली.। **प्रक्षेप**—१ गुड़ २० ग्राम, २. त्रिकटु ५ ग्राम, ३. शुद्ध हींग $\frac{1}{2}$ ग्राम तथा ४. भारङ्गीचूर्ण २ ग्राम लें। काला तिल को कूटकर ४०० मि.ली. जल में क्वाथ करें। १०० मि.ली. शेष रहने पर छान लें और उस क्वाथ में गुड़, त्रिकटु, हींग, भार्गीचूर्ण मिलाकर गरम-गरम पिलाने से स्त्रियों के रक्तज गुल्म में रुका हुआ मासिक धर्म पुन: स्रवित होने लगता है। गुल्म के अतिरिक्त स्त्रियों में रुका हुआ ऋतुस्राव पुन: शुरु हो जाता है।

२७. धात्रीरस एवं क्षारत्र्यूषण प्रयोग

पीतो धात्रीरसो युक्त्या किंशुकक्षारसाधितः।
क्षारत्र्यूषणसंयुक्ता मदिरा चास्त्रगुल्मनुत् ॥६१॥

१. आमलास्वरस या आमलाक्वाथ ५० मि.ली. में पलाश क्षार १ ग्राम मिलाकर पीने से रक्तज गुल्म नष्ट हो जाता है।

२. मद्य ५० मि.ली. में यवक्षार १ ग्राम तथा त्रिकटु ३ ग्राम मिलाकर पिलाने से स्त्रियों का रक्तज गुल्म नष्ट हो जाता है।

२८. धात्री रस प्रयोग

पीतो धात्रीरसो युक्तो मरिचैश्चास्त्रगुल्मनुत् ॥६२॥

आमलास्वरस या क्वाथ ५० मि.ली. में मरिचचूर्ण १ ग्राम मिलाकर पिलाने से स्त्रियों का रक्तज गुल्म नष्ट हो जाता है।

रक्तगुल्म भेदन क्रम

उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरासृग्दरो हितः।
न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिं विशोधनम् ॥६३॥

रक्तज गुल्म में गर्भाशय में सञ्चित हुए रक्त का उष्ण औषध के प्रयोग से भेदन करना चाहिए तथा अशुद्ध रक्त का निर्हरण करना चाहिए। यदि अशुद्ध रक्तस्राव बन्द नहीं हो तो रक्तप्रदर में कही गयी औषधों द्वारा रक्त का स्तम्भन करना चाहिए। इन उष्ण औषधियों से यदि गुल्म का भेदन नहीं होता हो तो योनि-शोधक औषधों का प्रयोग करना चाहिए।

२९. योनिशोधक वर्त्ति (च.द.)

क्षारेण[1] युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा पुनः।
रुधिरऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरी क्रिया ॥६४॥

१२ ग्राम तिल पलल (चूर्ण) और १ ग्राम पलाशक्षार दोनों को सिल पर स्नुहीक्षीर के साथ पीसें और १-१ इञ्च की पतली वर्त्ति बनाकर सुखा लें। इसी वर्त्ति को रक्तगुल्म से पीड़ित स्त्री के गर्भाशय मुख में निक्षिप्त करने से रक्त गुल्म नष्ट हो जाता है। इस क्रिया के बाद स्त्रियों में रक्तातिप्रवृत्ति होने लगे तो रक्तपित्तहर एवं रक्तप्रदरहर चिकित्सा करनी चाहिए।

३०. पलाशक्षार घृत प्रयोग (यो.र.)

पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेद्वधूः।
यस्मिन्नवसरं क्षारतोयसाध्यघृतादिषु ॥६५॥
फेनोद्गमस्य निर्वृत्तिनष्टदुग्धसमाकृतिः।
स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥६६॥

१. पलाशक्षारेण सह पललं = तिलचूर्णं किञ्चिज्जलं दत्त्वा वर्त्तिं कृत्वा योन्यभ्यन्तरे दद्यात्। अथवा पलाशादिक्षारतिलचूर्णं स्नुहीक्षीरेण मिश्रणीयं तेन च सूक्ष्मवस्त्रे प्रक्षयित्वा वर्त्तिः कार्या सा च योन्यभ्यन्तरे देयमिति। (च.द., तत्त्वचन्द्रिका)

गोघृत ७५० ग्राम और पलाशक्षार जल ३ लीटर (चौगुना) देकर घृतपाक करना चाहिए। इस घृत का पाक करते समय क्षार के कारण घृत में फेनोद्गम होता है (नष्टदुग्धसमाकृति)। जब दूध नष्ट हो जाता है अर्थात् फट जाता है तो दूध में छोटे-छोटे किलाट के टुकड़े पृथक् दिखलाई पड़ते हैं। उसी प्रकार इस घृत में भी क्षार के टुकड़े दुग्ध के किलाट सदृश दिखाई देते हैं। जब इस फेन का नाश हो जाय तो घृत तैयार हो गया ऐसा समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस क्षार घृत के पाक का अन्य कोई लक्षण नहीं है।

३१. कांकायन गुटिका (च.द.)

शटी पुष्करमूलञ्च दन्तीं चित्रकमाढकीम्।
शृङ्गबेरं वचाञ्चैव पलिकानि समाहरेत्॥६७॥
त्रिवृतायाः पलञ्चैकं कुर्यात् त्रीणि च हिङ्गुनः।
यवक्षारं पले द्वे तु द्वे पले चाम्लवेतसात्॥६८॥
यमान्यजाजीमरिचं धान्यकञ्चेति कार्षिकम्।
उपकुञ्च्यजमोदाभ्यां तथा चाष्टमिकामपि॥६९॥
मातुलुङ्गरसेनैव गुडिकाः कारयेद्भिषक्।
तासाञ्चैकां पिबेद् द्वे वा तिस्रो वाऽथ सुखाम्बुना॥
अम्लैर्मद्यैश्च यूषैश्च घृतेन पयसाऽथवा।
एषा काङ्कायनोक्ता च गुडिका गुल्मनाशिनी॥७१॥
अर्शो हृद्रोगशमनी कृमीणाञ्च विनाशिनी।
गोमूत्रयुक्ता शमयेत् कफगुल्मं चिरोत्थितम्॥७२॥
क्षीरेण पित्तगुल्मञ्च मद्यैरम्लैश्च वातिकम्।
त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत् सान्निपातिकम्।
रक्तगुल्मे च नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत्॥७३॥

१. कचूर ५० ग्राम, २. पुष्करमूल ५० ग्राम, ३. दन्तीमूल ५० ग्राम, ४. चित्रकमूल ५० ग्राम, ५. अरहर मूल ५० ग्राम, ६. सोंठ ५० ग्राम, ७. वच ५० ग्राम, ८. निशोथ ५० ग्राम, ९. शुद्ध हींग १५० ग्राम, १०. यवक्षार १०० ग्राम, ११. अम्लवेतस १०० ग्राम, १२. अजवायन १२ ग्राम, १३. श्वेतजीरा १२ ग्राम, १४. मरिच १२ ग्राम, १५. धनियाँ १२ ग्राम, १६. स्याहजीरा २३ ग्राम और १७. अजमोदा २३ ग्राम लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण करें और बिजौरानिम्बुस्वरस की भावना देकर १-१ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। गुल्म आदि रोगों से पीड़ित व्यक्ति में १-२ या ३ वटी गरम पानी से या अम्ल रस से, मद्य से, मुद्गयूष, सुखोष्ण घृत या सोष्ण दूध से लेना चाहिए। इससे गुल्म, अर्श, हृदयरोग शान्त हो जाते हैं। कृमि रोग का नाश हो जाता है। कफज गुल्म में गोमूत्र से, पित्तज गुल्म में गोदुग्ध से, वातज गुल्म में अम्लरस तथा मद्य से, सन्निपातज गुल्म में त्रिफलाक्वाथ एवं गोमूत्र से तथा रक्तज गुल्म में ऊँटनी के दूध से देना चाहिए। इस वटिका का निर्माण कांकायन मुनि ने किया है।

मात्रा—१ से ३ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध, घृत, गोमूत्र, त्रिफलाक्वाथ, मद्य एवं ऊँटनी के दूध से। **गन्ध**—हिङ्गुगन्धी। **वर्ण**—खाखी वर्ण। **स्वाद**—कट्वम्लीय। **उपयोग**—गुल्म, अर्श एवं कृमि रोग में।

३२. वज्रक्षार (र.सा.सं.)

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम्।
टङ्गणं सर्जिकाक्षारं तुल्यं सर्वं विचूर्णयेत्॥७४॥
अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैरातपे भावयेत् त्र्यहम्।
तेन लिप्त्वाऽर्कपत्रञ्च रुद्ध्वा चान्तः पुटे पचेत्॥
तत्सारं चूर्णयित्वाथ त्र्यूषणं त्रिफलारजः।
जीरकं रजनी वह्निर्नवभागं समं समम्॥७६॥
क्षारार्द्धमेव सर्वं च एकीकृत्य प्रयोजयेत्।
वज्रक्षारमिदं सिद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना॥७७॥
सर्वोदरेषु गल्मेषु शूलदोषेषु योजयेत्।
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णेऽपि भक्ष्यं निष्कदयं द्वयम्॥७८॥
वाताधिके जलं कोष्णं घृतं वा पैत्तिके हितम्।
कफे गोमूत्रसंयुक्तमारनालं त्रिदोषजे॥७९॥

१. सामुद्रलवण १०० ग्राम, २. सैन्धवलवण १०० ग्राम, ३. काचलवण १०० ग्राम, ४. यवक्षार १०० ग्राम, ५. सौवर्चललवण १०० ग्राम, ६. शुद्ध सोहागा १०० ग्राम, ७. सर्जिक्षार १०० ग्राम, ८. अर्कक्षीर १०० मि.ली. और ९. स्नुहीक्षीर १०० मि.ली.—प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सभी द्रव्यों को खरल में पीसें और ३-३ दिनों तक अर्क एवं स्नुही दुग्ध की भावना देकर अर्कपत्र पर लेप करें। पुनः शरावसम्पुट कर गजपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर पत्ते सहित औषधि को निकालकर खरल में सूक्ष्म चूर्ण करें। इस क्षारचूर्ण में पुनः सोंठचूर्ण, पीपरचूर्ण, मरिचचूर्ण, आमलाचूर्ण, हरीतकीचूर्ण, बहेड़ाचूर्ण, जीरकचूर्ण, हल्दीचूर्ण तथा चित्रकमूलचूर्ण—उपर्युक्त पुटित क्षारचूर्ण का आधा भाग इस मिश्रित चूर्ण को अच्छी तरह से मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे वज्रक्षारचूर्ण कहते हैं। इसे भगवान् शिव ने स्वयं ही बताया था। इस वज्रक्षारचूर्ण को ६ ग्राम की मात्रा में उष्णोदक आदि अनुपान से लेने पर सभी उदररोग में, गुल्म में, शूलरोग में, अग्निमांद्य, अजीर्ण में लेना चाहिए। वाताधिक्य में उष्णोदक से, पित्ताधिक्य में गरम घृत से, कफाधिक्य में गोमूत्र से और सन्निपातज रोग में काञ्जी से लेना चाहिए।

मात्रा—३ से ६ ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक, घृत, गोमूत्र एवं काञ्जी से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—क्षारीय एवं लवणीय। **उपयोग**—उदररोग, गुल्म, शूल, अग्निमांद्य एवं अजीर्ण में।

३३. दन्तीहरीतकीलेह (च.द.)

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः ।
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥८०॥
तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्तीसमं गुडम् ।
ताश्चाभयास्त्रिवृच्चूर्णात् तैलाच्चापि चतुष्पलम् ॥८१॥
पलमेकं कणाशुठ्योः सिद्धे लेहे च शीतले ।
क्षौद्रं तैलसमं दद्याच्चातुर्जातपलं तथा ॥८२॥
ततो लेहपलं लीढ्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥८३॥
प्लीहश्वयथुगुल्मार्शोहृत्पाण्डुग्रहणीगदाः ।
शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वरकुष्ठान्यरोचकाः ॥८४॥

१. बड़ी एवं सुपक्व हरीतकी २५ नग, २. दन्तीमूल ११६५ ग्राम (२५ पल), ३. चित्रकमूल ११६५ ग्राम, ४. तिलतैल १९० मि.ली. तथा ५. गुड़ ११६५ ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. त्रिवृच्चूर्ण १९० ग्राम, २. पीपरचूर्ण ४६ ग्राम, ३. सोंठचूर्ण ४६ ग्राम, ४. मधु १९० ग्राम, ५. दालचीनी १२ ग्राम, ६. छोटी इलायची १२ ग्राम, ७. तेजपात १२ ग्राम और ८. नागकेशर १२ ग्राम लें। बड़ी हरीतकी को एक महीन नये वस्त्र में पोटली बाँधें। ततः दन्तीमूल एवं चित्रकमूल को यवकुट करें और बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में उपर्युक्त यवकुट रखें तथा उसमें १२ लीटर (१ द्रोण) जल डालकर मन्दाग्नि से पकावें। उपर्युक्त हरीतकी पोटली को भी क्वाथ के साथ पकावें। अष्टमांशावशेष रहने पर क्वाथ छान लें। क्वाथ और गुड़ मिलाकर पाक करें। सुपक्व हरीतकी को तैल में अच्छी तरह भर्जित कर गुड़ की चासनी में डालकर गुड़ की चासनी करें, चासनी तैयार होने पर पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और त्रिवृच्चूर्ण, पीपरचूर्ण, सोंठचूर्ण, चातुर्जातकचूर्ण को मिला लें। शीतल होने पर मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस लेह को ४६ ग्राम (४ तोला) और १ पूरी हरीतकी रोज सेवन करने से सुख विरेचन होकर पेट साफ हो जाता है। १ प्रस्थ दोष युक्त मल निकल जाता है और रोगी नीरोग हो जाता है। इसके सेवन से प्लीह, शोथ, गुल्म, अर्श, हृद्रोग, पाण्डुरोग, संग्रहणी, उत्क्लेश (वमन), विषमज्वर, कुष्ठ और अरुचि रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ से ४६ ग्राम और १ हरीतकी। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—गुडपाकवत्। **स्वाद**—गुड़ के जैसा सुगन्धित। **उपयोग**—प्लीह, गुल्म, अर्श, एवं संग्रहणी में।

३४. शिखिवाडव रस (र.का.धे.)

मारितं ताम्रसूताभ्रं गन्धकं माक्षिकं समम् ।
मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्यवक्षारयुतं दिनम् ॥८५॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन च ।
वातगुल्महरः ख्यातो रसोऽयं शिखिवाडवः ॥८६॥

१. ताम्रभस्म, २. शुद्ध पारद, ३. शुद्ध गन्धक, ४. अभ्रक भस्म, ५. स्वर्णमाक्षिकभस्म तथा ६. यवक्षार—प्रत्येक १-१ भाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें और उसी खरल में ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म और यवक्षार मिलाकर पुनः मर्दन करें। ततः चित्रकक्वाथ की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। वातिक गुल्म में १-१ वटी ताम्बूलस्वरस के साथ सेवन करने से गुल्म नष्ट हो जाता है। इसे शिखिवाडवरस के नाम से जाना जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताम्बूलपत्रस्वरस से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—वातज गुल्म में।

३५. नागेश्वर रस

शुद्धसूतस्तथा गन्धो नागवङ्गौ मनःशिला ।
निशादलञ्च त्रिक्षारं लौहं शुल्वं तथाऽभ्रकम् ॥८७॥
चित्रको वासको दन्तीक्वाथेनैकेन मर्दयेत् ।
दिनैकन्तु प्रयत्नेन रसो नागेश्वरो मतः ॥८८॥
गुल्मं प्लीहपाण्डुशोथानाध्मानञ्च विनाशयेत् ।
भक्षयेन्माषमेकं तु पर्णखण्डेन गुल्मवान् ॥८९॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. नागभस्म, ४. वङ्गभस्म, ५. शुद्ध मैनसिल, ६. नौसादर, ७. यवक्षार, ८. सर्जिक्षार, ९. टङ्कणक्षार, १०. लौहभस्म, ११. ताम्रभस्म और १२. अभ्रकभस्म समभाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः उसी खरल में नागभस्म से अभ्रक भस्म पर्यन्त तक के सभी द्रव्यों को कज्जली के साथ मिलाकर मर्दन करें। पुनः चित्रकक्वाथ, वासास्वरस एवं दन्ती-क्वाथ से १-१ दिन तक मर्दन करें। पुनः २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। ताम्बूलपत्र के साथ १-१ माशा खाने से गुल्म, प्लीहा, पाण्डु, शोथ, आध्मान रोग नष्ट हो जाते हैं। गुल्म रोग से पीड़ित रोगी के लिए इसकी ५०० मि.ग्रा. की मात्रा देनी चाहिए।

मात्रा—२५० से ५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताम्बूलपत्र के साथ। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—क्षारीय। **उपयोग**—गुल्म एवं प्लीह रोग में।

३६. गुल्मकालानल रस-१ (र.सा.सं.)

सूतकं गन्धकं तालं ताम्रकं टङ्कणं समम् ।
तोलद्वयमिदं भागं यवक्षारश्च तत्समम् ॥९०॥
मुस्तकं पिप्पली शुण्ठी मरिचं गजपिप्पली ।
हरीतकी वचा कुष्ठं तोलैकं चूर्णयेत् सुधीः ॥९१॥

सर्वमेकीकृतं पात्रे भावना क्रियते ततः ।
पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलिकम् ॥९२॥
तत्पुनश्चूर्णयेत्पश्चात् सर्वगुल्मनिवारणम् ।
गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरीतक्यनुपानतः ॥९३॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
द्वन्द्वजञ्च निहन्त्याशु वातगुल्मं विशेषतः ॥
गुल्मकालानलो नाम सर्वगुल्मकुलान्तकृत् ॥९४॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. शुद्ध हरताल, ४. ताम्रभस्म, ५. शुद्ध सुहागा तथा ६. यवक्षार—प्रत्येक २३-२३ ग्राम लें; ७. नागरमोथाचूर्ण, ८. पीपरचूर्ण, ९. सोंठचूर्ण, १०. मरिचचूर्ण, ११. गजपीपरचूर्ण, १२. हरीतकीचूर्ण, १३. वच-चूर्ण और १४. कूठचूर्ण—प्रत्येक १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः उसी के साथ पहले हरताल मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। पुनः उस कज्जली में ताम्रभस्म से कूठचूर्ण तक के सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें और पित्तपापड़ा, नागरमोथा, शुण्ठी, अपामार्ग, पाठा (पापचेलिका) इन पाँच द्रव्यों के क्वाथ से पृथक्-पृथक् एक-एक भावना दें। पुनः चूर्ण कर अच्छी तरह से सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में हरीतकी क्वाथ के साथ सेवन करें। यह 'गुल्मकालानलरस' सभी प्रकार के वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज तथा सान्निपातिक गुल्मों का नाश करता है। विशेषकर वातजगुल्मों को नाश करता है । यह गुल्मकालानलरस सभी गुल्मकुल को नाश करता है ।

मात्रा—५०० मि.ग्रा। **अनुपान**—हरीतकीक्वाथ से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी गुल्मों में।

३७. गुल्मकालानलरस-२

अभ्रं लौहं रसं गन्धं टङ्कणं कटुकं वचाम् ।
द्विक्षारं सैन्धवं कुष्ठं त्र्यूषणं सुरदारु च ॥९५॥
पत्रमेलां त्वचं नागं खादिरं सारमेव च ।
गृहीत्वा समभागेन श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥९६॥
जयन्तीचित्रकोन्मत्तकेशराजदलं तथा ।
निष्पीड्य स्वरसं नीत्वा भावयेत्कुशलो भिषक् ॥९७॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकाः कारयेत्ततः ।
उत्थाय भक्षयेत्प्रातरनुपानं जलं पयः ॥९८॥
गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं चैव सुदारुणम् ॥९९॥
हलीमकं रक्तपित्तं मन्दाग्निमरुचिं तथा ।
ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं जीर्णञ्च विषमज्वरम् ॥१००॥

१. अभ्रकभस्म, २. लौहभस्म, ३. शुद्ध पारद, ४. शुद्ध गन्धक, ५. शुद्ध सुहागा, ६. कुटकीचूर्ण, ७. वचचूर्ण, ८. यवक्षार, ९. सर्जिक्षार, १०. सैन्धवलवण, ११. कूठचूर्ण, १२. सोंठचूर्ण १३. पीपरचूर्ण, १४. मरिचचूर्ण, १५. देवदारुचूर्ण, १६. तेजपत्ताचूर्ण, १७. छोटीइलाचयीचूर्ण, १८. दालचीनी चूर्ण, १९. नागकेशरचूर्ण तथा २०. खदिरसार (कत्था)—ये सभी द्रव्य ५०-५० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली के साथ अभ्रक एवं लौहभस्म मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद सुहागा से खदिरसार तक के सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मर्दन करें। पुनः जयन्तीस्वरस, चित्रकमूलस्वरस, धत्तूरपत्रस्वरस तथा भृङ्गराजस्वरस की १-१ भावना देकर ५०० मि.ग्रा. (४ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातः उठकर मुख प्रक्षालनोत्तर १ से २ वटी गरम जल तथा गरम दूध के साथ खिलाने से पाँच प्रकार के गुल्म, यकृल्लीहरोग, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, भयंकर शोथ, हलीमक, रक्तपित्त, मन्दाग्नि, अरुचि, संग्रहणी, कृशता, जीर्णज्वर तथा विषमज्वर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—गरम पानी तथा दूध से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**— कटु-लवणीय। **उपयोग**—गुल्म, अर्श एवं यकृत्प्लीह रोग में।

३८. गुल्मकालानलरस-३ (र.सा.सं.)

गन्धकं तालकं ताम्रं तथैव तीक्ष्णलौहकम् ।
समांशं मर्दयेद् गाढं कन्यानीरेण यत्नतः ॥१०१॥
सम्पुटं कारयेत्पश्चात्सन्धिलेपञ्च कारयेत् ।
ततो गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥१०२॥
द्विगुञ्जां भक्षयेद् गुल्मी शृङ्गबेरानुपानतः ।
सर्वं गुल्मं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥१०३॥

१. शुद्ध गन्धक, २. शुद्ध हरताल, ३. ताम्रभस्म तथा ४. तीक्ष्ण लौहभस्म—प्रत्येक समभाग में लें। एक खरल में उपर्युक्त चारों द्रव्यों को एक साथ मर्दन करें। पुनः घृतकुमारीस्वरस की भावना देकर टिकिया बनाकर, सुखाकर शरावसम्पुट कर गजपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर खरल में औषधि को पीसें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'गुल्मकालानलरस' कहते हैं। २५० मि.ग्रा. की मात्रा में आर्द्रकस्वरस के साथ लेने से सभी गुल्म रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—आर्द्रकस्वरस से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के गुल्म रोग में।

३९. गुल्मशार्दूल रस (र.सा.सं.)

रसं गन्धं शुद्धलौहं गुग्गुलोः पिष्टितं पलम् ।
त्रिवृता पिप्पली शुण्ठी शटी धान्यकजीरकम् ॥१०४॥

प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं पलार्द्धं कानकं फलम्।
सञ्चूर्ण्य वटिका कार्या घृतेन वल्लमानतः ॥१०५॥
वटीद्वयं भक्षयेच्चार्द्रकोष्णाम्बु पिबेदनु।
हन्ति प्लीहयकृद्गुल्मकामलोदरशोथकम् ॥१०६॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं रौधिरन्तथा।
गहनानन्दनाथोक्तो रसोऽयं गुल्मशार्दुलः ॥१०७॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. शुद्ध गुग्गुलु, ५. निशोथचूर्ण, ६. पिप्पलीचूर्ण, ७. सोंठचूर्ण, ८. कचूरचूर्ण, ९. धनियाचूर्ण और १०. श्वेतजीराचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें; तथा १२. शुद्ध जयपाल २५ ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बना लें और उसी कज्जली के साथ गुग्गुलु को छोड़कर शेष द्रव्यों के चूर्णों को मिलावें। ततः गरम पानी में गुग्गुलु को घोलकर सभी द्रव्यों को एक साथ मिला लें तथा मर्दन करें। ततः सिल पर पीसकर हाथ में थोड़ा घृत लगाकर ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे गरम जल या आर्द्रकस्वरस के साथ १-१ वटी सेवन करने से यकृत्प्लीह, कामला, उदररोग, शोथ तथा सभी प्रकार के वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, सन्निपातज एवं रक्तज गुल्म नष्ट हो जाते हैं। इस 'गुल्मशार्दूलरस' नामक औषधि को आचार्य श्री गहनानन्द ने कहा था।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—आर्द्रकस्वरस या उष्णोदक से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रकार के गुल्म एवं यकृत्प्लीह रोग में।

४०. वडवानल रस (यो.रत्ना.)

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतं ताम्राभ्रटङ्कणम्।
सामुद्रं च यवक्षारं स्वर्जिसैन्धवनागरम् ॥१०८॥
अपामार्गस्य च क्षारं पालाशं वत्सनाभकम्।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याच्चणकाम्लेन मर्दयेत् ॥१०९॥
हस्तिकन्याद्रवैश्चाहो आर्द्रयुक्तं पुटेल्लघु।
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं रसोऽयं बडवानलः ॥
सर्वं गुल्मं निहन्त्याशु ग्रहणीं च विशेषतः ॥११०॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. ताम्रभस्म, ४. अभ्रक भस्म, ५. शुद्ध सुहागा, ६. सामुद्रलवण, ७. यवक्षार, ८. सर्जिक्षार, ९. सैन्धवलवण, १०. सोंठचूर्ण ११. अपामार्गक्षार, १२. पलाशक्षार तथा १३. शुद्ध वत्सनाभचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। भावना द्रव्य—चणकाम्ल, हस्तिशुण्डीरस, घृतकुमारीरस तथा आर्द्रकरस। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली के साथ अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें। पुनः चणकाम्ल द्राव, हस्तिशुण्डीस्वरस, घृतकुमारीस्वरस और आर्द्रकस्वरस के साथ १-१ दिन तक मर्दन करें। ततः टिकिया बनाकर सुखाकर शरावसम्पुट कर लघु पुट में पाक करें। पुनः स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर औषधि निकालकर खरल में पीस लें। २५० मि.ग्रा. की मात्रा में गरम पानी से सेवन करने पर सभी प्रकार के गुल्म नष्ट हो जाते हैं। ग्रहणी रोग पर इसका अधिक प्रभाव देखा जाता है। इसे 'वडवानलरस' कहते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—गरम पानी से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—सभी प्रकार के गुल्म और संग्रहणी रोग में।

४१. गुल्मकुठार रस (यो.रत्ना.)

नागवङ्गाभ्रकं कान्तं समं ताम्रं समांशकम्।
जम्बीरस्वरसैर्घृष्टा वटी गुञ्जाप्रमाणिका ॥१११॥
मधुनाऽऽर्द्रकनीरेण क्षारयुग्मेन सेविता।
अजीर्णमामं गुल्मं च हृत्पार्श्वोदरशूलके।
नाम्ना गुल्मकुठारोऽयं सर्वगुल्मान् व्यपोहति ॥११२॥

१. सीसकभस्म, २. वङ्गभस्म, ३. अभ्रकभस्म, ४. कान्तलौहभस्म और ५. ताम्रभस्म—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। सभी द्रव्यों को एक खरल में एक साथ पीसें और जम्बीरीस्वरस की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें तथा १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें। इसे 'गुल्म कुठार रस' कहते हैं। इस रस को सर्जिक्षार तथा यवक्षार १२५-१२५ मि.ग्रा. की मात्रा में मिलाकर आर्द्रकस्वरस और मधु से सेवन करने से अजीर्ण, आमदोष, गुल्म, हृद्रोग, पार्श्वशूल, उदरशूल-रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—सर्जिक्षार, यवक्षार, मधु, आर्द्रकरस से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—अम्ल। **उपयोग**—अजीर्ण, आमदोष, गुल्म, हृद्रोग, पार्श्व शूल तथा उदर शूल में।

४२. प्रवालपञ्चामृत (यो.रत्ना.)

प्रवालमुक्ताफलशङ्खशुक्ति-
कपर्दिकानां च समांशभागम्।
प्रवालमात्रं द्विगुणं प्रयोज्यं
सर्वैः समांशं रविदुग्धमेव ॥११३॥
एकीकृतं तत्खलु भाण्डमध्ये
क्षिप्त्वा मुखे बन्धनमत्र योज्यम्।
पुटं विदध्यादतिशीतले च
उद्धृत्य तद्भस्म क्षिपेत्करण्डे ॥११४॥
नित्यं द्विवारं प्रतिपाकयुक्तं
वल्लप्रमाणं हि नरेण सेव्यम्।

आनाहगुल्मोदरप्लीहकास-
श्वासाग्निमान्द्यान् कफमारुतोत्थान् ।
अजीर्णमुद्गारहृदामयघ्नं
ग्रहण्यतीसारविकारनाशनम् ॥११५॥
मेहामयं मूत्ररोगं मूत्रकृच्छ्रं तथाऽश्मरीम् ।
नाशयेन्नात्र सन्देहः सत्यं गुरुवचो यथा ॥११६॥
पथ्याश्रितं भोजनमादरेण
समाचरेन्निर्मलचित्तवृत्त्या ।
प्रवालपञ्चामृतनामधेयो
योगोत्तमः सर्वगदपहारी ॥११७॥

१. प्रवाल ५० ग्राम, २. मोतीभस्म २५ ग्राम, ३. शंखभस्म २५ ग्राम, ४. शुक्तिभस्म २५ ग्राम और वराटिकाभस्म २५ ग्राम लें। एक खरल में इन पाँचों द्रव्यों को एक साथ मिलाकर अर्कदुग्ध की भावना देकर टिकिया बनाकर सुखाकर शराव-सम्पुट कर भाण्ड पुट (कुम्भपुट) में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट निकालकर खोलें। औषधि निकालें और खरल में मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'प्रवालपञ्चामृत' कहते हैं। प्रातः-सायं ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में रोगानुसार अनुपान से सेवन करने पर आनाह, गुल्म, उदर, प्लीहारोग, कास, श्वास, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, उद्गार, हृदय रोग, ग्रहणी, अतिसार, प्रमेह, मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरीरोग नष्ट हो जाते हैं। इससे सन्देह नहीं करना चाहिए। यह गुरुवाक्य जैसा सत्य है। इसके सेवन के समय पथ्य का पालन करना चाहिए। यह उत्तम योग सभी प्रकार के रोगों का नाश करता है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **गन्ध**—निर्गन्धि। **वर्ण**—श्वेत भस्म। **स्वाद**—क्षारीय। **उपयोग**—गुल्म, उदर, आनाह, हृदयरोग, प्रमेह एवं मूत्रविकार में।

४३. रसायनामृत लौह

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं जीरकद्वयम् ।
यमानीद्वयभूनिम्बं त्रिवृद्दन्तीं च निम्बकम् ॥११८॥
सर्वेषां कार्षिकं भागं सैन्धवं कर्षमभ्रकम् ।
खण्डस्य षोडशपलं प्रस्थञ्च त्रिफलाजलम् ॥११९॥
जम्बीराणां रसं दद्यात् पलं षोडशकं तथा ।
पाच्यं सर्वं प्रयत्नेन लौहं दत्त्वा पलद्वयम् ॥१२०॥
सिद्धे पाके पुनर्देयं घृतं पलचतुष्टयम् ।
सर्वरोगेषु संयोज्यं महामृतरसायनम् ॥१२१॥
गुल्मं पञ्चविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं जीर्णज्वरं तथा ॥
रोगान् सर्वान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥१२२॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण ३. मरिचचूर्ण, ४. आमलाचूर्ण, ५. बहेड़ाचूर्ण, ६. हरीतकीचूर्ण, ७. नागरमोथाचूर्ण, ८. वायविडङ्गचूर्ण, ९. जीराचूर्ण, १०. स्याहजीराचूर्ण, ११. अजवायनचूर्ण, १२. अजमोदाचूर्ण, १३. चिरायताचूर्ण, १४. त्रिवृच्चूर्ण, १५. दन्तीचूर्ण, १६. निम्बत्वक्चूर्ण, १७. सैन्धवचूर्ण तथा १८. अभ्रकभस्म— प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। १९. चीनी ७५० ग्राम, २०. त्रिफलाक्वाथ ७५० मि.ली., २१. जम्बीरीनिम्बुस्वरस ७५० मि.ली., २२. लौहभस्म ९३ ग्राम और गोघृत १८७ ग्राम लें।

शुण्ठी से अभ्रकभस्म तक के सभी १८ द्रव्यों को एक खरल में एक साथ मिलाकर मर्दन करें। ततः एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में त्रिफलाक्वाथ, निम्बुस्वरस एवं चीनी मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब लेह जैसा पाक हो जाय तो उसमें उपर्युक्त १८ द्रव्यों का मिश्रितचूर्ण और लौहभस्म डालकर अच्छी तरह से मिला लें। पुनः घृत मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस रसायनामृतलौह को १ से ३ ग्राम की मात्रा में रोगानुसार अनुपान से सेवन करने पर ५ प्रकार के गुल्म, यकृत्-प्लीहा एवं उदररोग, कामला, पाण्डु, शोथ एवं जीर्णज्वर उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे भगवान् सूर्य के उदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१ से ३ ग्राम। **अनुपान**—रोगानुसार। **गन्ध**—सुगन्ध अवलेह। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—मधुराम्ल। **उपयोग**—सभी गुल्मों में, उदररोग एवं यकृत्पलीहा में।

४४. पञ्चानन रस (र.सा.सं.)

पारदं शिखितुत्थञ्च गन्धं जैपालपिप्पलीः ।
आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥१२३॥
धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये ।
चिञ्चादलरसञ्चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥१२४॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध तुत्थ, ३. शुद्ध गन्धक, ४. शुद्ध जयपाल, ५. पीपरचूर्ण और ६. अमलतासफलमज्जा—प्रत्येक समभाग में लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः अमलतासफलमज्जा को छोड़कर अन्य द्रव्यों को मिलावें। पुनः अमलतास मज्जा को थोड़ा पानी में घोलकर कपड़ा से छान लें और उसे आग पर सुखाकर गाढ़ा करें। कज्जली आदि के साथ अमलतास की मज्जा को मिलाकर मर्दन करें और स्नुहीक्षीर की १ भावना देकर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। आमलारस के साथ १-१ वटी का सेवन करने से तथा अन्त में इमली फल का रस अनुपान रूप में लेन से रक्तज गुल्म नष्ट हो जाता है। इस औषधि के सेवन काल में रोगी को पथ्य रूप में दही-भात खिलाना चाहिए।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—आमलास्वरस तथा बाद में इमलीफलस्वरस का सेवन करना चाहिए। **गन्ध**—अमलतास

मज्जा गन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—अम्ल। **उपयोग**— रक्तज गुल्म में।

४५. गुल्मवज्रिणी वटी (र.सा.सं.)

रसगन्धकताम्रञ्च कांस्यं टङ्कणतालकम्।
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं मर्दयेदतियत्नतः ॥१२५॥
तद्यथाऽग्निबलं खादेद् रक्तगुल्मप्रशान्तये।
निर्मिता नित्यानाथेन वटिका गुल्मवज्रिणी ॥१२६॥
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलायकृदानाहनाशिनी।
कामलापाण्डुरोगघ्नी ज्वरशूलविनाशिनी ॥१२७॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. ताम्रभस्म, ४. कांस्यभस्म, ५. शुद्ध सुहागा और ६. शुद्ध हरताल—प्रत्येक द्रव्य ४६-४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक पत्थर के खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः हरताल मिलाकर पुनः मर्दन करें। इसके बाद में अन्य सभी द्रव्यों को उस कज्जली के साथ मिलाकर ३ घण्टे तक दृढ़ मर्दन करें। पुनः जल की भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन कर १२५ मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। इसका निर्माण आचार्यश्री नित्यनाथ ने किया था। इसे गरम जल से १-१ वटी सेवन कर गुल्म, प्लीहा, उदर, अष्ठीला, यकृत्, आनाह, कामला, पाण्डु, ज्वर और शूलरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से २ वटी। **अनुपान**—गरम जल से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—अल्प कटु। **उपयोग**—गुल्म, यकृत्प्लीहरोग, शूल तथा उदररोग में।

४६. सर्वेश्वर रस (र.सा.सं.)

ताम्रं दशगुणं स्वर्णात् स्वर्णपादं कटुत्रिकम्।
त्रिफला त्रिकटोस्तुल्या त्रिफलाऽर्द्धमयोरजः ॥१२८॥
अयसोऽर्द्धं विषं चैव सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः।
सर्वेश्वररसो नाम रक्तगुल्मविनाशनः ॥१२९॥

१. स्वर्णभस्म १२ ग्राम, २. ताम्रभस्म १२० ग्राम, ३. त्रिकटुचूर्ण ३ ग्राम, ४. त्रिफलाचूर्ण ३ ग्राम, ५. लौहभस्म डेढ़ ग्राम तथा शुद्ध वत्सनाभविष ७५ मि.ग्रा. लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस सर्वेश्वररस का प्रयोग रक्तज गुल्म में १ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) तक करना चाहिए।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं शरपुंखास्वरस से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—रक्तज गुल्म में।

४७. प्राणवल्लभ रस (र.सा.सं.)

लौहं ताम्रं वराटञ्च तुत्थं हिङ्गु फलत्रिकम्।
स्नुहीमूलं यवक्षारं जैपालं टङ्कणं त्रिवृत् ॥१३०॥
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं छागीदुग्धेन पेषयेत्।
चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद्वारिणा मधुनाऽपि वा ॥१३१॥
प्राणवल्लभनामोऽयं गहनानन्दभाषितः।
निहन्ति कामलां पाण्डुं मेहं हिक्कां विशेषतः ॥१३२॥
असाध्यं सन्निपातञ्च गुल्मं रुधिरसम्भवम्।
वातरक्तञ्च कुष्ठञ्च कण्डूं विस्फोटकापचीम् ॥१३३॥

१. लौहभस्म, २. ताम्रभस्म, ३. वराटिकाभस्म, ४. शुद्ध तुत्थ, ५. शुद्ध हींग, ६. त्रिफलाचूर्ण, ७. स्नुहीमूलचूर्ण, ८. यवक्षार, ९. शुद्ध जयपाल, १०. शुद्ध सुहागा और ११. त्रिवृच्चूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १ पल (४६ ग्राम) भाग लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर ३ घण्टे तक मर्दन करें। ततः बकरी के दूध की भावना देकर १ दिन मर्दन करें। पुनः ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। गरम पानी में या मधु से १-१ वटी खाने से गुल्म, कामला, पाण्डु, प्रमेह, हिक्का, असाध्य सन्निपात, रक्तगुल्म, वातरक्त, कुष्ठ, कण्डू, विस्फोट व्रण और अपचीरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—गरम जल या मधु से। **गन्ध**—हिंगुगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—रक्तज गुल्म, गुल्म, वातरक्त एवं कुष्ठ में।

४८. पञ्चपलक घृत (चरक)

पिप्पल्याः पिचुरध्यर्द्धो दाडिमाद् द्विपलं पलम्।
धान्यात् पञ्च घृताच्छुण्ठ्याः कर्षः क्षीरं चतुर्गुणम् ॥
सिद्धमेतद् घृतं सद्यो वातगुल्मं विनाशयेत्।
योनिशूलं शिरःशूलमर्शांसि विषमज्वरान् ॥१३५॥

१. पीपरचूर्ण १२ ग्राम, २. अनारदाना ९३ ग्राम, ३. धनियाँबीज ४६ ग्राम, ४. गोघृत २३५ ग्राम, ५. सोंठ १२ ग्राम और ६. गोदूध ९५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन कर लें। ततः पीपर, अनारदाना, धनियाँ एवं सोठ के चूर्णों को खरल या सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित घृत को पुनः चूल्हे पर चढ़ाकर कल्क और गोदुग्ध मिलाकर पाक करें। अच्छी तरह से खूब हिलाते रहें। जब दूध सूख जाय तो सम्यक् पाक के लिए ९५० मि.ली. जल देकर पुनः पकावें। जल सूखने पर पाक पूर्ण हो गया ऐसा समझकर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से घृत को छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध के साथ मिलाकर पीने से वातजगुल्म, योनिशूल, शिरःशूल, अर्श एवं विषमज्वर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा— १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—

घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—अम्लीय। **उपयोग**—वातज गुल्म एवं योनिशूल में।

४९. नाराच घृत (गदनिग्रह)

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्टकारिका।
स्नुहीक्षीरं विडङ्गानि घृतं दशममुच्यते ॥१३६॥
एकैकस्य च कर्षेण घृतस्य कुडवं पचेत्।
अस्य मात्रां पिबेत्काले शाणार्द्धेन च सम्मिताम् ॥
उष्णोदकञ्चानुपिबेद्विरेकार्थं समाहितः।
पिबेद् यवागूं हविषा पेयां वा क्षीरसाधिताम् ॥१३८॥
रसेन जाङ्गलानां वा भोजयेन्मतिमान् भिषक्।
वातगुल्ममुदावर्त्तं प्लीहार्शोब्रध्नकुण्डलम् ॥१३९॥
ग्रहणीं दीपयेन्मदां कुष्ठदोषांश्च नाशयेत्।
नाराचकमिदं सर्पिः ख्यातं नाराचसन्निभम् ॥१४०॥

१. चित्रकमूल, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा, ५. जयपालबीज, ६. निशोथ, ७. कण्टकारी, ८. स्नुहीक्षीर और ९. विडङ्ग—प्रत्येक द्रव्य ५-५ ग्राम लें; तथा १०. घृत १८७ ग्राम लें। पहले गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त सभी द्रव्यों को कूट-पीसकर चूर्ण करें और जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित घृत में कल्क एवं ७५० मि.ली. जल मिलाकर पाक करें। जल सूख जाने पर घृत छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस नाराच घृत को १.५०० मि.ग्रा. की मात्रा में उष्णोदक में मिलाकर पिलाने से शीघ्र ही विरेचन होता है । इसके सेवन काल में यवागू-दुग्ध साधित पेया, खीर, जाङ्गल पशु-पक्षियों के मांसरस का भोजन देना चाहिए। इसके सेवन से वातज गुल्म, उदावर्त्त, प्लीहा, अर्श, ब्रध्न, वातकुण्डल, ग्रहणी, कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं। यह अग्निदीपक तथा मन्दाग्नि नाशक है। इसे नाराच (बाण) कहते हैं। यह अधिक रेचक है, क्योंकि इसमें दन्ती नाम से जयपालबीज दिया जाता है।

मात्रा—१५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—वातज गुल्म, उदावर्त्त एवं अर्श में।

५०. हवुषाद्य घृत (चरक)

हबुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः।
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैः पाचयेद् घृतम् ॥१४१॥
सकोलमूलकरसं सक्षीरं दधिदाडिमम्।
तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविबन्धनुत् ॥१४२॥
योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान्।
पार्श्वहृद्बस्तिशूलञ्च घृतमेतद् व्यपोहति ॥१४३॥

१. हाऊबेर, २. त्रिकटु, ३. मंगरैला, ४. चव्य, ५. चित्रकमूल, ६. सैन्धवलवण, ७. जीरा, ८. पिपरामूल तथा ९. अजवायन—प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम लें। गोघृत ३७५ ग्राम लें।

क्वाथ—१. बेर का क्वाथ ४८५ मि.ली., २. मूलीस्वरस ३७५ मि.ली., ३. गोदुग्ध ३७५ मि.ली., ४. दही ३७५ ग्राम और ५. दाडिमस्वरस ३७५ मि.ली. लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः हाऊबेर से अजवायन तक के सभी औषधों को कूट-पीसकर चूर्ण करें, पुनः सिल पर जल से पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित घृत में कल्क और बदरीक्वाथ मिलाकर मध्यमाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर क्रमशः मूलीस्वरस देकर पाक करें। ततः गोदुग्ध, मथित दही और अनारस्वरस मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त चूल्हे से घृतपात्र को नीचे उतारकर कपड़े से घृत को छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। ६ से १२ ग्राम की मात्रा में इस घृत को गरम दूध या गरम पानी के साथ पिलाने से वातजगुल्म, शूल, आनाह, विबन्ध, योनिरोग, अर्श, ग्रहणी-दोष, श्वास, कास, अरुचि, ज्वर, पार्श्वशूल, हृच्छूल और बस्तिशूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध और गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—अम्लीय। **उपयोग**—वातज गुल्म, आनाह, विबन्ध एवं योनिरोग में।

५१. त्र्यूषणाद्य घृत (च.द.)

त्र्यूषणत्रिफलाधान्यविडङ्गचव्यचित्रकैः।
कल्कीकृतैर्घृतं सिद्धं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ॥१४४॥

१. सोंठ २८ ग्राम, २. पीपर २८ ग्राम, ३. मरिच २८ ग्राम, ४. आमला २८ ग्राम, ५. हरीतकी २८ ग्राम, ६. बहेड़ा २८ ग्राम, ७. धनियाँ २८ ग्राम, ८. विडङ्ग (वायविडङ्ग) २८ ग्राम तथा ९. चित्रकमूल २८ ग्राम लें। गाय का घी १ किलो, गोदुग्ध ४ लीटर तथा जल ४ लीटर लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः सोंठ से चित्रकमूल तक के सभी ९ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित तैल में कल्क और गोदुग्ध मिलाकर चूल्हे पर धीरे-धीरे पाक करें। दूध सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जल सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त चूल्हे से तैल को उतारकर कपड़े से छान लें और काचपात्र में संग्रह करें। इस 'त्र्यूषणाद्य-घृत' को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम पानी से सेवन करने पर वातज गुल्म नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम पानी से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—वातज गुल्म में।

५२. द्राक्षादि घृत (चरक)

द्राक्षां मधुकखर्जूरौ विदारीं सशतावरीम्।
परूषकाणि त्रिफलां साधयेत्पलसम्मिताम् ॥१४५॥

जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च।
घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥१४६॥
साधयेत्तु घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम्।
प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥
साहचर्यादिह पृथग् घृतादेः क्वाथतुल्यता ॥१४७॥

क्वाथ—१. मुनक्का, २. मुलेठी, ३. छुहाड़ा, ४. विदारीकन्द, ५. शतावरी, ६. फालसा, ७. आमला, ८. हरीतकी, ९. बहेड़ा—प्रत्येक द्रव्य १-१ पल (४६ ग्राम), जल ३ लीटर लें; १०. गोघृत ७५० ग्राम, ११. आमलकीस्वरस ७५० मि.ली., १२. इक्षु (गन्ने) का रस ७५० मि.ली. तथा १३. गोदुग्ध ७५० मि.ली. लें।

कल्क—हरीतकीफलत्वक् १८७ ग्राम, चीनी ९३ ग्राम और मधु ९३ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः मुनक्का से बहेड़ा तक के सभी द्रव्यों को यवकुट कर ३ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस घृत में यह क्वाथ और हरीतकीफल दल का कल्क डालकर पाक करें। क्वाथ सूखने पर गोदुग्ध मिलाकर पाक करें। ततः आमलाक्वाथ या स्वरस देकर पकावें। इसी प्रकार गन्ने का रस (इक्षु रस) और जलीयांश सूखने पर घृतपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृत पात्र को नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और पिसी हुई चीनी तथा मधु मिलाकर पहले खूब मिला लें। बाद में घृत को अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'द्राक्षादिघृत' को १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध या गरम पानी में मिलाकर पिलाने से पित्तज गुल्म तथा सभी प्रकार के पित्त विकार नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—पित्तज गुल्म एवं पित्तविकार में।

५३. त्रायमाणादि घृत (च.द.)

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणाचतुष्पलम्।
पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः ॥१४८॥
रोहिणी कटुका मुस्तं त्रायमाणा दुरालभा।
कल्कैस्त्वामलकी वीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥१४९॥
रसस्यामलकानां च क्षीरस्य च घृतस्य च।
पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत् ॥१५०॥
पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं वीसर्पं पैत्तिकं ज्वरम्।
हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तरम् ॥१५१॥
पलोल्लेखगते माने न 'द्वैगुण्यमिहेष्यते।
चत्वारिंशत् पलं तेन तोयं दशगुणं भवेत् ॥१५२॥

१. त्रायमाण १८७ ग्राम, जल १८७० मि.ली., शेष क्वाथ ३७५ मि.ली., २. हरीतकी, ३. कटुकी, ४. नागरमोथा, ५. त्रायमाण, ६. यवासा, ७. आमला, ८. क्षीरकाकोली, ९. जयन्ती, १०. लालचन्दन तथा ११. नीलकमल—प्रत्येक द्रव्य ९-९ ग्राम लें; तथा आमला का स्वरस ३७५ मि.ली. लें। गोघृत ३७५ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः त्रायमाण का यवकुट कर उक्त जल में क्वाथ करें और पञ्चमांशावशेष रहने पर छान लें। हरीतकी से कमलपुष्प तक के सभी द्रव्यों का कल्क बनाकर घृत में मिलाकर पाक करें। क्वाथ सूखने पर गोदुग्ध देकर पाक करें। ततः आमलास्वरस देकर पाक करें। कल्क के सम्यक् पाक हेतु १५०० मि.ली. जल देकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस श्रेष्ठ घृत को १२ ग्राम की मात्रा में गरमदूध या गरमजल में डालकर पीने से पित्तजगुल्म, रक्तजगुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृद्रोग, आमला और कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है। जहाँ पर पल का मानोल्लेख हुआ है वहाँ द्रव-द्वैगुण्य की परिभाषा लागू नहीं होती है। अतः ४ पल त्रायमाण की अपेक्षा ४० गुना जल (४० पल) ही ग्रहण किया गया है।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरमदूध या गरमजल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—पित्तज एवं रक्तज गुल्म में।

५४. क्षीरषट्पल घृत (चरक)

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।
पलिकैः सयवक्षारैः सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥१५३॥
क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम्।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥१५४॥

१. पीपर, २. पिपरामूल, ३. चव्य, ४. चित्रकमूल, ५. सोंठ, ६. यवक्षार—प्रत्येक द्रव्य १-१ पल अर्थात् ४६-४६ ग्राम लें; ७. गोघृत ७५० ग्राम तथा ८. गोदुग्ध ७५० मि.ली. लें। उपर्युक्त पीपर आदि छः द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। घृत को मूर्च्छित कर लें। ततः उस मूर्च्छित घृत में कल्क और दूध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर ३ लीटर जल मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से घृत छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। ६-१२ ग्राम की मात्रा में इस घृत को गरम दूध या गरम जल में मिलाकर पिलाने से कफजगुल्म, संग्रहणी, पाण्डु, प्लीहारोग, कास और ज्वर नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**— कफजगुल्म, प्लीहा एवं संग्रहणी में।

५५. भल्लातक घृत-१ (चरक)

भल्लातकानां द्विपलं पञ्चमूलं पलोन्मितम्।
साध्यं विदारीगन्धाढ्यमापोथ्य सलिलाढके ॥१५५॥
पादावशेषे पूते च पिप्पलीं नागरं वचाम्।
विडङ्गं सैन्धवं हिङ्गु यावशूकं विडं शटीम् ॥१५६॥
चित्रकं मधुकं रास्नां पिष्ट्वा कर्षसमं भिषक्।
प्रस्थञ्च पयसो दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥१५७॥
एतद्भल्लातकं नाम कफगुल्महरं परम्।
प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रहणीकासगुल्मनुत् ॥१५८॥

क्वाथ—१. शुद्ध भल्लातक ९३ ग्राम, २. शालपर्णी ४६ ग्राम, ३. पृश्निपर्णी ४६ ग्राम, ४. कण्टकारी ४६ ग्राम, ५. बृहती ४६ ग्राम, ६. गोक्षुर ४६ ग्राम, ७. विदारीकन्द ४६ ग्राम और जल ३ लीटर लें।

कल्क—१. पीपर १२ ग्राम, २. सोंठ १२ ग्राम, ३. वच १२ ग्राम, ४. विडङ्ग १२ ग्राम, ५. सैन्धव १२ ग्राम, ६. शुद्ध हींग १२ ग्राम, ७. यवक्षार १२ ग्राम, ८. विडलवण १२ ग्राम, ९. कचूर १२ ग्राम, १०. चित्रकमूल १२ ग्राम, ११. मुलेठी १२ ग्राम, १२. रास्ना १२ ग्राम, १३. गोघृत ७५० ग्राम तथा १४. गोदुग्ध ७५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः शुद्ध भिलावा से विदारीकन्द तक उक्त सभी ७ द्रव्यों को यवकुट करें और उक्त जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। मूर्च्छित घृत में इस क्वाथ को डालकर मन्दाग्नि से पकावें और पीपर से रास्ना तक के सभी १२ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें तथा घृत में मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर दूध मिलाकर पकावें। ततः कल्क के सम्यक् पाक हेतु ३ लीटर जल मिलाकर पकावें। जब जलीयांश सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे भल्लातक घृत कहते हैं। इसे ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ सेवन करने पर कफज गुल्म, प्लीहरोग, पाण्डुरोग, श्वास, ग्रहणी एवं कास रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—कफज गुल्म, प्लीह, श्वास एवं ग्रहणी रोग में।

५६. भल्लातक घृत-२ (च.द.)

भल्लातकात्कल्ककषायपक्वं
सर्पिः पिबेच्छर्करया विमिश्रम्।
तद्रक्तगुल्मं विनिहन्ति पीतं
बलासगुल्मं मधुना समेतम् ॥१५९॥

शुद्ध भल्लातक कल्कार्थ २५० ग्राम, शुद्ध भल्लातक क्वाथार्थ ४ किलो, गोघृत १ किलो तथा क्वाथार्थ जल १६ ली. लें। शुद्ध भल्लातक को सिल पर पीसकर कल्क बना लें। गोघृत का मूर्च्छन करें। भल्लातक (४ किलो) को १६ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और मूर्च्छित घृत में कल्क-क्वाथ मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ३-६ ग्राम की मात्रा में समभाग चीनी मिलाकर गरम दूध से सेवन करने से कफज गुल्म नष्ट हो जाता है।

विमर्श—ग्लोब्स हाथ में डालकर कल्क बनावें।

मात्रा—३-६ ग्राम। **अनुपान**—चीनी तथा गरम दूध मिला कर। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ तथा कहीं-कहीं श्याव वर्ण का भल्लातक तैल मिला होता है। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—कफज गुल्म में।

५७. धात्रीषट्पलघृत (च.द.)

धात्रीफलानां स्वरसैः षडङ्गं विपचेद् घृतम्।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥१६०॥

१. आमलकीस्वरस ७५० मि.ली. (१ प्रस्थ), २. गोघृत ७५० ग्राम, ३. पिप्पली ३१ ग्राम, ४. पिप्पलीमूल ३१ ग्राम, ५. चव्यमूल ३१ ग्राम, ६. चित्रकमूल ३१ ग्राम, ७. सोंठ ३१ ग्राम तथा ८. यवक्षार ३१ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः छः द्रव्यों का कल्क बनाकर घृत में मिलावें और आमला स्वरस या क्वाथ को मिलाकर पाक करें। सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल मिलाकर पाक करें। सुपक्व की परीक्षोपरान्त घृतपात्र में उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर उस घृत में घृत का चतुर्थांश चीनी और अष्टमांश सैन्धव मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १२ ग्राम इस घृत को गरमदूध में मिलाकर पिलाने से सभी तरह के गुल्म में हितकर है।

विमर्श—इसे षडङ्गपिप्पल्यादि घृत भी कहते हैं। यथा—पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः। यवक्षारश्च विज्ञेयमिति षडङ्गम्॥

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—गुल्म में।

५८. भार्ग्यादिषट्पल घृत (च.द.)

षड्भिः पलैर्मगधजाफलमूलचव्य-
विश्वौषधज्वलनयावककल्कपक्वम्।
प्रस्थं घृतस्य दशमूल्युरुबूकभार्गी-
क्वाथेऽप्यथो पयसि दध्नि च षट्पलाख्यम् ॥१६१॥
गुल्मोदरारुचिभगन्दरमग्निसाद-
कासज्वरक्षयशिरोग्रहणीविकारान्।

सद्यः शमं नयति ये च कफानिलोत्था
भार्ग्यादिषट्पलमिदं प्रवदन्ति वैद्याः ॥१६२॥

१. पीपर, २. पिपरामूल, ३. चव्य, ४. चित्रकमूल, ५. सोंठ तथा ६. यवक्षार—प्रत्येक द्रव्य १-१ पल (४६-४६ ग्राम) लें; ७. गोघृत ७५० ग्राम, ८. दशमूलक्वाथ ७५० मि.ली., ९. एरण्डमूल क्वाथ ७५० मि.ली., १०. भार्गीक्वाथ ७५० मि.ली., ११. गोदुग्ध ७५० मि.ली. और गोदधि ७५० ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः पीपर से यवक्षार तक के सभी द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित घृत में कल्क और गोदुग्ध मिलाकर पकावें। ततः दशमूलक्वाथ मिलाकर पाक करें। क्वाथ सूखने पर पुनः उसमें एरण्डक्वाथ मिलाकर पकावें। पुनः भार्गीक्वाथ मिलाकर पाक करें। इसके बाद दधि को मथकर मिलावें और पाक करें और अन्त में ३ लीटर जल में देकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में सुरक्षित रख लें। इसे 'भार्ग्यादिषट्पलाख्य घृत' नाम से जाना जाता है। १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ सेवन करने से गुल्म, उदररोग, संग्रहणी एवं वायु और कफ विकार सद्यः नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ ग्राम, **अनुपान**—गरम दूध में। **गन्ध**—घृत-गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—गुल्म, उदर रोग एवं संग्रहणी में।

५९. रसोनाद्य घृत (च.द.)

रसोनस्वरसे सर्पिः पञ्चमूलरसान्वितम्।
सुराऽऽरनालदध्यम्लमूलकस्वरसैः सह ॥१६३॥
व्योषदाडिमवृक्षाम्लयमानीचव्यसैन्धवैः ।
हिङ्ग्वम्लवेतसाजाजीदीप्यकैश्च पलान्वितैः ॥१६४॥
सिद्धं गुल्मग्रहण्यर्शःश्वासोन्मादक्षयज्वरान्।
कासापस्मारमन्दाग्निप्लीहशूलानिलाञ्जयेत् ॥१६५॥

क्वाथ—१. लशुन २२५० ग्राम, २. बेलछाल ४५० ग्राम, ३. सोनापाठा ४५० ग्राम, ४. अग्निमन्थ ४५० ग्राम, ५. गम्भारछाल ४५० ग्राम, ६. पाढल ४५० ग्राम, ७. मद्य २२५० मि.ली., ८. काञ्जी २२५० मि.ली. ९. दधि २२५० ग्राम, १०. काञ्जी की तली में बैठी खट्टी मूली २२५० ग्राम और ११. घृत २२५० ग्राम लें।

कल्क—१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. अनारदाना, ५. वृक्षाम्ल, ६. अजवायन, ७. चव्य, ८. सैन्धव, ९. शुद्ध हींग, १०. अम्लवेतस, ११. श्वेतजीरा तथा १२. अजवायन—प्रत्येक द्रव्य १-१ पल अर्थात् ४६-४६ ग्राम लें। कुल कल्क ४८ तोला अर्थात् ५६० ग्राम हुआ।

सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः सोंठ से अजवायन तक के सभी १२ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। लहसुन को कूटकर चतुर्गुण जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर मूर्च्छित घृत में मिला लें और कल्क भी उसी में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। ततः बृहत्पञ्चमूल का क्वाथ बनाकर उक्त घृत में मिलाकर पाक करें। क्वाथ सूखने पर मद्य, काञ्जी, दही तथा पीसी हुई मूली मिलाकर पाक करें। सम्यक् पाक के लिए घृत से चौगुना जल देकर पुनः पकावें। जब जलीयांश सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ मिलाकर पीने से गुल्म, ग्रहणी, अर्श, श्वास, उन्माद, क्षयरोग, ज्वर, कास, अपस्मार, मन्दाग्नि, प्लीहवृद्धि, शूलरोग और वातविकार नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध से। **गन्ध**—लशुनगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—लशुन जैसा तीक्ष्ण। **उपयोग**—गुल्म, ग्रहणी, अर्श, शूल एवं प्लीह वृद्धि में।

६०. वृश्चीराद्यरिष्ट (च.द.)

वृश्चीरमुरुबूकं च वर्षाह्वं बृहतीद्वयम्।
चित्रकं च जलद्रोणे पचेत् पादावशेषितम् ॥१६६॥
मागधीचित्रकक्षौद्रलिप्तकुम्भे निधापयेत्।
मधुनः प्रस्थमावाप्य पथ्याचूर्णार्द्धसंयुतम् ॥१६७॥
व्युपोषितं दशाहं च जीर्णभक्तः पिबेन्नरः।
अरिष्टोऽयं जयेद् गुल्ममविपाकं सुदुस्तरम् ॥१६८॥

१. श्वेतपुनर्नवा, २. एरण्डमूल छाल, ३. रक्तपुनर्नवा, ४. बृहती, ५. कण्टकारी और ६. चित्रकमूल—प्रत्येक द्रव्य ३७५ ग्राम लें अर्थात् कुल मिलाकर अर्धतुला द्रव्य लें। क्वाथार्थ जल १२ ली. क्वाथ करें, चौथाई शेष रखें। ७. पीपर ९३ ग्राम, ८. चित्रकमूल ९३ ग्राम, ९. मधु १८७ ग्राम, १०. मधु ७५० ग्राम और ११. हरीतकीचूर्ण ३७५ ग्राम लें। सर्वप्रथम श्वेत-पुनर्नवा से चित्रकमूल तक के सभी द्रव्यों को यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। मिट्टी के नये घड़े में पीपर और चित्रकमूलचूर्ण तथा २५० ग्राम मधु मिलाकर घड़े के अन्दर चारों ओर लेप करें। ततः उसमें क्वाथ और ७५० ग्राम मधु मिलाकर घड़ा को स्थिर रखकर हरीतकी यवकुट का प्रक्षेप देकर मुख बन्द करें। घड़े की तली में भूसी या पुआल या कोई गद्दी रखें। १५ दिनों के बाद औषधि को कपड़े से छानकर साफ बोतलों में भरें। भोजन करने पर इस अरिष्ट को १२ मि.ली. की मात्रा में पीने से गुल्म और अजीर्ण (अपच) नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२ मि.ली.। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ द्रव्य। **स्वाद**—तीक्ष्ण। **उपयोग**—गुल्म और अपच में।

गुल्म रोग में पथ्य

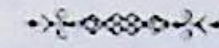
स्नेहः स्वेदो विरेकश्च बस्तिर्बाहुशिराव्यधः।
लङ्घनं वर्त्तिरभ्यङ्गः स्नेहः पक्वे तु पाटनम् ॥१६९॥
संवत्सरसमुत्पन्नाः कलमा रक्तशालयः।
खडः कुलत्थयूषश्च धन्वमांसरसः सुरा ॥१७०॥
गवामजायाश्च पयो मृद्वीका च परूषकम्।
खर्जूरं दाडिमं धात्रीनागरङ्गाम्लवेतसम् ॥१७१॥
तक्रमेरण्डतैलं च लशुनं बालमूलकम्।
पत्तुरो वास्तुकं शिग्रु यवक्षारो हरीतकी ॥१७२॥
रामठं मातुलुङ्गं त्र्यूषणं सुरभीजलम्।
यदन्नं स्निग्धमुष्णं च बृंहणं लघु दीपनम् ॥
वातानुलोमनं चैव पथ्यं गुल्मे नृणां भवेत् ॥१७३॥

स्नेहकर्म, स्वेदन, विरेचन, बस्ति, बाहु की सिरा का वेधन, लंघन, वर्त्ति-प्रयोग, अभ्यङ्ग, स्नेहपान, गुल्म पकने पर चीर-फाड़ करना चाहिए। १ वर्ष का पुराना शालिचावल, खड-कुलत्थ-यूष-जंगली पशु-पक्षियों के मांसरस, सुरा, गाय एवं बकरी का दूध, द्राक्षा, फालसा फल, खर्जूर (छोहाड़ा), अनार, आमला, सन्तरा, अम्लवेतस, तक्र, एरण्डतैल, लशुन, छोटी मूली, पत्तूर, बथुआ शाक, सहिजन, यवक्षार, हरीतकी, हींग, बिजौरानिम्बु, त्रिकटु, गोमूत्र, स्निग्ध एवं उष्ण अन्न, बृंहण, लघु, दीपन एवं वायु अनुलोमक द्रव्य गुल्म रोग में हितकर है।

गुल्म में अपथ्य

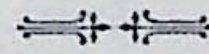
वातकारीणि सर्वाणि विरुद्धान्यशनानि च।
वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् मधुराणि फलानि च ॥१७४॥
शुष्कशाकं शमीधान्यं विष्टम्भीति गुरूणि च।
अधोवातशकृन्मूत्रश्रमश्वासाश्रुधारणम्।
वमनं जलपानं च गुल्मरोगी परित्यजेत् ॥१७५॥
वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ् शुष्कशाकानि वैदलम्।
न खादेच्चालुकं गुल्मी मधुरापि फलानि च ॥१७६॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां गुल्माधिकारः।



वातकारक सभी द्रव्य, परस्पर विरुद्ध अन्नादि का भोजन, शुष्कमांस, मूली, मछलियाँ, मधुर फल, सूखा शाक, शमीधान्य, विष्टम्भी एवं गुरुपाकी भोजन, अपानवायु, पुरीष, मूत्र, श्रमोत्पन्न श्वास, अश्रु आदि के वेगों का रोकना, वमन तथा अधिक जलपान करना गुल्म रोगी को त्याग देना चाहिए। शुष्क मांस, बड़ी एवं मोटी मूली, मछलियाँ, शुष्क शाक, मुद्ग-माषादि विदल, आलू एवं मधुर फलों को गुल्म के रोगियों को नहीं खाना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य गुल्माधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ हृद्रोगाधिकारः (३३)

वातज हृदय रोग चिकित्सा (च.द.)

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम्।
द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन च ॥१॥

वातज हृदय रोग में रोगी को स्नेहपान कराकर स्निग्ध होने के बाद दशमूलक्वाथ में स्नेह और सैन्धवलवण मिलाकर पिलाने के बाद वमन कराना चाहिए।

१. पिप्पल्यादि चूर्ण (च.द.)

पिप्पल्येला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम्।
सौवर्चलमथो शुण्ठी अजमोदा च चूर्णितम् ॥२॥
फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः।
पाययेच्छुद्धदेहञ्च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥३॥

१. पीपर, २. छोटी इलायची, ३. वच, ४. शुद्ध हींग, ५. यवक्षार, ६. सैन्धवलवण, ७. सौवर्चलनमक, ८. सोंठ तथा ९. अजमोदा—सभी द्रव्य १-१ भाग लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों को मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर काच के पात्र में रख लें। इस चूर्ण को ३ से ५ ग्राम की मात्रा में अनारस्वरस या निम्बुस्वरस, मुसम्मी-स्वरस अथवा सन्तरा आदि फलों के स्वरस से या काञ्जी, कुलत्थक्वाथ, दही, मद्य और आसवादि किसी एक द्रव के साथ स्नेह मिलाकर पिलाने से वमनादिक से शुद्ध शरीर वाले हृदय रोगी को लाभ होता है।

२. हरीतक्यादि चूर्ण

हरीतकी वचा रास्ना पिप्पलीनागरोद्भवम्।
शटीपुष्करमूलोत्थं चूर्णं हृद्रोगनाशनम् ॥४॥

१. हरीतकी, २. वच, ३. रास्ना, ४. पीपर, ५. सोंठ, ६. कचूर तथा ७. पुष्करमूल—समभाग लें। इन्हें सम्मिलित सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को २ ग्राम की मात्रा में मधु से सेवन करने पर हृदय रोग नष्ट हो जाता है।

३. पुष्करमूलादि कल्क (चरक)

सपुष्कराख्यं फलपूरमूलं
महौषधं शट्यभया च कल्काः।
क्षाराम्लसर्पिर्लवणैर्विमिश्राः
स्युर्वातहृद्रोगविकर्त्तिकाघ्नाः ॥५॥

१. पुष्करमूल, २. बिजौरानिम्बूमूल, ३. सोंठ, ४. कचूर, तथा ५. हरीतकी—समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण बनाकर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बना लें। २ से ३ ग्राम की मात्रा में इस कल्क को यवक्षार, घी एवं लवण मिलाकर खिलाने से वातज हृद्रोग और विकर्त्तिका रोग नष्ट हो जाते हैं।

४. शुण्ठी क्वाथ (च.द.)

नागरं वा पिबेदुष्णं कषायञ्चाग्निवर्द्धनम्।
कासश्वासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम् ॥६॥

सोंठ के सुखोष्ण क्वाथ ५० मि.ली. में १० ग्राम मधु मिलाकर पीने से कास, श्वास, वायु, शूल तथा हृद्रोग नष्ट हो जाते हैं।

५. पुष्करादि क्वाथ (चरक)

क्वाथः कृतः पुष्करमातुलुङ्ग-
पलाशपूतीकशटीसुराह्वैः।
सनागराजाजिवचायमानी-
सक्षार उष्णो लवणश्च पेयः ॥७॥

१. पुष्करमूल, २. बिजौरानिम्बुमूल, ३. पलाशबीज, ४. पूतीकरञ्ज, ५. कचूर और ६. देवदारु—प्रत्येक द्रव्य ५-५ ग्राम लें तथा यवकुट करें और १६ गुना जल में क्वाथ करें तथा अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में—सोंठचूर्ण, जीराचूर्ण, अजवाइनचूर्ण, वचचूर्ण, यवक्षार तथा सैन्धवचूर्ण—इन सभी द्रव्यों के चूर्ण ५००-५०० मि.ग्रा. की मात्रा में मिलाकर गरम क्वाथ पिलाने से हृदयरोग शान्त हो जाता है।

६. पित्तज हृदयरोग चिकित्सा (च.द.)

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत् ॥८॥

गम्भारछाल एवं मुलेठी—इन दोनों के क्वाथ में मधु, चीनी और गुड़ मिलाकर पिलावें और वमन करावें।

७. पैत्तिक हृदयरोग में घृतपान (च.द.)

पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम्।
घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान् ॥९॥

पित्तजहृद्रोग में जीवनीयगणोक्त मधुर द्रव्यों या काकोल्यादि गणोक्त द्रव्यों के कल्क-कषाय से सिद्ध घृत तथा ज्वर रोग में कहे गये पित्तघ्न द्रव्यों से साधित घृत का पान कराना लाभप्रद होता है।

८. पैत्तिक हृद्रोग में प्रदेह-परिषेचनादि (चरक)

शीताः प्रदेहाः परिषेचनानि
तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ।
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्यात्
शुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥
पिष्ट्वा पिबेद्वापि सिताजलेन
यष्ट्याह्वयं तिक्तकरोहिणीञ्च ॥१०॥

१. **प्रदेह**—पित्तज हृदोग में हृदय प्रदेश पर श्वेत चन्दन, खस, कर्पूर, कमलनाल आदि शीतल द्रव्यों का लेप परिषेचन करना चाहिए।

२. **परिषेचन**—शीतल जल में कपड़ा भिंगोकर हृदय प्रदेश पर परिषेचन करना चाहिए।

३. **विवेचन**—पित्तजहृद्रोग में—द्राक्षा-चीनी-मधु तथा फालसा के पके हुए फल तथा इक्षु रस मिलाकर अच्छी तरह मसलकर छान लें और विरेचनार्थ इस शर्बत को पिलाना चाहिए। विरेचन के बाद शुद्ध शरीर वाले रोगी को पित्तघ्न एवं शीतल अन्न-पान का सेवन करना चाहिए। ततः यष्टिमधु ५ ग्राम, कुटकी ५ ग्राम के चूर्ण को चीनी से पीसकर बनाया शर्बत पिलाना चाहिए।

९. अर्जुनादि सिद्ध क्षीर (च.द.)

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये ।
सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥११॥

अर्जुनछाल १२ ग्राम, दूध ३७५ मि.ली. तथा जल ३७५ मि.ली. लें। अर्जुनचूर्ण को यवकुट कर लें । एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में जल, दूध तथा अर्जुनचूर्ण को मिलाकर पाक करें। जब पानी जल जाय और केवल क्षीरावशेष रहे तो छान लें और उसमें थोड़ी चीनी मिलाकर गरम-गरम रोगी को पिलाना चाहिए।

१०. अर्जुनत्वक् चूर्ण (च.द.)

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा
पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये ।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं
हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥१२॥

अर्जुनचूर्ण ३ ग्राम तथा घृत ६ ग्राम मिलाकर चाटें और ऊपर से चीनी मिलाकर गरम दूध २०० मि.ली. पिलाना चाहिए। इससे हृद्रोग, रक्तपित्त, जीर्णज्वर रोग नष्ट हो जाते हैं और रोगी दीर्घायुष्य प्राप्त करता है।

११. कफज हृदोग चिकित्सा (च.द.)

वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते ।
वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिप्पल्यादि च पाययेत् ॥१३॥

कफप्रकोप जन्य हृद्रोग में वच और नीम की छाल के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलावें । इस क्वाथ से रोगी को वमन होगा। ततः वातज हृद्रोगोक्त पिप्पल्यादिचूर्ण मधु से चटावें।

विमर्श—निम्ब क्वाथ ५०० मि.ली. में ६ ग्राम वचाचूर्ण मिला कर पिलाया जा सकता है। अथवा—वचा और निम्ब क्वाथ अलग-अलग करके भी पिलाया जा सकता है। दोनों स्थिति में वमन होगा ही।

१२. सूक्ष्मैलादि चूर्ण (बृ.नि.र.)

सूक्ष्मैला मागधीमूलं प्रलीढं सर्पिषा सह ।
नाशयेदाशु हृद्रोगं कफजं सपरिग्रहम् ॥१४॥

छोटी इलायची का बीज १ भाग और पिपरामूल १ भाग दोनों का चूर्ण कर काचपात्र में संग्रह करें। इस चूर्ण को १ से २ ग्राम की मात्रा में घी के साथ चाटने से उपद्रवयुक्त कफज हृद्रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है।

१३. त्रिवृतादि चूर्ण (बृ.नि.र.)

त्रिवृच्छटी बला रास्ना शुण्ठी पथ्या सपौष्करा ।
चूर्णिता वा शृता मूत्रे पातव्याः कफहृद्गदे ॥१५॥

१. निशोथ, २. कचूर, ३. बलामूल, ४. रास्ना, ५. सोंठ, ६. हरीतकी तथा ७. पुष्करमूल (समभाग) लें। इनका सूक्ष्मचूर्ण बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। ३ से ५ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ चाटकर गोमूत्र में ५० मि.ली. पियें। अथवा—इन्हें मिलित यवकुट कर २५ ग्राम यवकुट को १६ गुने गोमूत्र के साथ पाक करें। अष्टमांश शेष रहने पर छानकर कफज हृद्रोगी को पिलावें। इस योग से अधिक लाभ होता है।

त्रिदोषज हृद्रोग चिकित्सा (चरक)

त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्या-
दन्नञ्च सर्वेषु हितं विधेयम् ।
हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव
कार्यं त्रयाणामपि कर्मशस्तम् ॥१६॥

त्रिदोषज हृदय रोग में पहले लंघन करावें। पुनः त्रिदोषनाशक अन्न-पान का विधान करें। दोषो की हीन-अति-मध्य आदि अवस्था समझकर अर्थात् अनुबन्ध्यानुबन्ध भाव को समझकर दोष प्रशामक चिकित्सा करनी चाहिए।

१४. पुष्करमूल चूर्ण (च.द.)

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेण समायुतम् ।
हृच्छूलश्वासकासघ्नं क्षयहिक्कानिवारणम् ॥१७॥

पुष्करमूल का चूर्ण १ से २ ग्राम की मात्रा में मधु मिलाकर चाटने से हृच्छूल-श्वास-कास-क्षय और हिक्का रोग नष्ट हो जाते हैं।

१५. गोधूमार्जुन लेह (च.द.)

तैलाज्यगुडविपक्कं चूर्णं गोधूमपार्थजं वाऽपि।
पिबति पयोऽनु च स भवेज्जितसकलहृदामयः पुरुषः॥

१. गेहूँ का चूर्ण (आटा) ५० ग्राम, २. तिलतैल १२ मि.ली. ३. गोघृत १२ ग्राम, ४. गुड़ ५० ग्राम, ५. अर्जुनचूर्ण ६ ग्राम तथा जल १०० मि.ली. लें। सर्वप्रथम तिलतैल गरम करें और उसमें घी भी मिलाकर उसमें गेहूँचूर्ण डालकर भूनें। पुन: उसमें गुड़, अर्जुनचूर्ण और जल मिलाकर लप्सी या हलवा जैसा बना लें। शीतल होने पर उसे खाकर २०० मि.ली. चीनी मिश्रित गरम दूध पीयें। इसका प्रतिदिन प्रयोग करने से सभी तरह के हृदय रोग नष्ट हो जाते हैं।

१६. नागबला-अर्जुनचूर्ण (च.द.)

मूलं नागबलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत्।
हृदोगश्वासकासघ्नं ककुभस्य च वल्कलम्॥१९॥
रसायनं परं बल्यं वातजिन्मासयोजितम्।
संवत्सरप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम्॥२०॥

१. नागबलामूलचूर्ण (गंगेरन) २ से ३ ग्राम को चीनी मिलाकर गाय के दूध के साथ सेवन करने से अथवा—

२. अर्जुनत्वक्चूर्ण २ से ३ ग्राम की मात्रा में चीनी मिलाकर गरम गाय के दूध से सेवन करने से हृद्रोग, श्वास, कासरोग नष्ट हो जाते हैं। यह रसायन एवं परम बल्य है। इन दोनों में से किसी एक को १ महीना तक सेवन करने से वायु विकार नष्ट हो जाता है तथा १ वर्ष तक सेवन करने वाला व्यक्ति १०० वर्ष तक जीवित रहता है।

१७. हिंग्वादि चूर्ण (च.द.)

हिङ्गूग्रगन्धा विडविश्वकृष्णा-
कुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम्।
पिबेच्च सौवर्चलपुष्कराढ्यं
यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम्॥२१॥

१. शुद्ध हींग, २. वच, ३. विडलवण, ४. सोंठ, ५. पीपर, ६. कूठ, ७. हरीतकी, ८. चित्रकमूल, ९. यवक्षार, १०. सौवर्चललवण तथा ११. पुष्करमूल—इन्हें सममात्रा में लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके बाद यव को कूटकर टुकड़े कर अष्ट गुण जल में क्वाथ करें तथा अष्टमांश शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में ३ से ५ ग्राम की मात्रा में उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर पिलाने से शूल तथा हृदय विकार नष्ट हो जाता है।

विमर्श—यवक्वाथ के स्थान पर वार्ली वाटर का भी उपयोग किया जा सकता है।

१८. ककुभादि चूर्ण

ककुभत्वग् वचा रास्ना बला नागबलाऽभया।
शटी पुष्करमूलञ्च पिप्पली विश्वभेषजम्॥२२॥
सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य सर्पिषा शाणमात्रया।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय सर्वहृद्रोगशान्तये॥२३॥

१. अर्जुनत्वक्, २. वच, ३. रास्ना, ४. बलामूल, ५. नागबला, ६. हरीतकी, ७. कपूर, ८. पुष्करमूल, ९. पीपर तथा १०. सोंठ—समभाग में इनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर काचपात्र में रख लें तथा घी के साथ प्रात: सेवन करने से सभी प्रकार के हृदयरोग शान्त हो जाते हैं।

१९. पाठाद्य चूर्ण (च.द.)

पाठां वचां यवक्षारमभयां साम्लवेतसम्।
दुरालभां चित्रकञ्च त्र्यूषणञ्च फलत्रयम्॥२४॥
शटीं पुष्करमूलञ्च तिन्तिडीकं सदाडिमम्।
मातुलुङ्गस्य मूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥२५॥
सुखोदकेन मद्यैर्वा प्लुतान्येतानि पाययेत्।
अर्शः शूलञ्च हृद्रोगं गुल्मञ्चाशु व्यपोहति॥२६॥

१. पाठा, २. वच, ३. यवक्षार, ४. हरीतकी, ५. अम्लवेतस, ६. यवासा, ७. चित्रकमूल, ८. सोंठ, ९. पीपर, १०. मरिच, ११. आमला, १२. हरीतकी, १३. बहेड़ा, १४. कचूर, १५. पुष्करमूल, १६. इमलीफल, १७. अनारदाना तथा १८. बिजौरानिम्बुमूल—इन्हें समान भाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस पाठाद्यचूर्ण को २ से ४ ग्राम की मात्रा में उष्णोदक या मद्य के साथ मिलाकर पिलाने से अर्श, शूल, हृदयरोग और गुल्मरोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

२०. दशमूल क्वाथ (च.द.)

दशमूलकषायन्तु लवणक्षारसंयुतम्।
कासं श्वासञ्च हृद्रोगं गुल्मं शूलञ्च नाशयेत्॥२७॥

दशमूल के क्वाथ में सैन्धवलवण और यवक्षार मिलाकर पिलाने से कास, श्वास, हृद्रोग, गुल्म और शूलरोग नष्ट हो जाते हैं।

२१. गोधूमार्जुन पाक (च.द.)

गोधूमककुभचूर्णं छागपयो गव्यसर्पिषा पक्वम्।
मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम्॥२८॥

गेहूँ का चूर्ण (आटा) ४६ ग्राम, अर्जुनचूर्ण ३-५ ग्राम, गोघृत ४६ ग्राम, चीनी ५० ग्राम, बकरी दूध १०० मि.ली तथा मधु १० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक छोटी कड़ाही में घृत डालकर गेहूँ का आँटा अच्छी तरह भून लें। तत: उसमें बकरी का दूध और चीनी मिलाकर पकावें। पकाते समय उसमें अर्जुनचूर्ण डालकर अच्छी तरह मिला लें। जब हलवा जैसा गाढ़ा हो जाय

तो चूल्हे से पात्र को उतार लें। ठण्डा होने पर उस मधु मिलाकर भयंकर हृदय रोग में रोगी को खिलावें। इससे रोगी को अधिक लाभ होता है।

२२. मृगशृङ्ग भस्म प्रयोग (च.द.)

पुटदग्धमश्मपिष्टं हरिणविषाणं च सर्पिषा पिबतः ।
हृत्पृष्ठशूलमुपशममुपयात्यचिरेण कष्टमपि ॥२९॥

अर्कदुग्ध एवं कुमारीस्वरस में भावित एवं ३ बार गजपुट में भस्म किये मृगशृंगभस्म को २५० से ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में गरम गोघृत १२ ग्राम में मिलाकर पिलाने से हृच्छूल तथा असाध्य पृष्ठशूल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

कृमिज हृद्रोग चिकित्सा (च.द.)

कृमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत्पिशितौदनम् ।
दध्ना च पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥३०॥

कृमिज हृदय रोगी को स्नेह युक्त मांस, दही और तिलपिष्ट भात के साथ तीन दिनों तक खिलावें। चौथे दिन विरेचक औषधों द्वारा विरेचन करावें।

२३. विरेचन प्रयोग (च.द.)

सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः ।
विडङ्गाढं धान्याम्लं पाययेद्धितमुत्तमम् ॥३१॥

१. छोटीइलायचीचूर्ण, २. दालचीनीचूर्ण, ३. तेजपत्ताचूर्ण, ४. नागकेशरचूर्ण, ५. सैन्धवचूर्ण, ६. श्वेतजीराचूर्ण तथा ७. चीनीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य ५००-५०० मि.ग्रा. लें। ३-४ ग्राम चूर्ण जल से पिलावें। विरेचन होने के बाद दूसरे दिन काञ्जी के साथ विडङ्गचूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

२४. विडङ्गादि चूर्ण (च.द.)

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयुतम् ।
हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात् कृमयो नृणाम् ।
यवान्नं वितरेच्चास्मै सविडङ्गमतः परम् ॥३२॥

कृमिज हृदयरोग में ५० मि.ली. गोमूत्र में २ ग्राम विडङ्गचूर्ण और १ ग्राम कूठचूर्ण मिलाकर पिलाने से हृदय प्रदेश में प्रविष्ट कृमियाँ विरेचन (पुरीष के साथ) होकर बाहर निकल जाती हैं। विरेचन के बाद जौ की दलिया में विडङ्गचूर्ण मिलाकर सुपक्व कर खिलाना चाहिए।

२५. त्रिनेत्ररस (र.का.धे.)

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना ।
एकविंशतिधा चैवं भावितानि विधानतः ॥३३॥
माषमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
वातजं पित्तजं श्लेष्मसम्भूतं वा त्रिदोषजम् ॥
कृमिजं चापि हृद्रोगं निहन्त्येव न संशयः ॥३४॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रकभस्म (समभाग) लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर कज्जली बना लें। २-३ दिनों तक अच्छी तरह मर्दन करने के बाद उसमें अर्जुन त्वक् स्वरस की क्रमशः २१ भावना दें। धूप में अच्छी तरह सुखाने के बाद काचपात्र में संग्रहीत करें। सभी तरह के हृदय रोगियों को मधु के साथ माष मात्रा ६० मि.ग्रा. की मात्रा में चटाने से वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और कृमिज हृद्रोग निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—सभी प्रकार के हृदय रोग में।

२६. नागार्जुनाभ्र रस (र.र.स.)

सहस्रपुटनैः शुद्धं वज्राभ्रमर्जुनत्वचः ।
सत्त्वैविमर्दितं सप्तदिनं खल्ले विशोषितम् ॥३५॥
छायाशुष्का वटी कार्या नाम्नेदमर्जुनाह्वयम् ।
हृद्रोगं सर्वशूलार्शोहृल्लासच्छर्द्यरोचकान् ॥३६॥
अतीसारमग्निमान्द्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ।
शोथोदराम्लपित्तञ्च विषमज्वरमेव च ॥
हन्त्यन्यानपि रोगांश्च बल्यं वृष्यं रसायनम् ॥३७॥

सहस्रपुटी अभ्रकभस्म १०० ग्राम लें। अर्जुनत्वक्स्वरस (ताजा रस) में आप्लावित कर मर्दन करें। इस तरह ७ भावना देकर ७ दिनों तक मर्दन कर धूप में सुखा लें। अन्तिम ७वीं भावना के मर्दन के बाद १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'नागार्जुनाभ्ररस' कहते हैं। इसके सेवन से हृद्रोग, शूलरोग, अर्श, हृल्लास, वमन, अरुचि, अतिसार, अग्निमान्द्य, रक्तपित्त, उरःक्षत, क्षय, शोथ, उदररोग, अम्लपित्त और विषम ज्वर रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य रोग भी नष्ट हो जाते हैं। यह 'नागार्जुनाभ्ररस' बल्य, वृष्य और रसायन है।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—हृदयरोग, रक्तपित्त, क्षय एवं अम्लपित्त नाशक।

२७. हृदयार्णव रस (र.चि.म.)

सूतार्कौ गन्धकं क्वाथे वराया मर्दयेद् दिनम् ।
काकमाच्या वटीं कृत्वा चणमात्राञ्च भक्षयेत् ॥
हृदयार्णवनामाऽयं हृद्रोगदलनो रसः ॥३८॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक तथा ताम्रभस्म (समभाग) लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी

तरह कज्जली बना लें। उसमें ताम्रभस्म मिलाकर मर्दन करें। तत्पश्चात् त्रिफलाक्वाथ की १ भावना देकर दिन भर मर्दन करें। तत्पश्चात् काकमाचीस्वरस की भावना देकर पुनः १ दिन तक मर्दन करें। और २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में अच्छी तरह सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे हृदयार्णवरस कहते हैं। यह हृदय रोग को नष्ट करने वाला है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्णवर्ण। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—हृदयरोग में।

२८. पञ्चाननरस (र.र.स.)

सूतगन्धौ द्रवैर्धात्र्या मर्दयेद् गोस्तनीद्रवैः।
यष्टिखर्जूरसलिलैर्दिनञ्च परिमर्दयेत्॥
धात्रीचूर्णं सिताञ्चानु पिबेद्धृद्रोगशान्तये॥३९॥

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक (समभाग) लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बनाकर आमलास्वरस, द्राक्षा (अंगूर) स्वरस या दाख के क्वाथ, मुलेठी क्वाथ, छोहारा क्वाथ के साथ १-१ दिन मर्दन करें। तदनन्तर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में अच्छी तरह सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। हृदयरोग की शान्ति के लिए १-१ वटी आमला चूर्ण १ ग्राम और पीसी हुई चीनी २ ग्राम से मिलाकर खाकर ताजा जल पीना चाहिए।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—आमलाचूर्ण और चीनी से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कषायमधुर। **उपयोग**—हृद्रोग।

२९. प्रभाकरवटी

माक्षिकं लौहमभ्रञ्च तुगाक्षीरी शिलाजतु।
क्षिप्त्वा खल्लोदरे पश्चाद्भावयेत् पार्थवारिणा॥४०॥
वल्लद्वयमितां कुर्याद् वटीं छायाविशोषिताम्।
प्रभाकरवटी सेयं हृद्रोगान् निखिलाञ्जयेत्॥४१॥

१. स्वर्णमाक्षिकभस्म, २. लौहभस्म, ३. अभ्रकभस्म, ४. वंशलोचन तथा ५. शुद्ध शिलाजतु (समभाग) लें। एक खरल में माक्षिक, अभ्रक तथा लौहभस्म को मिलाकर मर्दन करें। ततः उसी में वंशलोचनचूर्ण मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद अर्जुन स्वरस गरम कर उसमें शुद्ध शिलाजतु पिघलाकर उपर्युक्त मर्दित औषधि के साथ मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद अर्जुनस्वरस की भावना देकर ७५० मि.ग्रा. (६ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे प्रभाकर वटी कहते हैं। यह सम्पूर्ण हृदय रोगों को नष्ट करती है।

मात्रा—७५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ (कत्थई)। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी हृदयरोगों में।

३०. चिन्तामणिरस

पारदं गन्धकञ्चाभ्रं लौहं वङ्गं शिलाजतु।
समं समं गृहीत्वा च स्वर्णं सूताङ्घ्रिसम्मितम्॥४२॥
स्वर्णस्य द्विगुणं रौप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत्।
चित्रकस्य द्रवेणापि भृङ्गराजाम्भसा ततः॥४३॥
पार्थस्याथ कषायेण सप्तकृत्वो विभावयेत्।
ततो गुञ्जामिताः कुर्याद् वटीश्छायाप्रशोषिताः॥४४॥
एकैकां दापयेदासां गोधूमक्वाथवारिणा।
हृद्रोगान्निखिलान् हन्ति व्याधीन्फुप्फुसजानपि॥४५॥
प्रमेहान् विंशतिं श्वासान् कासानपि सुदुस्तरान्।
बलतुष्टिकरो हृद्यो रसश्चिन्तामणिः स्मृतः॥४६॥

१. शुद्ध पारद १२ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक १२ ग्राम, ३. अभ्रकभस्म १२ ग्राम, ४. लौहभस्म १२ ग्राम, ५. वङ्गभस्म १२ ग्राम, ६. शुद्ध शिलाजतु १२ ग्राम, ७. स्वर्णभस्म ३ ग्राम और ८. रजतभस्म ६ ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः अन्य सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। चित्रकमूलक्वाथ में शिलाजतु घोलकर भावना दें। ततः भृङ्गराज स्वरस की भावना दें। पुनः अर्जुनस्वरस में तीनों द्रवों में पृथक्-पृथक् ७ भावना दें तथा १-१ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को मधु के साथ चाटकर गेहूँ क्वाथ ५० मि.ली. पियें। इसके सेवन से सभी तरह के हृदय रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त फुफ्फुसगत विकार, २० प्रकार के प्रमेह, श्वास एवं असाध्य कास रोग नष्ट हो जाते हैं। इसे चिन्तामणि रस कहते हैं। यह बल्य, बृंहण एवं हृद्य हैं।

मात्रा—१२५ मि.ली.। **अनुपान**—मधु एवं गेहूँ क्वाथ। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—हृदयरोगघ्न, प्रमेहघ्न, बल्य एवं बृंहण है।

३१. विश्वेश्वररस

स्वर्णाभ्रलौहवङ्गानां रसगन्धकयोरपि।
वैक्रान्तस्य च संगृह्य भागांस्तोलकसम्मितान्॥४७॥
कर्पूरसलिलेनाथ भावयित्वा यथाविधि।
रक्तिकैकप्रमाणेन विदध्याद्वटिकास्ततः॥४८॥
अयं विश्वेश्वरो नाम रसः फुप्फुसजान् गदान्।
हृद्रोगांश्च जयेत् सर्वान् संशयोऽत्र न विद्यते॥४९॥

१. स्वर्णभस्म, २. अभ्रकभस्म, ३. लौहभस्म, ४. वङ्ग-भस्म, ५. शुद्ध पारद, ६. शुद्ध गन्धक तथा ७. वैक्रान्तभस्म—प्रत्येक १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः अन्य सभी द्रव्यों की भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद कर्पूर को जल में घोलें; मर्दन कर

भावना दें और १२५ मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'विश्वेश्वररस' कहते हैं। इसे मधु के साथ सेवन करने से फेफड़े के रोग तथा सभी प्रकार के हृदयरोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—कर्पूर गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**— फेफड़े के रोग और सभी प्रकार के हृदयरोग में।

३२. शङ्करवटी

रसस्य भागाश्चत्वारो बलेरष्ट तथा मताः ।
त्रयो लौहस्य नागस्य द्वावित्येकत्र मर्दयेत् ॥५०॥
भावयेत् काकमाच्याश्च चित्रकस्यार्द्रकस्य च ।
स्वरसेन जयन्त्याश्च वासाया बिल्वपार्थयोः ॥५१॥
ततो गुञ्जाद्वयमितां विदध्याद् वटिकां भिषक् ।
एकैकां दापयेदासामीषदुष्णेन वारिणा ॥५२॥
जयेदियं फुप्फुसजान् रोगान् हृदयसम्भवान् ।
जीर्णज्वरं तथा घोरं प्रमेहानपि विंशतिम् ॥५३॥
कासश्वासामवातांश्च ग्रहणीमपि दुस्तराम् ।
वटी श्रीशङ्करप्रोक्ता बलपुष्टिविवर्द्धिनी ॥५४॥

१. शुद्ध पारद ४० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ८० ग्राम, ३. लौहभस्म ३० ग्राम तथा ४. नागभस्म २० ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक को एक खरल में मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य दोनों भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद काकमाची (मकोय) स्वरस, चित्रकमूलक्वाथ, आर्द्रक स्वरस, जयन्तीस्वरस, वासापत्रस्वरस, बिल्वपत्रस्वरस और अर्जुनत्वक्स्वरस की १-१ भावना देकर २-२ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा धूप में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। शंकर द्वारा कथित इस वटी को १-१ वटी उष्णजल के साथ सेवन करने से फेफड़े के रोग, हृदयरोग, जीर्णज्वर, भयंकर २० प्रकार के प्रमेहों, कास, श्वास, आमवात और असाध्य ग्रहणीरोग नष्ट हो जाते हैं। यह वटी बलवर्धक और शरीरपुष्टिकर है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णजल से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कषाय-तिक्त। **उपयोग**—हृदयरोग, फेफड़े के रोग, आमवात, जीर्णज्वर एवं प्रमेह रोग में।

३३. कल्याणसुन्दररस

सिन्दूरमभ्रं तारञ्च ताम्रं हेम च हिङ्गुलम् ।
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा मर्दयेद् वह्निवारिणा ॥५५॥
हस्तिशुण्ड्यम्भसा पश्चाद्भावयित्वा च सप्तधा ।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा कोष्णतोयेन दापयेत् ॥५६॥
उरस्तोयञ्च हृद्रोगं वक्षोवातमुरोऽस्त्रकम् ।
फौप्फुसान् हन्ति रोगांश्च रसः कल्याणसुन्दरः ॥५७॥

१. रससिन्दूर, २. अभ्रकभस्म, ३. रजतभस्म, ४. ताम्रभस्म, ५. स्वर्णभस्म और ६. शुद्धहिङ्गुल (समभाग) लें। एक खरल में पहले रससिन्दूर को पीसें। ततः उसी के साथ सभी द्रव्यों को मिलाकर चित्रकमूलक्वाथ में ७ भावना दें। इसके बाद हस्तिशुण्डीस्वरस की ७ भावना देकर १-१ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'कल्याणसुन्दररस' नाम से जाना जाता है। इस वटी को गरम पानी के साथ सेवन करने से उरस्तोय (Pleurisy), हृद्रोग, वक्षगतवात, उरःक्षतजन्य रक्तस्राव तथा समस्त फुफ्फुसगत विकार नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु-तिक्त। **उपयोग**—हृद्रोग, उरस्तोयरोग में।

३४. रत्नाकररस (आयुर्वेदविज्ञान)

हेमहीरकवैक्रान्तवङ्गाभ्ररसगन्धकाः ।
समभागमिता योज्याः सर्वतुल्यमयो मतम् ॥५८॥
खल्ले निक्षिप्य सर्वाणि भावयेत्ककुभाम्भसा ।
गोधूमस्य यवस्यापि क्वाथेन सप्तधा पृथक् ॥५९॥
ततः कन्याऽम्बुना प्राज्ञस्त्रीन् वारान् परिषेचयेत् ।
रक्तशाल्यन्तरे पिण्डं निशाः सप्त च धारयेत् ॥६०॥
समुद्धृत्य वटीश्चाथ कुर्यात्स्विन्नकलायवत् ।
अर्जुनस्य कषायेण काञ्जिकेनासवेन वा ॥६१॥
गोधूमस्य यवस्यापि क्वाथेन हविषाऽपि वा ।
यथादोषानुपानैर्वा प्रदद्यात्परमौषधम् ॥६२॥
वातिकं पैत्तिकं चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
कृमिजं हृद्गदं चापि कौष्ठिकं पृथुकं तथा ॥६३॥
तथाऽऽवरणिकं घोरं गदं विक्षेपिकाऽभिधम् ।
मेदःसूत्राभिधं चापि परिक्षयगदं तथा ॥६४॥
आयामिकां च यक्ष्माणं वातपित्तकफामयान् ।
हन्त्ययं निखिलान् रोगान् वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥६५॥

१. स्वर्णभस्म, २. हीरकभस्म, ३. वैक्रान्तभस्म, ४. वङ्गभस्म, ५. अभ्रकभस्म, ६. शुद्ध पारद तथा ७. शुद्ध गन्धक—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग और ८ लौहभस्म ७ भाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य भस्मों को इस कज्जली में मिलाकर मर्दन करें। ततः अर्जुनत्वक् स्वरस या क्वाथ की ७ भावना दें। इसके बाद गेहूँ और जौ के क्वाथ की पृथक्-पृथक् ७-७ भावना दें। ततः घृतकुमारीस्वरस की ३ भावना दें। एक बड़ा-सा गोला बनाकर सुखा लें तथा कपड़े में बाँधकर लाल शालिधान की ढेर में ७ दिन में छुपाकर रखें।

आठवें दिन में इस गोलक को निकालकर खरल में पीसें और अर्जुनस्वरस की भावना देकर २-२ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और बाद में धूप में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को मधु और अर्जुनस्वरस या काञ्जी या गेहूँ क्वाथ या जौ क्वाथ या घृत से (यथादोषानुपान से) सेवन करने से यह वातज-पित्तज-कफज-सन्निपातज तथा कृमिज हृद्रोगों को नष्ट करती है। यह कौष्ठिक, पृथुक, आवरणिक, विक्षेपिका, मेद:सूत्र, परिक्षय और आयामिका नामक हृद्रोगों की अच्छी औषधि है। यह यक्ष्मा तथा वात, पित्त एवं कफ के रोग तथा अन्य रोगों का उसी तरह नाश करती है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्षों को नष्ट कर देता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं अर्जुनस्वरस, गेहूँ या जौ के क्वाथ से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—हृदयरोगों में।

३५. वल्लभ घृत (च.द.)

मुख्यं शतार्द्धञ्च हरीतकीनां
सौवर्चलस्यापि पलद्वयञ्च।
पक्वं घृतं वल्लभकेति नाम्ना
हृच्छ्वासशूलोदरमारुतघ्नम् ॥६६॥

हरीतकी ५० नग, सौवर्चललवण ९३ ग्राम (२ पल), घृत ६०० कि.ग्रा. तथा घृत से ४ गुना पाकार्थ जल २.४०० मि.ली. लें। हरीतकी का चूर्ण करें तथा सौवर्चललवण मिलाकर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। ततः घृत का मूर्च्छन करें। अब मूर्च्छित घृत में कल्क और उपर्युक्त मात्रा में जल मिलाकर पाक करें। जब जलांश जल जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ मिलाकर पीने से हृद्रोग, श्वास, शूल और उदर रोग तथा वात रोग नष्ट हो जाते हैं। इसे वल्लभ घृत कहते हैं।

विमर्श— कल्क से ४ गुना घृत और घृत से ४ गुना क्वाथ या अन्य द्रव लेना चाहिए। इस तरह की स्नेहपाक की परिभाषा के अनुसार घृतपाक करना चाहिए।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—हृद्रोग, श्वास, शूल एवं वातविकार में।

३६. श्वदंष्ट्रादि घृत (च.द)

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्यकत्तृणम्।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा ॥६७॥
पलिकान् साधयेत्तेषां रसे क्षीरे चतुर्गुणे।
कल्कैः स्वगुप्तर्षभकमेदाजीवन्तिजीवकैः ॥६८॥
शतावर्य्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत् ॥६९॥
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःश्वासकासक्षयापहम्।
धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदः ॥७०॥

क्वाथ-द्रव्य—१. गोक्षुर, २. खस, ३. मंजीठ, ४. बलामूल, ५. गम्भारीमूल, ६. गन्धतृण, ७. दर्भमूल, ८. पृश्निपर्णी, ९. पलाशबीज, १०. ऋषभक तथा ११. शालपर्णी—प्रत्येक द्रव्य १८५ ग्राम लें। **कल्क-द्रव्य**—१. केवाँचबीज, २. ऋषभक, ३. मेदा, ४. जीवन्ती, ५. जीवक, ६. शतावरी, ७. ऋद्धि, ८. मुनक्का, ९. शक्कर, १०. मुण्डी तथा ११. मृणाल (कमलपुष्प-दण्ड)—प्रत्येक द्रव्य ६५ ग्राम लें। गोघृत ३ किलो तथा गोदुग्ध १२ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः क्वाथ द्रव्य को यवकुट करें और ४ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर उतारकर छान लें। इस क्वाथ को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। इसके बाद में कल्क द्रव्य के सभी द्रव्यों को कूट-पीसकर चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें तथा पकते हुए घृत में मिलावें। जब इस घृत का जलीयांश सूखने लगे तो १२ लीटर गोदुग्ध मिलाकर पाक करें। दूध सूखने पर कल्क के सम्यक् पाक के लिए घृत से चौगुना जल मिलाकर पाक करें। जल सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य पाकपरीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल में मिलाकर पिलाने से वातविकार, पित्तविकार, हृद्रोग, शूलरोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, श्वास, कास तथा क्षयरोग नष्ट हो जाते हैं। यह घृत धनुष चलाने वाले, स्त्री-सेवन (मैथुन) करने वाले, मद्याधिक सेवन करने वाले और भार ढोने वाले खिन्न (दुःखी) पुरुषों के बल एवं मांस को बढ़ाता है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध और गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—हृद्रोग, मूत्रविकार एवं क्षय में तथा बल एवं मांस की वृद्धि के लिए उपयोगी है।

३७. बलादि घृत (च.द.)

घृतं बलानागबलाऽर्जुनाम्बु-
सिद्धं सयष्टीमधुपादकल्कम्।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तं
कासानिलास्त्रं शमयत्युदीर्णम् ॥७१॥

१. घृत ७५० ग्राम, २. बलामूल १ किलो, ३.

नागबलामूल १ किलो, ४. अर्जुनत्वक् १ किलो लें तथा कल्कार्थ मुलेठी १८७ ग्राम लें। सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के पात्र में घृत का मूर्च्छन करें। ततः बला, नागबला एवं अर्जुन छाल को यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें। अवशेष ३ लीटर क्वाथ को छानकर मूर्च्छित घृत में मिलाकर पाक करें। यष्टिमधु को कूट-पीसकर कल्क बना लें और पकते घृत में मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर इस घृत को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस बलादिघृत को १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध में मिलाकर पिलावें। इसको पीने से हृद्रोग, उदरशूल, उरःक्षत, रक्तपित्त, कासरोग, वायुविकार एवं रक्तविकार का शमन हो जाता है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरमदूध या गरमजल में मिलाकर। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कषाय-तिक्त। **उपयोग**—हृद्रोग, शूल, रक्तपित्त एवं उरःक्षत में।

३८. अर्जुन घृत (च.द.)

पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं
शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥७२॥

गोघृत १ किलो, अर्जुनत्वक् २५० ग्राम तथा अर्जुनस्वरस या क्वाथ ४ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः अर्जुनत्वक् को कूट-पीसकर सिल पर कल्क बनावें और अर्जुनत्वक्स्वरस या क्वाथ ४ लीटर लेकर घृत सिद्ध करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य के द्वारा परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर घृत को काचपात्र में संग्रहीत करें। अनेक प्रकार के हृद्रोगों में १२ ग्राम की मात्रा में गाय के गरम दूध में मिलाकर पिलाने से अत्यधिक लाभ होता है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरमदूध या गरमपानी से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—किञ्चिद्रक्ताभ। **स्वाद**—कषाय-तिक्त। **उपयोग**—हृद्रोग में।

३९. पार्थाद्यरिष्ट

पार्थत्वचं तुलामेकां मृद्वीकाऽर्द्धतुलां तथा।
भागं मधूकपुष्पस्य पलविंशतिसम्मितम् ॥७३॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत्।
धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥७४॥
मासमात्रं स्थितो भाण्डे भवेत्पार्थाद्यरिष्टकः।
हृत्फुप्फुसगदान् सर्वान् हन्त्ययं बलवीर्यकृत् ॥७५॥

१. अर्जुन की छाल ५ किलो, २. मुनक्का २.५०० किलो, ३. महुआ के फूल १ किलो, ४. गुड़ ५ किलो और ५. धावा के फूल १ किलो लें। अर्जुन की छाल को यवकुट करें और इसके साथ मुनक्का एवं महुआ फूल मिलाकर ४८ लीटर (४ द्रोण) जल में क्वाथ करें। चौथाई अर्थात् १२ लीटर शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ को मिट्टी के बड़े घड़े में रखें और इस गरम क्वाथ में ही गुड़ मिला दें। शीतल होने पर धूप में सुखाया हुआ धावा का फूल इस घड़े में मिलाकर घड़े का मुख शराव से ढककर कपड़मिट्टी से मुँह बन्द करें। एकान्त निर्वात घर में इस घड़े को रखें। घड़े के नीचे पुआल या भूसी आदि गद्देदार पदार्थ रखें। १ महिना के बाद परीक्षोपरान्त घड़े के द्रव को छान लें। घड़ा धो-सुखाकर पुनः उसी में छना हुआ पार्थाद्यरिष्ट गाद बैठने के लिए रखें। १५-२० दिनों के बाद पुनः घड़े के ऊपर वाले स्वच्छ पार्थाद्यरिष्ट को किसी अन्य पात्र में छान लें और घड़े के नीचे कीचड़ जैसी गाद छोड़ दें। अब इस 'पार्थाद्यरिष्ट' को बोतलों में भरकर कार्क, लेबल आदि लगाकर किसी स्थिर स्थान में रखें। १ वर्ष के बाद इसका उपयोग हृदय विकार में करें। इस पार्थाद्यरिष्ट को १२ से २५ मि.ली. की मात्रा में बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय पिलावें।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ-रक्त। **स्वाद**—मधुर-तीक्ष्ण। **उपयोग**—हृद्रोग में।

हृदयरोग में पथ्य

स्वेदो विरेको वमनं च लङ्घनं
वस्तिर्विलेपो चिररक्तशालयः।
मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञयाऽन्विता
यूषा रसा मुद्गकुलत्थसम्भवाः ॥७६॥
रागाः खडाः काम्बलिकाश्च षाडवा
भयं पटोलं कदलीफलान्यपि।
पुराणकूष्माण्डरसालदाडिमं
शम्पाकशाकं नवमूलकान्यपि ॥७७॥
एरण्डतैलं गगनाम्बु सैन्धवं
द्राक्षाऽपि तक्रं च पुरातनो गुडः।
शुण्ठी यवानी लशुनं हरीतकी
कुष्ठं च कुस्तुम्बुरु कृष्णमार्द्रकम् ॥७८॥
सौवीरशुक्तं मधु वारुणीरसः
कस्तूरिका चन्दनकं प्रपानकम्।
ताम्बूलमप्येष गणः सखा भवे-
न्मर्त्त्यस्य हृद्रोगनिपीडितस्य ॥७९॥

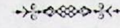
हृदय रोग में स्वेदन, विरेचन, वमन, लंघन (लघु भोजन/उपवास), बस्ति, विलेपी, पुराना लालचावल, जाङ्गल पशु-पक्षियों के मांसरस, मुद्गयूष, कुलत्थयूष, राग, खड, काम्बलिक, षाडव, भयरहित वातावरण, परवल, पका केला, पुराना कूष्माण्ड का मोरब्बा (पेठा), पका आम, पका मीठा

अनार; अमलतास के कोमल पत्ते, फूल तथा कोमल कली का शाक, नई मुलायम मूली, एरण्ड तैल, वर्षा का जल, सैन्धव-लवण, द्राक्षा (अंगूर-मुनक्का), तक्र, पुराना गुड़, सोंठ, अजवायन, लशुन, हरीतकी, कूठ, धनियाँ, पीपर, आर्द्रक, काञ्जी, सिरका, मधु, मद्य, कस्तूरी, श्वेतचन्दन का पानक और ताम्बूल पान हृद्रोगियों के लिए हितकर हैं।

हृदयरोग में अपथ्य

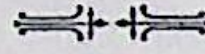
तृट्छर्दिमूत्रानिलशुक्रकासो-
द्गारश्रमश्वासविडश्रुवेगान् ।
सह्याद्रिविन्ध्याद्रिनदीजलानि
मेषीपयो दुष्टजलं कषायम् ॥८०॥
विरुद्धमुष्णं गुरु तिक्तमम्लं
पत्रोत्थशाकानि चिरन्तनानि ।
क्षारं मधूकानि च दन्तकाष्ठं
रक्तस्रुतिं हृद्गदवान् परित्यजेत् ॥८१॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां हृद्रोगाधिकारः ।



प्यासवेग, वमनवेग, मूत्रवेग, अपानवायुवेग, शुक्रवेग, कासवेग, उद्गारवेग, श्रमजन्यश्वासवेग, पुरीषवेग और अश्रुवेगों को रोकना; सह्य और विन्ध्य पर्वतोत्पन्न नदियों के जल का पान करना, भेंडी का दूध, दूषित जल, कषाय रस, विरुद्ध अन्न-पान, उष्ण-गुरु-तिक्त और अम्ल पदार्थों का भोजन, पुराने एवं सूखे पत्तों के शाक, क्षार, महुआ के पुष्प-फल, दातुन करना और शरीर से किसी प्रकार का रक्तमोक्षण (सिराव्यध, जलौका, सिंगी आदि का प्रयोग) कराना—ये सभी हृदय रोगियों के लिए वर्जित हैं।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य हृद्रोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथ मूत्रकृच्छ्ररोगाधिकारः (३४)

वातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (चरक सं.)

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहबस्ति-
स्वेदोपनाहोत्तरबस्तिसेकान् ।
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्
दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥१॥

वातज मूत्रकृच्छ्र रोग में अभ्यञ्जन, स्नेहन, निरूहबस्ति, स्वेदन, उपनाह (पुल्टीस), उत्तरबस्ति, सेंक आदि उपचार एवं वातनाशक स्थिरादिगण की औषधों के कल्क-क्वाथ से सिद्ध पेया, मण्ड, यवागू आदि तथा मांसरस को सिद्ध कर सेवन करना चाहिए।

पित्तज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (चरक)

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा
ग्रैष्मो विधिर्बस्तिपयोविकाराः ।
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च
कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥२॥

सेंक, शीतल जल से भरे बड़े टब में डुबकी लगाकर स्नान करना, श्वेतचन्दन-कर्पूर-कमलनालादि पीसकर शरीर पर लेप करना एवं अन्य ग्रीष्मऋतु का उपचार करना चाहिए।[१] बस्ति-कर्म, दुग्ध से निर्मित क्षीरादि मधुर पेय, द्राक्षा, विदारीकन्द और ईख के रस को घृत और दूध में मिलाकर पिलाना पित्तज मूत्रकृच्छ्र में हितकर है।

कफज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (चरक)

क्षारोष्णतीक्ष्णोषणमन्नपानं
स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः ।
तक्रं सतिक्तौषधसिद्धतैला-
द्यभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥३॥

कफज मूत्रकृच्छ्र में क्षार, उष्ण और तीक्ष्ण गुणयुक्त औषध तथा भोज्य पेय, स्वेदन कर्म, यवका पेया, विलेपी, कृशरा, रोटी एवं दलिया खाना चाहिए। वमनकर्म, निरूहबस्ति, तक्र, तिक्त औषध-सेवन तथा सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग करना हितकर है।

---

१. ग्रीष्मर्तुचर्या यथा—स्वादु स्निग्धहिमं लघुद्रवमयं द्रव्यं रसालां सितां सक्तुक्षीरमजाङ्गलानि सितया शालिरसं मांसजम्। शीतांशु शयने दिवा-मलयजं शीतं पयः पानकम्। सेवेतोष्णदिने त्यजेस्तु कटुकक्षाराम्ल-धर्मश्रमान्। (भा.प्र.)

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (चरक)

सर्वं त्रिदोषप्रभवे च वायोः
स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् ।
त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात् ।
पित्ते विरेकः पवने तु बस्तिः ॥४॥

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में पहले वायुदोष को प्रकृतिस्थ करना चाहिए। ततः बढ़े हुए दोषों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए। यथा—कफ की वृद्धि हो तो वमन, पित्त बढ़ा हो तो विरेचन तथा वाताधिक्य में स्नेहबस्ति देना चाहिए।

अभिघातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (ग.नि.)

तथाभिघातजे कुर्यात्सद्योव्रणचिकित्सितम् ।
मूत्रकृच्छ्रे सदा चास्य कार्या वातहरी क्रिया ॥५॥

आघात होने पर मूत्रवाहिनी नलिका के फट जाने पर सद्योव्रण चिकित्सा विधि से चिकित्सा करनी चाहिए। मूत्रकृच्छ्र में हमेशा ही वातहर चिकित्सा करनी चाहिए।

पुरीषज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (च.द.)

स्वेदचूर्णक्रियाऽभ्यङ्गा वर्त्तयः स्युः पुरीषजे ॥६॥

पुरीषज मूत्रकृच्छ्र में स्वेदन कर्म, पाचक तथा रेचक चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। अभ्यङ्ग फलवर्ति के प्रयोग से अधिक लाभ होता है। पुरीष प्रवृति २-३ बार होने पर पेट जब साफ हो जाता है तो मूत्रकृच्छ्रता स्वतः मिट जाती है।

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (च.द.)

क्रिया हिता त्वश्मरिशर्करायां
या मूत्रकृच्छ्रे कफमारुतोत्थे ॥७॥

अश्मरी एवं शर्करा जन्य मूत्रकृच्छ्र में कफज एवं वातज मूत्रकृच्छ्र की तरह चिकित्सा करनी चाहिए।

रक्तज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (च.द.)

यन्मूत्रकृच्छ्रे विहितञ्च पैत्ते ।
तत्कारयेच्छोणितमूत्रकृच्छ्रे ॥८॥

जो उपचार पित्तज मूत्रकृच्छ्र में कहा गया है, वही उपचार रक्तज मूत्रकृच्छ्र में करना चाहिए।

शुक्रविबन्धज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा (च.द.)

लेह्यं शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ।
वृष्यैर्बृंहितधातूत्थे विधेयाः प्रमेदोत्तमाः ॥९॥

शुक्र के वेग को अधिक समय तक रोकने से या अधिक दिनों तक दृढ़ ब्रह्मचर्य रहने से शुक्र के रुके रहने के कारण शुक्र-विबन्धज मूत्रकृच्छ्र होता है। इस रोग में शुद्ध शिलाजतु १ ग्राम और स्वर्णमाक्षिकभस्म १२५ मि.ग्रा. मिलाकर चटाना चाहिए। तथा वृष्य औषधि सेवन से, बृंहण, रसायन या वीर्यस्तम्भन गुटिकाओं के सेवन जन्य मूत्रकृच्छ्र में सुन्दरी प्रमदाओं से संभोग करने से वीर्यक्षरण होने पर ऐसा मूत्रकृच्छ्र शान्त हो जाता है।

१. कूष्माण्डरस प्रयोग (ग.नि)

कूष्माण्डकरसं पीत्वा सयवक्षारशर्करम् ।
मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत शीघ्रञ्च लभते सुखम् ॥१०॥

कूष्माण्डस्वरस २५ मि.ली. में यवक्षार ५ ग्राम तथा चीनी १० ग्राम मिलाकर पिलाने से मूत्रकच्छ्र से शीघ्र ही मुक्ति मिल जाती है और मनुष्य सुखी हो जाता है।

२. आमलकी क्वाथ (ग.नि.)

गुडेनामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं परम् ।
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥११॥

२५ ग्राम आमलकी यवकुट को १६ गुने जल के साथ भिगावें, जब फूल जाय तो क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर गरम-गरम छान लें तथा उसमें २५ ग्राम गुड़ मिलाकर शीतल होने पर मूत्रकृच्छ्र के रोगी को पिलाने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है। यह क्वाथ वृष्य है, श्रमघ्न है, तृप्तिकारक है, पित्तज रोग, रक्तज रोग, दाह और शूल नाशक है।

३. एर्वारुबीजादि योग (चरक)

एर्वारुबीजं मधुकञ्च दार्वीं
पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन ।
दार्वी तथैवामलकीरसेन
समाक्षिकां पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥१२॥

(१) ककड़ीबीज, मुलेठी तथा दारुहल्दी समभाग लें। इन्हें चूर्ण बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। ३ से ५ ग्राम की मात्रा में तण्डुलोदक के साथ पीने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है। (२) दारुहल्दीचूर्ण तथा आमलकीचूर्ण दोनों को समान मात्रा में मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। ३ से ५ ग्राम इस चूर्ण को मधु के साथ चाटने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है।

४. कण्टकारी रस प्रयोग (ग.नि.)

सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रविनाशनः ।
निदिग्धिकारसो वाऽपि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥१३॥

(१) चीनी तथा यवक्षार को समभाग में मिलाकर ५ ग्राम की मात्रा जल के साथ पिलाने से सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाते हैं। (२) कण्टकारी स्वरस या क्वाथ (२५ ग्राम कण्टकारी यवकुट को १६ गुने अर्थात् ४०० मि.ली. जल में निर्मित क्वाथ) पिलाने से सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाते हैं।

५. सूर्यावर्त्त योग

सूर्यावर्त्तभवं बीजं श्लक्ष्णं दृषदि पेषितम् ।
व्युषितोदकसम्पीतं कृच्छ्रं हन्ति सुदारुणम् ॥१४॥

सूरजमूखी फूल के बीज को सिल पर जल के साथ पीसें तथा खुले आकाश में ताम्रपात्र में रात्रि-पर्यन्त रखे हुए शीतल जल के साथ मिलाकर पिलाने से भयंकर मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है।

६. यवक्षार प्रयोग

मधुना च यवक्षारं मूत्रकृच्छ्राश्मरीहरम् ॥१५॥

यवक्षार १ ग्राम को मधु १२ ग्राम में मिलाकर चटाने से सभी तरह के मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाते हैं।

७. गन्धकादि योग

सगन्धकयवक्षारं शर्करां तक्रतः पिबेत् ।
मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत साध्यासाध्यान्न संशयः ॥१६॥

शुद्ध गन्धकचूर्ण १ ग्राम, यवक्षार २ ग्राम, चीनी १२ ग्राम तथा गोदुग्ध का तक्र २०० मि.ली.—सभी द्रव्य मिलाकर पिलाने से सभी तरह के साध्य एवं असाध्य मूत्रकृच्छ्र निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

८. नारिकेल पुष्प

नारिकेलोद्भवं पुष्पं तण्डुलोदकसंयुतम् ।
सरक्तं मूत्रकृच्छ्रं हि पीतं हन्ति न संशयः ॥१७॥

नारियल के फूल को तण्डुलोदक से सिल पर पीसकर पीने से रक्त के साथ मूत्रकृच्छ्र रोग निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

९. विदार्यादि क्वाथ (र.र.स.)

विदारी गोक्षुरं यष्टिः केशरं च समं पचेत् ।
तत्कषायं पिबेत् क्षौद्ररसभस्मयुतं पुनः ॥
मूत्रकृच्छ्रं हरेत् सर्वं सप्ताहात् पित्तसम्भवम् ॥१८॥

१. विदारीकन्द १० ग्राम, २. गोक्षुर १० ग्राम, ३. मुलेठी १० ग्राम, ४. नागकेशर १० ग्राम, ५. पारदभस्म (रससिन्दूर) १२५ मि.ग्रा. तथा ६. मधु १० ग्राम लें। विदारीकन्द से नागकेशर तक के चारों द्रव्य यवकुट करें और ४ गुना जल में क्वाथ करें। रससिन्दूर को मधु के साथ चाटकर उपर्युक्त क्वाथ पिलावें। एक सप्ताह तक इस विधि से औषधि सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है।

१०. गोक्षुरक्वाथ

क्वाथं गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतं पिबेत्।
मूत्रकृच्छ्रं तथा रक्तं पीतः शीघ्रं निवारयेत् ॥१९॥

गोक्षुरबीज के ५० मि.ली. क्वाथ में २ ग्राम यवक्षार मिलाकर पिलाने से रक्तज मूत्रकृच्छ्र शीघ्र नष्ट हो जाता है।

११. पञ्चतृणमूल क्वाथ (च.द.)

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम्।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं बस्तिविशोधनम् ॥२०॥

१. कुशमूल, २. काशमूल, ३. शरमूल, ४. दर्भमूल तथा ५. इक्षुमूल समभाग में लें। इन पाँचों द्रव्यों को यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर ४०० मि.ली. (१६गुना) जल में रात्रिपर्यन्त भींगने दें। प्रातः मन्दाग्नि पर क्वाथ करें; अष्टमांशावशेष रहने पर छानकर पिलाने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है। यह बस्ति शोधक है।

१२. पञ्चतृणमूल क्षीर (च.द.)

एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ॥२१॥

उपर्युक्त पञ्चतृणमूल क्वाथ सिद्ध गोदुग्ध में मिश्री मिलाकर पीने से शोणितजन्य मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है।

१३. त्रिकण्टकादि क्वाथ (च.द.)

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाश-
दुरालभाप्रस्तरभेदपथ्याः ।
निघ्नन्ति पीता मधुनाऽश्मरीञ्च
सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥२२॥

१. गोखरु, २. अमलतास, ३. दर्भमूल, ४. यवासा, ५. पाषाणभेद और ६. हरीतकी—इन्हें समभाग में लें। उपर्युक्त ५ द्रव्यों को यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना जल में रात्रि पर्यन्त भिगावें और प्रातः मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष शेष रहने पर छान लें और उस ५० मि.ली. क्वाथ में १२ ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से अश्मरी पीड़ा नष्ट हो जाती है। इस क्वाथ से मूत्रकृच्छ्र से मृत्यु के नजदीक पहुँचा हुआ व्यक्ति भी रोग मुक्त हो जाता है।

१४. धात्र्यादि क्वाथ

धात्री द्राक्षा विदारी च यष्ट्याह्वं गोक्षुरं तथा।
एभिः कषायं विपचेत्पिबेच्छीतं सशर्करम् ॥
अपि योगशतासाध्यं मूत्रकृच्छ्रं जयेल्लघु ॥२३॥

१. आमला, २. मुनक्का, ३. विदारीकन्द, ४. मुलेठी तथा ५. गोक्षुर—इन्हें समभाग में लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रह करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर ४०० मि.ली. अर्थात् १६ गुना जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और शीतल होने पर १२ ग्राम चीनी (मिश्री) मिलाकर पिलाने से सैकड़ों योगों से न अच्छा होने वाला मूत्रकृच्छ्र भी शीघ्र नष्ट हो जाता है।

१५. बृहद् धात्र्यादि क्वाथ

धात्री द्राक्षा च यष्ट्याह्वं विदारी सत्रिकण्टका।
दर्भेक्षुमूलमभया क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ॥
ससितं मूत्रकृच्छ्रघ्नं रुजादाहहरं परम् ॥२४॥

१. आमला, २. मुनक्का, ३. मुलेठी, ४. विदारीकन्द, ५. गोक्षुरबीज, ६. दर्भमूल, ७. इक्षुमूल तथा ८. हरीतकीफलत्वक्—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम लेकर ४०० मि.ली. जल में क्वाथ करे। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। शीतल हो जाय तो ५० मि.ली. क्वाथ में १२ ग्राम चीनी मिलाकर पिलाने से दाह एवं पीड़ा से युक्त मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है।

१६. पाषाणभेदादि क्वाथ

पाषाणभिद्मधुकवासकगोक्षुराणां
गन्धर्वहस्तकृतमालकपिप्पलीनाम् ।
क्वाथः किल त्रुटिशिलाजतुसूर्यभक्ता-
चूर्णान्वितः सपदि हन्ति हि मूत्रकृच्छ्रम् ॥२५॥

१. पाषाणभेद, २. मुलेठी, ३. वासा, ४. गोखरु, ५. एरण्डमूल, ६. अमलतासफलमज्जा और ७. पीपर—समभाग लें। उपर्युक्त ७ द्रव्यों को यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और शीतल होने पर इस क्वाथ में शुद्ध शिलाजतु १ ग्राम तथा छोटी इलायची चूर्ण १ ग्राम, सौवर्चला (हुरहुर) १ ग्राम तथा मिश्री १५ ग्राम मिलाकर मूत्रकृच्छ्र से पीड़ित व्यक्ति को पिलाने से वह शीघ्र रोग मुक्त हो जाता है।

१७. दुरालभादि क्वाथ (ग.नि.)

दुरालभाऽश्मभित्पथ्याव्याघ्रीमधुकधान्यकैः ।
कृतः क्वाथः सितोपेतो मूत्रकृच्छ्रविबन्धनुत् ॥
दाहं शूलं निहन्त्याशु तमः सूर्योदये यथा ॥२६॥

१. जवासा, २. पाषाणभेद, ३. हरीतकी फलदल, ४. कण्टकारी, ५. मुलेठी तथा ६. धनियाँ—इन्हें समभाग लें। उपर्युक्त छहों द्रव्यों को एक साथ यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और उस क्वाथ में १५ ग्राम मिश्री मिलाकर शीतल कर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र, विबन्ध, दाह और शूलरोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है।

१८. अमृतादि क्वाथ (च.द.)

अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम्।
प्रपिबेद् वातरोगार्त्तः सशूली मूत्रकृच्छ्रवान्॥२७॥

१. गुडूची, २. सोंठ, ३. आमला, ४. अश्वगन्धा तथा ५. गोक्षुर—इन्हें समभाग लें। उपर्युक्त सभी ५ द्रव्यों को एक साथ यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। वात एवं शूल से युक्त मूत्रकृच्छ्र रोग में मधु मिलाकर पिलाने से रोग शान्त हो जाता है।

१९. शतावर्यादि क्वाथ (च.द.)

शतावरीकाशकुशैः श्वदंष्ट्रा
विदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम्।
क्वाथं सुशीतं मधुशर्करात्तं
पिबञ्जयेत् पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम्॥२८॥

१. शतावरी, २. काशमूल, ३. कुशमूल, ४. गोक्षुर, ५. विदारीकन्द, ६. शालिधानमूल, ७. इक्षुमूल तथा ८. कशेरु—उपर्युक्त आठों द्रव्यों को समभाग में लेकर एक साथ यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और उसमें मधु १० ग्राम एवं चीनी १० ग्राम मिलाकर पिलाने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है।

२०. हरीतक्यादि क्वाथ (च.द.)

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्ष-
पाषाणभिद्धन्वयवासकानाम्।
क्वाथं पिबेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं
कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे॥२९॥

१. हरीतकी, २. गोखरु, ३. अमलतास, ४. पाषाणभेद, और ५. जवासा—इन्हें समभाग लें। उपर्युक्त पाँचों को एक साथ यवकुट कर काचपात्र में संग्रह करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और उसमें २० ग्राम मधु मिलाकर शीतल क्वाथ पिलाने से दाह तथा वेदना युक्त मूत्रकृच्छ्र एवं विबन्ध नष्ट हो जाता है।

२१. एलादि क्वाथ (यो.र.)

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेद-
कौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः।
श्रृतं पिबेदश्मजतुप्रगाढं
सशर्करं साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे॥३०॥

१. छोटीइलायची, २. पिप्पली, ३. मुलेठी, ४. पाषाणभेद, ५. रेणुकाबीज, ६. गोखरु, ७. वासामूल तथा ८. एरण्डमूल—समभाग लें। उपर्युक्त आठों द्रव्यों को एक साथ यवकुट कर काचपात्र में संग्रह करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लें और ४०० मि.ली. (१६ गुना) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और इस क्वाथ में शुद्ध शिलाजतु आधा ग्राम तथा मिश्री २० ग्राम मिलाकर शीतल होने पर अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र रोग में पिलाने से अत्यधिक लाभ होता है।

२२. एला योग (च.द.)

मूत्रेण सुरया वाऽपि कदलीस्वसेन वा।
कफकृच्छ्रविनाशाय श्लक्ष्णं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत्॥३१॥

गोमूत्र १५ मि.ली., सुरा १५ मि.ली., कदलीकन्दस्वरस १५ मि.ली लेकर उसमें छोटी इलायची चूर्ण १ ग्राम मिलाकर पिलाने से कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है।

२३. पाषाणभेदादि क्वाथ (ग.नि.)

पाषाणभेदो मधुयष्टिरेला-
कृष्णाशिफैरण्डशिफाऽऽटरूषाः।
स्पृक्वा श्वदंष्ट्रा च शिवासमेताः
क्वाथो हरेद्दुःसहमूत्रकृच्छ्रम्॥३२॥

१. पाषाणभेद, २. यष्टीमधु, ३. छोटी इलायची, ४. पिप्पलीमूल, ५. एरण्डमूल, ६. वासा, ७. स्पृक्का शाक, ८. गोक्षुर और ९. हरीतकी—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट कर किसी पात्र विशेष में रखें। प्रतिदिन २५ ग्राम इस क्वाथ द्रव्य को १६ गुना जल में क्वाथ करें तथा अष्टमांश शेष रहने पर छानकर दुःसह मूत्रकृच्छ्र के रोगी को पिलाने से लाभ होता है।

२४. एलादिचूर्ण (च.द.)

एलाऽश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां
चूर्णानि तण्डुलजलैर्लुलितानि पीत्वा।
यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य धीमा-
नासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री॥३३॥

१. छोटीइलायची, २. पाषाणभेद, ३. शुद्ध शिलाजतु तथा ४. पीपर—समभाग लें। उपर्युक्त चारों द्रव्यों को एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करके काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'एलादिचूर्ण' को २ ग्राम की मात्रा में तण्डुलोदक के साथ पीने से अथवा गुड़ के साथ मिलाकर खाने से दुःसाध्य मूत्रकृच्छ्र के रोगी की मृत्यु नजदीक होने पर भी वह जीवित अर्थात् स्वस्थ हो जाता है अर्थात् उसे प्राणदान मिल जाता है।

२५. श्वदंष्ट्रादि लेप (यो.र.)

पिष्ट्वा श्वदंष्ट्राफलमूलिकावि-
डैर्वारुबीजानि सकाञ्जिकानि।

आलिप्यमानानि समानि वस्तौ
मूत्रस्य निष्यन्दकराणि सद्यः ॥३४॥

गोखरुबीज, मूली, विड्लवण तथा ककड़ीबीज—समभाग में लें। इन्हें सिल पर कांजी के साथ पीसकर बस्ति प्रदेश पर लेप लगाने से कुछ ही देर में मूत्र स्रवित होकर आसानी से बाहर आ जाता है और कृच्छ्रता समाप्त हो जाती है।

२६. तारकेश्वर रस

शुद्धसूतं समं गन्धं लौहं वङ्गं मृताभ्रकम्।
दुरालभा यवक्षारं बीजं गोक्षुरकं शिवाम् ॥३५॥
समांशं साधयेत्सर्वं कूष्माण्डफलवारिणा।
पञ्चतृणभवक्वाथे रसे गोक्षुरजे तथा ॥३६॥
सम्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
मधुनाऽऽमर्द्य विलिहेन्मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥३७॥
उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम्।
लेहयेन्मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥
अजाक्षीरं भवेत्पथ्यं शर्करेक्षुरसो हितः ॥३८॥

१. शुद्धपारद, २. शुद्धगन्धक, ३. लौहभस्म, ४. वङ्ग भस्म, ५. अभ्रकभस्म, ६. जवासाचूर्ण, ७. यवक्षार, ८. गोक्षुरबीजचूर्ण तथा १०. हरीतकीफलदलचूर्ण—इन्हें समभाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बना लें। ततः उसी कज्जली के साथ उपर्युक्त सभी भस्मों एवं काष्ठौषधि चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें और कूष्माण्डस्वरस की, पञ्चतृणमूलक्वाथ की एवं गोक्षुरबीज क्वाथ की ७-७ भावना दें और २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोगी १-१ वटी मधु के साथ मिलाकर चाटें तथा अनुपान रूप में पक्व उदुम्बर फलचूर्ण १२ ग्राम मधु से मिलाकर चाटें। इस तारकेश्वर रस के सेवन के समय पथ्य में बकरी का दूध, गन्ने का रस एवं शर्करा का शर्बत सेवन करना चाहिए।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—सुपक्व गूलरफल चूर्ण और मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कषाय-तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र में।

२७. त्रिनेत्राख्य रस (र.सा.सं.)

वङ्गं सूतं गन्धकं भावयित्वा
लौहे पात्रे मर्दयेदेकघस्त्रम्।
दूर्वायष्टीगोक्षुरैः शाल्मलीभि-
र्मूषामध्येभूधरे पाचयित्वा ॥४०॥
तत्तद्द्रावैर्भावयित्वास्य वल्लं
दद्याच्छीतं पायसं वक्ष्यमाणम्।
दूर्वायष्टीशाल्मलीतोयदुग्धै-
स्तुल्यैः कुर्यात्पायसं तद्ददीत ॥
प्रातःकाले शीतपानीयपानान्
मूत्रे जाते स्यात्सुखी च क्रमेण ॥४०॥

वङ्गभस्म, शुद्ध पारद तथा शुद्ध गन्धक—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें।

भावना द्रव्य—१. दूर्वास्वरस, २. मुलेठीक्वाथ, ३. गोखरुक्वाथ तथा ४. सेमरमूलत्वक् रस लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक को एक साफ खरल में ३ दिनों तक अच्छी तरह मर्दन कर कज्जली बना लें। ततः उसी खरल में कज्जली के साथ वङ्ग भस्म मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद उस औषधि को लोहे के खरल या लोहे के बिना जोड़ वाली छोटी कड़ाही में रखकर दूर्वा स्वरस के साथ एक दिन तक मर्दन करें। इसी प्रकार मुलेठी स्वरस या क्वाथ, गोखरुक्वाथ और सेमरमूलत्वक् स्वरस के साथ १-१ दिन तक भावना देकर मर्दन करें। औषधि का एक गोला बनाकर धूप में सुखा लें, ततः मूषा में रखकर सन्धिबन्धन करें। उस गोले को भूधरयन्त्र में ३ घण्टे तक पाक करें। दूसरे दिन उस मूषा से औषधि निकालकर खरल में मर्दन करें और पुनः पूर्वोक्त दूर्वादि भावना द्रव्यों के स्वरस के साथ क्रमशः एक-एक दिन तक मर्दन कर (भावना देकर) ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। दूर्वा स्वरस, यष्टिमधुक्वाथ, गोक्षुरक्वाथ और सेमलमूलस्वरस से क्षीरपाक विधि से १ लीटर गोदुग्ध का पाक करें और इसी क्षीरपाक दूध में खीर बना लें। मधु के साथ १ वटी सेवन कर खीर खायें। प्यास लगने पर शीतल जल का पान करना चाहिए। इस विधि से सेवन करने से साफ-स्वच्छ मूत्रत्याग होकर मूत्रकृच्छ्रादि रोग से पीड़ित रोगी स्वस्थ एवं सुखी हो जाता है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं भावना द्रव पाचित क्षीरपाक द्वारा निर्मित खीर। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मूत्रकृच्छ्र में।

२८. मूत्रकृच्छ्रान्तक रस-१

सूतं स्वर्णञ्च वैक्रान्तं गन्धतुल्यं विमर्दयेत्।
चाण्डालीराक्षसीद्रावैर्द्वियामान्ते तु गोलकम् ॥४१॥
शुष्कं बद्ध्वा पुटेच्चाहः करीषाग्नौ लघौ पुटे।
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैर्मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥४२॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. स्वर्णभस्म तथा ४. वैक्रान्तभस्म—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर कज्जली बना लें। उसी कज्जली में स्वर्णभस्म और वैक्रान्तभस्म डालकर मर्दन करें। ततः चाण्डलीस्वरस (रसमारकगणोक्त) और मुरामांसीक्वाथ या स्वरस से ६-६ घण्टे तक मर्दन कर १ गोला बनाकर धूप में सुखाकर शरावसम्पुट करें तथा वन्योपल की अग्नि से लघु पुट

में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर औषधि निकाल लें और खरल में पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। ६५ से १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में इसे मधु के साथ मिलाकर चाटने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६५-१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्णवर्ण। **स्वाद**—तिक्त।

२९. मूत्रकृच्छ्रान्तक रस-२ (र.सा.सं.)

शतावरीरसैः पिष्ट्वा मृतसूतं च तालकम्।
शिखितुत्थं च तुल्यांशं दिनैकं मर्दयेद् दृढम् ॥४३॥
तद्गोलं सार्षपे तैले पाच्यं यामं च चूर्णयेत्।
मूत्रकृच्छ्रान्तकश्चास्य क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥४४॥
भक्षणान्नात्र सन्देहो मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्यलम्।
तुलसीतिलपिण्याकं बिल्वमूलं सुखाम्बुना।
कर्षैकं वाऽनुपानेन सुरया वा सुवर्चलैः ॥४५॥

रससिन्दूर, शुद्ध हरताल तथा शुद्ध तुत्थ—सभी समभाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर और शुद्ध हरताल का अच्छी तरह मर्दन करें। ततः उसमें शुद्ध तुत्थ मिलाकर मर्दन करें। पुनः शतावरीरस के साथ १ दिन तक मर्दन कर गोला बना लें। इस गोले को सरसों तेल में ३ घण्टे तक तल लें। इसके बाद गोले को निकालकर शीतल होने पर खरल में पीसें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस मूत्रकृच्छ्रान्तक रस को ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में मधु के साथ सेवन करें। अनुपान के रूप में तुलसीपत्र, तिलखली (पिण्याक), बिल्वमूलत्वक् चूर्ण सभी समभाग १२ ग्राम की मात्रा उष्णोदक से, मद्य से या सुवर्चला (हुरहुर) स्वरस से सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५०-५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं तुलसी पत्र, पिण्याक, बिल्वमूल त्वक्चूर्ण और उष्णोदक से। **गन्ध**—किञ्चित् सरसोतैलगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—निःस्वादु (किञ्चित् तैल गन्धी)। **उपयोग**—मूत्रकृच्छ्र में।

३०. चन्द्रकला रस (रसचिन्तामणि)

प्रत्येकं कर्षमादाय सूतं ताम्रं तथाऽभ्रकम्।
द्विगुणं गन्धकञ्चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम् ॥४६॥
मुस्तादाडिमदूर्वोत्थैः केतकीमूलजद्रवैः।
सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटस्य च वारिणा ॥४७॥
रामशीतलिकातोयैः शतावर्या रसेन च।
भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥४८॥
तिक्ता गुडूचिकासत्त्वं पर्पटोशीरमागधी।
श्रीखण्डं सारिवा चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥४९॥
द्राक्षाफलकषायेण सप्तधा परिभावयेत्।
ततो धान्याश्रयं कृत्वा वट्यः कार्याश्चणोपमा ॥५०॥
अयं चन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्त्तितः।
(सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥५१॥
अन्तर्बाह्यमहादाहविध्वंसनमहाक्षमः।
ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥५२॥
कुरुते नाग्निमान्द्यं च महातापं ज्वरं हरेत्।
भ्रमं मूर्च्छां हरत्याशु स्त्रीणां रक्तं महास्रुतिम् ॥५३॥
ऊर्ध्वाधो रक्तपित्तञ्च रक्तवान्ति विशेषतः।
मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः ॥५४॥)

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. ताम्रभस्म १ भाग, ३. अभ्रक भस्म १ भाग और ४. शुद्ध गन्धक २ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बना लें। ततः ताम्रभस्म एवं अभ्रक भस्म को उस कज्जली में मिलाकर मर्दन करें।

भावना-द्रव्य—नागरमोथा क्वाथ, अनारस्वरस, दूर्वास्वरस, केवड़ाजल (केतकीपुष्प फाण्ट), सहदेवीस्वरस, घृतकुमारी स्वरस, पित्तपापड़ाक्वाथ, रामशीतलिकारस तथा शतावरी-क्वाथ—इन उपर्युक्त नौ द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ से १-१ दिन तक भावना दें एवं मर्दन करें। ततः निम्नलिखित द्रव्यों; यथा—कुटकी या लताकस्तूरी, गूडूचीसत्त्व, पित्तपापड़ाचूर्ण, खसचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण, श्वेतचन्दनचूर्ण तथा अनन्तमूलचूर्ण (समभाग—७ द्रव्यों के मिलितचूर्ण उपर्युक्त भावित औषधि के बराबर) मिलाकर मर्दन करें। ततः द्राक्षा (मुनक्का) स्वरस या क्वाथ की ७ भावना देकर एक बड़ा-सा गोला बनाकर छाया में सुखाकर धान की राशि (ढेर) में छुपाकर ७ दिन तक रखें। ८वें दिन निकालकर खरल में मर्दन कर २५० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'चन्द्रकला रस' सभी प्रकार के पित्त रोगों एवं वात-पित्तविकार नाशक है। अन्तर्दाह एवं बाह्यदाह नाशक है। यह ग्रीष्म और शरत्काल में विशेष उपयोगी है। अग्निमांद्य, ज्वर, भ्रम, मूर्च्छा, रक्तप्रदर, ऊर्ध्वाधः रक्तपित्त तथा विशेषकर रक्तवमन नाशक है। तथा सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग को निःसन्देह नष्ट करता है। मूल ग्रन्थ में अन्त की ५ पंक्ति नहीं हैं।

मात्रा—२५० मि. ग्रा.। **अनुपान**—मधु। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याव वर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—रक्तपित्त, रक्तप्रदर, भ्रम, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र में।

३१. शतावर्यादि घृत एवं क्षीर (च.द.)

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्रा-
विदारिकेक्ष्वामलकेषु सिद्धम्।
सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं
कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥५५॥

१. शतावरी, २. काशमूल, ३. कुशमूल, ४. गोखरु, ५. विदारीकन्द, ६. इक्षुमूल और ७. आमला (समभाग) लें। यदि घृत सिद्ध करना हो तो घृत से ४ गुना क्वाथ और चौथाई कल्क लेकर मूर्च्छित घृत को सिद्ध कर लें। जैसे गाय का घृत १ किलो; क्वाथ द्रव्य—प्रत्येक द्रव्य ५७० ग्राम क्वाथार्थ लें (कुल ४ किलो) तथा कल्कार्थ—प्रत्येक द्रव्य ३५ ग्राम लें (कुल २५० ग्राम)। द्रव्यों को यवकुट कर क्वाथ करें—४ लीटर क्वाथ बना लें। कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। तत: सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें और स्नेहपाक विधि से घृतपाक करें। जलीयांश सूख जाने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृत पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को गरम दूध में १२ ग्राम की मात्रा में मिलाकर पीने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है।

साधित क्षीर—उपर्युक्त ७ द्रव्यों के क्वाथ में दूध ४ गुना मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर दुग्ध पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें। उस दूध में चीनी मिलाकर पीने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है।

३२. त्रिकण्टकाद्य घृत (च.द.)

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरु-
कर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम्।
सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रपेयं
कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहेतोः ॥५६॥

१. गोखरु ५७० ग्राम, २. एरण्डमूल ५७० ग्राम, ३. कुशमूल ५७० ग्राम, ४. काशमूल ५७० ग्राम, ५. शरमूल ५७० ग्राम, ६. दर्भमूल ५७० ग्राम, ७. इक्षुमूल ५७० ग्राम, ८. शतावरीक्वाथ, ९. कूष्माण्डस्वरस तथा १०. इक्षुस्वरस—प्रत्येक द्रव १-१ लीटर लें। गोघृत १ किलो तथा सातों द्रव्यों को कल्कार्थ ३५-३५ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। तत: गोखरु से इक्षुमूल तक के ७ द्रव्यों को यवकुट कर क्वाथ विधि से क्वाथ करें। ४ लीटर क्वाथ उक्त मूर्च्छितघृत में डालकर पकावें। ३५-३५ ग्राम कल्कद्रव्य कूट-पीसकर घृत में पकावें। उपर्युक्त क्वाथ सूखने पर शतावरीक्वाथ देकर पकावें, इसके सूखने पर क्रमशः कूष्माण्डस्वरस एवं इक्षुस्वरस देकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाक-विशेषज्ञ वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से उतारकर घृत को कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस त्रिकण्टकाद्य घृत १२ ग्राम तथा ६ ग्राम गुड़ मिलाकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और मूत्राघात रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गुड़ से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी एवं मूत्राघात में।

३३. सुकुमार कुमारघृत (च.द.)

पुनर्नवामूलतुला दशमूलं शतावरी।
बला तुरगगन्धा च तृणमूलं त्रिकण्टकम् ॥५७॥
विदारिगन्धा नागाह्वा गुडूच्यतिबला तथा।
पृथग्दशपलान् भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥५८॥
तेन पादावशेषेण घृतस्यार्द्धाढकं पचेत्।
मधुकं शृङ्गबेरञ्च द्राक्षासैन्धवपिप्पलीः ॥५९॥
पृथग् द्विपलिका दद्याद्यमान्याः कुडवन्तथा।
त्रिंशद् गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥६०॥
प्रस्थं दत्त्वा समालोड्य सम्यङ्मृद्वग्निना पचेत्।
एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् ॥६१॥
राज्ञां राजसमानानां बहुस्त्रीपतयश्च ये।
मूत्रकृच्छ्रे कटीस्तम्भे तथा गाढपुरीषिणाम् ॥६२॥
मेढ्रवङ्क्षणशूले च योनिशूले प्रशस्यते।
यथोक्तानाञ्च गुल्मानां वातशोणितकाश्च ये ॥६३॥
बल्यं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम्।
पुनर्नवाशते द्रोणे देयोऽन्येषु तथाऽपरः ॥६४॥

क्वाथ द्रव्य—१. पुनर्नवामूल ५ किलो, क्वाथार्थ जल १२ लीटर, २. दशमूल ५०० ग्राम, ३. शतावरी ५०० ग्राम, ४. बलामूल ५०० ग्राम, ५. अश्वगन्धा ५०० ग्राम, ६. पञ्चतृणमूल ५०० ग्राम, ७. गोक्षुर ५०० ग्राम, ८. विदारीकन्द ५०० ग्राम, ९. नागबला ५०० ग्राम, १०. गुडूची ५०० ग्राम तथा ११. अतिबला ५०० ग्राम लें तथा क्वाथार्थ जल १२ लीटर (१ द्रोण) लें।

कल्क द्रव्य—१. मुलेठी १०० ग्राम, २. आर्द्रक १०० ग्राम, ३. मुनक्का १०० ग्राम, ४. सैन्धव १०० ग्राम, ५. पीपर १०० ग्राम, ६. अजवाइन २०० ग्राम तथा ७. गुड़ १५०० ग्राम।

गोघृत १५०० ग्राम और एरण्डतैल ७५० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम गोघृत और एरण्डतैल का पृथक्-पृथक् मूर्च्छन करें। तत: मुलेठी से अजवाइन तक के सभी द्रव्यों को कूट-पीसकर चूर्ण करें और गुड़ के साथ मिलाकर कल्क बना लें। पुनर्नवामूल यवकुट कर १२ लीटर जल में पाक करें तथा चौथाई शेष रहने पर छान लें और मूर्च्छित घृत एवं एरण्डतैल एक साथ मिलावें और उसी में यह क्वाथ एवं कल्क मिलाकर पाक करें। तदनन्तर (दशमूल सम्मिलित एवं पञ्चतृणमूल सम्मिलित ५००-५०० ग्राम) दशमूल से अतिबला तक के सभी द्रव्यों को यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें; चौथाई शेष रहने पर छान लें और पकते हुए घृत में इस क्वाथ को भी डालकर पकावें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर

काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'सुकुमारकुमारकघृत' धनाढ्य लोगों (ईश्वरपुत्रों) को या राजाओं को तथा राजासदृश लोगों को एवं बहुत स्त्रियों वाले भोगी और भोग-विलास से युक्त व्यक्तियों को १ तोला (१२ ग्राम) गरम दूध के साथ भोजन से पूर्व सेवन कराना चाहिए। सामान्यतया इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र, कटिस्तम्भ, कठिन पुरीष त्यागने वाले व्यक्ति को, मेढशूल, वंक्षणशूल, योनिशूल, गुल्म, वातरक्त रोगी को बहुत लाभ होता है। यह घृत बल्य है एवं रसायन है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—मूत्रकृच्छ्र-नाशक, बल्य एवं रसायन है।

विमर्श—इस घृत को पकाते समय १ द्रोण (१२$\frac{१}{२}$ ली.) जल दोनों (पुनर्नवामूल तथा दशमूल से अतिबला तक के द्रव्यों के) क्वाथों में पृथक्-पृथक् देना चाहिए। किन्तु कुछ लोग इसमें द्रव द्वैगुण्य कर देते हैं जो उचित है। ५ किलो द्रव्य में ४ गुना जल तो देना ही चाहिए। द्रवद्वैगुण्य में जल ५ गुना होता है, जो उचित है।

मूत्रकृच्छ्र में पथ्य

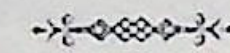
पुरातना लोहितशालयश्च
क्षारो यवान्नानि च तीक्ष्णमुष्णम्।
तक्रं पयो दध्यपि गोप्रसूतं
धन्वामिषं मुद्गरसः सिता च ॥६५॥
पुराणकूष्माण्डफलं पटोलं
महार्द्रकं गोक्षुरकं कुमारी।
गुवाकखर्जूरकनारिकेल-
तालद्रुमाणां च शिरांसि पथ्या ॥६६॥
तालास्थिमज्जात्रपुषं त्रुटिश्च
शीतानि पानान्यशनानि चापि।
प्रतीरनीरं हिमवालुका च
मित्रं नृणां स्यात्सति मूत्रकृच्छ्रे ॥६७॥

पुराना लाल शालि का चावल, यवक्षार, जौ अन्न, तीक्ष्ण उष्ण पदार्थ, तक्र, गोदुग्ध, दही, जंगली पशु-पक्षिओं का मांस, मांसरस, मूँग का यूष, चीनी, सुपक्व कूष्माण्ड, परवल, आर्द्रक, गोक्षुर, घृतकुमारी, सुपारी, छोहाड़ा, नारियल का फल, ताड़वृक्ष का मस्तक (मज्जा), हरीतकी, सुपक्व ताल फल को जमीन में गाड देते हैं तो २-३ महीने के बाद वह अंकुरित हो जाती है, उस गुठली की मज्जा जो श्वेत होता है। उसे तालास्थिमज्जा कहते हैं। खीरा, छोटी इलायची, शीतल पेय, शीतल अन्नपान का भोजन, नदी या स्वच्छ झरने का पानी, कर्पूर—ये सब मूत्रकृच्छ्र रोग में हितकर (मित्र) रहता है।

मूत्रकृच्छ्र में अपथ्य

मद्यं श्रमं निधुवनं गजवाजियानं
सर्वं विरुद्धमशनं विषमाशनं च।
ताम्बूलमत्स्यलवणार्द्रकतैलभृष्ट-
पिण्याकहिङ्गुतिलसर्षपवेगरोधान् ॥
माषान् करीरमतितीक्ष्णविदाहिरूक्ष-
मम्लं च मुञ्चतु जनः सति मूत्रकृच्छ्रे ॥६८॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्रकृच्छ्राधिकारः।



मद्यपान, श्रम, मैथुन, हाथी और घोड़े की सवारी, सभी तरह के विरोधी भोजन (जैसे दूध के साथ मछली का भोजन), विषमाशन (असमय में कम या अधिक भोजन), ताम्बूल, मछली, लवण और आर्द्रक को तैल में भूनकर खाना, पिण्याक (तिल की खली), हींग, तिल, सरसों का सेवन, वेगों का रोकना, उड़द, करीरफल, अत्यन्त तीक्ष्ण, विदाही, रूक्ष और अम्ल पदार्थ मूत्रकृच्छ्र रोग के रोगी को छोड़ देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य मूत्रकृच्छ्राधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ मूत्राघातरोगाधिकारः (३५)

मूत्राघात में क्रिया कर्म (च.द.)

मूत्राघातान् यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ।
बस्तिमुत्तरबस्तिञ्च दद्यात्स्निग्धविरेचनम् ॥१॥

मूत्राघात रोग में दोषानुसार समझकर मूत्रकृच्छ्रहर औषधों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए। साथ ही बस्ति, उत्तरबस्ति और स्निग्धविरेचन (एरण्ड तैल) देना चाहिए।

१. एर्वारुबीज प्रयोग (च.द.)

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम् ।
धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥२॥

ककड़ीबीज १२ ग्राम, सैन्धवलवण ३ ग्राम तथा काञ्जी २५ मि.ली. लें। सिल पर ककड़ीबीज को जल के साथ अच्छी तरह पीसकर काञ्जी में घोल लें और सैन्धव मिलाकर पिलाने से मूत्राघात रोग नष्ट हो जाता है।

२. कूष्माण्डरस प्रयोग

कूष्माण्डरसो वाऽपि पेयः सक्षारशर्करः ।
यवक्षारगुडोन्मिश्रं पिबेत्पुष्पफलोद्भवम् ।
रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराऽश्मरिनाशनम् ॥३॥

कूष्माण्ड (पेठा) फलस्वरस ५० मि.ली., यवक्षार १ ग्राम, चीनी या गुड़ १५ ग्राम मिलाकर पिलाने से मूत्राघात, मूत्रशर्करा और अश्मरी रोग नष्ट हो जाते हैं।

३. गोक्षुरक्वाथ

सपत्रफलमूलस्य क्वाथं गोक्षुरकस्य च ।
पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्राघातादिरोगनुत् ॥४॥

गोक्षुरपञ्चाङ्ग (पत्र, पुष्प, फल, मूलादि) २५ ग्राम लेकर यवकुट करें और १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में पकावें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। उसमें १२ ग्राम मधु और ६ ग्राम चीनी मिलाकर पिलाने से मूत्राघात नष्ट हो जाता है।

४. नलादितृणमूल क्वाथ (च.द.)

नलकुशकाशेक्षुशिफां क्वथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम् ।
पिबतः प्रयाति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच चरकः ॥५॥

१. नलमूल, २. कुशमूल, ३. काशमूल और ४. इक्षुमूल—प्रत्येक समभाग लेकर यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लें और १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। शीतल होने पर इस क्वाथ में १५ ग्राम चीनी मिलाकर पिलाने से मूत्राघात रोग नष्ट हो जाता है। ऐसा महर्षि चरक ने कहा है।

५. बिल्वमूलनाभि लेपन

बिल्वीमूलञ्च सम्पिष्टं काञ्जिकेन समन्वितम् ।
नाभिलेपनमात्रेण मूत्ररोधं निहन्ति च ॥६॥

बिल्वमूलत्वक्चूर्ण १२ ग्राम काञ्जी के साथ सिल पर पीसें । इसे मूत्राघात के रोगी को नाभि पर लेप करने मात्र से मूत्र की रुकावट दूर हो जाती है।

६. कर्पूर योग (च.द.)

मूत्रे विबद्धे कर्पूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत् ॥७॥

मूत्र रुक जाने पर अर्थात् मूत्राघात होने पर कर्पूरचूर्ण १२५ मि.ग्रा. या २५० मि.ग्रा. मूत्रमार्ग में (लिङ्गछिद्र में) प्रवेश करने से मूत्रप्रवाह शुरु हो जाता है।

७. मुष्टि योगद्वय (च.द.)

जलेन खदिरीबीजं मूत्राघाताश्मरीहरम् ।
मूलं रुद्रजटायाश्च तक्रपीतं तदर्थकृत् ॥८॥

१. खदिरीबीज (अशोकबीज) १२ ग्राम को सिल पर जल के साथ पीसकर पिलाने से मूत्राघात और मूत्राश्मरी रोग नष्ट हो जाते हैं।

२. रुद्रजटा नामक औषधि के मूल को सिल पर तक्र के साथ पीसकर तक्र में मिलाकर पिलाने से मूत्राघात और मूत्राश्मरी रोग नष्ट हो जाते हैं।

८. श्वेतचन्दन प्रयोग (च.द.)

शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ॥९॥

श्वेत मलयागिरि चन्दन को साफ पत्थर पर घिसकर २ ग्राम पंक लें और उसे शीतल तण्डुलोदक ५० मि.ली. तथा १५ ग्राम चीनी मिलाकर पिलाने से उष्णवात (मूत्राघात प्रकार) रोग नष्ट हो जाता है। इस समय उबाले हुए गोदुग्ध में चीनी मिलाकर शीतल होने पर भात के साथ खाना चाहिए।

विमर्श—'उष्णवात' मूत्राघात का ही एक प्रकार है।

९. गोधावती प्रयोग (च.द.)

गोधावत्या मूलं क्वथितं घृततैलगोरसैर्मिश्रम् ।
पीतं निरुद्धमचिराद् भिनत्ति मूत्रस्य सङ्घातम् ॥१०॥

वटपत्री या पाषाणभेदमूल १२ ग्राम सिल पर जल के साथ पीसें तथा उसमें गोघृत ५ ग्राम, तिल तैल ५ ग्राम और गोदुग्ध १०० मि.ली. मिलाकर पीने से मूत्ररोध शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

१०. रससिन्दूर प्रयोग

धान्याम्ललवणोपेतं सूतं यश्च पिबेन्नरः ।
तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश ॥११॥

रससिन्दूर १२५ मि.ग्रा. मधु के साथ चाटकर ऊपर से १२ मि.ली. काञ्जी और १ ग्राम सैन्धवलवण मिलाकर पिलाने से शीघ्र ही १३ प्रकार का मूत्राघात रोग नष्ट हो जाता है।

११. दशमूलक्वाथ (यो.र.)

दशमूलीशृतं पीत्वा सशिलाजतुशर्करम् ।
वातकुण्डलिकाऽष्ठीलावातबस्तौ प्रयुज्यते ॥१२॥

दशमूलक्वाथ ५० मि.ली., शुद्ध शिलाजतु १ ग्राम तथा चीनी १२ ग्राम मिलाकर पिलाने से वातकुण्डलिका, अष्ठीला और बस्तिवात रोग नष्ट हो जाते हैं।

१२. कर्कटीबीजादि चूर्ण (बृ.नि.र.)

कर्कटीबीजसिन्धूत्थत्रिफलासमभागिकम् ।
पीतमुष्णाम्भसा चूर्णं मूत्ररोधं निवारयेत् ॥१३॥

ककड़ीबीज १०० ग्राम, सैन्धवलवण १०० ग्राम और त्रिफलाचूर्ण १०० ग्राम लें। तीनों द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। ३ ग्राम की मात्रा में उष्णोदक से सेवन करने पर मूत्राघात रोग नष्ट हो जाता है।

१३. योग-त्रय (च.द.)

सुरां सौवर्चलवतीं मूत्राघाती पिबेन्नरः ।
दाडिमाम्बुयुतं मुख्यमेलाबीजं सनागरम् ॥
पीत्वा सुरां सलवणां मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥१४॥

१. ५० मि.ली. मद्य में २ ग्राम सौवर्चल (काला) नमक मिलाकर पीने से मूत्राघात नष्ट हो जाता है। अथवा—

२. अनारस्वरस ५० मि.ली., छोटी इलायची बीजचूर्ण १ ग्राम तथा सोंठचूर्ण १ ग्राम मिलाकर पिलाने से मूत्राघात रोग नष्ट हो जाता है।

३. ५० मि.ली. मद्य में २ ग्राम सैन्धवलवण मिलाकर पिलाने से मूत्राघात रोग नष्ट हो जाता है।

१४. शिलाजतु योग (यो.र.)

सशर्करञ्च समधु लीढं शुद्धं शिलाजतु ।
निहन्ति मूत्रजठरं मूत्रातीतञ्च देहिनाम् ॥१५॥

शुद्ध शिलाजतु १ ग्राम, मधु १२ ग्राम तथा चीनी १२ ग्राम तीनों को मिलाकर चाटने से मूत्रजठर और मूत्रातीत रोग नष्ट हो जाते हैं।

क्षतज-शल्यज मूत्राघात में शलाका-प्रयोग

क्षतशल्यसमुद्भूतमूत्राघातनिवृत्तये ।
प्रवेशयेन्मूत्रमार्गे शलाकां मूत्रसारिणीम् ॥१६॥

क्षत एव शल्य से उत्पन्न होने वाली मूत्रग्रन्थि में शलाका का प्रवेश कराना चाहिए। यथा—पूयमेह आदि रोग में मूत्रनाली में व्रण हो जाने के बाद मूत्रमार्ग में रुकावट कर देता है। अतः कुशल शस्त्रविद् वैद्य पहले पतली तथा बाद में मोटी शलाका (Catheter) प्रवेश कर मूत्ररोध को दूर करें।

१५. चित्रकाद्यघृत (ग.नि.)

चित्रकं सारिवा चैव बला कालानुसारिवा ।
द्राक्षा विशाला पिप्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत् ॥१७॥
तथैव मधुकं दद्याद् दद्यादामलकानि च ।
घृताढकं पचेदेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥१८॥
क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् ।
शीतं परिस्रुतञ्चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥१९॥
तुगाक्षीर्याश्च तत्सर्वं मतिमान् प्रतिमिश्रयेत् ।
ततो मितं पिबेत् काले यथादोषं यथाबलम् ॥२०॥
वातरेताः पित्तरेताः श्लेष्मरेताश्च यो भवेत् ।
रक्तरेता ग्रन्थिरेताः पिबेदिच्छन्नरोगताम् ॥२१॥
जीवनीयञ्च वृष्यञ्च सर्पिरेतन्महागुणम् ।
प्रजाहितञ्च धन्यञ्च सर्वरोगापहं शिवम् ॥२२॥
सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ।
असृग्दोषाञ् जयेच्चापि योनिदोषांश्च संहतान् ॥
मूत्रदोषेषु सर्वेषु कुर्यादेतच्चिकित्सितम् ॥२३॥

१. चित्रकमूल, २. अनन्तमूल, ३. बलामूल, ४. तगर, ५. मुनक्का, ६. इन्द्रवारुणमूल, ७. पीपर, ८. बड़ी इन्द्रायण, ९. मुलेठी तथा १०. आमला—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें; ११. गोघृत ३ किलो, १२. गोदुग्ध १२ ली., जल १२ लीटर, १३. शर्करा (देशी चीनी) ७५० ग्राम और १४. वंशलोचनचूर्ण ७५० ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः चित्रकादि सभी १० द्रव्यों को कूट-पीसकर जल से कल्क बना लें। अब उस मूर्च्छित घृत में कल्क और गोदुग्ध मिलाकर स्टेनलेस स्टील के पात्र में पाक करें। दूध सूख जाने पर १ द्रोण जल (१२ लीटर) मिलाकर पाक करें। जल पूर्णतया सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर घृत को कपड़े से छान लें और घृत को दूसरे पात्र में रखें। इसके बाद उस सुपक्व गरम घृत में पिसी हुई चीनी और पिसा हुआ वंशलोचन अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें।

ततः दोष एवं बलानुसार इस घृत को ६ से १५ ग्राम तक गरम दूध के साथ मिलाकर पिलाना चाहिए। इसके सेवन से वात-पित्त-कफ एवं रक्त से दूषित शुक्र एवं शुक्रग्रन्थि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह घृत जीवनीय, शक्तिवर्धक एवं वृष्य है। यह घृत महान् गुणों से युक्त है, सन्तानोत्पादक है, धन्य है, सभी रोगों को नष्ट करने वाला है, कल्याणकारक है। इस घृत का पान करने से शीघ्र ही स्त्रियाँ गर्भधारण करती हैं। यह घृत स्त्रियों के समस्त रक्तदोषों (रक्तप्रदरादि) और योनिदोष को नाश करता है तथा पुरुष एवं स्त्रियों के समस्त मूत्रविकारों (कृच्छ्रता-मूत्राघात आदि) को नष्ट करता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—मूत्रविकार, शुक्रविकार एवं रक्तप्रदरादि में।

१६. विदारी घृत (भा.प्र.)

विदारी वृषको यूथी मातुलुङ्गी च भूस्तृणम्।
पाषाणभेदः कस्तूरी वसुको वशिरोऽनलः॥२४॥
पुनर्नवा वचा रास्ना बला चातिबला तथा।
कशेरुबिसशृङ्गाटतामलक्यः स्थिरादयः॥२५॥
शरेक्षुदर्भमूलञ्च कुशः काशस्तथैव च।
पलद्वयन्तु संहृत्य जलद्रोणे विपाचयेत्॥२६॥
पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
शतावर्यास्तथा धात्र्याः स्वरसो घृतसम्मितः॥२७॥
षट्पलं शर्करायाश्च कार्षिकाण्यपराणि च।
यष्ट्याह्वं पिप्पली द्राक्षा काश्मर्यं सपरूषकम्॥२८॥
एला दुरालभा कौन्ती कुङ्कुमं नागकेशरम्।
जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं पयः॥२९॥
एतत्सर्पिर्विपक्तव्यं शनैर्मृद्वग्निना बुधैः।
मूत्राघातेषु सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च॥३०॥
शर्कराऽश्मरिशूलेषु शोणितप्रभवेषु च।
हृद्रोगे पित्तगुल्मे च वातासृक्पित्तजेषु च॥३१॥
कासश्वासक्षतोरस्कधनुः स्त्रीभारकर्षिते।
तृष्णाच्छर्दिमनःकम्पशोणितच्छर्दने तथा॥३२॥
रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादे शिरोग्रहे।
योनिदोषे रजोदोषे शुक्रदोषे स्वरामये॥३३॥
एतत्स्मृतिकरं वृष्यं वाजीकरणमुत्तमम्।
पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वातनाशनम्॥३४॥
पानभोजननस्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते।
विदारीघृतमित्युक्तं रसायनमनुत्तमम्॥३५॥

क्वाथ—१. विदारीकन्द, २. वासामूल, ३. जूहीफूल, ४. बिजौरानिम्बूमूल, ५. भूतृण, ६. पाषाणभेद, ७. कस्तूरी, ८. अर्कमूलत्वक्, ९. गजपीपर, १०. चित्रकमूल, ११. पुनर्नवा-मूल, १२. वच. १३. रास्ना, १४. बलामूल, १५. अतिबला-मूल, १६. कशेरु, १७. कमलनाल, १८. सिंघाड़ा, १९. भूई आमला, २०. शालिपर्णी २१. पृश्निपर्णी, २२. कण्टकारी, २३. बृहतीमूल, २४. गोक्षुरबीज, २५. शरमूल, २६. इक्षुमूल, २७. दर्भमूल, २८. कुशमूल तथा २९. काशमूल—प्रत्येक द्रव्य २-२ पल (९३-९३ ग्राम) लें; ३०. शतावरीक्वाथ ७५० मि.ली., ३१. आमलाक्वाथ ७५० मि.ली., ३२. गोघृत ७५० ग्राम तथा ३३. चीनी ६ पल (२८० ग्राम) लें।

कल्क—१. मुलेठी, २. पीपर, ३. मुनक्का, ४. गम्भार-छाल, ५. फालसाफल, ६. छोटी इलायची, ७. जवासा, ८. रेणुकाबीज, ९. केशर, १०. नागकेशर, ११. जीवक, १२. ऋषभक, १३. मेदा, १४. महामेदा, १५. काकोली, १६. क्षीरकालोली, १७. ऋद्धि और १८. वृद्धि—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें तथा गोदुग्ध १५०० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः मुलेठी से वृद्धि तक के सभी १८ द्रव्यों को चूर्णकर सिल पर जल से पीसें और कल्क बना लें। इस कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलावें; साथ ही सर्वप्रथम गोदुग्ध देकर पाक करें। ततः शतावरीक्वाथ भी इस घृत में डालकर अग्नि में पकावें। ततः आमलाक्वाथ देकर पाक करें। इसके बाद विदारीकन्द से काशमूल तक से सभी २९ द्रव्यों को यवकुट कर एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में डालें और १ द्रोण (१२ लीटर) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर पकते हुए घृतपात्र में डालकर पकावें। जलीयांश सूखने पर दूध एवं सम्यक् पाकार्थ जल ३ लीटर मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने के बाद स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छान लें तथा पिसी हुई चीनी उस गरम घृत में मिलावें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को हमेशा ही मन्दाग्नि पर पकावें।

इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध से सेवन करना चाहिए। विशेषकर पित्तज मूत्राघात रोग में, मूत्रशर्करा, अश्मरी-रोग, शूलरोग, रक्तज मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग, पित्तज गुल्म, वातरक्त, पित्तज रोग, श्वास, कास, उरःक्षत, धनुष चलाने, अधिक मैथुन से कृश, अधिक भार ढोने से कृश हुए व्यक्ति, तृष्णा, वमन, मनोरोग, रक्तवमन, रक्तक्षय राजयक्ष्मा, अपस्मार, उन्माद, शिरोग्रह, योनिरोग, रजोदोष, शुक्रदोष एवं स्वरदोष रोग में हितकर है। यह घृत स्मृतिवर्धक, वृष्य एवं वाजीकर है; पुत्रप्रद, बल्य, वर्ण्यकर तथा वातनाशक है। इस 'विदारीघृत' का पान, भोजन और नस्य के द्वारा सेवन कर सकते हैं। यह घृत उत्तम रसायन है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध, गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कृशता में शुक्रदोष, रजोदोष वाजीकरण एवं रसायनार्थ है।

१७. भद्रावह घृत (भा.प्र.)

अम्बष्ठा पाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च।
विन्दारीकन्दः काशश्च कुशमोरटगोक्षुराः ॥३६॥
पाषाणभेदो वाराही शालिमूलं शरस्तथा।
भल्लातकं शिरीषस्य मूलमेषामथाहरेत् ॥३७॥
समभागानि सर्वाणि क्वाथयित्वा विचक्षणः।
पादशेषकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥३८॥
कल्कं दत्त्वाऽथ मतिमान् गिरिजं मधुकं तथा।
नीलोत्पलञ्च काकोलीं बीजं त्रापुषमेव च ॥३९॥
कूष्माण्डञ्च तथैर्वारुसम्भवञ्च समं भवेत्।
उष्णवातं निहन्त्येतद् घृतं भद्रावहं शुभम् ॥४०॥

क्वाथ—१. पाठा, २. पाढल, ३. श्वेतपुनर्नवामूल, ४. रक्तपुनर्नवामूल,५. विदारीकन्द, ६. काशमूल, ७. कुशमूल, ८. मूर्वामूल, ९. गोखरु, १०. पाषाणभेद, ११. वाराहीकन्द, १२. शालिधान्यमूल, १३. शरमूल, १४. शुद्ध भल्लातक, और १५. शिरीषमूलत्वक्—प्रत्येक द्रव्य २००-२०० ग्राम तथा १६. गोघृत ७५० ग्राम लें।

कल्क— १. शुद्ध शिलाजतु, २. मुलेठी, ३. नीलकमल, ४. काकोली, ५. खीराबीज, ६. कूष्माण्डबीज तथा ७. ककड़ी बीज—प्रत्येक द्रव्य २७-२७ ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः पाठा से शिरीषत्वक् तक के सभी १५ द्रव्यों को यवकुट कर १ द्रोण (१२ लीटर) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और मूर्च्छित घृत में मिलावें और शुद्ध शिलातजु से ककड़ीबीज तक सभी ७ द्रव्यों को कूटकर सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें तथा क्वाथ मिश्रित मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। क्वाथ सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारें और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस भद्रावहघृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध से सेवन करने पर उष्णवात, मूत्राघात, अश्मरी और प्रमेह रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार का नाश होता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मूत्राघात, उष्णवात, अश्मरी एवं प्रमेह में।

१८. धान्यगोक्षुरक घृत (भा.ब.)

धान्यगोक्षुरकक्वाथकल्कयुक्तं घृतं हितम्।
मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे शुक्रदोषे च दारुणे ॥४१॥

क्वाथ—धनियाँ २ किलो, गोक्षुर २ किलो तथा गोघृत १ किलो लें।

कल्क—धनियाँ १२५ ग्राम और गोक्षुर १२५ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। तदनन्तर क्वाथ द्रव्यों को यवकुट कर चतुर्गुण जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर मूर्च्छित घृत में क्वाथ-कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत कर लें। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध में मिलाकर सेवन करें। इस घृत के सेवन से मूत्राघात, मूत्रदोष और भयंकर शुक्रदोष नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृतगन्धी तथा धनिया गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मूत्राघात, मूत्रविकार एवं शुक्रदोष में।

१९. उशीराद्य तैल

उशीरं तगरं कुष्ठं यष्टीमधुकचन्दनम्।
बिभीतक्यभया भीरुः पद्ममुत्पलशारिवे ॥४२॥
बला तुरगगन्धा च दशमुलं शतावरी।
विदारी चैव काकोली गुडूच्यतिबला तथा ॥४३॥
श्वदंष्ट्रा शतपुष्पा च वाट्यालकमधूरिके।
एतैः कर्षमितैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥४४॥
सपत्रफलमूलस्य गोक्षुरस्य पलं शतम्।
जलद्रोणे विपक्तव्यं पादांशेनावतारयेत् ॥४५॥
तक्रं तैलसमं देयं वीरणक्वाथमाढकम्।
मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रमश्मरीं हन्ति दारुणाम् ॥४६॥
बलवर्णकरं वृष्यं वातपित्तनिषूदनम्।
उशीराद्यमिदं तैलं काशिराजेन निर्मितम् ॥४७॥

कल्क—१. उशीर, २. तगर, ३. कूठ, ४. मुलेठी, ५. श्वेतचन्दन, ६. बहेड़ाफलदल, ७. हरीतकीफलदल,- ८. शतावरीमूल, ९. पद्मकाठ, १०. कमलमूल, ११. अनन्तमूल, १२. बलामूल, १३. अश्वगन्धा, १४. दशमूल, १५. शतावरी, १६. विदारीकन्द, १७. काकोली, १८. गुडूची, १९. अतिबला, २०. गोखरु, २१. सौंफ, २२. बलामूल तथा २३. सौंफ—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें; २४. तिलतैल ७५० मि.ली. और २५. तक्र ७५० मि.ली. लें। गोक्षुर पञ्चाङ्ग ५ किलो तथा खस ३ किलो लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः

खस से सौंफ तक के सभी ३२ द्रव्यों (दशमूल के दशों द्रव्य सम्मिलित १२ ग्राम) का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें एवं मूर्च्छित तैलपात्र में मिला दें तथा तक्र मिला कर पाक करें। तदनन्तर गोक्षुर पञ्चाङ्ग को यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर पकते हुए तैल पात्र में मिलाकर पाक करें। पुनः खस को यवकुट कर चार गुना (१२ लीटर) जल में पकायें, चौथाई शेष रहने पर छानकर उपर्युक्त तैलपात्र में मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तैल को कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस उशीराद्यतैल का काशिराज दिवोदास ने निर्माण किया था। इस नैल की मालिश करने से मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र एवं भयानक अश्मरी रोग नष्ट हो जाते हैं। यह तैल बल एवं वर्णकारक है, वृष्य है और वात-पित्त रोग नाशक है।

मात्रा—यथावश्यक मालिश करना। **गन्ध**—सुगन्ध खस जैसी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरी में।

२०. शिलोद्भवादि तैल (भा.प्र.)

शिलोद्भिदैरण्डसमस्थिराभिः
पुनर्नवाभीरुरसेषु सिद्धम्।
तैलं श्रृतं क्षीरमथानुपानं
कालेषु कृच्छ्रादिषु सम्प्रयोज्यम् ॥४८॥

१. तिलतैल १ लीटर, २. पाषाणभेद ८३ ग्राम, ३. एरण्डमूलत्वक्, ८३ ग्राम, ४. शालपर्णी ८३ ग्राम, ५. पुनर्नवा मूल २ किलो और ६. शतावरीमूल २ किलो लें। सर्वप्रथम तिल तैल का मूर्च्छन करें। पुनर्नवामूल और शतावरीमूल पृथक्-पृथक् यवकुट कर पृथक्-पृथक् चार गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। मूर्च्छित तैल में पहले पुनर्नवाक्वाथ मिलाकर चूल्हे पर पाक करें। पाषाणभेदादि तीनों कल्क द्रव्यों को चूर्ण कर जल और तैल में मिला दें। सिल पर पीसकर कल्क बना लें। पुनर्नवाक्वाथ सूखने पर शतावरीक्वाथ मिलाकर पाक करें। जलीयाँश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। ६ से १२ मि.ली. इस तैल को गरम गोदुग्ध में मिलाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्राघातादि मूत्रविकार नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६-१२ मि.ली.। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—तैल गन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मूत्राघात-मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्रविकार में।

मूत्राघात में पथ्य

अभ्यञ्जनस्नेहविरेकबस्ति-
स्वेदावगाहोत्तरबस्तयश्च ।
पुरातना लोहितशालयश्च
मांसानि धन्वप्रभवाणि मद्यम् ॥४९॥
तक्रं पयो दध्यपि माषयूषः
पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम्।
महार्द्रकं तालफलास्थिमज्जा
हरीतकी कोमलनारिकेलम् ॥५०॥
गुवाकखर्जूरकनारिकेल-
तालद्रुमाणामपि मस्तकानि।
यथाबलं सर्वमिदञ्च मूत्रा-
घातातुराणां हितमामनन्ति ॥५१॥

तैलादि का अभ्यङ्ग (मालिश), स्नेहपान, विरेचन, बस्ति-कर्म, स्वेदन, अवगाहन (जलक्रीड़ा), उत्तरबस्ति, पुराना शालि-चावल, जाङ्गल देशों के पशु-पक्षियों के मांस या मांसरस, मद्य, तक्र, दूध, दही, उड़द का यूष, पुराना कूष्माण्डफलरस, पटोलफल, आर्द्रक, सुपक्व तालफलास्थिमज्जा, हरीतकी, कोमल नारियल मज्जा, सुपारी; खजूरवृक्ष, नारियलवृक्ष एवं तालवृक्ष मस्तक मज्जा—ये सभी पदार्थ रोगी और दोषों के बलानुसार मूत्राघात रोग में हितकर माना जाता है।

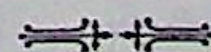
मूत्राघात में अपथ्य

विरुद्धानि च सर्वाणि व्यायामं मार्गशीतलम्।
रूक्षं विदाहि विष्टम्भि व्यवायं वेगधारणम्॥
करीरं वमनं चापि मूत्राघाती विवर्जयेत् ॥५२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मूत्राघाताधिकारः ।

देश, काल तथा सात्म्य के विरुद्ध भोजन करना, व्यायाम, अधिक मार्गगमन, शीत में बैठना, सोना, घूमना; रूक्ष, विदाही विष्टम्भकारक पदार्थ का सेवन; मैथुन, अधारणीय वेगों को धारण करना, करीरफल और वमन—ये सभी मूत्राघात के रोगी को वर्जित हैं।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य मूत्राघाताधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथाश्मरीरोगाधिकारः (३६)

अश्मरी रोग का लक्षण (यो.रत्ना.)

आदौ शूलः कुक्षिदेशे कटौ स्यात्
पश्चाद्रोधो जायते मूत्रमुष्णम्।
एतैर्लिङ्गैरश्मरीरोगचिह्नं
ज्ञात्वा कुर्याद् भेषजाद्यैश्चिकित्साम् ॥१॥

अश्मरी रोग होने का पहला लक्षण यह होता है कि पहले कुक्षि तथा कटि भाग में शूल (असह्य पीड़ा) होता है, इसके बाद पेशाब में रुकावट होती है। ऐसे लक्षणों को जानकर अश्मरी रोग हो गया है ऐसा समझकर भेषजादि से चिकित्सा करनी चाहिए।

चिकित्सा क्रम

वाताश्मरीपूर्वरूपे स्नेहपानं प्रशस्यते ॥२॥

वातज अश्मरी के पूर्वरूप में स्नेहपान करना श्रेयस्कर है।

१. वरुणादि क्वाथ (च.द.)

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम्।
यवक्षारं गुडं दत्त्वा क्वाथयित्वा पिबेद्धिताम् ॥
अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥३॥

१. वरुण की छाल १०० ग्राम, २. श्रेष्ठा (गजकृष्णा) १०० ग्राम, ३. सोंठ १०० ग्राम और ४. गोक्षुर १०० ग्राम लें। चारों द्रव्यों को यवकुट कर एक साथ काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम चूर्ण लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांश शेष रहने पर छान लें और उसमें १ ग्राम यवक्षार १० ग्राम गुड़ मिलाकर पिलाने से पुराना वातज अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है।

२. बृहत् वरुणादि क्वाथ

वारुणं वल्कलं शुष्ठी बीजं गोक्षुरसम्भवम्।
तालमूली कुलत्थं च कुशादिपञ्चमूलकम् ॥४॥
शर्कराक्षारसंयुक्तं क्वाथयित्वा जलं पिबेत्।
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं बस्तिमेहनशूलनुत् ॥५॥

१. वरुणछाल, २. सोंठ, ३. गोक्षुरबीज, ४. श्वेतमुसली, ५. कुलत्थ, ६. कुशमूल, ७. काशमूल, ८. शरमूल, ९. दर्भमूल तथा १०. इक्षुमूल—इन १० द्रव्यों को समभाग में लेकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ में से २५ ग्राम चूर्ण लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें तथा अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में चीनी १० ग्राम और यवक्षार १ ग्राम मिलाकर पिलाने से अश्मरी, मूत्रकच्छ्र बस्तिशूल और मेहन (शिश्न) शूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

३. वरुणक्वाथ

सगुडो वरुणक्वाथस्तत्कल्केनाथवाऽन्वितः ॥६॥

वरुण छाल को यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम चूर्ण लेकर १६ गुना जल के साथ क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर इस क्वाथ में २ ग्राम वरुण कल्क और १० ग्राम गुड़ मिलाकर पिलाने से वेदनायुक्त अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है।

४. शिग्रुक्वाथ

शिग्रुक्वाथोऽथवाऽत्युष्णो हन्त्याशु सरुगश्मरीम् ॥७॥

शिग्रु (सहिजन) छाल २५ ग्राम को यवकुट कर १६ गुना जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में १० ग्राम गुड़ मिलाकर गरम पीने से वेदनायुक्त अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है।

५. शुण्ठ्यादि क्वाथ (च.द.)

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवरुणगोक्षुरैः ।
काश्मर्यारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः ॥८॥
रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः।
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं दीपनं पाचनं परम्।
हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं कट्यूरुगुदमेढ्रगम् ॥९॥

घटक—१. सोंठ, २. अग्निमन्थमूल, ३. पाषाणभेद, ४. शिग्रुत्वक्, ५. वरुणत्वक्, ६. गोक्षुर, ७. गम्भारमूल और ८. अमलतासफल—प्रत्येक समभाग लें। उपर्युक्त आठों द्रव्यों को एक साथ मिलाकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में शुद्ध हींग ५०० मि.ग्रा. तथा यवक्षार और सैन्धवलवणचूर्ण १-१ ग्राम मिलाकर पिलाने से अश्मरी एवं मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है। यह अत्यन्त दीपन-पाचन है। इसके सेवन से कोष्ठाश्रित वातविकार तथा कटि, ऊरु, गुद और शिश्न गत वायु विकार नष्ट हो जाते हैं।

६. वरुणादि कषाय (च.द.)

वरुणत्वक्शिलाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैः कृतः।
कषायः क्षारसंयुक्तः शर्कराञ्च भिनत्त्यपि ॥१०॥

१. वरुणत्वक्, २. पाषाणभेद, ३. सोंठ और ४. गोखरु (समभाग) लें। इन्हें मिलाकर एक साथ यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में २ ग्राम यवक्षार मिलाकर पिलाने से मूत्रशर्करा बाहर निकल जाती हैं।

७. एलादि क्वाथ (च.द.)

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेद-
कौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।
क्वाथं पिबेदश्मजतुप्रगाढं
सशर्करे चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥११॥

१. छोटी इलायची, २. पीपर, ३. मुलेठी, ४. पाषाणभेद,५. रेणुका, ६. गोखरु, ७. वासा तथा ८. एरण्डमूलत्वक्—समभाग लें। इन्हें एक साथ मिलाकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से.२५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें तथा इस क्वाथ में ५०० मि.ग्रा. शिलाजीत और १० ग्राम चीनी मिलाकर पिलाने से अश्मरी एवं मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाते हैं।

८. श्वदंष्ट्रादि क्वाथ (च.द.)

श्वदंष्ट्रैरण्डपत्राणि नागरं वरुणत्वचम् ।
एतत्क्वाथवरं प्रातः पिबेदश्मरिभेदनम् ॥१२॥

१. गोक्षुर, २. एरण्डपत्र, ३. सोंठ, तथा ४. वरुणत्वक्—समभाग लें। इन चारों द्रव्यों को एक साथ मिलाकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और अश्मरी के रोगी को पिलायें। कुछ दिन में इससे अश्मरी छिन्न-भिन्न होकर बाहर निकल जाती हैं।

९. वीरतरादि गण (च.द.)

वीरतरः सहचरौ दभो वृक्षादनी नलः ।
गुन्द्रा काशकुशावश्मभेदमोरटटुण्टुकाः ॥१३॥
कुरुण्टिका च वशिरो वसुकः साग्निमन्थकः ।
इन्दीवरी श्वदंष्ट्रा च तथा कपोतवक्रकः ॥१४॥
वीरतरादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ।
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राघातरुजापहः ॥१५॥

१. वीरतर, २. सहचरपीतपुष्प, ३. सहचर श्वेतपुष्प, ४. दर्भमूल, ५. वृक्षादनी (बन्दा), ६. नरसल (नरकट), ७. गुन्द्रा (गवेदुका), ८. काशमूल, ९. कुशमूल, १०. पाषाणभेद, ११. मूर्वामूल, १२. सोनापाठामूल, १३. नीलपुष्प सहचर, १४. अपामार्ग, १५. अगस्तपुष्पवृक्ष, १६. अग्निमन्थ, १७. शतावरी, १८. गोखरु और १९. काकमाची—इन सभी द्रव्यों को १-१ भाग लेकर मिलाकर यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'वीरतरादिगण' के नाम से जाना जाता है। २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छानकर पिलाना चाहिए। इसका ५० मि.ली. क्वाथ पिलाने से वात विकार, अश्मरी, मूत्रशर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात रोग नष्ट हो जाते हैं।

१०. ऊषकादि गण (च.द.)

ऊषकं सैन्धवं हिङ्गु कासीसद्वयगुग्गुलु ।
शिलाजतु तुत्थकञ्च ऊषकादिरुदाहृतः ॥१६॥
ऊषकादिः कफं हन्ति गणो मेदोविशोधनः ।
अश्मरीशर्करामूत्रशूलघ्नः कफगुल्मनुत् ॥१७॥

१. औद्भिल्लवण (रेह), २. सैन्धवलवण, ३. शुद्ध हींग, ४. शुद्ध पुष्पकासीस, ५. शुद्ध बालुकासीस, ६. शुद्ध गुग्गुलु, ७. शुद्ध शिलाजतु और ८. शुद्ध तुत्थ—ये ८ द्रव्य सम मात्रा में लेने के बाद इसे 'ऊषकादिगण' कहा जाता है। इस ऊषकादि गण के द्रव्यों का चूर्ण कर या क्वाथ कर पिलाने से यह कफ-नाशक है, मेदोवृद्धिहर, अश्मरी, मूत्रशर्करा, मूत्रकृच्छ्र, शूल और कफज गुल्मनाशक है।

११. वरुणादि गण (च.द.)

वरुणार्त्तगलौ शिग्रुतर्कारिमधुशिग्रुकाः ।
मेषशृङ्गी करञ्जौ च बिम्ब्यग्निमन्थमोरटाः ॥१८॥
शैरीयो वशिरो दर्भो वरी वसुकचित्रकौ ।
बिल्वं चैवाजशृङ्गी च बृहतीद्वयमेव च ॥१९॥
वरुणादिगणो ह्येष कफमेदो निवारणः ।
विनिहन्ति शिरःशूलं गुल्माद्यन्तरविद्रधीन् ॥२०॥

१. वरुणत्वक्, २. नीलपुष्पी सहचर, ३. सहिजन त्वक्, ४. जयन्तीछाल, ५. मीठासहिजन, ६. मेढाशृङ्गी, ७. घृतकरञ्ज, ८. कण्टकीकरञ्ज, ९. कुन्दरू, १०. अग्निमन्थमूलत्वक्, ११. मूर्वामूल, १२. पीतपुष्पसहचर, १३. श्वेतपुष्पसहचर, १४. सूर्यमुखीपुष्प, १५. दर्भमूल, १६. शतावरी, १७. अर्कमूलत्वक्, १८. चित्रकमूल, १९. विल्बमूलत्वक्, २०. अजशृंगी, २१. कण्टकारीमूल तथा २२. बृहतीमूल—प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। इस 'वरुणादिगण' के द्रव्यों का चूर्ण या क्वाथ कफ एवं मेद को नष्ट करता है। शिरःशूल नाशक है, गुल्म और अन्तर्विद्रधि रोगों को नष्ट करता है।

१२. गोक्षुरबीज चूर्ण (च.द.)

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
अविक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिनाशनः ॥२०॥

गोखरु के बीजों का चूर्ण बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें।

इस चूर्ण को २ से ४ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ चाटकर बकरी का दूध पियें। ऐसा १ सप्ताह तक करने से मूत्राश्मरी टूट कर मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाती है।

१३. मूसली और इन्द्रायण चूर्ण योग

प्रपिबेत्तालमूल्या वा कल्कं व्युषितवारिणा ।
तेनैवाथ गवाक्ष्या वा त्र्यहादश्मरिपातनम् ॥२२॥

१. श्वेतमुशली का सूक्ष्मचूर्ण बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ से ४ ग्राम की मात्रा में जल से कल्क जैसा बनाकर वासी जल (ताम्र के लोटा में खुले आकाश में एकान्त स्थान में रात्रिपर्यन्त रखा हुआ जल) के साथ ३ दिनों तक सेवन करने से अश्मरी टूटकर बाहर निकल जाती है।

२. उसी तरह 'इन्द्रायणमूल' का चूर्ण बनाकर ४ ग्राम तक की मात्रा में वासी जल से ३ दिन तक सेवन करने से मूत्राश्मरी टूटकर निकल जाती है।

१४. नारिकेलपुष्प प्रयोग

यो नारिकेलकुसुमं सक्षारं वारिणा पिष्ट्वा ।
पिबति हि तस्य दिनेकान्निपतति घोराश्मरी नूनम् ॥

जो अश्मरी का रोगी १२ ग्राम नारियल के फूल तथा १ ग्राम यवक्षार को सिल पर जल से पीसकर तथा जल में घोलकर पीता है, उस व्यक्ति की मूत्राश्मरी टूटकर मूत्रमार्ग से १ ही दिन में गिर जाती है।

१५. अश्मरीभेदन योग (चरक)

मूलं श्वदंष्ट्रेक्षुरकोरुबूकात्
क्षीरेण पिष्टं बृहतीद्वयाच्च ।
आलोड्य दध्ना मधुरेण पेयं
दिनानि सप्ताश्मरिभेदनार्थम् ॥२४॥

१. गोखरुमूल, २. तालमखाना, ३. एरण्डमूलत्वक्, ४. कण्टकारीमूल और ५. बृहतीमूल—इन पाँचों द्रव्यों को समभाग लेकर चूर्णकर रख लें। इसमें से २५ ग्राम चूर्ण दूध के साथ सिल पर पीसें तथा मीठे दही के साथ मिलाकर ७ दिनों तक पियें। इससे मूत्राश्मरी टूटकर गिर जाती है।

१६. आनन्दयोग

तिलापामार्गकदलीपलाशामलकाण्डकान् ।
दग्ध्वा तद्भस्मतोयन्तु वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥२५॥
तत्पचेत्तोयशेषान्तं ततश्चूर्णं द्विगुञ्जकम् ।
पाययेदविमूत्रेण शर्कराऽश्मरिजिद् भवेत् ॥२६॥

१. तिलपञ्चाङ्ग, २. अपामार्गपञ्चाङ्ग, ३. कदलीस्तम्भ, ४. पलाशकाण्ड, और ५. आमलकी वृक्ष के काण्ड—इन्हें पृथक्-पृथक् जलाकर १-१ किलो रख लें। इसे ६ गुना जल में घोलकर कपड़े से छान लें और उस जल को निथरने के लिए छोड़ दें। पुनः उसका ऊपरी स्वच्छ जल निकालकर उसे आग पर सुखाकर घन चूर्ण कर लें। इस क्षारचूर्ण को २५० मि.ग्रा. की मात्रा में भेड़ी के मूत्र के साथ पीने से मूत्रशर्करा और मूत्राश्मरी टूटकर मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाती है।

१७. गोक्षुराद्यवलेह-बृहत् (बृ.नि.र.)

गोक्षुरकं पलशतं दशमूलं तथैव च ।
पाषाणभेदोऽष्टपलं गुडूची पलपञ्चकम् ॥२७॥
एरण्डोऽभीरुरष्टौ च पलान्येव पृथग् दश ।
पद्ममूलं चाश्वगन्धा प्रत्येकं पलविंशतिः ॥२८॥
सर्वमेकत्र सङ्कुट्य जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषं तु सङ्गृह्य वस्त्रपूतं समाक्षिपेत् ॥२९॥
घनीभूते तु सञ्जाते द्रव्याणीमानि दापयेत् ।
गव्याज्यं प्रस्थमेकन्तु शिलाजं च तथा स्मृतम् ॥३०॥
तालमूली शताह्वा च त्रिकटु त्रिफला तथा ।
सूक्ष्मैला भूतकेशी च ह्रीबेरं नागकेशरम् ॥३१॥
पद्मकं जातिपत्रत्वग्मधुयष्टी सरोचना ।
जातीफलमुशीरं च त्रिवृतां रक्तचन्दनम् ॥३२॥
धान्याकं कटुकाक्षारौ नागवल्ली च शृङ्गिका ।
पुष्कराह्वं शटी दारु सीसं लौहं च वङ्गकम् ॥३३॥
द्रव्याणीमानि सङ्गृह्य प्रत्येकं पलमात्रकम् ।
खादेद्बलाग्निं सम्प्रेक्ष्य पथ्यं सेवेत मानवः ॥३४॥
स्निग्धभाण्डे निधायाथ नित्यं लिह्यात्पलोन्मितम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं विबद्धता ॥३५॥
प्रमेहा विंशतिश्चैव शुक्रदोषस्तथैव च ।
धातुक्षयश्चोष्णवातो वायकुण्डलिकादयः ॥३६॥
ते सर्वे प्रशमं यान्ति भास्करेण तमो यथा ।
नातः परतरः कश्चित् कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥३७॥

१. गोखरु ५ किलो, २. दशमूल ५ किलो, ३. पाषाणभेद ३७५ ग्राम, ४. गुडूची २३५ ग्राम, ५. एरण्डमूल ३७५ ग्राम, ६. शतावरी ५०० ग्राम, ७. कमलमूल १ किलो, ८. अश्वगन्धा १ किलो, ९. गोघृत ७५० ग्राम तथा १०. शुद्ध शिलाजतु ७५० ग्राम लें।

प्रक्षेप द्रव्य—१. सफेदमुसलीचूर्ण, २. सौंफचूर्ण, ३. सोंठचूर्ण, ४. पीपरचूर्ण, ५. मरिचचूर्ण, ६. आमलाचूर्ण, ७. हरीतकीचूर्ण, ८. बहेड़ाचूर्ण, ९. छोटीइलायचीचूर्ण, १०. जटामांसीचूर्ण, ११. सुगन्धबालाचूर्ण, १२. नागकेशरचूर्ण, १३. पद्मकाष्ठचूर्ण, १४. जावित्रीचूर्ण, १५. दालचीनीचूर्ण, १६. मुलेठीचूर्ण, १७. गोरोचनचूर्ण, १८. जायफलचूर्ण, १९. खसचूर्ण, २०. निशोथचूर्ण, २१. लालचन्दनचूर्ण, २२. धनियाँचूर्ण, २३. कुटकीचूर्ण, २४. यवक्षार, २५. सज्जिक्षार,

२६. ताम्बूलपत्रचूर्ण, २७. काकड़ासिंगी, २८. पुष्करमूल, २९. कचूरचूर्ण, ३०. देवदारुचूर्ण, ३१. नागभस्म, ३२. लौहभस्म और ३३. वङ्गभस्म—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें। सर्वप्रथम गोखरु और दशमूल के द्रव्यों को पृथक्-पृथक् यवकुट करें और अलग-अलग स्टेनलेस स्टील के पात्र में द्रवद्वैगुण्य २४ लीटर जल देकर क्वाथ करें। क्योंकि द्रव्य १० किलो है। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इसी प्रकार पाषाण-भेद, गुडूची, एरण्डमूल, शतावरी, कमलमूल, अश्वगन्धा—इन छ: द्रव्यों को यवकुट कर १२ लीटर (१ द्रोण) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। अब इन तीनों क्वाथों को एक स्टेनलेस स्टील पात्र में रखकर अग्नि पर पकावें। जब क्वाथ अर्धघन हो जाय तो उसमें ७५० ग्राम गोघृत और ७५० ग्राम शुद्ध शिलाजतु मिला लें तथा इसी पात्र में सफेद मुसली से वङ्गभस्म तक के सभी ३३ द्रव्यों का चूर्ण प्रक्षिप्त कर अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें।

विमर्श—पहले एक बड़ी ट्रे में सफेदमुसलीचूर्ण से वङ्गभस्म तक के सभी ३३ द्रव्यों को रखकर हाथ से मसल या रगड़कर अच्छी तरह मिला लें। तत: उसे पुन: छननी से छान लें। इसके बाद प्रक्षिप्त करें। यह चीनीरहित अवलेह है, अत: कटु-तिक्त-कषाय रस से युक्त है। ऐसा समझकर रोगी इसे सेवन करें। इस अवलेह को रोगी की अग्नि, बल और रोग का बलाबल समझकर चिकित्सक मात्रा का निर्धारण करें। तथापि आचार्यश्री ने ४६ ग्राम (१ पल) सेवन का निर्देश दिया है। इसके सेवन से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मलविबन्ध, २० प्रकार के प्रमेह, शुक्रदोष, धातुक्षीणता, उष्णवात, और वातकुण्डली आदि सभी रोग शान्त हो जाते हैं जैसे सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। इस अवलेह से बढ़कर मूत्रमार्ग के रोगियों के लिए दूसरी कोई अच्छी दवा नहीं है। ऐसा कृष्णात्रेय आचार्य ने कहा है।

मात्रा—१२ से ४६ ग्राम। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—शिलाजतु जैसी गन्ध। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात एवं अश्मरी और प्रमेह आदि विकार में।

१८. पाषाणभिन्न रस

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिलाजतुरसः पलम्।
श्वेतपुनर्नवावासारसैः श्वेतापराजितैः ॥३८॥
प्रतिद्रवं त्र्यहं मर्द्यं शुष्कं तद्धाण्डसम्पुटे।
स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे संशुष्कं तद्विचूर्णयेत् ॥३९॥
रसः पाषाणभिन्नः स्याद् द्विगुञ्जाश्चाश्मरीं हरेत्।
भूधात्रीफलविशालां पिष्ट्वा दुग्धेन पाययेत् ॥
कुलत्थक्वाथसम्पीतमनुपानं सुखावहम् ॥४०॥

शुद्ध पारद १२ ग्राम, शुद्ध गन्धक २३ ग्राम तथा शुद्ध शिलाजतु ४६ ग्राम लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। तत: उसमें शिलाजतु मिलाकर जल से मर्दन करें। अच्छी तरह मर्दन हो जाने पर उसमें श्वेतपुनर्नवा रस, वासापत्रस्वरस तथा श्वेतअपराजितापत्रस्वरस के साथ १-१ दिन तक मर्दन करें। तत: उसका एक गोला बनाकर छाया में सुखा लें। शरावसम्पुट कर अच्छी तरह से कपड़मिट्टी से सन्धिबन्धन करें। अब उस सम्पुटित शराव को बालुकायन्त्र में रखकर ३ घण्टे तक मन्दाग्नि से पाक करें। पुन: औषधि को निकालकर खरल में पीसें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पाषाणभिन्नरस' कहते हैं। इस औषधि की २५० मि.ग्रा. की मात्रा को भूम्यामलकीचूर्ण एवं इन्द्रायणफलचूर्ण १-१ ग्राम तथा दूध के साथ पीसकर मिला लें तथा अश्मरी के रोगी को पिलावें। इसके सेवन से 'यथा नामस्तथागुण:' अर्थात् यह औषधि अश्मरी पत्थर को तोड़कर मूत्रमार्ग से बाहर निकाल देती है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—कुलत्थ क्वाथ। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—अश्मरीभेदक है।

१९. पाषाणवज्र रस (र.सा.सं.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं रसैः श्वेतपुनर्नवैः।
मर्दयित्वा दिनं खल्ले रुद्ध्वा तद्भूधरे पचेत् ॥४१॥
दिनान्ते तत्समुद्धृत्य मर्दयेद् गुडसंयुतम्।
अश्मरीं बस्तिशूलञ्च हन्ति पाषाणवज्रकः ॥४२॥
गोरक्षकर्कटीमूलक्वाथं कौलत्थकं तथा।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुद्ध्वा दोषबलाबलम् ॥४३॥

शुद्ध पारद १०० ग्राम और शुद्ध गन्धक २०० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी तरह कज्जली बना लें। इस कज्जली में श्वेतपुनर्नवास्वरस देकर एक दिन तक मर्दन करें। पुन: इस मर्दित द्रव्य का १ गोला बनाकर सुखा लें। शरावसम्पुट कर भूधरयन्त्र में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर औषधि को खरल में मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को २५० मि.ग्रा. तक की मात्रा में १ ग्राम गुड़ के साथ मिलाकर सेवन करने से मूत्राश्मरी, बस्तिशूल, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधि के सेवन के बाद अनुपान रूप में—गोक्षुरमूल, ककड़ीबीज और कुलथी का मिश्रित क्वाथ ५० मि.ली. पिलाना चाहिए। दोष, रोगबल एवं रोगीबल को देखकर अनुपान पिलाना चाहिए।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—गुड़ तथा गोखरुमूल, ककड़ीबीज और कुलथी क्वाथ से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—

कृष्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—अश्मरी, बस्ति-शूल एवं मूत्रकृच्छ्र में।

२०. त्रिविक्रम रस (र.सा.सं.)

मृतताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यं गते द्रवे।
तत्ताम्रं शुद्धसूतञ्च गन्धकञ्च समं समम् ॥४४॥
निर्गुण्डीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद् गोलकीकृतम्।
यामैकं बालुकायन्त्रे पक्त्वा योज्यं द्विगुञ्जकम् ॥४५॥
बीजपूरस्य मूलञ्च सजलञ्चानुपाययेत्।
रसस्त्रिविक्रमो नाम शर्करामश्मरीं जयेत् ॥४६॥

१. ताम्रभस्म ५० ग्राम, २. बकरी का दूध ५० मि.ली., ३. शुद्ध पारद ५० ग्राम, तथा ४. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम लें। एक स्टेनलेस स्टील की बड़ी कटोरी में ताम्रभस्म और बकरी का दूध मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब बकरी का दूध सूख जाय तो ताम्रभस्म को कटोरी से खरोंचकर एक खरल में पीसें। उसी में शुद्ध पारद एवं गन्धक मिलाकर मर्दन करें। अच्छी कज्जली बन जाने पर निर्गुण्डीस्वरस के साथ १ दिन तक मर्दन करें। बाद में गोला बनाकर छाया में तत्पश्चात् धूप में सुखा लें। इस गोले को छोटे शराव में सम्पुट कर बालुकायन्त्र में ३ घण्टे तक पाक करें। ततः स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर गोला को निकाल लें और खरल में पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस त्रिविक्रमरस को २५० मि.ग्रा. की मात्रा में मधु के साथ चाटकर बिजौरानिम्बु मूल क्वाथ ५० मि.ली. पिलाने से मूत्र-शर्करा और मूत्राश्मरी रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु और बिजौरा। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**--मूत्राश्मरी, मूत्रशर्करा एवं मूत्रकृच्छ्र में।

२१. वरुणाद्य लौह

द्विपलं वरुणं धात्र्यास्तदर्द्धं धातकीसुमम्।
हरीतक्याः पलार्द्धं च पृश्निपर्णी तदर्धकम् ॥४७॥
कर्षमानं च लौहाभ्रं चूर्णमेकत्र कारयेत्।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय माषकौ द्वौ विधानवित् ॥४८॥
मूत्राघातं तथा घोरं मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम्।
अश्मरीं विनिहन्त्याशु प्रमेहं विषमज्वरम् ॥४९॥
बलपुष्टिकरं चैव वृष्यमायुष्यमेव च।
वरुणाद्यमिदं लौहं चरकेण विनिर्मितम् ॥५०॥

१. वरुणचूर्ण ९३ ग्राम, २. आमलकी ४६ ग्राम, ३. धातकीपुष्पचूर्ण ४६ ग्राम, ४. हरीतकीचूर्ण २३ ग्राम, ५. पृश्निपर्णीचूर्ण १२ ग्राम, ६. लौहभस्म १२ ग्राम और ७. अभ्रकभस्म १२ ग्राम लें। इन सभी द्रव्यों को एक साथ खरल में अच्छी तरह से मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को २ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर चाटें और ऊपर से गोदुग्ध में चीनी मिलाकर पिलावें। इसके सेवन से मूत्राघात, भयंकर मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, विषमज्वर नष्ट हो जाते हैं। यह बल्य एवं बृंहण है, वृष्य एवं आयुष्य है। इस वरुणाद्य लौह का महर्षि चरक ने निर्माण किया है।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—मधु एवं बाद में दूध में। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—किञ्चिद् रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राश्मरी में।

२२. कुलत्थादि घृत (च.द.)

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं
सशर्करं शीतलियावशूकम्।
बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराभ्यां
घृतं पचेन्ना वरुणस्य तोये ॥५१॥
दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं
मूत्राभिघातञ्च समूत्रबन्धम्।
एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं
प्ररूढवृक्षानिव वज्रपातः ॥५२॥

कल्क— १. कुलथी ३२ ग्राम, २. सैन्धवलवण ३२ ग्राम, ३. वायविडङ्ग ३२ ग्राम, ४. चीनी ३२ ग्राम, ५. शीतली (जलज क्षुप) ३२ ग्राम, ६. यवक्षार ३२ ग्राम, ७. कूष्माण्डबीज ३२ ग्राम, ८. गोक्षुरबीज ३२ ग्राम, ९. गोघृत १ किलो और १०. वरुणक्वाथ ४ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः कुलथी से गोखरुबीज तक के सभी ८ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। वरुण छाल ४ किलो लेकर यवकुट करें और उसे १६ लीटर जल मिलाकर क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। अब मूर्च्छित घृत में दोनों कल्क-क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर कल्क के सम्यक् पाक हेतु ४ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस कुलत्थाद्यघृत को १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ सेवन करने से दुःसाध्य सभी प्रकार की अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और मूत्रविबन्ध उसी प्रकार शीघ्र नष्ट हो जाते हैं जैसे व्रजपात से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गाय के गरम दूध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मूत्राश्मरी, मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्राघात में।

२३. वरुणघृत (च.द.)

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत्।
पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥५३॥

वरुणं कदली बिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम्।
अमृता चाश्मजं देयं बीजञ्च त्रपुषोद्भवम् ॥५४॥
शतपर्वा तिलक्षारं पलाशक्षारमेव च।
यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत् ॥५५॥
अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया।
जीर्णे तस्मिन् पिबेत्पूर्वं गुडं जीर्णन्तु मस्तुना।
अश्मरीं शर्कराञ्चैव मूत्रकृच्छ्रं विनाशयेत् ॥५६॥

वरुण की छाल ५ किलो को १२ लीटर (१ द्रोण) जल में पकावें। घृत ७५० ग्राम (१ प्रस्थ) लें।

कल्क—१. वरुणछाल, २. कदलीकन्द, ३. बालबिल्व, ४. पञ्चतृणमूल, ५. बेलछाल, ६. गम्भारछाल, ७. अग्निमन्थ छाल, ८. सोनापाठामूलछाल, ९. पाटलात्वक्, १०. गुडूची, ११. शुद्ध शिलाजतु, १२. खीरे का बीज, १३. दूर्वा, १४. तिलक्षार, १५. पलाशक्षार तथा १६. जूही फूल की जड़—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः वरुणत्वक् को यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और मूर्च्छित घृत मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। इसी बीच वरुण छाल से जूही की जड़ तक के १६ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बनावें और पकते हुए घृत में मिलावें। जब जलीयांश सूख जाय तो कल्क के सम्यक् पाक हेतु ३ लीटर जल मिलाकर पुनः पकावें। जब दुबारा जलीयांश सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। देश-काल एवं व्याधि-बल को समझकर इसकी मात्रा निर्धारित करें तथा ६ से १२ ग्राम तक मात्रा में गरम गोदुग्ध के साथ सेवन करें। घृत के जीर्ण होने पर दही के पानी में गुड़ मिलाकर पिलाना चाहिए। इसके सेवन से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्रशर्करा रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम या अधिक भी। **अनुपान**—गरम दूध से। घृत जीर्ण होने पर मस्तु ५० मि.ली. तथा गुड १० ग्राम लें। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्रशर्करा में।

२४. पाषाणभेदादि घृत (च.द.)

पाषाणभेदो वसुको वशिरोऽश्मन्तकस्तथा।
शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥५७॥
कपोतवक्त्रार्त्तगलकाञ्चनोशीरगुल्मकाः ।
वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥५८॥
यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च।
ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम् ॥५९॥
भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु।
क्षारान् यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च।
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्वातनाशने ॥६०॥

क्वाथ— १. पाषाणभेद, २. अर्कवृक्षत्वक्, ३. अपामार्ग, ४. कोविदारत्वक्, ५. शतावरी, ६. गोखरुबीज, ७. बृहती, ८. कण्टकारी, ९. काकमाची, १०. नीलसहचरपञ्चाङ्ग, ११. काञ्चनार त्वक्, १२. खस, १३. गुडूची, १४. बन्दा (वृक्षों के बन्दा), १५. सोनापाठा, १६. वरुणछाल, १७. शाखूवृक्ष के फल, १८. जौ, १९. कुलथी, २०. बेरफल, २१. कतकफल (निर्मलीबीज) और २२. गोघृत १ किलो। पाषाणभेद से कतकफल तक के सभी २१ द्रव्यों को प्रत्येक १९०-१९० ग्राम लें।

कल्क—ऊषकादि गण के ८ द्रव्यों का कल्क २५० ग्राम लें। देखें पृष्ठ ६९०। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः पाषाणभेद से कतकफल तक के सभी द्रव्यों को १९०-१९० ग्राम लेकर यवकुट करें और चार गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और मूर्च्छित घृत में मिला दें। इसके बाद ऊषकादिगण के ८ द्रव्यों प्रत्येक ३१-३१ ग्राम लें और कूटकर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनाकर घृत में मिला लें तथा मन्दाग्नि से पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो कल्क के सम्यक् पाक हेतु ४ लीटर जल मिलाकर पुनः पकावें। जब जलीयांश सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस पाषाणभेदादि घृत को ३ से ६ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध के साथ सेवन करने से वातज अश्मरी शीघ्र ही टूटकर मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाती है। इसी पाषाणभेदादि २१ द्रव्यों के क्वाथ में सिद्ध किया हुआ पानीय क्षार, यवागू, पेया, कषाय, क्षीरपाक दूध और भोजन को भी इसी जल से बनाना चाहिए। इससे वायु का शमन होता है।

मात्रा—३ से ६ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—शिलाजतुवत् (गोमूत्र गन्धी)। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—वाताश्मरी में।

२५. कुशाद्य घृत (च.द.)

कुशः काशः शरो गुल्म उत्करो मोरटोऽश्मभित्।
दर्भो विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टकः ॥६१॥
भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरोऽथ कुरण्टिका।
पुनर्नवे शिरीषश्च क्वथितास्तेषु साधितम् ॥६२॥
घृतं शिलाह्वमधुकबीजैरिन्दीवरस्य च।
त्रपुषैर्वारुकादीनां बीजैश्चावापितं शृतम् ॥६३॥
भिनत्ति पित्तसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव च।

क्षारान् यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च ।
भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन् पित्तनाशने ॥६४॥

क्वाथ—१. कुशमूल, २. कासमूल, ३. शरमूल, ४. गुडूची, ५. लालइक्षुमूल, ६. इक्षुमूल, ७. पाषाणभेद, ८. दर्भमूल, ९. विदारीकन्द, १०. वाराहीकन्द, ११. शालिधानमूल, १२. गोखरु, १३. सोनापाठा, १४. पाटल, १५. पाठा, १६. पत्तूर (शालिञ्चशाक), १७. सहचर, १८. श्वेतपुनर्नवा, १९. रक्तपुनर्नवा और २०. शिरीषत्वक्— प्रत्येक द्रव्य २००-२०० ग्राम लें।

कल्क—१. शुद्ध शिलाजतु, २. मुलेठी, ३. कमलबीज (कमलगट्टा), ४. खीरांबीज तथा ५. ककड़ीबीज—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें और गोघृत १ किलो लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः क्वाथ द्रव्यों को (कुल ४ किलो) यवकुट कर चार गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई रहने पर छानकर मूर्च्छित घृत में मिलावें। ततः कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को भी मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब क्वाथ सूख जाय तो सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल और मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त इस घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारें और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस कुशाद्यघृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध के साथ मिलाकर पिलाने से पित्ताश्मरी टूटकर मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाती है। इस घृत के सेवन करते समय उपर्युक्त पित्तनाशक औषधों से क्षार, यवागू, पेया, क्वाथ, दूध तथा अन्य द्रव्यों को सिद्ध कर पित्ताश्मरी नाशनार्थ सेवन कराना चाहिए।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—पित्ताश्मरी में।

२६. वरुणाद्य घृत (च.द.)

गणे वरुणकादौ च गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः ।
कुष्ठमुस्ताह्वमरिचचित्रकैः ससुराह्वयैः ॥६५॥
एतै सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन च ।
भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥६६॥
क्षारान् यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च ।
भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन् कफनाशने ॥६७॥

वरुणादिवर्ग[1] का क्वाथ ४ किलो (प्रत्येक द्रव्य १८२-१८२ ग्राम) लें।

कल्क—कल्क के प्रत्येक १६ द्रव्य १५-१५ ग्राम लेना चाहिए। १. गुग्गुल, २. छोटी एला, ३. रेणुका, ४. कूठ, ५. नागरमोथा, ६. मरिच, ७. चित्रकमूल, ८. देवदारु। **ऊषकादिगण**—९. उद्भिल्लवण (रेह), १०. सैन्धवलवण, ११. शुद्ध हींग, १२. पुष्पकासीस, १३. बालुकासीस, १४. गुग्गुलु, १५. शुद्ध शिलाजतु तथा १६. शुद्ध तुत्थ और १७. बकरी का घृत—१ किलो लें।

सर्वप्रथम बकरी के घृत का गोघृत जैसा ही मूर्च्छन करें। ततः वरुणादिक्वाथ द्रव्यों को अष्टगुण जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छानकर मूर्च्छित घृत में मिला दें और कल्क वर्ग के १६ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें और मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'वरुणाद्यघृत' को ३ से ६ ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ पिलाने से कफज अश्मरी टूटकर मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाती है। इस घृत का सेवन करते समय उपर्युक्त वरुणादि वर्ग के क्वाथ से साधित क्षार, यवागू, पेया, क्वाथ तथा क्षीरपाक-विधि से पक्व दूध का सेवन करना चाहिए।

मात्रा—३-६ ग्राम। **अनुपान**—गाय के गरम दूध से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी, शिलाजतु वत्। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—कफाश्मरी में।

२७. वरुणाद्य तैल (च.द.)

त्वक्पत्रपुष्पमूलस्य वरुणात् सत्रिकण्टकात् ।
कषायेण पचेत्तैलं बस्तिनाऽऽस्थापनेन च ॥
शर्कराऽश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥६८॥

तिलतैल १ लीटर, वरुण पञ्चाङ्ग २ किलो तथा गोखरु पञ्चाङ्ग २ किलो लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः वरुण और गोखरु पञ्चाङ्ग को यवकुट कर अष्टगुण जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का प्रयोग आस्थापन बस्ति से करने पर मूत्रशर्करा, मूत्राश्मरी तथा अश्मरीजन्य शूल और मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है। केवल बस्ति प्रयोग करना है।

१. वरुणादिगण—वरुणत्वक्, नीलसहचर, सहिजनत्वक्, जयन्तीत्वक्, मीठासहिजन, मेढाशृंगी, घृतकरञ्ज, कण्टककरञ्ज, त्रिकोल, अग्निमन्थ, मूर्वामूल, पीतसहचर, नीलसहचर, सूर्यमूखी, दर्भमूल, शतावरी, अर्कमूल, चित्रकमूल, बिल्वमूल, अजशृंगी, कण्टकारी और बृहतीमूल—ये २२ द्रव्य वरुणादि वर्ग के हैं।

मात्रा—५० से १०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—बस्तिप्रयोग। **गन्ध**—पकाया तैल जैसा। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—बस्ति प्रयोग, मूत्रशर्करा, मूत्राश्मरी एवं मूत्रकृच्छ्र में।

अश्मरी रोग में पथ्य

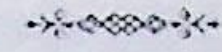
बस्तिविरेको वमनं च लङ्घनं
स्वेदोऽवगाहोऽपि च वारिसेवनम्।
यवाः कुलत्थाः प्रपुराणशालयो
मद्यानि धन्वाण्डजसम्भवा रसाः ॥६९॥
पुराणकूष्माण्डफलं च तल्लता
गोकण्टको वारुणशाकमार्द्रकम्।
पाषाणभेदो यवशूकरेणवः
स्थिराः समाकर्षणमश्मनामपि।
एतानि सर्वाणि भवन्ति सर्वदा
मुदेऽश्मरीरोगनिपीडितानाम् ॥७०॥

बस्तिकर्म, विरेचन, वमनकर्म, लंघन, पसीना कराना, जल में अवगाहन (जलक्रीड़ा), जल का सेवन, जौ, कुलथी, पुराना शालिचावल, मद्य, मरुस्थलीय पक्षियों के अण्डों का रस, पुराना कूष्माण्ड फल और कूष्माण्ड की लता, गोखरु, वरुण के पत्तों की शाक, अदरख, पाषाणभेद, यवक्षार, रेणुका, शालपर्णी और यन्त्रों द्वारा पथरी (अश्मरी) को बाहर निकालना—ये सारी क्रियाएँ हमेशा अश्मरीरोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए आनन्द-दायक है।

अश्मरी रोग में अपथ्य

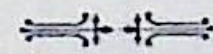
मूत्रस्य शुक्रस्य च वेगमम्लं
विष्टम्भि रूक्षं गुरु चान्नपानम्।
विरुद्धमन्नाशनमश्मरीमान्
विवर्जयेत् सन्ततमप्रमत्तः ॥७१॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामश्मर्यधिकारः।



मूत्र और शुक्र के वेगों को रोकना, अम्ल, विष्टम्भी पदार्थ, रूक्ष, गुरु अन्न-पान का सेवन और विरुद्ध अन्न एवं पान का सेवन अश्मरी रोगियों को त्याग देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य अश्मरीरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ प्रमेहरोगाधिकारः (३७)

प्रमेह में बृंहणादि विधि

स्थूलः प्रमेही बलवानिहैकः
कृशस्तथाऽन्यः परिदुर्बलश्च।
संबृंहणं तत्र कृशस्य कार्यं
संशोधनं दोषबलाधिकस्य ॥१॥

प्रमेहरोग से पीड़ित व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं—१. स्थूल रोगी तथा २. कृश रोगी। अत: प्रमेही की चिकित्सा करते समय कृश रोगी को बल-मांसादि वर्धक औषधों के द्वारा उसको बृंहण कराना चाहिए तथा स्थूल और बलवान् रोगी के बढ़े हुए दोषों को नष्ट करने के लिए वमन एवं विरेचन औषधों द्वारा ऊर्ध्वाध: शोधन कराना चाहिए।

प्रमेह रोगियों में सन्तर्पण ही प्रधान चिकित्सा

ऊर्ध्वं तथाऽधश्च मलेऽपनीते
मेहेषु सन्तर्पणमेव कार्यम्।
संशोधनं नार्हति यः प्रमेही
तस्य क्रिया संशमनी विधेया ॥२॥

स्थूल एवं बलवान् प्रमेही को वमन-विरेचन से ऊर्ध्व तथा अधो भाग में लिप्त मल के निकल जाने पर सन्तर्पण क्रम से ही चिकित्सा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अत्यन्त कृश (क्षीण) रोगी जो संशोधन (वमन-विवेचन) को नहीं बर्दाश्त कर सकता हो तो उसकी संशमन चिकित्सा करनी चाहिए।

प्रमेहरोग में पथ्य

ये विष्किराये प्रतुदा विहङ्गा-
स्तेषा रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः।
मन्थाः कषायारसचूर्णलेहा
मसूरमुद्गा लघवश्च भक्ष्याः ॥३॥

विष्किरा[1] (कबूतर, कुक्कुट, तित्तिरादि जो अपने पैर के नखों से भूमि पर फैलाकर खाते हैं), प्रतुदा[2] (गृद्ध, बाज, काकादि) तथा अन्य पक्षियों के मांसरस, जांगल (मृगादि) पशुओं से साधित मन्थ, कषाय, स्वरस, चूर्ण, अवलेह तथा मसूर, मूँग आदि लघु अन्नों का सेवन हितकर है।

१. *विष्किराः—भूमिं विलिख्य नखैर्विष्किरन्तीति विष्किराः (रा.नि.)*

२. प्रतुदाः—प्रतुद्य चञ्च्वा निष्कृष्य मांसादिकमदन्तीति प्रतुदाः। ते गृद्धश्येनकाकादिपक्षीजातयः। (रा.नि.)

(च.द.)

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी ।
जाङ्गलं तिक्तशाकञ्च यवान्नञ्च श्रमो मधु।
कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा ॥४॥

पुराने साँवा के चावल, कोद्रव, उद्दालक, गेहूँ, चना, अरहर की दाल, जांगल पशु-पक्षियों के मांसरस, तिक्तरस प्रधान शाक जैसे—करैला, निम्ब, गुडूची, पटोलादि शाक, यव आँटा, परिश्रम करना, मधु एवं कुलथी प्रमेहियों के लिए हितकर है।

रूक्षमुद्वर्तनं गाढं व्यायामो निशि जागरः।
यच्चान्यच्छ्लेष्मपित्तघ्नं बहिरन्तश्च तद्धितम् ॥५॥

रूक्ष पदार्थ जैसे निम्ब-हल्दी आदि द्रव्यों के चूर्णों का शरीर पर गाढ उद्वर्तन, व्यायाम, रात्रिजागरण तथा जो द्रव्य कफ-पित्त को नष्ट करने वाले हों उनका बाह्य प्रयोग मर्दन विधि से तथा आभ्यन्तर प्रयोग भक्षण विधि से करना प्रमेहियों के लिए हितकर है।

१. सभी प्रमेहहर चार योग (च.द.)

सर्वमेहहरो धात्र्या रसः क्षौद्रनिशायुतः।
कषायस्त्रिफलादारुमुस्तकैरथवा कृतः ॥६॥
त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्वाथः क्षौद्रेण मेहहा।
पीतो रसो गुडूच्या वा मधुना मेहनाशनः ॥७॥

१. आमलास्वरस २५ मि.ली., मधु १० ग्राम तथा हरिद्रा चूर्ण २ ग्राम—इसे मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं।

२. आमला, हरीतकी, बहेड़ा, देवदारु और नागरमोथा—इन्हें समभाग लेकर यवकुट करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें, अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें तथा उसमें २५ ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से प्रमेह नष्ट हो जाता है।

३. आमला, हरीतकी, बहेड़ा, देवदारु, दारुहल्दी और नागमोथा—इन्हें समभाग लें और पूर्ववत् क्वाथ बनावें। छानकर उसमें मधु मिलाकर पिलाने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है।

४. गुडूचीस्वरस ५० मि.ली. तथा मधु २५ ग्राम मिलाकर पिलाने से प्रमेह नष्ट हो जाता है।

२. प्रमेहहर अन्य चार योग (च.द.)

त्रिफलालौहशिलाजतुपथ्याचूर्णञ्च लीढमेकैकम्।
मधुनाऽमरास्वरस इव सर्वान्मेहान्निवारयति ॥८॥

१. त्रिफलाचूर्ण ३ ग्राम को १० ग्राम मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

२. लौहभस्म १२५ से २५० मि.ग्रा. ५ ग्राम मधु के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

३. शुद्ध शिलाजतु १ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

४. हरीतकीचूर्ण ३ ग्राम को १० ग्राम मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

३. प्रमेह में गुडूची सत्त्व का प्रयोग

लीढः सारो गुडूच्यास्तु मधुना तत्प्रमेहनुत् ॥९॥

गुडूचीसत्त्व ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक की मात्रा में मधु मिलाकर चटाने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

४. शतावरी स्वरस

शतावर्या रसं नीत्वा क्षीरेण सह यः पिबेत्।
प्रमेहा विंशतिस्तस्य क्षयं यान्ति न संशयः ॥१०॥

शतावरीस्वरस २५ मि.ली. तथा अच्छी तरह उबाला हुआ गोदुग्ध ५० मि.ली. मिलाकर रोज प्रातः पिलाने से २० प्रकार के प्रमेह निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

५. शुक्रमेहहर योग

आमदुग्धं समजलं यः पिबेत्प्रातरुत्थितः।
निःसंशयं शुक्रमेहः पुराणस्तस्य नश्यति ॥११॥

गाय का तुरन्त का दुहा हुआ (धारोष्ण = कच्चा) दूध १०० मि.ली. तथा जल १०० मि.ली. मिलाकर नित्य प्रातः पिलाने से निःसन्देह पुराना शुक्रमेह (प्रमेह) नष्ट हो जाता है।

६. पलाशपुष्प-प्रयोग

पलाशपुष्पं तोलैकं सितायाश्चार्द्धतोलकम्।
पिष्टं शीताम्भसा पीतं मेहं हन्ति न संशयः ॥१२॥

पलाशपुष्पचूर्ण १२ ग्राम तथा चीनी ६ ग्राम दोनों को सिल पर पीसकर शीतल जल में शर्बत बनाकर पिलाने से निःसन्देह प्रमेह नष्ट हो जाता है।

७. स्फटिका चूर्ण

स्फाटिकं चूर्णमादाय नारिकेलोदरे क्षिपेत्।
तत्फलं पङ्कमध्ये तु स्थापयेदेकरात्रकम् ॥१३॥
प्रातरानीय सजलं चूर्णं पेयं प्रयत्नतः।
अनेन चिरकालीनो मेहो नश्यति निश्चितम् ॥१४॥

शुद्ध स्फटिकाचूर्ण ५०० मि.ग्रा. को एक सुपक्व पानीदार नारियल में छिद्र कर पानी के बीच डाल दें और उसका मुख पुनः बन्द कर दें। अब उस नारियल के छिद्र भाग को ऊपर करके रात्रि पर्यन्त अच्छे पंक (कीचड़) में डालकर छोड़ दें। प्रातः उस नारियल को अच्छी तरह धो-साफकर उसका मुख खोलें और गिलास में उसका जल डालकर चिरकालीन प्रमेही (Gleet-gonorrhoea) को रोज पिलावें। इस जल को कुछ दिनों तक नियमित पिलाने से चिरकालीन मेह नष्ट हो जाता है।

प्रमेह में व्यायामादि (च.द.)

व्यायामजातमखिलं भजन् मेहान् व्यपोहति।
पादत्रच्छत्ररहितो भिक्षाशी मुनिवद्यतः ॥१५॥
योजनानां शतं गच्छेदधिकं वा निरन्तरम्।
मेहाञ्जेतुं वने वाऽपि नीवारामलकाशनः ॥१६॥

सभी प्रकार के व्यायामों—दण्ड-बैठक, पादाघात, कसरत, कुस्ती, मुद्गर, लाठी भाँजना, दौड़ना आदि अभ्यास नियमित रूप से करने से प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। जूता तथा छाता बिना सौ योजन ६०० मील (९६० किलोमीटर) चलने तथा गृहस्थों के घर से मांगे हुए भिक्षान्न का सेवन करने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है। मुनियों तथा ब्रह्मचारियों की तरह जंगलों में रहते हुए नीवार (कदन्न) और आमले का भोजन करते रहने से प्रमेह नष्ट हो जाता है।

८. फलत्रिकादि क्वाथ (च.द.)

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां
मुस्तां च निक्काथ्य निशांशकल्कम्।
पिबेत्कषायं मधुसम्प्रयुक्तं
सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु ॥१७॥

१. आमलाफलदल, २. हरीतकीफलदल, ३. बहेड़ाफलदल, ४. दारुहरिद्रा, ५. इन्द्रायणमूल तथा ६. नागरमोथा—प्रत्येक समभाग लें। आमला से नागरमोथा तक के सभी द्रव्यों का यवकुट करें। इसमें से २५ ग्राम चूर्ण को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और गरम क्वाथ में उपर्युक्त एक द्रव्य का चतुर्थांश हल्दीचूर्ण १ ग्राम (२५ ग्राम में से १ द्रव्य का वजन लगभग ४ ग्राम है तो उसका चौथाई १ ग्राम होगा) और १० ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से सभी तरह के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

९. मुस्तादि क्वाथ

मुस्ताफलत्रिकनिशासुरदारुमूर्वा
ऐन्द्री च लोध्रसलिलेन कृतः कषायः।
पाने हितः सकलभेदभवे गदे च।
मूत्रग्रहेषु सकलेषु नियोजनीयः ॥१८॥

१. नागरमोथा, २. आमलाफलदल, ३. हरीतकीफलदल, ४. बहेड़ाफलदल, ५. हल्दी, ६. देवदारु, ७. मूर्वामूल, ८. इन्द्रायणमूल और ९. लोध्रत्वक्—सभी द्रव्य १-१ भाग लें।

उपर्युक्त नौ द्रव्यों को समभाग लेकर यवकुट करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छानकर पिलाने से सभी तरह के प्रमेहों में और मूत्रकृच्छ्र में प्रयोग करने से अत्यधिक लाभ होता है।

१०. विडङ्गादि क्वाथ

विडङ्गसर्जार्जुनकट्फलानां
कदम्बलोध्राशनवृक्षकाणाम् ।
जलेन क्वाथश्च हितो नराणां
कफप्रमेहेण सदाऽऽतुराणाम् ॥१९॥

१. वायविडङ्ग, २. शाकवृक्षछाल, ३. अर्जुनछाल, ४. कट्फल, ५. कदम्ब की छाल, ६. लोध्रत्वक् तथा ७. अशन (विजयसार)—उपर्युक्त ७ द्रव्यों को समभाग लेकर यवकुट करें। ततः इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें। अष्टमांश शेष रहने पर छानकर मधु मिलाकर प्रमेहियों को पिलाने से कफप्रमेह नष्ट हो जाता है।

११. दशविध कफप्रमेहघ्न योग (वङ्गसेन)

हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्राः
पाठाविडङ्गार्जुनधन्वनाश्च ।
उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं
कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥२०॥
दार्वी विडङ्गः खदिरो धवश्च
सुराह्वकुष्टागुरुचन्दनानि ।
दार्व्यग्निमन्थौ त्रिफला वचा च
पाठा च मूर्वा च तथा श्वदंष्ट्रा ॥२१॥
वचा ह्युशीराण्यभया गुडूची
वृषं शिवाचित्रकसप्तपर्णाः ।
पादैः कषायाः कफमेहिनां ते
दशोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥२२॥

१. हरीतकीफलदल, कट्फल, नागरमोथा और लोध्रत्वक् —समभाग लेकर यवकुट करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छानकर १० ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से उदकमेह नष्ट हो जाता है।

२. पाठा, विडङ्ग, अर्जुनछाल और धमासा—समभाग लें और पूर्ववत् क्वाथ बना लें और मधु मिलाकर पिलाने से इक्षुमेह रोग नष्ट हो जाता है।

३. हल्दी, दारुहल्दी, तगरमूल तथा वायविडङ्ग—इन चारों द्रव्यों का पूर्ववत् क्वाथ करें और मधु मिलाकर पिलाने से सान्द्र-मेह नष्ट हो जाता है।

४. कदम्बछाल, शालवृक्षत्वक्, अर्जुनत्वक् तथा अजवायन —इन्हें समभाग में लेकर पूर्ववत् क्वाथ बनावें। मधु मिलाकर गरम-गरम पिलाने से सुरामेह नष्ट हो जाता है।

५. दारुहल्दी, वायविडङ्ग, खदिरत्वक् और धातकीपुष्प समभाग लेकर पूर्ववत् क्वाथ बनावें और मधु मिलाकर पिलाने से पिष्टमेह नष्ट हो जाता है।

६. देवदारु, कूठ, अगुरु और लालचन्दन—इन्हें समभाग लें और यवकुट कर पूर्ववत् क्वाथ करें तथा मधु मिलाकर पिलाने से शुक्रमेह नष्ट हो जाता है।

७. दारुहल्दी, अग्निमन्थ, त्रिफला तथा वच—इन्हें समभाग लें। पूर्ववत् क्वाथ करें और मधु मिलाकर पिलाने से सिकतामेह नष्ट हो जाता है।

८. पाठा, मूर्वामूल तथा गोखरु—इन्हें समभाग मिलाकर पूर्ववत् क्वाथ करें और मधु मिलाकर पिलाने से शीतमेह नष्ट हो जाता है।

९. वच, खस, हरीतकीफलदल और गुडूची—इन्हें समभाग मिलाकर पूर्ववत् क्वाथ करें तथा मधु मिलाकर पिलाने से शनैर्मेह नष्ट हो जाता है।

१०. वासामूल, हरीतकीफलदल, चित्रकमूल तथा सप्त-पर्णत्वक्—इन्हें समभाग मिलाकर पूर्ववत् क्वाथ करें तथा मधु मिलाकर गरम क्वाथ पिलाने से लालामेह नष्ट हो जाता है।

इन उपर्युक्त तीनों श्लोकों के १-१ पाद के द्रव्यों से कफज १० प्रमेहों की चिकित्सा करें। इन क्वाथों में सर्वत्र मधु मिलाकर पिलाना चाहिए।

१२. कफज प्रमेहनाशक चार क्वाथ (च.द.)

लोध्राभयाकट्फलमुस्तकानां-
विडङ्गपाठार्जुनधन्वनानाम् ।
कदम्बशालार्जुनदीप्यकानां
विडङ्गधात्रीबहुशल्यकानाम् ॥
चत्वार एते मधुना कषायाः
कफप्रमेहेषु निषेवणीयाः ॥२३॥

१. लोध्रत्वक्, हरीतकीफलदल, कट्फल तथा नागरमोथा—इन्हें समभाग लेकर यवकुट करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट ले और १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और १० ग्राम मधु मिलाकर गरम-गरम पिलाने से कफज प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

२. विडङ्गबीज, पाठा, अर्जुनछाल और यवासा—इन्हें समभाग लेकर पूर्ववत् क्वाथ बना लें और मधु मिलाकर पिलाने से कफज प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

३. कदम्बत्वक्, शालवृक्ष की छाल, अर्जुनछाल तथा अजवायन—इन्हें समभाग में यवकुट लेकर पूर्ववत् क्वाथ बनालें और मधु मिलाकर पिलाने से कफज प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

४. वायविडङ्ग, आमला, धातकीपुष्प एवं खदिरत्वक्—इन्हें समभाग लेकर पूर्ववत् क्वाथ बना लें और मधु मिलाकर पिलाने से कफज प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

१३. पित्तज प्रमेहनाशक छः योग (भा.प्र.)

उशीरलोध्रार्जुनचन्दनाना-
मुशीरमुस्तामलकाभयानाम् ।
पटोलनिम्बामलकामृतानां
मुस्ताभयापुष्करवृक्षकाणाम् ॥२४॥
लोध्राम्बुकालीयकधातकीनां
विश्वार्जुनैलाशिरिषोत्पलानाम् ।
पैत्तेषु मेहेषु दशोपदिष्टा-
कषाययोगा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥२५॥

(१) क्षारमेह—खस, लोध्रत्वक्, अर्जुनछाल तथा रक्तचन्दन—इन्हें समभाग लेकर यवकुट करें। इसमें से २५ ग्राम लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। शीतल होने पर मधु मिलाकर पिलाने से क्षारमेह (पित्तजप्रमेह) नष्ट हो जाता है।

(२) नीलमेह—खस, नागरमोथा, आमलाफलदल तथा हरीतकीफलदल—इन्हें पूर्ववत् क्वाथ बनावें और मधु मिलाकर पिलाने से नीलमेह (पित्तजप्रमेह) नष्ट हो जाता है।

(३) कालमेह—पटोलपत्र, निम्बत्वक्, आमलाफलदल और गुडूचीकाण्ड—समभाग लें और पूर्ववत् क्वाथ बनावें तथा मधु मिलाकर पिलाने से कालमेह (पित्तजप्रमेह) नष्ट हो जाता है।

(४) हारिद्रमेह—नागरमोथा, हरीतकीफलदल, पुष्करमूल और श्वेतकुटजत्वक्—इन्हें यवकुट कर पूर्ववत् क्वाथ करें और मधु मिलाकर शीतल क्वाथ पिलाने से हारिद्रमेह (पित्तजप्रमेह) नष्ट हो जाता है।

(५) माञ्जिष्ठमेह—लोध्रत्वक्, सुगन्धबाला, दारुहल्दी तथा धातकीपुष्प—इन्हें समभाग लेकर यवकुट करें और पूर्ववत् क्वाथ करें। शीतल होने पर मधु मिलाकर पिलाने से माञ्जिष्ठमेह (पित्तजप्रमेह) नष्ट हो जाता है।

(६) रक्तमेह—सोंठ, अर्जुनछाल, छोटी इलायची, शिरीषत्वक् तथा कमलफूल—समभाग मिलाकर यवकुट करें और पूर्ववत् क्वाथ बनावें एवं शीतल होने पर मधु मिलाकर पिलाने से रक्तमेह (पित्तजमेह) नष्ट हो जाता है।

इस तरह उपर्युक्त ६ क्वाथों को पृथक्-पृथक् बनाकर क्षारादि ६ पित्तज प्रमेहों में पिलाने से प्रमेह नष्ट हो जाता है।

१४. पित्तज प्रमेहघ्न चार योग (च.द.)

लोध्रार्जुनोशीरकुचन्दनाना-
मरिष्टसेव्यामलकाभयानाम् ।
धात्र्यर्जुनारिष्टकवत्सकानां
नीलोत्पलानां तिनिशार्जुनानाम् ॥
चत्वार एते विहिताः कषायाः
पित्तप्रमेहे मधुसम्प्रयुक्ताः ॥२६॥

१. लोध्रत्वक्, अर्जुनत्वक्, उशीर और रक्तचन्दन विशेष—इन्हें समभाग लेकर यवकुट करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और शीतल होने पर इसमें मधु मिलाकर पिलाने से पित्तज प्रमेह नष्ट हो जाता है।

२. निम्बत्वक्, खस, आमला एवं हरीतकी फलदल— इन्हें पूर्ववत् क्वाथ करें। शीतल होने पर मधु मिलाकर पिलाने से पित्तज प्रमेह नष्ट हो जाता है।

३. आमला, अर्जुनछाल, निम्बछाल तथा कुटजछाल मिलाकर पूर्ववत् क्वाथ करें। शीतल होने पर मधु मिलाकर पिलाने से पित्तज प्रमेह नष्ट हो जाता है।

४. नीलकमलफूल, तिनिश तथा अर्जुनछाल—इन्हें पूर्ववत् क्वाथ करें। शीतल होने पर इसमें मधु मिलाकर पिलाने से पित्तज प्रमेह नष्ट हो जाता है।

ये चारों क्वाथ मधु मिलाकर पृथक्-पृथक् पिलाने से पित्तज प्रमेह नष्ट हो जाता है।

१५. दूर्वादि क्वाथ (च.द.)

दूर्वाकशेरुपूतीककुम्भीकप्लवशैवलम् ।
जलेन क्वथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥२७॥

१. दूर्वा, २. कशेरू, ३. पूतिकरञ्ज, ३. जलकुम्भी, ४. नागरमोथा और ५. सेवाल—समभाग लें। इन्हें यवकुट कर २५ ग्राम लें और १६ गुना जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष होने पर छानकर पिलाने से शुक्रमेह का नाश हो जाता है। यह शुक्रमेह की अत्युत्तम औषधि है।

१६. त्रिफलादि क्वाथ (च.द.)

त्रिफलाऽऽरग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुतः ।
पीतो निहन्ति फेनाख्यं प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥२८॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. अमलतासफलमज्जा तथा ५. द्राक्षा—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट करें। २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना जल के साथ क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छानकर मधु मिलाकर पिलाने से फेनाख्य नामक प्रमेह नष्ट हो जाता है।

१७. सर्पिमेहघ्न योगद्वय (वंगसेन)

छिन्नावह्निकषायं वा पाठाकुटजरामठम् ।
तिक्ताकुष्ठं च सञ्चूर्ण्य सर्पिमेही पिबेन्नरः ॥२९॥

१. गुडूची और चित्रकमूल समभाग लेकर २५ ग्राम यवकुट का क्वाथ करें तथा मधु मिलाकर पान करावें। अथवा—

२. पाठा, कुटजत्वक्, हींग, कुटकी और कूठ—समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में रखें। ३ ग्राम चूर्ण जल के साथ सेवन करने से सर्पिमेह नष्ट हो जाता है।

१८. सर्जादि क्वाथ

सर्जार्जुनत्वग्धववल्कलानि
सशल्लकीलोहितचन्दनानि ।
हितो हि निर्यूह उदीरितो बुधै-
र्जलप्रमेहे विहितो यथाविधि ॥३०॥

१. शाकवृक्षत्वक्, २. अर्जुनत्वक्, ३. धातकीवृक्षत्वक्, ४. शल्लकीत्वक् और ५. लालचन्दन—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें और अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें तथा मधु मिलाकर पिलाने से उदकप्रमेह रोग नष्ट हो जाता है।

१९. लोहितचन्दनादि क्षीर

लोहितमेहं लोहितचन्दनमधुकं च सद्राक्षम् ।
क्वथितं पयः पयोऽपि त्वरितं हरित प्रसाधितं सविधि ॥

लालचन्दन, मुलेठी तथा द्राक्षा—समभाग लें। इन्हें यवकुट करें। इस यवकुट में से २०० ग्राम लेकर ८ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर १०० मि.ली. गोदुग्ध में इस क्वाथ को डालकर क्षीरपाक विधि से पाक करें। केवल दूध शेष रहने पर छानकर पिलाने से रक्तप्रमेह नष्ट हो जाता है।

२०. मञ्जिष्ठादि क्वाथ

मञ्जिष्ठा शाल्मलीमूलत्वग् मूर्वा कुशकाशजम् ।
दन्तीजमपि मूलं स्यात् सदूर्वा क्वथितं समम् ॥
शुक्ररक्तभवौ मेहौ हन्त्येतल्लघु शीलितम् ॥३२॥

१. मंजीठ, २. सेमलमूलत्वक्, ३. मूर्वामूल, ४. कुशमूल, ५. काशमूल, ६. दन्तीमूल और ७. दूर्वा—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट करें। इसमें से २५ ग्राम लें और १६ गुना जल के साथ क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। इसे सुबह-शाम पिलाने से शुक्रमेह और रक्तमेह दोनों नष्ट हो जाते हैं।

२१. उदकमेहादि में आठ क्वाथ (च.द.)

पारिजातजयानिम्बवह्निगायत्रिणां पृथक् ।
पाठायाः सागुरोः पीताद्वयस्य शारदस्य च ॥३३॥
जलेक्षुमद्यसिकताशनैर्लवणपिष्टकान् ।
सान्द्रमेहान् क्रमाद् घ्नन्ति चाष्टौ क्वाथाः समाक्षिकाः ॥

(१) पारिभद्र (फरहद) त्वक् का क्वाथ पिलाने से **उदकमेह** नष्ट हो जाता है। (२) जया (जयन्ती) पत्र का क्वाथ पिलाने से **इक्षुमेह** नष्ट हो जाता है। (३) निम्बत्वक् का क्वाथ पिलाने से **मद्यमेह** नष्ट हो जाता है। (४) चित्रकमूल का क्वाथ पिलाने से **सिकतामेह** नष्ट हो जाता है। (५) खदिरकाष्ठ का क्वाथ पिलाने से **शनैर्मेह** नष्ट हो जाता है। (६) पाठा और अगरु का क्वाथ पिलाने से **लवणमेह** नष्ट हो जाता है। (७) हल्दी और दारुहल्दी का क्वाथ पिलाने से **पिष्टमेह** नष्ट हो जाता है। (८) सप्तपर्ण का क्वाथ पिलाने से **सान्द्रमेह** नष्ट हो जाता है।

इन सभी द्रव्यों का पृथक्-पृथक् यवकुट करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना जल के साथ क्वाथ करें तथा अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और गरम क्वाथ में १० से २० ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से उपर्युक्त सभी उदकादि ८ प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक क्वाथ में मधु अवश्य मिलावें।

२२. नीलादि पैत्तिक प्रमेहों में पाँच क्वाथ (च.द.)

अश्वत्थाच्चतुरङ्गुलान् न्यग्रोधादेः फलत्रयात् ।
सजिङ्गीरक्तसाराच्च क्वाथाः पञ्च समाक्षिकाः ।
नीलहारिद्रशुक्राख्यक्षारमञ्जिष्ठकाह्वयान् ।
मेहान् हन्युः क्रमादेते सक्षौद्रो रक्तमेहजित् ॥३५॥
क्वाथः खर्जूरकाश्मर्यतिन्दुकास्थ्यमृताकृतः ॥३६॥

(१) पीपलवृक्ष की छाल के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से **नीलमेह** नष्ट हो जाता है। (२) अमलतासफलमज्जा के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से **हारिद्रमेह** नष्ट हो जाता है। (३) वटवृक्ष की छाल के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से **शुक्रमेह** नष्ट हो जाता है। (४) त्रिफला के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से **क्षारमेह** नष्ट हो जाता है। (५) मंजीठ और रक्तचन्दन के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से **माञ्जिष्ठमेह** नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त—(६) छोहाड़ा या खर्जूर, गम्भारी छाल, तिन्दुक की गुठली और गुडूची—इनके समभाग के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से **रक्तमेह** रोग नष्ट हो जाता है।

२३. पाठादि क्वाथ (च.द.)

पाठाशिरीषदुःस्पर्शमूर्वाकिंशुकतिन्दुकम् ।
कपित्थानां भिषक् क्वाथं हस्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥

१. पाठा, २. शिरीषत्वक्, ३. जवासा, ४. मूर्वामूल, ५. पलाशमूलत्वक्, ६. तिन्दुक (तेन्दु) छाल तथा ७. कपित्थफल—समभाग लें। इन्हें कूट-पीसकर यवकुट करें। २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने

पर छान लें और उसमें मधु मिलाकर पिलाने से हस्तिमेह रोग नष्ट हो जाता है।

२४. अग्निमन्थ क्वाथ (च.द.)

अग्निमन्थकषायन्तु वसामेहे प्रयोजयेत् ॥३८॥

अग्निमन्थ छाल के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से वसामेह नष्ट हो जाता है।

२५. कदरादि क्वाथ (च.द.)

कदरखदिरपूगक्वाथं क्षौद्राह्वये पिबेत् ॥३९॥

कदर (श्वेत खदिर), खदिर (रक्त खदिर), सुपारीफल—तीनों द्रव्य एक बराबर मिलाकर क्वाथ करें। क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से क्षौद्रमेह नष्ट हो जाता हैं।

२६. त्रिफलादि क्वाथ

त्रिफला मूर्वामूलं शोभाञ्जननिम्बसम्भवा त्वक् च।
द्राक्षाशाल्मल्यारग्वध एतेषां कषाय आशु।
परिशीलितोऽपि सर्पिर्मेहं सहसा निहन्त्येषः ॥४०॥

१. त्रिफला, २. मूर्वामूल, ३. सहिजनछाल, ४. निम्बछाल, ५. द्राक्षा, ६. सेमलत्वक् और ७. अमलतासफलमज्जा—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें यवकुट कर संग्रह करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें, अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से शीघ्र ही सर्पिमेंह नष्ट हो जाता है।

२७. एलादिचूर्ण

एलाऽश्मभेदचपलासहितं हितं स्या-
च्छुद्धं शिलाजतु रजो विहितं सदैषाम्।
संसेवितं सविधि तण्डुलवारिणेदं
प्रायः प्रमेहिहितकारितया प्रसिद्धम् ॥४१॥

१. छोटी इलायचीचूर्ण २, पाषाणभेदचूर्ण, ३. पिप्पलीचूर्ण तथा ४. शुद्ध शिलाजतु—समभाग लें। उपर्युक्त चूर्णों के साथ शुद्ध शिलाजतु मिलावें और जल की भावना देकर १-१ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को तण्डुलोदक के साथ सेवन करने से प्रायः प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है।

२८. न्यग्रोधादि चूर्ण (च.द.)

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योणाकारग्वधासनम्।
आम्रजम्बूकपित्थञ्च प्रियालं ककुभं धवम् ॥४२॥
मधूको मधुकं लोध्रं वरुणः पारिभद्रकम्।
पटोलं मेषशृङ्गी च दन्ती चित्रकमाढकी ॥४३॥
करञ्जत्रिफलाशक्रमल्लातकफलानि च।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥४४॥
न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत्।
फलत्रयरसञ्चानु पिबेन्मूत्रं विशुद्धयति ॥४५॥
एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च।
प्रशमं यान्ति योगेन पिडका न च जायते॥
न्यग्रोधाद्यमिदं तत्र चाम्रजम्ब्वस्थि गृह्यते ॥४६॥

१. वटत्वक्, २. उदुम्बरत्वक्, ३. पीपलत्वक्, ४. सोनापाठात्वक्, ५. आरग्वधमज्जा, ६. विजयसारकाष्ठ, ७. आम की गुठली, ८. जामुन की गुठली, ९. कपित्थफल, १०. चिरौजी फल, ११. अर्जुनछाल, १२. धातकीपुष्प, १३. महुआ की छाल, १४. मुलेठी, १५. लोध्रत्वक्, १६. वरुणत्वक्, १७. फरहद की छाल, १८. पटोलपत्र, १९. मेढाशृंगी, २०. दन्तीमूल, २१. चित्रकमूल, २२. अरहरमूल, २३. करञ्जफल-मज्जा, २४. त्रिफला, २५. इन्द्रयव और २६. शुद्ध भिलावा—सभी द्रव्य समभाग में लेकर सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में मधु मिलाकर चटाने तथा बाद में त्रिफलाक्वाथ १० मि.ली. पिलाने से मूत्रसम्बन्धी सभी विकार नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से २० प्रकार के प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रादि विकार नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से मधुमेहादि उपद्रव स्वरूप प्रमेहपिडकाएँ उत्पन्न नहीं होतीं।

२९. कुशावलेह (च.द.)

वीरणश्च कुशः काशः कृष्णेक्षुः खगडस्तथा।
एषां दशपलान् भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥४७॥
अष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत्।
खण्डप्रस्थं समादाय लेहवत्साधु साधयेत् ॥४८॥
अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत्।
मधुकं कर्कटीबीजं कर्कारुं त्रपुषं तथा ॥४९॥
शुभामलकपत्राणि एलात्वङ्नागकेशरम्।
वरुणोऽमृतप्रियङ्गूणां प्रत्येकमक्षसम्मितम् ॥५०॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथाऽश्मरीः।
वातिकान्पैत्तिकांश्चापि श्लैष्मिकान्सान्निपातिकान्॥
हन्त्यरोचकमत्युग्रं तुष्टिपुष्टिकरं परम् ॥५१॥

क्वाथ—१. खस ४७० ग्राम, २. कुशमूल ४७० ग्राम, ३. काशमूल ४७० ग्राम, ४. कृष्णेक्षुमूल ४७० ग्राम तथा ५. खगड (तृण विशेष) ४७० ग्राम लें। जल १२ लीटर तथा चीनी ७५० ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. मुलेठी, २. ककड़ीबीज, ३. कूष्माण्डबीज, ४. खीराबीज, ५. वंशलोचन, ६. आमला, ७. तेजपत्ता, ८. दालचीनी, ९. छोटी इलायची, १०. नागकेशर, ११. वरुण, १२. गुडूची और १३. प्रियङ्गुफूल—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम खस आदि क्वाथ द्रव्यों को यवकुट करें और १

द्रोण जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। अब इस छने हुए क्वाथ में चीनी मिलाकर स्टेनलेस स्टील के पात्र में पाक करें। जब दो तार की चासनी हो जाय तो चूल्हे से नीचे उतारकर प्रक्षेप द्रव्यों के चूर्ण के छिड़ककर अच्छी तरह से मिला लें। इसे काचपात्र में संग्रहीत करें। इस कुशावलेह को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेह, सभी प्रकार के मूत्राघात और मूत्राश्मरी तथा अत्युग्र अरोचक रोग नष्ट हो जाते हैं। यह तुष्टि, पुष्टिकारक है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—सुगन्धित अवलेह की गन्ध। **वर्ण**--कत्थई रंग। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी एवं अरुचि में।

३०. शालसारादि लेह (च.द.)

शालसारादिवर्गस्य क्वाथे तु घनतां गते।
दन्तीलोध्रशिवाकान्तलौहताम्ररजः क्षिपेत्॥
घनीभूतमदग्धञ्च प्राश्य मेहान् व्यपोहति॥५२॥

१. शालसारकाष्ठ, २.अजकर्ण, ३. खदिरकाष्ठ, ४. कदर, ५. कालस्कन्ध, ६. सुपारी, ७. भोजपत्र, ८. मेढाशृङ्गी, ९. तिनिश, १०. श्वेतचन्दन, ११. कुचन्दन, १२. शीशम, १३. शिरीषत्वक्, १४. असन, १५. धव, १६. अर्जुनत्वक्, १७. तालमूल, १८. करञ्जवृक्षत्वक्, १९. शाक, २०. कण्टक-करञ्जबीज, २१. सागौनवृक्षत्वक्, २२. अश्वकर्ण, २३. अगुरु और २४. पीतचन्दन—प्रत्येक द्रव्य १३० ग्राम लें। इन्हें यवकुट करें और अष्टगुण जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। पुनः उक्त क्वाथ को स्टेनलेस स्टील पात्र में रखकर आग पर घन करें। जब घन हो जाय तो इसमें प्रक्षेप छिड़ककर अच्छी तरह से मिला लें।

प्रक्षेप—१. दन्तीमूलचूर्ण, २. लोध्रचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. कान्तलौहभस्म, तथा ५. ताम्रभस्म—प्रत्येक चूर्ण १२-१२ ग्राम लें। इसे काचपात्र में संग्रहीत करें।

मात्रा—२ से ४ ग्राम। **अनुपान**—गरम जल से या तत्तद्रोग हर द्रव्यों के अनुसार। **गन्ध**—धूम्राभ। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—प्रमेह, कुष्ठ, पाण्डु तथा कफ-मेद हर द्रव्यानुसार।

३१. वङ्गावलेह (र.सा.सं.)

वङ्गभस्म द्विवल्लं च लेहयेन्मधुना सह।
ततो गुडसमं गन्धं भक्षयेत्कर्षमात्रकम्॥५३॥
गुडूचीसत्त्वमथवा शर्करासहितं तथा।
सर्वमेहहरो ज्ञेयो वङ्गावलेह उत्तमः॥५४॥

१. वङ्गभस्म ७५० मि.ग्रा., २. मधु १० ग्राम, ३. गुड़ ६ ग्राम, ४. शुद्ध गन्धक ६ ग्राम अथवा गुडूची सत्त्व १ ग्राम तथा ५. चीनी पिसी हुई ३ ग्राम लें। सर्वप्रथम वङ्गभस्म और मधु को मिलाकर चाटें। ततः गुड़ और शुद्ध गन्धक मिलाकर जल के साथ निगल जायें। अथवा गुडूची सत्त्व और पिसी हुई चीनी मिलाकर जल के साथ पी जायें। १ तोला की मात्रा में इसके प्रयोग से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। यह वङ्गावलेह प्रमेह की उत्तम औषधि है।

मात्रा—३ ग्राम। **स्वाद**—मधुर।

३२. शिलाजतु प्रयोग (च.द.)

शालसारादितोयेन भावितं यच्छिलाजतु।
पिबेत्तेनैव संशुद्धदेहः पिष्टं यथा बलम्॥५५॥
जाङ्गलानां रसैः सार्द्धं तस्मिञ् जीर्णे च भोजनम्।
कुयोदेव तुलां यावदुपयुञ्जीत मानवः॥५६॥
मधुमेहं विहायासौ शर्करामश्मरीं तथा।
वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः॥५७॥

पूर्व में वर्णित शालसारादिगण की २४ औषधों को समभाग लेकर क्वाथ करें। शुद्ध शिलाजतु में इस क्वाथ की भावना दें। इस प्रकार ३ या ७ भावना दें। पुनः घन कर रख लें। सम्यक्-तया शरीर-शोधनोपरान्त इस भावित शुद्ध शिलाजतु को १ से ६ ग्राम तक मधु एवं शालसारादि क्वाथ से बलानुसार मात्रा में सेवन करें। जाङ्गल पशु-पक्षियो के मांसरस के साथ रोटी-चावल आदि का भोजन करें। इसे प्रातः-सायं भोजन से पूर्व सेवन करना चाहिए। इस प्रकार ५ किलो शिलाजतु सेवन करें, बाद में पुनः शिलाजतु सेवन नहीं करें। इस प्रकार शिलाजतु सेवन से मधुमेह, मूत्रशर्करा, मूत्राश्मरी रोग नष्ट हो जाते हैं। शरीर की कान्ति और बल बढ़ जाता है। मनुष्य सौ वर्ष तक निरोग होकर जीवित रहता है।

मात्रा—१ से ६ ग्राम तक बलानुसार। **अनुपान**—शालसारादि गण क्वाथ से।

३३. स्वर्णमाक्षिकभस्म प्रयोग

माक्षिकं धातुमप्येवं युञ्ज्यादप्यास्ययं गुणः॥५८॥

पूर्वोक्त शिलाजतु वाली विधि से शालसारादिगण क्वाथ की ७ भावना स्वर्णमाक्षिकभस्म में दें। इसे सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस भस्म को १२५ से २५० मि.ग्रा. की मात्रा में मधु मिलाकर चटाने से मधुमेह नष्ट हो जाता है। साथ ही मूत्रशर्करा और मूत्रश्मरी रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

---

१. शालसारादिगणः—शालसाराजकर्णखदिरकदरकालस्कन्धक्रमुक-भूर्जमेषशृङ्गीतिनिशचन्दनकुचन्दनशिंशपाशिरीषासनधवार्जुनतालशाक-नक्तमालपूतीकाश्वकर्णागुरूणि कालीयकं चेति।
शालसारादिरित्येष गणः कुष्ठविनाशनः।
मेहपाण्ड्वामयहरः कफमेदोविशोषणः॥ (सु.सू. ३८।१२-१३)

३४. मेहकालानल रस

भस्मसूतं मृतं वङ्गं तुल्यं क्षौद्रेण मर्दयेत्।
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं मेहं हन्ति चिरोत्थितम्॥
गुञ्जामूलं पिबेच्चानु क्षौद्रैरेवं प्रशाम्यति॥५९॥

पारदभस्म (रससिन्दूर) तथा वङ्गभस्म को समभाग लें। दोनों भस्मों को एक साथ खरल में मर्दन करें और मधु एवं जल मिलाकर पुनः मर्दन करें। गाढ़ा होने पर २५० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। प्रमेहपीड़ित व्यक्ति १-१ वटी गुञ्जा क्वाथ से प्रातः-सायं सेवन करें।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—गुञ्जामूलक्वाथ से। **गन्ध**—मधुगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—प्रमेह में।

३५. पञ्चानन रस

सूतं गन्धं मृतं लौहं मृतमभ्रं समांशिकम्।
सर्वेषां द्विगुणं वङ्गं मधुना मर्दयेद्दिनम्॥६०॥
भक्षयेत्प्रातरुथाय शीततोयं पिबेदनु।
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातं तथाऽश्मरीम्।
मूत्रकृच्छ्रं हरेदुग्रमयं पञ्चाननो रसः॥६१॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म तथा ४. अभ्रकभस्म—ये चारों द्रव्य १०-१० ग्राम लें और ५. वङ्गभस्म ८० ग्राम लें। इन पाँचों द्रव्यों को खरल में एक साथ मिलाकर मधु के साथ मर्दन कर २५० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। शीतल जलानुपान से प्रातः-सायं १-१ वटी सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेह, मूत्राघात, मूत्राश्मरी, मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाते हैं। इसे पञ्चानन रस कहते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—मधुगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—प्रमेह, मूत्राघात, मूत्राश्मरी और मूत्रकृच्छ्र में।

३६. चन्द्रकला गुटिका

एला सकर्पूरशिला सधात्री-
जातीफलं केशरशाल्मली च।
सूताभ्रवङ्गायसभस्म सर्व-
मेतत्समानं परिभावयेत्तु॥६२॥
गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायै-
र्निष्कार्द्धमानां मधुना ततश्च।
बद्ध्वा गुडीं चन्द्रकलेतिसंज्ञां
मेहेषु सर्वेषु नियोजयेच्च॥६३॥

१. छोटी इलायची के बीज का चूर्ण, २. कर्पूर, ३. शुद्ध शिलाजतु, ४. आमलाचूर्ण, ५. जायफलचूर्ण, ६. नागकेशर, ७. सेमलमुशली, ८. रससिन्दूर, ९. अभ्रकभस्म, १०. वङ्गभस्म और ११. लौहभस्म—समान भाग में लें।

भावना—गुडूचीस्वरस और सेमलमूलत्वक्स्वरस से। सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर पिसें, ततः उसी खरल में अन्य भस्मों को मिलावें और काष्ठौषधि चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर गुडूचीस्वरस और शाल्मलीस्वरस की १-१ भावना देकर १५०० मि.ग्रा. मात्रा की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। आचार्यश्री ने $\frac{१}{२}$ निष्क (१२ रत्ती) की मात्रा बतायी है जो आज उचित नहीं प्रतीत होती है। अतः ५०० मि.ग्रा. (४ रत्ती) की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर प्रमेहियों को सेवन करावें।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई रंग। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेहों में।

३७. मेहमुद्गर गुटिका (र.चि.म.)

रसाञ्जनं बिडं दारु बिल्वगोक्षुरदाडिमम्।
भूनिम्बं पिप्पलीमूलं त्रिकटुं त्रिफला त्रिवृत्॥६४॥
प्रत्येकं तोलकं देयं लौहचूर्णन्तु तत्समम्।
पलैकं गुग्गुलुं दत्त्वा घृतेन वटिकां कुरु॥६५॥
माषैका निर्मिता चेयं मेहमुद्गरसंज्ञिका।
श्रीमद्गहननाथेन लोकनिस्तारकारिणा॥६६॥
अनुपानं प्रकर्त्तव्यं छागीदुग्धं जलञ्च वा।
मेहांश्च विंशति हन्यान्मूत्रकृच्छ्रं हलीमकम्॥६७॥
अश्मरीं कामलां पाण्डुं मूत्राघातमरोचकम्।
अर्शांसि व्रणकुष्ठञ्च वातरक्तं भगन्दरम्॥६८॥

१. रसाञ्जनचूर्ण, २. विडलवणचूर्ण, ३. देवदारुचूर्ण, ४. बिल्वफलचूर्ण, ५. गोक्षुरबीजचूर्ण, ६. अनारदानाचूर्ण, ७. चिरायताचूर्ण, ८. पिपरामूलचूर्ण, ९. त्रिकटुचूर्ण, १०. त्रिफलाचूर्ण और ११. निशोथचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम (१-१ तोला) लें; १३. लौहभस्म १३२ ग्राम तथा १४. शुद्ध गुग्गुलु ४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक छोटे पात्र में थोड़ा गरम पानी देकर उसमें गुग्गुलु पिघलावें और उसे चलाते रहें। जब पूरा गुग्गुलु पिघल जाय तो उसे उपर्युक्त काष्ठौषधि चूर्ण में अच्छी तरह से मिला दें। पुनः सभी द्रव्यों को अच्छी तरह मिलावें और थोड़ा जल देकर सभी द्रव्यों को सिल पर पीसें या मशीन में पीसें। ततः घृताक्त हाथ से १-१ ग्राम की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। जल के साथ १-१ वटी प्रातः-सायं सेवन करने से साध्य और असाध्य २० प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, हलीमक, अश्मरी, कामला, मूत्राघात, अरुचि, अर्श, व्रण, कुष्ठ, वातरक्त और भगन्दर रोग नष्ट हो जाते हैं। लोककल्याणार्थ इसका निर्माण आचार्य श्री

गहननाथजी ने किया था। इसका अनुपान बकरी के दूध या जल से करना चाहिए।

मात्रा—१-१ ग्राम। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—भूरे रङ्ग का। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह एवं मूत्रकृच्छ्र में।

३८. शुक्रमातृका वटी

गोक्षुरबीजं त्रिफला पत्रमेला रसाञ्जनम्।
धान्यकं चविका जीरं तालीशं टङ्कदाडिमौ ॥६९॥
प्रत्येकार्द्धपलं दत्त्वा गुग्गुलोः कर्षमेव च।
रसाभ्रगन्धलौहानां प्रत्येकञ्च पलं क्षिपेत् ॥७०॥
सर्वमेकीकृतं वैद्यो दण्डयोगेन मर्दयेत्।
घृतभाण्डे तु संस्थाप्य माषमेकं तु भक्षयेत् ॥७१॥
अनुपानं प्रदातव्यं जातिभेदात् पृथक्-पृथक्।
दाडिमस्य रसेनैव छागीदुग्धेन वाऽम्भसा ॥७२॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति वातपित्तकफोद्भवान्।
द्वन्द्वजान्सन्निपातोत्थान् मूत्रकृच्छ्राश्मरीगदान् ॥७३॥
बलवर्णाग्निजननी ज्वरदोषनिसूदनी।
चन्द्रनाथेन गदिता वटिका शुक्रमातृका ॥७४॥

१. गोक्षुरबीजचूर्ण, २. त्रिफलाचूर्ण, ३. तेजपत्ताचूर्ण, ४. छोटीइलायचीचूर्ण, ५. रसाञ्जनचूर्ण, ६. धनियाँचूर्ण, ७. चव्यचूर्ण, ८. जीराचूर्ण, ९. तालीशपत्रचूर्ण, १०. शुद्ध टङ्कण और ११. अनारदानाचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य २३-२३ ग्राम लें; १२. शुद्ध गुग्गुलु १२ ग्राम लें; १३. शुद्ध पारद, १४. शुद्ध गन्धक, १५. अभ्रकभस्म और १६. लौहभस्म—प्रत्येक द्रव्य ४६-४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बना लें। ततः अन्य दोनों भस्मों और काष्ठौषधि चूर्णों को मिला लें। इसके बाद में शुद्ध गुग्गुलु को थोड़ा गरम पानी में पिघलाकर मिश्रित चूर्णों में मिला लें। इसके बाद में अनार के स्वरस या क्वाथ में भावना देकर १-१ माशा (१-१ ग्राम) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में अच्छी तरह सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'शुक्रमातृका वटी' को आचार्य श्री चन्द्रनाथ ने कहा है। इसे अनारस्वरस या बकरी के दूध या ताजा जल के साथ सेवन करने से वातज, पित्तज, कफज एवं दन्द्वज और सान्निपातिक २० प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्राश्मरी एवं ज्वर रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से बल, वर्ण और जाठराग्नि की वृद्धि होती है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मीठा अनारस्वरस, बकरी का दूध या पानी से। **गन्ध**—सुगन्ध। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्राश्मरी में।

३९. प्रमेहकुलान्तक रस

मृतं वङ्गं मृतञ्चाभ्रं शुद्धपारदगन्धकम्।
भूनिम्बं पिप्पलीमूलं त्रिकटु त्रिफला त्रिवृत् ॥७५॥
रसाञ्जनं विडङ्गाब्दबिल्वगोक्षुरदाडिमम्।
प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं शुद्धमश्मजतोः पलम् ॥७६॥
गोपालकर्कटीमूलस्वरसैर्वटिकां कुरु।
प्रमेहान् विंशति हन्ति मूत्रकृच्छ्रं हलीमकम् ॥७७॥
अश्मरीं कामलां पाण्डुं मूत्राघातमरोचकम्।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं छागीदुग्धं पयोऽथवा ॥
धात्रीफलस्य निर्यास क्वाथं कौलत्थजं पिबेत् ॥७८॥

१. वङ्गभस्म, २. अभ्रकभस्म, ३. शुद्ध पारद, ४. शुद्ध गन्धक, ५. चितायताचूर्ण, ६. पिपरामूलचूर्ण, ७. सोठचूर्ण, ८. पीपरचूर्ण, ९. मरिचिचूर्ण, १०. आमलाचूर्ण, ११. हरीतकीचूर्ण, १२. बहेड़ाचूर्ण, १३. निशोथचूर्ण, १४. रसाञ्जन, १५. विडङ्गचूर्ण, १६. नागरमोथाचूर्ण, १७. बिल्वफलमज्जाचूर्ण, १८. गोखरुचूर्ण तथा १९. अनारदानाचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें और २०. शुद्ध शिलाजतु ४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक को एक खरल में पीसकर कज्जली बनावें। उसके बाद उसी खरल में अन्य भस्मों तथा काष्ठौषधि चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें और गोपालकर्कटी के स्वरस की भावना देकर ५०० मि.ग्रा. (४-४ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे प्रातः-सायं १-१ वटी बकरी के दूध, गोदुग्ध, आमलास्वरस या कुलत्थक्वाथ के साथ सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्राश्मरी, हलीमक, कामला, पाण्डु और अरोचक रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—बकरीदूध, गोदुग्ध, आमलास्वरस या कुलत्थक्वाथ किसी एक द्रव से सेवन करें। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्राश्मरी एवं पाण्डु में।

४०. वेदविद्या वटी

पारदाभ्रककान्तानां नागभस्म समं समम्।
दिनं ब्राह्मीरसैर्मर्द्य बालुकायन्त्रगं पुनः ॥७९॥
उद्धृत्य चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं जारिताभ्रं शिलाजतु।
ताप्यं मण्डूरवैक्रान्तं काशीशं तुल्यमेव च ॥८०॥
सर्वं समं समं चूर्णं कल्पयेच्च ततः पुनः।
मुस्तचन्दनपुन्नागनारिकेलस्य मूलकम् ॥८१॥
कपित्थरजनीदार्वीचूर्णं सर्वसमं भवेत्।
जम्बीराणां द्रवैर्मर्द्यं द्वियामं वटकीकृतम् ॥८२॥
वेदविद्यावटी नाम्ना भक्षणात्सर्वमेहजित्।
मधुधात्रीरसञ्चानु क्षौद्रैर्वाऽपि गुडूचिकाम् ॥८३॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. कान्तलौहभस्म, ४. नागभस्म, ५. अभ्रकभस्म, ६. शुद्ध शिलाजतु, ७. स्वर्णमाक्षिकभस्म, ८. भण्डूरभस्म, ९. वैक्रान्तभस्म, १०. शुद्ध कासीस, ११. नागरमोथाचूर्ण, १२. श्वेतचन्दनचूर्ण, १३. पुन्नागचूर्ण, १४. नारियल की मूल, १५. कपित्थफलमज्जाचूर्ण, १६. हल्दीचूर्ण और १७. दारुहल्दीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लेना चाहिए। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक को खरल में मर्दन कर कज्जली बना लें। ततः उस कज्जली में कान्तलौह और नागभस्म मिलाकर ब्राह्मीस्वरस की भावना दें। एक बड़ा गोला बनाकर सुखा लें। ततः उस गोले को शरावसम्पुट कर बालुकायन्त्र में ३ घण्टे तक पाक करें। तदनन्तर स्वाङ्गशीत होने पर शरावसम्पुट खोलें और उसमें से औषधि निकालकर खरल में मर्दन करें तथा शेष अभ्रक भस्मादि सभी द्रव्यों को उसमें मिलाकर जम्बीरीनिम्बुस्वरस की भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन करें। ततः ३७५ मि.ग्रा. (३ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'वेदविद्या वटी' नामक औषधि के खाने से सभी प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधि के सेवन के साथ अनुपान रूप में मधु और आमलास्वरस या मधु और गुडूचीस्वरस का उपयोग करें।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु और आमलास्वरस अथवा मधु और गुडूचीस्वरस में। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ। **स्वाद**—तिक्त और अम्ल। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेह रोगों में (२० प्रकार के प्रमेह में)।

४१. वङ्गाष्टक रस

रसं गन्धं मृतं लौहं मृतरूप्यञ्च खर्परम्।
मृताभ्रकं मृतं ताम्रं सर्वतुल्यञ्च वङ्गकम् ॥८४॥
पुटेद् गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।
रक्तिद्वयप्रमाणेन मधुना लेहयेन्नरम् ॥८५॥
निशाचूर्णं क्षौद्रयुतं पिबेद्धात्रीरसं ह्यनु।
वङ्गाष्टकमिदं ख्यातं महादेवप्रकाशितम् ॥८६॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति आमदोषं विसूचिकाम्।
विषमज्वरगुल्मार्शोमूत्रातीसारपित्तजित् ॥
वीर्यवृद्धिं करोत्याशु सोमरोगनिबर्हणम् ॥८७॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. लौहभस्म १ भाग, ४. रजतभस्म १ भाग, ५. खर्परभस्म १ भाग, ६. अभ्रकभस्म १ भाग, ७. ताम्रभस्म १ भाग और ८. वङ्गभस्म ७ भाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य सभी भस्मों को उस कज्जली में मिलाकर मर्दन करें और शरावसम्पुट कर गजपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर औषधि निकालकर खरल में मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वङ्गाष्टकरस को २५० मि.ग्रा. (२ रत्ती) की मात्रा में १ ग्राम हल्दी चूर्ण और मधु मिलाकर चाटें तथा ऊपर से आमलास्वरस १२ मि.ली. पियें। इस वङ्गाष्टक को भगवान् श्रीशङ्कर जी ने प्रकाशित किया है। इसके सेवन से २० प्रकार के प्रमेह, आमदोष, विसूचिका, विषमज्वर, गुल्म, अर्श, बहुमूत्र दोष, पित्तविकार नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से वीर्य बढ़ता है और सोमरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—हल्दीचूर्ण और मधु तथा बाद में आमलास्वरस पीना। **गन्ध**—निर्गन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण (कपोतवर्ण)। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—सभी प्रमेह, बहुमूत्र एवं आमदोष में।

४२. मेहवज्र रस (र.सा.सं.)

भस्मसूतं तथा कान्तं लौहभस्म शिलाजतु।
शुद्धं ताप्यं शिला व्योषं त्रिफला बिल्वजीरकम् ॥८८॥
कपित्थं रजनीचूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत्।
त्रिंशद्वारं विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह ॥८९॥
निष्कमात्रं हरेन्मेहान् मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम्।
महानिम्बस्य बीजञ्च षण्निष्कं पेषितञ्च यत् ॥९०॥
पलतण्डुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च।
एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरोत्थितम् ॥९१॥

१. रससिन्दूर, २. कान्तलौहभस्म, ३. शुद्ध शिलाजतु, ४. स्वर्णमाक्षिकभस्म, ५. शुद्ध मैनसिल, ६. सोंठचूर्ण, ७. पीपरचूर्ण ८. मरिचचूर्ण, ९. आमलाचूर्ण, १०. हरीतकीचूर्ण, ११. बहेड़ाचूर्ण, १२. बिल्वफलमज्जाचूर्ण, १३. जीराचूर्ण, १४. कैंथफलमज्जा, तथा १५. हल्दीचूर्ण—सभी द्रव्य १-१ भाग लें। रससिन्दूर को खरल में पीसकर शेष द्रव्यों के चूर्णों को मिलाकर अच्छी तरह से खर.. में मर्दन करें और भृङ्गराजस्वरस की ३० भावना देकर १ निष्क = ३ ग्राम(२४-२४ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'मेहवज्ररस' की १-१ वटी तथा २ ग्राम निम्बबीजमज्जा, घृत १ ग्राम, तण्डुलोदक ५० मि.ली. एक साथ मिलाकर प्रातः-सायं पिलाने से सभी प्रकार के पुराने प्रमेह और भयंकर मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—नीमबीज मज्जाचूर्ण, घृत और तण्डुलोदक के साथ। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कटु-तिक्त। **उपयोग**—पुराने सभी प्रमेहों एवं भयंकर मूत्रकृच्छ्र में।

४३. चन्द्रप्रभा वटी-१ (योगरत्नाकर)

वेल्लव्योषफलत्रिकं त्रिलवणं द्विक्षारचव्यानल-
श्यामापिप्पलिमूलमुस्तकशटीमाक्षीकधातुत्वचः ।

षड्ग्रन्थामरदारुवारणकणाभूनिम्बदन्तीनिशा-
पत्रैलाऽतिविषाः पिचुपरिमिता लौहस्य कर्षाष्टकम् ॥
त्वक्क्षीरी पलिका पुराद्दशपलान्यष्टौ शिलाजन्मनो
मानात्कर्षसमा कृतेति गुटिका संयोज्य सर्वं भिषक् ।
तत्रैव प्रतिवासरं सह घृतक्षौद्रेण लिह्यादिमां
तक्रं मस्तु च गोघृतं मधुरसं पश्चात्पिबेन्मात्रया ॥९३॥
अर्शांसि प्रदरं ज्वरं च विषमं नाडीव्रणानश्मरीं
कृच्छ्रविद्रधिमग्निमान्द्यमुदरं पाण्ड्वामयं कामलाम् ।
यक्ष्माणं सभगन्दरं सपिडिका गुल्मप्रमेहारुची-
रेतोदोषमुरःक्षतं कफमरुत्पित्तार्त्तिमुग्रां जयेत् ॥९४॥
वृद्धं सञ्जनयेद्युवानमसमौजस्कं बलं वर्द्धये-
देतस्यां न निषिद्धमन्नमसकृन्नाध्वागमो मैथुनम् ।
विख्याता गुडिकेयमञ्चिततरा चन्द्रप्रभा नामतः
सान्द्रानन्दकरी तनोति च रुचिं चन्द्रेण तुल्यां तनौ ॥

१. वायविडङ्ग, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. आमला, ६. हरीतकी, ७. बहेड़ा, ८. सैन्धवलवण, ९. सौवर्चललवण, १०. विडलवण, ११. यवक्षार, १२. सर्ज्जिक्षार, १३. चव्य, १४. चित्रकमूल, १५. कृष्णसारिवा, १६. पिपरामूल, १७. नागरमोथा, १८. कचूर, १९. स्वर्णमाक्षिकभस्म, २०. दालचीनी, २१. वच. २२. देवदारु, २३. गजपीपर, २४. चिरायता, २५. दन्तीमूल, २६. हल्दी, २७. तेजपत्ता, २८. छोटी इलायची तथा २९. अतीस—ये प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें; ३०. लौहभस्म ९३ ग्राम, ३१. वंशलोचन ४६ ग्राम, ३२. शुद्ध गुग्गुलु ४७० ग्राम और ३३. शुद्ध शिलाजतु ३७५ ग्राम लें। भस्मों के अतिरिक्त सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः शुद्ध गुग्गुलु को छोटी कड़ाही में थोड़े पानी के साथ आग पर गरम करें । जब गुग्गुलु पिघलकर लप्सी जैसा हो जाय तो उसमें शिलाजतु मिलाकर पुनः उसे भी पिघला लें। तदनन्तर चूर्णो के साथ उसे मिलाकर अन्य भस्मों को भी चूर्ण में मिला दें और जल के साथ सिल पर पीस लें। जब खूब श्लक्ष्ण हो जाय तो १-१ तोला (१२-१२ ग्राम) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। पुनः काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'चन्द्रप्रभावटी' कहते हैं। इसकी १ गुटिका को विषम मात्रा में मधु और घृत के साथ खाकर बाद में यथेच्छ मात्रा में तक्र, मस्तु, गोघृत, या मधुरस का पान करें। इसके इस प्रकार के सेवन से अर्श, प्रदर, ज्वर, विषमज्वर, नाडीव्रण, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विद्रधि, अग्निमान्द्य, उदररोग, पाण्डु, कामला, यक्ष्मा, भगन्दर, प्रमेहपिडिका, गुल्म, प्रमेहं, अरुचि, शुक्रदोष, उरःक्षत, बढ़े हुए कफ रोग, वातरोग एवं पित्तरोग नष्ट हो जाते हैं। यह वृद्ध पुरुष को भी युवा जैसा ओजस्वी बना देता है तथा बलवर्धक है। इस चन्द्रप्रभावटी सेवन के समय खानपान का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यहाँ तक कि अधिक रास्ता चलना और मैथुन करने का भी निषेध नहीं है। यह चन्द्रप्रभावटी के नाम से विख्यात है। इसके सेवन से शरीर में चन्द्रमा के समान आनन्ददायिनी कान्ति पैदा हो जाती है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—विषम मात्रा में मधु एवं घृत से। बाद में तक्र, मस्तु, घृत एवं मधुरस का पान। **गन्ध**—शिलाजीत जैसी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्रविकार, शुक्रविकार, अर्श, भगन्दर, पिडकादि रोगों में बल्यार्थ।

४४. चन्द्रप्रभा वटी- २

चन्द्रप्रभावचामुस्ताभूनिम्बसुरदारवः ।
हरिद्राऽतिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकम् ॥९६॥
त्रिवृद्दन्तीपत्रकञ्च त्वगेला वंशलोचना ।
प्रत्येकं कर्षमात्राणि कुर्यादेतानि बुद्धिमान् ॥९७॥
धान्यकं त्रिफला चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली ।
सुवर्णमाक्षिकं व्योषं द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ॥९८॥
एतानि टङ्कमात्राणि संगृह्णीयात्पृथक्-पृथक् ।
द्विकर्षं हतलौहं स्याच्चतुष्कर्षा सिता भवेत् ॥९९॥
शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः ।
विधिना योजितैरेतैः कर्त्तव्या गुटिका शुभा ॥१००॥
चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी ।
निहन्ति विंशतिं मेहान् कृच्छ्रमष्टविधं तथा ॥१०२॥
चतस्त्रस्त्राश्मरीस्तद्वन्मूत्राघातांस्त्रयोदश ।
अण्डवृद्धिं पाण्डुरोगं कामलाञ्च हलीमकम् ॥ १०३॥
कासं श्वासं तथा कुष्ठमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
वातपित्तकफव्याधीन् बल्या वृष्या रसायनी ॥१०४॥
समाराध्य शिवं यस्मात्प्रयत्नाद् गुडिकामिमाम् ।
प्राप्तवांश्चन्द्रमा यस्मात्तस्माच्चन्द्रप्रभा स्मृता ॥१०५॥

१. कर्पूर, २. वच, ३. नागरमोथा, ४. चिरायता, ५. देवदारु, ६. हल्दी, ७. अतीस, ८. दारुहल्दी, ९. पिपरामूल, १०. चित्रकमूल, ११. निशोथ, १२. दन्तीमूल, १३. तेजपत्ता, १४. दालचीनी, १५. छोटी इलायची और १६. वंशलोचन—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें; १७. धनियाँ, १८. आमला, १९. हरीतकी, २०. बहेड़ा, २१. चव्य, २२. वायविडङ्ग, २३. गजपीपर, २४. स्वर्णमाक्षिकभस्म, २५. सोंठ, २६. पीपर, २७. मरिच, २८. यवक्षार, २९. सज्जीक्षार, ३०. सैन्धवलवण, ३१. सौवर्चललवण तथा ३२. विडलवण—ये प्रत्येक द्रव्य ३-३ ग्राम लें; ३३. लौहभस्म २३ ग्राम, ३४. चीनी ४६ ग्राम, ३५. शुद्ध शिलाजतु ९३ ग्राम और ३६. शुद्ध गुग्गुल ९३ ग्राम लें। सभी काष्ठौषधों, क्षारों, लवणों का सूक्ष्म

चूर्ण करें। ततः एक लोहे की छोटी कड़ाही में थोड़े जल के साथ गुग्गुलु और शिलाजतु को आग पर पिघलावें और धीरे-धीरे चलाते रहें। जब पूरी तरह पिघल जाय तो काष्ठौषधियों के चूर्णों में मिला दें। ठण्डा होने पर हाथ से मसलकर अच्छी तरह मिला दें। शेष भस्मों और चीनी आदि को पीसकर मिला लें और उसमें थोड़ा जल देकर सिल या मशीन में पीस लें और ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखावें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। पूर्व विधि से २-२ वटी का पूर्वानुपान से सेवन करने से यह 'चन्द्रप्रभावटी' सभी रोगो का नाश करती है। २० प्रकार के प्रमेह, ८ प्रकार के मूत्रकृच्छ्र, ४ प्रकार की अश्मरी, १३ प्रकार के मूत्राघात, अण्डवृद्धि, पाण्डु, कामला, हलीमक, कास, श्वास, कुष्ठ, अग्निमांद्य, अरुचि और वात-पित्त-कफोत्थ सभी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। पूर्वकाल में चन्द्रमा देवता ने अपने रोग की निवृत्ति के लिए भगवान् शिव की आराधना कर इस गुटिका को प्राप्त किया था, इसीलिए इसका नाम 'चन्द्र-प्रभा'[1] पड़ा है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम। **अनुपान**—विषम मात्रा में मधु-घृत से तथा बाद में तक्र, मस्तु, घृतादि पीना। गन्ध—शिलाजीत गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रमेह, मूत्र-कृच्छ्र, मूत्राघात एवं पाण्डु में।

विमर्श—प्रमेह की ये दो चन्द्रप्रभावटी एवं अर्शरोगोक्त चन्द्रप्रभावटी तीनों प्रायः एक जैसी ही है। २-३ द्रव्यों का अन्तर है तथा द्रव्यों की मात्रा में भी थोड़ा अन्तर है। ऐसे तीनों एक जैसे ही हैं। एक में कर्पूर अधिक है; साथ ही धनियाँ, चीनी, त्रिवृत् भी है। दूसरे में कचूर एवं अनन्तमूल अधिक है।

४५. योगेश्वर रस (र.सा.सं.)

सूतकं गन्धको लौहं नागं चापि वराटिका।
ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकं च समांशिकम् ॥१०५॥
सूक्ष्मैलापत्रमुस्तं च विडङ्गं नागकेशरम्।
रेणुकाऽऽमलकं चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥१०६॥
एषां च द्विगुणं भागं मर्दयित्वा प्रयत्नतः।
भावना तत्र दातव्या धात्रीफलरसेन च ॥१०७॥
मात्रा चणकतुल्या च गुडिकेयं प्रकीर्त्तिता।
प्रमेहं बहुमूत्रं च ह्यश्मरीं मूत्रकृच्छ्रकम् ॥१०८॥
व्रणं हन्ति महाकुष्ठमर्शांसि च भगन्दरम्।
योगेश्वरो रसो नाम महादेवेन भाषितः ॥१०९॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. नागभस्म, ५. वराटिकाभस्म, ६. ताम्रभस्म, ७. वङ्गभस्म और ८. अभ्रकभस्म—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें; ९. छोटी इलायची, १०. तेजपत्ता, ११. नागरमोथा, १२. वायविडङ्ग, १३. नागकेशर, १४. रेणुका, १५. आमला तथा १६. पिपरामूल—प्रत्येक द्रव्य २-२ भाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य भस्मों एवं सभी काष्ठौषधियों को चूर्ण कर साथ मिलावें। ततः आमलकीस्वरस की भावना देकर २५० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। योगेश्वर नामक इस औषधि को भगवान् शंकर ने कहा था। इस गुटिका के सेवन से सभी प्रकार के प्रमेह, बहुमूत्र, अश्मरी, मूत्र-कृच्छ्र, व्रण, महाकुष्ठ, अर्श एवं भगन्दर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कषायाम्ल। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र एवं कुष्ठ में।

४६. वसन्ततिलक रस

लौहं वङ्गं माक्षिकञ्च सुवर्णञ्चाभ्रकन्तथा।
प्रबालतारं मुक्ता च जातीकोषफले तथा ॥११०॥
एतेषां समभागेन चातुर्जातञ्च मिश्रितम्।
मर्दयेत् त्रिफलाक्वाथे वटीं च कुरु यत्नतः ॥१११॥
रोगानुरूपानुपानं प्रयोक्तव्यं यथायथम्।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥११२॥
वायुं नानाविधं हन्ति चापस्मारं विशेषतः।
विसूचिकाक्षयोन्मादशरीरस्तम्भमेव च ॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव नानारोगं विशेषतः ॥११३॥

१. लौहभस्म, २. वङ्गभस्म, ३. स्वर्णमाक्षिकभस्म, ४. स्वर्णभस्म, ५. अभ्रकभस्म, ६. प्रवालभस्म, ७. रजतभस्म, ८. मोतीभस्म, ९. जावित्रीचूर्ण तथा १०. जायफलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम लें; ११. छोटी इलाचयीचूर्ण, १२. दालचीनीचूर्ण, १३. तेजपातचूर्ण, १४. नागकेशरचूर्ण—ये सभी द्रव्य २५-२५ ग्राम लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मिलावें और त्रिफलाक्वाथ की भावना देकर २५० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'वसन्ततिलक रस' का रोगानुसार अनुपान से सेवन करने से यह वातिक, पैत्तिक, कफज एवं सान्निपातिक प्रमेह रोगों को तथा विविध प्रकार के वायु विकार को नष्ट करता है। यह नाना प्रकार के अपस्मार, विसूचिका, क्षय, उन्माद, शरीर की स्तब्धता, २० प्रकार के प्रमेह तथा और भी अनेक प्रकार के रोगों को भी नष्ट करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—प्रमेह एवं त्रिदोषज रोगों में।

१. अस्या निरन्तराभ्यासात् मनुष्यस्य चन्द्रवत् प्रभा कान्तिर्भवति; अथवा चन्द्रप्रभानामकं द्रव्यमादिर्यस्या इति।

४७. वसन्तकुसुमाकर रस (र.सा.सं.)

द्विभागं हाटकं चन्द्रं त्रयो वङ्गाहिकान्तकाः।
चतुर्भागं शुद्धमभ्रं प्रवालं मौक्तिकन्तथा ॥११४॥
भावयेद् गव्यदुग्धेन भावनेक्षुरसेन च।
वासालाक्षारसोदीच्यरम्भाकन्दप्रसूनकैः ॥११५॥
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमेन च।
पश्चान्मृगमदैर्भाव्यं सुसिद्धो रसराड् भवेत् ॥११६॥
कुसुमाकर इत्याख्यो वसन्तपदपूर्वकः।
गुञ्जाद्वयेन संसेव्यः सिताऽऽज्यमधुसंयुतः ॥११७॥
वलीपलितहृन्मेध्यः स्मृतिभ्रंशं विनाशयेत्।
तुष्टिदो बलमायुष्यं पुत्रप्रसवकारणः ॥११८॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव क्षयमेकादशं तथा।
तथा सोमरुजं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥११९॥

१. स्वर्णभस्म २ भाग, २. रजतभस्म २. भाग, ३. वङ्गभस्म ३ भाग, ४. नागभस्म ३ भाग, ५. कान्तलौहभस्म ३ भाग, ६. अभ्रकभस्म ४ भाग, ७. प्रवालभस्म ४ भाग, ८. मोतीभस्म ४ भाग तथा ९. कस्तूरी ४ भाग लें।

भावना द्रव—१. गोदुग्ध, २. इक्षुरस, ३. वासास्वरस, ४. लाक्षारस, ५. सुगन्धबालाक्वाथ, ६. कदलीकन्दरस, ७. कमलपुष्परस और ८. चमेलीपुष्परस। सर्वप्रथम एक साफ खरल में उपर्युक्त स्वर्णभस्म से मोतीभस्म तक के सभी द्रव्यों का मर्दन करें। ततः गोदुग्ध से चमेलीपुष्पस्वरस तक के सभी ८ द्रव्यों के स्वरस से १-१ भावना देकर १-१ दिन तक मर्दन करें। सबसे अन्त में कस्तूरी को थोड़ा गुलाब जल में घोलकर उक्त औषधि में १ भावना देकर १ रत्ती (१५ मि.ग्रा.) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे वसन्तकुसुमाकर रस कहते हैं। इसे घृत-मधु (असमान भाग) एवं चीनी के साथ सेवन करने पर वलित-पलित रोग नष्ट होता है। यह मेध्य है, स्मृतिभ्रंशनाशक है, हमेशा सुख देता है। आयुष्य है, बल्य है, पुत्रोत्पादनार्थ श्रेष्ठ है। २० प्रकार के प्रमेहों, एकादश क्षय तथा साध्यासाध्य सोमरोगनाशक है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु-घृत, चीनी और दूध मिलाकर। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई रंग की। **स्वाद**—तिक्त-मधुर। **उपयोग**—प्रमेहघ्न, क्षयघ्न, बल्य तथा आयुष्य है।

४८. इन्द्रवटी (र.सा.सं.)

मृतं सूतं मृतं वङ्गमर्जुनस्य त्वचाऽन्वितम्।
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्ले शाल्मल्या मूलजैर्द्रवैः ॥१२०॥
दिनान्ते वटिका कार्या माषमात्रा प्रमेहहा।
एषा इन्द्रवटी नाम्ना मधुमेहप्रशान्तिकृत् ॥१२१॥

रससिन्दूर १ भाग तथा वङ्गभस्म १ भाग लें। एक खरल में दोनों का मर्दन करें। पुनः सेमलमुशली क्वाथ की भावना देकर १ दिन मर्दन करें। ततः $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ रत्ती (६०-६० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'इन्द्रवटी' कहते हैं। इसे मधु के साथ सेवन करने से मधुमेह नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—रक्त। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—मधुमेह एवं प्रमेह में।

४९. हरिशङ्कररस-१ (र.सा.सं.)

मृतसूताभ्रकं तुल्यं धात्रीफलनिशाद्रवैः ॥
सप्ताहं भावयेत् खल्ले योगोऽयं हरिशङ्करः।
माषमात्रां वटीं खादेत्सर्वमेहप्रशान्तये ॥१२२॥

अभ्रकभस्म १ भाग तथा रससिन्दूर १ भाग लें। इन्हें खरल में एक साथ मर्दन कर आमलकीस्वरस और हल्दीस्वरस की ७-७ भावना देकर $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ रत्ती (१-१ माश) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'हरिशङ्कर रस' कहते हैं। इसे मधु के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—रक्त। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेहों में।

५०. हरिशङ्कर रस-२ (र.सा.सं.)

रसगन्धकलौहञ्च स्वर्णं वङ्गञ्च माक्षिकम्।
समभागन्तु सम्पिष्य वटिकां कारयेद्भिषक् ॥१२३॥
सप्ताहमामलद्रावैर्भावितोऽयं रसेश्वरः।
हरिशङ्करनामाऽयं गहनानन्दभाषितः ॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति सत्यं सत्यं न संशयः ॥१२४॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. स्वर्णभस्म, ५. वङ्गभस्म और ६. स्वर्णमाक्षिकभस्म—समभाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें उसी कज्जली के साथ अन्य सभी भस्मों को मिलावें और आमला के स्वरस की ७ भावना देकर १२५ मि.ग्रा. की वटी बनावें और छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'हरिशङ्कर रस' कहा जाता है। इस औषधि को आचार्य श्री गहनानन्द ने कहा था। यह हरिशङ्कर रस सही अर्थ में २० प्रकार के प्रमेहों का नाश करता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—अम्ल। **उपयोग**—२० प्रकार के प्रमेहों में।

५१. आनन्दभैरव रस (र.सा.सं.)

वङ्गभस्म मृतं स्वर्णं रसं क्षौद्रैर्विमर्दयेत्।
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं हन्ति मेहं चिरोद्भवम्॥
गुञ्जामूलं तथा क्षौद्रैरनुपानं प्रशस्यते॥१२५॥

वङ्गभस्म १ भाग, स्वर्णभस्म १ भाग तथा रससिन्दूर १ भाग लें। एक खरल में तीनों भस्मों को पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को प्रमेही व्यक्ति २५० मि.ग्रा. की मात्रा में लेकर १ ग्राम गुञ्जामूलचूर्ण और १० ग्राम मधु मिलाकर चाटने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—गुञ्जामूलचूर्ण और मधु से। **गन्ध**—निर्गन्धी। **वर्ण**—रक्तवर्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेहों में।

५२. विद्यावङ्गेश्वर रस

तुल्यानि वङ्गसूताभ्रभस्मानि परिकल्पयेत्।
सर्वतुल्यं महानिम्बबीजचूर्णं विमिश्रयेत्॥१२६॥
लिह्यात् क्षौद्रेण माषैकं पित्तमेहप्रशान्तये।
शाणत्रयं निशाचूर्णं मधुना भक्षयेदनु।
विद्यावङ्गेश्वरो नाम लालामेहस्य शान्तये॥१२७॥

१. वङ्गभस्म १ भाग, २. रससिन्दूर १ भाग, ३. अभ्रकभस्म १ भाग तथा ४. महानिम्ब (बकायन) बीज चूर्ण ३ भाग लें। इन तीनों भस्मों को एक साथ पहले अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को १-१ माशा (१-१ ग्राम) की मात्रा में हल्दीचूर्ण २ ग्राम और मधु मिलाकर सेवन करने से लालामेह नामक प्रमेह रोग का नाश हो जाता है। इसे 'विद्यावङ्गेश्वर रस' कहते हैं।

आ. मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—हल्दी चूर्ण और मधु से। **गन्ध**—निम्बगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—लाला प्रमेह में।

५३. प्रमेहसेतु रस (र.सा.सं.)

सूताभ्रञ्च वटक्षीरैर्मर्द्दयेत् प्रहरद्वयम्।
विशोष्य पक्वमूषायां सर्वरोगे प्रयोजयेत्॥१२८॥
विशेषान्मेहरोगेषु त्रिफलामधुसंयुतम्।
युञ्जीत वल्लमेकन्तु रसेन्द्रस्यास्य वैद्यराट्॥१२९॥

रससिन्दूर १ भाग तथा अभ्रकभस्म १ भाग लें। दोनों को एक खरल में मर्दन करें और वट दुग्ध की भावना देकर ६ घण्टे तक मर्दन करें। सूखने के बाद पक्व मूषा में बन्द कर बालुकायन्त्र में ३ घण्टे तक पकावें। स्वाङ्गशीत होने पर मूषा खोलकर औषधि संग्रहीत कर खरल में मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'प्रमेहसेतु रस' को १ वल्ल (३ रत्ती = ३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में त्रिफलाचूर्ण २ ग्राम और मधु के साथ मिलाकर चाटें। ऐसा करने से सभी प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—त्रिफलाचूर्ण और मधु से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्तवर्ण। **स्वाद**—निःस्वादु (किञ्चित् कषाय)। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेहों में।

५४. मेहकुञ्जरकेशरी रस

रसगन्धायसाभ्राणि नागवङ्गौ सुवर्णकम्।
वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत्॥१३०॥
शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे।
बुद्ध्वा शुष्कं तमुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत्॥१३१॥
सन्धिलेप मृदा कुर्याद् गर्त्ते च गोमयाग्निना।
पुटेद्यामचतुः संख्यमुद्धृत्य स्वाङ्गशीतलम्॥१३२॥
श्लक्ष्णखल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्दयेद् दृढम्।
देवब्राह्मणपूजां च कृत्वा धृत्वाऽधिकूपिकम्॥१३३॥
खादेद्वल्लद्वयं प्रातः शीतं चानुपिबेज्जलम्।
अष्टादशप्रमेहांश्च जयेन्मासोपयोगतः॥१३४॥
पुष्टिं तेजो बलं वर्णशुक्रवृद्धिञ्च दारुणम्।
अग्नेर्बलं वितनुते मेहकुञ्जरकेशरी॥
दिव्यं रसायनं श्रेष्ठं नात्र कार्या विचारणा॥१३५॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. अभ्रकभस्म, ५. नागभस्म, ६. वङ्गभस्म, ७. सुवर्णभस्म, ८. हीराभस्म तथा ९. मोतीभस्म—सभी द्रव्य समान भाग में लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य भस्मों को कज्जली के साथ मिलावें और शतावरीस्वरस की भावना देकर एक गोला बना लें। इस गोले को धूप में सुखाकर शराव में उस गोले को रखकर सम्पुटित करें। सन्धिबन्धन कर गोमयाग्नि के लघुपुट के १२ घण्टे तक पाक करें। स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट से औषधि गोलक को निकालकर खरल में पीस कर काचपात्र में संग्रहीत करें। देवता और ब्राह्मणों तथा इस औषधि की पूजा कर इसे ६ रत्ती (७५० मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु के साथ चाटकर ऊपर से शीतल जल का पान करें। इसके सेवन से १८ प्रकार के प्रमेह १ महीने में ही शान्त हो जाते हैं। इसके सेवन से शरीर का तेज, बल, वर्ण और शुक्र की वृद्धि होती है। इसके सेवन से अग्नि की वृद्धि होती है। यह 'मेहकुञ्जर केशरी रस' दिव्य एवं श्रेष्ठ रसायन है, इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा. तक। **अनुपान**—मधु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—प्रमेह में दिव्य रसायन है।

५५. मेघनाद रस (र.सा.सं.)

भस्मसूतं समं कान्तमभ्रकन्तु शिलाजतु ।
शुद्धताप्यं शिलाव्योषत्रिफलाऽङ्कोठजीरकम् ॥१३६॥
कार्पासबीजं रजनीचूर्णं भाव्यञ्च वह्निना ।
विंशद्वारं विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह ॥
[illegible]मात्रो हरेन्मेहं मेघनादरसो महान् ॥१३७॥

१. रससिन्दूर, २. कान्तभस्म, ३. अभ्रकभस्म, ४. शुद्ध शिलाजतु, ५. स्वर्णमाक्षिकभस्म, ६. शुद्ध मैनसिल, ७. सोंठ-चूर्ण, ८. पीपरचूर्ण, ९. मरिचचूर्ण, १०. आमलाचूर्ण, ११. हरीतकीचूर्ण, १२. बहेड़ाचूर्ण, १३. अंकोठचूर्ण, १४. जीरा चूर्ण, १५. कपासबीजचूर्ण तथा १६. हल्दीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। इन द्रव्यों के सूक्ष्मचूर्णों को और भस्मों को एक खरल में एक साथ मिलाकर मर्दन करें और चित्रकमूल क्वाथ की २० भावना देकर १-१ माशा (१-१ ग्राम) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'मेघनाद रस' कहते हैं। इसे १-१ वटी मधु के साथ मिलाकर चाटने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

आ. मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—प्रमेह में।

५६. मेहकेशरी रस (र.सा.सं.)

मृतं वङ्गं सुवर्णञ्च कान्तलौहञ्च पारदम् ।
मुक्ता गुडत्वचञ्चैव सूक्ष्मैलानागकेशरम् ॥१३८॥
समभागं विचूर्ण्याथ कन्यानीरेण भावयेत् ।
द्विमाषां वटिकां खादेद् दुग्धान्नं प्रपिबेत्ततः ॥१३९॥
प्रमेहं नाशयेदाशु केशरी करिणं यथा ।
शुक्रप्रवाहं शमयेत्त्रिरात्रान्नात्र संशयः ॥१४०॥

१. वङ्गभस्म, २. सुवर्णभस्म, ३. कान्तलौहभस्म, ४. रससिन्दूर, ५. मोतीभस्म, ६. दालचीनीचूर्ण, ७. छोटी इलायचीचूर्ण, ८. तेजपातचूर्ण और ९. नागकेशरचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। इन सभी द्रव्यों को एक साथ मर्दन करें और घृतकुमारीस्वरस की १ भावना देकर एक साथ मर्दन करें और २-२ माष (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'मेहकेशरी रस' को १-१ वटी प्रातः-सायं चबाकर दूध की बनी खीर १०० ग्राम पीयें (दुग्धान्नं प्रपिबेत्ततः)। जैसे सिंह हाथी को नाश कर देता है उसी तरह यह औषधि प्रमेहरोग का नाश कर देती है। तीन दिनों तक सेवन करने से शुक्रमेह रोग निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

आ. मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—खीर (दूध-भात)। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेहों में।

५७. मेहान्तक रस

रसगन्धकलौहञ्च तारवङ्गं त्रिभागिकम् ।
अभ्रकस्य त्रयो भागा भागार्द्धेन सुवर्णकम् ॥१४१॥
सर्वचूर्णसमां दद्यात् तालमूलीं सुचूर्णिताम् ।
नानारोगहरं श्रेष्ठं वातपित्तभवं महत् ॥
कान्तिपुष्टिकरञ्चैव रतिशक्तिविवर्द्धनम् ॥१४२॥

१. शुद्ध पारद ३ भाग, २. शुद्ध गन्धक ३ भाग, ३. लौहभस्म, ३ भाग, ४. रजतभस्म ३ भाग, ५. वङ्गभस्म ३ भाग, ६. अभ्रकभस्म ३ भाग, ७. सुवर्णभस्म $\frac{1}{2}$ भाग तथा ८. श्वेत मुशलीचूर्ण १९$\frac{1}{2}$ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी तरह कज्जली बना लें। ततः अन्य भस्मों और मुशलीचूर्ण को मिलाकर जल की १ भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'मेहान्तक रस' को प्रातः- सायं १-१ वटी मधु के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं, विशेषकर प्रमेह रोग इसके सेवन से नष्ट हो जाता है। वात-पित्त दोष से उत्पन्न सभी प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं। यह शारीरिक कान्ति बढ़ाता है, शरीर को पुष्टि देता है और रति शक्ति बढ़ाने वाला है। अर्थात् इसके सेवन से मनुष्य में कामशक्ति बढ़ती है और वह वाजीवत् मैथुन करने में समर्थ हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु ऊपर से गरम गाढ़ा दूध पियें। **गन्ध**—श्याव वर्ण। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सभी प्रमेहों में।

५८. कामचूडामणिरस

मौक्तिकं माक्षिकञ्चैव स्वर्णभस्म पृथक्पृथक् ।
कर्पूरं जातिकोषञ्च जातीफललवङ्गकम् ॥१४३॥
वङ्गभस्म तथा ग्राह्यं रूप्यञ्चापि तथाऽर्द्धकम् ।
चातुर्जातञ्च सङ्ग्राह्यं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ॥१४४॥
शतमूलीरसेनैव भावयेत्सप्तवारकम् ।
ततो गुञ्जाप्रमाणेन वटिका भिषजा कृता ॥१४५॥
अनुपानविशेषेण रोगाकरविनाशिनी ।
शीतं पयोऽनुपानञ्च कामिनीः कामयेच्छतम् ॥१४६॥
वीर्यहीनो भवेद्यस्तु यो वा स्यात् पतितध्वजः ।
सोऽशीतिवार्षिको भूत्वा युवेव रमतेऽङ्गनाः ॥१४७॥
भेषजैर्विविधैः किं स्यादन्यैश्च शतसंख्यकैः ।
फलं न किञ्चित्तत्रास्ति केवलं गौरवं मुहुः ॥१४८॥
नातः परतरं किञ्चिदस्ति पुष्टिकरं च सत् ।
अतः सर्वप्रयत्नेन सेव्या भूमिभुजा सदा ॥१४९॥

विशेषाद् ध्वजभङ्गञ्च सप्ताहेन विनाशयेत्।
प्रमेहं मूत्ररोगञ्च मन्दाग्निं श्वयथुं तथा॥
रक्तदोषञ्च नारीणां पानाद्दोषो विनश्यति॥१५०॥

१. मोतीभस्म १ भाग, २. स्वर्णमाक्षिकभस्म १ भाग, ३. सुवर्णभस्म १ भाग, ४. कर्पूर १ भाग, ५. जावित्रीचूर्ण १ भाग, ६. जायफलचूर्ण १ भाग, ७. लवङ्गचूर्ण १ भाग, ८. वङ्गभस्म १ भाग, ९. रजतभस्म १ भाग, १०. छोटीइलायचीचूर्ण $\frac{१}{२}$ भाग, ११. तेजपातचूर्ण $\frac{१}{२}$ भाग, १२. दालचीनीचूर्ण $\frac{१}{२}$ भाग और १३. नागकेशरचूर्ण $\frac{१}{२}$ भाग लें। सभी भस्मों तथा काष्ठौधियों के सूक्ष्मचूर्णों को एक साथ खरल में मर्दन करें और शतावरीरस की भावना देकर दिन भर मर्दन करें। इस प्रकार से शतावरीस्वरस की ७ भावना देकर ७ दिनों तक मर्दन करें और १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। अनुपानविशेष के द्वारा इससे रोगों के समूह नष्ट हो जाते हैं। इस 'कामचूडामणि रस' को गरम एवं चीनी मिलाये हुए दूध के साथ सेवन करने के बाद व्यक्ति १०० कामिनी स्त्रियों के साथ सम्भोग कर उन्हें तृप्त कर सकता है। जिस मनुष्य में वीर्य की कमी हो गई है तथा जो नपुंसकता को प्राप्त हो गया है वह अस्सी वर्ष की आयु में भी युवा के जैसा इस औषधि के प्रभाव से मैथुन करता है। अनेकों प्रकार की सैकड़ों औषधों के सेवन से कोई लाभ नहीं हैं तथा उनके गुणों का वर्णन कर मात्र उनके गौरव बढ़ाने जैसा है। किन्तु इस रस से बढ़कर पुष्टिकरणार्थ कोई दूसरी श्रेष्ठ औषधि नहीं है। अतः सभी प्रयत्नों द्वारा इस वटी का निर्माण कराकर राजा-महाराजों को सेवन करना चाहिए। इस औषधि को ७ दिनों तक सेवन करने मात्र से ध्वजभङ्ग रोग नष्ट हो जाता है। अनुपान भेद से सभी प्रकार के प्रमेहरोग, मूत्ररोग, मन्दाग्नि, शोथ तथा स्त्रियों के रजोदोष एवं रक्तप्रदरादि रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा. तक। **अनुपान**—दूध एवं रोगानुसार। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह, मूत्ररोग एवं रजोदोष हर है तथा प्रबल वाजीकर है।

५९. वङ्गेश्वर रस-१ (र.सा.सं.)

रसभस्म समायुक्तं वङ्गभस्म प्रकल्पयेत्।
अस्य माषद्वयं हन्ति मेहान् क्षौद्रसमन्वितम्॥१५१॥

रससिन्दूर १ भाग तथा वङ्गभस्म १ भाग लें। पहले खरल में रससिन्दूर का सूक्ष्मचूर्ण करें। ततः वङ्गभस्म मिलाकर मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वङ्गेश्वररस को २ माष (१ रत्ती) की मात्रा में मधु के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

आ. मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्त। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—प्रमेहों में।

६०. वङ्गेश्वर रस-२

वङ्गं कान्तं च गगनं हेमपुष्पं समं समम्।
कुमारीरसतो भाव्यं सप्तवारं भिषग्वरैः॥१५२॥
एष वङ्गेश्वरो नाम प्रमेहान् विंशतिं जयेत्।
मूत्रकृच्छ्रं सोमरोगं पाण्डुरोगं महाश्मरीम्।
रसायनमिदं श्रेष्ठं नागार्जुनविनिर्मितम्॥१५३॥

१. वङ्गभस्म, २. कान्तलौहभस्म, ३. अभ्रकभस्म तथा ४. नागकेशर—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। इन्हें एक साथ खरल में मर्दन करें। ततः घृतकुमारीस्वरस की ७ भावना देकर २-२ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'वङ्गेश्वर रस' नाम की वटी का सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, सोमरोग एवं मूत्राश्मरी रोगों को नष्ट करता है। यह श्रेष्ठ रसायन है। इसे आचार्य सिद्धनागार्जुन ने बनाया है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्राश्मरी में।

६१. वङ्गेश्वररस-३ (र.सा.सं.)

वङ्गभस्म रसं गन्धं रूप्यं कर्पूरमभ्रकम्।
कर्षं कर्षं मानमेषां सूताङ्घ्रि हेम मौक्तिकम्॥१५४॥
केशराजरसैर्भाव्यं द्विगुञ्जाफलमानतः।
प्रमेहान् विंशति चैव साध्यासाध्यमथापि वा॥१५५॥
मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत्।
हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम्॥१५६॥
ग्रहणीमामदोषञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥१५७॥

१. वङ्गभस्म १ भाग, २. शुद्ध पारद १ भाग, ३. शुद्ध गन्धक १ भाग, ४. रजतभस्म १ भाग, ५. कर्पूर १ भाग, ६. अभ्रकभस्म १ भाग, ७. सुवर्णभस्म $\frac{१}{४}$ भाग और ८. मोतीभस्म $\frac{१}{४}$ भाग लें। एक खरल में उपर्युक्त सभी औषधों को रखकर मर्दन करें और भृङ्गराजस्वरस की भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनावें एवं छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे प्रातः-सायं १-१ वटी मधु मिलाकर चाटें और रोगानुसार अनुपान द्रव पियें। ऐसा करने से सभी प्रकार के साध्यासाध्य प्रमेह रोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, धातुगतज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वात, पित्त एवं कफ दोषोत्पन्न रोग, ग्रहणी, आमदोष, अग्निमान्द्य तथा अरुचि रोग नष्ट हो जाते हैं। जिस तरह से इन्द्र के वज्र से वृक्ष नष्ट हो जाता है उसी प्रकार यह सभी रोगों को नष्ट कर देता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं रोगानुसार। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेहों, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु आदि में।

६२. वङ्गेश्वर रस-४ (बृहत्)

सूतं गन्धं मृतं लौहं मृतमभ्रं समांशिकम्।
हेम वङ्गञ्च मुक्ता च ताप्यमेवं समं समम्॥१५८॥
सर्वेषां चूर्णितं कृत्वा कन्यारसविमर्द्दितम्।
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः॥१५९॥
बृहद्वङ्गेश्वरो ह्येष रक्तमूत्रे प्रशस्यते।
श्वेतमूत्रं बहुमूत्रं मूत्रकृच्छ्रं तथैव च॥१६०॥
सर्वविधप्रमेहांस्तु नाशयेदविकल्पतः।
अग्निवृद्धिं वयोवृद्धिं कान्तिवृद्धिं करोति च॥१६१॥
क्षयरोगं निहन्त्याशु कासं पञ्चविधं तथा।
कुष्ठमष्टादशविधं पाण्डुरोगं हलीमकम्॥१६२॥
शूलं श्वासं ज्वरं हिक्कां मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
क्रमेण शीलितो हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥१६३॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. अभ्रक भस्म, ५. स्वर्णभस्म, ६. वङ्गभस्म, ७. मोतीभस्म तथा ८. सुवर्णमाक्षिकभस्म—सभी द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी तरह कज्जली बनावें तथा शेष अन्य भस्मों को इस कज्जली के साथ मिलाकर मर्दन करें और घृतकुमारीस्वरस की भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'बृहद्वङ्गेश्वर रस' कहते हैं। यह रक्तमूत्र और मूत्ररोग की श्रेष्ठ औषधि है। इसके सेवन से श्वेतवर्ण का मूत्र आना, बहुमूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र, सभी प्रकार के प्रमेह रोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह क्षयरोग, ५ प्रकार के कास, १८ प्रकार के कुष्ठ, पाण्डु, हलीमक, शूल, श्वास, ज्वर, हिक्का, मन्दाग्नि और अरुचि रोग नष्ट हो जाते हैं। जैसे इन्द्र का वज्र वृक्षों का नाश करता है, उसी प्रकार यह उपर्युक्त सभी रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन अग्निवृद्धि, आयुवृद्धि, शरीरकान्तिवृद्धि होती है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनपान**—मधु तथा रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ एवं पाण्डु में।

६३. स्वर्णवङ्ग

प्रक्षिपेद् भाजने वङ्गमायसे चापि मृन्मये।
विद्रुते वह्नितापेन तस्मिंस्तन्मानकं रसम्॥१६४॥
क्षिप्त्वा सञ्चूर्णयेत्तत्र नरसारं च गन्धकम्।
तनुवासोमृदालिप्तकाचकूप्यां विधाय च॥१६५॥
तत्सर्वं सिकतायन्त्रे पचेद् यामचतुष्टयम्।
पाकात्सञ्जायते चित्रं कीर्णं हेमकणैरिव॥१६६॥
रमणीयतरं स्वर्णवङ्गं नाम रसायनम्।
बल्यं मेहहरं कान्तिमेधावीर्याग्निवर्द्धनम्॥१६७॥

१. शुद्ध वङ्ग २५० ग्राम, २. शुद्ध पारद २५० ग्राम, ३. गन्धक २५० ग्राम, ४. शुद्ध नरसार २५० ग्राम तथा ५. सैन्धवचूर्ण २५ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक लोहे के बड़ी चम्मच (दर्वी) में वङ्ग को रखकर आग में पिघलावें। पहले से एक लोहे या पत्थर के खरल में पारद को रखें। जब वङ्ग पूरी तरह से द्रव हो जाय तो उस पिघले वङ्ग को पारद वाले खरल में डालकर जल्दी से मर्दन करें। १० मिनट मर्दन करने पर पारद एवं वङ्ग मिश्रित चूर्ण रूप में हो जायेगा। उसमें थोड़ा सैन्धवचूर्ण मिलाकर मर्दन करें और जल से प्रक्षालन करें। जब लवणीय जल पूर्णतया निकल जाय तो उसे धूप में सुखा लें। तदनन्तर उसमें शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली करें और उस कज्जली में नवसार मिलाकर मर्दन कर लें। अब इस कज्जली को २० औंस की कपड़मिट्टी की हुई दो बोतलों में भरें और बालुकायन्त्र में कूपीपक्व विधि से पाक कर ६ से १० घण्टे तक क्रमशः मृदु-मध्य-तीक्ष्णाग्नि द्वारा पाक करें। पाक परीक्षोपरान्त स्वाङ्गशीत होने के लिए छोड़ दें।

इसकी परीक्षा रससिन्दूर जैसी नहीं की जाती है। इसमें ठण्डी लौह शलाका प्रवेश करते हैं तो स्वर्णवङ्ग जैसी चमक शलाका में चिपक जाती है। ऐसा होने पर इसे तैयार समझना चाहिए। दूसरे दिन ठण्डा होने पर बोतल निकाल लें और कपड़मिट्टी खुरचकर रससिन्दूर विधि से सुतरी में किरोशन लगाकर जलने के बाद भीगे कपड़े से बोतल का स्पर्श करें। ऐसा करने से बोतल टूट जायेगी। ततः क्षारावृत पूरा स्वर्णवङ्ग हाथ से निकालें और चाकू से ऊपर-नीचे का क्षार निकालकर स्वर्णवङ्ग प्राप्त करें। इसे काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १ से २ रत्ती (१२५ से २५० मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु के साथ चाटने से रसायन कार्य करता है, बल्य है, प्रमेहनाशक है, क्रान्ति, बुद्धि, वीर्य और अग्नि वर्धक है।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं योगानुसार। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—पीत चमकीला स्वर्ण जैसा। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—प्रमेह में, बल्य, रसायन, बुद्धि, स्मृति, वीर्य एवं अग्निवर्धनार्थ।

६४. सर्वेश्वर रस

स्वर्णं रौप्यं मौक्तिकञ्च विशुद्धञ्च शिलाजतु।
लौहमभ्रं तथा ताप्यं मधुयष्टी च पिप्पली॥१६८॥
मरिचं विश्वकञ्चेति सर्वमेकत्र कारयेत्।
विमर्द्य प्रहरं यत्नात्कज्जलाकृतिसन्निभम्॥१६९॥

केशराजभृङ्गराजशक्राशनरसे पृथक्।
प्रमेहं विविधं हन्ति मधुमेहं सुदुर्जयम् ॥१७०॥
वातपित्तसमुद्भूतं तथा कफसमुद्भवम्।
सर्वेश्वरो रसो नाम्ना प्रमेहकुलनाशनः ॥१७१॥

१. स्वर्णभस्म, २. रजतभस्म, ३. मोतीभस्म, ४. शुद्ध शिलाजतु, ५. लौहभस्म, ६. अभ्रकभस्म, ७. स्वर्णमाक्षिक-भस्म, ८. मुलेठीचूर्ण, ९. पीपरचूर्ण, १०. सोंठचूर्ण और ११. मरिचचूर्ण—सभी द्रव्य १-१ भाग लें। एक खरल में इन सभी द्रव्यों को एक साथ मर्दन करें और भृङ्गराजस्वरस एवं केशराज-रस में १-१ दिन तक मर्दन करें। पुनः भाँगपत्रस्वरस की १ भावना देकर एक दिन तक मर्दन करें। २५० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'सर्वेश्वर रस' कहते हैं। इसे १ से २ वटी मधु के साथ सेवन करने से (प्रमेह कुल) २० प्रकार के प्रमेह तथा दुःसाध्य मधुमेह रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त वात, पित्त एवं कफोद्भूत रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेह एवं मधुमेह में।

६५. अपूर्वमालिनीवसन्त रस

वैक्रान्तमभ्रं रविताप्यरौप्यं
वङ्गं प्रवालं रसभस्म लौहम्।
सुटङ्कणं कम्बुकभस्म सर्वं
समांशकं सेव्यवरीहरिद्राः ॥१७२॥
द्रवैविभाव्यं मुनिसंख्यया च
मृगाङ्कजाशीतकरेण पश्चात्।
वल्लप्रमाणो मधुपिप्पलीभि-
र्जीर्णज्वरे धातुगते नियोज्यः ॥
गुडूचिकासत्त्वसितायुतश्च
सर्वप्रमेहेषु नियोजनीयः ॥१७३॥
कृच्छ्राश्मरीं निहन्त्याशु मातुलुङ्गाङ्घ्रिजैर्द्रवैः।
रसो वसन्तनामाऽयमपूर्वो मालिनीपदः ॥१७४॥

१. वैक्रान्तभस्म, २. अभ्रकभस्म, ३. ताम्रभस्म, ४. स्वर्ण-माक्षिकभस्म, ५. रजतभस्म, ६. वङ्गभस्म, ७. प्रवालभस्म, ८. रससिन्दूर, ९. लौहभस्म, १०. शुद्ध सुहागा, ११. क्षुद्रशंख-भस्म (घोंघाभस्म), १२. कस्तूरी और १३. कर्पूर—सभी द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम रससिन्दूर को एक खरल में पीसें। ततः अन्य सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद शतावरी क्वाथ की ७ भावना दें। पुनः हरिद्रास्वरस की ७ भावना दें और जब भावित औषधि गीली रहे तभी उसमें कर्पूर मिलाकर मर्दन करें और अन्त में कस्तूरी मिलाकर ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बना लें और छाया में अच्छी तरह सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'अपूर्वमालिनीवसन्त' कहते हैं। १ वटी एवं १ ग्राम पिप्पलीचूर्ण और मधु से मिलाकर चाटने से जीर्णज्वर एवं धातुगत ज्वर में तथा गुडूचीसत्त्व के साथ चीनी मिलाकर प्रमेह में और मातुलुङ्ग मूल क्वाथ से सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र में अत्यधिक सफलता मिलती है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—पिप्पलीचूर्ण, मधु, गुडूचीसत्त्व एवं चीनी तथा मातुलुङ्गमूलक्वाथ से विभिन्न रोगों देना चाहिए। **गन्ध**—कस्तूरीगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रमेहों में, जीर्णज्वर, धातुगतज्वर एवं मूत्रकृच्छ्र में।

६६. प्रमेहचिन्तामणि रस

मृतसूताभ्रवङ्गं च स्वर्णं लौहं प्रकल्पयेत्।
मौक्तिकं च प्रवालं च माक्षिकं सममाहरेत् ॥१७५॥
कन्यानीरेण सम्मर्द्य द्विगुञ्जाफलमानतः।
छायाशुष्का वटी कार्या भक्षणीया प्रयत्नतः ॥१७६॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं च सोमकम्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं सुदारुणम् ॥
वृष्यो बलकारो हृद्यः शुक्रवृद्धिकरः परः ॥१७७॥

१. रससिन्दूर, २. अभ्रकभस्म, ३. वङ्गभस्म, ४. स्वर्ण-भस्म, ५. लौहभस्म, ६. मोतीभस्म, ७. प्रवालभस्म तथा ८. स्वर्णमाक्षिकभस्म लें। सर्वप्रथम रससिन्दूर को एक खरल में पीसें तथा उसी के साथ अन्य भस्मों को मिलावें और मर्दन करें। तदनन्तर घृतकुमारीस्वरस की भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) मात्रा की वटी बनावें और छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'प्रमेहचिन्तामणि' रस को १-१ वटी प्रातः-सायं रोगानुसार विविधानुपान द्वारा सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेह, बहुमूत्ररोग, सोमरोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और भयंकर मूत्राघात रोग नष्ट हो जाते हैं। यह बल्य है, वृष्य है, हृद्य है तथा शुक्रवर्द्धक है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मूत्र सम्बन्धी सभी विकारों में।

६७. बृहत् सोमनाथ रस (र.सा.सं.)

हिङ्गुलसम्भवं सूतं पालिधारसमर्दितम्।
रण्डाशोधितगन्धश्च तेनैव कज्जलीकृतम् ॥१७८॥
तदद्वयोर्द्विगुणं लौहं कन्यारसविमर्दितम्।
अभ्रकं वङ्गकं रौप्यं खर्परं माक्षिकं तथा ॥१७९॥
सुवर्णञ्च समं सर्वं प्रत्येकञ्च रसार्द्धकम्।
तत्सर्वं कन्यकाद्रावैर्मर्दयेद् भावयेत्ततः ॥१८०॥

भेकपर्णीरसेनैव गुञ्जाद्वयवटीं ततः।
मधुना भक्षयेच्चापि सोमरोगनिवृत्तये ॥१८१॥
प्रमेहान् विंशन्ति हन्ति बहुमूत्रञ्च सोमकम्।
मूत्रातिसारं कृच्छ्रञ्च मूत्राघातं सुदारुणम् ॥१८२॥
बहुदोषं बहुविधं प्रमेहं मधुसंज्ञकम्।
हस्तिमेहमिक्षुमेहं लालामेहं विनाशयेत् ॥१८३॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सोमसंज्ञकम्।
नाशयेद् बहुमूत्रञ्च प्रमेहमविकल्पतः ॥१८४॥

१. शुद्ध हिङ्गुलोत्थ पारद—फरहदत्वग् रस ५० ग्राम, २. मूषाकर्णीरस शोधितगन्धक ५० ग्राम, ३. घृतकुमारी रस भावित लौहभस्म २०० ग्राम, ४. अभ्रकभस्म २५ ग्राम, ५. वङ्गभस्म २५ ग्राम, ६. रजतभस्म २५ ग्राम, ७. खर्परभस्म २५ ग्राम, ८. स्वर्णमाक्षिकभस्म २५ ग्राम तथा ९. स्वर्णभस्म २५ ग्राम लें। हिंगुलोत्थ पारद को फरहदत्वक् स्वरस भावित कर १ दिन तक मर्दन करें। ततः मूषाकर्णी स्वरस में शोधित गन्धक समप्रमाण में लेकर एक खरल में कज्जली बनावें। ततः उसमें लौहभस्म से लेकर स्वर्णभस्म तक के सभी भस्मों को मिलाकर घृतकुमारी-स्वरस की भावना दें और मर्दन करें। इसके बाद मण्डूकपर्णी स्वरस की भावना दें और २५० मि.ग्रा. (२-२ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। सोमरोग को मिटाने के लिए प्रातः-सायं १-१ वटी मधु के साथ सेवन करें। इसके अतिरिक्त २० प्रकार के प्रमेह, सोम नामक बहुमूत्ररोग, मूत्रातिसार, मूत्रकृच्छ्र, भयंकर मूत्राघात, अनेकों दोष और अनेकों प्रकार के प्रमेह, मधुमेह, हस्तिमेह, इक्षुमेह, लालामेह, वात-पित्त एवं कफ जनित सोमरोग तथा बहुमूत्र और प्रमेह का निश्चित ही नाश करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु और रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह के सभी प्रकारों, मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्राघात में।

६८. विडङ्गादि लौह (र.सा.सं.)

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च।
जीरकाभ्यां युतो हन्ति प्रमेहानतिदारुणान्।
लौहो मूत्रविकारांश्च सर्वानेव विनाशयेत् ॥१८५॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण, ५. नागरमोथाचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. सोंठचूर्ण, ८. जीराचूर्ण, ९. स्याहजीराचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें तथा १०. लौहभस्म ९ भाग अर्थात् सभी के बराबर लें। सभी द्रव्यों को खरल में एक साथ मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'विडङ्गादि लौह' कहते हैं। इस विडङ्गादि लौह को २ से ४ रत्ती (२५० से ५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में विविध अनुपान से सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेह रोग और सभी प्रकार के मूत्रविकार का नाश होता है।

मात्रा—२५० से ५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—विविध अनुपान से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—किञ्चित् खदिराभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—प्रमेह एवं मूत्रविकार में।

६९. शाल्मली घृत

शाल्मलीद्रवसंयुक्तं सर्पिश्छागीपयोऽन्वितम्।
अश्वगन्धां वरीं रास्नां मुशलीं विश्वभेषजम् ॥१८६॥
अनन्तां मधुकं द्राक्षां दत्त्वा च पलमानतः।
पचेन्मन्दाग्निना वैद्यः पात्रे मृत्परिनिर्मिते ॥१८७॥
प्रमेहान् निखिलान् हन्ति शुक्रमेहं विशेषतः।
क्लैब्यं धातुक्षयं दोषं कासञ्चैतद्वरं घृतम् ॥१८८॥

क्वाथ—सेमल छाल ४ किलो, गोघृत १ किलो तथा बकरी का दूध ४ लीटर लें।

कल्क—१. अश्वगन्धा, २. शतावरी, ३. रास्ना, ४. मुसली, ५. सोंठ, ६. अनन्तमूल, ७. मुलेठी और ८. मुनक्का—प्रत्येक ४६-४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः सेमल को यवकुट कर ४ गुना जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। ततः अश्वगन्धा से मुनक्का तक के सभी द्रव्यों को चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब क्वाथ और कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलाकर चूल्हे पर पकावें। जब क्वाथ सूखने लगे तब उसमें ४ लीटर बकरी का दूध देकर पुनः पाक करें। कल्क एवं दूध को सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पकावें। पाक की पूर्णता होने पर परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में घृत को संग्रहीत करें। इस घृत को १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध में या गरम जल में मिलाकर पिलाने से सभी प्रकार के प्रमेह विशेषकर शुक्रमेह, नपुंसकता, धातुक्षय और कासरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम पानी से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह, नपुंसकता, शुक्रमेह एवं धातुक्षय में।

७०. धान्वन्तर घृत (च.द.)

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी।
वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥१८९॥
सुधानिम्बकदम्बाश्च बिल्वभल्लातकानि च।
शटीपुष्करमूलञ्च पिप्पलीमूलमेव च ॥१९०॥
पृथग् दशपलान् भागाँस्ततस्तोयार्मणे पचेत्।
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थञ्च दापयेत् ॥१९१॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्।

निचुलं त्रिफला भार्गी रोहिषं गजपिप्पली ॥१९२॥
शृङ्गबेरं विडङ्गानि वचा कम्पिल्लकं तथा।
गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्तु यथाबलम् ॥१९३॥
एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम्।
कुष्ठं गुल्मं प्रमेहांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥१९४॥
प्लीहोदरं तथाऽर्शांसि विद्रधिं पिडकाश्च याः।
अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरितन्नियच्छति ॥१९५॥
पृथक् तोयार्मणे तत्र पचेद् द्रव्याच्छतं शतम्।
शतत्रयाधिके तोयमुत्सर्गक्रमतो भवेत् ॥१९६॥

क्वाथ—१. बिल्वमूलत्वक्, २. अग्निमन्थत्वक्, ३. सोनापाठात्वक्, ४. पाटलात्वक्, ५. गम्भारत्वक्, ६. शालपर्णी, ७. पृश्निपर्णी, ८. बृहती, ९. कण्टकारी, १०. गोक्षुर, ११. करञ्जत्वक्, १२. कण्टककंरजबीज, १३. देवदारु, १४. हरीतकीफलत्वक्, १५. श्वेतपुनर्नवा, १६. वरुणत्वक्, १७. दन्तीमूल, १८. चित्रकमूल, १९. लाल पुनर्नवा, २०. थूहर का मूल, २१. निम्बत्वक्, २२. कदम्बत्वक्, २३. बिल्बफल, २४. शुद्ध भल्लातक, २५. कचूर, २६. पुष्करमूल तथा २७. पिपरामूल—प्रत्येक द्रव्य १०-१० पल अर्थात् ४७० ग्राम प्रत्येक लें। जल ४८ लीटर (किन्तु ८ गुना अवश्य चाहिए), २८. यव ७५० ग्राम, २९. बेर छाल ७५० ग्राम, ३०. कुलथी ७५० ग्राम और ३१. घृत ७५० ग्राम लें।

कल्क—१. निचुल (हिज्जल), २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा, ५. भार्गी (भारंगी), ६. रोहिषघास, ७. गजपीपर, ८. आर्द्रक, ९. वायविडङ्ग, १०. वच और ११. कम्पिल्लक —प्रत्येक द्रव्य १७-१७ ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः क्वाथ के सभी २७ द्रव्यों का यवकुट कर चार गुना जल में क्वाथ करें। अष्टमांश शेष रहने पर छान लें और मूर्च्छित घृत में मिलाकर घृत को पकावें। तदनन्तर कल्क द्रव्यों के सभी ११ द्रव्यों को कूट-पीसकर चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को घृत में मिलाकर पाक करें। ततः जौ, कुलत्थ और बेर की छाल को यवकुट कर ४ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और पकते घृत में डालकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार घृत को कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में घृत को संग्रहीत करें। इसे 'धान्वन्तर घृत' कहते हैं। इसे ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम पानी में मिलाकर पिलाना चाहिए। इसके सेवन से कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह, शोथ, वातरक्त, प्लीहरोग, उदररोग, अर्श, विद्रधि, पिडका, अपस्मार और उन्माद रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि द्रव्य १०० पल है तो जल १ द्रोण अर्थात् १२ लीटर के साथ क्वाथ करें। जहाँ द्रव्य ३०० पल से अधिक हो तो वहाँ द्रव्य से ८ गुना जल देकर चौथाई शेष रहे ऐसा क्वाथ बनाना चाहिए।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम पानी से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह, पिडका, कुष्ठ एवं विद्रधि में।

७१. दाडिमाद्य घृत-१ (वङ्गसेन)

दाडिमस्य तु बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः।
रजनी चविकाऽजाजी त्रिफला नागरं कणा ॥१९७॥
त्रिकण्टकस्य बीजानि यमानी धान्यकं तथा।
वृक्षाम्लं चपला कोलं सिन्धूद्भवसमायुतम् ॥१९८॥
कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
पाने भोज्ये च दातव्यं सर्वर्तषु च मात्रया ॥१९९॥
प्रमेहान् विंशतिविधान् मूत्राघातांस्तथाऽश्मरीम्।
कृच्छ्रं सुदारुणं चैव हन्यादेतन्न संशयः ॥२००॥
विबन्धानाहशूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम्।
दाडिमाद्यं घृतं नाम्ना अश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥२०१॥

कल्क—१. अनारदाना, २. वायविडङ्ग, ३. हल्दी, ४. चव्य, ५. जीरा, ६. आमला, ७. हरीतकी, ८. बहेड़ा, ९. सोंठ, १०. पीपर, ११. गोखरु, १२. अजवायन, १३. धनियाँ, १४. वृक्षाम्ल, १५. पीपर, १६. बेर की छाल तथा १७. सैन्धवलवण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें और १८. गोघृत ७५० ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त सभी १७ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बनावें और मूर्च्छित घृत में कल्क मिला दें तथा कल्कपाकार्थ ३ लीटर जल मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा करें और घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में घृत को संग्रहीत करें। इस 'दाडिमाद्य घृत' को पीने और खाने के साथ उपयोग करें। इसे ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध, गरम जल या भोजन के साथ सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से २० प्रकार के प्रमेह, मूत्राघात, मूत्राश्मरी तथा भयंकर मूत्रकृच्छ्र रोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त विबन्ध, आनाह, शूल, कामला और ज्वर भी नष्ट हो जाते हैं। इस दाडिमाद्य घृत को पहले देवभिषग् अश्विनीकुमारों ने बनाया था।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात एवं मूत्राश्मरी में।

७२. दाडिमाद्यघृत-२

चतुःषष्टिपलं पक्वदाडिमस्य सुकुट्टितम्।
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा चतुर्भागावशेषितम् ॥२०२॥

क्वाथेन वस्त्रपूतेन घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दाडिमं चविकाऽजाजी कृमिघ्नं रजनीद्वयम् ॥२०३॥
द्राक्षाखर्जूरयुञ्ज्ञातमुत्पलं गजपिप्पली।
अजमोदा महाद्रेका काकोली नागरं वचा ॥२०४॥
देवाह्वा चविका कुष्ठं काश्मरी मधुयष्टिका।
श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा शुभा श्रृङ्गीधनीयकम् ॥२०५॥
कुलत्थञ्च महामेदा निम्बश्च बृहतीद्वयम् ॥
दण्डोत्पलं वरावासा सप्तला सिन्धुवारकम् ॥२०६॥
कल्कश्चैषां युक्तियोगाद् ग्राह्यो हि परिभाषया।
प्रमेहं वातिकं हन्ति पैत्तिकं श्लैष्मिकं तथा ॥२०७॥
हृच्छूलं बस्तिजं शूलं मूत्राघातांस्त्रयोदश।
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च यक्ष्माणं सर्वरूपिणम् ॥२०८॥
स्वरक्षयमुरोरोगं रक्तपित्तमरोचकम्।
ये च प्रमेहजा रोगास्तान् सर्वान्नाशयत्यपि ॥२०९॥
दाडिमाद्यमिदं सर्वप्रमेहाणां निसूदनम्।
अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतत्प्रमेहकरिकेशरी ॥२१०॥

क्वाथ—अनारदाना ३ किलो तथा गोघृत ७५० ग्राम लें।

कल्क—१. अनारदाना, २. चव्य, ३. जीरा, ४. वायविडङ्ग, ५. हल्दी, ६. दारुहल्दी, ७. मुनक्का, ८. छोहाड़ा, ९. मुञ्जमूल, १०. नीलकमल, ११. गजपीपर, १२. अजमोदा, १३. फरहदत्वक्, १४. काकोली, १५. सोंठ, १६. वच, १७. देवदारु, १८. चव्य, १९. कूठ, २०. गम्भारीत्वक्, २१. मुलेठी, २२. अनन्तमूल, २३. इन्द्रवारुणी, २४. मूर्वा, २५. वंशलोचन, २६. काकडाशृंगी, २७. धनियाँ, २८. कुलथी, २९. महामेदा, ३०. निम्बत्वक्, ३१. बृहती, ३२. कण्टकारी, ३३. सहदेवी, ३४. आमला, ३५. हरड़, ३६. बहेड़ा, ३७. वासा, ३८. सातला (सेहुण्ड) और ३९. सिन्दुवारपत्र—प्रत्येक द्रव्य ५-५ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः अनारदाना को यवकुट करें और चौगुने जल में क्वाथ करें। चौथाई (३ लीटर) शेष रहने पर छान लें और मूर्च्छित घृत में क्वाथ डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बनावें और पकते घृत में डालकर पाक करें। जब क्वाथ सूख जाय तो ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से घृत को छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत्त करें। इस 'दाडिमाद्य घृत' को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरमदूध या गरमपानी में मिलाकर प्रयोग करें। इसको पिलाने से सभी प्रकार के प्रमेह, वातज, पित्तज और कफज प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त हृच्छूल, बस्तिशूल, १३ प्रकार के मूत्राघात, हिक्का, श्वास, कास, सभी प्रकार के यक्ष्मा, स्वरभेद, उरोरोग, रक्तपित्त, अरुचि और प्रमेह से उत्पन्न होने वाले सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। यह 'दाडिमाद्य घृत' प्रमेह रूपी हाथी का नाश करने वाले सिंह जैसा है। इसे देवभिषग् अश्विनीकुमारों ने बनाया था।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम पानी से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह, हृच्छूल, बस्तिशूल एवं मूत्राघात में।

७३. दाडिमाद्य घृत महत्-३ (च.द.)

दाडिमस्य फलप्रस्थं प्रस्थञ्च यवतण्डुलम्।
कुलत्थं प्रस्थमादाय घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥२११॥
शतावरीरसप्रस्थं गव्यदुग्धञ्च तत्समम्।
कल्कः सार्द्धपिचुर्द्राक्षा खर्जूरं त्रिफला तथा ॥२१२॥
रेणुका चाष्टवर्गश्च देवदारु निशाद्वयम्।
बिम्बीकुष्ठकमेला च विदार्यतिबला तथा ॥२१३॥
शिला त्वचमुशीरञ्च शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णकम्।
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्त्रयोदश ॥२१४॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च रक्तपित्तं सुदारुणम्।
वातजं पित्तजञ्चैव श्लेष्मजं सन्निपातजम् ॥२१५॥
बृंहणञ्च विशेषेण सर्वमेहहरं परम्।
अश्विभ्यां निर्मितं सिद्धं दाडिमाद्यमिदं महत् ॥२१६॥

क्वाथ—१. अनारदाना ७५० ग्राम, २. निस्तुष जौ ७५० ग्राम, ३. कुलथी ७५० ग्राम, ४. शतावरीक्वाथ ७५० मि. ली., ५. गोदुग्ध ७५० मि.ली. तथा ६. गोघृत ७५० ग्राम लें।

कल्क—१. द्राक्षा (मुनक्का), २. छोहाड़ा, ३. आमला, ४. हरीतकी, ५. बहेड़ा, ६. रेणुका, ७. मेदा, ८. महामेदा, ९. काकोली, १०. क्षीरकाकोली, ११. जीवक, १२. ऋषभक, १३. ऋद्धि, १४. वृद्धि, १५. देवदारु, १६. हल्दी, १७. दारुहल्दी, १८. त्रिकोलफल, १९. कूठ, २०. छोटी इलायची, ३१. विदारीकन्द, २२. अतिबला, २३. शिलाजतु, २४. दालचीनी, २५. खस और २६. अभ्रकभस्म—प्रत्येक द्रव्य १७-१७ ग्राम (सार्द्धपिचु) लेना चाहिए। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः अनारदाना, जौ, कुलथी, शतावरी इन चारों द्रव्यों को पृथक्-पृथक् यवकुट करें और पृथक्-पृथक् द्रव्य का ४ गुना जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर कपड़े से छान लें। ततः मूर्च्छित घृत में क्रमशः क्वाथ देकर घृत को पकावें। इसके बाद कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बनावें और घृत में देकर पाक करें। जब सभी क्वाथ घृत में पका लिये जायें तब उसमें गोदुग्ध देकर पाक करें। ततः घृत के ४ गुना (३ ली.) जल देकर पाक करें। जल के सूख जाने के बाद घृत की सम्यक् परीक्षा करें और परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से घृत को छान लें। जब घृत शीतल हो जाय

तो काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'महादाडिमाद्य घृत' कहते हैं। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल में मिलाकर सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेह, १३ प्रकार के मूत्राघात, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और भयंकर रक्तपित्त रोग नष्ट हो जाते हैं। यह वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातज प्रमेहों का नाश करता है। यह बृंहण कार्य करता है। इसे अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम पानी से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रमेहों एवं मूत्रविकारों में।

७४. प्रमेहमिहिर तैल-१

पञ्चमूल्यमृताधात्रीदाडिमानां तुलां पचेत्।
जलद्रोणे स्थिते पादे तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥२१७॥
क्षीरं तैलसमं कल्कान् निम्बभूनिम्बगोक्षुरम्।
दाडिमं रेणुकं बिल्वं दारुदार्वीबलाहकम्॥२१८॥
त्रिफला तगरं द्राक्षाजम्ब्वाम्रवल्कलाभयम्।
नाम्नेदं मेहमिहिरं सर्वमूत्रामयाञ्जयेत्॥२१९॥
हस्तपादशिरोदाहं दौर्बल्यं कृशतां तथा।
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्राः स्त्रीक्षीणाश्चापि ये नराः।
तेषां बल्यं च वृष्यं च वयःस्थापनमेव च॥२२०॥

क्वाथ—१. शालपर्णी, २. पृश्निपर्णी, ३. कण्टकारी, ४. बृहती, ५. गोखरु; ६. गुडूची, ७. आमला और ८. अनारदाना—प्रत्येक द्रव्य ५८५ ग्राम लें; क्वाथार्थ जल १२ लीटर लें और क्वाथ के बाद चौथाई शेष रखें; ९. तिलतैल ७५० मि.ली. तथा १०. गोदुग्ध ७५० मि.ग्रा. लें।

कल्क—१. निम्बत्वक्, २. चिरायता, ३. गोखरु, ४. अनारदाना, ५. रेणुकाबीज, ६. बिल्बफल, ७. देवदारु, ८. दारुहल्दी, ९. नागरमोथा, १०. आमला, ११. हरीतकी, १२. बहेड़ा, १३. सुगन्धबाला, १४. मुनक्का, १५. जामुनछाल, १६. आम्रछाल और १७. खस—प्रत्येक द्रव्य ११-११ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त क्वाथ के आठों द्रव्यों को एक साथ यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर मूर्च्छित तैल में मिलाकर पकावें। इसी बीच कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें और पकते तैल में मिलावें। जब क्वाथ सूख जाय तो गोदुग्ध मिलाकर पाक करें। जब दूध सूखने लगे तो उस तैल में ३ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। तैलपाक के परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'प्रमेहमिहिर तैल' कहते हैं। यह सभी प्रकार के मूत्रविकारों का नाश करता है। हाथ-पैर एवं शिरोदाह में, दुर्बलता, कृशता, क्षीणेन्द्रिय, क्षीणशुक्र तथा स्त्री-प्रसङ्ग से दुर्बल हुए व्यक्तियों को बल-वीर्यवर्धक तथा वयः-स्थापक का कार्य करता है।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण** -रक्ताभ। **उपयोग**—मूत्रविकार में, दाहादि नाशक।

७८ प्रमेहमिहिर तैल-२

शतपुष्पा देवकाष्ठं मुस्तकञ्च निशाद्वयम्।
मूर्वा कुष्ठं वाजिगन्धा चन्दनद्वयरेणुकम्॥२२१॥
कटुकी मधुकं रास्ना त्वगेला ब्रह्मयष्टिका।
चविका धान्यकं वत्सं पूतिकागुरुपत्रकम्॥२२२॥
त्रिफला नलिका वाला बला चातिबला तथा।
मञ्जिष्ठा सरलं पद्मं लोध्रं मधुरिका वचा॥२२३॥
अजाजी चोशीरं जाती वासा तगरपादुका।
एतेषां कार्षिकैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥२२४॥
शतावर्या रसं तुल्यं लाक्षायाश्च चतुर्गुणम्।
मस्तु लाक्षारसैस्तुल्यं क्षीरं तुल्यं प्रदापयेत्॥२२५॥
द्रवैरेतैः पचेत्तैलं गन्धं दत्त्वा यथा क्रमम्।
एतत्तैलवरं श्रेष्ठमभ्यङ्गान्मारुतापहम्॥२२६॥
विषमाख्याञ् ज्वरान्सर्वान् मेदोमज्जगतानपि।
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्॥२२७॥
क्षीणेन्द्रिये तथा शस्तं ध्वजभङ्गे विशेषतः।
दद्यात्तैलं विशेषेण फलमस्य च कथ्यते॥२२८॥
दाहं पित्तं पिपासाञ्च छर्दिञ्च मुखशोषणम्।
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव नाशयेदविकल्पतः।
प्रमेहमिहिरं नाम्ना रतिनाथेन भाषितम्॥२२९॥

१. सौंफ, २. देवदारु, ३. नागरमोथा, ४. हल्दी, ५. दारुहल्दी, ६. मूर्वा, ७. कूठ, ८. अश्वगन्ध, ९. श्वेतचन्दन, १०. रक्तचन्दन, ११. रेणुका, १२. कुटकी, १३. मुलेठी, १४. रास्ना, १५. दालचीनी, १६. छोटी इलायची, १७. भारंगी, १८. चव्य, १९. धनियाँ, २०. कुटजत्वक्, २१. पूतिकरञ्ज, २२. अगरु, २३. तेजपात, २४. आमला, २५. हरीतकी, २६. बहेड़ा, २७. नालिका, २८. सुगन्धबाला, २९. बलामूल, ३०. अतिबलामूल, ३१. मंजीठ, ३२. सरलकाष्ठ, ३३. पद्मकाठ, ३४. लोध्र, ३५. सौंफ, ३६. वच, ३७. श्वेतजीरा, ३८. खस, ३९. चमेलीपत्र, ४०. वासापत्र और ४१. तगरमूल—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें; ४२. तिल-तैल ७५० मि.ली. (१ प्रस्थ), ४३. शतावरीक्वाथ ७५० मि.ली., ४४. लाक्षारस ३ लीटर, ४५. मस्तु ३ लीटर तथा ४६. गोदुग्ध ३ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः कल्क के ४१ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित तैल में कल्क और शतावरीक्वाथ को मिलाकर मन्दाग्नि

पर पाक[१] करें। ततः क्रमशः गोदुग्ध, लाक्षारस और मस्तु देकर शनैः-शनैः पाक करें। अन्त में ३ लीटर जल देकर तैल का सम्यक् पाक करें। जल सूखने पर स्नेहपाक के परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर गन्ध[२] द्रव्यों का प्रक्षेप देकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में स्नेह संग्रहीत करें। इसे 'प्रमेहमिहिर तैल' कहते हैं। इसके अभ्यङ्ग से वात का नाश हो जाता है। इसके प्रयोग से सभी विषमज्वर, मेद एवं मज्जागत ज्वर, वातज ज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर एवं सान्निपातिक ज्वर नष्ट हो जाते हैं। यह तैल क्षीणेन्द्रिय तथा ध्वजभङ्ग में विशेष रूप से उपयोगी है। यह तैल दाह, पित्त, पिपासा, वमन, मुखशोष और २० प्रकार के प्रमेहों का निःसन्देह नाश करता है। इस प्रमेहमिहिर तैल को आचार्य श्रीरतिनाथ ने बनाया है।

मात्रा—अभ्यंग (बाह्यप्रयोग)। **गन्ध**—कस्तूरी जैसी सुगन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—प्रमेहों एवं ज्वरों में।

७६. देवदार्व्वरिष्ट (शार्ङ्ग.सं.)

तुलार्द्धं देवदारोः स्याद्वासायाः पलविंशतिः।
मञ्जिष्ठेन्द्रयवा दन्ती तगरं रजनीद्वयम् ॥२३०॥
रास्ना कृमिघ्नं मुस्तञ्च शिरीषं खदिरार्जुनौ।
भागान् दशपलान्दद्याद्यावन्या वत्सकस्य च ॥२३१॥
चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च।
भागानष्टपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥२३२॥
द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते प्रदापयेत्।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥२३३॥
व्योषस्य द्विपलं दद्यात् त्रिजातकचतुष्पलम्।
चतुष्पलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥२३४॥
सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत्।
मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ॥२३५॥
वातरोगग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत्।
देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥२३६॥

क्वाथ—१. देवदारु २३३५ ग्राम, २. वासा पञ्चाङ्ग ९५० ग्राम, ३. मञ्जिष्ठा ४७० ग्राम, ४. इन्द्रजौ ४७० ग्राम, ५. दन्तीमूल ४७० ग्राम, ६. तगरमूल ४७० ग्राम, ७. हल्दी ४७० ग्राम, ८. दारुहल्दी ४७० ग्राम, ९. रास्ना ४७० ग्राम, १०. वायविडङ्ग ४७० ग्राम, ११. नागरमोथा ४७० ग्राम, १२. शिरीषत्वक् ४७० ग्राम, १३. खैर की लकडी ४७० ग्राम, १४. अर्जुनछाल ४७० ग्राम, १५. अजवायन ३७५ ग्राम, १६. कुटजछाल ३७५ ग्राम, १७. रक्तचन्दन ३७५ ग्राम, १८. गुडूची ३७५ ग्राम, १९. कुटकी ३७५ ग्राम और २०. चित्रकमूल ३७५ ग्राम लें। इन्हें यवकुट कर ८ द्रोण (९६ लीटर) जल में क्वाथ करें। १२ लीटर क्वाथ शेष बचने पर उतारकर कपड़ा से छान लें।

प्रक्षेप—१. धातकीपुष्प ७५० ग्राम, २. मधु १४.१०० कि.ग्रा., ३. सोंठ ३१ ग्राम, ४. पीपर ३१ ग्राम, ५. मरिच ३१ ग्राम, ६. तेजपात ६२ ग्राम, ७. दालचीनी ६२ ग्राम, ८. छोटी इलाचयी ६२ ग्राम, ९. प्रियङ्गूफूल १८७ ग्राम तथा १०. नागकेशर ९३ ग्राम लें। सर्वप्रथम २० द्रव्यों को पृथक्-पृथक् यवकुट कर ८ द्रोण (९६ लीटर) जल में क्वाथ करें और अष्टमांश रहने पर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर मिट्टी के एक नया एवं बड़ा घड़े में इस क्वाथ को रखें। प्रत्येक घड़े में १४.१०० कि.ग्रा. मधु मिलावें और धूप में सुखाया हुआ धातकीपुष्प बिना कूटे घड़ा में मिलावें। तदनन्तर सोंठ से प्रियङ्गूफूल तक के सभी द्रव्यों को एक साथ यवकुट करें और घड़े में मिलावें। इस घड़े की तली में पुआल या बोरे को गद्दे जैसा बनाकर रखें, जिससे घड़े के फूटने का दुर्योग न हो। घड़े को निर्वात स्थान पर रखें। १५ दिनों पर इसकी परीक्षा करें। इस घड़े में मद्य जैसी गन्ध, वर्ण और रसोत्पत्ति (अल्कोहल जैसी) होगी तो तैयार हो गया—ऐसा समझना चाहिए। दूर से मद्य की तीव्र मद्य गन्ध होगी। दियासलाई जलाकर घड़े के अन्दर ले जायँ यदि जलती रहे तो (आक्सीजन की उत्पत्ति हुई) तैयार समझें और बुझ जाय (कार्बनडाईआक्साइड अभी है) तैयार नहीं समझें। तैयार होने पर 'अरिष्ट' को छान लें और उन घड़ों को साफकर कपड़े से पोंछ सुखा लें तथा इसी घड़े में छना हुआ अरिष्ट पुनः रखकर गाद जमने के लिए छोड़ दें और मुख बन्द करें। १ महीने के बाद निथरे हुए अरिष्ट को ढालकर अन्य पात्र में करें और गाद छोड़ दें। अब इस तरह छने हुए अरिष्ट को साफ एवं स्वच्छ बोतलों भरें और कार्क लगा दें। बोतल में २ इञ्च का स्थान खाली रखें। भीगे कपड़े से बोतल को पोंछकर उसमें लेबल लगाकर सुरक्षित रख लें। लेबल में अरिष्ट का नाम, ग्रन्थ, अधिकार, तिथि तथा मुख्य घटक (यदि सम्भव हो तो) लिखें। ६ महीने के बाद इसका प्रयोग करें। इसे 'देवदार्व्वरिष्ट' कहते हैं। दोनों समय भोजन के बाद समान मात्रा में पानी मिलाकर पिलाने से भयंकर प्रमेह, वातरोग, ग्रहणी, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, दद्रु एवं कुष्ठ को नाश करता है।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली. तक। **अनुपान**—बराबर जल मिलाकर। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ (कत्थई वर्ण)।

---

१. क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रं तक्रारनालादिषु पञ्चरात्रम्।
स्नेहं पचेद्वैद्यवरः प्रयत्नादित्याहुरेके भिषजः प्रवीणाः॥ (शार्ङ्गधर)

२. गन्धद्रव्याणि यथा—
एलाचन्दनकुङ्कुमागुरुमुराकङ्कोलमांसीशटी
श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षोणीव्रजोशीरकम्।
कस्तूरीनखपूतिशैलजशुभामेथीलवङ्गादिकं
गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु॥ (भै.रत्ना.)

स्वाद—मधुर तीक्ष्ण। **उपयोग**—प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, अर्श एवं ग्रहणी में।

प्रमेह रोग में पथ्य

प्राग्लङ्घनानि वमनानि विरेचनानि
प्रोद्वर्त्तनानि शमनानि च दीपकानि।
नीवारकङ्गुयववैणवकोरदूष-
श्यामाकजीर्णकुरुबिन्दमुकुन्दकाश्च ॥२३७॥
गोधूमशालिकलमाश्चिरजाः कुलत्थ-
मुद्गाढकीचणकयूषरसास्तिलाश्च ।
लाजाः पुरातनसुरा मधुवाट्यमण्ड-
स्तक्रं च रासभजलं महिषीजलं च ॥२३८॥
लट्वाकपोतशशतित्तिरिलाबर्हि-
भृङ्गैणवर्त्तकशुकादिकजाङ्गलाश्च ।
शोभाञ्जनानि कुलकानि कठिल्लकानि
कर्कोटकानि तलकानि च बार्हतानि ॥२३९॥
औदुम्बराणि लशुनानि नवीनमोचं
पत्तूरगोक्षुरकमूषिकपर्णिशाकम् ।
मन्दारपत्रममृतात्रिफलाकपित्थं
जम्बूः कशेरुकमलोत्पलकन्दबीजम् ॥२४०॥
खर्जूरलाङ्गलिकतालतरूत्तमाङ्गं
व्योषं च तिन्दुकफलं खदिरः कलिङ्गः।
तिक्तानि चापि सकलानि कषायकाणि
हस्त्यश्ववाहनमतिभ्रमणं रवित्विट् ॥
व्यायाम इत्यपि गणो भवति प्रकामं
मित्रं प्रमेहगदपीडितमानवानाम् ॥२४१॥

प्रमेह रोग की चिकित्सा में सर्वप्रथम लंघन, वमन, विरेचन, उबटन लगाना, प्रमेह को शान्त करने वाले और अग्निदीपक द्रव्यों का उपयोग करना चाहिए। नीवार, कांगुनी, जौ, बाँस के जौ, कोदो, सामा, कुरुक्षेत्रज कुधान्य पुराना, मुकुन्दक नाम का धान्य विशेष, गेहूँ, शालिचावल, कलमीचावल, पुराना कुलथी, मूँग, अरहर, चना इनका यूष, तिल, धान का लावा, पुराना मद्य, मधु, वाट्यमण्ड (भूने हुए जौ का मण्ड), तक्र, गदहे का मूत्र, भैंस का मूत्र, लट्वाकपोत, खरहा, तित्तिर, लाव (वगेरी), मोर, भृङ्गपक्षी, हरिण, बत्तक, तोता आदि जंगली पशु-पक्षिओं के मांसरस, सहिजनफली, परवल, करैला, खेखसा (वन्ध्याककोंटी) तालवृक्षफल, बृहतीफल, गूलरफल, लसुन, नया कच्चा केला, पत्तूरशाक, गोक्षुर, मूषाकर्णीपत्रशाक, अर्कपत्र, गुडूची पत्र शाक, त्रिफला, कपित्थफल, जामुनफल, कशेरुकन्द, कमलकन्द, कमलबीज, छोहाड़ा, कलिहारीपत्र, तालवृक्ष के ऊपरी भाग के अन्दर का गूदा (मगज), त्रिकटु, तिन्दुकफल, खदिर, तरबूज, सभी प्रकार के तिक्तरस युक्त द्रव्य तथा सभी प्रकार के कषाय युक्त द्रव्य, हाथी और घोड़े की सवारी, तीव्र धूप में घूमना, सभी प्रकार के व्यायाम—उपर्युक्त सभी प्रकार के खाद्य-पेय-व्यायामादि प्रमेह पीड़ित व्यक्तियों के लिए हितकर हैं।

अन्यच्च

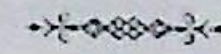
रूक्षमुद्वर्तनं गाढं व्यायामो निशिजागरः।
यच्चान्यच्छ्लेष्मपित्तघ्नं बहिरन्तश्च तद्धितम् ॥२४२॥

रूक्ष द्रव्यों (निम्ब, हरिद्रा, जौ का आटा) का शरीर में गाढ़ा उद्वर्तन, व्यायाम, रात्रि जागरण तथा अन्य जो कफ-पित्तघ्न कार्य हो वह प्रमेहियों के बाहरी एवं आभ्यन्तर शरीर के लिए हितकर हैं।

प्रमेह में अपथ्य

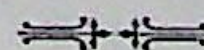
मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोक्षणम्।
सदासनं दिवानिद्रा नवान्नानि दधीनि च ॥२४३॥
आनूपमांसं निष्पावं पिष्टान्नानि च मैथुनम्।
तुम्बीं तालास्थिमज्जानं विरुद्धान्यशनानि च ॥२४४॥
कूष्माण्डमिक्षुं दुष्टाम्बु स्वाद्वम्ललवणानि च।
अभिष्यन्दीनि यत्नेन प्रमेही परिवर्जयेत् ॥२४५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहाधिकारः।



मूत्रवेग को रोकना, धूमपान, स्वेदन, रक्तमोक्षण, अधिकतर गद्दी-तकिया पर बैठना, दिन में सोना, नये अन्नों का सेवन, दधि का अधिक सेवन करना, आनूपदेशीय (जलीय प्राणियों) के मांस का सेवन, निष्पाव (राजमाष), उड़द के बने पदार्थ, मैथुन, तालपत्र की गुठली के गूदे को खाना, परस्पर विरुद्ध पदार्थ का सेवन, कूष्माण्ड फल, इक्षुरस, दूषित जल, मधुर, अम्ल एवं लवणरस युक्त तथा अभिष्यन्दी पदार्थों का सेवन प्रमेहियों के लिए हानिकारक है।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य प्रमेहरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ प्रमेहपिडकाधिकारः (३८)

प्रमेहपिडका चिकित्सासूत्र (भा.प्र.)

प्रमेहपिडकानां प्राक् कार्यं रक्तावसेचनम्।
पाटनं चातिपक्वानां तासां पाने प्रशस्यते ॥१॥
क्वाथो वनस्पतेर्बस्तिं मूत्रं तीक्ष्णं च शोधनम्।
एलादिकेन कल्केन तैलं च व्रणरोपणम् ॥२॥
आरग्वधादिना क्वाथं कुर्यादुद्वर्तनानि च।
शालसारादिना सेकान् भोज्यादींश्चणकादिना ॥३॥

प्रमेह-पिडका में सर्वप्रथम रक्तमोक्षण कराना चाहिए। यदि पिडकाएँ अधिक पक गई हों तो उन्हें शस्त्र द्वारा चीर देना चाहिए और साफ-सफाई करके वनस्पतियों के क्वाथ या कषाय से प्रक्षालन करें और उस क्वाथ को पिलावें। बकरी के मूत्र एवं तीक्ष्ण औषधों द्वारा व्रण का शोधन करना चाहिए। एलादि गण साधित तैल द्वारा व्रण-रोपण करना चाहिए। रोगी को आरग्वधादि क्वाथ का पान एवं उसी वर्ग के द्रव्यों का उद्वर्तन करना चाहिए। शालसारादि गण की औषधियों द्वारा शीतल सेचन करें। उस मनुष्य को चना प्रधान यथा—चने की रोटी, चने की दाल, सत्तू आदि का भोजन कराना चाहिए।

१. मुद्गपर्ण्यादि क्वाथ

मुद्गपर्णी माषपर्णी त्रिवृदारग्वधः शटी।
वृद्धदारकबीजं च नीलिन्येला हरीतकी ॥४॥
श्यामाऽनन्ता देवपुष्पमित्येषां साधु साधितः।
क्वाथो हन्यात्प्रमेहोत्थाः पिडकाः क्षिप्रमेव हि ॥५॥

१. मुद्गपर्णी, २. माषपर्णी, ३. त्रिवृत्, ४. आरग्वध-फलमज्जा, ५. कचूर, ६. विधाराबीज, ७. नील की मूल, ८. छोटी इलायची, ९. हरड़, १०. काला अनन्तमूल, ११. श्वेत अनन्तमूल और १२. लवङ्ग—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट कर काँचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें तथा अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। इसे ५०-५० मि.ली. प्रातः-सायं पिलाने से प्रमेहपिडका शीघ्र नष्ट हो जाती है।

२. अनन्तादि क्वाथ

अनन्तां शारिवां द्राक्षां त्रिवृतां स्वर्णपत्रिकाम्।
कट्वीं हरीतकीं वासां पिचुमर्दं निशायुगम् ॥६॥
बीजं गोक्षुरजं चापि क्वाथयित्वा जलं पिबेत्।
नाशं यान्ति प्रमेहोत्था अनेन पिडका ध्रुवम् ॥७॥

१. अनन्तमूल श्वेत, २. अनन्तमूल कृष्ण, ३. मुनक्का, ४. निशोथमूल, ५. सनायपत्र, ६. कुटकी, ७. हरड़, ८. वासापत्र, ९. निम्बछाल, १०. हल्दी, ११. दारुहल्दी और १२. गोखरुबीज—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट करें और काँचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम क्वाथ द्रव्य लेकर ४०० मि.ली. जल के साथ क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छानकर प्रमेहपिडका से पीड़ित व्यक्ति को पिलाने से निश्चित ही पिडकाएँ नष्ट हो जाती हैं।

३. औदुम्बरादि लेप

क्षीरमौदुम्बरं यत्नाद्वाकुचीं च प्रयोजयेत्।
पिटिकासु समस्तासु लेपनं सम्प्रशान्तये ॥८॥

गूलर का दूध २० ग्राम तथा बाकुची बीज २० ग्राम लें। इन दोनों को सिल पर पीसकर पिडकाओं पर लेप करने से सभी तरह की प्रमेह पिडकाएँ नष्ट जाती हैं।

४. न्यग्रोधादिचूर्ण

न्यग्रोधकादिचूर्णं च प्रमेहोक्तं प्रयोजितम्।
प्रमेहपिडकास्वाशु सुखदं ननु निश्चितम् ॥९॥

न्यग्रोधादिगण[1] की औषधियाँ; यथा—१. वटत्वक्, २. उदुम्बरत्वक्, ३. अश्वत्थत्वक्, ४. प्लक्षत्वक्, ५. यष्टिमधु, ६. आम्रातक (आमडा), ७. अर्जुनत्वक्, ८. आम्रत्वक्, ९. कोशाम्र, १०. चोरकपत्र, ११. बड़ी जामुनत्वक्, १२. छोटी जामुनत्वक्, १३. चिरौंजीत्वक्, १४. महुआत्वक्, १५. कटुकी, १६. वेतस, १७. कदम्बत्वक्, १८. बदरीत्वक्, १९. तिन्दुकत्वक्, २०. सल्लकीत्वक्, २१. लोध्र, २२. सावरलोध्र, २३. भल्लातकवृक्षत्वक्, २४. पलाशत्वक् एवं २५. नन्दी-वृक्षत्वक् (पारसपीपरत्वक्)—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३-३ ग्राम प्रातः-सायं जल के साथ सेवन करने से सभी प्रकार की प्रमेहपिडकाएँ नष्ट हो जाती हैं। साथ ही स्वास्थ्य अनुकूल हो जाता है।

५. गन्धकयोग

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा पयः पिबेत्।
विंशतिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहाः पिडका अपि ॥१०॥

२ ग्राम शुद्ध गन्धक में १० ग्राम पुराना गुड़ मिलाकर

१. सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान ३८।४८।

खिलाने से २० प्रकार के प्रमेह और ७ प्रकार की पिडकाएँ भी नष्ट हो जाती हैं।

६. सारिवादि लौह

शारिवा नीलिनी रास्ना गुडूच्येला च चित्रकः।
माणशूरणशङ्खिन्यस्त्रिवृद्भल्लातकाभयाः ॥११॥
एभिर्युतमयो हन्ति प्रमेहपिडका दश।
वातरक्तं षडर्शांसि त्वग्गदान्निखिलानपि ॥१२॥

१. श्वेतअनन्तचूर्ण, २. नीलीवृक्षमूलचूर्ण, ३. रास्नाचूर्ण, ४. गुडूचीचूर्ण, ५. छोटीइलायचीचूर्ण, ६. चित्रकमूलचूर्ण, ७. मानकन्दचूर्ण, ८. सूरणकन्दचूर्ण, ९. शंखपुष्पीचूर्ण, १०. निशोथचूर्ण, ११. शुद्ध भिलावाचूर्ण, १२. हरीतकीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें और १३. लौहभस्म सभी के बराबर अर्थात् १२ भाग लें। इन सभी १२ द्रव्यों के चूर्णों को पुनः छननी से छान लें और सबके बराबर लौह भस्मों को मिलाकर ज़ल के साथ मर्दन करें तथा ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इसे आवश्यकतानुसार १ से २ वटी जल के साथ खिलाने से १० प्रकार की पिडकाएँ, वातरक्त, ६ प्रकार के अर्श और सभी प्रकार के त्वग् रोग नष्ट हो जाते हैं।

७. मकरध्वज

सिन्दूरं हेम लोहञ्च देवपुष्पं सचन्द्रकम्।
जातीफलं मृगमदं चैकत्र परिमर्दयेत् ॥१३॥
पर्णाम्भसा ततः कुर्याद्वटिकां वल्लसम्मिताम्।
सेवितश्छागपयसा प्रमेहांस्तत्कृतान् गदान् ॥१४॥
क्लैब्यं धातुक्षयं कासं जीर्णं च विषमज्वरम्।
रसोऽयं क्षपयेत्तूर्णं मकरध्वजसंज्ञकः ॥१५॥

१. रससिन्दूर, २. स्वर्णभस्म, ३. लौहभस्म, ४. लौंगचूर्ण, ५. कपूर, ६. जायफलचूर्ण तथा ७. कस्तूरी—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पहले रससिन्दूर को पीसें ततः सभी द्रव्यों को मिलाकर ताम्बूलस्वरस की भावना देकर ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में अच्छी तरह सुखा लें। आचार्य ने ३ रत्ती (वल्ल) की मात्रा बतायी हैं जो अधिक मालूम पड़ती है। अतः २ रत्ती की मात्रा इन दिनों उपयुक्त है। इसके बाद काचपात्र में संग्रहीत करें। बकरी के दूध के साथ इस वटी का सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह तथा तज्जन्य उपद्रवस्वरूप अन्य रोग भी नष्ट हो जाते हैं। नपुंसकता, शुक्रक्षयजन्य रोग, पुरानी खाँसी और विषम ज्वररोग नष्ट हो जाते हैं। इसे 'मकरध्वज वटी' कहते हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—बकरी के दूध से। **गन्ध**—कस्तूरी की। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रमेह, पिडका, नपुंसकता एवं शुक्र क्षय में।

८. श्यामादिकघृत (बृहत्)

श्यामां बला वरा पद्मं विदारी नीलमुत्पलम्।
अष्टवर्गश्च मधुकमश्वगन्धा शतावरी ॥१६॥
अजमोदा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा चन्दनद्वयम्।
द्राक्षा प्रसारणीमूलं सविश्वा कटुरोहिणी ॥१७॥
एषां कर्षमितैर्भागैर्घृतं प्रस्थं पचेद्भिषक्।
श्यामाशतावरीक्षूणां विदार्याः स्वरसं तथा ॥१८॥
छागीपयश्च तत्तुल्यं दत्त्वा मन्देन वह्निना।
सिद्धमेतद् घृतं पात्रे स्थापयेदथ मृन्मये ॥१९॥
प्रमेहांस्तत्कृतान्व्याधीन्क्लीबतां वातशोणितम्।
शुक्रक्षयं रक्तपित्तं हृद्रोगं धातुशोषणम् ॥२०॥
नाशयेन्नात्र सन्देहः श्यामाघृतमिदं बृहत्।
बालानां पुष्टिजननं गर्भदोषहरं मतम् ॥२१॥

कल्क—१. कृष्णअनन्तमूल, २. बलामूल, ३. आमला, ४. बहेड़ा, ५. हरीतकी, ६. कमलपुष्प, ७. विदारीकन्द्र, ८. नीलकमल, ९. जीवक, १०. ऋषभक, ११. मेदा, १२. महामेदा, १३. काकोली, १४. क्षीरकाकोली, १५. ऋद्धि, १६. वृद्धि, १७. मुलेठी, १८. अश्वगन्धा, १९. शतावरी, २०. अजमोदा, २१. हल्दी, २२. दारुहल्दी, २३. मंजीठ, २४. रक्तचन्दन, २५. श्वेतचन्दन, २६. मुनक्का, २७. गन्धप्रसारणी, २८. सोंठ और २९. कुटकी—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें तथा ३० गोघृत ७५० ग्राम लें।

क्वाथ—१. अनन्तमूलक्वाथ ७५० मि.ली., २. शतावरी क्वाथ ७५० मि.ली., ३. इक्षुरस ७५० मि.ली., ४. विदारी-कन्द क्वाथ ७५० मि.ली. तथा ५. बकरी दूध ७५० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः कल्क के सभी २९ द्रव्यों को कूट-पीसकर जल से सिल पर पुनः पीसकर कल्क बनावें। तदनन्तर अनन्तमूल को यवकुट कर ४ गुना जल देकर क्वाथ करें। चौथाई शेष बचने पर छानकर घृत में मिलावें और उसी में कल्क डालकर मन्दाग्नि पर पाक करें। अनन्तमूलक्वाथ सूखने पर क्रमशः शतावरी एवं विदारीकन्द का पूर्ववत् क्वाथ बनाकर घृत के साथ पाक करें। इक्षुरस के पाक होने पर उसमें बकरी का दूध मिलाकर पाक करें। सम्यक् पाकार्थ जल ७५० मि.ली. देकर पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो स्नेहपाक-विद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृत पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से घृत को छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'बृहत् श्यामादिघृत' को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल में मिलाकर पिलाने से सभी प्रकार के प्रमेह एवं प्रमेह के उपद्रव जन्य रोग, नपुंसकता, वातरक्त, शुक्रक्षय, रक्तपित्त, हृद्रोग एवं धातुशोष रोग नष्ट हो जाते हैं। यह

· ९१ भै.र.

घृत बालकों को शारीरिक पुष्टि प्रदान करता है और गर्भाशय के समस्त विकारों का नाश करता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रमेहों एवं उसके उपद्रवों में, नंपुसकता एवं धातुक्षय में।

९. सारिवाद्यासव

सारिवां मुस्तकं लोधं न्यग्रोधं पिप्पलं शटीम्।
अनन्तां पद्मकं बालं पाठां धात्रीं गुडूचिकाम् ॥२२॥
उशीरं चन्दनद्वन्द्वं यमानीं कटुरोहिणीम्।
पत्रमेलाद्वयं कुष्ठं स्वर्णपत्रीं हरीतकीम् ॥२३॥
एषां चतुष्पलान्भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्छुभान्।
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुडतुलात्रयम् ॥२४॥
पलानि दश धातक्या द्राक्षां षष्टिपलां तथा।
मासं संस्थापयेद्भाण्डे स्निग्धे च मृन्मये शुभे ॥२५॥
सारिवाद्यासवस्यास्य पानान्मेहाश्च विंशतिः।
शराविकादयः सर्वाः पिडकास्तत्कृताश्च याः ॥२६॥
औपदंशिकरोगाश्च वातरक्तं भगन्दरम्।
सर्व एते शमं यान्ति व्याधयो नात्र संशयः ॥२७॥

१. कृष्णअनन्तमूल, २. नागरमोथा, ३. लोध, ४. वटत्वक्, ५. पीपल की छाल, ६. कचूर, ७. श्वेतअनन्तमूल, ८. पद्मकाष्ठ, ९. सुगन्धबाला, १०. पाठा, ११. आमला, १२. गुडूची, १३. खस, १४. लालचन्दन, १५. श्वेतचन्दन, १६. अजवायन, १७. कुटकी, १८. तेजपात, १९. छोटी इलायची, २०. बड़ी इलायची, २१. कूठ, २२. सनायपत्ती और २३. हरीतकी—ये सभी २३ द्रव्य प्रत्येक १८७ ग्राम (१-१ कुडव) लें।

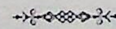
प्रक्षेप—धातकीपुष्प ५०० ग्राम एवं मुनक्का ६०० ग्राम लें। उपर्युक्त अनन्तमूल से हरीतकी पर्यन्त सभी २३ द्रव्यों को यवकुट करें। दो नये मिट्टी के बड़े घड़े की तली में पुआल या बोरा रखें। उसमें १२½ लीटर मीठा जल प्रत्येक घड़ा में रखें और ७½-७½ किलो गुड़ दोनों घड़े में डालकर जल में अच्छी तरह घोल दें। ततः उसमें उपर्युक्त यवकुट मिला लें। धूप में सुखाया हुआ धातकीपुष्प मिलावें और द्राक्षा को कूटकर मिला दें। अच्छी तरह हाथ से मिलाकर घड़े का मुख शराव से बन्द करें। उसमें निर्माण तिथि और 'सारिवाद्यासव' नाम लिखकर निर्वात स्थान में रख दें। २० दिनों बाद परीक्षोपरान्त गन्ध-वर्ण-स्वाद उत्पन्न हो जाने पर परीक्षा कर आसव को छान लें। पहले तो उसी घड़े को जल से साफ करके कपड़े से पोछ कर धूप में सुखा लें। बाद में छना हुआ 'सारिवाद्यासव' पुनः उसी में रखकर शराव से मुख बन्द करें और २० दिन उसी घर में छोड़ दें। जब उस आसव की गाद घड़े की तली में बैठ जाय तो शराव खोलकर निथरे हुए आसव को घड़े को टेढ़ा कर अन्य बाल्टी आदि में पृथक् करें और पुनः कपड़े से छानकर साफ-स्वच्छ बोतलों में भरकर कार्क लगा दें। बोतल में २ इञ्च स्थान खाली रहना चाहिए। गीले कपड़े से बोतल को पोंछकर उसमें लेबल लगा दें। लेबल में औषधिनाम, निर्माणतिथि, ग्रन्थ, अधिकार तथा मुख्य घटक अवश्य लिखें। ६ महिने के बाद आसव का प्रयोग रोगशान्त्यर्थ करें। इसे 'सारिवाद्यासव' कहते हैं। इसे १२ से २५ मि.ली. की मात्रा में बराबर जल मिलाकर भोजनोपरान्त सेवन करें। इसके प्रयोग से २० प्रकार के प्रमेह, शराविका आदि प्रमेहपिडकाएँ, उपदंश एवं उपदंशजन्यरोग, वातरक्त और भगन्दर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ से २५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—बराबर जल मिलाकर। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तीव्र एवं तीक्ष्ण मद्य। **उपयोग**—सभी प्रमेह, प्रमेहपिडका, उपदंश, वातरक्त एवं भगन्दर में।

प्रमेहपिडका रोग में अपथ्य

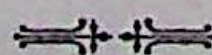
पानमन्नमभिष्यन्दि रूक्षं तीक्ष्णं च दुर्जरम्।
वेगरोधं व्यवायं च व्यायामं निशि जागरम् ॥२८॥
सुरां सुतीक्ष्णं मत्स्यं च पलाण्डुं च रसोनकम्।
त्यजेत्सूर्याग्निसन्तापं प्रमेहपिडकातुरः ॥२९॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्रमेहपिडिकाधिकारः।



प्रमेहपिडका के रोगी को चाहिए कि क्लेदकारक अन्न-पान, अभिष्यन्दी पदार्थ, रूक्ष, तीक्ष्ण, देर में पचने वाला पदार्थ, वेगों को रोकना, व्यवाय, व्यायाम, रात्रिजागरण, मद्य, तीक्ष्ण पदार्थ, मछली, प्याज, लसुन तथा सूर्य और अग्नि का सेवन छोड़ दें।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य प्रमेहपिडकाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ मेदोरोगाधिकारः (३९)

स्थौल्यनाशक श्रमादि क्रिया (च.द.)

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ।
हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनैः ॥१॥

परिश्रम, चिन्ता, मैथुन, रास्ता चलना, मधु का शर्बत पीना, रात्रि एवं दिवा जागरण, यव तथा श्यामादि लघु एवं रूक्ष भोजन करने से मेदो वृद्धि जन्य स्थौल्य रोग नष्ट हो जाता है।

स्थौल्यनाशनार्थ अल्पस्वप्न (च.द.)

अस्वप्नञ्च व्यवायञ्च व्यायामं चिन्तनानि च ।
स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत् ॥२॥

स्थौल्यता को त्यागने की इच्छा वाले व्यक्ति को अल्प निद्रा या अनिद्रा, मैथुन, व्यायाम एवं शास्त्रचिन्तन का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

१. मधु-मण्ड का प्रयोग (च.द.)

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ।
उष्णमत्रस्य मण्डं वा पिबन् कृशतनुर्भवेत् ॥३॥

मधु २५ ग्राम तथा जल १०० मि.ली. दोनों से अच्छी तरह मिलाकर प्रातःकाल पिलाने से स्थूलता नष्ट हो जाती है। इसी तरह चावल के मन्दोष्ण मण्ड पिलाने से भी स्थूलता नष्ट होती है।

२. चव्यादि शक्तु प्रयोग (च.द.)

सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलाः ।
मस्तुना शक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥४॥

१. चव्य, २. श्वेतजीरा, ३. सोंठ, ४. पीपर, ५. मरिच, ६. शुद्ध हिंगु, ७. सौवर्चललवण तथा ८. चित्रकमूल—इन्हें समभाग लेकर एक साथ सूक्ष्म चूर्ण कर लें। ये सभी चूर्ण २ ग्राम और जौ आदि का सत्तू २५ ग्राम मस्तु (दही के पानी) मिलाकर पिलाने से मेदनाशन तथा अग्निवर्धन का कार्य करता है।

३. व्योषादिशक्तु प्रयोग (च.द.)

व्योषं विडङ्गशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् ।
बृहत्यौ द्वे हरिद्रे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥५॥
हिङ्गु केबुकमूलानि यमानीं धान्यचित्रकम् ।
सौवर्चलमजाजीञ्च हवुषाञ्चेति चूर्णयेत् ॥६॥
चूर्णतैलघृताक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः ।
शक्तूनां षोडशगुणो भागः सन्तर्पणं पिबेत् ॥७॥
प्रयोगात्तस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः ।
प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥८॥
प्लीहपाण्ड्वामयः शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः ।
हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासश्वासौ गलग्रहः ॥९॥
कृमयो ग्रहणीदोषाः श्वित्रं स्थौल्यमतीव च ।
नराणां दीप्यते चाग्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥१०॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. वायविडङ्ग, ५. सहिजन की छाल, ६. आमला, ७. हरीतकी, ८. बहेड़ा, ९. कुटकी, १०. बृहती, ११. कण्टकारी, १२. हल्दी, १३. दारुहल्दी, १४. पाठा, १५. अतीस, १६. शालपर्णी, १७. शुद्ध हींग, १८. केबुक (पत्तूरशाक), १९. अजवायन, २०. धनियाँ, २१. चित्रकमूल, २२. कालानमक, २३. जीरा और २४. हाऊबेर–प्रत्येक द्रव्य समभाग लें तथा जौ, चना आदि का सत्तू लें। उपर्युक्त सोंठ से हाऊबेर तक के सभी द्रव्य १-१ भाग लेकर (प्रत्येक ५-५ ग्राम) सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। स्थौल्य के रोगी को सन्तर्पणार्थ ९० ग्राम सत्तू तथा १० ग्राम उपर्युक्त चूर्ण एवं उसमें १० ग्राम तिलतैल, १० ग्राम गोघृत और १५ ग्राम मधु मिलाकर जल में घोलकर पिलाने से स्थौल्य रोग धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। इसका कुछ समय तक प्रयोग करने से अतिसन्तर्पणोत्थ सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से प्रमेह, मूढवात, कुष्ठ, अर्श, कामला, प्लीहावृद्धि, पाण्डुरोग, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृद्रोग, यक्ष्मा, श्वास, कास, गलग्रह, कृमि, ग्रहणीदोष, श्वित्र और अतिस्थौल्य रोग नष्ट हो जाते हैं। इससे अग्नि की वृद्धि होती है, स्मरणशक्ति और बुद्धि की वृद्धि होती है।

४. विडङ्गादिचूर्ण (च.द.)

विडङ्गनागरक्षारकाललौहरजो मधु ।
यवामलकचूर्णं तु प्रयोगः स्थौल्यनाशनः ॥११॥

१. वायविडङ्ग, २. सोंठ, ३. यवक्षार, ४. काललौहभस्म, ५. जौ का सत्तू तथा ६. आमला—इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'विडङ्गादिचूर्ण' को २ से ४ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ सेवन करने से स्थौल्य रोग नष्ट हो जाता है।

५. स्थौल्यहरी पेया और अग्निमन्थ क्वाथ (च.द.)

बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता ।
स्थौल्यनुत्स्यात्साग्निमन्थरसं वाऽपि शिलाजतु ॥१२॥

१. बैर के पत्ते २५ ग्राम तथा १ लीटर काञ्जी मिलाकर इस द्रव में १०० ग्राम चावल पकाकर पेया बनाकर पिलाने से स्थौल्य रोग नष्ट हो जाता है।

२. अग्निमन्थत्वक्क्वाथ ५० मि.ली. में ५०० मि.ग्रा. शुद्ध शिलाजीत मिलाकर पिलाने से स्थौल्यरोग नष्ट हो जाता है।

६. शिरीषादिप्रघर्ष एवं शरीरदौर्गन्ध्यहर प्रदेह (च.द.)

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रै-
स्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः ।
पत्राम्बुलोहाभयचन्दनानि
शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥१३॥

१. शिरीषत्वक्, खस, नागकेशर और लोध्रत्वक्—इन्हें सूक्ष्म चूर्ण करें और शरीर की त्वचा पर प्रकर्ष (अवघर्षण) करने से त्वचा के समस्त विकार और स्वेदाधिक्य रोग नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार—

२. तेजपात, सुगन्धबाला, (लोह=अगुरु), (अभय=उशीरं), खस तथा श्वेतचन्दन—(समभाग) इन्हें जल से पीसकर शरीर पर लेप लगाने से शरीर का दुर्गन्ध नष्ट हो जाता है।

७. गात्रदौर्गन्ध्य नाशक लेप (च.द.)

वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः ।
बिल्वपत्ररसो वाऽपि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥१४॥

वासास्वरस ५० मि.ली. या बिल्वपत्रस्वरस ५० मि.ली. में शंखभस्म १ ग्राम मिलाकर शरीर पर लेप करने से शरीर का दुर्गन्ध नष्ट हो जाता है।

८. हरीतक्यादि प्रलेप (च.द.)

हरीतकीलोध्रमरिष्टपत्रं
चूतत्वचो दाडिमवल्कलं च ।
एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां
जङ्घाकषायश्च नराधिपानाम् ॥१५॥

१. हरीतकीफलत्वक्, २. लोध्रत्वक्, ३. निम्बपत्र, ४. आमवृक्षत्वक् तथा ५. अनारफलत्वक् (समभाग) लें। इन्हें चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को अङ्ग-प्रत्यङ्ग के अनुसार ६ से २५ ग्राम की मात्रा में जल के साथ पीसकर स्त्रियों के मुख पर लेप करने से उनके मुखों की कान्ति बढ़ती है। हाथी-घोड़े की सवारी करने वाले राजाओं की जाँघ वाहन की रगड़ से विवर्ण हो जाती है। अतः उन जाँघ, चूतड़ (नितम्बों) की विवर्णता इसके लेप से नष्ट हो जाती है।

९. हरतालादियोग (च.द.)

गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं
वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम् ।
कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं पयोभिः
शस्तं वशीकृद्रजनीद्वयेन ॥१६॥

१. हरताल को गोमूत्र में पीसकर लेप लगाने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है। (वर्णोज्ज्वलं=हरतालं गन्धकं वा)

२. हरताल को गोमूत्र में पीसकर कक्षा (काँख) में लेप लगाने से कक्षा का दुर्गन्ध नष्ट हो जाता है।

३. हल्दी और दारुहल्दी को गोदुग्ध में पीसकर ललाट पर लगाने से वशीकरण करता है अर्थात् दूसरों को वश में करता है।

१०. देहदौर्गन्ध्यनाशन योग (च.द.)

चिञ्चापत्रस्वरसम्रक्षितकक्षादियोजितं जयति ।
पुटदग्धहरिद्रोद्वर्त्तनमचिराद्देहदौर्गन्ध्यम् ॥१७॥

प्रथम इमली के पत्र स्वरस में अधजली (पुटदग्ध) हल्दी को पीसकर शरीर में विशेष कर काँख में लेप करें। शरीर में उबटन लगाने से शरीर का दुर्गन्ध नष्ट हो जाता है।

११. दलजलादि लेप (च.द.)

दलजललघुमलयाभयविलेपो हरति देहदौर्गन्ध्यम् ।
विमलारनालसहितं पीतमिवालम्बुषाचूर्णम् ॥१८॥

१. दल (तेजपात), २. जल (सुगन्धबाला), ३. लघु (अगरु), ४. श्वेतचन्दन तथा ५. अभय (खस) समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में से संग्रहीत करें। इसका स्वच्छ काञ्जी के साथ लेप करने से शरीर की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है। जैसे गोरखमुण्डी ३ ग्राम जल के साथ पीसकर पान करने से शरीर दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार लेप से भी दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है।

१२. मेदोहर लेप (पुटपाक) (वङ्गसेन)

कर्कशदलवह्निसलिलं शतपुष्पाहिङ्गुसंयुतम् ।
पुटकेन हन्ति नियतं सर्वभवां मेदसां वृद्धिम् ॥१९॥

१. कर्कशदल (पटोलपत्र), २. चित्रकमूल, ३. सुगन्धबाला, ४. सौंफ और ५. हींग समभाग लें। इन्हें चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को ४-५ वटपत्र में लपेटकर धागा से बाँधे। ततः उस पर मिट्टी का पतला लेप करें। सूखने पर जमीन में थोड़ा गड्ढा बनाकर उसमें मिट्टी लिप्त कल्क को रखकर ४-५ कण्डे की लघु अग्नि दें। आग बुझने पर कल्क निकालें और कपड़े में रखकर निचोड़ें। उससे जो स्वरस निकले उसे मेदोवृद्धि नष्ट करने के लिए शरीर पर लेप करें।

१३. एरण्डक्षार प्रयोग (वङ्गसेन)

क्षारं वातारिपत्रस्य हिङ्गुयुक्तं पिबेन्नरः ।
मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तं मण्डसमन्वितम् ॥२०॥

एरण्डपत्र सुखाकर जला लें। उस राख से क्षार तैयार करें। ततः ५०० मि.ग्रा. एरण्डपत्रक्षार और ५०० मि.ग्रा. शुद्ध हींग

को पानी में घोलकर पियें। इससे मेदोवृद्धि रोग नष्ट हो जाता है। अथवा माँड-भात खाने से भी मेदोवृद्धि नष्ट हो जाती है।

१४. शैलेयादि उद्वर्त्तन (भा.प्र.)

शैलेयकुष्ठागुरुदेवदारु-
कौन्तीसमुस्तान्यथ पञ्चपत्रैः।
श्रीवासपृक्काखरपुष्पदेव-
पुष्पं तथा सर्वमिदं प्रपिष्य॥
धत्तूरपत्रस्य रसेन गाढ-
मुद्वर्त्तनं स्थौल्यहरं प्रदिष्टम्॥२१॥

१. शैलेय (छड़ीला), २. कूठ, ३. अगुरु, ४. देवदारु, ५. रेणुकाबीज, ६. नागरमोथा, ७. आम्रपत्र, ८. जामुनपत्र, ९. कपित्थपत्र, १०. बिजौरानिम्बुपत्र, ११. बिल्वपत्र, १२. सरल-काष्ठ, १३. पृक्का (लताकस्तूरी), १४. तुलसी मञ्जरी तथा १५. लौंग समभाग लें। इन्हें कूट-पीसकर चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम चूर्ण लेकर धतूरपत्रस्वरस ५० मि.ली. के साथ मिलाकर सम्पूर्ण शरीर में मोटा लेप कर मर्दन करने से स्थौल्यरोग नष्ट हो जाता है।

१५. विडङ्गाद्यलौह (च.द.)

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणानागरकेण च।
बिल्वचन्दनह्रीबेरं पाठोशीरं तथा बला॥२२॥
एषां सर्वसमं लौहं जलेन वटिकां कुरु।
घृतयोगेन कर्त्तव्या माषैका वटिका शुभा॥२३॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं लौहस्याष्टगुणं पयः।
सर्वमेदोहरं बल्यं कान्त्यायुर्बलवर्द्धनम्॥२४॥
अग्निसन्दीपनकरं वाजीकरणमुत्तमम्।
सोमरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥
विडङ्गाद्यमिदं लौहं सर्वरोगनिसूदनम्॥२५॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण, ५. नागरमोथाचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. सोंठचूर्ण, ८. बिल्वफलमज्जाचूर्ण, ९. श्वेतचन्दनचूर्ण, १०. सुगन्धबाला, ११. पाठाचूर्ण, १२. खसचूर्ण तथा १३. बलामूलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें और १४. लौहभस्म १३ भाग (सभी द्रव्यों के चूर्ण के बराबर) लें। सभी चूर्णों को एक साथ मिलाकर पुनः छननी से छान लें और उसमें लौहभस्म मिलावें और जल के साथ पीसकर ८-८ रत्ती (१ ग्राम) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में अच्छी तरह सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस विडङ्गादिलौह को १ से २ वटी की मात्रा में दुग्धानुपान से सेवन करने पर सभी तरह के मेदोवृद्धि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह बलवर्धक है, कान्ति-वर्णवर्धक है, परम अग्निवर्धक है, उत्तम वाजीकरण है। इसके सेवन से शीघ्र ही सोमरोग नष्ट हो जाता है, जैसे भगवान् सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देते हैं। यह विडङ्गादि लौह सभी रोगों को नष्ट करता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—दुग्धानुपान से। **गन्ध**—चन्दन जैसी सुगन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ (कत्थई वर्ण)। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मेदोरोगहर तथा बल-वर्ण-कान्तिवर्धक है।

१६. त्र्यूषणाद्यलौह (र.सा.सं.)

त्र्यूषणं विजया चव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम्।
वागुजी सैन्धवञ्चैव सौवर्चलसमन्वितम्॥२६॥
अयश्चूर्णेन संयुक्तं भक्षयेन्मधुसर्पिषा।
स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्॥२७॥
मेहघ्नं कुष्ठशमनं सर्वव्याधिहरं परम्।
नाहारे यन्त्रणा कार्या न विहारे तथैव च॥
त्र्यूषणाद्यमिदं लौहं रसायनवरोत्तमम्॥२८॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. भांगपत्र-चूर्ण, ५. चव्यचूर्ण, ६. चित्रकमूलचूर्ण, ७. विडलवणचूर्ण, ८. औद्भिल्लवणचूर्ण, ९. बाकुचीचूर्ण, १०. सैन्धवलवणचूर्ण तथा ११. सौवर्चललवणचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें और १२. लौहभस्म ११ भाग लें। इन्हें मिलाकर पुनः छननी से छान लें और उसमें सभी चूर्ण के बराबर लौहभस्म अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'त्र्यूषणादिलौह' को ४ से ८ रत्ती (५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम) की मात्रा में विषममात्रा में मधु- घृत मिलाकर चाटने से स्थौल्य का नाश होता है, बल-वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है। यह प्रमेह नाशक है, कुष्ठ नाशक है तथा सभी रोगों का नाश करता है। इस लौह के सेवन काल में आहार-विहार पर कोई नियन्त्रण नहीं रखना चाहिए। यह उत्तम रसायन है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—मधु एवं घृत से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—स्थौल्य, मेदोरोग, प्रमेह एवं कुष्ठ में।

१७. वडवाग्निलौह (र.सा.सं.)

सूतभस्म सतालञ्च लौहं ताम्रं समं समम्।
मर्दयेत्सूर्यपत्रेण चास्य वल्लं प्रयोजयेत्॥२९॥
मधुना स्थूलरोगे च शोथे शूले तथैव च।
मध्वाज्यमनुपानञ्च देयं वाऽपि कफोल्बणे॥३०॥

१. रससिन्दूर, २. शुद्ध हरताल, ३. लौहभस्म तथा ४. ताम्रभस्म—समान भाग लें। इन चारों द्रव्यों को एक खरल में मिलाकर मर्दन करें और अर्कपत्रस्वरस की १ भावना देकर ३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें।

मधु के साथ प्रातः-सायं १-१ वटी का सेवन करने से स्थौल्यरोग, शोथ एक कफोल्वण शूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५-२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं घृत से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—मेदोरोग, स्थौल्य एवं प्रमेह में।

१८. लौहरसायन (च.द.)

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खदिरं वृषम्।
त्रिवृताऽलम्बुषा स्नुक्च निर्गुण्डी चित्रकं शटी ॥३१॥
एषां दशपलान् भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत्।
पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥३२॥
पलद्वादशकं देयं तीक्ष्णलोहस्य चूर्णितम्।
पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलानि च ॥३३॥
पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते।
प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्वयम् ॥३४॥
एलात्वचोः पलार्द्धञ्च विडङ्गानां पलद्वयम्।
मरिचञ्चाञ्जनं कृष्णा द्विपलं त्रिफलाऽन्वितम् ॥३५॥
पलद्वयन्तु कासीसं श्लक्ष्णचूर्णीकृतं बुधैः।
चूर्णं दत्त्वाऽथ मथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥३६॥
ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम्।
अनुपानं पिबेत्क्षीरं जाङ्गलानां रसं तथा ॥३७॥
वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेहज्वरापहम्।
कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुं सभगन्दरम् ॥३८॥
मूर्च्छामोहविषोन्मादं गराणि विविधानि च।
स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् ॥३९॥
कर्षयेच्चातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम्।
बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥४०॥
श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम्।
नाश्नीयात् कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् ॥
करीरं कारवेल्लञ्च षट् ककाराणि वर्जयेत् ॥४१॥

१. गुग्गुलु ५०० ग्राम, २. श्वेतमुशली ५०० ग्राम, ३. त्रिफला ५०० ग्राम, ४. खैर की लकड़ी ५०० ग्राम, ५. वासा ५०० ग्राम, ६. निशोथ ५०० ग्राम, ७. मुण्डी ५०० ग्राम, ८. स्नुहीमूल ५०० ग्राम, ९. निर्गुण्डी ५०० ग्राम, १०. चित्रकमूल ५०० ग्राम और ११. कचूर ५०० ग्राम लें; जल १५ लीटर (५ आढक), १२. तीक्ष्ण लौहभस्म ६०० ग्राम (१२ पल), १३. पुराना घी ७५० ग्राम, १४. चीनी ३७५ ग्राम, १५. मधु ३७५ ग्राम, १६. शुद्ध शिलाजतु ९३ ग्राम, १७. छोटी इलायची २३ ग्राम, १८. दालचीनी २३ ग्राम, १९. वायविडङ्ग ९३ ग्राम, २०. मरिच ९३ ग्राम, २१. रसाञ्जन ९३ ग्राम, २२. पीपर ९३ ग्राम, २३. त्रिफलाचूर्ण ९३ ग्राम, २४. शुद्ध कासीस ९३ ग्राम लें। उपर्युक्त गुग्गुल के अतिरिक्त १२ काष्ठौषधियों का यवकुट करें तथा गुग्गुलु भी उसी में मिलाकर द्रव द्वैगुण्य जल ३० लीटर (ताम्रपात्र में) पाक करें। बीच-बीच में कलछुल से मर्दन कर चलाते रहें, जिसमें गुग्गुलु घुल जाय। जब जल ४ लीटर शेष बचे तो पात्र नीचे उतारकर क्वाथ को महीन कपड़े से छान लें। ततः एक ताम्रपात्र में उस ४ लीटर क्वाथ को रखें, उसमें लोहभस्म तथा शिलाजतु मिलाकर कुछ देर तक चलावें, जिसमें शिलाजतु घुल जाय। ततः उसमें शेष काष्ठौषधों के सूक्ष्मचूर्ण और शुद्ध कासीस मिला लें। पुनः उसमें घृत मिलाकर आग पर पाक करें और दर्वी से बराबर चलाते रहें। जब वह गाढ़ा होने लगे तब उसे शीतल होने, पर मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे लौहरसायन कहते हैं। शरीर के शोधन (वमन-विरेचन) के बाद शुभ नक्षत्र-तिथि में देवता एवं औषधि की पूजा के बाद इस 'लौहरसायन' को रोगी का बलाबल देखकर ६ से १२ ग्राम की मात्रा में चटाकर अनुपान रूप में गरम गोदुग्ध या जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांसरस पिलाना चाहिए। यह श्रेष्ठ वात-कफ नाशक है। इसके सेवन से कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, कामला, पाण्डु, शोथ, भगन्दर, मूर्च्छा, मोह, विष, उन्माद तथा अनेक प्रकार के गरविष नष्ट हो जाते हैं। यह मोटे (स्थूल) रोगियों को शीघ्र दुर्बल करता है तथा मेदोरोग वालों की तो यह परमौषधि है। बहुत स्थूल मेदोरोग वाले रोगियों के ऊँचे पेट को पाताल के जैसा गड्ढा कर देता है। यह औषधि मेद को अति मात्रा में घटाता है। इसके सेवन से बल प्राप्त होता है, रसायन है, मेध्य है, उत्तम वाजीकरण है, शरीर की शोभा, बढ़ाता है, पुत्रोत्पत्ति कराता है और वली-पलित रोगों का नाश करता है। इसके सेवन काल में कदलीफल, काञ्जी, करौंदा, करीरफल, करैला और कन्द—ये ६ ककार (क अक्षर से प्रारम्भ होने) वाले द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।

मात्रा— ३ से ६ ग्राम तक। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या मांसरस। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—कत्थई रंग। **स्वाद**—किञ्चिद् मधुर। **उपयोग**—स्थौल्य एवं मेदोरोग में रसायन, वाजीकरणार्थ।

१९. नवकगुग्गुलु (च.द.)

व्योषाग्नित्रिफलामुस्तविडङ्गैर्गुग्गुलं समम्।
खादन्सर्वाञ्जयेद्व्याधीन् मेदश्लेष्मामवातजान् ॥४२॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. चित्रक-मूलचूर्ण, ५. आमलाचूर्ण, ६. हरीतकीचूर्ण, ७. बहेड़ाचूर्ण, ८. नागरमोथाचूर्ण, ९. वायविडङ्गचूर्ण और १०. शुद्ध गुग्गुलु—प्रत्येक द्रव्य १००-१०० ग्राम लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः एक छोटी कड़ाही में थोड़ा-सा जल और गुग्गुलु

मिलाकर मृदु अग्नि पर गरम करें और चम्मच से उसे चलाते रहें। जब गुग्गुलु जल में घुल जाय तो उसमें उपर्युक्त चूर्ण मिलावें तथा उसे अच्छी तरह हाथ से मसल दें। ततः सिल पर थोड़ा गरम पानी का छींटा देकर अच्छी तरह से पीस लें। पुनः ५०० मि.ग्रा. की वटी बनाकर धूप में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'नवकगुग्गुलुवटी' का १-१ वटी को गरम जल से सेवन करने से मेदोरोग, कफरोग और आमवात रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—गरम जल से। **गन्ध**—गुग्गुलु गन्धी। **वर्ण**—किञ्चित् श्याव। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—मेद, कफ और आमवात रोग में।

२०. अमृताद्यगुग्गुलु (च.द.)

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं
कलिपथ्याऽऽमलकानि गुग्गुलुः।
क्रमवृद्धमिदं मधुप्लतं
पिडकास्थौल्यभगन्दरं जयेत् ॥४३॥

१. गुडूचीचूर्ण १० ग्राम, २. छोटी इलायचीचूर्ण २० ग्राम, ३. वायविडङ्गचूर्ण ३० ग्राम, ४. कुटजचूर्ण ४० ग्राम, ५. बहेड़ाचूर्ण ५० ग्राम, ६. आमलाचूर्ण ६० ग्राम, ७. हरीतकी-चूर्ण ७० ग्राम तथा ८. शुद्ध गुग्गुलु ८० ग्राम लें। उपर्युक्त ७ काष्ठौषधों को मिलाकर पुनः छान लें। ततः एक स्टील के पात्र में थोड़ा जल के साथ गुग्गुलु को मृदु अग्नि पर पिघलावें। जब गुग्गुलु पिघल जाय तो द्रुत गुग्गुलु उपर्युक्त चूर्ण में पलट दें। जब कुछ शीतल हो तो उसे हाथ से अच्छी तरह से मिला लें और गरमजल के छींटे देकर सिल पर अच्छी तरह पीस लें और १-१ ग्राम की मात्रा में वटी बनाकर धूप में अच्छी तरह सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी चूर्ण कर गरम पानी से सेवन करने से प्रमेहपिडका, स्थौल्य और भगन्दर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—गरम जल से। **गन्ध**—सुगन्धित। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह-पिडका, स्थौल्य और भगन्दर में।

२१. त्रिफलाद्यतैल (च.द.)

त्रिफलाऽतिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः।
निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥४४॥
गुडूचीन्द्रसुरी कृष्णा कुष्ठसर्षपनागरैः।
तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥४५॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यबस्तिषु योजितम्।
स्थूलतालस्यपाण्ड्वादीञ्जयेत्कफकृतान् गदान् ॥४६॥

कल्कार्थ—१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. अतीस, ५. मूर्वा, ६. निशोथ, ७. चित्रकमूल, ८. वासा, ९. निम्बत्वक्, १०. अमलतास, ११. वच, १२. सप्तपर्ण, १३. हल्दी, १४. दारुहल्दी, १५. गुडूची, १६. इन्द्रसुरी १७. पीपर, १८. कूठ, १९. सरसों और २०. सोंठ—प्रत्येक द्रव्य कल्कार्थ १-१ तोला (१२-१२ ग्राम) लें।

क्वाथार्थ—सुरसादिगणोक्त[१] औषधों का क्वाथ ४ लीटर तथा तिल-तैल १ लीटर लेना चाहिए।

सर्वप्रथम तिल-तैल का मूर्च्छन करें। तदुपरान्त सभी कल्क द्रव्यों को कूट-पीस कर कल्क बना लें एवं मूर्च्छित तिल-तैल में मिलावें और सुरसादिगणोक्त सभी द्रव्यों को यवकुट कर चार गुना जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर क्वाथ उतारें एवं छानकर मूर्च्छित तैल में मिलाकर पकावें। जब तेल का क्वाथ जल जाय और मात्र तैल बचे तो परीक्षोपरान्त तैल-पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर गरम-गरम कपड़े से छान लें। ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'त्रिफलादितैल' का प्रयोग पीने के लिए, मालिश के लिए, गण्डूष के लिए, बस्ति प्रयोग के लिए किया जाता है। इसके प्रयोग से स्थूलता, आलस्य, पाण्डु आदि और कफ जन्य समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—प्रयोगानुसार। **अनुपान**—प्रयोगानुसार। **गन्ध**—सुगन्धित। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—स्थूलता एवं कफजन्य रोगों में।

२२. महासुगन्धि तैल (भा.प्र.)

चन्दनं कुङ्कुमोशीरप्रियङ्गुत्रुटिरोचनाः।
तुरुष्कागुरुकस्तूरीकर्पूरजातिपत्रकाः ॥४७॥
जातिकक्कोपूगानां लवङ्गस्य फलानि च।
नलिका नलदं कुष्ठं हरेणुतगरप्लवम् ॥४८॥
नखं व्याघ्रनखं पृक्का बोलं दमनकं मुरा।
स्थौणेयकं चोरकं च शैलेयं सैलवालुकम् ॥४९॥
सरलं सप्तपर्णं च लाक्षा तामलकी तथा।
लामज्जकं पद्मकं च धातक्याः कुसुमानि च ॥५०॥
प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः शाणमात्रकैः।
महासुगन्धिमित्येतत् तैलप्रस्थेन साधयेत् ॥५१॥
प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम्।
अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ॥५२॥
युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः।
सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदाशतम् ॥५३॥

---

१. सुरसादिगणो यथा—
सुरसाश्वेतसुरसापणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुखकालमालकास-मर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फलसुरसीनिर्गुण्डीकुलाहलोन्दुरुकर्णिका-फञ्जीप्राचीबलकाकमाच्यो विषमुष्टिकश्चेति। (सु.सू. ३८।१८)

वन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्ढोऽपि तरुणायते ।
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥५४॥

कल्क—१. श्वेतचन्दन, २. केशर, ३. खस, ४. प्रियंगुफूल, ५. छोटी इलायची, ६. गोरोचन, ७. शिलारस, ८. अगुरु, ९. कस्तूरी, १०. कर्पूर, ११. जावित्री, १२. जायफल, १३. शीतलचीनी, १४. सुपारी, १५. लवङ्ग, १६. नालुका, १७. जटामांसी, १८. कूठ, १९. रेणुका, २०. तगर, २१. नागरमोथा, २२. नखी, २३. व्याघ्रनखी, २४. पृक्का, २५. बोल, २६. मरुआदाना, २७. मुरा, २८. स्थौणयक, २९. चोरक, ३०. छरिला, ३१. एलवालुक, ३२. सरल (चीड़), ३३. सप्तपर्णछाल, ३४. लाक्षा, ३५. भूमिआमला, ३६. लाजवन्ती, ३७. पद्मकाष्ठ, ३८. धातकीपुष्प, ३९. कमलफूल तथा ४०. गन्धशटी—ये प्रत्येक द्रव्य १-१ शाण अर्थात् ३-३ ग्राम लें और ४१. तिलतैल ७५० मि.ली. (१ प्रस्थ) लें। उपर्युक्त ४० द्रव्यों के वर्ग को महासुगन्धिवर्ग के नाम से जानते हैं। उपर्युक्त तिलतैल का सर्वप्रथम मूर्च्छन करें। ततः श्वेतचन्दन से गन्धशटी तक के ४० द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। मूर्च्छित तैल में कल्क और ३ लीटर पानी मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से तैल छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस महासुगन्धितैल के अभ्यङ्ग से स्वेदाधिक्य, शरीरमल, दौर्गन्ध्य, कण्डू, कुष्ठादि चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं। इस तैल का अभ्यङ्ग प्रतिदिन करने से ७० वर्ष का वृद्ध पुरुष भी युवक जैसा कान्तिवान् हो जाता है। उस व्यक्ति में वीर्य का आधिक्य हो जाता है, स्त्रियों का अतिप्रिय हो जाता है। वह पुरुष सौभाग्यशाली एवं दर्शनीय हो जाता है। १०० कामिनी स्त्रियों को समागम में तृप्त कर सकता है। इस तैल के प्रभाव से बन्ध्या स्त्री भी गर्भ धारण करती है तथा नपुंसक व्यक्ति भी सशक्त युवा जैसा हो जाता है। पुत्र रहित व्यक्ति पुत्रवान् हो जाता है और १०० वर्ष तक सारोग्य आयु वाला हो जाता है।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ। **गन्ध**—अत्यन्त सुगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शरीर सुगन्धित करने के लिए तथा वाजीकरणार्थ।

२३. लोहारिष्ट (भा.प्र.)

शालसारादिनिर्यूहं[1] चतुर्थांशावशेषितम् ।
परिस्रुतं ततः शीतं मधुना मधुरीकृतम् ॥५५॥
फाणितीभावमापन्नं गुडं शोधितमेव च ।
सूक्ष्मपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादेर्गणस्य च ॥५६॥
ऐकध्यमावपेत्कुम्भे संस्कृते घृतभाविते ।
पिप्पलीचूर्णमधुभिः प्रलिप्ते चान्तरे शुचौ ॥५७॥
सूक्ष्माणि तीक्ष्णलौहस्य तनुपत्राणि बुद्धिमान् ।
खदिराङ्गारतप्तानि बहुशः प्रक्षिपेद् बुधः ॥५८॥
सुपिधानं ततः कृत्वा यवपल्वे निधापयेत् ।
मासांस्त्रींश्चतुरो वाऽपि यावद्वा लौहसंक्षयात् ॥५९॥
ततो जातरसं जन्तुः प्रातः प्रातर्यथाबलम् ।
उपयुञ्ज्याद्यथायोग्यामाहारं चास्य कल्पयेत् ॥६०॥
एष स्थूलं समाकर्षेन्नष्टस्याग्नेः प्रबोधनः ।
शोथघ्नः कुष्ठमेहघ्नो गुल्मपाड्वामयापहः ॥६१॥
प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वरनाशनः ।
अभिष्यन्दापहरणे लोहारिष्टो महागुणः ॥६२॥

१. शालवृक्षत्वक्, २. अजकर्णत्वक्, ३. खदिरकाष्ठ, ४. कदर, ५. कालस्कन्द, ६. क्रमुकफल, ७. भोजपत्र, ८. मेषशृंगी, ९. तिनिश, १०. लालचन्दन, ११. कुचन्दन, १२. शीशमत्वक्, १३. शिरीषत्वक्, १४. असन (विजयसार), १५. धातकीपुष्प, १६. अर्जुनत्वक्, १७. तालवृक्ष, १८. सागवानवृक्षत्वक्, १९. करञ्ज, २०. पूतिकरञ्ज, २१. अश्वकर्ण, २२. अगुरु और २३. कालीयक—ये २३ द्रव्य हैं। प्रत्येक द्रव्य २५०-२५० ग्राम लें। क्वाथार्थ जल ८ गुणा (४६ लीटर) लें तथा क्वाथावशेष चौथाई ११$\frac{1}{2}$ लीटर रखें। मधु १० किलो और गुड़ ५ किलो लें।

प्रक्षेप—पिप्पल्यादिगण[2] के द्रव्यों को यवकुट कर प्रक्षिप्त करें। १. पिप्पली, २. पिपरामूल, ३. चव्य, ४. चित्रकमूल, ५. आर्द्रक (सोंठ) ६. मरिच, ७. गजपीपर, ८. रेणुका, ९. छोटी इलायची, १०. अजमोदा, ११. इन्द्रयव, १२. पाठा, १३. श्वेतजीरा, १४. सरसों, १५. बकायन, १६. हींग, १७. भार्गीत्वक्, १८. मुलेठी, १९. अतीस, २०. वच, २१. विडङ्ग और २२. कटुकी—प्रत्येक द्रव्य ४०-४० ग्राम लें और लौहभस्म लें।

सर्वप्रथम शालसारादिगण की सभी औषधों का यवकुट करें और आठ गुना जल में क्वाथ करें चौथाई शेष रहने पर छान लें। एक मिट्टी के घड़े में पिप्पलीचूर्ण और मधु का लेप करें तथा थोड़ी देर तक सूखने के बाद उसी में क्वाथ रख दें। पुनः उसी क्वाथ में मधु और गुड़ घोलें। इसके बाद 'पिप्पल्यादिगण' के सभी २२ द्रव्यों के यवकुट को मधु मिश्रित घोल में मिला दें। इसके बाद तीक्ष्णलोह के पतले पत्रों को खैर की लकड़ी की आग में खूब रक्ताङ्गार वर्ण तपा-तपाकर उसी घोल में अनेक बार निर्वापित करें। पुनः लोहपत्र को उसी में छोड़ दें। मिट्टी के शराव

१. शालसारादिगण—शालसाराजकर्णखदिरकदरकालस्कन्दक्रमुकभूर्जमेषशृङ्गीतिनिशचन्दनकुचन्दनशिंशपाशिरीषासनधवार्जुनतालशाकनक्तमालपूतीकाश्वकर्णागुरूणि कालीयकं चेति। (सु.सू. ३८।१२)

२. प्पिल्यादिगणो यथा—पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गबेरमरिचहस्तिपिप्पलीहरेणुकैलाजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकसर्षपमहानिम्बहिङ्गुभार्गीमधुरसाऽतिविषावचाविडङ्गानि कटुरोहिणी चेति। (सु.सू. ३८।२२)

से मुख बन्द करें तथा निर्वात स्थान में जौ की ढेर में उस घड़े को २१ दिनों तक रख छोड़ें। २१ दिनों के बाद खोलकर परीक्षा करें। तत: छानकर उसी घड़े को साफ करने के बाद उसी में रखें। ३-४ महीने के बाद जब तक पूर्व प्रक्षिप्त लौहपत्र गल कर एक रस नहीं हो जाय तब तक उसी में पत्र रहने दें। १० दिनों के बाद जब उसकी गाद बैठ जाय तो ऊपर से स्वच्छ लोहारिष्ट को छान लें और बोतल में पैक कर लेबल लगावें। इस लौहारिष्ट को भोजन के बाद १२-२५ मि.ली. तक की मात्रा में बराबर जल मिलाकर पिलाने से स्थूल मनुष्य कृश हो जाता है। यह शोथघ्न है, कुष्ठघ्न है, प्रमेहघ्न है, गुल्म-पाण्डु-प्लीहा-उदररोग शीघ्र नष्ट हो जाता है। विषमज्वर नाशक है। यह लौहारिष्ट अभिष्यन्द को दूर करता है। इसके सेवन से अग्नि बढ़ जाती है। यह महान् गुणकारी है।

विमर्श—अच्छा होगा कि लौहपत्र के स्थान पर तीक्ष्ण लौह भस्म २५० ग्राम को इसमें मिलावें। तीक्ष्णलौह पत्र प्राप्त कर २१ बार उसी घोल में निर्वापित करना प्रपञ्चपूर्ण है। अत: लौहभस्म का नि:क्षेपण करना अधिक उपयोगी है। पुन: अवशेष लौहभस्म को लोहारिष्ट की गाद को जलाकर उपयोग में लाया जा सकता है।

मात्रा—१२ से २५ मि.ग्राम। **अनुपान**—ताजा जल से। **गन्ध**—तीक्ष्ण मद्य गन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तीक्ष्ण एवं मधुर। **उपयोग**—अग्निवर्धनार्थ, शोथ, कुष्ठ, प्रमेह एवं उदर रोग में।

स्थौल्य रोग में पथ्य (यो.र.)

पुराणशालयो मुद्गकुलत्थयवकोद्रवाः।
लेखना बस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥६३॥

मेदोरोग में पुराना शालिचावल, मूँग की दाल, कुलत्थ, जौ, कोदो तथा लेखनबस्ति का प्रयोग हितकर है।

मेदोरोग में पथ्य

चिन्ता श्रमो जागरणं व्यवायः
प्रोद्वर्त्तनं लङ्घनमातपश्च।
हस्त्यश्वयानं भ्रमणं विरेकः
प्रच्छर्दनं चाप्यपतर्पणानि ॥६४॥
पुरातना वैणवकोरदूष-
श्यामाकनीवारप्रियङ्गवश्च।
यवाः कुलत्थाश्चणका मसूरा-
मुद्गास्तुवर्योऽपि मधूनि लाजाः ॥६५॥
कटूनि तिक्तानि कषायकाणि
तक्रं सुरा चिङ्गटमत्स्य एव।
दग्धानि वार्त्ताकुफलानि चापि
फलत्रयं गुग्गुलुरायसं च ॥६६॥
कटुत्रयं सर्षपतैलमेला-
रूक्षाणि सर्वाणि च मुख्यतैलम्॥
पत्रोत्थशाकागुरुलेपनानि
प्रतप्तनीराणि शिलाजतूनि।
प्राग्भोजनस्यापि च वारिपानं
मेदोगदं पथ्यमिदं निहन्ति ॥६७॥

मेदो रोग में—चिन्ता, श्रम, रात्रिजागरण, मैथुन, उबटन, लंघन करना, धूपसेवन, हाथी-घोड़े की सवारी करना, घूमना, अपतर्पण करना, पुराना बाँस का यव, कोदो, यव, साँवा, नीवारक, क्षुद्रधान्य, प्रियङ्गु, जौ, कुलथी, चना, मसूर, मूँग, अरहर की दाल, मधु, धान की खील, सभी तरह के कटु-तिक्त एवं कषाय रस युक्त द्रव्य, तक्र, मद्य, चिङ्गट मछली, बैंगन का भुर्ता, त्रिफला, गुग्गुलु, लौहभस्म, त्रिकटु, सरसों तैल, छोटी इलायची, सभी प्रकार के रूक्ष पदार्थों का सेवन, तिलतैल, पत्र के साग, अगुरु का लेप, उष्णजल, शुद्ध शिलाजतु और भोजन के पहले पानी पीना—ये सभी द्रव्य मेदो रोग में हितकर हैं।

मेदोरोग में अपथ्य

स्नानं रसायनं शा[ली]न् गोधूमान्सुखशीलताम्।
क्षीरेक्षुविकृतिर्माषान् सौहित्यं स्नेहनानि च ॥६८॥
मत्स्यं मांसं दिवानिद्रां स्रग्गन्धान् मधुराणि च।
स्वभावस्थत्वमन्विच्छन् मेदस्वी परिवर्जयेत् ॥६९॥
भोजनस्य समग्रस्य पश्चात्पानं जलस्य च।
अतिमात्रस्तूपचितो विशेषाद् वमनक्रियाम् ॥७०॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मेदोरोगाधिकारः।

शीतल जल से स्नान, रसायन औषधों का सेवन, नया शाली चावल, गेहूँ, सुखासन पर हमेशा बैठे या लेटे रहना, दूध एवं इक्षु विकार (दही, घी, खोया, गुड़, राब, चीनी आदि), उड़द की दाल, स्नेहन क्रिया (अभ्यङ्ग एवं तैलादि पान), मछली-मांस खाना, दिवा शयन, पुष्पमाला, चन्दन, इत्र आदि सुगन्धित द्रव्यों का धारण, मधुर पदार्थ का सेवन और भोजन कर चुकने के बाद पुन: अधिक जल पीना—ये सभी कर्म अति स्थूली को छोड़ देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य मेदोरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।

अथोदररोगाधिकारः (४०)

उदररोग चिकित्सा

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसङ्घातजं यतः।
अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वत्र शस्यते ॥१॥

सभी प्रकार के उदर रोग प्राय: दोषसंघातजन्य कारणों से उत्पन्न होते हैं। अत: सभी प्रकार के उदररोगों में वातादिदोष शमनी चिकित्सा करनी चाहिए।

उदररोग में पथ्य (च.द.)

उदरे दोषसम्पूर्णे कुक्षौ मन्दो यतोऽनलः।
तस्माद् भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥२॥
रक्तशालीन् यवान् मुद्गाञ् जाङ्गलांश्च मृगद्विजान्।
पयोमूत्रासवारिष्टमधु शीधु च शीलयेत् ॥३॥

उदर के दोष पूर्ण होने से पाचकाग्नि मन्द होती है। इसलिए पहले ही पाचकाग्नि को प्रदीप्त करने वाले तथा पचने में हल्के द्रव्यों का भोजन करना चाहिए। यथा पुराना लालशालीचावल, यव, मूँग, जंगली पशु-पक्षियों का मांस, गोदुग्ध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु और शीधु का प्रयोग उदर रोगियों के लिए हितकारक है।

उदररोग में विरेचन (च.द.)

दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गनिरोधनात्।
सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥
पाययेत्तैलमेरण्डं समूत्रं सपयोऽपि वा ॥४॥

उदर के अन्दर दोषों के अधिक सञ्चित हो जाने पर स्रोतों के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं तथा अवरोध के कारण अन्न परिपाक जन्य रस का संवहन नहीं होने के कारण उदर में ही सञ्चित होने लगता है और उदर रोग हो जाता है। अत: वैद्य उक्त रोगी को नित्य एरण्डतैल ५ तोले (६० मि.ली.) और गोमूत्र १० तोला (११५ मि.ली.) मिलाकर पिलाना चाहिए। अथवा गोमूत्र की जगह गोदुग्ध मिलाकर भी पिलाया जा सकता है। इस प्रकार उदररोगी को विरेचन कराना चाहिए।

वातोदर में क्रियाक्रम (च.द.)

वातोदरं बलवतः स्नेहस्वेदैरुपाचरेत्।
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात्स्निग्धं विरेचनम् ॥५॥
हते दोषे परिम्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम्।
यथाऽस्यानवकाशत्वाद् वायुर्नाध्मापयेत्पुनः ॥६॥

वातोदर रोग में रोगी के बलवान् होने पर पहले स्नेहपान कराकर स्वदेन करें। तत्पश्चात् स्निग्ध-स्विन्न हुए उदरी को एरण्डतैलादि से स्निग्ध विरेचन कराना चाहिए। विरेचन होने पर मृदु हुए उदर को स्वच्छ वस्त्र से बाँध देना चाहिए। उदर को बाँधने से उदर में खाली जगह के अभाव से वायु का संचय जन्य आध्मान पुन: नहीं होता है।

विरेचन के अन्त में पेया (च.द.)

विरिक्तं च यथादोषहरैः पेया शृगा हिता ॥७॥

विरेचन हो जाने पर दोषानुसार वातादि दोषों को नष्ट करने वाले पदार्थों (दशमूलादिक) के क्वाथ द्वारा सिद्ध पेया पिलानी चाहिए।

उदररोग में तक्र (च.द.)

वातोदरे पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम्।
शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥८॥
यमानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी।
पिबेन्मधुयुतं तक्रं व्यक्ताम्लं नातिपेलवम् ॥९॥

उदर रोगों में दोषानुसार तक्रपान कराने की विधि—(१) वातोदर रोग में—तक्र के साथ पिप्पलीचूर्ण और सैन्धवलवण मिलाकर पिलाना चाहिए। (२) पित्तोदररोग में—चीनी और मरिचचूर्ण मिलाकर मीठा तक्र पिलाना चाहिए। (३) कफोदर रोग में—अजवायनचूर्ण, सैन्धवलवण, श्वेतजीरा, सोंठचूर्ण, मरिच-चूर्ण और पीपरचूर्ण तथा मधु मिलाकर तक्र पिलाना चाहिए। किन्तु यह तक्र अधिक पतला न हो तथा थोड़ा खट्टा होना चाहिए।

उदररोगियों में विविध रूप में तक्र प्रयोग (च.द.)

मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः।
युक्तं प्लीहोदरी जातं सव्योषन्तु दकोदरी ॥१०॥
बद्धोदरी तु हवुषादीप्यकाजाजिसैन्धवैः।
पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥११॥
त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी।
गौरवारोचकार्त्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम्।
तक्रं वातकफार्त्तानाममृतत्वाय कल्पते ॥१२॥

प्लीहोदरी में—तक्र के साथ मधु, तिलतैल, वचा, शुण्ठी, सौंफ, कूठ एवं सैन्धवलवण मिलाकर पिलाना हितकर है। जलोदरी में—त्रिकटूचूर्ण मिलाकर तक्र पिलाना हितकर है।

बद्धोदरी में—हाउबेर, अजवायन, जीरा और सैन्धवलवण के चूर्णों को तक्र में मिलाकर पिलाना हितकर है। छिद्रोदरी में—पिप्पलीचूर्ण और मधु को तक्र में मिलाकर पिलाना हितकर है। सन्निपातोदरी में—शुण्ठी, पिप्पली, मरिच, यवक्षार एवं सैन्धव लवण चूर्णों को तक्र में मिलाकर पिलाना हितकर है। इस प्रकार शरीरगौरव, अरुचि, मन्दाग्नि, अतिसार, वात एवं कफ से पीड़ित रोगियों के लिए तक्र अमृत के समान है।

वातोदर में कर्म (च.द.)

वातोदरे पयोऽभ्यासो निरूहो दाशमूलिकः।
सोदावर्त्ते मरुद्घ्नाम्लश्टृतैरण्डानुवासनः ॥१३॥

वातोदर रोगी को सदा दुग्धपान कराना चाहिए। पानी की जगह दूध ही देना चाहिए। दशमूलक्वाथ से निरूहबस्ति देनी चाहिए। यदि वातोदर के साथ उदावर्त भी हो तो वातघ्न (दशमूलादिक) औषध क्वाथ तथा अम्ल (काञ्जी) द्वारा साधित एरण्डतैल की अनुवासन बस्ति देनी चाहिए।

मानकन्द साधित क्षीरपाक (च.द.)

पुराणं माणकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततण्डुलम्।
साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यतसेत् पायसं तु तत् ॥१४॥
हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि।
सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः ॥१५॥

२५ ग्राम पुराना मानकन्द, ५० ग्राम शालिचावल, गोदुग्ध २०० मि.ली. तथा जल २०० मि.ली. लें। इन्हें एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में एक साथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाककर खीर बना लें। इसके सेवन से वातोदर, शोथ, संग्रहणी एवं पाण्डु आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह योग वैद्यों द्वारा निर्दोष एवं निरुपद्रव कहा गया है।

वातोदर में एरण्ड तैल के तीन प्रयोग

एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं
गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा।
निहन्ति वातोदरशोथशूलं
क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥१६॥

(१) एरण्डतैल १२ मि.ली. को गरम दशमूलक्वाथ ५० मि.ली. में मिलाकर पिलावें। (२) अथवा गोमूत्र २५ मि.ली. में त्रिफलाक्वाथ ५० मि.ली. मिलाकर पिलाने से वातोदर, शोथ एवं शूल नष्ट हो जाते हैं। (३) अथवा दशमूलक्वाथ ५० मि.ली. में २५ मि.ली. गोमूत्र मिलाकर पिलाने से वातोदर, शोथ, शूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

१. कुष्ठादिचूर्ण (भा. प्र.)

कुष्ठं दन्ती यवक्षारो व्योषं त्रिलवणं वचा।
अजाजी दीप्यकं हिङ्गु स्वर्जिका चव्यचित्रकम् ॥
शुण्ठी चोष्णाम्भसा पीतं चूर्णं वातोदरं जयेत् ॥१७॥

१. कूठचूर्ण, २. दन्तीमूलचूर्ण, ३. यवक्षार, ४. सोंठचूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. मरिचचूर्ण, ७. सैन्धवलवण, ८. सौवर्चललवण, ९. विडलवण, १०. वचचूर्ण, ११. जीराचूर्ण, १२. अजवायनचूर्ण, १३. शुद्ध हिंगुचूर्ण, १४. सर्जिक्षारचूर्ण, १५. चव्यचूर्ण, १६. चित्रकचूर्ण और १७. सोंठचूर्ण (समभाग) लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम से ५ ग्राम तक की मात्रा में उष्णोदक के साथ सेवन करने से वातोदर रोग शान्त हो जाता है।

मात्रा—३ से ५ ग्राम तक। **अनुपान**—गरम पानी से। गन्ध—हिङ्गु गन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—वातोदर में।

२. सामुद्रादि चूर्ण (च.द.)

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि
क्षारं यमानीमजमोदकञ्च।
सपिप्पलीचित्रकशृङ्गबेरं
हिङ्गुर्विडञ्चेति समानि कुर्यात् ॥१८॥
एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि
भुञ्जीत पूर्वं कवलं प्रशस्तम्।
वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं
वातास्रकोपं ग्रहणीं प्रदुष्टाम् ॥
अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं
भगन्दरं चापि निहन्ति सद्यः ॥१९॥

१. सामुद्रलवण, २. सौवर्चललवण, ३. सैन्धवलवण, ४. यवक्षार, ५. अजवायन, ६. अजमोदा, ७. पीपर, ८. चित्रकमूल, ९. सोंठ, १०. विडलवण और ११. शुद्ध हींग (समभाग) लें। इन्हें एक साथ सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'सामुद्रादिचूर्ण' को भोजन के पहले प्रथम कौर (ग्रास) में १२ ग्राम घी के साथ मिलाकर खाना चाहिए। इस चूर्ण की मात्रा ३ से ६ ग्राम तक है। १ कौर भात एवं १० ग्राम घी के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वातरक्त, ग्रहणीविकार, सभी तरह के अर्श, पाण्डुरोग और भगन्दर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३ से ६ ग्राम तक। **अनुपान**—घी और १ कौर भात से। **गन्ध**—हिङ्गुगन्धी। **वर्ण**—किञ्चिद्धरित रंग का। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—वातोदर, गुल्म, अजीर्ण एवं ग्रहणी विकार में।

पित्तोदररोग की चिकित्सा (वंगसेन)

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत्।
दुर्बलं त्वनुवास्यादौ शोधयेत्क्षीरबस्तिना ॥२०॥

सजातबलकायाग्निं जातस्निग्धं विरेचयेत्।
त्रिवृत्कल्केन पयसा रुबुकस्य श्रृतेन वा ॥२१॥
सातलात्रायमाणाभ्यां कृतेनारग्वधेन च।
घृतं पित्तोत्तरे देयं मधुरौषधसाधितम् ॥२२॥

पित्तोदर रोग में यदि रोगी बलवान् हो तो पहले विरेचन द्वारा पेट साफ करा लेना चाहिए। किन्तु यदि रोगी कमजोर हो तो क्षीर मिश्रित औषधों से सिद्ध तैलादिक के द्वारा अनुवासन बस्ति के पश्चात् बलवान् हो जाने पर त्रिवृत्चूर्ण दूध के साथ या एरण्ड बीज पीसकर २० ग्राम, दूध १०० मि.ली. तथा जल १०० मि.ली. पकावें तथा दुग्धावशेष रहने पर छानकर पिलावें। अथवा—सातला एवं त्रायमाण १०-१० ग्राम, दूध ५० मि.ली. और जल ५० मि.ली. मिलाकर पकावें और पिलावें। अथवा केवल अमलतासफलमज्जा २० ग्राम, गोदुग्ध १०० मि.ली. तथा जल १०० मि.ली. मिलाकर एक साथ पकावें तथा दुग्धावशेष रहने पर पिलावें। बाद में मधुरादिगण से सिद्ध घृत को पिलाना चाहिए।

कफोदररोग की चिकित्सा (वङ्गसेन)

व्योषयुक्तं कुलत्थाम्बु पयो वा भोजने हितम् ॥
गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णायस्कृतिभिस्तथा।
सक्षीरतैलपानैश्च शमयेत्तु कफोदरम् ॥२३॥

कफज उदररोग में विरेचन और बस्ति के द्वारा शुद्ध हो जाने के बाद कुलत्थक्वाथ में त्रिकटुचूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए। या गरम दूध का पान कराना हितकर है। गोमूत्र या अरिष्ट का पान कराना चाहिए। पुनर्नवारिष्ट, अभयारिष्ट, कुमार्यासव, अयस्कृति (लौहभस्म, पुनर्नवादिमण्डूर, नवायसलौह आदि कफघ्न औषधों) का प्रयोग करना चाहिए। अथवा गरम दूध में एरण्ड तैल मिलाकर पिलाने से कफोदर रोग का शमन होता है।

सन्निपातोदररोग की चिकित्सा (वङ्गसेन)

सन्निपातोदरे कार्य एष एव क्रियाक्रमः।
रोहितकाभयाकल्कं गोमूत्रेण विभावितम् ॥
पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शः कृमिगुल्मनुत् ॥२४॥

सन्निपातज उदररोग में वात-पित्त-कफ नाशक चिकित्सा करनी चाहिए। रोहीतक छाल और हरीतकी फलदल क्वाथ में समभाग गोमूत्र मिलाकर पिलाना चाहिए। या इन दोनों के चूर्ण को गोमूत्र भावित कल्क खिलाना चाहिए। इसके सेवन से सभी प्रकार के उदर रोग, प्लीहरोग, प्रमेह, अजीर्ण, कृमि और गुल्म रोग नष्ट हो जाते हैं।

बद्धोदररोग की चिकित्सा (अ.हृ.)

स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम्।
सतैललवणं दद्यान्निरूहं सानुवासनम् ॥२५॥
परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णञ्चास्मै विरेचनम्।
उदावर्त्तहरं कर्म कार्यं यच्चानिलापहम् ॥२६॥

बद्धोदर रोग में पहले स्वेदन करके पुनः गोमूत्र, तीक्ष्ण औषध (सोंठ-लशुनादि), तैल एवं लवण मिलाकर निरूह तथा अनुवासन बस्तिकर्म करना चाहिए। साथ में स्रंसन एवं वातानुलोमक अन्न तथा तीक्ष्ण विरेचक औषधों का प्रयोग करना चाहिए और उदावर्त्त एवं वातनाशक क्रिया करनी चाहिए।

छिद्रोदर रोग की चिकित्सा (अ.हृ.)

छिद्रोदरमृते स्वेदाच्छ्लेष्मोदरवदाचरेत्।
जातं जातं जलं स्राव्यमेतं तद्यापयेद्भिषक् ॥२७॥

छिद्रोदर रोग में स्वेदनकर्म के बिना श्लेष्मोदर रोग की अन्य सारी चिकित्सा करनी चाहिए। बार-बार उत्पन्न हुए जल को निकालते रहना चाहिए। इसी प्रकार वैद्य उक्त छिद्रोदर रोगी को जीवन-यापन कराता रहे। यद्यपि छिद्रोदर को असाध्य माना है तथापि कुशल शल्य चिकित्सक से सावधानीपूर्वक शल्यकर्म कराना चाहिए।

जलोदर रोग की चिकित्सा (अ.हृ.)

अपां दोषहराण्यादौ योजयेदुदकोदरे।
मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविधक्षारवन्ति च ॥
दीपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारैरुपाचरेत् ॥२८॥

जलोदर में जल के दोषों को दूर करने वाली गोमूत्र के साथ अनेक प्रकार की तीक्ष्ण औषधों एवं क्षारों को देना चाहिए। दीपन, कफनाशक आहारों से इस रोग की चिकित्सा करें।

जलोदर में शस्त्रकर्म (अ.हृ.)

इत्यौषधैरप्रशमे त्रिषु बद्धोदरादिषु।
प्रयुञ्जीत भिषक् शस्त्रमार्त्तबन्धुनृपार्थितः ॥२९॥

उपर्युक्त वर्णित १. बद्धोदर, २. छिद्रोदर, ३. जलोदर रोगों में यदि औषधि प्रयोग से कोई लाभ नहीं हो तो रोगी के सम्बन्धी एवं राजा से आज्ञा लेकर उनका शस्त्र कर्म करना चाहिए।

३. पुनर्नवाष्टकक्वाथ (च.द.)

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठी-
तिक्ताऽमृतादार्वभयाकषायः।
सर्वाङ्गशोथोदरकासशूल-
श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥३०॥

१. पुनर्नवामूल, २. निम्बत्वक्, ३. पटोलपञ्चाङ्ग, ४. शुण्ठी, ५. कटुकी, ६. गुडूचीकाण्ड, ७. दारुहल्दी, ८. हरीतकीफलदल—ये आठों द्रव्य समभाग लेकर पृथक्-पृथक् यवकुट कर एक साथ मिलाकर संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ को २५ ग्राम की मात्रा में लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल

में रात्रिपर्यन्त भिंगावें और प्रातः मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। अष्टमांश रहने पर छानकर रोगी को पिलावें। इसके सेवन से सर्वाङ्गशोथ, उदररोग, कास, श्वास, शूल और पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं।

४. पुनर्नवादिक्वाथ (च.द.)

पुनर्नवा दारु निशा सतिक्ता-
पटोलपथ्यापिचुमर्दमुस्ताः ।
सनागराच्छिन्नरुहेति सर्वैः
कृतः कषायो विधिना विधिज्ञैः ॥३१॥
गोमूत्रयुग्गुग्गुलुना च युक्तः
पीतः प्रभाते नियतं नराणाम् ।
सर्वाङ्गशोथोदरकासशूल-
श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥३२॥

१. पुनर्नवामूल, २. देवदारु, ३. हल्दी, ४. कटुकी, ५. पटोलपञ्चाङ्ग, ६. हरीतकीफलदल, ७. निम्बत्वक्, ८. नागरमोथा, ९. सोंठ और १०. गुडूची (समभाग) लें—इन सभी द्रव्यों को पृथक्-पृथक् यवकुट कर एक साथ मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम इस यवकुट क्वाथ को १६ गुने (४०० मि.ली.) जल में रात्रिपर्यन्त भिंगोकर प्रातः मन्दाग्नि से क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छानकर गोमूत्र के साथ रोगियों को पिलाने से सर्वाङ्गशोथ, उदररोग, कास, शूल, श्वास एवं पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं।

५. हरीतक्यादिक्वाथ (च.द.)

हरीतकीनागरदेवदारु-
पुनर्नवाच्छिन्नरुहाकषायः ।
सगुग्गुलुर्मूत्रयुतस्तु पेयः
शोथोदराणां प्रवरः प्रयोगः ॥३३॥

१. हरीतकीफलदल, २. सोंठ, ३. देवदारु, ४. पुनर्नवामूल तथा गुडूचीकाण्ड (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों को पृथक्-पृथक् यवकुट कर एक साथ मिलावें और काचपात्र में संग्रह करें। २५ ग्राम इस यवकुट क्वाथ को १६ गुने (४०० मि.ली.) जल में रात्रिपर्यन्त भिंगो दें और प्रातः मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और उस गरम क्वाथ में शुद्ध गुग्गुलु १ ग्राम तथा २५ मि.ली. गोमूत्र मिलाकर पिलाने से शोथ एवं उदररोग में अत्यन्त लाभ करता है।

६. दशमूलादिक्वाथ (ग.नि.)

दशमूलदारुनागरछिन्नरुहापुनर्नवाभयाक्वाथः ।
जयति जलोदरशोथश्लीपदगलगण्डवातरोगांश्च ॥३४॥

१. बेलछाल, २. अग्निमन्थछाल, ३. सोनापाठाछाल, ४. पाढलछाल, ५. गम्भारछाल, ६. शालपर्णी, ७. पृश्निपर्णी, ८. बृहती, ९. कण्टकारीपञ्चाङ्ग, १०. गोखरु, ११. देवदारु, १२. सोंठ, १३. गुडूची, १४. पुनर्नवामूल तथा १५. हरीतकी फलदल—उपर्युक्त सभी द्रव्य समभाग लेकर पृथक्-पृथक् यवकुट कर एक साथ मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ को २५ ग्राम लेकर १६ गुना जल में रात्रिपर्यन्त भिंगो दें। प्रातः मन्दाग्नि पर पकावें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और रोगी को पिलावें। इस क्वाथ का पान करने से जलोदर, शोथ, श्लीपद, गलगण्ड और वातरोग नष्ट हो जाते हैं।

७. विशालादिचूर्ण (यो.र.)

विशाला शङ्खिनी दन्ती त्रिवृन्नीलीफलत्रयम् ।
निशा विडङ्गं कम्पिल्लं मूत्रेणोदरवान्पिबेत् ॥३५॥

१. इन्द्रायणमूल, २. शंखपुष्पी, ३. दन्तीमूल, ४. निशोथ, ५. नीलमूल, ६. आमलाफलदल, ७. हरीतकीफलदल, ८. बिभीतकफलदल, ९. हल्दी, १०. विडङ्ग और ११. शुद्ध कम्पिल्लक (समभाग) लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों को एक साथ कूटकर सूक्ष्मचूर्ण करें। पुनः काचपात्र में संग्रहीत करें। इस विशालादिचूर्ण को ३ से ६ ग्राम तक की मात्रा में गोमूत्र ५० मि.ली. के साथ पीने से उदर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा— ३ से ६ ग्राम। **अनुपान**—गोमूत्र से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—उदररोगों में।

८. पुनर्नवादिचूर्ण-१ (च.द.)

पुनर्नवां दार्वभयां गुडूचीं
पिबेत्समूत्रां महिषाक्षयुक्ताम्
त्वग्दोषशोथोदरपाण्डुरोग-
स्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु ॥३६॥

१. पुनर्नवा, २. दारुहल्दी, ३. हरीतकीफलदल तथा ४. गुडूची—इन्हें एक साथ मिलाकर सूक्ष्मचूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ से ६ ग्राम की मात्रा में लेकर २ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु तथा ५० मि.ली. गोमूत्र के साथ मिलाकर पीने से चर्मरोग, शोथ, उदररोग, स्थूलता, मुख से अधिक द्रवांश निकलना या ऊर्ध्वशरीर में कफाधिक्य से होने वाले रोगों में लाभ करता है।

मात्रा—३ से ६ ग्राम। **अनुपान**—गोमूत्र एवं शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—उदररोग, शोथ, स्थौल्यादि में।

९. पुनर्नवादिचूर्ण-२ (च.द.)

पुनर्नवादार्वमृतापाठाबिल्वश्वदंष्ट्रिकाः ।
बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यश्चित्रकं वृषम् ॥३७॥

समभागानि चूर्णानि गवां मूत्रेण वा पिबेत्।
बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम्॥
हन्ति शूलोदराण्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि॥३८॥

१. पुनर्नवामूल, २. देवदारु, ३. गुडूची, ४. पाठाछाल, ५. बिल्वत्वक्, ६. गोक्षुर, ७. बृहती, ८. कण्टकारी, ९. हल्दी, १०. दारुहल्दी, ११. पीपर, १२. चित्रकमूल और १३. वासामूल (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों को एक साथ कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस पुनर्नवादिचूर्ण को ३ से ६ ग्राम की मात्रा में गोमूत्रानुपान के साथ लेने से सभी प्रकार के शोथ, शूल, आठ प्रकार के उदर रोग तथा दुष्टव्रणों का नाश करता है।

मात्रा—३ से ६ ग्राम। **अनुपान**—गोमूत्र से। **गन्ध**—काष्ठौषधि गन्धी। **वर्ण**—किञ्चित् पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ एवं उदरशूल में।

१०. पटोलादिचूर्ण (यो.र.)

पटोलपत्रं रजनीं विडङ्गं त्रिफलात्वचम्।
कम्पिल्लकं नीलिनीञ्च त्रिवृताञ्चेति चूर्णयेत्॥३९॥
षडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान्।
कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण ना पिबेत्॥४०॥
विरिक्तो मृदु भुञ्जीत भोजनं जाङ्गलै रसैः।
मण्डं पेयां च पीत्वा तु सव्योषं षडहं पयः॥४१॥
शृतं पिबेत्ततश्चूर्णं पिबेदेवं पुनः पुनः।
हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुञ्चापकर्षति॥४२॥

१. पटोलपत्र, २. हल्दी, ३. वायविडङ्ग, ४. आमलाफल-त्वक्, ५. हरीतकीफलदल, ६. बहेड़ाफलदल, ७. शुद्ध कम्पिल्लक, ८. नीलीमूल तथा ९. त्रिवृच्चूर्ण—पटोलपत्र से बहेड़ा फलदल तक के सभी छः द्रव्य २५-२५ ग्राम लें और कम्पिल्लक से त्रिवृत् तक के तीनों द्रव्य क्रमशः ५० ग्राम, ७५ ग्राम तथा १०० ग्राम लें। इन्हें एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ से ६ ग्राम की मात्रा में १ पल (५० मि.ली.) गोमूत्र के साथ पीने से मृदु विरेचन होगा। उसके बाद जंगली पशु-पक्षियों के मांसरस और पुराना चावल का भात पथ्य में देना चाहिए या शाकाहारी मण्ड-पेया-विलेपी का सेवन करें। ततः ६ दिनों तक त्रिकटु यवकुट साधित गोदुग्ध का पान करावें। ७वें दिन पुनः इस चूर्ण का सेवन करें। इस तरह कई बार पुनः-पुनः इस चूर्ण का सेवन करने से सभी प्रकार के उदररोग, जलोदर, कामला, पाण्डु एवं शोथरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३ से ६ ग्राम। **अनुपान**—गोमूत्र से। **गन्ध**—निर्गन्ध अथवा काष्ठौषधि की गन्ध। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कषाय-तिक्त। **उपयोग**—विरेचनार्थ, उदररोग, जलोदर एवं शोष में।

११. नारायणचूर्ण (च.द.)

यमानी हवुषा धान्यं त्रिफला चोपकुञ्चिका।
कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा॥४३॥
शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी च चित्रकम्।
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम्॥४४॥
विडङ्गञ्च समांशानि दन्त्या भागत्रयं तथा।
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा॥४५॥
एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः।
नैनं प्राप्याभिवर्द्धन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः॥४६॥
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना।
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया॥४७॥
दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसैः।
परिकर्त्ते च वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके॥४८॥
भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे।
हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे॥४९॥
दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे।
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम्॥५०॥

१. अजवायन, २. हाऊबेर, ३. धनियाँ, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. स्याहजीरा, ८. कारवी (मंगरैला), ९. पिपरामूल, १०. अजमोदा, ११. कचूर, १२. वच, १३. सोयाबीज, १४. श्वेतजीरा, १५. सोंठ, १६. पीपर, १७. मरिच, १८. सत्यानाशी, १९. चित्रकमूल, २०. यवक्षार, २१. सज्जिक्षार, २२. पुष्करमूल, २३. कूठ, २४. सैन्धवलवण, २५. सामुद्रलवण, २६. सौवर्चललवण, २७. विडलवण, २८. औद्भिल्लवण और २९. वायविडङ्ग— सभी २९ द्रव्य प्रत्येक २५-२५ ग्राम लें; ३०. निशोथ एवं ३१. इन्द्रायणमूल दोनों ५०-५० ग्राम लें तथा ३२. सातला (सेहुण्डमूल) की जड़ १०० ग्राम लें। इन सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'नारायणचूर्ण' कहते हैं। भगवान् विष्णु जिस प्रकार सभी असुरों एवं राक्षसों का संहार करते हैं उसी प्रकार यह चूर्ण भी सभी रोगों को नष्ट कर देता है। इसीलिए उपमालंकारानुसार इसका नाम नारायणचूर्ण रखा है जो विष्णु वाचक है। इस चूर्ण को उदर रोग में तक्र के साथ, गुल्म में बदरीत्वक् क्वाथ से, आनद्धवात (आध्मानादि) में मद्य के साथ, वातव्याधि में प्रसन्ना (सुराभेद) से, विबन्ध में मस्तु से, अर्शरोग में अनारफल के रस से, परिकर्त्तन (उदरशूल=काटने =कर्त्तन जैसी पीड़ा) में वृक्षाम्लरस एवं क्वाथ से, अजीर्ण में उष्णजल से तथा भगन्दर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणीरोग, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष, मूलविष,

गरविष, कृत्रिमविष में भी इसके प्रयोग से लाभ होता है। पहले उष्ण घृत पीकर कोष्ठ को स्निग्ध कर लें ततः विरेचनार्थ इस चूर्ण का सेवन करें।

मात्रा—३ से ६ ग्राम। **अनुपान**—रोगानुसार। **गन्ध**—काष्ठौषधि गन्धी। **वर्ण**—खाखी किञ्चिद् हरितवर्ण। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—विरेचनार्थ, उदररोग, विबन्ध, आध्मान एवं विषशमनार्थ।

१२. स्नुहीक्षीरभावित तण्डुलनिर्मित पूप (च.द.)

स्नुक्पयसा परिभाविततण्डुल चूर्ण विनिर्मितः पूप ।
उदरमुदारं हिंस्याद्योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥५१॥

स्नुहीक्षीर ५० मि.ली. तथा शालितण्डुल १०० ग्राम दोनों को एक पात्र में रखें और प्रातः उसे सिल पर पीसें तथा थोड़ा गोदुग्ध एवं गुड़ मिलाकर घी में तलकर पूप (पुआ) बना लें। इस पूप को १ सप्ताह तक उदररोगी को खिलाने से विरेचन कराकर बढ़ा हुआ उदररोग भी नष्ट हो जाता है।

१३. सहस्रपिप्पली प्रयोग (च.द.)

स्नुहीपयोभावितानां पिप्पलीनां पयोऽशनः ।
सहस्रं चेह भुञ्जीत शक्तितो जठरामयी ॥५२॥

पिप्पलीचूर्ण को थूहर के दूध में ७ बार भावना (या क्षारपाणि के अनुसार २१ बार भावना) देकर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रथम दिन ५ पिप्पलीचूर्ण का सेवन करें, दूसरे दिन १० पिप्पलीचूर्ण का सेवन करें। इसी प्रकार प्रतिदिन १०-१० पिप्पलीचूर्ण बढ़ाते जायें। १० दिन के बाद १०-१० पिप्पलीचूर्ण की मात्रा घटाते जाना चाहिए। २० दिन में २०० नग पिप्पलीचूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। इसे एक कल्प कहेंगे। अतः ५ कल्प में कुल १००० नग पिप्पलीचूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। इस अवधि में उदर रोगी को केवल दुग्धाहार पर ही रखना चाहिए। अथवा अपनी शक्ति के अनुसार ५-५ पिप्पलीचूर्ण का प्रयोग किया जा सकता है। इसके सेवन से उदर रोग के रोगी को शक्ति मिलती है, भूख लगती है तथा उदररोग नष्ट हो जाता है।

नोट—रोगी १ या २ कल्प तक भी कर सकता है। अर्थात् २०० से ४०० पिप्पलीचूर्ण भी खा सकता है।

१४. वर्धमान पिप्पली प्रयोग (च.द.)

पिप्पलीवर्द्धमानं वा कल्पदृष्टं प्रयोजयेत् ।
जठराणां विनाशाय नास्ति तेन समं भुवि ॥५३॥

अथवा कल्पोक्त विधि के अनुसार 'वर्धमानपिप्पली' का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि उदर रोगों को नाश करने के लिए इसके जैसी कोई अन्य औषधि नहीं है।

१५. देवद्रुमादि योगद्वय (च.द.)

देवद्रुमं शिग्रु मयूरकञ्च
गोमूत्रपिष्टं ह्यथवाऽश्वगन्धाम् ।
पीत्वाऽऽशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं
कृमीन् सशोथानुदरं च दूष्यम् ॥५४॥

देवदारु, शिग्रुत्वक् और अपामार्गपञ्चाङ्ग—इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर गोमूत्र से पीसे और गोमूत्र में ही घोलकर पियें। अथवा इसी प्रकार केवल अश्वगन्धा को गोमूत्र के साथ पीसकर गोमूत्र में मिलाकर पीने से सभी प्रकार के उदर रोग, कृमि और शोथ रोग नष्ट हो जाते हैं।

१६. अष्टमूत्र प्रयोग (च.द.)

मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च शस्यते ॥५५॥

आठों प्रकार के मूत्र (गोमूत्र-महिषीमूत्र-अजामूत्र-मेषीमूत्र-हस्थिमूत्र-उष्ट्रमूत्र-अश्वमूत्र-खरमूत्र) को मिलाकर या पृथक्-पृथक् पिलाने से या गरम कर सेंक करने से उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

१७. सदुग्धमाहिषमूत्र प्रयोग (च.द.)

सक्षीरं माहिषं मूत्रं निराहारः पिबेन्नरः ।
शाम्यत्यनेन जठरं सप्ताहादिति निश्चयः ॥५६॥

उदररोग से पीड़ित व्यक्ति को १ सप्ताह तक २५० मि.ली., महिषीक्षीर में २५ मि.ली. गोमूत्र मिलाकर दिन में ३-४ बार पिलाना चाहिए। अन्य प्रकार का कोई भी खान-पान देना बन्द कर दें। इस प्रकार ७ दिन तक प्रयोग करने से उदररोग निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है।

१८. देवदार्वादि कल्कोपनाह (च.द.)

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः ।
साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्युदरं शनैः ॥५७॥

१. देवदारु, २. पलाशबीज, ३. गजपीपर, ४. सहिजनछाल, ५. अश्वगन्धा तथा ६. गोमूत्र—देवदारु से अश्वगन्धा तक के सभी ५ द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को २५ ग्राम लेकर गोमूत्र के साथ सिल पर पीस लें और कटोरी में रखकर आग में गरम करें तथा उदर में जहाँ पर रुग्ण भाग हो, सुहाता-सुहाता गरम लेप करें। ऐसा दिन में २-३ बार करना चाहिए।

१९. गवाक्ष्यादि प्रयोग (च.द.)

गवाक्षी शङ्खिनी दन्ती नीलिनी कल्कसंयुतम् ।
सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रं पातुमाचरेत् ॥५८॥

१. इन्द्रायणमूल, २. शंखपुष्पी, ३. दन्तीमूल तथा ४. नीलीमूल—इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करें और काचपात्र में

संग्रहीत करें। ३ से ६ ग्राम तक इस चूर्ण को गोमूत्र के साथ २ बार रोज पीने से सभी प्रकार के उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

२०. उदरघ्न तीन योग (च.द.)

गोमूत्रयुक्तं महिषीपयो वा
क्षीरं गवां वा त्रिफलाविमिश्रम्।
क्षीरान्नभुक् केवलमेव गव्यं
मूत्रं पिबेद्वा श्वयथूदरेषु ॥५९॥

(१) गोमूत्र १५ से २५ मि.ली. तथा भैंस का दूध २५० मि.ली. मिलाकर सुबह-शाम पीने से समस्त उदररोग नष्ट हो जाते हैं। अथवा—(२) गोदुग्ध २५० मि.ली. में त्रिफलाचूर्ण ६ ग्राम मिलाकर पीने से उदररोग नष्ट हो जाते हैं। अथवा—(३) गोदुग्ध के साथ केवल गोमूत्र ५० मि.ली. तक प्रतिदिन पीने से समस्त उदररोग और शोथरोग नष्ट हो जाते हैं।

२१. शिलाजत्वादि प्रयोग (च.द.)

शिलाजतूनां मूत्राणां गुग्गुलोस्त्रैफलस्य च।
स्नुहीक्षीरप्रयोगश्च शमयत्युदरामयम् ॥६०॥

१. शुद्ध शिलाजतु २ ग्राम, २. गोमूत्र ५० मि.ली., ३. शुद्ध गुग्गुलु २ ग्राम, ४. त्रिफलाचूर्ण २ ग्राम और ५. स्नुहीक्षीर २ ग्राम के सतत प्रयोग से उदररोग नष्ट हो जाता है। इसे गोमूत्र में घोलकर पिलावें।

२२. इच्छाभेदीरस-१ (रसमञ्जरी)

शुण्ठीमरिचसंयुक्तं रसगन्धकटङ्कणम्।
जैपालस्त्रिगुणः प्रोक्तः सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥६१॥
इच्छाभेदी द्विगुञ्जः स्यात्सितया सह पाययेत्।
पिबेत्तु चुलुकं यावत् तावद्वारान् विरेचयेत्।
तक्रौदनञ्च दातव्यमिच्छाभेदी यथेच्छया ॥६२॥

१. सोंठचूर्ण १ भाग, २. मरिचचूर्ण १ भाग, ३. शुद्ध पारद १ भाग, ४. शुद्ध गन्धक १ भाग, ५. शुद्ध सुहागा १ भाग और ६. शुद्ध जयपाल ३ भाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की अच्छी तरह से कज्जली बनावें। पुनः उस कज्जली के साथ अन्य चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें। ततः २५०-२५० मि.ग्रा. (२-२ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। विबन्ध एवं उदररोग से पीड़ित व्यक्ति १ वटी २ ग्राम चीनी के साथ खाकर जल पियें। इस वटी को प्रातः खाली पेट लेना चाहिए। जितने चुल्लू जल पीयेगा उतनी ही बार विरेचन होगा। इसीलिए इसका नाम 'इच्छाभेदी' है। जब रोगी को और विरेचन नहीं कराने हों तो चीनी का शर्बत सौंफ पीसकर मिलाकर रोगी को पिलाने से दस्त रुक जाता है। शीतल जल से स्नान के बाद भी दस्त रुक जाता है। शाम को तक्र और भात का भोजन करावें।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—चीनी और शीतल जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्णवर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—विबन्ध, उदररोग, जलोदर एवं शोथ में।

२३. इच्छाभेदी रस-२ (र.का.धे.)

सूतं गन्धञ्च मरिचं टङ्कणं नागराभया।
जैपालबीजसंयुक्तं क्रमोत्तरगुणं भवेत् ॥६३॥
सर्वतुल्यो गुडो देय इच्छाभेदी त्वयं रसः।
द्वित्रिगुञ्जापरिमिता वटी कार्या विचक्षणैः ॥६४॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक २ भाग, ३. मरिच-चूर्ण ३ भाग, ४. शुद्ध सुहागा ४ भाग, ५. सोंठचूर्ण ५ भाग, ६. हरीतकीचूर्ण ६ भाग, ७. शुद्ध जयपाल ७ भाग और ८. गुड़ २८ भाग लें। एक पत्थर के खरल में पहले पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद उस चूर्ण में गुड़ देकर ५-६ घण्टे तक मर्दन करें। इसके बाद ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस गुटिका को इच्छाभेदी रस के नाम से जाना जाता है। यह सुखपूर्वक विरेचन कराती है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताजा जल। **गन्ध**—गुड़ गन्धी। **वर्ण**—गुड़ाभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—उदररोगो में विरेचनार्थ।

२४. इच्छाभेदीरस-३

शुद्धसूतस्य माषैकं गन्धकान्माषकत्रयम्।
बिभीतकस्य माषैकं धात्र्याश्चैव तु माषकम् ॥६५॥
माषद्वयञ्च पिप्पल्याः शुण्ठीनां माषकत्रयम्।
जैपालबीजमज्जाया माषकं विशतिं तथा ॥६६॥
अम्ललोणीरसैः पिट्वा वटिकां कारयेद् बुधः।
कलायपरिमाणां तु भक्षयेद्रेचनार्थकम् ॥६७॥
अम्ललोणीरसैः सार्द्धं तोयमुष्णं पिबेदनु।
तावद्विरिच्यते वेगाद् यावच्छीतं न सेव्यते ॥६८॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक ३ भाग, ३. बहेड़ाचूर्ण १ भाग, ४. आमलाचूर्ण १ भाग, ५. पीपरचूर्ण २ भाग, ६. सोंठचूर्ण ३ भाग और ७. शुद्ध जयपाल २० भाग लें। सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें और उसी के साथ अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर लोणी (नोनी) शाक स्वरस की भावना देकर २-२ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे इच्छाभेदी रस कहते हैं। १-१ वटी की मात्रा में अम्ल लोणी स्वरस के साथ मिलाकर चाटें तथा उष्ण जलानुपान बाद में पीना चाहिए। इससे वेगपूर्वक सम्यक् विरेचन होता है। जब रोगी शीतल जल पीता है तभी दस्त बन्द होता है।

मात्रा—२५० मि. ग्रा.। **अनुपान**—अम्ल लोणी रस तथा उष्णोदक से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी उदररोग, शोथ एवं विबन्ध में।

२५. भेदनीवटी (र.का.धे.)

त्रिकण्टकस्नुक्पयसा पिप्पल्या वटिका कृता।
भेदनीयां सिद्धमता महागदनिषूदनी ॥६९॥

गोक्षुरचूर्ण, स्नुहीक्षीर तथा पीपरचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य २५-२५ ग्राम लें। तीनों द्रव्यों को एक साथ खरल में मर्दन करके १२५-१२५ मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। महारोगों को शान्त करने के लिए सिद्धों ने इसकी प्रशंसा की है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—उदररोग, कुष्ठ, शोथ एवं गुल्म आदि।

२६. नराच रस (रसमञ्जरी)

सूतं टङ्कणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम्।
गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥७०॥
सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजं निस्तुषमेव च।
द्विगुञ्जो रेचने सिद्धो नाराचोऽयं महारसः ॥
गुल्मप्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तं चोष्णवारिणा ॥७१॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध सुहागा १ भाग, ३. मरिचचूर्ण १ भाग, ४. शुद्ध गन्धक २ भाग, ५. पीपरचूर्ण २ भाग, ६. सोंठचूर्ण २ भाग और ७. शुद्ध जयपाल ९ भाग, लें। एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य सभी द्रव्यों के चूर्णों को मिलाकर १ दिन खूब मर्दन करें तथा जल की भावना देकर २-२ रत्ती की वटी बनाकर काचपात्र संग्रहीत करें। इसे नाराचरस कहते हैं। २ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में सेवन करने से सम्यक् रेचन होता है। यह गुल्म, प्लीहोदर एवं उदररोग नष्ट करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्णाभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—गुल्म, प्लीहोदर, उदररोग एवं विबन्ध में।

२७. जलोदराररिस-१ (र.सा.सं.)

पिप्पली मरिचं ताम्रं रजनीचूर्णसंयुतम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जैपालबीजकम् ॥७२॥
निष्कं खादेद् विरेकः स्यात् सद्यो हन्ति जलोदरम्।
रेचनानाञ्च सर्वेषां दध्यम्लं स्तम्भने हितम् ॥
दिनान्ते च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूषकम् ॥७३॥

१. पीपरचूर्ण ५० ग्राम, २. मरिचचूर्ण ५० ग्राम, ३. ताम्रभस्म ५० ग्राम, ४. हल्दीचूर्ण ५० ग्राम, ५. शुद्ध जयपाल २०० ग्राम और ६. स्नुहीक्षीर २०० ग्राम लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और स्नुहीक्षीर की भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। ततः १-१ रत्ती की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें। यद्यपि आचार्यश्री ने इसकी मात्रा १ निष्क (२४ रत्ती = ३ ग्राम) कही है जो आज उचित नहीं है क्योंकि इसमें जयपाल और स्नुहीक्षीर दोनों तीव्र रेचक है। अतः १-१ रत्ती या २ रत्ती तक देना उचित है। इसे १ से २ वटी की मात्रा में जलोदर रोगी को देने से तीव्र रेचन कराकर उदरस्थ जल को कम करता है। अधिक विरेचन होने से निर्जलीकरण होता है। अतः पहले खट्टा दही घोलकर पिलाना श्रेयस्कर है। ऐसा करने से दस्त रुक जाता है। शाम को पुराना शाली चावल का भात और मूंग का यूष भोजन में देना चाहिए।

मात्रा—१ से २ रत्ती (१२५ से २५० मि.ग्रा.)। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—निर्गन्ध (रसायन गन्धी)। **वर्ण**—किञ्चित् पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—जलोदर में।

२८. जलोदराररिस-२

रसेन गन्धं द्विगुणं शिलां च
निशां च बीजं जयपालकस्य।
फलत्रयं त्र्यूषणकञ्च चित्रं
सर्वं विचूर्ण्यापि विभावयेच्च ॥७४॥
दन्तीस्नुहीभृङ्गरसे पृथक् च
सम्भाव्य संशोष्य च सप्तवारात्।
वयोबलं वीक्ष्य तथा ददीत
जाते विरेके च ददीत पथ्यम् ॥७५॥
अन्नं सतक्रं शिशिरानुशायि
जाते बले तत्पुनरेव दद्यात्।
तक्रेण रोगः समुपैति शान्तिं
सिद्धो रसो नाम जलोदरारिः ॥७६॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक २ भाग, ३. शुद्ध मनःशिला १ भाग, ४. हल्दीचूर्ण १ भाग, ५. शुद्ध जयपाल १ भाग, ६. आमलाचूर्ण १ भाग, ७. हरीतकीचूर्ण १ भाग, ८. बहेड़ाचूर्ण १ भाग, ९. सोंठचूर्ण १ भाग, १०. पीपरचूर्ण १ भाग, ११. मरिचचूर्ण १ भाग तथा १२. चित्रकमूलचूर्ण १ भाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की एक खरल में अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण उसी कज्जली में मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर दन्तीमूलक्वाथ, स्नुहीक्षीर तथा भृङ्गराजस्वरस की पृथक्-पृथक् ७-७ भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। रोगी का बल, आयु, रोगबल

आदि का विचार कर १ या २ वटी की मात्रा में उष्णोदक से देना चाहिए। सम्यक् विरेचन हो जाने पर रोगी को तक्र से साथ पुराना शाली चावल का भात खिलाना चाहिए। शीतोपचार तथा शीतल स्थान पर सुलाना चाहिए। ३-४ दिनों तक इस पथ्य का पालन करें। इसके बाद बल आ जाने पर पुनः इस औषधि का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार ३ बार इस औषधि का रुक-रुक कर प्रयोग करने से जलोदररोग शान्त हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—निर्गन्ध (रसायनगन्धी)। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—जलोदर में।

२९. महावह्निरस (र.सा.सं.)

चतुःसूतस्य गन्धाष्टौ रजनीत्रिफलाशिलाः ।
प्रत्येकञ्च द्विभागं स्यात् त्रिवृज्जैपालचित्रकम् ॥७७॥
प्रत्येकं स्यात्त्रिभागञ्च व्योषं दन्ती च जीरकम् ।
प्रत्येकं सप्तभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥७८॥
जयन्तीस्नुक्पयोभृङ्गवह्निवातारितैलकैः ।
प्रत्येकेन क्रमाद् भाव्यं सप्तवारं पृथक् पृथक् ॥७९॥
महावह्निरसो नाम्ना गुञ्जामुष्णजलैः पिबेत् ।
विरेचनं भवेत्तेन तक्रभक्तं ससैन्धवम् ॥८०॥
दिनान्ते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम् ।
सर्वोदरहरः प्रोक्तः श्लेष्मवातहरः परः ॥८१॥

१. शुद्ध पारद ४ भाग, २. शुद्ध गन्धक ८ भाग, ३. हल्दी चूर्ण २ भाग, ४. आमलाचूर्ण २ भाग, ५. हरीतकीचूर्ण २ भाग, ६. बहेड़ाचूर्ण २ भाग, ७. शुद्ध मैनसिल २ भाग, ८. निशोथचूर्ण ३ भाग, ९. शुद्ध जयपाल ३ भाग, १०. चित्रकचूर्ण ३ भाग, ११. सोंठचूर्ण ७ भाग, १२. पीपरचूर्ण ७ भाग, १३. मरिचचूर्ण ७ भाग, १४. दन्तीमूलचूर्ण ७ भाग और १५. जीराचूर्ण ७ भाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली के साथ उपर्युक्त सभी द्रव्यों के चूर्ण मिलाकर मर्दन करें। पुनः जयन्तीस्वरस, स्नुहीक्षीर, भृङ्गराजस्वरस, चित्रकमूलक्वाथ एवं एरण्डतैल से क्रमशः पृथक्-पृथक् ७-७ भावना दें। सूखने पर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'महावह्निरस' कहते हैं। इस औषधि को १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में उष्णोदकानुपान से सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से विरेचन होगा। विरेचन के बाद शाम को तक्र, भात एवं सैन्धवलवण मिलाकर भोजन कराना चाहिए। शीतल जल पीने को नहीं देना चाहिए। इसके सेवन से सभी प्रकार के उदररोग नष्ट हो जाते हैं। इससे कफ और वायु विकार भी नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—समस्त उदर रोग में।

३०. चूलिकावटी

रसो गन्धो विषं तालं त्रिकटु त्रिफला तथा ।
टङ्गणं समभागञ्च जयपालञ्चतुर्गुणम् ॥८२॥
भृङ्गराजरसेनाथ केशराजरसेन वा ।
मधुना वटिका कार्या गुञ्जाद्वयमिता शुभा ॥८३॥
चूलिकाख्या वटी ख्याता शोथोदरविनाशिनी ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च आमवातं हलीमकम् ॥
हन्याद् भगन्दरं कुष्ठं प्लीहानं गुल्ममेव च ॥८४॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. शुद्ध वत्सनाभ १ भाग, ४. शुद्ध हरताल १ भाग, ५. सोंठचूर्ण १ भाग, ६. पीपरचूर्ण १ भाग, ७. मरिचचूर्ण १ भाग, ८. आमलाचूर्ण १ भाग, ९. हरीतकीचूर्ण १ भाग, १०. बहेड़ाचूर्ण १ भाग, ११. शुद्ध सुहागा १ भाग और १२. शुद्ध जयपाल ४४ भाग लें। इस सभी द्रव्यों से ४ गुना लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली के साथ सभी द्रव्यों के सूक्ष्मचूर्ण मिलाकर मर्दन करें। ततः भृङ्गराज या केशराज (भृङ्गराज भेद) स्वरस से मर्दन करें। पुनः थोड़ा मधु देकर मर्दन करें और २-२ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'चूलिकावटी' कहते हैं। यह शोथ तथा सभी उदर रोगों का नाश करती है। इसके अतिरिक्त कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, आमवात, भगन्दर, कुष्ठ, प्लीहरोग एवं गुल्म रोग भी इसके सेवन से नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—उदररोग, प्रमेह एवं शोथ नाशक है।

३१. वैद्यनाथवटी

त्रिकटुकपारदपथ्या समभागं कानकं फलं द्विगुणम् ।
माषप्रमाणवटिका कार्या स्वरसेनाम्ललोणिकायाः ॥
प्रबलजलोदरगुल्मज्वरपाण्ड्वामयनाशिनी प्रोक्ता ।
तिमिराणि पटलविद्रधिप्रबलोदावर्त्तशूलहरी ॥८५॥
कृमिकोठकुष्ठकण्डूपिडकाश्च निहन्ति रोगचयम् ।
सिद्धगुडीयं प्रथिता भुवने श्रीवैद्यनाथपादाज्ञा ॥८६॥

१. सोंठचूर्ण १ भाग, २. मरिचचूर्ण १ भाग, ३. पीपरचूर्ण १ भाग, ४. रससिन्दूर १ भाग, ५. हरीतकीचूर्ण १ भाग तथा ६. शुद्ध जयपाल १० भाग लें। सर्वप्रथम रससिन्दूर को एक साफ खरल में मर्दन करें। ततः अन्य सभी द्रव्यों के चूर्णों को रससिन्दूर के साथ मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद अम्ल लोणिकाशाकस्वरस की भावना देकर $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ रत्ती माष प्रमाण की

वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'वैद्यनाथ वटी' कहते हैं। आचार्यपाद श्रीवैद्यनाथ के आदेशानुसार इस सिद्ध गुटिका को लोककल्याणार्थ निर्मित किया गया है। इसके सेवन से भयंकर जलोदररोग, गुल्म, ज्वर, पाण्डु, तिमिररोग, नेत्रपटलरोग, विद्रधि, उग्र उदावर्त, शूलरोग, कृमि, शीतपित्त, कुष्ठ, प्रमेहपिडका आदि रोग समूह नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—समस्त उदररोग, शोथ, शीतपित्त, कुष्ठ, गुल्म एवं उदावर्त्त आदि रोगों में।

३२. अभयावटी (र.सा.सं.)

अभया मरिचं कृष्णा टङ्गणञ्च समांशकम्।
सर्वचूर्णसमं भागं दद्यात्कानकजं फलम् ॥८७॥
स्नुहीक्षीरेण संकुर्याद् वटीं स्विन्नकलायवत्।
वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा चोष्णाम्बुनापिबेत् ॥८८॥
उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च।
जीर्णज्वरं प्लीहरोगं हन्त्यष्टावुदराणि च ॥८९॥
वातोदरे प्रशस्तोऽयं सर्वाजीर्णं व्यपोहति।
कामलां पाण्डुरोगञ्च तथैव कुम्भकामलाम् ॥९०॥

१. हरीतकीचूर्ण १ भाग, २. मरिचचूर्ण १ भाग, ३. पीपरचूर्ण १ भाग, ४. शुद्ध सुहागा १ भाग और ५. शुद्ध जयपालचूर्ण ४ भाग लें। एक खरल में सभी द्रव्यों के चूर्णों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें। स्नुहीक्षीर की भावना देकर २-२ रत्ती (उबले हुए मटर जितनी बड़ी) वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'अभयावटी' कहते हैं। इसे १ वटी, १ बड़ी हरीतकीचूर्ण और तण्डुलोदक ५० मि.ली. तीनों एक साथ पीसकर सेवन करावें। जितनी बार उष्णोदक पिलायेंगे उतनी ही बार विरेचन होगा। जब विरेचन रोकना हो तो शीतल जल पिलावें। विरेचनोपरान्त शाम को तक्र-भात-सैन्धव का भोजन करावें। इस औषधि का सेवन करने से जीर्णज्वर, प्लीहावृद्धि, आठ प्रकार के उदर रोगों का नाश होता है। वातोदर में यह वटी अधिक प्रामाणिक मानी जाती है। सभी प्रकार के अजीर्ण को नष्ट कर देती है। पाण्डु, कामला और कुम्भकामला रोगों में अत्यधिक लाभप्रद है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदकानुपान से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रकार के उदररोग, पाण्डु, कामला एवं कुम्भकामला में।

३३. उदरारिरस (र.सा.सं.)

पारदं शिखितुत्थञ्च जैपालं पिप्पलीसमम्।
आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण मर्दयेत् ॥९१॥
माषमात्रां वटीं खादेज्जयेत् स्त्रीणां जलोदरम्।
चिञ्चाफलरसञ्चानु पथ्यं दध्योदनं हितम्॥
दकोदरहरञ्चैव तीव्रेण रेचनेन च ॥९२॥

१. रससिन्दूर १ भाग, २. शुद्ध तुत्थ १ भाग, ३. शुद्ध जयपाल १ भाग, ४. पीपरचूर्ण १ भाग तथा ५. अमलतास फलमज्जा १ भाग लें। इन पाँचों द्रव्यों को एक खरल में मर्दन करें और स्नुहीक्षीर की भावना देकर $\frac{1}{2}$-$\frac{1}{2}$ रत्ती माष प्रमाण की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे उदरारिरस कहते हैं। इसे इमली फल के शीत स्वरस २५ मि.ली. के साथ १ रत्ती खिलाने से स्त्रियों के जलोदर का नाश होता है। यह तीव्र रेचक है। अतः सभी स्त्री-पुरुषों के जलोदर को नाश करता है। शाम को पथ्य में दही और भात खिलावें।

मात्रा—१ से २ वटी (६० से १२५ मि.ग्रा.)। **अनुपान**—इमली फल स्वरस से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—जलोदर में।

३४. वारिशोषण रस (र.सा.सं.)

चतुर्विंशतिभागाः स्युर्गन्धाद्वङ्गं तदर्द्धकम्।
वङ्गभागाद् भवेदर्द्धः पारदः कृष्णमभ्रकम् ॥९३॥
चतुर्दशविभागं स्यान्मृतं तद्दीयते पुनः।
मृतलौहमष्टभागं मृतताम्रं नवात्र तत् ॥९४॥
मृतहेमद्वयं तेषां मृतरूप्यञ्च सप्तकम्।
अतिशुद्धमतिस्थूलं मृतं हीरं त्रयोदश ॥९५॥
भागा ग्राह्या माक्षिकस्य विशुद्धस्यात्र षोडश।
अष्टादशमितं ग्राह्यं नवकासीसकं पुनः ॥९६॥
तुत्थकञ्च षडेवात्र नवीनं ग्राह्यमेव च।
तालकं च चतुर्भागं शिला योज्यास्त्रयो बुधैः ॥९७॥
शैलेयं पञ्च दातव्यं सर्वमेकत्र नूतनम्।
मृतमौक्तिभागैकं सौभाग्यं द्वयमेव च ॥९८॥
कुट्टयित्वा विचूर्ण्याथ जम्बीरस्य रसेन वै।
भावयेत्सप्तधा गाढं गुडिकां तस्य कारयेत् ॥९९॥
पानकद्वितये कृत्वा मुद्रयेत् पानकद्वयम्।
घटमध्ये निवेश्याथ दत्त्वा पूर्वं च वालुकाम् ॥१००॥
ऊर्ध्वं च तां पुनर्दत्त्वा बालुकां मुद्रयेन्मुखम्।
अहोरात्रं दहेदग्नौ स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥१०१॥
बकुलस्य च बीजेन कण्टकारीद्वयेन च।
गुडूचीत्रिफलावारा भागयेत् सप्तसप्तधा ॥१०२॥
वृद्धदाररसेनापि तथा देयास्तु भावनाः।
गिरिकर्ण्यासेनापि रोहितमत्स्यपित्ततः ॥१०३॥
एवं सिद्धो भवेत्सम्यग् रसोऽसौ वारिशोषणः।
देवान् गुरून् समभ्यर्च्य पितॄन् साधून् मुनींस्तथा ॥१०४॥
रक्तिकाद्वितयं देयं सन्निपाते समुच्छ्रये।
मरिचेन समं देयं तेन जागर्त्ति मानवः ॥१०५॥

श्लैष्मिके च गदे देयं ग्रहण्यामग्निमान्द्यके ।
प्लीह्नि पाण्डौ प्रयोक्तव्यं त्रिकटुत्रिफलाऽम्भसा ॥१०६॥
शूलरोगे प्रयोक्तव्यमुदरे च विशेषतः ।
कुष्ठे सुदुष्टे देयोऽयं काकोदुम्बरिकाम्भसा ॥१०७॥
अतिवह्निकरः श्रीदो बलवर्णाग्निवर्धनः ।
धन्वन्तरिकृतः सद्यो रसः परमदुर्लभः ॥
सर्वरोगे प्रयोक्तव्यो निःसन्देहं भिषग्वरैः ॥१०८॥

१. शुद्ध गन्धक २४ भाग, २. वङ्गभस्म १२ भाग, ३. शुद्ध पारद ६ भाग, ४. अभ्रकभस्म १४ भाग, ५. लौहभस्म ८ भाग ६. ताम्रभस्म ९ भाग, ७. सुवर्णभस्म २ भाग, ८. रजतभस्म ७ भाग, ९. हीरकभस्म १३ भाग, १०. सुवर्णमाक्षिकभस्म १६ भाग, ११. शुद्ध कासीस १८ भाग, १२. शुद्ध तुत्थ ६ भाग, १३. शुद्ध हरताल ४ भाग, १४. शुद्ध मनःशिला ३ भाग, शुद्ध शिलाजीत ५ भाग, १६. मोतीभस्म १ भाग और १७. शुद्ध सुहागा २ भाग लें। एक बड़े खरल या ग्रेनाइट स्टोन के एण्ड रनर में मिलाकर २ दिनों तक अच्छी तरह से मर्दन करें। जम्बीरीस्वरस की ७ भावना देकर मर्दन करें। छोटी-छोटी टिकिया बनाकर सुखा लें और सूखने के बाद शरावसम्पुट कर बालुकायन्त्र में २४ घण्टे तक पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर मौलीसरी बीजक्वाथ, कण्टकारीक्वाथ, बृहतीक्वाथ, गुडूची-स्वरस, त्रिफलाक्वाथ, विधाराक्वाथ, अपराजिताक्वाथ एवं रोहू मछली के पित्त से प्रत्येक द्रव्य के स्वरस या क्वाथ तथा पित्त की क्रमशः ७-७ भावना दें और २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। ततः शुभ-दिन-नक्षत्र में विधानतः देवताओं, गुरुओं, ब्राह्मणों, साधुओं एवं मुनियों की विधिवत् पूजा करें और उस औषधि की भी पूजा करें। ततः रोगियों पर इसका प्रयोग करना चाहिए। भयंकर सन्निपातज्वर में मरिचचूर्ण के साथ देने से रोगी होश में आ जाता है। कफजरोग, ग्रहणीरोग, अग्निमान्द्य, प्लीहारोग, पाण्डुरोग में त्रिफला एवं त्रिकटुक्वाथ से देना चाहिए। शूलरोग में भी इसका प्रयोग करना चाहिए। उदररोग में विशेषरूप से इसका प्रयोग करना चाहिए। दुष्ट कुष्ठ रोग में इस वटी को कठगूलर स्वरस के साथ प्रयोग करना चाहिए। यह 'वारिशोषणरस' पाच-काग्निवर्धक है, शरीरसौष्ठवकारक, बल-वर्ण एवं अग्निवर्धक है। निःसन्देह इसे सभी रोगों में प्रयोग करना चाहिए। भगवान् धन्वन्तरि द्वारा निर्मित यह 'वारिशोषणरस' अत्यन्त दुर्लभ तथा सद्यः प्रभाव-कारी औषधि है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—त्रिफला, त्रिकटुक्वाथ, मधु-कठगूलर स्वरस से। **गन्ध**—रसायनगन्धी (शिलाजतु गन्धी)। **वर्ण**—श्यावर्ण। **स्वाद**—किञ्चिदम्ल। **उपयोग**—समस्त उदररोग, सन्निपातज्वर, कुष्ठ एवं अग्निमान्द्य में।

३५. त्रैलोक्यसुन्दर रस (र.सा.सं.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं ताम्राभ्रं सैन्धवं विषम् ।
कृष्णजीरं विडङ्गञ्च गुडूचीसत्त्वचित्रकम् ॥१०९॥
उग्रगन्धा यवक्षारं प्रत्येकं कर्षमात्रकम् ।
निर्गुण्डिकाद्रवैरग्निबीजपूरद्रवैर्दिनम् ॥११०॥
मर्दयेच्छोषयेत्सोऽयं रसस्त्रैलोक्यसुन्दरः ।
गुञ्जाद्वयं घृतैर्लेह्यं वातोदरकुलान्तकम् ॥१११॥
वह्निचूर्णं यवक्षारं प्रत्येकञ्च पलद्वयम् ।
घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गोमूत्रैश्च चतुर्गुणैः ॥
घृतावशेषं कर्त्तव्यं द्विमाषञ्च पिबेदनु ॥११२॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक २ भाग, ३. ताम्रभस्म १ भाग, ४. अभ्रकभस्म १ भाग, ५. सैन्धवलवण १ भाग, ६. शुद्ध वत्सनाभ १ भाग, ७. स्याहजीराचूर्ण १ भाग, ८. विडङ्गचूर्ण १ भाग, ९. गुडूचीसत्त्व १ भाग, १०. चित्रक-चूर्ण १ भाग, ११. वचाचूर्ण १ भाग तथा १२. यवक्षार १ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य द्रव्यों के चूर्णों को कज्जली के साथ मिलाकर निर्गुण्डीस्वरस, चित्रकमूलक्वाथ और बिजौरानिम्बुस्वरस की पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर १-१ दिन तक मर्दन करें तथा सुखाकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। २५० मि.ग्रा. की मात्रा में इस 'त्रैलोक्यसुन्दररस' को घृत में मिलाकर सेवन करने से वातोदर एवं समस्त उदररोग समूह हो जाता है।

विमर्श—यहाँ पर मूलपाठ में एक घृत निर्माण की विधि बतायी गई है। इसी घृत के साथ औषधि सेवन करना है—

१. गोघृत १ प्रस्थ (७५० मि.ली.), २. गोमूत्र ३ लीटर, ३. चित्रकचूर्ण ९३ ग्राम और ४. यवक्षार ९३ ग्राम (कल्कार्थ) लें। स्नेहपाक विधि से घृत सिद्ध करना चाहिए। छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। २ से ४ ग्राम तक इस घृत में २ रत्ती 'त्रैलोक्यसुन्दररस' को मिलाकर सेवन करना चाहिए।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—सिद्ध घृत से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—अम्ल। **उपयोग**—समस्त उदर रोग में।

३६. शोथोदरारिलौह (र.का.धे.)

पुनर्नवाऽमृतावह्निगवाक्षीमानशिग्रवः ।
सूर्यावर्त्तार्कमूलञ्च पृथगष्टपलं जले ॥११३॥
पादशेषे शृतं द्रोणे सुपूते वस्त्रगालिते ।
लौहचूर्णाष्टपलकं पचेदाज्यसमं भिषक् ॥११४॥
अर्कस्य द्विपलं क्षीरं स्नुहीक्षीरं चतुष्पलम् ।
पलद्वयं कौशिकस्य गन्धकस्य पलं तथा ॥११५॥
पलार्द्धं पारदं सिद्धे वक्ष्यमाणन्तु निक्षिपेत् ।

जयपालं ताम्रमभ्रं शुद्धमत्र प्रदापयेत् ॥११६॥
कङ्कुष्ठवह्निकन्दानां शराख्याद् घण्टकर्णकात् ।
पलाशस्य च बीजानि कञ्चुकी तालमूलिका ॥११७॥
त्रिफलायाः कृमिरिपोस्त्रिवृद्दन्तीभवं तथा ।
सूर्यावर्त्तगवाक्ष्योश्च वर्षाभूवज्रवल्लिका ॥११८॥
एषां लौहसमां मात्रां स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
अतोऽस्य भक्षयेन्मात्रामनुपानञ्च युक्तितः ॥११९॥
हन्ति सर्वोदरं शीघ्रं कार्या विचारणाः ।
ये च शोथाः सुदुर्वाराश्चिरकालानुबन्धिनः ॥१२०॥
तान् सर्वान् नाशयत्याशु तमः सूर्योदये यथा ।
नातः परतरं किञ्चिच्छोथोदरविनाशनः ॥१२१॥
उदराणि पाण्डुरोगं कामलाञ्च हलीमकम् ।
अर्शो भगन्दरं कुष्ठं ज्वरं गुल्मञ्च नाशयेत् ॥१२२॥

क्वाथ—१. पुनर्नवामूल, २. गुडूची, ३. चित्रकमूल, ४. इन्द्रायणमूल, ५. मानकन्द और ६. सहिजनछाल— प्रत्येक द्रव्य ३७५ ग्राम लें।

मुख्य द्रव्य—१. लौहभस्म ३७५ ग्राम, २. गोघृत ३७५ ग्राम, ३. अर्कक्षीर ९३ ग्राम, ४. स्नुहीक्षीर १८७ ग्राम, ५. शुद्ध गुग्गुलु ९३ ग्राम, ५. शुद्ध गन्धक ४६ ग्राम, ७. शुद्ध पारद २३ ग्राम, ८. शुद्ध जयपाल ३७५ ग्राम, ९. ताम्रभस्म ३७५ ग्राम, १०. अभ्रकभस्म ३७५ ग्राम, ११. कङ्कुष्ठ ३७५ ग्राम, १२. चित्रकमूलचूर्ण ३७५ ग्राम, १३. शरपुंखामूलचूर्ण ३७५ ग्राम, १४. घण्टापाटलाचूर्ण ३७५ ग्राम, १५. पलाशबीजचूर्ण ३७५ ग्राम, १६. कञ्चुकी ३७५ ग्राम, १७. श्वेतमुशलीचूर्ण ३७५ ग्राम, १८. आमलाचूर्ण ३७५ ग्राम, १९. हरीतकीचूर्ण ३७५ ग्राम, २०. बहेड़ाचूर्ण ३७५ ग्राम, २१. वायविडङ्गचूर्ण ३७५ ग्राम, २२. त्रिवृच्चूर्ण ३७५ ग्राम, २३. दन्तीमूलचूर्ण, ३७५ ग्राम, २४. हुरहुरपञ्चाङ्ग ३७५ ग्राम, २५. इन्द्रायणमूल ३७५ ग्राम, २६. पुनर्नवामूल ३७५ ग्राम तथा २७. वज्रवल्ली (अस्थिसंघाती) ३७५ ग्राम लें। सर्वप्रथम उपर्युक्त ६ द्रव्यों (पुनर्नवा से सहिजन तक) का यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर क्वाथ छान लें। ततः एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य भस्मों एवं काष्ठौषधि चूर्णों को कज्जली के साथ अच्छी तरह मिलावें। तदनन्तर सभी मिश्रित भस्मों एवं चूर्णों को उपर्युक्त क्वाथ में मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। सम्भव हो तो पत्थर के एण्डरनर मशीन में डालकर ३ दिनों तक मर्दन करें। चौथे दिन औषधि निकालकर छाया में सुखा लें और पुनः सूक्ष्म चूर्ण कर लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'शोथोदरारिलौह' कहते हैं। इस औषधि को ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक की मात्रा में उष्णोदकानुपान से देने पर शीघ्र ही सभी प्रकार के उदररोग नष्ट हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए। बहुत पुराने एवं असाध्य शोथ रोग भी इसके प्रयोग से ठीक हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। इससे अच्छी अन्य और कोई औषधि उदर एवं शोथ रोग की नहीं है। इसके अतिरिक्त पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, अर्श, भगन्दर, कुष्ठ, ज्वर एवं गुल्मरोगों का भी नाश करता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक या चिकित्सकानुसार। **अनुपान**—उष्णोदक या चिकित्सकानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कटु-कषाय। **उपयोग**—शोथ, सभी उदररोग एवं पाण्डुरोग में।

३७. पिप्पल्यादिलौह (र.सा.सं.)

पिप्पलीमूलचित्राभ्रत्रिकत्रयेन्दुसैन्धवम् ।
सर्वचूर्णसमं लौहं हन्ति सर्वोदरामयम् ॥१२३॥

१. पिपरामूलचूर्ण, २. चित्रकमूलचूर्ण, ३. अभ्रकभस्म, ४. सोंठचूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. मरिचचूर्ण, ७. आमलाचूर्ण, ८. हरीतकीचूर्ण, ९. बहेड़ाचूर्ण, १०. विडङ्गचूर्ण, ११. छोटी मुस्ताचूर्ण, १२. चित्रकचूर्ण, १३. सैन्धवचूर्ण, १४. कपूर—सभी द्रव्य १-१ भाग लें और १५. लौहभस्म १४ भाग लें। इन्हें एक खरल में अच्छी तरह से मिलाकर ३ घण्टे तक मर्दन करें। पुनः काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पिप्पल्यादिलौह' कहते हैं। ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक की मात्रा मधु से मिलाकर चटाने से सभी प्रकार के उदर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—सुगन्ध। **वर्ण**—कत्थई वर्ण का। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रकार के उदररोग में।

३८. बिन्दुघृत (च.द.)

अर्कक्षीरपले द्वे च स्नुहीक्षीरपलानि षट् ।
पथ्या कम्पिल्लकं श्यामा शम्पाकं गिरिकर्णिका ॥१२४॥
नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकं तथा ।
एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥१२५॥
अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत् ।
यावतोऽस्य पिबेद्बिन्दूंस्तावद्वारान् विरिच्यते ॥१२६॥
कुष्ठगुल्ममुदावर्त्तं श्वयथुं सभगन्दरम् ।
शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥
एतद्बिन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ॥१२७॥

कल्क—१. अर्कक्षीर ९३ ग्राम, २. स्नुहीक्षीर २८० ग्राम, ३. हरीतकी, ४. कम्पिल्लक, ५. श्याव अनन्तमूल, ६. अमलतासफलमज्जा, ७. श्वेतअपराजिता, ८. नीलीमूल, ९. त्रिवृत्, १०. दन्तीमूल, ११. शंखपुष्पी, १२. चित्रकमूल—उपर्युक्त १० द्रव्य प्रत्येक ४६-४६ ग्राम और १३. गोघृत

७५० ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः हरीतकी से चित्रक तक के सभी द्रव्यों का चूर्ण करें और सिल पर अर्क एवं स्नुहीक्षीर मिलाकर पीसें तथा कल्क बना लें। मूर्च्छित घृत में इस कल्क को मिलावें और ३ लीटर जल देकर मृदु अग्नि से पाक करें। जलीयांश जलने पर छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'बिन्दुघृत' की १-१ बूँद उष्णोदक के साथ मिलाकर पिलावें। जितनी बार १-१ बूँद इस घृत को पिलावेंगें उतनी ही बार विरेचन होगा। इसके सेवन से कोष्ठबद्धता, कुष्ठ, उदावर्त्त, गुल्म, शोथ, भगन्दर रोग तथा आठों प्रकार के उदर रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे उल्कापात (वज्रप्रहार) से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं। इस बिन्दु घृत का जिसने पान किया उसे निश्चित विरेचन होगा।

मात्रा—१-५ बूँद। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के उदररोग, उदावर्त्त, गुल्म एवं शोथ में।

३९. महाबिन्दुघृत

स्नुहीक्षीरपले कल्के प्रस्थार्द्धञ्चैव सर्पिषः।
कम्पिल्लकं पलञ्चैकं पलार्द्धं सैन्धवस्य च ॥१२८॥
त्रिवृतायाः पलञ्चैकं कुडवं धात्रिकारसात्।
तोयप्रस्थेन विपचेच्छनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥१२९॥
शाणप्रमाणं दातव्यं जठरे प्लीहगुल्मयोः।
तता कच्छपरोगेषु युञ्जीत मतिमान् भिषक् ॥१३०॥
एतद् गुल्मान् सनिचयान् सशूलान् सपरिग्रहान्।
निहन्त्येष प्रयोगो हि वायुर्जलधरानिव ॥१३१॥
पञ्चगुल्मवधार्थाय वज्रो मुक्तः स्वयम्भुवा।
महाबिन्दुघृतं नाम सिद्धं सिद्धैश्च पूजितम् ॥१३२॥

१. गोघृत ३७५ ग्राम, २. स्नुहीक्षीर ४६ ग्राम, ३. कम्पिल्लक ४६ ग्राम, ४. सैन्धवलवण २३ ग्राम, ५. त्रिवृच्चूर्ण ४६ ग्राम तथा ६. आमलास्वरस १८७ मि.ली. लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः स्नुहीक्षीर, कम्पिल्लक सैन्धव, त्रिवृच्चूर्ण और आमलास्वरस को मूर्च्छित घृत में ७५० लीटर जल मिलाकर पाक करें। जल ग्दित घृत रहने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'महाबिन्दुघृत' कहते हैं। इसे ३ ग्राम की मात्रा में उष्णोदक में मिलाकर पिलावें। इससे अधिक विरेचन होता है। इसके प्रयोग से उदररोग, प्लीहरोग, गुल्मरोग, कच्छपरोग नष्ट हो जाते हैं। इस घृत के प्रयोग से सभी प्रकार के गुल्म एवं उपद्रवों से युक्त सान्निपातिक गुल्म नष्ट हो जाते हैं। जिस तरह वायु मेघ को उड़ाकर नष्ट कर देता है उसी प्रकार यह घृत उपर्युक्त सभी रोगों को नष्ट कर देता है। ५ प्रकार के गुल्मों का नाश करने के लिए भगवान् शङ्कर ने वज्र के सदृश इस अव्यर्थ घृत का निर्माण किया है। यह सिद्ध 'महाबिन्दुघृत' सिद्धों द्वारा पूजित है।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—उदर रोग एवं गुल्म रोग में।

४०. नाराचघृत (च.द.)

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडङ्ग-
सिंहीत्रिवृच्चित्रककल्कयुक्तम्।
घृतं विपक्वं कुडवप्रमाणं
तोयेन तस्याक्षमथार्द्धकर्षम् ॥१३३॥
पीत्वोष्णमम्भोऽनुपिबेद्विरिक्ते
पेयां सुखोष्णां प्रपिबेद्विधिज्ञः।
नाराचमेतज्जठरामयानां
युक्त्योपयुक्तं शमनं प्रदिष्टम् ॥१३४॥

१. स्नुहीक्षीर, २. दन्तीमूलचूर्ण, ३. आमलाचूर्ण, ४. हरड़चूर्ण, ५. बहेड़ाचूर्ण, ६. वायविडङ्गचूर्ण, ७. कण्टकारी चूर्ण, ८. निशोथचूर्ण, ९. चित्रकमूलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम लें तथा १० गोघृत ३७५ ग्राम और जल १.५०० लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त द्रव्यों का कल्क बनाकर घृत में मिलावें और १.५०० लीटर जल मिलाकर मृद्वग्नि पर पाक करें। जल के नष्ट हो जाने पर परीक्षा कर लें और घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार कर कपडा से छान लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'नाराचाघृत' को उष्णोदक के साथ ६ से १२ ग्राम की मात्रा में पिलाने से विरेचन होता है। विरेचन के बाद क्षुधा लगने पर सुखोष्ण पेया पिलानी चाहिए। इस 'नाराच घृत' का युक्तिपूर्वक सेवन करने से यह समस्त उदर विकार का नाश करता है।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के उदर रोगों में।

४१. नाराचघृत (बृहत्)

लोध्राचित्रकचव्यानि विडङ्गं त्रिफला त्रिवृत्।
शङ्खिन्वतिविषाव्योषमजमोदा निशाद्वयम् ॥१३५॥
दन्ती च कार्षिकं सर्वं गोमूत्रस्य पलाष्टकम्।
चतुष्पलं स्नुहीक्षीरं राजवृक्षफलं तथा ॥१३६॥
एतैश्चतुर्गुणे तोये घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
उदरञ्चामवातञ्च प्लीहगुल्मभगन्दरान् ॥१३७॥
निहन्त्यचिरयोगेन गृध्रसीं स्तम्भमूरुजम्।
बृहन्नाराचकं नाम घृतमेतद्यथाऽमृतम् ॥१३८॥

कल्क—१. लोध्रत्वक्चूर्ण, २. चित्रकमूलचूर्ण, ३. चव्यचूर्ण, ४. विडङ्गचूर्ण, ५. आमलाचूर्ण, ६. हरड़चूर्ण, ७. बहेड़ाचूर्ण, ८. निशोथचूर्ण, ९. शंखपुष्पीचूर्ण, १०. अतिविषचूर्ण, ११. पीपरचूर्ण, १२. सोंठचूर्ण, १३. मरिचचूर्ण, १४. अजमोदाचूर्ण, १५. हल्दीचूर्ण, १६. दारुहल्दीचूर्ण और १७. दन्तीमूलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें; १८. गोमूत्र ३७५ मि.ली., १९. स्नुहीक्षीर १८७ मि.ली., २०. अमलतास फलमज्जा १८७ ग्राम और २१. गोघृत ७५० ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। तत: कल्क द्रव्यों को जल के साथ पीसकर मूर्च्छित घृत में मिलावें और ३ लीटर जल, गोमूत्र, स्नुहीक्षीर एवं अमलतासमज्जा देकर पाक करना चाहिए। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़े से घृत को छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'बृहन्नाराच घृत' उदररोगों में अमृत के समान है। इस घृत को ६ से १० ग्राम की मात्रा में उष्णोदक के साथ सेवन करने से उदररोग, आमवात, प्लीहरोग, गुल्म, भगन्दर, गृध्रसी और ऊरुस्तम्भ रोग में अतिशीघ्र लाभ करता है।

मात्रा—६ से १० ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **उपयोग**—समस्त उदर रोग, गुल्म एवं प्लीहरोग में।

४२. चित्रकघृत (च.द.)

चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकात् पले।
कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षारं जठरी पिबेत् ॥१३९॥

गोघृत ७५० ग्राम, गोमूत्र १.५०० लीटर, जल ३ लीटर तथा चित्रकमूल ४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। तत: चित्रकमूल के चूर्ण को जल में मिलाकर कल्क बनावें। इस कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलावें और गोमूत्र और जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षोपरान्त चूल्हे से घृतपात्र को नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'चित्रकघृत' को ६ ग्राम की मात्रा में २५० मि.ग्रा. यवक्षार मिलाकर उदर (८ प्रकार के उदर रोगियों को) रोगों में पिलाना चाहिए।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—यवक्षार एवं उष्णोदक से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु (तीक्ष्ण)। **उपयोग**—उदररोगों में।

४३. दशमूलषट्पल घृत (च.द.)

दशमूलतुलाऽर्द्धरसे सक्षारैः पञ्चकोलकैः पलिकैः।
सिद्धं घृतार्द्धपात्रं द्विर्मस्तुकमुदरगुल्मघ्नम् ॥१४०॥

१. दशमूल २.५०० किलो, अष्टगुण जल २० लीटर, २. यवक्षार, ३. पीपरचूर्ण, ४. पिपरामूलचूर्ण, ५. चव्यचूर्ण, ६. चित्रकचूर्ण, ७. सोंठचूर्ण—प्रत्येक १-१ पल (४६-४६ ग्राम) लें; ८. गोघृत १५०० कि.ग्रा. तथा ९. मस्तु (दही का पानी) ३ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। तत: दशमूल को यवकुट कर अष्टगुण जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर मूर्च्छित घृत में मिलावें। इसके बाद उपर्युक्त ६ द्रव्यों के १-१ पल चूर्ण का कल्क बनाकर घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर ३ लीटर मस्तु मिलाकर पाक करें। अन्त में सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर (घृत से २ गुना) जल देकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से घृत को छानें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'दशमूलषट्पलघृत' को ६ ग्राम की मात्रा में उष्णोदक के साथ पिलाने से उदर-रोग और गुल्म रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—उदररोगों एवं गुल्मों में।

४४. त्रिवृतादिषट्पलघृत (च.द.)

तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे पचेत्।
स्नुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृताषट्पलेन च ॥१४१॥

१. गोघृत ७५० ग्राम, २. गोदुग्ध ६ लीटर, ३. स्नुहीक्षीर १ पल, ४. त्रिवृत् २८० ग्राम (६ पल) लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। त्रिवृत् का चूर्ण करें और स्नुहीक्षीर मिलाकर कल्क बनावें। कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलावें और उस घृत में गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर सम्यक् पाक के लिए ३ लीटर जल मिलाकर पुन: पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे त्रिवृतादि षट्पल घृत कहते हैं। क्योंकि इसमें ६ पल त्रिवृत् मिलाया गया है। इसे ६ से १२ ग्राम की मात्रा में उष्णोदक या गरम दूध के साथ मिलाकर पिलाने से उदररोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम पानी या गरम दूध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—उदर रोग में।

४५. दधिमण्डाद्यघृत (च.द.)

दधिमण्डाढके सिद्धात्स्नुक्क्षीरपलकल्कितात्।
घृतप्रस्थात् पिबेन्मात्रां तद्वज्जठरशान्तये ॥१४२॥

गोघृत ७५० ग्राम, मस्तु (दधिमण्ड) ३ लीटर, स्नुहीक्षीर ४६ ग्राम और जल ३ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत को मूर्च्छित

करें। पुनः उस घृत में मस्तु एवं स्नुहीक्षीर मिलाकर पाक करें। मस्तु सूखने पर सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जल सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा गरम पानी एवं दूध में मिलाकर पिलाना चाहिए। इसके प्रयोग से उदररोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरमपानी या गरमदूध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त एवं किञ्चिदम्ल। **उपयोग**—उदररोग में।

४६. रसोनतैल (भा.प्र.)

लशुनस्य तुलामेकां जलद्रोणे विपाचयेत्।
चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥१४३॥
त्रिकटुत्रिफलादन्तीहिङ्गुसैन्धवचित्रकम् ।
देवदारु वचा कुष्ठं मधु शिग्रु पुनर्नवा ॥१४४॥
सौवर्चलं विडङ्गानि दीप्यको हस्तिपिप्पली ।
एतेषां पलिकान् भागांस्त्रिवृताषट्पलानि च ॥१४५॥
पिष्ट्वा कषायेणानेन तैलं मृद्वग्निना पचेत्।
तत्पिबेत्प्रातरुत्थाय यथाग्निबलमात्रया ॥१४६॥
निहन्ति सकलान् रोगानुदराणि विशेषतः।
मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन् ॥१४७॥
पार्श्वकुक्षिभवं शूलमामशूलमरोचकम्।
यकृदष्ठीलिकाऽऽनाहान्प्लीहानं चाङ्गवेदनाम्।
मासमात्रेण नश्यन्ति ह्यशीतिर्वातजा गदाः ॥१४८॥

निस्तुष लशुन ५ किलो, जल १३ लीटर (चौथाई शेष करें) तथा तिलतैल ३ किलो लें।

कल्क—१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. दन्तीमूल, ८. हींग, ९. सैन्धव, १०. चित्रकमूल, ११. देवदारु, १२. वच, १३. कूठ, १४. मधु सहिजनछाल, १५. पुनर्नवामूल, १६. सौवर्चललवण, १७. वायविडङ्ग, १८. अजवायन, १९. गजपीपर—प्रत्येक द्रव्य ४६-४६ ग्राम और २०. निशोथ २८० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः लशुन क्वाथ करें। चौथाई जल शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ को मूर्च्छित तिलतैल में मिलावें और कल्क के २० द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल से पीसें और कल्क बनावें। इस कल्क को भी तिलतैल के साथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। लशुन क्वाथ सूखने पर सम्यक् पाकार्थ १२ लीटर जल देकर पकावें। जल सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीच उतारकर कपड़े से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को प्रातःकाल ६ से १२ ग्राम की मात्रा में या रोगी की अग्नि या बल के प्रमाण के अनुसार पिलावें। मात्रा बढ़ायी या घटायी भी जा सकती है। इस 'रसोनतैल' को पीने से उदररोग, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त्त, अन्त्रवृद्धि, गुदकृमि, पार्श्व एवं कुक्षिशूल, आमशूल, अरुचि, यकृद्विकार, अष्ठीलिका, आनाह, प्लीहावृद्धि, अङ्गवेदना और ८० प्रकार के वातविकार १ मास के प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम या चिकित्सकानुसार (पानार्थ)। **अनुपान**—गरम जल या गरम दूध से। **गन्ध**—लशुनगन्धी। **वर्ण**—किञ्चिद्रक्ताभ। **स्वाद**—कषाय-तिक्त। **उपयोग**—उदररोग, समस्त वातविकार एवं सर्वाङ्गशूल में।

उदररोग में पथ्य

विरेचनं लङ्घनमब्दसम्भवाः
कुलत्थमुद्गारुणशालयो यवाः।
मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञयाऽन्विताः
पेयासुरामाक्षिकसीधुमाधवः ॥१४९॥
तक्रं रसोनो रुबुतैलमार्द्रकं
शालिञ्च शाकं कुलकं कठिल्लकम्।
पुनर्नवा शिग्रुफलं हरीतकी-
ताम्बूलमेलायवशूकजायसम् ॥१५०॥
अजागवोष्ट्रीमहिषीपयो जलं
लघूनि तिक्तानि च दीपनान्यपि।
वस्त्रेण संवेष्टनमग्निकर्मता
विषप्रयोगोऽनुयुतो यथायथम् ॥१५१॥
विशेषतः प्लीहसमुद्भवे पुन-
र्वामे प्रबाहौ धमनीव्यधः परः।
बद्धोदरे चोदकजे क्षतोत्थिते
नाभेरधः शस्त्रविधिर्यथाविधि ॥१५२॥
समीरणोत्थे घृतपानमादितः
साभ्यञ्जनं वाऽप्यनुवासनं तथा।
यथामलं पथ्यगणोऽयमाश्रितः
सखा नृणां स्यादुदरामये सति ॥१५३॥

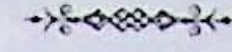
उदररोग में विरेचन कराना (दस्त कराना), लंघन (उपवास), १ वर्ष का पुरानी कुलथी, मूँग, लालशालिचावल, यव, जंगली पशु-मृग, पक्षियों का मांस रस, पेया, सुरा, मधु, सीधु, महुए की शराब, तक्र, लशुन, एरण्डतैल, आर्द्रक, शालिञ्च शाक, परवल, करैला, पुर्ननवाशाक, सहिजनफली, हरीतकी, ताम्बूल (पान), छोटी इलायची, यवक्षार, लौहभस्म, बकरी, गाय, ऊँटनी, भैंस के दूध और उनके मूत्र, लघु एवं तिक्त द्रव्य वाले द्रव्यों का भोजन, अग्निवर्धक द्रव्य, उदर पर वस्त्र की पट्टी बाँधना, अग्निकर्म तथा विष का प्रयोग उचित रीति से करना चाहिए। प्लीहोदर होने पर वामबाहु में धमनी व्यध (नस्तर) करना

चाहिए तथा रक्त का निर्हरण करना चाहिए। बद्धोदर, जलोदर और क्षतोदर में नाभि के नीचे शस्त्र से चीरा लगाकर जल निकाल देना चाहिए। वातोदर में पहले घृतपान कराना चाहिए। अभ्यञ्जन तथा अनुवासनबस्ति कर्म करना चाहिए। जिस दोष की प्रमुखता से उदररोग हुए हैं उसी दोष के अनुसार पथ्य भी देना चाहिए।

उदररोग में अपथ्य

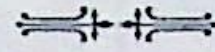
संस्नेहनं धूमपानं जलपानं शिराव्यधम्।
छर्दिर्यानं दिवा निद्रां व्यायामं पिष्टवैकृतम् ॥१५४॥
औदकानूपमांसानि पत्रशाकांस्तिलानपि।
उष्णानि च विदाहीनि लवणान्यशनानि च ॥१५५॥
शिम्बीधान्यं विरुद्धान्नं दुष्टनीरं गुरूणि च।
महेन्द्रगिरिजातानां सरितां सलिलानि च ॥१५६॥
विष्टम्भीनि विशेषात्तु स्वेदं विष्टम्भसम्भवे।
वर्जयेदुदरव्याधौ वैद्यो रक्षन्निजं यशः ॥१५७॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदररोगाधिकारः।



स्नेहन, धूमपान, जलपान, शिराव्यध, वमन कराना, सवारी पर चलना, दिन में सोना, व्यायाम, पिट्ठी (उड़द) की बनी कचौड़ी आदि खाना, जलीय प्राणियों के मांस-मछली, पत्र शाक, तिल, उष्ण, दाहकारक, अधिक लवण युक्त भोजन, शिम्बी धान्य, विरुद्ध भोजन, दूषित जलपान, विष्टम्भी (वायु कारक) और स्वेदन कर्म—ये सभी अपथ्य कारक आहार-विहार को वैद्य अपना यश चाहते हुए रोगी से छुड़ा दें। अर्थात् रोगी को ये सब आहार-विहार नहीं करने देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य उदररोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ प्लीहयकृद्रोगाधिकारः (४१)

सामान्य चिकित्साक्रम (यो.र.)

स्नेहस्वेदप्रकारादि विधेयं प्लीहरोगिणि ।
दध्ना भुक्तवतो वामबाहुमध्ये शिरां भिषक् ॥१॥
विध्येत् प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे ।
प्लीहानं मर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तप्रशान्तये ॥२॥
मणिबन्धे समुत्पन्नवामाङ्गुष्ठसमीरिताम् ।
दहेच्छिरां क्षारेणाशु वैद्यः प्लीहप्रशान्तये ॥३॥

प्लीहा रोगी को स्नेहन और स्वेदन कर्म कराना उचित है। तथा दही और भात का भोजन कराकर वाम बाहु मध्य में सिराव्यध कर रक्त का निर्हरण करना चाहिए। इसी प्रकार यकृत् के रोगी को दक्षिण बाहु मध्य में सिरावेधन कर रक्तमोक्षण कराना चाहिए। प्लीहा रोगी में सिराव्यध के बाद खूब दबाकर दूषित रक्त निकालना चाहिए। अथवा वाम बाहु के मणिबन्ध में अंगूठे की सिरा को क्षार से दग्ध करें तो प्लीहा ठीक हो जाती है।

१. शिग्रुक्वाथ (च.द.)

अम्लवेतससंयुक्तः शिग्रुक्वाथः ससैन्धवः ।
पीतः प्लीहोदरं हस्तिपिप्पलीमरिचान्वितः ॥४॥

शिग्रुत्वक् एवं अम्लवेत दोनों समभाग में मिलाकर क्वाथ कर उसे छान लें। उसमें २ ग्राम सैन्धव, पीपरचूर्ण एवं मरिचचूर्ण मिलाकर उक्त क्वाथ को पिलाना चाहिए।

२. रोहीतकाभया क्वाथ (च.द.)

रोहीतकाभयाक्वाथः कणाक्षारसमन्विताः ॥५॥

रोहितकत्वक् और हरीतकी समभाग में मिलाकर क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। उसमें पीपरचूर्ण १ ग्राम तथा यवक्षार १ ग्राम मिलाकर पिलाना चाहिए।

३. शोभाञ्जनक्वाथ (च.द.)

शोभाञ्जनकनिर्य्यूहं सैन्धवाग्निकणान्वितम् ।
पलाशक्षारयुक्तं वा यवक्षारं प्रयोजयेत् ॥६॥

शिग्रुत्वक् क्वाथ में सैन्धवचूर्ण, चित्रकमूलचूर्ण और पीपरचूर्ण १-१ ग्राम मिलाकर पिलाना चाहिए। या शिग्रु क्वाथ में पलाशक्षार या यवक्षार ५००-५०० मि.ग्रा. मिलाकर पिलाना चाहिए।

४. शार्ङ्गष्ठानिर्यूह (च.द.)

शार्ङ्गष्ठानिर्यूहः ससैन्धवस्तिन्तिडीकसम्मिश्रः ।
प्लीहव्युपरमयोगः पक्वाम्ररसोऽथवा समधुः ॥७॥

शार्ङ्गष्ठा (काकजंघा) या लताकरञ्ज या गुञ्जा इसमें से किसी एक द्रव्य का क्वाथ करें, उसमें सैन्धवलवण और इमलीक्षार मिलाकर पिलाने से या पके आम के रस में मधु मिलाकर पिलाने से प्लीहावृद्धि रोग नष्ट हो जाता है।

५. पिप्पल्यादिचूर्ण (च.द.)

पिप्पलीं नागरं दन्तीं समांशं द्विगुणाभयाम् ।
चूर्णं पीतं विडार्धांशं प्लीहघ्नमुष्णवारिणा ॥८॥

१. पीपरचूर्ण १ भाग, २. सोंठचूर्ण १ भाग, ३. दन्तीमूलचूर्ण १ भाग, ४. हरीतकीचूर्ण २ भाग और ५. विडलवण $\frac{1}{2}$ भाग लें। इन्हें मिश्रित कर काचपात्र में संग्रह करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में गरम जल से सेवन कराने से प्लीहवृद्धि नष्ट हो जाती है।

६. यमानिकादिचूर्ण (च.द.)

यमानिकाचित्रकयावशूकं
षड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् ।
प्लीहान्मेतद्विनिहन्ति चूर्ण-
मुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥९॥

१. अजवायनचूर्ण २. चित्रकमूलचूर्ण, ३. यवक्षार, ४. पिपरामूल, ५. दन्तीमूलचूर्ण और पीपरचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। इन्हें मिलाकर पुनः छनकर से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यमानिकादिचूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से या मस्तु से या सुरा से या आसव के साथ पिलाने से प्लीहा वृद्धि नष्ट हो जाती है।

७. रोहीतकाद्यचूर्ण (च.द.)

रोहीतकं यवक्षारो भूनिम्बः कटुरोहिणी ।
मुस्तकं नरसारञ्च वीरा विश्वं सुचूर्णितम् ॥१०॥
माषमात्रं ततः खादेच्छीततोयानुपानतः ।
यकृद्रोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥११॥

१. रोहीतकचूर्ण, २. यवक्षारचूर्ण, ३. चिरायताचूर्ण, ४. कटुकीचूर्ण, ५. नागरमोथाचूर्ण, ६. नवसादरचूर्ण ७. अतिविषाचूर्ण तथा ८. सोंठचूर्ण—इन सभी चूर्णों को समभाग में मिलाकर पुनः छननी से छानें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस रोहितकाद्यचूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में शीतल जल से सेवन करने से यकृद्विकार जन्य रोग उसी तरह से नष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—तिक्त (अतितिक्त)। **उपयोग**—यकृतद्विकार में।

८. गुडूच्यादिचूर्ण (च.द.)

गूडूच्यतिविषा शुण्ठी भूनिम्बयवतिक्तकम्।
मुस्ता कणा यवक्षारः कासीसं भ्रमरातिथिः ॥१२॥
एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिक्षिपेत्।
यकृत्प्लीहपाण्डुरोगमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥१३॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा।
नानादोषोद्भवश्चैव वारिदोषभवं तथा।
विरुद्धभेषजभवं ज्वरमाशु व्यपोहति ॥१४॥

१. गुडूचीचूर्ण, २. अतीसचूर्ण, ३. सोंठचूर्ण, ४. चिरायताचूर्ण, ५. कालमेघचूर्ण, ६. नागरमोथाचूर्ण, ७. पीपरचूर्ण, ८. यवक्षारचूर्ण, ९. शुद्ध कासीस तथा १०. चम्पक वृक्षत्वक् चूर्ण (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिला लें और छननी से पुनः छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस गुडूच्यादिचूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में शीतल जल से सेवन करने पर यकृत्-प्लीहा की वृद्धि, पाण्डुरोग, अग्निमांद्य, अरुचि, आठ प्रकार के ज्वर, साध्य एवं असाध्य ज्वर, अनेक दोषोत्पन्न ज्वर, जलदोष से उत्पन्न ज्वर और विरुद्ध औषधि सेवन से उत्पन्न ज्वर भी नष्ट हो जाता है।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—हरिद्वर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—यकृत्प्लीहारोग एवं सभी ज्वरों में।

९. रोहीतकादि प्रयोग (च.द.)

रोहीतकाभयाक्षोदभावितं मूत्रमम्बु वा।
पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःक्रिमिगुल्मनुत् ॥१५॥

रोहीतकछालचूर्ण एवं हरीतकीचूर्ण (समभाग) दोनों को गोमूत्र या पानी में घोलकर पिलाने से सभी प्रकार के उदररोग, प्लीह-वृद्धि, प्रमेह, अर्श, कृमि और गुल्मरोग नष्ट हो जाते हैं। इसकी मात्रा ३ ग्राम लेनी चाहिए।

१०. शंखनाभिभस्म (वङ्गसेन)

रसेन जम्बीरफलस्य शङ्ख-
नाभीरजः पीतमशेषमेव।
कर्षप्रमाणं शमयेत्समूलं
प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥१६॥

शंखनाभिभस्म ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक जम्बीरीनिम्बुरस में मिलाकर प्रतिदिन पीने से कछुए के समान बढ़ी हुई प्लीहा शीघ्र शान्त हो जाती है।

११. शुक्तिभस्म एवं पिप्पलीचूर्ण प्रयोग (च.द.)

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तितः।
पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ॥१७॥

समुद्र से प्राप्त शुक्ति की भस्म ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक की मात्रा में दूध के साथ पीने से या पिप्पलीचूर्ण को १ ग्राम की मात्रा में दूध के साथ पीने से प्लीहवृद्धि रोग शान्त हो जाता है।

१२. तालपुष्पक्षारादि प्रयोग (च.द.)

तालपुष्पोद्भवक्षारः सगुडः प्लीहनाशनः॥
गुडैश्चित्रकमूलं वा रजन्यर्कदलं तथा।
धातकीपुष्पचूर्णं वा प्रत्येकं प्लीहनाशनम् ॥१८॥

१. तालपुष्प (ताड़ का झाड़ीनुमा=वल्लरीफल) को क्षार विधि से क्षार निर्माण कर लें। इस क्षार को ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम की मात्रा में ३ ग्राम गुड़ के साथ सेवन करने से प्लीहरोग नष्ट होता है।

२. चित्रकमूलचूर्ण २ ग्राम तथा गुड़ ३ ग्राम की मात्रा में सेवन करने से प्लीह रोग नष्ट होता है।

३. हल्दी का चूर्ण २ ग्राम तथा गुड़ ३ ग्राम का सेवन करने से प्लीहरोग नष्ट होता है।

४. अर्कपत्र (सुपक्व) को सुखाकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को १ ग्राम से २ ग्राम की मात्रा में ३ ग्राम गुड़ के साथ सेवन करने से प्लीहरोग नष्ट हो जाता है।

५. धातकीपुष्पचूर्ण २ ग्राम की मात्रा में ३ ग्राम गुड़ के साथ सेवन करने से प्लीहरोग नष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त पाँचों योग प्लीहरोग नाशक हैं। किसी एक का प्रयोग लाभप्रद है।

विमर्श—तालपुष्प—ताड़ वृक्ष में दो तरह के फल निकलते हैं एक गोल नारियल जैसा पानीदार होता है, जो बाद में कठिन हो जाता है। दूसरा फल वह होता है जो कई शाखाओं से युक्त आरग्वध फल जैसा किन्तु खरस्पर्शी होता है। ग्रन्थकार महोदय का अभिप्राय उसी झाड़नुमा ताड़पुष्प फल लेने का है। इसी फल को चिप्स की तरह काटकर उत्तर भारत में गजपिप्पली के नाम से बेचा जाता है।

१३. चित्रकवटिका (च.द.)

चित्रस्य मूलकं पिष्ट्वा कृत्वा तु वटिकात्रयम्।
कदलीपक्वमध्येन भक्षणं प्लीहनाशनम् ॥१९॥

चित्रकमूल का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर ५०० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र से संग्रहीत करें। इस वटी को पके हुए केले के बीच में रखकर ३ बार प्रतिदिन खाने से प्लीहरोग नष्ट हो जाता है।

१४. विडङ्गादियोग (च.द.)

विडङ्गाज्याग्निसिन्धूत्थ शक्तून्दग्ध्वा वचाऽन्वितान्।
पिबेत् क्षीरेण संचूर्ण्य गुल्मप्लीहोदरापहान् ॥२०॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. चित्रकमूलचूर्ण, ३. सैन्धवलवण-चूर्ण, ४. जौ का सत्तू, ५. वचचूर्ण तथा ६. गोघृत—प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम लें। इस सभी द्रव्यों के चूर्ण को एक साथ मिलाकर गोला जैसा बना लें। शरावसम्पुट कर सन्धिबन्धन कर लघु पुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर औषधि निकालकर मर्दन करें और काचपात्र में सग्रहीत करें। इस औषधि को १-२ ग्राम की मात्रा में गोदुग्ध के साथ सेवन करने से गुल्म, प्लीहा तथा उदररोग नष्ट होते हैं।

१५. रोहीतकादिवटी (च.द.)

रोहीतकत्वक्शिखिवल्कलं च
यमानिका चेक्षुरबीजमुत्तमम्।
पृथक पृथक् तद् दशतोलकोन्मितं
द्वितोलकं स्याल्लवणोत्तमं च ॥२१॥
तत्रैकतोलं नरसारचूर्णं
करञ्जपत्रस्वरसेन सर्वम्।
विचूर्णितं चारु विमर्द्य यत्नात्
कोलास्थितुल्यां वटिकां विदध्यात् ॥२२॥
तां कारवेल्लस्वरसेन साकं
संसेवमानो यकृदुत्थरोगान्।
प्लीहोदरव्याधिगणं च गुल्मं
विनाशयेन्निश्चितमेतदूह्यम् ॥२३॥

१. रोहीतकछाल १०० ग्राम, २. चित्रकमूलत्वक् १०० ग्राम, ३. अजवायन १०० ग्राम, ४. तालमखाना १०० ग्राम, ५. सैन्धवलवण २० ग्राम और ६. नरसार १० ग्राम लें। उपर्युक्त छः द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और करञ्जपत्रस्वरस की भावना दें। ५०० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी करैलाफल के स्वरस के साथ सेवन करने से यकृद्-वृद्धि जन्य रोग, प्लीह वृद्धि एवं उदर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—करैला फल स्वरस। **वर्ण**—धूसर। **गन्ध**—निर्गन्ध। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—यकृत रोग, प्लीह, गुल्म एवं उदररोग में।

१६. पिप्पलीप्रयोग (च.द.)

पिप्पलीं किंशुकक्षारभावितां सम्प्रयोजयेत्।
गुल्मप्लीहापहां वह्निदीपनीञ्च रसायनीम् ॥२४॥

पिप्पलीचूर्ण को पलाशक्षार युक्त जल से भावना देकर ५०० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन एक-एक वटी दो बार जल के साथ सेवन करने से गुल्म-प्लीह रोग नष्ट हो जाते हैं। यह औषधि अग्निदीपक है और रसायनगुण सम्पन्न है।

१७. वर्धमानपिप्पली प्रयोग (च.द.)

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दशपिप्पलिकं दिनम्।
वर्द्धयेत्पयसा सार्द्धं तथैवापनयेत्पुनः ॥२५॥
जीर्णाजीर्णे च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा।
पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनः ॥२६॥
दशपिप्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः षट् प्रकीर्त्तितः।
यस्त्रिपिप्पलिपर्यन्तः प्रयोगः सोऽवरः स्मृतः ॥२७॥
बृंहणं वृष्यमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम्।
वयसः स्थापनं मेध्यं पिप्पलीनां रसायनम् ॥२८॥
पञ्चपिप्पलिकश्चापि दृश्यते वर्द्धमानकः।
पिष्ट्वा च बलिभिः पेया शृता मध्यबलैर्नरैः ॥
शीतीकृता ह्रस्वबलैर्देहदोषामयान् प्रति ॥२९॥

इस वर्धमानपिप्पली योग में १००० पिप्पली का चूर्ण खाने का विधान है। इसका दूसरा नाम सहस्र पिप्पलीयोग है। इसके सेवन कर्त्ता के लिए तीन तरह की मात्रा—उत्तम, मध्यम और अवर निर्धारित की गयी है। उत्तम मात्रा प्रतिदिन १० पिप्पली, मध्यम मात्रा प्रतिदिन ६ पिप्पली और अवर मात्रा प्रतिदिन ३ पिप्पली बतायी गयी है। इसके सेवन में केवल दुग्धानुपान ही करना है अन्य पथ्य एवं अपत्यकारक द्रव्य कुछ भी नहीं लेना है।

प्रयोग—उदर शुद्धि (वमन-विरेचन) के बाद इस पिप्पली रसायन का प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिए। इसके प्रयोग के लिए निम्न ३ विधियाँ प्रचलित हैं—

१. पिप्पली को दूध में पकाकर सेवन करने की परम्परा है।

२. पिप्पली को तक्र में भिंगोकर खाने की परम्परा है।

३. पिप्पली को चूर्ण कर दुग्धानुपान से खाने की परम्परा है।

एक कल्प १९ दिनों का है। यदि व्यक्ति १० पिप्पली की एक मात्रा से प्रारम्भ करता है तो उसे प्रतिदिन १० पिप्पली बढ़ाना चाहिए। १०वें दिन १०० पिप्पली का सेवन करना होगा। ११वें दिन से प्रतिदिन १० पिप्पली की मात्रा घटानी है जिससे १९वें दिन १० पिप्पली तक आने पर एक कल्प पूरा होगा। इस प्रकार सहस्र (१०००) पिप्पली योग पूरा हो जाता है। पिप्पली बढ़ाने एवं घटाने के साथ-साथ दूध की मात्रा भी बढ़ानी और घटानी चाहिए। उदाहरणार्थ पहले दिन यदि १ लीटर दूध से कल्प प्रारम्भ करेंगे तो दशवें दिन १० लीटर दूध लेना चाहिए। ११वें दिन से एक लीटर प्रतिदिन की मात्रा से घटाकर १९वें दिन एक लीटर दूध पर स्थिर हो जाना होगा।

इस कल्प के क्रम में १९ दिन किसी दूसरे प्रकार का भोज्य या पेय पदार्थ नहीं लेना चाहिए। यह उत्तम मात्रा है। मध्यम मात्रा में ६ पिप्पली से प्रारम्भ कर १०वें दिन ६० पिप्पली तथा ११वें दिन ६ पिप्पली प्रतिदिन घटाकर १९वें दिन ६ पिप्पली पर स्थिर करना चाहिए। इस प्रकार एक कल्प में ६०० पिप्पली का प्रयोग करते हैं। अतः इस प्रयोग के $1\frac{1}{2}$ कल्प में १००० पिप्पली का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार अवर मात्रा को तीन कल्पों में पूर्ण करना व्यवहारसङ्गत प्रतीत होता है।

अन्य ग्रन्थों में पाँच पिप्पली से प्रारम्भ कर प्रतिदिन ५-५ पिप्पली बढ़ाने का आदेश है। इस प्रकार यह वर्धमानपिप्पली योग अर्द्धसहस्रपिप्पलीरसायन के नाम से जाना जाता है।

१. बलवान् रोगियों के लिए पिप्पलीचूर्ण में दूध और जल समभाग में मिलाकर पाक करें। दुग्धावशेष रहने पर उसमें मिश्री आदि मिलाकर पिलाना चाहिए।

२. मध्य बल रोगियों के लिए पिप्पली का क्वाथ दूध के साथ पकाकर पिलाना चाहिए।

३. निर्बल रोगियों के लिए पिप्पली क्वाथ दूध के साथ मिलाकर पिलाना चाहिए।

गुण—इस रसायन का सेवन बृंहण है, बल्य है, आयुष्य है, मेध्य है, वयःस्थापक है, रसायन है तथा यकृत्प्लीह एवं उदर रोग नाशक है। यह आमपाचक एवं अग्निवर्धक है।

आवश्यकता—यदि इस पिप्पलीरसायन सेवी रोगियों को अधिक मात्रा में दुग्ध सेवन से अजीर्णादि उपद्रव हो तो दूध की मात्रा घटाकर साठी चावल का भात, दूध और मिश्री मिलाकर भोजन कराना चाहिए।

१८. अर्कलवण (वङ्गसेन)

अर्कपत्रं सलवणमन्तर्धूमं दहेन्नरः।
मस्तुना तत्पिबेत्क्षारं प्लीहगुल्मोदरापहम् ॥३०॥

पके हुए अर्कपत्र एवं सैन्धवलवण समान भाग में लें। एक मिट्टी की हाँडी में पहले सुपक्व अर्क पत्र की एक तह फैलाकर उस पर सैन्धवलवणचूर्ण की एक तह फैलावें। सैन्धवलवण के ऊपर पुनः अर्कपत्र की एक तह फैलाकर उसके ऊपर पुनः सैन्धवलवण फैलावें। इसी तरह ६-८ बार अर्कपत्र एवं सैन्धवलवण फैलावें। लेकिन यह ध्यान रहे कि सबसे ऊपर और सबसे नीचे अर्कपत्र ही रहना चाहिए। इसके बाद हाँड़ी का मुख शराव सम्पुटित कर कपड़मिट्टी करें और गजपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर औषधि निकाल लें। इसे खरल में पीसकर सूक्ष्मचूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे अर्कलवण कहते हैं। इस अर्कलवण को १ से २ ग्राम की मात्रा में मस्तु (दही का पानी) या तक्र के साथ सेवन करने से गुल्म, प्लीह और उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

१९. अभयालवण (वङ्गसेन)

पारिभद्रपलाशार्कस्नुह्यपामार्गचित्रकम्।
वरुणाग्निमन्थवसुकश्वदंष्ट्राबृहतीद्वयम् ॥३१॥
पूतिकास्फोतकुटजकोषातक्यः पुनर्नवा।
समूलपत्रशाखाश्च क्षोदयित्वा उलूखले ॥३२॥
तिलनालप्रदीप्ताग्निसुदग्धं भस्म शीतलम्।
क्षारप्रस्थं गृहीत्वा तु न्यसेत्पात्रे दृढे नवे ॥३३॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम्।
पूर्ववत्क्षारकल्केन स्नापयीत विचक्षणः ॥३४॥
प्रस्थमेकञ्च लवणं तदर्द्धाञ्च हरीतकीम्।
तुल्याम्बुभागं गोमूत्रं सायेन्मृदुनाऽग्निना ॥३५॥
किञ्चित्सबाष्पसान्द्रे च सम्यक् सिद्धेऽवतारिते।
अजाजी त्र्यूषणं हिङ्गु यमानी पौष्करं शटी ॥३६॥
एतैरर्द्धपलैर्भागैश्चूर्णं कृत्वा प्रदापयेत्।
अभयालवणं नाम भक्षयेच्च यथाबलम् ॥३७॥
व्याधिं संवीक्ष्य मतिमाननुपानं यथाहितम्।
ये च कोष्ठगता रोगास्तान्निहन्ति न संशयः ॥३८॥
यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्माष्ठीलाऽग्निसादजित्।
हन्याच्छिरोऽर्त्तिहृद्रोगं शर्कराऽश्मरिनाशनम् ॥३९॥

१. फरहद(महानिम्ब)त्वक्, २. पलाशत्वक्, ३. अर्कमूलत्वक्, ४. स्नुहीमूलत्वक्, ५. अपामार्गपञ्चाङ्ग, ६. चित्रकमूल, ७. वरुणत्वक्, ८. अग्निमन्थ, ९. पुनर्नवापञ्चाङ्ग, १०. गोखरू पञ्चाङ्ग, ११. कण्टकारीपञ्चाङ्ग, १२. बृहतीपञ्चाङ्ग, १३. करञ्जमूलत्वक्, १४. अनन्तमूल, १५. कुटजत्वक्, १६. कोशातकी तथा १६. श्वेतपुनर्नवापञ्चाङ्ग—प्रत्येक १-१ भाग लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों को एक साथ उलूखल (ओखली) में कूटकर एक घड़ा में रखें और उसका मुख बन्द कर चूल्हे पर चढ़ावें। इसके बाद तिल नाल (तिल का सूखा डण्ठल) जलाकर घड़े की औषधि को पकावें। ६ से ८ घण्टे पकाने के बाद जब औषधि जल जाय ऐसा प्रतीत हो तो ईन्धन देना बन्द कर देना चाहिए। दूसरे दिन स्वाङ्गशीत होने पर घड़े का मुख खोलकर औषधि को निकाल लें तथा छननी से छान लें। यदि छना हुआ भस्म १ प्रस्थ (७५० ग्राम) हो तो उस भस्म में १३ लीटर जल मिलाकर स्थिर होने के लिए छोड़ दें। स्टील के बड़े भगौने में इस राख को रखें और १६ गुना पानी मिलावें। ३-४ दिनों तक उस पानी को निथरने के बाद भगौने को टेढ़ा कर स्वच्छ जल को अलग कर लें। राख मिश्रित गाद में ८ गुना पानी मिलाकर छोड़ दें। निथरे हुए स्वच्छ जल को महीन एवं गाढ़े वस्त्र से ७ बार छान लें और पुनः चूल्हे पर चढ़ाकर तिल नाल से इस जल को पकावें। जब वह गाढ़ा होने

लगे तो चूल्हे से नीचे उतार लें और उस क्षारीय तरल में ७५० ग्राम सैन्धवलवणचूर्ण, ३७५ ग्राम हरीतकीचूर्ण और ३ लीटर गोमूत्र मिलाकर पुनः पकावें। जब मधु जैसा अर्ध तरल हो जाय तो चूल्हे से नीचे उतार लें और उसमें जीरकचूर्ण, शुण्ठीचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण, मरिचचूर्ण, शुद्ध हींग, अजवायनचूर्ण, पुष्करमूलचूर्ण तथा कचूरचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लेकर मिलाकर धूप में सुखा लें और काचपत्र में संग्रहीत करें। इस अभयालवण को रोगी के बलानुसार १-४ ग्राम की मात्रा में तक्रानुपान से सेवन करावें। व्याधि की परीक्षा के बाद अनुपान बदला भी जा सकता है।

२०. मानादिगुटिका (परिकरयोग)　　(च.द.)

मानमार्गामृता वासा स्थिरा सैन्धवचित्रकम् ।
नागरं तालपुष्पञ्च प्रत्येकञ्च त्रिकार्षिकम् ॥४०॥
विडसौवर्चलक्षारपिप्पल्यश्चापि कार्षिकाः ।
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूत्रस्याढके पचेत् ॥४१॥
सान्द्रीभूते गुडीं कुर्याद्दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् ।
यकृत्प्लीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः ।
योगः परिकरो नाम्ना ह्यग्निसन्दीपनः परः ॥४२॥

१. मानकन्द, २. अपामार्गपञ्चाङ्ग, ३. गुडूची, ४. वासापञ्चाङ्ग, ५. शालपर्णी, ६. सैन्धवलवण, ७. चित्रकमूल, ८. सोंठ, ९. तालपुष्प—प्रत्येक द्रव्य ३५ ग्राम लें; १०. विडलवण, ११. सौवर्चललवण, १२. यवक्षार और १३. पिप्पली—ये चारों द्रव्य प्रत्येक १२ ग्राम लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। एक स्टील के बड़े पात्र में ३ लीटर गोमूत्र लेकर उपर्युक्त चूर्णों को गोमूत्र में अच्छी तरह से मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब गाढ़ा हो जाय तो चम्मच से चलाते हुए नीचे उतार लें। ठण्डा होने पर १४० ग्राम मधु मिलाकर ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १ से २ वटी की मात्रा में उष्णोदक से सेवन करावें। इसके सेवन से यकृत्-प्लीह रोग, गुल्म, अर्श और ग्रहणी रोग नष्ट हो जाते हैं। यह परिकर (विवेचक) योग है। यह पाचकाग्नि को बढ़ाता है।

२१. मानादिगुटिका

मानमार्गस्थिरावह्निस्नुहीनागरसैन्धवम् ।
तैलैरण्डं क्रिमिघ्नञ्च हवुषं चविका वचा ॥४३॥
विडसौवर्चलक्षारपिप्पलीशरपुङ्खकम् ।
जीरकं पारिभद्रञ्च प्रत्येकं कर्षकद्वयम् ॥४४॥
सार्द्धाढके गवां मूत्रे पचेत्सर्वं सुचूर्णितम् ।
सान्द्रीभूते क्षिपेदेषां चूर्णकं कर्षसम्मितम् ॥४५॥
अजाजी त्र्यूषणं हिङ्गु यमानी पुष्करं शटी ।
त्रिवृद्दन्ती विशाला च दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् ॥४६॥
खादेदग्निबलापेक्षी बुद्ध्वा चानुपिबेन्नरः ।
यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्मं पाण्डुं सकामलम् ॥४७॥
कुक्षिशूलञ्च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम् ।
शोथञ्च श्लीपदं हन्ति जीर्णञ्च विषमज्वरम् ॥४८॥

१. मानकन्द, २. अपामार्ग, ३. शालपर्णी, ४. चित्रकमूल, ५. स्नुहीमूल, ६. सोंठ, ७. सैन्धवलवण, ८. एरण्डतैल, ९. वायविडङ्ग, १०. हाऊबेर, ११. चव्य, १२. वच, १३. विडलवण, १४. सौवर्चललवण, १५. यवक्षार, १६. पिप्पली, १७. शरपुङ्खा, १८. जीरक और १९. फरहदत्वक्—प्रत्येक द्रव्य २३-२३ ग्राम लें; २०. जीरा, २१. सोंठ, २२. पीपर, २३. मरिच, २४. शुद्ध हींग, २५. अजवायन, २६. पुष्करमूल, २७. कचूर, २८. त्रिवृत्, २९. दन्तीमूल तथा ३०. इन्द्रायणमूल—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें और ३२. गोमूत्र ४$\frac{१}{२}$ लीटर एवं ३३. मधु १४० ग्राम लें। मानकन्द से फरहद तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। एक बड़े स्टील के पात्र में ४$\frac{१}{२}$ लीटर गोमूत्र और उपर्युक्त पीसे हुए द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर पकावें। इसे दर्वी से बराबर चलाते रहें। जब गाढ़ा हो जाय तो स्टीलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और जीरा से इन्द्रायणमूल तक के सभी ११ द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण उसमें डालकर अच्छी तरह मिला दें जिससे स्टील पात्र स्थित सभी द्रव्य सूख जायेंगें। इसमें ३ पल (१४० ग्राम) मधु डालकर अच्छी तरह मिला लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे अग्नि- बल के अनुसार १ से ३ ग्राम की मात्रा में यकृत्-प्लीहरोग, उदररोग, गुल्मरोग, आनाह, पाण्डुरोग, कामला, कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, हृच्छूल, अरुचि, शोथ, श्लीपद, जीर्ण ज्वर और विषमज्वर रोग नष्ट हो जाते हैं।

२२. भल्लातकादि मोदक　　(च.द.)

भल्लातकाभयाजाजीगुडेन सह मोदकः ।
सप्तरात्रान्निहन्त्याशु प्लीहानमतिदारुणम् ॥४९॥

शुद्ध भिलावा, हरीतकी और जीरा—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग तथा गुड़ ६ भाग लें। उपर्युक्त तीनों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। एक पात्र में गुड़ की चासनी करें। मोदक की चासनी (३ या ४ तार की) तैयार होने पर पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और उपर्युक्त चूर्णों का प्रक्षेप डालकर अच्छी तरह से मिला दें। १-२ ग्राम की मात्रा में गुटिका बना लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। अत्यन्त भयंकर प्लीहावृद्धिरोग में १ वटी की मात्रा में उष्णोदक से सेवन करावें। ७ दिन के प्रयोग से प्लीहावृद्धि शान्त हो जाती है।

२३. गुडपिप्पली (रसरत्नाकर)

पलैकं गुडमादाय पिप्पली च तथैव च।
हिङ्गुत्रिकटुकादीनां सैन्धवानां द्विमाषिकम् ॥५०॥
चित्रकं च विडं चैव द्वौ क्षारौ शिखरीं तथा।
तालुपुष्पं कोकिलाक्षं चिञ्चाक्षारं सफेनकम् ॥
स्नुहीक्षीरसमायुक्तं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥५१॥

१. गुड़ ५० ग्राम, २. पिप्पली ५० ग्राम, ३. शुद्ध हींग २ ग्राम, ४. सोंठ २ ग्राम, ५. पीपर २ ग्राम, ६. मरिच २ ग्राम, ७. सैन्धवलवण २ ग्राम, ८. चित्रकमूल २ ग्राम, ९. विडलवण २ ग्राम, १०. यवक्षार २ ग्राम, ११. सज्जीखार २ ग्राम, १२. अपामार्ग २ ग्राम, १३. तालपुष्प २ ग्राम, १४. कोकिलाक्ष (तालमखाना) २ ग्राम, १५. चिञ्चाक्षार २ ग्राम, समुद्रफेन २ ग्राम और १७. स्नुहीक्षीर २ ग्राम लें। सभी काष्ठौषधियों का सूक्ष्म चूर्ण बना लें। एक खरल में गुड़ के साथ सभी काष्ठौषधियों के चूर्ण को मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। १-२ ग्राम की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके सेवन से प्लीहज्वर (कालाजार) नष्ट हो जाता है।

२४. गुडपिप्पली योग (बृहत्) (र.सा.सं.)

विडङ्गं त्र्यूषणं कुष्ठं हिङ्गु लवणपञ्चकम्।
त्रिक्षारं फेनकं वह्निः श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥५२॥
तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाड्याः कूष्माण्डकस्य च।
अपामार्गस्य चिञ्चायाश्चूर्णानि चिक्कणानि च ॥५३॥
सर्वचूर्णसमं देयं चूर्णमत्र कणोद्भवम्।
एतस्माद् द्विगुणाच्चूर्णात्पुराणो द्विगुणो गुडः ॥५४॥
मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत्।
भक्षयेदुष्णतोयेन प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ॥५५॥
यकृतं पञ्चगु[illegible]मञ्चाप्युदरं सर्वरूपकम्।
जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पञ्चविधं तथा॥
अश्विभ्यां निर्मिता श्रेष्ठा बालानां गुडपिप्पली ॥५६॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. सोंठचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. मरिचचूर्ण, ५. कूठचूर्ण, ६. शुद्ध हिङ्गु, ७. सैन्धवलवण, ८. सौवर्चललवण, ९. सामुद्रलवण, १०. विड्लवण, ११. औद्भिल्लवण, १२. यवक्षार, १३. सर्जिक्षार, १४. टङ्कण क्षार, १५. समुद्रफेन, १६. चित्रकमूल, १७. गजपीपर, १८. कालाजीरा, १९. तालपुष्पोद्भवक्षार, २०. नाडीक्षार, २१. कूष्माण्डक्षार (पञ्चाङ्ग), २२. अपामार्गक्षार तथा २३. चिञ्चाक्षार —प्रत्येक चूर्ण १-१ भाग; २४. पिप्पलीचूर्ण २३ भाग और २५. पुराना गुड़ उपर्युक्त चूर्णों से दुगना अर्थात् ९२ भाग लें। उपर्युक्त सभी चूर्णों को एक साथ मिलाकर महीन छननी से पुनः छान लें। एक स्टील के पात्र में गुड़ डालकर मृद्वग्नि पर ३-४ तार की चासनी करें। गुड़पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और उसमें उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह से मर्दन करें। ६-६ ग्राम की गुडिका (लड्डू) बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातः-सायं १-१ मोदक को उष्णोदकानुपान से सेवन करें। इसके सेवन से असाध्य प्लीहावृद्धि रोग, यकृद्वृद्धि, ५ प्रकार के गुल्म, सभी प्रकार के उदररोग, जीर्णज्वर, शोथ और ५ प्रकार के कासरोग नष्ट हो जाते हैं। बालकों के लिए इस बृहत् गुड़पिप्पली योग को अश्विनीकुमारों ने बनाया है।

यकृच्चिकित्सा (च.द.)

तिलान् सलवणांश्चैव घृतं षट्पलकं तथा।
प्लीहोद्दिष्टां क्रियां सर्वां यकृतः सम्प्रयोजयेत् ॥५७॥

यकृत् के रोग में काले तिल का चूर्ण लवण मिलाकर जल के साथ सेवन करावें या षट्पलघृत का सेवन करावें। इसके अतिरिक्त प्लीहा रोग में कही गयी सारी चिकित्सा यकृत्रोग में भी करनी चाहिए।

यकृत्-प्लीह रोग में क्रिया (वङ्गसेन)

प्लीहोद्दिष्टां क्रिया सर्वां यकृन्नाशाय योजयेत्।
दध्ना भुक्तवतो वामबाहुमध्ये शिरां भिषक् ॥५८॥
विध्येत्प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे।
प्लीहानं मर्दयेद् गाढं दुष्टरक्तं प्रवर्त्तयेत् ॥५९॥

यकृत्रोग को नष्ट करने के लिए प्लीहरोग नाशक सभी क्रियाएँ हितकारी हैं। सर्वप्रथम प्लीहवृद्धि को नष्ट करने के लिए दही का भोजन कराकर वामबाहु के मध्य की शिरा का वेधन करते हैं तथा यकृत्रोग के नाश के लिए दक्षिण बाहु की मध्य की शिरा का वेधन करते हैं। इसमें शिरावेधन के समय प्लीहा और यकृत् को दबाकर दूषित रक्त को बाहर निकालते हैं। प्लीहा रोग में प्लीहा को दबाते हैं और यकृत रोग में यकृत् को दबाकर दूषित रक्त को निकालते हैं।

२५. पूतिकक्षारप्रयोग (च.द.)

क्षारं वा विडकृष्णाभ्यां पूतिकस्याम्लनिस्रुतम्।
प्लीहयकृत्प्रशान्त्यर्थं पिबेत्प्रातर्यथाबलम् ॥६०॥

पूतिकरञ्ज पञ्चाङ्ग को जलाकर क्षार विधि से क्षार बना लें। अम्ल काञ्जी ५० मि.ली. में उपर्युक्त क्षार १-४ ग्राम मिलावें। उसमें २ ग्राम विड्लवण एवं २ ग्राम पिप्पलीचूर्ण मिलाकर रोगी को बलानुसार दो बार पिलावें। इसके सेवन से यकृत्प्लीहरोग नष्ट हो जाता है।

२६. लशुनादि प्रयोग (गदनिग्रह)

लशुनं पिप्पलीमूलमभयाञ्चैव भक्षयेत्।
पिबेद् गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगनिवृत्तये ॥६१॥

लशुनचूर्ण या कल्क, पिप्पलीमूलचूर्ण और हरीतकीचूर्ण—तीनों द्रव्य समभाग में मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। २-३ ग्राम की मात्रा में ५० मि.ली. गोमूत्र के साथ पीने से प्लीह रोग नष्ट हो जाता है। अथवा गोमूत्र में उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

२७. गोमूत्र स्वेदादि प्रयोग

प्लीहानं यकृतं वृद्धं मूत्रस्वेदैरुपाचरेत्।
प्लीहजिच्छरपुङ्खायाः कल्कस्तक्रमेण सेवितः ॥६२॥

इसमें दो प्रयोग हैं—१. एक बड़े मिट्टी के पात्र में गोमूत्र को गरम करें और उसमें कपड़ा डालकर निचोड़ लें और यकृत्-प्लीह स्थान का स्वेदन करें। ऐसा १५ दिनों तक करना चाहिए। इससे यकृत्-प्लीहा वृद्धि रोग नष्ट हो जाता है।

२. शरपुङ्खा पञ्चाङ्ग का क्षार-विधि से क्षार बना लें। इस शरपुङ्खाक्षार को १-२ ग्राम की मात्रा में १०० मि.ली. तक्र में मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से यकृत्-प्लीह वृद्धिरोग नष्ट हो जाते हैं।

२८. रसराजरस

गन्धकेन मृतं ताम्रं शुद्धगन्धकतुल्यकम्।
द्वयोः पादं शुद्धरसं मर्दयेच्छूरणद्रवैः ॥६३॥
पुटेल्लघुपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।
गुञ्जाद्वयं लिहेत् क्षौद्रैः प्लीहगुल्मविनाशनम् ॥६४॥
यकृच्छूलं ज्वरं हन्ति कान्तिपुष्टिविवर्द्धनः।
रसराज इति ख्यातो रोगवारणकेशरी ॥६५॥

गन्धक मारित ताम्रभस्म १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग तथा शुद्ध पारद $\frac{1}{2}$ भाग लें। एक साफ खरल में शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक मिलाकर दृढ़ मर्दन करें। अच्छी कज्जली बन जाने पर उस कज्जली में ताम्रभस्म मिलावें। सूरणकन्द स्वरस की भावना देकर टिकिया बनाकर सुखा लें तथा शरावसम्पुट कर लघु पुट (कुक्कुट पुट) में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर औषधि निकालकर खरल में मर्दन करें और काचपात्र में संग्रह करें। २५० मि.ग्रा. की मात्रा में मधु के साथ खिलाने से प्लीहरोग, यकृद्रोग, गुल्म, उदरशूल और ज्वर नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से शारीरिक कान्ति बढ़ती है और शरीर पुष्ट होता है। यह रसराज रोग रूपी हाथी को नाश करने के लिए सिंह के समान उत्तम रस है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा. (२ रत्ती)। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—किञ्चित् कटु। **उपयोग**—यकृत्-प्लीहा वृद्धि रोग, गुल्म एवं शूल रोग में।

२९. प्लीहान्तकरस

हतशुल्बञ्च तारञ्च गगनायससमौक्तिकाः।
दरदं पुष्करं सूतं गन्धकं नवमं तथा ॥६६॥
गुग्गुलुस्त्रिकटु रास्ना तथा जैपालबीजकम्।
त्रिफला कटुका दन्ती देवदाली तु सैन्धवम् ॥६७॥
त्रिवृता तु यवक्षारं वातारितैलमर्द्दितम्।
अष्टोदराणि पाण्डुत्वमानाहं विषमज्वरम् ॥६८॥
अजीर्णमामञ्च कफं क्षयञ्च सर्वशूलकम्।
कासं श्वासञ्च शोथञ्च सर्वमाशु व्यपोहति ॥
प्लीहान्तको रसो नाम प्लीहोदरविनाशनः ॥६९॥

१. ताम्रभस्म, २. रजतभस्म, ३. अभ्रकभस्म, ४. लौहभस्म, ५. मोतीपिष्टी, ६. शुद्ध हिङ्गुल, ७. पुष्करमूलचूर्ण, ८. शुद्ध पारद, ९. शुद्ध गन्धक, १०. शुद्ध गुग्गुलु, ११. शुण्ठीचूर्ण, १२. मरिचचूर्ण, १३. पिप्पलीचूर्ण, १४. रास्नाचूर्ण, १५. शुद्ध जयपालबीज, १६. आमलाचूर्ण, १७. हरीतकीचूर्ण, १८. बहेड़ाचूर्ण, १९. कुटकीचूर्ण २०. दन्तीमूलचूर्ण, २१. देवदालीबीज, २२. सैन्धवलवण, २३. त्रिवृत्चूर्ण, २४. यवक्षार—उपर्युक्त २४ द्रव्यों को प्रत्येक १०-१० ग्राम और २५. एरण्डतैल १५० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर कज्जली बनावें। ततः उपर्युक्त भस्मों को कज्जली में मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद अन्य चूर्णों को उसमें मिलावें। उसमें थोड़ा एरण्डतैल मिलाकर सिल पर पीसें और २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को उष्णोदकानुपान या रोगानुसार अनुपान से सेवन करने पर ८ प्रकार के उदररोग, पाण्डुरोग, आनाह, विषमज्वर, अजीर्ण, आमदोष, कफदोष, क्षयरोग, सभी प्रकार के शूलरोग, कासरोग, श्वासरोग, शोथरोग और प्लीहारोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। प्लीहोदररोग को नष्ट करने वाला यह प्लीहान्तकरस प्रसिद्ध है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णजल एवं रोगानुसार। **गन्ध**—एरण्ड स्नेह गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **उपयोग**—प्लीहोदर में।

३०. वासुकिभूषणरस

सूतेन वङ्गन्तु समं नियोज्य
यत्तुल्यशुल्बेन च गन्धकेन।
विमर्दयेदर्करसेन यामं
मृदा च संलिप्य पुटं ददीत ॥७०॥
वासारसैस्तं परिभावयेच्च
रसो भवेद्वासुकिभूषणोऽयम्।
प्लीह्नोऽथ गुल्मस्य च शान्तयेऽस्य
वल्लं प्रदद्याद् वसुचूर्णयुक्तम् ॥७१॥

१. शुद्ध पारद, २. वङ्गभस्म, ३. ताम्रभस्म और ४. शुद्ध गन्धक—प्रत्येक एक-एक भाग लें। एक साफ खरल में पारद

एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी तरह कज्जली बना लें। ततः अन्य भस्मों को उसमें मिलावें। अर्कपत्रस्वरस की भावना देकर टिकिया बनाकर सुखा लें तथा शरावसम्पुट कर लघुपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर औषधि को निकालकर खरल में मर्दन करें। वासास्वरस की भावना देकर वल्लप्रमाण (३७५ मि.ग्रा. = ३ रत्ती) की वटी बनाकर काचपात्र संग्रह करें। इसके लिए अनुपान रूप में सैन्धवलवणचूर्ण १२५ मि.ग्रा. मिलाकर सेवन कराना चाहिए। इसे वासुकिभूषणरस कहते हैं। यह प्लीहा, यकृद् वृद्धि एवं गुल्मरोग नष्ट करता है। वसु का अर्थ सैन्धवलवण है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—सैन्धवलवणचूर्ण। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्तरस युक्त। **उपयोग**—प्लीहा, यकृद् वृद्धि एवं गुल्म में।

३१. विद्याधररस (र.चि.म.)

गन्धकं तालकं ताप्यं मृतं ताम्रं मनःशिला।
शुद्धसूतञ्च तुल्यांशं मर्दयेद्द्रावयेद्दिनम् ॥७२॥
पिप्पल्याश्च कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत्।
वल्लं च भक्षयेत् क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत् ॥
रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धञ्च पिबेदनु ॥७३॥

१. शुद्ध गन्धक, २. शुद्ध हरताल, ३. स्वर्णमाक्षिकभस्म, ४. ताम्रभस्म, ५. शुद्ध मनःशिला तथा ६. शुद्ध पारद—प्रत्येक समभाग लें। सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर कज्जली बनावें। ततः अन्य भस्मों को भी उसमें मिला दें। इसके बाद स्नुहीक्षीर की १ भावना दें। एक वल्ल (३७५ मि.ग्रा. = ३ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस विद्याधररस को मधु के साथ सेवन कराकर ऊपर से गोदुग्ध पिलावें। इसके सेवन से प्लीहा रोग एवं गुल्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु और गोदुग्ध से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—काला। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—प्लीहा, यकृत् रोग एवं गुल्म में।

३२. लोकनाथरस-१ (र.चि.म.)

पारदं गन्धकञ्चैव समभागं विमर्दयेत्।
मृताभ्रं रसतुल्यञ्च पुनस्तत्रैव मर्दयेत् ॥७४॥
रसाद्द्विगुणलौहं च लौहतुल्यञ्च ताम्रकम्।
वराटिकाया भस्माथ पारदात् त्रिगुणं कुरु ॥७५॥
नागवल्लीरसेनैव मर्दयेद्यत्नतो भिषक्।
पुटेल्लघुपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥७६॥
मधुना पिप्पलीचूर्णं सगुडां वा हरीतकीम्।
अजाजीं वा गुडेनैव भक्षयेदनुपानतः ॥७७॥
यकृद्गुल्मोदरहरः प्लीहश्वयथुनाशनः।
जीर्णज्वरं तथा पाण्डुं कामलाञ्च विनाशयेत् ॥
अग्निमान्द्यञ्च शमयेल्लोकनाथो रसोत्तमः ॥७८॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. अभ्रक भस्म १ भाग, ४. लौहभस्म २ भाग, ५. ताम्रभस्म २ भाग तथा ६. वराटिकाभस्म ३ भाग लें। एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य भस्मों को उसमें मिलाकर मर्दन करें। ताम्बूलपत्रस्वरस की भावना देकर एक दिन मर्दन करें तथा टिकिया बनाकर सुखाकर शरावसम्पुट करें और लघु पुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट से औषधि निकालकर खरल में मर्दन करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस लोकनाथरस को ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में १ ग्राम पिप्पलीचूर्ण और गुड़ के साथ अथवा १ ग्राम जीरकचूर्ण और गुड़ के साथ सेवन कराना चाहिए। इसके सेवन से यकृद्रोग, प्लीहरोग, गुल्मरोग, उदररोग, शोथरोग, जीर्णज्वर, पाण्डु और कामला तथा अग्निमांद्यरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—जीरकचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण और मधु या हरीतकीचूर्ण और गुड़ से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कपोतवर्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—यकृत्, प्लीहा एवं गुल्मरोग में।

३३. लोकनाथ रस-२

रसगन्धौ समौ कृत्वा मर्दयेदर्द्धयामकम्।
रसतुल्यं मृतञ्चाभ्रं द्विगुणं लौहताम्रकम् ॥७९॥
ताम्रस्य द्विगुणं भस्म कपर्दकसमुद्भवम्।
नागवल्लीरसैर्यामं मर्दयेदतिनिर्जने ॥८०॥
ततो लघुपुटं दत्त्वा सुशीतं ग्राहयेत्तथा।
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैः खदिरत्वग्रसं पिबेत् ॥८१॥
यकृत्प्लीहोदरं शोथमग्निमान्द्यादिकं जयेत्।
लोकनाथरसो नाम सर्वज्वरविनाशनः ॥८२॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. अभ्रक भस्म १ भाग, ४. लौहभस्म २ भाग, ५. ताम्रभस्म २ भाग और ६. वराटिकाभस्म ४ भाग लें। सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी तरह से कज्जली करें। ततः अन्य भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। पुनः ताम्बूलपत्रस्वरस की भावना देकर एक दिन तक मर्दन करें। ततः टिकिया बनाकर सुखाकर शरावसम्पुट करें और लघुपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर औषधि निकाल लें और खरल में मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस लोकनाथरस को २५० मि.ग्रा. की मात्रा में आर्द्रकस्वरस के साथ मिलाकर चटावें और ऊपर से खदिरत्वक्क्वाथ ५० मि.ली. पिलावें। यह यकृत् प्लीहोदर रोग, शोथ, अग्निमांद्य और सर्वज्वर रोग नाशक है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—आर्द्रकस्वरस, खदिरत्वक् क्वाथ में। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कपोतवर्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—यकृत् प्लीहोदर में।

३४. लोकनाथरस-३ (र.सा.सं.)

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले कुर्याच्च कज्जलीम्।
सूततुल्यं जारिताभ्रं मर्दयेत् कन्यकाऽम्बुना ॥८३॥
ततो द्विगुणितं दद्यात्ताम्रं लौहं प्रयत्नतः।
सूतान्नवगुणं देयं वराटीसम्भवं रजः ॥८४॥
काकमाचीरसेनैव सर्वं तद् गोलकीकृतम्।
ततो लघुपुटे पच्यात् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥८५॥
शिवं सम्पूज्य यत्नेन द्विजातीन् परितोष्य च।
भक्षयेदस्य चूर्णस्य द्विगुञ्जं मधुना सह ॥८६॥
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतं सर्वरूपिणम्।
जीर्णज्वरं तथा गुल्मं कामलां हन्ति दारुणाम् ॥८७॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक २ भाग, ३. अभ्रक भस्म १ भाग, ४. ताम्रभस्म २ भाग, ५. लौहभस्म २ भाग और ६. वराटिकाभस्म ९ भाग लें। सर्वप्रथम साफ बड़े खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और अच्छी कज्जली करें। कज्जली बनाने के बाद उसमें अभ्रकभस्म मिलावें और घृतकुमारीस्वरस की १ भावना दें। तदनन्तर अन्य सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें और काकमाचीस्वरस की भावना देकर गोला बनाकर सुखा लें। मिट्टी के शराव में इस गोले को रख कर अन्य शराव से सम्पुटित कर कपोतपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर औषधि निकालकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि के सेवन से पूर्व भगवान् शिव एवं औषधि की ब्राह्मणों से पूजा कराकर तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा से सन्तुष्ट करने के पश्चात् २५० मि.ग्रा. की मात्रा में इसे मधु के साथ सेवन करें। इसके सेवन से प्लीहावृद्धि, अग्रमांस (हृद् वृद्धि), यकृद्वृद्धि एवं सम्पूर्ण यकृद्विकार, जीर्णज्वर, गुल्म और भयंकर कामला रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—किञ्चित् तिक्त। **उपयोग**—यकृत-प्लीहोदर में।

३५. प्लीहारिरस-१

पारदं गन्धकं टङ्कं विषं व्योषं फलत्रयम्।
तोलकस्य समोपेतं जैपालञ्च तदर्द्धकम् ॥८८॥
किंशुकस्य रसेनैव याममात्रन्तु मर्दयेत्।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा छायायां शोषयेत्ततः ॥८९॥
वटिकैका प्रदातव्या शृङ्गबेररसेन च।
गुदाङ्कुरे गुल्मशूले प्लीहशोथकफात्मके ॥९०॥
उदावर्त्ते वातशूले श्वासकासज्वरेषु च।
रसः प्लीहारिनामाऽयं कोष्ठामयविनाशनः ॥
आमवातगदच्छेदी श्लेष्मामयविनाशनः ॥९१॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. शुद्ध वत्सनाभविष १ भाग, ४. शुद्ध टङ्कण १ भाग, ५. सोंठचूर्ण १ भाग, ६. पिप्पलीचूर्ण १ भाग, ७. मरिचचूर्ण, ८. आमलाचूर्ण १ भाग, ९. हरीतकीचूर्ण १ भाग, १०. बहेड़ाचूर्ण १ भाग तथा ११. शुद्ध जयपाल ५ भाग लें। एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर कज्जली बनावें। ततः अन्य द्रव्यों को उसमें मिलाकर मर्दन करें और पलाशत्वक्क्वाथ की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें तथा १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'प्लीहारिरस' नाम से विख्यात रसौषधि को आर्द्रकस्वरस के साथ सेवन करने से अर्श, गुल्म, शूल, प्लीहा, शोथ, कफज रोग, उदावर्त, वातज शूल, श्वास, कास, ज्वर, कोष्ठ के सभी रोग और आमवात रोगों का नाश हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि. ग्रा.। **अनुपान**—आर्द्रकस्वरस से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—कटु, तिक्त। **उपयोग**—यकृत्प्लीहोदर, गुल्म, अर्श, शोथ एवं उदावर्त्त में।

३६. प्लीहारिरस-२ (र.सा.सं.)

कर्षैकं तालचूर्णस्य तत्पादांशं सुवर्णकम्।
पलार्द्धं मृतताम्रञ्च तत्समं शुद्धमभ्रकम् ॥९२॥
मृगाजिनस्य भस्मापि कर्षमात्रं प्रदापयेत्।
लिम्पाकाङ्घ्रित्वचस्तद्वत्सर्वमेकत्र कारयेत् ॥९३॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कारयेत्ततः।
मधुना वह्निचूर्णेन खादेन्नित्यं यथाबलम् ॥९४॥
असाध्यमपि प्लीहानं हन्त्यवश्यं न संशयः।
यकृतं पाण्डुरोगञ्च गुल्मादिकभगन्दरम् ॥९५॥

१. शुद्ध हरतालचूर्ण १ भाग, २. सुवर्णभस्म $\frac{१}{४}$ भाग, ३. ताम्रभस्म २ भाग, ४. अभ्रकभस्म ८ भाग, ५. मृगचर्मभस्म १ भाग तथा ६. जम्बीरीनिम्बुमूलत्वक् १ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में हरताल और सुवर्ण भस्म का मर्दन करें। ततः अन्य भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। पुनः मृगचर्मभस्म और निम्बुत्वक् चूर्ण मिलाकर जल के साथ मर्दन करें और २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'प्लीहारिरस' को चित्रकमूलचूर्ण १ ग्राम और मधु मिलाकर नित्य सेवन करने से असाध्य प्लीहारोग निःसन्देह मिट जाता है। इससे यकृद्रोग, पाण्डुरोग, गुल्म और भगन्दररोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—चित्रकमूलचूर्ण और मधु से। **गन्ध**—चर्मभस्मगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **उपयोग**—प्लीहोदर, यकृद्रोग में।

३७. प्लीहारिवटिका

सहासाराभ्रकासीसलशुनानि समानि च।
द्रोणपुष्पीरसेनैव मर्दयेत्प्रहरत्रयम् ॥९६॥
वल्लद्वयं प्रदातव्यं प्रदोषे सलिलं ह्यनु।
प्लीहानं यकृतं गुल्ममग्निमान्द्यं सशोथकम् ॥९७॥
कासं श्वासं तृषां कम्पं दाहं शीतं वमिं भ्रमिम्।
प्लीहारिवटिका ह्येषां नाशयेन्नात्र संशयः ॥९८॥

१. एलुआ (मुसव्वर), २. अभ्रकभस्म, ३. शुद्ध कासीस तथा ४. लशुन—ये चारों द्रव्य समभाग लें। एलुआ का चूर्ण करें तथा सभी द्रव्यों को एक साथ एक खरल में मर्दन करें और द्रोण पुष्पी (गूमा) स्वरस में ३ घण्टे तक मर्दन कर ७५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। जल के साथ इस प्लीहारिवटी को १ से २ वटी लेने से प्लीहारोग, यकृद्रोग, गुल्म, अग्निमांद्य, शोथ, कास, श्वास, तृषा, कम्प, दाह, शीत, वमन और भ्रम रोगों का नाश होता है।

मात्रा—३७५ से ७५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—एलुआ गन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—यकृद्रोग, प्लीहरोग, गुल्म एवं अग्निमांद्य में।

३८. प्लीहार्णवरस (र.सा.सं.)

हिङ्गुलं गन्धकं टङ्कमभ्रकं विषमेव च।
प्रत्येकं पलिकं भागं चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥९९॥
पिप्पलीं मरिचं चैव प्रत्येकं च पलार्द्धकम्।
मर्द्दयित्वा वटीं कुर्याद् वल्लमात्रां प्रयत्नतः ॥१००॥
सेव्या शेफालिदलजैर्वटी माक्षिकसंयुता।
प्लीहानं षट्प्रकारञ्च हन्ति शीघ्रं न संशयः ॥१०१॥
ज्वरं मन्दानलं चैव कासं श्वासं वमिं भ्रमिम्।
प्लीहार्णव इति ख्यातो गहनानन्दभाषितः ॥१०२॥

१. शुद्ध हिङ्गुल ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम, ३. शुद्ध टङ्कण ५० ग्राम, ४. अभ्रकभस्म ५० ग्राम, ५. शुद्ध वत्सनाभविष ५० ग्राम, ६. पीपरचूर्ण २५ ग्राम और ७. मरिचचूर्ण २५ ग्राम लें। एक साफ खरल में पहले हिंगुल और गन्धक को मिलावें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें। जल की भावना देकर ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी को निर्गुण्डीपत्रस्वरस और मधु के साथ सेवन करने से ६ प्रकार के प्लीहरोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त ज्वर, मन्दाग्नि, कास, श्वास, वमन और भ्रम रोग नष्ट हो जाते हैं। इस प्लीहार्णवरस को आचार्य श्री गहनानन्द ने निर्मित किया था।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—निर्गुण्डीस्वरस एवं मधु से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—प्लीह एवं यकृद्वृद्धि में।

३९. प्लीहशार्दूलरस (र.सा.सं.)

सूतकं गन्धकं व्योषं समभागं पृथक् पृथक्।
एभिः समं ताम्रभस्म योजयेद्वैद्यसत्तमः ॥१०३॥
मनःशिला वराटञ्च तुत्थं रामठलौहकम्।
जयन्ती रोहितञ्चैव क्षारटङ्कणसैन्धवम् ॥१०४॥
विडं चित्रं कानकञ्च रसतुल्यं पृथक् पृथक्।
भावयेत्त्रिदिनं यावत् त्रिवृच्चित्रकणार्द्रकैः ॥१०५॥
गुञ्जामात्रां वटीं खादेत्सद्यः प्लीहविनाशिनीम्।
मधुपिप्पलिसंयुक्तां द्विगुञ्जां वा प्रयोजयेत् ॥१०६॥
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृद्गुल्मं सुदुस्तरम्।
आमाशयेषु सर्वेषु चोदरे शोथविद्रधौ ॥१०७॥
अग्निमान्द्ये ज्वरे चैव प्लीह्नि सर्वज्वरेषु च।
श्रीमद्गहननाथेन भाषितः प्लीहशार्दूलः ॥१०८॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. सोंठ-चूर्ण १ भाग, ४. पीपरचूर्ण १ भाग, ५. मरिचचूर्ण १ भाग, ६. ताम्रभस्म ५ भाग, ७. शुद्ध मनःशिला १ भाग, ८. वराटिका-भस्म १ भाग, ९. शुद्ध तुत्थ १ भाग, १०. शुद्ध हींग १ भाग, ११. लौहभस्म १ भाग, १२. जयन्तीमूलचूर्ण १ भाग, १३. रोहितकत्वक्चूर्ण १ भाग, १४. यवक्षार १ भाग, १५. शुद्ध टङ्कण १ भाग, १६. सैन्धवचूर्ण १ भाग, १७. विडलवण १ भाग, १८. चित्रकमूलचूर्ण १ भाग और १९. शुद्ध जयपाल १ भाग लें। एक खरल में शुद्ध पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य द्रव्यों को मिलावें और मर्दन करें। इसके बाद त्रिवृत्क्वाथ, चित्रकमूल क्वाथ, पीपरचूर्ण और आर्द्रकरस के साथ १-१ दिन तक (कुल ४ दिन) मर्दन करें और १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'प्लीहशार्दूलरस' को आचार्य श्रीगहननाथ ने निर्मित किया है। इसके सेवन से प्लीह-रोग, अग्रमांस (हृदयाग्रमांसवृद्धि), यकृद्रोग, असाध्य गुल्म, सभी प्रकार के आमाशयविकार, सभी प्रकार के उदर रोग, शोथ, वृद्धिरोग, अग्निमांद्य, ज्वर, प्लीहावृद्धि जन्य सभी प्रकार के ज्वर (कालाजार आदि) नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा. से २५० मि.ग्रा. तक। **अनुपान**—पिप्पलीचूर्ण और मधु से। **गन्ध**—हिङ्गुगन्धी। **वर्ण**—श्याव वर्ण। **स्वाद**—कटु-लवणीय। **उपयोग**—प्लीह-यकृद्विकार में।

४०. यकृत्प्लीहारिलौह

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं लौहमभ्रकम्।
तुल्यं द्विगुणताम्रन्तु शिलां च रजनीं तथा ॥१०९॥
जयपालं टङ्कणञ्च शिलाजतु समं रसात्।
एतत्सर्वं समाहृत्य चूर्णीकृत्य विमिश्रयेत् ॥११०॥
दन्तीत्रिवृच्चित्रकञ्च निर्गुण्डी त्र्यूषणं तथा ॥
आर्द्रकं भृङ्गराजश्च रसैरेषां पृथक् पृथक् ॥१११॥
भावयित्वा वटीं कुर्याद् बदरास्थिमितां भिषक्।
प्लीहानं यकृतञ्चैव चिरकालानुबन्धिनम् ॥११२॥
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव सर्वदोषभवं तथा।
हन्यादष्टोदरानाहज्वरं पाण्डुञ्च कामलाम् ॥११३॥
शोथं हलीमकं हन्ति मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
यकृत्प्लीहारिनामेदं लौहं जगति दुर्लभम् ॥११४॥

१. हिंगुलोत्थपारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. लौहभस्म १ भाग, ४. अभ्रकभस्म १ भाग, ५. ताम्रभस्म २ भाग, ६. शुद्ध मनःशिला १ भाग, ७. हल्दीचूर्ण १ भाग, ८. शुद्ध जयपाल १ भाग, ९. शुद्ध टङ्कण १ भाग तथा १०. शुद्ध शिलाजतु १ भाग लें।

भावना द्रव्य—१. दन्तीमूलक्वाथ, २. त्रिवृत्क्वाथ, ३. चित्रकमूलक्वाथ, ४. निर्गुण्डीपत्ररस, ५. सोंठक्वाथ, ६. पीपरक्वाथ, ७. मरिचक्वाथ, ८. आर्द्रकस्वरस और ९. भृङ्गराजस्वरस।

सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर कज्जली बना लें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को भी कज्जली के साथ मिलाकर मर्दन करें और उक्त भावना द्रव्यों में प्रत्येक द्रव्य के स्वरस या क्वाथादि से पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर दृढ़ मर्दन कर ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यकृत्प्लीहारि लौह नामक इस रसौषधि का सेवन करने से प्लीहारोग, यकृद्रोग, चिरकालीन एकदोषज, द्विदोषज तथा त्रिदोषज प्लीहारोग, ८ प्रकार के उदररोग, आनाह, ज्वर, पाण्डु, कामला, शोथ, हलीमक, मन्दाग्नि एवं अरुचिरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—कपोत वर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—यकृत्प्लीहावृद्धि में, उदर एवं पाण्डुरोग में।

४१. यकृत्प्लीहोदरारिलौह

स्वर्णं रौप्यं तथा ताम्रं वङ्गश्चाभ्रं समाक्षिकम्।
सर्वार्द्धं जारितं लौहं कल्पयेत्कुशलो भिषक् ॥११५॥
शृङ्गबेररसेनापि शेफालीदलजैः रसैः।
स्वरसैर्बिल्वपत्राणां क्वाथैश्च कटुतिक्तजैः ॥११६॥
रसेन बहुमञ्जर्या भावयेच्च त्रिधा त्रिधा।
वल्लमात्रं प्रदातव्यं पर्पटक्वाथसंयुतम् ॥११७॥
प्लीहानं यकृतं श्वासं कासञ्च विषमज्वरम्।
गुल्मशोथोदरानाहमग्रमांसमरोचकम् ॥११८॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च चिरकालानुबन्धिनम्।
सर्वान् रोगान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोद्भवान् ॥११९॥

१. स्वर्णभस्म १ भाग, २. रजतभस्म १ भाग, ३. ताम्रभस्म १ भाग, ४. वङ्गभस्म १ भाग, ५. अभ्रकभस्म १ भाग, ६. स्वर्णमाक्षिकभस्म १ भाग और ७. लौहभस्म ३ भाग लें। एक साफ खरल में उपर्युक्त सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और क्रमशः आर्द्रकरस, निर्गुण्डीरस, बिल्वपत्रस्वरस, कुटकीक्वाथ और तुलसीपत्रस्वरस की ३-३ भावना देकर ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यकृत्प्लीहोदरारिलौह की १-१ वटी पर्पटक्वाथ के साथ सेवन करने से प्लीहारोग, यकृद्रोग, श्वास, कास, विषमज्वर, गुल्म, शोथ, उदररोग, हृदयाग्रमांस-वृद्धि, अरुचि, कामला, पुराना पाण्डुरोग तथा वात, पित्त एवं कफ से उत्पन्न सभी प्रकार के रोगों का नाश होता है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—पर्पटक्वाथ से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—यकृत्प्लीहादर में।

४२. यकृत्प्लीहोदरलौह

लौहार्द्धमभ्रकं शुद्धं सूतमप्यर्द्धभागिकम्।
त्रिगुणामयसश्चूर्णात् त्रिफलां साभ्रकात्तथा ॥१२०॥
द्विरष्टवारिणो भागमष्टशिष्टन्तु कारयेत्।
तेन चाष्टावशिष्टेन समेनाज्येन यत्नतः ॥१२१॥
रसेन बहुपुत्राया द्विगुणक्षीरसंयुतम्।
लौहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायसि मृन्मये ॥१२२॥
अभ्रकं निहतं शुद्धं पारदं च सुमूर्च्छितम्।
अयसोऽर्द्धमितं चूर्णमादौ पाके विनिक्षिपेत् ॥१२३॥
कन्दं कापालिकं चव्यं विडङ्गं सबृहद्दलम्।
शरपुङ्खां च पाठां च चित्रकं समहौषधम् ॥१२४॥
लवणानि च सर्वाणि सक्षारं वृद्धदारकम्।
दीप्यकं च तथा सीधुं लौहाभ्रकसमं क्षिपेत् ॥१२५॥
प्लीहोदरयकृद्गुल्मान् हन्ति शस्त्राग्निभिर्विना।
प्रयोज्योऽयं महावीर्यो लौहो लौहविदां वरैः ॥१२६॥
प्लीहोदरविनाशाय दद्याद् द्वे द्वे पुटे पृथक्।
मानेन घण्टकर्णेन सूरणेनाधिकं पुनः ॥१२७॥

१. लौहभस्म १०० ग्राम, २. अभ्रकभस्म ५० ग्राम, ३. रससिन्दूर ५० ग्राम, ४. त्रिफला ३०० ग्राम, ५. जल १६ गुना

(४.८०० मि.ली. अष्टमांशावशेष क्वाथ), ६. शतावरीक्वाथ ८०० मि.ली., ७. गोघृत ८०० ग्राम, ८. गोदुग्ध १६०० मि.ली., ९. मानककन्दचूण, १०. कापालिक, ११. चव्यचूर्ण, १२. वायविडङ्गचूर्ण, १३. लोध्रत्वक्चूर्ण, १४. शरपुङ्खा-चूर्ण, १५. पाठाचूर्ण, १६. चित्रकमूलचूर्ण, १७. सोंठचूर्ण, १८. सैन्धवलवण, १९. सामुद्रलवण, २०. सौवर्चललवण, २१. विडलवण, २२. औद्भिल्लवण, २३. यवक्षार, २४. विधाराचूर्ण तथा २५. अजवायनचूर्ण—प्रत्येक द्रव्यों के चूर्ण १५० ग्राम लें। एक साफ खरल में लौहभस्म ५० ग्राम, अभ्रकभस्म ५० ग्राम और रससिन्दूर ५० ग्राम को एक साथ अच्छी तरह से खरल करें। ५० ग्राम लौहभस्म पृथक् रख लें। ततः स्टेनलेस स्टील के पात्र में त्रिफलायवकुट का १६ गुना जल अर्थात् ४८० मि.ली. जल में मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष (८०० मि.ली.) रहने पर क्वाथ छान लें। अब स्टेनलेस स्टील के साफ पात्र में त्रिफलाक्वाथ, गोघृत, शतावरी-क्वाथ और गोदुग्ध एक साथ लेकर चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दर्वी से बार-बार चलाते रहें। उपर्युक्त लौह-अभ्रकभस्म एवं रससिन्दूर के ५०-५० ग्राम मिश्रण को इस पात्र में डाल दें। पाक गाढ़ा होने पर मानकन्दचूर्ण से स्नुहीमूलचूर्ण तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह दर्वी से चलावें। उसमें अवशिष्ट ५० ग्राम लौहभस्म भी डालकर अच्छी तरह दर्वी से मिला लें। औषधि को अच्छी तरह सुखा लें। पुनः महीन छननी से औषधि को छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'यकृत्प्लीहोदरलौह' को ३ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से सेवन करावें। इससे सेवन से यकृत्प्लीहोदर नाशक लौहभस्म और अभ्रकभस्म मिलाने से पूर्व मानकन्दस्वरस, घण्टाकर्ण और सूरणकन्दस्वरस की १-१ भावना देकर पृथक्-पृथक् २-२ लघु पुट देना चाहिए।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—गरम पानी से। **गन्ध**। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—यकृत्प्लीहोदर एवं गुल्म में।

४३. यकृदरिलौह-१ (र.सा.सं.)

द्विकर्षं लौहचूर्णस्य गगनस्य पलार्द्धकम्।
कर्षं शुद्धं मृतं ताम्रं लिम्पाकाङ्घ्रित्वचः पलम् ॥१२८॥
मृगाजिनभस्मपलं सर्वमेकत्र कारयेत्।
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥१२९॥
यकृत्प्लीहोदरञ्चैव कामलाञ्च हलीमकम्।
कासं श्वासं ज्वरं हन्ति बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥
यकृदरिनाम लौहं सर्वव्याधिनिषूदनम् ॥१३०॥

१. लौहभस्म २५ ग्राम, २. अभ्रकभस्म २५ ग्राम, ३. ताम्र भस्म १२ ग्राम, ४. जम्बीरीनीबूमूलत्वक् ५० ग्राम और ५. मृगचर्मभस्म ५० ग्राम लें। एक साफ खरल में लौह, अभ्रक एवं ताम्रभस्म को एक साथ मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर जम्बीरी निम्बुमूलत्वक्चूर्ण और मृगचर्मभस्म मिलावें और जल के साथ एक दिन तक मर्दन करें। ११२५ मि.ग्रा. (९ रत्ती) प्रमाण की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में सग्रहीत करें। १-१ वटी जलानुपान के साथ सेवन करने से यकृत्-प्लीहोदर रोग, कामला, हलीमक, कास, श्वास और ज्वर नष्ट हो जाते हैं। इस 'यकृदरिलौह' के सेवन से बल, वर्ण और पाचकाग्नि बढ़ती है। अनुपान भेद से यह लौह सभी रोगों को नष्ट करता है।

मात्रा—आधुनिक मात्रा ३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—दग्धचर्मगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—दग्धचर्मगन्धी। **उपयोग**—यकृत्-प्लीहोदर में।

४४. यकृदरिलौह-२

पारदं गन्धकञ्चाभ्रं त्र्यूषणं कटुकीं तथा।
त्रायमाणां विषां पाठां पिचुमर्दं हरीतकीम् ॥१३१॥
चित्रकं पर्पटं मुस्तं समभागं प्रकल्पयेत्।
सर्वार्द्धं जारितं लौहं गुडूचीस्वरसैर्दिनम् ॥१३२॥
निष्पिष्य वटिका कार्या त्रिगुञ्जाफलमानतः।
प्लीहोदरयकृद्गुल्मान् सर्वोपद्रवसंयुतान् ॥१३३॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं चातुराहिकम्।
सर्वाञ् ज्वरान्निहन्त्याशु भक्षणादार्द्रकद्रवैः ॥१३४॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. अभ्रकभस्म, ४. सोंठचूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. मरिचचूर्ण, ७. कुटकीचूर्ण, ८. त्रायमाणचूर्ण, ९. अतीसचूर्ण, १०. पाठाचूर्ण, ११. निम्बत्वक्चूर्ण, १२. हरीतकीचूर्ण, १३. चित्रकमूलचूर्ण, १४. पित्तपापड़ाचूर्ण, १५. नागरमोथावूर्ण (समभाग) और १६. लौहभस्म ७½ भाग (सभी चूर्णों का आधा भाग) लें। सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। उसके बाद लौह एवं ताम्र भस्म और अन्य काष्ठौषधियों को मिलाकर मर्दन करें। ततः गुडूचीस्वरस की भावना देकर एक दिन तक मर्दन कर ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी २ बार आर्द्रकस्वरस और मधु के साथ सेवन करने से सभी उपद्रवों से युक्त प्लीहोदररोग, यकृद्रोग, गुल्म, ऐकाहिक, द्वितीयक, तृतीयक, चातुर्थक एवं सभी प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—आर्द्रकस्वरस और मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याव। कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—यकृत् प्लीहोदर में।

४५. रोहीतकलौह (रसेन्द्रचिन्ता.)

रोहीतकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः।
प्लीहानमग्रमांसञ्च शोथं हन्ति न संशयः॥१३५॥

१. रोहीतकत्वक्चूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण, ५. सोंठचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण, ८. वायविडङ्गचूर्ण, ९. नागरमोथाचूर्ण, १०. चित्रकमूलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग तथा ११. लौहभस्म १० भाग लें। इन सभी द्रव्यों को एक बड़े खरल में रखकर मर्दन करें। ततः रोहीतक क्वाथ की भावना दें। इसे एण्डरनर मशीन में मर्दन करें तो अधिक अच्छी दवा होगी। अथवा बिना जोड़ की छोटी कड़ाही में औषधि रखकर लोहे के चौड़े टुकड़े से घिसना चाहिए। इसके बाद ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी दो बार उष्णोदक के साथ सेवन करने से प्लीहोदर, अग्रमांसवृद्धि (हृदयाग्रमांसवृद्धि) और शोथरोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—कटु-तिक्त। **उपयोग**—प्लीहोदर में।

४६. चित्रकादिलौह

चित्रकं नागरं वासा गूडूची शालपर्णिका।
तालपुष्पमपामार्गो मानकं कार्षिकत्रयम्॥१३६॥
लौहमभ्रं कणा ताम्रं क्षारको लवणानि च।
पृथक् कर्षांशमेतेषां चूर्णमेकत्र चिक्कणम्॥१३७॥
चतुःप्रस्थे गवां मूत्रे पचेन्मन्देन वह्निना।
सिद्धशीतं समुद्धृत्य माक्षिकं द्विपलं क्षिपेत्॥१३८॥
चित्रकादिरयं लौहो गुल्मप्लीहोदरामयान्।
यकृतं ग्रहणीं हन्ति शोथं मन्दानलं ज्वरम्॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च गुदभ्रंशं प्रवाहिकाम्॥१३९॥

१. चित्रकमूलचूर्ण, २. सोंठचूर्ण, ३. वासाचूर्ण, ४. गुडूचीचूर्ण, ५. शालपर्णीचूर्ण, ६. ताडवृक्षपुष्पचूर्ण, ७. अपामार्गचूर्ण, ८. मानकन्दचूर्ण, ९. लौहभस्म, १०. अभ्रकभस्म, ११. पीपरचूर्ण, १२. ताम्रभस्म, १३. यवक्षार, १४. सैन्धवलवण, १५. सौवर्चललवण, १६. सामुद्रलवण, १७. विडलवण और १८. औद्भिल्लवण—चित्रकमूलचूर्ण से मानकन्दचूर्ण तक ८ द्रव्य प्रत्येक ३५-३५ ग्राम तथा लौहभस्म से लवणों तक प्रत्येक १२-१२ ग्राम लें; १९. मधु ९३ ग्राम तथा २०. गोमूत्र ३ लीटर लें। एक बड़े खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें। ततः एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में गोमूत्र और मिश्रित औषधि को मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। बीच-बीच में दर्वी से चलाते रहें। जब गोमूत्र सूख जाय तो स्टीलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। ठण्डा होने पर उसमें मधु मिलावें और दर्वी से खूब घोंटकर सुखा लें। पुनः औषधि को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'चित्रकादि लौह' को १ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से सुबह-शाम सेवन करने से प्लीहोदर, यकृद्वृद्धि, गुल्म, ग्रहणी, शोथ, मन्दाग्नि, ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, गुदभ्रंश और प्रवाहिका रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—धूसरवर्ण। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—प्लीहोदर, यकृत्, गुल्म एवं मन्दाग्नि में।

४७. सर्वेश्वरलौह

शुद्धसूतं पलं गन्धं द्विपलन्तु मृताभ्रकम्।
त्रिपलं मृतताम्रञ्च पलार्द्धं स्वर्णमाक्षिकम्॥१४०॥
जैपालं चित्रकं मानं शूरणं घण्टकर्णकम्।
ग्रन्थिकं त्रिफला व्योषं त्रिवृता खरमञ्जरी॥१४१॥
दण्डोत्पला वृश्चिकाली कुलिशं नागदन्तिका।
सूर्यावर्त्तञ्च सञ्चूर्ण्य कर्षमात्रं विमर्दयेत्॥१४२॥
आर्द्रकस्य रसेनैव चूर्णयित्वा पुनः क्षिपेत्।
त्रिपलं लौहचूर्णस्य ततः खादेच्छुभेऽहनि॥१४३॥
सम्पूज्य भास्करं विष्णुं गणनाथं द्विजोत्तमम्।
माषमात्रञ्च मधुना कृत्वा शीतजलं पिबेत्॥१४४॥
चूर्णं सवेश्वरं नाम सर्वरोगहरं भवेत्।
कठोरप्लीहनाशाय गुल्मोदरहरं तथा॥१४५॥
कामलां पाण्डुमानाहं यकृत्क्रिमिकृतामयान्।
विचर्च्चिमम्लपित्तञ्च ह्यग्निमान्द्यं सुदुस्तरम्॥
श्रीकरं कान्तिजननं शुक्रायुर्बलवर्द्धनम्॥१४६॥

१. शुद्ध पारद ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक १०० ग्राम, ३. अभ्रकभस्म १०० ग्राम, ४. ताम्रभस्म १५० ग्राम, ५. स्वर्णमाक्षिकभस्म २५ ग्राम, ६. शुद्ध जयपाल १२ ग्राम, ७. चित्रकमूलचूर्ण १२ ग्राम, ८. मानकन्दचूर्ण १२ ग्राम, ९. सूरणकन्दचूर्ण १२ ग्राम, १०. घण्टाकर्णचूर्ण १२ ग्राम, ११. पिपरामूलचूर्ण १२ ग्राम, १२. आमलाचूर्ण १२ ग्राम, १३. हरीतकीचूर्ण १२ ग्राम, १४. बहेड़ाचूर्ण १२ ग्राम, १५. सोंठचूर्ण १२ ग्राम, १६. पीपरचूर्ण १२ ग्राम, १७. मरिचचूर्ण १२ ग्राम, १८. निशोथचूर्ण १२ ग्राम, १९. अपामार्गचूर्ण १२ ग्राम, २०. सहदेवीचूर्ण १२ ग्राम, २१. वृश्चिकालीचूर्ण १२ ग्राम, २२. अस्थिसंहारी १२ ग्राम, २३. नागदन्ती १२ ग्राम, २४. हुरहुरचूर्ण (सौवर्चला) १२ ग्राम और २५. लौहभस्म १५० ग्राम में लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मिलाकर अच्छी तरह मर्दन कर कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में अभ्रकादि भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद अन्य काष्ठौषधों के चूर्णों को उसमें मिलाकर आर्द्रकस्वरस की भावना

देकर मर्दन करें। सूखने पर १५० ग्राम लौहभस्म मिलाकर मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। शुभनक्षत्र में भगवान् सूर्य, भगवान् विष्णु एवं भगवान् गणेश की विधिवत् पूजा कर इस औषधि की भी पूजा करें और इस सर्वेश्वररस को १ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर रोगी को खिलावें और शीतल जल पिलावें। यह सर्वेश्वरलौह अनुपान भेद से सभी रोगों का नाश करता है। इसके सेवन से प्लीहोदर, कठोर प्लीहा, यकृद्वृद्धि, गुल्म, उदररोग, कामला, पाण्डु, आनाह, कृमि विकार, विचर्चिका, अमलपित्त, कण्डू, कुष्ठ, रक्तपित्त और भयंकर अग्निमान्द्य रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से शरीर- सौष्ठव, शरीर की कान्ति, शुक्र, बल और आयु बढ़ते हैं।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—कपोतवर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—प्लीहोदर, यकृदुदर एवं गुल्म में।

४८. महामृत्युञ्जयलौह (रसे.चि.म.)

शुद्धसूतं समं गन्धं जारिताभ्रं समं तथा।
गन्धस्य द्विगुणं लौहं मृतताम्रं चतुर्गुणम् ॥१४७॥
द्विक्षारं सैन्धवविडं वराटीशङ्खभस्मकम्।
चित्रकं कुनटी तालं रामठं कटुका तथा ॥१४८॥
रोहितं त्रिवृता चिञ्चा विशाला धवलाङ्कठः।
अपामार्गंताललिण्डमम्लिका च निशाद्वयम् ॥१४९॥
प्रियङ्ग्विन्द्रयवं पथ्या चाजमोदा यमानिका।
तुत्थकं शरपुङ्खा च यकृन्मर्दो रसाञ्जनम् ॥१५०॥
प्रत्येकं शाणमानेन भावयेदार्द्रकद्रवैः।
गुडूच्याः स्वरसेनापि मधुनः कुडवार्द्धकम् ॥१५१॥
वटिकाः कारयेद्वैद्यो षड्गुञ्जाप्रमितां पुनः।
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः ॥१५२॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय सर्वरोगकुलान्तकम्।
प्लीहानं ज्वरमुग्रञ्च कासञ्च विषमज्वरम् ॥१५३॥
आमवातं यकृच्छूलं श्वासमर्शः शिरोरुजम्।
गुल्मशोथोदरानाहमग्रमांसं यकृत्क्षयम् ॥१५४॥
सकामलं पाण्डुरोगमुदरञ्च निहन्त्यदः।
रोगानीकविनाशाय केशरी करिणे यथा ॥१५५॥
महामृत्युञ्जयो लौहः प्लीहगुल्मविनाशनः।
प्राणिनान्तु हितार्थाय शम्भुना परिकीर्त्तितः ॥१५६॥

१. शुद्ध पारद १२ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक १२ ग्राम, ३. अभ्रकभस्म १२ ग्राम, ४. लौहभस्म २३ ग्राम, ५. ताम्रभस्म ४८ ग्राम, ६. यवक्षार ३ ग्राम, ७. सर्जिक्षार ३ ग्राम, ८. सैन्धवलवण ३ ग्राम, ९. विडलवण ३ ग्राम, १०. वराटिकाभस्म ३ ग्राम, ११. शङ्खभस्म ३ ग्राम, १२. चित्रकमूलचूर्ण ३ ग्राम, १३. शुद्ध मनःशिला ३ ग्राम, १४. शुद्ध हरताल ३ ग्राम, १५. भर्जित हींग ३ ग्राम, १६. कटुकीचूर्ण ३ ग्राम, १७. रोहीतकत्वक्चूर्ण ३ ग्राम, १८. निशोथचूर्ण ३ ग्राम, १९. इमलीफल ३ ग्राम, २०. इन्द्रायणमूलचूर्ण ३ ग्राम, २१. अंकोलमूलचूर्ण ३ ग्राम, २२. अपामार्गक्षार ३ ग्राम, २३. तालवृक्षफूलक्षार ३ ग्राम, २४. हरिद्राचूर्ण ३ ग्राम, २५. दारुहल्दीचूर्ण ३ ग्राम, २६. प्रियङ्गु-फलचूर्ण ३ ग्राम, २७. इन्द्रयवचूर्ण ३ ग्राम, २८. हरीतकीचूर्ण ३ ग्राम, २९. अजमोदाचूर्ण ३ ग्राम, ३०. अजवायनचूर्ण ३ ग्राम, ३१. शुद्ध तुत्थ ३ ग्राम, ३२. शरपुंखाक्षार ३ ग्राम, ३३. रोहित-कत्वक्चूर्ण ३ ग्राम, ३४. रसाञ्जन ३ ग्राम और मधु ९३ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक बड़े खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उसमें हरताल, मैनसिल, तुत्थ एवं क्रमशः अभ्रकादि भस्मों को मिलावें। तदनन्तर उसमें अन्य चूर्णों को मिलाकर अच्छी तरह से मर्दन करें। इसके बाद आर्द्रकस्वरस के साथ १ दिन मर्दन करें। इसके बाद गुडूची-स्वरस या क्वाथ के साथ १ दिन मर्दन करें। इसके बाद उसमें ९३ ग्राम मधु मिलाकर १-१ ग्राम (६ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। दोषानुसार या रोगानुसार अनुपान के द्वारा प्रातः-सायं सेवन करने से सभी रोग कुलसहित नष्ट हो जाते हैं। विशेषकर प्लीहोदर, प्लीहाजन्य भयंकर ज्वर (काला-जार), कास, विषमज्वर, आमवात, यकृच्छूल, श्वास, अर्श, शिरःशूल, गुल्म, शोथ, उदररोग, आनाह, हृदयाग्रशोथ, यकृ-क्षय, कामला, पाण्डु, गुल्म, आदि रोग समूह रूपी हाथी को नाश करने के लिए यह 'महामृत्युञ्जय लौह' सिंह के जैसा है। प्राणियों की हितकामना के लिए भगवान् शङ्कर ने इसका निर्माण किया है।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—रोग या दोषानुसार यथा—प्लीहावृद्धि में शरपुंखा स्वरस, यकृत् में गोमूत्र से आदि। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—कटु-तिक्त। **उपयोग**—प्लीहोदर, यकृदोदर, गुल्म एवं ज्वरादि में।

४९. लौहमृत्युञ्जय रस (रसेन्द्रचिन्तामणि)

रसगन्धकलौहाभ्रं कुनटी मृतताम्रकम्।
विषमुष्टिं वराटञ्च तुत्थं शङ्खं रसाञ्जनम् ॥१५७॥
जातीफलञ्च कटुकी द्विक्षारं कानकं तथा।
व्योषञ्च सैन्धवं हिङ्गु प्रत्येकं सूततुल्यकम् ॥१५८॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वमेकत्र परिभावयेत्।
सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च ॥१५९॥
सूर्यावर्त्तेन मतिमान् वटिकां कारयेत्ततः।
प्लीहानं यकृतं गुल्मष्ठीलाञ्च विनाशयेत् ॥१६०॥
अग्रमांसं तथा शोथं तथा सर्वोदराणि च।
वातरक्तं च जठरं चान्तर्विद्रधिमेव च ॥१६१॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. अभ्रक भस्म, ५. शुद्ध मनःशिला, ६. ताम्रभस्म, ७. शुद्ध कुपीलु, ८.

वराटिकाभस्म, ९. शुद्ध तुत्थ, १०. शङ्खभस्म, ११. रसाञ्जन-चूर्ण, १२. जायफलचूर्ण, १३. कटुकीचूर्ण, १४. यवक्षार, १५. सर्जिक्षार, १६. शुद्ध जयपाल, १७. सोंठचूर्ण, १८. पीपरचूर्ण, १९. मरिचचूर्ण, २०. भर्जितहिंगु और २१. सैन्धव-लवण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें, ततः अन्य भस्मों को क्रमशः उसमें डालते हुए मर्दन करें। तत्पश्चात् सभी काष्ठौषधियों को मिलावें और सूर्यावर्त्त (हुरहुर) स्वरस की भावना देकर एक दिन मर्दन करें। पुनः बिल्वपत्र स्वरस की भावना देकर एक दिन मर्दन करें। इसके बाद फिर से सूर्यावर्त्तस्वरस की भावना दें और २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'लौह-मृत्युञ्जयरस' कहते हैं। इस वटी को शरपुङ्खास्वरस अथवा क्वाथ या रोगानुसार अनुपान से लेने पर प्लीहा और यकृद्वृद्धिरोग, गुल्म, अष्ठीला, अग्रमांसवृद्धि (हृदयाग्र मांसशोथ), सभी उदर-रोग, शोथ, वातरक्त, अग्निमान्द्य और विद्रधिरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि. ग्राम। **अनुपान**—शरपुङ्खाक्वाथ या रोगानुसार अनुपान से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्लीहा, ग्रहणी एवं गुल्म में।

५०. शङ्खद्रावकरस-१ (धन्वन्तरिसं.)

योगिनीभैरवाभ्याञ्च बलिमादौ प्रदापयेत् ।
पश्चाद्यन्त्रञ्च कर्त्तव्यमेवमाह परेश्वरी ॥१६२॥
रसः शङ्खद्रवो नाम शम्भुदेवेन भाषितः ।
गुह्याद् गुह्यतमं गुह्यमिदानीं कथ्यते मया ॥१६३॥
शङ्खचूर्णं यवक्षारं सर्जिकाक्षारटङ्कणम् ।
समञ्च पञ्चलवणं स्फटिकारि नृसादरम् ॥१६४॥
काचकूप्यां ततः क्षिप्त्वा वारुणीयन्त्रमुद्धरेत् ।
यामार्द्धं द्रावयत्येष शङ्खशुक्तिवराटकान् ॥१६५॥
अर्शांसि नाशयेत् षट् च मूत्रकृच्छ्राश्मरीस्तथा ।
उदराष्टविधं हन्ति गुल्मप्लीहोदराणि च ॥१६६॥
अजीर्णं नाशयेच्छीघ्रं ग्रहणीञ्च विसूचिकाम् ।
भुक्तशेषे च भोक्तव्यो बिन्दुमात्रो रसोत्तमः ॥१६७॥
क्षणमात्राद्भवेद्भस्म पुनर्भोजनमिच्छति ।
प्रत्यहं भोजनान्ते च संसेव्योऽयं रसोत्तमः ॥१६८॥
न रुजाया भयं क्वापि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
न देयो यस्य कस्यापि सदा गोप्यञ्च कारयेत् ॥
रसः शङ्खद्रवो नाम वैद्यानामुपकारकः ॥१६९॥

१. शङ्खभस्म, २. यवक्षार, ३. सर्जिक्षार, ४. टङ्कणक्षार, ५. सैन्धवलवण, ६. सौवर्चललवण, ७. सामुद्रलवण, ८. विडलवण, ९. औद्भिल्लवण, १०. शुद्ध स्फटिका और ११. नौसादर—प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर अच्छी तरह से पीस लें। पीसे हुए इस मिश्रण को काच से निर्मित वारुणीयन्त्र (अर्कपातनयन्त्र) में रखकर मृदु अग्नि पर आसवन करें। स्रवित किये हुए इस द्रव को सावधानी से काचपात्र में संग्रहीत करें। यह तीव्र दाहक एवं तीक्ष्ण है। इसकी परीक्षा के लिए इस द्राव में कौड़ी, शंख, शुक्ति आदि के छोटे टुकड़े डालते हैं। डालने के तुरन्त बाद उसकी प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसकी निचली सतह से झाग जैसे बुद्बुद ऊपर आते दिखायी देते हैं। कुछ ही देर में डाली गयी कौड़ी गल जाती है। इसका प्रयोग २०-५० मि.ली. जल में १-५ बूँद मिलाकर करते हैं। रोगी एवं रोग के बलाबल को देखकर उसकी मात्रा घटायी या बढ़ायी जा सकती है। इसके प्रयोग से छः प्रकार के अर्श, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, ८ प्रकार के उदररोग, गुल्म, प्लीहोदर, अजीर्ण, ग्रहणी, विसूचिका आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। भोजन के बाद १-२ बूँद पानी के साथ इसका प्रयोग करने से खाया हुआ अन्न तुरन्त पच जाता है। क्षण मात्र में पुनः भोजन की इच्छा होती है। प्रतिदिन इस रस का सेवन भोजनोपरान्त करना चाहिए। मैं सत्य कह रहा हूँ कि इसके प्रयोग से रोग का भय नष्ट हो जाता है। इस रस को गुप्त (सावधानीपूर्वक) रखना चाहिए जिससे सभी के हाथ न लगे। यह शङ्खद्राव रस वैद्यों के लिए बहुत उपयोगी है।

विमर्श—इसे रस कहने का कोई औचित्य नहीं हैं क्योंकि रस की परिभाषा में आने वाला इसमें कोई भी द्रव्य नहीं है। किन्तु 'द्रवरूपत्वाद् रसोऽयम्' द्रावित होने के कारण इसे रस कहा गया है।

मात्रा—१-५ बूँद। **अनुपान**—जल से। **वर्ण**—द्रवरूप श्वेत। **स्वाद**—तीव्रदाहक। **उपयोग**—समस्त उदररोग एवं पाचकाग्नि की दुर्बलता सम्बन्धी रोगों में।

५१. शङ्खद्रावकरस-२ (बृ.यो.त.)

अर्कः स्नुही तथा चिञ्चा तिलारग्वधचित्रकम् ।
अपामार्गभस्म समं वस्त्रपूतं जलं हरेत् ॥१७०॥
मृद्वग्निना पचेत्तत्तु यावल्लवणताङ्गतम् ।
लवणेन समौ ग्राह्यौ द्वौ क्षारौ टङ्कणं तथा ॥१७१॥
समुद्रफेनं गोदन्तं कासीसं सोरकं तथा ।
द्विगुणं पञ्चलवणं मातुलुङ्गारसेन च ॥१७२॥
काचकूप्यान्तु सप्ताहं वासयेदम्लयोगतः ।
शङ्खचूर्णपलं दत्त्वा वारुणीयन्त्रमुद्धरेत् ॥१७३॥
सर्वधातून् हरेच्छीघ्रं वराटीशङ्खकादिकान् ।
उदरादिकरोगाणां सद्यो नाशकरः परः ॥१७४॥

१. अर्कमूलत्वक्भस्म, २. स्नुहीभस्म, ३. चिञ्चात्वक्भस्म,

४. तिलनालभस्म, ५. आरग्वधत्वग्भस्म, ६. चित्रकभस्म, ७. अपामार्गभस्म—प्रत्येक भस्म १-१ किलोग्राम लें; ८. यवक्षार, ९. सर्जिक्षार, १०. टङ्कणक्षार, ११. समुद्रफेन, १२. गोदन्तीभस्म, १३. कासीस, १४. कलमीसोरा और १५. पञ्चलवण—इन्हें समभाग लें। अर्कभस्म से अपामार्ग भस्म तक के ७ भस्मों को ८ गुना (५६ लीटर) जल में घोल दें और कपड़े से छानकर बड़े पात्र में निथरने के लिए छोड़ दें। ३-४ दिनों के बाद पात्र को टेढ़ा करके निथरे हुए जल को अलग कर दें। निथरे हुए जल को पुनः ७ बार वस्त्रपूत कर लें और स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखकर आग पर पकावें। जल सूखने के बाद जब वह लप्सी जैसा हो जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और एनामेल ट्रे में निकालकर धूप में रखें। सूखने के बाद काचपात्र में कार्क लगाकर रखें। इस क्षार के बराबर यवक्षार से पञ्चलवण तक के सभी द्रव्यों को २००-२०० ग्राम लें और एक बड़े खरल में रखकर मर्दन करें ततः काचकूपी में रखकर बिजौरानीबू के रस से आप्लावित करके ७ दिनों तक छोड़ दें। पुनः इसमें शङ्खभस्म समुद्रफेन के बराबर मिलाकर वारुणीयन्त्र (काच के अर्कयन्त्र) द्वारा अर्क स्रवित करें। इसे अलग काचपात्र में सावधानीपूर्वक कार्क लगाकर रखें। इसकी परीक्षा भी पूर्ववत् द्रव में कौड़ी आदि डालकर की जाती है। इसकी मात्रा में पूर्ववत् १-५ बूँद है। उदरादि रोगों में इसका प्रभाव सद्यः देखा जाता है।

विमर्श—पञ्चलवणों को मिलाकर २ भाग लेना चाहिए न कि पाँच भाग लें।

मात्रा—१-५ बूँद। **अनुपान**—जल से। **वर्ण**—श्वेतद्रव। **स्वाद**—तीक्ष्ण अम्ल। **उपयोग**—उदरादि रोगों में।

५२. महाशङ्खद्रावक-३ (बृ.यो.त.)

चिञ्चाऽश्वत्थं स्नुही ह्यर्कोऽपामार्गश्च हि पञ्चमः।
पृथग्भस्मजलं कृत्वा तद्धृत्य लवणानि च ॥१७५॥
टङ्गणञ्च यवक्षारं सर्ज्जं लवणपञ्चकम्।
रामठं तोलकञ्चैव लवङ्गं नरसादरम् ॥१७६॥
जातीफलञ्च गोदन्तं ताप्यं गन्धरसं तथा।
विषं समुद्रफेनञ्च सोरकं स्फटिकारिका ॥१७७॥
शङ्खचूर्णं शङ्खनाभिचूर्णं पाषाणसम्भवम्।
मनःशिला च कासीसं समभागञ्च कारयेत् ॥१७८॥
भावयेद्वेतसरसैः काचकूप्यां क्षिपेत्ततः।
अन्तर्द्रव्यञ्च तां कृत्वा चोष्णस्थाने तु धारयेत् ॥१७९॥
वस्त्रेणाच्छादितां तावद्यावत्स्यात्सप्तवासरम्।
पश्चान्मन्दाग्निना पक्वं वारुणीयन्त्र उद्धरेत् ॥१८०॥
काचकूप्यां जलं दत्त्वा रक्षयेद्यत्नतः सुधीः।
गुञ्जैकं पर्णखण्डेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥१८१॥
कासं श्वासं क्षयं प्लीहमजीर्णं ग्रहणीगदम्।
रक्तपित्तं क्षतं गुल्ममर्शांसि च विनाशयेत् ॥१८२॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च शूलमष्टविधं तथा।
आमवातं रक्तवातं खञ्जवातं धनुस्तथा ॥१८३॥
उदरामयमामं च स्थूलतां कृमिकोष्ठताम्।
वातपित्तकफान् सर्वान्नाशयेन्नात्र संशयः ॥१८४॥
भुक्त्वा च कण्ठपर्यन्तं गुञ्जैकञ्च रसं लिहेत्।
तत्क्षणात्कारयेद् भस्म तृणराशिमिवानलः ॥१८५॥
यामार्द्धं द्रावयेत्सर्वं शङ्खशुक्तिवराटकम्।
पूर्वोक्तविधिना तत्र दद्यान्निशि चतुष्पथे ॥१८६॥
योगिनीभैरवाभ्यां च बलिं मांसतिलानथ।
महाशङ्खद्रवो नाम्ना शम्भुदेवेन भाषितः ॥१८७॥
गुह्याद् गुह्यतमो गोप्यः पुत्रस्यापि न कथ्यते।
लोकानां कौतुकात्कर्त्रा प्रकाश्यो राजसन्निधौ ॥१८८॥

१. इमलीवृक्ष की सूखी छाल, २. पीपलवृक्ष की छाल, ३. स्नुहीवृक्ष, ४. अर्कमूलत्वक्, ५. अपामार्गपञ्चाङ्ग—इनकी पृथक्-पृथक् १-१ भस्म करें और विधि से क्षार तैयार कर लें। ये पाँचों क्षारों को १-१ भाग लें; ६. टङ्कणक्षार, ७. यवक्षार, ८. सर्जिक्षार, ९. सैन्धवलवण, १०. सौवर्चललवण, ११. सामुद्रलवण, १२. विडलवण, १३. औद्भिल्लवण, १४. हींग, १५. लवङ्ग, १६. नौसादर, १७. जायफल, १८. गोदन्तीभस्म, १९. स्वर्णमाक्षिकभस्म, २०. गन्धविरोजा, २१. शुद्ध वत्सनाभविष, २२. समुद्रफेन, २३. कलमीसोरा, २४. फिटकरी, २५. शङ्खभस्म, २६. शङ्खनाभिभस्म, २७. श्वेतपाषाण, २८. मैनसिल तथा २९. कासीस—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग या २५-२५ ग्राम लें। इन्हें एक खरल में पीसें और अम्लवेतस स्वरस की भावना दें। ततः अम्लवेतसक्वाथ में आप्लावित कर पृथक्-पृथक् काच के वारुणीयन्त्र (अर्कपातनयन्त्र) में सात दिनों तक गलने के लिए छोड़ दें। ८वें दिन अर्कस्रवित कर लेना चाहिए। इस द्रव को सावधानीपूर्वक काच के कार्क वाली शीशी में सुरक्षित रखें। इसे 'महाशङ्खद्रावक' कहते हैं। इस द्रावक की २ बूँद पान के पत्र पर डालकर ताम्बूल चबा जाना चाहिए। प्रतिदिन इसके सेवन से—श्वास, कास, क्षय, प्लीहा-वृद्धि, अजीर्ण, संग्रहणीरोग, रक्तपित्त, उरःक्षत, गुल्म, अर्श-रोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, आठों शूल, आमवात, वातरक्त, खञ्जवात, धनुष्टङ्कार, उदररोग, आमविकार, स्थौल्य, कृमि, वातविकार, पित्तविकार, कफविकार आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। आकण्ठ भोजन के बाद इस रस की १-२ रत्ती ताम्बूलपत्र पर डालकर चबाते हुए खाना चाहिए। तृण समूह में आग लगने पर जैसे वह क्षण भर में भस्म हो जाता है उसी प्रकार इसके सेवन से कुछ ही देर में भोजन पच जाता है। इस द्रावक में कौड़ी, शंख, शुक्ति आदि के टुकड़े डालने से १$\frac{१}{२}$ घण्टे में उसी में गल जाता

है। इस 'द्रावक' के तैयार होने के बाद चौराहे पर रात्रि में योगिनी और भैरव की प्रसन्नता के लिए मांस, मद्य एवं तिल आदि से बलि देनी चाहिए। इस 'महाद्रावकरस' का निर्माण भगवान् शङ्कर ने किया है। इस अत्यन्त गुप्त योग को अपने पुत्र को भी नहीं कहना चाहिए। लोगों के कौतुकार्थ राजा के समीप इस योग का प्रदर्शन करना चाहिए।

मात्रा—१ से २ बूँद = १ रत्ती। **अनुपान**—ताम्बूलपत्र। **वर्ण**—श्वेतद्रव। **स्वाद**—तीक्ष्णतम। **उपयोग**—गुल्म, प्लीह, यकृत्, उदररोग, अरुचि एवं मन्दाग्नि आदि में।

५३. महाद्रावकरस-४

यवक्षारस्य भागौ द्वौ स्फटिकाश्च त्रयो मताः।
एकीकृत्य प्रपिष्यापि मूत्रैर्वत्सतरीभवैः ॥१८९॥
शुष्कं कृत्वा क्षिपेत्पात्रे शैशके वस्त्रलेपिते।
अन्यशीशकपात्रन्तु द्विमुखं मेलयेद् बुधः ॥१९०॥
वृद्धवैद्योपदेशेन पचेत् पात्रस्थमौषधम्।
सन्निधाने ततः स्थाप्य पात्रान्यं लभते रसः ॥१९१॥
ततो रसं विनिष्कृष्य स्थापयेत् स्निग्धभाजने।
लवङ्गेन समं खादेदथवा मृतताम्रकैः ॥१९२॥
प्लीहादिस्थूलरोगेषु दापयेद्रक्तिकां भिषक्।
दूरीकरोति रोगांश्च महाद्रावकसंज्ञकः ॥१९३॥
श्वित्रे च दद्रुरोगे च प्रलेपं द्रावकस्य च।
वह्निवज्ज्वलनं तस्य दधि दत्त्वा प्रलेपयेत् ॥१९४॥

यवक्षार २ भाग तथा फिटकरी शुद्ध ३ भाग लें। दोनों द्रव्यों को एक खरल में पीसकर आधुनिक विज्ञान में प्रयुक्त होने वाले उपकरण कण्डेंसर (काच निर्मित अर्कयन्त्र) में भरें और दीपाग्नि जलाकर अर्क पातन करें और इसे काच की कार्क वाली सीसी में संग्रहीत करें। लवङ्गचूर्ण के साथ इसकी १-२ बूँद मिलाकर खिलावें अथवा २५ मि.ली. पानी में १-२ बूँद डालकर पिलावें। अथवा प्लीहा-यकृद् वृद्धि के लिए १५० मि.ग्रा. ताम्रभस्म में १ बूँद मिलाकर खिलाना चाहिए। यह दाहक अम्ल होने के कारण इसका अकेला प्रयोग नहीं करना चाहिए। प्लीहा आदि रोगों में १ रत्ती (१-२ बूँद) देना चाहिए। यह महाद्रावक रस सभी रोगों को दूर करता है। श्वित्र, दद्रु आदि रोगो में इस द्रावक को जल में मिलाकर लेप भी किया जाता है। इस तीव्र अम्ल के प्रयोग से यदि शरीर जल जाय तो दग्ध स्थान पर दही का लेप करना चाहिए।

मात्रा—१-२ बूँद। **अनुपान**—लवङ्गचूर्ण या पानी या ताम्र भस्म से। **वर्ण**—श्वेतद्रव। **स्वाद**—तीक्ष्ण अम्लीय। **उपयोग**—प्लीहोदर, यकृत् एवं गुल्म में।

५४. महाद्रावकरस-५ (वाहटः)

वृषश्चित्रमपामार्गश्चिञ्चा कूष्माण्डनाडिका।
स्नुही तालस्य पुष्पञ्च वर्षाभूर्वेतसं तथा ॥१९५॥
एतेषां क्षारमाहृत्य लिम्पाकस्वरसेन च।
क्षालयित्वा क्षारतोयं वस्त्रपूतञ्च कारयेत् ॥१९६॥
चण्डातपेन संशोष्य ग्राह्यं तद् द्रवणोचितम्।
एतस्य द्विपलं ग्राह्यं यवक्षारपलद्वयम् ॥१९७॥
स्फटिकारिपलञ्चैव नरसारपलन्तथा।
पलार्द्धं सैन्धवं ग्राह्यं टङ्गणं तोलकद्वयम् ॥१९८॥
काशीशं तोलकं चैव मुद्राशङ्खं च तोलकम्।
दारुमोचं कर्षकञ्च तोलमर्णवफेनकम् ॥१९९॥
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य वकयन्त्रेण साधयेत्।
महाद्रावकमेतद्धि योज्यञ्च रसजारणे ॥
हन्ति गुल्मादिरोगांश्च यकृत्प्लीहोदराणि च ॥२००॥

१. वासापञ्चाङ्ग, २. चित्रकपञ्चाङ्ग, ३. अपामार्गपञ्चाङ्ग, ४. इमलीवृक्षशुष्कत्वक्, ५. कूष्माण्डलता शुष्क, ६. स्नुही, ७. ताडपुष्प, ८. पुनर्नवापञ्चाङ्ग और ९. अम्लवेतस—इनका अलग-अलग क्षार विधि से क्षार निकाल लें। उपर्युक्त प्रत्येक क्षार ५०-५० ग्राम लें। इन्हें एक खरल में एक साथ पीसें और जम्बीरीनीबूस्वरस से आप्लावित करें तथा कपड़ा से छान लें। इसके बाद इस क्षारीयद्रव को कड़ी धूप में रखकर सुखा लें। यह शुष्क क्षार १०० ग्राम, यवक्षार १०० ग्राम, शुद्ध फिटकरी ५० ग्राम, नवसादर ५० ग्राम, सैन्धवनमक २५ ग्राम, टङ्कणक्षार २५ ग्राम, कासीस १२ ग्राम, मृद्दारशृङ्ग १२ ग्राम, शंखिया १२ ग्राम, समुद्रफेन १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक साफ खरल में इन सभी द्रव्यों को एक साथ मर्दन करें और काच के बकयन्त्र (तिर्यक्पातन यन्त्र) में रखकर सन्धि-बन्धन करें और मृद्वग्नि पर अर्कपातन कर काच की कार्क वाली शीशी में संग्रहीत करें। इसे 'महाद्रावकरस' कहते हैं। पारद के जारण में इसका प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त यकृत्-प्लीहरोग, गुल्म एवं उदररोगों में सफल प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—१-२ बूँद। **अनुपान**—जल से। **वर्ण**—श्वेत द्रव। **स्वाद**—तीव्राम्ल। **उपयोग**—यकृत्-प्लीहरोग, गुल्म एवं उदर-रोगों में।

५५. महाद्रावकरस-६ ( )

शुद्धं काञ्चनमाक्षिकं मृदुतरं कांस्याभिधं तत्तथा
सिन्धूत्थं विमलं रसाञ्जनवरं फेनः स्रवन्तीपतेः[1]।
क्षारौ सर्जिकसाम्भलौ सुविमलौ भागास्त्वमीषां समाः
सप्तानां सदृशन्तु टङ्गणमिहास्यार्द्धो नृसारः सितः ॥
तत्तुल्या स्फटिकारिका त्रिसदृशः शुक्लो यवस्याग्रजः
कासीसत्रितयं यवाग्रजसमं सञ्चूर्ण्य सर्वं न्यसेत्।
पात्रे काचमये मृदम्बरवृते यन्त्रे वकाख्ये भिषग्

१. स्रवन्तीपतेः=स्रवन्ती=नदी तस्याः पतेः समुद्रस्य। समुद्रफेन इत्यर्थः।

ज्वालेन क्रमवर्द्धिनाऽत्यवहितोऽमीषां रसं पातयेत् ॥
यो द्राग् भस्म वराटिकां प्रकुरुते सोऽयं महाद्रावकः
को वक्तुं प्रभवेदमुष्य नितरां सम्यग्गुणान् भूतले ।
एतद्वल्लचतुष्टयं सह गिलेच्छुण्ठ्या लवङ्गेन वा
तत्पश्चात्परिवासितं बहुगुणं ताम्बूलकं भक्षयेत् ॥
प्रासङ्गयात् कथयामि ताञ्छृणु गुणानस्यैव कांश्चित्परान्
निःशेष विनिहन्त्यसौ चिरभवान्यष्टोदराणि ध्रुवम् ।
गुल्मं पाण्डुहलीमकं सुकठिनामष्ठीलिकां कामलां
मन्दाग्निं विषमाग्निनां बहुविधाञ्छोथांश्च शूलानपि ॥
सर्वार्शांभि भगन्दरान् कृमिगदान् पञ्चैव कासांस्तथा
हिक्काश्लीपदकोषवृद्धिमरुचिव्याधिं महादारुणम् ।
नव्यं वा चिरजं ज्वरं बहुविधं छर्दिं कृमीन् विंशतिं
यक्ष्माणं चिरजामवातपिडकावीसर्पविस्फोटकम् ॥
उन्मादं स्वरभेदमर्ब्बुदमपि स्वेदञ्च हृत्पाणिजं
जिह्वास्तम्भगलग्रहं चिरभवं ग्रीवारुजामुल्बणाम् ।
नासाकर्णशिरोऽक्षिवक्त्रजरुजां क्षुद्रामयांश्चापरान्
हन्यादेव चिरोत्थितान् बहुविधानन्यांश्च रोगानपि ॥
एकः स्यादपरो हि टङ्कणमुखैर्द्रव्यैः परैः सप्तकै
रन्यस्तु स्फाटिकारिटङ्कणयवक्षाराग्रकासीसकैः ।
जानीयाद् गुरुतो विभागमनयोर्यन्त्रादिकं चापरं
निर्दिष्टास्त्रय एव भेषजवराः स्वल्पो महान् मध्यमः ॥

१. स्वर्णमाक्षिकभस्म, २. कांस्यमाक्षिकभस्म, ३. सैन्धव-लवण, ४. रसाञ्जन, ५. समुद्रफेन, ६. सर्जिक्षार, ७. साम्भल-देशीयक्षार—प्रत्येक १-१ भाग; ८. टङ्कणक्षार ७ भाग, ९. नरसार ३½ भाग, १०. शुद्ध स्फटिका ३½ भाग, ११. यवक्षार १४ भाग तथा १२. तीनों कासीस[१] १४ भाग लें। इन सभी द्रव्यों को एक बड़े खरल में एक साथ मर्दन करें। कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी में इस मिश्रण को भरकर मुख पर सछिद्र कार्क में पतली काच की टेढ़ी नली बैठाकर टेढ़ी नली का दूसरा छोर काच की खाली बोतल में बैठावें। मृदग्नि पर पकाकर द्रव संग्रहीत करें। इसकी भी परीक्षा पूर्ववत् वराटिका डालकर करनी चाहिए जो तुरन्त वराटिका को भस्म कर देती है। (द्राग् भस्म-द्राक्=शीघ्रं भस्म करोति)। आचार्यश्री ने इसकी अधिकतम मात्रा १२ रत्ती बतलायी है, जो अत्यधिक है। अतः इसे १-५ बूँद तक ही देना चाहिए। इसे १ ग्राम शुण्ठीचूर्ण या लवङ्गचूर्ण के साथ १-५ बूँद मिलाकर खिलावें। ततः कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल खिलाना चाहिए। इस महाद्रावक रस के प्रयोग से पुराने आठों प्रकार के उदररोग, गुल्म, पाण्डु, हलीमक, अष्ठीला, कामला, मन्दाग्नि, विषमाग्नि, अनेक प्रकार के शोथ, सभी प्रकार के शूल रोग, सभी प्रकार के अर्श, भगन्दर, कृमि, पाँच प्रकार के कास, हिक्का, श्लीपद, अण्डकोशवृद्धि, भयङ्कर अरुचि, नवीन एवं पुराण ज्वर, वमन, २० प्रकार के कृमि, यक्ष्मा, पुराना आमवात, पिडका, विसर्प, विस्फोट, उन्माद, स्वरभेद, अर्बुद, हृदय एवं पाणितल में स्वेद, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, गलगण्ड, नासा-कर्ण-शिरः-नेत्र-मुख के रोग और सभी प्रकार के क्षुद्ररोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त नये व पुराने अनेक प्रकार के रोगों का यह रस नाश करता है। आचार्यश्री ने इस योग को स्वल्प, महान् और मध्यम भेद तीन प्रकार का बतलाया है। इसको बनाने में गुरु के विशेष सान्निध्य की आवश्यकता है।

मात्रा—१-५ बूँद। **अनुपान**—जल के साथ, शुण्ठी या लवङ्ग चूर्ण के साथ। **वर्ण**—श्वेत द्रव। **स्वाद**—तीक्ष्ण अम्ल। **उपयोग**—यकृत्, प्लीह, गुल्म एवं उदर रोग में।

५६. चित्रकघृत (च.द.)

चित्रकस्य तुलाक्वाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
आरनालं तद् द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥२०८॥
पञ्चकोलकतालीशक्षारैर्लवणसंयुतैः ।
द्विजीरकनिशायुग्मैर्मरिचं तत्र दापयेत् ॥२०९॥
प्लीहगुल्मोदराध्मानपाण्डुरोगारुचिज्वरान् ।
बस्तिहृत्पार्श्वकट्यूरुशूलोदावर्त्तपीनसान् ॥२१०॥
हन्यात्पीतं तदर्शोघ्नं शोथघ्नं वह्निदीपनम् ।
बलवर्णकरञ्चापि भस्मकञ्च नियच्छति ॥२११॥

१. गोघृत ७५० ग्राम, २. चित्रकक्वाथ ५ ली., ३. काञ्जी १½ किलो तथा ४. मस्तु ३ लीटर लें।

कल्क—१. पीपर, २. पिपरामूल, ३. चव्य, ४. चित्रक-मूल, ५. सोंठ, ६. तालीसपत्र, ७. यवक्षार, ८. सैन्धवलवण, ९. श्वेतजीरा, १०. स्याहजीरा, ११. हल्दी, १२. दारुहल्दी और १३. मरिच—प्रत्येक द्रव्य १५-१५ ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः उस मूर्च्छित घृत में चित्रकक्वाथ देकर मन्दाग्नि पर पकावें। ततः पीपर से मरिच तक के सभी १३ द्रव्यों को सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। इस कल्क को पकते हुए घी में डाल दें और बराबर लोहदर्वी से चलाते रहें। चित्रक क्वाथ सूखने के बाद काञ्जी को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देकर पकावें। एक बार सम्पूर्ण काञ्जी देने पर घृत में फेनोद्गम अधिक होगा। घृत की हानि भी हो सकती है। काञ्जी सूखने पर मस्तु देकर पकावें। जब मस्तु सूख जाय तब घृत के सम्यक् पाक के लिए ३ लीटर जल देकर पकाना चाहिए। जल सूखने पर घृत- पाक की परीक्षा करें। 'फेनहीनस्तु सर्पिषि' इस वचन के अनुसार घृतपाक में फेन की शान्ति प्रथम प्रमाण है। ततः कल्क वर्ति परीक्षा, अग्नि पर तेल डालकर जल की परीक्षा एवं गन्ध वर्ण की परीक्षा करने के बाद घृतपात्र को चूल्हे से उतार कर तुरन्त घृत को वस्त्रपूत कर लें और कल्क में बचे हुए घृत

१. धातुकासीस, पद्मकासीस, पांशुकासीसीति

को निकालने के लिए ४-५ लीटर जल मिलाकर पुन: उबाल लें और चूल्हे से नीचे उतारकर ठण्डा कर लें। कल्क में अवशिष्ट घृत जल के ऊपरी सतह पर तैरता रहेगा, जिसे साफ वस्त्र खण्ड से निकालकर दूसरे पात्र में उस कपड़े को निचोड़ लें। ऐसा बार-बार करने से सम्पूर्ण घृत निकल जाता है। अब इस जल युक्त निकले हुए घृत को पुन: आग पर पकाकर जल को पृथक् कर लें तथा घृत को काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ मिलाकर पिलाने से प्लीहा-रोग, गुल्म, उदररोग, आध्मान, पाण्डु, हृदयरोग, पार्श्वशूल, कटिशूल, ऊरुशूल, उदावर्त्त, पीनस, अर्श एवं शोथरोग नष्ट हो जाते हैं। यह अग्नि प्रदीप्त करता है, बल-वर्ण बढ़ाता है और भस्मकरोग का नाश करता है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कट्वम्ल। **उपयोग**—प्लीहा, गुल्म, उदररोग में एवं उदावर्त्त में।

५७. पिप्पलीघृत (च.द.)

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरचतुर्गुणम्।
पचेतु प्लीहाग्निसादादियकृद्रोगहरं परम्॥२१२॥

गोघृत १ किलो, गोदुग्ध ४ लीटर और पिप्पलीचूर्ण २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में गोघृत का मूर्च्छन करें। तत: उस मूर्च्छित घृत में ४ लीटर दूध और पिप्पली कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। सम्यक् पाक के लिए गोदुग्ध सूखने पर ४ लीटर मीठा जल मिलाकर पाक करें। जल सूखने पर घृतपाक की पूर्ववत् परीक्षा करें और घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर गरम घृत को महीन कपड़ा से छान लें तथा काचपात्र में संग्रह करें। इस पिप्पलीघृत को ५ से १२ ग्राम तक की मात्रा में गरम दूध या गरम जल में मिलाकर सेवन करने से प्लीहारोग, अग्निमांद्य एवं यकृद्रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल में। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—यकृत्प्लीहरोग एवं अग्निमान्द्य में।

५८. चित्रकपिप्पलीघृत (च.द.)

पिप्पली चित्रकान्मूलं पिष्ट्वा सम्यग्विपाचयेत्।
घृतं चतुर्गुणं क्षीरं यकृत्प्लीहोदरापहम्॥२१३॥

१. पिप्पली १२५ ग्राम, २. चित्रकमूल १२५ ग्राम, ३. गोघृत १ किलो तथा ४. गोदुग्ध ४ लीटर लें। पिप्पली और चित्रकमूल का चूर्ण कर लें। तत: गोघृत का मूर्च्छन करें। इसके बाद मूर्च्छित घृत में गोदुग्ध और पीपर एवं चित्रक का कल्क मिलाकर मृद्वग्नि पर पाक करें। दूध जल जाने पर कल्क के सम्यक् पाक के लिए ४ लीटर पानी मिलाकर पुन: पाक करना चाहिए। जलीयांश सूखने पर स्नेह और कल्क की पूर्ववत् परीक्षा कर स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारें और गरम-गरम घृत को कपड़े से छान लें। कल्क में बचे हुए घी को निकालने की विधि को चित्रकघृत में बतलाया जा चुका है। घृत को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चित्रकपिप्पली घृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ मिलाकर पिलाना चाहिए। इसके सेवन से यकृत्-प्लीहा रोग एवं उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—यकृत्, प्लीहावृद्धि एवं उदररोग में।

५९. रोहीतकघृत-१ (च.द.)

रोहितकत्वचः श्रेष्ठाः पलानां पञ्चविंशतिम्।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत्॥२१४॥
पलिकैः पञ्चकोलैश्च तैः सर्वैश्चापि तुल्यया।
रोहितकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥२१५॥
प्लीहाभिवृद्धिं शमयेदेतदाशु प्रयोजयेत्।
तथा गुल्मज्वरश्वासकृमिपाण्डुं च कामलाम्॥२१६॥

घटक—रोहीतकछाल १.५०० किलो तथा पका हुआ बेर १.५०० किलो लें।

कल्क—१. पीपर, २. पिपरामूल, ३. चव्य, ४. चित्रकमूल, ५. सोंठ, ६. रोहीतकत्वचा—प्रत्येक द्रव्य ३०-३० ग्राम और ७. गोघृत ७५० ग्राम लें। रोहीतकछाल और बेर को यवकुट कर ८ गुना जल में क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। पीपर से रोहीतक के सभी ६ द्रव्यों का चूर्ण करके जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बनावें। तत: गोघृत को मूर्च्छित करें। मूर्च्छित घी में कल्क व क्वाथ मिलाकर मृद्वग्नि में पाक करें। जब क्वाथ सूख जाय तो ३ लीटर जल मिलाकर पाक करें। जल सूखने पर घृत और कल्क की पूर्ववत् परीक्षा करें। जलीयांश सूख जाने पर घृतपात्र को नीचे उतार लें तथा तुरन्त कपड़े से छान लें। घृत ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम पानी के साथ मिलाकर पिलावें। इसके सेवन से प्लीहावृद्धि, यकृद्वृद्धि, उदररोग, गुल्म, कृमि, पाण्डु, कामला और श्वासरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—यकृत्प्लीहा वृद्धि, गुल्म और उदररोग में।

६०. रोहीतकघृत-२ (च.द.)

रोहीतकात्पलशतं क्षोदयेद्बदराढकम्।
साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषितम्॥२१७॥

घृतप्रस्थं समावाप्य छागक्षीरं चतुर्गुणम्।
तस्मिन् दद्यादिमान् कल्कान् सर्वांस्तानक्षसम्मितान्॥
व्योषं फलत्रिकं हिङ्गु यमानी तुम्बरु बिडम्।
अजाजी कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च॥२१९॥
पुनर्नवा विशाला च यवक्षारं सपौष्करम्।
विडङ्गं चित्रकञ्चैव हवुषा चविका वचा॥२२०॥
एभिर्घृतं विपक्वन्तु स्थापयेद् भाजने शुभे।
पाययेत् त्रिपलां मात्रां व्याधिं बलमवेक्ष्य च॥२२१॥
रसकेनाथ यूषेण पयसा वाऽपि भोजयेत्।
उपयुक्ते घृते त्वस्मिन् व्याधीन् हन्यादिमान् बहून्॥
यकृत्प्लीहोदरञ्चैव प्लीहशूलं यकृत्तथा।
कुक्षिशूलञ्च हृच्छूलं पार्श्वशूलमरोचकम्॥२२३॥
विबन्धशूलं शमयेत्पाण्डुरोगं सकामलम्।
छर्द्यतीसारशूलघ्नं तन्द्राज्वरविनाशनम्।
महारोहीतकं नाम प्लीहानं हन्ति दारुणम्॥२२४॥

१. रोहीतकछाल ५ किलो, २. पके हुए बेरफल ३ किलो, ४. गोघृत ७५० ग्राम और ५. बकरीका दूध ३ लीटर लें।

कल्क—१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. हींग, ८. अजवायन, ९. तुम्बुरु (नेपाली धनिया), १०. विडलवण, ११. जीरा, १२. सौवर्चललवण, १३. दाडिमबीज, १४. देवदारु, १५. पुनर्नवामूल, १६. इन्द्रायणमूल, १७. यवक्षार, १८. पुष्करमूल, १९. वायविडङ्ग, २०. चित्रकमूल, २१. हाऊबेर, २२. चव्य और २३. वच—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। तदनन्तर सभी २३ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बनावें। रोहीतकछाल और बेर फल का क्रमश: १२.५ ली. जल में क्वाथ करें। मूर्च्छित घृत को चूल्हे पर चढ़ाकर पहले रोहीतकक्वाथ और कल्क मिलाकर पकावें। क्वाथ सूखने पर बेर का क्वाथ देकर पाक करें। तत: बकरी का दूध देकर पाक करें। दूध सूखने पर ४ गुना जल देकर पाक करें। जब जल सूख जाय तब घृत और कल्क की पूर्ववत् परीक्षा करें। चूल्हे से घृतपात्र को नीचे उतार लें और गरम अवस्था में ही उसे कपड़े से छान लें। कल्क स्थित घृत को भी जल के साथ उबालकर पूर्ववत् प्राप्त करें। ठण्डा होने पर घृत को काचपात्र में संग्रहीत करें। आचार्यश्री ने इस घृत की मात्रा ३ पल बलानुसार बतायी है जो आज के सन्दर्भ में अत्यधिक है। अत: इसे ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध, गरम जल, गरम मांसरस, गरम यूष के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए। इस घृत के प्रयोग से यकृत्प्लीहोदर, यकृच्छूल, प्लीहशूल, कुक्षिशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, अरुचि, विबन्धजन्य शूल, पाण्डुरोग, कामला, वमन, अतिसार, शूल, तन्द्रा और ज्वररोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य और भी रोगों की यह घृत नाश करता है। भयानक प्लीहावृद्धि का भी यह घृत नाश करता है। इसे महारोहीतकघृत कहते हैं।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम जल, गरम दूध, गरम मांसरस, गरम यूष से। **गन्ध**—हींग एवं घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—यकृत्प्लीहोदर, कालाजार एवं गुल्म में।

६१. ब्रह्मघृत (व.से.)

शिलाह्वयं नागरकालशाकं
काकादनी मूलनिदिग्धका च।
पञ्चैव दद्याल्लवणानि हिङ्गु-
कृष्णा च तैरक्षसमैः पृथक् पृथक्॥२२५॥
प्रस्थं घृतं स्याच्च पचेच्छनैः शनै-
श्चतुर्गुणं मूत्रमतः प्रदीयते।
पयश्च दद्याद् द्विगुणं विपक्वं
तद् ब्रह्मजुष्टं प्रवदन्ति सर्पिः॥
प्लीहोदरं दूष्यमथोदरं च
आयम्यमानं जठरं निहन्ति॥२२६॥

कल्क—१. शिलाजीत, २. सोंठ, ३. शरपुंखा, ४. गुञ्जामूल, ५. कण्टकारीमूल, ६. सैन्धवलवण, ७. सौवर्चललवण, ८. सामुद्रलवण, ९. औद्भिल्लवण, १०. विड्लवण, ११. हींग, १२. पीपर—प्रत्येक द्रव्य १७-१७ ग्राम लें; १३. गोघृत ७५० ग्राम, १४. गोमूत्र ३ लीटर और १५. गोदुग्ध ३ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। तत: कल्क द्रव्यों को भी चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीस लें। अब मूर्च्छित घी को चूल्हे पर रखें, उसमें कल्क मिलावें और २५० मि.ली. गोमूत्र देकर मन्दाग्नि पर पाक करें। स्नेह पाक में जहाँ गोमूत्र का उल्लेख है, वहाँ थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र देकर पाक करना चाहिए, क्योंकि गोमूत्र डालने पर स्नेह में अत्यधिक फेनोद्गम होता है और स्नेह नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। गोमूत्र का पूर्ण पाक हो जाने पर गोदुग्ध देकर घृत का पाक करना चाहिए। कल्क के सम्यक् पाक के लिए ३ लीटर जल देकर पुन: पकावें। आसन्नपाक समझकर स्नेह की परीक्षा करें और घृतपात्र को नीचे उतारकर तुरन्त घृत को वस्त्र से छान लें और ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। कल्क से घृत निकालने की विधि भी पूर्ववत् कर लें। इस घृत को ब्रह्मघृत कहते हैं। इसे ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ सेवन कराना चाहिए। इसके प्रयोग से यकृत्प्लीहोदर, दूष्योदर, उदररोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध, गरम जल से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटुतीक्ष्ण। **उपयोग**—यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर, दूष्योदर तथा उदर रोग में।

६२. कदल्यादि क्षारतैल (वङ्गसेन)

कदलीतिलनालानां क्षारेण क्षुरकस्य च।
पीतं तैलं जयेन्नृणां प्लीहानं कफवातजम् ॥२२७॥

१. कदलीकन्द, २. तिलपञ्चाङ्ग, ३. इक्षुरक पञ्चाङ्ग तथा ४. तिलतैल १ लीटर लें। उपर्युक्त तीनों काष्ठौषधियों को प्रभूत मात्रा में पृथक्-पृथक् लेकर जलावें और क्षार विधि से क्षार प्राप्त करें। प्रत्येक क्षार ८० ग्राम लें। तिलतैल ७५० मि.ली. का मूर्च्छन करें और मूर्च्छित तैल में क्षारों को मिला दें और ४ लीटर जल भी साथ-साथ मिलावें। मन्दाग्नि से पाक करते समय सावधानी बरतें क्योंकि क्षार के संयोग से तेल में अत्यधिक फेनोद्गम होता है। तैलपाक की परीक्षा के बाद तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का पान करने से कफ-वातज प्लीहारोग नष्ट हो जाता है। इसका बाह्य प्रयोग भी प्लीहा स्थान पर किया जा सकता है।

मात्रा—६-१२ ग्राम पानार्थ। **अनुपान**—गरम जल से। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—क्षारीय। **उपयोग**—प्लीहारोग में आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रयोग।

६३. रोहीतकारिष्ट (गदनिग्रह)

रोहीतकतुलामेकाञ्चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम् ॥२२८॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता।
पञ्चकोलं त्रिजातञ्च त्रिफलाञ्च विनिक्षिपेत् ॥२२९॥
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत्।
मासादूर्ध्वञ्च पिबतां सर्वोदररुजां जयेत् ॥२३०॥
प्लीहगुल्मोदराष्ठीलाग्रहण्यर्शांसि कामलाम्।
कुष्ठशोथारुचिहरो रोहीतारिष्टसंज्ञितः ॥२३१॥

क्वाथ—रोहीतकत्वक् ५ किलो, पाकार्थ जल ५२ लीटर, तथा गुड़ १० किलो लें।

प्रक्षेपार्थ—१. धातकीपुष्प ७५० ग्राम, २. पीपर ५० ग्राम, ३. पिपरामूल ५० ग्राम, ४. चव्य ५० ग्राम, ५. चित्रकमूल ५० ग्राम, ६. सोंठ ५० ग्राम, ७. तेजपत्ता ५० ग्राम, ८. दालचीनी ५० ग्राम, ९. छोटी इलायची ५० ग्राम, १०. आमला ५० ग्राम, ११. हरीतकी ५० ग्राम और बहेड़ा ५० ग्राम लें।

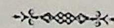
सर्वप्रथम रोहीतकत्वक् का यवकुट करें और बड़े स्टील के पात्र में इस यवकुट को रखें और ५२ लीटर (४ द्रोण) जल उसमें मिलाकर अच्छी तरह मिलाकर रात्रिपर्यन्त छोड़ दें। प्रातः मन्दाग्नि से उसका क्वाथ करें। चौथाई १३ लीटर शेष रहने पर कपड़े से क्वाथ छान लें। मिट्टी के नये एवं बड़े घड़े में इस क्वाथ को रखें और उसमें गुड़ मिलाकर ठण्डा होने दें। ततः पीपर से बहेड़ा तक के सभी ११ द्रव्यों को मोटा यवकुट कर रोहीतक क्वाथपूरित मिट्टी के बड़े घड़े में मिलावें और धातकी पुष्प को धूप में अच्छी तरह सुखाकर बिना कूटे (समूचा) ही घड़े में डालकर अच्छी तरह मिलावें जिससे कि सम्पूर्ण गुड़ उस क्वाथ में घुल जाय। घड़ा का मुख मिट्टी के शराव से ढककर कपड़मिट्टी करें और एकान्त किन्तु निर्वात घर में उस घड़े को रख दें। घड़े की तली में धान की भूसी या पुआल आदि नर्म वस्तु रखकर घड़ा के चारों ओर ईंट रख दें जिससे घड़ा लुड़के नहीं। २१ दिनों के बाद गन्ध, वर्ण, रसोत्पत्ति (मद्य का निर्माण) होने पर परीक्षोपरान्त घड़ा का मुख खोलकर कपड़े से उक्त अरिष्ट को छान लें तथा उस घड़े को धोकर साफ करें और सुखाने के बाद उस छने हुए अरिष्ट को पुनः उसी घड़े में रखकर निथरने के लिए छोड़ दें। ६-७ दिनों के बाद घड़ा को टेढ़ा कर ऊपरी भाग के स्वच्छ द्रव को पृथक् कर लें। ततः बोतलों में भरकर कार्क एवं लेबल लगाकर बोतल को भींगे वस्त्र से साफ कर लें। १ वर्ष के बाद प्रयोग करें। इसे १२ से २५ मि.ली. की मात्रा में जल मिलाकर भोजनोपरान्त पीना चाहिए। इसके सेवन से सभी प्रकार के उदररोग नष्ट हो जाते हैं। प्लीहारोग, गुल्म, उदररोग अष्ठीला, ग्रहणी, अर्श, कामला, कुष्ठ, शोथ और अरुचि रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **अनुपान**—बराबर जल मिलाकर। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ द्रव। **स्वाद**—तीक्ष्ण मधुर। **उपयोग**—उदररोग, प्लीहावृद्धि, गुल्म एवं अष्ठीला में।

यकृत्प्लीहरोग में पथ्य

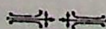
यत्पथ्यं यदपथ्यं चोदरे प्रोक्तं भिषग्वरैः।
तदेव यकृति प्लीह्नि गदे ज्ञेयं विनिश्चितम् ॥२३२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां प्लीहयकृद्रोगाधिकारः।



विद्वान् वैद्यों ने उदररोग प्रकरण में जो पथ्यापथ्य का निर्देश किया है, उसे ही यकृत्प्लीहा के रोगों में भी जानना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य प्लीहयकृद्रोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ शोथरोगाधिकार: (४२)

सभी शोथों में क्रियाकर्म

लङ्घनं पाचनं शोथे शिरःकायविरेचनम् ।
वमनं च यथासत्त्वं यथादोषं प्रकल्पयेत् ॥१॥

शोथरोग में रोग एवं रोगी के दोष एवं बलानुसार लंघन, पाचन, शिरोविरेचन, कायविरेचन और वमन कर्म कराना चाहिए।

वातादि दोषानुसार शोथ में कर्म

स्नेहोऽथ वातिके शोथे बद्धविट्के निरूहणम् ।
पयो घृतं पैत्तिके तु कफजे रूक्षणक्रमः ॥२॥

वातजशोथ में स्नेहपान, कोष्ठबद्धताजन्य शोथ में निरूहण-बस्ति, पित्तजशोथ में शीतल दूध और घृतपान तथा कफजशोथ में रूक्ष चिकित्सा करनी चाहिए।

विभिन्न शोथोपक्रम (चरक)

अथामजं लङ्घनपाचनक्रमै-
र्विशोधनैरुल्वणदोषमादितः ।
शिरोगतं शीर्षविरेचनैरधो-
विरेचनैरूर्ध्वहरैस्तथोर्ध्वगम् ॥
उपाचरेत्स्नेहभुवं विरूक्षणैः
प्रकल्पयेत्स्नेहविधिं च रूक्षिते ॥३॥

आमज (अपक्व दोषज) शोथ में लंघन और पाचन, अत्यन्त बढ़े हुए शोथ में वमन-विरेचन आदि शोधन क्रिया करनी चाहिए। शिरोगतशोथ में शिरोविरेचन, अधोगतशोथ में विरेचन, ऊर्ध्व-गतशोथ में वमन, स्नेहाधिक्य सेवन जन्य शोथ में रूक्षण क्रिया, रूक्षता जन्य शोथ में स्नेहन क्रिया करनी चाहिए।

वातजशोथ चिकित्सा (च.द.)

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलशृतं जलम् ।
वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ॥४॥

वातजशोथ में अन्न-पेया आदि निर्माणार्थ तथा पानार्थ सोंठ, पुनर्नवामूल, बृहत्पञ्चमूल (बेलछाल, गम्भार, अग्निमन्थ, सोना-पाठा एवं पाढल) आदि से सिद्ध जल का प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् इनके क्वाथ में मण्ड, पेया, पिलेपी, अन्न, यूष आदि का निर्माण करें।

१. दशमूलक्वाथ (च.द.)

दशमूलं सदा शस्तं वातशोथे विशेषतः ॥५॥

दशमूलक्वाथ वातजशोथ में विशेषरूप से हितकर है।

२. एरण्डतैलप्रयोग (च.द.)

वातजे तैलमैरण्डं विड्ग्रहे पयसा पिबेत् ॥६॥

वातजशोथ में यदि विबन्ध हो तो गरम दूध में २५ मि.ली. एरण्डतैल मिलाकर पिलाना चाहिए।

३. पित्तजशोथ में चिकित्सा (च.द.)

क्षीराशनः पित्तकृतेऽथ शोथे
त्रिवृद्गुडूचीत्रिफलाकषायम् ।
पिबेद् गवां मूत्रविमिश्रितं वा
फलत्रिकाच्चूर्णमथाक्षमात्रम् ॥७॥

पित्तजशोथ में दूध का पथ्य हितकर है। साथ ही त्रिवृत् गुडूची, हरड़, बहेड़ा और आमला का समभागीय क्वाथ २५ ग्राम लें और १६ गुना जल में क्वाथ करें तथा अष्टमांशावशेष रहने पर पिलाना चाहिए। या त्रिफलाचूर्ण १२ ग्राम गोमूत्र के साथ पिलाना लाभप्रद है।

४. पृश्निपर्ण्यादिक्वाथ (च.द.)

पृश्निपर्णी घनोदीच्यशुण्ठीसिद्धं तु पैत्तिके ॥८॥

पृश्निपर्णी, नागरमोथा, सुगन्धबाला तथा सोंठ—इनका क्वाथ पिलाने से पित्तज शोथ नष्ट हो जाता है।

५. गोमूत्रादिप्रयोग

गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथुनाशनम् ।
यवागूर्मानकन्दं च प्रायशश्चातिशोथजित् ॥९॥

१. प्रतिदिन ५० मि.ली. गोमूत्र पीने से पित्तजशोथ नष्ट हो जाता है। २. मानकन्दचूर्ण का प्रयोग भी शोथनाशक है।

६. सिंहास्यादिक्वाथ (च.द.)

सिंहास्यामृतभण्टाकीक्वाथं कृत्वा समाक्षिकम् ।
पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः श्वासं कासं ज्वरं वमिम् ॥१०॥

वासा, गुडूची तथा कण्टकारी (समभाग) इन तीनों द्रव्यों को यवकुट कर किसी पात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ को २५ ग्राम की मात्रा में लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और मधु मिलाकर इस क्वाथ को ५० मि.ली. पिलावें। इससे शोथ, श्वास, कास, ज्वर और वमन रोग शान्त हो जाता है।

७. अभयादिक्वाथ (च.द.)

अभया दारु मधुकं तिक्ता दन्ती सपिप्पली ।
पटोलं चन्दनं दार्वी त्रायमाणेन्द्रवारुणी ॥११॥
एषां क्वाथः ससर्पिष्कः श्वयथुज्वरदाहहा ।
विसर्पतृष्णासन्तापसन्निपातविषापहा ॥१२॥

१. हरीतकी, २. देवदारु, ३. मुलेठी, ४. कटुकी, ५. दन्तीमूल, ६. पिप्पली, ७. पटोलपत्र, ८. श्वेतचन्दन, ९. दारुहरिद्रा, १०. त्रायमाण तथा ११. इन्द्रायणमूल (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर इमामदस्ता में यवकुट करें और किसी पात्र में संग्रहीत करें। २ तोला की मात्रा में इस क्वाथ को १६ गुना जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर घी मिलाकर ५० मि.ली. पिलाना चाहिए। इससे सेवन से शोथ, ज्वर, दाह, विसर्प, तृष्णा, सन्ताप सन्निपातजज्वर और विषदोष नष्ट हो जाता है।

८. अभ्यङ्गादियोग (च.द.)

शीतवीर्यैर्हिमजलैरभ्यङ्गादींश्च कारयेत् ॥१३॥

शीतवीर्य वाली औषधियों (काकोल्यादिगण) के शीतल क्वाथ से अभ्यङ्ग-पानादि करने से पित्तजशोथ नष्ट हो जाता है।

९. पुनर्नवाष्टकक्वाथ (च.द.)

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठी-
तिक्ताऽमृतादार्वभयाकषायः ।
सर्वाङ्गशोथोदरपार्श्वशूल-
श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥१४॥

१. पुनर्नवामूल, २. निम्बत्वक्, ३. पटोलपत्र, ४. शुण्ठी, ५. कटुकी, ६. गुडूची, ७. दारुहल्दी और ८. हरीतकी—उपर्युक्त सभी द्रव्य को समभाग में लेकर यवकुट कर संग्रहीत करें। इसे पुनर्नवाष्टकक्वाथ कहते हैं। इस यवकुट क्वाथ को २५ ग्राम की मात्रा में लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर रोगी को ५० मि.ली. पिलावें। इसे पिलाने से सर्वाङ्गशोथ, उदररोग, अर्शशूल, कास और पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं।

१०. पुनर्नवादि कल्क क्वाथ (च.द.)

पुनर्नवाविश्वत्रिवृद्गुडूची-
शम्पाकपथ्याऽमरदारुकल्कम् ।
शोथे कफोत्थे महिषाक्षयुक्तं
मूत्रं पिबेद्वा सलिलं तथैषाम् ॥१५॥

१. पुनर्नवामूल, २. सोंठ, ३. त्रिवृत् ४. गुडूची, ५. अमलतासगूदा, ६. हरीतकी, ७. देवदारु, ८. शुद्ध गुग्गुलु तथा ९. गोमूत्र—पुनर्नवा से देवदारु तक के ७ द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्मचूर्ण करें। ५० मि.ली. गोमूत्र में उपर्युक्त चूर्ण और १ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर पिलाने से कफजशोथ नष्ट हो जाता है। अथवा पुनर्नवा से देवदारु तक के ७ द्रव्यों के क्वाथ में गुग्गुलु और गोमूत्र मिलाकर पिलाने से कफजशोथ नष्ट हो जाता है।

११. कफज शोथहर लेप (च.द.)

कफे तु कृष्णा सिकतापुराण-
पिण्याकशिग्रुत्वगुमाप्रलेपः ।
कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेक-
श्चण्डागुरुभ्यामनुलेपनं च ॥१६॥

१. पीपर, २. महीन बालू, ३. पुरानी खली, ४. सहिजन त्वक्, ५. अतसीबीज (सभी समभाग); पीपर से अतसी बीज तक के ५ द्रव्यों का चूर्ण कर जल के साथ मिलाकर एक कटोरी में गरम करें और शोथ स्थान पर लेप करें। लेप सूखने पर कुलत्थ और सोंठ क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर गरम द्रव से लेप का प्रक्षालन करें। ततः पुनः चोरपुष्पी और अगरु का लेप करें। ऐसा करने से कफज शोथ नष्ट हो जाता है।

१२. पटोलादिक्वाथ (भा.प्र.)

पटोलत्रिफलाऽरिष्टदार्वीक्वाथः सगुग्गुलुः ।
जयेत्पित्तयुतं शोथं हन्ति श्लेष्मोद्भवः तथा ॥१७॥

१. परवलपत्र, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा, ५. निम्बत्वक् तथा ६. दारुहल्दी (समभाग) लें। इन्हें मिलाकर यवकुट करें और पात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट क्वाथ लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस गरम क्वाथ में ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर पिलाने से पित्तज एवं कफज शोथ नष्ट हो जाता है।

१३. अजाज्यादिचूर्ण (च.द.)

अजाजिपाठाघनपञ्चकोल-
व्याघ्रीरजन्यः सुखतोयपीताः ।
शोथं त्रिदोषं चिरजं प्रवृद्धं
निघ्नन्ति भूनिम्बमहौषधे च ॥१८॥

१. श्वेतजीरा, २. पाठामूल, ३. नागरमोथा, ४. पीपर, ५. पिपरामूल, ६. चव्य, ७. चित्रकमूल, ८. सोंठ ९. कण्टकारी, १०. हल्दी, ११. चिरायता तथा १२. सोंठ—इन्हें एक साथ मिलाकर अच्छी तरह से चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को १ से २ ग्राम की मात्रा में गरम पानी से सेवन करने से पुराना तथा त्रिदोषज शोथ नष्ट हो जाता है।

१४. गुडार्द्रकादिप्रयोग (च.द.)

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा
गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा।
कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं
खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥१९॥
शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान्
सश्वासकासारुचिपीनसादीन् ।
जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान्
हन्यात्तथाऽन्यान् कफवातरोगान् ॥२०॥

इस प्रयोग में ४ योग हैं—१. गुड़ एवं आर्द्रक, २. गुड़ एवं सोंठचूर्ण, ३. गुड़ एवं हरीतकीचूर्ण तथा ४. गुड़ एवं पीपरचूर्ण।

'मोदके द्विगुणो गुडः' इस नियम के अनुसार किसी एक योग को बनाना चाहिए। छीलकर साफ किये हुए आर्द्रक को सिल पर महीन पीसें या सोंठ का सूक्ष्म चूर्ण करें। द्विगुण गुड़ की चासनी करें। मोदक की चासनी (३-४ तार की) बनने पर गुड़ पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर आर्द्रक कल्क या सोंठचूर्ण या हरीतकीचूर्ण अथवा पीपरचूर्ण जिसे भी बनाना हो, डालकर अच्छी तरह से मिला लें और शीतल होने पर १२-१२ ग्राम के मोदक बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १२ ग्राम से १४४ ग्राम (१ कर्ष से प्रारम्भ कर प्रतिदिन १-१ कर्ष बढ़ाते हुए १२ कर्ष) तक अर्थात् प्रतिदिन १-१ मोदक बढ़ाकर सेवन करें। इसे १५ दिन से १ महीना तक सेवन करें। इसके सेवन करने से शोथ, प्रतिश्याय, गला और मुख रोग, श्वास, कास, अरुचि, पीनस, जीर्णज्वर, अर्श, ग्रहणी तथा कफ-वात रोगों का नाश होता है।

१५. पुनर्नवादियोग (च.द.)

पुनर्नवामूलकपित्थदारु-
च्छिन्नोद्भवाचित्रकमूलसिद्धाः ।
रसा यवाग्वश्च पयांसि यूषाः
शोथे प्रदेया दशमूलगर्भाः ॥२१॥

१. पुनर्नवामूल, २. कपित्थफल, ३. देवदारु, ४. गुडूची, ५. चित्रकमूल, ६. बेलछाल, ७. गम्भारत्वक्, ८. अग्निमन्थत्वक् ९. सोनापाठात्वक्, १०. पाटलात्वक्, ११. शालपर्णी, १२. पृश्निपर्णी, १३. कण्टकारी, १४. बृहती और १५. गोक्षुर (समभाग) लें। इन १५ द्रव्यों को यवकुट कर किसी पात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार इस यवकुट क्वाथ का अर्धावशेषक्वाथ बनावें और उसी क्वाथ में यवागू, मांसरस, दुग्धसिद्ध और यूष आदि पथ्य बनाकर शोथ रोगी को देना चाहिए।

१६. आर्द्रकस्वरसप्रयोग (च.द.)

आर्द्रकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः ।
अजाक्षीराशिनां शीघ्रं सर्वशोथहरो भवेत् ॥२२॥

आर्द्रकस्वरस १० मि.ली. में पुराना गुड़ २० ग्राम मिलाकर सेवन करें और उस काल में बकरीदूध का ही केवल पथ्य लें, तो शीघ्र ही सभी प्रकार के शोथ नष्ट हो जाते हैं।

१७. गुग्गुलुप्रयोग (च.द.)

पुनर्नवादारुशुण्ठीक्वाथे मूत्रे च केवले ।
दशमूलरसे वाऽपि गुग्गुलुः शोथनाशनः ॥२३॥

१. पुनर्नवामूल, देवदारु तथा सोंठ (समभाग) तथा २. दशमूल, गुग्गुलु और गोमूत्र; यह दो योग हैं—

१. पुनर्नवा से सोंठ तक के ५० मि.ली. क्वाथ में १ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु और १२ मि.ली. गोमूत्र मिलाकर पिलाने से शोथ नष्ट हो जाता है।

२. इसी प्रकार दशमूलक्वाथ ५० मि.ली. में १ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु तथा १२ मि.ली. गोमूत्र मिलाकर पिलाने से शोथ नष्ट हो जाता है।

१८. शोथघ्न चार प्रयोग (च.द.)

पुरो मूत्रेण सेव्येत पिप्पली वा पयोऽन्विता ।
गुडेन वाऽभया तुल्या विश्वं वा शोथरोगिणाम् ॥२४॥

१. ५० मि.ली. गोमूत्र में १ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर पिलाने से शोथरोग नष्ट हो जाता है।

२. १ ग्राम पिप्पलीचूर्ण गरम गोदुग्ध से सेवन करने से शोथ रोग नष्ट हो जाता है।

३. गुड़ ५ ग्राम तथा हरीतकीचूर्ण ५ ग्राम मिलाकर सेवन करने से शोथरोग नष्ट हो जाता है।

४. सोंठचूर्ण ५ ग्राम और गुड़ ५ ग्राम मिलाकर सेवन करने से शोथरोग नष्ट हो जाता है।

१९. गुडपिप्पल्यादि मोदक (च.द.)

गुडपिप्पलिशुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् ।
आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम् ॥२५॥

पुराना गुड़ १०० ग्राम, पीपरचूर्ण २५ ग्राम और सोंठचूर्ण २५ ग्राम लें। गुड़ की ४ तार की चासनी कर उसमें दोनों चूर्णों का प्रक्षेप मिलाकर ५-५ ग्राम का मोदक बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ मोदक दिन में २ बार सेवन करने से शोथ, आमाजीर्ण, शूलरोग नष्ट होता है। यह बस्ति शोधक है।

२०. दार्वादिकल्क (च.द.)

दारुगुग्गुलुशुण्ठीनां कल्को मूत्रेण शोथजित् ।
वर्षाभूशृङ्गबेराभ्यां कल्को वा सर्वशोथजित् ॥२६॥

(१) देवदारुचूर्ण, शुद्ध गुग्गुलु तथा सोंठचूर्ण—इनके चूर्ण

को १-१ ग्राम लें और ५० मि.ली. गोमूत्र में मिलाकर पीने से शोथ नष्ट हो जाते हैं। (अथवा)

(२) पुनर्नवामूलचूर्ण एवं शुण्ठीचूर्ण ५-५ ग्राम लेकर कल्क बना लें तथा ५० मि.ली. गोमूत्र में घोलकर पीने से सभी प्रकार के शोथरोग नष्ट हो जाते हैं।

२१. दार्वादिसिद्ध क्षीर (च.द.)

क्षीरं शोथहरं दारुवर्षाभूनागरैः शृतम्।
पेयं वा चित्रकव्योषत्रिवृद्दारुप्रसाधितम्॥२७॥

१. देवदारु, पुनर्नवामूल, तथा सोंठ (समभाग); या २. चित्रक-मूल, सोंठ, पीपर, मरिच, निशोथ और देवदारु (समभाग)। ये दो योग हैं। दोनों योगों के द्रव्यों का पृथक्-पृथक् यवकुट कर क्वाथ करें। क्वाथ छानकर उस क्वाथ को दूध में मिलाकर क्षीरपाक विधि से पाक करें। केवल क्षीरावशेष रहने पर रोगी को पिलाने से शोथरोग नष्ट हो जाता है।

२२. त्रिफलादि क्वाथ

फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव साधितम्।
वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्याद् वृषणसम्भवम्॥२८॥

आमला, हरीतकी तथा बहेड़ा (समभाग)—इन्हें यवकुट कर संग्रह करें। इस यवकुट को २५ ग्राम की मात्रा में १६ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इसमें से ५० मि.ली. क्वाथ तथा १२ मि.ली. गोमूत्र मिलाकर पिलाने से वात-कफज शोथ और वृषण शोथ नष्ट हो जाते हैं।

२३. पथ्यादिक्वाथ (च.द.)

पथ्यानिशाभार्ग्यमृताऽग्निदार्व्वी
पुनर्नवादारुमहौषधानाम्।
क्वाथः प्रसह्योदरपाणिपाद-
मुखाश्रितं हन्त्यचिरेण शोथम्॥२९॥

१. हरीतकी, २. हल्दी, ३. भारङ्गीत्वक्, ४. गुडूची, ५. चित्रकमूल, ६. दारुहल्दी, ७. पुनर्नवामूल; ८. देवदारु तथा सोंठ (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर किसी पात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ को २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर रोगी को प्रातः-सायं ५०-५० मि.ली. पिलाने से उदर, हस्त-पाद और मुख का शोथ नष्ट हो जाता है।

२४. पुनर्नवादशक क्वाथ

पुनर्नवा मगधजा च कटुत्रयं च
निम्बोऽभया च कटुका च पटोलदार्वी।
क्वाथः सुखोष्ण उदितस्तु विपाचनेन
शोथो जहाति जठरस्य नरस्य शीघ्रम्॥३०॥

१. पुनर्नवामूल, २. पीपर, ३. सोंठ, ४. पीपर, ५. मरिच, ६. निम्बुत्वक्, ७. हरीतकी, ८. कटुकी, ९. पटोलपत्र तथा १०. दारुहल्दी—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट करें और किसी पात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर सुखोष्ण ५० मि.ली. पिलाने से उदरशोथ नष्ट हो जाता है।

२५. शोथहरयोग (च.द.)

बिल्वपत्ररसं पातुं सोषणं श्वयथौ त्रिजे।
विट्सङ्गे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात् कामलासु च॥३१॥

बिल्वपत्रस्वरस १२ मि.ली. में १ ग्राम मरिचचूर्ण मिलाकर पिलाने से त्रिदोषजशोथ नष्ट हो जाता है। इसके सेवन से विड्ग्रह (विबन्ध), अर्श और कामला रोग भी नष्ट हो जाता है।

विमर्श—इसमें १० ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से स्वाद और गुण दोनों में परिवर्तन होता है।

२६. सवाङ्गशोथ में प्रयोग (च.द.)

भूनिम्बचूर्णं विश्वं जग्ध्वा पेयः पुनर्नवाक्वाथः।
अपहरति नियतमाशु शोथं सर्वाङ्गिकं नृणाम्॥३२॥

चिरायता और सोंठ का समभागीय चूर्ण २ ग्राम को मधु से चाटकर पुनर्नवाक्वाथ पिलाने से सर्वाङ्गशोथ नष्ट हो जाता है।

२७. कोकिलाक्षभस्मप्रयोग (च.द.)

शोथनुत्कोकिलाक्षस्य भस्म मूत्रेण वाऽम्भसा॥३३॥

तालमखाने का भस्म १ से २ ग्राम खिलाकर ५० मि.ली. गोमूत्र या गरमजल पिलाने से शोथ नष्ट हो जाता है।

२८. स्थलपद्मकल्क प्रयोग (च.द.)

स्थलपद्मभवं कल्कं पयसाऽऽलोड्य पाययेत्।
प्लीहामयहरञ्चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित्॥३४॥

स्थलपद्म को सिल पर पीसकर कल्क बनावें। १० ग्राम इस कल्क को सुखोष्ण दुग्ध में मिलाकर पिलाने से प्लीहावृद्धि और सर्वाङ्गशोथ रोग नष्ट हो जाते हैं।

२९. पुनर्नवादि पुटस्वेद

पुनर्नवा निम्बपत्रं निष्पावपारिभद्रके।
एतैश्च पुटसंस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम्॥३५॥

१. पुनर्नवामूल, २. निम्बपत्र, ३. राजशिम्बी (राजमाष) बीज और ४. फरहदत्वक् (समभाग) लें। इन्हें कूट-पीसकर कल्क बना लें। वटपत्र में लपेटकर गोला बनावें और इस पर चिकनी मिट्टी का लेप करें तथा सुखाकर लघुपुट में पाक करें। अग्नि कम होने पर इस औषधि गोलक को खोलकर गरम

१. निम्बपत्ररसेति पाठभेदः।

औषधि को कपड़े पर रखें और पिण्ड (पोटली) बनाकर शोथ स्थान पर सेंकें। ऐसा ८ दिन करने से भयंकर शोथ नष्ट हो जाता है।

३०. अपामार्गादि पुट स्वेद

अपामार्गः कोकिलाक्षो निर्गुण्डी विजया तथा ।
एतैरपि पुटस्वेदः शोथं हन्ति सुदारुणम् ॥३६॥

१. अपामार्गपञ्चाङ्ग, २. तालमखाना, ३. निर्गुण्डीपत्र तथा ४. भाँग—इन्हें समभाग २०-२० ग्राम लेकर चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क का गोला बनावें। उस गोले पर ४-६ वटपत्र लपेटकर धागा से बाँध दें और इस गोले पर १ अंगुल चिकनी मिट्टी का लेप करें तथा कपोतपुट की अग्नि में पाक करें। अग्नि कुछ शान्त हो तो औषधि गोलक से प्रतप्त औषधि को निकालकर कपड़े के टुकड़े पर रखकर पोटली जैसा बनाकर शोथ स्थान पर स्वेदन (सेंक) करें। इससे भयंकर शोथ नष्ट हो जाता है।

३१. पुनर्नवादि चूर्ण (वङ्गसेन)

पुनर्नवा दार्व्वभया पाठा बिल्वं श्वदंष्ट्रिका ।
बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यौ चित्रकं वृषः ॥३७॥
समभागानि सञ्चूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत् ।
बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम् ।
हन्ति शोथोदराण्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥३८॥

१. पुनर्नवामूल, २. देवदारु, ३. हरीतकी, ४. पाठा, ५. बिल्वमूलत्वक्, ६. गोक्षुर, ७. कण्टकारी, ८. बृहती, ९. हल्दी, १०. दारुहल्दी, ११. पीपर, १२. पिपरामूल, १३. चित्रकमूल और १४. वासामूल—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्मचूर्ण बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे २ से ३ ग्राम की मात्रा में ५० मि.ली. गोमूत्र के साथ सेवन करने से अनेक प्रकार शोथ, सर्वाङ्गशोथ, उदररोग तथा व्रण रोग नष्ट हो जाते हैं।

३२. शोथारिचूर्ण

शुष्कमूलमपामार्गस्त्रिकटु त्रिफला तथा ।
दन्ती च त्रिमदञ्चैव प्रत्येकञ्च समं समम् ॥३९॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय बिल्वपत्ररसेन च ।
पाण्डुरोगं निहन्त्याशु शोथञ्चैव सुदारुणम् ॥४०॥

१. सूखी हुई मूली का चूर्ण, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. आमला, ६. हरीतकी, ७. बहेड़ा, ८. दन्तीमूल, ९. वायविडङ्ग, १०. नागरमोथा तथा ११. चित्रकमूल (समभाग) लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस शोथारिचूर्ण को १-३ ग्राम की मात्रा में बिल्वपत्रस्वरस के साथ लें। इसके सेवन से पाण्डुरोग और भयङ्कर शोथ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१-३ ग्राम। **अनुपान**—बिल्वपत्रस्वरस से। **गन्ध**—काष्ठौषधगन्धी। **वर्ण**—खाकी रङ्ग हरिताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—पाण्डु और शोथ में।

३३. पुनर्नवादि लेह (वङ्गसेन)

पुनर्नवामृतादारुदशमूलरसाढके ।
आर्द्रकस्वरसप्रस्थे गुडस्य च तुलां पचेत् ॥४१॥
तत्सिद्धं व्योषपत्रैलात्वक्चव्यैः कार्षिकैः पृथक् ।
चूर्णीकृतैः क्षिपेच्छीते मधुनः कुडवं लिहेत् ॥४२॥
लेहः पौनर्नवो नाम शोथशूलनिषूदनः ।
कासश्वासारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥४३॥

क्वाथ—१. पुनर्नवामूल, २. गुडूची, ३. देवदारु, ४. बिल्वत्वक्, ५. अग्निमन्थत्वक्, ६. गम्भारीत्वक्, ७. सोनापाठात्वक्, ८. पाढलत्वक्, ९. शालपर्णी, १०. पृश्निपर्णी, ११. बृहती, १२. कण्टकारी और १३. गोक्षुर—प्रत्येक द्रव्य २३० ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. तेजपात, ५. छोटी इलायची, ६. दालचीनी, ७. चव्य—प्रत्येक १२ ग्राम, ८. मधु १९० ग्राम और गुड़ ४६७० ग्राम लें।

पुनर्नवा से गोक्षुर पर्यन्त सभी द्रव्यों को यवकुट कर एक द्रोण (१३ लीटर) जल में क्वाथ करें। ३ लीटर क्वाथ शेष रहने पर क्वाथ छान लें। अब एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में दशमूलादिक्वाथ आर्द्रकस्वरस और गुड़ मिलाकर मध्यमाग्नि पर पकावें। जब गुड़ पूरी तरह घुल जाय तो कपड़ा से उस घोल को छानकर पुनः पकावें। दो तार की चासनी होने पर पाक परीक्षा करें और पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। कुछ ठण्डा होने पर त्रिकटु आदि द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण प्रक्षिप्त कर अच्छी तरह मिला लें और ठण्डा होने पर मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पुनर्नवादिलेह' कहते हैं। इसे ६-१२ ग्राम की मात्रा में दूध के साथ सेवन कराने से शोथ, शूल, श्वास, कास और अरुचि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्धि। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—मधुर-कटु। **उपयोग**—शोथ, उदरशूल, श्वास, कास और अरुचि में।

३४. पुनर्नवादिलेप (वङ्गसेन)

पुनर्नवादारुशुण्ठीसिद्धार्थशिग्रुमेव च ।
पिष्ट्वा चैवारनालेन प्रलेपः सर्वशोथजित् ॥४४॥

१. पुनर्नवा, २. देवदारु, ३. सोंठ, ४. श्वेत सरसों तथा ५. सहिजन की छाल—उपर्युक्त सभी द्रव्यों का समभाग में सूक्ष्म

चूर्ण कर लें तथा काञ्जी के साथ पीसकर कटोरी में गरम करें तथा सुखोष्ण ही शोथ पर इसका लेप करें। इस लेप के प्रयोग से सभी प्रकार के शोथ का नाश होता है।

आगन्तुज शोथ चिकित्सा (भा.प्र.)

शोथे त्वागन्तुजे कुर्य्यात् सेकलेपादिशीतलम् ॥४५॥

आगन्तुजशोथ में सेंक-लेपादि शीतल क्रिया करनी चाहिए।

३५. भल्लातकजन्य शोथहर योग (भा.प्र.)

भल्लातक्या हरेच्छोथं सतिला कृष्णमृत्तिका ॥४६॥

भल्लातकवाष्पजन्य शोथ में तिल तथा काली मिट्टी दोनों को जल के साथ पीसकर लेप करने से भल्लातकजन्य शोथ नष्ट हो जाता है।

३६. भल्लातकजन्य शोथहर तीन योग (भा.प्र.)

महिषीक्षीरसम्पिष्टैर्नवनीतसमन्वितैः ।
तिलैर्लिप्तः शमं याति शोथो भल्लातकोत्थितः ॥४७॥
यष्टिदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः ।
शोथमारुष्करं हन्ति चूर्णैः शालदलस्य च ॥४८॥

१. भैंस के दूध में तिल को महीन पीसें और उसमें समभाग मक्खन मिलाकर अच्छी तरह मिलाकर भल्लातकजन्य शोथ पर लगावें।

२. मुलेठी एवं तिल समभाग में लेकर सिल पर गोदुग्ध के साथ पीसें और उसमें पूर्ववत् मक्खन मिलाकर भल्लातक जन्य शोथ स्थान पर लेप करें।

३. शालपत्रचूर्ण को गोदुग्ध के साथ पीसकर पूर्ववत् लेप करें।

इन तीनों योगों में से किसी एक का भी प्रयोग भल्लातक वाष्पजन्य शोथ का नाश करता है।

३७. क्षारादिगुटिका (चरक)

क्षारद्वयं स्याल्लवणानि चत्वा-
र्ययोरजोव्योषफलत्रिके च ।
सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं
मुस्ताजमोदामरदारुबिल्वम् ॥४९॥
कलिङ्गकश्चित्रकमूलपाठे
यष्ट्याह्वयं सातिविषं पलांशम् ।
सहिङ्गुकर्षं त्वनु शुष्कचूर्णं
द्रोणं तथा मूलकशुण्ठकानाम् ॥५०॥
स्याद्भस्मनस्तत्सलिलेन साध्य-
मालोड्य यावद्घनमप्यदग्धम् ।
स्त्यानं ततः कोलसमां च मात्रां
कृत्वा सुशुष्कां विधिना प्रयुञ्ज्यात् ॥५१॥
प्लीहोदरश्वित्रहलीमकार्शः
पाण्ड्वामयारोचकशोथशोषान् ।
विसूचिकागुल्मगराश्मरीश्च
सश्वासकासान् प्रणुदेत् सकुष्ठान् ॥
सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च ।
चतुर्लवणमत्र स्याज्जलमष्टगुणं भवेत् ॥५१॥

१. यवक्षार, २. सर्जिक्षार, ३. सैन्धवलवण, ४. सौवर्चललवण, ५. विडलवण, ६. औद्भिल्लवण, ७. लौहभस्म, ८. सोंठ, ९. पीपर, १०. मरिच. ११. आमला, १२. हरीतकी, १३. बहेड़ा, १४. पिप्पलीमूल, १५. वायविडङ्ग, १६. नागरमोथा, १७. अजमोदा, १८. देवदारु, १९. बिल्वत्वक्, २०. इन्द्रयव, २१. चित्रकमूल, २२. पाठा, २३. मुलेठी तथा २४. अतिविषा—प्रत्येक द्रव्य ५० ग्राम लें; २५. भर्जित हींग १२ ग्राम, २६. मूलीभस्म और २७. शुण्ठीभस्म १३ किलो लें। यवक्षार से लेकर हिङ्गुपर्यन्त सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। इसके बाद मूली एवं शुण्ठी के भस्म को ८ गुने जल में अच्छी तरह घोल दें और ७ बार कपड़े से छान लें। उस जल को ६ दिनों तक निथरने के लिए स्टेनलेस स्टील के पात्र में छोड़ दें। जब गाद नीचे बैठ जाय तथा ऊपरी जल स्वच्छ हो जाय तो पात्र को टेढ़ा कर स्वच्छ जल को पृथक् कर लें। उसे पुनः कपड़े से छानकर अग्नि पर पाक करें। अर्द्धघन हो जाने पर उसे एनामेल ट्रे में पृथक् कर धूप में सुखा लें। इसमें से जितनी मात्रा में क्षार निकले उसे इस योग में डाल दें। अब इस मिश्रित औषधि को थोड़ा जल डालकर सिल पर पीसें तथा कोल प्रमाण = ६ ग्राम की मात्रा में वटी बनाकर धूप में सुखा लें। क्षार और लवण के इस योग को छाया में नहीं सुखावें, क्योंकि क्षार व लवण बाहुल्य होने के कारण यह वातावरण की नमी को अवशोषित करता है। इस वटी को १-६ वटी की मात्रा में रोग एवं रोगी के बलाबल के अनुसार जल के साथ प्रयोग करना चाहिए। इसके प्रयोग से प्लीहोदर, श्वित्र, हलीमक, अर्श, पाण्डु, अरुचि, शोथ, शोष, विसूचिका, गुल्म, गरविष, अश्मरी, श्वास, कास और कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ कोल प्रमाण = ६ ग्राम (किन्तु आ. मात्रा ३ ग्राम)। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—हिङ्गुगन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—प्लीहोदर, अरुचि, शोथ, विसूचिका और गुल्म।

३८. त्रिनेत्राख्य रस

टङ्गणं शोधितं गन्धं मृतशुल्वायसं रसम् ।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं लघुपुटे पचेत् ॥५३॥
त्रिनेत्राख्यो रसो नाम चासाध्यं श्वयथुं जयेत् ।
माषमात्रं पिबेच्चानु एरण्डशिखरीरसम् ॥५४॥

१. शुद्ध टङ्कण, २. शुद्ध गन्धक, ३. ताम्रभस्म, ४.

लौहभस्म, और ५. शुद्ध पारद—प्रत्येक समभाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मिलाकर अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें और आर्द्रक स्वरस से १ दिन मर्दन करें। ततः टिकिया बनाकर शरावसम्पुट करें और कपोतपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर औषधि को ग्रहण करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे त्रिनेत्राख्यरस कहते हैं। इसे ६५-१२५ मि.ग्रा. की मात्रा में मधु एवं एरण्डस्वरस तथा अपामार्गस्वरस मिलाकर सेवन करावें। इसके सेवन से भयङ्कर शोथ रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६५-१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु, एरण्ड स्वरस एवं अपामार्गस्वरस से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **स्वाद**—नीरस। **उपयोग**—भयङ्कर शोथहर।

३९. शोथांकुशरस

रसेन्द्रगन्धं मृतलौहताम्रं
नागं तथाऽभ्रं समसङ्ख्यकञ्च।
निर्गुण्डिकास्फोतकपित्थचिञ्चा-
पुनर्नवाश्रीफलकेशराजम् ॥५५॥
एषां रसैर्भावितमेकशश्च
कोलप्रमाणा वटिका विधेया।
शोथज्वरारोचकपाण्डुरोगं
सर्वाङ्गशोथं विनिवारयेच्च॥
पित्तान्वितं वातभवं कफोत्थाञ्
शोथाङ्कुशो नाम निहन्ति रोगान् ॥५६॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. ताम्रभस्म, ५. नागभस्म और ६. अभ्रकभस्म—प्रत्येक १० ग्राम लें।

भावनाद्रव्य—१. निर्गुण्डीपत्रस्वरस, २. हरफारेवड़ी, ३. कपित्थफलरस, ४. इमलीफलरस, ५. पुनर्नवामूलस्वरस, ६. बिल्वफलस्वरस तथा ७. भृङ्गराजस्वरस। सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बना लें। ततः अन्य भस्मों को भी उस कज्जली में मिला लें। भावना द्रव्य में उल्लिखित ७ द्रव्यों के स्वरसों से क्रमशः पृथक्-पृथक् एक-एक दिन मर्दन करें। ततः कोलप्रमाण की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। (आचार्यश्री ने कोल मात्रा का निर्देश दिया है, जो बेर को इङ्गित करता है। जो आज के सन्दर्भ में अधिक मात्रा है।) रोगानुसार अनुपान से विविध रोगों में प्रयोग करें। इसके सेवन से शोथ, ज्वर, अरुचि, पाण्डु, सर्वाङ्गशोथ और वातज, पित्तज, कफज शोथ भी नष्ट हो जाते हैं। इसे 'शोथाङ्कुशरस' कहते हैं।

मात्रा—१-४ रत्ती (१२५-५०० मि.ग्रा.) **अनुपान**—रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ में।

४०. पञ्चामृतरस

शुद्धसूतं समादाय गन्धकं भागतः समम्।
त्रिभागं टङ्कणं देयं विषं भागत्रयं तथा ॥५७॥
भागत्रयं तथा देयं मरिचस्य प्रयत्नतः।
चूर्णीकृतं जलेनापि पिष्ट्वा रक्तिमितां वटीम् ॥५८॥
शृङ्गबेररसेनैव भक्षयेद्वटिकामिमाम्।
जलदोषोद्भवे शोथे घोरेऽत्युग्रे जलोदरे ॥५९॥
सन्निपातेषु घोरेषु विंशतिश्लैष्मिके गदे।
ज्वरातिसारसंयुक्ते शोथे चैव गलग्रहे ॥६०॥
शिरःशूलगदे घोरे नासारोगे सपीनसे।
पञ्चामृतरसो ह्येष सर्वरोगोपशान्तिकृत् ॥६१॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. शुद्ध टङ्कण ३ भाग, ४. शुद्ध वत्सनाभ ३ भाग, ४. मरिचचूर्ण ३ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर दृढ़ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य द्रव्यों को उस कज्जली में मिलाकर मर्दन करें और आर्द्रकस्वरस की भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। ततः १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें एवं काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'पञ्चामृतरस' की १-१ वटी मधु से या रोगानुसार अनुपान से सेवन करने पर जल दोष से उत्पन्न शोथ, भयंकर जलोदर, घोर सन्निपात, २० प्रकार के कफज रोग, ज्वरातिसार, गलग्रह, शिरःशूल, नासारोम, पीनस रोग तथा अनुपान भेद से सभी रोगों को नष्ट करता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शोथ, जलोदर एवं कफजरोग में।

४१. शोथकालानल रस (धन्वन्तरि)

चित्रं कुटजबीजञ्च श्रेयसी सैन्धवं तथा।
पिप्पली देवपुष्पञ्च जातीफलसटङ्कणम् ॥६२॥
लौहमभ्रं तथा गन्धं पारदेनैव मिश्रितम्।
एतेषां कर्षमात्रेण वटीं गुञ्जामितां शुभाम् ॥६३॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षरसेन तु।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥६४॥
कासं श्वासं तथा शोथं प्लीहानं हन्ति दुस्तरम्।
मेहं मन्दानलं शूलं सङ्ग्रहग्रहणीं तथा ॥६५॥
अवश्यं नाशयेच्छोथं कर्दमं भास्करो यथा।
शोथकालानलो नाम रोगानीकविनाशनः ॥६६॥

१. चित्रकमूल, २. इन्द्रयव, ३. गजपीपर, ४. सैन्धवलवण, ५. पीपर, ६. लवङ्ग, ७. जायफल, ८. शुद्ध टङ्कण, ९. लौह-

भस्म, १०. अभ्रकभस्म, ११. शुद्ध गन्धक तथा १२. शुद्ध पारद—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक बड़े खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य भस्मों और काष्ठौषधि चूर्णों को मिलाकर जल के साथ १ दिन तक दृढ़ मर्दन करें और १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को कोकिलाक्ष क्वाथ के साथ सेवन करने से साध्य एवं असाध्य ८ प्रकार के ज्वर, श्वास, कास, शोथ, अत्यधिक बढ़ी हुई प्लीहा, प्रमेह, मन्दाग्नि, शूल, संग्रहणी आदि रोग निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का नाश करता है उसी प्रकार यह 'शोथकालानलरस' सभी प्रकार के रोगों का अनुपान भेद से नाश करता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शोथ, प्लीहावृद्धि एवं संग्रहणी में।

४२. क्षेत्रपाल रस (रसचण्डांशु)

हिङ्गुलञ्च विषं ताम्रं लौहं तालञ्च टङ्कणम्।
जीरकं चाहिफेनं च समभागं विमर्दयेत् ॥६७॥
यवार्द्धा वटिका कार्या पथ्यं दुग्धौदनं हितम्।
अलवणं वारिहीनं दातव्यं भिषजां वरैः ॥६८॥
गुरुशोथं चाग्निमान्द्यं ग्रहणीमतिदुस्तराम्।
ज्वरञ्च विषमं जीर्णं नाशयेन्नात्र संशयः ॥६९॥

१. शुद्ध हिङ्गुल, २. शुद्ध वत्सनाभ, ३. ताम्रभस्म, ४. लौहभस्म, ५. शुद्ध ताल, ६. शुद्ध टङ्कण, ७. जीरकचूर्ण और ८. शुद्ध अहिफेन—प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर जल के साथ मर्दन करें और $\frac{१}{४}$-$\frac{१}{४}$ रत्ती = यवार्द्ध प्रमाण में वटी बनाकर सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस क्षेत्रपाल रस को १-१ वटी दुग्ध के साथ सेवन कराने से शोथ, अग्निमांद्य, भयङ्कर ग्रहणी, विषमज्वर तथा जीर्णज्वर निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। इस औषधि के सेवनकाल में नमक और पानी का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए तथा केवल दूध-रोटी या दूध-भात का ही सेवन कराना चाहिए।

मात्रा—$\frac{१}{२}$ से १ रत्ती (६५-१२५ मि.ग्रा.)। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—उग्रगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, अग्निमांद्य एवं संग्रहणी में।

४३. कल्पलता वटी (वैद्यकल्पद्रुम)

अमृतं हिङ्गुलं धूर्त्तबीजं द्वादशरक्तिकम्।
प्रत्येकमहिफेनञ्च षट्त्रिंशद्रक्तिकं नयेत् ॥७०॥
पिष्ट्वा दुग्धेन गुञ्जैकां वटीं दुग्धेन पाययेत्।
दुग्धं पाने भोजने च न देयं लवणं जलम् ॥७१॥
ग्रहणीं चिरकालीनां हन्ति शोथं सुदुर्ज्जयम्।
चिरज्वरं पाण्डुरोगं नाम्ना कल्पलता वटी ॥७२॥

१. शुद्ध वत्सनाभविष १० ग्राम, २. शुद्ध हिङ्गुल १० ग्राम, ३. शुद्ध धत्तूरबीज १० ग्राम तथा ४. शुद्ध अफीम ३० ग्राम लें। इन चारों द्रव्यों को एक खरल में मिलाकर मर्दन करें। गोदुग्ध की भावना देकर एक दिन तक मर्दन करें तथा १२५ मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। इसे कल्पलतावटी कहते हैं। इस रस को १-१ वटी की मात्रा में दुग्धानुपान के साथ सेवन करना चाहिए। औषधि सेवनकाल में लवण और जल का प्रयोग न करें। भूख लगने पर दुग्ध या दूध-रोटी या दूध-भात का ही भोजन दें। इसके सेवन से पुराना संग्रहणी, दुर्जय शोथ, पुराना ज्वर और पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—तीक्ष्णगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, ग्रहणी एवं पाण्डु में।

४४. दुग्धवटी-१

अमृतं सूर्यगुञ्जं स्यादहिफेनं तथैव च।
पञ्चरक्तिकलौहञ्च षष्टिरक्तिकमभ्रकम् ॥७३॥
दुग्धैर्गुञ्जाद्वयमिता वटी कार्या भिषग्विदा।
दुग्धानुपानं दुग्धैश्च भोजनं सर्वथा हितम् ॥७४॥
शोथं नानाविधं हन्ति ग्रहणीं विषमज्वरम्।
मन्दाग्निं पाण्डुरोगञ्च नाम्ना दुग्धवटी परा।
वर्जयेल्लवणं वारि व्याधिनिःशेषतावधि ॥७५॥

१. शुद्ध वत्सनाभविष १२ ग्राम, २. शुद्ध अफीम १२ ग्राम, ३. लौहभस्म ५ ग्राम तथा ४. अभ्रकभस्म ६० ग्राम लें। इन सभी द्रव्यों को एक खरल में मिलावें तथा दूध की भावना देकर २५० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसकी १-१ वटी सुबह-शाम दूध के साथ सेवन करने से अनेक प्रकार के शोथ, संग्रहणी, विषमज्वर, मन्दाग्निरोग एवं पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधि के सेवन काल में लवण और जल बन्द कर देना चाहिए। भूख लगने पर केवल दूध, दूध-रोटी, दूध-भात का ही भोजन दें।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—दूध से। **गन्ध**—उग्रगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, ग्रहणी एवं मन्दाग्नि में।

४५. दुग्धवटी-२ (वैद्यकल्पद्रुम)

अमृतं धूर्त्तबीजञ्च हिङ्गुलञ्च समं समम्।
धूर्त्तपत्ररसेनैव मर्दयेद्यामभमात्रकम् ॥७६॥
मुद्गोपमां वटीं कृत्वा दुग्धेन सह पाययेत्।
दुग्धेन भोजयेदन्नं वर्जयेल्लवणं जलम् ॥७७॥

शोथं नानाविधं हन्ति पाण्डुरोगं सकामलम्।
सेयं दुग्धवटी नाम्ना गोपनीया प्रयत्नतः ॥७८॥

शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध धत्तूरबीज तथा शुद्ध हिङ्गुल (समभाग) लें। एक साफ खरल में इन तीनों द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें और धत्तूरपत्रस्वरस की भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन करें। ६० मि.ग्रा. (आधा रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखावें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस दुग्धवटी को दुग्धानुपान से प्रातः-सायं १-१ वटी का सेवन करने से अनेक प्रकार के शोथ, पाण्डुरोग, कामला नष्ट हो जाते हैं। इस दुग्धवटी को गुप्त रखना चाहिए। इसके सेवन काल में रोगी को नमक व जल का सेवन बन्द कर देना चाहिए। केवल दुग्धानुपान, दुग्ध-रोटी, दूध-भात का भोजन देना चाहिए।

मात्रा—६० मि.ग्रा.। (आधा रत्ती) **अनुपान**—दूध से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, पाण्डु तथा कामला में।

४६. क्षीरवटी

गृहीत्वा दरदात् कर्षं तदर्द्धं देवपुष्पकम्।
फणिफेनं विषं जातीफलं धुस्तूरबीजकम् ॥७९॥
सम्मर्द्य विजयाद्रावैर्मुद्गमात्रां वटीं चरेत्।
अनुपानं प्रदातव्यं शोथे क्षीरं भिषग्वरैः ॥८०॥
ग्रहण्यां विजयाक्वाथं पथ्यं दुग्धान्नमेव हि।
जलञ्च लवणं चापि वर्जनीयं विशेषतः ॥८१॥
प्रबलायामुदन्यायां सलिलं नारिकेलजम्।
पातव्यं वटिकां चैषा शोथं हन्ति न संशयः।
ग्रहणीमतिसारञ्च ज्वरं जीर्णं निहन्ति च ॥८२॥

१. शुद्ध हिङ्गुल १२ ग्राम, २. लवङ्गचूर्ण ६ ग्राम, ३. शुद्ध अफीम ६ ग्राम, ४. शुद्ध वत्सनाभविष ६ ग्राम, ५. जायफल ६ ग्राम और ६. शुद्ध धत्तूरबीज ६ ग्राम लें। सर्वप्रथम काष्ठौषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर भाँग के स्वरस के साथ ३ घण्टे मर्दन करें और ६० मि.ग्रा. (आधा रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस क्षीरवटी को शोथ में दुग्ध के साथ तथा संग्रहणी में विजयास्वरस के साथ देना चाहिए। इस औषधि के सेवन काल में लवण व जल का प्रयोग वर्जित कर देना चाहिए। तथा भोजन के रूप में दूध, दूध-रोटी तथा दूध-भात दें। अत्यन्त प्यास लगने पर नारियल का पानी देना चाहिए। यह निःसन्देह शोथ को दूर करने वाली वटी है। साथ ही संग्रहणी अतिसार, जीर्णज्वर भी इसके प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६० मि.ग्रा.। (आधा रत्ती)। **अनुपान**—दूध एवं रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, संग्रहणी एवं अतिसार।

४७. तक्रवटी

रसस्य माषकं ग्राह्यं गन्धकस्य च माषकम्।
द्विमाषकं विषस्यापि ताम्रं माषचतुष्टयम् ॥८३॥
तोलकं पिप्पलीचूर्णं मण्डूरस्य च तोलकम्।
क्वाथेन कृष्णजीरस्य भावयेत्सप्तवासरान् ॥८४॥
वल्लप्रमाणां वटिकां तक्रेण सह पाययेत्।
तक्रेण भोजनं पानं लवणाम्भोविवर्जितम्।
निहन्ति शोथं ग्रहणीं मन्दाग्निं पाण्डुतामपि ॥८५॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. शुद्ध वत्सनाभविष २ भाग, ४. ताम्रभस्म ४ भाग, ५. पिप्पलीचूर्ण ८ भाग तथा ६. शुद्ध मण्डूरचूर्ण ८ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को उसमें मिलाकर मर्दन करें। कृष्णजीरक क्वाथ की ७ भावना देकर सात दिनों तक मर्दन करें। पुनः ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'तक्रवटी' कहते हैं। इसे तक्र के साथ प्रयोग करने से शोथ, संग्रहणी, पाण्डु और अग्निमांद्य रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन काल में लवण और जल का प्रयोग वर्जित करना चाहिए। तक्रपान, तक्रभात, तक्ररोटी का ही सेवन करें।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—तक्र से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शोथ, संग्रहणी, अग्निमांद्य एवं पाण्डु में।

४८. वैद्यनाथवटी (दधिवटी)

पक्वेष्टिकाहरिद्राभ्यामागारधूमकेन च।
शोधितं सूतकं ग्राह्यं तोलकं तुलया घृतम् ॥८६॥
भृङ्गराजरसे शुद्धं गन्धकं सूततुल्यकम्।
हरितालं विषं तुत्थमेलवालुकमभ्रकम् ॥८७॥
खर्परं माक्षिकं कान्तं सर्वमेकत्र कारयेत्।
सर्वार्द्धा कज्जली ग्राह्या भावयेच्च पुनः पुनः ॥८८॥
सिन्धुवाररसे चैव ज्योतिष्मत्या रसे तथा।
रसेऽपराजितायाश्च जयन्त्याः स्वरसे तथा ॥८९॥
रक्तचित्रकमूलोत्थे रसे च परिभावयेत्।
वटिकां सर्षपाकारां योजयेत्कुशलो भिषक् ॥९०॥
ततः सप्तवटीर्दद्यादुष्णेन वारिणा सह।
अनुपानञ्च कर्त्तव्यं कज्जल्या कणया सह ॥९१॥
सन्निपातज्वरे चैव सशोथे ग्रहणीगदे।
पाण्डुरोगेऽग्निमान्द्ये च विविधे विषमज्वरे ॥९२॥
शुक्रमज्जगते दद्यान्न तु कासे कदाचन।
नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं सिता नित्यं तथैव च ॥९३॥

स्नातव्यं ह्यभयं नित्यं वयोदोषानुसारतः।
वारिहीनमलवणं दधि पथ्यं सदा भवेत्।
वैद्यनाथवटी नाम्ना वैद्यनाथेन निर्मिता॥९४॥

१. शुद्ध पारद ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम, ३. शुद्ध हरताल २५ ग्राम, ४. शुद्ध वत्सनाभविष २५ ग्राम, ५. शुद्ध तुत्थ २५ ग्राम, ६. एलुआ २५ ग्राम, ७. अभ्रकभस्म २५ ग्राम, ८. शुद्ध खर्परभस्म २५ ग्राम, ९. स्वर्णमाक्षिकभस्म २५ ग्राम और १०. कान्तलौहभस्म २५ ग्राम लें। सर्वप्रथम ईंटे का चूर्ण, गृहधूम और काञ्जी के साथ १ दिन तक पारद का मर्दन करें और पुनः गरम काञ्जी के साथ पारद का प्रक्षालन करें। उसके बाद आमलासारगन्धक को घी के साथ द्रवित कर भृङ्गराजस्वरस में निवार्पित कर शुद्ध कर लें। इस तरह से शुद्ध किये हुए पारद एवं गन्धक का एक साफ खरल में मर्दन कर कज्जली बना लें। ततः उस कज्जली में हरताल देकर मर्दन करें। पुनः अभ्रक आदि अन्य भस्मों एवं द्रव्यों के चूर्णों को कज्जली के साथ मिलाकर अच्छी तरह से मर्दन करें। तदनन्तर निर्गुण्डीपत्रस्वरस, ज्योतिष्मतीक्वाथ, अपराजितास्वरस, जयन्तीस्वरस और लालचित्रकमूलक्वाथ की १-१ भावना दें और १० मि.ग्रा. सरसों जैसी मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी उष्णोदक के साथ खाकर अनुपान रूप में कज्जली ६० मि.ग्रा. और पीपरचूर्ण ५०० मि.ग्रा. मिलाकर खायें। इसका प्रयोग सन्निपातज्वर, शोथ, संग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, अग्निमांद्य, अनेक प्रकार के विषमज्वर, शुक्र एवं मज्जागत ज्वर में करना चाहिए। किन्तु **कासरोग** में कभी भी नहीं करना चाहिए। इस औषधि के सेवन काल में भूख लगने पर दही, चीनी और भात या दही एवं चीनी मिलाकर सेवन करना चाहिए। उम्र एवं रोग या रोगी के दोष-बलानुसार नित्य स्नान करना चाहिए। नमक एवं जल का भोजन नहीं देना चाहिए। इस वैद्यनाथवटी को आचार्य श्रीवैद्यनाथ ने निर्मित किया है।

विमर्श—मूलपाठ में आचार्यश्री सरसों जितनी बड़ी वटी बनाने को बताया है और ७ सरसों की मात्रा में प्रयोग करने का आदेश दिया है। अतः मैंने यह सोचकर इसमें परिवर्तन किया है कि सरसों जितनी मात्रा में वटी बनाना कठिन है तथा ऐसी कोई भी मशीन की डाई नहीं निकली है जिसमें सरसों जितनी मात्रा में वटी बनती है। फिर प्रयोग तो आधा रत्ती से अधिक मात्रा में (७ वटी) करना है। अतः मैंने १ रत्ती की मात्रा निर्धारित की है, क्योंकि इसमें संखिया जैसे कोई घातक द्रव्य नहीं हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक एवं कज्जली एवं पीपरचूर्ण से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, संग्रहणी, अग्निमाद्य एवं ज्वर में।

४९. शोथारिरस (योगरत्ना.)

हिङ्गुलं जयपालं च मरिचं टङ्गणं कणाम्।
सम्मर्द्य वल्लः सघृतः सर्वशोथहरः परः॥९५॥

१. शुद्ध हिङ्गुल, २. शुद्ध जयपाल, ३. मरिचचूर्ण, ४. शुद्ध टङ्कण तथा ५. पीपरचूर्ण (समभाग) लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को साथ मिलाकर मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'शोथारिरस' कहते हैं। इसे ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में घी और पुनर्नवास्वरस के साथ सेवन करने सभी प्रकार के शोथ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—घी और पुनर्नवारस से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रकार के शोथ में।

५०. शोथशार्दूलचूर्ण

सोरकं पञ्चलवणं सर्जिकाक्षारमेव च।
सिन्दूरं च यवक्षारं सर्वं दद्यात् समं समम्॥९६॥
रक्तित्रयमितात्खादेद् यावद्वै माषकोन्मितम्।
चूर्णमेतद्धरेच्छोथं नानोपद्रवसंयुतम्॥९७॥
तृणपञ्चमूलक्वाथैर्मूत्रकृच्छ्रहरं परम्।
पुनर्नवाऽष्टकक्वाथैर्योजितं चोदरं हरेत्॥९८॥

१. कलमीसोरा, २. सैन्धवलवण, ३. सौवर्चललवण, ४. विडलवण, ५. सामुद्रलवण, ६. औद्भिल्लवण, ७. सर्जिक्षार, ८. नागसिन्दूर और ९. यवक्षार (समभाग) लें। एक खरल में इन सभी द्रव्यों को अच्छी तरह से पीसकर मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। ३७५ मि.ग्रा. से ७५० मि.ग्रा. की मात्रा में उष्णोदक से लेने पर अनेक उपद्रवों से युक्त शोथरोग नष्ट हो जाता है। तृणपञ्चमूलक्वाथ से लेने पर मूत्रकृच्छ्ररोग और पुनर्नवाष्टकक्वाथ से लेने पर सभी प्रकार के उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ से ७५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—लवणीय।

५१. त्रिकट्वादिमण्डूर

त्रिकटु त्रिफला द्राक्षा पौष्करं सजलं शटी।
लौहं वचा लवङ्गञ्च शृङ्गी त्वक् शतपुष्पिका॥९९॥
बिभीतकं विडङ्गञ्च धातकीपुष्पमेव च।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥१००॥
सर्वद्रव्यसमञ्चात्र सुशुद्धं लौहकिट्टकम्।
कुटजस्य रसेनापि म्रक्षयेत्परियत्नतः॥१०१॥
वेष्टितं जम्बुपत्रेण पङ्केन परिलेपयेत्।
ततो गजपुटे पक्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्॥१०२॥

प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा भक्षयेच्छुक्तिमानतः।
निहन्ति सर्वजं शोथं ग्रहणीञ्च विशेषतः ॥१०३॥
उदरेषु च सर्वेषु शोथेषु च विधानतः।
विविधा व्याधयश्चान्ये सेवनाद् यान्ति साध्यताम् ॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. आमलाचूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ७. द्राक्षा, ८. पुष्करमूलचूर्ण, ९. नागरमोथाचूर्ण, १०. कचूरचूर्ण, ११. लौहभस्म, १२. वच, १३. लवङ्गचूर्ण, १४. काकड़ासिंगीचूर्ण, १५. दालचीनीचूर्ण, १६. सौंफ, १७. बहेड़ाचूर्ण, १८. वायविडङ्गचूर्ण, १९. धातकीपुष्पचूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग लें और २०. शुद्ध मण्डूरचूर्ण १९ भाग लें। इन सभी द्रव्यों को एक साथ खरल में मिश्रित कर १ दिन तक मर्दन करें और कुटज स्वरस की भावना देकर एक बड़ा-सा गोला बना लें या १०० ग्राम के कई गोले बना लें। उन गोलों पर जामुन के ४-५ पत्ते लपेटकर धागे से बाँधें और उन पर मिट्टी का १ अंगुल लेप कर धूप में सुखा लें और उसे पुनः गोबर से लीप दें तथा एक बड़ी हाँडी में कई वटकों को रखकर शराव से मुख बन्दकर कपड़मिट्टी करें और हाँडी को ग़जपुट में रखकर पाक करें। स्वाङ्गशीतल होने पर हाँडी खोलकर गोले निकालें और उस पर की मिट्टी और पत्ते को हटाकर पूरी औषधि को निकालकर खरल में मर्दन करें और काचपात्र में संग्रह करें। इस औषधि को २ शुक्ति = २३ ग्राम की मात्रा में उष्णोदक से सेवन करने से सभी प्रकार के शोथ, संग्रहणी, उदररोग और अनेक प्रकार की अन्य व्याधियाँ भी नष्ट हो जाती हैं। २ शुक्ति मात्रा अत्यधिक है अतः अधुना २ से ५ ग्राम दें।

मात्रा—२ से ५ ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—नीरस। **उपयोग**—सभी प्रकार के शोथ, उदररोग में संग्रहणी में।

५२. सुधानिधि

धान्यकं बालकं मुस्तं विश्वं सिन्धुं समांशकम्।
मण्डूरं द्विगुणं दत्त्वा भावयेत्तु चतुर्दश ॥१०५॥
गोमूत्रं केशराजश्च शोथघ्नी भृङ्गराजकः।
निर्गुण्डी भेकपर्णी च रसैरेषां विभाव्य च ॥१०६॥
निष्कचूर्णं प्रयुञ्जीत तक्रेण सह बुद्धिमान्।
केशराजरसैर्वाऽपि भोजनं लवणं विना ॥१०७॥
तक्रान्नं भोजयेदन्नपाने तक्रञ्च दापयेत्।
कामलाज्वरशोथघ्नो वह्निसन्दीपनः परः।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नः सर्वव्याधिविनाशनः ॥१०८॥

१. धनियाचूर्ण, २. सुगन्धबालाचूर्ण, ३. नागरमोथाचूर्ण, ४. सोंठचूर्ण, ५. सैन्धवलवण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग तथा ६. शुद्ध मण्डूरचूर्ण १० ग्राम लें। इन सभी द्रव्यों को एक बड़े खरल में डालकर अच्छी तरह से मर्दन करें और गोमूत्र, भृङ्गराज, पुनर्नवामूल, केशराज, भृङ्गराज, निर्गुण्डीपत्र और मण्डूकपर्णी के स्वरस या क्वाथ—प्रत्येक द्रव की पृथक्-पृथक् १४ भावना दें। औषधि सूखने पर चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत कर लें। इस औषधि को ३ ग्राम की मात्रा में तक्र या केशराज-स्वरस से सेवन करें। औषधि सेवन काल में लवण और जल वर्जित करें। भूख लगने पर तक्र-भात, तक्र-रोटी या केवल तक्र का आहार दें। इसके सेवन से कामला, ज्वर, शोथ, ग्रहणी, पाण्डु आदि सभी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। यह परम अग्निदीपन है।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—तक्र या केशराज स्वरस से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, ग्रहणी, पाण्डु, अग्निदीपक।

५३. अग्निमुखमण्डूर

पलद्वादशमण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत्।
पञ्चकोलं देवदारु मुस्तं व्योषं फलत्रयम् ॥१०९॥
विडङ्गं पलमात्रन्तु पाकान्ते चूर्णितं क्षिपेत्।
पाययेदक्षमात्रन्तु तक्रेण सह बुद्धिमान् ॥११०॥
असाध्यं श्वयथुं हन्ति पाण्डुरोगं चिरोद्भवम्।
स्वयमग्निमुखं नाम सर्पिः क्षौद्रेण मर्दयेत् ॥१११॥

१. शुद्ध मण्डूरचूर्ण १२ भाग, २. गोमूत्र ९६ भाग, ३. पीपरचूर्ण १ भाग, ४. पिपरामूलचूर्ण १ भाग, ५. चव्यचूर्ण १ भाग, ६. चित्रकचूर्ण १ भाग, ७. सोंठचूर्ण १ भाग, ८. देवदारुचूर्ण १ भाग, ९. नागरमोथाचूर्ण १ भाग, १०. सोंठचूर्ण १ भाग, ११. पीपरचूर्ण १ भाग, १२. मरिचचूर्ण १ भाग, १३. आमलाचूर्ण १ भाग, १४. हरीतकीचूर्ण १ भाग, १५. बहेड़ाचूर्ण १ भाग तथा १६. वायविडङ्गचूर्ण १ भाग लें। एक स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में शुद्ध मण्डूर और गोमूत्र डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब गोमूत्र सूखने लगे और अवलेह जैसा हो जाय तब सोंठ से लेकर वायविडङ्ग तक के सभी १४ द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मर्दन करें। जब गोमूत्र सूख जाय तो चूल्हे से पात्र को नीचे उतार लें और एनामेल ट्रे में औषधि फैलाकर धूप में अच्छी तरह सुखा लें। पुनः इसे छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। यदि एण्डरनर मशीन उपलब्ध हो तो उसमें रखकर ३-४ दिनों तक अच्छी तरह पीस लें। इसे अग्निमुखमण्डूर कहते हैं। इस मण्डूरचूर्ण में विषम मात्रा में घी और मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को १ तोले की मात्रा में तक्र के साथ सेवन करने से असाध्य शोथरोग और पुराना पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—आ. मात्रा २-५ ग्राम। **अनुपान**—तक्र से। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तीक्ष्ण। **उपयोग**—असाध्य शोथ एवं पुराने पाण्डुरोग में।

५४. शोथारिमण्डूर

गोमूत्रशुद्धमण्डूरं निर्गुण्डीरसभावितम्।
मानकार्द्रककन्दानां रसेष्वपि च भावयेत्॥११२॥
त्रिफलाव्योषचव्यानां रसेष्वपि च भावयेत्।
त्रिफलाव्योषचव्यानां चूर्णं कर्षद्वयं पृथक्॥११३॥
चूर्णाद् द्विगुणमण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत्।
सिद्धे चूर्णं क्षिपेच्छीते मधुनश्च पलद्वयम्॥
निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गोत्थं न संशयः॥११४॥

१. गोमूत्र शोधित मण्डूरचूर्ण २८ भाग; २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण, ५. सोंठचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण, ८. चव्यचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य २ भाग; ९. गोमूत्र २२४ भाग (मण्डूर का ८ गुना) तथा १०. मधु ८ भाग लें। सर्वप्रथम एक लोहे की कड़ाही में मण्डूर को तपा-तपाकर ७ बार गोमूत्र में निर्वापित करें। तदनन्तर उसे सूक्ष्म चूर्ण कर लें। अब एक खरल में उस मण्डूरचूर्ण को रखकर निर्गुण्डीस्वरस की १ भावना दें। इसी प्रकार मानकन्दस्वरस, आर्द्रकस्वरस, त्रिफला-क्वाथ, त्रिकटुक्वाथ और चव्यक्वाथ की भी १-१ भावना दें। पुनः इस मण्डूरचूर्ण को कड़ाही में रखें और ८ गुना गोमूत्र से आप्लावित कर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब गोमूत्र सूखने लगे तो उसमें त्रिफला, त्रिकटु और चव्य चूर्णों को मिलाकर दर्वी से अच्छी तरह मर्दन करें। जब गोमूत्र सूख जाय तो उसे एनामिल ट्रे में निकाल लें और धूप में अच्छी तरह सुखा लें तथा ८ भाग मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'शोथारिमण्डूर' कहते हैं। इस मण्डूर को २-५ ग्राम की मात्रा में तक्रानुपान के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के शोथ एवं सर्वाङ्गशोथ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२-५ ग्राम। **अनुपान**—तक्र से। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तीक्ष्ण। **उपयोग**—सर्वाङ्ग शोथ में।

५५. तक्रमण्डूर-१

पलार्द्धं विजयाचूर्णं पलार्द्धं शुद्धलौहजम्।
वंशकालीयकारिष्टविषताडकमूलकम् ॥११५॥
महासमुद्रजं चैव प्रदेयं कार्षिकं तथा।
तेजपत्रं लवङ्गैला शतपुष्पा मधुरिका॥११६॥
मरिचं चामृता यष्टिजातीनागरसिन्धुजम्।
सर्वं तोलमितं दद्याद्व्याधिविद्धिषजां वरः॥११७॥
वर्षाभूस्वरसेनैव बदरास्थिप्रमाणतः।
केशराजानुपानेन तक्रेणैव च दापयेत्॥११८॥
तक्रेण दापयेत्पथ्यं तक्रं भुक्तं निरन्तरम्।
लवणेन विना तक्रं शोथघ्नं परमौषधम्॥११९॥

१. भांगचूर्ण २० ग्राम, २. शुद्ध मण्डूरचूर्ण २० ग्राम, ३. वंशलोचनचूर्ण १० ग्राम, ४. काला अगरचूर्ण १० ग्राम, ५. निम्बत्वक्चूर्ण १० ग्राम, ६. शुद्ध वत्सनाभ १० ग्राम, ७. तालमूल (श्वेतमुशली) चूर्ण १० ग्राम, ८. समुद्रफेनचूर्ण १० ग्राम, ९. तेजपत्रचूर्ण १० ग्राम, १०. लवङ्गचूर्ण १० ग्राम, ११. छोटी एलाचूर्ण १० ग्राम, १२. सौंफचूर्ण १० ग्राम, १३. सोयाबीजचूर्ण १० ग्राम, १४. मरिचचूर्ण १० ग्राम, १५. गुडूचीचूर्ण १० ग्राम, १६. मुलेठीचूर्ण १० ग्राम, १७. जायफलचूर्ण १० ग्राम, १८. सोंठचूर्ण १० ग्राम और १९. सैन्धवचूर्ण १० ग्राम लें। एक बड़े खरल में सभी द्रव्यों के चूर्णों को मिलाकर पुनर्नवास्वरस के साथ एक दिन मर्दन करें और ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर अच्छी तरह सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे केशराजस्वरस और तक्र के साथ १-१ वटी सेवन करावें। इसका सेवन अत्यन्त शोथ नाशक है। इसके सेवन काल में लवण और जल वर्जित रखें तथा केवल तक्र-भात का सेवन करें।

मात्रा—१-२ वटी। **अनुपान**—केशराजस्वरस और तक्र से। **गन्ध**—सुगन्धित। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सर्वाङ्गशोथ में।

५६. तक्रमण्डूर-२

गोमूत्रशुद्धं सल्लौहकिट्टं पलचतुष्टयम्।
भृङ्गराजः केशराजः शोथघ्नी गणिकारिका॥१२०॥
कोकिलाक्षो बिल्वपत्रं रसैरेषां पृथक् पृथक्।
भावयेदष्टपलिकैस्त्रिधा गोमूत्रतस्तथा॥१२१॥
दशरक्तिमितां मात्रामस्य तक्रेण भक्षयेत्।
नीरं च लवणं त्यक्त्वा तक्रमेकं पिबेद्गदी॥१२२॥
तक्रयुक्तं तथा चान्नं भक्षयेदतियत्नतः।
तेन नूनं पाण्डुशोथौ शीघ्रमेव विनश्यतः॥१२३॥

गोमूत्र शुद्ध मण्डूरचूर्ण २०० ग्राम लें। एक खरल में शुद्ध मण्डूरचूर्ण डालें और उसमें क्रमशः भृङ्गराजस्वरस, केशराज स्वरस, पुनर्नवामूलस्वरस, अग्निमन्थस्वरस, कोकिलाक्षस्वरस (क्वाथ), बिल्वपत्रस्वरस और गोमूत्र से ३-३ भावना दें तथा सुखाकर औषधि को काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १० रत्ती की मात्रा में तक्रानुपान के साथ सेवन करने से पाण्डु एवं शोथ रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन काल में लवण और जल का सेवन नहीं करना चाहिए। भूख लगने पर केवल तक्र या तक्र-भात का ही सेवन करना चाहिए।

मात्रा—१२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—तक्र से। **वर्ण**—कृष्ण।

गन्ध—गोमूत्रगन्धी। **स्वाद**—तिक्त, तीक्ष्ण। **उपयोग**—पाण्डु एवं शोथ में।

५७. रसाभ्रमण्डूर

गन्धकाम्बरसूतानां प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम्।
संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरं मुष्टिकद्वयम् ॥१२४॥
प्रसृतञ्च हरीतक्याः पाषाणजतुनः पिचुम्।
तोलकं कान्तलौहस्य सर्वं रौद्रे विभावयेत् ॥१२५॥
भृङ्गराजरसप्रस्थे केशराजरसे तथा।
निर्गुण्डीमानकन्दानामार्द्रकस्य रसेष्वपि ॥१२६॥
त्रिकटुत्रिफलाचव्यमुस्तकानां पृथक् पृथक्।
कर्षं कर्षं क्षिपेच्चूर्णं मर्दयेन्मधुसर्पिषा ॥१२७॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय मात्रया युक्तितः पुमान्।
निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयम् ॥१२८॥
कासश्वासतृषादाहमोहच्छर्दियुतं तथा ॥
अम्लपित्तं निहन्त्येव शूलमष्टविधं जयेत् ॥१२९॥
अग्निवृद्धिकरं वृष्यं हृद्यं वातानुलोमनम्।
कामलां पाण्डुरोगञ्च श्लेष्मकुष्ठारुचिज्वरम् ॥
प्लीहागुल्मोदरं हन्ति ग्रहणीं सप्रवाहिकाम् ॥१३०॥

१. शुद्ध गन्धक, २. अभ्रकभस्म, ३. शुद्ध पारद—प्रत्येक २-२ भाग; ४. शुद्ध मण्डूरचूर्ण ८ भाग, ५. हरीतकीचूर्ण ८ भाग, ६. शुद्ध शिलाजतु १ भाग तथा ७. कान्तलौहभस्म १ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर अच्छी तरह मर्दन कर कज्जली बना लें। ततः अन्य द्रव्यों को भी उस कज्जली के साथ मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद केशराजस्वरस, भृङ्गराजस्वरस, निर्गुण्डीपत्रस्वरस, मानकन्दस्वरस और आर्द्रकस्वरस की क्रमशः ३-३ भावना दें। भावना धूप में बैठकर दें। ततः १. सोंठचूर्ण, २. मरिचचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. हरीतकीचूर्ण, ५. आमलकीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ७. चव्यचूर्ण और ८. नागरमोथाचूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग लें। इन आठ द्रव्यों के चूर्णों को भावित औषधि में मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातः शौचादि से निवृत्त होकर ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम की मात्रा में विषम प्रमाण में घी और मधु मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के सर्वाङ्ग तथा एकाङ्गशोथ, श्वास, कास, तृषा, दाह, मोह, वमन, अम्लपित्त, आठ प्रकार के शूल, कामला, पाण्डु, कफरोग, कुष्ठ, गुल्म, प्लीहावृद्धि, अरुचि, ग्रहणी और प्रवाहिका रोग नष्ट हो जाते हैं। यह वातानुलोमक, अग्निवर्धक, वृष्य तथा हृद्य है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम। **अनुपान**—मधु एवं घी से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, ग्रहणी, अरुचि एवं पाण्डु में।

५८. त्रिकट्वादिलौह (र.सा.सं.)

त्रिकटु त्रिफला दन्ती विडङ्गं कटुका तथा।
चित्रको देवकाष्ठञ्च त्रिवृद्वारणपिप्पली ॥१३१॥
चूर्णान्येतानि तुल्यानि द्विगुणं स्यादयोरजः।
क्षीरेण पीतं शीतेन परं श्वयथुनाशनम् ॥१३२॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. आमलाचूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ७. दन्तीमूलचूर्ण, ८. वायविडङ्गचूर्ण, ९. कुटकीचूर्ण, १०. चित्रकमूलचूर्ण, ११. देवदारुचूर्ण, १२. त्रिवृत्चूर्ण, १३. गजपीपरचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग और १४. लौहभस्म २६ भाग लें। एक बड़े खरल में काष्ठौषधियों के चूर्णों को मिलाकर फिर से महीन छननी से छान लें और लौहभस्म मिलाकर अच्छी तरह २-३ घण्टे तक मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम की मात्रा में गोदुग्ध के साथ सेवन करने पर सभी प्रकार के शोथरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शोथ रोग में।

५९. शोथारिलौह

अयोरजस्त्र्यूषणयावशूकं
चूर्णञ्च पीतं त्रिफलारसेन।
शोथं निहन्यात्सहसा नरस्य
यथाऽशनिर्वृक्षमुदग्रवेगः ॥१३३॥

१. लौहभस्म ४ भाग, २. सोंठचूर्ण १ भाग, ३. पीपरचूर्ण १ भाग, ४. मरिचचूर्ण १ भाग तथा ५. यवक्षार १ भाग लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक की मात्रा में त्रिफलाक्वाथ से सेवन करें। जिस तरह से अत्युग्रवेग वाले इन्द्रवज्र (उल्कापात) से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं उसी तरह इसका सेवन करने से शोथरोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम। **अनुपान**—त्रिफलाक्वाथ से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई रंग का। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शोथरोग में।

६०. सुवर्चलाद्य लौह

सुवर्च्चला व्याघ्रनखं चित्रकः कटुरोहिणी।
चव्यञ्च देवकाष्ठञ्च दीप्यकं लौहमेव च।
शोथं पाण्डुं तथा कासमुदराणि निहन्ति च ॥१३४॥

१. हुरहुरचूर्ण, २. व्याघ्रनखचूर्ण, ३. चित्रकमूलचूर्ण, ४. कटुकीचूर्ण, ५. चव्यचूर्ण, ६. देवदारुचूर्ण, ७. अजवायनचूर्ण

—प्रत्येक १-१ भाग तथा ८. लौहचूर्ण ७ भाग लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों को एक बड़े खरल में रखकर मर्दन करें और महीन छनना से छान लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को ५०० मि.ग्रा. से लेकर १ ग्राम की मात्रा में तक्र के साथ सेवन करने से शोथरोग, पाण्डुरोग कास और उदररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—तक्र के साथ। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, उदर रोग एवं पाण्डु में।

६१. गुग्गुल प्रयोग

पुनर्नवादार्वभयागुडूचीः
पिबेत्समूत्रा महिषाक्षयुक्ताः।
त्वग्दोषशोथोदरपाण्डुरोग-
स्थौल्यं प्रसेकोर्ध्वकफामयेषु ॥१३५॥

१. शुद्ध गुग्गुलु, २. पुनर्नवामूल, ३. देवदारु, ४. हरीतकी, ५. गुडूची तथा ६. गोमूत्र लें। पुनर्नवामूल से गूडूची तक के चारों द्रव्यों को समभाग में लेकर यवकुट करें। इस यवकुट से २५ ग्राम लेकर एक मृत्पात्र में १६ गुना जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और क्वाथ के बराबर गोमूत्र मिलावें। १-२ ग्राम की मात्रा में शुद्ध गुग्गुलु खाकर इस गोमूत्र मिश्रित क्वाथ को पिलावें। गोमूत्र मिश्रित इस क्वाथ की अधिकतम मात्रा में ५० से १०० मि.ली. है।

६२. दशमूलहरीतकी (च.द.)

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत्।
तुलां गुडाच्चात्र दद्याद् व्योषक्षारचतुःपलम् ॥१३६॥
त्रिसुगन्धं सुवर्णांशं प्रस्थार्द्धं मधुनो हिमे।
दशमूलहरीतक्यः शोथान् हन्युः सुदुर्जयान् ॥१३७॥
ज्वरारोचकगुल्मार्शोमेहपाण्डूदरामयान् ।
प्रत्येकमेषां कर्षांशं त्रिसुगन्धिमितो भवेत् ॥१३८॥
कंसहरीतकी चैषा चरके पठ्यतेऽन्यथा।
एतन्मानेन तुल्यत्वं तेन तत्रापि वर्ण्यते ॥१३९॥

दशमूल ३ किलो, बड़ी हरीतकी १०० नग तथा गुड़ ५ किलो लें।

प्रक्षेप—१. सोंठचूर्ण ५० ग्राम, २. पीपरचूर्ण ५० ग्राम, ३. मरिचचूर्ण ५० ग्राम, ४. यवक्षार ५० ग्राम, ५. तेजपत्ता-चूर्ण, १२ ग्राम, ६. छोटी इलायचीचूर्ण १२ ग्राम, ७. दाल-चीनीचूर्ण १२ ग्राम और ८. मधु ३७५ ग्राम लें।

स्टेनलेस स्टील के एक बड़े पात्र में दशमूल यवकुट रखें। इसमें १२ लीटर (१ द्रोण) जल डालकर मन्दाग्नि में क्वाथ करें। १०० हरीतकी को एक पतले कपड़े में बाँधकर उस क्वाथ में डाल दें। जब क्वाथ १ लीटर शेष बचे तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। हरीतकी पोटली निकालकर अलग कर लें और शेष क्वाथ को छानकर किसी अन्य पात्र में संग्रहीत करें। पात्र को साफ कर उसमें गुड़ और अवशिष्ट क्वाथ डालकर मन्दाग्नि पर पकावें। सुपक्व हरीतकी को भी इसी चासनी में डालकर पकावें। १-२ तार की चासनी होने पर अवलेह पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और प्रक्षेप द्रव्य के चूर्णो को इस पर प्रक्षिप्त करें। ठण्डा होने पर मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस दशमूल हरीतकी को १-२ हरीतकी की मात्रा में प्रातः-सायं दिन में दो बार खाकर अनुपान रूप में गरम दूध पीवें। इसके सेवन से दुर्जय शोथरोग नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त ज्वर, अरुचि, गुल्म, अर्श, प्रमेह, पाण्डु और उदररोग भी नष्ट हो जाते हैं। महर्षि चरक ने इसे हरीतकी के नाम से पढ़ा है। किन्तु और अन्य मान इसी तरह से हैं।

मात्रा—१-२ हरीतकी। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्ध अवलेह जैसा। **वर्ण**—रक्ताभ अवलेह। **स्वाद**—मधुर कषाय। **उपयोग**—भयङ्कर शोथ में।

६३. शुण्ठीघृत (च.द.)

विश्वौषधस्य कल्केन दशमूलजले श्रृतम्।
घृतं निहन्त्याच्छ्वयथुं ग्रहणीं पाण्डुतामयम् ॥१४०॥

१. गोघृत १ किलो, २. शुण्ठीकल्क २५० ग्राम तथा ३. दशमूलक्वाथ ४ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। मूर्च्छित घृत में २५० ग्राम शुण्ठीकल्क और दशमूलक्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। दशमूल क्वाथ सूखने पर ४ लीटर जल मिलाकर कल्क का पुनः पाक करें। जल की मात्रा सूखने पर घृतपाक की परीक्षा कर पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें तथा कपड़े से तुरन्त छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम जल या गरम दूध के साथ सेवन करने से शोथ, ग्रहणी और पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम जल, गरम दूध से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शोथ में।

६४. पुनर्नवाघृत (च.द.)

पुनर्नवाक्वाथकल्कसिद्धं शोथहरं घृतम् ॥१४१॥

१. गोघृत १ किलो, २. पुनर्नवामूलक्वाथ ४ लीटर और ३. पुनर्नवामूलत्वक् २५० ग्राम लें। पुनर्नवामूल को यवकुट कर चतुर्गुण जल में क्वाथ करें तथा चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। पुनर्नवामूल २५० ग्राम को चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। ततः घृत का मूर्च्छन करें और मूर्च्छित घृत में क्वाथ और कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ

सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल में पुनः पकावें। जल सूखने पर घृतपाक की परीक्षा करें और घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तुरन्त कपड़े से छान लें। ठण्डा होने पर पुनः काचपात्र में संग्रह करें। इस पुनर्नवाघृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ सेवन करावें। इससे सभी प्रकार के शोथ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथरोग में।

६५. पुनर्नवाद्यघृत-१

पुनर्नवातुलां गृह्य जलद्रोणे विपाचयेत्।
चतुर्भागावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥१४२॥
भूनिम्बविजयाशुण्ठीशोथघ्नामरदारु च।
कासं श्वासं ज्वरं हन्ति शोथञ्चापि सुदारुणम् ॥१४३॥

गोघृत ७५० ग्राम, पुनर्नवामूल ५ किलो और क्वाथार्थ जल १३ लीटर लें।

कल्क—१. चिरायता, २. भांग, ३. सोंठ, ४. पुनर्नवामूल और ५. देवदारु—प्रत्येक द्रव्य ३७ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। पुनर्नवा का यवकुट कर एक द्रोण जल में क्वाथ करें और चतुर्थांश (३ लीटर) शेष बचने पर क्वाथ छान लें। ततः मूर्च्छित घृत में पुनर्नवाक्वाथ मिलाकर पकावें। चिरायता आदि द्रव्यों को पीसकर कल्क बना लें और पकते हुए घृत में मिलाकर पकावें। क्वाथ सूखने पर कल्क के सम्यक् पाक हेतु ३ लीटर जल देकर पुनः पकावें तथा जलीयांश सूखने पर पाक की परीक्षा करें और घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारें तथा कपड़े से छान लें। ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध या गरम जल के साथ मिलाकर सेवन करावें। इसके सेवन से दारुण शोथ, श्वास-कास और ज्वररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दुग्ध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—भयङ्कर शोथ में।

६६. पुनर्नवाद्यघृत-२ (च.द.)

पुनर्नवाचित्रकदेवदारु-
पञ्चोषणक्षारहरीतकीनाम्।
कल्केन पक्वं दशमूलतोये
घृतोत्तमं शोथनिषूदनञ्च ॥१४४॥

१. पुनर्नवामूल, २. चित्रकमूल, ३. देवदारु, ४. पीपर, ५. पिपरामूल, ६. चव्य, ७. चित्रकमूल, ८. सोंठ, ९. यवक्षार और १०. हरीतकी—प्रत्येक द्रव्य २५ ग्राम लें; १०. गोघृत १ किलो तथा १२. दशमूल क्वाथ ४ लीटर लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त सभी १० द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसें। इस कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलावें और ४ लीटर दशमूलक्वाथ देकर मन्दाग्नि पर पकावें। क्वाथ सूखने पर पुनः ४ लीटर जल देकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षा करें और घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तुरन्त कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम जल अथवा गरम दूध के साथ सेवन करने पर भयङ्कर शोथरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरमजल या गरमदूध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ में।

६७. माणकघृत (च.द.)

माणकक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषजमपोहति ॥१४५॥

घृत ७५० ग्राम, मानकन्दक्वाथ ३ लीटर तथा मानकन्द कल्क १८५ ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। तत्पश्चात् उस मूर्च्छित घृत में मानकन्दस्वरस और कल्क मिलाकर पाक करें। जब मानकन्द रस सूख जाय तो उसमें ३ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। ततः जल सूखने पर घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर घृत को कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध या गरम जल में मिलाकर पिलाने से एकदोषज, द्विदोषज और सन्निपातज शोथ नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी तरह के शोथ में।

६८. चित्रकाद्यघृत (च.द.)

सचित्रका धान्ययमानिपाठाः
सदीप्यकत्र्यूषणवेतसाम्लाः।
बिल्वात्फलं दाडिमयावशूकं
सपिप्पलीमूलमथापि चव्यम् ॥
पिष्ट्वाऽक्षमात्राणि जलाढकेन
पक्त्वाघृतप्रस्थमथोपयुक्तम् ॥१४६॥

१. गोघृत ७५० ग्राम; २. चित्रकमूल, ३. धनियाँ, ४. अजवायन, ५. पाठा, ६. अजमोदा, ७. सोंठ, ८. पीपर, ९. मरिच, १०. अम्लवेत, ११. बिल्वफलमज्जा, १२. अनारदाना, १३. यवक्षार, १४. पिपरामूल और १५. चव्य—प्रत्येक १२

ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः चित्रकमूल से चव्य तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ इस चूर्ण को सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलाकर उसमें ३ लीटर जल भी मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाक परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल से लेने पर अर्श, गुल्म एवं असाध्य शोथरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध, गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—अर्श, गुल्म, असाध्य शोथ।

६९. चित्रकघृत (च.द.)

क्षीरं घटे चित्रककल्कलिप्ते
दध्यागतं साधु विमथ्य तेन।
तज्जं घृतं चित्रकमूलकल्कं
तक्रेण सिद्धं श्वयथुघ्नमग्र्यम् ॥१४७॥
अर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहां-
स्तद्धन्ति संवर्द्धयते च वह्निम् ॥१४८॥

१. गोघृत १ किलो, २. चित्रकमूल ५०० ग्राम, ३. गोतक्र ४ लीटर, ४. गोदुग्ध २० लीटर तथा ५. मिट्टी के नये २ घड़े लें। मिट्टी के दोनों घड़े को जल से साफ करें। ततः २५० ग्राम चित्रकमूलचूर्ण को जल के साथ कल्क जैसा बनाकर घड़े के अन्दर लेप करें। २० लीटर गोदुग्ध को एक स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में अच्छी तरह उबाल लें। थोड़ा ठण्डा होने पर उस गोदुग्ध को चित्रकमूल लिप्त घड़े में १०-१० लीटर रखें। दूध जब ठण्डा हो जाय तो उस दूध में थोड़ा-थोड़ा दही डालकर (जमावन देकर) छोड़ दें। दूसरे दिन जब दही बन जाय तो दही को मथकर मक्खन निकाल लें। इस मक्खन से घृत बना लें। यही घृत १ किलो लें। इस घृत का मूर्च्छन करें। ततः २५० ग्राम चित्रकमूलचूर्ण का कल्क बनाकर उस मूर्च्छित घृत में मिलावें और दधि से जो घृत निकला है उसका अवशेष तक्र ४ लीटर भी घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। तक्र सूखने पर घृतपाक की परीक्षा करें और घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम पानी के साथ सेवन करने से शोथ, अर्श, अतिसार, वातज गुल्म और प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। यह घृत अग्निवर्धक है।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शोथ रोग में।

७०. स्थलपद्मघृत (च.द.)

स्थलपद्मपलान्यष्टौ त्र्यूषस्य चतुष्पलम्।
घृतप्रस्थं पचेदेभिः क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्॥
पञ्च कासान् हरेच्छीघ्रं शोथं चैव सुदुस्तरम् ॥१४९॥

१. स्थलकमल ३७५ ग्राम, २. त्रिकटुचूर्ण १८७ ग्राम, ३. गोघृत ७५० ग्राम और ४. गोदुग्ध ३ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। स्थलकमल और त्रिकटु का सूक्ष्म चूर्ण और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। गोदुग्ध और इस कल्क को मूर्च्छित घी में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब दुग्ध सूख जाय तो उसमें ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध अथवा गरम जल के साथ मिलाकर प्रयोग करने से भयङ्कर शोथ और पाँच प्रकार के कास नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शोथ में।

७१. पञ्चकोलाद्यघृत (च.द.)

रसे विपाचयेत्सर्पिः पञ्चकोलकुलत्थयोः।
पुनर्नवायाः कल्केन घृतं शोथविनाशनम् ॥१५०॥

१. गोघृत १ किलो, २. पीपरचूर्ण २०० ग्राम, ३. पिपरामूलचूर्ण २०० ग्राम, ४. चव्यचूर्ण २०० ग्राम, ५. चित्रकचूर्ण २०० ग्राम, ६. सोंठचूर्ण २०० ग्राम, ७. कुलथीचूर्ण १ किलो और ८. पुनर्नवामूलचूर्ण २५० ग्राम लें। पहले घृत का मूर्च्छन करें। ततः पुनर्नवा को कूट-पीसकर कल्क बना लें। पीपर से लेकर कुलथी पर्यन्त सभी द्रव्यों को यवकुट करें और चतुर्गुण जल में क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। कल्क और क्वाथ मिलाकर मूर्च्छित घृत के साथ पाक करें। क्वाथावशेष होने पर ४ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षा करें और घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ प्रयोग करें। इसके प्रयोग से सभी प्रकार के शोथरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—शोथ में।

७२. शुष्कमूलकाद्य तैल-१ (च.द.)

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः ।
पक्वमभ्यञ्जनात्तैलं सशूलं श्वयथुं जयेत् ॥१५१॥

१. सूखीमूलीचूर्ण ५० ग्राम, २. पुनर्नवामूलचूर्ण ५० ग्राम, ३. देवदारुचूर्ण ५० ग्राम, ४. रास्ना ५० ग्राम, ५. सोंठ ५० ग्राम तथा ६. तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में तिलतैल का मूर्च्छन करें। मूली से सोंठ तक सभी द्रव्यों को सूक्ष्म सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क में ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैलपाक की परीक्षा करें। परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर गरम-गरम ही कपड़े से छान लें। ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से शूलरोग और शोथरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—यथायोग्य अभ्यङ्गार्थ। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—शोथरोग एवं शूलरोग में।

७३. शुष्कमूलकाद्यतैल-२

मूलकं दशमूलञ्च कणामूलं पुनर्नवा।
प्रत्येकं प्रस्थमाहृत्य वारिण्यष्टगुणे पचेत्॥१५२॥
तेन पादावशेषेण तैलस्यार्द्धाढकं पचेत्।
दापयेत्तैलतुल्यञ्च गोमूत्रं कुशलो भिषक्॥१५३॥
मूलकं चामृता शुण्ठी पटोलं चपला बला।
पाठा पुनर्नवामूलं बलोशीरञ्च शिग्रुजम्॥१५४॥
निर्गुण्डीन्द्राशनं श्यामा करञ्जं वासकं तथा।
कणा हरीतकी चैव वचा पुष्करमूलकम्॥१५५॥
रास्ना विडङ्गचव्यञ्च द्वे हरिद्रे च धान्यकम्।
द्विक्षारं सैन्धवञ्चैव देवदारु सपद्मकम्॥१५६॥
शटी करिकणा बिल्वं मञ्जिष्ठा च ततः क्रमात्।
प्रत्येकार्द्धपलञ्चैषा पेषयित्वा विनिक्षिपेत्॥१५७॥
अभ्यङ्गेनास्य तैलस्य ये गुणास्तांस्ततः शृणु।
नानाशोथा विनश्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः॥१५८॥
मलोद्भवाश्च ये केचिद्विशेषेण जलाश्रयाः।
अवश्यं निर्जरा देहा भविष्यन्ति न संशयः॥१५९॥

क्वाथ—१. सूखीमूली, २. दशमूल, ३. पिपरामूल तथा ४. पुनर्नवामूल—प्रत्येक द्रव्य ७५० ग्राम लेकर २ द्रोण (२६ लीटर) जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रखें। तिलतैल १५०० मि.ली. और गोमूत्र १५०० मि.ली. लें।

कल्क—१. सूखीमूली, २. गिलोय, ३. सोंठ, ४. पटोल-पत्र, ५. पीपर, ६. बलामूल, ७. पाठा, ८. पुनर्नवामूल, ९. सुगन्धबाला, १०. खस, ११. सहिजनत्वक्, १२. निर्गुण्डीपत्र, १३. भाँग, १४. निशोथ, १५. करञ्जत्वक्, १६. वासा, १७. पीपर, १८. हरीतकी, १९. वच, २०. पुष्करमूल, २१. रास्ना, २२. वायविडङ्ग, २३. चव्य, २४. हल्दी, २५. दारुहल्दी, २६. धनियाँ, २७. सर्जिक्षार, २८. यवक्षार, २९. सैन्धव-लवण, ३०. देवदारु, ३१. पद्मकाष्ठ, ३२. कचूर, ३३. गजपीपर, ३४. बिल्वत्वक् और ३५. मंजीठ—प्रत्येक २३ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। तदनन्तर सूखीमूली से पुनर्नवामूल तक के चारों द्रव्यों को यवकुट कर ८ गुना जल में क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। सुखीमूली से मंजीठ तक के सभी ३५ कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब क्वाथ और कल्क दोनों को मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर शनैः-शनैः गोमूत्र देकर पाक करें। गोमूत्र सूखने पर तैल से ४ गुना (६ लीटर) जल डालकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैलपाक की परीक्षा करें और तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके अभ्यङ्ग से अनेक प्रकार के वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज शोथ तथा दूषित जलपान जन्य अनेक प्रकार के शोथ नष्ट हो जाते हैं! इसके प्रयोग से शरीर से बुढ़ापा के लक्षण नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं हैं।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ आवश्यकतानुसार। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तीक्ष्ण, तिक्त। **उपयोग**—सभी शोथ में।

७४. शुष्कमूलकाद्य तैल-३

शुष्कमूलरसप्रस्थं शिग्रुधुस्तूरयोस्तथा।
सिन्धुवाररसप्रस्थं दशमूलरसं तथा॥१६०॥
पारिभद्ररसप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च।
करञ्जस्य रसप्रस्थं प्रस्थं वरुणकस्य च॥१६१॥
तैलप्रस्थं समादाय भिषग्यत्नाद्विपाचयेत्।
कल्कैरर्द्धपलैरेतैः शुण्ठीमरिचसैन्धवैः॥१६२॥
पुनर्नवा काकमाची शेलुत्वक् पिप्पलीयुगैः।
कट्फलं पौष्करं शृङ्गी रास्ना यासश्च कारवी॥१६३॥
हरिद्राद्वयपूतीकद्वयानन्तायुगैः पृथक्।
सत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत्॥१६४॥
वातश्लेष्मकृतं दोषं सन्निपातभवं तथा।
निहन्ति सर्वजं शोथमुदरश्वासनाशनम्॥१६५॥
विरुद्धभेषजभवं शोथमाशु व्यपोहति।
व्रणशोथाक्षिशूलघ्नं कामलापाण्डुनाशनम्॥१६६॥
ये चान्ये व्याधयः सन्ति श्लेष्मजाः सन्निपातजाः।
तान् सर्वान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः॥१६७॥

१. सूखीमूलीक्वाथ ७५० मि.ली., २. शिग्रुत्वक्क्वाथ ७५० मि.ली., ३. धतूरपत्ररस ७५० मि.ली., ४. सिन्दुवारपत्र रस ७५० मि.ली., ५. दशमूलक्वाथ ७५० मि.ली., ६. फरहदत्वक्क्वाथ ७५० मि.ली., ७. पुनर्नवामूलक्वाथ ७५० मि.ली., ८. करञ्जत्वक्क्वाथ ७५० मि.ली., ९. वरुणत्वक् क्वाथ ७५० मि.ली. तथा १०. तिलतैल ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. सोंठ, २. मरिच, ३. सैन्धवलवण, ४. पुनर्नवामूल, ५. काकमाची, ६. लिसोड़े का त्वक्, ७. पीपर, ८. गजपिप्पली, ९. कट्फल, १०. पुष्करमूल, ११. काकडासिंगी, १२. रास्ना, १३. जवासा, १४. कृष्णजीरा (मगरैला), १५. हरिद्रा, १६. दारुहल्दी, १७. करञ्जत्वक्, १८. पूतिकरञ्जत्वक्, १९. अनन्तमूलश्वेत और २०. अनन्तमूलकृष्ण—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः सोंठ से कृष्णअनन्तमूल तक के सभी २० द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित तैल में कल्क मिला दें तथा क्रमशः सूखीमूलीक्वाथ से वरुणत्वक्क्वाथ तक के सभी द्रव्यों को उक्त मूर्च्छित तैल में क्रमशः मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब एक द्रव सूख जाय तब दूसरा द्रव उसमें डालकर पकावें। इस प्रकार ६ द्रवों का पाक करें। जलीयांश की परीक्षा करें। सिद्ध होने पर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके अभ्यङ्ग से वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज तथा अन्य सभी प्रकार के शोथरोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त उदररोग, श्वास, व्रणशोथ, नेत्रशूल, कामला तथा पाण्डुरोग भी इसके प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं। अन्य कोई भी कफज या सन्निपातरोग इसके अभ्यङ्ग से उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट होता है। औषधि का उपद्रव जन्य शोथ भी इस तैल के अभ्यङ्ग से नष्ट हो जाता है।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ यथावश्यक। **अनुपान**—अभ्यङ्ग। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ में।

७५. शोथशार्दूलतैल

धुस्तूरं दशमूलञ्च सिन्धुवारं जयन्तिका।
पुनर्नवा करञ्जश्च षट्पलानि प्रगृह्य च ॥१६८॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम्।
प्रस्थञ्च कटुतैलस्य कल्कान्येतानि दापयेत् ॥१६९॥
रास्ना पुनर्नवा दारु मूलकं नागरं कणा।
सिद्धं तैलवरं ह्येतन्नाशयत्याशु सेवनात् ॥१७०॥
शोथं सुदारुणं घोरं वातपित्तकफोद्भवम्।
असाध्यं सर्वदेहस्थं सन्निपातसमुद्भवम् ॥१७१॥
श्लीपदञ्च ज्वरं पाण्डुं कृमिदोषं विनाशयेत्।
क्लिन्नव्रणप्रशमनं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥
शोथशार्दूलकं तैलं बलवर्णप्रसादनम् ॥१७२॥

क्वाथ—१. धत्तूरपत्र, २. दशमूल, ३. निर्गुण्डीपत्र, ४. जयन्तीपत्र, ५. पुनर्नवामूल और ६. करञ्जत्वक्—प्रत्येक द्रव्य २८० ग्राम लें तथा जल १३ लीटर लें।

कल्क—१. रास्ना, २. पुनर्नवा, ३. देवदारु, ४. सूखीमूली, ५. सोंठ, ६. पीपर—प्रत्येक द्रव्य ३० ग्राम लें तथा ७. सरसों तैल ७५० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम सरसोंतैल का मूर्च्छन करें। ततः कल्क द्रव्यों का चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीस लें और धत्तूर से करञ्ज तक के सभी द्रव्यों का यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें, चौथाई शेष रहने पर छान लें और इस क्वाथ और कल्क को मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर कल्क के सम्यक् पाक हेतु ३ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। तैल सिद्ध की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से भयङ्कर शोथ, वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातजशोथ, सर्वाङ्गशरीरगत असाध्य शोथ, श्लीपद, ज्वर, पाण्डु, कृमिदोष, स्रवितव्रण, नाड़ीव्रण और दुष्टव्रण नष्ट हो जाते हैं। यह 'शोथशार्दूलतैल' वर्ण एवं बल को भी बढ़ाता है।

मात्रा—बाह्य प्रयोगार्थ यथायोग्य मात्रा। **गन्ध**—कटुतैल गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **उपयोग**—शोथ एवं सर्वाङ्गशोथ में।

७६. पुनर्नवादितैल

पुनर्नवापलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं पचेद् भिषक् ॥१७३॥
त्रिकटु त्रिफला श्रृङ्गी धान्यकं कट्फलं तथा।
शटी दार्वी प्रियङ्गुश्च पद्मकाष्ठं हरेणुकम् ॥१७४॥
कुष्ठं पुनर्नवा चैव यमानी कारवी तथा।
एला त्वचं सलोध्रञ्च पत्रकं नागकेशरम् ॥१७५॥
वचा ग्रन्थिकमूलञ्च चव्यं चित्रकमूलकम्।
शतपुष्पाऽम्बु मञ्जिष्ठा रास्ना यासस्तथैव च ॥१७६॥
एतैषां कार्षिकैर्भागैः पेषयित्वा विनिक्षिपेत्।
कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमथारुचिम् ॥१७७॥
रक्तपित्तं महाशोथं कासं श्वासं भगन्दरम्।
प्लीहानमुदरञ्चैव जीर्णज्वरमपोहति ॥
तैलं पुनर्नवाख्यातं सर्वान् व्याधीन् व्यपोहति ॥१७८॥

पुनर्नवामूल ५ किलो, जल १३ लीटर तथा तिल तैल ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. काकड़ासिंगी, ८. धनिया, ९. कट्फल, १०. कचूर, ११. दारुहरिद्रा, १२. प्रियंगुफूल, १३. पद्मकाठ, १४. रेणुकाबीज, १५. कूठ, १६. पुनर्नवा, १७. अजवायन, १८. मँगरैला, १९. छोटी इलायची, २०. दालचीनी, २१. लोध्रछाल, २२. तेजपत्ता, २३. नागरकेशर,

२४. वचा, २५. पिपरामूल, २६. चव्य, २७. चित्रकमूल, २८. सौंफ, २९. सुगन्धबाला, ३०. मजीठ, ३१. रास्ना और ३२. यवासा—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम कटु तैल का मूर्च्छन करें। सोंठ से लेकर यवासा तक के सभी ३२ द्रव्यों का चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। ततः पुनर्नवामूल का यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर इस क्वाथ और कल्क को मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। कल्क के सम्यक् पाक हेतु ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। तैलपाक सिद्ध की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़े से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने पर कामला, पाण्डु, हलीमक, अरुचि, रक्तपित्त, महाशोथ, कास, श्वास, भगन्दर, प्लीहा, उदररोग और जीर्णज्वररोग नष्ट हो जाते हैं। इस पुनर्नवा तैल से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—इस तैल के निर्माण के बाद बहुत थोड़ी मात्रा में सुपक्व तैल प्राप्त होगा। क्योंकि इसमें कल्क की मात्रा अत्यधिक है जिससे तैल सूख जाता है।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ बाह्य प्रयोग। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—महाशोथ।

७७. शैलाद्यतैल

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्ती-
त्वक्पद्मकैलाऽम्बुपलाशमुस्तैः ।
स्थौणेयकस्वर्णप्रियङ्गुमांसी-
तालीशपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥१७९॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिः
स्पृक्कानखैर्वाऽपि यथोपलाभम् ।
वातान्वितेऽभ्यङ्गमुशन्ति तैलं
सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहम् ॥१८०॥

१. छड़ीला, २. कुष्ठ, ३. अगुरु, ४. देवदारु, ५. रेणुकाबीज, ६. दालचीनी, ७. नीलकमल, ८. छोटी इलायची, ९. सुगन्धबाला, १०. पलाशबीज, ११. नागरमोथा, १२. गठिवन, १३. नागरकेशर, १४. प्रियंगुफूल, १५. जटामांसी, १६. तालीशपत्र, १७. केवटीमुस्ता, १८. तेजपत्ता, १९. धनिया, २०. गन्धविरोजा, २१. रोहिषतृण, २२. पीपर, २३. लज्जालु तथा २४. नखी—प्रत्येक द्रव्य १० ग्राम लें; तिलतैल १ लीटर और जल ४ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। कल्क के सभी २४ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीस लें। मूर्च्छित तैल में इस कल्क और ४ लीटर जल को मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैल पाक परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से उतार लें तथा तैल को कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने पर वातजशोथ नष्ट हो जाता है।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ बाह्य प्रयोग। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—वातिक शोथ में।

७८. समुद्रशोषणतैल

निर्गुण्डी दशमूली च धुस्तूरककरञ्जकौ ।
शुष्कमूलजयाविश्वारास्नादारुपुनर्नवाः ॥१८१॥
एषाञ्च प्रकृते क्वाथे क्वाथे शाखोटजे तथा ।
कटुतैलं पचेत्प्रस्थं सैन्धवं कल्कपादिकम् ॥१८२॥
सन्निपातोद्भवाः शोथा ये चान्ये श्लेष्मपित्तजाः ।
शिरःकर्णगता ये च श्लीपदानि तथैव च ॥१८३॥
गलगण्डं ब्रध्नवृद्धिं शोथं सर्वाङ्गसम्भवम् ।
एतान् सर्वान्निहन्त्याशु वाडवाग्निरिवाम्बुदम् ॥१८४॥
कर्णशोथं दन्तशोथं हनुमूलाक्षिसम्भवम् ।
समुद्रशोषणं नाम तैलं परमशोभनम् ॥१८५॥

१. निर्गुण्डीपत्र, २. दशमूल, ३. धतूरा, ४. करञ्जत्वक्, ५. सूखीमूली, ६. जयन्ती, ७. सोंठ, ८. रास्ना, ९. देवदारु और १०. पुनर्नवा—प्रत्येक द्रव्य १४० ग्राम लें तथा ११. कटुतैल ७५० ग्राम और सैन्धवलवण १८५ ग्राम लें।

सर्वप्रथम कटुतैल का मूर्च्छन करें। ततः निर्गुण्डी से लेकर पुनर्नवापर्यन्त सभी १९ द्रव्यों को यवकुट कर चतुर्गुण जल में क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में सैन्धवलवण मिलाकर मूर्च्छित तैल में पकावें। ततः शाखोटक (सिहोडा) क्वाथ ७५० मि.ली. देकर पकावें। जलीयांश सूखने पर तैलपाक परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छानकर शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने पर वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज शोथ, सिर व कान के शोथ, श्लीपद, गलगण्ड, ब्रध्न, वृद्धि, सर्वाङ्गशोथ, कर्णशोथ, दन्तशोथ, हनुशोथ रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे वडवाग्नि पानी को नष्ट कर देता है।

मात्रा—बाह्याभ्यङ्ग एवं मुख में कवलधारणार्थ। **गन्ध**—सरसोंतैलगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **उपयोग**—सर्वाङ्ग शोथ में।

७९. पुनर्नवाद्यरिष्ट (चरक)

पुनर्नवे द्वे च बले सपाठे
वासा गुडूची सह चित्रकेण ।
निदिग्धिका च त्रिपलानि पक्त्वा
द्रोणार्द्धशेषे सलिले ततस्तु ॥१८६॥
पूत्वा रसं द्वे च गुडात् पुराणात्
तुले मधुप्रस्थयुतं सुशीतम् ।

मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं
पर्णे यवानां परतश्च मासात् ॥१८७॥
चूर्णीकृतैरर्द्धपलांशिकैस्तै-
र्हेमत्वगेलामरिचाम्बुपत्रैः ॥
गन्धान्वितं क्षौद्रघृतप्रदिग्धं
जीर्णे पिबेद् व्याधिबलं समीक्ष्य ॥१८८॥
हृत्पाण्डुरोगं श्वयथुं प्रवृद्धं
प्लीहभ्रमारोचकमेहगुल्मान् ।
भगन्दरं षड् जठराणि कासं
श्वासं ग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥१८९॥
शाखानिलं बद्धपुरीषताञ्च
हिक्कां किलासञ्च हलीमकञ्च ।
क्षिप्रं जयेद् वर्णबलायुरोज-,
स्तेजोऽन्वितो मांसरसान्नभोजी ॥१९०॥

क्वाथ—१. रक्तपुनर्नवा, २. श्वेतपुनर्नवा, ३. बला, ४. अतिबला, ५. पाठा, ६. वासा, ७. गुडूची, ८. चित्रकमूल तथा ९. कण्टकारी—प्रत्येक द्रव्य १४० ग्राम लें; जल १३ लीटर, गुड़ १० किलो और मधु ७५० ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. नागरकेशर, २. दालचीनी, ३. छोटी इलायची, ४. मरिच, ५. सुगन्धबाला, ६. तेजपत्ता—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम तथा ७. धातकीपुष्प ५०० ग्राम लें। सर्वप्रथम पुनर्नवा से कण्टकारी तक के सभी द्रव्यों को यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें। अर्द्धावशेष रहने पर छान लें और क्वाथ में गुड़ घोलकर नये घड़े में भरें। प्रक्षेप के सभी द्रव्यों का मोटा यवकुट करें और गुड़ के घोल में मिला दें। मधु भी इसी घोल में डालकर हाथ से अच्छी तरह मिला दें। सम्यक् किण्वन (Fermentation) के लिए अनुक्त होते हुए भी धातकीपुष्प मिलाना चाहिए। धातकीपुष्प को धूप से सुखा लें और बिना कूटे उक्त घोल में अच्छी तरह मिला लें। शराव से घड़ा का मुख बन्द कर कपड़-मिट्टी कर दें। आचार्यश्री ने इसे जौ की भूसी के अन्दर छिपाकर रखने का निर्देश दिया है किन्तु यह कोई आवश्यक नहीं है। निर्वात कमरे में घड़े की तली में पुआल आदि रखकर स्थिर कर दें। १५-३० दिन के अन्दर घड़े का मुख खोलकर आसव-अरिष्ट की परीक्षा करनी चाहिए। यदि आसवारिष्ट तैयार हुआ होगा तो कमरे में प्रवेश करते ही मद्यगन्धी वातावरण मिलेगा। अब घड़ा का मुख खोलकर जलती हुई सलाई की तिलि घड़े में प्रवेश कराने पर तिल्ली जलती रहेगी। यह मद्य व आक्सीजन की परिपूर्णता का द्योतक है। सलाई की तिली यदि बुझ जाय तो यह समझना चाहिए कि घड़े में कार्बन डाई आक्साइड गैस का निर्माण हो रहा है और मद्य पूर्णतया निर्मित नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में हाथ से पुनः घोल को हिलाकर बन्द कर देना चाहिए। तैयार आसव-अरिष्ट को कपड़े से छान लें और घड़े को अच्छी तरह साफ कर सुखा लें। पुनः छाना हुआ आसव-अरिष्ट उसी घड़े में निर्मलीकरणार्थ भर दें। अथवा शीघ्रता हो तो उस घड़े में २-४ निर्मली का बीज डाल दें तथा घड़ा का मुख बन्द कर दें। ६-८ दिनों के बाद स्वच्छ आसव-अरिष्ट को निथार लें। आसव-अरिष्ट को बोतल में भरें। बोतल का मुख एक-डेढ़ इंच खाली रखना चाहिए। बोतल में कार्क लगावें और भीगे कपड़े से बोतल को पोंछ लें तथा उस पर लेबल लगा दें। लेबल में औषध का नाम, ग्रन्थ, अधिकार और निर्माण तिथि अवश्य लिखें। आसव-अरिष्ट पुराना ही ज्यादा गुणकारी होता है फिर भी छः महीने के बाद इसका प्रयोग होना चाहिए। इसे १२-२५ मि.ली. की मात्रा में समभाग जल के साथ भोजनोत्तर देना चाहिए। इस पुनर्नवाद्यरिष्ट के प्रयोग से हृद्रोग, पाण्डुरोग, शोथरोग, प्लीह, भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, ६ प्रकार के उदररोग, कास-श्वास, ग्रहणी, कुष्ठ, कण्डू, शाखाश्रितवायु, बद्धगुदोदर, हिक्का, किलास और हलीमकरोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से बल, वर्ण, आयु, ओज और तेज की वृद्धि होती है। इसके सेवन काल में पथ्य रूप में मांसरस अथवा दूध-भात खिलाना चाहिए।

विमर्श—इस अरिष्ट में $६\frac{१}{२}$ लीटर क्वाथ अवशेष रहेगा जिसे १० किलो गुड़ में घोलना है किन्तु १० किलो गुड़ $६\frac{१}{२}$ लीटर क्वाथ में नहीं घुल पाता है। इसका घोल मधु से भी ज्यादा गाढ़ा बनेगा जो किण्वन (Fermentation) के लिए उचित नहीं होगा। एक तो धीमी गति से किण्वन होगा तथा दूसरा बहुत काल तक होता रहेगा। फलतः आसव-अरिष्ट तिक्त हो जायेगा और सड़ने की ओर अग्रसर हो जायेगा। अतः यहाँ पर द्रव द्वैगुण्य की परिभाषा का उपयोग करें। क्वाथ करते समय १३ लीटर जल की जगह पर २६ लीटर जल देकर अर्द्धावशेष करें। १३ लीटर क्वाथ में १० किलो गुड़ का अच्छा घोल बनेगा तथा सम्यक् किण्वन होगा।

मात्रा—१२-२५ मि.ली.। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभद्रव। **स्वाद**—मधुर तीक्ष्ण। **उपयोग**—शोथ, हृदय रोग, पाण्डु, अरुचि एवं उदर रोग में।

८०. पुनर्नवासव

त्रिकटु त्रिफलां दार्वीं श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ।
वासामेरण्डमूलं च कुटकीं गजपिप्पलीम् ॥१९१॥
शोथघ्नीं पिचुमर्दं च गुडूचीं शुष्कमूलकम् ।
दुरालभां पटोलं च पलांशेन विचूर्णयेत् ॥१९२॥
धातकीं षोडशपलां द्राक्षायाः पलविंशतिम् ।
तुलामानां सितां दत्त्वा माक्षिकार्द्धतुलां तथा ॥१९३॥
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा मासं भाण्डे निधापयेत् ।
पुनर्नवासवो ह्येष शोथोदरविनाशनः ॥१९४॥

प्लीहानमम्लपित्तं च यकृद्गुल्मज्वरादिकान् ।
कृच्छ्रसाध्यामयान् सर्वान् नाशयेन्नात्रसंशयः ॥१९५॥

जल २६ लीटर, चीनी ५ किलो तथा मधु २½ किलो लें।

प्रक्षेप—१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. दारुहल्दी, ८. गोखरु, ९. कण्टकारी, १०. बृहती, ११. वासा, १२. एरण्डमूल, १३. कटुकी, १४. गजपीपर, १५. पुनर्नवा, १६. निम्बत्वक्, १७. गुडूची, १८. सूखीमूली, १९. जवासा, २०. पटोलपत्र—प्रत्येक द्रव्य ५० ग्राम लें; २१. धातकीपुष्प ७५० ग्राम और २२. मुनक्का १ किलो लें। दो बड़े घड़े में १२½-१२½ लीटर जल भरें। घड़े को निर्वात स्थान में उसकी तली में पुआल आदि की गद्दी बनाकर पहले से ही सुरक्षित कर लें। दोनों घड़ों में गुड़ अच्छी तरह मिलाकर मधु भी बराबर प्रमाण में मिला दें। सोंठ से लेकर पटोल पत्र तक सभी द्रव्यों को अलग-अलग मोटा यवकुट करें और मिलाकर आधा-आधा दोनों घड़ों में डाल दें। द्राक्षा को भी कूटकर लुगदी जैसा होने पर आधा-आधा दोनों घड़ों में मिलावें। धातकीपुष्प को धूप में सुखाकर बिना कूटे ही दोनों घड़ों में मिला दें। सभी दवाइयों को मिलाने के बाद घड़े में हाथ डालकर घोल को अच्छी तरह आलोड़ित करें। घड़े के मुख को शराव से बन्द कर कपड़मिट्टी करें। १५-३० दिन के अन्दर बीच में कभी भी घड़े के मुख को खोलकर परीक्षा की जा सकती है। परीक्षा में मद्यगन्धी वातावरण तथा दियासलाई की तिल्ली का घड़े के अन्दर जलना मुख्य है। शेष विधान पुनर्नवाद्यरिष्ट जैसा समझें। आसव को छान लें और बोतल में बन्द कर लेबल लगा दें। इस पुनर्नवासव को १२-२५ मि.ली. की मात्रा में समभाग जल मिलाकर भोजनोपरान्त प्रयोग करें। इसके सेवन से शोथ, उदर रोग, प्लीहरोग, यकृद्रोग, गुल्म, अम्लपित्त और ज्वरादि कष्ट साध्य तथा असाध्य रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२-२५ मि.ली.। **अनुपान**—जल में। **गन्ध**—मद्य गन्धी। **वर्ण**—हलका रक्ताभ। **स्वाद**—तीक्ष्ण, मधुर। **उपयोग**—शोथ, उदर, गुल्म, प्लीहा एवं यकृद्रोग में।

शोथरोग में पथ्य

संशोधनं लङ्घनमश्रुमोक्षः
स्वेदः प्रलेपः परिसेचनं च ।
पुरातनाः शालियवाः कुलत्था-
मुद्गाश्च गोधाऽपि च शल्लकोऽपि ॥१९६॥
भुजङ्गभुक्तित्तिरिताम्रचूड-
लावादयो जाङ्गलविष्किराश्च ।
कूर्मोऽपि शृङ्गी प्रपुराणसर्पि-
स्तक्रं सुरामाक्षिकमासवञ्च ॥१९७॥
निष्पावकाठिल्लकरक्तशिग्रु-
रसालकर्कोटकमानमूलम् ।
सुवर्चला गृञ्जनकः पटोलं
वेत्राग्रवातिङ्गनमूलकानि ॥१९८॥
पुनर्नवाचित्रकपारिभद्र-
श्रीपर्णनिम्बक्षुरपल्लवानि ।
एरण्डतैलं कटुका हरिद्रा
हरीतकी क्षारनिषेवणं च ॥१९९॥
भल्लातकं गुग्गुलुरायसं च
कटूनि तिक्तानि च दीपनानि ।
मूत्राणि गोऽजामहिषीभवानि
कस्तूरिका चापि शिलाजतूनि ॥२००॥
यत्पाण्डुरोगिष्वपि वह्निकर्म
पुरा प्रदिष्टन्तु तदेव चापि ।
यथामलं पथ्यमिदं प्रदिष्टं
शोथामयं सत्वरमुच्छिनत्ति ॥२०१॥

संशोधन, उपवास, (लघु भोजन), स्वेद, प्रलेप, परिषेचन, पुराना शालिचावल, कुलत्थ, मूँग, गोह और शल्लकी, मोर, तित्तिर, मुर्गा, बटेर, जाङ्गल पशु-पक्षियों के मांस, बिल में रहने वाले मूषक (चूहा), कछुआ, सिङ्गिया मछली, पुराना घी, तक्र, सुरा, मधु, आसव, अरिष्ट, निष्पाव (राजमाष), करैला, लाल सहिजन, आम, खेखसा (कर्कोटक), मानकन्द, हुरहुर, गाजर, पटोल, वेंत का अग्र भाग, बैंगन, मूली, पुनर्नवा, चित्रक, फरहद, गनियार, नीम, गोक्षुर के पत्ते, एरण्डतैल, कटुकी, हल्दी, हरीतकी और क्षार (यवक्षार), भल्लातकमिंगी, शुद्ध गुग्गुलु, लौहभस्म; कटु, तिक्त और दीपनीयवर्ग के द्रव्य, गोमूत्र, अजा मूत्र और महिषीमूत्र, कस्तूरी और शिलाजीत का सेवन करें। तथा पाण्डुरोग में जो पथ्य बताये गये हैं, उनका प्रयोग एवं अग्निकर्म का प्रयोग करना चाहिए, इन पथ्यों को दोषानुसार सेवन करना चाहिए। जिससे शीघ्र ही शोथ से मुक्ति मिलती है।

पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलोपसाधितम् ।
अल्पमल्पं कटुस्नेहं भोजनं शोफिनां हितम् ॥२०२॥

पुराना यव और शालिचावल को दशमूल क्वाथ में सिद्ध कर यव-तण्डुलोदकादि यूष का सेवन करना चाहिए। उसमें थोड़ा-थोड़ा कर कटुरस-प्रधान एवं अल्प स्निग्ध आहार शोथ रोगियों के लिए हितकर है।

शोथ रोग में अपथ्य

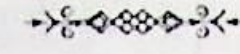
नित्यं दुष्टं पवनसलिलं वेगरोधं विरुद्धं
सर्वं पानं विषममशनं मृत्तिकाभक्षणं च ।
ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं
गौडं पिष्टान्नदधिकृशरं निर्जरं मद्यमम्लम् ॥२०३॥

धाना वल्लूरमशनमथो गुर्वसात्म्यं विदाहि।
स्वप्नश्चाह्नि श्वयथुगदवान् वर्जयेन्मैथुनं च॥२०४॥

प्रतिदिन पूर्वा हवा का सेवन, वेग का रोध, मूत्र-पुरीषादि वेग रोध, विरुद्ध भोजन, सभी तरह के पान, विषम भोजन, मिट्टी खाना, ग्राम्य एवं आनूप पशु-पक्षियों का मांस, लवण, सूखा शाक, नया अन्न, गुड़ के बने पदार्थ, पीसे हुए उड़दादि गुरु पदार्थ, दधि, कृशरा, बिना जल मिलाये मद्यपान, अम्ल, भुना हुआ यव, शुष्क मांस, भारी पदार्थ, सात्म्य के प्रतिकूल भोजन, विदाही भोजन, दिवाशयन और मैथुन—ये शोथ रोगियों को त्याग देना चाहिए।

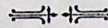
पिष्टान्नमुष्णं लवणानि मद्यं
मृदं दिवास्वप्नमजाङ्गलं च।
पयो गुडं तैलमथो गुरूणि
शोफं जिघांसुः परिवर्जयेद्धि॥२०५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शोथरोगाधिकारः।



गेहूँ और उड़द आदि पीसे हुए अन्न, उष्णगुण प्रधान द्रव्य, लवण, मद्य, मिट्टी, दिन में सोना, आनूप पशु-पक्षियों के मांस, जल, गुड़, तैल तथा गुरु पदार्थ शोथ रोग में अपथ्य है। अत: इनका परित्याग करना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य शोथरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ वृद्धिरोगाधिकारः (४३)

वृद्धि रोग में चिकित्साक्रम

रेचनं मूत्रकृद् यच्च यद्वायोरनुलोमनम्।
तत्सर्वं वृद्धिरोगेषु भेषजं परियोजयेत् ॥१॥

सभी प्रकार (६ प्रकार) के वृद्धि रोग में रेचन, मूत्रविरेचन और वातानुलोमन औषधियों का प्रयोग हितकर है।

वातिकमुष्कवृद्धि (च.द.)

वातवृद्धौ पिबेत् स्निग्धं यथाप्राप्तं विरेचनम्।
सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम् ॥२॥
पुनर्नवायास्तैलं वा तैलं नारायणं तथा।
पाने वस्तौ रुवोस्तैलं पेयं वा दशकाम्भसा ॥३॥

वातजवृद्धिरोग में स्नेहपान कराकर यथासाध्य विरेचन कराना चाहिए। एक मास तक गरमदूध में एरण्डतैल मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे आन्त्र स्निग्ध हो जाता है। पुनर्नवातैल या नारायणतैल का पान, बस्ति तथा दशमूलक्वाथ में एरण्डतैल मिलाकर पीने एवं बस्ति देने से बहुत लाभ होता है।

वातजवृद्धि में प्रयोग (च.द.)

गुग्गुलुं रुबुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः।
वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥४॥

शुद्ध गुग्गुलु १ ग्राम, गोमूत्र ५० मि.ग्रा. तथा एरण्डतैल २५ मि.ग्रा. लें। गोमूत्र में शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर या गोमूत्र में एरण्ड तैल मिलाकर पिलाने से वातजवृद्धिरोग नष्ट हो जाता है।

पित्तजवृद्धिरोग में क्रिया निर्देश (भा.प्र.)

पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्तवृद्धिमुपाचरेत्।
जलौकाभिर्हरेद्रक्तं वृद्धौ पित्तसमुद्भवे ॥५॥

पित्तजग्रन्थि की चिकित्सानुसार पित्तजवृद्धिरोग की चिकित्सा करनी चाहिए। जलौका लगाकर दूषित का निर्हरण करने से अधिक लाभ मिलता है।

चन्दनादि लेप (भा.प्र.)

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम्।
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याद् दाहशोथरुजापहः ॥६॥

१. श्वेतचन्दन, २. मुलेठी, ३. कमलमूल, ४. खस और नीलकमल (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण करने के बाद गोदुग्ध में पीसकर शीतल लेप करने से दाह, शोथ एवं शूल नष्ट हो जाता है।

रक्तज अण्डवृद्धि चिकित्सा (च.द.)

पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम्।
सर्वपित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥७॥

पञ्चवल्कल (वटत्वक्, उदुम्बरत्वक्, अश्वत्थत्वक्, प्लक्षत्वक् और पारसपीपलत्वक्) के चूर्ण को घृत के साथ मिलाकर लेप करने से तथा पित्त नाशक क्रिया करने से एवं रक्तमोक्षण करने से रक्तज अण्डवृद्धि में अत्यधिक लाभ होता है।

रक्तमोक्षण या विरेचन (भा.प्र.)

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे हरेत्।
पिबेद्विरेचनं वाऽपि शर्कराक्षौद्रसंयुतम् ॥८॥

रक्तज अण्डवृद्धि में जलौका लगाकर बार-बार रक्तमोक्षण करें या शर्करा और मधु मिलाकर विरेचन द्रव्य पिलाने से लाभ होता है।

पित्तज वृद्धि चिकित्सा (भा.प्र.)

शीतमालेपनं सर्वं सर्वं पित्तहरं तथा।
पित्तवृद्धिक्रमं कुर्यादामे पक्वे च रक्तजे ॥९॥

रक्तज एवं पित्तजवृद्धि में शीत लेप करना चाहिए तथा सभी पित्तहर चिकित्सा करनी चाहिए। रक्तज आमवृद्धि एवं रक्तज पक्व वृद्धि में कही हुई समस्त चिकित्सा करनी चाहिए।

श्लैष्मिक अण्डवृद्धि चिकित्सा (च.द.)

श्लेष्मवृद्धिमुष्णवीर्यैर्मूत्रपिष्टैः प्रलेपयेत्।
पीतदारुकषायञ्च पिबेन्मूत्रेण संयुतम् ॥१०॥

कफजअण्डवृद्धिरोग में उष्णवीर्य वाली औषधियों अजगन्धादिगण[1] की औषधियों के चूर्ण को गोमूत्र में पीसकर लेप करना चाहिए। तथा दारुहरिद्रा को गोमूत्र में पीसकर पिलाना चाहिए।

कफवृद्धि में लेपादि (भा.प्र.)

लेपनं कटुतीक्ष्णोष्णं स्वेदनं रूक्षमेव च।
परिषेकोपनाही च सर्वमुष्णमिहेष्यते ॥११॥

कफजवृद्धिरोग में कटु, तीक्ष्ण और उष्ण औषधियों का प्रलेप करना चाहिए तथा उष्ण बालुकापोटली से रूक्ष स्वेदन तथा कफघ्न द्रव्यों के क्वाथ या उष्णजल से परिषेचन तथा उष्ण उपनाह आदि सभी उष्णोपचार करना चाहिए।

---

१. अजगन्धादिगणः—
अजगन्धाऽश्वगन्धा च कालासरलया सह।
कम्पिल्लोऽजशृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ (बृ.नि.र.)

कफजवृद्धिरोग में विरेचन (भा.प्र.)

त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत्।
विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफवृद्धिविनाशनम् ॥१२॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. आमला, ५. हरड़ और ६. बहेड़ा (समभाग) लें। उपर्युक्त द्रव्य को यवकुट कर क्वाथ करें तथा चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। ५० मि.ली. इस क्वाथ में २ ग्राम यवक्षार और २ ग्राम सैन्धवलवण मिलाकर पिलाने से विरेचन द्वारा कफजवृद्धिरोग नष्ट हो जाता है। यह श्रेष्ठ विरेचन है।

मेदोजवृद्धि चिकित्सा (भा.प्र.)

स्विन्नं मेदःसमुत्थञ्च लेपयेत्सुरसादिना।
शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥१३॥

मेदोधातु की वृद्धि से उत्पन्न हुए वृद्धिरोग में गोमयादि पिण्ड के द्वारा मृदुस्वेदन तथा सुरसादिगण[1] की औषधियों को गोमूत्र में पीसकर सुखोष्णलेप करना चाहिए।

मूत्रज वृद्धि रोग चिकित्सा (भा.प्र.)

संस्वेद्य मूत्रप्रभवां वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत्।
सीवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद् व्रीहिमुखेन वै ॥१४॥

मूत्र के रुक जाने से उत्पन्न हुए वृद्धिरोग में वृषण प्रदेश में स्वेदन कर पट्टी बाँध देनी चाहिए। ततः अण्डकोश के नीचे सीवन के पार्श्व के नीचे व्रीहिमुख शस्त्र से वेधन कर द्रव को निकाल देना चाहिए।

अन्त्रवृद्धि लक्षण

विविधैः कर्मभिः क्रूरैरन्त्रस्यावयवो वृतिम्।
भित्त्वौदरीं निःसरति साऽन्त्रवृद्धिर्निगद्यते ॥१५॥

अनेक प्रकार के कठिन कर्मों को करने से या भार उठाने से अन्त्र का भाग उदर के छिद्र (Inguinal canal) से बाहर निकलकर अण्डकोश में आ जाता है, जिसे आन्त्रवृद्धि कहते हैं।

कुण्डलबन्धनी धारण

अन्त्रवृद्धेः प्रशान्त्यर्थं धार्या कुण्डलबन्धनी।
स्वेदभेदादिकर्माणि कर्त्तव्यानि च सर्वथा ॥१६॥

आन्त्रवृद्धि (Hernia) की शान्ति या निवृत्ति के लिए कुण्डलबन्धनी अर्थात् पेटी (Truss) धारण करनी चाहिए। इसके साथ स्वेदन तथा भेदन आदि शस्त्रकर्म द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

विशेष—ट्रस एक तरह की बेल्ट है जो Inguinal canal को दबाये रखती है। यह बेल्ट सर्पाकृति की होती है। इसके बीच में लोहे के पत्तर (Plate) रहते हैं।

आन्त्र को अण्डकोश में आने से पूर्व की चिकित्सा (यो.र.)

मुष्ककोषमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धौ विचक्षणः।
वातवृद्धिक्रमं कुर्यात्स्वेदस्तत्राग्निना हितः ॥१७॥

अन्त्रवृद्धिरोग में आन्त्र का थोड़ा भाग भी अण्डकोष में न उतरा हो तो वातजवृद्धिरोग जैसी चिकित्सा करनी चाहिए। इस अवस्था में गरम जल से स्वेदन करना हितकर है।

आन्त्रवृद्धि की चिकित्सा (च.द.)

शङ्खोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा सेवनिमादरात्।
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये ॥
अङ्गुष्ठमध्येत्वक् छित्त्वा दहेदङ्गविपर्यये ॥१८॥

शङ्ख के ऊपर तथा कान के समीप शङ्ख की शिरा और सीवनी को बचाते हुए वेधन करना चाहिए। बायीं ओर के अण्ड-कोष में अन्त्रवृद्धि होने पर दाहिनी ओर की शङ्खशिरा का तथा दायें ओर के अण्डकोष में अन्त्रवृद्धि होने पर बायीं ओर की शङ्खशिरा का वेधन करना चाहिए। अर्थात् जिस ओर के अण्ड कोष में आन्त्रवृद्धि हो उसके विपरीत ओर की शङ्खशिरा का वेधन करना चाहिए। अथवा जिस तरह का अण्डकोश अन्त्र उतरने से बढ़ गया है उसके विपरीत अंगूठे की त्वचा का वेध करके व्यध स्थान को जला देना चाहिए।

१. रास्नादि क्वाथ (च.द.)

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः ।
क्वाथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मिश्रितः ॥१९॥

१. रास्ना, २. मुलेठी, ३. गुडूची, ४. एरण्डमूलत्वक्, ५. बलामूल तथा ६. गोक्षुर (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस अवकुट क्वाथ में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और इस क्वाथ में २५ मि.ली. एरण्डतैल मिलाकर गरम-गरम पीने से आन्त्र वृद्धि (हर्निया) रोग नष्ट हो जाता है।

२. एरण्डतैल प्रयोग (च.द.)

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धपयोऽन्वितम्।
आध्मानशूलोपचितामान्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥२०॥

बलामूल के कल्क से सिद्ध (क्षीरपाक विधि से सिद्ध) गोदुग्ध २०० मि.ली. लें और उसमें २५ मि.ली. एरण्डतैल मिलाकर पीने से आध्मान, शूल और आन्त्रवृद्धिरोग नष्ट हो जाता है।

---

१. सुरसादिगणौषधयः—सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुखकालमालकुठेरककासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फलसुरसीनिर्गुण्डीकुलाहलोन्दुरुकर्णिकाफञ्जीप्राचीबलकाकमाच्यो विषमुष्टिकश्चेति। (सु.सू.)

३. पटोलवृषक्वाथ

पटोलेन वृषेणापि विधिना विहितं शृतम्।
रुबुतैलेन संयुक्तामान्त्रवृद्धिं व्यपोहति ॥२१॥

पटोल (परवल) की पत्ती एवं वासापत्र दोनों को समभाग में लेकर क्वाथविधि से क्वाथ बना लें। इस क्वाथ में एरण्डतैल मिलाकर पिलाने से अन्त्रवृद्धिरोग नष्ट होता है।

४. विशालामूलक्षीर (भा.प्र.)

गन्धर्वहस्ततैलेन क्षीरेण विहितं शृतम्।
विशालामूलजं चूर्णमान्त्रवृद्धिमपोहति ॥२२॥

गरम दूध के साथ २५ मि.ली., एरण्डतैल और २ ग्राम इन्द्रायणमूलचूर्ण मिलाकर पिलाने से अन्त्रवृद्धि में लाभ होता है।

५. हरीतकी प्रयोग-१ (च.द.)

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैलां लवणान्विताम्।
प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहम् ॥२३॥

४ गुना गोमूत्र में सुपाचित हरीतकीचूर्ण ३ ग्राम में १२ मि.ली. एरण्डतैल और १ ग्राम सैन्धव मिलाकर पिलाने से कफ एवं वात जन्य अण्डकोषवृद्धि नष्ट हो जाता है।

६. हरीतकी प्रयोग-२ (च.द.)

गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां
हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम्।
खादेन्नरः कोष्णजलानुपानां
निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम् ॥२४॥

२५० ग्राम हरीतकीचूर्ण को १ लीटर गोमूत्र में अच्छी तरह पकावें। जब गोमूत्र सूख जाय तो हरीतकीचूर्ण पृथक् कर धूप में अच्छी तरह सुखा लें। पुनः १०० मि.ली. एरण्डतैल में भर्जित कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस हरीतकीचूर्ण की २ से ३ ग्राम की मात्रा सैन्धवलवणचूर्ण ५०० मि.ग्रा. में मिलाकर उष्णोदक से सेवन करने पर सभी प्रकार का पुराना वृद्धिरोग नष्ट हो जाता है।

७. त्रिफलाक्वाथ (च.द.)

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रं पिबेत् प्रातरतन्द्रितः।
कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृषणोत्थितम् ॥२५॥

त्रिफलाक्वाथ ५० मि.ली. में गोमूत्र २५ मि.ली. मिलाकर प्रतिदिन आलस्य रहित होकर २ बार पीने से कफ-वात जन्य अण्डकोषवृद्धि रोग नष्ट हो जाता है।

८. सरलादिप्रदेह (च.द.)

सरलागुरुकुष्ठानि देवदारुमहौषधम्।
मूत्रारनालसम्पिष्टं शोथघ्नं कफवातनुत् ॥२६॥

१. सरलकाष्ठ, २. अगुरु, ३. कूठ, ४. देवदारु तथा ५. सोंठ (समभाग) लें। ऊपर के ५ द्रव्यों का चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को गोमूत्र और काञ्जी के साथ सिल पर पीसकर सोष्णलेप करने से कफ-वातज अण्डवृद्धि रोग नष्ट हो जाता है।

९. पथ्यकल्क-प्रयोग (च.द.)

भृष्टो रुबुकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः।
कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥२७॥

५०० ग्राम हरीतकीचूर्ण को सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को २०० मि.ली. एरण्डतैल में भून लें, तथा पीपरचूर्ण ५० ग्राम और सैन्धवलवण २५ ग्राम मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस कल्क को १० ग्राम की मात्रा में उष्णोदक से प्रतिदिन २ बार सेवन करने से वृद्धिरोग नष्ट हो जाता है।

१०. वृद्धिरोगघ्न योग (च.द्र.)

ऐन्द्रीमूलभवं चूर्णं रुबुतैलेन मर्दितम्।
त्र्यहाद्गोपयसा पीतं सर्ववृद्धिनिवारणम् ॥२८॥

इन्द्रायणमूलचूर्ण २०० ग्राम तथा एरण्डतैल १०० मि.ली. दोनों को हाथ से अच्छी तरह से मिला लें औ काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ से ५ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध के साथ ३ दिनों तक सेवन करने से सभी प्रकार के वृद्धिरोग नष्ट हो जाते हैं।

११. रुद्रवन्ती चूर्ण लेप (च.द.)

रुद्रजटामूललिप्ता करटव्यङ्कचर्मणा।
बद्धा वृद्धिः शमं याति चिरजाऽपि न संशयः ॥२९॥

रुद्रवन्तीमूलचूर्ण को जल के साथ पीसकर अण्डकोष पर लेप करें और गिलहरी के उदरभाग के चर्म से उस पर पट्टी बाँधने से निःसन्देह पुराना वृद्धिरोग नष्ट हो जाता है।

१२. रूपिकामूल लेप (च.द.)

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम्।
लेपो वृद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमपि दृढम् ॥३०॥

श्वेत अर्कमूलत्वक् का सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः काञ्जी के साथ सिल पर पीस लें। इस कल्क का अण्डकोष पर लेप करने से दृढ़मूल अण्डकोषवृद्धि रोग नष्ट हो जाता है।

१३. वृद्धिहर लेप (च.द.)

वचासर्षपकल्केन प्रलेपो वृद्धिनाशनः।
लज्जागृध्रमलाभ्याञ्च लेपो वृद्धिहरः परः ॥३१॥

वच और सरसोंबीज को समभाग सिल पर पीसकर लेप करने से या लाजवन्ती और गृध्र की बिष्ठा समभाग में पीस कर लेप करने से अण्डकोष वृद्धिरोग नष्ट हो जाता है।

१४. कुरण्डहर (अण्डकोषवृद्धि) योग-१ (ग.नि.)

गव्यं घृतं सैन्धवसम्प्रयुक्तं
शम्बूकभाण्डे निहितं तदेव ।
सप्ताहमादित्यकरैर्विपक्वं
हन्यात् कुरण्डं चिरजं प्रवृद्धम् ॥३२॥

गोघृत ५० ग्राम तथा सैन्धवलवण १२ ग्राम—दोनों को खरल में मिश्रित कर ४-५ साफ घोंघा (शम्बूक) में भरकर कड़ी धूप में एक सप्ताह तक स्थिर से रखें। सूर्य-किरण में ७ दिनों तक पकने के बाद इस मिश्रित घृत को अण्डकोष (कुरण्ड) पर दिन में दो बार मालिश करें। इससे अण्डकोषवृद्धिरोग नष्ट हो जाता है।

१५. कुरण्डहरयोग-२ (चरक)

सैन्धवञ्च घृताभ्यक्तं ताम्रं भाजनमातपे ।
प्रतप्तमूर्णया घृष्टं तन्मलञ्च समाहरेत् ॥३३॥
कुरण्डं म्रक्षयेत्तेन सनिर्विघ्नं दिवानिशम् ।
कुरण्डं तेन संलिप्तं नास्तीत्याह पुनर्वसुः ॥३४॥

५० ग्राम गोघृत और १२ ग्राम सैन्धवलवण को खरल में मर्दन कर ताँबें की थाली में रखें और ८ दिनों तक प्रतप्त धूप में पकावें। जब घी गरम हो जाय तो ऊनी वस्त्र या गुच्छे से थाली के घृत का खूब मर्दन करें। ऐसा प्रतिदिन करें। मर्दित स्थल पर घृत काला हो जायेगा। उस काले घृत का ही अण्डकोष पर लेप करने से कुरण्डरोग नष्ट हो जाता है। इस घृत का दिन में २-३ बार लेप करना चाहिए। महर्षि पुनर्वसु का कहना है कि इसके लेप से कुरण्डरोग नष्ट हो जाता है।

१६. कुरण्डहरलेप-३

बहुवारस्य बीजञ्च पिष्ट्वा तच्चार्द्रकैः सह ।
कुरण्डं नाशयेद्भद्रे लेपनान्नात्र संशयः ॥३५॥

लिसोड़े के बीज का सूक्ष्म चूर्ण कर समभाग आर्द्रक के साथ सिल पर पीसें और कुरण्ड पीड़ित स्थान पर लेप करें। इससे कुरण्डरोग नष्ट हो जाता है।

१७. कुरण्डनाशकयोग-४

घृतैर्नीलोत्पलं मूलं पिष्ट्वा लिम्पेत् कुरण्डकम् ।
अथवा लेपनं कुर्याद् गृहमण्डूकशोणितैः ॥३६॥

नीलकमलमूल का चूर्ण करें और समभाग घृत के साथ मिलाकर कुरण्ड पर लेप करें। अथवा घर में रहने वाले मण्डूक (मेढक) के रक्त का लेप करने से कुरण्ड (अण्डकोषवृद्धि) नष्ट होता है।

रुद्धान्त्ररोग के लक्षण

तोदो मलावरोधश्चाध्मानाक्षेपकस्तथा ।
नाभावाकर्षणं वान्तिः सपुरीषा बलक्षयः ॥३७॥
उदरेऽतिरुजा हिक्काऽनलनाशोऽरतिस्तथा ।
लक्षणाण्येतानि वेद्यानि रुद्धान्त्राभिध आमये ॥३८॥

आँतों के अन्दर सुई चुभने जैसी पीड़ा, मलावरोध, आध्मान, आक्षेप, नाभि प्रदेश में तनाव, पुरीष के साथ वमन, बलक्षय, उदर में पीड़ा, हिक्का, अग्निनाश तथा अरति (बेचैनी)—ये रुद्धान्त्र के लक्षण कहे गये हैं।

रुद्धान्त्ररोग की चिकित्सा

विरेचनं बस्तिकर्म स्वेदनं च यथाविधि ।
रुद्धान्त्रामयिने वैद्यो सुविचार्य प्रयोजयेत् ॥३९॥

रुद्धान्त्ररोग में रोगी एवं रोग की अवस्था का विचार करके वैद्य को विरेचन, बस्ति कर्म और स्वेदन का विधिपूर्वक प्रयोग करना चाहिए।

रुद्धान्त्र में मद्य एवं अफीम प्रयोग

मद्यं ससलिलं दद्याद् युक्त्वा वाऽप्यहिफेनकम् ।
शाम्यन्ति तेन सहसाऽऽकुञ्चनाक्षेपजा रुजाः ॥४०॥

मृतसञ्जीवनीसुरा या अन्य उत्कृष्ट मद्य में जल मिलाकर या अहिफेन का युक्तिपूर्वक सेवन करने से आन्त्र के अन्दर आकुञ्चन एवं आक्षेप की वेदनाएँ नष्ट हो जाती हैं।

१८. रुद्धान्त्र में लेप

काञ्ज्यैव खाखसफलं धुत्तूरदलसंयुतम् ।
पिष्टमुष्णीकृतं सम्यगुदरं तेन लेपयेत् ॥४१॥

खसखसफल (अफीम के फल) और धत्तूरपत्र समभाग लें। सर्वप्रथम खसखसफल का चूर्ण करें और धतूरा के पत्र को सिल पर पीस लें। अब दोनों को सिल पर मिलाकर काञ्जी के साथ पीसें और उसे गर्म करके उदर प्रदेश पर लेप करें। इससे रुद्धान्त्र की वेदनाएँ नष्ट हो जाती है।

आँतों को सरल करने का उपाय

न चेच्छान्तिं व्रजेदेवंविधैः कर्मभिरामयः ।
तदाऽम्भसा भिषक् कुर्यात्सावधानोऽन्त्रपूरणम् ॥४२॥
अथ संवेशितं रुग्णमुत्तानं चोन्नितम्बकम् ।
अधःस्कन्धं घृतं पुम्भिर्बलिभिः साधु सान्त्वयन् ॥४३॥
सुदूरमन्त्रमध्येऽस्य दीर्घां नाडीं प्रवेशयेत् ।
तूलेन वस्त्रखण्डैर्वा गुदरन्ध्रं निरुद्धय च ॥४४॥
बस्तियोगेनान्त्रमध्ये जलमुष्णं प्रपूरयेत् ।
संशूनं जठरं वीक्ष्य निवर्त्तेत ततो भिषक् ॥४५॥
बस्तिदेशादथारभ्योदरमुत्पीडयेच्छनैः ।
एवं कृते तु वक्रान्त्रसारल्यमुपजायते ॥४६॥

उपर्युक्त चिकित्सा से रुद्धान्त्र रोग में यदि लाभ न हो तो वैद्य को चाहिए कि रोगी के आन्त्र में विधिपूर्वक गर्म जल भर दें तथा रोगी को उत्तान लिटाकर स्कन्ध प्रदेश को नीचे झुकाकर तथा

नितम्ब प्रदेश को ऊँचा उठाकर उसे स्थिर लिटाये रखें। बलिष्ठ उपचारकों द्वारा रोगी को अच्छी तरह से पकड़वाकर रखें। इसके बाद रोगी की गुदा में नारियल या एरण्ड आदि का तैल लगाकर बस्ति यन्त्र की लम्बी नली (Rubber tub) गुदा के अन्दर प्रवेश करा दें। गुदा के शेष भाग को रूई की गोली अथवा कपड़े से बन्द (Pack) कर दें जिससे अन्दर गया हुआ पानी बाहर न लौटे। अब रबर नली को निकालें और गुद को पुनः रूई से भर दें। बस्ति प्रदेश एवं उदर में तारपीन तैल लगाकर धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिए। इस प्रकार मर्दन करने से उलझी हुई आँत सीधी हो जाती है।

पारद का बस्ति प्रयोग

पारदो बस्तिविधिना पलाष्टकमितोऽम्बुवत्।
प्रयोजितः साधुरीत्या रुद्धान्त्रत्वं निवारयेत्॥४७॥

पारद ८ पल (३७५ ग्राम) को कपड़े से छान कर पानी की तरह 'रुद्धान्त्र' (Inter susseption) रोगी की गुदा में बस्ति विधि से प्रवेश करावें। इसके बाद रोगी को रिक्सा आदि वाहन पर बैठाकर ऊबड़-खाबड़ रास्ते में तेजी से घुमावें तो पारद की गुरुता से आँत सीधी हो जाती है। संचित पुरीष के साथ पारद भी बाहर निकल जाता है।

विमर्श—यह क्रिया अत्युपयोगी है। मैंने इस क्रिया को करते हुए वाराणसी में एक वैद्य को देखा था। किन्तु उन्होंने 'Nosal Tube' द्वारा (नाक के माध्यम से) पारद को आमाशय में भरकर रिक्सा पर बैठाकर तेजी से घुमाया था। रिक्सा की खड़खड़ाहट से पेट में पारद हिलने-डुलने लगा और फलतः पारद के भार से आन्त्र सीधी हो गई तथा संचित पुरीष और पारद सब बाहर आ गया। रोगी की सफाई के बाद १०० ग्राम गरम घी पिलाया गया। इसके बाद रोगी को १ घण्टे में १-२ और पुरीष की प्रवृत्ति हुई। शाम को खिचड़ी और घी थोड़ा खिलाया गया। बाद में रोगी पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गया।

किन्तु यहाँ पर गुदमार्ग से पारद उसके आन्त्र में पहुँचाया गया है। ऊपर की विधि ज्यादा प्रामाणिक एवं लाभदायक है।

न शस्तं शस्त्रकर्मात्र प्रायशः प्राणनाशनात्।
आमयिनां सहस्त्रेषु क्वचिदेव हितं हि तद्॥४८॥

रुद्धान्त्ररोग में शस्त्रक्रिया प्रायः प्राणघातक होती है। क्योंकि हजारों रोगियों में कोई ही भाग्यशाली जीवित बचता है[1]।

न रुद्धान्त्रगदे जातु हितं स्याद् द्रवसेवनम्।
अतस्तद्गदिने वैद्यैर्देयं सान्द्रद्रवादिकम्॥४९॥

रुद्धान्त्ररोग में द्रवपदार्थ का भोजन हितकारी नहीं है। अतः सान्द्र द्रव (खिचड़ी) आदि तरल वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए।

१९. बिन्दुघृत प्रयोग

बिन्दुघृतं च यत्प्रोक्तमुदरे संविधानतः।
तस्योपयोगो बद्धान्त्रे गुल्मितान्त्रेऽपि जायते॥५०॥

उदर रोग में वर्णित बिन्दुघृत का प्रयोग रुद्धान्त्र, बद्धान्त्र एवं गुल्मितान्त्र रोग में करना चाहिए। इस घृत का उदर पर लेप, हलकी मालिश, सेंक तथा इसे उष्णजल में मिलाकर पान करने से अत्यधिक लाभ होता है। इसके प्रयोग से मल की गाँठ बाहर निकलकर आन्त्र सीधी हो जाती है।

ब्रध्न चिकित्सा एवं लक्षण

अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नसेवनान्निचयं गतः।
करोति ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वङ्क्षणसन्धिषु॥
ज्वरशूलाङ्गदाहाढ्यं तं ब्रध्नमिति निर्दिशेत्॥५१॥

अत्यन्त अभिष्यन्दी पदार्थ के सेवन, गुरु एवं अपक्व पदार्थों तथा अन्नों के सेवन से संचित हुए वातादि दोष वंक्षण सन्धि में ग्रन्थिसदृशशोथ उत्पन्न करते हैं। इसके होने से ज्वर, शूल, अङ्गदाहादिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसी को ब्रध्न (वाघी) रोग कहते हैं।

२०. ब्रध्नशूलहरलेप

अजाक्षीरेण गोधूमकल्कं कुन्दुरुकस्य वा।
प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद् ब्रध्नशूलहरं परम्॥५२॥

गेहूँ के चूर्ण को बकरी के दूध में द्रवित कर गरम करें और ब्रध्न पर लेप करें। अथवा कुन्दुरु को बकरीदूध के साथ पीसें और गरमकर ब्रध्न स्थान पर लेप करने से ब्रध्नशोथ नष्ट हो जाता है।

२१. काकमांसलेप

मृतमात्रे तु वै काके विशस्ते तु प्रवेशयेत्।
ब्रध्नं मुहूर्त्तं मेधावी तत्क्षणादरुजं भवेत्॥५३॥

तुरन्त का मारा हुआ कौआ के पाँख नोंचकर उसके पैर और चोंच निकाल दें और पेट चीरकर ब्रध्न स्थान पर रखकर कपड़े से पट्टी बाँध दें तो क्षणभर में वेदना शान्त हो जाती है।

२२. अजाज्यादिलेप

अजाजीहवुषाकुष्ठगोधूमबदराणि च।
काञ्चिकेन समं पिष्ट्वा कुर्याद् ब्रध्ने प्रलेपनम्॥५४॥

१. श्वेतजीरा, २. हाऊबेर, ३. कूठ, ४. गेहूँ का चूर्ण और ५. बेर (समभाग) लें। इन्हें चूर्ण कर काञ्जी के साथ सिल पर पीसकर कटोरी में थोड़ी काञ्जी मिलाकर आग पर गरम करें।

[1] आज के इस वैज्ञानिक साधन सम्पन्न युग में सभी प्रकार की शस्त्र क्रिया प्रायः सफल होती है। अतः आज रुद्धान्त्र का आपरेशन बहुत आसान एवं सफल होता है।

ब्रध्नस्थान पर गरम-गरम लेप करने से शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

२३. न्यग्रोधक्षीरलेप

न्यग्रोधक्षीरलेपेन ब्रध्नरोगो विनश्यति ॥५५॥

वटवृक्ष का दूध संग्रह कर ब्रध्नस्थान पर लेप करने से ब्रध्न रोग नष्ट हो जाता है।

२४. हरीतक्यादि क्वाथ

हरीतकी वचा शुण्ठी त्रिवृता स्वर्णपत्रिका।
एलाद्वयं देवपुष्पं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ॥
अनेन प्रशमं यान्ति ब्रध्नकासज्वरा ध्रुवम् ॥५६॥

१. हरीतकी, २. वच, ३. सोंठ, ४. निशोथ, ५. सनायपत्ती, ६. छोटी इलायची, ७. बड़ी इलायची तथा ८. लौंग (समभाग) लें। इन्हें यवकुट करें। २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें, चौथाई शेष रहे तो छानकर सोष्ण क्वाथ का पान करने से ब्रध्न, कास एवं ज्वररोग निश्चितरूप से नष्ट हो जाते हैं।

२५. बिल्वादिचूर्ण (यो.र.)

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः
श्यामापूतिकरञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वौषधारुष्करम् ।
कृष्णाग्रन्थिकचव्यपञ्चलवणक्षाराजमोदान्वितं
पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितैश्चूर्णीकृतं ब्रध्नजित् ॥

१. बिल्वमूल, २. कपित्थमूल, ३. अरलुमूल, ४. चित्रकमूल, ५. कण्टकारी, ६. बृहती, ७. कृष्ण निशोथ, ८. पूतिकरञ्ज, ९. शिग्रुमूलत्वक्, १० सोंठ, ११. शुद्ध भिलावा, १२. पीपर, १३. पिपरामूल, १४. चव्य, १५. सैन्धवलवण, १६. सौवर्चललवण, १७. सामुद्रलवण, १८. विडलवण, १९. औद्भिल्लवण, २०. यवक्षार और २१. अजमोदा—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को २ से ४ ग्राम की मात्रा में उष्णोदक या काञ्जी में मिलाकर मथानी से मथकर पीने से ब्रध्नरोग नष्ट हो जाता है।

२६. भक्तोत्तररस (वै.क.)

अभ्रकं गन्धकञ्चैव पिप्पली लवणानि च।
त्रिक्षारं त्रिफला चैव हरितालं मनःशिला ॥५८॥
पारदं चाजमोदा च यमानी शतपुष्पिका।
जीरकं हिङ्गु मेथी च चित्रकं चविका वचा ॥५९॥
दन्ती च त्रिवृता मुस्तं शिला च मृतलौहकम्।
अञ्जनं निम्बबीजानि पटोलं वृद्धदारकम् ॥६०॥
सर्वाणि चाक्षमात्राणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
शतं कनकबीजानि शोधितानि प्रयोजयेत् ॥६१॥
एतदग्निविवृद्ध्यर्थमृषिभिः परिकीर्त्तितम्।
श्लीपदानन्त्रवृद्धिञ्च वातवृद्धिञ्च दारुणम् ॥६२॥
अरुचिं चामवातञ्च शूलं वातसमुद्भवम्।
गुल्मं चैवोदरव्याधीन्नाशयत्याशु तत्क्षणात् ॥
भक्तोत्तरमिदं चूर्णमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥६३॥

१. अभ्रकभस्म, २. शुद्ध गन्धक, ३. पिप्पलीचूर्ण, ४. सैन्धवलवण, ५. सौवर्चललवण, ६. सामुद्रलवण, ७. विडलवण, ८. औद्भिल्लवण, ९. सर्जिक्षार, १०. यवक्षार, ११. टङ्कणक्षार, १२. आमलाचूर्ण, १३. बहेड़ाचूर्ण, १४. हरीतकीचूर्ण, १५. शुद्ध हरताल, १६. शुद्ध मनःशिला, १७. शुद्ध पारद, १८. अजमोदाचूर्ण, १९. अजवाइनचूर्ण, २०. सौंफचूर्ण, २१. जीराचूर्ण, २२. भर्जितहींग, २३. मेथीचूर्ण, २४. चित्रकचूर्ण, २५. चव्यचूर्ण, २६. वचचूर्ण, २७. दन्तीमूलचूर्ण, २८. निशोथचूर्ण, २९. नागरमोथाचूर्ण, ३०. शुद्ध शिलाजीत, ३१. लौहभस्म, ३२. रसाञ्जन, ३३. निम्बबीज चूर्ण, ३४. पटोलपत्रचूर्ण, ३५. विधाराचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें और ३६. शुद्ध जयपालबीज १०० नग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मिलाकर अच्छी तरह से कज्जली बनावें। उसके बाद उसमें हरताल एवं मनःशिला मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर अभ्रकभस्म और लौहभस्म मिलाकर मर्दन करें, पश्चात् अन्य काष्ठौषधि चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें तथा जल की भावना देकर एक दिन तक मर्दन करते रहें। औषधि जब सूख जाय तो छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। ऋषियों के द्वारा अग्निवृद्धि के लिए इस रसौषधि का निर्माण किया गया है। १२५० मि.ग्रा. की मात्रा में इस रस का प्रयोग करने से श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, भयङ्कर वातवृद्धि, अरुचि, आमवात, वातजशूल, गुल्म और उदररोग तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। इस भक्तोत्तरचूर्ण को पूर्वकाल में अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था।

मात्रा—१२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—अन्त्रवृद्धि, श्लीपद, भयङ्कर वातजवृद्धिरोग, आमवात और उदररोग में।

२७. शशिशेखररस

लौहमभ्रञ्च सिन्दूरं मदयेत्कन्यकाऽम्बुना।
अस्य रक्तिद्वयं दद्यादन्त्ररोगनिवृत्तये ॥६४॥

लौहभस्म, अभ्रकभस्म तथा रससिन्दूर (समभाग) लें। एक खरल में पहले रससिन्दूर का मर्दन करें ततः अन्य भस्मों को मिलाकर घृतकुमारीस्वरस की भावना दें। २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें।

१-१ वटी मधु के साथ चाटकर उष्णोदक पान करें। इसके सेवन से अन्त्रवृद्धिरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु तथा उष्णोदक से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—रक्त। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—आन्त्रवृद्धि।

२८. वातारिरस (र.र.स.)

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः।
त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च चित्रकः॥६५॥
गुग्गुलुः पञ्चभागः स्यादेरण्डतैलमर्दितः।
क्षिप्त्वाऽत्र पूर्वकं चूर्णं तेनैव सह मर्दयेत्॥६६॥
गुडिकां कर्षमात्रां तु भक्षयेत्प्रातरेव हि।
नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनुपाययेत्॥६७॥
अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम्।
विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत्॥६८॥
वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः।
अन्त्रवृद्धिं निहन्त्येव ब्रह्मचर्य्यपुरःसरः॥
अनुपानञ्च तिलजमार्द्रकद्रवसंयुतम्॥६९॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक २ भाग, ३. त्रिफलाचूर्ण ३ भाग, ४. चित्रकमूलचूर्ण ४ भाग, ५. शुद्ध गुग्गुलु ५ भाग तथा ६. एरण्डतैल यथावश्यक लें। एक खरल में सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में अन्य चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें। शुद्ध गुग्गुलु को थोड़ा गरम पानी देकर आग पर पकावें। जब घुलकर अवलेह जैसा हो जाय तो उपर्युक्त कज्जलीमिश्रित चूर्ण को मिलावें और मर्दन करें। तदनन्तर एरण्डतैल मिलाकर मर्दन करें और १ तोला = १२ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातःकाल १ वटी सोंठ व एरण्डमूलक्वाथ के साथ सेवन करना चाहिए। पृष्ठ भाग पर एरण्ड तैल की मालिश करनी चाहिए। इसके बाद विरेचन होगा। विरेचन के बाद भूख लगने पर घी देकर खिचड़ी खिलानी चाहिए। इस वातारिरस के सेवन काल में निर्वात स्थान पर रहना चाहिए। ब्रह्मचर्यपूर्वक इस रस के सेवन से निश्चय ही अन्त्रवृद्धि रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम। **अनुपान**—सोंठ क्वाथ एवं एरण्डमूलक्वाथ से। **गन्ध**—एरण्डतैलगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—अन्त्रवृद्धि में।

२९. रसराजेन्द्र

हिङ्गुलोत्थं रसं गन्धं केशराजाम्बुशोधितम्।
रसार्द्धं हेम तारञ्च नागं हेमार्द्धकं तथा॥७०॥
क्षिप्त्वा खल्लतले पश्चाद्वासाक्वाथेन भावयेत्।
काकमाच्याश्चित्रकस्य निर्गुण्ड्याः कुटजस्य च॥
स्थलपद्मस्योत्पलस्य सप्तकृत्वो द्रवैः पृथक्।
ततो रक्तिमिताः कुर्याद् वटीश्चण्डांशुशोषिताः॥७२॥
अन्त्रजान् निखिलान् रोगान् सर्वदोषोद्भवांस्तथा।
हन्त्ययं रसराजेन्द्रो मृगराजो यथा मृगान्॥७३॥

१. हिङ्गुलोत्थपारद ४ भाग, २. शुद्ध गन्धक ४ भाग, ३. स्वर्णभस्म २ भाग, ४. रजतभस्म २ भाग और ५. नागभस्म १ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद क्रमशः वासापत्रस्वरस, काकमाचीस्वरस, चित्रकमूलक्वाथ, निर्गुण्डीपत्रस्वरस, कुटजत्वक्क्वाथ, स्थलपद्मक्वाथ और नीलकमलक्वाथ की ७-७ भावना दें। इसके बाद १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर तीव्र धूप में सुखा लें। १-१ वटी मधु के साथ खाने पर अन्त्रवृद्धि जन्य एवं अन्त्र सम्बन्धी सभी रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सिंह हरिणों को नष्ट कर देता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु के साथ। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—अन्त्रवृद्धि एवं अन्त्रजन्य अनेक रोगों में।

३०. वृद्धिवाधिकावटी (भा.प्र.)

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतान्येतानि योजयेत्।
लौहं वङ्गं तथा ताम्रं कांस्यञ्चाथ विशोधितम्॥७४॥
तालकं तुत्थकञ्चापि तथा शङ्खवराटकम्।
त्रिकटु त्रिफला चव्यं विडङ्गं वृद्धदारकम्॥७५॥
कर्चूरं मागधीमूलं पाठां सहवुषां वचाम्।
एलाबीजं देवकाष्ठं तथा लवणपञ्चकम्॥७६॥
एतानि समभागानि चूर्णयेदथ कारयेत्।
कषायेण हरीतक्या वटिकां टङ्कसम्मितम्॥७७॥
एकां तां वटिकां यस्तु निर्गिलेद् वारिणा सह।
अन्त्रवृद्धिरसाध्याऽपि तस्य नश्यति सत्वरम्॥७८॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. वङ्गभस्म, ५. ताम्रभस्म, ६. काँस्यभस्म, ७. शुद्ध हरताल, ८. शुद्ध तुत्थ, ९. शङ्खभस्म, १०. वराटिकाभस्म, ११. सोंठचूर्ण, १२. पीपरचूर्ण, १३. मरिचचूर्ण, १४. आमलाचूर्ण, १५. हरीतकीचूर्ण, १६. बहेड़ाचूर्ण, १७. चव्यचूर्ण, १८. विडङ्गचूर्ण, १९. विधाराचूर्ण, २०. शटीचूर्ण, २१. पिपरामूलचूर्ण, २२. पाठाचूर्ण, २३. हाउबेरचूर्ण, २४. छोटी इलायचीचूर्ण, २४. देवदारुचूर्ण, २५. सैन्धवचूर्ण, २६. सौवर्चलचूर्ण, २७. सामुद्रलवण, २८. विड्लवणचूर्ण और २९. औद्भिल्लवणचूर्ण —प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। तदनन्तर उसमें शुद्ध हरताल मिलावें। ततः भस्मों एवं अन्य काष्ठौषधि चूर्णों को मिलावें और

मर्दन करें। इसके बाद हरीतकीक्वाथ की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें और २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी उष्णोदक के साथ सेवन करने से असाध्य आन्त्रवृद्धि रोग भी नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—असाध्य अन्त्रवृद्धि रोग में।

३१. महोदधिरस

रसं गन्धं तथा हेम वज्रविद्रुममौक्तिकम्।
गृहीत्वा समभागेन मर्दयेत् त्रिफलाम्बुना ॥७९॥
ततो रक्तिमिताः कुर्याद् वटीच्छायाप्रशोषिताः।
एकैकां दापयेदासां यथादोषानुपानतः ॥८०॥
रुद्धान्त्रत्वमन्त्रवृद्धिं तथाऽन्यानन्त्रजान् गदान्।
वातपित्तकफोत्थांश्च सर्वान् हन्ति महोदधिः ॥८१॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. स्वर्णभस्म, ४. हीराभस्म, ५. प्रवालभस्म और मोतीपिष्टी (समभाग) लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर दृढ़ मर्दन कर कज्जली बना लें। ततः उस कज्जली में अन्य भस्मों को मिलाकर मर्दन करें और त्रिफलाक्वाथ की भावना देकर १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी दोषानुसार या रोगानुसार अनुपान भेद से देने पर रुद्धान्त्ररोग, अन्त्रवृद्धिरोग तथा अन्य प्रकार के आन्त्र जन्य रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त वात, पित्त तथा कफ जन्य अन्य सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—दोषानुसार या रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—अन्त्र सम्बन्धी सभी प्रकार के रोगों में।

३२. एकादशायसरस (रसरत्नाकर)

मृतायः पुरुषः शुल्वं खगो दरदगन्धकौ।
गगनं पुष्परागश्च शैलेयं रीतिकोरगौ ॥८२॥
विडङ्गं त्रिफला हिङ्गु यवानी जीरकद्वयम्।
स्वर्जीफलवचाशृङ्गीमरिचं पिप्पलीद्वयम् ॥८३॥
चव्यं दुरालभं वह्निः शुण्ठीद्रावैर्विमर्दयेत्।
अण्डवातान्त्रवृद्धिं च कृच्छ्रमूरुगदापहम् ॥
अन्येऽप्यण्डगता रोगास्तान् सर्वानपकर्षति ॥८४॥

१. लौहभस्म, २. शुद्ध पारद, ३. ताम्रभस्म, ४. कासीसभस्म, ५. शुद्धहिङ्गुल, ६. शुद्धगन्धक, ७. अभ्रकभस्म, ८. पुष्परागभस्म, ९. शुद्धशिलाजीत, १०. पित्तलभस्म, ११. नागभस्म, १२. वायविडङ्गचूर्ण, १३. आमलाचूर्ण, १४. हरीतकीचूर्ण, १५. बहेड़ाचूर्ण, १६. भर्जितहींग, १७. अजवायनचूर्ण, १८. जीराचूर्ण, १९. स्याहजीराचूर्ण, २०. सर्जिक्षार, २१. मदनफलचूर्ण, २२. वचचूर्ण, २३. काकड़ासिंगीचूर्ण, २४. मरिचचूर्ण, २५. पिप्पलीचूर्ण, २६. गजपीपरचूर्ण, २७. चव्यचूर्ण, २८. दुरालभा (जवासा) चूर्ण और २९. चित्रकमूलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर अच्छी कज्जली बनावें तथा अन्य भस्मों को क्रमशः उसमें मिलावें। इसके बाद काष्ठौषधिचूर्णों को मिलाकर मर्दन करें। ततः शुण्ठी क्वाथ की भावना देकर १ दिन मर्दन कर २५० मि.ग्रा. मात्रा की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को मधु के साथ सेवन करने से अण्डकोषवृद्धि, आन्त्रवृद्धि, मूत्रकृच्छ्र, उरुस्तम्भ आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। आन्त्र सम्बन्धी या अण्डकोष सम्बन्धी सभी प्रकार के रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—कपोताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—आन्त्रवृद्धि, अण्डकोषवृद्धि एवं ऊरुस्तम्भ में।

३३. वृद्धिहररस (आयु.विज्ञा.)

रसं गन्धं विषं व्योषं तथा लवणपञ्चकम्।
त्रिक्षारं जयपालं च मर्दयेद्वह्निवारिणा ॥८५॥
रक्तिमात्रां वटीं कृत्वा पाययेत्पयसा सह।
अनेन प्रशमं यान्ति वृद्धिब्रध्नादयो गदाः ॥८६॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. शुद्ध वत्सनाभ, ४. सोंठचूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. मरिचचूर्ण, ७. सैन्धवलवण, ८. सौवर्चललवण, ९. सामुद्रलवण, १०. विडलवण, ११. औद्भिल्लवण, १२. यवक्षार, १३. सर्जिक्षार, १४. टङ्कणक्षार और १५. शुद्ध जयपाल (समभाग) लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः अन्य सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को मिलाकर मर्दन करें और चित्रकक्वाथ की भावना देकर १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखावें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को दूध के साथ १-१ वटी सेवन करने से वृद्धि और ब्रध्नरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—गरम दूध से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—वृद्धि और ब्रध्नरोग।

३४. शतपुष्पाद्य घृत (च.द.)

शतपुष्पाऽमृता दारु चन्दनं रजनीद्वयम्।
जीरके द्वे वचा नागत्रिफलागुग्गुलुत्वचम् ॥८७॥
मांसी सकुष्ठपत्रैला रास्ना शृङ्गी च चित्रकम्।
कृमिघ्नमश्वगन्धं च शैलेयं कटुरोहिणी ॥८८॥

सैन्धवं तगरं कुष्ठं जातीफलबिसैः समैः।
एतैश्च कार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥८९॥
वृषमुण्डितिकैरण्डनिम्बपत्रभवो रसः।
कण्टकार्यास्तथा प्रस्थं क्षीरप्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥९०॥
सिद्धमेतद् घृतं पीतमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति।
वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिमथापि वा ॥९१॥
मूत्रवृद्धिं श्लीपदञ्च यकृत्प्लीहानमेव च।
शतपुष्पाद्यमेतद्वै घृतं हन्ति न संशयः ॥९२॥

गोघृत ७५० ग्राम लें।

कल्क—१. सौंफ, २. गुडूची, ३. देवदारु, ४. श्वेत चन्दन, ५. हल्दी, ६. दारुहल्दी, ७. जीरा, ८. स्याहजीरा, ९. वच, १०. नागकेशर, ११. आमला, १२. हरीतकी, १३. बहेड़ा, १४. गुग्गुलु, १५. दालचीनी, १६. जटामांसी, १७. कूठ, १८. तेजपत्ता, १९. छोटीइलायची, २०. रास्ना, २१. काकड़ासिङ्गी, २२. चित्रकमूल, २३. वायविडङ्ग, २४. अश्वगन्धा, २५. छड़ीला, २६. कटुकी, २७. सैन्धवलवण, २८. तगर, २९. कूठ, ३०. जायफल तथा ३१. कमलनाल—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें।

क्वाथ—१. वासाक्वाथ, २. गोरखमुण्डीक्वाथ, ३. एरण्डमूलत्वक्क्वाथ, ४. निम्बपत्रस्वरस, ५. कण्टकारीक्वाथ तथा ६. गोदुग्ध—प्रत्येक ७५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः सौंफ से लेकर कमलनाल तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसें। मूर्च्छित घृत में इस कल्क और गोदुग्ध को मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। ततः वासा, मुण्डी आदि द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ अलग-अलग देकर पाक करें। एक क्वाथ के सूखने के बाद दूसरा क्वाथ डालें। जलीयांश सूखने पर पाकपरीक्षाविद् वैद्य घृत की परीक्षा कर घृत को चूल्हे से नीचे उतारे तथा कपड़े से छान लें। ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस शतपुष्पाद्यघृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ मिलाकर पीने से अन्त्रवृद्धि रोग या वातज, पित्तज एवं मेदोजवृद्धिरोग, मूत्रवृद्धिरोग, श्लीपद, यकृद्वृद्धि और प्लीहावृद्धिरोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दुग्ध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के वृद्धिरोग में।

३५. त्रिवृतादि घृत

त्रिवृतामधुयष्ट्यम्बुपयोधरयमानिकाः।
श्यामाविदारीमिश्रेयापिप्पलीगिरिमल्लिकाः ॥९३॥
घृतप्रस्थं पयःप्रस्थं दध्याढकसमन्वितम्।
शतावरीरसप्रस्थं सर्वाण्येकत्र सम्पचेत् ॥९४॥
त्रिवृतादिघृतञ्चैतदन्त्रजान् निखिलान् गदान्।
प्रमेहान् विंशतिं श्वासान् कुष्ठान्यर्शांसि कामलाम् ॥९५॥
हलीमकं पाण्डुरोगं गलगण्डं तथाऽर्बुदम्।
विद्रधिं व्रणशोथञ्च हन्ति नास्त्यत्र संशयः ॥९६॥

गोघृत ७५० ग्राम लें।

कल्क—त्रिवृत्, २. मुलेठी, ३. सुगन्धबाला, ४. नागरमोथा, ५. अजवायन, ६. श्यामात्रिवृत् (अनन्तमूल), ७. विदारीकन्द, ८. सौंफ, ९. पीपर और १०. कुटजत्वक्—प्रत्येक द्रव्य १८ ग्राम लें।

क्वाथ—दूध ७५० मि.ली., दही ३ किलो तथा शतावरी क्वाथ ७५० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में घृत का मूर्च्छन करें। ततः त्रिवृत् आदि कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें। इस कल्क और गोदुग्ध को मूर्च्छित घृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर दधि को मथकर उस घृत में पकावें। तदनन्तर शतावरीक्वाथ मिलाकर पाक करें। कल्क का सम्यक् पाक करने के लिए ३ लीटर जल देकर पकावें। जलीयांश नष्ट हो जाने पर परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर घृत को कपड़े से छान लें तथा ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ सेवन करने से आन्त्रजन्य समस्त रोग, २० प्रकार के प्रमेह, श्वास, कुष्ठ, अर्श, पाण्डु, कामला, हलीमक, गलगण्ड, अर्बुद्ध, विद्रधि और व्रणशोथरोग निश्चित ही नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—आन्त्र सम्बन्धी सभी रोगों में।

३६. बृहत् दन्तीघृत

जलद्रोणे पचेत्सम्यग् दन्त्याः पलशतं भिषक्।
पादशिष्टं गृहीत्वेमं क्वाथं सर्पिः पयस्तथा ॥९७॥
दन्तीमूलं बलां द्राक्षां सहदेवीं शतावरीम्।
सरलं सारिवां श्यामां प्रत्येकं कुडवोन्मितम् ॥९८॥
विदार्यास्तालमूल्याश्च शाल्मल्याः कुटजस्य च।
रसाढकं परिक्षिप्य साधयेन्मृदुनाऽग्निना ॥९९॥
अन्त्रवृद्धिमन्त्ररोधमन्त्रदाहं सुदारुणम्।
मुष्कवृद्धिं तथा ब्रध्नं व्रणशोथं भगन्दरम् ॥१००॥
आमवातं वातरक्तं मुखनासाशिरोरुजः।
रेतःशोणितदोषांश्च हन्ति दन्तीघृतं बृहत् ॥१०१॥

दन्तीमूल ५ किलो, क्वाथार्थ जल १३ लीटर, गोघृत ७५० ग्राम, गोदुग्ध ७५० मि.ली. लें।

क्वाथ—१. दन्तीमूल, २. बलामूल, ३. द्राक्षा, ४. सहदेई, ५. शतावरी, ६. सरलकाष्ठ, ७. कृष्णअनन्तमूल—प्रत्येक द्रव्य १८७ ग्राम लें; ८. विदारीकन्दक्वाथ ३ लीटर, ९. सफेदमुसलीक्वाथ ३ लीटर, १०. सेमलमूलक्वाथ ३ लीटर तथा ११. कुटजत्वक्क्वाथ ३ लीटर लें। सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील पात्र में गोघृत का मूर्च्छन करें। दन्तीमूल का यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर क्वाथ छान लें और मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। पुनः गोदुग्ध मिलाकर पाक करें। इसके बाद दन्तीमूल से अनन्तमूल तक के सभी ७ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल से सिल पर पीसकर कल्क बनावें और मूर्च्छित घृत में मिलाकर पाक करें। पुनः क्रमशः विदारीकन्दक्वाथ, श्वेतमुसलीक्वाथ, सेमरमूलक्वाथ और कुटजत्वक्क्वाथ प्रत्येक ३-३ लीटर मिलाकर पाक करें। एक द्रव के सूखने के बाद दूसरे क्वाथ को मिलाकर पाक करना चाहिए। जलीयांश सूखने के बाद घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें तथा कपड़े से छानकर शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ सेवन करने से अन्त्रवृद्धि, अन्त्ररोध एवं भयङ्कर अन्त्रदाह, अण्डकोषवृद्धि, ब्रध्न, व्रणशोथ, भगन्दर, आमवात, वातरक्त, मुखरोग, नासारोग और शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से शुक्रगतदोष एवं रक्तगतदोष भी नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—आन्त्रसम्बन्धी सभी विकारों में, अण्डकोषादिवृद्धि तथा ब्रध्न में।

३७. गन्धर्वहस्ततैल (ग.नि.)

शतमेरण्डमूलस्य पलं शुण्ठ्या यवाढकम्।
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥१०२॥
तेन पादावशेषेण पयसा तत्समेन च।
प्रस्थमेरण्डतैलस्य तन्मूलाच्च चतुःपलम् ॥१०३॥
त्रिपलं शृङ्गबेरञ्च गर्भं दत्त्वा विपाचयेत्।
तत्पिबेत्प्रयतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक् सदा ॥
आन्त्रवृद्धिं जयत्याशु तैलं गन्धर्वहस्तकम् ॥१०४॥

क्वाथ—१. एरण्डमूल ५ किलो, २. सोंठ ५ किलो, ३. यव ३ किलो, ४. जल २६ लीटर, ५. गोदूध ६$\frac{१}{२}$ लीटर तथा ६. एरण्डतैल ७५० मि.ली. लें।

कल्क—एरण्डमूल १८७ ग्राम और आर्द्रक १४० ग्राम लें। सर्वप्रथम एरण्डतैल का मूर्च्छन करें। इसके बाद एरण्डमूल, शुण्ठी एवं यव प्रत्येक का अलग-अलग यवकुट करें और २६ लीटर जल में क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर इस क्वाथ को छान लें और एरण्डमूल और आर्द्रक का कल्क बनाकर क्वाथ और कल्क को मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर गोदुग्ध मिलाकर पाक करें। कल्क का सम्यक् पाक करने के लिए ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को ६-१२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ मिलाकर पीने से आन्त्रवृद्धि रोग शीघ्रता से नष्ट हो जाता है। इस औषध के सेवन काल में दूध-भात या दूध-रोटी का ही सेवन करें।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से **गन्ध**—एरण्डतैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—आन्त्रवृद्धि में।

३८. बृहत् मन्दारतैल

यन्मध्यनारायणनाम तैलं
तस्याङ्गसङ्घैस्तिलजं हि तैलम्।
मन्दारपुष्पस्वरसेन सार्द्धं
पचेद्विधिज्ञः कमलाम्भसा च ॥१०५॥
मन्दारतैलं बृहदेतदाशु
बलं च शुक्रं परिवर्द्धयेद्धि।
अन्त्रोत्थरोगान् निखिलान् निहन्ति
पित्तोत्थवातोत्थकफोत्थितांश्च ॥१०६॥

तिलतैल ३ लीटर लें। मध्यम नारायणतैल जो वातव्याधि प्रकरण में कहा गया है, उस तैल के कल्क और क्वाथ के सभी द्रव्य यहाँ पर संग्रहीत करें और उससे तैलपाक करें। इसके अतिरिक्त मन्दारपुष्पस्वरस या क्वाथ ४ लीटर, कमलपुष्प क्वाथ या स्वरस ४ लीटर लेकर विधिपूर्वक तैल का पाक कर लें। इसे मन्दारतैल कहते हैं। इस तैल का पान, अभ्यङ्ग या वस्ति द्वारा प्रयोग करने पर शरीर में बल और शुक्र की वृद्धि होती है तथा वातज, पित्तज एवं कफज आन्त्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—तैलगन्धी एवं दुग्धगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी तरह के आन्त्ररोग में।

३९. सैन्धवादितैल (च.द.)

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वां निचुलं वचाम्।
ह्रीबेरं मधुकं भार्गीं देवदारु सनागरम् ॥१०७॥
कट्फलं पौष्करं मेदां चविकां चित्रकं शटीम्।
विडङ्गातिविषे श्यामां रेणुकां नीलिनीं स्थिराम् ॥१०८॥
बिल्वाजमोदे कृष्णाञ्च दन्तीं रास्नां प्रपिष्य च।
साध्यमेरण्डजं तैलं तैलं वा कफवातनुत् ॥१०९॥

ब्रध्नोदावर्त्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् ।
आनाहमश्मरीञ्चैव हन्यात्तदनुवासनात् ॥११०॥

कल्क—१. सैन्धवलवण, २. मदनफलबीज, ३. कूठ, ४. सौंफ, ५. वेतस, ६. वच, ७. सुगन्धबाला, ८. मुलेठी, ९. भारङ्गीत्वक्, १०. देवदारु, ११. सोंठ, १२. कट्फल, १३. पुष्करमूल, १४. मेदा, १५. चव्य, १६. चित्रकमूल, १७. कचूर, १८. वायविडङ्ग, १९. अतीस, २०. कृष्णअनन्तमूल, २१. रेणुकाबीज, २२. नीलीमूल, २३. शालपर्णी, २४. बिल्व त्वक् २५. अजमोदा, २६. पीपर, २७. दन्तीमूल, २८. रास्ना —प्रत्येक १० ग्राम लें और २९. एरण्डतैल १ किलो लें। सर्वप्रथम एरण्डतैल का मूर्च्छन करें और सैन्धवलवण से रास्ना तक के सभी द्रव्यों का चूर्ण करें तथा सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क और ४ लीटर जल को मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि में पाक करें। जलीयांश जल को जाने पर तैलपाक की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल की अनुवासन बस्ति तथा अभ्यङ्ग करने पर ब्रध्न, उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, प्लीहरोग, प्रमेह, वातरक्त, आनाह और अश्मरीरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—अनुवासनार्थ ५०-१०० मि.ली., अभ्यङ्गार्थ—यथावश्यक। **अनुपान**—अनुवासनार्थ दशमूलक्वाथ में मिलाकर। **गन्ध**—एरण्डतैलगन्धी। **वर्ण**—रक्त। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—ब्रध्न, उदावर्त, आनाह, गुल्म आदि में।

वृद्धि-ब्रध्न रोग में पथ्य (यो.र.)

संशोधनं वस्तिरसृग्विमोक्षः
स्वेदः प्रलेपोऽरुणशालयश्च ।
एरण्डतैलं सुरभीजलञ्च
धन्वामिषं शिग्रुफलं पटोलम् ॥१११॥
पुनर्नवा गोक्षुरकाग्निमन्थं
ताम्बूलपथ्यारसनारसोनम् ।
वातिङ्गनं गृञ्जनकं मधूनि
कौम्भं घृतं तप्तजलञ्च तक्रम् ॥११२॥
अर्धेन्दुवद्वङ्क्षणयोश्च दाहो
व्यत्यासतो बाहुशिराव्यधश्च ।
यथामयं शस्त्रविधिश्च वर्गः
स्याद् ब्रध्नवृद्ध्यामयिनां सुखाय ॥११३॥

संशोधन (वमन-विरेचन), बस्ति, रक्तमोक्षण, स्वेदन, प्रलेप, लालशालीचावल, एरण्डतैल, गोमूत्र, जङ्गली पशु-पक्षियों के मांस, सहिजनफली, परवल, पुनर्नवाशाक, गोक्षुर, अग्निमन्थ, ताम्बूलपत्र, हरीतकी, रास्ना, लशुन, बैंगन, गाजर, महुआफूल, कौम्भघृत (१०० वर्ष का घृत), उष्णोदक, तक्र, वंक्षण प्रदेशों में अर्द्ध चन्द्राकृति दग्ध करना, व्यत्यास (विपरीत) क्रम से बाहु सिरा का वेध, अर्थात् यदि बायें तरफ के अण्डकोष की वृद्धि हो तो दक्षिण बाहु में सिरावेध करें और यदि दक्षिण अण्डकोष की वृद्धि हो तो वाम बाहु की सिरा का वेध करें। शस्त्रकर्म से ब्रध्न और वृद्धि की चिकित्सा सुखकर है।

अनभिष्यन्दि पानान्नं नातिशीता क्रिया तथा ।
वृद्धिरोगे हिताय स्याद्विपरीतं विवर्जयेत् ॥११४॥

अभिष्यन्दी न करने वाले पदार्थों को पीना तथा भोजन करना, अधिक शीत क्रिया न करना तथा सुखोष्ण आहार-विहार वृद्धि-रोग में हितकर हैं। इसके विपरीत आहार-विहार वृद्धिरोग में अहितकर है।

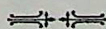
ब्रध्न और वृद्धि रोग में अपथ्य (यो.र.)

विरुद्धपानान्नमसात्म्यसेवा
सङ्क्षोभणं हस्तिहयादियानम् ।
आनूपमांसानि दधीनि माषा
दुग्धानि पिष्टान्नमुपोदिका च ।
गुरूणि शुक्रोत्थितवेगरोधाः
स्युर्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनाम मित्राः ॥११५॥
वेगाहर्तिं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं तथा ।
अत्यशनमथाऽध्वानमुपवासं परित्यजेत् ॥११६॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वृद्धिरोगाधिकारः ।

परस्पर विरुद्ध अन्नपान एवं असात्म्य पदार्थो का सेवन, हाथी-घोड़े की तेज सवारी से आँतों में संक्षोभ, आनूप मांस, दही, उड़द, पिट्ठी और उपोदिका (पोई शाक) का सेवन, गुरु पदार्थ, शुक्र एवं मूत्र-पुरीष के वेगों को रोकना, वेग से चलना, तेज सवारी के पीठ पर चलना, व्यायाम, मैथुन, अधिक भोजन, अधिक रास्ता चलना और उपवास छोड़ देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य वृद्धिरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथ गलगण्ड-गण्डमाला-अपची-ग्रन्थ्यर्बुदाधिकारः (४४)

गलगण्ड-चिकित्सासूत्र

स्वेदोऽनिलोत्थे गलगण्डकादौ
नाड्याऽनिलघ्नौषधपत्रभङ्गैः ।
स्वेदोपनाहैः कफसम्भवे तु
संस्वेद्य विस्रावणमेव कुर्यात् ॥१॥
मेदःसमुत्थे तु यथोपदिष्टं
विध्येच्छिरां स्निग्धतनोर्नरस्य ।
श्यामासुधालोहपुरीषदन्ती
रसाञ्जनैश्चापि हितः प्रलेपः ॥
मूत्रेण वाऽऽलोड्य हिताय कल्कं
प्रातः पिबेत्सारमहीरुहाणाम् ॥२॥

वातज गलगण्ड में वातघ्न द्रव्यों (नाडीपत्र) के द्वारा कल्क बनाकर स्वेदन करना चाहिए। कफज गलगण्ड में स्वेदन और उपनाह कर्म करें। उसके बाद स्वेदन कर रक्तविस्रावण करना चाहिए। मेदोज गलगण्ड में वैद्य पहले रोगी को स्नेहन-स्वेदन कराने के बाद सिराव्रेध करें। ततः काली निशोथ या पिप्पली, थूहर, मण्डूरचूर्ण, दन्तीमूल और रसाञ्जनचूर्ण का सुखोष्ण लेप करें अथवा खदिरवृक्ष के सार (कत्था) को गोमूत्र में घोलकर प्रातः पिलावें।

१. निचुलादिलेप (यो.र.)

निचुलं शिग्रुबीजानि दशमूलमथापि वा ।
आलेपनं वातगण्डे सुखोष्णं सम्प्रशस्यते ॥३॥

घटक—समुद्रफल, सहिजनबीज तथा दशमूल के प्रत्येक द्रव्य (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीस लें और कटोरी में रखकर आग पर गरम करें तथा वातज गलगण्ड पर सुखोष्ण लेप करें। इसके लेप से वातज गलगण्ड नष्ट हो जाता है।

२. देवदार्वादिलेप (यो.र.)

देवदारु विशालां च कफगण्डे प्रलेपनम् ।
छर्दनं शीर्षरिकश्च सर्वो रेचनिको हितः ॥४॥

देवदारु और इन्द्रायण की जड़ को समभाग लेकर चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसें। कटोरी में रखकर आग पर गरम करें तथा सुखोष्ण लेप करने से कफज गण्डमाला नष्ट हो जाता है। कफज गण्डमाला में वमन, शिरोविरेचन तथा सभी प्रकार के विरेचन लाभदायक है।

गलगण्ड की सामान्य चिकित्सा (च.द.)

यवमुद्गपटोलानि कटु रूक्षञ्च भोजनम् ।
छर्दिं सरक्तमुक्तिञ्च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥५॥

गलगण्डरोग में यव, मूँग, पटोल, कटु और रूक्ष द्रव्यों का भोजन कराना चाहिए। वमन और रक्तमोक्षण गलगण्ड में हितकर है।

३. गलगण्डहरलेप (च.द.)

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपतः ।
हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥६॥

हस्तिकर्णचूर्ण और पलाशमूलत्वक्चूर्ण को तण्डुलोदक के साथ सिल पर पीस लें और कटोरी में रखकर गरम करें तथा सुखोष्ण लेप करें। इसके लेप से गलगण्ड नष्ट हो जाता है।

४. सर्षपादिप्रलेप (च.द.)

सर्षपाञ् शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् ।
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥७॥
गलगण्डग्रन्थयश्च गण्डमालाः सुदारुणाः ।
प्रलेपात्तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात् ॥८॥

सरसों, सहिजनबीज, सन के बीज, अतसीबीज, जौ, मूली-बीज—इन्हें समभाग में लेकर सिल पर खट्टा तक्र के साथ पीस लें। कटोरी में रखकर गरम करें। इसका सुखोष्ण लेप करने से गलगण्ड, ग्रन्थि और भयानक गण्डमालारोग पुराना होते हुए भी विलीन हो जाता है।

५. नये गलगण्ड में नस्य (च.द.)

जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंयुतः ।
नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न संशयः ॥९॥

पका हुआ कूष्माण्डफलरस में विडलवण और सैन्धवलवण मिलाकर नस्य देने से नया गलगण्डरोग निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

६. जलकुम्भी भस्म प्रयोग (च.द.)

जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्रगालितम् ।
पिबेत् कोद्रवभक्ताशी गलगण्डप्रशान्तये ॥१०॥

जलकुम्भी को भस्म कर चतुर्गुण गोमूत्र में घोल दें और ७ बार कपड़े से छान लें। इसके बाद ५० मि.ली. की मात्रा में रोगी को पिलावें। साथ में कोदों का भात पथ्य रूप में खिलावें।

७. सूर्यावर्त एवं रसोन का उपनाह (च.द.)

सूर्यावर्त्तरसोनाभ्यां गलगण्डोपनाहने ।
स्फोटस्रावैः शमं यान्ति गलगण्डा न संशयः ॥११॥

हुरहुर तथा रसोन दोनों को समभाग में सिल पर पीसें और कटोरी में गरम करें। गलगण्ड स्थान पर उपनाह (पुल्टिस) देकर बाँध दें। इसके उपनाह से गलगण्ड स्थल पर फोड़े हो जाते हैं। स्फोट फटने से गलगण्ड का द्रवांश बाहर निकल जाता है और गलमण्ड सूख जाता है। इसके कोई सन्देह नहीं है।

८. कटुतुम्बी-पूरित जल-मद्य प्रयोग (च.द.)

तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम् ।
मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात्पथ्यान्नसेविनः ॥१२॥

कटुतुम्बी के २ पके फल लें। उनमें एक छोटा-सा छिद्र करें तथा लौह शलाका डालकर अन्दर का छिद्र बढ़ावें तथा उसकी गुद्दी को बाहर निकालें। एक तुम्बी में २५० मि.ली. पानी तथा दूसरी में २५० मि.ली. मद्य भरें। इन दोनों तुम्बी के छिद्र को बाहर निकाली हुई गुद्दी से बन्द कर दें। बाहर से उस स्थान पर मिट्टी का लेपकर ७ दिन तक रखें। बाद में खोलकर इसके जल या मद्य में से किसी एक का पान करने से गलगण्डरोग नष्ट हो जाता है।

९. कट्फल या गिरिकर्णिका प्रयोग (च.द.)

कट्फलचूर्णान्तर्गलघर्षो गलगण्डामयं हन्ति ।
घृतमिश्रं पीतमपि श्वेतगिरिकर्णिकामूलम् ॥१३॥

कट्फल का चूर्ण कर गला के भीतर अंगुली से घर्षण करने से गलगण्ड नष्ट हो जाता है। अथवा अपराजितामूलचूर्ण १ ग्राम घृत के साथ सेवन करने से गलगण्ड नष्ट हो जाता है।

१०. काञ्चनार-शुण्ठीप्रयोग (च.द.)

पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पीता काञ्चनारत्वचः शुभाः ।
विश्वभेषजसंयुक्ता गलगण्डापहाः पराः ॥१४॥

काञ्चनारत्वक्चूर्ण ३ ग्राम एवं सोंठचूर्ण १ ग्राम दोनों को तण्डुलोदक से सिल पर पीसें और गलगण्ड के रोगी को पिलावें।

११. शुद्ध मण्डूर प्रयोग (च.द.)

महिषीमूत्रविमिश्रं लोहमलं संस्थितं घटे मासम् ।
अन्तर्धूमविदग्धं लिह्यान्मधुनाथ गलगण्डे ॥१५॥

शुद्ध मण्डूरचूर्ण को चतुर्गुण गोमूत्र में एक घड़े में मिलाकर रखें। एक महीने तक उसे ऐसे ही पड़ा रहने दें। पुनः उस घड़े का मुख बन्द कर अन्तर्धूम विधि से पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर मण्डूरचूर्ण को निकाल लें और महीन छननी से छानकर अच्छी तरह मर्दन करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। १ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से गलगण्डरोग नष्ट हो जाता है।

सिरावेधप्रयोग-१ (च.द.)

जिह्वायाः पार्श्वतोऽधस्ताच्छिरा द्वादश कीर्त्तिताः ।
तासां स्थूलशिरे द्वेऽधश्छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः ॥१६॥
वडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् ।
स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन् दद्यात्सगुडमार्द्रकम् ॥१७॥

जिह्वा के नीचे दोनों तरफ १२ सिराएँ होती हैं। उनमें से दो मोटी सिराएँ जो काले वर्ण की हो उसे बडिश नामक यन्त्र से पकड़कर कुश पत्र से वेधन करें। उसमें से रक्त निकलेगा तथा बाद में व्रण हो जायेगा। उस व्रण पर गुड़ और आर्द्रक पीसकर लेप करें। [भूख लगने पर अनभिष्यन्दी पदार्थ (जो अभिष्यन्दी न हो) तथा कुलत्थयूष का सेवन करें।]

सिरावेधप्रयोग-२ (च.द.)

कर्णयुग्मबहिःसन्धिमध्याभ्याशे स्थितञ्च यत् ।
उपर्य्युपरि तच्छिन्द्याद् गलगण्डे शिरात्रयम् ॥१८॥

दोनों कानों की बाह्य सन्धि में ३-३ सिराएँ होती हैं। उन्हें बडिशयन्त्र से पकड़कर कुशपत्र से वेधन करें। वेधन करने से रक्तस्राव होता है और गलगण्ड नष्ट हो जाता है।

गण्डमाला चिकित्सा

१२. काञ्चनार एवं वरुणक्वाथ (भा.प्र.)

काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत् ।
माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ॥
गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥१९॥

१. काञ्चनारत्वक्क्वाथ ५० मि.ली. में १ ग्राम शुण्ठीचूर्ण मिलाकर पिलाने से पुराना गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है।

२. वरुणत्वक्क्वाथ ५० मि.ली. में २५ ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से पुराना गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है।

१३. आरग्वधमूल नस्य (च.द.)

आरग्वधशिफां क्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
सम्यङ्नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥२०॥

अमलतास की मूलत्वक् को चूर्ण कर तण्डुलोदक के साथ सिल पर पीसें तथा बाद में उसे चतुर्गुण तण्डुलोदक में घोल दें। इस घोल को नस्य के रूप में प्रयोग करने से गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है। अथवा तण्डुलोदक में पीसी हुई आरग्वधमूलत्वक् का लेप करने से गण्डमाला नष्ट हो जाता है।

१४. निर्गुण्डीमूलस्वरसनस्य (च.द.)

गण्डमालाऽऽमयार्त्तानां नस्यकर्मणि योजयेत् ।
निर्गुण्ड्यास्तु शिफां सम्यग्वारिणा परिपेषिताम् ॥२१॥

निर्गुण्डीमूलत्वक् को जल के साथ सिल पर पीसें और कपड़े

से छानकर दोनों नाकों में ३-३ बूँद देकर नस्य प्रयोग करें। इससे गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है।

१५. नस्यार्थ चार प्रयोग (च.द.)

कोषातकीनां स्वरसेन नस्यं
तुम्ब्यास्तु वा पिप्पलिसंयुतेन।
तैलेन वाऽरिष्टभवेन कुर्याद्
गजोपकुल्येन समाक्षिकेण ॥२२॥

१. कड़वीतोरई (कटुतुम्बी) का स्वरस नाक में ३ बूँद डालने से गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है।

२. कटुतुम्बीस्वरस में पिप्पलीचूर्ण मिलाकर नस्य देने से गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है।

३. निम्बतैल का नस्य देने से गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है।

४. गजपीपरचूर्ण को ४ गुना मधु में मिलाकर नस्य लेने से गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है।

१६. इन्द्रायण व अपराजितामूल प्रयोग (च.द.)

ऐन्द्र्या वा गिरिकर्ण्या वा मूलं गोमूत्रयोगतः।
गण्डमालां हरेत्पीतं चिरकालोत्थितामपि ॥२३॥

१. इन्द्रायणमूलचूर्ण ५ ग्राम को गोमूत्र के साथ सिल पर पीसकर पीने से पुराना गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है।

२. श्वेतअपराजितामूलचूर्ण को गोमूत्र के साथ सिल पर पीसकर पीने से पुराना गण्डमालारोग नष्ट हो जाता है। यहाँ गोमूत्र की मात्रा ५० मि.ली. लेनी चाहिए।

१७. अलम्बुषापत्रस्वरस प्रयोग (च.द.)

अलम्बुषादलोद्भूतं स्वरसं द्विपलं पिबेत्।
अपच्या गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनम् ॥२४॥

अलम्बुषा (लज्जालु-भेद या मुण्डी) की पत्ती का स्वरस २ पल (१०० मि.ली.) प्रतिदिन पिलाने से अपची, गण्डमाला और कामलारोग नष्ट हो जाते हैं।

१८. भारङ्गीमूल प्रलेप (च.द.)

पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना लेपान्मूलं ब्राह्मणयष्टिजम्।
गलगण्डं गण्डमालां कुरण्डञ्च विनाशयेत् ॥२५॥

भारङ्गीमूलत्वक् को तण्डुलोदक के साथ पीसकर गरम लेप करने से गलगण्ड, गण्डमाला और कुरण्ड (अण्डकोषवृद्धि) रोग नष्ट हो जाते हैं।

अपची चिकित्सा

१९. वनकार्पासपूपलिका प्रयोग (च.द.)

वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम्।
पक्त्वा पूपलिकाः खादेदपचीनाशनाय तु ॥२६॥

जङ्गली कपास का मूलत्वक्चूर्ण १० ग्राम तथा तण्डुलचूर्ण ८० ग्राम दोनों को मिलाकर पानी में गाढ़ा घोल बनावें। एक कड़ाही में गोघृत गरम कर इस घोल का पूआ बनावें। इन पूओं को खाने से अपचीरोग नष्ट हो जाता है। इसमें थोड़ी चीनी भी मिलावें।

विमर्श—आचार्यश्री ने इस पुए में चीनी मिलाने का कोई उल्लेख नहीं किया है। फिर भी इच्छानुसार रोगी इसमें चीनी मिला सकता है।

२०. शोभाञ्जनादिलेप (च.द.)

शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम्।
कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥२७॥

शिग्रुमूलत्वक् और देवदारुकाष्ठ दोनों समभाग लेकर चूर्ण करें और सिल पर काञ्जी के साथ पीसें। इस घोल को कटोरी में रखकर गरम करें तथा अपचीरोग में कोष्ण लेप करने से भयङ्कर अपचीरोग नष्ट हो जाता है।

२१. अपचीहरलेप (च.द.)

सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह।
छागमूत्रेण सम्पिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ॥२८॥

सरसोबीज, निम्बपत्र और भल्लातक तीनों समभाग लें और एक हाँड़ी में रखकर शराव से सम्पुट कर कपड़मिट्टी करें तथा इसे वराहपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर हाँडी से औषधि निकालकर चूर्ण करें एवं काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को बकरे के मूत्र में पीसकर सुखोष्ण अपची पर लेप करें। इससे अपचीरोग नष्ट हो जाता है।

२२. अपचीहरलेप (च.द.)

अश्वत्थकाष्ठं निचुलं गवां दन्तञ्च दाहयेत्।
वराहमज्जसम्पृक्तं भस्म हन्त्यपचीव्रणान् ॥२९॥

पीपरकाष्ठचूर्ण, निचुल तथा गाय के दाँत (समभाग) लेकर एक छोटी हाँडी में रखकर शरावसम्पुट कर गजपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीतल होने पर हाँडी खोलकर औषधि भस्म निकालकर खरल में मर्दन करें और छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार इस भस्म को सूअर की चर्बी में मर्दन कर अपची व्रणों पर लगाने से व्रण नष्ट हो जाते हैं।

पार्ष्णिदाह (च.द.)

पार्ष्णिं प्रति द्वादश चाङ्गुलानि
भित्त्वेन्द्रबस्तिं परिवर्ज्य सम्यक्।
विदार्य मत्स्याण्डनिभानि वैद्यो
निष्कृष्य जालान्यनलं विदध्यात् ॥३०॥

पार्ष्णि (एड़ी) से १२ अंगुल ऊपर 'इन्द्रबस्ति' नामक मर्म

है, उसे बचाकर शस्त्र से क्षत करें। उसमें से मत्स्याण्ड जैसी जाली को निकालकर तप्त शलाका से दाह करें। इससे अपची ठीक हो जाती है।

मणिबन्ध पर रेखाकृति दाह (च.द.)

मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक्।
अङ्गुलान्तरितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये ॥३१॥

मणिबन्ध से ऊपर १-१ अंगुल के अन्तर में तप्त शलाका से ३ रेखाकृति दाह करने से अपचीरोग नष्ट हो जाता है।

बलाऽपामार्गमूल बन्धन (च.द.)

दण्डोत्पलाभवं मूलं बद्धं पुष्येऽपचीं जयेत्।
अपामार्गस्य वा छिन्द्याज्जिह्वातलगते शिरे ॥३२॥

दण्डोत्पला (बलाभेद) अथवा अपामार्गमूल को पुष्यनक्षत्र में उखाड़कर गले में बाँधने से अपचीरोग नष्ट हो जाता है। अथवा जिह्वा के नीचे शिराओं को बडिशयन्त्र से पकड़कर कुशपत्र से वेधन करने से अपची नष्ट हो जाती है।

ग्रन्थि चिकित्सा

आम-पक्व ग्रन्थि चिकित्सा (च.द.)

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक् शोथप्रतिक्रियाम्।
पक्वामुत्पाट्य संशोध्य रोपयेद् व्रणभेषजैः ॥३३॥

ग्रन्थिरोग में अपक्वग्रन्थि रोगों की चिकित्सा सुश्रुत विधि से करनी चाहिए, यथा—अपतर्पण, आलेप, अभ्यङ्ग, स्वेदन, विम्लापन, उपनाह, पाचन तथा विस्रावण। ततः स्नेहन, वमन और विरेकादि कर्म करना चाहिए। पक्वग्रन्थि का छेदन-भेदन करके (शस्त्र से चीरकर) पूयादि पदार्थ निकालकर निम्ब क्वाथ से व्रण का प्रक्षालन करें और शोधन औषधियों की वर्ति बनाकर ग्रन्थि में रखें तत्पश्चात् बैण्डेज करें। २-३ दिनों तक इस क्रम से ग्रन्थि की चिकित्सा करें। जात्यादितैल और निम्बादितैल व्रणरोपण एवं शोधन के लिए बहुत उपयोगी हैं।

२३. हिंस्रादिलेप (च.द.)

हिंस्रा सरोहिण्यमृताऽथ भार्गी
श्योणाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः।
गोपित्तपिष्टाः सह तालपर्ण्या
ग्रन्थो विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥३४॥

१. कण्टकारीमूल, २. कटुकी, ३. गुडूची, ४. भारङ्गी, ५. सोनापाठा, ६. बिल्वत्वक्, ७. अगरु, ८. सहिजन की छाल, और ९. मुसली (समभाग) लें। उपर्युक्त ९ औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। एक खरल में रखकर गोपित्त की भावना दें और चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। जल के साथ इस औषधि को घोलकर वातजग्रन्थि पर लेप करने से ग्रन्थि पककर फट जाती है।

पित्तजग्रन्थि चिकित्सा (च.द.)

जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु
क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनञ्च।
काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि
पिबेत्कषायाणि सशर्कराणि ॥३५॥

पित्तजग्रन्थिरोग में जलौका लगाकर ग्रन्थि स्थान से अशुद्ध रक्त निकाल लें। समभाग गोदुग्ध और जल मिलाकर उस स्थान पर परिषेचन करें। काकोल्यादिवर्ग के शीतलक्वाथ में शर्करा मिलाकर पिलावें।

२४. पित्तजग्रन्थि की चिकित्सा (च.द.)

द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वाऽपि
चूर्णं पिबेद्वाऽपि हरीतकीनाम्।
मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां
त्वग्भिः प्रदेहानवतारयेच्च ॥३६॥

पित्तजग्रन्थि में ३ ग्राम हरीतकीचूर्ण खिलाकर अङ्गूर का स्वरस या गन्ने का स्वरस पिलाने से पित्तजग्रन्थि में लाभ होता है। इसके अतिरिक्त महुए की छाल, जामुन की छाल, अर्जुन की छाल, वेतसछाल को सिल पर जल के साथ पीसकर ठण्डा लेप करने से पित्तजग्रन्थिरोग नष्ट हो जाता है।

कफजग्रन्थि चिकित्सा (च.द.)

हृतेषु दोषेषु यथाऽनुपूर्व्या
ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुद्भवे तु।
स्विन्ने च विम्लापनमेव कुर्या-
दङ्गुष्ठवेणूदृषदीसुतैस्तु ॥३७॥

कफजग्रन्थिरोग में वमन आदि तथा रक्तमोक्षण द्वारा दोषों के निकल जाने पर उस स्थान पर विम्लापन करें। ततः स्वेदन करें। अंगूठे से, बाँस के टुकड़े से, पत्थर के टुकड़े से उस स्थान पर मर्दन करें।

२५. विकङ्कतादिलेप (च.द.)

विकङ्कतारग्वधकाकणन्ती-
काकादनीतापसवृक्षमूलैः।
आलेपयेदेनमलाबुभार्गी-
करञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥३८॥

१. विकङ्कत (संदिग्ध द्रव्य), २. आरग्वधफलमज्जा, ३. रक्तगुञ्जा, ४. इङ्गुदीवृक्षमूल, ५. अलाबू (लौकी की जड़), ६. भारङ्गीमूलत्वक्, ७. करञ्जमूलत्वक्, ८. मंजीठ और ९. मदनफल समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को जल के साथ घोलकर कटोरी में गरम करें और सुखोष्ण लेप करें। इसे लेप से कफज ग्रन्थि बैठ भी जाती है और फूट भी जाती है।

२६. दन्तीमूलादिलेप (च.द.)

दन्तीचित्रकमूलत्वक् सुधार्कवयसी गुडः।
भल्लातकास्थिकाशीशं लेपो भिन्द्याच्छिलामपि ॥३९॥

१. दन्तीमूल, २. चित्रकमूलत्वक्, ३. स्नुहीक्षीर, ४. अर्कक्षीर, ५. गुड़, ६. भल्लातकबीज तथा ७. कासीस (समभाग) लें। इन्हें कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। जल के साथ मिलाकर कटोरी में गरम करें और ग्रन्थि स्थान पर लेप करें। इसके प्रयोग से ग्रन्थियाँ फूट जाती है। परीक्षणार्थ इसका लेप पत्थर पर लगाने से पत्थर टूट जाता है तो ग्रन्थियों का क्या कहना।

२७. मातृवाहककीटलेप (च.द.)

ग्रन्थ्यर्बुदादिजिल्लेपो मातृवाहककीटजः ॥४०॥

ग्रन्थि, अर्बुद आदि रोगों को नाश करने के लिए मातृवाहककीट का लेप करना चाहिए।

२८. स्वर्जिकादिलेप (च.द.)

स्वर्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमन्वितः।
प्रलेपो विहितस्तीक्ष्णो हन्ति ग्रन्थ्यर्बुदादिकान् ॥४१॥

सज्जीक्षार, मूलीक्षार और शङ्खचूर्ण—तीनों को समभाग में मिलाकर मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। जल में मिलाकर इसे ग्रन्थि और अर्बुद पर लेप करने से ग्रन्थि, अर्बुदादि रोग नष्ट हो जाते हैं।

ग्रन्थिदाह (च.द.)

ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपक्वा-
नुद्धृत्य चाग्निं विदधीत वैद्यः।
क्षारेण चैतान् प्रतिसारयेत्तु
संलिख्यसंलिख्य यथोपदेशम् ॥४२॥

मर्मस्थान के अतिरिक्त स्थान पर होने वाली अपक्व ग्रन्थि को शस्त्र द्वारा काटकर उस स्थान पर दग्धकर्म कर देना चाहिए। अथवा उस स्थान को खुरचकर प्रतिसारणीय क्षार से जला देना चाहिए।

अर्बुद चिकित्सा

अर्बुद की सामान्य चिकित्सा (चरक)

ग्रन्थ्यर्बुदानाञ्च यतोऽविशेषः
प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः।
ततश्चिकित्सेद् भिषगर्बुदानि
विधानविद् ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥४३॥

ग्रन्थि और अर्बुद इन दोनों रोगों में उत्पत्ति-स्थान, निदान, लक्षण, दोष और दूष्य का विचार करने से प्रायः कुछ समानता मिलती है। अतः वैद्य का कर्तव्य है कि वह ग्रन्थिरोग के समान ही अर्बुदरोग की भी चिकित्सा करें।

वातज अर्बुद की चिकित्सा (च.द.)

वातार्बुदे चाप्युपनाहनानि
स्निग्धैश्च मांसैरथ वेशवारैः।
स्वेदं विदध्यात् कुशलस्तु नाड्या
शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च ॥४४॥

वातार्बुदरोग में बकरे के निरस्थिमांस को स्निग्ध पदार्थ देकर अच्छी तरह सिद्ध कर लें और उसी सुपक्व एवं उष्ण मांस को वस्त्र में बाँधकर अर्बुद स्थान पर सेंकना चाहिए या वेसवार का उपनाह (पुलटिस) बाँधना चाहिए। इसी प्रकार कुशल वैद्य नाड़ीयन्त्र से उस स्थान का स्वेदन करें तथा शृङ्गी, जलौका आदि द्वारा अनेक बार रक्तमोक्षण करें।

पित्तार्बुदरोग चिकित्सा (च.द.)

स्वेदोपनाहा मृदवश्च पथ्याः।
पित्तार्बुदे कायविरेचनञ्च ॥४५॥

पित्तार्बुद में थैली (Hot water bag) में गरम पानी भरकर मृदु सेंक करना चाहिए। तथा काकोल्यादिगण की औषधों को पीसकर लेप लगावें और विरेचन औषधियों द्वारा काय विरेचन करावें।

२९. पित्तार्बुद चिकित्सा (च.द.)

विघृष्य चोदुम्बशाकगोजा-
पत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत्।
श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियङ्गु-
पत्तङ्गलोध्राञ्जनयष्टिकाह्वैः ॥४६॥

उदुम्बर (गूलर) पत्र, शालपत्र एवं गोजिह्वापत्र से अर्बुद को रगड़कर राल, प्रियंगुफूल, पतंग, (कुचन्दन = पीतचन्दन), लोध्र, रसाञ्जन और मुलेठी—इन छः द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण में मधु मिलाकर लेप करें।

३०. कफार्बुद चिकित्सा (च.द.)

लेपनं शङ्खचूर्णेन सह मूलकभस्मना।
कफार्बुदापहं कुर्याद् ग्रन्थ्यादिषु विशेषतः ॥४७॥

शंखभस्म और मूलीक्षार या मूलीभस्म (समभाग) जल के साथ मिलाकर कफार्बुद में लेप करने से कफार्बुदरोग एवं ग्रन्थि आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

अर्बुदहरलेप

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कै-
र्मांसप्रगाढैर्दधिमर्दितैस्तु।
लेपं विदध्यात् कृमयो यथाऽत्र
मुञ्चन्त्यपत्यान्यथ मक्षिकाश्च ॥४८॥

अल्पावशिष्टं कृमिभिः प्रजग्धं
लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात्।
यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसैः
संवेष्ट्य पत्रैरथवाऽऽयसैर्वा ॥४९॥
क्षाराग्निशस्त्राण्यवतारयेच्च
मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्षमाणः।
यदृच्छया चापगतानि पाकं
पाकक्रमेणोपचरेद् यथोक्तम् ॥५०॥

राजमाष (सेमप्रजातीय), तिल की खली, कुलत्थ—इन्हें समभाग में लेकर सिल पर पीसकर कल्क बना लें। बकरे का निरस्थिमांस कुलत्थ के बराबर लें। इसे भी कल्क के साथ पीसें और दही मिलाकर अच्छी तरह से मथकर अर्बुद स्थान पर गाढ़ा लेप करें तथा उसे एक दिन तक लगा रहने दें। तब उसमें सड़न पैदा होने से कृमियाँ उत्पन्न होंगीं जिससे वहाँ पर मक्खियाँ बैठकर अपने अण्डे छोड़ देंगी। इस प्रकार कृमि और मक्खियाँ अर्बुद के सड़े मांस को खाने लगेंगी। कृमि एवं मक्खियों द्वारा अवशिष्ट छोड़े गये सड़े मांस को शस्त्र कर्म द्वारा खुरचकर निकाल दें तथा प्रतप्त शलाका द्वारा अग्निकर्म कर दूषित मांस को जला देना चाहिए। ऐसा करने के बाद में यदि अर्बुद का भाग शेष रह जाय तो उस अर्बुद ग्रसित भाग पर वंग, नाग, ताम्र या लौहपत्र बाँध देना चाहिए। अथवा यदि रोगी सबल हो तो उसके प्राणों की रक्षा करते हुए अवशिष्ट अर्बुद के विनाशार्थ क्षार, अग्नि एवं शस्त्र क्रिया का प्रयोग करें। यदि अर्बुद का पाक स्वयं हो जाय तो उसकी चिकित्सा पाटन-शोधनादि कर्मों द्वारा करनी चाहिए।

अर्बुद में शेष दोष का निर्देश (च.द.)

सशेषदोषाणि हि योऽर्बुदानि
करोति तस्याशु पुनर्भवन्ति।
तस्मादशेषाणि समुद्धरेत्तु
हन्युः सशेषाणि यथा विषाग्नी ॥५१॥

जो शल्य चिकित्सक अर्बुद को पूर्णतया नष्ट नहीं करता है तो अल्प मात्रा में अवशिष्ट रहा हुआ वह अर्बुद शीघ्र ही पुनर्भव को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् फिर से पहले जैसा हो जाता है। इसलिए अर्बुद को पहली बार की शल्यक्रिया में ही समूल नष्ट कर देना चाहिए। क्योंकि अर्बुद विष और अग्नि से भी भयङ्कर है।

३१. उपोदिकारस प्रयोग (च.द.)

उपोदिकारसाभ्यक्तास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः।
प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पिडकार्बुदजातयः ॥५२॥

उपोदिका (पोई) के स्वरस का लेप करने से तथा उसके पत्र को अर्बुद-पिडका पर बाँधने से दोनों रोग नष्ट हो जाते हैं।

३२. उपोदिका उपनाह (च.द.)

उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा
तयोपनाहो लवणेन मिश्रः।
दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद्
दिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥५३॥

उपोदिका के पत्ते को काञ्जी तथा तक्र में पीसकर कटोरी में गरम करें और उसमें सैन्धवलवण मिलाकर अर्बुद पर रात्रि एवं दिन में भी सुहाता-सुहाता लेप करें। इससे मर्म स्थान पर उत्पन्न हुए अर्बुद भी नष्ट हो जाते हैं।

३३. अर्बुदहर दो योग (च.द.)

लेपोऽर्बुदजिद्रम्भामोचकभस्मतुषशङ्खचूर्णकृतः।
सरटरुधिरार्द्रगन्धकयवाग्रजविडङ्गनागरैर्वाऽथ ॥५४॥

१. केले के कन्द की राख (भस्म), २. मोचरस की राख, ३. धान की भूसी तथा ४. शङ्खभस्म—इन्हें समान भाग में लेकर काञ्जी और तक्र में पीसें और गरम करके अर्बुद पर लेप करें। इससे अर्बुद नष्ट हो जाता है।

१. गन्धक, २. यवक्षार, ३. वायविडङ्ग तथा ४. सोंठ—इन चारों द्रव्यों को समभाग में लेकर गिरगिट के रक्त के साथ पीसकर लेप करने से अर्बुदरोग नष्ट हो जाता है।

३४. स्नुह्यादिस्वेद (च.द.)

स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च।
सीसकेनाथ लवणैः पिण्डारकफलेन च ॥५५॥

१. काँटेदार स्नुही (दण्डाकृति स्नुही) के काँटे को निकालकर दण्ड के छोटे-छोटे टुकड़े कर सिल पर पीस लें। इन्हें गीले कपड़े में लपेटकर कपड़मिट्टी करें तथा लघुपुट में पाक करें। आग शान्त होने पर गरम पिण्ड को निकाल लें। मिट्टी एवं कपड़े आदि पदार्थों को हटाकर गरम-गरम कल्क का अर्बुद पर लेप करें और कपड़े से बाँध दें।

२. अथवा सीसधातु के पत्र को गरम कर अर्बुद पर बाँधने से अर्बुद नष्ट हो जाता है।

३. या गरम लवण की पोट्टली से अर्बुद को सेंकने पर अर्बुद नष्ट हो जाता है।

४. या मैनफलबीज को पीसकर कल्क बना लें। इसे गरम कर अर्बुद पर बाँधने से अर्बुद नष्ट हो जाता है।

३५. हरिद्रादिलेप (च.द.)

हरिद्रालोध्रपत्तङ्गगृहधूममनःशिलाः।
मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥५६॥

१. हल्दी, २. लोध्रत्वक्, ३. पीतचन्द्रन, ४. गृहधूम तथा ५. मनःशिला (समभाग) लें। उपर्युक्त द्रव्यों का चूर्ण कर महीन

छननी से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर मेदोजअर्बुद पर लेप करें। इससे मेदोजअर्बुद नष्ट हो जाता है। शर्कराबुद रोग में भी मेदोऽर्बुद जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥५७॥

ग्रन्थि और अर्बुदरोग में कहो गई चिकित्सा पूर्णरूप से शर्करार्बुद में भी करनी चाहिए।

३६. रौद्ररस

शुद्धसूतं समं गन्धं मर्द्यं यामचतुष्टयम्।
नागवल्लीदलयुतं मेघनादपुनर्नवा ॥५८॥
गोमूत्रपिप्पलीयुक्तं मर्द्यं रुद्ध्वा पुटेल्लघु।
लिहेत् क्षौद्ररसो रौद्रो गुञ्जमात्रोऽर्बुदं जयेत् ॥५९॥

शुद्ध पारद तथा तथा शुद्ध गन्धक (समभाग) लें।

भावना—ताम्बूलपत्रस्वरस, चौराईस्वरस (मेघनाद), पुनर्नवामूलक्वाथ, गोमूत्र और पिप्पलीक्वाथ लें।

सर्वप्रथम एक बड़े खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर दृढ़ मर्दन करें। अच्छी कज्जली बनने पर ताम्बूलस्वरस की भावना देकर १२ घण्टे तक मर्दन करें। इसी प्रकार चौराई, पुनर्नवाक्वाथ, गोमूत्र एवं पिप्पलीक्वाथ से भी १२-१२ घण्टे तक भावना देकर मर्दन करें तथा सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में मधु के साथ खाने से अर्बुद रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तीक्ष्ण, कटु। **उपयोग**—अर्बुद में।

३७. काञ्चनारगुटिका-१

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योषाच्च द्विगुणो मतः।
तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं काञ्चनारस्य वल्कलम् ॥६०॥
एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन् समो देयोऽथ गुग्गुलुः।
क्षौद्रं दशगुणं दद्यात् त्रिफलाचूर्णतो भिषक् ॥६१॥
सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे तथैव च।
नाडीव्रणेषु गण्डेषु गुडिकेयं प्रशस्यते ॥६२॥

१. त्रिफला ३ भाग, २. त्रिकटु ६ भाग, ३. काञ्चनारत्वक् १८ भाग, ४. शुद्ध गुग्गुलु ३६ भाग और ५. मधु ३० भाग लें। उपर्युक्त तीनों द्रव्यों (त्रिफला, त्रिकटु, काञ्चनार) का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। इसके बाद शुद्ध गुग्गुलु को त्रिफला क्वाथ में पकावें। जब सान्द्र घन हो जाय तब उस गुग्गुलु में उपर्युक्त चूर्ण को मिला दें। इसके बाद उसमें मधु मिलाकर गुडिका बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस काञ्चनारगुटिका को ३ ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ सेवन करने पर या सहिजनत्वक्स्वरस के साथ सेवन करने पर गलगण्ड, गण्डमाला, नाडीव्रण और अपची आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—गुग्गुलु में त्रिफलादि चूर्णों को मिलाने के बाद उस मिश्रण को धूप में अच्छी तरह सुखाकर चूर्ण कर लें। चूर्ण होने पर ही मधु मिलावें। अन्यथा द्रव गुग्गुलु में मधु मिलाकर रखने के बाद औषधि सड़ जायेगी।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या सहिजनत्वक्स्वरस से। **गन्ध**—मधुगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—गलगण्ड, गण्डमाला एवं नाडीव्रण में।

३८. काञ्चनारगुग्गुलुवटी-२ (भा.प्र.)

काञ्चनारस्य गृह्णीयात् त्वचं पञ्चपलोन्मिताम्।
नागरस्य कणायाश्च मरिचस्य पलं पलम् ॥६३॥
पथ्याबिभीतधात्रीणां पलमर्द्धं पृथक् पृथक्।
वरुणस्याक्षमेकञ्च पत्रकैलात्वचां पुनः ॥६४॥
टङ्कं टङ्कं समादाय सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्।
यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेवात्र गुग्गुलुः ॥६५॥
सङ्कुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा विधारयेत्।
गुटिका माषिकाः कृत्वा प्रभाते भक्षयेन्नरः ॥६६॥
गलगण्डं जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च।
ग्रन्थीन् व्रणानि गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥६७॥
प्रदेयश्चानुपानार्थं क्वाथो मुण्डितिकाभवः।
क्वाथः खदिरसारस्य क्वाथः कोष्णोऽभयाभवः ॥६८॥

१. काञ्चनारत्वक् २४० ग्राम, २. सोंठ ५० ग्राम, ३. पीपर ५० ग्राम, ४. मरिच ५० ग्राम, ५. आमला २५ ग्राम, ६. हरीतकी २५ ग्राम, ७. बहेड़ा, २५. ग्राम, ८. वरुणत्वक् १२ ग्राम, ९. तेजपत्र ३ ग्राम, १०. छोटी इलायची ३ ग्राम, ११. दालचीनी ३ ग्राम और १२. शुद्ध गुग्गुलु ४८५ ग्राम लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। शुद्ध गुग्गुलु को थोड़ा गरम पानी में पिघलावें। जब सान्द्र घन हो जाय तो चूल्हे से गुग्गुलु पात्र को नीचे उतार लें तथा उसमें चूर्णों का प्रक्षेप देकर अच्छी तरह सिल पर पीस लें और १-१ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। पश्चात् काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी दिन में ३ बार मन्दोष्ण काञ्चनार अथवा मुण्डी अथवा खदिर अथवा हरड़ क्वाथ के साथ सेवन करने से गलगण्ड, गण्डमाला, भयङ्कर अपची, अर्बुद, ग्रन्थि, व्रण, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—काञ्चनार, मुण्डी, खदिरसार, अभया स्वरस या क्वांथ—इनमें से किसी एक के साथ। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—गलगण्ड, गण्डमाला, कुष्ठ एवं भगन्दर में।

३९. तुम्बीतैल (च.द.)

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाऽग्निव्योषदारुभिः ।
कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपाचितम् ॥
चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥६९॥

सरसों तैल ७५० मि.ली. तथा कटुतुम्बी स्वरस ३ लीटर लें।

कल्क—१. वायविडङ्ग, २. यवक्षार, ३. सैन्धवलवण, ४. रास्ना, ५. चित्रकमूल, ६. सोंठ, ७. पीपर, ८. मरिच तथा ९. देवदारु—प्रत्येक २०-२० ग्राम लें। सर्वप्रथम सरसोंतेल का मूर्च्छन करें। ततः सभी कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बनावें। मूर्च्छित तैल में कल्क और तुम्बीस्वरस देकर मन्दाग्नि से पाक करें। स्वरस सूखने पर कल्क के सम्यक् पाक हेतु ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छान कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का नस्य (३-३ बूँद दोनों नाक में) डालने से पुराना गलगण्ड रोग नष्ट हो जाता है।

४०. अमृताद्यतैल (च.द.)

तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्ब-
हिंस्राह्वयावत्सकपिप्पलीभिः ।
सिद्धं बलाभ्याञ्च सदेवदारु
हिताय नित्यं गलगण्डरोगे ॥७०॥

तिलतैल ७५० मि.ली. और पाकार्थ जल ३ लीटर लें। १. गुडूची, २. निम्बत्वक्, ३. कण्टकारी, ४. कुटजत्वक्, ५. पीपर, ६. बलामूल, ७. अतिबला तथा ८. देवदारु—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः गुडूची से देवदारु तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीस लें और कल्क बना लें तथा ३ लीटर जल दोनों मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा करें तथा स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतार कर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को गरम दूध या गरम जल में ५ से १२ मि.ली. की मात्रा में मिलाकर पीने से गलगण्डरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—५ से १२ मि.ली.। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—गलगण्ड में।

४१. सिन्दूरादितैल (भा.प्र.)

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत् ।
केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाऽग्निना ॥७१॥
पाकशेषे दिनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् ।
एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥७२॥

१. सरसोतैल ७५० मि.ली., २. भृङ्गराजस्वरस ३ लीटर, ३. चक्रमर्दमूल १८५ ग्राम और ४. नागसिन्दूर ३६ ग्राम लें। सर्वप्रथम सरसोतैल का मूर्च्छन करें। ततः चक्रमर्द का सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। इसके बाद मूर्च्छित तैल में कल्क और भृङ्गराजस्वरस दोनों मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। स्नेहपाक की परीक्षा कर जलीयांश सूखने पर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें और दूसरे पात्र में रखकर तुरन्त गरम अवस्था में उसमें नागसिन्दूर अच्छी तरह मिलाकर पुनः थोड़ी देर के लिए गरम करें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रह करें। इस तैल को गण्डमाला रोग में लगाने पर गण्डमाला नष्ट हो जाती है।

मात्रा—यथावश्यक। **गन्ध**—कटुतैलगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **उपयोग**—गण्डमाला में।

४२. छुछुन्दरीतैल (च.द.)

छुच्छुन्दर्या विपक्वञ्च क्षणात्तैलवरं ध्रुवम् ।
अभ्यङ्गान्नाशयेन्नृणां गण्डमालां सुदारुणाम् ॥७३॥

तिलतैल २५० मि.ली. और छुछुन्दर का मांस ६० ग्राम लें। तिलतैल गरम कर उसमें छुछुन्दर का मांस मिलावें तथा १ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने तथा मांस जलने पर तैलपात्र को चूल्हे से नीच उतारकर कपड़े से तैल को छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल की भयंकर गण्डमाला में मालिश करने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है।

४३. शाखोटकनिम्बादितैल (च.द.)

गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा ।
बिम्ब्यश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं वाऽपि नावनम् ॥७४॥

(१) तिलतैल २५० मि.ली. और शाखोटक (सिहोड) मूलत्वक् ६० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः शाखोटक मूलत्वक् का चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीस लें और मूर्च्छित तैल में शाखोटककल्क और १ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश नष्ट होने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से तैल छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें।

(२) त्रिकोलमूल, कनेरमूल तथा निर्गुण्डीमूल—प्रत्येक २० ग्राम लेकर सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित तैल में कल्क और १ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश के नष्ट होने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत कर लें।

उपर्युक्त दोनों तैलों का नस्य प्रयोग करने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है।

४४. निर्गुण्डीतैल (च.द.)

निर्गुण्डीस्वरसे वाऽथ लाङ्गलीमूलकल्कितम्।
तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्॥७५॥

घटक—निर्गुण्डीस्वरस १ लीटर, तिलतैल २५० मि.ली. तथा लाङ्गलीमूल ६० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः लाङ्गलीमूल को सिल पर पीसकर कल्क बनावें। मूर्च्छित तैल में निर्गुण्डीस्वरस और इस कल्क को मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर १ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। दोनों नाकों में ३-३ बूँद इस तैल को डालने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है।

४५. व्योषादितैल (च.द.)

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च।
तैलमेभिः श्रृतं न स्यात् कृच्छ्रामप्यपचीं जयेत्॥७६॥

१. तिलतैल २५० मि.ली., २. सोंठ ८ ग्राम, ३. पीपर ८ ग्राम, ४. मरिच ८ ग्राम, ५. वायविडङ्ग ८ ग्राम, ६. मुलेठी ८ ग्राम, ७. सैन्धव ८ ग्राम और ८. देवदारु ८ ग्राम लें। तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः कल्क के सभी ७ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें। मूर्च्छित तैल में इस कल्क और १ लीटर जल को मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छान लें। ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अपची रोग में नस्यार्थ ३-३ बूँद दोनों नाकों में प्रयोग करने पर कुछ दिनों में असाध्य अपचीरोग नष्ट हो जाता है।

४६. चन्दनादितैल (च.द.)

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी।
एतैस्तैलं श्रृतं पीतं समूलामपचीञ्जयेत्॥७७॥

१. तिलतैल २५० मि.ली., २. लालचन्दन १२ ग्राम, ३. हरीतकी १२ ग्राम, ४. लाक्षा १२ ग्राम, ५. वच १२ ग्राम तथा ६. कटुकी १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम तैल का मूर्च्छन करें। ततः चन्दनादि ५ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क और १ लीटर जल को मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें तथा कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को ६-१२ मि.ली. की मात्रा में गरम दूध या गरम जल से पान करने पर अपचीरोग समूल नष्ट हो जाता है।

४७. गुञ्जाद्यतैल (च.द.)

गुञ्जाहयारिश्यामार्कसर्षपैर्मूत्रसाधितम्।
तैलन्तु दशधा पश्चात्कणालवणपञ्चकैः॥७८॥
मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तं सर्वावस्थागतां जयेत्।
अभ्यङ्गादपचीं नाडीं वल्मीकार्शोर्बुदव्रणान्॥७९॥

१. तिलतैल १ ली., २. गोमूत्र १ ली., ३. गुञ्जामूल ५० ग्राम, ४. कनेरमूल ५० ग्राम, ५. अनन्तमूल ५० ग्राम, ६. अर्कमूल ५० ग्राम और ७. सरसोंबीज ५० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः गुञ्जा से सर्षप पर्यन्त सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें तथा जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें और मूर्च्छित तैल में मिला दें। १ लीटर गोमूत्र देकर मन्दाग्नि में पाक करें। गोमूत्र के कारण तैल में अधिक फेनोद्गम होता है। अतः गोमूत्र थोड़ा-थोड़ा देकर तैल पाक करें। सावधानी से इस तैल का पाक करना चाहिए। कल्क का सम्यक् पाक करने के लिए तैल के बराबर जल देकर यहाँ पर पाक करना चाहिए। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक-परीक्षोपरान्त चूल्हे से तैलपात्र उतार लें तथा कपड़े से छान लें। एक बार सुपाचित इस तैल को पूर्ववत् घटकों से पुनः पुनः १० बार पाक करना चाहिए। इस तैल में १०० लीटर गोमूत्र देना चाहिए। १०वीं बार इस तैल का जब अन्तिम पाक करें तो तैल को छानने से बाद निम्नलिखित प्रक्षेप द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण इस तैल में अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

प्रक्षेप—पीपर, सैन्धवलवण, सौवर्चललवण, सामुद्रलवण, विडलवण, औद्भिल्लवण और मरिच—प्रत्येक १२ ग्राम लें। प्रक्षेप को मिलाने के बाद काचपात्र में तैल को संग्रहीत करें। इस तैल के अभ्यङ्ग से अपची, नाडीव्रण, वल्मीक, अर्श, अर्बुद और व्रण नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—यथावश्यक। **गन्ध**—तीव्रगोमूत्रगन्धी। **वर्ण एवं स्वरूप**—यह तैल कत्थई रंग का एवं गाढ़ा होता है। **उपयोग**—अपची, नाडीव्रण, अर्बुद एवं व्रण में।

गलगण्डादि रोगों में पथ्य (यो.र.)

छर्दिर्विरेचनं नस्यं स्वेदो धूमः शिराव्यधः।
अग्निकर्म क्षारयोगः प्रलेपो लङ्घनानि च॥८०॥
पुराणघृतपानञ्च जीर्णलोहितशालयः।
यवा मुद्गाः पटोलाश्च रक्तशिग्रुकठिल्लकम्॥८१॥
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं रूक्षाणि च कटूनि च।
दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु॥८२॥
गलगण्डगण्डमालाऽपचीग्रन्थ्यर्बुदातुरे।
यथादोषं यथाऽवस्थं पथ्यमेतत्प्रकीर्त्तयेत्॥८३॥

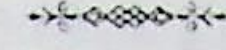
वमन, विरेचन, नस्य, स्वेदन, धूमपान, शिराव्यध,

अग्निकर्म, क्षारप्रयोग, प्रलेप, लङ्घन (उपवास या लघु भोजन), पुराना घृतपान, पुराना लाल शालीचावल, जौ, मूँग, परवल, सहिजन, करेला, शालिञ्चशाक, वेत्राग्रशाक, रूक्षद्रव्य, कटुद्रव्य दीपनीय द्रव्य, सभी प्रकार के गुग्गुलु के योग तथा शिलाजतु के योग—ये सभी पथ्य गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि और अर्बुद रोगों में दोष एवं बल या रोगी की अवस्था देखकर प्रयोग करना चाहिए।

गलगण्डादि रोगों में अपथ्य (यो.र.)

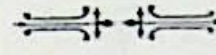
क्षीरेक्षुविकृतिः सर्वा मांसं चानूपसम्भवम्।
पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वभिष्यन्दकारि च ॥८४॥
गलगण्डगण्डमालाऽपचीग्रन्थ्यर्बुदामयान् ।
चिकित्सन्नगदङ्कारो यशोऽर्थी परिवर्जयेत् ॥८५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां गलगण्डादिरोगाधिकारः ।



दूध की विकृति यथा—रबड़ी, मलाई, दही, तक्र, छेना तथा अन्य दूध के भोज्य पदार्थ तथा इक्षुविकार–इक्षुरस, राव, गुड़, शर्करा आदि—सभी प्रकार के मांस विशेषकर आनूपमांस, उड़द की पिट्ठी, अम्लपदार्थ, मधुरपदार्थ, गुरुपदार्थ तथा अभिष्यन्दी पदार्थ खाने वाले गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि तथा अर्बुदरोगों की चिकित्सा करने वाला वैद्य यश और अर्थ की कामना से रोगी से त्याग देने को कहें। अर्थात् चिकित्सा नहीं करें।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य गलगण्डादिरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ श्लीपदरोगाधिकारः (४५)

श्लीपद का चिकित्सासूत्र (च.द.)

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तसेचनैः ।
प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥१॥

श्लीपदरोग में लंघन, लेप, स्वेदन, रेचन, रक्तमोक्षण और प्राय: कफघ्न तथा उष्ण उपचार करना चाहिए। क्योंकि श्लीपद में कफ की ही प्रधानता रहती है। आचार्य माधवकर के अनुसार —श्लीपदे श्लेष्मण एव प्राधान्यम्—

'त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ।
गुरुत्वञ्च महत्त्वञ्च यस्मान्नास्ति कफं विना'॥

१. धुस्तूरादि लेप (च.द.)

धुस्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ।
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥२॥

१. धत्तूरपत्र, २. एरण्डपत्र, ३. निर्गुण्डीपत्र, ४. पुनर्नवामूल, ५. सहिजनत्वक् और ६. सरसोंबीज (समभाग) लें। इन्हें कूट-पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को कटोरी में थोड़ा जल के साथ घोलकर गरम करें और सुखोष्ण लेप करें। ऐसा १५-१५ दिन तक लगातार करने से पुराना श्लीपद रोग नष्ट हो जाता है।

२. श्वेतार्कमूल लेप (च.द.)

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ।
प्रलेपाच्छ्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि स्थिरम् ॥३॥

श्वेत अर्कमूलत्वक्चूर्ण को काञ्जी के साथ सिल पर पीसकर कटोरी में गरम कर श्लीपद पर लेप करें। इससे लेप से बद्धमूल श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

३. वन्दाकशिफा प्रयोग (च.द.)

पिण्डारकतरुसम्भववन्दाकशिफाजयति सर्पिषा पीता ।
श्लीपदमुग्रं नियतं बद्धा सूत्रेण जङ्घायाम् ॥४॥

पिण्डारक (विकङ्कत) नाम के वृक्ष के ऊपर 'वन्दाक' ( ) जो है, उसे सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को २ ग्राम की मात्रा में घी के साथ सेवन करने से श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है। अथवा वन्दाक की छोटी-छोटी लकड़ी के टुकड़े में छेद करें और उसमें धागा पिरो दें। श्लीपद वाले पैर के ऊपर जाँघ में वन्दाक पिरोया धागा बाँध दें। कुछ दिनों में श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

४. चित्रकादि चार लेप (च.द.)

हितश्चालेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा ।
सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥५॥

१. चित्रकमूलचूर्ण को गोमूत्र मिलाकर गरम करें तत: सुखोष्ण लेप करने से श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

२. देवदारुचूर्ण को गोमूत्र मिलाकर गरम करें तत: सुखोष्ण लेप करने से श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

३. सरसोंबीजचूर्ण को गोमूत्र मिलाकर गरम करें तत: सुखोष्ण लेप करने से श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

४. सहिजनमूलत्वक्चूर्ण को गोमूत्र मिलाकर गरम करें तत: सुखोष्ण लेप करने से श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

वातज श्लीपद में क्रियाक्रम (च.द.)

स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक् ।
कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्येत्तु चतुरङ्गुले ॥६॥

वातज श्लीपद में स्नेहन, स्वेदन और उपनाह के बाद गुल्फ प्रदेश से ४ अङ्गुल ऊपर की शिरा को वेधकर दूषित रक्त को निकाल देना चाहिए।

पित्तज श्लीपद में क्रियाक्रम

गुल्फस्याधः शिरां विध्येच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे ।
पित्तघ्नीञ्च क्रियां कुर्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥७॥

पित्तजन्य श्लीपदरोग में मृदु द्रव्यों से स्वेदन और उपनाहन करने के बाद गुल्फ के नीचे की शिरा का वेध कर दूषित रक्त निकाल देना चाहिए। पित्तघ्न द्रव्यों का उपयोग तथा पित्तज अर्बुद एवं पित्तज विसर्प जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

५. मञ्जिष्ठादिलेप (च.द.)

मञ्जिष्ठां मधुकं रास्नां सहिंस्रां सपुनर्नवाम् ।
पिष्ट्वाऽऽरनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥८॥

१. मंजीठ, २. मुलेठी, ३. रास्ना, ४. कण्टकारी, ५. पुनर्नवामूल (समभाग) लें। इन्हें एक साथ कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें तथा सिल पर काञ्जी के साथ पीसकर पित्तज श्लीपद पर लेप करने से श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

कफज श्लीपद में क्रियाक्रम (च.द.)

शिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे ।
मधुयुक्तानि वा तीक्ष्णं कषायाणि पिबेन्नरः ॥९॥

कफज श्लीपद रोग में प्रभावित पैर के अँगूठे में क्षिप्रमर्म से २ अंगुल ऊपर की शिरा को वेधकर दूषित रक्त को निकाल देना चाहिए। अथवा तीक्ष्ण[1] 'आरग्वधादिगण' क्वाथ तथा 'मुष्ककादिगण' क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाना चाहिए।

६. सर्वश्लीपद रोग में उपचार (च.द.)

पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये।
पूतीकरञ्जच्छदजं रसं वाऽपि यथाबलम्॥१०॥

श्लीपदरोग की निवृत्ति के लिए सरसों का तैल २५ मि.ली. पिलाना चाहिए। अथवा—पूतिकरंज के पत्तों का स्वरस ४६ मि.ली. पिलाने से श्लीपद नष्ट हो जाता है।

७. पुत्रजीवक-वृद्धदारुक योगद्वय (च.द.)

अनेनैव प्रकारेण पुत्रजीवकजं रसम्।
काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं मूत्रैर्वा वृद्धदारजम्॥११॥

१. पुत्रजीवक (पितौंजिया=जियापोता) का रस १२ मि.ली., समान मात्रा में सरसों का तेल मिलाकर पिलाने से श्लीपद नष्ट हो जाता है।

२. वृद्धदारुक (विधारा) चूर्ण ३ ग्राम तथा काञ्जी या गोमूत्र ५० मि.ली. साथ मिलाकर पीने से सभी प्रकार का श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

८. हरिद्राचूर्ण प्रयोग (च.द.)

रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः।
वर्षस्थं श्लीपदं हन्ति दद्रुकुष्ठं विशेषतः॥१२॥

हल्दीचूर्ण ३ ग्राम तथा गुड़ ८ ग्राम दोनों को मिलाकर खाकर ५० मि.ली. गोमूत्र पिलाने से १ वर्ष का पुराना श्लीपदरोग, दद्रु तथा कुष्ठविकार नष्ट हो जाता है।

९. हरीतकीचूर्ण प्रयोग (च.द.)

गन्धर्वतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति।
श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण॥१३॥

एरण्डतैल में भृष्ट हरीतकी (छोटी हरड़) चूर्ण ३ ग्राम को ५० मि.ली. गोमूत्र के साथ दिन में दो बार पीने से ७ दिन में ही श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

१०. धान्याम्ल प्रयोग (च.द.)

धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम्।
दीपनञ्चामदोषघ्नमेतच्छ्लीपदनाशनम्॥१४॥

काञ्जी ५० मि.ली. तथा सरसोंतैल ५० मि.ली. दोनों को मिलाकर पिलाने से श्लीपदरोग, कफ-वात विकार एवं आमदोष नष्ट हो जाते हैं। यह अग्निदीपक है।

११. गोधावतीमूलादि प्रयोग (च.द.)

गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्माषेण्डरीं नरः।
जयेच्छ्लीपदकोपोत्थं ज्वरं सद्यो न संशयः॥१५॥

गोधावतीमूलचूर्ण (पाषाणभेद) और उड़दचूर्ण (माष) समभाग मिलाकर खाने से श्लीपद और श्लीपदजन्य ज्वररोग नष्ट हो जाता है।

१२. गुडूचीस्वरस प्रयोग (च.द.)

श्लीपदघ्नो रसोऽभ्यासाद् गुडूच्यास्तैलसंयुतः॥१६॥

गुडूचीस्वरस २५ मि.ली. और सरसोंतैल २५ मि.ली., दोनों मिलाकर प्रतिदिन २ बार सेवन करने से श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

१३. वृद्धदारुकसमचूर्ण (च.द.)

त्रिकटुत्रिफलाचव्यं दार्वीवरुणगोक्षुरम्।
अलम्बुषां गुडूचीञ्च समभागानि चूर्णयेत्॥१७॥
सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारस्य तत्समम्।
काञ्जिकेन च तत्येयमक्षमात्रं प्रमाणतः॥१८॥
जीर्णे चापरिहारं स्याद् भोजनं सार्वकामिकम्।
नाशयेच्छ्लीपदं स्थौल्यमामवातञ्च दारुणम्॥
गुल्मकुष्ठानिलहरं वातश्लेष्मज्वरापहम्॥१९॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. चव्य, ८. दारुहरिद्रा, ९. वरुणत्वक्, १०. गोक्षुर, ११. मुण्डी तथा १२. गुडूची—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें और १३. विधाराचूर्ण १२ भाग लें। इन सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और महीन छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में काञ्जी के साथ सेवन करने से श्लीपद, स्थौल्य, भयङ्कर आमवात, कुष्ठ, गुल्म, वातविकार तथा वातश्लेष्मज्वर नष्ट हो जाते हैं। औषधि के जीर्ण होने पर इच्छानुसार भोजन करना चाहिए।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—काञ्जी से। **गन्ध**—उत्कट गन्धी। **वर्ण**—श्वेताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—श्लीपद, स्थौल्य एवं आमवात में।

१४. पिप्पल्यादिचूर्ण (च.द.)

पिप्पली त्रिफला दारु नागरं सपुनर्नवम्।
भागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारकम्॥२०॥
काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं कर्षमात्रं प्रमाणतः।
जीर्णे चापरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम्॥२१॥

---

१. तीक्ष्णकषायाणि—आरग्वधादिगण-मुष्ककादिगणकृतानि, यथा—आरग्वध-मदन-गोप-घोण्टा-कण्टकी-कुटज-पाठा-पाटला-मूर्वेन्द्रयव-सप्तपर्ण-निम्ब-कुरुण्टक-दासी-गुडूची-चित्रक-शार्ङ्गष्ठा-करञ्जद्वय-पटोल-किराततिक्तकानि सुषवी चेति। (सु.सू.)
मुष्ककादिगण—मुष्कक-पलाश-धव-चित्रक-मदनवृक्ष-शिंशपा-वज्र-वृक्षास्त्रिफला चेति गणद्वयम्। (सु.सू.)

श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात्प्लीहानमेव च।
अग्निञ्च कुरुते घोरं भस्मकञ्च नियच्छति ॥२२॥

१. पीपर, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा ५. देवदारु, ६. सोंठ तथा ७. पुनर्नवामूल—प्रत्येक द्रव्य १३-१३ ग्राम और ८. विधाराचूर्ण ९२ ग्राम लें। सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर महीन छननी से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १२ ग्राम की मात्रा में काञ्जी के साथ प्रयोग करने पर श्लीपद, वातरोग, प्लीहा और भस्मकरोग नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण अग्निप्रदीपक है। औषधि पचने के बाद ही इच्छानुसार भोजन करना चाहिए।

मात्रा—३ ग्राम (आधुनिक मात्रा)। **अनुपान**—काञ्जी। **गन्ध**—उत्कटगन्धी। **वर्ण**—श्वेताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—श्लीपद, वातरोग, एवं प्लीहारोग में।

१५. मदनादिलेप

मदनञ्च तथा सिक्थं सामुद्रलवणं तथा।
महिषीनवनीतेन सन्तप्तं लेपनं हितम्॥
सप्ताहात् स्फुटितौ पादौ जायेते कमलोपमौ ॥२३॥

१. मदनफलपिप्पली, २. मोम, ३. सामुद्रलवण तथा ४. भैंस का मक्खन—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। मदनफल पिप्पलीचूर्ण और सामुद्रलवण को कूटकर महीन चूर्ण कर लें। इसके बाद स्टेनलेस स्टील के एक छोटे पात्र में मक्खन और मोम को मिलाकर एक साथ गरम करें। मोम को पूर्णतया पिघलाने के बाद स्टीलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें तथा मदनफलपिप्पलीचूर्ण को मिलाकर हिलाते रहें। ठण्डा होने के बाद काचपात्र में संग्रहीत करें। इस लेप को फटे पाँव पर लगाने से पैर एक सप्ताह में कमलपुष्प जैसा चिकना हो जाता है।

१६. कृष्णादि मोदक (च.द.)

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्द्धपलं पलम्।
विंशतिञ्च हरीतक्या गुडस्य तु पलद्वयम्।
मधुना मोदकं खादच्छ्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥२४॥

१. पीपर १२ ग्राम, २. चित्रकमूल २३ ग्राम, ३. दन्तीमूल ४६ ग्राम, ४. हरीतकी २० नग, ५. गुड़ ९५ ग्राम और ६. मधु ९५ ग्राम लें। हरीतकी का बीज निकाल लें तथा पीपर आदि तीनों द्रव्यों के साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। एक थाली में गुड़ और चूर्ण को एक साथ मिलाकर हाथ से मसलें, फिर मधु डालकर ५-५ ग्राम का मोदक बना लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके सेवन से भयङ्कर श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

१७. श्लीपदारि

निम्बं खदिरसारञ्च मधुना चाष्टमाषकम्।
गवां मूत्रेण पिष्ट्वा तु पिबेच्छ्लीपदशान्तये ॥२५॥

निम्बत्वक् तथा कथ (खदिरसार) समभाग लें। निम्बत्वक् तथा कथ का सूक्ष्म चूर्ण करें। दोनों को एक साथ पुनः छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। ८ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ इस चूर्ण को मिलाकर लेहन करें (चाटे) और बाद में ५० मि.ली. गोमूत्र पीना चाहिए। इसके सेवन से श्लीपदरोग शान्त हो जाता है।

१८. श्लीपदगजकेशरी रस (वैद्यकल्पद्रुम)

व्योषामृतं यमानी च सूतोऽग्निर्गन्धकं शिला।
सौभाग्यं जयपालञ्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥२६॥
भृङ्गगोक्षुरजम्बीरार्द्रकतोयैर्विमर्दयेत्।
अस्य रक्तिद्वयं खादेदुष्णतोयानुपानतः।
श्लीपदं दुस्तरं हन्ति प्लीहानं हन्ति सेवितः ॥२७॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. शुद्ध वत्सनाभ, ५. अजवायनचूर्ण, ६. शुद्ध पारद, ७. चित्रकमूल चूर्ण, ८. शुद्ध गन्धक, ९. शुद्ध मैनसिल, १०. शुद्ध टङ्कण और ११. शुद्ध जयपाल (समभाग) लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर अच्छी तरह से कज्जली बना लें। ततः इसी खरल में मैनसिल एवं टंकण मिलाने से बाद अन्य काष्ठौषधों को डालकर अच्छी तरह मर्दन करें। इसके बाद भृङ्गराजस्वरस, गोक्षुरक्वाथ, जम्बीरीनिम्बुस्वरस तथा आर्द्रक-स्वरस की १-१ भावना देकर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। उष्णजल के अनुपान से १-१ वटी सेवन करने पर भयंकर श्लीपद और प्लीहावृद्धिरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—श्लीपद एवं प्लीहारोग में।

१९. नित्यानन्दरस (र.सा.सं.)

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं मृतताम्रकम्।
कांस्यं वङ्गं हरितालं तुत्थं शङ्खं वराटिका ॥२८॥
त्रिकटु त्रिफला लौहं विडङ्गं पटुपञ्चकम्।
चविका पिप्पलीमूलं हवुषा च वचा तथा ॥२९॥
शटी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम्।
त्रिवृता चित्रकं दन्ती गृहीत्वा तु पृथक् पृथक् ॥३०॥
एतानि समभागानि सञ्चूर्ण्य गुडकीकृतम्।
हरीतकीरसं दत्त्वा दशगुञ्जोन्मितं शुभम् ॥३१॥
एकैकं भक्षयेन्नित्यं शीतञ्चानु पिबेज्जलम्।
श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसाश्रितञ्च यत् ॥३२॥
मेदोगतं धातुगतं निहन्ति नात्र संशयः।
अर्बुदं गण्डमालाञ्च वातरक्तं सुदारुणम् ॥३३॥

कफवातोद्भवं रोगमन्त्रवृद्धिं चिरन्तनीम्।
वातरक्ते वातकफे गुदरोगे कृमौ तथा ॥३४॥
अग्निवृद्धिं करोत्येष बलं वर्णञ्च सुस्थताम्।
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे ॥३५॥
नित्यानन्दरसश्चायं महाश्लीपदनाशनः।
रक्तजे पित्तजे चापि श्लीपदे योजयेदमुम्॥
नातः परतरं किञ्चिद् विद्यते श्लीपदामये ॥३६॥

१. हिङ्गुलोत्थपारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. ताम्रभस्म, ४. कांस्यभस्म, ५. वङ्गभस्म, ६. शुद्ध हरताल, ७. शुद्ध तुत्थ, ८. शंखभस्म, ९. वराटिकाभस्म, १०. सोंठचूर्ण, ११. पीपरचूर्ण, १२. मरिचचूर्ण, १३. आमलकीचूर्ण, १४. हरीतकीचूर्ण, १५. बिभीतकचूर्ण, १६. लौहभस्म, १७. वायविडङ्गचूर्ण, १८. सैन्धवलवण, १९. सामुद्रलवण, २०. सौवर्चललवण, २१. विडलवण, २२. औद्भिल्लवण, २३. चव्यचूर्ण, २४. पिपरामूलचूर्ण, २५. हाउबेरचूर्ण, २६. वचचूर्ण, २७. कचूरचूर्ण, २८. पाठाचूर्ण, २९. देवदारुचूर्ण, ३०. छोटी इलायचीचूर्ण, ३१. विधाराचूर्ण, ३२. निशोथचूर्ण, ३३. चित्रकमूलचूर्ण और ३४. दन्तीमूलचूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन करें। अच्छी कज्जली होने पर उसमें हरताल मिलाकर मर्दन करें, ततः अन्य भस्मों एवं क्रमशः काष्ठौषधिचूर्णों को मिलाकर मर्दन करें और हरीतकीक्वाथ की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें तथा १२५० मि.ग्रा. (१० गुञ्जा) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातः-सायं १-१ वटी खाकर शीतल जलपान करें। इसके सेवन से श्लीपदरोग, कफ-वात के प्रकोप जन्य तथा रक्त, मांस और मेदो धातु के आश्रित श्लीपदरोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अर्बुद, गण्डमाला, भयंकर वातरक्त, कफज एवं वातज रोग, पुराना आन्त्रवृद्धिरोग, वात-रक्त, वात-कफ रोग, गुदजरोग और कृमिरोग नष्ट हो जाते हैं। यह अग्नि, बल एवं वर्ण वर्धक है। इस औषधि को महान् आचार्य श्री गहननाथ जी ने लोककल्याणार्थ निर्माण किया था। श्लीपद रोग के लिए इससे अच्छी अन्य कोई दवा नहीं हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—श्लीपद, गलगण्ड, गण्डमाला एवं अर्बुद में।

२०. श्लीपदारिलौह (रसरत्नाकर)

हरीतक्या बिभीतस्य धात्र्याश्चूर्णं सुचूर्णितम्।
षट्तोलकप्रमाणेन ग्राह्यं तेषां गुणैषिणा ॥३७॥
तोलद्वयं कान्तलौहचूर्णं तद्वच्छिलाजतु।
कृत्वैकत्र समस्तेषु त्रिफलाक्वाथभावना ॥३८॥
श्लीपदाद्यगदध्वंसी सर्वव्याधिविनाशनः।
श्लीपदारिरिति ख्यातो लौहो मुनिभिरर्चितः ॥३९॥

१. हरीतकीचूर्ण २३ ग्राम, २. बहेड़ाचूर्ण २३ ग्राम, ३. आमलाचूर्ण २३ ग्राम, ४. कान्तलौहभस्म २३ ग्राम और ५. शुद्ध शिलाजतु २३ ग्राम लें। एकपात्र में गरम त्रिफलाक्वाथ में शुद्ध शिलाजतु को डालकर अच्छी तरह घोल लें तथा उसी घोल में त्रिफला एवं लौहभस्मचूर्ण को मिलाकर १ दिन तक मर्दन करें और २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'श्लीपदारिलौह' कहते हैं। इसके सेवन से श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है। यह अनुपान भेद से सभी रोगो का नाश करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—श्लीपद रोग में।

२१. सौरेश्वर घृत (च.द.)

सुरसा देवकाष्ठञ्च त्रिकटुत्रिफले तथा।
लवणान्यथ सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥४०॥
चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलुर्हवुषा वचा।
यवाग्रजञ्च पाठा च शट्येला वृद्धदारकम् ॥४१॥
कल्कैश्च कार्षिकैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दशमूलकषायेण धान्ययूषद्रवेण च ॥४२॥
दधिमस्तुसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक्।
पक्वं स्यादुद्धृतं कल्कात् पिबेत्तोलार्द्धकं हविः ॥४३॥
श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितञ्च यत्।
मेदःश्रितञ्च वातोत्थं हन्यादेव न संशयः ॥४४॥
अपचीं गण्डमालाञ्च अन्त्रवृद्धिं तथाऽर्बुदम्।
नाशयेद् ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजानि च॥
परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठकृमिविनाशनम् ॥४५॥

१. गोघृत ७५० ग्राम, २. दशमूलक्वाथ ७५० ग्राम, ३. धनियाँक्वाथ ७५० मि.ली. और ४. दधिमस्तु (दही का पानी) ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. तुलसी, २. देवदारु, ३. सोंठ, ४. पीपर, ५. मरिच, ६. आमला, ७. हरड़, ८. बहेड़ा, ९. सैन्धवलवण, १०. सामुद्रलवण, ११. सौवर्चललवण, १२. विडलवण, १३. औद्भिल्लवण, १४. वायविडङ्ग, १५. चित्रकमूल, १६. चव्य, १७. पिप्पलीमूल, १८. गुग्गुलु, १९. हाउबेर, २०. वच, २१. यवक्षार, २२. पाठा, २३. कचूर, २४. छोटी इलायची और २५. विधारा—प्रत्येक १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः तुलसी से विधारा तक के सभी २५ द्रव्यों को कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ

सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क और दशमूलक्वाथ दोनों को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर थोड़ी धनियाँहिम मिलाकर पाक करें। क्वाथ सूखने पर दधिमस्तु देकर पकावें। इसका जलीयांश सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर घृत का पुन: पाक करें। जल सूखने पर पाक-परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर इसे काचपात्र में संग्रहीत करें। ६ से १२ ग्राम की मात्रा में इस सौरेश्वरघृत को गरम दूध या गरम जल के साथ सेवन करने से कफज, वातज, मांसाश्रित, रक्ताश्रित तथा मेदोश्रित श्लीपदरोग नि:सन्देह नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह घृत अपची, गण्डमाला, आन्त्रवृद्धि, अर्बुद, ग्रहणीदोष, शोथ और गुदज रोगों का भी नाश करता है। यह घृत परम अग्निवर्धक है, हृद्य है, कोष्ठ की कृमियों का भी नाश करता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—उष्णदुग्ध या उष्णोदक से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—लवणीय। **उपयोग**—सभी प्रकार के श्लीपद, गण्डमाला, आन्त्रवृदि, अपची, अर्बुद आदि में।

२२. पञ्चाननघृत

शालञ्चिकापलद्वन्द्वं पौनर्नवपलद्वयम् ।
इन्द्रसूरपलद्वन्द्वं पलैकं चमरीफलम् ॥४६॥
गुञ्जादलं पलैकन्तु क्वाथयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ।
पादावशेषे विपचेद् गोघृतं प्रास्थिकं सुधीः ॥४७॥
अभया चित्रकं क्षारं सैन्धवं विश्वभेषजम् ।
एतेषां कर्षमानेन वस्त्रपूतं सुचूर्णितम् ॥४८॥
घृते सिद्धे प्रदातव्यं तच्च मासन्तु खादयेत् ।
पञ्चाननघृतं नाम श्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥४९॥
प्लीहगुल्मोदरानाहज्वरशोथविनाशनम् ।
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वमङ्गलम् ॥५०॥
गोमूत्रं श्लैष्मिके देयं दुग्धं वाते च पैत्तिके ।
सामान्यं भोजनं देयमनुपानं प्रकीर्त्तितम् ॥५१॥

क्वाथ—१. शालिञ्चशाक ९३ ग्राम, २. पुनर्नवामूल ९३ ग्राम, ३. निर्गुण्डी ९३ ग्राम, ४. चमरीफल ४६ ग्राम, ५. गुञ्जापत्र ४६ ग्राम तथा ६. गोघृत ७५० ग्राम लें।

कल्क—१. हरीतकी, २. चित्रकमूल, ३. यवक्षार, ४. सैन्धवलवण तथा ५. सोंठ—सभी द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। तत: शालिञ्च से गुञ्जापत्र तक के पाँचों द्रव्यों को यवकुट कर ७५० मि.ली. जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई (१८५ मि.ली.) शेष रहने पर छान लें तथा कल्क द्रव्यों (हरड़ से सोंठ तक के) का सूक्ष्मचूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीस लें। अब इस कल्क एवं क्वाथ को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल में मिलाकर पुन: पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षोपरान्त घृत पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छानकर शीतल होने पर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस पञ्चाननघृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में वातज एवं पित्तज श्लीपद में गरम गोदुग्ध से तथा कफज श्लीपद में गोमूत्र से १ महीना तक सेवन करें। सामान्य पथ्य-पूर्वक भोजन लेना चाहिए। इस घृत के सेवन से भयंकर श्लीपद रोग नष्ट हो जाता है। विश्वकल्याणार्थ इस घृत का निर्माण आचार्य श्री गहनानन्द जी ने किया था।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गोमूत्र से (दोषानुसार)। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—भयंकर श्लीपद में।

२३. पञ्चानन तैल

एतत्तैलं प्रकर्तव्यं कल्केन वस्तुना विना ।
घृतेन वा कृतं तैलं घृततुल्यगुणं भवेत् ॥५२॥

पञ्चाननघृत के कल्क-क्वाथ के द्रव्यों के द्वारा इस तैल का पाक करना चाहिए। इसका गुण भी पञ्चाननघृत जैसा बताया गया है।

क्वाथ—१. शालिञ्चशाक ९३ ग्राम, २. चित्रकमूल ९३ ग्राम, ३. निर्गुण्डी ९३ ग्राम, ४. चमरीफल ४६ ग्राम, ५. गुञ्जापत्र ४६ ग्राम तथा जल ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. हरड़, २. चित्रकमूल, ३. यवक्षार, ४. सैन्धव-लवण तथा ५. सोंठ—प्रत्येक १२ ग्राम लें। तिलतैल ७५० मि.ली. और पाकार्थ जल ३ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। तत: शालिञ्च से गुञ्जापत्र तक के सभी द्रव्यों को यवकुट कर ७५० मि.ली. जल में क्वाथ करें, चौथाई शेष रहे तो छानकर मूर्च्छित तैल में मिलावें। इसी प्रकार कल्क द्रव्यों को पीसकर कल्क बनावें और मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर ३ लीटर जल देकर पुन: पकावें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा कर चूल्हे से तैलपात्र को उतारकर कपड़े से छानकर ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग और पान करने से भयंकर श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—पानार्थ—६-१२ ग्राम। **अनुपान**—गोदुग्ध, गोमूत्र या गरमजल से। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ।

२४. विडङ्गादितैल (च.द.)

विडङ्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा ।

भद्रदार्वेलकाह्वे च सर्वेषु लवणेषु च ॥
तैलं पक्वं पिबेद्वाऽपि श्लीपदानां निवृत्तये ॥५३॥

१. वायविडङ्ग, २. मरिच, ३. अर्कमूलत्वक्, ४. सोंठ, ५. चित्रकमूल, ६. देवदारु, ७. एलुआ, ८. सैन्धव, ९. सामुद्रलवण, १०. सौवर्चललवण, ११. विडलवण तथा १२. औद्भिल्लवण—प्रत्येक द्रव्य २०-२० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिल तैल १ ली. का मूर्च्छन करें। ततः विडङ्ग से औद्भिल्लवण तक के सभी द्रव्यों को कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें तथा मूर्च्छित तैल में ४ लीटर जल के साथ इस कल्क को मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाक की परीक्षा कर स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। कपड़ा से तैल को छानकर शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का पान करने से श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध, गरम जल या गोमूत्र के साथ। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—तिक्त। **उपयोग**—श्लीपद में।

श्लीपद में पथ्य (यो.रत्ना.)

प्रच्छर्दनं लङ्घनमस्रमोक्षः
स्वेदो विरेकः परिलेपनं च।
पुरातनः षष्टिकशालयश्च
यवाः कुलत्थं लशुनं पटोलम् ॥५४॥
वार्ताकुशोभाञ्जनकारवेल्लं
पुनर्नवामूलकपूतिकाश्च ।
एरण्डतैलं सुरभीजलं च
कटूनि तिक्तानि च दीपनानि।
एतानि पथ्यानि भवन्ति पुंसां
रोगो सति श्लीपदनामधेये ॥५५॥

वमन, लंघन, रक्तमोक्षण, स्वेदन, विरेचन, लेप, पुराना साठीचावल, शालिचावल, जौ, कुलत्थ, लशुन, परवल, बैंगन, सहिजनफली, करैला, पुनर्नवामूल, मूली, पोईशाक, एरण्डतैल, गोमूत्र, कटु, तिक्त तथा दीपक द्रव्य तथा श्लीपद रोग में पथ्य हैं।

श्लीपदरोग में अपथ्य (यो.र.)

पिष्टान्नं दुग्धविकृतिं गुडमानूपमामिषम्।
रसं स्वादुं महेन्द्रोत्थं सह्यविन्ध्यनदीजलम्।
पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी परिवर्जयेत् ॥५६॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां श्लीपदाधिकारः।

उड़द की पिट्ठी, दूध की विकृति—दही, छेना, खोआ, मलाई आदि, गुड़, आनूपदेश के पशु-पक्षियों का मांस, मधुररस, महेन्द्रपर्वत, सह्याद्रि और विन्ध्यपर्वत से निकलने वाली नदियों का जल, पिच्छिल पदार्थ, गुरु और अभिष्यन्दी पदार्थ श्लीपद के रोगियों को नहीं सेवन करना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य श्लीपदरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।

अथ विद्रधिरोगाधिकारः (४६)

विद्रधि में क्रियाक्रम

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ।
मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोद्भवं विना ॥१॥

सभी प्रकार के विद्रधि रोग में जलौका (जोंक) लगाना, मृदु विरेचन, लघु भोजन और स्वेदन कर्म हितकर है, किन्तु पित्तज विद्रधि में स्वेदन कर्म निषिद्ध है।

विद्रधि में लेप (च.द.)

वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतान्वितैः।
सुखोष्णो बहलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥२॥

वातजविद्रधि में वातघ्न (दशमूलादि) द्रव्यों तथा एरण्डमूलादि द्रव्यों के चूर्ण में वसा, तैल या घृत मिलाकर जल के साथ द्रवित कर गरम करें और सुखोष्ण मोटा लेप करें।

स्वेदोपनाह (च.द.)

स्वेदोपनाहाः कर्त्तव्याः शिग्रुमूलसमन्विताः ॥३॥

सहिजनमूलत्वक् को पीसकर कल्क बना लें और उसे पुटपाक विधि से पाक कर स्वेदन और उपनाह करें।

१. अपक्व विद्रधि में लेप (च.द.)

यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैश्च लेपयेत्।
विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव विद्रधिः ॥४॥

जौ, गेहूँ एवं मूँग का आटा १२-१२ ग्राम लें और दूध के साथ मिलाकर आग पर गरम कर लेप करें। ऐसा करने से अपक्व विद्रधि स्वयं बैठ जाती है।

२. गुग्गुलु प्रयोग (च.द.)

पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाऽम्भसा।
गुग्गुलुं रुबुतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ॥५॥

१. पुनर्नवामूल, २. देवदारु, ३. सोंठ, ४. बिल्वछाल, ५. अग्निमन्थत्वक्, ६. सोनापाठात्वक्, ७. पाढलत्वक्, ८. गम्भारत्वक्, ९. शालपर्णी, १०. पृश्निपर्णी, ११. बृहती, १२. कण्टकारी, १३. गोक्षुर, १४. हरीतकी फलदल (समभाग), १५. शुद्ध गुग्गुलु और १६. एरण्डतैल लें। उपर्युक्त पुनर्नवा से हरीतकी तक के सभी द्रव्यों का यवकुट चूर्ण कर किसी पात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट को २५ ग्राम लें और १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस गरम क्वाथ में १ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु और एरण्ड तैल १२ मि.ली. मिलाकर सुखोष्ण पीने से वातज विद्रधि नष्ट हो जाती है।

३. पित्तज विद्रधि चिकित्सा (च.द.)

पैत्तिकं शर्करालाजमधुकैः शारिवायुतैः।
प्रदिह्यात् क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ॥६॥

पित्तज विद्रधि में—१. शर्करा (चीनी), २. धान का लावा, ३. मुलेठी, ४. सारिवा, ५. क्षीरकाकोली, ६. खस तथा ७. श्वेतचन्दन—प्रत्येक ५-५ ग्राम और चीनी २० ग्राम लें। इन सभी द्रव्यों को चूर्ण कर महीन छननी से छान लें और शीतल दूध के साथ मिलाकर लेप करने एवं पिलाने से विद्रधि नष्ट हो जाती है।

४. त्रिफलाक्वाथ एवं पञ्चवल्कल लेप (च.द.)

पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम्।
पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ॥७॥

त्रिफलाक्वाथ ५० मि.ली. में १२ ग्राम त्रिवृच्चूर्ण मिलाकर पिलाने या पञ्चवल्कलचूर्ण में घृत मिलाकर लेप करने से पैत्तिक विद्रधिरोग नष्ट हो जाता है।

५. पित्तज विद्रधि हर लेप (च.द.)

यष्ट्याह्वशारिवादूर्वानलमूलैः सचन्दनैः।
क्षीरपिष्टैः प्रलेपस्तु पित्तविद्रधिनाशनः ॥८॥

१. मुलेठी, २. शारिवामूल, ३. दूर्वा, ४. खस तथा ५. लालचन्दन—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें चूर्ण करें और दूध के साथ सिल पर पीसकर शीतल लेप करने से पित्तज विद्रधि रोग नष्ट हो जाता है।

६. कफज विद्रधि में स्वेद (च.द.)

इष्टकासिकतालौहगोशकृत्तुषपांशुभिः।
मूत्रपिष्टैश्च सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥९॥

१. ईंट का चूर्ण, २. बालू, ३. लौहचूर्ण, ४. गोबर, ५. धान की भूसी और ६. धूलकण (समभाग) लें। इन्हें चूर्ण कर गोमूत्र के साथ मिलाकर कटोरी में गरम करें। इसका स्वेदन करने से कफज विद्रधि का नाश होता है।

७. दशमूलक्वाथ परिषेक (च.द.)

दशमूलीकषायेण सस्नेहे रसेन वा।
शोथं व्रणं वा कोष्णेन सशूलं परिषेचयेत् ॥१०॥

दशमूलक्वाथ या मांसरस में घृत मिलाकर गरम-गरम परिषेचन करने से शोथ, व्रण एवं व्रणशूल नष्ट हो जाते हैं।

८. गुग्गुलु प्रयोग (च.द.)

त्रिफलाशिग्रुवरुणदशमूलाम्भसा पिबेत्।
गुग्गुलुं मूत्रयुक्तं वा विद्रधौ कफसम्भवे ॥११॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. सहिजनत्वक्, ५. वरुणत्वक्, ६. बिल्वमूलत्वक्, ७. अग्निमन्थत्वक्, ८. सोनापाठात्वक्, ९. पाढलत्वक्, १०. गम्भारत्वक्, ११. शालपर्णी, १२. पृश्निपर्णी, १३. बृहती, १४. कण्टकारीमूल तथा १५. गोक्षुरमूल (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से २५ ग्राम लें और १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में १ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु और २५ मि.ली. गोमूत्र मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से कफज विद्रधिरोग नष्ट हो जाता है।

रक्तज एवं आगन्तुज विद्रधि में (च.द.)

पित्तविद्रधिवत्सर्वां क्रियां निरवशेषतः।
विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥१२॥

रक्तज विद्रधि एवं आगुन्तुक विद्रधि में पित्तज विद्रधि जैसी सभी क्रिया करनी चाहिए।

९. शोभाञ्जन क्वाथ (च.द.)

शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः।
अचिराद् विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥१३॥

सहिजनत्वक् क्वाथ १०० मि.ली. में ५०० मि.ग्रा. शुद्ध हींग और १ ग्राम सैन्धवलवण मिलाकर प्रातःकाल पिलाने से शीघ्र ही सभी प्रकार की विद्रधि नष्ट हो जाती है।

१०. अन्तर्विद्रधिहर योग (च.द.)

शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रगालयेत्।
तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥१४॥

सहिजन की ताजी छाल को जल से धो-साफ कर सिल पर पीसकर कपड़ा में उस कल्क को रखकर रस निचोड़ लें। इस रस को २५ मि.ली. की मात्रा में लें तथा इसमें ५ से १० ग्राम मधु मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से अन्तर्विद्रधि रोग नष्ट हो जाती है।

११. पुनर्नवादि क्वाथ (च.द.)

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च।
जलेन क्वथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥१५॥

श्वेत पुनर्नवामूल और वरुणमूलत्वक् समभाग लेकर यवकुट करें और काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई (१०० मि.ली.) शेष रहने पर छान लें और मधु मिलाकर पिलाने से अपक्व विद्रधि नष्ट हो जाती है।

१२. वरुणादि गण क्वाथ (च.द.)

वरुणादिगणक्वाथमपक्वेऽभ्यन्तरोत्थिते[1]।
ऊषकादिप्रतीवापं[2] पिबेत् संशमनाय वै ॥१६॥

वरुणादिगण—१. वरुणत्वक्, २. अर्तगल, ३. श्वेत शिग्रुत्वक्, ४. रक्तशिग्रु, ५. गम्भारीत्वक्, ६. मेषशृङ्गी, ७. पूतिकरञ्ज, ८. कण्टकीकरंज, ९. मोरट, १०. अग्निमन्थ, ११. पीत सैरेयक, १२. श्वेत सैरेयक, १३. त्रिकोलफल, १४. वसुक, १५. वशिर, १६. चित्रकमूल, १७. शतावरी, १८. बिल्वत्वक्, १९. अजशृङ्गी, २०. दर्भ, २१. बृहती और २२. कण्टकारी (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और इस क्वाथ में ऊषकादिगण के द्रव्यों का प्रक्षेप १ ग्राम की मात्रा में मिलाकर पिलाने से अपक्व अन्तर्विद्रधि नष्ट हो जाती है।

उषकादिगण—औद्भिल्लवण, शुद्ध तुत्थ, भर्जित हीग, शुद्ध कासीस, बालुकाकासीस, सैन्धवलवण तथा शुद्ध शिलाजीत सभी समभाग में।

१३. पाठामूल चूर्ण (च.द.)

शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुतं तण्डुलाम्भसा पीतम्।
अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥१७॥

पाठामूलचूर्ण ३ ग्राम को मधु मिलाकर चाटने के बाद तण्डुलोदक १०० मि.ली. पीने से मनुष्य के अन्तर्विद्रधि नष्ट हो जाती है।

पक्व विद्रधि में क्रिया (च.द.)

अपक्वे त्वेतदुद्दिष्टं पक्वे च व्रणवत्क्रिया ॥१८॥

अपक्व विद्रधि में लेप-क्वाथ-परिषेचनादि क्रिया कही गई है किन्तु पक्व विद्रधि में पक्व जैसा पाटन, शोधन, रोपण आदि चिकित्सा करनी चाहिए।

पूयनिर्गमन में क्रिया (च.द.)

स्रुतेऽप्यूर्ध्वमधश्चैव मैरेयाम्लसुराऽऽसवैः।
पेया वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुरसोऽथवा ॥१९॥

मुख, नासा, कर्णादि ऊर्ध्व भाग से तथा गुदा, शिश्न एवं योनि आदि अधो भाग से अन्तर्विद्रधि जन्य पूय यदि निकलता हो तो मैरेयक (सुरा), काञ्जी, सुरा, आसव तथा 'वरुणादिक्वाथ'

१. वरुणादिगणो यथा—वरुणार्तगलशिग्रुमधुशिग्रुतर्कारीमेषशृङ्गी-पूतिकनक्तमालमोरटाग्निमन्थसैरीयकद्वयबिम्बीवसुकवशिरचित्रकशतावरी-बिल्वाजशृङ्गीदर्भाबृहतीद्वयञ्चेति। (सु.सू.)

२. ऊषकादिगणो यथा—ऊषस्तुत्थकं हिङ्गुकासीसद्वयसैन्धवं। सशिला-जतुकृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापहम्।। (अ.हृ.सू. १५)

एवं सहिजन की छाल के क्वाथ का सेवन करना लाभदायक होता है।

१४. कज्जली योग (यो.र.)

वरुणादिकषायेण रसगन्धककज्जली ।
भुक्ता निहन्ति माषैका बाह्यमन्तश्च विद्रधिम् ॥२०॥

समगुण कज्जली ६० मि.ग्रा. की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर लेहन करें और 'वरुणादिगण' का क्वाथ ५० से १०० मि.ली. तक मात्रा में पीने से अन्तर्बाह्य विद्रधि नष्ट हो जाती है।

१५. वरुणादिघृत

सिद्धं वरुणादिगणे विधिना तत्कल्कपाचितं सर्पिः ।
अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तकशूलं हुताशमान्द्यञ्च ॥२१॥
गुल्मानपि पञ्चविधान् नाशयतीदं यथाऽम्बु वायुसखम् ।
एतत्प्रातः प्रपिबेद् भोजनसमये तथा निशास्येऽपि ॥२२॥

गोघृत ७५० ग्राम, जल ३ लीटर, वरुणादिगण की औषधों का क्वाथ चूर्ण ३ किलो तथा वरुणादिगण की औषधों का कल्क १८५ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः वरुणादिगण की औषधों का चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें तथा वरुणादिगण की औषधों का चतुर्गुण जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें । अब इस क्वाथ और कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'वरुणादिगण' कल्क-क्वाथ साधित घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम पानी या गरम दूध के साथ सेवन करने से भयंकर अन्तर्विद्रधि, शिरःशूल, अग्निमांद्य तथा पाँच प्रकार के गुल्म नष्ट हो जाते हैं। इसे भोजन के समय लेना चाहिए।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम जल एवं गरम दूध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—अन्तर्विद्रधि एवं शिरःशूल में।

१६. प्रियंग्वादि तैल (च.द.)

प्रियङ्गुधातकीलोध्रकट्फलं तिनिशत्वचम् ।
एतैस्तैलं विपक्तव्यं विद्रधौ व्रणरोपणम् ॥२३॥

१. तिलतैल १ लीटर; २. प्रियङ्गुफूल, ३. धातकीपुष्प, ४. लोध्र, ५. कट्फलत्वक् और ५. तिनिशवृक्षत्वक्—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः प्रियङ्गु आदि पाचों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीस कर कल्क बना लें। इस कल्क और ४ लीटर जल दोनों मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जल सूखने पर पाक की परीक्षा कर कपड़ा से तैल को छान लें। ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का उपयोग विद्रधि और व्रणरोपण के लिए करते हैं।

विद्रधि रोग में पथ्य (यो.र.)

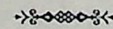
आमावस्थे रेचनानि लेपः स्वेदोऽस्रमोक्षणम् ।
जीर्णाः श्यामाककलमाः कुलत्था लशुनानि च ॥२४॥
रक्तशिग्रुश्च निष्पावः कारवेल्लं पुनर्नवा ।
श्रीपर्णं चित्रकः क्षौद्रं शोथोक्तानि च सर्वशः ॥२५॥
पक्वावस्थे शस्त्रकर्म पुराणा रक्तशालयः ।
घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपी धन्वजा रसाः ॥२६॥
शालिञ्चशाकं कदलं पटोलं हिमाबालुका ।
चन्दनं तप्तशीताम्बु सर्वं चापि व्रणोदितम् ॥२७॥
नराणां विद्रधिव्याधौ यथाऽवस्थ यथामलम् ।
पथ्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि महर्षिभिः ॥२८॥

विद्रधि की **आमावस्था** में विरेचन, लेप, स्वेदन, रक्तमोक्षण, पुराना साँमा (कुधान्य), शालीचावल, कुलथी, लशुन, लाल सहिजन, राजमाष, करैला, पुनर्नवा, चन्दन, चित्रक, मधु तथा शोथ प्रकरण में कहे गये सभी पथ्य यहाँ पर भी पथ्य है। विद्रधि की **पक्वावस्था** में शस्त्रकर्म, पुराना लालशालीचावल, घी, तैल, मुद्गयूष, विलेपी, जङ्गली पशु-पक्षियों के मांस रस, शालिञ्चशाक, कदलीफल, पटोल, कर्पूर, श्वेतचन्दन, गरम एवं शीतल जल अथवा उबले हुए जल को ठण्डा करके प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्रण में कहे गये सभी प्रकार के पथ्य को उपयोग में लाना चाहिए। मनुष्यों के विद्रधि रोग में तथा रोग की अवस्था एवं दोषानुषार महर्षियों ने पथ्य बताया है।

विद्रधि रोग में अपथ्य

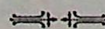
शोथिनां यान्यपथ्यानि व्रणिनामहितानि च ।
क्रमादामे च पक्वे च विद्रधौ वर्जयेन्नरः ॥२९॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विद्रधिरोगाधिकारः ।



शोथ रोगियों तथा व्रण रोगियों के लिए जो पदार्थ अपथ्य कहे गये हैं वे सभी पदार्थ आम विद्रधि एवं पक्व विद्रधि के लिए भी अपथ्य हैं। इनका सेवन नहीं करना चाहिए ।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य विद्रधिरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथ व्रणशोथाधिकारः (४७)

व्रणशोथ में क्रियाक्रम (सुश्रुत)

आदौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम्।
तृतीयमुपनाहञ्च चतुर्थीं पाटनक्रियाम् ॥१॥
पञ्चमं शोधनं कुर्यात् षष्ठं रोपणमिष्यते।
एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमो वैकृतापहः ॥२॥

१. **विम्लापन**—व्रण शोथ में सर्वप्रथम विम्लापन अर्थात् प्रलेप, परिषेक, अभ्यङ्गादि उपायों से शोथ का बाह्य शोधन करना चाहिए। विम्लापन का अर्थ मृद्वीकरण या शुद्धिकरण भी होता है।

२. **अवसेचन**—वमन, विरेचन और रक्तमोक्षणादि उपायों से आभ्यन्तर शोधन करना चाहिए।

३. **उपनाह**—स्वेदन, पाचनादि द्रव्यों से व्रण पर पुल्टिस बाँधना चाहिए।

४. **पाटन कर्म**—पक्व व्रण का शस्त्रों के द्वारा छेदन, भेदन, स्फोटन क्रिया के द्वारा व्रण की सफाई करनी चाहिए।

५. **शोधन कर्म**—निम्बादि, त्रिफलादि क्वाथों के द्वारा व्रण के पूय एवं जन्तुओं का नाश करना चाहिए।

६. **रोपण कर्म**—जात्यादि तैल एवं निम्बादि कल्कों के द्वारा व्रण का रोपण करना चाहिए।

७. **विकृतापह**—व्रण चिकित्सा का यह सातवाँ कर्म त्वचा पर हुई व्रण सम्बन्धी विकृतियों को नष्ट करना अर्थात् व्रण के निशान को नाश करना सवर्णीकरण सातवाँ कर्म कहा गया है।

१. व्रणशोथहरलेप

धुस्तूरमूलं लवणमुष्णं व्रणस्थितारम्भे।
दत्तं लेपान्नियतं व्रणशोथं हरति बहुदुष्टम् ॥३॥

धत्तूर के ताजा मूल को जल से साफ कर सिल पर कूट-पीसकर कल्क बना लें, उसमें थोड़ा-सा सैन्धवलवण मिलाकर गरम करें तथा व्रणशोथ पर सुखोष्ण लेप करें। कुछ दिनों तक नियमित लेप करने से व्रणशोथ एवं दूषितव्रण नष्ट हो जाता है।

२. वातज व्रणशोथहरलेप (च.द.)

कल्कः काञ्जिकसम्पिष्ट स्निग्धः शाखोटकत्वचः।
सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥४॥

शाखोटक (सिहोड) मूलत्वक् को कूट-पीसकर काञ्जी के साथ कल्क बनावें और थोड़ा-सा घृत मिलाकर गरम करें तथा सुखोष्ण लेप करें। इससे वातज व्रणशोथ नष्ट हो जाता है। जैसे—सर्पसमूह को गरुड़ नष्ट कर देता है वैसे ही सभी व्रणशोथ इसके प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं।

३. बीजपूरादिलेप

बीजपूरजटाहिंस्रा देवदारु महौषधम्।
रास्नाऽग्निमन्थो लेपोऽयं वातशोथविनाशनः ॥५॥

१. बिजौरानीबूमूलत्वक्, २. कण्टकारी, ३. देवदारु, ४. सोंठ, ५. रास्ना और ६. अग्निमन्थ (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण करें और आवश्यकतानुसार १० से २० ग्राम तक लेकर थोड़ा जल मिलाकर अग्नि पर गरम कर लेप करें। इससे वातज व्रणशोथ नष्ट हो जाता है।

४. पित्तज व्रणशोथ में लेप (च.द.)

दूर्वा च नलमूलञ्च मधुकं चन्दनं तथा।
शीतलाश्च गणाः सर्वे प्रलेपः पित्तशोथहा ॥६॥

दूर्वा, खस, मुलेठी, लालचन्दन तथा अन्य शीतवीर्य वाली औषधियाँ यथा—काकोल्यादिगण की औषधियों को कूट-पीसकर कल्क बनाकर शीतल लेप करने से पित्तज व्रणशोथ नष्ट हो जाता है।

५. पञ्चवल्कललेप (च.द.)

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः।
ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्याच्छोथनिर्वापणः परः ॥
आगन्तुजे रक्तजे च एष लेपोऽतिपूजितः ॥७॥

१. वटत्वक्, २. उदुम्बरत्वक्, ३. पीपलत्वक्, ४. प्लक्ष-त्वक् तथा ५. वेतसत्वक्—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार १०-२० ग्राम चूर्ण को जल में घोलकर आग में पकावें। जब गाढ़ा हो जाय तो उतारकर ठण्डा करें। उसमें थोड़ा गोघृत मिलाकर शीतल लेप करें। इसके प्रयोग से पित्तज, रक्तज एवं आगन्तुज व्रणशोथ नष्ट हो जाता है। आगन्तुज व्रणशोथ में सुखोष्ण लेप करना चाहिए।

६. अजगन्धादिलेप (च.द.)

अजगन्धाऽश्वगन्धा च काला सरलया सह।
एकेशिकाऽजशृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहृम् ॥८॥

१. वनजवायन, २. अश्वगन्धा, ३. नीलीमूल, ४. सरल-काष्ठ, ५. मेढासिङ्गी और ६. निशोथ—समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म

चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को लेकर जल में घोलें तथा आग में पकाकर सुखोष्ण लेप करें। इससे कफज व्रणशोथ नष्ट हो जाता है।

७. पुनर्नवादि लेप (च.द.)

पुनर्नवादारुशिग्रुदशमूलमहौषधैः ।
कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधीयते ॥९॥

१. पुनर्नवामूल, २. देवदारु, ३. शिग्रु (सहिजन) मूलत्वक्, ४. बिल्वमूलत्वक्, ५. अग्निमन्थमूलत्वक्, ६. सोनापाठामूलत्वक्, ७. पाढलमूलत्वक्, ८. गम्भारीमूलत्वक्, ९. बृहतीमूल, १०. कण्टकारीमूल, ११. शालपर्णी, १२. पृश्निपर्णी, १३. गोक्षुर और १४. सोंठ—प्रत्येक समभाग लें। इन्हें कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को लेकर कटोरी में पानी के साथ घोलें तथा आग पर गरम कर सुखोष्ण लेप करने से वात-कफज व्रणशोथ नष्ट हो जाता है।

लेप के सम्बन्ध में नियम (च.द.)

न रात्रौ लेपनं दद्याद् दत्तञ्च पतितं तथा ।
न च पर्युषितं शुष्यमाणं नैवावधारयेत् ॥१०॥
शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ।
न चापि मुखमालिम्पेत्तेन दोषः प्रसिच्यते ॥११॥

१. रात्रि में लेप नहीं लगाना चाहिए।
२. एक बार का लगाया हुआ लेप गिर जाने पर उसे पुनः नहीं लगाना चाहिए।
३. रात में पीसकर रखा हुआ वासी लेप प्रातः नहीं लगाना चाहिए।
४. एक बार का लगाया हुआ लेप सूखने पर जब गिर जाय तो गीला कर पुनः नहीं लगाना चाहिए।
५. पीड़नार्थ लगाया हुआ लेप नहीं उतारना चाहिए। क्योंकि वह सूखने पर अच्छी तरह से पीड़न करता है तथा भीतरी दोष को बाहर निकालता है।
६. व्रण के मुख पर लेप नहीं लगाना चाहिए क्योंकि व्रण से पूय निकलने में कठिनाई होती है।

कठिन शोथ में क्रियाक्रम (च.द.)

स्थिरान् मन्दरुजाञ्छोथान् स्नेहैर्वातकफापहैः ।
अभ्यज्य स्वेदयित्वा च वेणुनाड्या ततः शनैः ॥
विम्लापनार्थे मृद्नीयात् तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥१२॥

स्पर्श में कठिन और मन्द वेदना वाले शोथ में प्रथम वात एवं कफ नाशक तैलों से मर्दन करने के बाद स्वेदन करना चाहिए। ततः उस शोथ का विलिनीकरण करने के लिए बाँस की नाड़ी तथा अङ्गूठे की तली से धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिए।

रक्तमोक्षण उपदेश (च.द.)

रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विचक्षणः ।
शोथे महति संरब्धे वेदनावति च व्रणे ॥१३॥
निवारणाय पाकस्य वेदनोपशमाय च ।
अचिरोत्पतिते शोथे कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥१४॥

यदि शोथ बड़ा, कठिन एवं वेदनायुक्त हो तो बुद्धिमान् वैद्य उस रोगी के वेदना स्थान से पहले रक्तमोक्षण करें।

यदि शीघ्र उत्पन्न होकर व्रणशोथ अत्यन्त कठिन एवं बढ़ गया हो और वेदना भी अधिक हो तो पाक-निवारणार्थ एवं वेदना निवारणार्थ रक्तमोक्षण करना चाहिए।

रक्तमोक्षण के गुण (च.द.)

यो न याति शमं लेपस्वेदसेकापतर्पणैः ।
सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ॥१५॥

लेप, स्वेद, सेंक तथा अपतर्पण आदि क्रियाओं से भी व्रण शोथ न मिटे तो रक्तमोक्षण के प्रभाव से वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

रक्तमोक्षण का महत्व (च.द.)

एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः ।
रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चास्ति रुक् ॥

व्रणशोथ में लेपादि समस्त क्रियाएँ एक तरफ और रक्तमोक्षण एक तरफ लाभकारी माना जाता है। अर्थात् लेप, सेंक, स्वेदादि समस्त क्रियाओं की अपेक्षा शोथनिवारणार्थ रक्तमोक्षण अधिक लाभकारी है। क्योंकि रक्त ही दूषित होकर शोथ और वेदना को उत्पन्न करता है। यदि सर्वप्रथम उस विकृत रक्त को निकाल दिया जाय तो वेदना और शोथादि विकृतियाँ स्वयं ही नष्ट हो जाती हैं।

पाटनादि शस्त्रकर्म (च.द.)

स चेदेवमुपक्रान्तः शोथो न प्रशमं व्रजेत् ।
तस्योपनाहैः पक्वस्य पाटनं हितमुच्यते ॥१७॥

यदि लेप, सेंक, स्वेद तथा रक्तमोक्षण करने पर भी शोथ नष्ट नहीं हो तो उसे उपनाहन (पुल्टिस) के द्वारा पकाकर शस्त्रकर्म से चीरा लगाकर पूयादि पदार्थों को बाहर निकालकर व्रणोचार करना चाहिए।

८. उपनाह द्रव्य (पाचनार्थ) (वङ्गसेन)

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः ।
शक्तवः किण्वमतसी प्रदेहः पाचनः स्मृतः ॥१८॥

१. शणबीज, २. मूलीबीज, ३. शिग्रुबीज, ४. तिल, ५. सर्षप (सरसों), ६. जौ का सत्तू, ७. किण्व (Yeast) और ८. अतसीबीज—समभाग लें। इन्हें पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें।

आवश्यकतानुसार जल मिलाकर कटोरी में घोलें और आग में पकाकर गाढ़ा हलवा जैसा करें। इसे पतले कपड़े पर फैलाकर लेप उपनाह करें। कपड़े के बीच में एक छोटा छिद्र कर दें जिससे व्रण मुख खुला रहे। व्रण को पकाने के लिए यह श्रेष्ठ उपनाह है।

९. शक्तूपनाह (च.द.)

तैलेन सर्पिषा वाऽपि ताभ्यां वा शक्तुपिण्डिका ।
सुखोष्णः शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥१९॥

तैल अथवा घी समान भाग जौ के सत्तू में डालकर अग्नि पर पका लें और सुखोष्ण पिण्डिका से उपनाहवत् बाँधें। इससे व्रणशोथ पक जाता है।

१०. तिलादि शक्तूपनाह (च.द.)

सतिला सातसीबीजा दध्यम्ला शक्तुपिण्डिका ।
सकिण्वकुष्ठलवणा शस्ता स्यादुपनाहने ॥२०॥

१. तिल, २. अतसीबीज, ३. दही, ४. काञ्जी, ५. किण्व (Yeast), ६. शक्तु, ७. कूठ और ८. सैन्धवलवण—समभाग लें। दही एवं काञ्जी छोड़कर शेष सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार १० ग्राम इस चूर्ण को लेकर इसमें दही और काञ्जी मिलाकर गरम करें। साफ महीन कपड़े पर रखकर उपनाह बाँधें।

शस्त्र क्रिया के अयोग्य व्रण में दारण कर्म (च.द.)

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि ।
मर्मोपरि च जाते च पक्वे शोथे च दारणम् ॥२१॥

बालक, वृद्ध, शस्त्रकर्म को न सह सकने वाला सुकुमार व्यक्ति, क्षीण शरीर वाला व्यक्ति, डरपोक और स्त्रियाँ—ये सभी शस्त्रकर्म के अयोग्य हैं तथा मर्मस्थान पर उत्पन्न हुए व्रण में भी शस्त्रकर्म का निषेध है। अतः इन सभी अवस्थाओं में व्रण होने पर दारण क्रिया करनी चाहिए अर्थात् व्रणशोथ पर क्षारादि लेप से पका देते हैं, जिससे व्रण स्वयं ही विदीर्ण हो जाता है।

११. गोदन्तघृष्टलेप (च.द.)

गवां दन्तं जले घृष्टं बिन्दुमात्रं प्रलेपनात् ।
अत्यन्तकठिने चापि शोथे पाचनभेदनम् ॥२२॥

गाय के दाँत को जल के साथ पत्थर पर घिसकर बिन्दु मात्र व्रणशोथ पर लेप करने से अत्यन्त कठिन व्रण पककर फट जाता है।

१२. क्षार प्रयोग (च.द.)

क्षारद्रव्याणि वा यानि क्षारो वा दारणः परः ॥२३॥

क्षार द्रव्य जैसे मुश्क, कुटज, पलास, फरहद, अपामार्ग, सेहुण्ड, चिञ्चा, अर्क और तिलनाल—इनसे निर्मित क्षार का व्रण-शोथ पर प्रतिसारण करने से व्रणशोथ पककर स्वयं फट जाता है।

१३. सर्पनिर्मोकभस्म प्रयोग (च.द.)

कटुतैलान्वितैर्लेपात् सर्पनिर्मोकभस्मभिः ।
चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति द्रुतम् ॥२४॥

साँप की केंचुल को जलाकर मसि भस्म बना लें। उस मसि को कटुतैल में मिलाकर मलहम बना लें। इस मलहम का व्रण शोथ पर लेप करने पर शोथ का शमन हो जाता है और पक्व व्रण फट जाता है।

१४. चिरबिल्वादि लेप (च.द.)

चिरबिल्वाग्निको दन्ती चित्रको हयमारकः ।
कपोतकङ्कगृध्राणां पुरीषमपि दारणम् ॥२५॥

१. करञ्जमूलत्वक्, २. कलिहारीमूल, ३. दन्तीमूल, ४. चित्रकमूल, ५. करवीरमूल, ६. कपोतविष्ठा, ७. कङ्कपक्षी की विष्ठा तथा ८. गृद्ध की विष्ठा—समभाग लें। इन्हें पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें और जल में घोलकर व्रण पर लेप करने से व्रण स्वयं विदीर्ण हो जाता है।

१५. निपीडन प्रयोग (च.द.)

द्रव्याणां पिच्छिलानां तु त्वङ् मूलानि निपीडनम् ।
यवगोधूममाषाणां चूर्णानि च समासतः ॥२६॥

पिच्छिल द्रव्यों (लसीले वृक्ष जैसे सेमल) के मूलत्वक् को लेकर चूर्ण करें तथा जौ, गैहूँ और उड़द का चूर्ण प्रत्येक समभाग लेकर उसमें जल मिलाकर गरम करें तथा व्रण पर सुखोष्ण लेप करें। इसके सेवन से व्रण का निपीडन होता है। अर्थात् व्रण के समस्त पूय को एकत्रित कर बाहर निकाल देता है।

व्रणशोधक योग

१६. पटोल्यादि क्वाथ (च.द.)

ततः प्रक्षालनं क्वाथः पटोलीनिम्बपत्रजः ।
अविशुद्धे विशुद्धे च न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥२७॥

पटोलपत्र और निम्बपत्र के क्वाथ से व्रण प्रक्षालन करने पर व्रण शुद्ध होकर भरने लग जाता है। यदि व्रण शुद्ध है तो न्योग्राधादिगण के क्वाथ से प्रक्षालन करना चाहिए।

दोषानुसार प्रक्षालनार्थ क्वाथ

पञ्चमूलीद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके ।
आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥२८॥

वातदोषप्रधान व्रण के प्रक्षालनार्थ दोनों पञ्चमूलीक्वाथ तथा दशमूलक्वाथ, पित्तजव्रण में न्यग्रोधादिक्वाथ और कफदोष प्रधान व्रण में आरग्वधादिक्वाथ से प्रक्षालन करना चाहिए।

१७. तिलाष्टक (च.द.)

तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद् घृतम्।
मधुकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद् व्रणशोधनः ॥२९॥

१. तिलकल्क, २. सैन्धवलवण, ३. हल्दी, ४. दारुहल्दी, ५. त्रिवृत्, ६. गोघृत, ७. मुलेठी और ८. निम्बपत्र—इन्हें पीसकर सुखोष्ण लेप करने से व्रण शुद्ध हो जाता है।

१८. शोधनकेशरीलेप (च.द.)

निम्बपत्रं तिलं दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम्।
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेशरी ॥३०॥

१. निम्बपत्र, २. तिल, ३. दन्तीमूल, ४. त्रिवृत्, ५. सैन्धवलवण तथा ६. मधु—समभाग लें। मधु छोड़कर सभी द्रव्यों को एक साथ चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। उसमें मधु मिलाकर ढीला कर लें और पक्वव्रण पर लेप करें। इस शोधन केशरी लेप से दुष्ट व्रण शुद्ध हो जाता है।

१९. अनन्तमूलप्रलेप (च.द.)

एकं वा शारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ॥३१॥

अकेले शारिवामूल को चूर्ण कर जल में घोलें और गरम कर सुखोष्ण लेप करने से व्रण शुद्ध हो जाता है।

२०. पटोल्यादिलेप (च.द.)

पटोलीतिलयष्ट्याह्वत्रिवृद्दन्तीनिशाद्वयम्।
निम्बपत्राणि चालेपः सपटुर्व्रणशोधनः ॥३२॥

१. पटोलपत्र, २. तिल, ३. मुलेठी, ४. त्रिवृत, ५. दन्तीमूल, ६. हल्दी, ७. दारुहल्दी और ८. निम्बपत्र—समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। एक कटोरी में जल के साथ घोलकर गरम करें। थोड़ा गाढ़ा होने पर किञ्चिद् सैन्धवलवण मिलाकर व्रण पर लेप करने से व्रण शुद्ध हो जाता है।

२१. त्रिफलादि क्वाथ (च.द.)

त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधादिबलाकुशाः।
निम्बकोलकपत्राणि कषायः शोधने हितः ॥३३॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. खदिरत्वक्, ५. दारुहल्दी, ६. न्यग्रोधादि गण[1] की औषधियाँ, ७. बलामूल, ८. कुश, ९. निम्बपत्र तथा १०. बदरी के पत्ते—समभाग लें। इन सभी द्रव्यों का यवकुट चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। ५० ग्राम इस यवकुट को आठ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। सुखोष्ण इन क्वाथ से व्रण का प्रक्षालन करने से व्रण शुद्ध हो जाता है।

२२. तिलकल्क प्रयोग (च.द.)

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम्।
कल्कः संरोपणः कार्यस्तिलजो मधुसंयुतः ॥३४॥

जिन व्रणों में मांस नष्ट हो गया हो तथा मांस सड़ गया हो एवं व्रण मांस की गहराई में हो जिसके कारण व्रण का रोपण नहीं होता हो तो ऐसे व्रणों में तिल कल्क में मधु मिलाकर व्रणपूरण करने से व्रण का रोपण होता है।

२३. सप्तपर्णक्षीर एवं शरपुङ्खामूल लेप (च.द.)

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं प्रलेपेन।
मधुयुक्ता शरपुङ्खा दुष्टव्रणरोपणी कथिता ॥३५॥

दुष्टव्रण पर सप्तपर्ण का दूध लेप करने से व्रण का रोपण-पूरण हो जाता है। अथवा शरपुङ्खामूल त्वक्चूर्ण को शहद में मिलाकर व्रण पर लेप करने से व्रण का रोपण होता है।

२४. कपालास्थिलेपन (च.द.)

मानुषशिरःकपालं तदस्थि वा लेपनं मूत्रेण।
रोपणमिदं क्षतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥३६॥

मनुष्य के शिर (कपाल) की पुरानी हड्डी को गोमूत्र के साथ पत्थर पर घिसें और दूषितव्रण पर लेप करें। हजारों योगों से दूषित व्रण यदि ठीक नहीं हुआ है तो इसके प्रयोग से निश्चित ही दूषित व्रण रोपित-पूरित हो जाता है।

२५. सुषव्यादिलेप (च.द.)

सुषवीपत्रपत्तूरकर्णमोटकुठेरकाः।
पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणाः ॥३७॥

शालिञ्चशाक, कर्णमोट तथा कुठेरक (तुलसी-भेद)—इन्हें समस्त या किसी एक द्रव्य को लेकर सिल पर पीसें और व्रण पर सुखोष्ण लेप करने से व्रण का रोपण होता है।

२६. पञ्चवल्कलाद्यचूर्ण (च.द.)

पञ्चवल्कलचूर्णैर्वा शुक्तिचूर्णसमायुतैः।
धातकीचूर्णलोध्रैर्वा तथा रोहन्ति ते व्रणाः ॥३८॥

१. वटत्वक्, २. उदुम्बरत्वक्, ३. अश्वत्थत्वक्, ४. प्लक्षत्वक्, ५. वेतसत्वक् (समभाग) लें; ६. लोध्रचूर्ण, ७. धातकीचूर्ण तथा ८. शुक्तिभस्म लें। पञ्चवल्कल के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म एवं वस्त्रपूत चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण में शुक्तिभस्म या लोध या धातकीचूर्ण मिलाकर व्रण पर अवचूर्णन करने से व्रण का रोपण होता है।

---

१. न्योग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षमधुककपीतनककुभाम्रकोशाम्रचोरकपत्रजम्बूद्वयप्रियालमधूकरोहिणीवञ्जुलकदम्बबदरीतिन्दुकीसल्लकीरोध्रसावररोध्रभल्लातकपलाशा नन्दीवृक्षश्चेति। (सु.सू. ३८)
अन्यच्च न्यग्रोधादिगणो यथा—न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षलोध्रत्वचः शुभाः। करवीरार्ककुटजाः कषाया व्रणरोपणाः।

२७. श्वेतार्कमूललेप

लौहकुद्दालके घृष्ट्वा लिम्पाकफलवारिणा।
श्वेतार्कसम्भवं मूलं लेपं दद्यात् क्षतोपरि॥
अपि योगशतासाध्यं क्षतं हन्ति न संशयः॥३९॥

श्वेतपुष्प का अर्कमूल लेकर लोहे की कुदाल के पीठ पर जम्बीरी नीबू के रस में घिसें और व्रण पर लेप करें। सैकड़ों औषधियों के लेप से असाध्य व्रण इसके लेपन से ठीक हो जाता है।

२८. नवनीत प्रयोग

श्वेतकरवीरमूलस्वरसं द्विपलोन्मितम्।
पलाष्टकमिदं गव्यक्षीरमेकत्र मिश्रयेत्॥४०॥
दधि कृत्वा तदावर्त्त्य निर्मथ्य नवनीतकम्।
गृहीत्वा तेन लेपेन क्षतं हन्ति चिरोत्थितम्॥४१॥

श्वेतकरवीरमूलस्वरस २ पल (९३ मि.ली.) तथा गोदुग्ध ३७५ मि.ली. लें। दोनों मिलाकर एक पात्र में उबालें। ठण्डा होने पर इसमें दही का जमावन देकर दही बनावें। दही को मथकर मक्खन निकालें। इस मक्खन का लेप करने से चिरकालीन व्रण भी ठीक हो जाता है।

२९. आस्फोतोद्भव निर्यास लेप

आस्फोतोद्भवनिर्यासः क्षतं हन्ति चिरोत्थितम्॥४२॥

श्वेतअपराजितामूलस्वरस का लेप करने से दूषित (चिरकालीन) व्रण ठीक हो जाता है।

३०. निम्बपत्रादि वर्ति (च.द.)

निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता।
वर्त्तिस्तिलानां कल्को वा शोषयेद् रोपयेद् व्रणान्॥

१. निम्बपत्र, २. घृत, ३. मधु, ४. दारुहरिद्राचूर्ण और ५. मुलेठीचूर्ण—समभाग लें। इन सभी औषधियों को सिल पर महीन पीसें। ततः चार अङ्गुल लम्बे-चौड़े महीन एवं साफ वस्त्र खण्ड पर लेपकर वर्ति बनावें। इस वर्ति को व्रण के अन्दर रख देने से व्रण का स्राव बन्द हो जाता है तथा व्रण का रोपण हो जाता है। इसी तरह तिल कल्क में मधु मिलाकर वर्ति बनावें और व्रण के अन्दर रखें। इससे भी व्रण का शोषण एवं रोपण होता है।

३१. अश्वगन्धादि लेप (वङ्गसेन)

अश्वगन्धारुहालोध्रं कट्फलं मधुयष्टिका।
समङ्गा धातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम्॥४४॥

१. अश्वगन्धा, २. दूर्वा, ३. लोध्र, ४. कट्फल, ५. मुलेठी, ६. मंजीठ तथा ७. धातकीपुष्प—समभाग लें। सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। जल में घोलकर आग पर पका लें तथा सुखोष्णलेप करें। यह परम व्रणरोपक है। अन्य औषधियों से नहीं रोपण होने वाले व्रण इसके लेप से ठीक हो जाते हैं।

३२. करञ्जादि लेप (भा.प्र.)

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीलेपो हन्याद् व्रणक्रिमीन्।
लशुनस्याथवा लेपो हिङ्गुनिम्बकृतोऽथवा॥४५॥

करञ्जपत्र, निम्बपत्र और निर्गुण्डीपत्र—इन तीनों को समभाग में लेकर सिल पर महीन पीस लें और व्रण पर शीतल लेप करें। इससे कृमिजन्य व्रण नष्ट हो जाते हैं। अथवा केवल लशुन पीसकर लेप करने से कृमिजन्य व्रण नष्ट हो जाते हैं। अथवा हींग और निम्बपत्र दोनों को सिल पर पीसकर लेप करने से कृमिजन्य व्रण नष्ट हो जाते हैं।

३३. व्रणधूपन (च.द.)

वाताभिभूतान् सास्रावान् धूपयेदुग्रवेदनान्।
यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः॥४६॥

वातप्रधान व्रण, जिसमें पूय का स्राव हमेशा होता रहता हो तथा उग्रवेदना हो, ऐसे व्रणों में— १. जौ चूर्ण, २. गोघृत, ३. भोजपत्र, ४. मोम, ५. गन्धविरोजा तथा ६. देवदारु समभाग लेकर घृत और मोम छोड़कर अन्य सभी औषधियों का यवकुट कर लें। उस यवकुट में घी और द्रवित मोम को मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। एक छोटे मिट्टी के शराव में निर्धूम अग्नि रखें और उस पर इस धूपन द्रव्य को छिड़कें और इससे उत्पन्न धुएँ को व्रण पर लगावें। ऐसा करने से व्रणों की कृमियाँ नष्ट हो जाती हैं तथा व्रण का रोपण एवं पूरण हो जाता है।

३४. श्रीवासादि धूप (च.द.)

श्रीवासगुग्गुल्वगुरुशालनिर्यासधूपिताः।
कठिनत्वं व्रणा यान्ति नश्यन्त्यास्राववेदनाः॥४७॥

१. गन्धविरोजा, २. गुग्गुलु, ३. अगरु और ४. राल—इन चारों द्रव्यों का यवकुट कर चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट चूर्ण का धूपन देने से दूषित व्रण का स्राव एवं कृमियाँ नष्ट हो जाती हैं। साथ ही जो व्रण दीर्घकाल के कारण कठिन हो जाते हैं वह भी इस धूपन से नष्ट हो जाते हैं। व्रण की वेदना और स्राव दोनों नष्ट हो जाते हैं।

३५. निम्बपत्रादिचूर्ण (भा.प्र.)

निम्बपत्रवचाहिङ्गुसर्पिर्लवणसर्षपैः।
धूपनं स्याद् व्रणे रौक्ष्यकृमिकण्डूरुजाऽपहम्॥४८॥

१. निम्बपत्र, २. वच, ३. हींग, ४. घृत, ५. सैन्धवलवण तथा ६. सरसों—समभाग लें। इन्हें यवकुट कर संग्रहीत करें। घृत मिलाकर निर्धूम अग्नि में धूपन करने से तथा धूम का स्पर्श व्रण पर होने से व्रण एवं व्रणकृमि तथा वेदना नष्ट हो जाती है।

३६. त्रिफलागुग्गुलु (च.द.)

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो-
व्रणा महान्तः सरुजाः सशोथाः ।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन
पीतेन शान्तिं त्रिफलारसेन ॥४९॥

त्रिफलाचूर्ण २५० ग्राम, शुद्ध गुग्गुलु २५० ग्राम तथा त्रिफलायवकुट २५० ग्राम लें। त्रिफलायवकुट को १ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। उस गरम त्रिफला क्वाथ में शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर आग पर पुनः पकावें। जब गुग्गुलु क्वाथ में घुल जाय और हलवा जैसा हो जाय तो चूल्हे से नीचे उतारकर उसमें त्रिफलाचूर्ण डालकर अच्छी तरह मिलावें। ततः सिल पर पीस लें और ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी त्रिफलाक्वाथ के साथ सेवन करने से व्रण शोथ, पूयस्राव-युक्त व्रण, दुर्गन्धयुक्त व्रण, पीड़ायुक्त व्रण एवं शोथयुक्त व्रण नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—ऊपर के पाठ में त्रिफला क्वाथ में शुद्ध गुग्गुलु अच्छी तरह मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से स्रावयुक्त व्रण, पूय-युक्त व्रण, दुर्गन्धपूययुक्त व्रण, पीड़ायुक्त व्रण, शोथयुक्त व्रण नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—त्रिफलाक्वाथ से। **वर्ण**—कृष्ण। **उपयोग**—व्रण में।

३७. विडङ्गादिगुग्गुलु (च.द.)

विडङ्गत्रिफलाव्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम् ।
सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः ॥
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनम् ॥५०॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण, ५. सोंठचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग लें और ९. शुद्ध गुग्गुलु ७ भाग लें। एक छोटी लौह कड़ाही में थोड़ा पानी देकर गरम करें। पानी गरम होने पर उसमें शुद्ध गुग्गुलु डालकर दर्वी से चलावें। जब गुग्गुलु घुलकर हलवा जैसा हो जाय तो विडङ्ग से मरिचचूर्ण तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। ततः सिल पर थोड़ा घी देकर पीसें और ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी प्रातः-सायं त्रिफलाक्वाथ से सेवन कर पर दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ और नाडीव्रणरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—त्रिफलाक्वाथ से। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—दुष्टव्रण, अपची एवं कुष्ठ में।

३८. जात्यादिघृत (च.द.)

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुका दार्वी निशा शारिवा-
मञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः ।
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति च ॥

१. गोघृत १ किलो; २. चमेलीपत्र, ३. निम्बपत्र, ४. पटोलपत्र, ५. कटुकी, ६. हल्दी, ७. दारुहल्दी, ८. अनन्त-मूल, ९. मंजीठ, १०. हरीतकी, ११. मोम, १२. तुत्थ, १३. मुलेठी और १४. करञ्जीबीज—प्रत्येक द्रव्य २०-२० ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः चमेली से पटोलपत्र तक के ३ द्रव्यों के सिल पर पीस लें। पुनः मोम छोड़कर अन्य सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। चमेली के पत्रादि के साथ इन्हें भी मिलाकर पीसें। अब मूर्च्छित घृत में यह कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मध्यमाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाक की परीक्षा करें और घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को व्रण पर लगाने से दुष्टव्रण, पूति-पूयव्रण नष्ट हो जाते हैं। मर्माश्रित, स्राव-युक्त व्रण, शीर्णमांस वाला गहरा व्रण (गम्भीर व्रण), वेदनायुक्त एवं नाडीव्रण नष्ट हो जाते हैं। व्रण सूखकर रोपण हो जाता है।

मात्रा—यथावश्यक। **अनुपान**—केवल बाह्यप्रयोगार्थ। **गन्धक**—घृतगन्धी। **वर्ण**—हरिताभ **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी व्रणों में।

३९. गौराद्यघृत (च.द.)

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च ।
प्रपौण्डरीकं ह्रीबेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम् ॥५२॥
जाती निम्बपटोलञ्च करञ्जं कटुरोहिणी ।
मधूच्छिष्टं मधूकं च महामेदा तथैव च ॥५३॥
पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
एष गौरो महायोगः सर्वव्रणविशोधनः ॥५४॥
आगन्तुसहजाश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः ।
विषयामपि नाडीं तु शोधयेच्छीघ्रमेव तु ॥५५॥

कल्क—१. गोरोचन, २. हल्दी, ३. मंजीठ, ४. जटामांसी, ५. मुलठी, ६. पुण्डरियाकाष्ठ, ७. सुगन्धबाला, ८. नागरमोथा, ९. लालचन्दन, १०. चमेलीपत्र, ११. निम्बपत्र, १२. पटोल-पत्र, १३. करञ्जपत्र, १४. कटुकी, १५. मधूच्छिष्ट, १६. महुआफूल और १७. महामेदा—प्रत्येक द्रव्य १० ग्राम लें।

क्वाथ—पञ्चवल्कल क्वाथ ३ लीटर तथा घी ७५० ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः गोरोचन छोड़कर हरिद्रा से महामेदा पर्यान्त सभी १६ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ पीसें और कल्क बनावें। मूर्च्छित घृत में इस कल्क और

पञ्चवल्कल क्वाथ को मिलाकर मन्दाग्नि में पाक करें। क्वाथ सूखने पर ३ लीटर जल देकर मन्दाग्नि पर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारें और कपड़े छान लें। जब यह घी सुखोष्ण रहे उसी समय गोरोचन का सूक्ष्म चूर्ण कर घी के साथ अच्छी तरह खरल में पीस लें। उसके बाद सारे घी में मर्दित गोरोचन को मिला दें। ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह गौराद्यघृत सभी व्रणों का नाश करता है। व्रणों पर इसका लेप करने से सहज, चिरकालीन तथा नाड़ीव्रण शीघ्र ही शुद्ध कर रोपण हो जाता है।

मात्रा—बाह्यलेप। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीत। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के व्रणों में।

४०. गौराद्यजातिकादितैल (च.द.)

गौराद्यं जातिकाद्यं च तैलमेव प्रसाध्यते।
तैलं सूक्ष्मानने दुष्टे व्रणे गम्भीर एव च ॥५६॥

गौराद्य घृत और जात्यादि घृत में कहे गये सभी द्रव्यों के द्वारा तिलतैल को विधिपूर्वक पाक कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का लेपन करने से सूक्ष्म छिद्र वाले, दूषित एवं गम्भीरव्रण नष्ट हो जाते हैं।

४१. करञ्जादिघृत (च. द.)

नक्तमालस्य पत्राणि तरुणानि फलानि च।
द्वे हरिद्रे मधूच्छिष्टं मधुकं तिक्तरोहिणी ॥५७॥
मञ्जिष्ठाचन्दनोशीरमुत्पलं शारिवे त्रिवृत्।
एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥५८॥
दुष्टव्रणप्रशमनं तथा नाडीविशोधनम्।
सद्यच्छिन्नव्रणानाञ्च करञ्जाद्यमिदं शुभम् ॥५९॥

१. करञ्ज के कोमल पत्ते, २. करञ्ज की फलमज्जा, ३. चमेलीपत्र, ४. परवलपत्र ५. निम्बपत्र, ६. हल्दी, ७. दारुहल्दी, ८. मोम, ९. मुलेठी, १०. कटुकी, ११. मंजीठ, १२. लालचन्दन, १३. खस. १४. नीलकमल, १५ श्वेत अनन्तमूल, १६. कृष्ण अनन्तमूल, १७. त्रिवृत—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें। गोघृत ७५० ग्राम तथा जल ३ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः करञ्ज, चमेली, निम्ब के ताजे पत्तों को सिल पर पीस लें। मोम छोड़कर शेष सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। पुनः दोनों कल्कों (पत्तों का तथा सूखे द्रव्यों) को एक साथ पीसें। कल्क और जल दोनों को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। व्रणों पर इस घृत का लेप करने से दुष्टव्रण, नाडीव्रण, सद्योव्रण, छिन्नव्रण शुद्ध होकर व्रण का रोपण हो जाता है।

मात्रा—यथावश्यक। **अनुपान**—केवल व्रण पर लेपन। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—दुष्टव्रण एवं नाड़ीव्रण में।

४२. प्रपौण्डरीकाद्यघृत (च.द.)

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।
सहरिद्रैः शृतं सर्पिः सक्षीरं व्रणरोपणम् ॥६०॥

१. पुण्डरियाकाष्ठ, २. मंजीठ, ३. मुलेठी, ४. खस, ५. पद्मकाष्ठ तथा ६. हल्दी—प्रत्येक द्रव्य ४० ग्राम; गोघृत ७५० ग्राम और ८. गोदुग्ध ३ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः पुण्डरियाकाष्ठ से हल्दी तक के सभी ६ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। इस कल्क और गोदुग्ध दोनों को मूर्च्छित घृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब दूध सूख जाय तो कल्क के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पकावें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से घृत को छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत का बाह्य लेप करने से सभी तरह के व्रण शुद्ध होकर नष्ट हो जाता है।

मात्रा—यथावश्यक बाह्य लेपनार्थ। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सभी प्रकार के व्रणों में लेप।

४३. तिक्ताद्यघृत (च.द.)

तिक्तासिक्थनिशायष्टिनक्ताह्वफलपल्लवैः ।
पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्व्रण्यं घृतं स्मृतम् ॥६१॥

गोघृत १ किलो तथा जल ४ लीटर लें।

१. कटुकी, २. मोम, ३. हल्दी, ४. मुलेठी, ५. करञ्जफलमज्जा, ६. करञ्जपत्र, ७. पटोलपत्र, ८. चमेलीपत्र और ९. निम्बपत्र—समभाग लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः कटुकी से निम्बपत्र तक सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें और मूर्च्छित घृत में कल्क और जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूख जाने पर घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से घृत को छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत का बाह्य प्रयोग (लेपन) करने से सभी प्रकार के व्रण नष्ट हो जाते हैं।

४४. जात्यादितैल (भा.प्र.)

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः।
सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥६२॥
मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया पद्मकेशरम्।
तुत्थकं शारिवा बीजं नक्तमालस्य दापयेत् ॥६३॥

एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।
विषव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कुष्ठरोगिणि ॥६४॥
दद्रुवीसर्परोगेषु कीटदंष्ट्रेषु सर्वथा ।
सद्यःशस्त्रप्रहारेषु दंष्ट्राविद्धेषु चैव हि ॥६५॥
नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणम् ।
म्रक्षणेन हितं तैलमिदं शोधनरोपणम् ॥
तैलं जात्यादिनाम्नैतत्प्रसिद्धं भिषगादृतम् ॥६६॥

तिलतैल—१लीटर तथा जल ४ लीटर लें।

कल्क—१. चमेलीपत्र, २. निम्बपत्र, ३. परवलपत्र, ४. करञ्जपत्र, ५. मोम, ६. मुलेठी, ७. कूठ, ८. हल्दी, ९. दारुहल्दी, १०. कटुकी, ११. मंजीठ, १२. पद्मकाष्ठ, १३. लोध्रत्वक्, १४. हरीतकी, १५. कमलकेशर, १६. तुत्थ, १७. अनन्तमूल और १८. करञ्जबीज—प्रत्येक द्रव्य १४ ग्राम लें। सर्वप्रथम चमेली से करञ्जपत्रों को कूटकर जल के साथ सिल पर पीस लें और कल्क बना लें, साथ ही मुलेठी से करञ्जबीज के सभी द्रव्यों को सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब दोनों कल्कों एवं मोम को एक साथ पुनः पीसकर मूर्च्छित तैल में मिला दें। ४ लीटर जल भी तैल में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैल पाक की परीक्षा कर चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस जात्यादितैल को व्रण पर लगाने से विषाक्त व्रण, दूषितव्रण, स्फोट, गलितकुष्ठ, दद्रु, विसर्प, कीटदंशोत्थ व्रण, तुरन्त शस्त्र से कटा हुआ व्रण, विषैले जानवर (कुत्ते-सियार आदि) से काटे हुए व्रण, नख-दन्त से कटे व्रण नष्ट हो जाते हैं। इस तैल को लगाने से दूषित मांस का अपकर्षण हो जाता है और व्रण शोधित होकर भर जाता है। यह जात्यादितैल वैद्यों में प्रसिद्ध तथा समादृत है।

मात्रा—बाह्यलेप। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—हरिद्वर्ण। **उपयोग**—सभी प्रकार के व्रण में।

४५. विपरीतमल्लतैल (च. द.)

सिन्दूरहिङ्गुविषकुष्ठरसोनचित्र-
बाणाङ्घ्रिलाङ्गलिककल्कविपक्वतैलम् ।
प्रासादमन्त्रयुतफूत्कृतनुन्नफेनो
दुष्टव्रणप्रशमनो विपरीतमल्लः ॥६७॥
खड्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंश-
नाडीव्रणव्रणविचर्चिकुष्ठपामाः ।
एतन्निहन्ति विपरीतकमल्लनाम
तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ॥६८॥

सरसोंतैल[1] १ लीटर तथा जल ४ लीटर लें।

कल्क—१. नागसिन्दूर, २. हींग, ३. वत्सनाभविषचूर्ण, ४. कूठचूर्ण, ५. लशुननिस्तुष, ६. चित्रकमूलचूर्ण, ७. शरपुंखामूलचूर्ण और ८. लाङ्गलीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य २० ग्राम लें। सर्वप्रथम सरसोंतैल का मूर्च्छन करें। ततः सभी कल्क द्रव्यों को जल के साथ सिल पर पीस लें और मूर्च्छित तैल में कल्क एवं जल को मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूख जाने पर पाक की परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। तैल तैयार होते समय फेनोद्गम होता है। प्रासाद नामक मन्त्र को पढ़कर तैल में फूत्कार (फूँक) मारनी चाहिए जिससे तैल का फेन मिट जाय। (प्रासाद शिव मन्त्र—"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः शिवाय स्वाहा"।) ततः तैल जब शीतल हो जाय तो काचपात्र में संग्रहीत करें। 'विपरीतमल्ल' नामक इस तैल को व्रण पर बाह्य लेपन करने, तलवार आदि के आघात जन्य व्रण, बढ़े हुए गलगण्ड, भयंकर उपदंश, नाडीव्रण, सामान्य व्रण, विचर्चिका, कुष्ठ, पामा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इस तैल के उपयोग के समय यथारुचि भोजन, शयन और आसन में कोई परहेज नहीं है।

मात्रा—बाह्य प्रयोग। **गन्ध**—हिङ्गुगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **उपयोग**—गलगण्ड, नाडीव्रण, सद्योव्रण एवं कुष्ठ में।

४६. व्रणराक्षसतैल-१

सूतकं गन्धकं तालं सिन्दूरञ्च मनःशिला ।
रसोनञ्च विषं ताम्रं प्रत्येकं कर्षमाहरेत् ॥६९॥
कुडवं सार्षपं तैलं साधयेत्सूर्यतापतः ।
नाडीव्रणञ्च विस्फोटं मांसवृद्धिं विचर्चिकाम् ॥७०॥
दद्रुकुष्ठापचीकण्डूमण्डलानि व्रणांस्तथा ।
व्रणराक्षसनामेदं तैलं हन्ति गदान् बहून् ॥७१॥

१. सरसोंतैल १९० मि.ली.; २. पारद, ३. गन्धक, ४. हरताल, ५. नागसिन्दूर, ६. मैनसिल, ७. लशुन, ८. वत्सनाभ तथा ९. ताम्रभस्म—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली करें। ततः उस कज्जली में हरताल एवं मैनसिल मिलाकर मर्दन करें। अच्छी कज्जली बनने के बाद उसमें नागसिन्दूर एवं ताम्रभस्म मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर उसमें वत्सनाभ और लशुन कल्क मिलावें। पुनः इस मिश्रित औषधि को सरसोंतैल में अच्छी तरह खरल करें। पुनः एक गहरी स्टील की थाली में रखें और तैल से चार गुना जल मिलाकर कड़ी धूप में रोज रखें तथा धूप में ही पकावें। रोज ३-४ बार

१. तैलं च सार्षपं तन्त्रान्तरसंवादात्; उक्तं च—सिन्दुरहिङ्गविषकुष्ठरसोनबाणपुङ्ख्यारुणानलहला ह्यमूलकल्कैः । एतच्चतुर्गुणजले विधिवत् सुसिद्धं सिद्धार्थतैलमिति सिद्धफलप्रदिष्टम्। (च.द., शिवदास सेन)

चम्मच से तैल को चलावें। जब जल सूख जाय तो कपड़ा से छानकर तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'व्रणराक्षस तैल' को व्रणों पर लगाने से नाडीव्रण, विस्फोट, व्रणमांसवृद्धि, विचर्चिका, दद्रु, कुष्ठ, अपची, कण्डू, मण्डलकुष्ठ तथा सामान्य व्रण नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—ग्राह्य लेपनार्थ। **गन्ध**—लसुनगन्धी। **वर्ण**—काला। **उपयोग**—नाडीव्रण, दुष्टव्रण एवं कुष्ठ में।

४७. व्रणराक्षसतैल-२

कुडवं सार्षपं तैलं तदर्द्धं गोघृतस्य च।
एकीकृत्य पचेत्तत्तु सूर्यावर्त्त रसेन तु ॥७२॥
चित्रपत्रपलं कल्कं दत्त्वा तत्र विपाचयेत्।
तत्कल्कं स्रावयित्वा तु चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् ॥७३॥
गन्धकं शुद्धसिन्दूरं हरितालं मनःशिला।
हरिद्रा गैरिकं राजी कर्षार्द्धं प्रतिभागिकम् ॥७४॥
भागार्द्धं पारदञ्चापि कज्जलीकृत्य मिश्रयेत्।
सुतप्ते मिश्रयित्वा तु तप्तं कृत्वा प्रलेपयेत् ॥७५॥
कण्डूं विचर्चिकां पामां क्लेदं कुष्ठं सुदुस्तरम्।
वातरक्तं व्रणान् सर्वान् विषविस्फोटदद्रुकम् ॥
निहन्त्याशु महाश्वित्रं तैलन्तु व्रणराक्षसम् ॥७६॥

१. सरसोंतैल १९० मि.ली., २. गोघृत ९५ ग्राम, ३. सूर्यावर्त (हुरहुर) स्वरस ७५० मि.ली., ४. चित्रकपत्रकल्क ४६ ग्राम, ५. गन्धकआमलासार, ६. नागसिन्दूर, ७. हरताल, ८. मैनसिल, ९. हल्दी ६ ग्राम, १०. गैरिक ६ ग्राम, ११. राई ६ ग्राम और १२. पारद ३ ग्राम। सर्वप्रथम कटुतैल (सरसोंतैल) को तप्त कर सूर्यावर्त स्वरस या अर्कपत्रस्वरस और चित्रककल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो उतारकर कपड़ा से तैल को छान लें। इसके पूर्व एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बना लें और उसमें हरताल डालकर मर्दन करें। ततः मनःशिला आदि सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें और छने हुए गरम तैल में इस कज्जली मिश्रित चूर्ण को डालकर अच्छी तरह से कलछी से मिलावें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को हिलाकर कटोरी में रखें और थोड़ा गरम कर व्रणादि पर लेप करने से कण्डू, विचर्चिका, पामा, स्रावयुक्तकुष्ठ, वातरक्त, सभी प्रकार के व्रण, विषाक्त स्फोट, द्रदु तथा महाश्वेतकुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं। इसे 'व्रणराक्षसतैल' कहते हैं।

मात्रा—बाह्य लेपनार्थ आवश्यकतानुसार। **गन्ध**—सरसों तैलगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **उपयोग**—कण्डू, पामा, विचर्चिका, श्वेतकुष्ठ, कुष्ठ एवं सभी प्रकार के व्रण में।

४८. दूर्वादितैल (च. द.)

दूर्वास्वरससिद्धं वा तैलं कम्पिल्लकेन च।
दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम् ॥७७॥

१. तिलतैल ७५० मि.ली., २. दूर्वास्वरस ३ लीटर, ३. कम्पिल्लक ९० ग्राम और ४. दारुहल्दीत्वक्चूर्ण ९० ग्राम लें। कम्पिल्लक को शुद्ध कर उसे ग्रहण करें। दारुहल्दीत्वक् का चूर्ण करें और शुद्ध कम्पिल्लक चूर्ण मिलाकर सिल पर पीसें। दूर्वा स्वरस और कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पकावें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस दूर्वादितैल को व्रणों पर लगाने से व्रण का रोपण होता है।

मात्रा—यथावश्यक बाह्योपचारार्थ। **वर्ण**—हरिद्वर्ण। **उपयोग**—सभी व्रणों का रोपण करता है।

४९. दूर्वादिघृत (च.द.)

येनैव विधिना तैलं घृतं तेनैव साधयेत्।
रक्तपित्तोत्तरं ज्ञात्वा सर्पिरेवावचारयेत् ॥७८॥

गोघृत ७५० ग्राम, दूर्वास्वरस, शुद्ध कम्पिल्लक तथा दारुहल्दी त्वक् चूर्ण लें। जिस विधि से ऊपर दूर्वादि तैल को पकाया है उसी प्रकार इस घृत को पकाना चाहिए। इस घृत का सेवन करने से रक्तपित्त के साथ-साथ उत्पन्न व्रण नष्ट हो जाते हैं। जिन व्रणों से अधिक रक्तस्राव होता है तथा दाहादि अधिक हो तो इसके लेपन से ठीक हो जाते हैं। इसका आभ्यन्तर प्रयोग भी करना चाहिए।

मात्रा—६ से १२ ग्राम गरम दूध या गरम जल से। वाह्य प्रयोग में लेपन करें। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **वर्ण**—हरिद्वर्ण। **गन्धक**—घृतगन्धी। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—रक्तपित्त एवं व्रण में।

५०. अङ्गारकतैल (च.द.)

कुठारकात् पलशतं क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥७९॥
कल्कैः कुठारापामार्गप्रोष्ठिका मक्षिकायुतैः।
एतदङ्गारकं तैलं व्रणशोधनरोपणम्।
नाडीषु परमाभ्यङ्गो निजास्वागन्तुकीषु च ॥८०॥

वनतुलसी का पञ्चाङ्ग ५ किलो, जल १३ लीटर (१ द्रोण) तथा तिलतैल ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. कुठारक, २. अपामार्गपञ्चांग, ३. पोठी मच्चली तथा ४. मरी मक्खी—ये प्रत्येक द्रव्य ६० ग्राम लें। इन्हें सिल पर पीसकर कल्क बना लें। तिलतैल का मूर्च्छन करें और कुठारक को यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें।

चौथाई शेष रहने पर छानकर इस क्वाथ और कल्क को एक साथ मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैलपाक की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'अङ्गारकतैल' कहते हैं। यह तैल व्रणशोधक एवं व्रणरोपक है। दोषज एवं अभिघातज तथा आगन्तुज व्रणों में इसका लेपन करने से नाडी में पूरण और अभ्यङ्ग करने से बहुत लाभ मिलता है।

व्रणरोग में पथ्य

विम्लापनं रक्तमुक्तिरुपनाहो विपाटनम्।
शोधनं रोपणं षष्ठं पुराणाः सितशालयः ॥८१॥
यवषष्टिकगोधूमा जाङ्गला मृगपक्षिणः।
विलेपी लाजमण्डश्च कटुतैलं घृतं मधु ॥८२॥
तिलं मसूरतुवरीमुद्गयूषाश्च शर्करा।
आषाढफलवार्त्ताकुकर्कोटकपटोलकम् ॥८३॥
कारवेल्लं निम्बपत्रं वेत्राग्रं बालमूलकम्।
सुनिषण्णकशालिञ्चतण्डुलीयकवास्तुकम् ॥८४॥
त्रिफला पनसं मोचं दाडिमं कटुकीफलम्।
जीवन्ती सैन्धवं द्राक्षा स्वादुतिक्तकषायकाः ॥८५॥
समस्तमेतदन्नं तु स्निग्धमुष्णं द्रवोत्तरम्।
एषणं शमनं दाहः स्वेदनं बन्धनक्रिया ॥८६॥
व्रणावचूर्णनं लेपो धूपनं पत्रधारणम्।
उशीरं बालव्यजनं चन्दनं तिललेपनम् ॥८७॥
तप्तशीताम्बु कर्पूरं वैकृतो विकृतिः परा।
एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथावस्थं यथामलम्॥
व्रणशोथे व्रणे सद्योव्रणे नाडीव्रणेऽपि च ॥८८॥

विम्लापन, रक्तमोक्षण, उपनाह, व्रण चीरना, शोधन और रोपण—ये छः कर्म व्रण चिकित्साक्रम में कहे गये हैं। पुराना सफेद चावल, यव, गेहूँ, साठी चावल, जंगली पशु-पक्षियों का मांस, विलेपी, लाजमण्ड, कटुतैल, घृत, मधु, तिल, मसूर, अरहर, मूँग का यूष, शक्कर, आषाढफल (आषाढ में होने वाले फल), बैंगन, खेखसा (कर्कोटक), परवल, करैला, निम्बपत्र, वेतसाग्रपत्र, छोटी मूली, सुनिषण्णक, शालिञ्चशाक, चौराई-शाक, बथुआ शाक, त्रिफला, कटहल (पनस), केला, अनार, कटुकी, जीवन्ती शाक, सैन्धव, मुनक्का, मधुर, तिक्त एव कषायद्रव्य, स्निग्ध, उष्ण एवं द्रव (खिचड़ी) पदार्थ का भोजन हितकर है। एषण, शमन, दाहकर्म, स्वेदनकर्म, व्रण-बन्धन, व्रण पर अवचूर्णन, लेप, धूपन, पत्रधारण, खस के पंखों की हवा, श्वेतचन्दन का लेप, तिलों का लेप, गरम एवं ठण्डा पानी, कर्पूर तथा व्रण का बाहरी स्वरूप यदि विकृत दिखता हो तो उसकी साफ-सफाई एवं सुधार करना—ये सभी दोष एवं व्रण की अवस्थानुसार व्रणशोथ, व्रण, सद्योव्रण और नाड़ीव्रण में पथ्य है।

व्रणरोग में अपथ्य

नवानि धान्यानि तिलान् कलायान्
माषान् कुलत्थान् कृशरान् हिमाम्भः।
क्षीरेक्षुजातान् विविधान् विकारान्
मद्यानि शाकानि च पत्रवन्ति ॥८९॥
अजाङ्गलं मांसमसात्म्यमन्नं
विदाहि विष्टम्भि गुरूणि चापि।
कट्वम्लशीतं लवणं व्यवाय-
मायासमुच्चैः परिभाषणं च ॥९०॥
प्रियासमालोकनमह्नि निद्रां
प्रजागरं चङ्क्रमणं नितान्तम्।
सदास्थितिं प्रागधिरोपणं च
नस्यानि ताम्बूलमजीर्णतां च ॥९१॥
प्रचण्डवातातपधूमवृष्टि-
रजोभयक्रोधवमिप्रहर्षान्।
शोकं विरुद्धाशनमम्बुपानं
तीक्ष्णोष्णरूक्षाणि विघट्टनं च ॥९२॥
कण्डूयनं काष्ठनखादितोदं
निरन्नभावं विषमोपचारम्।
वैद्यश्चिकित्सन् व्रणशोथरोगं
व्रणं च सद्योव्रणमामयं च॥
नाडीव्रणं चापि यशोऽभिलाषी।
विवर्जयेत्सन्ततमप्रमत्तः ॥९३॥

नया धान, तिल, मटर, उड़द, कुलत्थ, खिचड़ी, ठण्डा पानी, दूध एवं दूध के विकार, इक्षुरस, इक्षुविकार, मद्य, पत्तों के शाक, जांगलमांस को छोड़कर, आनूपमांस, असात्म्यअम्ल, विदाही, विष्टम्भी और गुरु पदार्थ, कट्वम्ल-शीत-लवण पदार्थ, मैथुन, परिश्रम करना, उच्च स्वर में बोलना (भाषण), प्रिय-स्त्रीदर्शन, दिवाशयन, रात्रिजागरण, हमेशा घूमते रहना, हमेशा बैठे रहना, व्रण होने से पूर्व व्रणरोपक औषधियों का प्रयोग, नस्य कर्म, ताम्बूलभक्षण, अजीर्ण, प्रचण्डवात, प्रचण्डधूप, प्रचण्ड-वृष्टि, अत्यधिकधूल का सेवन, अत्यधिक क्रोध, वमन, हर्ष, शोक, विरुद्धभोजन, अधिक जलपान, तीक्ष्ण, उष्ण एवं रूक्ष पदार्थों का अत्यधिक सेवन, व्रण को नखादि से दबाना, खुजली करना, लकड़ी से घिसना, बिना भोजन के रहना और विषमो-पचार—यश का इच्छुक वैद्य यदि व्रण, व्रणशोथ, सद्योव्रण, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण की चिकित्सा करता है तो रोगी से उपर्युक्त अपथ्यों का त्याग कराना चाहिए।

व्रण में निषिद्ध

नवं धान्यं माषास्तिलगुडकुलत्थाह्वकृशराः
सतीना निष्पावा हरिणकमजानूपपिशितम् ।
हिमाम्भो वल्लूरं लवणकटुकं पिष्टविकृति-
र्दधि क्षीरं तक्रं व्रणिषु सकलं दोषजननम् ॥९४॥

नया धान, उड़द, तिल, गुड़, कुलत्थ, कृशरा, मटर (कलाय), निष्पाव (राजमाष या सेम वर्गीय), हिरणमांस, बकरे का मांस, आनूपदेशीय पशु-पक्षियों के मांस, शीतलजल, शुष्क मांस, लवण एवं कटुरस युक्त भोजन, चावल, उड़द आदि पिष्टी से बने हुए पदार्थ, दही, दूध तथा तक्र—ये सभी पदार्थ व्रण के रोगियों के लिए दोषोत्पादक हैं।

व्रण में वर्ज्य

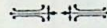
व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ।
तौ च रुक् च दिवास्वप्नात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥९५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां व्रणशोथाधिकारः ।



शारीरिक तथा मानसिक श्रम करने से व्रण के चारों ओर शोथ हो जाता है। दिन में शयन तथा कभी भी मैथुन करने से व्रण में शोथ, लालिमा और वेदना उत्पन्न हो जाती है। इनके बढ़ जाने पर मृत्यु भी हो सकती है। अतः स्वहितैषी रोगी को चाहिए कि उपर्युक्त वर्ज्य भाव, परिश्रम, रात्रि जागरण, दिवाशयन और मैथुन को त्याग दें।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य व्रणशोथाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथ सद्योव्रणाधिकारः (४८)

१. मधुयष्टिसिद्धघृत सेचन (च.द.)

सद्यः क्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत्।
यष्टीमधुकयुक्तेन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा ॥१॥

शस्त्रादि से उत्पन्न शूलयुक्त क्षत (सद्योव्रण) निवारणार्थ मुलेठी के कल्क से सिद्ध किया गया गरम घृत से परिषेचन करना चाहिए।

२. अपामार्गस्वरस रक्तशोधनार्थ (च.द.)

अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन तु।
सद्योव्रणेषु रक्तं तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥२॥

शस्त्रादि के आघात से उत्पन्न हुए सद्योव्रण पर अपामार्ग पत्र स्वरस लगाने या सिञ्चन करने से रक्तप्रवाह रुक जाता है।

३. कर्पूरघृत प्रयोग (च.द.)

कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं सम्प्ररोहति।
सद्यः शस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाकविवर्जितम् ॥३॥

शस्त्रादि प्रहार से उत्पन्न हुए व्रण के अन्दर शतधौत घृत में कर्पूर मिलाकर लेपन करने से व्रण की वेदना नहीं होती है और व्रण पकता भी नहीं।

४. शरपुङ्खादि लेप (च.द.)

शरपुङ्खा काकजङ्घा प्रथमं माहिषीसुतम्।
मलं लज्जा च सद्यस्कव्रणघ्नं पृथगेव तु ॥४॥

शरपुङ्खापञ्चाङ्ग, काकजङ्घा, भैंस के बच्चे का पहली बार का मल तथा लज्जालु—इनमें से किसी एक को पीसकर कल्क बना लें तथा उसका लेप करने से सद्योव्रण नष्ट हो जाता है।

५. कुक्कुरजिह्वा लेप (च.द.)

शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णः सद्यः क्षतविरोहणः।
चक्रतैलं क्षते विद्धे रोपणं परमं मतम् ॥५॥

कुत्ते की जिह्वा को सुखाकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण का व्रण पर लेपन या अवचूर्णन करने से क्षत का शीघ्र ही रोपण हो जाता है। अथवा चक्रतैल (कोल्हू से तुरन्त का निकाला हुआ सरसों का तेल) लगाने से अभिघात आदि क्षत एवं व्यध जन्य क्षत शीघ्र भर जाता है।

सद्योव्रण क्रिया अवधि निर्देश

इति साप्ताहिकः कार्यः सद्योव्रणहितो विधिः।
सप्ताहात्परतः कुर्याच्छारीरव्रणवत् क्रियाम् ॥६॥

यह जो सद्योव्रण की चिकित्सा मैंने कही है, वह ७ दिनों के लिए है। ७ दिन से अधिक व्रण के रहने पर शारीरिक व्रण जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

६. अग्निदग्धव्रण चिकित्सा (च.द.)

पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम्।
अग्निदग्धे व्रणे सम्यक् प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥७॥
तिलं चैवाग्निना दग्धं यवभस्म समन्वितम्।
अग्निदग्धव्रणं नश्येदनेनैवानुलेपनात् ॥८॥
तिलतैले यवान् दग्ध्वा समं कृत्वा तु लेपयेत्।
तेनैव लेपनादाशु वह्निदग्धः सुखी भवेत् ॥९॥
सद्यो दग्धं च मधुना लेपं कृत्वा भिषग्वरः।
तत्पृष्ठे यवचूर्णेन लेपः स्याद्दाहशान्तये ॥१०॥
महिषीनवनीतेन क्षीरेण पेषयेत्तिलम्।
तेन लेपेन दग्धाङ्गं सदाहं सुखमाप्नुयात् ॥११॥
महाराष्ट्रीजटालेपो दग्धपृष्ठावचूर्णनम्।
जीर्णगृहतृणाच्चूर्णं दग्धव्रणहरं परम् ॥१२॥

पित्तज विद्रधि एवं वीसर्प का शमन करने वाले लेप तथा समस्त क्रिया चिकित्सक को करनी चाहिए।

१. सफेद तिल जला हुआ १ भाग और जौ जला हुआ १ भाग दोनों की राख को सूक्ष्म चूर्ण कर लें तथा उसे नारियल के तैल या मक्खन में मिलाकर दग्ध व्रण पर लेप करना चाहिए। इसके लेपन से अग्निदग्धव्रण नष्ट हो जाता है।

२. तिल तैल में जला हुआ जौ का चूर्ण मिलाकर लगाने से अग्निदग्ध व्रण नष्ट हो जाता है तथा व्यक्ति कष्ट मुक्त हो जाता है।

३. तत्काल जले हुए अग्निदग्ध में मधु का लेप कर जौ का चूर्ण प्रक्षिप्त करने से दाह शान्त हो जाता है।

४. भैंस के दूध और मक्खन में तिल को पीसकर अग्निदग्ध पर लेप करने से दाह और शूल दोनों नष्ट हो जाता है तथा मनुष्य सुखी हो जाता है।

५. महाराष्ट्री (जलपीपल) के मूल को पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। अग्निदग्ध के ऊपर इस चूर्ण का प्रक्षेपण करें। अथवा पुराना फूस का (धान के पुआल से बनाये हुए मकान का) चूर्ण कर दग्ध व्रण पर अवचूर्णन करने से अग्निदग्धव्रण नष्ट हो जाता है।

७. सवर्णकरण योग (ग.नि.)

कालीयकलताऽऽम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः ।
लेपः सगोमयरसः सवर्णकरणः परः ॥१३॥
चतुष्पदां हि त्वग्रोमखुरशृङ्गास्थिभस्मना ।
तैलाक्ता चूर्णिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः ॥१४॥
मनःशिलाऽऽले मञ्जिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् ।
प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परः ।
व्रणग्रन्थिं ग्रन्थिवच्च जयेत्क्षारेण वा भिषक् ॥१५॥
अन्तर्दग्धकुठेरको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रणं
ह्यश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुण्डनात् ।
अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितम्
पिष्ट्वा शाल्मलितूलकैर्जलगता लेपात्तथा बालुका ॥

(१) १. पीतचन्दन, २. प्रियंगु, ३. आम्रास्थि, ४. नागकेशर, ५. मजीठ और ६. रसाञ्जन—प्रत्येक समभाग लें। उपर्युक्त द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण कर लें और गोबर के रस में पीसकर व्रण चिह्न स्थल पर लेप करें। कुछ दिन लगाकर लेप करने से व्रण चिह्न नष्ट हो जाता है।

(२) चार पैर वाले किसी भी पशु का चर्म, रोम, खुर, शृङ्ग तथा अस्थि—इन्हें समभाग लेकर एक हाँडी में रखकर शराव सम्पुट करें और गजपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर इसकी भस्म को खरल में पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस भस्म को तिलतैल में मिलाकर दग्धव्रणचिह्न पर प्रतिदिन लगाने से दग्धचिह्न मिट जाता है।

(३) १. मनःशिला, २. पत्रताल, ३. मंजीठ, ४. लाक्षा, ५. हल्दी और ६. दारुहल्दी—प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इन्हें समान भाग घृत और मधु के साथ मिलाकर व्रणचिह्न पर लेप करने से व्रण चिह्न मिट जाता है।

(४) व्रणग्रन्थि में ग्रन्थिरोग की तरह चिकित्सा करनी चाहिए तथा सफेद तुलसी की अन्तर्धूम भस्म दग्ध चिह्न पर जल के साथ पीसकर लगाने से चिह्न नष्ट हो जाता है।

(५) पीपर की छाल (त्वक्) तथा पलाशत्वक्—दोनों का सूक्ष्मचूर्ण करके व्रण पर अवचूर्णन करने से व्रण शीघ्र ही ठीक हो जाता है। २०० मि.ली. तिलतैल में ५० ग्राम केचुआ और ८०० मि.ली. जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। तैल मात्र शेष रहने पर छान लें। इस तैल का अग्निदग्ध व्रण के चिह्न पर लेप करने से चिह्न मिट जाता है।

(६) नदी के जल के भीतर का बालू और सेमर की रूई दोनों को मिलाकर दग्ध व्रण पर लेप करने से व्रण ठीक हो जाता है।

८. जीरकघृत (च.द.)

जीरकपक्वं पश्चात् सिक्थकसर्जरसमिश्रितं हरति ।
घृतमभ्यङ्गात्पावकदग्धजदुःखं क्षणार्द्धेन ॥१७॥

१. गोघृत २०० ग्राम, २. जीरक क्वाथ ८०० मि.ली., ३. जीरक कल्क ५० ग्राम, ४. सिक्थ (मोम) २५ ग्राम और ५. सर्जरस (राल) २५ ग्राम लें। सर्वप्रथम जीरक को कूटकर ४ गुना (३.२०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहे तो छान लें। जीरक ५० ग्राम का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में घी को गरम करें तथा चूल्हे से पात्र को नीचे उतारकर कल्क और क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को उतार लें। उसके बाद उस पक्व घृत में मोम और राल मिलाकर देर तक कलछी से घृत को मिलावें। जब राल एवं मोम भलीभाँति मिल जाय तो महीन वस्त्र में घृत को छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत का अग्निदग्ध व्रण पर लेपन करने से क्षणार्द्ध में व्रण वेदना एवं व्रण जन्य चिह्न सब कुछ नष्ट हो जाता है।

९. पाटलीतैल (च.द.)

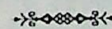
सिद्धं कल्ककषायाभ्यां पाटल्या कटुतैलकम् ।
दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥१८॥

सरसोंतैल २०० मि.ली., पाटलीक्वाथ ८०० मि.ली. और पाटलीकल्क ५० ग्राम लें। इनसे स्नेहपाक विधि से तैल सिद्ध करें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके प्रयोग से अग्निदग्ध पीड़ा, स्राव, दाह और विस्फोट आदि नष्ट हो जाता है।

१०. मञ्जिष्ठादितैल (च.द.)

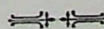
मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।
सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमिष्यते ॥१९॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सद्योव्रणाधिकारः ।



तिलतैल २५० मि.ली., मंजीठ २० ग्राम, रक्तचन्दन २० ग्राम तथा मूर्वा २२ ग्राम लें। मंजीठ आदि तीनों द्रव्यों को सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को गरम तैल में मिलाकर १ लीटर जल देकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त चूल्हे से स्नेहपात्र को उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। सभी प्रकार के अग्निदग्धों पर इस तैल का लेपन करने से व्रण का रोपण हो जाता है। यह तैल लाल होता है।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य सद्योव्रणाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथ भग्नरोगाधिकारः (४९)

भग्न में प्रथम सेचन-आलेपन-कुशाबन्धनोपदेश (च. द.)

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना।
पङ्केनालेपनं कार्यं बन्धनञ्च कुशान्वितम्।
सुश्रुतोक्तन्तु भग्नेषु वीक्ष्य बन्धादिमाचरेत्॥१॥

पहले भग्न हो गया ऐसा जानकर उसका भेद-स्थान का ज्ञान करना चाहिए। तत्पश्चात् शीतल न्यग्रोधादि क्वाथ का परिषेचन करना चाहिए। क्वाथ के तुरन्त उपलब्ध न होने पर शीतलजल का ही परिषेचन करना चाहिए। ततः पंक का लेप और बाद में कुशाबन्धन करना चाहिए। सुश्रुत में वर्णित भग्नबन्धन का प्रयोग करना चाहिए।

हड्डियों का स्वस्थानीकरण (च. द.)

अवनामितमुन्नह्येदुन्नतञ्चावपीडयेत्।
आच्छेदतिक्षिप्तमधोगतञ्चोपरि वर्त्तयेत्॥२॥

अस्थिभग्न के समय हड्डियों के टूटने पर जो हड्डी नीचे दब गयी हो उसे ऊपर उठाना चाहिए तथा जो हड्डी ऊपर उठ गयी हो उसे नीचे की ओर दबाना चाहिए। इसी प्रकार अत्यन्त भीतर धँसी हुई (अति क्षिप्त) हड्डी को बाहर की ओर खींचना चाहिए और नीचे की ओर झुकी हुई हड्डी को उत्तेजित करना चाहिए।

१. मञ्जिष्ठादिलेप (च. द.)

आलेपनार्थं मञ्जिष्ठा मधुकं चाम्लपेषितम्।
शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टञ्च लेपनम्॥३॥

मंजीठ और मुलेठी को काञ्जी के साथ सिल पर पीसे तथा उस कल्क में थोड़ा 'शतधौतघृत' मिलाकर भग्न स्थान पर लेप करें, बाद में शालिचावल को जल के साथ पीसकर भग्न स्थान पर गाढ़ा लेप करना चाहिए।

भग्नबन्धन मोक्षण काल (च. द.)

सप्तरात्रात् सप्तरात्रात्सौम्येष्वृतुषु मोक्षणम्।
कर्त्तव्यं स्यात्त्रिरात्राच्च तत्राग्नेयेषु जानता।
काले च समशीतोष्णे पञ्चरात्राद्विमोक्षयेत्॥४॥

हेमन्तादि ऋतुओं में सात दिनों के बाद, ग्रीष्मऋतु में ३ दिनों के बाद और समशीतोष्णऋतु में ५-५ दिन के बाद भग्न स्थान का बन्धन खोलना चाहिए।

भग्नस्थान का परिषेक (सु. सं.)

न्यग्रोधादिकषायञ्च सुशीतं परिषेचने।
पञ्चमूलीविपक्वन्तु क्षीरं दद्यात्सवेदने।
सुखोष्णमवतार्यं वा चक्रतैलं विजानता॥५॥

सुश्रुतोक्त न्यग्रोधादि के शीतल क्वाथ का भग्नस्थान पर परिषेचन करना चाहिए। यदि भग्न में वेदना हो रही है तो बृहत् पञ्चमूलसिद्ध क्षीर से परिषेचन करना चाहिए। अथवा 'चक्रतैल' (धानी/कोल्हू का तैल) को कुछ गरम (सुखोष्ण) कर लगाने से वेदना कम होती है।

भग्नरोगी का भोजन (चक्रदत्त)

मांसं मांसरसः सर्पिः क्षीरं यूषः सतीजनः।
बृंहणं चान्नपानं च देयं भग्नाय जानता॥६॥

भग्न रोगी को भोजन में मांस, मांसरस, घी दूध, मूँग का यूष, मटर का यूष और बृंहण अन्न-पान देना चाहिए।

मधुरौषधसिद्ध दुग्धपान (सुश्रुत)

गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम्।
शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः॥७॥

पहली बार ब्याई हुई गाय के दूध को काकोल्यादिगण की औषध के क्वाथ से सिद्ध करें। उस २५० मि.ली. दूध में १२ ग्राम घी और १ ग्राम लाक्षाचूर्ण मिलाकर प्रातःकाल भग्न रोगी को पिलाने से लाभ होता है।

२. अस्थिसंहारादि चूर्ण (च. द.)

सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममर्जुनम्।
सन्धिमुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत् क्षीरेण मानवः॥८॥

अस्थिसंहार, लाक्षा, गेहूँ और अर्जुनत्वक्—समभाग लें। इन्हें चूर्ण कर ६ ग्राम की मात्रा में १० ग्राम गरम घी के साथ मिलाकर सेवन करने से सन्धिमुक्त (Dislocation) तथा भग्न (Fracture) में लाभ होता है।

३. रसोनादि योग (च. द.)

रसोनमधुलाक्षाऽऽज्यसिताकल्कं समश्नताम्।
छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धानमचिराद्भवेत्॥९॥

१. निस्तुषलशुन २ ग्राम, २. मधु ६ ग्राम, ३. लाक्षा १ ग्राम, ४. घी १२ ग्राम तथा ५. मिश्री २५ ग्राम लें। सर्वप्रथम लशुन एवं लाक्षा को एक साथ पीसकर घी, मधु एवं मिश्री मिलाकर सेवन करें और ऊपर से २०० मि.ली. सुखोष्ण दूध पीने से छिन्न-भिन्न एवं च्युत हुई हड्डियों का शीघ्र ही सन्धान हो जाता है।

४. वराटिकाभस्म प्रयोग (च. द.)

पीतवराटिकाचूर्णं द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जकम् ।
अपक्वक्षीरपीतं स्यादस्थिभग्नप्ररोहणम् ॥१०॥

पीली कौड़ी की भस्म को २५० से ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में धारोष्ण गोदुग्ध से सेवन करने से अस्थिभग्न का रोहण होता है।

५. भग्नदोषहर प्रयोग (च. द.)

क्षीरं सलाक्षामधुकं ससर्पिः
स्याज्जीवनीयञ्च सुखावहञ्च ।
भग्नः पिबेत्त्वक् पयसाऽर्जुनस्य
गोधूमचूर्णं सघृतेन वाऽथ ॥११॥

लाक्षाचूर्ण १ ग्राम, मुलेठीचूर्ण १ ग्राम, गोघृत १२ ग्राम, तथा गरम गोदुग्ध २५० मिली. अनुकूल शक्कर मिलाकर रोज पिलाने से भग्नरोग की जीवनीशक्ति बढ़ती है तथा भग्न का रोहण होता है। अथवा—अर्जुनचूर्ण ३ ग्राम, घृतभर्जितगेहूँ का चूर्ण १० ग्राम, गरम गोदुग्ध २५० मि.ली., शक्कर २० ग्राम तथा गोघृत १२ ग्राम मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से भग्न रोगी को बहुत लाभ मिलता है।

६. लाक्षागुग्गुलु (च. द.)

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभाश्वगन्धा-
श्चूर्णीकृता नागबला पुरश्च ।
सम्भग्नमुक्तास्थिरुज निहन्या-
दङ्गानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥१२॥
अत्रान्यतोऽपि दृष्टत्वात्तुल्यश्चूर्णेन गुग्गुलुः ॥१३॥

१. लाक्षाचूर्ण १२ ग्राम, २. अस्थिसंधानिचूर्ण १२ ग्राम, ३. अर्जुनचूर्ण १२ ग्राम, ४. अश्वगन्धाचूर्ण १२ ग्राम, ५. नागबलाचूर्ण १२ ग्राम और ६. शुद्ध गुग्गुलु ६० ग्राम लें। सर्वप्रथम छोटी लोहे की कड़ाही में शुद्ध गुग्गुल और थोड़ा जल मिलाकर गरम करें। कलछी से धीरे-धीरे चलाते रहें। जब गुग्गुलु घुल जाय तो चूल्हे से कड़ाही को नीचे उतारकर उसमें लाक्षादि ५ द्रव्यों के चूर्णों को अच्छी तरह मिलाकर पुनः सिल पर थोड़ा गरम पानी का छींटा दे-देकर खूब पीसें। तैलाक्त हाथों से ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। अस्थिभग्न एवं अस्थिच्युत (Fracture & Dislocation) रोगी को १ से २ वटी की मात्रा में सेवन कराने से उसकी पीड़ा नष्ट होकर अस्थिच्युत ठीक हो जाता है तथा अस्थि वज्र जैसी हो जाती है।

दूसरी जगह भी एवं अन्य योगों में भी चूर्ण के बराबर गुग्गुलु लिया जाता है अतः यहाँ भी चूर्ण के बराबर ही गुग्गुलु लिया गया है।

७. आभागुग्गुलु (च. द.)

आभाफलत्रिकव्योषैः सर्वैरभिः समीकृतैः ।
तुल्यो गुग्गुलुरायोज्यो भग्नसन्धिप्रसाधकः ॥१४॥

१. बब्बूलवृक्षत्वक्चूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण ५. सोंठचूर्ण, ६, पीपरचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण — प्रत्येक १-१ भाग तथा ८. शुद्ध गुग्गुलु ७ भाग लें। सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के भगौने में थोड़ा जल और गुग्गुलु एक साथ मिलाकर गरम करें। बीच-बीच में चम्मच से चलाते रहें। जब गुग्गुलु पिघल जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर उसमें उपर्युक्त सातों चूर्णों को डालकर चम्मच से अच्छी तरह मिला लें। पुनः सिल पर उक्त मिश्रण को रखकर गरम पानी का छींटा देकर अच्छी तरह पीस लें। ततः घृताक्त हाथ से ५०० मि.ली. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १ से २ वटी की मात्रा में भग्न या अस्थिच्युत रोगी को गरम दूध से सेवन कराने पर बहुत लाभ होता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—गरम दूध से। **गन्ध**—गुग्गुलुगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—अस्थिभग्न एवं अस्थिभ्रंश में।

अवस्थानुसार भग्न शान्ति निर्देश (सुश्रुत)

पूर्वे वयसि जातं हि भग्नं सुकरमादिशेत् ।
अल्पदोषस्य जन्तोश्च काले तु समशीतले ॥१५॥
प्रथमे वयसि त्वेकं मासात् सन्धिः स्थिरो भवेत् ।
मध्यमे द्विगुणात् कालादन्तिमे त्रिगुणात्तथा ॥१६॥

पहली अवस्था (२५ वर्ष से पहले) की अस्थि जल्दी ठीक हो जाती है। अल्प दोष वाले मनुष्य तथा शीतकाल के समय में हुआ भग्न शीघ्र ठीक हो जाता है। इसी तरह प्रथम अवस्था का अस्थिभग्न १ महीना में, मध्यम अवस्था का अस्थिभग्न २ माह में तथा अन्तिम अवस्था वाला अस्थिभग्न ३ महीने में ठीक हो जाता है।

भग्न के सम्बन्ध में विशेष रक्षोपदेश (सुश्रुत)

नैति पाकं यथा भग्नं तथा यत्नेन रक्षयेत् ।
पक्वमांसशिरास्नायु तद्धि कृच्छ्रेण सिद्ध्यति ॥१७॥

अस्थिभग्न के रोगी की रक्षा इस प्रकार करनी चाहिए कि जिससे भग्न स्थान पके नहीं, क्योकि मांस, सिरा और स्नायु आदि के पक जाने पर भग्न कष्टसाध्य हो जाता है।

अस्थिभग्न विषय में विशेषोपदेश (भा. प्र.)

पतनादभिघाताद्वा शूनमङ्गं यदक्षतम् ।
शीतात्सेकात्प्रदेहांश्च भिषक् तस्यावचारयेत् ॥१८॥
सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः ॥

प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत्।
वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहांस्तत्रापि योजयेत् ॥१९॥

गिरने अथवा चोट लगने से जो अङ्ग शोथयुक्त हो जाय किन्तु क्षत (कटे-फटे) नहीं हो तो वैद्य उस पर शीतल परिषेक तथा शीतल प्रदेह-लेपादि का प्रयोग कर उपचार करें। व्रण युक्त (कटा-फटा) अस्थिभग्न को घी एवं मधु मिलाये हुए क्वाथ से धोकर शेष भग्न चिकित्सा की तरह उपचार करना चाहिए। वातव्याधिरोग चिकित्सा प्रकरण में कहे गए तैलों (महानारायण तैल, नारायण तैल, महाप्रसारणी तैलादि) का एवं अन्य घृतादि स्नेहों का प्रयोग करना चाहिए।

८. गन्धतैल (सुश्रुत)

रात्रौ रात्रौ तिलान्कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले।
दिवा दिवैवं संशोष्य क्षीरेण परिभावयेत् ॥२०॥
तृतीयं सप्तरात्रन्तु भावयेन्मधुकाम्बुना।
ततः क्षीरं पुनः पीताञ्छुष्कान्सूक्ष्मान्विचूर्णयेत् ॥२१॥
काकोल्यादि सयष्ट्याह्वां मञ्जिष्ठां शारिवां तथा।
कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥२२॥
शतपुष्पाञ्च सञ्चूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत्।
पीडनार्थञ्च कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः श‍ृतं पयः ॥२३॥
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं विपचेत् पुनः।
एलामंशुमतीं पत्रं जीवन्तीं तुरंग तथा ॥२४॥
लोध्रं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुशारिवाम्।
शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥२५॥
पिष्ट्वा श‍ृङ्गाटकञ्चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च।
एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाऽग्निना ॥२६॥
एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु।
आक्षेपके पक्षघाते चाङ्गशोषे तथाऽर्दिते ॥२७॥
मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे।
बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥२८॥
पथ्यं पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये बस्तिषु योजयेत्।
ग्रीवस्कन्धोरसां वृद्धिरनेनैवोपजायते ॥२९॥
मुखञ्च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम्।
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥३०॥
राजार्हमेतत्कर्त्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः।
तिलचूर्णाच्चतुर्थांशं मिलितं चूर्णमिष्यते ॥३१॥

४ किलो काला तिल लें। इन तिलों को नया १ मीटर मजबूत कपड़ा में बाँधें। अब इस तिल की पोटली को प्रवाहित जल वाली नदी में मजबूत रस्सी से बाँधकर रात्रिपर्यन्त लटका दें। प्रातः इस पोटली को निकालकर तिलों को धूप में सुखा लें। शाम को पुनः उसी कपड़े में पोटली बाँधकर पुनः उसी नदी जल में लटकावें। दूसरे दिन पुनः निकालकर धूप में सुखा लें। इस प्रकार ७ रात तक नदी जल में पुनः लटकावें और दिन में रोज धूप में सुखा लें। ध्यान रहे कि उस पोटली को नदी के मछली आदि जीवजन्तु न खा जाये। इसके लिए लोहे की पतली जाली को सुरक्षा कवच के रूप में प्रयोग करें। ८वें दिन उन तिलों को सुखाकर पुनः पोटली बनावें और ताजा गोदुग्ध से भरी बाल्टी में रात्रिपर्यन्त डुबोकर रखें। प्रातः पोटली खोलकर तिलों को धूप में सुखा लें। शाम को पुनः उस कपड़े में पोटली बनाकर पुनः नये गोदुग्ध में रात्रिपर्यन्त डुबोकर रखें। इस प्रकार इन तिलों की पोटली को ७ रात तक दूध में डुबोकर रखें और दिन में धूप में सुखा लें। अब तीसरे सप्ताह में इन तिलों की पोटली को यष्टिमधु के क्वाथ में डुबोकर रात्रिपर्यन्त रखें। प्रातः पोटली निकालकर धूप में सुखा लें। ऐसा ७ दिनों तक करें। चौथे सप्ताह में पुनः प्रतिदिन रात में गोदुग्ध में पोटली को लटकावें और दिन में धूप में सुखा लें। २९वें दिन इन सूखे तिलों का चूर्ण करें। ततः निम्नलिखित द्रव्यों के १ किलो चूर्ण को उक्त तिल चूर्ण में मिला दें—

१. काकोली, २. क्षीरकाकोली, ३. जीवक, ४. ऋषभक, ५. मुद्गपर्णी, ६ माषपर्णी, ७. मेदा, ८. महामेदा, ९. गुडूची, १०. काकड़ासिंगी, ११. वंशलोचन, १२. पद्मकाष्ठ, १३. प्रपौण्डरीक, १४ ऋद्धि, १५. वृद्धि, १६. मुनक्का, १७. जीवन्ती, १८ यष्टिमधु, १९. मुलेठी, २० मंजीठ, २१. कृष्ण सारिवा, २२. कूठ, २३. सर्जरस, २४ जटामांसी, २५ देवदारु, २६. श्वेत चन्दन और २७. सौंफ—प्रत्येक द्रव्य ३७ ग्राम लें। इसके बाद इस मिश्रण को धानी (कोल्हू) में डालकर तैल निकाल लें और जितना तैल प्राप्त हो उसका चौथाई निम्न कल्क द्रव्य लें—

१. छोटी इलायची, २. शालपर्णी, ३. तेजपत्ता, ४. जीवन्ती, ५. अश्वगन्धा, ६. लोध्रत्वक्, ७. प्रपौण्डरीक, ८. तगर, ९. छरीला, १०. विदारीकन्द, ११ श्वेत अनन्तमूल, १२. यष्टिमधु तथा १३. सिंघाड़ा एवं काकोल्यादि गण तथा अन्य सभी द्रव्यों (जो कुल मिलाकर ४० द्रव्य हैं) को ६-६ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण करे तथा जल के साथ सिल पर पीस कर कल्क बना लें। उपर्युक्त तिलतैल में इस कल्क को और तैल से ४ गुना जल देकर मन्दाग्नि पर तैल पाक करें। जलीयांश जल जाने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से तैल को छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह तैल अस्थिभग्न वाले रोगियों के लिए सदा पथ्य है। यह सर्वकर्मोपयोगी है। आक्षेपक, पक्षाघात, अङ्गशोष, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, हनुग्रह, बाधिर्य, तिमिर और शुक्रक्षय जन्य शोष से पीड़ितों के लिए इस तैल का पान,

अभ्यङ्ग, नस्य, बस्ति में प्रयुक्त करना चाहिए। यह तैल ग्रीवा एवं स्कन्ध क्षय में बहुत उपयोगी है। इसके प्रभाव से ग्रीवा-स्कन्ध की वृद्धि होती है। मुख कमल के समान सुशोभित होता है। मुख से सुगन्ध युक्त वायु निकलती है। 'गन्धतैल' के नाम से विख्यात यह तैल सभी प्रकार के वायु विकार का नाश करता है। वैद्य को चाहिए कि इस गन्धतैल का निर्माण राजाओं एवं श्रीमन्तों (धनिकों) के लिए करें। तिल चूर्ण का चतुर्थांश काकोल्यादिगण एवं अन्य चूर्णों को मिलाकर धानी (कोल्हू) में तैल पीडन करना चाहिए।

मात्रा—आवश्यकतानुसार। **अनुपान**—गरम दूध में मिलाकर। **गन्ध**—सुगन्धयुक्त। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—समस्त वातविकार एवं अस्थिभङ्ग में।

अस्थिभग्न में पथ्य ( )

शीताम्बुसेचनं पङ्कप्रदेहो बन्धनक्रिया।
शालिप्रियङ्गुगोधूमा यूषो मुद्गसतीनयोः ॥३२॥
नवनीतं घृतं क्षीरं तैलं मांसरसो मधु।
पटोलं लशुनं शिग्रु पत्तूरो बालमूलकम् ॥३३॥
द्राक्षा धात्री वज्रवल्ली लाक्षा यच्चापि बृंहणम्।
तत्सर्वं भिषजा नित्यं देयं भग्नाय जानता ॥३४॥

भग्न स्थान पर शीतल जल की धारा गिरानी चाहिए। शीतल जल का परिषेचन, उक्त स्थान पर पङ्क (कीचड़) का लेप लगाना, भग्न स्थान के ऊपर-नीचे लकड़ी की पटरी रखकर कपड़े से बाँधना चाहिए। शाली चावल, प्रियङ्गुफूल, गेहूँ, मूँग और मटर का यूष, मख्खन, घृत, क्षीर, तैल, मांसरस, मधु, परवल, लशुन, सहिजनफली, पत्तूर, छोटीमूली, मुनक्का, आमला, अस्थिसंहारवल्ली, लाक्षा तथा अन्य बृंहणकारक पदार्थ भग्नरोगी को देना चाहिए।

अस्थिभग्न में अपथ्य (सुश्रुत)

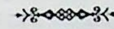
लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम्।
व्यायामञ्च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥३५॥

लवण, कटुद्रव्य, क्षार, अम्ल, मैथुन, धूप, व्यायाम और रूक्ष अन्न अस्थिभग्न रोगियों को नहीं सेवन करना चाहिए।

अस्थि भग्न में आरोग्य लक्षण (सुश्रुत)

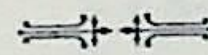
भग्नसन्धिमनाविद्धमहीनाङ्गमनुल्वणम्।
शुभचेष्टाप्रचारं च सम्यक् सन्धितमादिसेत् ॥३६॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां भग्नरोगाधिकारः।



भग्नस्थान को फैलाने या सिकोड़ने में किसी प्रकार का कष्ट न होना, अङ्ग का छोटा न होना, शोष नहीं रहना, चलने-फिरने, उठने-बैठने आदि चेष्टाएँ अच्छी तरह होने लगें तो यह समझना चाहिए कि अस्थियों का सन्धान अच्छी तरह से हुआ है।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य भग्नरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ नाडीव्रणाधिकारः (५०)

नाडीव्रण में शस्त्रकर्म (च. द.)

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाट्य कर्मवित् ।
सर्वव्रणक्रमं कुर्याच्छोधनं रोपणादिकम् ॥१॥

नाडीव्रण में व्रण का गति-मार्ग एवं गहराई आदि जानने के लिए व्रण के भीतर एषणी (Probe) को प्रवेश कर उसकी गति एवं गहराई आदि जानकर शस्त्रकर्म में कुशल वैद्य अच्छी तरह से चीरा लगाकर अन्दर संचित हुए पूयादि दूषित पदार्थ को बाहर निकाल कर व्रण को स्वच्छ करे। ततः सुश्रुतोक्त शोधन-रोपण वर्गादि के क्वाथ से प्रक्षालन कर और साफ कर गाज अन्दर डालकर व्रण-बन्धन करना चाहिए। दूसरे दिन व्रण-बन्धन खोलकर गॉज हटाकर पुनः शोधन-रोपणादि क्वाथ से व्रण का प्रक्षालन कर गॉज रखें और व्रण-बन्धन करें। इस तरह के उपाय से नाडीव्रण ठीक हो जाता है।

१. वातज नाडीव्रण चिकित्सा (च. द.)

नाडीं वातकृतां साधुपाटितां लेपयेद्भिषक् ।
प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥२॥

वातजन्य नाडीव्रण को शस्त्र द्वारा अच्छी तरह चीरकर पूयादि दूषित पदार्थों को निकाल दें तथा अपामार्गबीज और तिल समभाग में पीसकर व्रण पर लेप करें।

२. पैत्तिक नाडीव्रण चिकित्सा (च. द.)

पैत्तिकीं तिलमञ्जिष्ठानागदन्तीनिशाद्वयैः ॥३॥

पित्तजन्य नाडीव्रण में पहले दुग्ध-घृत से सिद्ध उत्कारिका से स्वेदन करें तथा बाद में शस्त्र से व्रण को चीरकर पूयादि दूषित पदार्थ को निकाल कर व्रण साफ करें। पुनः तिलबीज, मंजीठ, ताम्बूल, दन्तीमूल, हल्दी और दारुहल्दी—इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करें तथा जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क को व्रण पर बाहर-भीतर लेप करें एवं व्रण-बन्धन करें।

३. कफज नाडीव्रण चिकित्सा (च. द.)

श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ॥४॥

(कफज नाडीव्रण में प्रथम कुलत्थ, सरसों, सत्तू, किण्व को सिल पर पीसकर गरम उपनाहन करें तथा नाडीव्रण के मृदु हो जाने पर एषणी के द्वारा उसकी शाखाओं का ज्ञान प्राप्त कर शस्त्र से चीरकर पूयादि दूषित पदार्थ निकाल देना चाहिए।) इसके बाद व्रण के अन्दर-बाहर तिल, मुलेठी, दन्तीमूल, निम्ब पत्र और सैन्धव का कल्क भर कर बन्धन करें।

४. शल्यज नाडीव्रण चिकित्सा (च. द.)

शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लिप्त्वा बन्धनमाचरेत् ॥५॥

शल्यज नाडीव्रण में पहले व्रण को चीरकर अन्दर के अपद्रव्य शल्य को निकालकर व्रण पर तिलकल्क, मधु और घृत का लेप करें और व्रणबन्धन करें।

५. आरग्वधादि सूत्रवर्त्ति (च. द.)

आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता ।
मूत्रवर्त्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशनी ॥६॥

अमलतासपत्रकल्क, हल्दीचूर्ण, निशोथचूर्ण, घृत तथा मधु—समभाग लें। इन सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर गोमूत्र के साथ पाक करते हैं, जब गोमूत्र सूख जाय एवं मधु जैसा रहे तो उसमें गॉज भिंगाकर व्रण में वर्ति जैसा बनाकर रखते हैं। पाठान्तर—सूत्रवर्ति भी किसी-किसी आचार्य ने कहा है। इन्हें सूक्ष्म पीसकर मोटे धागे पर लेप कर सुखा लें। इसे सुरक्षित साफ शीशे के बर्तन में रख लें। इस वर्ति का व्रण में प्रवेश कर रखने से या धारण करने से पूयादि दोषों का शोधन हो जाता है।

आरग्वधस्य पत्रमिति—शिवदाससेनः ।

६. गुणवतीवर्ति

तुल्यं सर्जरसं लोध्रं सिन्दूरातिविषे निशा ।
अक्षकम्पिल्लश्रीवासगुग्गुलुघृततैलकैः ॥७॥
तुल्यांशं पेषयेत्पिण्डं तत्तुल्यं सिक्थकं भवेत् ।
मृद्वग्निना पचेत्पात्रे मिश्रितं तं समुद्धरेत् ॥८॥
वर्त्तिर्गुणवती नाम योज्या शीतजलान्विता ।
दुःसाध्यव्रणगण्डेषु तथा नाडीव्रणेषु च ।
शोधने रोपणे चैव स्वास्थ्यमुत्पादयत्यसौ ॥९॥

१. सर्जरसचूर्ण, २. लोध्रचूर्ण, ३. नागसिन्दूर, ४. अतीस चूर्ण, ५. हल्दीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ७. कम्पिल्लकचूर्ण, ८. सरलकाष्ठचूर्ण, ९. गुग्गुलु, १०. गोघृत और ११. तिल तैल—प्रत्येक १० ग्राम तथा १२. मोम ११० ग्राम लें। उपर्युक्त सर्जरस से सरलकाष्ठ तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण कर लें। अब एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में गुग्गुलु को थोड़ा जल देकर गरम करें। जब गुग्गुलु द्रव्य हो जाय तो चूल्हे से नीचे उतारकर

उसमें सभी सूक्ष्म चूर्णो को अच्छी तरह से मिला लें और काचपात्र में संग्रह करें। इसे 'गुणवतीवर्ति' कहते हैं। इस वर्ति को शीतल जल से ठण्डा कर व्रण पर लगाने से दुःसाध्य व्रण, गलगण्ड तथा नाडीव्रण नष्ट हो जाता है।

७. घोण्टाफलादिवर्त्ति (च. द.)

घोण्टाफलत्वङ्मदनात्फलानि
पूगस्य च त्वग्लवणं च मुख्यम्।
स्नुह्यर्कदुग्धेन सहैष कल्को
वर्त्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम्॥१०॥

१. बदरीफलास्थिमज्जा, २. मदनफलपिप्पली, ३. सुपारी का छिलका तथा ४. सैन्धवलवण (समभाग) लें। इन्हे सूक्ष्म चूर्ण कर एक खरल में मर्दन करें तथा स्नुहीक्षीर एवं अर्कक्षीर की भावना देकर कल्क रूप में काचपात्र में संग्रहीत करें। जब उपयोग करना हो तो वर्ति के रूप में बनाकर नाडीव्रण में प्रवेश कर व्रणबन्धन करना चाहिए। इस वर्ति के उपयोग से नाडीव्रण नष्ट हो जाता है।

८. माक्षिकलवणादिवर्त्ति (च. द.)

वर्त्तीकृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तं
नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा।
दुष्टव्रणे यद्विहितञ्च तैलं
तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति॥११॥

सैन्धवलवण को मधु के साथ पीसकर वर्ति बनाकर व्रण में रखने से व्रण नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार दुष्ट व्रण में सुश्रुतोक्त द्रवन्त्यादितैल का लेप करने से सभी प्रकार के नाडीव्रण नष्ट हो जाते हैं।

९. जात्यादिवर्त्ति (च. द.)

जात्यर्कशम्पाककरञ्जदन्ती-
सिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः।
वर्त्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं
स्नुक्क्षीरपिष्टा सह चित्रकेण॥१२॥

१. चमेलीपत्र, २. अर्कपत्र, ३. अमलतासपत्र, ४. करञ्जपत्र, ५. दन्तीमूल, ६. सैन्धवलवण, ७.सौवर्चल-लवण, ८. यवक्षार, ९. चित्रकमूल और १०. स्नुहीक्षीर (सम-भाग) लें। चारो पत्तों को सिल पर एक साथ खूब महीन पीस लें। ततः अन्य द्रव्यों को भी सूक्ष्म चूर्ण कर पत्र कल्क के साथ मिलावें और स्नुहीक्षीर देकर पुनः पीस लें। इसकी वर्त्ति बनाकर नाडीव्रण पर रखने से नाडीव्रण ठीक हो जाता है।

१०. कंगुनीमूलादिचूर्ण (च.द.)

माहिषदधिकोद्रवभक्तमिश्रितं हरति चिरविरूढाञ्च।
भुक्तं कङ्गुनिकामूलचूर्णमतिदारुणां नाडीम्॥१३॥

भैंस का दही, कङ्गुनी मूलचूर्ण (कुधान्य) तथा कोदों (कुधान्य) का भात—तीनों को एक साथ मिलाकर सेवन करने (खाने) से बहुत दिनों का भयंकर नाडीव्रण रोग नष्ट हो जाता है।

११. विडङ्गादिचूर्ण (यो.र.)

विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम्।
हन्ति कुष्ठकृमीन् मेहनाडीव्रणभगन्दरान्॥१४॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण और ५. पीपरचूर्ण (समभाग) लें। उपर्युक्त पाँचों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में सुरक्षित रख लें। मधु के साथ मिलाकर ३ ग्राम इस चूर्ण का सेवन करने से कुष्ठ, कृमि, प्रमेह, नाडीव्रण और भगन्दररोग नष्ट हो जाते हैं।

क्षारसूत्र का प्रयोग (च. द.)

कृशदुर्बलभीरूणां गतिर्मर्माश्रिता च या।
क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन॥१५॥

कृश, दुर्बल, डरपोक तथा शस्त्रकर्म से डरने वालों का एवं मर्म स्थान में उत्पन्न हुए व्रणों का क्षारसूत्र से छेदन करना चाहिए। ऐसे लोगो का व्रण कभी भी शस्त्र से नहीं काटना चाहिए।

क्षारसूत्रप्रयोग विधि (च.द.)

एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम्।
सूचीं निदध्याद् गत्यन्ते चोन्नम्याशु निर्हरेत्॥१६॥
सूत्रस्यान्तं समानीय गाढबन्धं समाचरेत्।
ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत्॥१७॥
क्षारोक्तं मतिमान् वैद्यो यावन्न च्छिद्यते गतिः।
भगन्दरेऽप्येष विधिः कार्यो वैद्येन जानता॥१८॥

एषणी (Probe) के द्वारा नाडीव्रण की गति का पता लगाकर सूची में धागा पिरोकर एषणी के सहारे सूई को व्रण में प्रवेश करें और नाडीव्रण के दूसरे सिरे से सूई और क्षारसूत्र को बाहर निकाल लें। इसके बाद क्षारसूत्र को खींचकर दोनों सिरों पर गाँठ बाँध दें। यदि क्षारसूत्र में क्षार अधिक न लगा हो तो नया क्षारसूत्र पुनः प्रवेश करें। जब तक नाडीव्रण की सभी शाखाऐं कट नहीं जाय तब तक नया क्षारसूत्र प्रतिदिन बदलना चाहिए। क्रियाकुशल वैद्य को भगन्दररोग में भी इसी प्रकार से क्षारसूत्र का प्रवेश कराना चाहिए।

अर्बुदादि रोगों में क्षारसूत्र प्रयोग (च. द.)

अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत्।
सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं वा समन्ततः॥
मूलं सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपाचरेद् व्रणम्॥१९॥

अर्बुद आदि रोगों में पहले यन्त्र से पकड़कर ऊपर उठाकर मूल भाग को क्षारसूत्र से बाँधना चाहिए। अथवा यववक्त्रा नामक सूई से मूल भाग को गोदकर छिद्र बना लें और उसमें क्षारसूत्र को डालकर बाँध दें। अर्बुद कटने पर व्रणवत् उपचार करना चाहिए।

१२. सप्ताङ्गगुग्गुलु (च. द.)

गुग्गुलुस्त्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितः ।
नाडीदुष्टव्रणशूलभगन्दरविनाशनः ॥२०॥

१. शुद्ध गुग्गुलु, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण, ५. सोंठचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण और ८. गोघृत—इन्हें समभाग में लें। पहले एक इमामदस्ता में गुग्गुलु को थोड़ा घृत मिलाकर कूटें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर पुनः कूटें। सभी घृत उसमें मिला लें। खूब कूटने के बाद १-१ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके प्रयोग से नाडीव्रण, दुष्टव्रण, शूल एवं भगन्दररोग नष्ट हो जाते हैं।

१३ श्यामाघृत (वङ्गसेन)

श्यामा त्रिभण्डी त्रिफला सुसिद्धं
हरिद्रया तिल्वकवृक्षकेण ।
घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन
हन्याद्गतिं कोष्ठगताऽपि या स्यात् ॥२१॥

१. कालात्रिवृतचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण ५. आम्रहरिद्रा तथा ६. लोध्रत्वक्—प्रत्येक द्रव्य ४० ग्राम; गोघृत १ किलो, गोदुग्ध ४ लीटर और जल ४ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें । ततः कल्क के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। ततः मूर्च्छित घृत में कल्क और दूध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब दूध सूख जाय तो ४ लीटर जल मिलाकर कल्क का सम्यक् पाक करें। जल सूखने पर पाक-परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से घृत को छान लें और काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस श्यामा घृत का लेप करने से कोष्ठगत नाडीव्रण भी नष्ट हो जाता है।

१४. स्वर्जिकाद्यतैल (च. द.)

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनीलिकाः ।
खरमञ्जरिबीजानि तैलं गोमूत्रपाचितम् ॥
दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥२२॥

१.स्वर्जिकाक्षार, २. सैन्धवलवण, ३. दन्तीमूल, ४. चित्रकमूल, ५. श्वेतार्कमूलत्वक्, ६. नरकट (नरसल) मूल, ७. नीलीमूल और ८. अपामार्गबीज—प्रत्येक द्रव्य ३० ग्राम तथा तिलतैल १ लीटर एवं गोमूत्र ४ लीटर लें। स्वर्जिकाक्षार से अपामार्गबीज तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। ततः जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब तिलतैल का मूर्च्छन करें । ततः उस मूर्च्छित तैल में कल्क और थोड़ा गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। गोमूत्र थोड़ा-थोड़ा मिलाकर पाक करें, अन्यथा अत्यधिक फेनोद्गम होगा और तैल बाहर गिरेगा। अतः ५० मि.ली. गोमूत्र दे-देकर पकावें। जब सारा गोमूत्र तैल में सूख जाय तो तैल सिद्ध समझकर चूल्हे से उतारकर छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का लेप करने से दुष्टव्रण और नाडीव्रण नष्ट हो जाता है।

१५. कुम्भिकादितैल (च. द.)

कुम्भीकखर्जूरकपित्थबिल्व-
वनस्पतीनान्तु शलाटुवर्गैः ।
कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैल-
मावाप्य मुस्तासरलप्रियङ्गून् ॥२३॥
सौगन्धिकामोचरसाहिपुष्प-
लोध्राणि दत्त्वा खलु धातकीञ्च ।
एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी
रोहेद् व्रणो वै सुखमाशु चैव ॥२४॥

क्वाथ—१. पुन्नाग का कोमल फल, २. खजूर का कच्चा फल, ३. कपित्थफल तथा ४. बिल्वफलमज्जा—प्रत्येक द्रव्य १-१ किलो लें।

कल्क—१. नागरमोथा, २. सरलकाष्ठ, ३. प्रियङ्गुफूल, ४. रक्तकमलपुष्प, ५. मोचरस, ६. नागकेशर, ७. लोध्रत्वक् और ८. धातकी पुष्प—प्रत्येक द्रव्य ३० ग्राम लें। सर्वप्रथम पुन्नागफल से बिल्ववृक्ष के फलों तक सभी द्रव्यों को यवकुट कर ४ गुने जल में पाक करें। ४ लीटर जल शेष रहने पर क्वाथ छान लें। इसी प्रकार कल्क द्रव्यों का चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब तिलतैल का मूर्च्छन करें और कल्क-क्वाथ मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल को उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का लेप करने से शल्य दोष से उत्पन्न नाडीव्रण एवं अन्य सभी प्रकार के व्रण नष्ट हो जाते हैं।

१६. भल्लातकादितैल (च. द.)

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन
सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयचित्रकैश्च ।
स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं
नाडीं कफानिलकृतामपचीव्रणांश्च ॥२५॥

१. भल्लातकफलमज्जा (Gold bee), २. अर्कमूल, ३. मरिच, ४. सैन्धवलवण, ५. वायविडङ्ग, ६. हल्दी, ७. दारुहल्दी तथा ८. चित्रकमूल—ये सभी द्रव्य ३०-३० ग्राम; ९.

भृङ्गराजस्वरस ४ लीटर और १०. तिलतैल १ लीटर लें। भल्लातक फल मज्जा से चित्रकमूल तक के सभी द्रव्यों का चूर्ण करें। पुनः जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब तिलतैल का मूर्च्छन करें। मूर्च्छित तैल में कल्क और भृंगराजस्वरस मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का लेप करने से कफज एवं वातज अपची और व्रण नष्ट हो जाता है।

१७. निर्गुण्डीतैल (च. द.)

समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसेन तु।
तेन सिद्धं समं तैलं नाडीव्रणविशोधनम् ॥२६॥
हितं पामाऽपचीनान्तु पानाभ्यञ्जननावनैः।
विविधेषु च रोगेषु तथा सर्वव्रणेषु च ॥२७॥

निर्गुण्डीमूलत्वक् २५० ग्राम, निर्गुण्डीपत्रस्वरस ४ लीटर तथा तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः निर्गुण्डीमूलत्वक् को सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। अब मूर्च्छित तैल में कल्क और निर्गुण्डीस्वरस या पत्र क्वाथ ४ लीटर मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैलपाक की परीक्षा कर तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। ठण्डा होने पर तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस निर्गुण्डीतैल का अभ्यङ्ग एवं नस्य देने से यह नाडीव्रण का शोधन तथा रोपण करता है। इस तैल के लेप से पामा, अपची और अनेक प्रकार के व्रण नष्ट हो जाते हैं।

१८. हंसपाद्यादितैल (च. द.)

हंसपाद्यरिष्टपत्रं जातीपत्रं ततो रसैः।
तत्कल्कैश्च पचेत्तैलं नाडीव्रणविशोधनम् ॥२८॥

१. हंसपदीस्वरस १ लीटर, २. निम्बपत्रस्वरस १ लीटर, ३. चमेलीपत्रस्वरस १ लीटर, ४. तिलतैल ७५० मि.ली., ५. हंसपदी ८० ग्राम, ६ निम्बपत्र ८० ग्राम और चमेलीपत्र ८० ग्राम लें। सर्वप्रथम तैल का मूर्च्छन करें । ततः तीनों पत्रों को कूटकर सिल पर पीसें और कल्क बनावें। अब तीनों स्वरसों को और कल्क को मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाकपरीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़े से निचोड़ लें। ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें । इस तैल का लेपन करने से नाडीव्रण नष्ट हो जाता है।

१९. हिंस्राद्यतैल (भा. प्र.)

हिस्रां हरिद्रां कटुकां बलां च
गोजिह्वकां चापि सबिल्वमूलाम्।
संहृत्यतैलं विपचेद्व्रणस्य
संशोधनं पूरणरोपणं च ॥२९॥

१. जटामांसी ४० ग्राम, २. हल्दी ४० ग्राम, ३. कुटकी ४० ग्राम, ४. बलामूल ४० ग्राम, ५. गोजिह्वा ४० ग्राम, ६. बिल्वमूलत्वक् ४० ग्राम और ७. तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम तिल तैल का मूर्च्छन करें। ततः जटामांसी से बिल्वत्वक् के सभी छः द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छित तैल में यह कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाकपरीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। व्रणों पर इस हिंस्राद्य तैल का लेप करने से व्रणों का शोधन, पूरण एवं रोहण होता है।

२० कर्चूरतैल (भा. प्र.)

कर्चूरकस्य स्वरसे कटुतैलं विपाचयेत्।
सिन्दूरकल्कितं नाडीदुष्टव्रणविसर्पनुत् ॥३०॥

कर्चूरस्वरस या क्वाथ ४ लीटर, सरसोंतैल १ लीटर और नागसिन्दूर ५० ग्राम लें। सर्वप्रथम कटुतैल का मूर्च्छन करें। ततः कचूरक्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। इसे गरम तैल में ही नागसिन्दूर मिलाकर चम्मच से खूब चलावें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। तैल काला हो जायगा। इस तैल का लेप करने से नाडीव्रण, दुष्टव्रण और विसर्प नष्ट हो जाते हैं।

२१. सैन्धवादितैल (भा. प्र)

सैन्धवार्कमरिचज्वलनाख्यै-
र्मार्कवेण रजनीद्वयसिद्धम्।
तैलमेतदचिरेण निहन्याद्
दूरगामपि कफानिलनाडीम् ॥३१॥

१. सैन्धवलवण, २. अर्कमूलत्वक्, ३. मरिच, ४. चित्रकमूल, ५. भृङ्गराज, ६. हल्की, ७. दारुहल्दी—प्रत्येक द्रव्य ३५ ग्राम और ८. तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम तिल तैल का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त सातों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बनावें। अब मूर्च्छित तैल में यह कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य चूल्हे से तैलपात्र नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का लेपन, वर्त्ति आदि द्वारा प्रयोग करने पर शीघ्र ही कफज एवं वातज नाडीव्रण रोग नष्ट हो जाता है।

२२. नरास्थितैल ( )

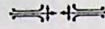
नरास्थितैललेपेन स्फुटितः शुष्यति व्रणः ॥३२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां नाडीव्रणाधिकारः।



नरास्थि (मनुष्य के शिर की हड्डी) २५० ग्राम और तिलतैल १ लीटर लें। मूर्च्छित तिलतैल में उक्त नरास्थि का चूर्ण कर उसे जल से सींचकर कल्क बना लें। ततः मूर्च्छित तैल में कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का व्रण पर लेपन करने से व्रण सूख जाता है।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य नाडीव्रणाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ भगन्दररोगाधिकारः (५१)

भगन्दर में क्रिया-क्रम (च.द.)

गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोष्य शोधयेत्ततः।
रक्तावसेचनं कार्यं यथा पाकं न गच्छति ॥१॥

गुद के आस-पास चारों ओर (२ अंगुल के घेरे में) शोथ देखकर रोगी को उपवास करावें। ततः वमन-विरेचन द्वारा शरीर का शोधन करना चाहिए इसके बाद रक्तमोक्षण करना चाहिए, जिससे भगन्दर[1] का पाक नहीं हो।

विमर्श—दो आशयों को अथवा आशय और बाह्य त्वचा को मिलाने वाले नाडीव्रण को फिश्च्युला (Fistula) कहते हैं। जिस नाडीव्रण का एक मुख बाह्य त्वचा पर खुलता हो तथा दूसरा मुख आशय या पाक स्थान पर खुलता हो उसे 'Fistula' कहते है। भगन्दर को 'Fistula in ano' कहते हैं। यह प्रायः एक प्रकार का नाडीव्रण ही होता है, जो गुद एवं मलाशय के पास होता है। इसका एक मुख मल द्वार (गुद के बाहरी चर्म) पर होता है तथा उसका दूसरा मुख गुद के भीतर होता है। नाडीव्रण (Sinus) शरीर में बाहर-भीतर कहीं भी हो सकता है।

१. भगन्दर पिडका में लेप (च. द.)

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूच्यः सपुनर्नवाः।
सुपिष्टाः पिडकावस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥२॥

१. वटपत्र, २. ईंटे का चूर्ण, ३. सोंठचूर्ण, ४. गुडूची ताजा और ५. पुनर्नवामूल ताजा (समभाग) लें। वट के कोमल पत्र, गुडूची एवं पुनर्नवामूल को कूट-पीसकर पुनः सिल पर पीसें। इसमें सोंठचूर्ण तथा पानी में भिंगा हुआ ईंटे का चूर्ण मिलाकर खूब महीन पीसें और भगन्दर की पिडका पर लेप करने से बहुत लाभ मिलता है।

२. स्नुह्यादिवर्त्ति (च. द.)

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः।
भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नतः ॥
एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः ॥३॥

स्नुहीक्षीर, अर्कदुग्ध तथा दारुहरिद्रा (समभाग) लें। सर्वप्रथम दारुहल्दी का सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः उसे महीन कपड़ा से छान लें। ततः सिल पर स्नुहीक्षीर और अर्कक्षीर के साथ खूब पीसें और वर्त्ति बना लें। भगन्दर या कहीं के भी (सम्पूर्ण शरीर गत) नाडीव्रण में एषणी (Probe) से नाडी का मार्ग ज्ञात कर उसमें उक्त वर्त्ति को प्रवेश करावें तथा व्रणबन्धन करें। ऐसा करने से भगन्दर नष्ट हो जाता है।

३. तिलादिलेप एवं निशादिलेप (च. द.)

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं
निशे वचालोध्रमगारधूमम्।
भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च
दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥४॥

१. तिल, हरीतकी, लोध्रत्वक् तथा निम्बपत्र (समभाग) लें।

२. हल्दी, दारुहल्दी, वच, लोध्रत्वक् तथा गृहधूम (समभाग) लें। गृहधूम के बदले लकड़ी के कोयले का चूर्ण लें।

इन दोनों योगों को पृथक्-पृथक् चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इन्हे पृथक्-पृथक् सिल पर जल के साथ पीसकर लेप करने से भगन्दर, नाडीव्रण, उपदंश एवं दुष्टव्रण का शोधन तथा रोपण होता है।

४. विडालास्थिप्रलेप (च. द.)

त्रिफलारससम्पिष्टविडालास्थिप्रलेपनात्।
भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥५॥

बिल्ली की हड्डी का सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर त्रिफला क्वाथ से पीसें। इसे भगन्दर पर लेप करने से भगन्दर और दुष्टव्रण शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

५. त्रिफलाक्वाथ से भगन्दर प्रक्षालन ( )

भगन्दरं प्रत्यहन्तु सुधौतं त्रिफलाऽम्बुना ॥६॥

त्रिफलाक्वाथ से प्रतिदिन भगन्दर का प्रक्षालन करने से भगन्दर ठीक हो जाता है।

६. भूनागादिलेप (च. द.)

खरास्त्रपक्वभूनागचूर्णलेपो भगन्दरम्।
हन्ति दन्त्यग्न्यतिविषालेपस्तद्वच्छुनोऽस्थि वा ॥७॥

१. गदहे के रक्त में भूनाग को पकावें, ततः सिल पर पीसकर भगन्दर पर लेप करने से रोग नष्ट हो जाता है अथवा—

२. दन्तीमूलचूर्ण, चित्रकमूलचूर्ण और अतीसचूर्ण (समभाग)

---

१. भगन्दर के लक्षण—
गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडकाऽर्तिकृत्।
भिन्ना भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः ॥ (माधवनिदान)

लें। इन्हें सिल पर त्रिफलाक्वाथ से पीसकर लेप करने से भगन्दररोग नष्ट हो जाता है। अथवा—

३. कुत्ते की हड्डी का चूर्ण कर त्रिफलाक्वाथ से सिल पर पीसकर लेप करने से भगन्दर नष्ट हो जाता है।

७. कुष्ठादिलेप (च. द.)

कुष्ठं त्रिवृत्तिला दन्ती मागधी सैन्धवं मधु।
रजनी त्रिफला तुत्थं हितं व्रणविशोधनम् ॥८॥

१. कूठचूर्ण, २. निशोथचूर्ण, ३. तिलचूर्ण, ४. दन्ती मूलचूर्ण, ४. पीपरचूर्ण, ६. सैन्धवलवण, ७. मधु , ८. हल्दी चूर्ण, ९. आमलाचूर्ण, १० हरीतकीचूर्ण, ११. बहेड़ाचूर्ण और १२. तुत्थचूर्ण—उपर्युक्त सभी चूर्णों को सम भाग लें। इसे पुन: वस्त्र गालित करें। शेष बचे चूर्णों को पुन: पीसें। इसे किसी भी प्रकार के व्रणों पर लेपन करने से व्रण नष्ट हो जाते हैं।

८. रसाञ्जनादिलेप (च. द.)

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा निम्बपल्लवाः।
त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडीव्रणापहः ॥९॥

१. रसाञ्जन, २. हल्दी, ३. दारुहल्दी, ४. मञ्जिष्ठा, ५. निम्बपत्र, ६. निशोथ, ७, तेजबल और ८. दन्तीमूल—इन सभी आठ द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। पुन: इस चूर्ण को जल के साथ सिल पर पीसकर नाडीव्रण पर लेप करने से भगन्दर एवं नाडीव्रणरोग नष्ट हो जाता है।

९. तिलादिलेप (भा. प्र.)

तिला ज्योतिष्मती कुष्ठं लाङ्गली गिरिकर्णिका।
शताह्वात्रिवृतादन्त्यः शोधनाय भगन्दरे ॥१०॥

१. कृष्णतिल, २. ज्योतिष्मती, ३. कूठ, ४. कलिहारीमूल, ५. श्वेत अपराजिता, ६. सौंफ, ७ निशोथ और ८. दन्तीमूल (समभाग) लें। इनका सूक्ष्म चूर्ण करें और पुन: सिल पर जल के साथ पीसें तथा व्रणशोधन के लिए भगन्दर पर लेप करें।

१०. जातीपत्रादिलेप (भा. प्र.)

सुमना वटपत्राणि गुडूची विश्वभेषजम्।
ससैन्धवस्तक्रपिष्टो लेपो हन्ति भगन्दरम् ॥११॥

१. चमेलीपत्र, २. वटपत्र, ३. गुडूची, ४. सोंठचूर्ण और ५. सैन्धवलवण (समभाग) लें। इन्हें सिल पर तक्र के साथ पीसकर लेप करने से भगन्दररोग नष्ट हो जाता है।

११ जम्बूकमांसोपयोग (यो. र.)

जम्बूकस्यामिषं भुक्त्वा प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः।
अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते च भगन्दरात् ॥१२॥

शृगाल (सियार) का मांस सुसंस्कृत कर (जीरा, मरिच, हल्दी, सैन्धव, घृतादि से सुपक्व कर) प्रतिदिन खाने से भगन्दर रोग नष्ट हो जाता है। अजीर्ण नहीं हो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। एक मास तक इस तरह सुपक्व शृगाल मांस का सेवन करना चाहिए।

१२. खदिरादिक्वाथ-१ (वं.से.)

खदिराम्बुरतो भूत्वा कषायं त्रैफलं पिबेत्।
महिषाक्षविडङ्गानां भगन्दरविनाशनम् ॥१३॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा ४. महिषाक्षगुग्गुलु और ५. वायविडङ्ग (समभाग) लें। इनका ५० मि.ली. क्वाथ दो-तीन बार पिलाने से भगन्दर ठीक हो जाता है। प्यास लगने पर खदिर क्वाथ पीना चाहिए।

१३. खदिरादिक्वाथ-२ (शा. सं.)

खदिरत्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः।
विडङ्गचूर्णैश्च युक्तो भगन्दरविनाशनः ॥१४॥

१. खदिरकाष्ठ (खैर की सार-लकड़ी), २. आमला, ३. हरीतकी और ४. बहेड़ा (समभाग) लें। इनके ५० मि.ली. क्वाथ में २ ग्राम विडङ्गचूर्ण और ३ ग्राम भैंस का घी मिलाकर पिलाने से भगन्दर नष्ट हो जाता है।

१४. नारायणरस

दरदं पार्वतीपुष्पं कुनटी पुरुषो रसः।
शोणितं गन्धको दैत्यः सैन्धवातिविषा चवी ॥१५॥
शरपुङ्खा विडङ्गश्च यमानी गजपिप्पली।
मरिचार्कौ च वरुणो धूनकञ्च हरीतकी ॥१६॥
सम्मर्द्य कटुतैलेन गुडिकां कारयेद्भिषक्।
नाडीव्रणं प्रदुष्टञ्च गण्डमालां विचर्चिकाम् ॥१७॥
चिरदुष्टव्रणं दद्रु पूतिकर्णं शिरोगदम्।
हस्तपादपरिस्फोटं दुःसाध्यञ्च भगन्दरम् ॥
एतान् रोगान्निहन्त्याशु प्रभिन्नमिव केशरी ॥१८॥

१. शुद्ध हिङ्गुल, २. शुद्ध फिटकरी, ३. शुद्ध मैनसिल, ४. शुद्ध गुग्गुलु, ५. शुद्ध पारद, ६. ताम्रभस्म, ७. शुद्ध गन्धक, ८. लौहभस्म, ९. सैन्धवलवण, १०. अतीसचूर्ण, ११. चव्य, १२. शरपुंखा, १३. वायविडङ्ग , १४. अजवायन, १५. गजपीपर, १६ मरिच, १७. अर्कमूलत्वक्, १८. वरुणत्वक्, १९. राल तथा २०. हरड़ (समभाग) लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः हिङ्गुल को मिलाकर मर्दन करें। पुन: मैनसिल एवं अन्य भस्मों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें। पुनः सभी काष्ठौषधों के सूक्ष्म चूर्णों को उसी कज्जली में मिलाकर मर्दन करें। पुन: एक कटोरे में थोड़ा गरम पानी और गुग्गुलु मिलाकर चूल्हे पर पकावें। जब गुग्गुलु जल में घुलकर लप्सी जैसा हो

जाय तो उतारकर उक्त हल्वा जैसे हुए गुग्गुलु को उपर्युक्त मिश्रित चूर्णों के साथ मिलाकर हाथ से मसलें। अच्छी तरह से मर्दन होने पर एक खरल में सभी मिश्रणों को रखकर सरसोतैल के साथ मर्दन कर २५० मि.ग्रा. की गुडिका बना लें और सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'नारायणरस' को मधु के साथ सेवन करने से नाडीव्रण, दुष्टव्रण, गण्डमाला, विचर्चिका, पुराना दुष्टव्रण, दद्रु, कर्णपूय, शिरोरोग, हाथ-पैर का फटना (विपादिका) और भगन्दररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—सरसों तैलगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—भगन्दर, नाडीव्रण एवं दुष्टव्रण में।

१५. चित्रविभाण्डकरस

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम्।
त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ताम्रं तेन प्रलेपयेत् ॥१९॥
द्वयोः समं भस्मपूर्णभाण्डे रुद्ध्वा विपाचयेत्।
द्वियामान्ते समुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥२०॥
जम्बीरस्य द्रवैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटे पचेत्।
गुञ्जैकं मधुनाऽऽज्येन लिह्याद्धन्ति भगन्दरम् ॥२१॥
मुषलीं लशुनं चानु चारनालयुतं पिबेत्।
कर्त्तव्यो मधुराहारो दिवास्वप्नञ्च मैथुनम् ॥
वर्जयेच्छीतलाहारं रसे चित्रविभाण्डके ॥२२॥

शुद्ध पारद १०० ग्राम, शुद्ध गन्धक २०० ग्राम, घृतकुमारीस्वरस यथावश्यक और ताम्रभस्म ३०० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः घृतकुमारीस्वरस की भावना देकर ३ दिन तक मर्दन करें और गोला बना लें। इसके बाद ताम्रभस्म को जम्बीरीनिम्बुस्वरस के साथ मर्दन कर कज्जली गोलक पर लेप करें। इस ताम्रभस्म लिप्त गोले को सुखा लें। पुनः इसे कपड़े में बाँधकर भस्मयन्त्र के बीच (मिट्टी की हाँड़ी) में रखें। हाँड़ी का मुख शराव से ढककर कपड़मिट्टी करे। ६ घण्टे तक मृदु-मध्य-तीव्राग्नि से पाक करें। स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट खोलकर गोलक निकालें। उसे पुनः खरल में मर्दन करें और जम्बीरीस्वरस के साथ मर्दन कर पुनः गोला बनाकर पूर्ववत् ६ घण्टे तक पाक करें। स्वाङ्गशीत होन पर पुनः जम्बीरीस्वरस की भावना देकर पूर्ववत् भस्म यन्त्र में पकावें। इस प्रकार कुल ७ बार जम्बीरी स्वरस की भावना दें तथा ७ बार भस्मयन्त्र में पाक करें। ७वीं बार भस्मयन्त्र से इस गोले को निकालकर कपड़ा हटा लें और खरल में मर्दन करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'चित्रविभाण्डकरस' कहते हैं। इसे १२५ मि.ग्रा. कि मात्रा में मधु ६ ग्राम तथा १० ग्राम घृत के साथ मिलाकर चाटने से भगन्दररोग नष्ट हो जाता है। बाद में मुशलीचूर्ण २ ग्राम, लशुनकल्क १ ग्राम तथा काञ्जी ५० मि.ली. एक साथ मिलाकर पीना चाहिए।

आहार-विहार—दूध-रोटी, चीनी, दूध-भात आदि मधुर आहार करना चाहिए। औषधि सेवन काल में दिन मे सोना, मैथुन तथा शीतल पदार्थों का सेवन बन्द कर देना चाहिए।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं घी विषम मात्रा में से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—अम्ल। **उपयोग**—भगन्दर, नाडीव्रण एवं दुष्टव्रण में।

१६. भगन्दरहररस (र.सा.सं.)

सूतस्य द्विगुणेन शुद्धबलिना कन्यापयोभिस्त्र्यहं
शुद्धं ताम्रमयः समस्ततुलितं पात्रं निधायोपरि।
स्वेद्यं यामयुगं च भस्म पिठरे निम्बूजलैः सप्तधा
पाकं तत्पुटयेद्भगन्दरहरो गुञ्जोन्मितः स्यादिति ॥२३॥

१. शुद्ध पारद १०० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक २०० ग्राम, ३. ताम्रभस्म ३०० ग्राम, ४. लोहभस्म ३०० तथा ५. घृतकुमारीस्वरस यथावश्यक लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली करें। ततः घृतकुमारीस्वरस की ३ भावना दे और गोला बनाकर सुखा लें। पुनः उस गोले को रेशमी वस्त्र में बाँधकर भस्मयन्त्र के भाण्ड में रखकर उसका मुख शराव से ढककर कपड़मिट्टी करें। ६ घण्टे तक मृदु, मध्य एवं तीव्राग्नि से पाक करें। स्वाङ्गशीतल होने पर भस्मयन्त्र खोलकर औषधि की पोटली निकालें तथा कपड़ा हटाकर खरल में मर्दन करें। ततः निम्बुस्वरस की भावना देकर पुनः गोला बनाकर सुखा लें। इस सूखे गोले को रेशमी वस्त्र में बाँधकर पुनः पूर्ववत् भस्मयन्त्र में रखकर पूर्ववत् पाक करें। इसी तरह कुल ७ बार भावना देकर भस्मयन्त्र में पकाना चाहिए। अन्त में भस्मयन्त्र से निकले गोले को खरल में मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'भगन्दरहररस' कहते हैं। इसे विषम मात्रा में मधु-घृत के साथ मिलाकर १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में सेवन करने से भगन्दर रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ली.। **अनुपान**—विषममात्रा में मधु-घृत से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—अम्ल। **उपयोग**—भगन्दररोग में।

१७. ताम्रभस्म प्रयोग

ताम्रपत्रं रविक्षीरे निर्गुण्डीस्वरसे तथा।
त्रिकण्टजे रसे स्नुह्यास्ताम्रं दग्ध्वा क्षिपेत्त्रिधा ॥२४॥
रसास्यार्द्धपलं शुद्धं गन्धकस्य पलं तथा।
कज्जल्यर्द्धेन जम्बीरप्लुतेन ताम्रतः पलम् ॥२५॥

परिलिप्यान्धमूषायां दद्यात्पञ्चपुटांल्लघून्।
सम्मर्द्य मधुसर्पिर्भ्यां ततो रक्तिमितं लिहेत्॥
भगन्दरे सर्वभवे कार्यं सर्वव्रणेषु च॥२६॥

१. ताम्रपत्र ५० ग्राम, २. अर्कदुग्ध २०० मि.ली., ३. निगुण्डीस्वरस २०० मि.ली ४. गोक्षुरक्वाथ २०० मि.ली., ५. स्नुहीक्षीर २०० मि.ली., ६. शुद्ध पारद २५ ग्राम, ७. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम और ८. जम्बीरीनिम्बुरस १०० मि.ली.। स्टेनलेस स्टील की चार कटोरी में पृथक्-पृथक् अर्कक्षीर, स्नुही रस, गोक्षुरक्वाथ तथा निर्गुण्डीपत्रस्वरस रखें। अब एक सगड़ी (चूल्हे) की प्रज्वलित अग्नि में ताम्रपत्र को रखें। जब पत्र लाल हो जाय तो चिमटी से ताम्रपत्र को पकड़कर अर्कदुग्ध में सेचन करें। ऐसा प्रत्येक द्रव में प्रतप्त ताम्रपत्र का ३-३ बार सेचन करें। कुल १२ बार सेचन करें। अब एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। कज्जली को निम्बुस्वरस की भावना देकर शुद्ध ताम्रपत्र के दोनों ओर लेप करें। सूखने पर इन ताम्रपत्रों को मिट्टी की शराव में रखें और सम्पुटित कर कपड़मिट्टी करें। सूखने पर लघुपुट (कुक्कट पुट) में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सावधानी से ताम्रपत्र निकालकर खरल में मर्दन करें तथा पूर्ववत् पारद एवं गन्धक की कज्जली मिलाकर निम्बुस्वरस की भावना देकर टिकिया बनाकर सुखाकर कपड़-मिट्टी करें और लघुपुट (कुक्कुट पुट) में पाक करें। ऐसे ५ बार लघु पुट देने से इस ताम्रपत्र की अच्छी भस्म बनती है। प्रत्येक बार कज्जली भी ७५ ग्राम मिलावें।

इस ताम्रभस्म को १ (रत्ती) १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में विषम मात्रा में मधु एवं घी के साथ मिलाकर चाटना चाहिए। इसके प्रयोग से सभी प्रकार के भगन्दर तथा सभी प्रकार के व्रण रोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—एक बार में १२५ ग्राम शुद्ध पारद तथा २५० ग्राम शुद्ध गन्धक की कज्जली बनावें और प्रत्येक बार ७५ ग्राम कज्जली को यथावश्यक निम्बुस्वरस के साथ खरल में मर्दन कर ताम्रपत्र पर लेप करना चाहिए। दूसरी बार से ताम्रचूर्ण में मिलाकर एवं टिकिया बनाकर कुक्कुटपुट में पाक करें।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—किञ्चिद् अम्ल। **उपयोग**—भगन्दर एवं सभी व्रणों में। **अनुपान**—विषम मात्रा में मधु-घृत से।

१८. नवकार्षिकगुग्गुलु

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता।
गुडिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता॥२७॥

१. आमलाचूर्ण १२ ग्राम, २. हरीतकीचूर्ण १२ ग्राम, ३. बहेड़ाचूर्ण १२ ग्राम, ४. शुद्ध गुग्गुलु ६० ग्राम तथा ५. पीपरचूर्ण १२ ग्राम लें। शुद्ध गुग्गुलु को एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में ५० मि.ली. जल के साथ मन्दाग्नि पर गरम करें। जब सम्पूर्ण गुग्गुलु घुल जाय तो उतार कर त्रिफला एवं पीपरचूर्ण डालकर अच्छी तरह से मिला लें। पुन: सिल पर पीसकर १-१ ग्राम की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस गुटिका का ३ बार गरम पानी से सेवन करने पर शोथ, गुल्म, अर्श और भगन्दररोग में बहुत लाभ होता है।

मात्रा—१ से २ ग्राम। **अनुपान**—गरमजल से। **गन्ध**—गुग्गुलुगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शोथ, अर्श एवं भगन्दर में।

१९. सप्तविंशतिकगुग्गलु (च. द.)

त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडङ्गामृतचित्रकम्।
शट्येला पिप्पलीमूलं हवुषा सुरदारु च॥२८॥
तुम्बुरु पुष्करं चव्यं विशाखा रजनीद्वयम्।
विडसौवर्चलं क्षारौ सैन्धवं गजपिप्पली॥२९॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद् द्विगुणगुग्गुलुः।
कोलप्रमाणां गुडिकां भक्षयेन्मधुना सह॥३०॥
कासं श्वासं तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम्॥३१॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च अन्त्रवृद्धिं तथा क्रिमीन्।
चिरज्वरोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम्॥३२॥
आनाहञ्च तथोन्मादं कुष्ठानि चोदराणि च।
नाडीदुष्टव्रणान् सर्वान् प्रमेहं श्लीपदं तथा॥
सप्तविंशतिको हन्ति सर्वरोगनिषूदनः॥३३॥

१. आमलाचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. बहेड़ाचूर्ण, ४. सोंठ-चूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. मरिचचूर्ण, ७. नागरमोथाचूर्ण, ८. वाय-विडङ्गचूर्ण, ९. गुडूचीचूर्ण , १०. चित्रकमूलचूर्ण, ११. कचूर-चूर्ण, १२. छोटीइलायचीचूर्ण, १३. पिप्पलीमूलचूर्ण, १४. हाऊबेरचूर्ण, १५. देवदारुचूर्ण, १६. नेपालीधनीयाँचूर्ण, १७. पुष्करमूलचूर्ण, १८ चव्यचूर्ण, १९. इन्द्रायणमूलचूर्ण, २०. हल्दीचूर्ण, २१. दारुहल्दीचूर्ण, २२. विडलवण, २३. सौव-र्चललवण, २४. यवक्षार, २५ सज्जीक्षार, २६. सैन्धवलवण और २७. गजपीपर—प्रत्येक २० ग्राम लें तथा २८. शुद्ध गुग्गुलु १०८० ग्राम अर्थात् ऊपर के सभी चूर्णों से दुगुना लेना है। एक स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में शुद्ध गुग्गुलु और ५०० मि.ली. जल मिलाकर मन्दाग्नि पर गरम करें। बीच-बीच में चम्मच से चलाते रहें। जब सम्पूर्ण गुग्गुलु घुल जाय तो उस पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर चम्मच से खूब मिला लें। ततः ऊपर बताये २७ द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को इस गुग्गुलु में डालकर अच्छी तरह से मिला लें। पुनः सिल पर थोड़ा-थोड़ा रखकर गरम पानी का छींटा

देकर पीसें और ६-६ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'सप्तविंशतिकी गुग्गुलु' की १-१ गोली ३ बार मधु के साथ सेवन करने से कास, श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, गुदशूल, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमि, जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, आनाह, उन्माद, कुष्ठ, उदररोग, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, सभी प्रकार के प्रमेह और श्लीपद रोग नष्ट हो जाते हैं। यह 'सप्तविंशतिकगुग्गुलु' सभी रोगों को नष्ट करता है।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—भगन्दर, दुष्टव्रण एवं अर्श में।

२०. विष्यन्दनतैल (सु.चि. ९)

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलयूहयमारकौ।
सुधां वचां लाङ्गलिकीं हरितालं सुवर्चिकाम् ॥३४॥
ज्योतिष्मतीञ्च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत्।
एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे।
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं परम् ॥३५॥

१. चित्रकमूल, २. अर्कमूलत्वक्, ३. निशोथ, ४. पाठा, ५. कठगूलरत्वक्, ६. कनेरमूलत्वक्, ७. सेहुण्डमूलत्वक्, ८. वच. ९. लाङ्गलीमूल, १०. हरताल, ११. सज्जीखार, १२. ज्योतिष्मती—सभी द्रव्य २०-२० ग्राम तथा १३. तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर सिल पर जल के साथ पीसें और कल्क बना लें। अब मूर्च्छित तैल में उक्त कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'विष्यन्दनतैल' कहते हैं। इस तैल के लेप से भगन्दरव्रण का शोधन, रोपण एवं सवर्णीकरण होता है।

२१. करवीराद्यतैल (च.द.)

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः ।
मातुलुङ्गार्कवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥३६॥

१. करवीरमूल, २. हल्दी, ३. दन्तीमूल, ४. लाङ्गलीमूल, ५. सैन्धवलवण, ६. चित्रकमूल, ७. जम्बीरीनिम्बुमूल, ८. अर्कमूलत्वक्, ९. कुटजत्वक्—प्रत्येक द्रव्य २८ ग्राम लें और १०. तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम तिल तैल का मूर्च्छन करें। करवीरमूल से कुटजत्वक् तक की सभी औषधों का सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः सिल पर जल के साथ पीस कर कल्क बना लें। ततः मूर्च्छित तैल में यह कल्क और ४ लीटर जल देकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का लेप करने से भगन्दररोग नष्ट हो जाता है।

२२. निशाद्यतैल (च.द.)

निशाऽर्कक्षीरसिन्धवग्निपुराश्वहनवत्सकैः ।
सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥३७॥

१. हल्दी, २. अर्कक्षीर, ३. सैन्धवलवण, ४. चित्रकमूल, ५. गुग्गुलु, ६. कनेरमूलत्वक्, ७. कुटजत्वक्—प्रत्येक ३५ ग्राम और ८. तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। तदनन्तर हल्दी से कुटज तक के सभी ७ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। अब इस कल्क में ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का लेपन करने से भगन्दररोग नष्ट हो जाता है।

२३. सैन्धवाद्यतैल

सैन्धवं चित्रकं दन्ती पलाशश्चेन्द्रवारुणी।
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा ग्राह्यमष्टावशेषितम् ॥३८॥
क्वाथपादं पचेत्तैलं कल्कः कृष्णायसं मृतम्।
पचेत्तैलावशेषं च तेन लेप्यं भगन्दरम् ॥
असाध्यं साधयत्याशु पक्वं कृमिकुलान्वितम् ॥३९॥

१. सैन्धवलवण, २. चित्रकमूल, ३. दन्तीमूल, ४. पलाशबीज, ५. इन्द्रायणमूल—प्रत्येक द्रव्य ८०० ग्राम लें, ६. तिलतैल १ लीटर, ७. गोमूत्र ३२ लीटर तथा ८. लौहभस्म २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः सैन्धव लवण से इन्द्रायण मूल तक के ५ द्रव्यों का यवकुट करें और आठ गुना गोमूत्र में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें और मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। लौहभस्म को जल के साथ मिश्रित कर कल्क बनावें और इस कल्क को भी तैल में मिलाकर पाक करें। गोमूत्र सूखने पर सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल के लेप से असाध्य एवं अनेक प्रकार की कृमियों से परिपूर्ण भगन्दररोग भी नष्ट हो जाता है।

विमर्श—गोमूत्र के कारण यह तैल अधिक गोमूत्रगन्धी हो जाता है। गोमूत्र क्वाथ तैल में थोड़ा-थोड़ा कर मिलाना चाहिए अन्यथा खूब फेनोद्गम होकर तैल पात्र से बाहर आ जाता है। अतः सावधानीपूर्वक इस तैल का पाक करना चाहिए।

भगन्दर में पथ्य (यो.र.)

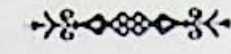
आमे संशोधनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् ।
पक्वे पुनः शस्त्रविधिस्तथा क्षाराग्निकर्म च ॥४०॥
सर्वेऽपि शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गलो रसः ।
पटोलं शिग्रुवेत्राग्रं पत्तूरो बालमूलकम् ॥४१॥
तिलसर्षपयोस्तैलं तिक्तवर्गो घृतं मधु ।
एतत्पथ्यं यथादोषं नरैः सेव्यं भगन्दरे ॥४२॥

भगन्दर की आमावस्था (अपक्वावस्था) में वमन-विरेचन (संशोधन), लेप, लंघन, रक्तमोक्षण करना चाहिए। पक्वावस्था में शस्त्रक्रिया विधि से या क्षारसूत्र या अग्निकर्म विधि से निष्णात चिकित्सक द्वारा चिकित्सा करना हितकर है। सभी तरह के शालिचावल, मूँग, विलेपी, जंगली पशु-पक्षिओं के मांसरस, पटोलफल, सहिजनफल, वेतस के कोमल पत्ते का शाक, शालिञ्चशाक, कोमल (बाल) मूली, तिलतैल, सरसोंतैल, तिक्तवर्ग के द्रव्य (यथा—निम्ब-गुडूची-चिरायता-कालमेघ आदि), मधु, घृत—ये सभी दोषानुसार भगन्दर के रोगियों को ग्रहण करना चाहिए।

भगन्दर में अपथ्य (सु.चि. ९)

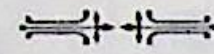
व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ।
संवत्सरं परिहरेदपि रूढव्रणो नरः ॥४३॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां भगन्दररोगाधिकारः ।



व्यायाम, मैथुन, युद्ध, हाथी-घोड़े या साइकल-स्कूटर की सवारी तथा गरिष्ठ पदार्थों का सेवन—ये सभी भगन्दर रोगी का व्रण ठीक होने पर भी १ वर्ष तक त्याग देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य भगन्दररोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथोपदंशरोगाधिकारः (५२)

उपदंशरोग का क्रिया-क्रम (च.द.)

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य ध्वजमध्ये शिराव्यधः।
जलौकापातनं वा स्यादूर्ध्वाधःशोधनं तथा ॥१॥

पहले उपदंश के रोगी को विधिवत् स्नेहन (घृतपान तथा बाह्य शरीर पर अभ्यङ्ग), स्वेदन कराना चाहिए। उत्कृष्ट दोष हो तो शिश्न के मध्य की मुख्य सिरा का वेधन कर अशुद्ध रक्त निकाल देना चाहिए। अथवा अल्प दोष हो तो जलौका लगाकर अशुद्ध रक्त का निर्हरण करें। साथ ही शरीर के ऊर्ध्वाध: शोधन कराना चाहिए।

दोषनिर्हरण का फल (च.द.)

सद्यो निर्जितदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः।
पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥२॥

रोग उत्पन्न होते ही तत्काल रक्तमोक्षणादि विधि से दोषों का निर्हरण कर देने पर वेदना एवं शोथ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। कृमि नाशक निम्बादिक्वाथ से शिश्न तथा व्रण का प्रक्षालन करने से पाक नहीं होता है। व्रण का पाक नहीं हो इसकी सावधानी रखनी चाहिए। व्रण के पकने पर शिश्न का क्षय होने लगता है।

१. लेप-सेकादि (वातज उपदंश में) (सु.चि.१९)

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वसरलागुरुदारुभिः ।
सरास्नाकुष्ठपृथ्वीकैर्वातिके लेपसेचने ॥३॥

१. पुण्डरियाकाष्ठ, २. मुलेठी, ३. सरलकाष्ठ, ४. अगुरु, ५. देवदारु, ६. रास्ना, ७. कूठ और ८. बड़ी इलायची (समभाग) लें। इन्हें दो योग बनावें—१ चूर्ण रूप, २ क्वाथ रूप में। इन औषधों को समभाग में पृथक्-पृथक् दो बार लें। एक में द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें और दूसरे में यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। पहले योग में क्वाथ विधि से यवकुट का क्वाथ करें। इसे छानकर सुखोष्ण क्वाथ से उपदंश ग्रस्त लिङ्ग का सम्यक् प्रक्षालन करें। दूसरे योग में चूर्णों को सिल पर जल के साथ महीन पीसकर लिंग को साफ कर उस पर लेप करें। ऐसा कुछ दिन तक करने से उपदंश का व्रण नष्ट हो जाता हैं।

२. निचुलादिलेप (सु.चि.१९)

निचुलैरण्डबीजानि यवगोधूमशक्तवः।
एतैश्च वातजं स्निग्धैः सुखोष्णैः सम्प्रलेपयेत् ॥४॥

१. वेतसबीज, २. एरण्डबीज, ३. यव का सत्तू तथा ४. गेहूँ का सत्तू (समभाग) लें। इन्हें एक साथ सिल पर जल से पीसकर उपदंश व्रण पर सुखोष्ण लेप करने से उपदंश नष्ट हो जाता है अथवा उपदंश का व्रण नष्ट हो जाता है।

३. गैरिकादिलेप (सु.चि.)

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।
सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत् ॥५॥

१. शुद्ध गैरिक, २. रसाञ्जन, ३. मञ्जिष्ठा, ४. मुलेठी, ५. खस, ६. पद्मकाष्ठ, ७. रक्तचन्दन, ८. नीलकमल तथा ९. घृत (समभाग) लें। शुद्ध गैरिक से नीलकमल तक के सभी ८ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। पुन: इसे सिल पर जल के साथ पीसें और इसमें थोड़ा घृत मिलाकर उपदंश व्रण पर लेप करने से व्रण नष्ट हो जाता है।

४. पद्मकादिप्रलेप (सु.चि.)

पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जार्जुनवेतसैः।
सर्पिःस्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत् ॥६॥

१. लालकमल का फूल, २. नीलकमल का फूल, ३. कमलपुष्पदण्ड, ४. राल, ५. अर्जुनत्वक्, ६. वेतस, ७. मुलेठी (समभाग) और ८. घृत यथावश्यक लें। इन सातों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इन्हें जल के साथ सिल पर खूब पीसें और इसमें घृत मिलाकर पित्तज उपदंश पर लेप करने व्रण तथा उपदंश ठीक हो जाता है।

५. त्रिफलाक्वाथ/भृङ्गराजस्वरस प्रक्षालन (च.द.)

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा।
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥७॥

त्रिफलाक्वाथ से अथवा भृङ्गराजस्वरस से व्रण प्रक्षालन करने से उपदंश शान्त हो जाता है।

६. त्रिफलाभस्मादि लेप (च.द.)

दहेत्कटाहे त्रिफलां समांशां मधुसंयुताम्।
उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥८॥

आमलाफलदल, हरीतकीफलदल तथा बहेड़ाफलदल (समभाग) लें। इन्हें एक कड़ाही में रखकर तीव्राग्नि युक्त चूल्हे पर रखें। त्रिफला को मिट्टी के शराव से ढक दें। कुछ देर में धुँआ निकलना प्रारम्भ होगा। जब कोयले जैसा जल कर काला

हो तो चूल्हे से कड़ाही को नीचे उतारकर स्वाङ्गशीत होने दें। अब इसे सूक्ष्म चूर्ण (वस्त्रपूत) कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें समभाग मधु मिलाकर उपदंश व्रण पर लेप करने से व्रण का रोपण होकर (भरकर) उपदंश ठीक हो जाता है।

९. रसाञ्जनादिप्रलेप (च.द.)

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम्।
सक्षौद्रं वा प्रलेपोऽयं सर्वलिङ्गगदापहः ॥९॥

१. रसाञ्जन और शिरीषत्वक् (समभाग) अथवा—२. रसाञ्जन तथा हरीतकीफलदल (समभाग) लें। ये दो योग हैं और दोनों में दो-दो द्रव्य हैं। इनका सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण कर पृथक्-पृथक् काचपात्र में संग्रहीत करें। इनमें से किसी १ चूर्ण में समभाग मधु मिलाकर लेप करने से सभी प्रकार के लिङ्गगत (शिश्नगत) रोग नष्ट हो जाते हैं।

८. उपदंशहर अवचूर्णन (च.द.)

बब्बूलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा।
गुण्डनं न्नरस्थिचूर्णेन उददंशहरं परम् ॥१०॥

१. बब्बूलपत्रचूर्ण या २. दाडिम (अनार) वृक्षत्वक् चूर्ण अथवा ३. नरकपालास्थिचूर्ण—इन तीनों में किसी एक का सूक्ष्म चूर्ण कर उपदंशव्रण पर छिड़काव (अवचूर्णन) करने से उपदंशव्रण नष्ट हो जाता है।

९. पूगफलादिलेप (च.द.)

लेपः पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा।
सेवेन्नित्यं यवान्नञ्च पानीयं कौपमेव च ॥११॥

१. सुपारी के सूक्ष्म चूर्ण या कनेरमूलत्वक् के सूक्ष्म चूर्ण को पृथक्-पृथक् सिल पर निम्बपत्रस्वरस अथवा जल के साथ पीसकर लेप करने से उपदंश व्रण नष्ट हो जाता है। इस औषधि-प्रयोग काल में केवल जौ की रोटी, जौ का दलिया, खिचड़ी एवं सत्तू आदि विविध कल्पों का आहार लेना चाहिए तथा कुआँ का जल पीना चाहिए।

१०. जयादिपत्रक्वाथ (च.द.)

जयाजात्यश्वमारार्कशम्पाकानां दलैः पृथक्।
कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥१२॥

१. जयन्तीपत्र, २. चमेलीपत्र, ३. कनेरपत्र, ४. अर्कपत्र, तथा ५. अमलतासपत्र लें। इन पत्रों में से किसी एक पत्र का यवकुट करें और क्वाथ विधि से क्वाथ बनाकर छान लें। इस सुखोष्ण क्वाथ से शिश्न व्रण का प्रक्षालन करने से उपदंश का व्रण शिश्नपाक ठीक हो जाता है।

११. विषतिन्दुकादिलेप

विषतिन्दुं लौहपात्रे मलाक्तं निम्बुकद्रवैः।
घर्षेत्कृष्णसुधामूलं प्रत्येकं माक्षिकं दृढम् ॥१३॥
तुत्थं तदनु सूतं च लौहदण्डेन तद्युतम्।
सर्वं तदेकतां यातं तेन लिङ्गं प्रलेपयेत् ॥१४॥
लेपे शुष्के पुनर्लेपं दद्याच्छुष्के पुनस्तथा।
शुष्कं न स्त्रंसयेल्लेपं शुष्कस्योपरि दापयेत् ॥१५॥

१. कुचला, २. मण्डूरचूर्ण, ३. निम्बुस्वरस, ४. सेहुण्ड मूल, ५. मधु, ६. तुत्थ तथा ७. पारद (समभाग) लें। कुचला एवं मण्डूर का सूक्ष्म चूर्ण कर लें तथा लोहे के खरल में इन्हें रखकर निम्बुस्वरस के साथ लौहमुशली से दृढ़ मर्दन करें। पुनः उसमें तुत्थ मिलावें और सेहुण्डमूलचूर्ण या कल्क मिलाकर पुनः दृढ़ मर्दन करें। ततः उसमें पारद मिलाकर निम्बुस्वरस की भावना देकर ६ घण्टे तक दृढ़ मर्दन करें। पुनः मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह श्लक्ष्ण पिष्टी (मलहर) जैसा होना चाहिए। इस मलहर का लेप उपदंश युक्त लिङ्गव्रण पर करने से ३ दिन में व्रण ठीक हो जाता है। लेप के सूखने बाद दूसरा लेप लगाना चाहिए।

१२. निम्बादिक्वाथ-लेप-घृत प्रयोग (च.द.)

निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशाल-
जम्बूवटोदुम्बरवेतसाद्भिः।
प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्या-
च्चूर्णानि पित्तास्त्रभवोपदंशे ॥१६॥

१. निम्बत्वक्, २. अर्जुनत्वक्, ३. पीपलवृक्षत्वक्, ४. कदम्बत्वक्, ५. शालवृक्षत्वक्, ६. जामुनवृक्षत्वक्, ७. वटवृक्षत्वक्, ८. गूलरवृक्षत्वक् और ९. वेतस (समभाग) लें। उपदंश-प्रशमनार्थ इन नौ द्रव्यों के योग से ३ कल्पनाएँ बनायी गई हैं—क्वाथ, चूर्ण (लेप) तथा घृत।

१. **क्वाथ**— इन्हें समभाग लेकर यवकुट करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस क्वाथ यवकुट से क्वाथ बनाकर शीतल क्वाथ से उपदंश स्थान (लिङ्ग एवं योनि) का प्रक्षालन करने से पित्तज एवं रक्तज उपदंशव्रण नष्ट हो जाता है। २. **चूर्ण**—इन द्रव्यों का मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे सिल पर जल के साथ पीसकर पित्तज एवं रक्तज उपदंश स्थान (लिङ्ग-योनि) पर लेप करने से उपदंश नष्ट हो जाता है। ३. **घृत**—इन द्रव्यों के कल्क और क्वाथ से घृत-साधन विधि से घृतपाक कर लें। घृत १ किलो, कल्क २५० ग्राम और क्वाथ ४ लीटर लेकर घृत साधन करें। इस घृत का लेपन एवं पान करने उपदंश नष्ट हो जाता है।

१३. पटोलादि/खदिरादि क्वाथ (च.द.)

पटोलनिम्बत्रिफलागुडूची-
क्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम्।

सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा
सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः ॥१७॥

(१) पटोलपत्र, निम्बवृक्षत्वक्, आमलाफलदल, हरीतकी-फलदल, बहेड़ाफलदल और गुडूची (समभाग) लें। अथवा (२) खदिरत्वक् तथा विजयसारकाष्ठ लें। प्रथम क्वाथ के ६ द्रव्यों का यवकुटचूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट को २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर प्रतिदिन २ बार पीने से सभी प्रकार के उपदंश रोग नष्ट हो जाते हैं। द्वितीय क्वाथ में खदिर एवं असन को यवकुट कर संग्रहीत करें और पूर्वोक्त क्वाथ विधि से क्वाथ करें। इस क्वाथ में १ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु और २ ग्राम त्रिफलाचूर्ण मिलाकर पिलाने से सभी प्रकार के उपदंश नष्ट हो जाते हैं।

१४. बदरादिधूप

बदरार्कमपामार्गस्तथा ब्राह्मणयष्टिका।
हिङ्गुलं च समं चैषां भागं कृत्वा च धूपनम्॥
दोषजं कर्मजं हन्यादुपदंशादिकं व्रणम्॥१८॥

१. बदरीवृक्षत्वक् १० ग्राम, २. अर्कमूलत्वक् १० ग्राम, ३. अपामार्गपञ्चाङ्ग १० ग्राम, ४. भारङ्गी १० ग्राम तथा ५. हिङ्गुल ४० ग्राम लें। सभी काष्ठौधियों को यवकुट चूर्ण करें और हिंगुल का चूर्ण कर सभी को एक साथ मिलाकर २५ ग्राम यवकुट का निर्धूम अग्नि पर धूपन देने तथा धूम को उपदंश स्थान (शिश्न या योनि) में लगाने से दोषज एवं कर्मज उपदंश व्रण नष्ट हो जाता है।

१५. पारदादिधूपन-१

रसस्तालं टङ्गणं च सिन्दूरं तुत्थकं शिला।
मुद्राशङ्खं यवक्षारः स्फटिकारिविडं तथा॥१९॥
मरिचं चार्कमूलत्वग् ग्राह्यं माषमितं पृथक्।
दरदं तोलकं सार्द्धं कृत्स्नमेकत्र चूर्णयेत्॥२०॥
ततो घृतप्लुतं कृत्वा धूपयेद् यत्नतो भिषग्।
उपदंशव्रणं तेन सुखमेत्यामयी ध्रुवम्॥२१॥

१. अशुद्ध पारद, २. अशुद्ध हरताल, ३. अशुद्ध सुहागा, ४. नागसिन्दूर, ५. अशुद्ध तुत्थ, ६. अशुद्ध मैनसिल, ७. मुर्दाशंख, ८. यवक्षार, ९. कच्ची फिटकरी, १०. विड्लवण, ११. मरिच. और १२. अर्कमूलत्वक्—प्रत्येक द्रव्य १-१ ग्राम और हिङ्गुल १८ ग्राम लें तथा गोघृत १२ ग्राम लें। एक खरल में पारद एवं हरताल मिलाकर मर्दन करें और कज्जली बनावें। ततः उसमें हिंगुल और मैनसिल मिलाकर मर्दन करें। ततः अन्य सभी द्रव्यों का चूर्ण कर पारद मिश्रण में मिला दें। इसमें घृत मिलाकर निर्धूम अग्नि पर ५ ग्राम देकर उसमें से निकले धूम को उपदंशज व्रण (योनि-शिश्न) पर लगावें। इस धूपन को सावधानी से उपदंश स्थान के व्रण पर लगाने से उपदंशज व्रण ठीक हो जाते हैं।

१६. पारदादिधूपन-२

रसं वङ्गञ्च खदिरं हरीतक्याश्च भस्मकम्।
कोमलं कदलीभस्म गुवाकफलभस्म च॥२२॥
एतत्तोलकमानं स्याद्धिङ्गुलं हरितालकम्।
गन्धकं तुत्थकं चापि पद्मकं सरलं तथा॥२३॥
द्वे चन्दने देवदारु वकमं काष्ठमेव च।
तथा केशरकाष्ठञ्च माषमानं प्रकल्पयेत्॥२४॥
एकीकृत्य चूर्णयित्वा सर्वं चाङ्गेरिकाद्रवैः।
तुसलीपत्रजरसैः पुरातनगुडेन च॥२५॥
घृतेन सह षट्कार्या वटिका मन्त्ररक्षिताः।
चेदनायामुत्कटायां चतस्रः शुक्लवाससा॥२६॥
वेष्टयित्वा च निर्धूमाङ्गारोपरि च दापयेत्।
तं धूपं परिगृह्णीयान्नरो वस्त्रादिवेष्टितः॥२७॥
मुखनासाकर्णबहिर्निश्वासस्य निरोधतः।
स्वेदे जातेऽस्य नैरुज्यं सायं प्रातर्दिनत्रयम्॥२८॥
मासमात्रन्तु पथ्याशी शाकाम्लदधिवर्जनम्।
गुर्वन्नपायसादीनि चापथ्यानि विवर्जयेत्॥२९॥
दिनत्रये व्यतीते तु स्नानमुष्णाम्बुना चरेत्।
एवं कृते प्रशाम्यन्ति व्रणाश्च पिडका अपि॥३०॥
तथा शोथश्चामवातः खञ्जाता पङ्गुताऽपि च।
कुष्ठोपदंशशान्त्यर्थं भैरवेण प्रकीर्त्तितः॥३१॥

१. शुद्ध पारद, २. वङ्गभस्म, ३. खदिरत्वक्भस्म, ४. हरीतकीभस्म, ५. कोमल कदलीपत्रभस्म, ६. सुपारीफल-भस्म—ये प्रत्येक १२ ग्राम; ७. शुद्ध हिङ्गुल, ८. शुद्ध हरताल, ९. शुद्ध गन्धक, १०. शुद्ध तुत्थ, ११. पद्मकाष्ठ, १२. सरलकाष्ठ, १३. लालचन्दन, १४. श्वेतचन्दन, १५. देवदारु, १६. वकमकाष्ठ तथा नागकेशरकाष्ठ—प्रत्येक १०-१० ग्राम लें। इन सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। इसमें चाङ्गेरीस्वरस की भावना दें। सूखने पर तुलसीपत्र रस की १ भावना दें। पुनः इसमें ६ ग्राम गुड़ और ६ ग्राम घी मिलाकर मर्दन कर इसका ६ गोला बनावें। इन गोलों को भैरवमन्त्र से अभिमन्त्रित कर सुरक्षित करें। वेदना या रोग की तीव्रता को ध्यान में रखकर ४ गोलों को श्वेत शुद्ध वस्त्रखण्ड में बाँधें और निर्धूम अङ्गार पर इस गोले की पोटली को रखें। रोगी को निर्वात गृह में रस्सी की खाट पर एक चादर बिछाकर उसके मुख, नाक, कान को कपड़े से बाँध कर लिटा दें तथा उसका शरीर एक चादर से ढक दें। ततः खाट के नीचे धूपन द्रव्य सहित अङ्गार रखें। जब रोगी के शरीर से खूब पसीना निकले तो धूपन देना बन्द कर दें एवं पसीना पोछ दें। इस प्रकार दिन में ३ बार (प्रातः-सायं-मध्याह्न) ३ दिन तक

धूपन देने तथा १ महीना तक पथ्यपूर्वक आहार-विहार करने से उपदंश ठीक हो जाता है।

पथ्य—शाक, अम्लपदार्थ, दही, विदाही एवं भारी अन्न तथा दुग्ध से पके पदार्थ वर्जित कर तीन दिनों तक धूपन के बाद चौथे दिन उष्णजल से स्नान करावें। ऐसा करने से उपदंश के व्रण, पिडका, शोथ नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त आमवात, खञ्ज, पङ्गु एवं कुष्ठ की शान्ति के लिए आचार्य भैरव ने इस सुन्दर योग का कहा है।

१७. भैरवरस　　(र.सा.सं.)

शुद्धसूतं ग्रहीतव्यं रक्तिकाशतमात्रकम्।
त्रिगुणां शर्करां लौहे निम्बदण्डेन मर्दयेत्॥३२॥
याममात्रं ततो दद्याच्छ्वेतं खदिरचूर्णकम्।
सूततुल्यं ततः कुर्यान्मर्दनात् कज्जलोपमम्॥३३॥
विंशतिर्वटिकाः कार्याः स्थाप्या गोधूमचूर्णके।
भैरवं देवमभ्यर्च्य बलिं तस्मै प्रदाय च॥३४॥
निःशेषं निःसृता ज्ञात्वा पिडकास्ताः कलेवरे।
विधाय योगिनीपूजां दुर्गामभ्यर्च्य यत्नतः॥३५॥
वटिकास्ताः प्रयोक्तव्या भिषजा जानता क्रियाम्।
दिवसत्रितयं दद्यात्तिस्रस्तिस्रो विजानता॥३६॥
चतुर्थाच्च समारभ्य एकामेकां प्रयोजयेत्।
एवं चतुर्दशदिनैर्नीरोगो जायते नरः॥३७॥
पथ्यं शर्करया सार्द्धमुष्णान्नं घृतगन्धि च।
कुर्यात्साकाङ्क्षमुत्थानं सकृद्भोजनमिष्यते॥३८॥
जलपानं जलस्पर्शं न कदाचनं कारयेत्।
दुःसहायान्तु तृष्णायामिक्षुदाडिमकादिकम्॥३९॥
शौचमुष्णाम्बुना कार्यं वाससा प्रोञ्छनं द्रुतम्।
वातातपाग्निसम्पर्कं दूरतः परिवर्जयेत्॥४०॥
मेघागमे वा शीते वा कार्यमेतद्विजानता।
मुखरोगे तु सञ्जाते मुखरोगहरी क्रिया॥४१॥
श्रमाध्वभाराध्ययनस्वप्नालस्यानि वर्जयेत्।
ताम्बूलं भक्षयेन्नित्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥४२॥
क्रिया श्लेष्महरी युक्ता वातपित्ताविरोधिनी।
लवणं वर्जयेदम्लं दिवानिद्रां तथैव च॥४३॥
रात्रौ जागरणञ्चैव स्त्रीमुखालोकनं तथा।
सप्ताहद्वयमुत्क्रम्य स्नानमुष्णाम्बुना चरेत्॥४४॥
पथ्यं कुर्याद्धितमितं जाङ्गलानां रसादिभिः।
व्यायामाद्यं वर्जनीयं यावन्न प्रकृतिं व्रजेत्॥४५॥
एवं कृतविधानस्तु यः करोत्येतदौषधम्।
स एव पापरोगस्य पारं याति जितेन्द्रियः॥४६॥
पिडका विलयं यान्ति बलं तेजश्च वर्द्धते।
रुजा च प्रशमं याति ग्रन्थिशोथश्च शाम्यति॥४७॥
अस्थ्नां भवति दार्ढ्यञ्च आमवातञ्च शाम्यति।
भैरवेण समाख्यातो रसोऽयं भैरवः स्वयम्॥४८॥

शुद्ध पारद १२ ग्राम, शक्कर ३६ ग्राम तथा श्वेत खदिरत्वक्चूर्ण १२ ग्राम लें। कुल ६० ग्राम औषधि लें। एक लोहे के खरल में पारद एवं शक्कर दोनों को मिलाकर निम्बदण्ड से ३ घण्टे तक मर्दन करें। इसके बाद श्वेतखदिरचूर्ण मिलाकर उसी निम्बदण्ड से ६ घण्टे तक मर्दन करें। श्लक्ष्ण होने पर जल की भावना देकर उस मर्दित द्रव्य से ३-३ ग्राम की २० वटियाँ बना लें और गेहूँ के आँटे में रखें। इसके बाद भैरव देव का आवाहन कर उनकी पूजा करें और बलि दें तथा बाद में योगिनी एवं माता दुर्गा की पूजा करें। उपदंश के रोगी के सर्म्पूण शरीर पर पिडिकाएँ निकल गई हैं ऐसा जानकर उपदंशी को ३-३ वटी तीन दिनों तक (१-१ वटी ३ बार) जल के साथ निगलावें। चौथे दिन से १ वटी प्रतिदिन कर ११ वटी तक निगलावें। इस प्रकार ९+११ = २० वटी खिलानी चाहिए। २० वटी खाते-खाते १४ दिनों में उपदंश रोग नष्ट हो जाता है। औषधि सेवन-काल में आहार-विहार के रूप में भूख लगने पर दिन में एक बार चीनी और घृत मिला थोड़ा गरम भात खिलाना चाहिए। प्यास लगने पर इक्षुरस तथा अनार का रस देना चाहिए। जल पीने को नहीं दें तथा हाथ का स्पर्श भी वर्जित रखें। शौचादि कर्म के लिए गरम जल से गुदा प्रक्षालन करें तथा तुरन्त ही गुदादि को सूखे वस्त्र से पोंछ देना चाहिए। वायु, धूप तथा अग्नि को दूर से ही त्याग देना चाहिए। वर्षा ऋतु एवं शीत में अग्नि आदि का सेवन थोड़ी दूर से कर सकते हैं। मुख रोग या मुख में छाले पड़ने पर अलग से उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। परिश्रम, रास्ता चलना, भार उठाना, अध्ययन करना, दिवास्वप्न और आलस्य छोड़ देना चाहिए। रोज कर्पूर से सुवासित ताम्बूल का चर्वण (भक्षण) करना चाहिए। कफनाशक तथा वात-पित्त को बढ़ाने वाली क्रिया नहीं करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त लवण, अम्ल द्रव्यों का सेवन, दिन का सोना एवं रात्रि जागरण तथा स्त्री के मुख का दर्शन (सम्भोग) बन्द कर देना चाहिए। १५ दिनों के बीतने पर गरम पानी से भली-भाँति स्नान करना चाहिए। पथ्य में हित कारक एवं हल्का जंगली पशु-पक्षियों के मांस तथा मांसरस का थोड़ा सेवन करना चाहिए। जब तक स्वाभाविक बल नहीं आ जाये जब तक व्यायाम आदि नहीं करें। इस तरह नियमपूर्वक जितेन्द्रिय होकर जो रोगी इस औषधि का सेवन करता है वह उपदंश रूपी इस महान् पापरोग से मुक्त हो जाता है। उपदंशज पिडिकाएँ नष्ट हो जाती हैं। रोगी के बल और तेज की वृद्धि होती है। रोग नष्ट हो जाता है। ग्रन्थि शोथ नष्ट हो जाता है। अस्थिओं में दृढ़ता आ जाती है। आमवात का शमन हो जाता है। इस 'भैरवरस' को आचार्य भैरव ने कहा है।

१८. रसशेखर (र.सा.सं.)

पारदश्चाहिफेनश्च द्विर्द्वादशकरक्तिकम्।
अयःपात्रे निम्बकाष्ठे मर्दयेत्तुलसीद्रवैः ॥४९॥
तस्मिन् सम्मूर्च्छिते दद्याद् दरदं रससम्मितम्।
मर्दयेच्च तुलस्यैव ततश्चैतानि दापयेत् ॥५०॥
जातीकोषफले चैव पारसीकयमानिकाम्।
आकारकरभं चैव द्वात्रिंशद्रक्तिकां प्रति ॥५१॥
मर्दयेत्तुलसीतोयैरेतेषां द्विगुणं शुभम्।
दद्यात् खदिरसत्त्वञ्च वटिका चणकप्रभा ॥५२॥
सायं द्वे द्वे प्रयोज्ये च लवणाम्लञ्च वर्जयेत्।
गलत्कुष्ठं तथा स्फोटान् दुष्टान् गर्दभिकामपि ॥५३॥
ये स्युर्व्रणा नृणामन्ये उपदंशपुरःसराः।
तान् सर्वान्नाशयत्याशु सिद्धोऽयं रसशेखरः ॥५४॥

१. शुद्ध पारद १५०० मि.ग्रा. (१२ रत्ती), २. शुद्ध अफीम १५०० मि.ग्रा. (१२ रत्ती), ३. शुद्ध हिंगुल १५०० मि.ग्रा. (१२ रत्ती), ४. जायफलचूर्ण ४ ग्राम (३२ रत्ती), ५. जावित्रीचूर्ण ४ ग्राम (३२ रत्ती), ६. पारसीकयवानीचूर्ण ४ ग्राम (३२ रत्ती), ७. अकरकराचूर्ण ४ ग्राम (३२ रत्ती) और ८. खदिरसार (कत्थ) ४१ ग्राम (सभी औषधों से दुगुना) लें। सर्वप्रथम लोहे के गोल खरल में पारद एवं अफीम मिलाकर निम्बकाष्ठ के दण्ड से तुलसीस्वरस देकर मर्दन करें। जब पारद मूर्च्छित हो जाय अर्थात् पारद अपने स्वरूप में न रहकर एक मिश्रण (खाखी रङ्ग का मिश्रण) बन जाय तब उसमें शुद्ध हिङ्गुल और तुलसीस्वरस मिलाकर पुनः निम्बदण्ड से मर्दन करें। इसके बाद उस मिश्रण में जायफल से अकरकराचूर्ण तक की चारों काष्ठौषधियों को डालकर पुनः तुलसीपत्रस्वरस के साथ निम्बदण्ड से मर्दन करें। ततः इसमें कत्थ (खदिरसार) मिलाकर तुसलीस्वरस के साथ पुनः निम्बदण्ड से मर्दन करें। जब गाढ़ा हो जाय तो २५० मि.ग्रा. (२ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। उपदंशी प्रतिदिन सुबह-शाम २-२ वटी जल से निगल जायें। इस औषधि के सेवनकाल में लवण और अम्लपदार्थ रोगी को नहीं दें। 'रसशेखर' सेवन से उपदंश, गलितकुष्ठ, दुष्ट स्फोट, गर्दभिका आदि व्रणों को नष्ट होते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताजा जल से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—गहरा कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—उपदंश एवं गलित कुष्ठ में।

१९. रसगुग्गुलु

ग्राह्यः पातनयन्त्रेण शुद्धश्चचन्द्रसमो रसः।
रक्तिकाशतमेतस्य शर्करा त्रिगुणा भवेत् ॥५५॥
ततश्चतुर्गुणो ग्राह्यो गुग्गुलुर्महिषाक्षकः।
घृतं रससमं दद्यान्मर्दयेच्च प्रयत्नतः ॥५६॥
विंशतिर्वटिकाः कार्यास्तिस्रस्तिस्रो दिनत्रयम्।
एकादशदिनैरन्या देया एकादशैव ताः ॥५७॥
सप्ताहद्वयमेवञ्च कारयेद्भिषजां वरः।
लवणं वर्जयेत्पथ्ये पादार्द्धाशनमिष्यते ॥५८॥
दिनद्वये व्यतीते तु पादोनं पथ्यमाचरेत्।
मसूरसूपं सगुडं व्यञ्जनं चाथ कल्पयेत् ॥५९॥
पुनर्नवा पटोलानि तिक्तपत्री च गोक्षुरम्।
पुटपत्रीं कोकिलाक्षं शाकार्थे घृतभर्जितम् ॥६०॥
शर्करा लवणस्थाने वेशवारे धनीयकम्।
लवङ्गाजाजिहिङ्गूनि धान्यकं जीरकाणि च ॥६१॥
पाकार्थे सम्प्रदातव्यं संस्कारार्थं भिषग्वरैः।
भैरवस्य रसस्यान्याः क्रिया अत्र प्रयोजयेत् ॥६२॥
रसगुग्गुलुरेवं हि सर्वाञ्जित्वाऽऽमयानयम्।
कुष्ठोपदंशनामानं व्रणं वातादिसंयुतम् ॥
कामदेवप्रतीकाशश्चिरजीवी भवेन्नरः ॥६३॥

पातनायन्त्र से प्राप्त शुद्ध पारद १२ ग्राम, चीनी ३६ ग्राम, शुद्ध गुग्गुलु १९२ ग्राम और गोघृत १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं चीनी को एक साथ मिलाकर दृढ़ मर्दन करें। कुछ घण्टों के मर्दन के बाद पारद नष्ट- पिष्ट होकर चीनी के साथ श्वेतचूर्ण हो जायगा। ततः एक आग में द्रवित किया शुद्ध गुग्गुलु और घृत मिलाकर इमामदस्ता में कूटें। जब गुग्गुलु एकदम मृदु हो जाय तो उसे पारद एवं चीनी के मिश्रण वाले खरल में मिलाकर दृढ़ मर्दन करें। अच्छी तरह एक दिन मिलाने के बाद (२५० ग्राम कुल औषधि की) २० वटियाँ (१ वटी लगभग १२ ग्राम की होगी) बनावें तथा सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। 'भैरवरस' में कथित भैरव, देवी, योगिनी एवं औषधि की पूजा करनी चाहिए। ततः औषधि का प्रयोग उपदंश के रोगी पर करना चाहिए। प्रथम दिन ३ वटी, दूसरे तथा तीसरे दिन भी ३-३ वटी जल के साथ सेवन करें। तत्पश्चात् ११ दिनों तक १-१ वटी का प्रयोग करें। इस तरह ९+११= २० वटी १४ दिनों में खानी चाहिए। पथ्य में लवण बन्द करना चाहिए। पहले दिन पूर्वाहार की अपेक्षा चौथाई भोजन लें, दूसरे दिन पूर्वापेक्षा आधा भोजन तथा तीसरे दिन पौन मात्रा में भोजन लेना चाहिए। भोजन में मसूर की दाल, गुड़ डाली हुई सब्जी, पुनर्नवा शाक, पटोलफल, तिक्तपत्र (गुडूची-त्रिकोल पत्र), गोक्षुर, पुटपत्री, तालमखाना (इक्षुरक), घी में भुनकर निर्मित शाक तथा वेशवार (मांसकल्पना) में लवण की जगह चीनी और धनियाँ का प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त लौंग, कृष्ण जीरा, हींग, धनिया, कृष्णजीरा का प्रयोग सभी तरह के शाकों को संस्कारित (निर्माण)

करना चाहिए। यह 'रसगुग्गुलु' सभी रोगों को नष्ट करता है। इसके प्रयोग से कुष्ठ, उपदंश एवं वातादि व्रण विकार नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रयोग से मनुष्य कामदेव के सदृश सुन्दर और चिरञ्जीवी हो जाता है।

मात्रा—१२ ग्राम प्रायः। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त एवं किञ्चिद् मधुर। **उपयोग**—उपदंश एवं कुष्ठ में।

२०. वरादिगुग्गुलु (भा.प्र.)

वरानिम्बार्जुनाश्वत्थखदिरासनवासकैः ।
चूर्णितैर्गुग्गुलुसमैर्वटका अक्षसम्मिताः ॥६४॥
कर्त्तव्या नाशयन्त्याशु सर्वांल्लिङ्गसमुत्थितान् ।
उपदंशानसृग्दोषांस्तथा दुष्टव्रणानपि ॥६५॥

१. आमलाचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. बहेड़ाचूर्ण, ४. निम्बत्वक्चूर्ण, ५. अर्जुनत्वक्चूर्ण, ६. पीपलत्वक्चूर्ण, ७. खदिरत्वक्चूर्ण, ८. विजयसारचूर्ण, ९. वासाचूर्ण—ये सभी द्रव्य १०-१० ग्राम लें और १०. शुद्ध गुग्गुलु ९० ग्राम लें। उपर्युक्त सभी ९ द्रव्यों के चूर्णों एक साथ मिलाकर पुनः छननी से छान लें। एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में थोड़ा जल के साथ गुग्गुलु को आग पर गरम करें। जल सूखने पर थोड़ा और जल मिलाकर चम्मच से चलाते रहें और तब तक गरम करें जब तक गुग्गुलु जल में घुल न जाय। जब गुग्गुलु घुलकर हलवा जैसा गाढ़ा हो जाय तो उसे चूल्हे से नीचे उतारकर सभी चूर्णों को उस गुग्गुलु में मिला दें। उसे सिल पर रखकर खूब पीसें। सूखा हो तो थोड़ा गरम पानी का छींटा देकर पीसें और १२-१२ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। आज के मानव के लिए यह मात्रा अधिक मात्रा होगी। अतः ३-३ ग्राम की मात्रा में वटी बनाना उचित है। इस वटी को प्रातः-सायं १-१ वटी गरम जल से प्रतिदिन सेवन करने से यह शिश्नगत सभी प्रकार के उपदंश, रक्तदोष तथा दुष्टव्रणों को नष्ट करता है।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—गरमजल से। **गन्ध**—गुग्गुलु गन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के उपदंश एवं दुष्ट व्रण में।

२१. सारिवाद्यावलेह

सारिवायाः पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तस्मिन् पादावशेषे तु गुडूची शतमूलिका ॥६६॥
विदारी जीवनी त्रिवृन्मुण्डी च त्रिफला तथा ।
क्षुद्रैला चोपचीनी च प्रत्येकार्द्धपलं मतम् ॥६७॥
सुपिष्टं निक्षिपेत्तत्र शीते मधु पलाष्टकम् ।
क्षीरानुपानयोगेन पिबेत्तोलकसंमितम् ॥६८॥
प्रमेहाश्चोपदंशाश्च पिडका मूत्रकृच्छ्रकम् ।
नश्यन्ति त्वपरे रोगा रक्तदुष्ट्या भवन्ति ये ॥६९॥
पारदविकृतिश्चापि सन्देहो नात्र कश्चन ।
मुक्तश्च सर्वरोगेभ्यो बलवर्णाग्निसंयुतः ॥
मानवः सिद्धकामोऽस्माच्छीघ्रं भवति निश्चितम् ॥७०॥

१. अनन्तमूल ५ किलो; २. गुडूची, ३. शतावर, ४. विदारीकन्द, ५. जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मुलेठी, माषपर्णी और मुद्गपर्णी—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग), ६. निशोथ, ७. मुण्डी, ८. आमला, ९. हरीतकी, १०. बहेड़ा, ११. छोटी इलायची, १२. चोपचीनी—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लें और १२. मधु ३७५ ग्राम लें। अनन्तमूल का यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। उस क्वाथ को स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखें और चूल्हे पर चढ़ाकर पुनः पाक करें। उसी समय उस क्वाथ में कुल २१ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण (प्रत्येक २३-२३ ग्राम) डालकर पकावें। जब अर्धघन (मधु से गाढ़ा) हो जाय तो चूल्हे से नीचे उतार लें। शीतल होने पर उसमें ३७५ ग्राम मधु डालकर अच्छी तरह मिला लें और काँचपात्र में संग्रहीत करें। दुग्धानुपान से इस अवलेह को १० ग्राम की मात्रा में सेवन करें। इसके सेवन से प्रमेह, उपदंश, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेहपिडका, रक्तदुष्टि से होने वाले सभी रोग तथा पारद विकार आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इस अवेलह के सेवन से मनुष्य सभी रोगों से मुक्त होकर बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि से युक्त हो जाता है तथा स्वस्थ हो जाता है।

मात्रा—१० ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्ध इलायची जैसी। **वर्ण**—किञ्चित् कत्थई रंग जैसा (तरल अवलेह) **स्वाद**—तिक्त एवं किञ्चिद् मधुर। **उपयोग**—उपदंश, कुष्ठ, प्रमेह एवं प्रमेह पिडिका में।

२२. करञ्जाद्यघृत (च.द.)

करञ्जनिम्बार्जुनशालजम्बू-
वटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् ।
सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं
सदाहपाकं स्त्रुतिरागयुक्तम् ॥७१॥

गोघृत ७५० ग्राम लें।

क्वाथ—१. करञ्जत्वक्, २. निम्बत्वक्, ३. अर्जुनत्वक्, ४. शाल (शाखू) त्वक्, ५. जामुनत्वक् तथा ६. वटत्वक्—प्रत्येक द्रव्य ५०० ग्राम लें।

कल्क—१. करञ्जत्वक्, २. निम्बत्वक्, ३. अर्जुनत्वक्, ४. शालत्वक्, ५. जामुनत्वक्, तथा ६. वटत्वक्—प्रत्येक द्रव्य ३०-३० ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः क्वाथ

द्रव्यों प्रत्येक ५०० ग्रा. को एक साथ यवकुट करें। ३ किलो यवकुट क्वाथ में १२ लीटर जल देकर एक बड़े स्टेनलेस स्टील पात्र में क्वाथ करें और चौथाई क्वाथ शेष रहने पर छान लें। ततः कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। अब इन दोनों कल्क और क्वाथ को मूर्च्छित घृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपक्व की परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। ६ से १२ ग्राम की मात्रा में इस घृत को गरम दूध या गरम जल में मिलाकर पिलाने से तथा शिश्न पर लगाने से दाह, पाक, स्राव तथा शोथ युक्त रक्तिमा वाला उपदंश रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरमदूध या गरमपानी से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—उपद्रवयुक्त उपदंशरोग में।

२३. भूनिम्बादिघृत (च.द.)

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोल-
करञ्जजातीखदिरासनानाम् ।
सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं
सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥७२॥

क्वाथ—१. चिरायता, २. निम्बत्वक्, ३. आमला, ४. हरीतकी, ५. बहेड़ा, ६. पटोलपत्र, ७. करञ्जपत्र, ८. चमेलीपत्र, ९. खैरकाष्ठ, १०. विजयसारकाष्ठ—प्रत्येक द्रव्य ४०० ग्राम लें और ११. गोघृत १ किलो लें।

कल्क—१. चिरायता, २. निम्बत्वक्, ३. आमला, ४. हरीतकी, ५. बहेड़ा, ६. पटोलपत्र, ७. करञ्जपत्र, ८. चमेलीपत्र, ९. खैरकाष्ठ तथा १०. विजयसारकाष्ठ—प्रत्येक २५-२५ ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः क्वाथ द्रव्यों को यवकुट कर १६ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई क्वाथ शेष रहने पर कपड़ा से क्वाथ छान लें। तदनन्तर कल्क द्रव्यों को कूट कर सूक्ष्म चूर्ण करें, पुनः सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। अब क्वाथ और कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को गरम दूध या गरम जल में मिलाकर पीने से तथा उपदंशव्रण पर लगाने से उपदंशरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—उपदंश में।

२४. अनन्ताद्यघृत

अनन्तामलकीद्राक्षाः काकोलीयुगलं वरीम् ।
एलाद्वयं विदारीञ्च मधुकं मधुकं मुराम् ॥७३॥
त्रिफलां स्वर्णपर्णाञ्च बीजं गोक्षुरसम्भवाम् ।
दशमूलं तालमूलीं त्रिवृतामिन्द्रवारुणीम् ॥७४॥
नीलिनीं शूकशिम्ब्याश्च बीजं कर्षप्रमाणतः ।
कल्कीकृत्य पचेत्प्रस्थं सर्पिषः सारिवाऽम्भसा ॥७५॥
घृतमेतदनन्ताद्यमुपदंशविनाशनम् ।
रसायनं परं वृष्यमस्रदोषनिषूदनम् ॥७६॥

कल्क—१. अनन्तमूल, २. आमला, ३. मुनक्का, ४. काकोली, ५. क्षीरकाकोली, ६. शतावरी, ७. छोटी इलाचयी, ८. बड़ी इलायची, ९. विदारीकन्द, १०. महुए का फूल, ११. मुलेठी, १२. मुरामांसी, १३. आमला, १४. हरीतकी, १५. बहेड़ा, १६. सनायपत्ती, १७. गोखरूबीज १८. बिल्वमूल, १९. अग्निमन्थमूल, २०. सोनापाठामूल, २१. पाटलात्वक्, २२. गम्भारीमूल, २३. शालपर्णी, २४. पृश्निपर्णी, २५. बृहती, २६. कण्टकारी, २७. गोखरु, २८. श्वेतमुशली, २९. निशोथ, ३०. इन्द्रायणमूल, ३१. नीलीमूल तथा ३२. केवाँचबीज—प्रत्येक द्रव्य ६ ग्राम लें और घृत ७५० ग्राम लें।

क्वाथ— अनन्तमूल ३ किलो लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। कल्क के सभी ३२ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। ततः अनन्तमूल को यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। अब अनन्तमूल ३ लीटर क्वाथ और कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। कपड़े से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'अनन्ताद्य घृत' ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल में मिलाकर दिन में २ बार प्रातः-सायं लेने से उपदंशरोग नष्ट हो जाता है। यह घृत रसायन एवं परमवृष्य है तथा रक्तविकार नाशक है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—उपदंशनाशक तथा परम वाजीकरण है।

२५. पद्मारविन्दघृत (रसरत्नाकर)

मृणालं पद्मबीजानि नालं पद्मं च केशरम् ।
सर्वं सप्तपलं कुर्यात् त्रिंशत्पलञ्च गोघृतम् ॥७७॥
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं घृतशेषं विपाचयेत् ।
पाकान्ते चूर्णमेषाञ्च क्षिप्त्वा तदवतारयेत् ॥
भक्षयेल्लिङ्गरोगघ्नं घृतं पद्मारविन्दकम् ॥७८॥

१. गोघृत १४१० ग्राम, २. गोदुग्ध ५.६५० ली., ३. मृणाल, ४. कमलबीज, ५. कमलनाल, ६. कमलफूल और ७. कमलकेशर—प्रत्येक द्रव्य ५० ग्राम लें और मिलाकर ७ पल (३५० ग्राम) लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः मृणालादि कमल के प्रत्यङ्गों को सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क और दूध को मूर्च्छित घृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब दूध सूख जाय तब कल्क और दूध के मावा के सम्यक् पाक हेतु ५.६५० लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाक की परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारें और पुनः मृणाल आदि के चूर्ण डालें और थोड़ी देर बाद घृत को छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। शिश्नरोग नाशनार्थ इस पञ्चारविन्दघृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ सेवन करें।

२६. आगारधूमाद्यतैल (च.द.)

आगारधूमो रजनी सुराकिट्टञ्च तैस्त्रिभिः ।
यथोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥
शोधनं रोपणञ्चैव ह्युपदशहरं परम् ॥७९॥

गृहधूम (अभाव में लकड़ी के कोयले का सूक्ष्म चूर्ण), हल्दी-चूर्ण और सुरा (मद्य) का किट्ट (तलघट) लें। गृहधूम (१ पल=४६ ग्राम), हल्दीचूर्ण २ पल (९३ ग्राम), सुरा किट्ट ३ पल (१४० ग्राम) और तिलतैल १.१२० मि.ली. (कल्क से ४ गुना) लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः कल्क के सभी द्रव्यों को एक साथ पीसकर मूर्च्छित तैल में डालकर ४.५०० मि.ली. जल मिलावें और मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैलपाक की परीक्षा कर चूल्हे से तैल पात्र को नीचे उतारें और कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का उपदंश व्रण पर लेप करने से व्रण का शोधन-रोपण हो जाता है।

२७. गोजीतैल (गोजिह्वादितैल) (वङ्गसेन)

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च संयुतम् ।
एतत्सर्वोपदंशेषु तैलं रोपणभिष्यते ॥८०॥

१.गोजिह्वा, २. वायविडङ्ग, ३. मुलेठी तथा सभी प्रकार के सुगन्ध द्रव्य यथा—४. छोटी इलायची, ५. तेजपत्ता, ६. लवङ्ग, ७. दालचीनी, ८. नागकेशर, ९. शीतलचीनी. १०. कर्पूर, ११. अगुरु, १२. केशर तथा १३. सुगन्धबाला—प्रत्येक द्रव्य १८ ग्राम लें और तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त सभी द्रव्यों का चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित तैल में इस कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैलपाक की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें और शीतल होने पर काचपात्र पात्र में संग्रहीत करें। उपदंश के व्रण पर इस तैल को लगाने से व्रण का रोपण होता है।

२८. जम्ब्वाद्यतैल (वङ्गसेन)

जम्बूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च ।
नक्तमालस्य पत्राणि तद्वत्पद्मोत्पलानि च ॥८१॥
एला चातिविषाऽऽम्रास्थिमधुकञ्च प्रियङ्गवः ।
लाक्षा कालीयकं लोध्रं चन्दनं त्रिवृताह्वया ॥८२॥
एतान्येकीकृतान्येव बस्तमूत्रेण पेषयेत् ।
अक्षमात्रैरिमैर्द्रव्यैतस्तैलं प्रस्थं विपाचयेत् ॥८३॥
सर्वव्रणहरं तैलमेतत्सिद्धं न संशयः ।
उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्त्तितम् ॥८४॥

१. जामुन के पत्ते, २. वेतस के पत्ते, ३. आमला के पत्ते, ४. करञ्ज के पत्ते, ५. कमलपुष्प, ६. नीलकमलपुष्प, ७. छोटी इलायची, ८. अतीस, ९. आम्रास्थि, १०. मुलेठी, ११. प्रियङ्गुफूल, १२ लाक्षा, १३. कालीयककाष्ठ, १४. लोध्रत्वक्, १५. लालचन्दन, १६. निशोथ—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम तथा १७. तिलतैल ७५० मि.ली. और १८. बकरे का मूत्र यथावश्यक लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त सभी १६ द्रव्यों को कूट-पीसकर चूर्ण करें और बकरे के मूत्र के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनने पर मूर्च्छित तैल में डालें तथा ३ लीटर जल देकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैलपाक के परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह तैल सभी प्रकार के व्रणों का नाश करता है। यह तैल उपदंश को नष्ट करने वाला है । इसमें कोई संशय नहीं है।

२९. कोषातकीतैल (वङ्गसेन)

यस्य लिङ्गस्य मांसं तु शीर्यते मुष्कशेषतः ।
तिक्तकोशातक्यलाब्वोर्बीजं नागरसाधितम् ॥
तैलं हन्त्यविशेषेण व्रणं दुष्टमनेकधा ॥८५॥

तिलतैल ७५० मि.ली., तिक्तकोषातकी (कड़वी नेनुआँ) बीज, कटुतुम्बीबीज और सोंठ—प्रत्येक द्रव्य ६० ग्राम लें। तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः तीनों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीस लें। मूर्च्छित तैल मे इस कल्क और ३ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। तैल पाक परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। उपदंश के ऐसे रोगी जिसके लिङ्ग का मांस सड़कर गिर गया हो, केवल अण्ड-कोष मात्र शेष हो, तो ऐसे लोगों के व्रण और अनेक प्रकार के दुष्ट व्रण इसके लेपन से नष्ट हो जाते हैं।

उपदंश रोग में पथ्य

छर्दिर्विरेको ध्वजमध्यनाडी-
वेधो जलौकः परिपातनं च।
सेकः प्रलेपो यवशालयश्च
धन्वामिषं मुद्गरसो घृतानि ॥८६॥
कठिल्लकं शिग्रुफलं पटोलं
शालिञ्चशाकं नवमूलकं च।
तिक्तं कषायं मधुकूपवारि
तैलं च हन्यादुपदंशरोगम् ॥८७॥

वमन, विरेचन, शिश्न के बीच की सिरा का वेध, जोंक लगाकर दूषित रक्त को निकालना, शिश्न व्रण का सेचन, शिश्न व्रण पर औषधि लेप, जौ, शालि चावल, जङ्गली पशु-पक्षियों के मांस या मांसरस, मुद्गयूष, घी, करैला, सहिजनफली, परवल, शालिञ्चशाक, नई कोमल मूली, तिक्त और कषाय रस युक्त पदार्थ का सेवन, मधु, कुँआ का जल और तिलतैल उपदंश के रोगी के लिए हितकर हैं।

उपदंश रोग में अपथ्य (यो. र.)

दिवानिद्रां मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुडम्।
आयासमम्लं तक्रञ्च वर्जयेदुपदंशवान् ॥८८॥

इति भैषज्यरत्नावल्यमुपदंशरोगाधिकारः।

दिन में सोना, मूत्र के वेग को रोकना, गुरु एवं भारी पदार्थ का भोजन, मैथुन, गुड़, परिश्रम, अम्ल पदार्थ और तक्र उपदंश रोगियों को छोड़ देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य उपदंशरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।

अथ शूकदोषाधिकारः (५३)

शूकदोष में क्रियाक्रम (च.द.)

शूकदोषेषु सर्वेषु पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम्।
हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम्।
हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघुभोजनम् ॥१॥

शूकदोष रोग में सभी प्रकार की पित्तघ्न चिकित्सा करनी चाहिए। यथा—पित्तघ्न औषधों के कल्क एवं क्वाथ से सिद्ध घृत का पान, पित्तनाशक एवं लघु पथ्याहार करना, विरेचन, रक्त-मोक्षण, ये सभी कार्य हितकर हैं।

विमर्श—शूकदोष परिचय—जो मूर्ख व्यक्ति बिना कारण अपने शिश्न को बढ़ाने की नियत से शिश्न पर तीक्ष्ण द्रव्यों (भल्लातक, सूरण, कपिकच्छु, असगन्ध आदि) का लेप करता है, फलतः उसके शिश्न में शोथ, व्रण तथा खाज आदि उत्पन्न होकर छोटी-छोटी पिडिकाएँ उत्पन्न होकर १८ प्रकार के 'शूक-दोष' रोग उत्पन्न होते हैं। यथा—

अक्रमाच्छेपसो वृद्धिर्योऽभिवाञ्छति मूढधीः।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः।।
(माधवनिदान)

१-३. सर्षपी चिकित्सा (च.द.)

सर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत्।
तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद् व्रणरोपणम् ॥२॥
क्रियेयमधिमन्थेऽपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः।
अष्ठीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥३॥

१. **सर्षपी** पिडिका का शस्त्र से लेखन कर कषायरस प्रधान रोपण द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर शिश्नव्रण पर अवचूर्णन करें तथा इन्हीं द्रव्यों के कल्क-क्वाथ से सिद्धतैल का रोपणार्थ लेप करें।

२. **अधिमन्थ** रोग में भी ऐसी ही क्रिया करें। सर्षपिका और अधिमन्थ में रक्तमोक्षण करना चाहिए।

३. **अष्ठीला** में पहले रक्त का निर्हरण करके श्लेष्मग्रन्थि रोग की तरह चिकित्सा करनी चाहिए।

४. कुम्भिका चिकित्सा (च. द.)

कुम्भिकाया हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे।
तिन्दुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥४॥

४. **कुम्भिकारोग** में पहले रक्तमोक्षण (जलौका से) करें, ततः व्रण पक जाने पर व्रण पर चीरा लगाकर पूयादि निकालें और निम्ब आदि क्वाथ से व्रण का शोधन करें। तदनन्तर तिन्दुक, त्रिफला और लोध्र चूर्णों का लेप करें और इन्हीं द्रव्यो के कल्क-क्वाथ से सिद्ध तैल का व्रण रोपणार्थ लेपन करें।

५. अलजी चिकित्सा (च.द.)

अलज्यां हृतरक्तायामयमेव क्रियाक्रमः ॥५॥

५. **अलजी** प्रदूषित रक्त के कारण उत्पन्न अलजी में भी इसी प्रकार से रक्तमोक्षण, व्रणशोधन एवं व्रणरोपण चिकित्सा करनी चाहिए।

६. ग्रथित (ग्रन्थि) चिकित्सा (च. द.)

स्वेदयेद् ग्रथितं स्निग्धं नाडी स्वेदेन बुद्धिमान्।
सुखोष्णैरुपनाहैश्च सुस्निग्धैरुपनाहयेत् ॥६॥

६. **ग्रथित** (ग्रन्थि) रोग में पहले तैलादि स्निग्ध द्रव्यों से स्नेहन करके नाडीस्वेद विधि से विद्वान् चिकित्सक को स्वेदन करना चाहिए। ततः कफ नाशक द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसें और उसमें थोड़ा घृत या तैल मिलाकर गरम करें तथा उसी सुखोष्ण उपनाह से उपनाहन (लेपन) कर कपड़े से बांधें।

७. उत्तमा चिकित्सा (च. द.)

उत्तमाख्यान्तु पिडकां संच्छिद्य वडिशोद्धृताम्।
कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ॥७॥

७. **उत्तमा** नामक पिडिका को वडिश नामक यन्त्र से पकड़कर शस्त्र से छेदन करना चाहिए। पूर्वोक्त कषाय एवं व्रण रोपक द्रव्यों के चूर्ण, कल्क में मधु मिलाकर लेपन करें और क्वाथ से प्रक्षालन कर व्रणरोपण एवं पूरण कर्म करें।

८-१२. पुष्कर्यादि चिकित्सा (च. द.)

क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः।
त्वक्पाके स्पर्शहान्याञ्च सेचयेन्मृदितं पुनः।
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥८॥

८. **पुष्करिका**, ९. **मूढ़पिडका**, १०. **त्वक्पाक** तथा ११. **स्पर्शहानि** नामक शूकदोष रोग में पित्तज विसर्प जैसी चिकित्सा करनी चाहिए। १२. **मृदित** नामक शूकदोष रोग में सुखोष्ण बला तैल का सिञ्चन (सेचन) करना चाहिए। साथ ही काकोल्यादि मधुरगण का उपनाह (पुल्टीस) करना चाहिए।

१३. शतपोनक चिकित्सा (सु.चि. २१)

रसक्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके।
पृथक्पर्ण्यादिसिद्धन्तु तैलं देयमनन्तरम् ॥९॥

१३. **शतपोनकशूकरोग** में (छिद्रैरणुमुखैः) (शिश्ने चतुर्दिक् शताधिकसूक्ष्मछिद्राणि भवन्ति) शिश्न में शताधिक सूक्ष्म छिद्र हो जाते है। अतः शतपोनकरोग में शस्त्र से व्रण का लेखन कर सालसारादि[1] गण की औषधों की रसक्रिया बनाकर व्रणशोधन तथा पृथक्पर्ण्यादि[2] गणोक्त औषधों से साधित घृत द्वारा व्रण रोपणार्थ लेपन करें।

१४. शोणितार्बुद चिकित्सा (सु.चि. २१)

रक्तविद्रधिवच्चापि क्रिया शोणितजेऽर्बुदे।
कषायकल्कसर्पींषि तैलं चूर्णं रसक्रियाम्।
शोधने रोपणे चैव वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥१०॥

१४. **रक्तजन्य लिङ्गार्बुद** रोग में रक्तज विद्रधि की तरह चिकित्सा करनी चाहिए। दोषों के तर-तम भाव को समझकर शोधनार्ह व्रणों का शोधन कषायों से प्रक्षालन कर शोधन करें तथा उन व्रणों पर शोधनार्थ चूर्ण एवं कल्क सिद्ध घृत-तैलों एवं रसक्रिया से उपचार करें। इसी प्रकार व्रणरोपणार्थ रोपणवर्गोक्त औषधियों के चूर्ण, कल्क, क्वाथ, घृत, तैल एवं रसक्रिया द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

१५-१८. मांसार्बुदादि चिकित्सा (सु.चि. २१।१८)

अर्बुदं मांसपाकञ्च विद्रधिं तिलकालकम्।
प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् तेषां प्रतिक्रियाम् ॥११॥

१५. **मांसार्बुद**, १६. **मांसपाक**, १७. **विद्रधि**, १८. **तिलकालक**—इन शूकरोगों की चिकित्सा करते समय रोगी के परिजनों को यह बता देना चाहिए कि यह रोग असाध्य है। इस रोग को समाप्त या नष्ट होने की सम्भावना बहुत ही कम है। इसके बाद यथामति चिकित्सा करें।

सभी शूकदोषरोग की चिकित्सा

सर्वेषां शूकदोषाणां क्रियां व्रणवदाचरेत्।
उपदंशाधिकारोक्तमौषधं शूकदोषतः ॥१२॥

सभी शूकदोषज रोगों में व्रणों की तरह शोधन, पाटन एवं रोपणादि द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए। तथा उपदंश प्रकरण में कहे गये लेप, चूर्ण, क्वाथ, तैल, घृत तथा रसौषधों का प्रयोग करना चाहिए।

मांसार्बुदादि असाध्य शूकरोग की चिकित्सा

मांसार्बुदे प्रकुर्वीत क्रियां सद्योव्रणोदिताम्।
त्रिफलां गुग्गुलु चापि विशेषेणावचारयेत् ॥१३॥
मांसपाके वटाद्यस्य गणस्य विधिवत्कृतैः।
कषायचूर्णकल्कैश्च सेकोद्धूलनलेपनम् ॥१४॥
विद्रधौ विधिवत् कार्यं रक्तविद्रधिभेषजम्।
वरुणादिकषायस्य पानप्रक्षालने हिते ॥१५॥
तिलकालं समुल्लिख्य क्षुरेण लघुपाणिना।
भिषजाऽथात्र कर्त्तव्यः सद्योव्रणविधिर्मतः ॥१६॥

१५. **मांसार्बुद** शूकदोषजरोग में सद्योव्रणोक्त चिकित्सा करनी चाहिए। त्रिफलाक्वाथ के साथ शुद्ध गुग्गुलु अथवा त्रिफलागुग्गुलु का प्रयोग करना चाहिए।

१६. **मांसपाक** शूकदोषजरोग में वटादिगणोक्त द्रव्यों के क्वाथ, चूर्ण, कल्क से क्रमशः सेक, उद्धूलन और लेप द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

१७. **विद्रधि** शूकदोषजरोग में रक्तविद्रधि की तरह चिकित्सा करनी चाहिए। इसमें वरुणादि गणोक्त क्वाथ का पान करना तथा उसी क्वाथ से व्रण का प्रक्षालन करना हितकर है।

१८. **तिलकालक** शूकदोषजरोग में अस्तुरे (क्षुरक) द्वारा हल्के हाथ से खुरचकर (लेखन कर) सद्यो व्रणोक्त विधि से चिकित्सा करनी चाहिए।

दार्वीतैल (भा.प्र)

दार्वीसुरसयष्ट्याह्वगृहधूमनिशायुगैः ।
तैलमभ्यञ्जने पाने मेढ्ररोगं निवारयेत् ॥१७॥

१. दारुहल्दी, २. तुलसी, ३ मुलेठी, ४. गृहधूम, ५. हल्दी और ६. दारुहल्दी—प्रत्येक द्रव्य ४० ग्राम लें तथा तिलतैल १ लीटर एवं जल ४ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त ६ द्रव्यों का चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। इस कल्क तथा ४ लीटर जल दोनों को मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैल पाक की परीक्षा कर चूल्हे से तैलपात्र को उतार लें और कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का शिश्न पर लेपन करने से तथा गरम दूध के साथ १२ ग्राम मिलाकर पीने से शिश्न के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

रसाञ्जनलेप (भा.प्र)

रसाञ्जनं [1]साह्वयमेकमेव
प्रलेपमात्रेण नयेत्प्रशान्तिम्।

---

१. सालसारादिसारेषु पटोलत्रिफलासु च।
रसक्रिया विधातव्या शोधनी शोधनेषु च॥ (सु.सू. ३७।२०)

२. पृथक्पर्ण्यात्मगुप्ता हरिद्रे मालती सिता।
काकोल्यादिश्च योज्यः स्याद् भिषजा रोपणे घृते॥ (सु.सू. ३७।२५)

१. साह्वय इति अनङ्गरोगस्य विशेषणम्।

सपूतिपूयव्रणशोथकण्डू-
शूलान्वितं सर्वमनङ्गरोगम् ॥१८॥

अकेले रसाञ्जन के लेप एवं प्रक्षालन मात्र से दुर्गन्धित पूयादि, व्रण, शोथ, कण्डू तथा शूल से युक्त सम्पूर्ण शिश्नरोग या रतिजरोग नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् रसौत के लेप से रोग नष्ट हो जाता है।

शूकदोषज रोग मे पथ्य

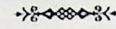
लेपो विरेकोऽसृङ्मोक्षः सर्पिष्पानं च शालयः।
यवा जाङ्गलमांसानि मुद्गयूषः कठिल्लकम् ॥१९॥
पटोलं शिग्रु कर्कोटं पत्तूरं बालमूलकम्।
वेत्राग्रमाषाढफलं दाडिमं सैन्धवं वरा ॥२०॥
कूपोदकं गन्धसारं कस्तूरी हिमबालुका।
तिक्तं कषायं तैलं च पथ्यं स्याच्छूकरोगिणाम् ॥२१॥

शूकदोषज रोग में लेप, विरेचन, रक्तमोक्षण, घृतपान, शालिचावल, जौ, जङ्गली पशु-पक्षियों के मांस, मूँग का यूष, करैला, परवलफल, सहिजनफली, कर्कोटक (खेखसा), पत्तूर शाक, बालमूली, वेतस के कोमल पत्र, अनारफल, सैन्धव, त्रिफला, कुएँ का जल, श्वेतचन्दन, केशर, कस्तूरी, कर्पूर, तिक्त और कषाय द्रव्य एवं तिल तैल पथ्य है।

शूकदोषज रोग में अपथ्य

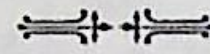
मूत्रवेगं दिवानिद्रां व्यायामं मैथुनं गुडम्।
विदाहि गुरु तक्रं च शूकदोषामयी त्यजेत् ॥२२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां शूकदोषाधिकारः।



मूत्र का वेग रोकना, दिन में सोना, व्यायाम, मैथुन, गुड़, विदाहि अन्नादि का सेवन, गुरु (भारी) पदार्थों का सेवन और तक्र का सेवन शूक दोषज रोगी को छोड़ देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य शूकदोषाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ कुष्ठरोगाधिकारः (५४)

कुष्ठ चिकित्सा में सामान्य क्रम (च.चि.)

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं श्रेष्ठम् ॥१॥

वातोल्बण कुष्ठ में घृतपान, कफोल्बण कुष्ठ में वमन और पित्तोल्बण कुष्ठ में रक्तमोक्षण तथा विरेचन कराना श्रेष्ठ चिकित्सा है।

कुष्ठ में हितकर कर्म (चरक)

प्रच्छनमल्पे कुष्ठे महति च शस्तं शिराव्यधनम् ।
बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान् ॥२॥

सामान्य कुष्ठ में शस्त्र से चमड़ी के ऊपर पाछ लगाना तथा बड़े कुष्ठ में शिराव्यध हितकर है। अनेक दोषों वाले कुष्ठ रोग में रोगी के बल को देखकर संशोधन (वमन-विरेचन-नस्य-बस्ति-रक्तमोक्षण) करना हितकर है, जिससे उसके प्राणों की रक्षा हो सके।

१. पञ्चकषायप्रयोग (च.द.)

वचावासापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः ।
कषायो मधुना पीतो वान्तिकृन्मदनान्वितः ॥३॥

१. वच, २. वासामूल, ३. पटोललता, ४. निम्बत्वक्, आर ५. प्रियङ्गुफूल (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर क्वाथ विधि से क्वाथ बना लें। वमनार्थ क्वाथ कम से कम १ प्रस्थ होना ही चाहिए। यवकुट १८७ ग्राम और क्वाथार्थ जल ३ लीटर; अवशेष ७५० मि.ली.। उसमें मधु १०० ग्राम और मदनफल-पिप्पलीचूर्ण २ ग्राम मिलाकर सुखोष्ण क्वाथ पिलाना चाहिए।

वामक क्वाथ विधि—

क्वाथ्य द्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके ।
चतुर्भागावशिष्टं तु वमनेष्ववचारयेत् ।।
(श्रीशिवदाससेनः, चक्रदत्ते)

विरेचन (च.द.)

विरेचनं तु कर्त्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः ॥४॥

कुष्ठ रोगियों को त्रिफला क्वाथ १०० मि.ली. में त्रिवृत्चूर्ण ३ ग्राम और दन्तीमूलचूर्ण ३ ग्राम मिलाकर पिलावें तथा विरेचन करावें।

शीघ्र सिद्धि-प्राप्ति प्रकार (चरक)

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्गतास्त्रदोषाणाम् ।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥५॥

जो लेप कुष्ठों में उपयोगी है वे रक्तमोक्षण के द्वारा कुष्ठिओं के शरीर के विकार निकल जाने से तथा वमन-विरेचनादि संशोधन कर्मो से कोष्ठों की शुद्धि हो जाने से औषधि प्रयोग का लाभ शीघ्र मिलता है और चिकित्सक को सिद्धि मिलती है।

२. मनःशिलादि एवं करञ्जादिलेप (च.द.)

मनःशिलाले मरिचानि तैलमार्कं पयः कुष्ठहरः प्रलेपः ।
करञ्जबीजैडगजः सकुष्ठो गोमूत्रपिष्टश्च वरः प्रदेहः ॥६॥

१. मन:शिला, हरताल तथा मरिचचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर खरल में मर्दन करें और काचपात्र में इस चूर्ण को संग्रहीत करें। इस चूर्ण की १२ ग्राम की मात्रा १ छोटी कटोरी में लें तथा इस कटोरी में २५ मि.ली. सरसोंतैल और अर्कक्षीर २५ मि.ली. मिलाकर कुष्ठ स्थान पर प्रतिदिन प्रलेप करें। इसके प्रयोग से कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

२. करञ्जबीजचूर्ण, चक्रमर्दबीजचूर्ण तथा कूठचूर्ण (समभाग) तीनों को सिल पर गोमूत्र के साथ पीसकर कुष्ठस्थान में प्रतिदिन लेप करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

३. आरग्वधपत्राद्युद्वर्त्तन (च.द.)

पर्णानि पिष्ट्वा चतुरङ्गुलस्य
तक्रेण पर्णान्यथ काकमाच्याः ।
तैलाक्तगात्रस्य नरस्य कुष्ठा-
न्युद्वर्त्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥७॥

अमलतासपत्र, काकमाचीपत्र और जहरकनेरपत्र तीनों समभाग लेकर सिल पर तक्र के साथ पीसें। पहले सम्पूर्ण शरीर में सरसोंतैल लगाकर कुष्ठ रोगी को उद्वर्त्तन (उबटन) लगाना चाहिए। ऐसा कुछ दिनों तक रोज उबटन लगाने से मण्डलादि कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

४. विषादिलेप (च.द.)

विषवरुणहरिद्राचित्रकागारधूम-
मनलमरिचदूर्वाः क्षीरमर्कस्नुहीभ्याम् ।
दहति पतितमात्रात्कुष्ठजातीरशेषाः ।
कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥८॥

१. वत्सनाभविष, २. वरुणत्वक्, ३. हल्दी, ४. चित्रकमूल, ५. गृहधूम, ६. भल्लातक, ७, मरिच, ८. दूर्वा (दूब)—उपर्युक्त ८ द्रव्य प्रत्येक २० ग्राम तथा ९. अर्कक्षीर और १०. स्नुहीक्षीर ५०-५० मि.ली. लें। वत्सनाभ से दूर्वा तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। गृहधूम में अपद्रव्य मिले होते हैं जो हानिकारक है। अतः गृहधूम के अभाव में लकड़ी के कोयले का चूर्ण लें। पुनः सिल या खरल में इन चूर्णों को रखें और अर्कक्षीर तथा स्नुहीक्षीर की भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। जब अवलेह जैसा बन जाय तो कुष्ठ स्थान पर प्रतिदिन लगावें। जिस प्रकार क्रुद्ध इन्द्र के हाथ से छोड़े गये वज्र से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह इसको लगाने से समस्त कुष्ठ जल जाते हैं।

५. विडङ्गादि लेप (च.द.)

विडङ्गसैन्धवशिवाशशिरेखासर्षपकरञ्जरजनीभिश्च ।
गोजलपिष्टो लेपः कुष्ठहरो दिवसनाथसमः ॥९॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. सैन्धवलवण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बाकुचीबीजचूर्ण, ५. करञ्जबीजमज्जा तथा ६. हल्दीचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें अच्छी तरह से सूक्ष्म चूर्ण करें तथा सिल पर गोमूत्र के साथ अच्छी तरह पीसकर कुष्ठ रोगी के प्रभावित अङ्ग पर लेप करने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है। जिस तरह दिवसनाथ भगवान् सूर्य का व्रत, आदित्यहृदय का पाठ, सूर्य की पूजा, सूर्य को नमस्कारादि के द्वारा आराधना करने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है।

६. भल्लातकादिलेप (च.द.)

भल्लातकद्वीपिसुधार्कमूलं
गुञ्जाफलत्र्यूषणशङ्खचूर्णम् ।
तुत्थं सकुष्ठं लवणानि पञ्च-
क्षारद्वयं लाङ्गलिकाञ्च पक्त्वा ॥१०॥
स्नुह्यर्कदुग्धे घनमायसस्थं
शलाकया तद्विदधीत लेपम्।
कुष्ठे किलासे तिलकालके च
सर्वेषु दुर्नामसु चर्मकीले ॥११॥

१. भल्लातकफल, २. चित्रकमूल, ३. थूहरमूल, ४. अर्कमूलत्वक्, ५. गुञ्जाफल, ६. सोंठ, ७. पीपर, ८. मरिच, ९. शंखभस्म, १०. तुत्थ, ११. कूठ, १२. सैन्धवलवण, १३. सामुद्रलवण १४. सौवर्चललवण, १५. विडलवण, १६. अद्भिल्लवण, १७. सज्जीक्षार, १८. यवक्षार और १९. कलिहारीकन्द (समभाग) लें। इनमें से भल्लातक को पृथक् कर सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः भल्लातक को काटकर ईटें चूर्ण में दबाकर रखें। ऐसा करने से भल्लातक का तैल ईटें चूर्ण में सूख जायगा। ४-५ दिन इसी तरह रखकर भल्लातक टुकड़ों को निकालकर इमामदस्ते में कूटें। ईंटचूर्ण फेंक दें। हाथ में दस्ताना पहनकर इस काम को करें तथा पैर को कपड़े से ढक लें जिसमें भिलावे के तैल का छीटा नहीं पड़े। जब सम्पूर्ण भिलावा चूर्ण हो जाय तो सम्पूर्ण चूर्ण में मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। अब एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में आवश्यकतानुसार २०-३० ग्राम चूर्ण लें और स्नुहीक्षीर ५० ग्राम तथा अर्कक्षीर ५० ग्राम इस चूर्ण में मिलाकर मन्दाग्नि से पकावें। अवलेह जैसा हो जाने पर चम्मच से कुष्ठ स्थान पर लगावें। इस लेप का प्रतिदिन उपयोग करने से कुष्ठ, किलास, तिलकालक, चर्मकील और अर्शरोग नष्ट हो जाते हैं।

७. पथ्यादिलेप

पथ्याकरञ्जसिद्धार्थनिशाऽवल्गुजसैन्धवैः ।
विडङ्गसहितैः पिष्टैर्लेपो मूत्रेण कुष्ठनुत् ॥१२॥

१. हरीतकी, २. करञ्जबीज, ३. सरसों, ४. हल्दी, ५. बाकुची, ६. सैन्धवलवण और ७. वायविडङ्ग (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन इस चूर्ण में से २० ग्राम लेकर गोमूत्र के साथ सिल पर पिसें और कुष्ठ स्थान पर इससे लेप करें। प्रतिदिन इसका लेप करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

८. सिक्थादिलेप

सिक्थकेन समं शुद्धगन्धकेन समेन च ।
शैलरोहिफलोद्भूतमज्जानं पेषयेद्भिषक् ॥
तेन सर्वविधं कुष्ठं नश्यत्येव न संशयः ॥१३॥

सिक्थ (मोम) १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग तथा चालमोगरा बीज की मज्जा १ भाग लें। शुद्ध गन्धक का चूर्ण करें तथा चालमोगराबीज की मज्जा को पीस लें। अब एक छोटी साफ कड़ाही में मोम को मन्दाग्नि पर गरम करें। जब मोम पिघल जाय तो उसमें पहले गन्धकचूर्ण डालकर चम्मच से चलावें। जब मोम और गन्धक मिलकर एक हो जाय तो चूल्हे से कड़ाही को उतार लें और चालमोगराचूर्ण मिलाकर चम्मच से खूब मर्दन करें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन इस मलहर को लगाने से निःसन्देह कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है।

९. दूर्वादिलेप (च.द.)

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्द-
कुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः।
एभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां
कण्डूञ्च दद्रुञ्च निवारयन्ति ॥१४॥

१. दर्वा (दूभ), २. हरीतकीचूर्ण, ३. सैन्धवलवणचूर्ण, ४. चकवड़बीजचूर्ण तथा ५. तुलसीपत्र (समभाग) लें। दूर्वा और तुलसीपत्र को सिल पर पीसें। पुनः इस कल्क में उपर्युक्त तीनों

चूर्ण मिलावें तथा काञ्जी और तक्र मिलाकर खूब पीसें। इसका प्रतिदिन लेप लगाने से खुजली एवं दाद (दद्रु) रोग नष्ट हो जाते हैं।

१०. दद्रुगजेन्द्रसिंहलेप (च.द.)

तुल्यो रसः शालतरोस्तुषेण सचक्रमर्दोऽप्यभयाविमिश्रः ।
पानीयभक्तेन तदम्लपिष्टो लेपः कृतो दद्रुगजेन्द्रसिंहः॥१५॥

१. शालवृक्षनिर्यास (राल), २. धान की भूसी, ३. चक्रमर्द बीजचूर्ण, ४. हरीतकीचूर्ण तथा ५. पानी में भिंगोया हुआ बासी भात—ये पाँचों द्रव्य १-१ भाग लें। उपर्युक्त पाँचों द्रव्यों को सिल पर एक साथ रखकर पानी से भिंगाकर पीस कर दद्रु पर लेप करने से दद्रु नष्ट हो जाता है। इसे दद्रुगजेन्द्र सिंह कहते हैं।

११. विडङ्गादिलेप (च.द.)

विडङ्गैडगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः ।
धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठविनाशनः॥१६॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. चक्रमर्दबीजचूर्ण, ३. कूठचूर्ण, ४. हल्दीचूर्ण, ५. सैन्धवलवणचूर्ण तथा ६. सरसोचूर्ण (समभाग) लें। इन चूर्णो को एक साथ मिलाकर पुनः छननी से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार १० से २० ग्राम चूर्ण को काञ्जी से पीसकर लेप करने से दद्रु और कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

१२. एडगजादिलेप (च.द.)

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्षपैः कृमिघ्नैश्च ।
कृमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानां नाशनो लेपः॥१७॥

१. चकवडबीज, २. कूठ, ३. सैन्धवलवण, ४. सौवीराञ्जन, ५. सरसो तथा ६. वायविडङ्ग (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके बाद इस चूर्ण को आवश्यकतानुसार १० से २० ग्राम सिल पर गोमूत्र के साथ पीसें और रोगप्रभावित स्थान पर प्रतिदिन लेप लगाने से कृमि, सिध्म, दद्रु तथा मण्डलकुष्ठ नष्ट हो जाता है।

१३-१४. चक्रमर्द एवं शिग्रुत्वक्लेप

चक्रमर्दकबीजञ्च मूलकाम्बुप्रपेषितम् ।
दद्रुघ्नं लेपनं कुर्याच्छिग्रुमूलत्वचोऽथवा॥१८॥

१. चक्रमर्दबीजचूर्ण (चकवड़) कर मूलीस्वरस के साथ सिल पर पीसकर लेप करने से दद्रु नष्ट हो जाता है। अथवा—२. शिग्रु (सहिजन) मूल की त्वचा को मूलीस्वरस के साथ सिल पर पीसकर लेप करने से दद्रु रोग नष्ट हो जाता है।

१५. कासमर्दप्रलेप (च.द.)

कासमर्दकमूलञ्च काञ्जिकेन प्रपेषितम् ।
दद्रुकिटिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात्॥१९॥

कासमर्द (कसौंदी) के मूल को काञ्जी के साथ सिल पर पीस-कर लेप लगाने से दद्रु, किटिम एवं कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

१६. आरग्वधपत्रलेप (च.द.)

आरग्वधस्य पत्राणि चारनालेन पेषयेत् ।
दद्रुकिटिभकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च॥२०॥

अमलतास के पत्ते को काज्जी के साथ सिल पर पीसकर लेप करने से दद्रु, किटिम, कुष्ठ और सिघ्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

१७. चक्राह्वयादिलेप (च.द.)

चक्राह्वयं स्नुहीक्षीरभावितं मूत्रसंयुतम् ।
रवितप्तं हि किञ्चित्तु लेपनं किटिभापहम्॥२१॥

चक्रमर्द (चकवड़) बीजचूर्ण को स्नुहीक्षीर से १ भावना दें। सूखने के बाद उसे गोमूत्र के साथ सिल पर पीसें। लेप लगाने से पूर्व इस पीसे हुए लेप को २-३ घण्टे तक धूप में रखें और धूप की गर्मी से गरम इस लेप को लगाने से किटिम रोग नष्ट हो जाता है।

सिध्म-चिकित्सा

१८. मूलकबीजप्रलेप (च.द.)

शिखरीरसेन पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्म ।
क्षारेण वा कदल्यारजनीमिश्रेण नाशयति॥२२॥

१. मूलीबीज का चूर्ण कर अपामार्गस्वरस में पीसकर लेप करने से सिध्मरोग नष्ट हो जाता है। अथवा—२. हल्दीचूर्ण को कदलीक्षार जल से पीसकर लेप करने से सिध्मरोग नष्ट हो जाता है।

सक्षारं गन्धकं लेपात् कटुतैलेन सिध्मजित्॥२३॥

यवक्षार एवं गन्धक को समभाग में लेकर सरसो के साथ सिल पर पीसकर सिध्म पर लेप करने से सिध्म रोग नष्ट हो जाता है।

१९. कासमर्दप्रलेप (च.द.)

कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च ।
गन्धाश्मचूर्णमिश्राणि सिध्मनां परमौषधम्॥२४॥

कासमर्दबीज १०० ग्राम, मूलीबीज १०० ग्राम और शुद्ध गन्धक १०० ग्राम लें। तीनों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार २० ग्राम काञ्जी के साथ सिल पर पीसकर लेप करने से सिध्म नष्ट हो जाता है। यह लेप सिध्म की परम औषधि है।

२०. गन्धपाषाणलेप (च.द.)

गन्धपाषाणचूर्णेन यवक्षारेण लेपितम्।
सिध्म नाशं व्रजत्याशु कटुतैलयुतेन च ॥२५॥

शुद्ध गन्धक और यवक्षारचूर्ण समभाग लें और सरसोतैल में पीसकर लेप करने से सिध्मरोग नष्ट हो जाता है।

२१. कुष्ठादिलेप (भा.प्र.)

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्षपास्तथा रजनी।
एतत्केशरषष्ठं निहन्ति बहुवार्षिकं सिध्म ॥२६॥

१. कूठचूर्ण, २. मूलीबीजचूर्ण, ३. प्रियङ्गुफूलचूर्ण, ४. सरसोबीजचूर्ण, ५. हल्दीचूर्ण और ६. नागकेशरचूर्ण (समभाग) लें। इन सभी छः चूर्णो को मिलाकर छननी से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को २० ग्राम लेकर गोमूत्र या काञ्जी के साथ सिल पर पीसकर लेप करने से सिध्म रोग नष्ट हो जाता है।

२२. नीलकुरण्टकपत्ररसलेप (च.द.)

नीलकुरण्टकपत्रैरालिप्य गात्रमतिबहुशः।
लिम्पेन्मूलकबीजैः पिष्टैस्तक्रेण सिध्मनाशाय ॥२७॥

नीलपुष्प के सहचरपत्रकल्क शरीर में उद्वर्त्तन जैसा लगाने के बाद तक्र में पिसा हुआ मूलीबीज का लेप सिध्मस्थान में लगाने से सिध्मरोग नष्ट हो जाता है।

२३. धात्रीफलाद्युद्वर्त्तन (च.द.)

धात्रीफलः सर्जरसः सपाक्यः
सौवीरपिष्टश्च तथायुतश्च।
भवन्ति सिध्मानि यथा न भूय-
स्तथैवमुद्वर्त्तनकं करोति ॥२८॥

आमलाचूर्ण, राल तथा यवक्षार (समभाग) में लें। इन्हें काञ्जी के साथ पीसकर सिध्म स्थान पर लेप करने से सिध्म एवं कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है और फिर कभी नहीं होता है।

२४. मूलकबीजादिलेप (च.द.)

बीजानि वा मूलकसर्षपाणां
लाक्षारजन्यौ प्रपुनाडबीजम्।
श्रीवेष्टकव्योषविडङ्गकुष्ठं
पिष्ट्वा च मूत्रेण तु लेपनं स्यात् ॥
दद्रूणि सिध्मं किटिभानि पामा-
कपालकुष्ठं विषमञ्च हन्यात् ॥२९॥

१. मूलीबीज, २. सरसोबीज, ३. लाक्षा, ४. हल्दी, ५. चक्रमर्दबीज, ६. गन्धविरोजा, ७. सोंठ, ८. पीपर, ९. मरिच, १०. वायविडङ्ग और ११. कूठ (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार प्रतिदिन २० ग्राम इस चूर्ण को गोमूत्र के साथ पीस कर लेप करने से सिध्म, दद्रु, किटिम, पामा तथा उग्र कपालकुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

पामा-चिकित्सा

२५. सिन्दूरादिलेप (च.द.)

सिन्दूरमरिचचूर्णं महिषीनवनीतसंयुतं बहुशः।
लेपान्निहन्ति पामां तैलं करवीरसिद्धं वा ॥३०॥

(१) नागसिन्दूर, मरिचचूर्ण तथा भैंस का मक्खन—तीनों द्रव्य समभाग लें। खरल में एक साथ मिलाकर ३ घण्टे तक दृढ़ मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस मलहर का लेप करने से पामा नष्ट हो जाता है। अथवा—(२) कनेरमूलत्वक् के कल्क एवं क्वाथ से सिद्ध सरसोतैल का लेप करने से पामा नष्ट हो जाता है।

२६. गन्धकतैलप्रयोग (च.द.)

पिबति सकटुतैलं गन्धपाषाणचूर्णं
रविकिरणसुतप्तं पामनो याः पलार्द्धम्।
त्रिदिनतदनुसिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं
भवति कनकदीप्तिः कामरूपो मनुष्यः ॥३१॥

शुद्ध गन्धक १५० ग्राम, सरसोंतैल १५० मि.ली. दोनों को खरल में ३ घण्टे तक दृढ़ मर्दन करें। फिर इसमें से २३ ग्राम इस तैल को एक कटोरी में डालकर धूप में रखें। जब तैल गरम हो जाय तो उसे पामा से पीड़ित व्यक्ति को पिला दें। इसके बाद इस तैल को रोगी के सर्वाङ्ग शरीर में लगाकर धूप में बैठायें। इस प्रकार ३ दिनों तक बाह्य एवं आभ्यन्तर रूप में इस तैल का प्रयोग करने से पामा कुष्ठ नष्ट हो जाता है। इस औषधि के सेवन काल में रोगी को पथ्य रूप में इच्छानुसार गोदुग्ध का ही सेवन कराना चाहिए। इस औषधि के सेवन से मनुष्य कामदेव जैसा सुन्दर एवं कनकप्रभायुक्त हो जाता है।

विचर्चिका चिकित्सा

२७. एडगजादिलेप (च.द.)

एडगजातिलसर्षपकुष्ठं
मागधिका लवणत्रयमस्तु।
पूतिकृतं दिवसत्रयमेत-
द्धन्ति विचर्चिकदद्रुककुष्ठम् ॥३२॥

१. चक्रमर्दबीज, २. तिल, ३. सरसों, ४. कूठ, ५. पीपर, ६. सैन्धवलवण, ७. सौवर्चललवंण और ८. विडलवण—समभाग लें तथा ९. मस्तु (दही का पानी) आवश्यकतानुसार लें। उपर्युक्त आठों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार १०० ग्राम तक इस चूर्ण में दही का पानी मिलाकर ३ दिनों तक कटोरी में पड़ा रहने दें। जब वह दुर्गन्ध

युक्त हो जाय तो विचर्चिका, दद्रु और कुष्ठरोग से पीड़ित व्यक्ति के शरीर में लेप करें। इसके लेप से विचर्चिका, दद्रु और कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

२८. दग्धस्नुक्काण्डादिलेप-१ (च.द.)

स्नुक्काण्डशुषिरे दग्ध्वा गृहधूमं ससैन्धवम्।
अन्तर्धूमं तैलयुक्तं लेपाद्धन्ति विचर्चिकाम् ॥३३॥

स्नुहीकाण्ड (काँटा वाला दण्ड) के ६-६ इञ्च के ६ टुकड़े लें। उसके काँटे को चाकू से हटा दें। उसके काण्ड में अंगुली घुसने लायक छिद्र होता है। सैन्धवलवण और गृहधूम (तीनों समभाग) लें। इन दोनों शुष्क द्रव्यों का चूर्ण करें और स्नुही-काण्ड के छिद्र में दबाकर भरें। दण्ड के दोनों सिरों पर कपड़-मिट्टी लगाकर मुख बन्द करें। १ बड़ी हाँड़ी में इन छः स्नुही-काण्डों को रखकर शराव से ढँककर कपड़मिट्टी करें और चूल्हे पर चढ़ाकर ३ घण्टे तक तीव्राग्नि से पकावें। अच्छा गृहधूम के अभाव में लकड़ी के कोयले का चूर्ण मिलाना अधिक उचित है। स्वाङ्गशीत होने पर हाँड़ी खोलकर जला हुआ स्नुहीकाण्ड निकालकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार १० से २० ग्राम इस भस्म को सरसोतैल में मिलाकर लेप करने से विचर्चिका एवं कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

२९. दग्धस्नुक्काण्डादिलेप-२ (च.द.)

स्नुक्काण्डे सर्षपात्कल्कः करीषानलपाचितः।
लेपाद्विचर्चिकां हन्ति रागवेग इव त्रपाम् ॥३४॥

थूहर के काण्ड के काँटों को चाकू से निकाल दें। उपर्युक्त विधि से थूहर से ६-६ इञ्च के ६ टुकड़े करें। इन स्नुहीकाण्ड को तौलें और उतने ही वजन में सरसों का चूर्ण लें तथा थूहर के छिद्र में सरसों चूर्ण भरें। स्नुहीकाण्ड के दोनों छिद्रों को कपड़मिट्टी से बन्द करें। कपड़मिट्टी सूखने पर करीषाग्नि (वन्योपल) में पाक करें। स्वाङ्गशीत होन पर कपड़मिट्टी हटाकर जले हुए स्नुहीकाण्ड को खरल में सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार १० ग्राम इस भस्म को सरसों तैल में अच्छी तरह मिलाकर लेप करने से विचर्चिका कुष्ठ उसी तरह नष्ट हो जाता है जैसे कामान्ध व्यक्ति की लज्जा नष्ट हो जाती है।

३०. पारदादिलेप

पारदं शङ्खगन्धञ्च शिला चोत्तरवारुणी।
प्रपुन्नाडश्च सर्पाक्षी मेघनादाग्निलाङ्गली ॥३५॥
भल्लातं गृहधूमञ्च मुनिगुञ्जास्नुहीपयः।
अरिष्टं च गुडक्षौद्रं बागुजीबीजतुल्यकम् ॥३६॥
गोमूत्रैरारनालैर्वा पिष्ट्वा लेपञ्च कारयेत्।
दद्रुमण्डलकण्डूञ्च विचर्च्चीञ्च विनाशयेत् ॥३७॥

१. शुद्ध पारद, २. शंखभस्म, ३. शुद्ध गन्धक, ४. शुद्ध मनःशिला, ५. इन्द्रायणमूल, ६. चकवड़बीज, ७. सर्पाक्षी, ८. चौराईशाक (मेघनाद), ९. चित्रकमूल, १०. लाङ्गलीमूल, ११. शुद्ध भल्लातक, १२ गृहधूम, १३. अगस्तवृक्षमूलत्वक्, १४. गुञ्जामूल, १५. स्नुही का दूध, १६.निम्बत्वक्, १७. गुड़, १८. मधु और १९. बाकुचीबीज (समभाग) लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक का खरल में मर्दन कर कज्जली करें। गृहधूम के स्थान पर लकड़ी के कोयला का चूर्ण लें। स्नुहीदुग्ध, मधु एवं गुड़ छोड़कर सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। उस चूर्ण में कज्जली, स्नुहीक्षीर, गुड़ एवं मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार १० से २० ग्राम इस चूर्ण को खरल में गोमूत्र या काञ्जी के साथ मर्दन कर लेप करने से दद्रु, मण्डलकुष्ठ, कण्डू और विचर्चिकरोग नष्ट हो जाते हैं।

विपादिका चिकित्सा

३१. तण्डुललेप (च.द.)

नारिकेलोदरे न्यस्तस्तण्डुलः पूतिताङ्गतः।
लेपाद्विपादिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥३८॥

एक पानीवाला नारियल लें। उसकी त्वचा (रेशा) हटा लें तथा उसके छिद्र चिह्नों में छिद्र करें। उस छिद्र के माध्यम से १०० ग्राम चावल भर दें। पुनः उस छिद्र को मिट्टी से बन्द करें। १ सप्ताह के बाद जब उसके चावल सड़कर दुर्गन्धमय हो जाय तब उसे फोड़कर सड़े चावलों को निकाल कर सिलपर पीसें और विपादिका पर लेप करने से चिरकालोत्पन्न विपादिका नष्ट हो जाती है।

३२. तिलकुसुमादिलेप

तिलकुसुमलवणगोजलकटुतैलं लौहभाजने कृत्वा।
शोषितमर्कमयूखैः पादस्फुटनं निहन्ति लेपेन ॥३९॥

१. तिलपुष्प, २. सैन्धवलवण, ३. गोमूत्र तथा ४. सरसों तैल (समभाग) लें। सिल पर तिलपुष्प और सैन्धवलवण को गोमूत्र के साथ पीसें। पुनः लौहे की कटोरी में इस पिसे द्रव्य को रखें तथा उसमें सरसो तैल मिलाकर धूप में सुखावें। पुनः इस लेप को प्रतिदिन पादस्फुटन (विपादिका) में लगाने से विपादिका नष्ट हो जाती है।

३३. सर्जरसादिलेप

सर्जरससिन्धुसम्भवगुडमधुमहिषाक्षगैरिकं सघृतम्।
सिक्थकमेतत्पक्वं पादस्फुटनापहं सिद्धम् ॥४०॥

१. राल, २. सैन्धवलवण, ३. गुड़, ४. मधु, ५. गुग्गुलु, ६. गैरिक, ७. गोघृत और ८. मोम (समभाग) लें। गुग्गुलु में घृत मिलाकर खूब कूटकर मृदु करें। उसी गुग्गुलु में गुड़ एवं मधु

मिलाकर कूटें। ततः उसमें पिघला हुआ मोम मिलाकर कूटें। तदनन्तर अन्य चूर्णों को उसमें अच्छी तरह मिलकर पुनः कूट-कर मृदु एवं अर्धद्रवित करें। गाढ़ा मलहर जैसा हो जायेगा। इसे काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे विपादिका में लगाने से विपादिका नष्ट हो जाती है।

कच्छु चिकित्सा

३४. अवल्गुजादिलेप (यो.र.)

अवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुगम्।
मणिमन्थश्च तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम्॥
कण्डूं कच्छूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट्॥४१॥

१. बाकुची, २. कासमर्दबीज, ३. चकवड़बीज, ४. हल्दी, दारुहल्दी और ६. सैन्धवलवण (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को १०-२० ग्राम की मात्रा में दही के पानी और काञ्जी के साथ पीसकर लेप करने से कण्डू तथा भयंकर कच्छूरोग नष्ट हो जाते हैं।

३५. वासापत्रादिलेप (च.द.)

कोमलसिंहास्यदलं सनिशं सुभीजलेन सम्पिष्टम्।
दिवसत्रयेण नियतं क्षपयति कच्छू विलेपनतः॥४२॥

वासा के कोमल पत्ते १० ग्राम तथा हल्दीचूर्ण १० ग्राम लें। दोनों को गोमूत्र के साथ सिल पर पीसकर ३ दिनों तक लगातार लेप करने से कच्छूरोग नष्ट हो जाता है।

श्वित्ररोग चिकित्सा

३६. वायस्यादिगुटिका (च.द.)

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुडिका कृता।
बस्तमूत्रेण सम्पिष्टा लेपाच्छ्वित्रविनाशिनी॥४३॥

१. मकोय (काकमाची), २. चकवड़बीज, ३. कूठ तथा ४. पीपर—इन द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और बकरे के मूत्र के साथ पीसकर ३ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से १ वटी लेकर जल में घिसकर प्रतिदिन श्वित्र स्थान पर लेप करने से श्वित्रकुष्ठ नष्ट हो जाता है।

३७. पूतिकादिलेप (च.द.)

पूतीकार्कस्नुड्नरेन्द्रद्रुमाणां
मूत्रैः पिष्ट्वा पल्लवाः सौमनाश्च।
लेपाच्छ्वित्रं हन्ति दद्रुव्रणांश्च
कुष्ठान्यर्शांस्यस्त्रनाडीव्रणांश्च॥४४॥

१. लताकरञ्जफल, २. अर्कमूलत्वक्, ३. स्नुहीमूलत्वक् ४. अमलतासफलमज्जा (राजवृक्षः) तथा ५. चमेली की पत्ती (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण करें। गोमूत्र के साथ पीसकर शरीर में लेप करने से, श्वेतकुष्ठ, दद्रु, व्रण, कुष्ठ, अर्श, रक्तविकार एवं नाडीव्रण नष्ट हो जाते हैं।

३८. गजादिचर्मभस्म लेप (च.द.)

गजचित्रव्याघ्रचर्ममसीतैलविलेपनात्।
श्वित्रं नाशं व्रजेत् किं वा पूतिकीटविलेपनात्॥४५॥

१. गजचर्म ५०० ग्राम, २. चीताचर्म ५०० ग्राम, ३. व्याघ्रचर्म ५०० ग्राम, ४. अतसीतैल आवश्यकतानुसार तथा ५. पूतिकीट लें। तीनों चमड़ों को एक साथ हाँडी में रखें और शरावसम्पुट कर कपड़मिट्टी करें तथा कुक्कुटपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर अब इस मसि का खरल में मर्दन कर छनन्नी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस मसि (भस्म) से आवश्यकतानुसार १० से २० ग्राम लेकर एक खरल में अलसी तैल के साथ मर्दन कर लेप करने से श्वित्र कुष्ठ नष्ट हो जाता है। अथवा पूति कीट विशेष को अतसी लेप के साथ पीसकर लेप करने से श्वित्र नष्ट हो जाता है।

३९. सर्वणकर लेप (च.द.)

कुडवं वागुजीबीजं हरितालपलान्वितम्।
गवां मूत्रेण सम्पिष्य लेपाच्छ्वित्रनाशनम्॥४६॥

बाकुचीबीजचूर्ण १९० ग्राम तथा हरताल ५० ग्राम लें। एक खरल में दोनों का एक साथ मर्दन करें और गोमूत्र के साथ ३ घण्टे खूब मर्दन कर श्वित्रकुष्ठ पर लेप करने से श्वित्र नष्ट हो जाता है।

४०. अवल्गुजादिगुटिका (च.द.)

क्षारे सुदग्धे गजलिण्डजे च
गजस्य मूत्रेण बहुस्रुते च।
द्रोणप्रमाणं दशभागयुक्तं
दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजस्य॥४७॥
एतद्यदा चिक्कणतामुपैति
तदा सुसिद्धां गुडिकां प्रकुर्यात्।
श्वित्रं प्रलिम्पेदथ तेन घृष्टं
तदा व्रजत्याशु सवर्णभावम्॥४८॥

हाथी की लीद (पुरीष) १०० किलो, हाथी का मूत्र १३ लीटर तथा बाकुचीचूर्ण लें। हाथी की लीद को सुखाकर बड़े लौहकड़ाह में अच्छी तरह जला लें। अब उस लीद के जले भाग को १२ किलो लेकर उसे छनन्नी से छान लें तथा १३ लीटर हाथी के मूत्र में घोलकर २१ बार कपड़े से छान लें। इसके बाद २४ घण्टे तक एक बड़े पात्र में इस मूत्र घोल को निथरने के लिए छोड़ दें। दूसरे दिन ऊपर का कज्जल द्रव निकाल लें। इसे स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में रखें। १२ किलो हाथी की लीद

की राख का दशमांश बाकुचीचूर्ण (अर्थात् १२०० ग्राम बाकुचीचूर्ण) मिलाकर कज्जलमूत्र घोल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब हस्तिमूत्र सूख जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतारें और औषधि को ट्रे में रखें। यदि अभी ढीला हो तो धूप में और सुखा लें तथा १-१ ग्राम की मात्रा में वटी बना लें। सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस गुटिका को पानी के साथ घिसकर प्रतिदिनि श्वित्र स्थान पर लेप करने से श्वित्र नष्ट हो जाता है। कुछ दिनों के प्रयोग के बाद वह श्वित्र स्थान शरीर के अन्य स्थान के चर्म के जैसा सवर्णकर हो जाता है।

४१. श्वेतजयन्तीमूलचूर्ण (च.द.)

श्वेतजयन्तीमूलं पीतं पिष्टञ्च गव्यपयसैव।
श्वित्रं निहन्ति नियतं रविवारे वैद्यनाथाज्ञा ॥४९॥

श्वेतफूल वाले जयन्तीमूल की त्वचा १२ ग्राम को गोदुग्ध के साथ सिल पर पीसकर वस्त्रपूत कर रविवार को 'सिद्ध वैद्यनाथ' की आज्ञा से पीने तथा श्वित्र स्थान पर लेप करने से श्वित्र निश्चित ही ठीक हो जाता है।

४२. गुञ्जाफलादिलेप (रसेन्द्रचिन्तामणि)

गुञ्जाफलाग्निचूर्णन्तु लेपितं श्वेतकुष्ठनुत्।
शिलाऽपामार्गभस्मापि लिप्त्वा श्वित्रं विनाशयेत् ॥४९

(१) गुञ्जा (रत्ती=करजनी) का सूक्ष्म चूर्ण १० ग्राम तथा चित्रकमूलचूर्ण १० ग्राम दोनों को गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से श्वित्रकुष्ठ नष्ट हो जाता है। अथवा—

(२) मनःशिला और अपामार्गपञ्चाङ्गभस्म समभाग लें। गोमूत्र के साथ सिल पर पीसकर लेप करने से श्वित्र नष्ट हो जाता है।

४३. ओष्ठ श्वित्रनाशनार्थलेप (चि.म.)

मुखे श्वेते च सञ्जाते कुर्याच्चेमां प्रतिक्रियाम्।
गन्धकं चित्रकासीसं हरितालं फलत्रयम्।
मुखे लिम्पेद्दिनैकेन वर्णनाशो भविष्यति ॥५१॥

१. गन्धक, २. चित्रकमूलचूर्ण, ३. कासीस, ४. हरताल, ५. आमलाचूर्ण, ६. हरीतकीचूर्ण और ७. बहेड़ाचूर्ण (समभाग) लें। एक खरल में पहले हरताल का महीन एवं निश्चन्द्र चूर्ण कर लें। ततः उसी खरल में गन्धक एवं कासीस मिलाकर ३ घण्टे तक मर्दन करें। तदन्तर चित्रक तथा त्रिफलाचूर्ण मिलाकर छननी से पुनः छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार ५ से १० ग्राम जल के साथ खरल में पीसकर ओष्ठों पर लेप करें। प्रतिदिन १ महीने तक लेप करें तो ओष्ठ श्वित्र नष्ट हो जाता है। यों तो १ बार के लेप ही से वर्णनाश अर्थात् सफेदी में कमी आ जाती है।

४४. धात्र्यादि क्वाथ-१ (च.द.)

धात्रीखदिरयोः क्वाथं पीत्वा च मधुसंयुतम्।
शङ्खकुन्देन्दुधवलं जयेच्छ्वित्रं न संशयः॥५२॥

आमलाफल और खदिरत्वक् को समभाग में लेकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ को २५ ग्राम लें और १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें तथा एक बार में ५० मि.ली. क्वाथ में १० ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से शंख, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा जैसा श्वेतवर्ण का श्वित्र भी कुछ दिनों में निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

४५. धात्र्यादि क्वाथ-२ (च.द.)

धात्रीखदिरयोः क्वाथमवल्गुजरजोऽन्वितम्।
पीत्वा शङ्खेन्दुकुन्दाभं हन्ति श्वित्रं न संशयः॥५३॥

आमलाफल और खदिरत्वक् समभाग में लेकर यवकुट कर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। ५०-५० मि.ली. प्रातः-सायं कर उसमें १-१ ग्राम बाकुचीचूर्ण मिलाकर कुछ दिन पीने से शंख, कुन्दपुष्प एवं चन्द्रमा जैसा श्वेत श्वित्र निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

४६. सोमराजीप्रयोगौ (च.द.)

तीव्रेण कुष्ठेन परीतदेहो
यः सोमराजीं नियमेन खादेत्।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां
स सोमराजीं वपुषाऽतिशेते ॥५४॥

भयंकर कुष्ठ से पीड़ित जो व्यक्ति १ वर्ष तक नियमित रूप से प्रतिदिन प्रातः-सायं सोमराजी (बाकुची) बीजचूर्ण २ ग्राम और काले तिल का चूर्ण २ ग्राम का जल के साथ सेवन करता है तो वह निश्चित ही कुष्ठरोग से मुक्त होकर चन्द्रमा की तरह कान्तिवान् हो जाता है।

४७. बाकुचीचूर्ण (च.द.)

घर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वागुजीं पिबेत्।
क्षीरभोजी च सप्ताहात्कुष्ठी कुष्ठं व्यपोहति ॥५५॥

कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्ति कुछ देर (१ घण्टा) तक धूप में बैठकर ३-३ ग्राम बाकुजीचूर्ण का जल के साथ प्रातः-सायं सेवन करता है; साथ ही केवल क्षीर (दूध) का ही १ सप्ताह तक सेवन करता है तो उसका कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है।

४८. अवल्गुजचूर्ण (च.द.)

अवल्गुजबीजकर्षं पीत्वा कोष्णेन वारिणा।
भोजनं सर्पिषा कार्यं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥५६॥

यदि कुष्ठ रोग से पीडित व्यक्ति (प्रातः-सायं) बाकुचीचूर्ण ६-६ ग्राम गरम पानी से सेवन करे तो कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है। घृत बहुल तथा नमक रहित भोजन करना चाहिए।

४९. गुडूचीस्वरस प्रयोग (च.द.)

छिन्नायाः स्वरसो वाऽपि सेव्यमानो यथाबलम् ।
जीर्णे घृतेन भुञ्जीत मुद्गयूषौदनेन च ॥
अपि पूतिशरीरोऽपि दिव्यरूपी भवेन्नरः॥५७॥

गुडूचीस्वरस १५ से २५ मि.ली. (यथाबल) प्रतिदिन प्रातः-सायं सेवन करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है। दुर्गन्ध युक्त शरीर होने पर भी दिव्य शरीर वाला हो जाता है। भोजन में मूँग की दाल और भात पर्याप्त घृत मिलाकर सेवन करना चाहिए तथा नमक का त्याग करना चाहिए।

५०. अभयारिष्टादिचूर्ण (च.द.)

यः खादेदभयारिष्टमरिष्टामलकानि वा ।
स जयेत्सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न संशयः॥५८॥

कुष्ठरोग से पीड़ित जो व्यक्ति हरीतकी एवं निम्बत्वक् (समभाग) का चूर्ण ३-३ ग्राम प्रातः-सायं ताजा जल से प्रति दिन सेवन करना है। अथवा—निम्बत्वक्चूर्ण तथा आमलकी चूर्ण (समभाग) को मिलाकर ३-३ ग्राम पानी से सेवन करता है तो उसका कुष्ठरोग १ महीना में नष्ट हो जाता है।

५१. चालमोगरातैल प्रयोग

कुष्ठवैरिभवं तैलं कुष्ठघ्नं चर्मदोषनुत् ।
तन्मज्जा च मधूत्थेन लिप्तं गन्धाश्मना तथा ।
कुष्ठं सर्वविधञ्चैव नाशं याति न संशयः॥५९॥

चालमोगरातैल कुष्ठघ्न एवं चर्मदोष नाशक है। चालमोगराफल की मज्जा, मोम और गन्धक तीनों समभाग मिलाकर खरल में मर्दन कर लेप करने से सभी तरह के कुष्ठ रोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

५२. गोमूत्राभया प्रयोग

कुष्ठानां विनिवृत्तौ च गोमूत्रं परमौषधम् ।
अभयासहितं तद्धि ध्रुवं सिद्धिप्रदं मतम् ॥६०॥

कुष्ठरोग को नाश करने के लिए गोमूत्र परमौषधि है। यदि १०० मि.ली. गोमूत्र ३-४ ग्राम हरीतकीचूर्ण मिलाकर प्रतिदिन पिलाया जाय तो कहना ही क्या है। अर्थात निश्चित ही कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है।

५३. कुष्ठघ्नतैलादि प्रयोग

दिग्बिन्दुप्रमितं पीतं तैलं कुष्ठघ्नसम्भवम् ।
सुधोदकेन कुष्ठघ्नं त्रिंशद्बिन्दुमितेन हि ॥६१॥

चालमोगरातैल (कुष्ठघ्नतैल) १० बूँद और चूर्णोदक ३० बूँद दोनों मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है।

५४. आरग्वधादिक्वाथ

आरग्वधो धातकिकर्णिकार-
धवार्जुनैः सर्जककिंशुकानाम् ।
कदम्बनिम्बौ कुटजाटरूषौ
तथैव युक्ता खदिरेण मूर्वा ॥६२॥
मूलानि चैषामुपहृत्य सम्य-
गष्टावशेषः क्वथितः कषायः।
घृतेन तुल्यं प्रतिमानमस्य
निहन्ति सर्वाणि शरीरजानि ॥
कुष्ठानि सर्वाणि विसर्पदद्रु-
विचर्चिका हन्ति नरस्य शीघ्रम् ॥६३॥

१. अमलतासपत्र , २. धातकीपुष्प, ३. कनेरमूलत्वक्, ४. अर्जुनत्वक्, ५. शालत्वक्, ६. पलाशत्वक्, ७ कदम्बत्वक्, ८. निम्बत्वक्, ९. कुटजत्वक्, १०. वासा-पञ्चाङ्ग, ११. खदिरत्वक् और १२. मूर्वामूल (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों का यवकुट चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट चूर्ण को २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष होने पर छानकर ५० मि.ली क्वाथ में १२ ग्राम घी मिलाकर पीने से सभी प्रकार के कुष्ठ, विसर्प, दद्रु और विचर्चिका शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

५५. मञ्जिष्ठादिक्वाथ (लघु) (भा.प्र.)

मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारुनिशाऽभया ।
निम्बश्चैव कृतः क्वाथः सर्वकुष्ठं विनाशयेत् ॥६४॥
वातरक्तं तथा कण्डूं पामानं रक्तमण्डलम् ।
दद्रुं विसर्पं विस्फोटं पानाभ्यासेन नाशयेत् ॥६५॥

१. मंजीठ, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा, ५. कुटकी, ६. वच, ७. दारुहल्दी, ८. हरीतकी तथा ९. निम्बत्वक् (समभाग) लें। इन्हे यवकुटचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुटचूर्ण लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छानकर पिलाने से वातरक्त, कण्डू, पामा, रक्तमण्डल, दद्रु, विसर्प और विस्फोट रोग नष्ट हो जाते हैं।

५६. मञ्जिष्ठादिक्वाथ (मध्यम) (भा.प्र.)

मञ्जिष्ठा वाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमर्दकः ।
हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥६६॥
बला नागबला यष्टिमधुकं क्षुरकोऽपि च ।
पटोलस्य लतोशीरं गुडूची रक्तचन्दनम् ॥६७॥

मञ्जिष्ठादिमध्यक्वाथः कुष्ठानां नाशनः परः ।
वातरक्तस्य संहर्त्ता कण्डमण्डलनाशनः ॥६८॥

१. मंजीठ, २. बाकुचीबीज, ३. चक्रमर्दबीज, ४. निम्बत्वक्, ५. हरीतकी, ६. हल्दी, ७. आमला, ८. वासापञ्चाङ्ग, ९. शतावरी, १०. बलामूल, ११. नागबलामूल १२. मुलेठी, १३. इक्षुरक (तालमखाना), १४. परवल की लता, १५. खस, १६. गुडूची और १७. रक्तचन्दन (समभाग) लें। इनको एक साथ मिलाकर यवकुटचूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुटचूर्ण में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर कुष्ठ या अन्य चर्म रोगी को पिलाने से कुष्ठ एवं रक्तविकाररोग नष्ट हो जाता है।

५७. मञ्जिष्ठादिक्वाथ (बृहत्) (भा.प्र.)

मञ्जिष्ठाकुटजामृताघनवचाशुण्ठीहरिद्राद्वयं
क्षुद्रारिष्टपटोलतिक्तकटुकाभार्गीविडङ्गाम्लिकम् ॥
मूर्वादारुकलिङ्गभृङ्गमगधात्रायन्तिपाठावरी-
गायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिम्बासनारग्वधाः ॥६९॥
श्यामावल्गुजचन्दनं वरुणकं दन्तीकशाखोटकं
वासापर्पटशारिवाप्रतिविषानन्ताविशालाजलम् ।
मञ्जिष्ठाप्रथमं कषायमिति यः संसेवते तस्य तु
त्वग्दोषास्त्वचिरेण यान्ति विलयं कुष्ठानि चाष्टादश ॥
नाशं गच्छति वातरक्तमखिला नश्यन्ति रक्तामया
वीसर्पस्त्वचि शून्यता नयनजा रोगाः प्रशाम्यन्ति च ॥

१. मंजीठ, २. कुटजत्वक्, ३. गुडूची, ४. नागरमोथा, ५. वच, ६. सोंठ, ७. हल्दी. ८. दारुहल्दी, ९. कण्टकारी, १०. निम्बत्वक्, ११. परवललता. १२ कटुकी, १३. भारङ्गीत्वक्, १४. वायविडङ्ग, १५. इमलीत्वक्, १६. मूर्वा, १७. देवदारु, १८. इन्द्रयव, १९. भृङ्गराज, २० पीपर, २१. त्रायमाण, २२. पाठा, २३. शतावरी, २४. खदिरत्वक्, २५. आमला, २६. हरीतकी, २७. बहेड़ा, २८. चिरायता, २९. महानिम्ब (बकायन), ३०. विजयसारकाष्ठ, ३१. आरग्वधफलमज्जा, ३२. निशोथ, ३३. बाकुचीबीज, ३४. रक्तचन्दन, ३५. वरुणत्वक्, ३६. दन्तीमूल, ३७. सिहोड़ा, ३८. वासापञ्चाङ्ग, ३९. पित्तपापड़ा, ४०. कृष्णअनन्तमूल, ४१. अतीस, ४२. श्वेत अनन्तमूल, ४३. इन्द्रायणमूल और ४४. सुगन्धबाला (समभाग) लें। इन्हें एक साथ यवकुटचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुटचूर्ण में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर कपड़ा से छान लें। इस क्वाथ को पीने से त्वग् दोष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। १८ प्रकार के सभी कुष्ठ इसके प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं। सभी प्रकार के वातरक्त, सभी प्रकार के रक्तविकार, विसर्प, त्वचा की शून्यता और नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

५८. आटरूषादिक्वाथ ( )

आटरूषामृतैरण्डावल्गुजं च हरीतकी ।
क्वाथ एषां हरेत्कुष्ठं वातरक्तञ्च दारुणम् ॥७१॥

१. वासापञ्चाङ्ग, २. गुडूची, ३. एरण्डमूलत्वक्, ४. बाकुची तथा ५. हरीतकी (समभाग) लें। इन्हें एक साथ यवकुटचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुटचूर्ण को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर पिलाने से सभी प्रकार के कुष्ठ और भयंकर वातरक्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

५९. त्रिफलादिनवकषाय (च.द.)

त्रिफलानिम्बपटोलं मञ्जिष्ठा रोहिणी वचा रजनी ।
एक कषायोऽभ्यस्तो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥७२॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. निम्बत्वक्, ५. परवललता, ६. मंजीठ, ७. कुटकी, ८. वच और ९. हल्दी समभाग लें । इन्हें एक साथ यवकुटचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुटचूर्ण से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश रहने पर छानकर पिलाने से कफपित्तज कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

६१. बिभीतकादिक्वाथ (भा.प्र)

बिभीतकत्वङ्मलयूजटानां
क्वाथेन पीतं गुडसंयुतेन ।
अवल्गुजं बीजमपाकरोति
श्वित्राणि कृच्छ्राण्यपि पुण्डरीकम् ॥७३॥

बिभीतकफलत्वक् और कठगूलरमूलत्वक् (समभाग) लें। इन दोनों को यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें तथा चतुर्थांशावशेष रहने पर छानकर २ ग्राम बाकुचीचूर्ण मिला-कर प्रतिदिन पिलाने से श्वित्र एवं पुण्डरीककुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

६१. पञ्चनिम्बचूर्ण

निम्बस्य पत्रं मूलानि सत्वक् पुष्पफलानि च ।
चूर्णितानि घृतक्षौद्रसंयुतानि दिने दिने ॥७४॥
लिह्यात् पिबेद्वा मूत्रेण संयुक्तान्युदकेन वा ।
मदिरामलतोयेन पयसा वा यथाबलम् ॥७५॥
भुञ्जीत घृतयूषाद्यैः शाल्यन्नं पयसाऽपि वा ।
सर्वकुष्ठविसर्पार्शोनाडीदुष्टव्रणानपि ॥७६॥
कामलाञ्च गरानन्यांस्तथा पित्तकफास्रजान् ।
संवत्सरप्रयोगेण सर्ववर्ज्यविवर्जितः ॥
जयत्येतत्पञ्चनिम्बं रसायनमनुत्तमम् ॥७७॥

१. निम्बपत्र, २. निम्बमूल, ३. निम्बपुष्प, ४. निम्बफल तथा ५. निम्बत्वक् (समभाग) लें। इन्हें एक साथ कूट-पीसकर

सूक्ष्म चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस पञ्चनिम्ब चूर्ण को २ से ३ ग्राम की मात्रा विषम मात्रा में घृत एवं मधु मिलाकर सेवन करें तथा ऊपर से गोमूत्र ५० मि.ली. या जल या मद्य या आसवारिष्ट (सारिवाद्यासव या खदिरारिष्ट) या दूध बलानुसार सेवन करें। पथ्य में घृत युक्त मुद्गयूष, शालिचावल का भात या दूध-भात का सेवन करें। इस औषधि के सेवन से सभी प्रकार के कुष्ठ, विसर्प, अर्श, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, कामला, गरविष तथा अन्य पित्त एवं कफ और रक्तविकारगतरोग नष्ट हो जाते हैं। एक वर्ष तक इस औषधि के निरन्तर प्रयोग से तथा पथ्यपूर्वक आहार-विहार करने तथा अपथ्य का त्याग करने से यह श्रेष्ठ रसायन का फल देता है।

६२. पञ्चनिम्बादिचूर्ण बृहत् (च.द.)

पुष्पकाले च पुष्पाणि फलकाले फलानि च।
सञ्चूर्ण्य पिचुमर्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥७८॥
द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत्।
त्रिफला त्र्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्करागिनकाः॥७९॥
विडङ्गसारवाराहीलौहचूर्णामृताः समाः।
हरिद्राद्वयावल्गुजव्याधिघाताः सशर्कराः॥८०॥
कुष्ठेन्द्रयवपाठाश्च कृत्वा चूर्णं सुसंयुतम्।
खदिरासननिम्बानां घनक्वाथेन भावयेत् ॥८१॥
सप्तधा पञ्चनिम्बञ्च मार्कवस्वरसेन च।
स्निग्धशुद्धतनुर्धीमान् गोलयेच्च शुभे दिने ॥८२॥
मधुना तिक्तहविषा खदिरासनवारिणा।
सेव्यमुष्णाम्बुना वाऽपि कोलवृद्ध्या पलं पिबेत्।
जीर्णे च भोजनं कार्यं स्निग्धं लघु हितञ्च यत् ॥८३॥
विचर्चिकोदुम्बरपुण्डरीक-
कापालदद्रूकिटिमालसादि ।
शतारुविस्फोटविसर्पपामाः
कुष्ठप्रकोपं विविधं किलासम् ॥८४॥
भगन्दरं श्लीपदवातरक्तं
जडान्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान् ।
सर्वप्रमेहान् प्रदरांश्च सर्वान्
दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥८५॥
स्थूलोदरः सिंहकृशोदरश्च
सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात्।
समोपयोगादपि ये दशन्ति
सर्पादयो घ्नन्ति विनाशमाशु ॥
यावच्चिरं व्याधिजराविमुक्तः
शुभेरतश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥८६॥

१. निम्बपुष्प २ भाग, २. निम्बफलमज्जा २ भाग, ३. निम्बत्वक् २ भाग, ४. निम्बमूलत्वक् २ भाग ५. निम्बपत्र २ भाग, ६. त्रिफला १ भाग, ७. त्रिकटु १ भाग, ८. ब्राह्मी १ भाग, ९. गोक्षुर १ भाग, १०. शुद्ध भिलावा १ भाग, ११. चित्रक १ भाग, १२. वायविडङ्गतण्डुल १ भाग, १३. वाराहीकन्द १ भाग, १४. लौहभस्म १ भाग, १५. गुडूची १ भाग, १६. हल्दी १ भाग, १७. दारुहल्दी १ भाग, १८. बाकुची १ भाग, १९. अमलतासफलमज्जा १ भाग, २० चीनी १ भाग, २१. कूठ १ भाग, २२. इन्द्रयव १ भाग तथा २३. पाठा १ भाग लें। इन २३ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और बड़े खरल में खदिरक्वाथ, विजयसारक्वाथ तथा निम्बत्वक् क्वाथ (अष्टमांशावशेष क्वाथ) की पृथक्-पृथक् ७-७ भावना दें। इसी प्रकार भृङ्गराजस्वरस की ७ भावना दें। इसके बाद इस पञ्चनिम्ब-चूर्ण को धूप में अच्छी तरह सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। तत्पश्चात् स्नेहन-स्वेदन कराकर रोगी का शरीर वमन-विरेचनादि पञ्चकर्मों से शुद्ध कर लें। संसर्जन क्रम के बाद शुभ दिन एवं शुभ नक्षत्र में इष्टदेव का स्मरण कर इस 'पञ्चनिम्ब चूर्ण' को ३ ग्राम से ६ ग्राम की मात्रा में अथवा बढ़ी मात्रा में मधु या तिक्तषट्पल या पञ्चतिक्तघृत या खदिरक्वाथ या विजयसार क्वाथ या गरम पानी से कोल (६ ग्राम) मात्रा या इससे भी बढ़ी मात्रा में १ वर्ष तक पथ्य एवं सद् आहार-विहार करते हुए सेवन करे तथा भोजन के जीर्ण होने पर लघु एवं पथ्यपूर्वक भोजन करना चाहिए। इस चूर्ण के सेवन से विचर्चिका, उदुम्बरकुष्ठ, पुण्डरीककुष्ठ, कपालकुष्ठ, दद्रु, किटिमकुष्ठ, अलस, शतारु, विस्फोट, विसर्प, कफप्रकोप, ३ प्रकार के किलास, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जन्मान्धता, नाडीव्रण, शिरोरोग, सभी प्रकार के प्रमेह, सभी प्रकार के प्रदररोग, दंष्ट्रविष, मूलकन्दादिविष, रोग नष्ट हो जाते हैं। मधु के साथ इस पञ्चनिम्बचूर्ण का प्रयोग करने से स्थूलोदर (बढ़े हुए पेट वाला) रोगी सिंह के समान कृशोदर हो जाता है। १ वर्ष पर्यन्त इस औषधि का सेवन करने पर रोगी को यदि सर्प काटे तो स्वयं सर्प ही मर जाता है। इस औषधि का सेवनकर्ता वृद्धावस्था से रहित होकर बहुत दिनों तक शुभ एवं चन्द्रमा की कान्ति से युक्त होकर जीवित रहता है। (समोपयोगात् = संवत्सरपर्यन्तोपयोगात्)।

६३. सप्तसमयोग (च.द.)

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लाश्च शर्कराः।
वृष्यः सप्तसमो मेध्यः कुष्ठहा कामचारिणः ॥८७॥

१. कृष्णतिलचूर्ण, २. गोघृत, ३. त्रिफलाचूर्ण, ४. मधु, ५. त्रिकटुचूर्ण, ६. शुद्ध भल्लातकचूर्ण और ७. चीनी (समभाग) लें। उपर्युक्त सात द्रव्यों को एक साथ मिलाकर खरल में अच्छी तरह से मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १ से २ ग्राम की मात्रा में गोदुग्ध के साथ सेवन करने से इसका प्रभाव मेध्य, वृष्य एवं कुष्ठरोग नाशक होता है।

रस-प्रयोग

६४. श्वेतारिरस (रसेन्द्रचिन्तामणि)

शुद्धं सूतं समं गन्धं त्रिफलां भृङ्गवागुजीम्।
भल्लातकं तिलं कृष्णं निम्बबीजं समं समम् ॥८८॥
मर्दयेद् भृङ्गजद्रावैः शोष्यं पेष्यं पुनः पुनः।
इत्थं कुर्युस्त्रिसप्ताहं रसः श्वेतारिको भवेत् ॥
मध्वाज्यैर्निष्कमात्रं तु खादेच्छ्वित्रं विनाशयेत् ॥८९॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. आमलाचूर्ण, ४. हरीतकीचूर्ण, ५. बहेड़ाचूर्ण, ६. भृङ्गराजचूर्ण, ७. बाकुचीचूर्ण, ८. शुद्ध भिलावा, ९. कालातिलचूर्ण और १० निम्बबीज मज्जाचूर्ण (समभाग) लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में अन्य सभी द्रव्यों के चूर्ण मिलाकर भृङ्गराजस्वरस की भावना देकर मर्दन करें। एक भावना सूखने के बाद पुनः-पुनः २१ भावना दें और ५०० मि.ग्रा. (४-४ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। आधुनिक काल में १ निष्क (२४ रत्ती = ३ ग्राम) की मात्रा अत्यधिक है। इसमें शुद्ध भिलावा है, अतः अधुना ४ रत्ती की मात्रा देना उचित होगा। इसे विषम मात्रा में मधु एवं घृत के साथ मिलाकर देना चाहिए। यह श्वेतारि रस 'यथा नाम तथा गुणः' के अनुरूप श्वेत कुष्ठ को नष्ट करता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—श्वेत कुष्ठ में। **अनुपान**—विषममात्रा में मधु एवं घृत से।

६५. तालकेश्वररस-१ (रसेन्द्रकल्पद्रुम)

कूष्माण्डत्रिफलातैलकन्याकाञ्जिकभावितम्।
तालकं तुल्यगन्धं स्यादर्द्धपारदमर्दितम् ॥९०॥
अजाक्षीरेण निम्बूककन्यातोयैर्दिनत्रयम्।
प्रत्येकं भावयेच्छुष्कं चक्रिकाकारतां गतम् ॥९१॥
विपचेद्धण्डिकामध्ये पलाशक्षारमध्यगम्।
यामान्द्वादश शीतेऽस्मिन्प्रयोज्यो रक्तिकामितः ॥९२॥
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि रोमविध्वंसनं तथा।
द्विविधं वातरक्तं च नाडीं दुष्टव्रणानि च ॥९३॥

पत्रताल १०० ग्राम, शुद्ध गन्धक १०० ग्राम तथा शुद्ध पारद ५० ग्राम लें।

भावना द्रव्य—१. कूष्माण्डफल, २. त्रिफला, ३. तिलतैल, ४. घृतकुमारी, ५. काञ्जी, ६. बकरी का दूध और ७. निम्बु लें। सर्वप्रथम एक खरल में पत्रताल को पीसकर कूष्माण्डस्वरस की ३ भावना दें। एक भावना सूखने पर दूसरी भावना दें। इसी प्रकार से त्रिफलाक्वाथ, तिलतैल, घृतकुमारीस्वरस और काञ्जी—प्रत्येक द्रव से पृथक्-पृथक् ३-३ भावना दें। सूखने पर उसमें गन्धक और पारद मिलाकर मर्दन करें और कज्जली बनावें। अब इस कज्जली में बकरीदूध, निम्बुस्वरस और कुमारीस्वरस की ३-३ भावना पृथक्-पृथक् दें। ततः इसकी टिकिया बनाकर सुखा लें। तदनन्तर मिट्टी की एक हाँडी में आधी हाँडी तक पलाशक्षार भरें। उस क्षार को हाथ से दबाकर उस पर उपर्युक्त ताल एवं पारद-गन्धक की टिकिया रखें। उस टिकिया पर पुनः पलाशक्षार भरें तथा हाँडी के मुख पर मिट्टी का शराव रखकर अच्छी तरह से कपड़मिट्टी करें। ततः चूल्हे पर चढ़ाकर ३६ घण्टे तक मृदु-मध्य-तीक्ष्णाग्नि से पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर कपड़मिट्टी हटाकर सावधानी से टिकिया निकालकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तालकेश्वररस को १२५ मि.ग्रा. (१ रत्ती) की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर चटाने से १८ प्रकार के सभी कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। केशों का पतन, दो प्रकार के वातरक्त (१. उत्तान, २. गम्भीर), नाडीव्रण और दुष्ट व्रण नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से अथवा गुडूचीरस भी इसमें मिलाया जा सकता है। **गन्धक**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्याव (कपोतवर्ण)। **स्वाद**—नीरस। **उपयोग**—कुष्ठों में, वातरक्त, नाडीव्रण तथा दुष्ट व्रण में।

६६. तालेश्वररस-२ (तालभस्म)

दद्रुघ्नबाणाङ्घ्रिरसं दत्त्वा तालं सुचूर्णितम्।
पुनः पुनश्च सम्मर्द्य शुष्कं कृत्वा पुटे दहेत् ॥९४॥
दृढस्थाल्यां धृतं क्षारं पलाशश्चाप्युपर्य्यधः।
ततो ज्वाला प्रदातव्या दिनरात्रे मृतं भवेत् ॥९५॥
शुक्लवर्णं यदा च स्यादग्नौ दत्ते न धूमकम्।
तदा ज्ञातं मृतं तालं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥९६॥
गलत्कुष्ठं वातरक्तं ताम्रवर्णञ्च मण्डलम्।
शीतपित्तमहादद्रुच्छुच्छुन्दरविनाशनम् ॥
पथ्यं मसूरं चणकं मुद्गसूपं यथेच्छया ॥९७॥

पत्रताल १०० ग्राम तथा पलाशभस्म ५ किलो लें। खरल में हरताल का मर्दन करें। ततः चक्रमर्द तथा शरपुंखास्वरस की पृथक्-पृथक् ३-३ भावना दें। चक्रिका बनाकर सुखावें। एक हाँडी में आधी हाँडी पलाशक्षार (राख) भरें। उसे हाथ से दबा दें, उसी पर उपर्युक्त सूखी टिकिया रखें। टिकिया के ऊपर से पुनः पलाशक्षार भरकर शराव से मुख बन्द कर कपड़मिट्टी करें और चूल्हे पर २४ घण्टे तक मृदु-मध्य-तीव्राग्नि से पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर सावधानी से टिकिया निकालें। खरल में पुनः चक्रमर्दमूलस्वरस की भावना दें, ततः शरपुंखामूलस्वरस की भावना देकर पुनः टिकिया बनावें और पूर्ववत् क्षारयन्त्र में पकावें। ३-४ बार पलाशक्षार के बीच पकाते-पकाते जब टिकिया श्वेत हो जाय तो उसकी अग्नि पर

डालकर परीक्षा करें। निर्धूम होने पर हरताल का भस्म हो गया है, ऐसा समझकर इसे खरल में पीसें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ६० मि. ग्रा. की मात्रा में घृत के साथ खिलाने से १८ प्रकार के कुष्ठ, गलित कुष्ठ, वातरक्त, ताम्रवर्ण के मण्डलकुष्ठ, शीतपित्त, महादद्रु, और छुछुन्दरिकारोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधि के सेवन काल में पथ्य रूप में मसूर, चना मुद्ग सूप का यथेच्छ मात्रा में सेवन करना चाहिए।

मात्रा—६० से १२५ मि.ली.। **अनुपान**—मधु एवं गुडूची स्वरस से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्वेत। **स्वाद**—नीरस। **उपयोग**—कुष्ठ एवं वातरक्त में।

६७. तालकेश्वररस-३

सम्मर्द्य तालकं शुष्कं वंशपत्राख्यमुच्चकैः।
कूष्माण्डनीरे सम्भाव्य त्रिदिनं शोषयेत्पुनः ॥९८॥
घृतकन्याद्रवैर्भूयो भावयेच्च दिनत्रयम्।
सम्मर्द्य काञ्जिकेनैव दध्नाऽम्लेन विमर्दयेत् ॥९९॥
सम्मर्द्य चूर्णं सलिले रसे पौनर्नवे पुनः।
त्रिदिनं मर्दयित्वा तु कारयेत्खटिकाकृतिम् ॥१००॥
स्थाल्यां दृढतरायान्तु पलाशक्षारसञ्चयम्।
उपर्यधस्तालकस्य क्षारं दत्त्वा शरावकैः॥१०१॥
पिधाय लेपयेद्यत्नात्पूरयेत्क्षारसञ्चयम्।
पुना रुद्धं शरावेण लेपयेत्तद् दृढं ततः ॥१०२॥
द्वात्रिंशद्यामपर्यन्तं वह्निज्वाला प्रदीयते।
एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् ॥१०३॥
द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं बालुकायन्त्रगं पचेत्।
अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः॥१०४॥
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि वातशोणितनाशनः।
रक्तमण्डलमत्युग्रं स्फुटितं गलितं तथा ॥१०५॥
बहुरूपं सर्वजातं नाशयेदविकल्पतः।
दुष्टव्रणञ्च वीसर्पं त्वग्दोषञ्च विनाशयेत् ॥
दृष्टो वारसहस्रञ्च रोगवारणकेशरी ॥१०६॥

१. कूष्माण्डफल, २. घृतकुमारी, ३. काञ्जी, ४. अम्लमस्तु, ५. चूर्णोदक तथा ६. पुनर्नवामूल लें। एक खरल में हरतालपत्र का चूर्ण कर कूष्माण्डफलस्वरस की ३ भावना (तीन दिनों तक) दें। ततः घृतकुमारीस्वरस की ३ भावना (तीन दिनों तक मर्दन) दें। इसी प्रकार काञ्जी, अम्ल मस्तु, चूर्णोदक और पुनर्नवामूल-स्वरस की भी ३-३ भावना (३-३ दिनों तक मर्दन) दें। इस के बाद इसकी टिकिया बनाकर सुखा लें। अब १ हाँडी में पूर्ववत् आधी हाँडी तक पलाशक्षार रखकर हाथ से दबा दें और उसके ऊपर हरताल की टिकिया रखें। पुनः हरताल टिकिया पर पलाशक्षार रखकर शराव से हाँडी का मुख ढक कर कपड़मिट्टी करें और चूल्हे पर चढ़ाकर ९६ घण्टे तक मृदु, मध्य एवं तीव्राग्नि से पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सावधानी से हाँडी से अन्दर की टिकिया को निकालकर तौल लें तथा टिकिया के बराबर शुद्ध गन्धक और दोनों के बराबर ताम्रभस्म मिलाकर कुमारीस्वरस की भावना देकर एक गोला बनाकर सुखावें और गोले को रेशमी वस्त्र में बाँधकर बालुकायन्त्र में २४ घण्टे तक पुनः पाक करें। स्वाङ्गशीतल होने पर बालुकायन्त्र से पोटली निकाल लें। कपड़ा हटाकर औषधि को पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'तालकेश्वररस' परम दुर्लभ है। इसकी ६० से १२५ मि.ग्रा. की मात्रा मधु के साथ सेवन करने से १८ प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त, अतिभयंकर रक्तमण्डल, स्फुटित एवं गलित कुष्ठ, अनेक तरह से विकृत कुष्ठ, दुष्टव्रण, विसर्प तथा त्वग् विकार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। हजारों बार इस औषधि का सफल प्रयोग देखा गया है। जैसे सिंह हाथी को समाप्त कर देता है उसी प्रकार यह औषधि सभी कुष्ठों का नाश कर देती है।

मात्रा—६० से १२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु तथा गुडूची आदि कुष्ठ द्रव्य के रस से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कपोतवर्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—१८ प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त एवं विसर्प में।

६८. महातालेश्वररस (र.सा.सं.)

तालताप्यशिलासूतं शुद्धटङ्कणसैन्धवम्।
समं सञ्चूर्णयेत् खल्ले सूताद् द्विगुणगन्धकम् ॥१०७॥
गन्धाद् द्विगुणलौहञ्च जम्बीराम्लेन मर्दयेत्।
ततो लघुपुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥१०८॥
त्रिंशदंशं विषञ्चात्र क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत्।
महिषाज्येन सम्मिश्रं गुञ्जैकं भक्षयेत् सदा ॥१०९॥
मध्वाज्यैर्वागुजीचूर्णं माषमात्रं लिहेदनु।
सर्वान् कुष्ठान् निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः॥११०॥

१. शुद्ध तालपत्र, २. स्वर्णमाक्षिकभस्म, ३. शुद्ध मैनसिल, ४. शुद्ध पारद, ५. शुद्ध टङ्कण, ६. सैन्धवलवण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग; ७. शुद्ध गन्धक २ भाग, ८. लौह भस्म ४ भाग और ९. शुद्ध वत्सनाभविष ३०वाँ भाग लें। सर्वप्रथम १ खरल में पारद एवं गन्धक मिलाकर अच्छी कज्जली बनावें तथा कज्जली में शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल आदि द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें और जम्बीरीनिम्बुस्वरस से मर्दन कर टिकिया बनाकर शरावसम्पुट कर लघु पुट में पाक करें। स्वाङ्ग शीतल होने पर सम्पुट खोलकर औषधि निकालकर खरल में मर्दन करें तथा इसे तौल कर इस औषधि का ३०वाँ भाग शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। भैस के घी के साथ इस महातालेश्वररस को १२५ मि.ग्रा. (१ रत्ती) की मात्रा में सेवन करें। बाद में बाकुचीचूर्ण १ ग्राम में असमान मात्रा में मधु और घृत मिलाकर चाटें। इसके सेवन से सभी प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा ६० से १२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—भैंस के घृत से तथा बाद में बाकुचीचूर्ण मधु-घी से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—किञ्चिदम्ल। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठों में।

६९. आरोग्यवर्धनीवटी (र.र.स.)

रसगन्धकलोहाभ्रशुल्बभस्मसमांशकम् ।
त्रिफला द्विगुणा प्रोक्ता त्रिगुणञ्च शिलाजतु ॥१११॥
चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलं च तत्समम् ।
तिक्ता सर्व समा ज्ञेया सर्वं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ॥११२॥
निम्बवृक्षदलाम्भोभिर्मर्दयेद्द्विदिनावधि ।
ततश्च वटिका कार्या राजकोलफलोपमा ॥११३॥
मण्डलं सेविता सैषा हन्ति कुष्ठान्यशेषतः ।
वातपित्तकफोद्भूताञ्ज्वरान्नानाप्रकारजान् ॥११४॥
देया पञ्चदिने जाते ज्वरे रोगे वटी शुभा ।
पाचनी दीपनी पथ्या हृद्या मेदोविनाशिनी ॥११५॥
मलशुद्धिकरी नित्यं दुर्धर्षक्षुत्प्रवर्तिनी ।
बहुनाम किमुक्तेन सर्वरोगेषु शस्यते ॥११६॥
आरोग्यवर्धनी नाम्ना गुटिकेयं प्रकीर्त्तिता ।
सर्वरोगप्रशमनी श्रीनागार्जुनयोगिना ॥११७॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. लौह भस्म १ भाग, ४. अभ्रकभस्म १ भाग, ५. ताम्रभस्म १ भाग, ६. त्रिफलाचूर्ण २ भाग, ७. शुद्ध शिलाजीत ३ भाग, ८ शुद्ध गुग्गुलु ४ भाग, ९ चित्रकमूलचूर्ण ४ भाग और १० कुटकीचूर्ण १८ भाग लें।

भावना—निम्बपत्रस्वरस से २ दिनों तक भावना देकर मर्दन।

एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः सभी भस्मों और काष्ठौषधि चूर्ण को मिलावें। एक कड़ाही में थोड़ा जल देकर गुग्गुलु को पिघलावें। गुग्गुलु पिघलने पर उसमें शिलाजीत डालकर भी पिघलावें। जब दोनों पिघल जायें तो मिश्रित चूर्ण में अच्छी तरह मिलावें। पुनः निम्बपत्रस्वरस की भावना दें। दूसरे दिन भी निम्बपत्र की पुनः भावना देकर मर्दन करें और राजकोल[1] (बड़े बेर $\frac{1}{2}$ तोला = ६ ग्रा.) फल जितनी बड़ी वटी बनाकर उसे सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसका सेवन मधु एवं कुष्ठघ्न द्रव्य से करना चाहिए। इसके सेवन से मण्डलकुष्ठ तथा अन्य सभी १८ प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रयोग से वातज ज्वर, पित्तज ज्वर, कफज ज्वर, द्वन्द्वज ज्वर तथा सन्निपातज्वर नष्ट हो जाता है। ज्वर प्रारम्भ होने के पाँचवें दिन से इस वटी को देना चाहिए। यह 'आरोग्यवर्धनीवटी' पाचनी, दीपनी, पथ्य तथा हृद्य है, मेदो विनाशक है। शरीर से मल निकालकर शरीर शुद्ध करती है, भूख बढ़ाती है। इसके गुण के विषय में अधिक क्या कहा जाय। यह 'आरोग्यवर्धनीवटी' रोगानुसार अनुपान से देने पर सभी रोगों को नष्ट करती है। 'आरोग्यवर्धनीवटी' नाम की इस औषधि को महान् सिद्ध आचार्य योगी नागार्जुन ने निर्माण किया है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम। **अनुपान**—मधु या रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी तरह के कुष्ठों एवं ज्वरों में तथा अनुपानभेद से सभी रोगों मे लाभदायक है।

आरोग्यवर्धनी विमर्श

रसरत्नसमुच्चय में एक ही आरोग्यवर्धनीवटी का उल्लेख है। किन्तु अनेक व्याख्याकारों ने इसकी व्याख्या भी अलग-अलग ढंग से की है। उदाहरणार्थ—गुजरात सरकार के स्वास्थ्य मन्त्रालय, अहमदाबाद द्वारा १९६६ ई. में प्रकाशित आयुर्वेदिक 'भेषजसंहिता' (आयुर्वेदिक फार्माकोपिया) में पृष्ठ २४ पर यही पाठ है जो रसरत्नसमुच्चय का है। किन्तु उसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है—

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, लौहभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग, त्रिफलाचूर्ण १० भाग, शुद्ध शिलाजीत १५ भाग, शुद्ध गुग्गुलु २० भाग, चित्रकमूलचूर्ण २० भाग तथा कुटकीचूर्ण ७० भाग दिया गया है। गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय तथा आयुर्वेदविकास मण्डल, फार्मेसी, जूनागढ़ और गुजरात की अन्य आयुर्वेदिक फार्मेसियाँ भी इसी ग्रन्थ के आधार पर ही यह औषधि बनाती है। अस्तु। भिन्नता 'त्रिफला द्विगुणा प्रोक्ता' से प्रारम्भ हुई है। ऊपर के पारद, गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म एवं ताम्रभस्म के लिए 'समांशकम्' शब्द लिखा है। सभी पक्षों ने इन पाँचों द्रव्यों को १-१ भाग लिया है। किन्तु 'त्रिफला द्विगुणा प्रोक्ता' की व्याख्या में—उपर्युक्त पाँचों द्रव्यों का दुगुना लिया। अब १५ किलो हो गया। पुनः पाँचों द्रव्यों को इकाई मानकर ३ गुना शिलाजीत, ४ गुना गुग्गुलु तथा ४ गुना चित्रकमूल चूर्ण लिया है। ये सभी द्रव्य मिलाकर ७० भाग होता है अतः कुटकीचूर्ण भी ७० भाग लिया। ऐसे यह आरोग्यवर्धनी वटी सस्ती होती है।

७०. उदयभास्कररस (रसे.चि.म.)

गन्धकेन हतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् ।
ऊषणं पञ्चभागं स्यादमृतञ्च द्विभागिकम् ॥११८॥
दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य योगतः।
गलिते स्फुटिते चैव विपुले मण्डले तथा ॥

१. रसरत्नसमुच्चयकर्ता आचार्य वाग्भट ने कहा है—"ततश्च वटिका कार्या राजकोलफलोपमा"। कुछ लोगों ने इसकी मात्रा में फेर-बदल किया है। यथा—रसयोगसागर में आचार्य पं. हरिप्रपन्न शर्मा जी ने 'क्षुद्रकोलफलोपमा' कहकर मात्रा चौथाई कर दी है। फिर भी १ ग्राम की मात्रा तो होनी ही चाहिए।

विचर्चिकादद्रुपामासर्वकुष्ठप्रशान्तये ॥११९॥

गन्धक से मारित ताम्रभस्म १० भाग लें। एक खरल में उपर्युक्त तीनों द्रव्यों को एक साथ अच्छी तरह से मिलाकर मर्दन करें और पुनः छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'उदयभास्कररस' कहते हैं। इसे १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में बाकुचीचूर्ण १ ग्राम तथा मधु मिलाकर खिलाने से गलित एवं स्फुटितकुष्ठ, भयंकर मण्डलकुष्ठ, विचर्चिका, दद्रु, पामा तथा अन्य सभी प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—बाकुचीचूर्ण एवं मधु या गुडूचीचूर्ण, चोपचीनीचूर्ण से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों में।

७१. रसमाणिक्य (रसे.चि.म)

तालकं वंशपत्राख्यं कूष्माण्डसलिले क्षिपेत्।
सप्तधा वा त्रिधा वाऽपि दध्नाऽम्लेन तथैव च ॥१२०॥
शोधयित्वा पुनः शुष्कं चूर्णयेत्तण्डुलाकृति।
ततः शरावके यन्त्रे स्थापयेत्कुशलो भिषक् ॥१२१॥
बदरीपत्रकल्केन लेपनं कारयेत्ततः।
अरुणाभमधः पात्रं तावज्ज्वाला प्रदीयते ॥१२२॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य माणिक्याभो भवेद्रसः।
घृतक्षौद्रेण सम्मर्द्य खादयेद्रक्तिकामितम् ॥१२३॥
सम्पूज्य देवदेवेशं कुष्ठरोगाद्विमुच्यते।
स्फुटितं गलितं कुष्ठं वातरक्तं भगन्दरम् ॥१२४॥
नाडीव्रणं व्रणं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम्।
नासास्यसम्भवान् रोगान् क्षतान् हन्यात्सुदारुणान्।
पुण्डरीकञ्च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा ॥१२५॥

वंशपत्रीहरताल १०० ग्राम, कूष्माण्डफलरस ५०० मि.ली. तथा खट्टादही का जल (मस्तु) २५० मि.ली. लें। हरताल को कूष्माण्डरस में ३ दिनों तक डुबोकर रखें। चौथे दिन हरताल को निकालकर मस्तु जल में ३ दिनों तक डुबोकर रखें। चौथे दिन निकालकर हरताल सुखा लें तथा टुकड़े (तण्डुलाकृति) करें। ततः दो शराव लेकर दोनों का मुख घिसकर बराबर कर लें। दोनों में बदरी पत्र कल्क का लेप करें। १ शराव में अंगुली घुसाने लायक छिद्र करें। बिना छिद्र वाले शराव में हरताल का तण्डुलाकृतिचूर्ण डालें और निर्धूम मृदु अग्नि पर रखें तथा ऊपर से सछिद्र शराव बराबर से ढक दें। पहले तो शराव छिद्र से पीत वर्ण का गन्धक का धुँआ निकलेगा ततः श्वेत धूम आता है। उस समय शराव के छिद्र से शलाका डालकर हरताल पिघलने की परीक्षा करें। यदि हरताल पिघला होगा तो शलाका में से पिघले हरताल से माणिक्य वर्ण का तार छोड़ता हुआ रक्तवर्ण का तरल पदार्थ निकलता है। ४-५ फुट लम्बा तार जैसा होने पर रसमाणिक्य तैयार हो गया समझें। ४-५ मिनट के बाद शराव को सावधानी से चूल्हे से नीचे उतार लें। शीतल होने पर शराव से 'रसमाणिक्य' निकाल लें। इसे पीसकर काचपात्र में रखें। यह पीला-लाल मिश्रित वर्ण का (मैनसिलचूर्ण वर्ण का) होता है। आशुतोष महादेव की पूजा करके इस 'रसमाणिक्य' को १२५ मि.ग्रा. (१ रत्ती) की मात्रा में मधु एवं घृत मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों का नाश होता है। गलित कुष्ठ, स्फुटित कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, उपदंश, विचर्चिका, नासारोग, मुखरोग, भयंकरक्षत, पुण्डरीककुष्ठ, चर्मरोग, विस्फोट और मण्डलकुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु, घृत, गुडूचीस्वरस आदि से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्तपीत मिश्रित। **स्वाद**—गन्धक का स्वाद। **उपयोग**—सभी तरह के कुष्ठ में, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, श्वास एवं उपदंश में।

७२. माणिक्य रस (रसे.चि.म.)

पलं तालं पलं गन्धं शिलायाश्च पलार्द्धकम्।
चपलः शुद्धसीसञ्च ताम्रमभ्रमयोरजः॥१२६॥
एतेषां कोलभागञ्च वटक्षीरेण मर्दयेत्।
ततो दिनत्रयं घर्मे निम्बक्वाथेन भावयेत् ॥१२७॥
गुडूचीबालहिन्तालवानरीनीलझिण्टिकाः ।
शोभाञ्जनमुराऽजाजीनिर्गुण्डीहयमारकम् ॥१२८॥
एषां शाणमितं चूर्णमेकीकृत्य सरित्तटे।
मृत्पात्रे कठिने कृत्वा मृदम्बरयुते दृढे ॥१२९॥
एकाकी पाकविद्वैद्यो नग्नः शिथिलकुन्तलः।
पचेदवहितो रात्रौ यत्नात्संयतमानसः ॥१३०॥
तद्विजानीहि भैषज्यं सर्वकुष्ठविनाशनम्।
सर्पिषा मधुना लौहपात्रे तद्दण्डमर्दितम् ॥१३१॥
द्विगुञ्जं सर्वकुष्ठानां नाशनं बलवर्द्धनम् ॥
शीतलं सारसं तोयं दुग्धं वा पाकशीतलम् ॥१३२॥
आनीतं तत्क्षणादाजमनुपानं सुखावहम्।
वातरक्तं शीतपित्तं हिक्काञ्च दारुणां जयेत् ॥१३३॥
ज्वरान्सर्वान्वातरोगान्पाण्डुं कण्डूञ्च कामलाम्।
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो बहुयत्नतः ॥१३४॥

१. शुद्ध पत्रताल ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम, ३. शुद्ध मैनसिल २५ ग्राम, ४. शुद्ध पारद ६ ग्राम, ५. सीसभस्म ६ ग्राम, ६. ताम्रभस्म ६ ग्राम, ७. अभ्रकभस्म ६ ग्राम और ८. लौहभस्म ६ ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः उसमें ताल एवं मैनसिल मिलाकर मर्दन करें। ततः अन्य सभी भस्मों को मिलाकर वट दुग्ध में मर्दन करें, इसके बाद ३ दिनों तक निम्बपत्ररस में मर्दन करें। तदनन्तर निम्नलिखित

द्रव्यों के चूर्ण भावित औषधि में मिलावें—गुडूचीचूर्ण, सुगन्ध-बालाचूर्ण, महातालचूर्ण, कौंचबीजचूर्ण, नीलपुष्पसहचरचूर्ण, सहिजनत्वक्चूर्ण, मुरामांसीचूर्ण, जीराचूर्ण, निर्गुण्डीपत्रचूर्ण और कनेरमूलत्वक्चूर्ण (प्रत्येक ३ ग्राम) लें। इन सभी द्रव्यों को १ साथ मिलाकर एक हाँड़ी में रखकर शराव से सम्पुटित कर दृढ़ कपड़मिट्टी करें। पाकविद् वैद्य को चाहिए कि रात्रि के एकान्त में नदी के किनारे चूल्हा बनाकर स्वयं (वैद्य) नंगा होकर अपनी शिखा खोल एवं फैलाकर संयमित एवं सावधानी से औषधि का पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर औषधि निकाल-कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे २५० मि.ग्रा. (२ रत्ती) की मात्रा में मधु एवं घी (विषम मात्रा में) में लोहे की खरल में अच्छी तरह से मिलाकर कुष्ठी को चटाना चाहिए। अनुपान में तालाब का शीतल जल पिलाना चीहिए। अधुना सभी तालाबों में दूषित जल हो गया है। अतः फ्रीज का जल पिलाना चाहिए अथवा घड़े का ठण्डा जल पिलाना चाहिए। अथवा उबालकर ठण्डा किया हुआ दूध पिलाना चाहिए। या बकरी का धारोष्ण दूध पिलाना चाहिए। इसके सेवन से सभी प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त वातरक्त, शीतपित्त, भयंकर हिक्का, सभी प्रकार के ज्वर, वातरोग, पाण्डु, कामला और कण्डूरोग नष्ट हो जाते हैं। इस 'माणिक्यरस' को आचार्य सिद्ध श्री गहननाथजी ने बहुत यत्नपूर्वक निर्माण किया है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु-घृत में मिलाकर शीतल जल, शीतल दूध एवं बकरी का दूध मिलाना चाहिए। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—माणिक्यवर्ण। **स्वाद**—नीरस। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठों में।

७३. राजराजेश्वररस (र.सा. सं.)

आतपे मर्दयेत्सूतं गन्धकं मृतताम्रकम्।
सुहस्तमर्दितं तालं यावत्तत्र विलीयते ॥१३५॥
भृङ्गराजद्रवं दत्त्वा दिनमात्रं विमर्दयेत्।
त्रिफला खदिरं सारममृता वागुजीफलम् ॥१३६॥
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याच्चूर्णीकृत्य विमर्दयेत्।
मध्वाज्याभ्यां लौहपात्रे माषाभ्यां भक्षयेत्ततः ॥१३७॥
दद्रुकिट्टिमकुष्ठानि मण्डलानि विनाशयेत्।
द्विगुञ्जेन निहन्त्याशु राजराजेश्वरो रसः ॥१३८॥

शुद्ध पारद १० ग्राम, शुद्ध गन्धक १० ग्राम, ताम्रभस्म १० ग्राम तथा शुद्ध हरताल १० ग्राम लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक का धूप में बैठकर पवित्रता से दृढ़ मर्दन करें। कज्जली बनने पर उसमें ताल मिलाकर पुनः धूप में बैठकर दृढ़ मर्दन करें। ततः उसमें ताम्रभस्म मिलाकर भृंगराजस्वरस की भावना देकर धूप में १ दिन बैठकर मर्दन करें। तदनन्तर उपर्युक्त भावित औषधि में—आमलाचूर्ण, हरीतकीचूर्ण, बहेड़ाचूर्ण, कत्था (खदिरसार), गुडूचीसत्त्व और बाकुचीबीजचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १० ग्राम (पारद जितना) लेकर मिला दें। अच्छी तरह से मर्दन के बाद काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को १२५ मि.ग्रा. (२ माष) की मात्रा में मधु तथा घी के साथ लोहे के खरल में घोंटकर रोगी को चटा दें। इस राजराजेश्वररस के सेवन से दद्रु, किट्टिमकुष्ठ, मण्डलकुष्ठ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं घृत के साथ लौहखरल में मर्दन कर। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—कुष्ठ, मण्डलकुष्ठ एवं दद्रु में।

७४. पारिभद्ररस (र.सा.सं.)

मूर्च्छितं सूतकं धात्रीफलं निम्बस्य चाहरेत्।
तुल्यांशं खदिरक्वाथैर्दिनं मर्द्यञ्च भक्षयेत् ॥
गुञ्जैकं दद्रुकुष्ठघ्नः पारिभद्राह्वयो रसः ॥१३९॥

रससिन्दूर, आमलाचूर्ण तथा निम्बपलमज्जाचूर्ण (समभाग) लें। एक खरल मे पहले रससिन्दूर को अच्छी तरह मर्दन कर अन्य दोनों द्रव्यों के चूर्णों को अच्छी तरह से मिलाकर खदिर क्वाथ की भावना देकर एक दिन तक मर्दन कर १२५ मि.ग्रा. (१ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। मधु के साथ इस पारिभद्ररस का सेवन करने से दद्रु और कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्धक**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—दद्रु और कुष्ठ में।

७५. लङ्केश्वररस (र.सा. सं.)

भस्मसूताभ्रशुल्वानि गन्धं तालं शिलाजतु।
अम्लवेतसतुल्यांशं त्र्यहं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥१४०॥
मध्वाज्याभ्यां वटीं कुर्याद् द्विगुञ्जां भक्षयेत्ततः।
कुष्ठं हन्ति गजं सिंहो रसो लङ्केश्वरो महान् ॥१४१॥
त्रिफलानिम्बमञ्जिष्ठावचापाटलमूलकम्।
कटुकारजनीक्वाथं चानुपानं प्रयोजयेत् ॥१४२॥

१. रससिन्दूर, २. अभ्रकभस्म, ३. ताम्रभस्म, ४. शुद्ध गन्धक, ५. शुद्ध हरताल, ६. शुद्ध शिलाजीत और ७.अम्ल-वेतस (समभाग) लें। एक खरल में पहले रससिन्दूर का मर्दन करें। ततः उसमें अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर तीन दिनों तक मर्दन करें। तत्पश्चात् उसमें मधु एवं मधु का आधा घी मिलाकर २५० मि.ग्रा. (२-२ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें।

अनुपानार्थ क्वाथ—१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४.

निम्बत्वक्, ५. मंजीठ, ६. वच, ७.पाढल मूल, ८. कटुकी और ९. हल्दी (समभाग) लेकर यवकुटचूर्ण बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम यवकुटचूर्ण को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस लङ्केश्वर रस की १ वटी चबाकर यह क्वाथ पीना चाहिए। जिस तरह सिंह निश्चित रूप से हाथी को मार देता है उसी प्रकार इस लङ्केश्वर रस के प्रयोग से कुष्ठरोग निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—त्रिफलादिक्वाथ से। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—काफी रंग का। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—कुष्ठ में।

७६. कुष्ठारिचूर्ण (र.सा.सं.)

काष्ठोदुम्बरिकाचूर्णं ब्रह्मदण्डीबलात्रयम्।
प्रत्यहं मधुना लीढं वातरक्तापहं नृणाम् ॥१४३॥
क्षरद्रक्तज्वलन्मांसं मासमात्रेण सर्वथा।
गलत्पूयं पतत्कीटं त्रिटङ्कं सेव्यमीरितम् ॥१४४॥

१. कठगूलरचूर्ण, २. भारङ्गीत्वक्चूर्ण, ३. बलामूलचूर्ण, ४. अतिबलामूलचूर्ण तथा ५. नागबलाचूर्ण (समभाग) लें। इन पाँचों द्रव्यों का एक साथ सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ३ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर प्रतिदिन २ बार सेवन करने से वातरक्त, जिस कुष्ठ में शरीर फटकर रक्त स्रवित होता हो, मांस सड़कर क्षरित होता हो, पूय गिर रहा हो और व्रण से कीड़े गिरते हों तो १० मि. ग्राम (३ टंक) की मात्रा में खदिरक्वाथ के साथ एक महीने तक सेवन करने से उपर्युक्त लक्षणों वाले कुष्ठ रोगी स्वस्थ हो जाते है। अर्थात् कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

७७. कुष्ठनाशन (र.सा.सं.)

चिरबिल्वपत्रं पथ्या शिरीषञ्च बिभीतकम्।
काष्ठोदुम्बरिकामूलं मूत्रैरालोड्य फेनितम् ॥१४५॥
कर्षमात्रं पिबेद्रोगी गोस्तन्या सह टङ्गणम्।
सप्तसप्तकपर्यन्तं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥१४६॥

१. करञ्जपत्रचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. शिरीषत्वक्चूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण तथा ५. कठगूलरमूलत्वक्चूर्ण (समभाग) लें। इन्हें मिलित रूप में सूक्ष्मकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को १० ग्राम की मात्रा में लेकर १०० मि.ली. गोमूत्र में मिलाकर मथें। जब फेनयुक्त हो जाय तो उसमें १२ ग्राम द्राक्षा कल्क तथा १ ग्राम शुद्ध टङ्कण मिलाकर पिलाना चाहिए। ४९ दिनों तक इस औषधि के नित्य सेवन से सभी तरह के कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—यह भी काष्ठौषधि का योग है।

७८. कुष्ठकुठाररस (र.सा.सं.)

भस्मसूतसमो गन्धो मृतायस्ताम्रगुग्गुलु।
त्रिफला च महानिम्बश्चित्रकश्च शिलाजतु ॥१४७॥
इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात् प्रत्येकं शाणषोडश।
चतुःषष्टिं करञ्जस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥१४८॥
चतुःषष्टिं मृतञ्चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत्।
स्निग्धभाण्डे स्थिते खादेद्द्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत् ॥
रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठविनाशनः॥१४९॥

१. रससिन्दूर, २. शुद्ध गन्धक, ३ लौहभस्म, ४. ताम्र भस्म, ५. शुद्ध गुग्गुलु, ६. आमलाचूर्ण, ७. हरीतकीचूर्ण, ८. बहेड़ाचूर्ण, ९. महानिम्बत्वक्चूर्ण (बकायन), १०. चित्रकमूल चूर्ण, ११. शुद्ध शिलाजीत—(प्रत्येक ५० ग्राम); १२. करंजबीज चूर्ण १९० ग्राम तथा १३. अभ्रकभस्म १९० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर का मर्दन करें। ततः उसमें शुद्ध गन्धक मिलाकर मर्दन करें। तत्पश्चात् अभ्रक-लौहादि भस्मों एवं काष्ठौषधों को मिलाकर विषम मात्रा में मधु एवं घी के साथ मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे २ निष्क खाने को आचार्यश्री ने आदेश दिया है, जो इस काल में अत्यधिक है। २ निष्क बराबर ६ ग्राम होता है। अत: इस समय १ से २ ग्राम की मात्रा में देना उचित है। इस 'कुष्ठकुठाररस' के सेवन से गलितकुष्ठरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१ से २ ग्राम। **अनुपान**—जल या खदिर क्वाथ से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी (शिलाजतु के कारण)। **वर्ण**—किञ्चिद् रक्ताभ। **स्वाद**—मधुर (मधु के कारण)। **उपयोग**—गलित कुष्ठ में।

७९. अर्केश्वररस (र.स.सं.)

पलानीशस्य चत्वारि वलेर्द्वादश तावती।
ताम्रस्य चक्रिका देया रसस्योर्ध्वं शरावकम् ॥१५०॥
दत्त्वा विबद्धभाण्डस्थं पूरयेद्भस्मना दृढम्।
अग्निं प्रज्वालयेद्यामद्वयं शीतं विचूर्णयेत् ॥१५१॥
पुटे द्वादशधा सूर्यदुग्धेनालोडितं पुनः।
वरापावकभृङ्गाणां त्रिभिर्द्रावैर्विभावयेत्।
अयमर्केश्वरो नाम्ना रक्तमण्डलकुष्ठजित् ॥१५२॥

शुद्ध पारद १९० ग्राम, शुद्ध गन्धक ५७० ग्राम और ताम्र भस्म ५७० ग्राम लें। एक खरल में सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। उस कज्जली में ताम्रभस्म मिलाकर कुमारीस्वरस के साथ मर्दन कर एक टिकिया बनाकर सुखा लें। एक हाँडी में आधा भाग कण्डे की राख से भरकर हाथ से दबा दें। उस पर वह कज्जली मिश्रित ताम्रभस्म की टिकिया रखें तथा उसके ऊपर से पुनः कण्डे की राख रखकर हाथ से दबा दें और

शराव से उस हाँडी का मुख बन्द कर कपड़मिट्टी करें। इसके बाद चूल्हे पर चढ़ाकर ६ घण्टे तक पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सावधानी से राख हटाकर ताम्रादि की टिकिया निकाल लें। इसके बाद उक्त पाचित टिकिया को खरल में मर्दन कर अर्कदुग्ध की भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन करें। टिकिया बनाकर शराव-सम्पुट कर लघुपुट में पाक करें। इस तरह अर्कदुग्ध में भावना दे-देकर १२ बार लघुपुट में पाक करें। ततः उस औषधि में त्रिफलाक्वाथ, चित्रकमूलक्वाथ तथा भृङ्गराजरस की १-१ भावना देकर अच्छी तरह से सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसकी १२५ मि.ग्रा. (१-१ रत्ती) की वटी भी बना सकते हैं। यह 'अर्केश्वररस' नाम से प्रसिद्ध औषधि रक्तमण्डलकुष्ठ का नाश करती है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं खदिरक्वाथ से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—रक्तमण्डल कुष्ठ में।

८०. कुष्ठकालानलरस (र.सा. सं.)

वलिं रसं टङ्कणताम्रलौहं
भस्मीकृतं मागधिकासमेतम्।
पञ्चाङ्गनिम्बेन फलत्रिकेण
विभावितं राजतरोस्तथैव॥
नियोजयेद्वल्लकयुग्ममानं
कुष्ठेषु सर्वेषु च रोगसङ्घे॥१५३॥

१. शुद्ध गन्धक, २. शुद्ध पारद, ३. शुद्ध सुहागा, ४. ताम्रभस्म, ५. लौहभस्म और ६. पीपरचूर्ण (समभाग) लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक का एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः उस कज्जली में अन्य द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें और निम्बपञ्चाङ्गक्वाथ, त्रिफलाक्वाथ तथा अमलतास-फलपत्रस्वरस से १-१ भावना देकर ७५० मि.ग्रा. (६-६ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'कुष्ठकालानलरस' को १ ग्राम बाकुचीचूर्ण और खदिरक्वाथ के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—७५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—बाकुचीचूर्ण १ ग्राम और खदिरक्वाथ से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों में।

८१. ब्रह्मरस (र.सा.सं.)

भागैकं मूर्च्छितं सूतं गन्धकं त्वग्निवागुजी।
चूर्णन्तु ब्रह्मबीजानां प्रति द्वादशभागिकम्॥१५४॥
त्रिंशद्भागं गुडस्यापि क्षौद्रेण गुडिका कृता।
अयं ब्रह्मरसो नाम्ना ब्रह्महत्याविनाशनः॥१५५॥
द्विनिष्कं भक्षणाद्धन्ति प्रसुप्तिकुष्ठमण्डलम्।
पातालगरुडीमूलं जलैः पिष्ट्वा पिबेदनु॥१५६॥

१. रससिन्दूर १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १२ भाग, ३. चित्रकमूलचूर्ण १२ भाग, ४. बाकुचीचूर्ण १२ भाग, ५. पलाशबीजचूर्ण १२ भाग, ६. पुराना गुड़ ३० भाग और ७. मधु यथावश्यक लें। सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर को मर्दन करें। पुनः उसमें गन्धक मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर अन्य चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद एक स्टील पात्र में गुड़ की कड़ी चासनी (मोदक बनाने वाली चासनी) करें। चासनी हो जाय तो गुड़पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर ठण्डा होने दें। ठण्डा होने पर उपर्युक्त सभी मिश्रित द्रव्यों का प्रक्षेप देकर अच्छी तरह से गुड़ में मिला दें। थोड़ा मधु मिलाकर ६-६ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। 'ब्रह्मरस' नामक यह औषधि ब्रह्महत्या जैसे पाप को नष्ट करती है तथा ब्रह्महत्या जन्य कुष्ठरोग का भी नाश करती है। इस औषधि का सेवन करने के बाद पातालगरुड़ी (जलजमनी) स्वरस या क्वाथ ५० मि.ली. पिलायें। इसके सेवन से प्रसुप्ति कुष्ठ नष्ट हो ज़ाता है।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—पातालगरुडी स्वरस से। **गन्ध**—गुडगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ गुडाकृति। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**-ब्रह्महत्या जन्य कुष्ठ एवं प्रसुप्ति कुष्ठ में।

८२. गलत्कुष्ठारिरस (र.सा. सं.)

रसो वलिस्ताम्रमयः पुरोऽग्निः
शिलाजतु स्याद्विषतिन्दुकश्च।
वरा च तुल्यं गगनं करञ्ज-
बीजं तथा भागचतुष्टयञ्च॥१५७॥
सम्मर्द्य सर्वं मधुना घृतेन
घृतस्य पात्रे निहितं प्रयत्नात्।
कर्षं भजेत्प्रत्यहमस्य पथ्यं
शाल्योदनं दुग्धमधुत्रयं च॥१५८॥
विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि
भवेदनेन स्मरतुल्यमूर्त्तिः।
दारापरित्याग इह प्रदिष्टो
जलौदनं तत्र निबद्धमूले॥१५९॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. ताम्र भस्म १ भाग, ४. लौहभस्म १ भाग, ५. शद्ध गुग्गुलु १ भाग, ६. चित्रकमूलचूर्ण १ भाग, ७. शुद्ध शिलाजतु १ भाग, ८. शुद्ध कुचलाचूर्ण १ भाग, त्रिफलाचूर्ण १ भाग, १०. अभ्रक भस्म ४ भाग और ११. करञ्जबीजचूर्ण ४ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी

कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में अभ्रक, ताम्र एवं लौह भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। तत्पश्चात् काष्ठौषधिचूर्णों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद स्टेनलेस स्टील के पात्र में थोड़ा गरम पानी रखकर गुग्गुलु को पकावें। ३-४ घण्टे तक उस गरम पानी में रहने के बाद गुग्गुलु घुल जायेगा । यदि नहीं घुले तो उसे पुनः गरम करना चाहिए। जब गुग्गुलु पूर्णरूपेण घुले जाय तो उसमें शिलाजतु मिलाकर घोल लें। ततः कज्जली मिश्रित चूर्ण में गुग्गुलु और शिलाजतु के घोल को अच्छी तरह मिला दें। इसके बाद ८ भाग मधु तथा १२ भाग घृत मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'गलत्कुष्ठारिरस' को १२ ग्राम की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। आचार्यश्री ने १२ ग्राम की मात्रा खाने को बताया है किन्तु यह मात्रा अधिक प्रतीत होती है । अतः ३ ग्राम अधुना देना चाहिए । इस औषधि का सेवन पथ्यपूर्वक करना चाहिए। केवल शालिचावल का भात तथा गोदुग्ध और मधु मिलाकर ही खाना चाहिए। जिस कुष्ठी का कान, नाक एवं हाथ-पैर की अँगुलियाँ गल गई हों, ऐसा कुष्ठी भी कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। यदि कुष्ठ बद्धमूल हो उपर्युक्त पथ्य का पालन कर केवल शालिचावल का भात पानी मिलाकर खिलाना चाहिए और स्त्री-प्रसङ्ग (मैथुन) का सर्वथा परित्याग कर दें।

मात्रा—३ ग्राम। **अनुपान**—खदिरक्वाथ से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—अवलेह जैसा गाढ़ा। **स्वाद**—मधुर एवं बाद में तिक्त। **उपयोग**—गलित कुष्ठ में।

८३. चन्द्राननरस (र.सा.सं.)

सूतव्योमाग्नयस्तुल्यास्त्रिभागो गन्धकस्य च ।
काकोदुम्बरिकाक्षीरैः सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥१६०॥
माषमात्रां गुडीं कृत्वा कुष्ठरोगे प्रयोजयेत् ।
देहशुद्धिं पुरा कृत्वा सर्वकुष्ठानि नाशयेत् ॥
एष चन्द्राननो नाम साक्षाच्छ्रीभैरवोदितः॥१६१॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. अभ्रकभस्म १ भाग, चित्रकमूल चूर्ण १ भाग तथा ४. शुद्ध गन्धक ३ भाग लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक का एक खरल में एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें । ततः उसमें अभ्रकभस्म और चित्रकमूलचूर्ण मिलाकर कठगूलर के दूध से मर्दन करें और १ ग्राम की मात्रा में वटी बनाकर छाया में अच्छी तरह सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि के प्रयोग से पूर्व पञ्चकर्म (स्नेहन-स्वेदन कराकर वमन-विरेचन-शिरोविरेचन तथा बस्ति) द्वारा शरीर का संशोधन कर लें । ततः औषधि का प्रयोग प्रतिदिन खदिरक्वाथ के अनुपान से करावें। इसके प्रयोग से सभी प्रकार के कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं। इस 'चन्द्राननरस' को साक्षात् भैरव ने कहा है।

मात्रा ५०० मि.ग्रा. तक। **अनुपान**—खदिरक्वाथ से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों में।

८४. सर्वेश्वररस (शार्ङ्गधर)

शुद्धं सूतं चतुर्गन्धं पलं यामं विचूर्णयेत् ।
मृतताम्राभ्रलोहानां दरदस्य पलं परम् ॥१६२॥
सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम् ।
माषैकं मृतवज्रञ्च तालं शुद्धं पलद्वयम् ॥१६३॥
जम्बीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः।
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम् ॥१६४॥
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ।
बालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ॥१६५॥
आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पलैकं योजयेद्विषम् ।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णमिश्रं सर्वेश्वरो रसः॥१६६॥
द्विगुञ्जो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तिमण्डलकुष्ठनुत् ।
बाकुची देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत् ।
लिहेदेरण्डतैलाक्तमनुपानं सुखावहम् ॥१६७॥

१. शुद्ध पारद ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक २०० ग्राम, ३. ताम्रभस्म ५० ग्राम, ४. अभ्रकभस्म ५० ग्राम, ५. लौहभस्म ५० ग्राम, ६. शुद्ध हिङ्गुल ५० ग्राम, ७. स्वर्णभस्म ३० ग्राम, ८. रजतभस्म ३० ग्राम, ९. हीराभस्म १ ग्राम, १०. शुद्ध हरताल १०० ग्राम, ११. शुद्ध वत्सनाभविष ५० ग्राम और १२ पिप्पलीचूर्ण १०० ग्राम लें।

भावना द्रव्य—१. जम्बीरीनिम्बुस्वरस, २. धत्तूरपत्ररस, ३. वासापत्ररस, ४. स्नुहीपत्ररस, ५. अर्कपत्ररस, ६. कुचला क्वाथ तथा ६. कनेरमूलत्वक्रस लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली के साथ अन्य द्रव्यों को क्रमशः मिलावें। हरताल, हीराभस्म, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, हिंगुल, रजतभस्म एवं लौहभस्म और ताम्रभस्म डालकर मर्दन करते जायें। इसके बाद उपर्युक्त ७ द्रव्यों से क्रमशः १ द्रव्य से १ दिन भावना एवं मर्दन करें। तदनन्तर इन सभी द्रव्यों का १ बड़ा गोला बना लें। इसे रेशमी वस्त्र सें बाँधकर अच्छी तरह से सुखा लें। इसके बाद उक्त रेशमी वस्त्रबद्ध गोले को बालुकायन्त्र में बालू के मध्य रखकर चूल्हे पर चढ़ाकर तीन दिनों तक मृदु अग्नि से पकावें । स्वाङ्ग शीतल होने पर बालुका यन्त्र से सावधानी से वस्त्रबद्ध गोले को निकालें। खरल में पीसकर उसमें ५० ग्राम वत्सनाभविषचूर्ण और पिप्पलीचूर्ण अच्छी तरह से मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'सर्वेश्वररस' कहते हैं। २५० मि.ग्रा. (२ रत्ती) की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर चाटें तथा बाद में बाकुचीचूर्ण ६ ग्राम तथा देवदारुचूर्ण ६ ग्राम दोनों को एरण्डतैल १२ ग्राम में मिलाकर

चाटें। प्रतिदिन १ महीना तक इसका सेवन करने से सुप्तिकुष्ठ एवं मण्डलकुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु और बाकुचीचूर्ण ६ ग्राम, देवदारुचूर्ण ६ ग्राम तथा १२ ग्राम एरण्तैल मिलाकर चाटें। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सुप्ति एवं मण्डलकुष्ठ में।

८५. हरितालेश्वररस (रसे. चि.म.)

हरितालं भवेद्भागाद् द्वादशात्र विशुद्धिमत्।
गन्धकोऽपि तथा ग्राह्यो रसः सप्तात्र दीयते ॥१६८॥
कृष्णाभ्रकमपि श्लक्ष्णं खल्ले कृत्वा विमर्दयेत्।
अङ्कोठमूलनीरेण सेहुण्डपयसाऽथवा ॥१६९॥
अर्कदुग्धेन सम्पिष्य करवीरजलेन च।
काकोदुम्बरनीरेण पेषणीयो रसो भृशम् ॥१७०॥
शुद्धताम्रकटोरायां क्षेपणीयो रसेश्वरः।
विधिवत्पच्यते यामषट्कञ्चायं रसेश्वरः ॥१७१॥
पञ्चगुञ्जाप्रमाणेन काकोदुम्बरवारिणा।
कुष्ठाष्टादशसङ्ख्येषु देय एष भिषग्वरैः ॥१७२॥
अचिरेणैव कालेन विनाशं यान्ति निश्चयः।
पथ्यसेवा विधातव्या प्रणतिः सूर्यपादयोः ॥१७३॥
साधकेन तथा सेव्यो रसो रोगौघनाशनः।
पिप्पलीभिः समं दद्यात्कुष्ठरोगे रसेश्वरम् ॥१७४॥

१. शुद्ध हरताल १२ भाग, २. शुद्ध गन्धक १२ भाग, ३. शुद्ध पारद ७ भाग और ४. अभ्रकभस्म ७ भाग लें। भावना द्रव्य—१. अङ्कोलमूलस्वरस, २. सेहुण्ड का दूध, ३. अर्कदुग्ध, ४. कनेरमूलरस तथा ५. गठगूलर लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में शुद्ध हरताल मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर अभ्रकभस्म मिलाकर मर्दन करें और अङ्कोलमूल के रस, सेहुण्ड दूध, अर्कक्षीर, कनेरमूलत्वक्स्वरस तथा कठगूलर के रस में पृथक्-पृथक् १-१ भावना दें। सूखने पर इस भावित रसौषधि को ताम्र की कटोरी में रखें और मृदु अग्नि से १८ घण्टे तक पाक कर औषधि तैयार कर लें। इसे चूर्ण करें तथा औषधि के बराबर पिप्पलीचूर्ण मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को ६२५ मि.ग्रा. (५ रत्ती) की मात्रा में मधु में मिलाकर खिलावें और कठगूलरस्वरस २५ मि.ली. पिलावें। इस तरह प्रतिदिन १-२ महीने तक सेवन करने से १८ प्रकार के कुष्ठ शीघ्र ही निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं। पथ्य का सेवन जरूर करें। सुबह स्नान कर भगवान् सूर्य की प्रार्थना, पूजा तथा प्रणाम अवश्य करावें। साधक को रोगनाशनार्थ इस औषधि का सेवन करना चाहिए।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं कठगूलर रस से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्णाभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—१८ प्रकार के कुष्ठो में।

८६. वज्रवटी (रसे.चि.म.)

शुद्धसूताग्निमरिचं सूताद् द्विगुणगन्धकम्।
काकोदुम्बरिकाक्षीरैर्दिनं मर्द्यं प्रयत्नतः ॥१७५॥
वराव्योषकषायेण वटीश्चास्य समाचरेत्।
लिह्याद्वज्रवटी ह्येषा पामारोगविनाशिनी ॥१७६॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. चित्रकमूल १ भाग, ३. मरिच १ भाग और ४. शुद्ध गन्धक २ भाग लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक का एक साथ मर्दन कर अच्छी तरह कज्जली बनावें। ततः दोनों चूर्णों को मिलाकर कठगूलर के दूध से १ दिन तक भावना देकर मर्दन करें। ततः त्रिफलाक्वाथ और त्रिकटुक्वाथ में १-१ दिन भावना देकर मर्दन करें और २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वज्रवटी को पामा रोग नाशनार्थ मधु के साथ चटाकर खदिरक्वाथ पिलावें।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं खदिर क्वाथ से। **गन्धक**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—पामा रोग में।

८७. ज्योतिष्मान्रस

अभ्रं हेम कान्तलौहं षड्गुणजारितं रसम्।
वैक्रान्तं विद्रुमं चाश्वगन्धा रुद्रजटाजटा ॥१७७॥
कङ्कुष्ठं च समं सर्वं यत्नादादाय सद्भिषक्।
एकीकृत्य रसेनैव चक्रमर्ददलस्य हि ॥१७८॥
अरुष्कमूलखदिरमूलक्वाथेन भावयेत्।
त्रिधा यथाविधि ततो मात्रा चणकसंमिता ॥१७९॥
ज्योतिष्मान्नामकरसो योजितो वातरक्तजित्।
कुष्ठमष्टादशविधं तज्जानन्यान् गदानपि ॥१८०॥
गौणोपदंशं च तथा रोगान् पारदसम्भवान्।
भगन्दरं गण्डमालां दुष्टव्रणमथापचीम् ॥१८१॥
नाशयेदेष सहसाऽनुपमो रक्तशोधनः।
पथ्याऽमृता सारिवा च पर्पटं गञ्जिनी तथा ॥१८२॥
कटुकीक्वाथ एतेषां ज्योतिष्मद्रससेवनात्।
सत्वरं शुक्रवृद्धिश्च सर्वरोगप्रणाशनम्।
कथितोऽयं महेशेन लोकेऽस्मिन्नमृतोपमम् ॥१८३॥

१. अभ्रकभस्म, २. स्वर्णभस्म, ३. कान्तलौहभस्म, ४. रससिन्दूर, ५. वैक्रान्तभस्म, ६. प्रवालभस्म, ७. अश्वगन्धा चूर्ण, ८. शिवलिङ्गीलतामूलचूर्ण और ९. कङ्कुष्ठचूर्ण—ये सभी द्रव्य समभाग में लें।

भावनाद्रव्य—चक्रमर्दपत्रस्वरस, भल्लातकफल तथा

खदिरकाष्ठ लें। एक खरल में पहले रससिन्दूर का मर्दन करें ततः स्र्वण, अभ्रक, कान्त, लौह आदि भस्म मिलावें। तदनन्तर अन्य सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और चक्रमर्द पत्र स्वरस की ३ भावना दें। उसके बाद क्रमशः भिलावाफलक्वाथ तथा खदिरमूलकाष्ठक्वाथ की ३-३ भावना दें। चने के बराबर अर्थात् २५० मि.ग्रा. (२ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'ज्योतिष्मान्रस' नाम दिया गया है। यह वातरक्त को नष्ट करता है। १८ प्रकार के कुष्ठरोग तथा कुष्ठ के उपद्रवस्वरूप उत्पन्न अन्य रोग, गौणोपदंश, पारद विकारजन्यरोग, भगन्दर, गण्डमाला, दुष्ट व्रण, अपची आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधि को मधु में मिलाकर चाटना चाहिए तथा ऊपर से निम्नलिखित क्वाथ पिलाना चाहिए। यह परम रक्तशोधक है।

क्वाथ—१. हरीतकी, २. गुडूची, ३. अनन्तमूल, ४. पित्तपापड़ा, ५. गञ्जिनी (रेवन्दचीनी) और ६. कुटकी (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर अनुपान रूप में पिलाना चाहिए। इस क्वाथ के साथ इस ज्योतिष्मान् रस का सेवन करने से शीघ्र ही शुक्र की वृद्धि होती है और सभी रोगों का यह नाश करता है। इसे भगवान् शङ्कर ने अमृत के समान बतलाया है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं पथ्यादि क्वाथ पिलाना चाहिए। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई वर्ण का। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—वातरक्त एवं १८ कुष्ठों में, भगन्दर एवं दुष्टव्रण में।

८८. अमृताङ्कुरलौह (रसे.चि.म.)

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकं रसस्य वै।
पलं लौहस्य ताम्रस्य पलं भल्लातकस्य च ॥१८४॥
गन्धकस्य पलञ्चैकमभ्रकस्य च गुग्गुलोः।
हरीतकीबिभीतक्योश्चूर्णं कर्षद्वयं द्वयोः ॥१८५॥
अष्टमाषाधिकं तत्र धात्र्याः पाणितलानि षट्।
घृतं ह्यष्टगुणं लौहाद्द्वात्रिंशत्त्रिफलाजलम् ॥१८६॥
एवं कृत्वा पचेत्पात्रे लौहे च विधिपूर्वकम्।
पाकमेतस्य जानीयात्कुशलो लौहपाकवित् ॥१८७॥
विशुद्धः प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः।
रक्तिकादिक्रमेणैव घृतभ्रामरमर्दितम् ॥१८८॥
लौहे लौहस्य दण्डेन कुर्यादेतद्रसायनम्।
अनुपानञ्च कुर्वीत नारिकेलोदकं पयः ॥१८९॥
सर्वकुष्ठहरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम्।
पाण्डुमेहामवातघ्नं वातरक्तरुजापहम् ॥१९०॥
कृमिशोथाश्मरीशूलदुर्नामवातरोगनुत्।
क्षयं हन्ति महाश्वासमत्यर्थं शुक्रवर्द्धनम् ॥
अग्निसन्दीपनं हृद्यं कान्त्यायुर्बलबुद्धिकृत् ॥१९१॥
विवर्ज्य शाकाम्लमपि स्त्रियञ्च
सेव्यो रसो जाङ्गललावकानाम्।
शाल्योदनं षष्टिकमाज्यमुद्ग-
क्षौद्रं गुडक्षीरमिह क्रियायाम् ॥१९२॥

१. हिङ्गुलोत्थपारद ५० ग्राम, २. लौहभस्म ५० ग्राम, ३. ताम्र, ३. ताम्रभस्म ५० ग्राम, ४. शुद्ध भिलावा ५० ग्राम, ५. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम, ६. अभ्रकभस्म ५० ग्राम, ७. शुद्ध गुग्गुलु ५० ग्राम, ८. हरीतकीचूर्ण १२ ग्राम, ९. बहेड़ाचूर्ण १२ ग्राम, १०. आमलाचूर्ण ७५ ग्राम, ११. गोघृत ४०० ग्राम और १२. त्रिफलाक्वाथ १६ ली. लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में अन्य भस्मों एवं चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें। एक लोहे की कड़ाही में घृत गरम करें तथा उसमें त्रिफलाक्वाथ एवं कज्जली मिश्रित अन्य सभी द्रव्यों को मिला दें। सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल मिलाकर पाक करें। लौह को चम्मच से बराबर चलाते रहें। लौहपाकविशेषज्ञ वैद्य द्वारा यह पाक बनवाना चाहिए। पाक सम्पन्न होने पर इस अमृताङ्कुरलौह को काचपात्र में संग्रहीत करें। रोगी के शरीर का संशोधन (वमन, विरेचन, नस्य एवं बस्ति द्वारा संशोधन) करना चाहिए। इसके पहले पूर्वकर्म (स्नेहन-स्वेदन) भी कराना चाहिए। रोगी का शरीर शुद्ध होने पर शुभ दिन एवं तिथि में प्रातः रोगी जागे और स्नानादि क्रिया से निवृत होकर गुरु, देवता एवं ब्राह्मणों की पूजा करके १२५ मि. ग्रा. (१ रत्ती) की मात्रा में इस औषधि का सेवन प्रारम्भ करें। इस औषधि को लोहे के छोटे खरल में विषम मात्रा में मधु एवं घृत के साथ कुछ देर तक मर्दन कर चाटने को दें। अनुपान के रूप में ऊपर से नारियल का पानी तथा दूध पिलायें। रोज १२५ मि.ग्रा की मात्रा में बढ़ाते जायें। इसके सेवन से सभी प्रकार के कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं। यह वली-पलित नाशक तथा रसायन गुण से सम्पन्न है। इसके अतिरिक्त इसके सेवन से पाण्डु, प्रमेह, आमवात, वातरक्त, कृमि, शोथ, अश्मरी, शूल, अर्श, वातरोग, क्षयरोग और महाश्वासरोग नष्ट हो जाते हैं। यह अत्यन्त शुक्रवर्धक है, अग्निप्रदीपक है, हृद्य है तथा शरीर की कान्ति, आयु, बल एवं मेधावर्द्धक है।

अपथ्य—इस औषधि के सेवन काल में पत्रशाक, अम्ल पदार्थ और मैथुन का सेवन नहीं करना चाहिए। पथ्य—जंगली पशु-पक्षियों के तथा लावकपक्षी का मांसरस, शालिचावल, साठीचावल, गोघृत, भूँग की दाल या यूष, मधु, गुड़ और गोदुग्ध का सेवन करना चाहिए।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा. से प्रारम्भ करें तथा प्रतिदिन १२५ मि.ग्रा. बढ़ावें। यह क्रम ८ दिनों तक करें। अर्थात् १ ग्राम तक इसे सेवन करें। पुनः इसे रोज १२५ मि.ग्रा. घटाते हुए १६वें दिन १२५ मि.ग्रा. पर लावें। इसी तरह कल्परूप ५ महीने तक लेते रहें। **अनुपान**—घृत तथा मधु में मर्दन कर चाटें तथा ऊपर से नारियल का जल पिलायें। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कषायरस। **उपयोग**—१८ प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त में तथा रसायन कर्मोपयोगी है।

८९. अमृतभल्लातक (अगस्त्यसंहिता)

भल्लातकानां पवनोद्धतानां
वृन्तच्युतानाञ्च यदाढकं स्यात्।
तच्चेष्टकाचूर्णकणैर्विघृष्य
प्रक्षालयित्वा विसृजेत्प्रभाते ॥१९३॥
शुष्कं पुनस्तद्विदलीकृतञ्च
ततः पचेदप्सु चतुर्गुणासु।
तत्पादशेषं परिपूतशीतं
क्षीरेण तुल्येन पुनः पचेत्तु ॥१९४॥
तत्पादशेषं पुनरेव शीतं
घृतेन तुल्येन पुनः पचेत्तु।
तदर्द्धया शर्करया विकीर्णं
ततः खजेनोन्मथितं विधाय ॥१९५॥
तत्सप्तरात्रादुपजातवीर्यं
सुधारसादप्यधिकत्वमेति ।
प्रातर्विशुद्धः कृतदेहकार्यो
मात्राञ्च खादेत्स्वशरीरयोग्याम् ॥१९६॥
न चान्नपाने परिहार्यमस्ति
न चातपे चाध्वनि मैथुने च।
यथेष्टचेष्टो विहितोपयोगा-
द्भवेन्नरः काञ्चनराशिगौरः ॥१९७॥
अनन्यमेधा नरसिंहतेजा-
दृप्तेन्द्रियोऽव्याहतबुद्धिसत्त्वः।
दन्ताश्च शीर्णाः पुनरुद्भवन्ति
केशाश्च शुक्लाः पुनरेव दिव्याः ॥१९८॥
नीलाञ्जनानां प्रतिमा भवन्ति
त्वचो विवर्णाः पुनरेव दिव्याः।
विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि
क्रिम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि कुष्ठी ॥१९९॥
सोऽपि क्रमादङ्कुरिताग्रशाख-
स्तरुर्यथा भाति नभोऽम्बुसिक्तः।
उष्ट्रान् मयूराञ् जयति स्वरेण
बलेन नागस्तुरगो जवेन ॥२००॥
रसायनस्यास्य नरः प्रसादाद्
बृहस्पतेरप्यधिकोऽपि बुद्ध्या।
ग्रन्थान् विशालान् पुनरुक्तिदोषान्
गृह्णाति शीघ्रं न च नश्यते तु ॥२०१॥
कुर्वन्निमं कल्पमनल्पबुद्धि-
र्जीवेन्नरो वर्षशतानि पञ्च।
राजा ह्ययं सर्वरसायनानां
चकार योगं भगवानगस्त्यः ॥२०२॥

अपने आप सुपक्व होकर गिरे हुए भल्लातक ३ किलो लें। गोदुग्ध ३ लीटर, चीनी ३ किलो तथा घृत ३ किलो लें।

भल्लातक को सरौते से दो टुकड़ों में काटकर ईंटे की चूर्ण से युक्त बोरे में डालकर किसी लकड़ी की पट्टी से दबाकर तीन दिन रखें। चौथे दिन हाथ में दस्ताना पहनकर बोरे को जमीन पर पलट दें और उसमें से कटे भिलावा को पृथक् करें तथा उसे ३-४ बार गरम पानी से रगड़कर प्रक्षालन करें। भिलावे के टुकड़ों में चिपके ईंट का चूर्ण बिल्कुल साफ कर लें। ततः स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में कटे हुए भिलावों को डालें और १२ लीटर जल में पाक करें। जब ३ लीटर जल शेष रहे तो छानकर पृथक् करें। अब इस भिलावे के क्वाथ को अलग से एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखें और ३ लीटर दूध मिलाकर पुनः दोनों का मन्दाग्नि से पाक करें। जब चौथाई (१.५०० किलो) अर्धघन रबड़ी जैसा हो जाय तो उसमें ३ किलो घी और १.५०० किलो ग्राम चीनी मिलाकर थोड़ी देर मन्दाग्नि से पकावें। जलीयांश सूखने पर चूल्हे से नीचे उतारकर मथानी से पूरी औषधि को खूब मथें और पात्र का मुख ढककर किसी सुरक्षित स्थान में ७ रात्रि तक रखें। इस अवधि में उस औषधि में अमृतत्व की उत्पत्ति हो जाती है और औषधि अधिक वीर्यवान् हो जाती है। इसके बाद उस औषधि को काचपात्र में संग्रहीत करें। रोगी को स्नेहन-स्वेदन कराने के बाद वमन-विरेचन एवं नस्य देकर शरीर का संशोधन करें। ततः रोगी प्रातः स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान् शङ्कर और भगवान् सूर्य की पूजा करके इस 'अमृतभल्लातक' को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध के साथ मिलाकर सेवन करे। प्रतिदिन इसी मात्रा में इस औषधि का सेवन करना चाहिए। इस औषधि के सेवन काल में कोई परहेज नहीं है। अन्न-पान, मार्गगमन, मैथुन करने तथा धूप में चलने-फिरने में कोई परहेज नहीं है। स्वेच्छानुसार आहार-विहार करने से रोगी स्वर्ण सदृश गौर कान्ति वाला हो जाता है। स्मरणशक्ति बढ़ जाती है। नरसिंह के जैसा तेजस्वी हो जाता है। सभी इन्द्रियाँ प्रफुल्लित हो जाती हैं, बुद्धि और चित्त निर्मल हो जाते हैं। गिरे हुए दाँत फिर से निकल जाते हैं। सफेद बाल पुनः नीलाञ्जन जैसे काले हो जाते हैं। कुत्सित वर्ण की

त्वचाएँ पुनः दिव्य रूप में पूर्ववत् हो जाती हैं। सड़कर गिरी हुई अङ्गुलियाँ, कर्ण एवं नासा फिर से विकसित होकर पूर्ववत् हो जाते हैं। कुष्ठी का शरीर यदि कृमियों से व्याप्त हो तथा गला विकृत हो तो वह भी इस औषधि के सेवन से उसी प्रकार पूर्ण विकसित हो जाता है, जैसे जल-वृष्टि से अंकुरित पौधा बड़ी-बड़ी शाखाओं से युक्त होकर बड़ा वृक्ष बन जाता है। मयूर को जीतने वाले स्वर से युक्त हो जाता है। रोगी बल में हाथी जैसा तथा वेग में घोड़े जैसा हो जाता है। इस रसायन के प्रभाव से मनुष्य बृहस्पति से भी अधिक बुद्धिमान् हो जाता है। महान् ग्रन्थों को अशुद्धि एवं पुनरुक्ति के बिना वह स्मरण कर लेता है। इस कल्प का सर्वदा सेवन करने वाला रोग रहित होकर ५०० वर्षों तक जीवित रहता है। सभी रसायनों में श्रेष्ठ इस 'अमृतभल्लातक' योग का निर्माण महर्षि अगस्त्य ने किया है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—घृत वर्ण। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठों में। रसायनों के सारे गुण इस औषधि में हैं।

९०. महाभल्लातकगुड (वङ्गसेन)

निम्बं गोपाऽरुणा कट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम्।
पर्पटोऽवल्गुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ॥२०३॥
पाठा शुण्ठी शटी भार्गी वासाभूनिम्बवत्सकम्।
श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा विडङ्गेन्द्रविषानलम् ॥२०४॥
हस्तिकर्णामृताद्रेकाः पटोलं रजनीद्वयम्।
कणारग्वधसप्ताह्वकृष्णवेत्रोच्चटाफलम् ॥२०५॥
भूकन्दं तृणपर्णञ्च जिङ्गी पद्माटमूषली।
विष्वक्सेना च कैटर्यं शरपुङ्खा च कञ्चुकी ॥२०६॥
एषां द्विपलिकान्भागाञ् जलद्रोणे विपाचयेत्।
अष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥२०७॥
भल्लातकसहस्राणि त्रीणि च्छित्त्वाऽर्मणेऽम्भसि।
चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥२०८॥
तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ च कारयेत्।
गुडस्य तु तुला ताभ्यां कषायं विपचेद्भिषक् ॥२०९॥
भल्लातकसहस्राणां मज्जानं तत्र दापयेत्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं सैन्धवानां पलं पलम् ॥२१०॥
दीप्यकस्य पलं चैव चातुर्जातं पलांशिकम्।
सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेदक्षं गन्धकञ्च चतुष्पलम् ॥२११॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य स्थापयेत्कुशलो भिषक्।
महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ॥२१२॥
जगतस्तु हितार्थाय जयेच्छीघ्रं निषेवितः।
श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृष्यजिह्वं सकाकणम् ॥२१३॥
पुण्डरीकञ्च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा।
कण्डूं कापालकुष्ठञ्च पामानं सविपादिकम् ॥२१४॥
वातरक्तमुदावर्त्तं पाण्डुरोगं व्रणकृमीन्।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि कासं श्वासं भगन्दरम् ॥२१५॥
तदभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम्।
अनुपाने प्रयोक्तव्यं छिन्नाक्वाथः पयोऽथवा।
भोजने च सदा भोज्यमुष्णञ्चान्नं विशेषतः ॥२१६॥

क्वाथ—१. निम्बत्वक्, २. अनन्तमूल, ३. अतीस, ४. कुटकी, ५. त्रायमाण, ६. आमला, ७. हरीतकी, ८. बहेड़ा, ८. नागरमोथा, १०. पित्तपापड़ा, ११. बाकुची, १२. अनन्तमूल (कृष्ण), १३. वच, १४. खदिरकाष्ठ, १५. रक्तचन्दन, १६. पाठा, १७. सोंठ, १८. कचूर, १९. भारङ्गीत्वक्, २०. वासापञ्चाङ्ग, २१. चिरायता, २२. कुटजत्वक्, २३. निशोथ, २४. इन्द्रायणमूल, २५. मूर्वा, २६. विडङ्ग, २७. इन्द्रयव, २८. शुद्ध वत्सनाभ, २९. चित्रकमूल, ३०.पलाशबीज, ३१. गुडूची, ३२. बकायनत्वक्, ३३. पटोललता, ३४. हल्दी, ३५ दारुहल्दी, ३६. पीपर, ३७. अमलतासफलमज्जा, ३८. सप्तपर्णवृक्षत्वक्, ३९. कृष्णवेत्र, ४०. रक्तकृष्णगुञ्जा, ४१. सूरणकन्द, ४२. तृणपर्ण, ४३. मंजीठ, ४४. चक्रमर्दबीज, ४५. मुशली, ४६. प्रियङ्गुलता, ४६. कट्फल, ४८. शरपुङ्खा और ४९. शिरीषत्वक्—प्रत्येक द्रव्य ९२ ग्राम (२ पल) लें। भल्लातकफल ३००० नग, क्वाथार्थ जल १३ लीटर तथा गुड़ ५ किलो लें।

प्रक्षेप—१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. आमलाचूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ७. नागरमोथा चूर्ण, ८. सैन्धवलवण, ९. अजवायनचूर्ण १०. तेजपातचूर्ण, ११. दालचीनीचूर्ण, १२ छोटीइलायचीचूर्ण, १३. नागकेशर और १४. शुद्ध गन्धक—सोंठ से अजवायन तक प्रत्येक द्रव्य ५० ग्राम। चातुर्जातक चूर्ण मिलित ५० ग्राम और शुद्ध गन्धक १९० ग्राम लेना चाहिए।

सर्वप्रथम निम्बत्वक् से शिरीष त्वक् के सभी ४९ द्रव्यों का यवकुट कर २४ लीटर जल में क्वाथ करें और अष्टमांशावशेष (३ लीटर) रखें। उसे छानकर पृथक् स्वच्छ पात्र में संग्रहीत करें। अब एक स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में हाथों में दस्ताना पहनकर सरौते से सभी (३०००) भल्लातकफल के दो-दो टुकड़े कर भगौने में रखें। पुनः उसमें १३ लीटर जल डालकर निर्जन स्थान पर (आदमियों से दूर) क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। अब दोनों क्वाथों को एक साथ मिलाकर बड़े स्टील पात्र में डालें और उसी में ५ किलो गुड़ भी डालकर मन्दाग्नि से

गोपा = अनन्तमूलश्वेत, अरुणा = अतीस, द्रेकाः = वकायनवृक्ष, सप्तपर्णत्वक्। उच्चटाफलम् = रक्तगुञ्जा, पद्माट = चक्रमर्द बीज, विश्वक्सेना = प्रियंगुलता, कैटर्य = कट्फल, कञ्चुकी = शिरीषत्वक्।

पकावें। जब दो तार की चासनी हो जाय तो गुड़पाक-विशेषज्ञ पाक की परीक्षा करके गुड़ पात्र को चूल्हे से नीचे उतारे। थोड़ा ठण्डा होने पर उसमें प्रक्षेप द्रव्यों को एक साथ मिलाकर पुनः छननी से छानकर धीरे-धीरे मिला लें। थोड़ी देर के बाद शुद्ध गन्धक को भी उसी गुड़पाक में प्रक्षिप्र कर अच्छी तरह से मिला लें तथा ठण्डा होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'महाभल्लातकगुड़' को विश्वकल्याणार्थ भगवान् महादेव जी ने निर्मित किया है। इसे ६ से १२ ग्राम की मात्रा में सुखोष्ण गोदुग्ध के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से श्वित्रकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ठ, दद्रु, ऋष्यजिह्वकुष्ठ, काकणक कुष्ठ, पुण्डरीककुष्ठ, चर्मदलकुष्ठ, विस्फोट, मण्डलकुष्ठ, कण्डू, कपालकुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त्त, पाण्डु, व्रण, कृमि, ६ प्रकार के अर्श, कास, श्वास, भगन्दर, बालों का पकना-झड़ना तथा भयंकर आमवात नष्ट हो जाते हैं। इसके अनुपान में गुडूचीक्वाथ या गोदुग्ध का उपयोग करें। भोजन में प्रायः खाना पचने के बाद गरम-गरम खाना रोज खिलावें।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गुडूची क्वाथ। **गन्ध**—सुगन्धित अवलेह जैसा। **वर्ण**—गुड़ जैसा (राब जैसा)। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सभी तरह के कुष्ठों एवं रक्त-त्वग् विकारों में।

९१. अमृतागुग्गुलु

अमृतायाः पलशतं दशमूल्यास्तथा शतम्।
पाठामूर्वाबलातिक्तादार्वीगन्धर्वहस्तकाः ॥२१७॥
एषां दशपलान् भागान् बिभीतक्याः शतं हरेत्।
द्वे शते च हरीतक्या आमलक्यास्तथा शतम् ॥२१८॥
जलद्रोणद्वये पक्त्वा अष्टभागावशेषितम्।
प्रस्थं गुग्गुलुमाहृत्य प्रस्थार्द्धञ्च घृतं पचेत् ॥२१९॥
पाकसिद्धौ प्रदातव्यं गुडूच्याः सत्त्वमेव च।
पलद्वयं तथा शुण्ठ्या पिप्पल्याश्च पलद्वयम् ॥२२०॥
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत ज्ञात्वा दोषबलाबलम्।
अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तगदेषु च ॥२२१॥
कामलामामवातञ्च अग्निमान्द्यं भगन्दरम्।
पीनसञ्च प्रतिश्यायं प्लीहानमुदरं तथा।
एतान् रोगान्निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥२२२॥

१. गुडूची ५ किलो तथा २. दशमूल ५ किलो; ३. पाठा, ४. मूर्वा, ५. बलामूल, ६ कटुकी, ७ दारुहरिद्रा, ८. एरण्ड मूलत्वक् (प्रत्येक द्रव्य ४७० ग्राम लें); ९. बहेड़ा ५ किलो, १० हरीतकी १० किलो, ११, आमला ५ किलो, १२. शुद्ध गुग्गुलु ७५० ग्राम, १३. गोघृत ३७५ ग्राम, १४. गुडूचीसत्त्व ९२ ग्राम, १५. सोंठचूर्ण ९२ ग्राम तथा १६. पिप्पलीचूर्ण ९२ ग्राम लें। गुडूची से लेकर आमला तक के सभी द्रव्यों का यवकुट करें और स्टेनलेस स्टील के एक बड़े पात्र में २६ लीटर जल के साथ क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष (३.२५० लीटर) रहने पर छान लें। इसके बाद एक अलग पात्र में शुद्ध गुग्गुलु को सम्पूर्ण क्वाथ देकर पकावें। गुग्गुलु के द्रवित हो जाने पर उसे वस्त्रपूत करें। उसमें ३७५ ग्राम घी डालें और पाक करें। जब पकते-पकते गुग्गुलु गाढ़ा (हलवा जैसा) हो जाय तो गुडूचीसत्त्व, ततः शुण्ठी और पिप्पलीचूर्ण प्रक्षिप्त कर अच्छी तरह से मिलावें। पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और ठण्डा होने पर चौड़े मुख के काच के पात्र में रखें। रोगी का दोष एवं बल देखकर इसकी २ से ५ ग्राम तक की मात्रा खदिरक्वाथ के साथ दें। इसके सेवन से १८ प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त, कामला, आमवात, अग्निमांद्य, भगन्दर, पीनस, प्रतिश्याय, प्लीहरोग और उदररोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२ से ५ ग्राम। **अनुपान**—खदिर क्वाथ से। **गन्ध**—गुग्गुलु गन्धि। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—१८ प्रकार के कुष्ठ रोग, वातरक्त, आमवात, भगन्दर आदि में।

९२. एकविंशतिकगुग्गुलु (च.द.)

चित्रकत्रिफलाव्योषमजाजी कारवी वचा।
सैन्धवातिविषाकुष्ठं चव्यैला च यवासकम् ॥२२३॥
विडङ्गान्यजमोदा च मुस्तान्यमरदारु च।
यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मानन्तु गुग्गुलुम् ॥२२४॥
सङ्कुट्य सर्पिषा सार्द्धं गुडिकां कारयेद् भिषक्।
प्रातर्भोजनकाले च खादेदग्निबलं यथा ॥२२५॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि कृमिं दुष्टव्रणानि च।
ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥२२६॥
गृध्रसीमथ भग्नञ्च गुल्मञ्चापि नियच्छति।
व्याधीन् कोष्ठगतांश्चापि जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥२२७॥

१. चित्रकमूल, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा, ५. सोंठ, ६. पीपर, ७. मरिच, ८. जीरा, ९. कारवी (मंगरैला), १०. वच, ११. सैन्धवलवण, १२. अतीस, १३. कूठ, १४. चव्य, १५. छोटीइलायची, १६. जवासा, १७. वायविडङ्ग, १८. अजमोदा, १९. नागरमोथा और २०. देवदारु—ये प्रत्येक द्रव्य ५० ग्राम लें तथा १२ शुद्ध गुग्गुलु १ किलो लें। चित्रक से लेकर देवदारु तक सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में शुद्ध गुग्गुलु तथा थोड़ा जल देकर गरम करें। जब गुग्गुलु पिघल जाय और हलवा जैसा हो जाय तो गुग्गुलु पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। अब उपर्युक्त सभी चूर्णों का प्रक्षेप देकर अच्छी तरह से मिलावें और बाद में गुग्गुलु को सिल पर थोड़ा घी देकर पीसें और १-१ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। अच्छी तरह से सूखने के बाद काचपात्र में संग्रहीत करें। इस गुग्गुलु को गुडूचीक्वाथ अथवा गुडूचीस्वरस

के साथ प्रतिदिन सेवन करने पर १८ प्रकार के कुष्ठ, कृमिरोग, दुष्ट व्रण, ग्रहणी, अर्श, मुखरोग, गलरोग, गृध्रसी, अस्थिभंग, गुल्म और उदररोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे भगवान् विष्णु असुरों को नष्ट करते हैं।

मात्रा—१ से २ ग्राम। **अनुपान**—गुडूचीस्वरस से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—१८ प्रकार के कुष्ठ, कृमि तथा दुष्टव्रण में।

९३. पञ्चतिक्तघृतगुग्गुलु (च.द.)

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
भागान्पृथग्दशपलान् विपचेद्घटेऽपाम्।
अष्टांशशेषितरसेन सुनिश्चितेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥२२८॥
पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या
द्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः ।
तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकानि
रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥२२९॥
मञ्जिष्ठयाऽतिविषया वरया यमान्या
संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसङ्ख्यैः।
तन्नाशयेद् विषमतिप्रबलं समीरं
सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥२३०॥
नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमाला-
जत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ।
यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोष-
हृत्पाण्डुरोगगलविद्रधिवातरक्तम् ॥२३१॥

क्वाथ—१. निम्बत्वक्, २. गुडूची, ३. वासापञ्चाङ्ग, ४. पटोललता, ५. कण्टकारी (प्रत्येक द्रव्य ४७० ग्राम) तथा ६. गोघृत ७५० ग्राम लें।

कल्क—१. पाठा, २. वायविडंग, ३. देवदारु, ४. गजपीपर, ५. सर्जिक्षार, ६. यवक्षार, ७. सोंठ, ८. हल्दी, ९. सौंफ, १०. चव्य, ११. कूठ, १२. तेजोवती, १३. मरिच, १४. कुटजत्वक्, १५. जीरा, १६. चित्रकमूल, १७. कटुकी, १८. शुद्ध भल्लातक, १९. वच, २०. पीपरामूल, २१. मंजीठ, २२. अतीस, २३. त्रिफला, २४. अजवायन (प्रत्येक द्रव्य ७ ग्राम) तथा २५. शुद्ध गुग्गुलु २३५ ग्राम (५ पल) लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। तदनन्तर क्वाथ द्रव्यों का यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। कल्क के सभी २५ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। इसके बाद कल्क और क्वाथ दोनों को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। उसी समय गुग्गुलु को गरम पानी में घोलें और घी में डालकर पकावें। कल्क के सम्यक् पाक के लिए ३ लीटर जल देकर पुनः पकावें। जलीयांश सूखने पर पाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस पञ्चतिक्तघृतगुग्गुलु की ६ से १२ ग्राम की मात्रा गरमदूध या गरम-जल के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करें। इसके सेवन से अति प्रबलवायु एवं विषमवायु, सन्धि-अस्थि-मज्जागत कुष्ठ, नाडीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, ऊर्ध्वजत्रुगत सभी रोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, राजयक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, कास, शोष, हृद्रोग, पाण्डु रोग, गलविद्रधि और वातरक्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ किन्तु तली में गुग्गुलु बैठ जाता है। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—१८ प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नाडीव्रण और अर्बुद में।

९४. वज्रकघृत (च.द.)

वासागुडूचीत्रिफलापटोल-
करञ्जनिम्बासनकृष्णवेत्रम् ।
तत्क्वाथकल्केन घृतं विपक्वं
तद्वज्रवत्कुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥२३२॥
विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः
कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यः।
पौराणिकीं कान्तिमवाप्य जीवे-
दव्याहतो वर्षशतञ्च कुष्ठी ॥२३३॥

क्वाथ—१. वासापञ्चाङ्ग, २. गुडूची, ३. आमला, ४. हरीतकी, ५. बहेड़ा, ६. पटोललता, ७ करञ्जत्वक्, ८. निम्बत्वक्, ९. विजयसारकाष्ठ तथा १०, कृष्णवेत्र—प्रत्येक द्रव्य ४०० ग्राम लें। इन्हीं द्रव्यों का कल्क के लिए भी उपयोग करें। गोघृत १ किलो लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। इसके बाद प्रत्येक द्रव्य ३७५ ग्रा. लें और यवकुट कर १ द्रोण (१२ लीटर) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर उतारकर छान लें। इसके अतिरिक्त इन्हीं द्रव्यों (२५ ग्राम प्रत्येक) का सूक्ष्मचूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसें और कल्क बनावें। ततः कल्क और क्वाथ दोनों को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान ले। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वज्रकघृत का ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ प्रतिदिन सेवन करावें। इसके सेवन से जिन कुष्ठियों का कान, नाक तथा हाथ-पैर की अंगुलियाँ गलकर नष्ट हो गईं हों अथवा उनमें कीड़े पड़ गये हों,

आवाज बदल गई हो तो ऐसे रोगियों में इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है। शरीर पूर्ववत् हो जाता है और शरीर कान्तिवान् होकर वह एक सौ वर्ष तक जीवित रहता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—गलितकुष्ठ में।

९५. तिक्तकघृत (च.द.)

त्रिफलाद्विनिशावासायासपर्पटकूलकान्।
त्रायन्तीकटुकानिम्बान्प्रत्येकं द्विपलोन्मितान् ॥२३४॥
क्वाथयित्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन तु।
घृतप्रस्थं पचेत्कल्कैः पिप्पलीघनचन्दनैः ॥२३५॥
त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैस्तत्पीतं तिक्तकं घृतम्।
हन्ति कुष्ठज्वरार्शांसि श्वयथुं ग्रहणीगदम्।
पाण्डुरोगं विसर्पञ्च क्लीबानामपि शस्यते ॥२३६॥

क्वाथ—१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. हल्दी, ५. दारुहल्दी, ६. वासापञ्चाङ्ग, ७. जवासा, ८. पित्तपापड़ा, ९. पटोललता, १० त्रायमाण, ११. कटुकी, १२ निम्बत्वक्—प्रत्येक द्रव्य ९३ ग्राम (२ पल) तथा १३. गोघृत ७५० ग्राम (१ प्रस्थ) लें।

कल्क—१. पीपर, २. नागरमोथा, ३. रक्तचन्दन, ४. त्रायमाण, ५. इन्द्रयव और ६. चिरायता—प्रत्येक द्रव्य ३० ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः क्वाथ द्रव्यों का यवकुट कर १ द्रोण (१३ लीटर) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। कल्क के सभी ६ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इसके बाद क्वाथ और कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तिक्तकघृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरमदूध या गरम जल के साथ सेवन करें। इस घृत के सेवन से कुष्ठ, ज्वर, अर्श, शोथ, ग्रहणी, पाण्डु, विसर्परोग नष्ट हो जाते हैं। यह घृत नपुंसकता के लिए भी बहुत उपयोगी है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरमदूध या गरमजल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—कुष्ठ, शोथ, ग्रहणी एवं विसर्प में।

९६. महातिक्तघृत (चरक)

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्पाकं तिक्तरोहिणीं पाठाम्।
मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ॥२३७॥
धन्वयासमपि चन्दनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यौ च।
षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं शारिवे चोभे ॥२३८॥
वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तञ्च।
कल्कान्कुर्यान्मतिमान् यष्ट्याह्वं त्रायमाणाञ्च ॥२३९॥
कल्कस्य च तुर्यांशो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम्।
द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥२४०॥
कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि।
वीसर्पमम्लपित्तं वातासृक्पाण्डुरोगञ्च ॥२४१॥
विस्फोटकान् सपामानुन्मादान् कामलां ज्वरं कण्डूम्।
हृद्रोगगुल्मपिडकामसृग्दरं गण्डमालाञ्च ॥२४२॥
हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः।
योगशतैरप्यजितान् महाविकारान् महातिक्तम् ॥२४३॥

कल्क—१. सप्तपर्णत्वक्, २. अतीस, ३. अमलतास फलमज्जा, ४. कटुकी, ५. पाठा, ६. नागरमोथा, ७. खस, ८. आमला, ९. हरीतकी, १०. बहेड़ा, ११. पटोललता, १२. निम्ब त्वक्, १३. पित्तपापड़ा, १४. जवासा, १५. रक्तचन्दन, १६. पीपर, १७. पद्मकाष्ठ, १८ हल्दी, १९. दारुहल्दी, २०. वच, २१. इन्द्रायणमूल, २२. शतावरी, २३. कृष्णअनन्तमूल, २४. श्वेतअनन्तमूल, २५. इन्द्रयव, २६. वासापञ्चाङ्ग, २७. मूर्वामूल, २८. गुडूची, २९. चिरायता, ३०. मुलेठी और ३१. त्रायमाण—प्रत्येक द्रव्य ८ ग्राम; गोघृत १ किलो तथा आमला २ किलो लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः सप्तपर्णत्वक् से त्रायमाण तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। आमला को यवकुट कर १६ लीटर (अष्टगुण) जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। अर्थात् २ लीटर क्वाथ शेष रहना चाहिए जो घृत से दुगुना होगा। आचार्यश्री ने ऐसा ही कहा है। अब कल्क और आमला क्वाथ को मूर्च्छितघृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर ४ लीटर जल देकर सम्यक् पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'महातिक्तघृत' को गरम दूध या गरम जल के साथ ६ से १२ ग्राम की मात्रा में प्रतिदिन पिलाने से कुष्ठ, रक्त-पित्त, भयंकर रक्तस्रावी अर्श, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोट, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिडका, रक्तप्रदर और गण्डमालारोग नष्ट हो जाते हैं। अन्य सैकड़ों योगों से नष्ट नहीं होने वाले महारोग इस घृत का पान करने से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम तक। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—भयंकर

तिक्त। **उपयोग**—सभी कुष्ठ, उन्माद, पाण्डु, कामला तथा अन्य पित्तजरोग में।

९७. सोमराजीघृत (वङ्गसेन)

खदिरस्य पलान्यष्टौ सोमराज्याः पलद्वयम्।
त्रिफला पिचुमर्दश्च दारु दार्वी च पर्पटम् ॥२४४॥
पृथक् पलं समुद्धृत्य सिंहिकायाः पलद्वयम्।
जलाढकद्वये साध्यं यावत् पादावशेषितम् ॥२४५॥
क्वाथेनानेन मृद्वग्नौ घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
चतुष्पलं सोमराज्याः खदिरस्य पलं पृथक् ॥२४६॥
पटोलमूलं त्रिफला त्रायमाणा दुरालभा।
कल्कार्थं कटुकञ्चापि कर्षांशान्सूक्ष्मकुट्टितान् ॥२४७॥
पलद्वयं कौशिकस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत्।
सिद्धं सर्पिरिदं श्वित्रं हन्यादम्भ इवानलम् ॥२४८॥
मेहपीनसकुष्ठघ्नं पीतं दीपनपाचनम्।
आमवातापतन्त्राणां पाण्डुप्रदररोगिणाम् ॥२४९॥
अष्टादशानां कुष्ठानां भेषजं परमं मतम्।
सोमराजीघृतं नाम निर्मितं ब्रह्मणा पुरा ॥२५०॥

क्वाथ—१. खदिर (खैर) की लकड़ी ३७५ ग्राम, २. बाकुची ९३ ग्राम, ३. आमला ४६ ग्राम, ४. हरीतकी ४६ ग्राम, ५. बहेड़ा ४६ ग्राम, ६. निम्बत्वक् ४६ ग्राम, ७. देवदारु ४६ ग्राम, ८. दारुहल्दी ४६ ग्राम, ९. पित्तपापड़ा ४६ ग्राम तथा १० कण्टकारी ९२ ग्राम; जल ६ लीटर और गोघृत ७५० ग्राम (१ प्रस्थ) लें।

कल्क—१. बाकुचीबीज १८५ ग्राम, २. खदिरकाष्ठचूर्ण ४६ ग्राम, ३. परवललतामूल १२ ग्राम, ४. आमला १२ ग्राम, ५. हरीतकी १२ ग्राम, ६. बहेड़ा १२ ग्राम, ७. त्रायमाण १२ ग्राम, ८. जवासा १२ ग्राम, ९. शुद्ध गुग्गुलु ९३ ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः खदिरकाष्ठ से कण्टकारी तक के सभी १० द्रव्यों का यवकुट कर दो आढक (६ लीटर) जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। कल्क के सभी ९ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें तथा जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब क्वाथ और कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेह की परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर इसको काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'सोमराजीघृत' को गरम दूध या गरम जल के साथ ६ से १२ ग्राम की मात्रा में सेवन करें। अग्नि जैसे जल को जला देती है उसी प्रकार यह घृत श्वेतकुष्ठ का नाश कर देता है। इसके अतिरिक्त आमवात, अपतन्त्रक, पाण्डु, प्रदर, पीनस, प्रमेह, कुष्ठ को यह घृत नाश कर देता है। यह १८ कुष्ठों की परमौषधि है। यह घृत दीपन और पाचन है। इस सोमरोजीघृत को भगवान् ब्रह्मा जी ने पहले कहा था।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—श्वेतकुष्ठ तथा १८ प्रकार के कुष्ठों में।

९८. पञ्चतिक्तघृत (च.द.)

निम्बं पटोलं व्याघ्रीञ्च गुडूचीं वासकं तथा।
कुर्याद्दशपलान् भागानेकैकस्य सुकुट्टितान् ॥२५१॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम्।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥२५२॥
पञ्चतिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम्।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥२५३॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति।
दुष्टव्रणकृमीनर्शःपञ्चकासांश्च नाशयेत् ॥२५४॥

क्वाथ—१. निम्बत्वक्, २. पटोललता, ३. कण्टकारी, ४. गुडूची, ५. वासापञ्चाङ्ग (प्रत्येक ४७० ग्राम), ६. गोघृत ७५० ग्राम (१ प्रस्थ) तथा ७. त्रिफला १८८ ग्राम (कल्कार्थ) लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। इसके बाद क्वाथ द्रव्य को यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। ततः त्रिफला का चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीस-कर कल्क बना लें। अब क्वाथ और कल्क को मूर्च्छितघृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे पञ्च-तिक्तघृत कहते हैं। इसे ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध तथा गरम जल के साथ मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से कुष्ठ, ८० प्रकार के वातजविकार, ४० प्रकार के पित्तजविकार और २० प्रकार के कफजविकार नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसके सेवन से दुष्टव्रण, कृमि, अर्श तथा पाँच प्रकार के कास नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—कुष्ठ, दुष्टव्रण, कृमि एवं कास में।

९९. महाखदिरघृत (चरक)

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयोस्तुले।
तुलार्द्धाः सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः ॥२५५॥
पर्पटः कुटजश्चैव वृषः कृमिहरस्तथा।
हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत् ॥२५६॥

सप्तपर्णश्च संक्षुद्य दशद्रोणेन वारिणा।
अष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥२५७॥
धात्रीरसञ्च तुल्यांशं सर्पिषश्चाढकं पचेत्।
महातिक्तककल्कैश्च यथोक्तैः पलसम्मितैः ॥२५८॥
निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात्।
महाखदिरमित्येतत्सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥२५९॥

क्वाथ—१. खदिरकाष्ठ २५ किलो, २. शीशमकाष्ठ ५ किलो, ३. विजयसारकाष्ठ ५ किलो, ४. करञ्जत्वक् २.५०० किलो, ५. निम्बत्वक् २.५०० किलो, ६. वेतस २.५०० किलो, ७. पित्तपापड़ा २.५०० किलो, ८. कुटजत्वक् २.५०० किलो, ९. वासापञ्चाङ्ग २.५०० किलो, १०. विडङ्ग २.५०० किलो, ११. हल्दी २.५०० किलो, १२. दारुहल्दी २.५०० किलो, १३. अमलतासफलमज्जा २.५०० किलो, १४. गुडूची २.५०० किलो, १५. त्रिफला २.५०० किलो, १६. निशोथ २.५०० किलो, १७. सप्तपर्णत्वक् २.५०० किलो, जल १३० लीटर (१० द्रोण), १८ गोघृत ३ किलो और १९. आमलास्वरस या क्वाथ ३ लीटर लें।

कल्क—१. सप्तपर्णत्वक्, २. अतीस, ३. अमलतासफल मज्जा, ४. कटुकी, ५. पाठा, ६. नागरमोथा, ७, खस, ८. आमला, ९. हरड़, १० बहेड़ा, ११. परवललता, १२. निम्बत्वक्, १३. पित्तपापड़ा, १४. जवासा, १५. लालचन्दन, १६. पीपर, १७. पद्मकाष्ठ, १८. हल्दी, १९. दारुहल्दी, २० वच, २१. इन्द्रायणमूल, २२. शतावरी, २३. श्वेतअनन्त मूल, २४. कृष्णअनन्तमूल, २५. इन्द्रयव, २६. वासापञ्चाङ्ग २६ मूर्वामूल, २८. चिरायता, २९. मुलेठी और ३०. त्रायमाण—प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम लें। इन्हें कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः जल से साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। ततः क्वाथ के १७ द्रव्यों का यवकुट कर एक स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में इस सम्पूर्ण यवकुट को रखें और १३० लीटर (१० द्रोण) जल डालकर क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष (१६ लीटर) रहने पर छान लें। इसके बाद गोघृत का मूर्च्छन करें और मूर्च्छितघृत में कल्क एवं क्वाथ डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर आमलास्वरस या क्वाथ डालकर पुनः पकावें। इसका भी जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारें और कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध या गरम जल के साथ पिलाने से तथा इस घृत का अभ्यङ्ग करने से सभी प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदूध एवं गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठ रोग में।

१००. उन्मत्ततैल (च.द.)

उन्मत्तकस्य बीजेन माणकक्षारवारिणा।
कटुतैलं विपक्तव्यं शीघ्रं हन्ति विपादिकाम् ॥२६०॥

सरसोंतैल १ लीटर, धत्तूरबीज २५० ग्राम तथा मानकन्द क्षार जल लें। सर्वप्रथम मानकन्द को जलाकर क्षार बना लें। २५० ग्राम मानकन्द क्षार को ४ लीटर जल में घोलकर जल तैयार करें। इसके बाद सरसोंतैल का मूर्च्छन करें। मूर्च्छिततैल में मानकन्दक्षारजल धत्तूर बीज का चूर्ण कर जल से सिल पर पीसकर बनाया हुआ कल्क मूर्च्छिततैल में डालकर पकावें। इस तैल में डालकर पकाते रहें। क्षार जल थोड़ा-थोड़ा कर तैल में मिलाना चाहिए अन्यथा फेनोद्गम होने से तैल पात्र से बाहर गिरने लगेगा। जलीयांश जलने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का मालिश करने से विपादिका नष्ट हो जाती है।

विमर्श—कभी-कभी इस विधि से पाक करने में तैल गाढ़ा एवं काला भी हो जाता है। ऐसा होने पर तैल में ४ लीटर जल देकर पुनः पाक करें और उपर्युक्त जमा क्षार को पृथक् कर लेते हैं।

१०१. कच्छूराक्षसतैल (भा.प्र.)

मनःशिलाऽऽलं कासीसं गन्धाश्म सिन्धुजन्म च।
स्वर्णक्षीरी शिलाभेदी शुण्ठी कुष्ठञ्च मागधी ॥२६१॥
लाङ्गली करवीरश्च दद्रूघ्नः कृमिहाऽनलः।
दन्तीनिम्बदलश्चैभिः पृथक् कर्षमितैर्भिषक् ॥२६२॥
कल्कीकृत्य पचेत्तैलं कटुप्रस्थद्वयोन्मितम्।
अर्कसेहुण्डदुग्धेन पृथक् पलमितेन च ॥२६३॥
गोमूत्रस्याढकेनापि शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
अभ्यङ्गेन हरेदेतत् कच्छूदुःसाध्यतामपि ॥२६४॥
पामानञ्च तथा कण्डूं त्वग्व्याधिरुधिरामयान्।
कच्छूराक्षसनामेदं तैलं हारीतभाषितम् ॥२६५॥

कल्क—१. मैनसिल, २. हरताल, ३. कासीस, ४. गन्धक, ५. सैन्धवलवण, ६. स्वर्णक्षीरीमूल, ७. पाषाणभेद, ८. सोंठ, ९. कूठ, १०. पीपर, ११. कलिहारी, १२ कनेरमूल, १३. चकमर्दबीज, १४. वायविडङ्ग, १५. चित्रकमूल, १६. दन्तीमूल, १७. निम्बपत्र—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें; १८. सरसोंतैल १.५०० लीटर (२ प्रस्थ), १९. गोमूत्र ३ लीटर, अर्कदुग्ध ४६ मि.ली. तथा १२ सेहुण्डक्षीर ४६ मि.ली. लें। सर्वप्रथम मैनसिल से निम्बपत्र तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण

करें तथा जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। सरसों तैल का मूर्च्छन कर कल्क तथा स्नुह्यर्क दुग्ध को तैल में डालें और थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र देकर मन्दाग्नि से पाक करें। गोमूत्र देकर पाक करने पर अधिक फेनोद्गम होता है। अत: थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र देकर पाक करें। गोमूत्र सूखने पर ६ लीटर जल देकर पुन: पकावें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यंग करने से असाध्य कच्छू, पामा, कण्डू, त्वग्विकार एवं रक्तविकार नष्ट हो जाते हैं। इस 'कच्छूराक्षसतैल' को आचार्य हारीत ने निर्मित किया है।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तीक्ष्ण, तिक्त। **उपयोग**—कच्छू, पामा एवं कण्डू में।

१०२. पञ्चाननतैल

एरण्डतुलसीबीजं वागुजी चक्रमर्दकम्।
तिक्तकोषातकीबीजं कृष्णाऽङ्कोठस्य बीजकम् ॥२६६॥
गोमूत्रदधिदुग्धैश्च पचेदप्याजमूत्रकैः।
कल्कं दत्त्वा शिला काशी पथ्या कुष्ठं विडङ्गकम् ॥
कटुतैलञ्च तल्लेपादीषद् घृष्ट्वा विलेपनैः।
पञ्चाननमिदं तैलं श्वेतकुष्ठकुलापहम् ॥२६८॥

१. एरण्डमूल, २. तुलसीबीज, ३. बाकुचीबीज, ४. चकमर्दबीज ५. कड़वीतोरईबीज, ६. पीपर, ७. अङ्कोलबीज, ८. मैनसिल, ९. कासीस, १०. हरीतकी, ११. कूठ, १२. वायविडङ्ग—प्रत्येक द्रव्य २० ग्राम लें; १३. सरसोंतैल १ लीटर, १४. गोमूत्र १ लीटर, १५. गोदुग्ध १ लीटर, १६. गोदधि १ किलो और १७. बकरी का मूत्र १ लीटर लें। सर्वप्रथम सरसोंतैल का मूर्च्छन करें। तत: एरण्डमूल से वायविडङ्ग तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को मूर्च्छिततैल में डालें तथा उसमें पहले गोदुग्ध देकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर गोदधि को मथानी से मथकर उस पाचित में तैल डालें और मन्दाग्नि से पकावें। दही का जलीयांश सूखने पर २५० मि.ली. गोमूत्र डालें तथा मन्दाग्नि से पकावें। गोमूत्र सूखने पर धीरे-धीरे सारा गोमूत्र डालकर पाक करें। तत: इसी प्रकार से बकरी का मूत्र भी धीरे-धीरे डालकर पकावें। इस तैल के सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल देकर पुन: पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैलपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छानकर शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पञ्चानन तैल' कहते हैं। इसे श्वेत कुष्ठ पर लगाकर थोड़ी देर घिसें। ऐसा प्रतिदिन ३-४ बार करने से कुछ दिनों में कुल के साथ श्वेत कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

मात्रा—बाह्य लेपन। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तीक्ष्ण। **उपयोग**—श्वेतकुष्ठ में।

१०३. आरग्वधादितैल (च.द.)

आरग्वधं धवं कुष्ठं हरितालं मनःशिला।
रजनीद्वयसंयुक्तं पचेत्तैलं विधानवित् ॥
एतेनाभ्यञ्जनादेव क्षिप्रं श्वित्रं विनश्यति ॥२६९॥

कल्क—१. आरग्वधपत्र, २. धातकीपुष्प, ३. कूठ, ४. हरताल, ५. मैनसिल, ६. हल्दी, ७. दारुहल्दी (प्रत्येक द्रव्य ३५ ग्राम) और तिलतैल १ लीटर तथा जल ४ लीटर लें। सर्वप्रथम तिल तैल का मूर्च्छन करें। तत: कल्क द्रव्यों का चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क और ४ लीटर जल को मूर्च्छिततैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से कुछ दिनों में श्वेतकुष्ठ नष्ट हो जाता है।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ। **गन्धा**—तिलतैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—श्वेतकुष्ठ में।

१०४. सिन्दूराद्यतैल (च.द.)

सिन्दूरार्धपलं पिष्ट्वा जीरकस्य पलन्तथा।
कटुतैलं पचेन्मानीं सद्यः पामाहरं परम् ॥२७०॥

सरसोतैल २५० मि. लीटर, नागसिन्दूर २३ ग्राम, जीरा ४६ ग्राम तथा जल ४ लीटर लें। कटु तैल का मूर्च्छन करें। तत: जीरा का चूर्ण करें। जीराचूर्ण और नागसिन्दूर को जल से पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छितकटुतैल में इस कल्क और १ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेहपाक की परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान ले तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से पामा रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

१०५. अर्क-मनःशिलातैल (च.द.)

अर्कपत्ररसे पक्वं कटुतैलं निशायुतम्।
मनःशिलायुतं वाऽपि पामाकण्ड्वादिनाशनम् ॥२७१॥

(१) सरसोतैल १ लीटर, अर्कपत्रस्वरस ४ लीटर तथा हरिद्राचूर्ण २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम कटुतैल का मूर्च्छन करें। तत: थोड़ा अर्कपत्रस्वरस देकर हरिद्राचूर्ण का कल्क बना लें। इसके बाद हरिद्रा कल्क और अर्कस्वरस को मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करे। अर्कस्वरस सूख जाने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे

उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। अथवा

(२) सरसोंतैल १ लीटर, अर्कपत्रस्वरस ४ लीटर और मनःशिलाचूर्ण २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम सरसोंतैल का मूर्च्छन करें। मनःशिलाचूर्ण में अर्कपत्रस्वरस मिलाकर कल्क बना लें। इसके बाद कल्क और स्वरस मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेह की परीक्षा कर तैल पात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इन तैलों का लेप करने से पामा, कण्डू आदि चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

१०६. आदित्यपाकतैल (च.द.)

मञ्जिष्ठात्रिफलालाक्षानिशाशिलाऽऽलगन्धकैः।
चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहरं परम्॥२७२॥

तिलतैल ७५० मि.ली. लें। १. मंजीठ, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा, ५. लाक्षा, ६. हल्दी, ७. मैनसिल, ८. हरताल और ९. गन्धक—प्रत्येक द्रव्य २० ग्राम तथा जल ३ लीटर लें। लोहे की एक बड़ी थाल या परात में तिलतैल रखें। उसमें ३ लीटर जल मिलावें। इसके बाद मंजीठ आदि सभी ९ द्रव्यों का चूर्ण कर जलमिश्रित कर कल्क बना लें और उस परात में डालें। इसके बाद उस परात को कड़ी धूप में सारे दिन रखें। इस तरह आठ-दस दिनों तक कड़ी धूप में रखने से (सूर्य की प्रखर किरणों से) जलीयांश सूख जाता है और तैल सुपक्व हो जाता है। इसीलिए इसका नाम आदित्य पाक तैल रखा है। इस तैल को कपड़े से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से पामा नष्ट हो जाती है।

१०७. दूर्वाद्यतैल (च.द.)

स्वरसेन च दूर्वायाः पचेत्तैलं चतुर्गुणे।
कच्छूविचर्चिकापामा अभ्यङ्गादेव नाशयेत्॥२७३॥

तिलतैल १ लीटर, दूर्वास्वरस ४ लीटर तथा दूर्वाकल्क २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करे। ततः दूर्वा को सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में दूर्वास्वरस और दूर्वाकल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से कच्छू, विचर्चिका और पामारोग नष्ट हो जाते है।

१०८. सिन्दूरादितैल (च.द.)

सिन्दूरं चन्दनं मांसीं विडङ्गं रजनीद्वयम्।
प्रियङ्गुपद्मकं कुष्ठं मञ्जिष्ठां खदिरं वचाम्॥२७४॥
जात्यर्कत्रिवृतानिम्बकरञ्जं विषमेव च।
कृष्णवेत्रकलोध्रञ्च प्रपुन्नाडञ्च संहरेत्॥२७५॥
श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया।
अभ्यङ्गेन प्रयुञ्जीत सर्वकुष्ठविनाशनम्॥२७६॥
पामाविचर्चिकाकण्डूवीसर्पादिविनाशनम्।
रक्तपित्तोत्थितान् हन्ति रोगानेवंविधान् बहून्॥२७७॥

तिलतैल १ लीटर लें।

कल्क—१. नागसिन्दूर, २. रक्तचन्दन, ३. जटामांसी, ४. वायविडङ्ग, ५. हल्दी, ६. दारुहल्दी, ७. प्रियङ्गु, ८. पद्मकाठ, ९. कूठ, १०. मंजीठ, ११. खदिरकाष्ठ, १२. वच, १३. चमेली की पत्ती, १४. अर्कपत्र, १५. निशोथ, १६. निम्बपत्र, १७. करञ्जपत्र, १८. वत्सनाभविष, १९. काला वेतस, २०. लोध्रत्वक् और २१. चकमर्द बीज—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें तथा सभी कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित तैल में इस कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपत्र में संग्रहीत करें। इसके अभ्यङ्ग से सभी प्रकार के कुष्ठ, पामा, विचर्चिका, कण्डू, विसर्प तथा रक्तपित्तजन्य चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

१०९. करवीरादितैल-१ (चरक)

श्वेतकरवीररसो गोमूत्रं चित्रकं विडङ्गञ्च।
कुष्ठेषु तैलयोगः सिद्धोऽयं सम्मतो भिषजाम्॥२७८॥

तिलतैल १ लीटर, गोमूत्र ४ लीटर तथा श्वेतकरवीरमूलत्वक् का क्वाथ ४ लीटर लें।

कल्क—चित्रकमूल १२५ ग्राम एवं वायविडङ्ग १२५ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। तदनन्तर चित्रक और विडङ्ग का चूर्ण बना लें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। मूर्च्छिततैल में करवीरक्वाथ और कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर २५० मि.ली. गोमूत्र मिलाकर पाक करें। गोमूत्र डालने से तैल में काफी फेनोद्गम होता है अतः थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र देकर तैल पाक करना चाहिए। इसी प्रकार से सारे गोमूत्र को तैल में पका लें। बड़े चम्मच से तैल को बराबर चलाते रहें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

११०. करवीरादितैल-२ (च.द.)

श्वेतकरवीरमूलं विषांशसाधितं गोमूत्रे।
चर्मदलसिध्मपामाविस्फोटकृमिकिटिमजित्तैलम्॥

श्वेतकरवीरमूलत्वक् तथा वत्सनाभविष प्रत्येक १२५ ग्राम

लें। तिलतैल १ लीटर और गोमूत्र ४ लीटर लें। सर्वप्रथम तैल का मूर्च्छन करें। ततः करवीरमूलत्वक् और वत्सनाभविष दोनों का चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इसके बाद मूर्च्छिततैल में कल्क और २५० मि.ली. गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। गोमूत्र के साथ तैलपाक करने में अत्यधिक फेनोद्‌गम होता है। अतः थोड़ा-थोड़ा देकर सम्पूर्ण गोमूत्र का तैल में पाक करें। ततः गोमूत्र एवं कल्क का सम्यक्-पाकार्थ 4 ली. जल देकर पुनः पाक करें । जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके प्रयोग से चर्मदल, सिध्म,पामा विस्फोट, कृमि और किटिमरोग नष्ट हो जाते हैं।

१११. गण्डरिकादितैल (च.द.)

गण्डरिकाचित्रकमार्कवार्क-
कुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रैः ।
तैलं पचेन्मण्डलकुष्ठदद्रु-
दुष्टव्रणारुःकिटिभापहारिः ॥२७९॥

१. स्नुहीक्षीर, २. चित्रकमूल, ३. भृङ्गराज, ४. अर्कदुग्ध, ५. कूठ, ६. अमलतासवृक्षत्वक्, ७. सैन्धवलवण (प्रत्येक द्रव्य ३५ ग्राम) ८. तिलतैल १ लीटर और गोमूत्र ४ लीटर लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः चित्रक एवं अन्य ठोस द्रव्यों का चूर्ण करें। उसमें दोनों द्रव्यों (स्नुही एवं अर्क) का दूध एवं जल मिलाकर सिल पर पीसें और कल्क बनावें। अब मूर्च्छिततैल में कल्क एवं ५०० मि.ली. गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। ततः थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र डालकर तैल पाक करें। सारा गोमूत्र सूखने के बाद परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तुरन्त छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से मण्डलकुष्ठ, दद्रु, दुष्टव्रण, शतारु (रूषी) और किटिभरोग नष्ट हो जाते हैं।

११२. कृष्णसर्पतैल

मृतस्य कृष्णसर्पस्य शिरःपुच्छान्त्रवर्जितम् ।
अन्तर्धूमकृतं भस्म वागुजीतैलमिश्रितम् ॥
एतेन मर्दनादेव गलत्कुष्ठं विनश्यति ॥२८०॥

मरा हुआ काला साँप जिसका शिर, पुच्छ और आन्त्रभाग काटकर निकाला गया हो, लें। इस साँप को एक छोटी हाँडी में रखकर शराव से मुख ढककर सन्धि-बन्धन करें। इस सम्पुट को वाराहपुट में रखकर पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर सर्प भस्म (मसी) को निकालकर खरल में महीन पीसें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस मसी में बराबर मात्रा में बाकुची तैल मिलाकर प्रतिदिन कुष्ठ पर लगाने को दें। अथवा प्रारम्भ में ही सम्पूर्ण मसी को बाकुची तैल में अच्छी तरह से मिलाकर रखें। इस मलहम को प्रतिदिन गलितकुष्ठ में लगाने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

११३. पृथ्वीसारतैल (च.द.)

चित्रकस्याथ निर्गुण्ड्या हयमारस्य मूलतः ।
नाडीचबीजाद्विषतः काञ्जीपिष्टं पलं पलम् ॥२८१॥
करञ्जतैलाष्टपलं काञ्जिकस्य पलं पुनः।
मिश्रितं सूर्यसम्पक्वं तैलं कुष्ठव्रणास्रजित् ॥२८२॥

१. चित्रकमूल, २. निर्गुण्डीमूलत्वक्, ३. कनेरमूलत्वक्, ४. नाडीचशाक, ५. वत्सनाभविष (प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम) और ६. करञ्ज तैल ३७५ मि.ली. लें। चित्रकमूल से वत्सनाभ विष तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण करें और काञ्जी के साथ सिल पर पीसें। ततः करञ्जतैल को एक लोहे की बड़ी परात में डालकर सूर्य की तीक्ष्ण धूप में रखें। ततः उस तैल में काञ्जी पिष्ट कल्क और तैल के बराबर (३७५ मि.ली.) जल मिलावें। इसे सूर्य की तीक्ष्ण धूप में तब तक रहने दें, जब तक तैल में स्थित जल सूख न जाय। उसे चम्मच से चलाते रहें। जब जलीयांश सूख जाय तब उस तैल को कपड़े से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को कुष्ठ तथा रक्तस्राव युक्त कुष्ठ में प्रतिदिन लगाने से कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

११४. कुष्ठकालानलतैल

सूतं गन्धं शिलां तालं काञ्जिकैर्मर्दयेद्दिनम् ।
तल्लिप्तवस्त्रवर्त्तिं तां तैलाक्तां ज्वालयेदधः ॥२८३॥
स्थिते पात्रे पचेत्तैलं गृहीत्वा लेपयेत्ततः ।
कुष्ठस्थानं विशेषेण सर्वकुष्ठं हरत्यलम् ॥
इदं कालानलं तैलं वातकुष्ठमहौषधम् ॥२८४॥

१. पारद, २. गन्धक, ३. मैनसिल तथा ४. हरताल प्रत्येक ५० ग्राम लें। वस्त्र खण्ड १ मीटर और तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः हरताल एवं मनःशिला को भी उस कज्जली में मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद उस खरल में १०० मि.ली. तैल मिलाकर पेस्ट जैसा बना लें। १ मीटर कपड़ा का ४ खण्ड करें। १ खण्ड को टेबल पर फैलाकर उस पर उक्त पेस्ट लगाकर मोड़कर बत्ती जैसा लपेट दें। ऐसी ४ बत्ती बना लें और उन चारों को पतले धागे से लपेटकर तैल पात्र में २४ घण्टे तक डुबोकर रखें। क्रमशः १-१ बत्ती को सन्दश (संडसी) से पकड़ें तथा उसके निचले सिरे में अग्नि प्रज्वलित करें, जिससे बत्ती से बूँद-बूँद कर तेल टपकता है उसे संग्रह करें। ततः कपड़ा से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'कुष्ठकालानलतैल' का कुष्ठ में लेप करने

से सभी प्रकार के कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं। वातज कुष्ठ की तो यह महौषधि है।

११५. कुष्ठराक्षसतैल

सूतकं गन्धकं कुष्ठं सप्तपर्णञ्च चित्रकम्।
सिन्दूरञ्च रसोनञ्च हरितालमवल्गुजम् ॥२८५॥
आरग्वधस्य बीजानि जीर्णताम्रं मनःशिला।
प्रत्येकं कर्षमेतेषां कटुतैलं पलाष्टकम् ॥२८६॥
साधयेत्सूर्यतापेन सर्वकुष्ठविनाशनम्।
श्वित्रमौदुम्बरं कच्छूं मांसवृद्धिं भगन्दरम् ॥२८७॥
विचर्चिकाञ्च पामानं वातरक्तं सुदारुणम्।
गम्भीरञ्च तथोत्तानं नाशयेदस्य म्रक्षणात् ॥२८८॥
कुष्ठराक्षसनामेदं सवर्णकरणं परम्।
अश्विभ्यां निर्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहहेतवे ॥२८९॥

१. पारद, २. गन्धक, ३. कूठ, ४. सप्तपर्णत्वक्, चित्रकमूल, ६. नागसिन्दूर, ६ लशुन, ८. हरताल, ९. बाकुचीबीज, १० अमलतासबीज, ११. ताम्रभस्म और १२. मैनसिल—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें। सरसोतैल ३७५ मि.ली. तथा जल .७५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उसमें हरताल एवं मैनसिल दे-देकर क्रमशः मर्दन करें। तदनन्तर ताम्रभस्म मिलावें। इसके बाद सिन्दूर तत्पश्चात् सप्तपर्ण आदि काष्ठौषधियों के चूर्णों को मिलाकर कज्जली का पुनः मर्दन करें। स्टेनलेस स्टील की या लौहनिर्मित बड़ी परात में सरसोंतैल रखें। खरल में थोड़ा पानी देकर कज्जली मिश्रण को पेस्ट जैसा बनाकर उस पेस्ट को ७५० मि. लीटर जल में घोलकर सरसो तैल में मिला दें। उक्त परात को कड़ी धूप में रखें। सूर्य की तीक्ष्ण गर्मी से जल सूख जायगा। इस तरह १०-१५ दिन रखना चाहिए। गर्मी (वैशाख-जेठ महीना) का मौसम इसके लिए अनुकूल रहता है। जब पूरा जल (कल्क का जल भी) सूख जाय तो कपड़े से छानकर तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'कुष्ठराक्षस तैल' का अभ्यङ्ग करने से सभी प्रकार के कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं। विशेषकर श्वित्र, उदुम्बरकुष्ठ, कच्छू, मांस-वृद्धि, भगन्दर, विचर्चिका, पामा, गम्भीर और उत्तान नामक दोनों भयंकर वातरक्त। इसके अतिरिक्त 'सवर्णीकरणार्थ' यह तैल बहुत उपयोगी है। इस 'कुष्ठराक्षसतैल' को अश्विनीकुमारों ने लोक-कल्याणार्थ निर्मित किया था।

११६. षड्बिन्दुतैल

सिन्दूरामृततालगैरिकहलाऽजाजीगदत्र्यूषणै-
र्हृत्पाषाणरसोनबाणदहनस्नुह्यर्कदुग्धैर्निशा-
राजीगन्धकहिङ्गुभिः परिमितैः शुक्त्या पचेत्सार्षपं
तैलं प्रस्थमितं घृतस्य कुडवं पात्रं तथाऽर्कार्द्रसम् ॥
गोमूत्रञ्च तथा विलीय सकलं पूतं श्रृतं रोगिणे।
दद्यात्कुष्ठविचर्चिकादिषु भिषङ् नाम्ना तु षड्बिन्दुकम् ॥

१. नागसिन्दूर, २. वत्सनाभविष, ३. हरताल, ४. गैरिक, ५. कलिहारीमूल, ६. जीरा, ७. कूठ, ८. सोंठ, ९. मरिच, १० पीपर, ११. मनःशिला, १२ लशुन, १३. शरपुंखामूल, १४. चित्रकमूल, १५. स्नुहीक्षीर, १६. अर्कक्षीर, १७. हल्दी, १८. राई, १९ गन्धक, २०. हींग (प्रत्येक द्रव्य २० ग्राम लें); २१. सरसोतैल ७५० मि.ली., २२. गोघृत १९० ग्राम, २३. अर्कपत्रस्वरस ३ लीटर लें। सर्वप्रथम तैल का मूर्च्छन करें। नागसिन्दूर से हींग पर्यन्त सभी २० द्रव्यों को २०-२० ग्राम लें। इसमें से नागसिन्दूर तथा स्नुहीक्षीर एवं अर्कक्षीर पृथक् कर अन्य द्रव्यों का चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें तथा उसी में नागसिन्दूर एवं दोनों क्षीर मिला दें। इसके बाद मूर्च्छिततैल में कल्क और अर्कस्वरस मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। अर्कस्वरस सूखने के बाद १-१ लीटर गोमूत्र देकर ३-४ बार में मन्दाग्नि से पाक करें। क्योंकि गोमूत्र देने से अत्यधिक फेनोद्‌गम होता है और तैल बर्बाद होने की सम्भावना रहती है। अतः थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र डालकर स्नेहपाक करें। गोमूत्र सूख जाने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काच-पात्र में संग्रहीत करें। इस 'षड्बिन्दुतैल' का कुष्ठ, विचर्चिका आदि रोगों में अभ्यङ्ग करने से अत्यधिक लाभ होता है।

११७. मरिचादितैल-१ (च.द.)

मरिचालशिलाब्दार्कपयोऽश्वारिजटात्रिवृत्।
शकृद्रसविशालारुङ्निशायुग्दारुचन्दनैः ॥२९२॥
कटुतैलात्पचेत्प्रस्थं ह्यक्षैर्विषपलान्वितैः।
सगोमूत्रैस्तदभ्यङ्गाद् दद्रुश्वित्रविनाशनम् ॥
सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत्प्रशस्यते ॥२९३॥

१. मरिच, २. हरताल, ३. मनःशिला, ४. नागरमोथा, ५. अर्कदुग्ध, ६. कनेरमूलत्वक्, ७. निशोथ, ८. गोबर का रस, ९. १० इन्द्रायणमूल, ११. कूठ, १२. हल्दी, १३. दारुहल्दी, १४. देवदारु रक्तचन्दन (प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम), १५. वत्सनाभविष ४६ ग्राम, १६. सरसोंतैल ७५० मि.ली. लें। गोमूत्र ३ लीटर एवं जल ३ लीटर लें। सर्वप्रथम कटुतैल का मूर्च्छन करें। ततः मरिच से लेकर वत्सनाभ पर्यन्त तक के द्रव्यों (द्रव द्रव्य छोड़कर) का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें तथा गोबर का रस और अर्कदुग्ध मिलाकर कल्क को मूर्च्छिततैल में डालें। इसके बाद १-१ लीटर गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। गोमूत्र डालने से पाक करते समय तैल में अत्यधिक फेनोद्‌गम होता है। इसलिए गोमूत्र

थोड़ा-थोड़ा देकर पकाना चाहिए। गोमूत्र सूख जाने के बाद कल्क के सम्यक् पाक हेतु ३ लीटर जल देकर पुन: पाक करें। जलीयांश सूखने के बाद स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेह की परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस मरिचादितैल का अभ्यङ्ग करने से सभी प्रकार के कुष्ठरोग, दद्रु एवं श्वित्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—मात्र बाह्य प्रयोगार्थ अभ्यंग के लिए। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—मटमैला। **उपयोग**—सभी तरह के कुष्ठ रोगों में।

११८. मरिचादि तैल- २　　(च.द.)

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः ।
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ।२९४॥
विशाला करवीरञ्च हरितालं मनःशिला ।
चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥२९५॥
शिरीषं कुटजो निम्बः सप्तपर्णस्नुहामृता ।
शम्पाको नक्तमालोऽब्दं खदिरं पिप्पली वचा ॥२९६॥
ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत् ।
आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥२९७॥
मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
पक्त्वा तैलवरं ह्येतन्म्रक्षयेत् कुष्ठकान् व्रणान् ॥२९८॥
पामाविचर्चिकादद्रुकण्डूविस्फोटकानि च ।
वलयः पलितं छाया नीली व्यङ्गं तथैव च ॥२९९॥
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यञ्च जायते ।
प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यन्तु दीयते ॥३००॥
परामपि जरां प्राप्य न स्तना यान्ति नम्रताम् ।
बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वा वायुपीडितः ।
त्रिभिरभ्यञ्जनैर्गाढं भवेन्मारुतविक्रमः ॥३०१॥

सरसो तैल ३ लीटर, गोमूत्र १२ लीटर तथा जल १२ लीटर लें।

क्वाथ—१. मरिच, २. निशोथ, ३. दन्तीमूल, ४. अर्कदुग्ध, ५. गोबर का रस, ६. देवदारु, ७. हल्दी, ८. दारुहल्दी, ९. जटामांसी, १० कूठ, ११ रक्त चन्दन, १२. इन्द्रायणमूल, १३. कनेरमूलत्वक्, १४. हरताल, १५. मैनसिल, १६. चित्रकमूल, १७. कलिहारीमूल, १८. वायविडङ्ग, १९ चकमर्दबीज, २० शिरीषत्वक्, २१. कुटजत्वक्, २२. निम्बत्वक्, २३ सप्तपर्णत्वक्, २४. स्नुहीक्षीर, २५. गुडूची, २६. आरग्वधपत्र, २७. करञ्जबीज, २८. सुगन्धबाला, २९ खदिरकाष्ठ, ३० पिप्पली, ३१. वच, ३२. ज्योतिष्मती (प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम लें); ३३. वत्सनाभविष ९३ ग्राम लें। सर्वप्रथम सरसोंतैल का मूर्च्छन करें। तदनन्तर मरिच से ज्योतिष्मती तक के सभी द्रव्यों (दुग्ध एवं गोबर रस को छोड़कर) का सूक्ष्म चूर्ण करें। उसमें गोबररस और अर्क दुग्ध मिलाकर गोमूत्र के साथ सिल पर पीसें और कल्क बनावें ततः मूर्च्छिततैल में कल्क और १-१ लीटर गोमूत्र बार-बार देकर मन्दाग्नि से पाक करें। पहला गोमूत्र सूखने के बाद पुनः-पुनः गोमूत्र देकर पकाते रहें। जब सारा गोमूत्र सूख जाय तो १२ लीटर जल देकर पुन: पकावें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र की चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से सभी प्रकार के कुष्ठरोग, दद्रु, व्रण, पामा, विचर्चिका, कण्डू, विस्फोट, वली-पलित, छाया (झाईं), नीली, व्यङ्ग आदि रोग नष्ट हो जाते हैं और त्वचा कोमल हो जाती है। जिन स्त्रियों को तरुणावस्था में इस तैल का नस्य दिया जाय तो वृद्धावस्था में भी उनके स्तन शिथिल नहीं होते हैं। वायुरोग से पीड़ित बैल, घोड़ा और हाथी में भी इसके प्रयोग से अच्छा लाभ देखा जाता है। कुछ लोग इसे बृहद् मरिचादि तैल भी कहते हैं।

मात्रा—केवल बाह्य प्रयोग अभ्यङ्ग एवं नस्य। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—गंदला एवं मटमैला। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों में।

११९. सोमराजीतैल- १　　(च.द.)

सोमराजी हरिद्रे द्वे सर्पषाः कुष्ठमेव च ।
करञ्जैडगजाबीजं पत्राण्यारग्वधस्य च ॥३०२॥
विपचेत्सार्षपं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ।
अनेनाशु प्रशाम्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥३०३॥
नीलिका पिडका व्यङ्गो गम्भीरं वातशोणितम् ।
कण्डूकच्छूप्रशमनं दद्रुपामानिवारणम् ॥३०४॥

सरसो तैल ७५० मि.ली. तथा जल ३ लीटर लें।

कल्क—१. बाकुचीबीज, २. हल्दी, ३. दारुहल्दी, ४. सरसों, ५. कूठ, ६. करञ्जबीज, ७. चक्रमर्दबीज और ८. अमलतासपत्र—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लें। सर्वप्रथम तैल का मूर्च्छन करें। इसके बाद कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क एवं जल को मूर्च्छिततैल में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छानकर शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत कर लें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से १८ प्रकार के कुष्ठ, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, नीलिका, पीडिका, व्यङ्ग, गम्भीरवातरक्त, कण्डू, कच्छू, दद्रु और पामारोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—केवल बाह्य प्रयोग; अभ्यंगार्थ। **गन्ध**—सरसोतैल जैसी। **वर्ण**—पीताभ। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठ और वातरक्त रोगों में।

१२०. सोमराजीतैल-२

सोमराजीतुलाक्वाथे तथा दद्रुहनस्य च।
गोमूत्रस्य तथा पात्रे कल्कं दत्त्वा विचक्षणः ॥३०५॥
विपचेत्कार्षिकैर्भागैः प्रस्थं तैलं तु सार्षपम्।
चित्रकं लाङ्गलाख्या च नागरं कुष्ठमेव च ॥३०६॥
हरिद्रा नक्तमालञ्च हरितालं मनःशिला।
आस्फोतार्काश्वमारं च सप्तपर्णञ्च गोमयम् ॥३०७॥
खदिरो निम्बपत्रञ्च मरिचं कासमर्दकम्।
एतानि श्लक्ष्णपिष्टानि कल्कं दत्त्वा विचक्षणः ॥३०८॥
हन्ति सर्वाणि कुष्ठानि कृमिदुष्टव्रणानि च।
किट्टिमं दद्रुजातञ्च गात्रवैवर्ण्यमेव च ॥३०९॥
विशीर्णचर्ममांसादिदृढीकरणमुत्तमम्।
पाण्डुरोगं तथा कण्डूं वीसर्पं हन्ति दारुणम्।
ये चान्ये त्वग्गता रोगास्तांस्तु शीघ्रं व्यपोहति ॥३१०॥

सरसोतैल ७५० मि.ली., गोमूत्र ३ लीटर, बाकुचीबीज ५ किलो तथा चकवड़बीज ५ किलो लें।

कल्क—१. चित्रकमूल, २. कलिहारीमूल, ३. सोंठ, ४. कूठ, ५. हल्दी, ६. करञ्जबीज, ६. हरताल, ८. मनःशिला, ९. अपराजिता, १० अर्कमूल, ११. कनेरमूलत्वक् १२. सप्तपर्णत्वक्, १३. गोबररस, १४. खदिरकाष्ठ, १५. निम्बपत्र, १६. मरिच और १७. कासमर्द (कसौंदी) बीज—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम सरसों तैल का मूर्च्छन करें। ततः कल्क के सभी द्रव्यों का चूर्ण करें। उसे गोबर रस और जल में मिलाकर सिल पर पीस लें। इसके बाद बाकुचीबीज और चकवड़बीज पृथक्-पृथक् यवकुट कर पृथक्-पृथक् १२ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। अब कल्क और बाकुचीक्वाथ को मूर्च्छिततैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। इस क्वाथ के सूखने पर चकवड़बीज क्वाथ देकर पाक करें। इसके सूखने पर १-१ लीटर गोमूत्र दे-देकर (३-४ बार में) पाक करें। अधिक गोमूत्र देकर तैल पाक करने से तैल में अत्यधिक फेनोद्गम होता है। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से सभी प्रकार के कुष्ठरोग, कृमि, दुष्टव्रण, किटिम, दद्रु, शरीर की विवर्णता, चर्म एवं मांसादि विशीर्णता (ढीलापन) को दृढ़ करता है। पाण्डु, कण्डू, भयंकर विसर्प और जो भी अन्य त्वग् रोग हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—मात्र बाह्य प्रयोगार्थ (अभ्यङ्गार्थ)। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—गदला तथा मटमैला। **उपयोग**— सभी कुष्ठ रोगों एवं चर्मगत विकारों में।

१२१. विषतैल (च.द.)

नक्तमालं हरिद्रे द्वे चार्कं तगरमेव च।
करवीरवचाकुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥३११॥
मालतीसिन्धुवारञ्च मञ्जिष्ठासप्तपर्णकम्।
एषामर्द्धपलान् भागान् विषस्यापि पलं तथा ॥३१२॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलं प्रस्थं विपाचयेत्।
श्वित्रविस्फोटकिटिमकोठलूताविचर्चिकाः ॥३१३॥
कण्डूकच्छुरिकाद्याश्च ये व्रणा विषदूषिताः।
ते सर्वे नाशमायान्ति तमः सूर्योदये यथा।
विषतैलमिदं नाम्ना सर्वव्रणविशोधनम् ॥३१४॥

क्वाथ—१. कण्टकीकरञ्जबीज, २. हल्दी, ३. दारुहल्दी, ४. अर्कमूलत्वक्, ५. तगर, ६. कनेरमूलत्वक् ७. वच, ८. कूठ, ९. अपराजिता, १०. लालचन्दन, ११. चमेलीपत्र, १२. निर्गुण्डीपत्र, १३. मंजीठ, १४. सप्तपर्णत्वक् (ये प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लें); १५. वत्सनाभविष ४६ ग्राम और १६. सरसोतैल ७५० मि.ली. लें। गोमूत्र ३ लीटर तथा जल ३ लीटर लें। सर्वप्रथम सरसोंतैल का मूर्च्छन करें। ततः करञ्जबीज से वत्सनाभविष तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। तदनन्तर मूर्च्छिततैल में कल्क और १ लीटर गोमूत्र देकर मन्दाग्नि से पाक करें। गोमूत्र एक साथ न डालकर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देकर पाक करना चाहिए। ततः तैल के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से श्वेतकुष्ठ, विस्फोट, किटिम, कीट (कीड़े), लूता विष, विचर्चिका, कण्डू, कच्छू, विषदूषितव्रण और सभी प्रकार के व्रण उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है।

मात्रा—बाह्य प्रयोगार्थ (अभ्यङ्गार्थ)। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—गदला एवं मटमैला। **उपयोग**—सभी प्रकार के चर्म रोग, रक्तविकार एवं श्वित्र में।

१२२. विचर्चिकारितैल

जातीनिम्बार्ककुटजद्रोणपुष्प्याम्भसा समम्।
कल्कैर्निशाविषव्योषकुपीलुककलिङ्गकैः ॥३१५॥
अश्वमारशिलातालकासीसैश्च सनागरैः।
पचेत्कोलमितैर्वैद्यः कटुतैलशरावकम् ॥३१६॥
एतत्तैलं निहन्त्याशु विचर्चीमतिदारुणाम्।
नाडीव्रणञ्चोपदंशं चिरोत्थञ्च भगन्दरम् ॥३१७॥

१. चमेलीपत्रस्वरस, २. निम्बपत्रस्वरस, ३. अर्कपत्रस्वरस, ४. कुटजक्वाथ, ५. द्रोणपुष्पी (गूमा) स्वरस (प्रत्येक द्रव तैल

के बराबर लेना चाहिए) तथा ६. सरसोतैल ३७५ मि.ली. (१ शराव) लें।

कल्क—१. हल्दी, २. वत्सनाभविष, ३. सोंठ, ४. पीपर, ५. मरिच, ६. कुपीलु, ७. इन्द्रयव, ८. कनेरमूलत्वक्, ९. मैनसिल, १० हरताल, ११. कासीस और १२. सोंठ—प्रत्येक द्रव्य ६ ग्राम लें। सर्वप्रथम सरसोंतैल का मूर्च्छन करें। ततः कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। ततः कल्क और चमेलीपत्ररस मूर्च्छिततैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। बड़ी चम्मच से तैल को चलाते रहें। चमेलीरस सूखने पर क्रमशः निम्बपत्ररस, अर्कपत्ररस, कुटजक्वाथ तथा द्रोणपुष्पीस्वरस देकर मन्दाग्नि से पाक करें। तैल हमेशा बड़ी चम्मच से चलाते रहें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छानकर शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल के प्रयोग से भयंकर विचर्चिका, नाडीव्रण, उपदंश और भगन्दर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—केवल बाह्य प्रयोगार्थ (अभ्यङ्गार्थ)। **गन्ध**—सरसों तैलगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **उपयोग**— अतिभयंकर विचर्चिका, नाडीव्रण, उपदंश और भगन्दर में।

१२३. रुद्रतैल

त्रिफला निम्बभण्टाकीबृहत्यः सपुनर्नवाः।
हरिद्रे वृषनिर्गुण्ड्यौ पटोलकनकाह्वयौ ॥३१८॥
हरितालं शिलाकुष्ठो लाङ्गलीदाडिमाह्वयौ।
अपामार्गो विषं चैव जयन्ती पूतिकट्फलौ ॥३१९॥
एषां कर्षद्वयैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
चतुर्गुणे गुडूच्याश्च रसे वैद्यः समाहितः ॥३२०॥
चतुर्गुणन्तु गोक्षीरं वृषपत्ररसं तथा।
दत्त्वाऽवतारयेद्वैद्यो रुद्रमन्त्रं समाजपेत् ॥३२१॥
दद्रुकुष्ठं कुष्टव्रणं विसर्पं विद्रधिं तथा।
नाडीव्रणं व्रणं घोरं वातरक्तं सुदुजयम् ॥३२२॥
सन्निपातज्वरं चैव शिरोरोगं सुदारुणम्।
शोथञ्च गलगण्डञ्च श्लीपदन्त्वर्बुदं तथा ॥३२३॥
वातरोगानशेषांश्च अन्त्रवृद्धिं सुदारुणाम्।
पीनसश्वासकासञ्च सुदारुणभगन्दरम् ॥३२४॥
उपदंशं महाघोरं चक्षुःशूलञ्च नाशयेत्।
चर्मोत्थान् सर्वरोगांश्च तैलमेतद्विनाशयेत्।
रुद्रतैलमिदं नाम्ना स्वयं रुद्रेण भाषितम् ॥३२५॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. निम्बत्वक्, ५. कण्टकारी, ६. बृहती, ६. पुनर्नवामूल, ८. हल्दी, ९. दारुहल्दी, १०. वासापञ्चाङ्ग, ११. निर्गुण्डीपत्र, १२. परवल लता, १३. धत्तूरबीज, १४. हरताल, १५. मैनसिल, १६. कूठ, १७. कलिहारी, १८. अनार, १९. अपामार्गपञ्चाङ्ग, २०. वत्सनाभविष, २१. जयन्तीपत्र, २२. कण्टकीकरञ्ज, २३. कट्फल (प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लें); २४. तिलतैल ७५० मि.ली., २५. गुडूचीक्वाथ ३ लीटर, २६. गोदुग्ध ३ लीटर और २६. वासापत्रस्वरस ३ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः आमला से कट्फल तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में कल्क और गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। गोदुग्ध सूखने पर गुडूचीक्वाथस्वरस मिलाकर पाक करें। पाक करते समय बराबर बड़ी चम्मच से चलाते रहें। ततः वासापत्रक्वाथ देकर मन्दाग्नि से पाक करें। वासापत्रक्वाथ सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेहपाक की परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके निर्माण काल से ही 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र का जाप करते रहना चाहिए। काचपात्र में तैल संग्रह के पश्चात् पवित्र स्थान में अथवा भगवान् शिव की प्रतिमा के सामने इस तैल को रखकर रुद्रमन्त्र का ११००० जाप करना चाहिए। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से दद्रु, कुष्ठ, दुष्टव्रण, विसर्प, विद्रधि, नाडीव्रण, भयंकरव्रण, दुर्जेय वातरक्त, सन्निपातज्वर, भयंकर शिरोरोग, शोथ, गलगण्ड, श्लीपद, अर्बुद, सम्पूर्ण वातरोग, भयंकर आन्त्रवृद्धिरोग, पीनस, श्वास, कास, भयंकर भगन्दर, अतिकष्टदायक उपदंश, नेत्रपीड़ा तथा सम्पूर्ण चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं। इस रुद्रतैल का निर्माण स्वयं भगवान् रुद्र ने किया है।

मात्रा—केवल बाह्य प्रयोगार्थ (अभ्यङ्गार्थ)। **गन्ध**—सुपक्व दुग्धगन्धी। **वर्ण**—रक्तवर्णाभ। **उपयोग**—समस्त कुष्ठ, चर्मरोग तथा रक्तविकार में।

१२४. तृणकतैल (च.द.)

मञ्जिष्ठारुङ्निशाचक्रमर्दारग्वधपल्लवैः।
तृणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं परम् ॥३२६॥

१. मंजीठ, २. कूठ, ३. हल्दी, ४. चकमर्दबीज, ५. अमलतासपत्र (प्रत्येक द्रव्य ५० ग्राम); ६. तिलतैल १ लीटर और ७. गन्धतृणक्वाथ ४ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः मंजीठ से अमलतासपत्र तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण करें। तदनन्तर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। गन्धतृण को यवकुट कर चौगुने (१६ लीटर) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। अब मूर्च्छिततैल में कल्क और क्वाथ का मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर

स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है।

१२५. महातृणकतैल (च.द.)

हरिद्रा त्रिफला दारु हयमारकचित्रकम्।
सप्तच्छदश्च निम्बत्वक् करञ्जौ बालकं नखी ॥३२७॥
कुष्ठमेडगजाबीजं लाङ्गली गणिकारिका।
जातीपत्रञ्च दार्वी च हरितालं मनःशिला ॥३२८॥
कलिङ्गं तिलपत्रञ्च अर्कक्षीरञ्च गुग्गुलुः।
गुडत्वङ्मरिचञ्चैव कुङ्कुमं ग्रन्थिपर्णकम् ॥३२९॥
सर्जपर्णासखदिरं विडङ्गं पिप्पलीं वचा।
घनरेण्वमृता यष्टी केशरं ध्यामकं विषम् ॥३३०॥
विश्वकट्फलमञ्जिष्ठा बोलस्तुम्बीफलन्तथा।
स्नुहीशम्पाकयोः पत्रं वागुजीबीजमांसिके ॥३३१॥
एला ज्योतिष्मतीमूलं शिरीषो गोमयाद्रसः।
चन्दने कुष्ठनिर्गुण्डी विशाला मल्लिकाद्वयम् ॥३३२॥
वासाऽश्वकर्णो ब्राह्मी च श्र्याह्वं चम्पककुड्मलम्।
एतैः कल्कैः पचेत्तैलं तृणकस्वरसद्रवम्।
सर्वत्वग्दोषहरणं महातृणकसंज्ञितम् ॥३३३॥

कल्क—१. हल्दी, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा, ५. देवदारु, ६. कनेरमूलत्वक्, ७. चित्रकमूल, ८. सप्तपर्णत्वक्, ९. निम्बत्वक्, १०. कण्टकीकरञ्जबीज, ११. घृतकरञ्जत्वक्, १२. सुगन्धबाला, १३. नखी, १४. कूठ, १५. चकमर्दबीज, १६. कलिहारीमूल, १७. अरणीत्वक्, १८. चमेलीपत्र, १९. दारुहल्दी, २०. हरताल, २१. मनःशिला, २२. इन्द्रयव, २३. तिलपर्णी, २४. अर्कदूध, २५. गुग्गुलु, २६. दालचीनी, २७. मरिच, २८. केशर, २९. गठिवन, ३०. राल, ३१. तुलसीपत्र, ३२. खदिरकाष्ठ, ३३. वायविडङ्ग, ३४. पीपर, ३५. वच, ३६. नागरमोथा, ३७. रेणुकबीज, ३८. गुडूची, ३९. मुलेठी, ४०. नागकेशर, ४१. रोहिषतृण, ४२. वत्सनाभविष, ४३. सोंठ, ४४. कायफल, ४५. मंजीठ, ४६. बोल, ४७. कटुतुम्बीबीज (तितलौकी), ४८. स्नुहीपत्र, ४९. अमलतासपत्र, ५० बाकुची बीज, ५१. जटामांसी, ५२. छोटी इलायची, ५३. ज्योतिष्मतीमूल, ५४. शिरीषत्वक्, ५५. गोबररस, ५६. श्वेतचन्दन, ५७. लालचन्दन, ५८. कूठ, ५९. निर्गुण्डी, ६०. इन्द्रायणमूल, ६१. मोगराफूल (बेलीफूल) ६२. जूही का फूल, ६३. वासापञ्चाङ्ग, ६४. शालवृक्षत्वक् ६५. ब्राह्मी तथा ६६. चम्पापुष्पकली—यह प्रत्येक द्रव्य १५ ग्राम लें; ६७. तिलतैल ४ लीटर और ६८. गन्धतृणक्वाथ १६ लीटर लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः कल्क के सभी ६४ द्रव्यों (केशर और गन्धतृण को छोड़कर) का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इसमें गोबररस मिला दें। गन्धतृण का यवकुट कर ६४ लीटर जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर छान लें। अब मूर्च्छिततैल में कल्क और क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेह की परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें। शीतल होने पर केशरचूर्ण को इस तैल में अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस महातृणक तैल अभ्यङ्ग करने से कुष्ठ और सभी प्रकार के त्वग्रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—बाह्य प्रयोग। **गन्धक**—केशर सुगन्धित। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—कुष्ठ एवं सभी त्वग् रोगों में।

१२६. वज्रकतैल (च.द.)

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम्।
मूलं स्नुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोतयोरपि ॥३३४॥
करञ्जबीजं त्रिफलां व्योषं च रजनीद्वयम्।
सिद्धार्थकं विडङ्गञ्च प्रपुन्नाडञ्च संहरेत् ॥३३५॥
मूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम्।
अभ्यङ्गाद् वज्रकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥३३६॥

१. सप्तपर्णत्वक्. २. करञ्जत्वक्, ३. अर्कमूलत्वक्, ४. चमेलीपत्र, ५. कनेरमूलत्वक्, ६. स्नुहीमूलत्वक्, ७. शिरीषमूलत्वक् ८. चित्रकमूल, ९. अपराजितापञ्चाङ्ग, १०. कण्टकबीज, ११. आमला, १२. हरीतकी, १३. बहेड़ा, १४. सोंठ १५. पीपर, १६. मरिच, १७. हल्दी, १८. दारुहल्दी, १९. पीत सरसों, २०. वायविडङ्ग और २१. चकमर्दबीज—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें; तिलतैल १ लीटर तथा गोमूत्र २०० मि.ली. लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः सप्तपर्णत्वक् से चकमर्दबीज तक के सभी २१ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर इस चूर्ण को पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीच उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'वज्रकतैल' का अभ्यङ्ग करने से सभी तरह के कुष्ठ, नाडीव्रण और दुष्टव्रणरोग नष्ट हो जाते हैं।

१२७. कन्दर्पसारतैल

सप्तपर्णस्तथा काली गुडूची पिचुमर्दकम्।
शिरीषञ्च महातिक्ता जया तुम्बीं मृगादनी ॥३३७॥
निशा दशपलान् भागाञ् जलद्रोणे विपाचयेत्।
तैलप्रस्थं समादाय गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥३३८॥

आरग्वधो भृङ्गराजो जयाधुस्तूररात्रयः।
ऐन्द्राशनाग्निखर्जूरं गोमयार्कस्नुहीच्छदम् ॥३३९॥
तैलतुल्यं प्रदातव्यं स्वरसञ्च पृथक् पृथक्।
महाकालवचा ब्राह्मी तुम्ब्यग्निगृहपुत्रिका ॥३४०॥
कुचेला कुलकं रात्रिर्मेघनामा च ग्रन्थिका।
शम्पाकमर्कक्षीरञ्च कासुन्देश्वरमूलकम् ॥३४१॥
आचु जिङ्गी महातिक्ता विशाला छविपत्रकम्।
पूतिकास्फोतमूर्वा च सप्तपर्णशिरीषकम् ॥३४२॥
कुटजं पिचुमर्दश्च महानिम्बं तथैव च।
गुडूची चन्द्ररेखा च सोमराट् चक्रमर्दकम् ॥३४३॥
तुम्बुरुभृङ्गयष्ट्याह्वकन्दकं कटुरोहिणी।
शटी दार्वी त्रिवृत्पद्मग्रन्थिकागुरुपुष्करम् ॥३४४॥
कर्पूरं कट्फलं मांसी मुरैलाटरुषाभयम्।
एतेषां कार्षिकैः कल्कैर्नाम्ना कन्दर्प उच्यते ॥३४५॥
अष्टादशविधं कुष्ठमस्थिमज्जगतं तथा।
हस्तपादाङ्गुलीसन्धिगलितं कूर्पसन्धिषु ॥३४६॥
यस्य गात्रे भविष्यन्ति मांसानि चाधिकानि च।
नासाकर्णास्यवैकल्यं भेकाकारवपुस्त्वचम् ॥३४७॥
श्वेतं रक्तं तथा कुष्ठं नानावर्णं विपादिकाम्।
श्वित्रं चतुर्विधञ्चैव वातशोणितमेव च ॥३४८॥
कपालं कृमिजं कुष्ठं कण्डूदद्रुविचर्चिकाम्।
पामाविस्फोटकानीलीकृमिवृद्धिं तथैव च ॥३४९॥
कण्डूदद्रुमसूरीश्च किटिमं रक्तमण्डलम्।
कुष्ठमौदुम्बरं पद्मं महापद्मं तथैव च ॥३५०॥
गलगण्डार्बुदं हन्याद् गण्डमालां भगन्दरम्।
वातजं पित्तजं चैव श्लेष्मजं सान्निपातिकम्।
एकोल्वणं द्व्युल्वणं च कुष्ठं हन्यान्न संशयः ॥३५१॥

क्वाथ द्रव्य—१. सप्तपर्णत्वक्, २. नीलीमूल, ३. गुडूची, ४. निम्बत्वक्, ५. शिरीषत्वक्, ६. बकायनत्वक्, ६. जयन्तीपत्र, ८. कटुतुम्बीबीज, ८. इन्द्रायणमूल, १०. हल्दी—प्रत्येक द्रव्य ४७० ग्राम (१० पल) लें और यवकुट कर १२ ली. जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रखें। ततः ११. तिलतैल ७५० मि.ली. तथा १२. गोमूत्र ३ लीटर लें।

स्वरस—१. अमलतासपत्ररस, २. भृङ्गराजरस, ३. जयन्तीपत्ररस, ४. धतूरपत्ररस, ५. हल्दीस्वरस, ६. भाँग, ७. चित्रकमूलक्वाथ, ८. खर्जूर (छोहाडा) क्वाथ, ९. गोबररस १०. अर्कपत्ररस तथा ११. स्नुहीपत्ररस—प्रत्येक द्रव्य ७५० मि.ली लें।

कल्क—१. लाल इन्द्रायणमूल, २. वच, ३. ब्राह्मी, ४. कटुतुम्बी (तितलौकी), ५. चित्रकमूल, ६.घृतकुमारी, ७. कुचला, ८. परवललता, ९. हल्दी, १०. नागरमोथा, ११. पिपरामूल, १२. अमलतासपत्र, १३. अर्कदुग्ध, १४. कसौंदीमूल, १५. रुद्रजटा, १६. आच्छुकवृक्षत्वक् १७. मंजीठ, १८. कालमेघ, १९. इन्द्रायणमूल, २०. वृश्चिकाली, २१. कण्टककरञ्जपत्र, २२. अपराजितापञ्चाङ्ग २३. मूर्वामूल, २४. सप्तपर्णत्वक्, २५. शिरीषत्वक्, २६. कुटजत्वक्, २७. निम्बत्वक्, २८. बकायनत्वक्,२९. गुडूजी, ३०. वायविडङ्ग, ३१. बाकुचीबीज, ३२. चक्रमर्दबीज, ३३. तुम्बुरु (नेपाली धनियाँ), ३४. भृङ्गराज, ३५. मुलेठी, ३६. सूरणकन्द, ३७. कटुकी, ३८. कचूर, ३९. दारुहल्दी, ४०. निशोथ, ४१. पद्मकाष्ठ, ४२. गठिवन, ४३. अगरु, ४४. पुष्करमूल, ४५. कर्पूर, ४६. कट्फल, ४७. जटामांसी, ४८. मुरामांसी, ४९. छोटीइलायची, ५०. वासापञ्चाङ्ग और ५१. खस (प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम) लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः कल्क वर्ग के ५१ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में कल्क और सर्वप्रथम सप्तपर्णादि १० द्रव्यों के ३ ली. क्वाथ देकर पाक करें। ततः १ लीटर गोमूत्र देकर मन्दाग्नि से पाक करें। गोमूत्र देकर तैल पाक करने से अत्यधिक फेनोद्गम होता है। अतः १-१ लीटर गोमूत्र देकर पाक करना उचित है। गोमूत्र सूखने के बाद क्रमशः आरग्वधपत्रस्वरस, भृङ्गराजस्वरस, जयन्तीपत्रस्वरस, धत्तूरपत्र-स्वरस, हल्दीस्वरस, भाँगस्वरस (हिमस्वरस), चित्रकक्वाथ. खजूर (छोहाड़ा) क्वाथ, गोबरस्वरस, अर्कपत्रस्वरस और स्नुहीपत्रस्वरस पृथक्-पृथक् देकर स्नेहपाक करें। एक स्वरस सूखने के बाद दूसरा स्वरस देकर तैलपाक करना चाहिए। इन ११ स्वरस या क्वाथों द्वारा तैल पकाने के बाद जब जलीयांश सूख जाय तब स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेहपाक की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'कन्दर्पसारतैल' कहते हैं। इसके लेप या अभ्यंग से १८ प्रकार के कुष्ठ, अस्थि एवं मज्जागत कुष्ठ, हाथ-पैर की अंगुलियाँ एवं सन्धिपर्यन्त गलकर नष्ट होने वाला तथा कूर्पर (कोहनी) तक का गलित कुष्ठ, अङ्गों में अनावश्यक मांसवृद्धि, नाक एवं कान की विरूपता, मेढक जैसी पीताभ शरीर-त्वचा का होना, श्वेत, रक्त एवं नाना वर्ण की विपादिका कुष्ठ, ४ प्रकार के श्वेतकुष्ठ, वातरक्त, कपालकुष्ठ, कृमिजन्यकुष्ठ, कण्डू, दद्रु, विचर्चिका, पामा, विस्फोट, नीली, कृमिवृद्धि, कीटजन्य दाद, मसूरिका, किटिम, रक्तमण्डल कुष्ठ, उदुम्बर कुष्ठ, पद्मकुष्ठ, महापद्म कुष्ठ, गलगण्ड, अर्बुद, गण्डमाला, भगन्दर, वातज कुष्ठ, पित्तज कुष्ठ, कफज कुष्ठ,

मृगादनी=इन्द्रायणमूल, आचु=आच्छुक वृक्ष, छविपत्र=वृश्चिकाली।

सन्निपातज कुष्ठ, एकोल्वण कुष्ठ और द्व्युल्बण कुष्ठ रोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—केवल बाह्य प्रयोगार्थ (अभ्यङ्ग-लेपार्थ)। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धि। **वर्ण**—गदला (मटमैला रंग का)। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों में।

१२८. वैवस्वतद्रुमबीजतैल (चालमोगरातैल)

वैवस्वतद्रुमसमुद्भवबीजतैलं
कुष्ठापहं निखिलचर्मरुजापहं च।
अभ्यङ्गतो निगदितं ननु वैद्यवन्द्यै-
र्भूयोऽनुभूय भुवि रोगिजनेष्वजस्रम् ॥३५२॥

चालमोगरातैल का पान एवं अभ्यङ्ग करने से सभी तरह के कुष्ठ एवं सभी प्रकार के चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं। ऐसा वैद्य समुदाय का बार-बार का रोगियों पर प्रयोग कर प्रत्यक्ष लाभ का निरन्तर अनुभव है।

१२९. खदिरारिष्ट (यो.र.)

खदिरस्य तुलार्द्धन्तु देवदारु च तत्समम्।
वाकुची द्वादशपला दार्वी स्यात्पलविंशतिः ॥३५३॥
त्रिफलाविंशतिपलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्।
कषाये द्रोणशेषे च पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥३५४॥
तुलाद्वयं माक्षिकस्य तुलैका शर्करा मता।
धातक्या विंशतिपलं कक्कोलं नागकेशरम् ॥३५५॥
जातीफलं लवङ्गैलात्वक्पत्राणि पृथक् पृथक्।
पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात्पलचतुष्टयम् ॥३५६॥
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेत्ततः।
महाकुष्ठानि हृद्रोगं पाण्डुरोगार्बुदं तथा ॥३५७॥
गुल्मं ग्रन्थिकृमीन् कासं तथा प्लीहोदरं जयेत्।
एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवारणः ॥३५८॥

क्वाथ—१. खदिरकाष्ठ २.५०० किलो, २. देवदारु २.५०० किलो, ३. बाकुचीबीज ५६५ ग्राम, ४. दारुहल्दी ९४० ग्राम, ५. त्रिफला ९४० ग्राम, क्वाथार्थ जल ९६ लीटर (अवशेष क्वाथ १२ लीटर), ६. मधु १० किलो, ७. शक्कर ५ किलो (अभाव में गुड़ लें) तथा ८. धातकीपुष्प ९४० ग्राम लें; ९. शीतलचीनी, १०. नागकेशर, ११. जायफल, १२. लवङ्ग, १३. छोटीइलायची, १४. दालचीनी, १५. तेजपात (प्रत्येक द्रव्य ५० ग्राम ले) और १६. पीपरबड़ी १९० ग्राम लें। विधि—खदिरकाष्ठादि पाँचों क्वाथ द्रव्यों को यवकुट करें और बड़े पात्र स्टेनलेस स्टील में ९६ लीटर जल देकर मन्दाग्नि से क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष (१२ लीटर) रहने पर छान लें। मिट्टी के बड़े एवं नये घड़े में क्वाथ रखकर उसमें मधु एवं शक्कर मिलाकर अच्छी तरह मिला दें। धातकीपुष्प को कूटे बिना ही धूप में सुखाकर मधु मिश्रण में डालें। शीतलचीनी से तेजपात तक के प्रत्येक द्रव्य को पृथक्-पृथक् यवकुट (मोटा) कर मधु मिश्रण में प्रक्षिप्त करें तथा हाथ से अच्छी तरह मिलावें। मिट्टी के शराव से घड़े का मुख बन्द कर कपड़मिट्टी करें। घड़े को भींगा वस्त्र से अच्छी तरह पोंछ लें। खटिका से उस पर 'खदिरारिष्ट' और निर्माण तिथि लिखें। घड़ा को निर्वात स्थान में उसकी तली में गद्दीदार पुआल, बोरा, भूँसी आदि रखें। १५ दिन से १ महीना के बाद (ऋतुओं के अनुसार) परीक्षोपरान्त छानकर इस 'खादिरारिष्ट' को पुनः उसी घड़ा में स्वच्छ होने के लिए रखकर पुनः मुख बन्द कर दें। १०-१५ दिन के बाद अरिष्ट की गाद घड़े की तली में बैठ जाती है, जिसे टेढा कर (हिलाये बिना) स्वच्छ द्रव पृथक् कर लें और साफ एवं सूखी बोतल में भरें। बोतल में २ इञ्च का स्थान रिक्त रखें और कार्क लगाकर भींगे कपड़े से बोतल को पोंछकर लेबल लगा दें। लेबल में औषधि का नाम 'खदिरारिष्ट', ग्रन्थ नाम योगरत्नाकर, अधिकार—कुष्ठ रोग, निर्माण तिथि तथा बैच नम्बर यदि हों तो अवश्य लिखें। इस अरिष्ट को ६ महीने से १ वर्ष बाद ही प्रयोग करना चाहिए। इसे १२ से २५ मि.ली. की मात्रा में बराबर जल मिलाकर भोजनोत्तर लेने से सभी प्रकार के कुष्ठ, महाकुष्ठ, हृद्रोग, पाण्डुरोग, अर्बुद, गुल्म, ग्रन्थि, कृमि, कास और प्लीहोदर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **अनुपान**—बराबरजल मिलाकर। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—मधुर तीक्ष्ण, मद्य का स्वाद। **उपयोग**—सभी प्रकार के कुष्ठ, महाकुष्ठ, अर्बुद, गुल्म, ग्रन्थि एवं प्लीहोदर में।

कुष्ठरोग में पथ्य (चरक)

लघूनि चान्नानि हितानि विद्यात्
कुष्ठेषु शाकानि च तिक्तकानि।
भल्लातकैः सत्रिफलैः सनिम्बै-
र्युक्तानि चान्नानि घृतानि चैव ॥३५९॥
पुराणधान्यान्यथ जाङ्गलानि
मांसानि मुद्गाश्च पटोलयुक्ताः।
शस्ता–

कुष्ठ रोग में लघु अन्न तथा तिक्त रस वाले शाक द्रव्य जैसे करैला-पटोल आदि हितकर है। आहार द्रव्यों और घृतों को भिलावा, त्रिफला और निम्बपत्र के क्वाथ से सुसंस्कृत कर प्रयोग करें। पुराने अन्न, जांगल पशु-पक्षियों के मांसरस, मूँग की दाल, परवल का शाक देना श्रेयस्कर है।

कुष्ठ रोग में पथ्य

पक्षात्पक्षाच्छर्दनानि मासान्मासाद्विरेचनम्।

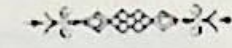
नस्यं त्र्यहात्त्र्यहान्मासि षष्ठे षष्ठेऽस्त्रमोक्षणम् ॥३६१॥
सर्पिर्लेपश्चिरोत्पन्ना यवगोधूमशालयः ।
मुद्गाढकीमसूराश्च माक्षिकं जाङ्गलामिषम् ॥३६२॥
आषाढफलवेत्राग्रं पटोलं बृहतीफलम् ।
काकमाची निम्बपत्रं लशुनं हिलमोचिका ॥३६३॥
पुनर्नवा मेषशृङ्गी चक्रमर्ददलानि च ।
भल्लातकं पक्वतालं खदिरश्चित्रको वरा ॥३६४॥
जातीफलं नागपुष्पं कुङ्कुमं प्रतनं हविः ।
कोषातकी करञ्जोऽपि तिलसर्षपनिम्बजम् ॥३६५॥
तैलं तथेङ्गुदोत्थं च लघून्यन्नानि यानि च ।
स्नेहाः सरलदेवाह्वशिंशपाऽगुरुसम्भवाः ॥३६६॥
मूत्राणि गोखरोष्ट्राश्वमहिषीजनितानि च ॥
कस्तूरिका गन्धसारस्तिक्तानि क्षारकर्म च ।
यथादोषं समस्तानि पथ्यान्येतानि कुष्ठिनाम् ॥३६७॥

१५-१५ दिनों पर वमन कराना चाहिए। प्रत्येक मास में (१-१ महीने पर) विरेचन कराना, ३-३ महीने पर नस्य कर्म, ६-६ महीने पर रक्तमोक्षण कराना चाहिए। घृतपान तथा घृतलेप करना, पुराना जौ, गेहूँ तथा शालिचावल, मूँग, अरहर (रहड़), मसूर, मधु, जङ्गली पशु-पक्षियों के मांस, आषाढ़ मास में उत्पन्न होने वाले फल, ककड़ी, खीरा, अमरूद आदि, वेतस के कोमल पत्ते, परवल, बृहतीफल, काकमाची, निम्बपत्र, लशुन, हुरहुर-शाक, पुनर्नवाशाक, मेढ़ासिंगी, चकवड़पत्रशाक, शुद्ध भल्लातक, पका ताड़फल, खदिरकाष्ठचूर्णक्वाथ, चित्रकमूल, त्रिफला, जायफल, नागकेशर, केशर, पुराना घी, कड़वीतोरई, कण्टकीकरञ्जबीज, तिलतैल, सरसोंतैल, निम्बतैल, इङ्गुदी तैल, सभी लघु अन्न, सरलतैल, देवदारुतैल, शीशम तैल एवं अगुरुतैल, गोमूत्र, गदहे का मूत्र, ऊँट का मूत्र, घोड़े का मूत्र एवं भैंस का मूत्र, कस्तूरी, गन्धसार, तिक्तद्रव्य और क्षारकर्म दोषानुसार उपर्युक्त सभी द्रव्य कुष्ठरोग में पथ्य कहे गये हैं।

कुष्ठ रोग में अपथ्य

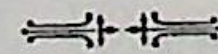
पापानि कर्माणि कृतघ्नभावं
निन्दां गुरूणां गुरुधर्षणं च ।
विरुद्धपानाशनमह्नि निद्रां
चण्डांशुतापं विषमाशनं च ॥३६८॥
स्वेदं रतं वेगनिरोधमिक्षुं
व्यायाममम्लानि तिलांश्च माषान् ।
द्रवान्नगुर्वन्ननवान्नभुक्तं
विदाहि विष्टम्भि च मूलकानि ॥३६९॥
सह्याद्रिविन्ध्याद्रिसमुद्भवानां
तरङ्गिणीनामुदकानि चापि ।
आनूपमांसं दधिदुग्धमद्यं
गुडं च कुष्ठामयिनस्त्यजेयुः ॥३७०॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां कुष्ठरोगाधिकारः ।



पाप कर्मों में लिप्त रहना, कृतघ्नभाव (उपकारों को नहीं मानना), गुरु की निन्दा करना, गुरु को कष्ट देना, विरुद्धपान, विरुद्धभोजन, दिन में सोना, प्रचण्ड सूर्यताप में चलना, विषम (मिथ्या) आहार, स्वेदनकर्म, मैथुनकर्म, वेगों को रोकना, ईंख से बने पदार्थों का सेवन, व्यायाम, अम्लपदार्थ, तिल, उड़द, द्रव अन्न (पतली खिचड़ी आदि), भारी अन्न, विदाहि एवं विष्टम्भि पदार्थ, मूली, सह्याद्रि और विन्ध्याचल से निकली नदियों का जल, आनूप (जलीय) पशु-पक्षियों के मांस, दही, दूध, मद्य, गुड़ादि पदार्थों को कुष्ठ रोगियों को सेवन नहीं करना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य कुष्ठरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथोदर्दशीतपित्तकोठाधिकारः (५५)

उदर्द में क्रियाक्रम (च.द.)

अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्तथा।
उदर्दे वमनं कार्यं पटोलारिष्टवारिणा ॥१॥
त्रिफला पुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते।
त्रिफलां क्षौद्रसंयुक्तां खादेच्च नवकार्षिकम् ॥२॥

उदर्द (शीतपित्त) रोग में सरसोतैल का अभ्यङ्ग (मालिश), गरम जल से सेंक, निम्बक्वाथ एवं पटोलक्वाथ पिलाकर वमन कराना तथा त्रिफला, गुग्गुलु एवं पिप्पलीचूर्ण खिलाकर विरेचन भी कराना चाहिए। अथवा त्रिफलाक्वाथ एवं ९ कर्ष (१०० मि.ली.) मधु मिलाकर पिलाना चाहिए।

१. उदर्दहर योग (च.द.)

विसर्पोक्तममृतादि भिषगत्रापि योजयेत्।
सितां मधुकसंयुक्तां गुडमामलकैः सह ॥३॥

विसर्प चिकित्सा में कहे गये अमृतादिगण[1] का क्वाथ देना चाहिए। अथवा मुलेठीचूर्ण में समभाग चीनी मिलाकर या आमलाचूर्ण और गुड़ समभाग मिलाकर देना चाहिए।

२. गुड-दीप्यक योग (च.द.)

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्नरः।
तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ॥४॥

उदर्द का जो रोगी अजवाइनचूर्ण ४ ग्राम तथा गुड़ ६ ग्राम मिलाकर खाता है और पथ्यपूर्वक अन्न-पान का सेवन करता है, उसका सम्पूर्ण देह में फैला उदर्द (शीतपित्त) सात दिनों में नष्ट हो जाता है।

शीतपित्त चिकित्सा

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाडतिलैः सह।
कटुतैलेन सम्मिश्रमेतदुद्वर्त्तनं हितम् ॥५॥

पीलीसरसो, हल्दी, कुष्ठ, चक्रमर्दबीज एवं तिल—इन्हें सम भाग में लेकर सिल पर पीसकर चूर्ण करें। पुनः उसी सिल पर सरसों के तेल के साथ पुनः पीसकर शीतपित्त स्थान पर लेप करने से लाभ होता है।

---

१. अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं
खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे।
विविधविषविसर्पान् कुष्ठविस्फोटकण्डू-
रपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरञ्च ॥ (च.द. विसर्पचि.)

३. दूर्वादिलेप (च.द.)

दुर्वानिशायुतो लेपः कण्डूपामाविनाशनः।
कृमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तापहा स्मृतः ॥६॥

दूर्वा और हरिद्रा को समभाग में एक साथ पीसकर लेप करने से कच्छू, पामा, कृमि, दद्रु और शीतपित्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

४. अग्निमन्थप्रलेप (च.द.)

अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतञ्च सर्पिषा।
शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत् ॥७॥

अग्निमन्थमूलत्वक् को सिल पर जल के साथ पीसें और चौथाई घृत मिलाकर पिलाने से १ सप्ताह में शीतपित्त, उदर्द और कोठ रोग नष्ट हो जाते हैं।

५. गात्राभ्यङ्गप्रयोग (च.द.)

क्षारसिन्धूत्थतैलैश्च गात्राभ्यङ्गं प्रयोजयेत् ॥८॥

यवक्षार, सैन्धवलवण तथा सरसोंतैल मिलाकर गात्राभ्यङ्ग करने से शीतपित्तरोग नष्ट हो जाता है।

६. यष्टिमध्वादिक्वाथ (यो.र.)

यष्टी मधूकपुष्पं च सरास्नं चन्दनद्वयम्।
निर्गुण्डी सकणा क्वाथं शीतपित्तहरं पिबेत् ॥९॥

१. मुलेठी, २. महुए का फूल, ३. रास्ना, ४. श्वेतचन्दन, ५. लालचन्दन, ६. निर्गुण्डीमूलत्वक् और ७. पिप्पली (समभाग) लें। इन्हें पृथक्-पृथक् यवकुट कर मिला लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट को २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर शीतपित्त रोगी को प्रतिदिन २ बार पिलाने से कुछ ही दिन में शीतपित्त रोग नष्ट हो जाता है।

७. अमृतादिक्वाथ (यो.र.)

अमृतारजनीनिम्बधन्वयासैस्तथा शृतम्।
प्राणिनां प्राणदं चैतच्छीतपित्तं समाचरेत् ॥१०॥

१. गुडूची, २. हल्दी, ३. निम्बत्वक् और ४. जवासा (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर प्रतिदिन दो बार शीतपित्त के रोगी को पिलाने से प्राणियों में प्राण का सञ्चार करने वाला यह क्वाथ शीतपित्त को नष्ट कर देता है।

८. शीतपित्तनाशक घृत ( )

कर्षं गव्यघृतस्यापि कर्षार्द्धं मरिचस्य च।
एकीकृत्य पिबेत्प्रातः शीतपित्तविनाशनम् ॥११॥

एक कर्ष (१२ ग्राम) गोघृत तथा मरिचचूर्ण आधा कर्ष (६ ग्राम) दोनों मिलाकर प्रात:काल पिलाने से शीतपित्त रोग नष्ट हो जाता है।

कोठरोग में क्रियाक्रम (च.द.)

कुष्ठोक्तञ्च क्रमं कुर्यादम्लपित्तघ्नमेव च।
उदर्दोक्तां क्रियाञ्चापि कोठरोगे समासतः॥
सर्पिः पीत्वा महातिक्तं कार्यं रक्तस्य मोक्षणम् ॥१२॥

कोठ रोग में कुष्ठाधिकारोक्त वमन-विरेचन-अनुवासन आदि क्रिया तथा अम्लपित्तघ्न एवं उदर्दोक्त क्रिया करनी चाहिए। विशेषरूप से कुष्ठ रोग में कथित महातिक्त घृत का पान तथा रक्तमोक्षण करना चाहिए।

९. हरिद्राखण्ड-१

हरिद्रायाः पलान्यष्टौ षट्पलं हविषस्तथा।
क्षीराढकेन संयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं तथा॥१३॥
पचेन्मृद्वग्निना वैद्यो भाजने मृन्मये दृढे।
कटुत्रिकं त्रिजातञ्च कृमिघ्नं त्रिवृता तथा॥१४॥
त्रिफला केशरं मुस्तं लौहं प्रति पलं पलम्।
सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेत्तत्र तोलकार्द्धन्तु भक्षयेत् ॥१५॥
कण्डूविस्फोटदद्रूणां नाशनं परमौषधम्।
प्रतप्तकाञ्चनाभासो देहो भवति नान्यथा॥१६॥
शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत्।
हरिद्रा नामतः खण्डः कण्डूनां परमौषधम् ॥१७॥

हल्दी ३७५ ग्राम, गोघृत २८० ग्राम, गोदुग्ध ३ लीटर तथा मिश्री २.३०० ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. सोंठ, २. पिप्पली, ३. मरिच, ४. तेजपात, ५. दालचीनी, ६. छोटी इलायची, ७. वायविडङ्ग, ८. निशोथ, ९. आमला, १०. हरीतकी, ११. बहेड़ा, १२. नागकेशर, १३. नागर- मोथा और लोहभस्म (प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम) लें। यदि कच्ची हल्दी मिले तो उससे यह औषधि निर्मित करनी चाहिए, अन्यथा सूखी हल्दी से। सर्वप्रथम कच्ची हल्दी को छीलकर सिल पर पीसें फिर एक कड़ाही में घी डालकर मन्दाग्नि पर पाक भूनें। फिर दूध में पकाकर खोवा (मावा) बना लें। तदनन्तर मिश्री का चूर्ण कर चासनी करें। खूब कड़ी चासनी हो जाय तो कड़ाही को चूल्हे से नीचे उतारकर हल्दी और खोवा का मिश्रण चासनी में डालकर अच्छी तरह से मिलावें। ततः प्रक्षेप द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण कर उस चासनी मिश्रित हल्दी में छिड़ककर अच्छी तरह मिला लें। प्रक्षेप डालने में शीघ्रता करें, अन्यथा कड़ी चासनी जल्दी सूख जाती है। यह हरिद्राखण्डचूर्ण होगा। इसे मोटी छनना से छानकर इमामदस्ता में कूटकर शेष टुकड़ों को छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'हरिद्राखण्ड' का प्रतिदिन २ बार ताजा जल के साथ ६ ग्राम की मात्रा सेवन करने से शीतपित्त, उदर्द, कोठ, कण्डू, दद्रु, विस्फोट सात दिनों में नष्ट हो जाते हैं। यह शीतपित्त, उदर्द एवं कोठ रोगों की परमौषधि है। इसके सेवन के बाद शरीर देहीप्यमान (सोना जैसा) हो जाता है। हरिद्राखण्ड नामक यह कण्डू के लिए भी परमौषधि है।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—ताजा जल से। **गन्ध**—सुगन्ध। **वर्ण**—पीत। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—शीतपित्त, उदर्द कोठ, कण्डू आदि में।

१०. हरिद्राखण्ड-२

निशाचूर्णस्य कुडवं त्रिवृत्पलचतुष्टयम्।
अभया तत्समा देया सार्द्धप्रस्थद्वयं सिता॥१८॥
दार्वी मुस्ता यमान्यौ द्वौ चित्रकं कटुरोहिणी।
अजाजी पिप्पली शुण्ठी त्रिजातं कृमिकण्टकम्॥
अमृता वासकं कुष्ठं त्रिफला चव्यधान्यकम्।
मृतलौहं मृताभ्रञ्च प्रत्येकं कोलसम्मितम् ॥२०॥
पचेन्मृद्वग्निना वैद्यो भाजने मृन्मये नवे।
कर्षार्द्धञ्च ततः खादेदुष्णतोयानुपानतः ॥२१॥
शीतपित्तोदर्दकोठकण्डूपामाविचर्चिकाः ।
जीर्णज्वरकृमीन् पाण्डुशोथादींश्च विनाशयेत् ॥२२॥

हरिद्राचूर्ण १८८ ग्राम, निशोथचूर्ण १८८ ग्राम, हरड़चूर्ण १८८ ग्राम और चीनी २.२५० ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. दारुहल्दी, २. नागरमोथा, ३. अजवायन, ४. अजमोदा, ५. चित्रकमूल, ६. कटुकी, ७. जीरा ८. पिप्पली, ९. सोंठ, १०. तेजपात, ११. छोटी इलायची, १२. दालचीनी, १३. वायविडङ्ग, १४. गुडूची, १५. वासापञ्चाङ्ग, १६. कूठ, १७. आमला, १८. हरीतकी, १९. बहेड़ा, २०. चव्य, २१. धनियाँ, २२. लौहभस्म और २३. ताम्रभस्म (प्रत्येक द्रव्य ६ ग्राम) लें। सर्वप्रथम एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में हल्दीचूर्ण, निशोथचूर्ण एवं हरड़चूर्ण को एक साथ मिलाकर रखें। उसमें चीनी तथा $\frac{1}{2}$ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। ३-४ तार की चासनी होने पर पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर हिलाते रहें। जब सूखने लगे तब प्रक्षेप द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर उस पाक पर प्रक्षिप्त करें। लौहभस्म एवं ताम्रभस्म भी उसी प्रक्षेप द्रव्यों में मिलावें। जब पूरा पाक सूखकर चूर्ण हो जाय तो उसे मोटी छनना से छानकर पुनः टुकड़ों को इमामदस्ते में कूटकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस हरिद्राखण्ड को प्रतिदिन प्रातः-सायं ६-६ ग्राम की मात्रा में २ बार उष्णोदक के साथ सेवन

करने से शीतपित्त, उदर्द, कोठ, कण्डू, पामा, विचर्चिका, जीर्ण ज्वर, कृमि, पाण्डु और शोथ रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—सुगन्ध पाक जैसा। **वर्ण**—पीत। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—शीतपित्त, उदर्द, कोठ, कण्डू एवं कृमि में।

११. आर्द्रकखण्ड (भा.प्र.)

आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्याद् गोघृतं कुडवद्वयम्।
गोदुग्धं प्रस्थयुगलं तदर्द्धं शर्करा मता ॥२३॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्।
चित्रकञ्च विडङ्गञ्च मुस्तकं नागकेशरम् ॥२४॥
त्वगेलापत्रकर्चूरं प्रत्येकं पलमात्रकम्।
विधाय पाकं विधिवत्खादेत्तत्पलसम्मितम् ॥२५॥
इदमार्द्रकखण्डं हि प्रातर्भुक्तं व्यपोहति।
शीतपित्तमुदर्दञ्च कोठमुत्कोठमेव च ॥२६॥
यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च कासं श्वासमरोचकम्।
वातगुल्ममुदावर्त्तं शोथं कण्डूं कृमीनपि ॥२७॥
दीपयेदुदरे वह्निं बलवीर्यञ्च वर्द्धयेत्।
वपुः पुष्टं प्रकुरुते तस्मात्सेव्यमिदं सदा ॥२८॥

आर्द्रक (आदी) ७५० ग्राम, गोघृत ३७५ ग्राम, गोदुग्ध १५०० मि.ली. और शक्कर ७५० ग्राम लें।

प्रक्षेप द्रव्य—१. पिप्पली, २. पिपरामूल, ३. मरिच, ४. सोंठ, ५. चित्रकमूल, ६. वायविडङ्ग, ७. नागरमोथा, ८. नागकेशर, ९, दालचीनी, १० छोटी इलायची, १२ तेजपात और १३. कचूर (प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम) लें। सर्वप्रथम आर्द्रक को छीलकर साफ करें। ततः सिल पर पीसकर कल्क जैसा बना लें। तदनन्तर एक स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में घी डालकर मन्दाग्नि में थोड़ा हल्का लाल होने पर्यन्त भून लें। इसके बाद उसी पात्र में दूध लेकर आर्द्रक आदि का पाक करें तथा खोवा जैसा गाढ़ा होने पर उतार लें और एक पृथक् पात्र में निकालकर रखें। अब उस रिक्त किये हुए पात्र में चीनी तथा थोड़ा जल देकर पुनः कड़ी चासनी करें। ३-४ तार की चासनी होने पर उस पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर उसमें आर्द्रक तथा खोवा आदि शीघ्रतापूर्वक अच्छी तरह से मिला लें। ततः प्रक्षेप आदि द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण उसमें प्रक्षिप्त कर मिला लें। जब पूरा पाक चूर्ण रूप में हो जाय तो उसे मोटी छननी से छान लें। मोटे टुकड़े को फिर से इमामदस्ते में कूटकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस आर्द्रक पाक को ६ ग्राम की (४ पल) मात्रा में जल तथा गरम दूध के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से शीतपित्त, उदर्द, कोठ, उत्कोठ, राजयक्ष्मा, कास, श्वास, अरुचि, वातज गुल्म, उदावर्त्त, शोथ, कण्डू, कृमि आदि रोग नष्ट हो जाते है। यह आर्द्रक खण्ड जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है, रोगी के बल एवं वीर्य को बढ़ाता है तथा शरीर को पुष्ट करता है। अतएव इसका हमेशा सेवन करना चाहिए।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—ताजा एवं सुखोष्ण दूध से। **गन्ध**—आर्द्रकगन्धि। **वर्ण**—श्वेत एवं हल्का गैरिकाभ। **स्वाद**—मधुर एवं कटु। **उपयोग**—शीतपीत, उदर्द, कोठ, कण्डू, कृमि, श्वास एवं कास में।

१२. शीतपित्तभञ्जनरस (ना. विलास)

पारदं गन्धकं चैव कासीसं ताम्रमेव च।
शुद्धं मृतं च सयोज्य खल्वे गाढं विमर्दयेत् ॥२९॥
भृङ्गराजरसैश्चैव शरपुङ्खाद्रवैस्तथा।
भावयित्वा तु सप्ताहं ततो गजपुटे पचेत् ॥३०॥
वारत्रयं ततो नीतं शीतपित्तप्रभञ्जनम्।
रसं गुञ्जाद्वयं धीमान् गुडेन सह दापयेत् ॥३१॥
अनेन चाशु नश्यन्ति शीतपित्तादयो गदाः।
कुष्ठान्यपि च सर्वाणि वातरक्तं तथैव च ॥३२॥
जलावगाहं वायोश्च सेवनं च प्रजागरम्।
विदाहि चाशनं त्याज्यं शीतपित्तादिरोगिणा ॥३३॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध कासीस तथा ताम्रभस्म (समभाग) लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दनकर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में कासीस एवं ताम्रभस्म मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर भृङ्गराजस्वरस और शरपुंखास्वरस की ७-७ भावना एक-एक सप्ताह तक देकर टिकिया बनाकर सुखाकर गजपुट में पाक करें। ऐसी भावना देकर ३ वार गजपुट में पाक करें। पुनः मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस भस्म को २५० मि.ग्रा. की मात्रा में गुड़ के साथ मिलाकर खिलाने से शीतपित्त, उदर्द, कोठ, सभी तरह के कुष्ठ रोग, वातरक्त नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन काल में नदी एवं तालाब के जल में डुबकी लगाकर स्नान करना, शीतल वायु का सेवन और विदाही भोजन त्याग देना चाहिए।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—गुड़ के साथ। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—नीरस। **उपयोग**—शीतपित्त, उदर्द, कोठ, सभी प्रकार के कुष्ठ रोग एवं वातरक्त में।

शीतपित्त-उदर्द-कोठरोग में पथ्य

छर्दिर्विरेचनं लेपोऽसृङ् मोक्षो जीर्णशालयः।
जाङ्गलैरामिषैर्मुद्गैः कुलत्थैर्वा कृता रसाः ॥३४॥
कर्कोटकं कारवेल्लं शिग्रुमूलकपोतिकाः।
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं दाडिमं त्रिफला मधु ॥३५॥
कटुतिक्तकषायाणि सर्वाणीति गणः सखा।
शीतपित्तोदर्दकोठरोगिणां स्याद्यथामलम् ॥३६॥

वमन. विरेचन, लेप, रक्तमोक्षण, पुराना शालिचावल का भात, जंगली पशु-पक्षियों के मांस एवं मांसरस, मूँग एवं कुलत्थ यूष एवं दाल, कर्कोटक (खेखसा), करैला, सहिजन की फली, मूली, पोईशाक, वेतस के कोमल पत्ते, शालिञ्चशाक, अनारफल, त्रिफलाचूर्ण एवं क्वाथ, मधु तथा पित्त को नाश करने वाला कटु-तिक्त और कषाय रस वाले द्रव्यों का प्रयोग शीतपित्त-उदर्द-कोठ रोग के लिए हितकर है।

शीतपित्त-उदर्द-कोठ रोग में अपथ्य

क्षीरेक्षुजाता विविधा विकारा
मत्स्यौदकानूपभवामिषाणि ।
नवीनमद्यं वमिवेगरोधः
प्राग्दक्षिणाशापवनोऽह्नि निद्रा ॥३७॥
स्नानं विरुद्धाशनमातपञ्च
स्निग्धं तथाम्लं मधुरं व्यवायः ।
गुर्वन्नपानानि च शीतपित्त-
कोठामयोदर्दवतां विषाणि ॥३८॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामुदर्दशीतपित्तकोठाधिकारः ।

दूध एवं दूध के विकार, इक्षु या इक्षु विकार (गुड़ादि), मछली तथा अन्य जलीय प्राणियों का मांस, जलीय (आनूप देशीय) पशु-पक्षियों के मांस, नयी मदिरा, वमन के वेग को रोकना, दक्षिण दिशा की वायु का सेवन, दिन में सोना, स्नान, विरुद्ध भोजन, धूप का सेवन, स्निग्ध-अम्ल एवं मधुर पदार्थों का सेवन, मैथुन, गुरु पदार्थ एवं गुरु अन्न-पान—ये शीतपित्त-कोठ और उदर्द रोगों में विष जैसा अहितकर है।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य उदर्दशीतपित्तकोठाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।

अथाम्लपित्तरोगाधिकारः (५६)

अम्लपित्त रोग में क्रियाक्रम (च.द.)

वान्तिं कृत्वाऽम्लपित्ते तु विरेकं मृदु कारयेत्।
सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम्।
आस्थापनं चिरोद्भूते देयं दोषाद्यपेक्षया ॥१॥

अम्लपित्त रोग में पहले वमन कराकर मृदु विरेचन कराना चाहिए। अच्छी तरह से वमन के बाद शरीर का पुनः स्नेहन करावें तथा अनुवासन बस्ति (स्नेह बस्ति) देना चाहिए। पुराने अम्लपित्त रोग में दोषों का ज्ञान करके आस्थापन (क्वाथमिश्रित स्नेह) बस्ति देनी चाहिए।

द्विदोषज अमलपित्त रोग में (च.द.)

क्रिया शुद्धस्य शमनी ह्यनुबन्धव्यपेक्षया।
दोषसंसर्गजे कार्या भेषजाहारकल्पना ॥२॥

द्विदोषज अम्लपित्त में वमन-विरेकादि क्रिया द्वारा शरीर का शोधन होने पर मुख्य दोषों का विचार करके मुख्य दोष शामक औषध एवं आहार की कल्पना करनी चाहिए।

ऊर्ध्वग-अधोग अम्लपित्त में क्रियाक्रम (वङ्गसेन)

ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमानधोगं रेचनैर्हरेत्।
अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टपत्रकैः ॥३॥
कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तैः कफोल्वणे।
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ॥४॥

वमन से ऊर्ध्वग अम्लपित्त और विरेचन से अधोग अम्लपित्त का नाश करना चाहिए। कफप्रकोपाधिक्य ऊर्ध्वग अम्लपित्त में पटोलपत्र एवं निम्बपत्र का क्वाथ तैयार करें तथा मदनफल पिप्पलीचूर्ण, सैन्धवचूर्ण और मधु मिलाकर चाटें अर्थात् लेहन करें। ततः आकण्ठ पटोल-निम्बपत्रक्वाथ पुनः-पुनः पिलाना चाहिए। वमनार्थ आकण्ठ पिलाना चाहिए। इसी तरह आमला के क्वाथ में निशोथचूर्ण और मधु मिलाकर विरेचनार्थ पिलाना चाहिए।

अम्लपित्त में आहार एवं पथ्य (च.द.)

तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानञ्चापि प्रकल्पयेत्।
यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ॥
यथास्वं लाजशक्तून्वा सितामधुयुतान् पिबेत् ॥५॥

तिक्तरस प्रधान द्रव्यों का भोजन तथा पानार्थ कल्पना करनी चाहिए। तीक्ष्ण मिर्च-मसालों से रहित जौ, गेहूँ के बने पदार्थों एवं लाजसक्तु, मधु एवं शर्करा मिलाकर पिलाना चाहिए।

१. यवादिक्वाथ-१ (च.द.)

निस्तुषयववृषधात्रीक्वाथस्त्रिसुगन्धिमधुयुतः पीतः।
अपनयत्यम्लपित्तं यदि भुक्तं मुद्गयूषेण ॥६॥

भूसी रहित जौ, वासा, आमला के सम भागीय क्वाथ में त्रिसुगन्धि (छोटीइलायची, दालचीनी एवं तेजपात) एवं मधु मिलाकर पिलाने से अम्लपित्त रोग नष्ट हो जाता है। यदि मूँग यूष (दाल) से खाना खाया जाय अथवा केवल मूँग यूष या मूँग खाया जाय।

२. यवादिक्वाथ-२ (च.द.)

यवकृष्णापटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत्।
नाशयेदम्लपित्तञ्चारुचिञ्च वमनं तथा ॥७॥

जौ, पीपर तथा परवल की लता (समभाग) लें। इन तीनों द्रव्यों का यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई रहने पर छानकर दिन में दो बार पिलाने से अम्लपित्त, अरुचि और वमन नष्ट हो जाता है।

३. शृङ्गवेरादिक्वाथ (च.द.)

कफपित्तवमीकण्डूज्वरविस्फोटदाहहा ।
पाचनो दीपनः क्वाथः शृङ्गबेरपटोलयोः ॥८॥

कफ-पित्त के विकार, वमन, कण्डू, ज्वर, विस्फोट और दाह से युक्त अम्लपित्त रोगी को आर्द्रक १० ग्राम तथा पटोलपत्र १० ग्राम को यवकुट कर १६ गुना (३२० मि.ली.) जल में क्वाथ करें और चौथाई रहने पर छानकर पिलावें। दीपन-पाचन गुण से युक्त यह क्वाथ उपर्युक्त लक्षणों वाले अम्लपित्त रोग का नाश कर देता है।

४. पटोलादिक्वाथ-१ (च.द.)

पटोलं नागरं धान्यं क्वाथयित्वा जलं पिबेत्।
कण्डूपामार्त्तिशूलघ्नं कफपित्ताग्निमान्द्यजित् ॥९॥

पटोलपत्र, सोंठ और धनियाँ (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और दिन में २ बार इसे पिलावें। इसको १ सप्ताह तक

पान करने से कण्डू, पामा, शूल, कफ एवं पित्त विकार तथा अग्निमांद्य नष्ट हो जाते हैं।

५. पटोलादिक्वाथ-२ (च.द.)

पटोलविश्वामृतरोहिणीकृतं
जलं पिबेत्पित्तकफाश्रयेषु।
शूलभ्रमारोचकवह्निमान्द्य-
दाहज्वरच्छर्दिनिवारणं तत् ॥१०॥

१. पटोलपत्र, २. सोंठ, ३. गुडूची और ४. कटुकी (समभाग) लें। इन्हें यवकूट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर दिन में २ बार इस क्वाथ को पिलाने से शूल, भ्रम, अरुचि, अग्निमांद्य, दाह, ज्वर एवं वमन नष्ट हो जाते हैं।

६. दशाङ्गक्वाथ (च.द.)

वासामृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः ।
त्रिफलाकुलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥११॥

१. वासापञ्चाङ्ग, २. गुडूची, ३. पित्तपापड़ा, ४. निम्बत्वक्, ५. चिरायता, ६. भृङ्गराज, ७. आमला, ८. हरीतकी, ९. बहेड़ा और १०. पटोलपत्र (समभाग) लें। इन दस द्रव्यों का यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। प्रतिदिन २ बार इस क्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है।

७. फलत्रिकादिक्वाथ (च.द्र.)

फलत्रिकं पटोलञ्च तिक्ताक्वाथः सितायुतः ।
पीतः क्लीतकमध्वाक्तो ज्वरच्छर्द्यम्लपित्तजित् ॥१२॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. पटोलपत्र, ५. कटुकी (समभाग) मुलेठी और ६. मधु लें। उपर्युक्त पाँचों द्रव्यों को यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें तथा ५० मि.ली. क्वाथ में मुलेठी-चूर्ण २ ग्राम तथा मधु १२ ग्राम पिलाने से ज्वर, वमन और अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाते हैं।

८. अम्लपित्तहरयोग (च.द.)

पथ्याया भृङ्गराजस्य चूर्णं जीर्णगुडान्वितम्।
अम्लपित्तभवां हन्तिच्छर्दिमन्नविदाहजाम् ॥१३॥

हरीतकी और भृङ्गराज का समगुणचूर्ण ६ ग्राम तथा पुराना गुड़ १२ ग्राम मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से अम्लपित्त तथा विदग्धान्त जनित वमन नष्ट हो जाता है।

९. त्रिफलाकल्क (च.द.)

कान्तपात्रे वराकल्को व्युषितोऽभ्यासयोगतः ।
सिताक्षौद्रसमायुक्तः कफपित्तहरः स्मृतः ॥१४॥

त्रिफलाकल्क को ६ ग्राम की मात्रा में कान्तलोह के पात्र में रात्रिपर्यन्त रखें। प्रातः इसमें चीनी और मधु मिलाकर सेवन करने से कफ-पित्तज रोग अर्थात् अम्लपित्त नष्ट हो जाता है।

१०. छिन्नादि क्वाथ एवं हरीतकी चूर्ण प्रयोग (च.द.)

छिन्नाखदिरयष्ट्याह्वदार्वम्भो वा मधुद्रवम्।
सद्राक्षामभयां खादेत्सक्षौद्रां सगुडाञ्च ताम् ॥१५॥

क्वाथ—गुडूची, खदिरकाष्ठ, मुलेठी, दारुहल्दी और सुगन्धबाला (समभाग) लें। इन ५ द्रव्यों को यवकुट कर काच-पात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और इसे २ बार मधु मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से अम्लपित्त रोग नष्ट हो जाता है।

अथवा

चूर्ण—हरीतकीचूर्ण ३ ग्राम, द्राक्षाकल्क ३ ग्राम, मधु ३ ग्राम तथा गुड़ ३ ग्राम मिला कर प्रतिदिन दो बार खिलाने से अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है।

११. छिन्नोद्भवादिक्वाथ (च.द.)

छिन्नोद्भवा निम्बपटोलपत्रं
फलत्रिकं सुकथितं सुशीतम्।
क्षौद्रान्वितं पीतमनेकरूपं
सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तम् ॥१६॥

१. गुडूची, २. निम्बत्वक्, ३. पटोलपत्र, ४. आमला, ५. हरीतकी और ६. बहेड़ा (समभाग) लें। इन छः द्रव्यों को यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और शीतल होने पर मधु मिलाकर पिलाने से भयंकर अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है।

अम्लपित्तरोग में औषधि स्मारिका (च.द.)

वासाघृतं तिक्तघृतं पिप्पलीघृतमेव च।
अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यं गुडकूष्माण्डकं तथा ॥
पक्तिशूलापहा योगास्तथा खण्डामलक्यपि ॥१७॥

अम्लपित्त रोग में—रक्तपित्त रोग का वासाघृत, कुष्ठरोग का तिक्तघृत, परिणामशूल का पिप्पलीघृत, खण्डामलकी रसायन, वाजीकरणाधिकार का गुडकूष्माण्डक और पक्तिशूल नाशक समस्त योग देना चाहिए।

१२. हिंग्वादिचूर्ण (च.द.)

हिङ्गु च कतकफलानि चिञ्चात्वचो घृतञ्च पुटदग्धम् ।
शमयति तदम्लपित्तमम्लभुजो यदि यथोत्तरं द्विगुणम् ॥

१. हींग १ भाग, २. कतकफल २ भाग, ३. इमलीवृक्ष की सूखी छाल ४ भाग और गोघृत ८ भाग—इन्हें एक साथ कूटकर घृत मिलावें और शराव सम्पुट कर वाराहपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर निकालकर खरल में पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस भस्म को २ से ५ ग्राम तक की मात्रा में उष्णोदक के साथ सेवन करने तथा खट्टे पदार्थ का भोजन करने से अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है।

१३. पिप्पलीचूर्ण एवं निम्बुस्वरस योग (च.द.)

पिप्पली मधुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी ।
जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥१९॥

(१) पिप्पलीचूर्ण २ ग्राम मधु के साथ मिलाकर चाटने से अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है। अथवा (२) सायंकाल १० मि.ली. निम्बुस्वरस प्रतिदिन पीने से अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है।

१४. अभयादिचूर्ण (वङ्गसेन)

अभया पिप्पली द्राक्षा सिता धान्ययवासकम् ।
मधुना कण्ठदाहघ्नं पित्तश्लेष्महरं परम् ॥२०॥

१. हरीतकी २. पीपर, ३. द्राक्षा (मुनक्का), ४. चीनी, ५. धनियाँ और ६. जवासा (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस अभयादिचूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में प्रतिदिन मधु मिलाकर चाटने से कण्ठदाह, पित्त और कफ के विकार नष्ट हो जाते हैं।

१५. पटोलादिक्वाथ (भा.प्र.)

पटोलयवधान्याकपिप्पल्यामलकानि च ।
एषां क्षौद्रयुतः क्वाथः पित्तश्लेष्महरः परः ॥२१॥

१. पटोलपत्र, २. यव, ३. धनियाँ, ४. पीपर तथा ५. आमला (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर दिन में २ बार मधु मिलाकर पियें। ५० मि.ली. क्वाथ में मधु १२ ग्राम मिलाना चाहिए।

१६. पञ्चनिम्बादि शक्तुचूर्ण (च.द.)

एकोऽशः पञ्च निम्बानां द्विगुणो वृद्धदारकः ।
शक्तुर्दशगुणो देयः शर्करामधुरीकृतः ॥२२॥
शीतेन वारिणा पीतं शूलं पित्तकफोच्छ्रितम् ।
निहन्ति चूर्णं सक्षौद्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥२३॥

पञ्चनिम्ब (पत्र, पुष्प, फलमज्जा, त्वक् और मूलत्वक् इनका मिलित पञ्चाङ्ग) चूर्ण १ भाग, विधारा २ भाग, जौ का सत्तू १० भाग और चीनी १० भाग लें। निम्ब के पञ्चाङ्ग और विधारा को एक साथ सूक्ष्म चूर्ण कर सत्तू के साथ मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। या उसी के साथ चीनी भी पीसकर मिला लें। इस चूर्ण को ५० ग्राम की मात्रा में शीतल जल से पिलाने से कफज एवं पित्तज शूल नष्ट हो जाता हैं। उस चूर्ण को मधु मिलाकर खिलाने या चटाने से भयंकर अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है।

१७. अविपत्तिकरचूर्ण (रसेन्द्रचिन्तामणि)

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडञ्चैव विडङ्गकम् ।
एला पत्रञ्च चूर्णानि समभागानि कारयेत् ॥२४॥
सर्वमेकीकृतं यावल्लवङ्गं तत्समं भवेत् ।
सर्वचूर्णद्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं प्रदापयेत् ॥२५॥
भोजनादौ तथा मध्ये खादेन्माशाष्टकं शुभम् ।
सर्वमेकीकृतं यावत्तावच्छर्करयाऽन्वितम् ॥२६॥
अम्लपित्तं निहन्त्याशु विबन्धं मलमूत्रयोः ।
अग्निमान्द्यभवान् रोगान् नाशयेदविकल्पतः ॥२७॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव सर्वदुर्नामनाशनम् ।
अविपत्तिकरं चूर्णमगस्त्यविहितं शुभम् ॥२८॥

१. पीपर, २. सोंठ, ३. मरिच, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. नागरमोथा, ८. विड्लवण, ९. वायविडङ्ग, १०. छोटीइलायची, ११. तेजपात (प्रत्येक द्रव्य १ भाग), १२ लौंग ११ भाग, १३. निशोथ ४४ भाग १४. चीनी ६६ भाग लें। चीनी छोड़कर सभी काष्ठौषधों का मिश्रित सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः उसमें पृथक् से चीनी पीसकर मिला लें और छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे अविपत्तिकरचूर्ण कहते हैं। इस चूर्ण का निर्माण महर्षि अगस्त्य ने किया था। इस चूर्ण को ३ से ८ ग्राम की मात्रा में ताजा जल के साथ प्रतिदिन २-३ बार सेवन करने से शीघ्र ही अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता हैं। इसके अतिरिक्त मलमूत्र का विबन्ध तथा अग्निमान्द्यजन्य रोग निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं। २० प्रकार के प्रमेह और सभी प्रकार के अर्शरोग इससे नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३ से ८ ग्राम तक। **अनुपान**—शीतल जल से। **गन्ध**—लवङ्गगन्धी। **वर्ण**—श्वेताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त, मल-मूत्र का विबन्ध, अग्निमान्द्यजन्य रोग, ग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका तथा अर्श आदि में।

१८. लीलाविलासरस (र.सा.सं.)

रसो बलिर्व्योमरविस्तु लौहं
धात्र्यक्षनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य ।
तदल्पघृष्टं मृदुमार्कवेण
सम्मर्दयेदस्य च वल्लयुग्मम् ॥२९॥

हन्त्यम्लपित्तं मधुनाऽवलीढं
लीलाविलासो रसराज एषः।
छर्दिं सशूलं हृदयस्य दाहं
निवारयेदेष न संशयोऽस्ति॥
दुग्धं सकूष्माण्डरसं सधात्री-
फलं समेतं ससितं भजेद्वा॥३०॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. अभ्रकभस्म, ४. ताम्रभस्म और ५. लौहभस्म (समभाग) लें।

भावना—आमलाक्वाथ, बहेड़ाक्वाथ और भृङ्गराजस्वरस लें।

सर्वप्रथम पत्थर के खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य तीनों भस्मों को कज्जली में मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर आमलास्वरस या क्वाथ में ३ दिनों तक मर्दन करें। इसी प्रकार बहेड़ाफलत्वक् क्वाथ और भृङ्गराजस्वरस की ३-३ भावना देकर ३-३ दिनों तक मर्दन करें। पुनः ७५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'लीलाविलासरस' नाम का रसराज मधु से सेवन करने से अम्लपित्तरोग का नाश करता है। इसे गोदुग्ध अथवा कूष्माण्डस्वरस या आमलकीस्वरस या क्वाथ से सेवन करना चाहिए। इसके प्रयोग से वमन, शूल, हृदयदाहकष्ट निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु-दूध से, कूष्माण्ड स्वरस से, आमलकीस्वरस से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—अम्लपित्त, वमन, शूल और हृद्दाह में।

१९. अम्लपित्तान्तकलौह-१ (र.सा.सं.)

मृतसूतार्कलौहानां तुल्यां पथ्यां विमर्दयेत्।
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये॥३१॥

१. रससिन्दूर १ भाग, २. ताम्रभस्म १ भाग, ३. लोहभस्म १ भाग तथा हरीतकीचूर्ण ३ भाग लें। एक खरल में सर्वप्रथम रससिन्दूर को अच्छी तरह से मर्दन कर अन्य भस्मों एवं हरीतकी चूर्ण को उसी खरल में मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि को १ माशा किन्तु आज यह मात्रा अधिक है, अतः इसे ३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर चाटने से अम्लपित्त नष्ट हो जाता है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—अम्लपित्त में।

२०. अम्लपित्तान्तकलौह-२

रसगन्धकमण्डूरैरयस्कान्तः सुजारितः।
सम्यङ्मारितमभ्रञ्च सर्वं सदृशभागिकम्॥३२॥
धात्रीरसेन सम्मर्द्य वटी कार्या द्विरक्तिका।
धन्याभयामधुरिकाक्वाथेन यदि सेव्यते॥३३॥
अम्लपित्तादिकान् रोगान् हन्ति शूलान्यशेषतः।
अम्लपित्तान्तको नाम लौहोऽयं परिकीर्तितः॥३४॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. शुद्ध मण्डूरचूर्ण, ४. कान्तलौहभस्म और ५. अभ्रकभस्म (समभाग) लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः आमलास्वरस या क्वाथ की भावना देकर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस औषधि की १ वटी धनियाँ, हरीतकी और सौंफ के मिलित क्वाथ से अनुपान रूप में सेवन करने से अम्लपित्त आदि रोग तथा शूलरोग सम्पूर्ण तरह से नष्ट हो जाते हैं। इसे अम्लपित्तान्तकलौह कहते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—धनियाँ, हरीतकी और सौंफ के मिलित क्वाथ से। **गन्धक**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—अम्लपित्त एवं शूल में।

२१. भास्करामृताभ्रक

वासाऽमृताकेशराजपर्पटीनिम्बभृङ्गकम्।
वृश्चीरबृहतीमुस्तं वाट्यालकशतावरी॥३५॥
एषां सत्त्वैः पलोन्मानैर्मर्दितं विमलाभ्रकम्।
सहस्रपुटितं तत्र शतावर्या रसं क्षिपेत्॥३६॥
वारद्वादशकं दत्त्वा वटिकां कारयेद्भिषक्।
भास्करामृतनामेदमम्लपित्तं नियच्छति॥३७॥
शूलमन्नद्रवं शूलं शूलञ्च परिणामजम्।
छर्दिं हृल्लासमरुचिं तृष्णां कासञ्च दुर्जयम्॥३८॥
हृद्ग्रहं कामलां रक्तपित्तं यक्ष्माणमेव च।
दाहं शोथं भ्रमिं तन्द्रां विस्फोटं कुष्ठमेव च॥
श्वासं मूर्च्छां च मन्दाग्निं यकृत्प्लीहोदरं तथा॥३९॥

सहस्रपुटित अभ्रकभस्म ५० ग्राम (४६ ग्राम का १ पल होता है) लें।

भावना द्रव—१. वासापत्रस्वरस, २. गुडूचीस्वरस, ३. केशराजस्वरस, ४. पित्तपापड़ाक्वाथ, ५. निम्बपत्रस्वरस, ६. भृङ्गराजस्वरस, ७. श्वेतपुनर्नवारस, ८. बृहतीक्वाथ, ९. नागरमोथाक्वाथ, १०. बलामूलक्वाथ और ११. शतावरी स्वरस—वासापत्ररस से बलामूलक्वाथ तक के सभी द्रव ५०-५० मि.ली. लें तथा शतावरीक्वाथ की १२ भावना अभ्रकभस्म में दें। एक खरल में अभ्रकभस्म (सहस्रपुटी) में वासापत्र से क्रमशः बलामूलक्वाथ तक के सभी १० द्रवों के ५०-५० मि.ली. से भावना दें और ३-३ घण्टे तक मर्दन करें तथा शतावरी- स्वरस से १२ भावना दें। इसके बाद १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें।

इसे 'भास्करामृताभ्रकरस' नाम से जाना जाता है। इस अभ्रकभस्म को मधु के साथ सेवन करने से अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त शूल, अन्नद्रवशूल, परिणामशूल, वमन, हृल्लास, अरुचि, तृष्णा, दुर्जय कास, हृद्ग्रह, कामला, रक्त-पित्त, यक्ष्मा, दाह, शोथ, भ्रम, तन्द्रा, विस्फोट, कुष्ठ, श्वास, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, यकृदोदर एवं प्लीहोदर रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धि। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—अम्लपित्त, सभी प्रकार के शूल, कास, श्वास, यक्ष्मा, रक्तपित, दाह, भ्रम, कुष्ठ एवं हृद्ग्रह में।

२२. सर्वतोभद्रलौह

लौहचूर्णं मृतं ताम्रमभ्रकञ्च पलं पलम्।
शुद्धसूतञ्च कर्षैकं गन्धकार्द्धपलं तथा ॥४०॥
माक्षिकस्य विशुद्धस्य कर्षं शुद्धा शिला वरा।
सार्द्धकर्षं विशुद्धञ्च शिलाजतु तथा परम् ॥४१॥
गुग्गुलोश्चापि कर्षैकं शाणमानं परस्य च।
चूर्णं विडङ्गभल्लातवह्निश्वेतार्कमूलजम् ॥४२॥
करिकर्णपलाशञ्च तालमूली पुनर्नवा।
घनामृतानागबलाचक्रमर्दकमुण्डिरी ॥४३॥
भृङ्गकेशशतावर्यो वृद्धदारं फलत्रयम्।
त्रिकट्वथापि सर्वेषां प्रत्येकञ्च नयेद्भिषक् ॥४४॥
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य घृतेन मधुना सह।
स्निग्धे भाण्डे विनिक्षिप्य ततः कुर्याद्विधानवित् ॥
माषकादिक्रमेणैव लौहं सर्वरसायनम्।
अम्लपित्तं जयेच्छीघ्रं सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥४६॥
तद्वदर्शांसि सर्वाणि सर्वमेव भगन्दरम्।
पक्तिशूलञ्च शूलञ्च तथाऽऽमं कुक्षिसम्भवम् ॥४७॥
वातरक्तं तथा कुष्ठं पाण्डुरोगं हलीमकम्।
आमवातं तथा शोथमग्निमान्द्यं सुदुस्तरम् ॥४८॥
कामलां वातगुल्मञ्च पिडकागरगृध्रसीः।
कासश्वासारुचिहरं वृष्यमेतद्विशेषतः ॥४९॥
सर्वव्याधिहरं प्रोक्तं यथेष्टाहारसेविनः।
यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च वातरोगं विनाशयेत् ॥
संज्ञया सर्वतोभद्रलौहो रसवरः स्मृतः ॥५०॥

१. लौहभस्म ४६ ग्राम, २. ताम्रभस्म ४६ ग्राम, ३. अभ्रकभस्म ४६ ग्राम, ४. शुद्ध पारद १२ ग्राम, ५. शुद्ध गन्धक २३ ग्राम, ६. स्वर्णमाक्षिकभस्म १२ ग्राम, ७. शुद्ध मैनसिल १२ ग्राम, ८. शुद्ध शिलाजीत १८ ग्राम, ९. शुद्ध गुग्गुलु १२ ग्राम, १०. वायविडङ्गचूर्ण, ११. शुद्ध भिलावाचूर्ण, १२. चित्रकमूलचूर्ण, १३. श्वेतअर्कमूलत्वक्चूर्ण, १४. हस्तिकर्ण-पलाशचूर्ण, १५. श्वेतमुशलीचूर्ण, १६. पुनर्नवामूलचूर्ण, १७. नागरमोथाचूर्ण, १८. गुडूचीचूर्ण, १९. नागबलामूलचूर्ण, २०. चक्रमर्दबीजचूर्ण, २१. गोरखमुण्डीचूर्ण, २२. भृङ्गराजचूर्ण, २३. केशराजचूर्ण, २४. शतावरीचूर्ण, २५. विधाराचूर्ण, २६. आमलाचूर्ण, २७. हरीतकीचूर्ण, २८. बहेड़ाचूर्ण, २९. सोंठ चूर्ण, ३०. पीपरचूर्ण और ३१. मरिचचूर्ण (प्रत्येक द्रव्य १ शाण=३ ग्राम) लें। गोघृत १०० ग्राम तथा मधु १५० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक पत्थर के खरल में पारद एवं गन्धक की कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में ३ भस्मों को मिला दें। ततः शोधित द्रव्यों और वायविडङ्गचूर्ण से मरिचचूर्ण के सभी २२ द्रव्यों को (प्रत्येक ३ ग्राम) मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर विषम मात्रा में मधु एवं घृत मिलाकर मर्दन करें और सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह सर्वतोभद्रलौह रसायन गुणों से युक्त है। इसकी १ ग्राम=१ माशा की मात्रा में ताजा जल से सेवन करें और १ ग्राम तक बढ़ावें। इसके सेवन से सभी उपद्रवों से युक्त अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार सभी प्रकार के अर्शरोग, भगन्दर, परिणामशूल, शूलरोग, आमशूल, कुक्षिशूल, वातरक्त, कुष्ठ, पाण्डु रोग, हलीमक, आमवात, शोथ, भयंकर अग्निमांद्य, कामला, वातज गुल्म, प्रमेहपिडका, गृध्रसी, कास, श्वास, अरुचि, यक्ष्मा, रक्तपित्त और वातरोग नष्ट हो जाते हैं। यह वृष्य है तथा अनुपान-भेद से सभी व्याधियों का नाश करता है। इसके सेवन के समय कोई पथ्य पालन की आवश्यकता नहीं हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—घृत गन्धि। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त, सभी प्रकार के शूल, अर्श, भगन्दर आदि रोगों में।

२३. पानीयभक्तगुटिका-१ (र.चि.म.)

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा।
प्रत्येकं कार्षिकं दद्यात् सूतगन्धौ तदर्द्धकौ ॥५१॥
लौहाभ्रकविडङ्गानां दद्यात्कर्षद्वयं तथा।
त्रिफलायाः कषायेण गुडीं कृत्वा विधानतः ॥५२॥
तदेकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु।
हन्ति शूलं त्रिदोषोत्थमम्लपित्तं विशेषतः ॥५३॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम्।
श्वासं कासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषनाशिनी ॥५४॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. आमला-चूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ७. नागरमोथाचूर्ण, ८. निशोथचूर्ण, ९. चित्रकमूलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम; १०. शुद्ध पारद ६ ग्राम, ११. शुद्ध गन्धक ६. ग्राम १२. लौहभस्म २३ ग्राम, १३. अभ्रकभस्म २३ ग्राम और ४. विडङ्गचूर्ण २३ ग्राम लें। सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक को एक खरल में मर्दन कर अच्छी तरह कज्जली बनावें। ततः अन्य सभी द्रव्यों का सूक्ष्म

चूर्ण कज्जली में मिलाकर मर्दन करें और त्रिफलाक्वाथ की भावना देकर ५०० मि.ली. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी प्रात:काल काञ्जी के साथ सेवन करने से शूल, त्रिदोषज अम्लपित्त, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल एवं गुदाशूल, श्वास, कास, कुष्ठ और संग्रहणीरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—काञ्जी से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—अम्लपित्त, शूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, श्वास, कास एवं ग्रहणी में।

२४. पानीयभक्तवटिका-२ (र.सा.सं.)

कृष्णाभ्रलौहमलकुष्ठविडङ्गचूर्णं
प्रत्येकमेकपलिकं विधिवद् विधाय।
चव्यं कटुत्रयफलत्रयकेशराज-
दन्तीपयोदचपलाऽनलघण्टकर्णाः ॥५५॥
माणौल्लशुक्लबृहतीत्रिवृताः ससूर्या-
वर्त्ताः पुनर्नविकया सहितास्त्वमीषाम्।
मूलं प्रतिप्रतिविशोधितमक्षमेकं
चूर्णं तदर्द्धरसगन्धकमेकसंस्थम् ॥५६॥
कृत्वाऽऽर्द्रकीयरससंवलितञ्च भूयः
सम्पिष्य यस्य वटिका विधिवद्विधेया।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं ग्रहणीमसाध्यां
दुर्नामकामलभगन्दरशोथगुल्मान् ॥५७॥
शूलञ्च पाकजनितं सततानिमान्द्यं
सद्यः करोत्युपचितं चिरनष्टवह्नेः।
कुष्ठानि हन्ति पलितञ्च वलिं विवृद्धां
श्वासञ्च कासमपि पाण्डुगदं निहन्ति ॥५८॥
वार्यन्नमांसदधिकाञ्जिकतक्रमत्स्य-
वृक्षाम्लतैलपरिपक्वभुजो यथेष्टम्।
शृङ्गाटबिल्वगुडकञ्चटनारिकेल-
दुग्धानि सर्वविदलानि विवर्जयेत्तु ॥५९॥

१. कृष्णाभ्रकभस्म, २. शुद्ध मण्डूरचूर्ण, ३. कूठचूर्ण, ४. वायविडङ्गचूर्ण—ये चारो द्रव्य प्रत्येक १-१ पल (४६ ग्राम) लें; ५. चव्यचूर्ण, ६. सोंठचूर्ण, ७. पीपरचूर्ण, ८. मरिचचूर्ण, ९. आमलाचूर्ण १० बहेड़ाचूर्ण, ११. हरीतकीचूर्ण, १२ केशराजचूर्ण, १३. दन्तीमूलचूर्ण, १४. नागरमोथाचूर्ण, १५. पीपरचूर्ण, १६. चित्रकमूलचूर्ण, १७. घण्टकर्णचूर्ण, १८. मानकन्दचूर्ण, १९. सूरणचूर्ण, २० श्वेतकण्टकारी, २१. निशोथचूर्ण, २२. सूर्यावर्त्तचूर्ण, २३. पुनर्नवामूलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें तथा २४. शुद्ध पारद ६ ग्राम और २५ शुद्ध गन्धक ६ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें तथा अन्य भस्म एवं काष्ठौषधिचूर्णों को कज्जली में मिलावें। आर्द्रकस्वरस की ३ भावना देकर ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी के सेवन से अम्लपित्त अरुचि, असाध्य संग्रहणी, अर्श, कामला, भगन्दर, शोथ, गुल्म, परिणामशूल, सतत अग्निमांद्य, सभी कुष्ठों, पलित, बढ़ी हुई वली, श्वास, कास, पाण्डु नष्ट हो जाते हैं। बहुत दिनों से नष्ट हुई पाचकाग्नि बढ़ती है। पथ्य में—पानी मिला भात, मांस, मांसरस, दही, काञ्जी, तक्र, मछली, वृक्षाम्ल (कोकमफल) तथा तैलपक्व पदार्थ खाना चाहिए तथा सिंघाड़ा, बिल्वफल, गुड़, कञ्चटशाक, नारियल, दुग्ध तथा सभी प्रकार की दाल इस औषधि के सेवन काल में वर्जित है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—कटु-तिक्त। **उपयोग**—अम्लपित्त, परिणामशूल, शूल, अर्श एवं अग्निमांद्य में।

२५. पञ्चाननगुटिका (रसरत्नाकर)

शुद्धसूतं पलार्द्धञ्च तत्समं शुद्धगन्धकम्।
तयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं लिप्त्वा मूषोदरे क्षिपेत् ॥६०॥
आच्छाद्य पञ्चलवणैर्लिप्त्वा गजपुटे पचेत्।
सिद्धं ताम्रं समादाय पलमेकं विचूर्णयेत् ॥६१॥
पारदस्य पलञ्चैकं गन्धकस्य पलं तथा।
पुटदग्धस्य लौहस्य गगनस्य पलं पलम् ॥६२॥
यमानी शतपुष्पा च त्रिकटु त्रिफलापि च।
त्रिवृता चविका दन्ति शिखरी जीरकद्वयम् ॥६३॥
एतेषां पलिकैर्भागैर्घण्टकर्णकमाणकम्।
ग्रन्थिकं चित्रकञ्चैव कुलिशानां पलार्द्धकम् ॥६४॥
आर्द्रकस्वरसैः पिष्ट्वा गुडिकां माषकोन्मिताम्।
पञ्चाननगुडी ख्याता सर्वरोगविनाशिनी ॥६५॥
अम्लपित्तमहाव्याधिनाशिनी च रसायनी।
महाग्निकारिका चैषा परिणामव्यथाऽपहा ॥६६॥
शोथपाण्ड्वामयानाहप्लीहगुल्मोदरापहा।
गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हितः ॥६७॥

१. शुद्ध पारद ७० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ७० ग्राम, ३. शुद्ध ताम्रपत्र ४६ ग्राम, ४. लौहभस्म ४६ ग्राम, ५. अभ्रक भस्म ४६ ग्राम, ६. अजवाइन ४६ ग्राम, ७. सौंफ ४६ ग्राम, ८. सोंठ १५ ग्राम, ९. पीपर १५ ग्राम, १०. मरिच १५ ग्राम, ११. आमला १५ ग्राम, १२. हरीतकी १५ ग्राम, १३. बहेड़ा ४६ ग्राम, १४. निशोथ ४६ ग्राम, १५. चव्य ४६ ग्राम, १६. दन्तीमूल ४६ ग्राम, १७. अपामार्ग ४६ ग्राम, १८. जीरा ४६ ग्राम, १९. स्याहजीरा ४६ ग्राम, २०. घण्टकर्ण २३ ग्राम, २१. मानकन्द २३ ग्राम, २२. पिपरामूल २३ ग्राम, २३.

चित्रकमूल २३ ग्राम तथा २४. अस्थिसंहारी २३ ग्राम लें। शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को एक खरल में अच्छी तरह मर्दन कर कज्जली बनावें। ततः इसमें से ४६ ग्राम कज्जली लेकर निम्बुस्वरस में मर्दन कर पेस्ट जैसा होने पर ताम्रपत्र के ऊपर लेप कर धूप में सुखा लें। इसके बाद पञ्चलवण (सैन्धव, सामुद्र, सौवर्चल, विड् एवं औद्भिल्लवण समभाग) का ५०० ग्राम चूर्ण लें। एक शराव में थोड़ा पञ्चलवणचूर्ण रखें। उस लवण पर कज्जली लिप्त ताम्रपत्र रखें और ताम्रपत्र को पञ्चलवणचूर्ण से ढककर शरावसम्पुट करें तथा कपड़मिट्टी कर गजपुट में पाक करें। दूसरे दिन स्वाङ्ग शीतल होने पर सम्पुट खोलकर ताम्रपत्र निकाल लें और खरल में मर्दन करें। पुनः उसमें ९४ ग्राम कज्जली और ४६-४६ ग्राम लौहभस्म और अभ्रकभस्म मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर अजवायनचूर्ण से लेकर अस्थिसंहारीचूर्ण तक के सभी १९ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मर्दन करें और आर्द्रकस्वरस की १ भावना देकर १-१ माशा (१ ग्राम) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'पञ्चाननगुटिका' नाम से जानी जाती है। यह सभी रोगों का नाश करती है। इसके अतिरिक्त यह अम्लपित्त रूपी महाव्याधि को नाश करती है। यह रसायनगुण से युक्त है, अत्यन्त अग्निप्रदीपक है, परिणामशूल नाशक है, शोथ, पाण्डु, आनाह, प्लीहा, गुल्म और उदररोग नाशक है। इस पञ्चानन गुटिका के सेवनकाल में गुरु एवं वृष्य अन्न-पान जैसे दूध, मांसरस आदि आहार हितकर है।

मात्रा—१ ग्राम। **गन्ध**—रसायनगन्धी है। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—ग्रहणी, अग्निमांद्य, शूल, अम्लपित्त और उदररोग में।

२६. क्षुधावतीगुटिका-१ (रसरत्नाकर)

रसगन्धकमभ्राणि यमानी त्र्यूषणं तथा।
त्रिफला शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥६८॥
पुनर्नवा वचा दन्ती त्रिवृता घण्टकर्णकम्।
दण्डोत्पला शारिवे द्वे चाक्षमात्राणि कारयेत् ॥६९॥
मण्डूरं द्विगुणं दत्त्वा पेषणीयं प्रयत्नतः।
आर्द्रस्वरस आलोड्य गुडिकां कारयेद् बुधः ॥७०॥
प्रत्यहं भक्षयेदेकां भक्तवारि पिबेदनु।
वटी क्षुधावती नाम्ना चाम्लपित्तविनाशिनी ॥७१॥
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलन्तथा।
प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं विनाशयेत् ॥७२॥
परिणामभवं शूलं कासं पञ्चविधं तथा।
जगतस्तु हितार्थाय वाग्भटेन प्रकीर्त्तिता ॥७३॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. अभ्रकभस्म, ४. अजवायनचूर्ण, ५. सोंठचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण, ८. आमलाचूर्ण, ९. हरीतकीचूर्ण, १०. बहेड़ाचूर्ण, ११. सौंफचूर्ण, १२ चव्यचूर्ण, १३. जीराचूर्ण, १४. स्याहजीराचूर्ण, १५. पुनर्नवाचूर्ण, १६ वचचूर्ण, १७. दन्तीचूर्ण, १८. निशोथचूर्ण, १९. घण्टकर्णचूर्ण, २० सहदेवीचूर्ण, २१. श्वेत अनन्तमूल, २२. कृष्ण अनन्तमूल—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम तथा शुद्ध मण्डूरचूर्ण ५१५ ग्राम (मिलित सभी औषधों के दुगुना) लेना चाहिए। भावना—आर्द्रकस्वरस से। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली के साथ अभ्रकभस्म से अनन्तमूल कृष्ण और शुद्ध मण्डूर तक के सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और आर्द्रकस्वरस की भावना देकर १ दिन तक एण्ड रनर मशीन में मर्दन करें। ततः ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर में छाया सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी प्रातः-सायं मधु के साथ चाटकर ऊपर से भात का माँड़ पीना चाहिए। इसे 'क्षुधावती' कहते हैं। यह अम्लपित्त, प्लीहावृद्धि, श्वास, आनाह, आमवात, परिणामशूल एवं पाँच प्रकार के कास रोगों को नष्ट करती है। यह अग्नि को प्रदीप्त करती है तथा शरीर के तेज और बल को बढ़ाती है। संसार की भलाई के लिए आचार्य वाग्भट ने इसे बनाया था।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं चावल के मांड से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—मन्दाग्नि, संग्रहणी, अम्लपित्त एवं परिणामशूल में।

२७. क्षुधावतीगुटिका-२

रसायोगन्धकाभ्राणि त्र्यूषणं त्रिफला वचा।
यमानी शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥७४॥
प्रत्येकं पलमेषान्तु घण्टकर्णः पुनर्नवा।
माणकं ग्रन्थिकं चेन्द्रकेशराजसुदर्शनाः ॥७५॥
दण्डोत्पला त्रिवृद्दन्ती जामातृ रक्तचन्दनम्।
भृङ्गपामार्गकुलका मण्डूकञ्च पलार्द्धकम् ॥७६॥
आर्द्रकस्वरसेनाथ गुडिकां सम्प्रकल्पयेत्।
बदरास्थिसमां चैकां भक्षयित्वा पिबेदनु ॥७७॥
वारिभक्तजलञ्चैव प्रातरुत्थाय मानवः।
वटी क्षुधावती नाम्ना सर्वाजीर्णविनाशिनी ॥७८॥
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं भस्मकञ्च नियच्छति।
अम्लपित्तं च शूलञ्च परिणामकृतञ्च यात् ॥७९॥
तत्सर्वं शमयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
मधुरं वर्जयेदत्र विशेषात् क्षीरशर्करे ॥८०॥

१. शुद्ध पारद ४६ ग्राम, २. लौहभस्म, ३. शुद्ध गन्धक ४६ ग्राम, ४. अभ्रकभस्म ४६ ग्राम, ५. सोंठचूर्ण ४६ ग्राम, ६. पीपरचूर्ण ४६ ग्राम, ७. मरिचचूर्ण ४६ ग्राम, ८. आमला-

चूर्ण ४६ ग्राम, ९. हरीतकीचूर्ण ४६ ग्राम, १०. बहेड़ाचूर्ण ४६ ग्राम, ११. वचचूर्ण ४६ ग्राम, १२. अजवायनचूर्ण ४६ ग्राम, १३. सौंफचूर्ण ४६ ग्राम, १४. चव्यचूर्ण ४६ ग्राम, १५. श्वेतजीराचूर्ण ४६ ग्राम, १६. स्याहजीराचूर्ण ४६ ग्राम, १७. घण्टकर्णचूर्ण २३ ग्राम, १८. पुनर्नवाचूर्ण २३ ग्राम, १९. मानकन्दचूर्ण २३ ग्राम, २०. पिपरामूलचूर्ण २३ ग्राम, २१. इन्द्रयवचूर्ण २३ ग्राम, २२. केशराजचूर्ण २३ ग्राम, २३. सुदर्शनचूर्ण २३ ग्राम, २४. सहदेवीचूर्ण २३ ग्राम, २५. निशोथचूर्ण २३ ग्राम, २६. दन्तीमूलचूर्ण २३ ग्राम, २७. सूयावर्त्त (हुरहुर बीज) २३ ग्राम २८. लालचन्दनचूर्ण २३ ग्राम, २९. भृङ्गराजचूर्ण २३ ग्राम, ३०. अपामार्गचूर्ण २३ ग्राम, ३१. पटोलपत्रचूर्ण २३ ग्राम और ३२. मण्डूकपर्णीचूर्ण २३ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक बड़े खरल में पारद एवं गन्धक का एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली के साथ लौहभस्म, अभ्रकभस्म से मण्डूकपर्णी तक के सभी औषधों के चूर्णों को मिलाकर २ घण्टे तक मर्दन करें। तदनन्तर आर्द्रक-स्वरस की भावना देकर एण्ड रनर मशीन में १ दिन तक मर्दन करें और ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी खाकर ऊपर से भात का माँड़ पीना चाहिए। इस क्षुधावतीगुटिका को प्रातः-सायं कुछ दिनों तक सेवन करने से सभी तरह के अजीर्ण नष्ट हो जाते हैं। यह अग्नि प्रदीप्त करता है, भस्मकरोग को नष्ट करता है; ग्रहणी, अम्लपित्त, परिणामशूल आदि रोगों को नष्ट करता है। जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार से इस वटी के सेवन से उपर्युक्त रोग नष्ट हो जाते हैं। इस क्षुधावतीवटी के सेवन काल में मधुर का रस आहार विशेषकर दूध और चीनी वर्जित करना चाहिए।

मात्रा—५०० मि.ग्रा। **अनुपान**—भात के माँड़ से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—मन्दाग्नि, ग्रहणी, अम्लपित्त एवं परिणामशूल में; विशेषकर अग्निप्रदीपक है।

२८. क्षुधावतीगुटिका-३ (चक्रदत्त)

गगनाद् द्विपलं चूर्णं लौहस्य पलमात्रकम्।
लौहकिट्टपलार्द्धञ्च सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥८१॥
मण्डूकपर्णीवशिरतालमूलीरसैस्तथा।
भृङ्गवरीकेशराजकालमारिषजैरथ ॥८२॥
त्रिफलाभद्रमुस्ताभिः स्थालीपाकाद्विचूर्णितम्।
रसगन्धकयोः कर्षौ प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः ॥८३॥
तन्मसृणाश्मनः खल्ले यत्नतः कज्जलीकृतम्।
वचा चव्यं यमानी च जीरके शतपुष्पिका ॥८४॥
व्योषं विडङ्गं मुस्तञ्च ग्रन्थिकं खरमञ्जरी।
त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्यावर्त्तः सितस्तथा ॥८५॥
भृङ्गमाणककन्दाश्च घण्टकर्णक एव च।
दण्डोत्पला केशराजः काली च कर्कटोऽपि च ॥८६॥
एषामर्द्धपलं ग्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम्।
प्रत्येकं त्रिफलायाश्च पलार्द्धं पलमेव च ॥८७॥
एतत्सर्वं समालोड्य लौहपात्रे च भावयेत्।
आतपे दण्डसंघृष्टमार्द्रकस्य रसैस्त्रिधा ॥८८॥
तद्रसेन शिलापिष्टां गुडिकां कारयेद्भिषक्।
बदरास्थिनिभां शुष्कां सुनिगुप्तां निधापयेत् ॥८९॥
तत्प्रातर्भोजनादौ तु सेविता गुडिका त्वियम्।
अम्लोदकानुपानन्तु हितं मधुरवर्जितम् ॥९०॥
दुग्धञ्च नारिकेलञ्च वर्जनीयं विशेषतः।
भोज्यं यथेष्टमिष्टञ्च वारिभक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥९१॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधं शूलञ्च परिणामजम्।
पाण्डुरोगञ्च गुल्मञ्च शोथोदरगुदामयान् ॥९२॥
यक्ष्माणं पञ्च कासांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं सुदारुणम्॥
गुडी क्षुधावती सेयं विख्याता रोगनाशिनी ॥९३॥

१. अभ्रकभस्म ९३ ग्राम, २. लौहभस्म ४६ ग्राम और ३. शुद्ध मण्डूरचूर्ण २३ ग्राम लें।

१. स्थालीपाक—मण्डूकपर्णीरस, सूर्यावर्त्तरस एवं श्वेत-मूसलीक्वाथ।

२. स्थालीपाक—भृङ्गराजस्वरस, शतावरीक्वाथ, केशराज-क्वाथ एवं कालमारिषक्वाथ।

३. स्थालीपाक—त्रिफला तथा नागरमोथा।

१. शुद्ध पारद १२ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक १२ ग्राम, ३. वचचूर्ण २३ ग्राम, ४. चव्यचूर्ण २३ ग्राम, ५. अजवाइनचूर्ण २३ ग्राम, ६. जीराचूर्ण २३ ग्राम, ७. स्याहजीराचूर्ण २३ ग्राम, ८. सौंफचूर्ण २३ ग्राम, ९. सोंठचूर्ण २३ ग्राम, १०. पीपरचूर्ण २३ ग्राम, ११. मरिचचूर्ण २३ ग्राम, १२. विडङ्गचूर्ण २३ ग्राम, १३. नागरमोथाचूर्ण २३ ग्राम, १४. पिपरामूलचूर्ण २३ ग्राम, १५. अपामार्गचूर्ण २३ ग्राम, १६. निशोथचूर्ण २३ ग्राम, १७. चित्रकमूलचूर्ण २३ ग्राम, १८. दन्तीमूलचूर्ण २३ ग्राम, १९. सूर्यावर्त्तचूर्ण २३ ग्राम, २०. भृङ्गराजचूर्ण २३ ग्राम, २१. मानकन्दचूर्ण २३ ग्राम, २२. घण्टकर्णचूर्ण २३ ग्राम, २३. सहदेवीचूर्ण २३ ग्राम, २४. केशराजचूर्ण २३ ग्राम, २५. नीलीवृक्षमूलचूर्ण २३ ग्राम, २६. काकड़ासिंगीचूर्ण २३ ग्राम और २७. आमलाचूर्ण ६६ ग्राम २८. हरीतकीचूर्ण ६६ ग्राम, २९. बहेड़ाचूर्ण ६६ ग्राम लें। आर्द्रकरस (यथावश्यक) की तीन भावना दें।

सर्वप्रथम मिट्टी की एक हाँडी में अभ्रकभस्म, लौहभस्म और

शुद्ध मण्डूरचूर्ण को एक साथ डालें तथा उस हाँडी में तीन बार पुनः-पुनः स्थालीपाक करें।

१. स्थालीपाक—मण्डूकपर्णीस्वरस, सूर्यावर्तस्वरस श्वेत-मुशलीक्वाथ से भरी लौहस्थाली में स्थालीपाक विधि से पाक करें।

२. स्थालीपाक—भृङ्गराजस्वरस, शतावरीक्वाथ, केशराज-स्वरस एवं कालमारिषक्वाथ (बृ. पत्र तण्डुलीयक) क्वाथ से द्वितीय स्थाली पाक करें।

३. स्थालीपाक—त्रिफलाक्वाथ और नागरमोथाक्वाथ में ३-३ प्रहर तक स्थालीपाक करें। इस प्रकार ३ बार स्थालीपाक करें।

तदनन्तर एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर अच्छी तरह से मर्दन कर कज्जली करें। ततः स्थालीपाक से प्राप्त अभ्रकादि द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण इस कज्जली में मिला दें और शेष काष्ठौषधियों (वचचूर्ण से त्रिफलाचूर्ण तक सभी द्रव्यों) को इस कज्जली में मिलावें। आर्द्रकस्वरस की क्रमशः ३ भावना देकर एण्ड रनर मशीन या खरल या सिल पर धूप में बैठकर महीन पीसकर ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर धूप में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस क्षुधावतीगुटिका को प्रातः-सायं निम्बुस्वरस तथा अम्लीय स्वरसादि से सेवन करें। इस गुटिका के नियमित सेवन से अम्लपित्त, परिणामशूल, पाण्डु, गुल्म, शोथ, उदररोग, अर्श, भगन्दर, यक्ष्मा, पाँचों कास, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, श्वास, आनाह, भयानक आमवात और संग्रहणीरोग नष्ट हो जाते हैं।

वर्ज्य—इस औषधि के सेवन काल में मधुररस से युक्त आहार, दूध, नारियल का जल तथा गरी आदि का सेवन न करें।

पथ्य—उपर्युक्त अपथ्य को छोड़कर इच्छानुसार अन्य भोजन करें। काञ्जी एवं अन्य अम्लीय भोजन विशष रूप से करना चाहिए।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—निम्बुस्वरस, काञ्जी आदि अन्य अम्ल द्रव्यों से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—अम्लपित्त, परिणामशूल, अर्श, अरुचि एवं मन्दाग्नि में।

२९. त्रिफलामण्डूर

गोमूत्रशुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम्।
विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥९४॥

गोमूत्र में २१ बार निर्वापित शुद्ध मण्डूरचूर्ण १ भाग तथा त्रिफलाचूर्ण १ भाग लें। सर्वप्रथम मण्डूर का सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः त्रिफलाचूर्ण और शुद्ध मण्डूरचूर्ण को एक खरल में ३ घण्टे तक मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे त्रिफलामण्डूर कहते हैं। इस त्रिफलामण्डूर को १ ग्राम की मात्रा में ५ ग्राम घृत और १० ग्राम मधु के साथ में मिलाकर दिन में २ से ३ बार सेवन करें। इसके सेवन से परिणामशूल और अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से २ ग्राम तक। **अनुपान**—घी और मधु विषम मात्रा में। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—कषायाम्ल। **उपयोग**—परिणामशूल और अम्लपित्त में।

३०. सितामण्डूर

धमनविधिविशुद्धं गोजले सप्तवारां-
स्तरणिकिरणशुष्कं श्लक्ष्णमण्डूरचूर्णम्।
विमलकपलमेकं पञ्चसङ्ख्यं सिताया
अनवघृतपलाष्टौ ह्यष्टकं गव्यदुग्धम् ॥९५॥
मृदुदहनशिखाभिर्मन्दमन्दं कटाहे
विगतसलिलशेषं पाचयेत्पाकविज्ञः।
वितरति गुडपाके किञ्चिदुष्णेऽवतीर्णे
दृषदि दृढमभीक्ष्णं चूर्णितं देयमाशु ॥९६॥
त्रिकटुकमधुकैलायासवैडङ्गसारं
त्रिफलगदलवङ्गं कर्षमेकैकशश्च।
तदनु शिशिरकाले द्वे पले माक्षिकस्य
प्रतनुपटनिघृष्टं गालितं सम्प्रदद्यात् ॥९७॥
शुभतिथिदिवसादौ भोजनादौ निषेव्यं
प्रथमदिवसमेनं सार्द्धमाषं तदूर्ध्वम्।
अहरहरनुवृद्ध्या यावदक्षं प्रयोज्यं
हिमकररुचिशीतं गव्यदुग्धञ्च पेयम् ॥९८॥
नियतमयमसाध्यानम्लपित्तोत्थशूलान्
वमिनिवहसदाहानाहमोहप्रमेहान्।
विविधरुधिररोगान् पित्तयुक्तानशेषा-
नपहरति सिताख्यो दिव्यमण्डूरयोगः ॥९९॥

१. शुद्ध मण्डूरचूर्ण ४६ ग्राम, २. चीनी २३५ ग्राम, ३. पुराना गोघृत ३७५ ग्राम और गोदुग्ध ३७५ मि.ली. लें।

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. मुलेठी-चूर्ण, ५. छोटीइलायचीचूर्ण, ६. जवासाचूर्ण, ७. वायविडङ्ग-चूर्ण, ८. आमलाचूर्ण, ९. हरीतकीचूर्ण, १०. बहेड़ाचूर्ण, ११. कूठचूर्ण तथा १२. लौंगचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें और १३. मधु १९३ ग्राम लें। एक लौह कड़ाही में मण्डूर के टुकड़ों को रखकर धौंकनी यन्त्र से धमन करें। खूब लाल या तप्त होने पर गोमूत्र भरे पात्र में निर्वापित करें। इसी प्रकार ७ बार तपा-तपाकर मण्डूर को गोमूत्र में निर्वापित करें। ततः सूर्यकिरण में सुखाकर सूक्ष्म चूर्ण करें। इसके बाद उस सूक्ष्म शुद्ध मण्डूरचूर्ण उपर्युक्त मात्रा में लेकर एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखें तथा उसमें चीनी, पुराना गोघृत एवं गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि पर

पाक करें। जब उसमें का जलीयांश सूख जाय और गुड़पाक जैसी कठिन चासनी हो जाय तो चूल्हे से नीचे उतार लें तथा सोंठचूर्ण से लौंगचूर्ण तक के सभी ९ द्रव्यों को मिला दें। शीतल होने पर इस औषधि को महीन कपड़े से छानकर उसमें मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह सितामण्डूरचूर्ण रूप में रहेगा। इसे शुभ तिथि-नक्षत्र में देवताओं की पूजा कर १ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर चाटें तथा ऊपर से मिश्री मिला गोदुग्ध पिलावें। प्रतिदिन इस औषधि को १-१$\frac{१}{२}$ ग्राम की मात्रा में बढ़ाते हुए १२ ग्राम की मात्रा तक प्रतिदिन सेवन किया जा सकता है। कुछ दिनों तक इसके सेवन से असाध्य अम्लपित्त एवं तज्जन्य शूल, वमन, दाह, आनाह, मूर्च्छा, प्रमेह, अनेक प्रकार की रक्तगत व्याधियाँ और सम्पूर्ण पित्तज व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। इस दिव्यौषधि को 'सितामण्डूर' कहते हैं।

मात्रा—१ ग्राम से १$\frac{१}{२}$ ग्राम तक की मात्रा में। **अनुपान**—मधु एवं मिश्री मिला हुआ शीतल दूध पिलाना। **गन्ध**—घृत एवं दुग्धगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त एवं अम्लपित्त के विविध उपद्रवों में।

३१. अम्लपित्तान्तक मोदक

नागरस्य कणायाश्च पलान्यष्टौ प्रदापयेत्।
गुवाकस्य पलान्यष्टौ सर्वमेकत्र कारयेत् ॥१००॥
घृतं क्षीरं ततः पश्चात् प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत्।
लवङ्गं केशरं कुष्ठं यमानी कारवी वचा ॥१०१॥
चन्दनं मधुकं रास्ना देवदारु फलत्रिकम्।
पत्रमेला वराङ्गञ्च सैन्धवं हबुषा शटी ॥१०२॥
मदनं कट्फलं मांसी गगनं वङ्गरूप्यकम्।
तालीशं पद्मजं मूर्वा समङ्गा वंशलोचना ॥१०३॥
ग्रन्थिकं शतपुष्पा च शतमूली कुरण्टकम्।
जातीफलं जातिकोषं कणा कक्कोलमम्बुदम् ॥१०४॥
कर्पूरञ्च विडङ्गञ्च अजमोदा बलाऽमृता।
मर्कटीक्षुरबीजञ्च चन्दनं देवताडकम् ॥१०५॥
लौहं कांस्यं प्रदातव्यं कर्षमात्रं भिषग्विदा।
अन्यत्सर्वं कर्षमात्रं कर्षार्द्धं स्वर्णभस्मकम् ॥१०६॥
पारदस्य तु योगेन मारितं ग्राहयेत्सुधीः।
अम्लपित्तान्तको ह्येष मोदको मुनिभाषितः ॥१०७॥
वान्तिं मूर्च्छाञ्च दाहञ्च कासं श्वासं भ्रमं तथा।
वातजं पित्तजञ्चैव कफजं सान्निपातिकम् ॥१०८॥
सर्वरोगं निहन्त्याशु प्रमेहं सूतिकागदम्।
शूलञ्च वह्निमान्द्यञ्च मूत्रकृच्छ्रं गलग्रहम् ॥१०९॥

१. सोंठचूर्ण ३७५ ग्राम, २. पीपरचूर्ण ३७५ ग्राम, ३. सुपारीचूर्ण ३७५ ग्राम, ४. गोघृत ७५० ग्राम और ५. गोदुग्ध ७५० मि.ली. लें।

१. लौंगचूर्ण, २. नागकेशरचूर्ण, ३. कूठचूर्ण, ४. अजवाइनचूर्ण, ५. स्याहजीराचूर्ण, ६. वचचूर्ण, ७. श्वेतचन्दनचूर्ण, ८. मुलेठीचूर्ण, ९. रास्नाचूर्ण, १०. देवदारुचूर्ण, ११. आमलाचूर्ण, १२. हरीतकीचूर्ण, १३. बहेड़ाचूर्ण १४. तेजपातचूर्ण, १५. छोटी इलायचीचूर्ण, १६. दालचीनीचूर्ण, १७. सैन्धवलवण, १८. हाउबेरचूर्ण, १९. कचूरचूर्ण, २०. मदनफलपिप्पलीचूर्ण, २१. कायफलचूर्ण, २२. जटामांसीचूर्ण, २३. अभ्रकभस्म, २४. वङ्गभस्म, २५. रजतभस्म, २६. तालीशपत्रचूर्ण, २७. पद्मकाष्ठचूर्ण, २८. मूर्वाचूर्ण, २९. मंजीठचूर्ण, ३०. वंशलोचनचूर्ण, ३१. पिपरामूलचूर्ण, ३२. सौंफचूर्ण, ३३. शतावरीचूर्ण, ३४. पीतपुष्पसहचरचूर्ण, ३५. जायफलचूर्ण, ३६. जावित्रीचूर्ण, ३७. पीपरचूर्ण, ३८. शीतलचीनीचूर्ण, ३९. सुगन्धबालाचूर्ण, ४०. कर्पूरचूर्ण, ४१. वायविडङ्गचूर्ण, ४२. अजमोदाचूर्ण, ४३. बलाचूर्ण, ४४. गुडूचीचूर्ण, ४५. केवाँचबीजचूर्ण, ४६. तालमखानाचूर्ण, ४७. रक्तचन्दनचूर्ण, ४८. देवदालीचूर्ण, ४९. लौहभस्म और ५०. कांस्यभस्म—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें तथा ५१. पारदयोग से मारित स्वर्णभस्म ६ ग्राम लें। स्टेनलेस स्टील के पात्र में सोंठ चूर्ण, पीपरचूर्ण, सुपारीचूर्ण, घृत और गोदुध मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब दूध सूख जाय तो चूल्हे से नीचे उतारकर रखें। थोड़ा शीतल होने पर उसमें पहले स्वर्ण-रजतादि सभी भस्मों को मिला लें। ततः लौंग से देवदाली तक के सभी चूर्णों को अच्छी तरह मिला दें और ६-६ ग्राम का मोदक बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'अम्लपित्तान्तकमोदक' को ६ ग्राम की मात्रा में मधु से साथ चाटकर शीतल जल पिलाना चाहिए। इस मोदक का प्रतिदिन नियमित सेवन करने से अम्लपित्त, वमन, मूर्च्छा, दाह, कास, श्वास, भ्रम; वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातज अम्लपित्त आदि सभी रोगों को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त प्रमेह, सूतिकारोग, शूल, अग्निमांद्य, मूत्रकृच्छ्र और गलग्रहरोग भी नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—मधु एवं जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—धूसरवर्ण। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त, परिणामशूल, वमन, मूर्च्छा, दाह एवं मूत्र कृच्छ्र में।

३२. सौभाग्यशुण्ठीमोदक

त्रिकटु त्रिफला भृङ्गजीरकद्वयधान्यकम्।
कुष्ठाजमोदालौहाभ्रं श्रृङ्गी कट्फलमुस्तकम् ॥११०॥
एला जातीफलं मांसी पत्रं तालीशकेशरम्।
गन्धमात्रा शटी यष्टी लवङ्गं रक्तचन्दनम् ॥१११॥
एतानि समभागानि शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम्।
सिता द्विगुणिता तत्र गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥११२॥

तोलप्रमाणं दातव्यं दुग्धेनापि जलेन वा।
अम्लपित्तं निहन्त्येतदरोचकनिषूदनम् ॥११३॥
शूलहृद्रोगवमनं कण्ठदाहं नियच्छति।
हृद्दाहञ्च शिरःशूलं मन्दाग्निञ्च विनाशयेत् ॥११४॥
हृच्छूलं पार्श्वकुक्षिस्थबस्तिशूलं गुदे रुजम्।
बलपुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥११५॥
विशेषादम्लपित्तञ्च मूत्रकृच्छ्रं ज्वरं भ्रमम्।
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥११६॥

१. शुण्ठीचूर्ण १२८८ ग्राम, २. चीनी २५७५ ग्राम, ३. गोदुग्ध १०.३०० लीटर लें।

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. आमलाचूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ७. भृङ्गराजचूर्ण, ८. जीरकचूर्ण, ९. स्याहजीराचूर्ण, १०. धनियाँचूर्ण, ११. कूठ-चूर्ण, १२. अजमोदाचूर्ण, १३. लौहभस्म, १४. अभ्रकभस्म, १५. काकड़ासिंगीचूर्ण, १६. कायफलचूर्ण, १७. नागरमोथा-चूर्ण, १८. छोटी इलायचीचूर्ण, १९. जायफलचूर्ण, २०. जटामांसीचूर्ण, २१. तेजपातचूर्ण, २२. तालीशपत्रचूर्ण, २३. नागकेशरचूर्ण, २४. गन्धद्रव्य, २५. कचूरचूर्ण, २६. मूलेठी-चूर्ण, २७. लौंगचूर्ण और २८. रक्तचन्दनचूर्ण—प्रत्येक ४६ ग्राम लें। एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में दूध, चीनी और शुण्ठी- चूर्ण मिलाकर मृदु अग्नि पर पाक करें। जब जलीयांश सूखकर सोंठचूर्ण का कठिन पाक हो जाय तो उसमें अन्य सभी चूर्णों को अच्छी तरह से मिलाकर शीतल करें। ठण्डा होने पर मोटी छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'सौभाग्यशुण्ठीमोदक' को १२ ग्राम की मात्रा में शीतल दूध या शीतल जल से प्रतिदिन सेवन करने से अम्लपित्त, अरुचि, शूल, हृद्रोग, वमन, कण्ठदाह, हृत्प्रदेशदाह, शिरःशूल, मन्दाग्नि, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और भ्रमरोग नष्ट हो जाते हैं। यह बल्य है, शरीरपुष्टिकर है और वशीकरण में श्रेष्ठ है, विशेषकर यह अम्लपित्तनाशक है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—शीतल दूध या शीतल जल से। **गन्ध**—सुपाकगन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त, शूल, वमन, कण्ठ-हृद्दाह, भ्रम एवं मन्दाग्नि में।

३३. शुण्ठीखण्ड

शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं खण्डप्रस्थं समावपेत्।
दत्त्वा द्विकुडवं सर्पिः क्षीरप्रस्थद्वये पचेत् ॥११७॥
लेह्येऽवतारिते दद्याद् धात्रीधान्यकमुस्तकम्।
अजाजी पिप्पली वांशी त्रिजातं कारवी शिवा ॥११८॥
त्रिशाणं मरिचं नागं षण्माषन्तु पृथक् पृथक्।
पलत्रयञ्च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत् ॥११९॥
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये।
शूलहृद्रोगवमनैरामवातैश्च पीडितः ॥१२०॥

१. सोंठचूर्ण १८७ ग्राम, २. चीनी ७५० ग्राम, ३. गोघृत ३७५ ग्राम तथा ४. गोदुग्ध १.५०० मि.ली. लें।

१. आमलाचूर्ण, २. धनियाँचूर्ण, ३. नागरमोथाचूर्ण, ४. जीराचूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. वंशलोचनचूर्ण, ७. तेजपातचूर्ण, ८. दालचीनीचूर्ण, ९. छोटी इलायचीचूर्ण, १०. हरीतकीचूर्ण (प्रत्येक द्रव्य ९ ग्राम लें); ११. मरिचचूर्ण, १२ नागकेशरचूर्ण (प्रत्येक द्रव्य ६ ग्राम लें) और १३. मधु १४० ग्राम लें। स्टेनलेस स्टील के पात्र में सोंठ को घी में सेकें। ततः दूध मिलाकर पाक करें। जब दूध गाढ़ा हो जाय तो उसमें चीनी देकर पकावें। जब ३-४ तार की कड़क चासनी बन जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर आमलाचूर्ण से नागकेशरचूर्ण पर्यन्त सभी १२ द्रव्यों के चूर्णों को डालकर अच्छी तरह से बड़ी चम्मच से मिला लें। शीतल होने पर छननी से छानकर शेष बचे टुकड़ों को भी कूटकर सब छान लें और मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस शुण्ठीखण्ड को ३ से ६ ग्राम की मात्रा में मिश्री मिला शीतल दूध या शीतल जल से सेवन करने से अम्लपित्त, शूल, हृद्रोग, वमन, आमवातरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३ से ६ ग्राम तक। **अनुपान**—शीतल मिश्री मिला दूध या शीतल जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी एवं पाकगन्धी। **वर्ण**—धूसरवर्ण। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त, शूल, वमन एवं आमवात में।

३४. पिप्पलीखण्ड-१

कणाचूर्णस्य कुडवं षट्पलं हविषस्तथा।
शतावरीरसस्याष्टौ पलान्यत्र प्रदापयेत् ॥१२१॥
खण्डप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थद्वये पचेत्।
त्रिजातमुस्तधन्याकशुण्ठीवांशीद्विजीरकम् ॥१२२॥
अभयाऽऽमलकञ्चैव चूर्णं द्वादशमाषिकम्।
तदर्द्धं मरिचं चूर्णं सारं खादिरमेव च ॥१२३॥
पलत्रयञ्च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत्।
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत अम्लपित्तनिवृत्तये ॥१२४॥
शूलारोचकहृल्लासच्छर्दिपित्ताम्लशूलनुत्।
अग्निसन्दीपनो हृद्यः खण्डपिप्पलिको मतः ॥१२५॥

१. पिप्पलीचूर्ण १८७ ग्राम, २. गोघृत २८० ग्राम, ३. शतावरीक्वाथ ३७५ मि.ली., ४. मिश्री ७५० ग्राम और ५. गोदुग्ध १.५०० मि.ली. लें।

१. तेजपातचूर्ण, २. दालचीनीचूर्ण, ३. छोटीइलायचीचूर्ण,

४. नागरमोथाचूर्ण, ५. धनियाँचूर्ण, ६. सोंठचूर्ण, ७. वंशलोचनचूर्ण, ८. श्वेतजीराचूर्ण, ९. स्याहजीराचूर्ण, १०. हरीतकीचूर्ण, ११. आमलाचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम; १२. मरिचचूर्ण और १३. खदिरसार (कथ) चूर्ण—प्रत्येक ६ ग्राम लें तथा १४. मधु १४० ग्राम लें। सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के पात्र में गोघृत गरम करें और उसी में पिप्पलीचूर्ण डालकर हल्का सेकें। ततः उसी पिप्पली में शतावरीक्वाथ मिलाकर पकावें। जब शतावरीक्वाथ सूख जाय तब उसमें दूध देकर पाक करें। जब दूध थोड़ा रहे तो उसमें मिश्री मिलाकर पकावें। चासनी कड़ी हो जाय तो उसमें तेजपातचूर्ण से खदिरसारचूर्ण तक सभी १३ द्रव्यों को मिलाकर पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। शीतल होने पर उसे छननी से छान लें तथा उसमें मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पिप्पलीखण्ड' कहते हैं। इसे ३ से ६ ग्राम की मात्रा में गरम दूध में चीनी मिलाकर शीतल होने पर अनुपान रूप में सेवन करें या शीतल जल से सेवन करें। इसके नियमित सेवन से अम्लपित्त, शूल, अरुचि, हल्लास, वमन एवं अम्ल-पित्त जन्य शूल नष्ट हो जाते हैं। यह अग्निदीपक एवं हृद्य है।

मात्रा—३ से ६ ग्राम तक। **अनुपान**—मिश्री मिला हुआ शीतल दूध एवं शीतल जल से। **गन्ध**—पाक एवं घृतगन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त एवं अम्ल-पित्तजन्य शूल तथा वमन में।

३५. पिप्पलीखण्ड-२ (योगरत्नावली)

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवद्वयम्।
पलषोडशिकं खण्डाद्रसे वर्य्याः पलाष्टके ॥१२६॥
पलषोडशिके चैव आमलक्या रसस्य च।
क्षीरप्रस्थद्वये साध्यं लेहीभूते ततः क्षिपेत् ॥१२७॥
त्रिजातकाभयाजाजीधन्याकं मुस्तकं शुभा।
धात्री च कार्षिकं चूर्णं कर्षार्द्धञ्चापि जीरकम् ॥१२८॥
कुष्ठनागरकं नागं सिद्धशीतेऽवचूर्णितम्।
जातीफलं समरिचं मधुनश्च पलत्रयम् ॥१२९॥
उपयुञ्ज्यात्ततो धीमानम्लपित्तनिवृत्तये।
हृल्लसारोचकच्छर्दिश्वासकासक्षयापहम् ॥
अग्निसन्दीपनं हृद्यं पिप्पलीखण्डसंज्ञितम् ॥१३०॥

१. पीपरचूर्ण १८७ ग्राम, २. गोघृत ३७५ ग्राम, ३. चीनी ७५० ग्राम, ४. शतावरीक्वाथ ३७५ मि.ली., ५. आमलास्वरस १ लीटर तथा ६. गोदुग्ध १.५०० मि.ली. लें; ७. तेजपातचूर्ण, ८. दालचीनीचूर्ण, ९. छोटी इलायचीचूर्ण, १०. हरीतकीचूर्ण, ११. श्वेतजीराचूर्ण, १२. धनियाँचूर्ण, १३. नागरमोथाचूर्ण, १४. वंशलोचनचूर्ण और १५. आमलाचूर्ण—प्रत्येक चूर्ण १२-१२ ग्राम लें; १६. जीराचूर्ण, १७. कूठचूर्ण, १८. सोंठचूर्ण तथा १९. नागकेशरचूर्ण—ये चारों द्रव्य ६-६ ग्राम; २०. जायफलचूर्ण, २१. मरिचचूर्ण और २२. मधु—प्रत्येक १४० ग्राम लें। सर्वप्रथम गोदुग्ध का पाक करें। ततः स्टेनलेस स्टील के पात्र में गोघृत में पीपरचूर्ण हल्का सेकें। उस सेंके पीपरचूर्ण में पाक किया दूध तथा शतावरीक्वाथ एवं आमलास्वरस या क्वाथ डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। उसी में चीनी डालकर पकावें। चासनी कड़ी हो जाने पर पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तेजपात से लेकर मरिच तक के सारे द्रव्यों के चूर्णों को डालकर अच्छी तरह से मिला लें। उसे छननी से छान लें और शीतल होने पर उसमें मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पिप्पलीखण्ड' कहते है। ३-६ ग्राम की मात्रा में मिश्री मिला शीतल दुग्ध या शीतल जल में सेवन करने से अम्लपित्त रोग नष्ट हो जाता हैं। हल्लास (मिचली), वमन, अरुचि, श्वास, कास एवं क्षयरोग भी नष्ट हो जाते है। यह अग्निवर्धक एवं हृद्य है।

मात्रा—३ से ६ ग्राम। **अनुपान**—मिश्री युक्त शीतल दूध या शीतल जल से। **गन्ध**—घृत एवं पाकगन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त, वमन, शूल एवं अरुचि में।

३६. कूष्माण्ड खण्ड (भा.प्र.)

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम्।
रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥१३१॥
धात्रीतुल्या सिता योज्या गव्यमाज्यं पलद्वयम्।
मन्दाग्निना पचेत्सर्वं यावद्द्रवति पिण्डितम् ॥१३२॥
पलार्द्धं पलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेदिदम्।
खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं परम् ॥१३३॥

१. कूष्माण्डस्वरस ५ लीटर, २. गोदुग्ध ५ लीटर, ३. आमलाचूर्ण ३७५ ग्राम, ४. चीनी ३७५ ग्राम तथा ५. गोघृत ९३ ग्राम लें। एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में उपर्युक्त सभी द्रव्यों को मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। बीच-बीच में बड़ी चम्मच से हिलाते रहें। जब सभी द्रव सूख कर गाढ़ा हो जाय तो उतार लें और काच पात्र में संग्रहीत करें। २५ से ५० ग्राम तक की मात्रा में सेवन करने से अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है। इसे 'कूष्माण्ड खण्ड' कहते हैं।

विमर्श—बड़े स्टेनलेस स्टीलपात्र में कूष्माण्डखण्ड और दूध मिलाकर पाक करें। जब दूध गाढ़ा होने लगे तभी चीनी और अन्य दोनों द्रव्य मिलाकर पकावें। यदि आमलाचूर्ण पहले मिला देंगे तो दूध खटाई के साथ बिगड़कर छेना जैसा हो जायगा। अतः जब दूध गाढ़ा हो जाय तब आमलाचूर्ण मिलाना चाहिए।

मात्रा—२५ से ५० ग्राम तक। **अनुपान**—शीतल दूध या शीतल जल से। **गन्धक**—पाक एवं घृतगन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त में।

३७. जीरकादिघृत (चकदत्त)

पिष्ट्वाऽजाजीं सधन्याकां घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवमिं जयेत् ॥१३४॥

गोघृत ७५० ग्राम, जीरा ९३ ग्राम और धनियाँ ९३ ग्राम लें। गोघृत का स्टेनलेस स्टील के पात्र में मूर्च्छन करें। तत: जीरा और धनिया का चूर्ण कर उसे जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। घृत में ३ लीटर जल डालकर मृदु अग्नि पर पाक करें। जल सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस जीरकादिघृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल में मिलाकर पिलायें। इसके सेवन से अम्लपित्त, कफजरोग, पित्तजरोग, अरुचि, मन्दाग्नि और वमन रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अम्लपित्त, वमन, अरुचि एवं मन्दाग्नि में।

३८. शतावरीघृत (च.द.)

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयः समम्।
पचेन्मृद्वग्निना सम्यक् क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥१३५॥
नाशयेदम्लपित्तञ्च वातपित्तोद्भवान् गदान्।
रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥१३६॥

१. गोघृत ७५० ग्राम, २. गोदुग्ध ३ लीटर, ३. शतावरी क्वाथ ७५० मि.ली. तथा ४. शतावरीमूलचूर्ण १८७ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में गोघृत का मूर्च्छन करें। उस मूर्च्छितघृत में शतावरीक्वाथ और शतावरीकल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। क्वाथ सूखने पर दूध मिलाकर पाक करें। दूध सूखने पर ३ लीटर जल मिलाकर सम्यक् पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस शतावरीघृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल के साथ सेवन करने से अम्लपित्त, वातजरोग, पित्तजरोग, रक्तपित्त, प्यास, मूर्च्छा, श्वास एवं सन्तापरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—अम्लपित्त, पिपासा, रक्तपित्त, सन्ताप एवं दाह में।

३९. नारायणघृत

जलैर्दशगुणैः क्वाथ्यं पिप्पलीपलषोडश।
पादशेषं हरेत् क्वाथं क्वाथतुल्यं घृते पचेत् ॥१३७॥
रसप्रस्थं गुडूच्याश्च धात्र्याः षष्टिपलं रसम्।
द्राक्षा धात्री पटोलञ्च विश्वं च कटुका वचा ॥१३८॥
पलप्रमाणकल्कञ्च दत्त्वा सर्पिः समुद्धरेत्।
अम्लपित्तहरं खादेद् दाहच्छर्दिनिवारणम्।
असाध्यं साधयेत्सद्यो नाम्ना नारायणं घृतम् ॥१३९॥

क्वाथ—१. पीपर ७५० ग्राम २. क्वाथार्थ जल ७.५० लीटर, २. गोघृत १८७५ ग्राम, ३. गुडूचीक्वाथ ७५० मि.ली. तथा ४. आमलाक्वाथ ३ ली. लें।

कल्क—१. मुनक्का (द्राक्षा) ४६ ग्राग, २. आमलाचूर्ण ४६ ग्राम ३. पटोलपत्रचूर्ण ४६ ग्राम, ४. सोंठचूर्ण ४६ ग्राम, ५. कुटकीचूर्ण ४६ ग्राम और ६. वचचूर्ण ४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में गोघृत का मूर्च्छन करें। तत: सभी कल्क द्रव्यों के चूर्णों को सिल पर द्राक्षा के साथ जल से पीसें और कल्क बनावें। इस कल्क को मूर्च्छितघृत में मिलावें। पीपर को यवकुट कर १० गुना ७.५०० मि.ली. जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें एवं मूर्च्छितघृत के साथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। पीपरक्वाथ सूखने पर गुडूची-स्वरस तथा बाद में आमलाक्वाथ मिलाकर पाक करें। स्नेह सिद्ध होने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'नारायणघृत' कहते हैं। इस घृत का ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम पानी के साथ प्रतिदिन नियमित सेवन करने से असाध्य अम्लपित्त, वमन और दाह रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—असाध्य अम्लपित्त, वमन एवं दाह रोग में।

४०. द्राक्षादि घृत (च.द.)

द्राक्षाऽमृताशक्रपटोलपत्रैः
सोशीरधात्रीघनचन्दनैश्च ।
त्रायन्तिकापद्मकिरातधान्यैः
कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतमेभिः ॥१४०॥
युञ्जीत मात्रां सह भोजनेन
सर्वत्रपानेऽपि भिषग्विदध्यात्।
बलासपित्तग्रहणीं प्रवृद्धां
कासाग्निसादज्वरमम्लपित्तम् ॥
सर्वं निहन्याद् घृतमेतदाशु
सम्यक् प्रयुक्तं ह्यमृतोपमञ्च ॥१४१॥

१. गोघृत १ किलो, २. द्राक्षा, ३. गुडूचीचूर्ण, ४. इन्द्रयव चूर्ण, ५. पटोलपत्रचूर्ण, ६. खसचूर्ण, ७. आमलाचूर्ण, ८. नागरमोथाचूर्ण, ९. रक्तचन्दनचूर्ण, १०. त्रायमाणचूर्ण, ११.

पद्मकाष्ठचूर्ण, १२. चिरायताचूर्ण तथा १३. धनियाँचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य २० ग्राम लें। सर्वप्रथम स्टेनलेसस्टील के पात्र में घृत का मूर्च्छन करें। ततः गूडूचीचूर्ण से धनियाँचूर्ण तक के सभी १२ द्रव्यों के चूर्णों और द्राक्षा को सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। मूर्च्छितघृत में कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'द्राक्षादि घृत' को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में भोजन के साथ या गरम गोदुग्ध या गरम जल के साथ मिलाकर सेवन करने से प्रवृद्ध कफ-पित्तज संग्रहणी, कास, मन्दाग्नि, ज्वर और अम्लपित्त शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं। यह घृत उपर्युक्त सभी रोगों में अमृत समान है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—भोजन के साथ अथवा गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—अम्लपित्त, संग्रहणी एवं मन्दाग्नि में।

४१. पिप्पलीघृत (च.द.)

पिप्पलीक्वाथकल्केन घृतं सिद्धं मधुप्लुतम्।
पिबेच्च प्रातरुत्थाय अम्लपित्तनिवृत्तये ॥१४२॥

गोघृत १ किलो, पिप्पलीक्वाथ ४ लीटर और पिप्पलीचूर्ण २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के पात्र में गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः ४ किलो पीपर का यवकुट कर १६ लीटर जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। २५० ग्राम पीपरचूर्ण को जल के साथ पीसकर कल्क बनावें और मूर्च्छितघृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेह पाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में मधु १२ ग्राम मिलाकर गरम दूध के साथ सेवन करें। इसके सेवन से अम्लपित्तरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—मधु मिलाकर गरम दूध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—अम्लपित्त एवं मन्दाग्नि में।

४२. पटोलशुण्ठीघृत (चक्रदत्त)

पटोलशुण्ठ्याः कल्काभ्यां केवलं गुलकेन वा।
घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कफरोगहरं परम् ॥१४३॥

पटोलपत्रचूर्ण १२५ ग्राम, सोंठचूर्ण १२५ ग्राम तथा गोघृत १ किलो लें। सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के पात्र में गोघृत का मूर्च्छन करें। पुनः पटोलपत्रचूर्ण और सोंठचूर्ण को जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें और मूर्च्छितघृत में मिलावें तथा ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि में पाक करें। या केवल पटोलपत्रचूर्ण २५० ग्राम का कल्क मिलाकर पाक करें। घृत पाक सिद्ध होने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से उतार लें और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम पानी के साथ सेवन करने से अम्लपित्तरोग और सभी कफ रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल के साथ। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—अम्लपित्त एवं कफरोग में।

४३. बिल्वतैल

बालबिल्वं पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्।
पादावशेषे तस्मिंस्तु तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥१४४॥
धात्रीरसं तैलसमं द्विगुणं छागजं पयः।
कल्कीकृत्य पचेद्धीमान्धात्रीं लाक्षां तथाऽभयाम् ॥
मुस्तकं चन्दनोदीच्यं सरलं देवदारु च।
मञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां तगरपादिकम् ॥१४६॥
मांसीं शैलेयकं पत्रं प्रियङ्गुं शारिवां वचाम्।
शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥१४७॥
तत्सिद्धं स्थापयेत्कुम्भे मासमेकं सुरक्षिते।
बिल्वतैलमिदं श्रेष्ठमम्लपित्तकुलान्तकृत् ॥१४८॥
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः।
सूतिकारोगशमनं गर्भदं शुक्रवर्द्धनम् ॥१४९॥
हस्तपादशिरोदाहं दौर्बल्यं कृशता तथा।
ग्रहणीगुल्महिक्काऽर्त्तिरक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥१५०॥

१. तिलतैल ७५० मि.ली., २. बिल्वफलमज्जा ५ किलो, ३. आमलास्वरस ७५० मि.ली., ४. बकरीदूध १५०० मि.ली. और जल १३ लीटर लें।

कल्क—१. आमला, २. लाक्षा, ३. हरीतकी ४. नागरमोथा, ५. लालचन्दन, ६. सुगन्धबाला, ७. सरलकाष्ठ, ८. देवदारु काष्ठ, ९. मंजीठ, १०. श्वेतचन्दन, ११. कूठ, १२. छोटी इलायची, १३. तगर, १४. जटामांसी, १५. छरीला १६. तेजपात, १७. प्रियङ्गु, १८. अनन्तमूल, १९. वच, २०. शतावरी, २१. अश्वगन्ध, २२. सौंफ और २३. पुनर्नवामूल प्रत्येक द्रव्य ३५ ग्राम लें। सर्वप्रथम स्टेनलेसस्टील के बड़े पात्र में तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः बिल्वफलमज्जा को यवकुट कर १३ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। आमला का स्वरस या क्वाथ करके रख लें। आमला से पुनर्नवामूल तक के सभी २३ द्रव्यों का चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में

कल्क और बकरी का दूध डालकर पाक करें। दोनों क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। द्रवांश सूखने पर कल्क के सम्यक् पाक हेतु ३ लीटर जल मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस बिल्व तैल को १ माह के बाद प्रयोग करना चाहिए। इस तैल का अभ्यङ्ग, नस्य और पान करने से अम्लपित्त कुल का नाश हो जाता हैं। साध्यासाध्य ८ प्रकार के शूलरोग भी निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। सूतिकारोग, हस्त-पादादि दाह, शिरोदाह, दुर्बलता, कृशता, संग्रहणी, गुल्म, हिक्का, रक्तपित्त और ज्वर नष्ट हो जाते हैं। यह तैल गर्भप्रद और शुक्रवर्धक है।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ यथावश्यक; नस्यार्थ ३ से ६ बूंद; पानार्थ ६ से १२ मि.ली.। **अनुपान**—पानार्थ गरम दूध या गरम जल में। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—अम्लपित्त, शूल, संग्रहणी एवं रक्तपित्त में।

अम्लपित्त में पथ्य

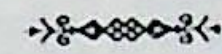
ऊर्ध्वगे वमनं पूर्वमधोगे तु विरेचनम्।
सर्वत्र शस्यते पश्चान्निरूहश्चापि शालयः ॥१५१॥
यवगोधूममुद्गाश्च पुराणा जाङ्गला रसाः।
जलानि तप्तशीतानि शर्करामधुशक्तवः ॥१५२॥
कर्कोटकं कारवेल्लं पटोलं हिलमोचिका।
वेत्राग्रं वृद्धकूष्माण्डं रम्भापुष्पञ्च वास्तुकम् ॥१५३॥
कपित्थं दाडिमं धात्री तिक्तानि सकलानि च।
पानान्नानि समस्तानि कफपित्तहराणि च।
अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥१५४॥

ऊर्ध्वग अम्लपित्त में वमन तथा अधोग अम्लपित्त में विरेचन श्रेष्ठ माना गया है। तत्पश्चात् निरूह बस्ति देना चाहिए। पुराना रक्त शालीचावल का भात, जौ, गेहूँ, मूँग, जंगली पशु-पक्षियों के मांस एवं मांसरस, उबालकर शीतल किया हुआ जल (उबाल कर मिट्टी के नये घड़े में रखा हुआ शीतल जल), शक्कर, मधु, जौ का सत्तू, खेखसा (कर्कोटक) की सब्जी, करैला, परवल की सब्जी, हिलमोचिका (पत्रशाक), वेतस के कोपल अग्रभाग (टूसे), पक्व कूष्माण्ड फल शाक, केला के फूल की सब्जी, बथुआ शाक, कैत, मीठा अनार, आमला फल ताजा या सूखे का चूर्ण, सभी निम्बादि तिक्तशाक या तिक्त पदार्थ, कफ-पित्त नाशक सभी पेय पदार्थ या अन्नों का नित्य सेवन अम्लपित्त के रोगियों के लिए हितकर है।

अम्लपित्त में अपथ्य

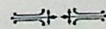
नवान्नानि विरुद्धानि पित्तकोपकराणि च।
वमिवेगं तिलान्माषं कुलत्थांस्तैलभक्षणम् ॥१५५॥
अविदुग्धञ्च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च।
गुर्वन्नं दधि मद्यञ्च वर्जयेदम्लपित्तवान् ॥१५६॥

इति भैषज्यरत्नावल्यामम्लपित्ताधिकारः।



नया अन्न, संभोग, गुण, देश, काल एवं मात्रा विरुद्ध द्रव्यों का सेवन, पित्तप्रकोपक आहार-विहार, वमनवेगरोध, तिल, उड़द, कुलत्थ, तैल का भक्षण, भेड़ी का दूध, काञ्जी, लवणाधिक्य, अम्लाधिक्य एवं कट्वाधिक्य भोजन, भारी अन्न सेवन, दही, मद्य आदि पदार्थ अम्लपित्त रोगी को त्याग देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य अम्लपित्तरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ विसर्परोगाधिकारः (५७)

विसर्प में क्रियाक्रम (चक्रदत्त)

विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ।
उपाचरेद् यथादोषं विसर्पमविदाहिभिः ॥१॥

विसर्परोग में वातादि दोषों का विचार कर विरेचन, वमन, आलेप, परिषेक और रक्तमोक्षण करना चाहिए। साथ ही अविदाही पदार्थों का दोषानुसार भोजन करना चाहिए।

१. विरेचन (चक्रदत्त)

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह ।
प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥
रसमामलकीनां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ॥२॥

विसर्परोग में त्रिफलाक्वाथ १०० मि.ली., निशोथचूर्ण ६ ग्राम और घृत ६ ग्राम मिलाकर विरेचनार्थ पिलाना चाहिए। अथवा—आमलास्वरस या क्वाथ में घृत मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे विसर्प और ज्वर शान्त होता है।

२. वमन-प्रयोग (चक्रदन्त)

पटोलपिचुमर्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन च ।
विसर्पे वमनं शस्तं तथैवेन्द्रयवैः सह ॥३॥

पटोलपत्रचूर्ण, निम्बत्वक्चूर्ण, मदनफलपिप्पली (बीज) चूर्ण और इन्द्रयवचूर्ण समभाग (सब मिलाकर १२ ग्राम) चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर रोगी को चटावें और मुलेठीक्वाथ आकण्ठ्य पिलावें। ऐसा करने से अच्छी तरह वमन होता है जिससे विसर्प शान्त होता है।

३. विसर्पहरयोग (चक्रदत्त)

मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत् ।
धात्रीपटोलनिम्बानामथवा घृतसम्प्लुतः ॥४॥

(१) नागरमोथा, निम्बत्वक् तथा पटोलपत्र—तीनों के समभागीय क्वाथ में घी मिलाकर पिलाने से; अथवा—

(२) त्रिफला, पटोलपत्र एवं निम्बत्वक् समभागीय यवकुट से क्वाथ बनाकर तथा सुखोष्ण क्वाथ में घृत मिलाकर पिलाने से विसर्प रोग नष्ट हो जाता है।

४. वातजविसर्पहरयोग (चक्रदत्त)

तृणवर्जं प्रयोक्तव्यं पञ्चमूलचतुष्टयम् ।
प्रदेहसेकसर्पिर्भिर्विसर्पे वातसम्भवे ॥५॥

तृणपञ्चमूल को छोड़कर शेष चार यथा—बृहत्पञ्चमूल, लघुपञ्चमूल, वल्लीपञ्चमूल और कण्टकपञ्चमूल[1] की औषधों से प्रदेह, सेंक और इनसे सिद्ध किये घृत से वातज विसर्प की चिकित्सा करनी चाहिए।

५. कुष्ठादिकल्क-क्वाथादि प्रयोग (चक्रदत्त)

कुष्ठं शताह्वा सुरदारु मुस्ता-
वाराहिकुस्तुम्बुरुकृष्णगन्धाः ।
वातेऽर्कवंशार्त्तगलाश्च योज्याः
सेकेषु लेपेषु तथा घृतेषु ॥६॥

१. कूठ, २. सौंफ, ३. देवदारु, ४. नागरमोथा, ५. वाराही कन्द, ६. धनियाँ, ७. सहिजनत्वक्, ८. अर्कमूलत्वक्, ९. बाँसपत्र और १०. सहचरनील (कटसरैया)—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। इन्हें यवकुट कर क्वाथ विधि से क्वाथ कर विसर्प रोगी को इससे सेंक करने से विसर्परोग नष्ट हो जाता है। अथवा—इनका सूक्ष्मचूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें और विसर्प स्थान पर लेप करें। इससे विसर्परोग में लाभ होता है। अथवा—इस क्वाथ और कल्क से विधिपूर्वक घृत सिद्ध करें और इस घृत को ६ से १० ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध में मिलाकर पिलाने या विसर्प स्थल पर घृत का लेप करने से वातज विसर्प नष्ट हो जाता है।

६. रास्नादिलेप (भा.प्र)

रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला ।
घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥७॥

१. रास्ना, २. नीलकमल, ३. देवदारु, ४. रक्तचन्दन, ५. मुलेठी और ६. बलामूल (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्मचूर्ण करें। ततः सिल पर दूध के साथ खूब पीस लें। ततः घृत मिलाकर वातज विसर्प में सुखोष्ण लेप करें। इससे वातज विसर्परोग शान्त हो जाता है।

---

१. **बृहत्पञ्चमूल**— बिल्वश्योनाकगम्भारी पाटलागणिकारिका:।
विदुषां पञ्चभिश्चैतैः पञ्चमूलं महन्मतम् ॥
लघुपञ्चमूल— शालपर्णी पृश्निपर्णी वार्ताकी कण्टकारिका।
गोक्षुरश्चेति विज्ञेति कनिष्ठं पञ्चमूलकम् ॥
वल्लीपञ्चमूल— मेषशृङ्गी हरिद्रा च विदारी सारिवामृता।
वल्लाख्यं····
कण्टकपञ्चमूल— ····कण्टकाख्यं तु श्वदंष्ट्राऽभीरुशैर्यकैः ।
अहिंस्रा करमर्दैश्च सर्वदोषहराश्च ते ॥

पित्तज विसर्प चिकित्सा

७. प्रपौण्डरीकादि लेप (च.द.)

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः ।
सयष्टीन्दीवरैः पित्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥८॥

१. पुण्डरिया काष्ठ, २. मंजीठ, ३. पद्मकाष्ठ, ४. खस, ५. रक्तचन्दन, ६. मुलेठी तथा ६. नीलकमलपुष्प (समभाग) लें। इनका सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः सिल पर दूध के साथ पीसकर कल्क बना लें और दूध मिलाकर इसका शीतल लेप विसर्प स्थान पर करने से पित्तज विसर्परोग नष्ट हो जाता है।

८. कशेरुकादि लेप (च.द.)

कशेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्राः
सशैवलाः सोत्पलकर्दमाश्च ।
वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे
लेपा विधेयाः सघृताः सुशीताः ॥९॥

१. कशेरुकन्द, २. सिंघाड़ाफल, ३. पद्मकाठ, ४. गुन्द्रा-मूल, ५. शैवाल (सेवार), ६. नीलकमलपुष्प और ७. कमलस्थल का कीचड़ (समभाग) लें। इन सात द्रव्यों को पीसकर घृत में मिलावें और वस्त्र में लपेटकर पित्तज विसर्प में पट्टी रूप में रखने से दाह, शूल एवं कण्डू शान्त हो जाते हैं। इसकी शीतल पट्टी देना चाहिए।

९. पद्मिनी पंक लेप (च.द.)

पित्ते तु पद्मिनीपङ्कं पिष्टं वा शङ्खशैवलम् ।
गुन्द्रामूलन्तु शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम् ॥१०॥

(१) कमल स्थान के कीचड़ (पंक) को कपड़े से छान लें और इस पंक को महीन वस्त्र में लपेटकर पित्तज स्थान पर लगाने से शान्ति मिलती है। अथवा—

(२) शंखभस्म १ भाग तथा शैवाल (सेवार) १ भाग दोनों को सिल पर पीसकर घृत मिश्रित कर पित्तज विसर्प में लेप करने से पित्तज विसर्प शान्त हो जाता है। अथवा—

(३) गुन्द्रामूल (एरकतृण विशेष) और शुक्तिभस्म दोनों समभाग लेकर अच्छी तरह से पीस लें और घृत मिश्रित कर पित्तज विसर्प में लेप करने से विसर्प में शान्ति मिलती है। या—

(४) गैरिकचूर्ण में घृत में मिश्रित कर लेप करने से पित्तज विसर्प शान्त हो जाता है।

कफज विसर्प चिकित्सा

१०. मदनफलादि क्वाथ (वमनार्थ) (च.द.)

मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च ।
वमनं च विधातव्यं विसर्पे कफसम्भवे ॥११॥

१. मदनफलबीज, २. मुलेठी, ३. निम्बत्वक् तथा ४. इन्द्रयव—इन्हें समभाग लेकर यवकुट करें और क्वाथ विधि से ३-४ लीटर क्वाथ बनावें। ततः कफज विसर्प रोगी को प्रातः आकण्ठ पिलाने से वमन होता है। दो-तीन बार वमन करने से कफज विसर्प में बहुत लाभ होता है।

११. त्रिफलादि लेप (च.द.)

त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् ।
नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥१२॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा ४. पद्मकाठ, ५. खस, ६. मंजीठ, ७. कनेरमूल तथा ८. नलमूल—इन्हें सूक्ष्म चूर्ण बना लें। पुनः जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें तथा इस कल्क में जल मिलाकर कफज विसर्प में लेप करें। उसके लेप से कफज विसर्प नष्ट हो जाता है।

१२. आरग्वधादि लेप (च.द.)

आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मातकोद्भवाः ।
शिरीषपुष्पं कामाची हिता लेपावचूर्णनैः ॥१३॥

१. आरग्वधपत्र, २. लिसोड़ा की त्वचा, ३. शिरीषपुष्प और ४. काकमाची—ये चारों द्रव्य ताज़ा हो तो अधिक अच्छा है। समभाग में इन चारों द्रव्यों को सिल पर महीन पीसें और कफज विसर्प पर लेप करें। अथवा इसके सूखे द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कफज विसर्प पर छिड़कने से अधिक लाभ होता है।

त्रिदोषज विसर्प में क्रिया

त्रिदोषघ्नीं क्रियां कुर्याद्विसर्पे द्वन्द्वसम्भवे ।
रसायनानि कुष्ठेषु सर्पींषि क्वथनानि च ॥
चूर्णादीन्यपि सर्वाणि विसर्पेष्वपि तान्यलम् ॥१४॥

त्रिदोषज एवं द्वन्द्वज विसर्प रोग में जिस दोष की प्रधानता दिखाई देती हो उसी मुख्य दोष के शमनार्थ चिकित्सा करनी चाहिए। साथ ही विसर्प रोग में कुष्ठरोगोक्त क्वाथ, चूर्ण, घृत, तैल एवं रस-रसायनादि योगों से चिकित्सा करनी चाहिए।

१४. पञ्चवल्कलादि परिषेक-प्रदेह कल्पना (च.द.)

प्रदेहाः परिषेकाश्च शस्यन्ते पञ्चवल्कलैः ।
पद्मकोशीरमधुकचन्दनैर्वा प्रशस्यते ॥१५॥

विसर्प रोग में पञ्चवल्कल (वट, पीपल, उदुम्बर, प्लक्ष, वेतस) क्वाथ से परिषेक तथा पञ्चवल्कलत्वक्चूर्ण को जल में महीन पीसकर लेप करना विसर्परोग में लाभप्रद है। अथवा—पद्मकाठ, खस, मुलेठी एवं श्वेतचन्दन इनका यवकुट चूर्ण कर क्वाथ विधि से क्वाथ करें तथा इसी क्वाथ से परिषेक करें और इनके चूर्ण को जल से महीन पीसकर लेप करने से विसर्प शान्त हो जाता है।

१५. भूनिम्बादिक्वाथ (चक्रदत्त)

भूनिम्बवासाकटुकापटोल-
फलत्रिकैश्चन्दननिम्बसिद्धः ।
विसर्पदाहज्वरवक्त्रशोष-
विस्फोटतृष्णावमिनुत् कषायः ॥१६॥

१. चिरायता, २. वासा, ३. कटुकी, ४. पटोलपत्र, ५. आमला, ६. हरीतकी, ७. बहेड़ा, ८. रक्तचन्दन और ९. निम्बत्वक् (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर यवकुट करें और २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें और चौथाई (१०० मि.ली.) शेष रहने पर छान लें। इसे पिलाने से विसर्प, दाह, ज्वर, मुखशोष, विस्फोट, तृष्णा एवं वमनरोग शान्त हो जाते हैं।

१६. अमृतादिक्वाथ (चक्रदत्त)

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं
खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे ।
विविधविषविसर्पान् कुष्ठविस्फोटकण्डू-
रपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरञ्च ॥१७॥

१. गुडूची, २. वासामूल, ३. पटोलपत्र, ४. नागरमोथा, ५. सप्तपर्ण, ६. खदिरकाष्ठ, ६ अनन्तमूल, ८ निम्बपत्र, ९. हल्दी तथा १०. दारुहल्दी (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर यवकुट कर संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर प्रतिदिन ३ बार पिलाने से अनेक प्रकार के विषदोष, सभी विसर्प, कुष्ठ, विस्फोट, कण्डू, मसूरिका, शीतपित्त और ज्वर रोग नष्ट हो जाते हैं।

१७. दशाङ्गलेप (च.द.)

शिरीषयष्टीनतचन्दनैला-
मांसीहरिद्राद्वयकुष्ठबालैः ।
लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो
विसर्पकुष्ठज्वरशोथहारी ॥१८॥

१. शिरीषत्वक्, २. मुलेठी, ३. तगर, ४. रक्तचन्दन, ५. छोटीइलायची, ६. जटामांसी, ७. हल्दी, ८. दारुहल्दी, ९. कूठ तथा १० सुगन्धवाला (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर कूटें और वस्त्रपूत चूर्ण करें। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को घृत के साथ मिलाकर लेप करने से विसर्प, कुष्ठ, शोथ और ज्वररोग शान्त हो जाता है।

१८. नवकषायगुग्गुलु (च.द.)

अमृतवृषपटोलं निम्बकल्कैरुपेतं
त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातं च तुल्यम् ।
क्वथितमिदमशेषं गुग्गुलोर्भागयुक्तं
जयति विषविसर्पान् कुष्ठमष्टादशाख्यम् ॥१९॥

१. गुडूची, २. वासामूल, ३. पटोलपत्र ४. निम्बत्वक्, ५. आमला, ६. हरीतकी ७. बहेड़ा ८ खदिरसार, ९. अमलतास-फल मज्जा (समभाग) तथा १० शुद्ध गुग्गुलु लें। उपर्युक्त ९ द्रव्यों को समभाग लेकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लें और १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। ५०-५० मि.ली. प्रातः-सायं इस क्वाथ में १ ग्राम गुग्गुलुचूर्ण मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से विषजन्य विसर्प और १८ प्रकार के कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं।

विसर्प-चिकित्सा में अन्यरोगोक्त प्रयोग (भा.प्र.)

कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्त-
चिकित्सयाप्याशु हरेद्विसर्पान ।
सर्वान् विपक्वान् परिशोध्य धीमान्
व्रणक्रमेणोपचरेद् यथोक्तम् ॥२०॥

विसर्परोग की चिकित्सा क्रम में कुष्ठरोगोक्त, विस्फोट-रोगोक्त तथा मसूरिकारोगोक्त औषधि योगों का प्रयोग करना चाहिए। विसर्प पक जाने पर निम्बक्वाथ से प्रक्षालनोपरान्त व्रणशोधन कर व्रणरोगोक्त चिकित्सा के अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिए।

१९. कालाग्निरुद्ररस (र.सा.सं.)

सूताभ्रकान्तलौहानां भस्म गन्धकमाक्षिकम् ।
वन्यकर्कोटिकाद्रावैस्तुल्यं मर्द्यं दिनावधि ॥२१॥
वन्यकर्कोटिकाकन्दे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः।
भूधराख्ये पुटे पश्चाद् दिनैकं तद्विपाचयेत् ॥२२॥
दशमांशं विषं योज्यं गुञ्जामात्रन्तु भक्षयेत् ।
रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्पनुत् ॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥२३॥

१. शुद्ध पारद, २. अभ्रकभस्म, ३. कान्तलौहभस्म, ४. शुद्ध गन्धक, ५. स्वर्णमाक्षिकभस्म (समभाग) और ६. शुद्ध वत्सनाभविष लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में तीनों भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। पुनः जंगली को कर्कोटक कन्द स्वरस की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। इसके बाद भावित औषधि को वन्य कर्कोटक कन्द के गर्भ (खात) में रखकर कन्द को मिट्टी से लिप्त करें और सुखाकर भूधरपुट में एक दिन तक पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर भूधरपुट से कन्द निकालें। उससे मिट्टी हटाकर औषधि को सावधानी से निकाल लें और खरल में मर्दन तौलें। पूरी औषधि का दशमांश भाग शुद्ध वत्सनाभचूर्ण

मिलाकर १ घण्टा तक मर्दन करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'कालाग्निरुद्ररस' की १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में मधु एवं पीपरचूर्ण के साथ प्रतिदिन प्रातः-सायं १० दिनों तक सेवन करने से विसर्परोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—पीपरचूर्ण ५०० मि.ग्रा. एवं मधु १ चम्मच से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—विसर्प में।

२०. वृषाद्यघृत (च.द.)

वृषखदिरपटोलपत्रनिम्ब-
त्वगमृतामलकीकषायकल्कैः ।
घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं
जयति विसर्पगदान् सकुष्ठगुल्मान् ॥२४॥

१. गोघृत १ किलो, २. वासामूल, ३. खदिरकाष्ठ, ४. पटोलपत्र, ५. निम्बत्वक् और ६. गुडूची—प्रत्येक ८५० ग्राम लें। इन्हें यवकुट करें। ४ किलो क्वाथार्थ रखें और २५० ग्राम कल्कार्थ चूर्ण करें। घृत का मूर्च्छन करें। १६ लीटर जल के साथ क्वाथ द्रव्य का यवकुट मिलाकर क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर मूर्च्छित घृत में मिलावें और कल्कचूर्ण में जल मिलाकर सिल पर पीसें। जब कल्क बन जाय तो मूर्च्छितघृत में डालकर मन्दाग्नि में घृतपाक करें। द्रवांश सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा कर स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़े से छानकर शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल में मिलाकर प्रतिदिन प्रातः-सायं पिलावें। इस घृत का रुग्ण स्थान पर लेप करने से भी व्रण में लाभ होता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—विर्सप एवं कुष्ठ में।

२१. करञ्जादितैल (भा.प्र.)

करञ्जसप्तच्छदलाङ्गलीक-
स्नुह्यर्कदुग्धानलभृङ्गराजैः ।
तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्वं
विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥२५॥

१. तिल तैल १ लीटर, २. करञ्ज त्वक्, ३. सप्तपर्ण त्वक्, ४. लाङ्गलीमूल, ५. स्नुहीदुग्ध, ६. अर्कदुग्ध, ७. चित्रकमूल, ८. भृङ्गराज, ९. हल्दी, १०. गोमूत्र और ११. वत्सनाभविष (प्रत्येक ४२५ ग्राम) लें। सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के पात्र में तिल तैल का मूर्च्छन करें। ततः प्रत्येक द्रव्य २५ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। शेष ४०० ग्राम प्रत्येक द्रव्य का यवकुट करें और १६ लीटर जल में क्वाथ करें; ४ लीटर बचने पर कपड़ा से छान लें। अब मूर्च्छित तैल में कल्क-क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छानकर शीतल होने पर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का केवल बाह्य प्रयोग करें। केवल व्रण पर लेप करें। इसके लेप एवं अभ्यङ्ग करने से विसर्प, कुष्ठ, विस्फोट और विचर्चिका रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—आवश्यकतानुसार मर्दन। **अनुपान**—केवल बाह्य लेपन। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—इसे जीभ पर नहीं रखना चाहिए क्योंकि इसमें विष मिला है। **उपयोग**—विसर्प, विस्फोट एवं विचर्चिका में।

विसर्प रोग में पथ्य

विरेको वमनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् ।
पुराणा यवगोधूमकङ्गुषष्टिकशालयः ॥२६॥
मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो जाङ्गला रसाः ।
नवनीतं घृतं द्राक्षा दाडिमं कारवेल्लकम् ॥२७॥
वेत्राग्रं कुलकं धात्री खदिरो नागकेशरम् ।
लाक्षा शिरीषः कर्पूरं चन्दनं तिललेपनम् ॥२८॥
ह्रीबेरकं मुस्तकञ्च तिक्तानि सकलानि च ।
यथादोषमिदं पथ्यं सेवितव्यं विसर्पिभिः ॥२९॥
यदनुद्वेगकृत्कर्म यद्द्रव्यं रक्तशुद्धिकृत् ।
अन्नपानं च यत्तिक्तं यथा स्यादविदाहकम् ॥
सेवनीयं प्रयत्नेन तत्सर्वं तु विसर्पिभिः ॥३०॥

विसर्परोग में—विरेचन, वमन, औषध द्रव्यों का लेप, उपवास, रक्तमोक्षण, पुराना जौ, गेहूँ, कौनी कुधान्य, साठी चावल, शालिचावल, मूँग, मसूर, चना, अरहर (राहड़), जंगली पशु-पक्षियों का मांस रस, मख्खन, घृत, मुनक्का, मीठा अनार, करैला, वेत्राग्र शाक, पटोलफल, आमला, खदिर, नागकेशर, लाक्षा, शिरीषत्वक्, कर्पूर, चन्दन, तिल का लेप, सुगन्धबाला, नागरमोथा, सभी तिक्त खाद्य पदार्थ दोषानुसार सेवन करना चाहिए। जो उत्तेजना नहीं करते हों, जो द्रव्य रक्तशोधक हैं, तिक्त द्रव्य, जो विदाही नहीं हो, उन सभी द्रव्यों का विसर्प रोग में सेवन करना चाहिए।

विसर्प रोग में अपथ्य

व्यायाममह्नि शयनं सुरतं प्रवातं
क्रोधं शुचं वमनवेगमसूयनञ्च ।
शाकं विरुद्धमशनं दधिकूर्च्चिकाञ्च
सौवीरमासुतमनेकविधं किलाटम् ॥३१॥
गुर्वन्नपानमखिलं लशुनं कुलत्था-
न्माषांस्तिलान् सकलमांसमजाङ्गलञ्च ।

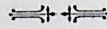
स्वेदं विदाहिलवणाम्लकटूनि मद्या-
न्यर्कप्रभामपि विसर्पगदी त्यजेत्तु ॥३२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विसर्परोगाधिकारः ।



विसर्प रोगी को व्यायाम, दिवाशयन, मैथुन, तेज हवा (विशेषकर पूर्वा हवा), क्रोध, शोक या अधिक पवित्रता जैसे स्नानादि अधिक करना, वमन के वेग को रोकना, दूसरे की उन्नति देखकर ईर्ष्या करना, पत्रशाक, विरुद्ध भोजन, दधि, कूर्चिका, काञ्जी, अनेक प्रकार के मद्य, किलाट, सभी प्रकार गुरु अन्न, गुरु पदार्थ का पान, लशुन, कुलथी, उड़द, तिल, जांगल पशु-पक्षियों के मांस के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के मांस, स्वेदन कर्म, विदाही पदार्थ, लवण-अम्ल एवं कटु पदार्थ, मद्य तथा सूर्य की तीक्ष्ण किरणों (धूप) का सेवन नहीं करना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य विसर्परोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथ विस्फोटरोगाधिकारः (५८)

विस्फोट रोग में क्रियाक्रम (भा.प्र.)

विस्फोटे लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम्।
यथादोषबलं वीक्ष्य युक्तमुक्तं विरेचनम् ॥१॥

विस्फोट रोग में दोषों तथा रोगी के बलानुसार लंघन, वमन, विरेचन, पुराना अन्न तथा पथ्यपूर्वक भोजन करना चाहिए।

विस्फोट में पथ्य भोजन (भा.प्र.)

जीर्णशालियवा मुद्गा मसूराश्चाढकी तथा।
एतान्यन्नानि विस्फोटे हितानि मुनयोऽब्रुवन् ॥२॥

पुराना शालिचावल, जौ, मूँग, मसूर तथा अरहर का सेवन विस्फोट रोग में हितकर है। ऋषि-मुनियों ने इन अन्नों को विस्फोट रोग में हितकर बताया है।

१. पटोलादिक्वाथ-१ (च.द.)

पटोलामृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः ।
खदिराब्दयुतैः क्वाथो विस्फोटार्तिज्वरापहः ॥३॥

१. पटोलपत्र, २. गुडूची, ३. चिरायता, ४. वासामूल, ५. निम्बत्वक्, ६. पित्तपापड़ा, ७. खदिरकाष्ठ तथा ८. नागरमोथा—उपर्युक्त सभी द्रव्यों को सममात्रा में लें और मिलाकर यवकुट चूर्ण करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें, चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ को ५० मि.ली. प्रातः-सायं पिलाने से विस्फोट और ज्वररोग नष्ट हो जाता है।

२. पटोलादिक्वाथ-२ (च.द.)

पटोलत्रिफलाऽरिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनम् ।
समूर्वा रोहिणी पाठा रजनी सदुरालभा ॥४॥
कषायं पाययेदेतत् पित्तश्लेष्मज्वरापहम्।
कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥५॥

१. पटोलपत्र, २. आमला, ३. हरीतकी ४. बहेड़ा ५. निम्बत्वक्, ६, गुडूची, ७. नागरमोथा, ८. रक्तचन्दन, ९. मूर्वा, १०. कटुकी, ११. पाठा, १२. हल्दी तथा १३. जवासा (समभाग) लें। इन्हें मिलाकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर छान लें। ५० मि.ली. प्रातः-सायं इस क्वाथ को पिलाने से पित्त-श्लेष्मज्वर, कण्डू, त्वग्दोष, विस्फोट, विषजन्य विसर्परोग नष्ट हो जाते हैं।

३. पञ्चमूल्यादिक्वाथ (भा.प्र.)

द्वे पञ्चमूल्यौ रास्ना च दार्व्युशीरं दुरालभा।
गुडूची धान्यकं मुस्तमेषां क्वाथं पिबेन्नरः॥
विस्फोटान् नाशयत्याशु समीरणनिमित्तजान् ॥६॥

१. दोनों पञ्चमूल अर्थात् दशमूल के सभी द्रव्य, २. बिल्वत्वक्, ३. अग्निमन्थत्वक्, ४. सोनापाठात्वक्, ५. पाढलत्वक्, ६. गम्भारीत्वक्, ७. शालपर्णी, ८. पृश्निपर्णी, ९. बृहती, १०. कण्टकारी, ११. गोक्षुर, १२ रास्ना, १३. दारुहल्दी, १४. खस, १५. जवासा, १६. गुडूची, १७ धनियाँ और १८. नागरमोथा (समभाग) लें। इन्हें मिलाकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। ५० मि.ली. इस क्वाथ को प्रातः-सायं पान करने से वातज विस्फोट रोग नष्ट हो जाता है।

४. द्राक्षादिक्वाथ (भा.प्र.)

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः ।
कटुकालाजदुःस्पर्शैः सितायुक्तं तु पैत्तिके ॥७॥

१. द्राक्षा, २. गम्भारीत्वक्, ३. खर्जूरफल (छोहाड़ा), ४. पटोलपत्र, ५. निम्बत्वक्, ६. वासा, ७. कटुकी, ८. धान की लाजा तथा ९. जवासा (समभाग) लें। द्राक्षा और खर्जूर छोड़कर शेष अन्य द्रव्यों को एक साथ मिलाकर यवकुट करें और बाद में द्राक्षा और खजूर को एक साथ कूटकर ऊपर वाले यवकुट में मिलाकर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ में से २५ ग्राम लें और १६ गुना (४०० मि.ली.) जल देकर क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। ५० मि.ली. इस क्वाथ में १० ग्राम चीनी मिलाकर ठण्डा कर प्रातः-सायं पिलाने से पित्तज विस्फोट नष्ट हो जाता है।

५. भूनिम्बादिक्वाथ (भा.प्र.)

भूनिम्बं सवचा वासा त्रिफलेन्द्रजवत्सकैः।
पिचुमर्दपटोलाभ्यां कफजे मधुयुक् शृतम् ॥८॥

१. चिरायता, २. वच, ३. वासामूल, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. इन्द्रयव, ८. कुटजत्वक्, ९. निम्बत्वक् और १०. पटोलपत्र (समभाग) लें। उपर्युक्त सभी १० द्रव्यों को यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। तदनन्तर २५ ग्राम यवकुट में १६ गुना (४०० मि.ली.) जल मिलाकर क्वाथ करें।

चौथाई शेष रहने पर छान लें। ५० मि.ली. इस क्वाथ में १० ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से कफज विस्फोटरोग नष्ट हो जाता है।

६. किराततिक्तादिक्वाथ (भा.प्र.)

किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वाम्बुदवासकैः ।
पटोलपर्पटोशीरत्रिफलाकौटजान्वितैः ॥
क्वथितैर्द्वादशाङ्गन्तु सर्वविस्फोटनाशनम् ॥९॥

१. चिरायता, २. निम्बत्वक्, ३. मुलेठी, ४. नागरमोथा, ५. वासामूल, ६. पटोलपत्र, ७. पित्तपापड़ा, ८. खस, ९. आमला, १० हरीतकी, ११. बहेड़ा तथा. १२ इन्द्रयव (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों को यवकुटचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ को ५०-५० मि.ली. प्रातः-सायं प्रतिदिन पिलाने से विस्फोटरोग नष्ट हो जाता है।

७. विस्फोटहरलेप (भा.प्र.)

विस्फोटव्याधिनाशाय तण्डुलाम्बुप्रपेषितैः।
बीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः कार्यो विजानता ॥१०॥

इन्द्रयव को तण्डुलाम्बु के साथ पीसकर लेप करने से विस्फोटरोग नष्ट हो जाता है।

८. चन्दनादिलेप (भा.प्र.)

चन्दनं नागपुष्पञ्च शारिवा तण्डुलीयकम्।
शिरीषवल्कलं जाती लेपः स्याद्दाहनाशनः ॥११॥

१. रक्तचन्दन, २. नागकेशर, ३. अनन्तमूल, ४. चौराईशाक, ५. शिरीषत्वक् और ६. चमेलीपत्र (समभाग) लें। लालचन्दन, अनन्तमूल एवं शिरीषत्वक् को कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः सिल पर नागकेशर, चौराईशाक एवं चमेलीपत्र को पीसें। अब उपर्युक्त चन्दन आदि के चूर्ण को मिलाकर एक साथ पीसें। सूक्ष्म पीसे जाने पर विस्फोट रोग के फोड़े पर लेप करने से दाह आदि व्यथा नष्ट हो जाती है।

९. उत्पलादिलेप (भा.प्र.)

उत्पलं चन्दनं लोध्रमुशीरं सारिवाद्वयम्।
जलपिष्टेन लेपेन स्फोटदाहार्त्तिनाशनम् ॥१२॥

१. नीलकमल, २. लालचन्दन, ३. लोध्रत्वक्, ४. खस, ५. श्वेत अनन्तमूल तथा ६. कृष्ण अनन्तमूल (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को जल के साथ सिल पर पीसकर लेप करने से स्फोट एवं दाह शान्त हो जाता है।

१०. पुत्रजीवीफलमज्जालेप (भा.प्र.)

पुत्रजीवस्य मज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत्।
कालस्फोटञ्च विस्फोटं सद्यो हन्ति सवेदनम् ॥१३॥
कक्षग्रन्थिं गलग्रन्थिं कर्णग्रन्थिं च नाशयेत्।
हन्याच्च स्फोटकं ताम्रं पुत्रजीवो न संशयः ॥१४॥

पुत्रजीवी (जीयापोता=पितौझिया) के फल की मज्जा को सिल पर जल के साथ पीसकर लेप करने से कृष्णवर्ण का स्फोट, वेदनायुक्त स्फोट, कक्षाग्रन्थि, गलग्रन्थि, कर्णग्रन्थि और ताम्रवर्ण का विस्फोट भी नष्ट हो जाता है।

११. शिरीषादिलेप (च.द.)

शिरीषोशीरनागाह्वहिंस्रालेपनतो द्रुतम्।
विसर्पविषविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः ॥१५॥

१. शिरीषत्वक्, २. खस, ३. नागकेशर तथा ४. कण्टकारी मूल—उपर्युक्त चारों द्रव्य समभाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार इस चूर्ण को जल के साथ सिल पर पीसकर विस्फोट पर लेप करने से विसर्प, विषजन्य विस्फोट निःसन्देह नष्ट हो जाता है।

१२. शिरीषमूलादिकवलग्रह (च.द.)

शिरीषमूलमञ्जिष्ठाचव्यामलकयष्टिकाः ।
सजातीपल्लवक्षौद्रा विस्फोटे कवलग्रहाः ॥१६॥

१. शिरीषमूलत्वक्, २. मंजीठ, ३. चव्य, ४. आमला, ५. मुलेठी, ६. चमेलीपत्र (समभाग) और ७. मधु लें। इन्हें यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से ५० ग्राम लेकर १६ गुना (८०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। १०० मि.ली. इस क्वाथ में २५ ग्राम मधु मिलाकर मुख में भरकर मुख को चलाते रहें। इसे हम कवलग्रह के नाम से जानते हैं। इस तरह उक्त द्रव को मुख में कवलग्रह के रूप में १० मिनट तक धारण करें। इस प्रकार दिन में ४ बार कवलग्रह धारण करने से विस्फोट रोग नष्ट हो जाता है। कवलग्रह यथा—'मुखं सञ्चार्यते या तु मात्रा स कवलग्रहः' (सु.चि ४०।६२)

१३. व्रणारि गुग्गुलुवटी

पलं कृष्णा पुरः पञ्च त्रिफला त्रिपलं भवेत्।
भस्मसूतपलं चास्य कर्षः सर्वव्रणापहः ॥१७॥

१. पीपलचूर्ण ५० ग्राम, २. शुद्ध गुग्गुलु २५० ग्राम, ३. त्रिफलाचूर्ण १५० ग्राम तथा ४. रससिन्दूर ५० ग्राम।

विधि—सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर के सूक्ष्म चूर्ण में पिप्पली एवं त्रिफलाचूर्ण मिलावें तथा गुग्गुलु को थोड़े गरम जल में डालकर द्रवित करें। जब गुग्गुलु द्रवित हो जाय तो रससिन्दूर मिश्रित चूर्ण डालकर मिश्रित करें। इसे ५०० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। मूलपाठ में १२ ग्राम की मात्रा बतायी गयी है जो अत्यधिक है। अतः अधुना ५०० मि.ग्रा. देना उचित है।

१४. विस्फोटकारिरस (र.सा.सं.)

गुडूचीनिम्बजक्वाथैः खदिरेन्द्रयवाम्बुना।
कर्पूरत्रिसुगन्धिभ्यां युक्तं सूतं द्विवेल्लकम्॥
विस्फोटं त्वरितं हन्याद् वायुर्जलधरानिव॥१८॥

१. गुडूची, २. निम्बत्वक्, ३. खदिरकाष्ठ, ४. इन्द्रयव, ५. कपूर, ६. दालचीनी, ७. छोटी इलायची, ८. तेजपात और ९. रससिन्दूर लें। १२५ से २५० मि.ग्रा. रससिन्दूर पीसकर उसमें दालचीनी, तेजपात तथा छोटी इलायची तीनों का चूर्ण ५०० मि.ग्रा. और कर्पूर १२५ मि.ग्रा. मिलाकर मधु के साथ चाटें। और गुडूची एवं निम्बक्वाथ ५० मि.ली. या खदिरकाष्ठ तथा इन्द्रयव का मिलित क्वाथ ५० मि.ली. पिलाने से विस्फोट रोग सद्यः नष्ट हो जाता है जैसे वायु के वेग से मेघ नष्ट हो जाता है।

१५. पञ्चतिक्तकघृत (च.द.)

पटोलसप्तच्छदनिम्बवासा-
फलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्वम्।
तत्पञ्चतिक्तं घृतमाशु हन्ति
त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः॥१९॥

गोघृत १ किलो, २. पटोलपत्र, ३. सप्तपर्णत्वक्, ४. निम्बत्वक्, ५. वासामूल, ६. आमला, ७. हरीतकी, ८. बहेड़ा तथा ९. गुडूची—प्रत्येक द्रव्य ५३० ग्राम लेना चाहिए।

क्वाथ—क्वाथार्थ सभी ८ द्रव्य ५००-५०० ग्राम लें। इन्हें यवकुट करें और १६ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर कपड़े से छान लें।

कल्क—कल्कार्थ ८ द्रव्य प्रत्येक ३०-३० ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें।

इसके बाद घृत को बड़े स्टेनलेस स्टीलपात्र में मूर्च्छन विधि से मूर्च्छन करें। ततः उस मूर्च्छितघृत में क्वाथ और कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। घृत से जब जलीयांश नष्ट हो जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से घृत को छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस पञ्चतिक्तकघृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम जल से सेवन कराने से त्रिदोषज विस्फोट, विसर्प और कण्डूरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—विस्फोट, विसर्प एवं कण्डू में।

रक्त एवं पित्त दोषहर औषध

रक्तदोषहरं यद्यद् यद्यत् पित्तप्रणाशनम्।
सर्वमत्र प्रयोक्तव्यं विविच्य भिषजा सदा॥२०॥

विस्फोट एवं विसर्प रोग में रक्त एवं पित्त दोषहर जो-जो औषधियाँ है, उन सभी का उपयोग विसर्प एवं विस्फोट रोग की शान्ति के लिए करना चाहिए।

विस्फोट रोग में पथ्य

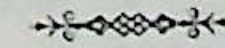
विरेचनं छर्दिविलेपलङ्घनं
पुरातनाः षष्टिकशालयो यवाः।
मुद्गा मसूराश्चणका मुकुष्ठकाः
धन्वामिषं गव्यघृतं कठिल्लकम्॥२१॥
वेत्राग्रमाषाढफलं पटोलकं
ज्योतिष्मतीनिम्बदलानि चन्दनम्।
तैलं सिताभ्रं तिललेपनं घनं
बालञ्च विस्फोटगदं विनाशयेत्॥२२॥

विस्फोटरोग में—विरेचन, वमन, लेप, उपवास, पुराना शालिचावल, जौ. मूँग, मसूर, चना, मोठ (मूँग का भेद), जंगली पशु-पक्षियों के मांस, गोघृत, करैला, वेत्राग्र शाक, तिक्त ककड़ी (जो आषाढ़ महीने में फलती है), पटोलपत्र, ज्योतिष्मती, निम्बपत्र, श्वेतचन्दन, तिलतैल, तिलपिष्ट का लेपन, नागरमोथा और सुगन्धबाला पथ्य है।

विस्फोट में अपथ्य

स्वेदं व्यवायं व्यायामं क्रोधं गुर्वन्नमातपम्।
वमिवेगं पत्रशाकं प्रवातं स्वपनं दिवा॥२३॥
ग्राम्यौदकानूपमांसं विरुद्धान्यशनानि च।
तिलान् माषान् कुलत्थांश्च लवणाम्लकटूनि च॥
विदाहि रूक्षमुष्णञ्च विस्फोटी परिवर्जयेत्॥२४॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विस्फोटरोगाधिकारः।



स्वेदन, मैथुन, व्यायाम, क्रोध, गुरु अन्न का भोजन, धूप, वमन के वेग को रोकना, पत्रशाक, अधिक तेज हवा का सेवन, दिन में सोना, ग्राम्य, जलीय तथा आनूप देशीय पशु-पक्षियों एवं मछली के मांस, विरुद्ध अन्न-पान का सेवन, तिल, माष, कुलथी, लवण एवं अम्ल कटु पदार्थ का भोजन, विदाही, रूक्ष एवं उष्ण पदार्थों का भोजन विस्फोट रोग में बन्द कर देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य विस्फोटरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ मसूरिकारोगाधिकारः (५९)

मसूरिका प्रतिकार-१

चैत्रासितभूतदिने रक्तपताकाऽन्विता स्नुही भवने।
धवलितकलसे न्यस्ता पापरोगं दूरतो धत्ते ॥१॥

चैत्रमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन स्नुही वृक्ष की झाड़ (जो कण्टकाकीर्णदण्ड जैसा होता है) से १ से २ हाथ लम्बा कण्टकस्नुहीकाण्ड काटकर ले आयें। अपने मकान के प्रवेश द्वार पर एक श्वेत कलश (मिट्टी के घड़े में चूना लगाकर श्वेत कर लें) में मिट्टी के साथ उस स्नुहीदण्ड का रोपण करें। उस स्नुहीदण्ड के ऊपरी भाग में लाल कपड़े की पताका (झण्डा) लगाकर स्थापित कर दें। ऐसा करने से उस घर में रहने वालों को पाप रोग (मसूरिका = शीतला) नहीं होता है।

मसूरिका प्रतिकार-२

नारीणां वामपार्श्वस्थं नराणामपसव्यगम्।
पापरोगमयं दूराच्छिवास्थि विनिवारयेत् ॥२॥

पापरोग=मसूरिका (Small Pox) रोग के विनिवारणार्थ स्त्रियों के वाम पार्श्व में और पुरुषों के दक्षिण पार्श्व में सियार (शृगालिका) की हड्डी बाँधनी चाहिए। इससे मसूरिका रोग होने की सम्भावना नहीं रहती है। अथवा—शिवास्थि का दूसरा अर्थ 'हरीतकी की गुठली' भी बाँधा जा सकता है।

मसूरिका ग्रस्त रोगी का उपचार

ज्वरे जाते स्पृहेन्नाम्बु तिष्ठेन्निर्वातवेश्मनि।
म्रक्षयेद्विजयाचूर्णैर्गात्रं वस्त्रेण बन्धयेत् ॥३॥

ज्वरग्रस्त मसूरिका के रोगी को जल का पान नहीं करने देना चाहिए। निर्वातगृह में सुलाना या रखना चाहिए। रोगा- क्रान्त शरीर पर भाँग के चूर्ण का घर्षण कर उक्त स्थान को स्वच्छ वस्त्र से बाँध देना चाहिए।

विमर्श—चूँकि मसूरिका में दाह अधिक होने से रोगी जलपान की अत्यधिक इच्छा करता है तथा अधिक हवादार कमरे में रहने का इच्छुक होता है, किन्तु यह कार्य रोगविरुद्ध है, अतः नहीं करना चाहिए।

रुद्राक्ष एवं मरिच युक्त जलपान

रुद्राक्षं मरिचैर्युक्तं पीतं पर्युषिताम्भसा।
त्र्यहात्पापरुजं हन्ति दृष्टं वारसहस्रशः ॥४॥

एक गिलास बासी जल में रुद्राक्षचूर्ण ५०० मि.ग्रा. तथा मरिचचूर्ण ५०० मि.ग्रा. मिलाकर पिलाने से ३ दिन में मसूरिका रोग नष्ट हो जाता है। ऐसा हजारों बार का देखा हुआ है।

विमर्श—ताम्रपात्र में शाम को जल रखें ओर दूसरे दिन उस जल में रुद्राक्षादिचूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए।

मसूरिका रोग में वमन (च.द.)

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्टवत्सकैः।
कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥५॥

रस-रक्तादि दूष्यों तथा वात, पित्त एवं कफ के द्वारा दूषित होने पर सभी प्रकार के मसूरिका रोग में—पटोलपत्र, निम्बत्वक् और इन्द्रयव के समभागीय क्वाथ में वच, इन्द्रयव, मुलेठी एवं मदनफलपिप्पलीचूर्ण प्रत्येक १ ग्राम मिलाकर आकण्ठ पिलाकर वमन कराना चाहिए।

मसूरिका में संशोधन एवं संशमन (च.द.)

सक्षौद्रं पाययेद् ब्राह्म्या रसं वा हैलमोचिकम्।
वान्तस्य रेचनं देयं शमनं चाबले नरे ॥६॥

विरेचनार्थ—ब्राह्मीस्वरस या हिलमोचिकास्वरस में मधु मिलाकर वमन कराये गए मसूरिका रोगी को विरेचन करावें। तथा कमजोर रोगी को संशमन चिकित्सा देनी चाहिए।

१. मसूरिकादि ज्वर शान्त्यर्थ चिकित्सा (च.द.)

सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम्।
रोमान्तीज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिबेत् ॥७॥

करैलापत्रस्वरस ५० मि.ली. में १ ग्राम हल्दीचूर्ण मिलाकर पिलाने से रोमान्तिकज्वर, विस्फोट एवं मसूरिकारोग शान्त हो जाता है।

२. उष्ट्रकण्टकादिचूर्ण (च.द.)

उष्ट्रकण्टकमूलं वाऽप्यनन्तामूलमेव वा।
विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बु पीतं हन्ति मसूरिकाम् ॥८॥

ऊँट काँटा (जवाशा) के मूल का चूर्ण २ ग्राम अथवा अनन्तमूलचूर्ण २ ग्राम तण्डुलोदक ५० मि.ली. में मिलाकर ३-४ दिनों तक ३ बार प्रतिदिन पिलाने से मसूरिकारोग नष्ट हो जाता है।

३. शृगालकण्टकमूलादिचूर्ण (च.द.)

तद्वच्छृगालकण्टकमूलञ्च व्युषिताम्भसा।
निशाचिञ्चाच्छदे शीतवारिपीते तथैव च ॥

व्युषिताम्बुना समरिचं पिबेत्पीतकपर्दकम् ॥९॥

उसी प्रकार शृगालकण्टकमूल (सियारकाँटामूल) १ से २ ग्राम की मात्रा में बासी जल से पिलाने; अथवा हल्दी और इमली पत्र का कल्क २ से ३ ग्राम जल से पिलाने; अथवा—पीली वराटिकाभस्म १ ग्राम तथा मरिचचूर्ण १ ग्राम मिलाकर ताम्रपात्रस्थ बासी जल में मिलाकर पिलाने से मसूरिकारोग नष्ट हो जाता है।

मसूरिका शमनोपाय (मानसिक) (च.द.)

यावत् सङ्ख्या मसूर्यङ्गे तावद्भिः शेलुजैर्दलैः ।
छिन्नैरातुरनाम्ना तु गुडी व्येति न वर्द्धते ॥१०॥

रोगी के शरीर में जितनी संख्या में मसूरिका (Small pox) की बड़ी-बड़ी पिडकाएँ हैं, उन्हें गिन लें और उस रोगी का नाम लेकर लिसोड़ा वृक्ष के उतने ही पत्ते तोड़ें। ऐसा करने से मसूरिका की पिडिकाएँ बढ़ती नहीं हैं, अपितु नष्ट हो जाती हैं।

व्युषित जल एवं मधु प्रयोग

व्युषितं वारि सक्षौद्रं पीतं दाहगुडीहरम् ॥११॥

(ताम्रपात्रस्थित) बासी जल में मधु मिलाकर पिलाने से (दाह, व्रण) मसूरिकारोग नष्ट हो जाता है।

वातजन्य मसूरिका में तर्पण (च.द.)

तर्पणं वातजायां प्राग् लाजचूर्णैः सशर्करैः।
भोजनं तिक्तयूषैश्च प्रतुदानां रसेन वा ॥१२॥

वातज मसूरिका रोग में लाजचूर्ण (लाजसत्तू) में चीनी मिलाकर जल में घोलकर तर्पणार्थ रोगी को पिलाना चाहिए। अथवा प्रतुद पक्षियों (कपोतादि) के मांस रस का पान तथा तिक्त रस के द्रव्यों के क्वाथ से साधित यूष को भोजन में देना चाहिए।

४. मातुलुङ्ग केशर लेप (च.द.)

सौवीरेण तु सम्पिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम् ।
प्रलेपात् पाचयत्याशु दाहञ्चाशु नियच्छति ॥१३॥

मातुलुङ्ग (बिजौरानीबू) के फूल (केशर) को काञ्जी में पीसकर मसूरिका पिडिका पर लेप करने से पिडिकाएँ सूख जाती हैं तथा मसूरिकाजन्य दाह भी नष्ट हो जाता है।

पादसम्भव मसूरिका में उपचार (च.द.)

पाददाहं प्रकुरुते पिडका पादसम्भवा ।
तत्र सेकं प्रशंसन्ति बहुशस्तण्डुलाम्बुना ॥१४॥

पैर में उत्पन्न मसूरिका पिडिका रोग में अत्यन्त दाह होता है। अत: दाह-शान्त्यर्थ तण्डुलोदक की शीतल धार से दिन में अनेक बार पाद-परिषेचन करना चाहिए।

पाककाल में बृंहण चिकित्सा (च.द.)

पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति मारुतः ।
तस्मात्संबृंहणं कार्यं न तु पथ्यं विशोषणम् ॥१५॥

मसूरिका की पिडिकाओं के पाककाल में पिडिकाओं को सुखाने के लिए कोई क्रिया नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उन्हें उस समय वायु स्वयं सुखा देती है। अत: उस समय केवल बृंहण कार्य तथा पथ्य देना चाहिए नकि वायुशोषण पथ्य। शोषण औषधि के प्रयोग से वात प्रकोप का भय रहता है।

५. गुडूच्यादिक्वाथ (च.द.)

गुडूचीं मधुकं द्राक्षां मोरठं दाडिमैः सह ।
पाककाले तु दातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥
तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायुः प्रकुप्यति ॥१६॥

१. गुडूची, २. मुलेठी, ३. द्राक्षा, ४. मोरट और ५. मीठा अनारदाना (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर क्वाथ विधि से क्वाथ बनाकर मसूरिका रोगी को पिडिका के पाक काल में पिलाना चाहिए। इसे पिलाने से पिडिकाएँ शीघ्र पक जाती हैं और वायु भी प्रकुपित नहीं होती है।

६. निम्बादिक्वाथ (च.द.)

निम्बं पर्पटकं पाठां पटोलं कटुरोहिणीम् ।
वासां दुरालभां धात्रीमुशीरं चन्दनद्वयम् ॥१७॥
एष निम्बादिकः ख्यातः पीतः शर्करयाऽन्वितः ।
हन्ति त्रिदोषमसूरीं ज्वरवीसर्पसम्भवाम् ॥
उत्थिता प्रविशेद् या तु पुनस्तां बाह्यतो नयेत् ॥१८॥

१. निम्बत्वक्, २. पित्तपापड़ा, ३. पाठा, ४. पटोलपत्र, ५. कटुकी, ६. वासामूल, ७. जवासा, ८. आमला, ९. खस, १०. रक्तचन्दन और ११. श्वेतचन्दन (समभाग) लें। इन सभी को एक साथ मिलाकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ को १०० ग्राम लेकर ४०० मि.ली. जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छानें। आवश्यकतानुसार इसे मिश्री मिलाकर पिलाने से त्रिदोषजन्य मसूरिका, ज्वर, विसर्प नष्ट हो जाते हैं तथा मसूरिका की जो पिडिकाएँ प्रकट होकर पुन: अन्तर्लीन हो गई हैं वे भी इस क्वाथ के पीने से पुन: प्रकट हो जाती हैं।

७. पटोलादिक्वाथ (च.द.)

पटोलकुण्डलीमुस्तबृषधन्वयवासकैः ।
भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥१९॥
मसूरीं शमयेदामां पक्वां चैव विशोधयेत् ।
नातः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वरशान्तये ॥२०॥

१. पटोलपत्र, २. गुडूची, ३. नागरमोथा, ४. वासामूल, ५. धमासा, ६. चिरायता, ७. निम्बत्वक्, ८. कटुकी तथा ९. पित्तपापड़ा (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों को समभाग लेकर

यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट क्वाथ को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर मसूरिका पीड़ित रोगी को पिलाने से उनकी कच्ची (अपक्व) पीडिका बैठ जाती है और पक्व पीडिकाएँ सूख जाती हैं। विस्फोट ज्वर की शान्ति के लिए इस पटोलादिक्वाथ से बढ़कर अन्य कोई औषधि नहीं है।

अमृतादिकषायं च विसर्पोक्तं प्रयोजयेत् ॥२१॥

विसर्परोग में उल्लिखित 'अमृतादिक्वाथ' का उपयोग भी इस मसूरिकारोग में किया जा सकता है।

८. काञ्चनारादि क्वाथ (यो.रत्ना.)

काञ्चनारत्वचः क्वाथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः।
निर्गत्यान्तःप्रविष्टान्तु मसूरीं बाह्यतो नयेत् ॥२२॥

काञ्चनारवृक्ष की त्वचा को यवकुट कर यथाविधि क्वाथ का निर्माण करें। उस ५० मि.ली. क्वाथ में १२५ से २५० मि.ग्रा. स्वर्णमाक्षिकभस्म मिलाकर प्रतिदिन २ बार पिलाने से निकलकर अन्तर्लीन हुई मसूरिका पुनः बाहर निकल जाती हैं।

९. ऊषणादिचूर्ण

ऊषणं पिप्पलीमूलं कुष्ठं वारणपिप्पलीम्।
मुस्तकं मधुकं मूर्वां भार्गीं मोचरसं शुभाम् ॥२३॥
यवजातिविषावासागोक्षुरं बृहतीद्वयम्।
सञ्चूर्ण्य समभागानि माषमानेन योजयेत् ॥२४॥
ऊषणाद्यमिदं चूर्णं विस्फोटं लोहितज्वरम्।
रोमान्तिकां ज्वरं जीर्णं हन्याच्चापि मसूरिकाम् ॥२५॥

१. मरिच, २. पिप्पलीमूल, ३. कूठ, ४. गजपिप्पली, ५. नागरमोथा, ६. मुलेठी, ६. मूर्वामूल, ८. भार्गीत्वक्, ९. मोचरस, १०. वंशलोचन, ११. यवक्षार, १२. अतीस, १३. चमेलीपत्र, १४. वासामूल, १५. गोक्षुर, १६. बृहती और १७. कण्टकारी—उपर्युक्त सभी १६ द्रव्यों को समभाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस ऊषणादिचूर्ण को १ से २ ग्राम की मात्रा में जल के साथ सेवन करने से विस्फोट, लोहित ज्वर, रोमान्तिका, जीर्णज्वर और मसूरिका रोग नष्ट हो जाते हैं।

मसूरिकापाकार्थ बदरीफलमज्जा चूर्ण

लिहेद्वा बादरं चूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु।
अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मिकाः ॥२६॥

बदरीफलमज्जाचूर्ण को गुड़ के साथ दिन में ३-४ बार सेवन करने से वात, पित्त एवं कफ से उत्पन्न मसूरिका शीघ्र पककर सूख जाती हैं।

मसूरिकोपद्रव चिकित्सा (च.द.)

शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना।
धन्वमांसरसाः शस्ता ईषत्सैन्धवसंयुताः ॥२७॥

मसूरिका के रोगी को उपद्रवरूप में उदरशूल, आध्मान एवं शरीर कम्प आदि वातप्रकोपजन्य विकार हो तो जंगली पशु-पक्षियों के मांस रस में थोड़ा-सा सैन्धवलवण मिलाकर पिलाने से उपर्युक्त उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

पान-शौचोपयोगि जल (च.द.)

पिबेदम्भस्तप्तशीतं भावितं खदिरासनैः।
शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्रीबहुवारजम् ॥२८॥

मसूरिकारोग से पीड़ित रोगी के लिए खदिरकाष्ठ और असनकाष्ठ (विजयसार) से सिद्ध जल पिलाना चाहिए। शौचार्थ (स्नान-अङ्गप्रक्षालन तथा मलत्याग के बाद गुद-प्रक्षालनार्थ) खदिरकाष्ठ तथा लिसोड़ा की छाल के क्वाथ का उपयोग करना चाहिए।

१०. जात्यादिक्वाथ (च.द.)

जातीपत्रं समञ्जिष्ठं दार्वी पूगफलं शमी।
धात्रीपलं समधुकं क्वथितं मधुसंयुतम्।
मुखरोगे कण्ठरोधे गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥२९॥

१. चमेलीपत्र, २. मंजीठ, ३. दारुहल्दी, ४. सुपारी, ५. शमीवृक्षत्वक्, ६. आमला तथा ७. मुलेठी (समभाग) लें। इन्हें एक साथ यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। ५० ग्राम इस यवकुट को १६ गुना (८०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें और इसके शीतल क्वाथ ५० मि.ली. में मधु मिलाकर गण्डूष रूप में मुख में धारण करने से मुख एवं कण्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं।

११. कण्ठविशोधनार्थ चिकित्सा (च.द.)

कृष्णाभयारजो लिह्यान्मधुना कण्ठशुद्धये।
तथाऽष्टाङ्गावलेहश्च कवलश्चार्द्रकादिभिः ॥३०॥

कण्ठ शोधनार्थ पीपर और हरीतकी के समभागीय चूर्ण ५०० मि.ग्रा. को मधु मिलाकर चटाना चाहिए। साथ ही अष्टाङ्गावलेह चटाना चाहिए। अथवा आर्द्रक आदि के कल्क का कवलग्रह धारण कराना चाहिए। ऐसा करने से कण्ठप्रदेश के अन्दर यदि मसूरिकाव्रणजन्य अवरोध हो जाता है तो इस विधि से अवरोध नष्ट होता है और रोगी को शान्ति मिलती है।

१२. गवेदुकादिक्वाथ (यो.र.)

अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना ॥३१॥

नागबला और मुलेठी के समभागी क्वाथ के शीतल द्रव से

मसूरिका पीड़ित नेत्रों की परिषेचन क्रिया करने से नेत्र दाह एवं व्रणादि कष्ट दूर हो जाते हैं।

१३. पञ्चवल्कलचूर्ण अवचूर्णन (च.द.)

पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवचूर्णयेत्।
भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद् गोमयरेणुना ॥३२॥

अत्यधिक स्राव से युक्त मसूरिका के व्रणों पर पञ्चवल्कल त्वक् के सूक्ष्म चूर्ण से अवचूर्णन करना चाहिए। कुछ लोग गोबर के उपलों की राख उस क्लेद युक्त मसूरिका व्रण स्राव पर छिड़ककर उसकी चिकित्सा करते हैं।

१४. मसूरिका कृमिघ्न धूप (च.द.)

कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत् सरलादिभिः ॥३३॥

मसूरिका पिडिका जन्य स्राव में सफाई के अभाव में मक्खियों आदि के द्वारा प्रदूषित होने से कीड़े उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अतः व्रणस्राव क्लेद को साफ कर सरलादि धूप (सरलकाष्ठ, निम्बपत्र तथा गुग्गुलु आदि) मिश्रित करके स्थानिक व्रणों पर धूपन करना चाहिए। इससे पुनः कृमियों की सम्भावना नहीं रहती है।

१५. वेदना-दाहशान्त्यर्थ (च.द.)

वेदनादाहशान्त्यर्थं स्रुतानाञ्च विशुद्धये।
सगुग्गुलुं वराक्वाथं युञ्ज्याद्वा खदिराष्टकम् ॥३४॥

मसूरिकारोग में वेदना एवं दाह की शान्ति के लिए तथा क्लेद युक्त स्राव की सफाई के लिए त्रिफलाक्वाथ ५० मि.ली. में शुद्ध गुग्गुलु १ ग्राम और मधु मिलाकर पिलाने से अथवा खदिराष्टकक्वाथ ५० मि.ली. में १ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु तथा मधु मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

व्रण चिकित्सा (च.द.)

पञ्चतिक्तं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनभोजनैः।
कुर्याद् व्रणविधानञ्च तैलादीन् वर्जयेच्चिरम् ॥३५॥

कुष्ठरोग में उल्लिखित 'पञ्चतिक्तघृत' का शरीर पर लेप, गरम जल में घृत मिलाकर पान कराना तथा भोज्य पदार्थ के साथ घृत मिलाकर सेवन कराना चाहिए। साथ ही व्रणाधिकार में कहे गये अन्य चिकित्सा विधान द्वारा भी व्रण की चिकित्सा करनी चाहिए। किन्तु तैल वर्जित करें अर्थात् व्रण पर तैल का लेपन नहीं करें।

व्रणोपचार

तेषु दुष्टव्रणेष्वेव जलौकाभिर्हरेदसृक्।
व्रणशोथहरं योगमाचरेत्तत्प्रशान्तये ॥३६॥

मसूरिका जन्य पिडिका व्रणों के दूषित होने पर पिडिका पार्श्व में जलौका द्वारा दूषित रक्त निकाल देना चाहिए। पुनः व्रण-शान्त्यर्थ व्रणशोथहर योगों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

रोमान्तिका

उच्चैस्तरे प्रशस्ते च रोमान्तीगदपीडितः।
गृहेऽनार्द्रे वसेन्नित्यं गुरूष्णवसनावृतः ॥३७॥

रोमान्तिका रोग से पीड़ित व्यक्ति को मकान के ऊपरी हिस्से में अर्थात् छत वाले कमरे में रखना चाहिए जो ठीक ढंग से साफ किया गया हो, जो सूखा हो अर्थात् आर्द्र नहीं हो। स्वच्छ बिस्तर युक्त पलंग पर भारी एवं ऊनी चादर से रोगी को ढककर रखना चाहिए।

रोमान्तिका में अपथ्य

शीतवायुं शीततोयं सन्तापं वह्निसूर्ययोः।
त्यजेत्स्त्रियं दिवा निद्रामध्वानं निशि जागरम् ॥३८॥

रोमान्तिका रोग मे निम्नलिखित अपथ्य त्याग देना चाहिए—शीत वायु, ठण्डा जल (स्नान, शौच तथा पान), आग और सूर्य की गरमी का सेवन, मैथुन, दिन में सोना, अधिक चलना और रात्रि में जागरण।

रोमान्तिका में हितकर

सुखोष्णेनाम्बुना स्वेदो रोमान्तीज्वरहृन्मतः।
मसूर्यां ये च कथिता इह क्वाथादयोऽपि ते ॥
प्रयुज्यमाना गदिनं सुस्थीकुर्वन्ति सत्वरम् ॥३९॥

रोमान्तिका ज्वर में सुखोष्ण जल या निम्बादि क्वाथ में वस्त्र भिंगाकर शरीर का प्रक्षालन करना चाहिए। ऐसा करने से रोमान्तिका ज्वर नष्ट हो जाता है। तथा मसूरिका-शान्त्यर्थ जो क्वाथ कहे गये हैं उनका भी प्रयोग करना चाहिए।

१६. खदिराष्टक क्वाथ (च.द.)

खदिरत्रिफलारिष्टपटोलामृतवासकैः ।
क्वाथोऽष्टकाख्यो जयति रोमान्तिकमसूरिकाः ॥
कुष्ठवीसर्पविस्फोटकण्ड्वादीनपि पानतः ॥४०॥

१. खदिरकाष्ठ, २. आमला, ३. हरीतकी ४. बहेड़ा ५. निम्बत्वक् ६. पटोलपत्र, ७. गुडूची और ८. वासामूल लें। इन सभी द्रव्यों को कूटकर यवकुट बना लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। अब इस यवकुट में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में प्रतिदिन क्वाथ करें, चौथाई शेष रहने पर छान लें। ५० मि.ली. इस क्वाथ में १२ ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से रोमान्तिका, मसूरिका, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट और कण्डू रोग नष्ट हो जाते हैं।

गणेशादि देव-पूजनादि प्रयोग

गजाननं शिवं गौरीं विष्णुं विप्रांश्च पूजयेत्।
आचारजपहोमादीन् व्रतं रोगहरं तथा ॥४१॥

गणेशजी, शिवजी, पार्वतीजी, विष्णुदेव और ब्राह्मणों की पूजा-अर्चना कर यथेच्छ दक्षिणा देनी चाहिए। इसी प्रकार शीतलादेवी के प्रकोपशान्त्यर्थ मन्त्र, तन्त्र, जप, हवन तथा महामृत्युञ्जय का जाप, पूजा आदि कार्य करना चाहिए।

अगदानि विषघ्नानि रत्नानि विविधानि च।
धारयेद्वाचयेच्चापि वैनतेयस्य संहिताम् ॥४२॥

अनेक प्रकार के विषनाशक अगद तथा विविध रत्नों का धारण तथा गरुड़संहिता का पाठ करना भी मसूरिका रोग में लाभप्रद है।

मन्त्र एवं शीतलास्तवन से मसूरिका चिकित्सा

विषघ्नैः सिद्धमन्त्रैश्च प्रमृज्यात्तु पुनः पुनः।
भक्त्या पठेत्पाठयेच्च शीतलायाः स्तवं शुभम् ॥४३॥

विषघ्न एवं व्रणघ्न निम्बादि क्वाथ एवं स्वच्छ निम्ब पत्र द्वारा मार्जन एवं आपोहिष्ठेत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करते हुए मार्जन करना चाहिए तथा शीतला स्तोत्र का पाठ करना चाहिए।

शीतला का स्वरूप-भेद एवं औषधि (भा.प्र.)

देव्याः शीतलयाऽऽक्रान्ता मसूर्येव हि शीतला।
ज्वरयेच्च यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरः ॥४४॥
सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान्प्रचक्ष्महे।
ज्वरपूर्वा बृहत् स्फोटैः शीतला वृहती भवेत् ॥४५॥
सप्ताहान्निःसरत्येव सप्ताहात् पूर्णतां व्रजेत्।
ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति स्वयम् ॥४६॥
तासां मध्ये यदा काचित्पाकं गत्वा स्फुटेत्स्त्रवेत्।
तत्रावधूलनं कुर्याद् वनगोमयभस्मना ॥४७॥
निम्बसत्पत्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत्।
जलं च शीतलं दद्याज्ज्वरेऽपि न तु तत्पचेत् ॥४८॥
स्थापयेत्तं स्थले पूते रम्ये रहसि शीतले।
नाशुचिः संस्पृशेत्तन्तु न च तस्यान्तिकं व्रजेत् ॥४९॥

यदि उपर्युक्त मसूरिका शीतलादेवी से आक्रान्त हो जाय तो उसे 'शीतला' रोग कहते हैं। उस मसूरिका में विषमज्वर के सदृश ज्वर होता है। वह शीतला सात प्रकार की होती है। उनके भेद मैं बता रहा हूँ। सर्वप्रथम ज्वर आवे और बाद में सम्पूर्ण शरीर में बड़ी-बड़ी पिडिकाएँ निकल जाय तो उसे बृहती शीतला कहते हैं। यह शीतला प्रथम सप्ताह में निकलती है, द्वितीय सप्ताह में पूर्ण हो जाती है तथा तृतीय सप्ताह में सूखती हैं एवं स्वयं झड़ जाती हैं। उन शीतला स्फोटों में से कोई फूटे या स्राव हो तो उस पर वन्योपल (जंगली कण्डों) की भस्म का कपड़छन चूर्ण छिड़कें। निम्ब के कोमल पत्रों से युक्त छोटी-छोटी टहनियों से हवा करें और उसी से मक्खियों को उड़ाना चाहिए। ज्वर होने पर भी रोगी को शीतल जल ही पिलायें, उष्ण जल कभी न पिलायें। शीतला पीड़ित व्यक्ति को पवित्र, एकान्त, रमणीय और शीतल कमरे में ही रखना चाहिए। उस शीतला रोगी को कोई भी अपवित्र व्यक्ति न तो स्पर्श करे और न पास में जाय।

औषधि देने का विचार (भा.प्र.)

बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि।
केचित्प्रयोजयन्त्येव मतं तेषामथ ब्रुवे ॥५०॥

शीतला एवं मसूरिका रोग में बहुतेरे वैद्य औषधि नहीं देते हैं। केवल अभिमन्त्रित जल एवं निम्बादिपत्र का प्रयोग करते हैं। कुछ वैद्य इस रोग में औषधि का प्रयोग करते हैं। अतः उनका मत आगे बतला रहा हूँ।

१७. शीतलारोग का प्रतिकार (भा.प्र.)

ये शीतलेन सलिलेन निपिष्य सम्यङ्-
निम्बाक्षबीजसहितां रजनीं पिबन्ति।
तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे
स्फोटास्तु वा जगति शीतलिकाविकाराः ॥५१॥

शीतला प्रकोप काल में (वसन्त ऋतु = चैत्रादि मास में) जो व्यक्ति अपने परिवार या पास-पड़ोस के बड़े-छोटे-बूढ़े सभी लोगों को निम्बपत्रचूर्ण, बहेड़ाफलचूर्ण तथा हल्दीचूर्ण (समभाग) को निम्बपत्रस्वरस की भावना देकर ४-४ रत्ती (५०० मि.ली.) की वटी बनाकर छाया में सुखाने के बाद प्रातः-सायं २-२ वटी १ सप्ताह तक शीतल जल से सेवन कराता है उसे कभी भी मसूरिका विकार फोड़े या पिड़का जन्य शीतला रोग नहीं होते हैं।

१८. शीतलारोग का प्रतिकार (भा.प्र.)

मोचारसेन सहितं सितचन्दनं ये
वासारसेन मधुकं मधुकेन वाऽथ।
आदौ पिबन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं
ते नाप्नुवन्ति भुवि शीतलिकाविकारम् ॥५२॥

(१) कदलीस्तम्भस्वरस १२ मि.ली. में श्वेतचन्दनचूर्ण १ ग्राम मिलाकर पीने से; अथवा—(२) वासास्वरस १२ मि.ली. में मुलेठीचूर्ण १ ग्राम और मधु १० ग्राम मिलाकर पिलाने से; अथवा—(३) चमेलीपत्रस्वरस १२ मि.ली. और मधु १० ग्राम मिलाकर पिलाने से—इनमें से किसी १ योग को १ सप्ताह तक प्रातः-सायं प्रतिदिन पिलाने से बच्चों अथवा बड़े-बूढ़ों को शीतला प्रकोप नहीं होता है।

१९. चन्दनादिहिम (भा.प्र.)

चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह।
एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनः ॥५३॥

१. श्वेतचन्दन, २. वासामूल, ३. नागरमोथा, ४. गुडूची

और ५. द्राक्षा (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से ५० ग्राम लें और २०० मि.ली. मीठा जल, जो नये मिट्टी की हाँड़ी में रखा हो, में रात्रिपर्यन्त खुले आकाश में रखें और प्रातः हाथ से मसलकर कपड़े से छान लें और रोगी को २-३ बार पिलावें। इसके पिलाने से शीतलाज्वर नष्ट हो जाता है।

२०. दुर्लभरस (र.सा.सं.)

अथ शुद्धस्य सूतस्य मूर्च्छितस्य मृतस्य च।
द्विबला पिप्पली धात्री रुद्राक्षघृतमाक्षिकैः ॥५४॥
मर्दनं कारयेत्खल्ले गुञ्जामानां वटीं चरेत्।
पापरोगान्तको योगः पृथिव्यामेव दुर्लभः ॥५५॥

१. रससिन्दूर या समगुण कज्जली या पारदभस्म, २. बलामूलचूर्ण, ३. अतिबलामूलचूर्ण, ४. पिप्पलीचूर्ण, ५. आमलाचूर्ण तथा ६. रुद्राक्षचूर्ण—ये छः द्रव्य १-१ भाग लें। एक खरल में यदि रससिन्दूर योग से इसे बनाना हो तो रससिन्दूर को पीस लें अथवा कज्जली डालना हो तो कज्जली डालकर शेष ५ अन्य द्रव्य चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें तथा जल की भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन करें। १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बना लें और छाया में शुष्क कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे दुर्लभरस कहते हैं। ५ बूँद घृत और १० बूँद मधु के साथ इस रस वटी को १ से २ वटी मिलाकर रोगी को चटावें। इसके सेवन से पापरोग (मसूरिका, शीतला, रोमान्तिका) नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **स्वाद**--कटु। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—मधु, घृत।

२१. सर्वतोभद्ररस

सिन्दूरमभ्रं रजतञ्च हेम
समेन भागेन मनःशिलाञ्च।
द्विशस्तु वांशी निखिलेन तुल्यं
सम्मर्दयेद् गुग्गुलुकं प्रयत्नात् ॥५६॥
ततस्तु माषप्रमितां विधाय
वटीं प्रयुञ्जीत यथानुपानम्।
यं सर्वतोभद्ररसो न हन्ति
न सोऽस्तिः रोगः खलु देहिदेहे ॥५७॥

१. रससिन्दूर १ भाग, २. अभ्रकभस्म १ भाग ३. रजत भस्म १ भाग, ४. स्वर्णभस्म १ भाग, ५. शुद्ध मैनशिल १ भाग, ६. वंशलोचन २ भाग तथा ७. शुद्ध गुग्गुलु ७ भाग लें। सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के पात्र में शुद्ध गुग्गुलु रखें। उसमें थोड़ा गरम जल मिलाकर अग्नि पर गरम करें और चम्मच से चलावें। जब गुग्गुलु पिघल जाय, तब उपर्युक्त रससिन्दूर आदि सभी द्रव्यों को खरल में पीसकर द्रवित गुग्गुलु में मिलावें और ३ घण्टे तक मर्दन करें। जब कुछ सूखे तब ८-८ रत्ती (१ ग्राम) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। रोगानुसार अनुपान मधु-घृत आदि के साथ इस 'सर्वतोभद्ररस' का प्रयोग करें। मनुष्य का ऐसा कोई रोग नहीं है जो इसके प्रयोग से नष्ट न हो जाय।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा। **अनुपान**—मधु-घृत, चन्दनचूर्ण आदि से। **गन्ध**—गुग्गुलुगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभकृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मसूरिका, विस्फोट तथा अन्य सभी रोगों में।

२२. इन्दुकलावटी

शिलाजत्वयसीं हेम सम्मर्द्यार्जकवारिणा।
गुञ्जामात्रा वटीः कृत्वा कुर्याच्छायाविशोषिताः ॥५८॥
मसूरिकायां विस्फोटे ज्वरे लोहितसंज्ञके।
एकैकां दापयेदासां सर्वव्रणगदेषु च ॥५९॥

शुद्ध शिलाजीत, लौहभस्म तथा स्वर्णभस्म (समभाग) लें। एक खरल में उपर्युक्त तीनों को समभाग में लेकर तुलसीस्वरस के साथ भावना देकर मर्दन करें। सूखने के बाद १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें। सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को मधु के साथ मिलाकर चाटने से मसूरिका, विस्फोट, लोहितज्वर और सभी व्रण विकार नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा। **अनुपान**—मधु एवं दोषानुषार। **गन्ध**—गोमूत्र या शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभकृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मसूरिका, विस्फोट, लोहितज्वर एवं सभी व्रण रोग में।

२३. एलाद्यरिष्ट •

पञ्चाशत्पलमेलाया वासायाः पलविंशतिम्।
मञ्जिष्ठां कुटजं दन्ती गुडूचीं रजनीद्वयम् ॥६०॥
रास्नामुशीरं मधुकं शिरीषं खदिरार्जुनौ।
भूनिम्बनिम्बवह्नींश्च कुष्ठं मधुरिकां तथा ॥६१॥
गृहीत्वा दिक्पलोन्मित्या जलद्रोणाष्टके पचेत्।
द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥६२॥
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम्।
चातुर्जातं त्रिकटुकं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥६३॥
मांसीं मुरां मुस्तकञ्च शैलेयं शारिवाद्वयम्।
पलप्रमाणतश्चात्र क्षिप्त्वा मासं निधापयेत् ॥६४॥
एलाद्यरिष्टो हन्त्येष विसर्पांश्च मसूरिकाम्।
रोमान्तिकां शीतपित्तं विस्फोटं विषमज्वरम् ॥६५॥

नाडीव्रणं व्रणं दुष्टं कासं श्वासञ्च दारुणम्।
भगन्दरोपदंशौ च प्रमेहपिडकास्तथा ॥६६॥

क्वाथ—१. छोटी इलायची २.५०० किलो, २. वासामूल १ किलो, ३. मंजीठ ५०० ग्राम, ४. कुटजत्वक् ५०० ग्राम, ५. दन्तीमूल ५०० ग्राम, ६. गुडूची ५०० ग्राम, ७. हल्दी ५०० ग्राम, ८. दारुहल्दी ५०० ग्राम, ९. रास्ना ५०० ग्राम, १०. खस ५०० ग्राम, ११. मुलेठी ५०० ग्राम, १२. शिरीषत्वक् ५०० ग्राम, १३. खदिरकाष्ठ ५०० ग्राम, १४. अर्जुनत्वक् ५०० ग्राम, १५. चिरायता ५०० ग्राम, १६. निम्बत्वक् ५०० ग्राम, १७. चित्रकमूल ५०० ग्राम, १८. कूठ ५०० ग्राम और १९. सौंफ ५०० ग्राम तथा क्वाथार्थ जल १०० लीटर लें जिससे अवशेष जल २५ लीटर रहे।

प्रक्षेप—धातकीपुष्प ८०० ग्राम तथा मधु १५ किलो लें।

१. तेजपात ५० ग्राम, २. छोटी इलायची ५० ग्राम, ३. दालचीनी ५० ग्राम, ४. नागकेशर ५० ग्राम, ५. सोंठ ५० ग्राम, ६. पीपर ५० ग्राम, ७. मरिच ५० ग्राम, ८.श्वेतचन्दन ५० ग्राम, ९. लालचन्दन ५० ग्राम, १०. जटामांसी ५० ग्राम, ११. मुरामंसी ५० ग्राम, १२. नागरमोथा ५० ग्राम, १३. छरीला ५० ग्राम, १४. श्वेतअनन्तमूल ५० ग्राम और १५. कृष्णअनन्तमूल ५० ग्राम लें।

छोटी इलायची से लेकर सौंफ तक के सभी द्रव्यों को मोटा यवकुट करें और बड़े कलईदार पीतल के टोप (पात्र) में १०० लीटर जल के साथ क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और दो मिट्टी के बड़े घड़े में प्रत्येक में १२$\frac{१}{२}$ लीटर इसको रखें। इन घड़ों में प्रत्येक में ७$\frac{१}{२}$ किलो मधु मिलावें। धातकीपुष्प को धूप में सुखाकर दोनों घड़ों में ४००-४०० ग्राम डालें। तेजपात से कृष्ण अनन्तमूल तक के सभी १५ द्रव्यों का अलग-अलग मोटा यवकुट करें। सभी को मिलावें और ३७५-३७५ ग्राम दोनों घड़ों में डालें। हाथ से घोल को अच्छी तरह मिला लें। मधु पूर्णरूपेण जल में घुल जाना चाहिए। इन घड़ों का मुख शराव से बन्द कर कपड़मिट्टी कर लें। निर्वात घर में इन घड़ों की तली में पुआल की या भूसी की गद्दी रखकर सन्धानार्थ छोड़ दें। २१ दिन के बाद परीक्षोपरान्त घड़े का मुख खोलें। तैयार अरिष्ट को कपड़े से छान लें और उस घड़े को साफ कर पुनः उसमें निथरने के लिए १५ दिन तक छोड़ दें। १५ दिनों के बाद अरिष्ट को धीरे-धीरे छान लें। तली में बैठी गाद को फेंक दें। छाने हुए अरिष्ट को बोतलों में भरें। ततः १ वर्ष बाद इस अरिष्ट का प्रयोग करें। इस 'एलाद्यरिष्ट' को १२ से २५ मि.ली. की मात्रा में बराबर जल मिलाकर भोजन के बाद दो बार पिलाने से विसर्प, मसूरिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, विस्फोट, विषमज्वर, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, कास, श्वास, भयंकर भगन्दर, उपदंश और प्रमेहपिडका रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **अनुपान**—शीतलजल मिलाकर। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभद्रव। **स्वाद**—तीक्ष्ण, मद्ययुक्त। **उपयोग**—मसूरिका, विसर्प, विस्फोट, भगन्दर, दुष्टव्रण आदि में।

मसूरिका रोग में पथ्य

पूर्वं लङ्घनवान्तिरेचनसिरावेधाः शशाङ्कोज्ज्वलाः
जीर्णाः षष्टिकशालयोऽपि चणका मुद्‌गा मसूरा यवाः।
सर्वेऽपि प्रतुदाः कपोतचटका दात्यूहक्रौञ्चादयो
जीवञ्जीवशुकादयोऽपि कुलकं काठिल्लमाषाढकम् ॥
कर्कोटं कदलं च शिग्रुरुचकं द्राक्षाफलं दाडिमं
मेध्यं बृंहणमन्नपानमखिलं कोलानि माषो रसः।
अक्ष्णोः सेकविधौ गवेधुमधुकोद्भूतं सुशीतोदकं
शम्बूकोदरकोषनीरमपि वा कर्पूरचूर्णानि वा ॥६८॥
पक्वे मुद्‌गरसोऽपि जाङ्गलरसः शालिञ्चशाकं घृतं
निर्गुण्डीदलयक्षधूपविहितो धूपो मृदुर्युक्तितः।
शश्वद्गोमयभस्म गुग्गुलुमथो शुष्के शिलापिष्टयो-
रालेपः पिचुमर्दपत्रनिशयोः शेषे व्रणोक्ताः क्रियाः ॥
इत्थं सर्वदशाविभागविहितं पथ्यं यथादोषतः
संयुक्तं मुदमातनोति नितरां नृणां मसूरीगदे ॥७०॥

मसूरिकारोग में पहले लंघन के बाद, वमन, विरेचन, सिरावेध कराना चाहिए। चन्द्र सदृश श्वेत एवं पुराना साठी तथा शालिचावल, चना, मूँग, मसूर, जौ, सभी प्रकार के प्रतुद (छिड़ककर दाना चुगने वाले) पक्षियों जैसे मुर्गा, कबूतर, गौरैया, चातक, क्रौञ्च, चकोर आदि पक्षियों के मांसरस, परवल, करैला, आषाढ़ महीने का फल, कर्कोटक (खेखसा), केला, सहिजन फली, बिजौरानिम्बु, द्राक्षा, मीठा अनारफल, मेध्य एवं बृंहण सभी प्रकार के अन्न-पान का सेवन, बेर तथा उड़द का यूष हितकर है। नेत्रों में शीतल जल परिषेचन गवेदुक और मुलेठी के शीतलक्वाथ से करना चाहिए। सुपक्व मूँग का यूष, जंगली पशु-पक्षियों के मांसरस, शालिञ्चशाक, घृत, निर्गुण्डीपत्र, राल एवं गुग्गुलु का धूपन तथा पूय युक्त मसूरिका पर हमेशा वन्योपल की राख छिड़कना, सूखी मसूरिका में निम्ब पत्र और हल्दी पीसकर लेप करना, अन्य सभी व्रणोपचार करना चाहिए। दोषानुसार पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए। उपर्युक्त पथ्यानुसार आचरण करने से मसूरिका रोगी को आराम मिलता है।

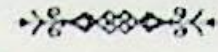
मसूरिका रोग में अपथ्य

रतं स्वेदं श्रमं तैलं गुर्वन्नं क्रोधमातपम्।

१. दात्यूह = चातक, मूर्गा; जीवञ्जीव = चकोर पक्षी।

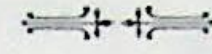
दुष्टाम्बु दुष्टपवनं विरुद्धान्यशनानि च ॥७१॥
निष्पावमालुकं शाकं लवणं विषमाशनम्।
कट्वम्लं वेगरोधञ्च मसूरीगदवांस्त्यजेत् ॥७२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां मसूरिकारोगाधिकारः ।



स्त्रीसम्भोग, स्वेदन, परिश्रम, तैल, भारी अन्न, क्रोध, धूप, दूषितजल, दूषितवायु, परस्पर विरुद्धान्न का भोजन, निष्पाव (शिम्बीबीज, राजमाष), आलू, शाक, लवण, विषम भोजन, कटु एवं अम्ल पदार्थों का सेवन तथा वेगों (मल-मूत्र, जृम्भादि वेगों) का रोकना आदि कार्य मसूरिका रोगी को छोड़ देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य मसूरिकारोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथ क्षुद्ररोगाधिकारः (६०)

समासेन[1] चतुश्चत्वारिंशत् क्षुद्ररोगा भवन्ति; तद्यथा—१. अजगल्लिका, २. यवप्रख्या, ३. अन्धालजी, ४. विवृता, ५. कच्छपिका, ६. वल्मीक, ७. इन्द्रवृद्धा, ८. पनसिका, ९. पाषाणगर्दभ, १०. जालगर्दभ, ११. कक्षा, १२. विस्फोटक, १३. अग्निरोहिणी, १४. चिप्प, १५. कुनख, १६. अनुशयी, १७. विदारिका, १८. शर्करार्बुद, १९. पामा, २० विचर्चिका, २१. रकसा, २२. पाददारिका, २३. कदर, २४ अलस, २५. इन्द्रलुप्त, २६. दारुणक, २७. अरूंषिका, २८. पलित, २९. मसुरिका, ३०. यौवनपिडका, ३१. पद्मिनीकण्टक, ३२. जतुमणि, ३३. मशक, ३४.चर्मकील, ३५. तिलकालक, ३६. न्यच्छ, ३७. व्यङ्ग ३८. परिवर्तिका, ३९. अवपाटिका, ४०. निरुद्धप्रकश, ४१. सन्निरुद्धगुद, ४२. अहिपूतन, ४३. वृषणकच्छ्र और ४४. गुदभ्रंश। (सु. नि. १३।३)

क्षुद्ररोगों की संख्या असंख्य है। तथापि महर्षि सुश्रुत ने निदान स्थान के प्रारम्भ में कहा है—'समासेन चतुश्चत्वारिंशत् क्षुद्ररोगा भवन्ति'। अर्थात् समास रूप में=संक्षेप रूप में ४४ क्षुद्र रोग होते हैं। इसी प्रकार अनेक आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में अन्य और नामों एवं लक्षणों से क्षुद्ररोगों की संख्या एवं गणना पृथक्-पृथक् की है। उसी प्रकार से आचार्य गोविन्ददास सेन ने भी क्षुद्र रोगों की संख्या ३६ कही है।

अजगल्लिका चिकित्सा (च.द.)

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत्।
शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥१॥

आम (अपक्व) अजगल्लिका रोग में पहले उक्त स्थान में जलौका लगाकर अशुद्ध रक्त को निकाल देना चाहिए। ततः शुक्तिभस्म, शुद्धस्फटिका एवं यवक्षार तीनों समभाग लेकर थोड़ा जल मिलाकर मर्दन करें और बार-बार उक्त स्थान पर लेप करें। ऐसा दो-तीन दिनों तक करने से अजगल्लिका रोग नष्ट हो जाता है।

अजगल्लिका में कण्टक वेधन (च.द.)

नवीनकण्टकार्याश्च कण्टकैर्वेधमात्रतः।
किमाश्चर्यं विपच्याशु प्रशाम्यन्त्यजगल्लिकाः ॥२॥

छोटी कण्टकारी के नवीन काँटे से अजगल्लिका में अनेक स्थानों पर विद्ध करने से अजगल्लिका पक जाती है तथा बाद में सूख कर नष्ट हो जाती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं हैं।

१. वृषमूलादिलेप (च.द.)

वृषमूलविशालाभ्यां लेपो हन्त्यजगल्लिकाम् ॥३॥

वासामूल और इन्द्रायणमूल को समभाग लें और पीसकर जल में घोलकर आग पर गरम करें और सुखोष्ण लेप करने से अजगल्लिका नष्ट हो जाती है।

२. क्षारयोग से अजगल्लिका पर लेप (च.द.)

कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् ॥४॥

अपक्क एवं कठिन अजगल्लिका पर क्षार योग का लेप करना चाहिए। इस तरह से २-३ दिनों तक क्षार का लेप करने से अजगल्लिका पककर फट जाती है। ततः व्रणवत् उपचार करना चाहिए।

अनुशयी चिकित्सा (च.द.)

श्लेष्मविद्रधिकल्पेन जयेदनुशयीं भिषक् ॥५॥

श्लेष्मविद्रधि की तरह (सिकतादि) रूक्ष स्वेदन कर्म के द्वारा अनुशयी रोग की चिकित्सा करनी चाहिए। जब अन्दर से पक जाय तो व्रणवत् चिकित्सा करनी चाहिए।

विवृतादि क्षुद्ररोग चिकित्सा (च.द.)

विवृतामिन्द्रविद्धाञ्च गर्दभीं जालगर्दभम्।
इरिवेल्लिं गन्धमालां जेयत्पित्तविसर्पवत् ॥
मधुरौषधसिद्धेन सर्पिषा शमयेद् व्रणम् ॥६॥

१. विवृता, २. इन्द्रविद्धा, ३. गर्दभी, ४. जालगर्दभ, ५. इरिवेल्लिका तथा ६. गन्धमाला—इन क्षुद्ररोगों की चिकित्सा पित्तज विसर्प की तरह करनी चाहिए तथा काकोल्यादिगण की मधुरौषधों के कल्क क्वाथ से साधित घृत से इनके व्रणों का उपचार करना चाहिए।

विदारिका चिकित्सा (च.द.)

रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः।
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥७॥

विदारिका क्षुद्रोग में पुनः पुनः रक्तमोक्षण, स्वेदन, अपतर्पण के द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए। ततः सहिजनत्वक् और देवदारुकाष्ठ समभाग लेकर सिल पर पीसें और गरम कर सुखोष्ण लेप करें।

१. समासेन = संक्षेपेण।

पनसिका-कच्छपिका की चिकित्सा (च.द.)

पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना भिषक् ।
साधयेत्कठिनानन्याच्छोथान् दोषसमुद्भवान् ॥८॥

विदारिका की तरह पनसिका और कच्छपिका क्षुद्ररोग की चिकित्सा करनी चाहिए। वातादि दोषोत्पन्न अन्य कठिन शोथों की चिकित्सा भी विदारिका की तरह ही करनी चाहिए।

अन्त्रालजी-पाषाणगर्दभ (च.द.)

अन्त्रालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभम् ।
सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् ।
कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥९॥

अन्त्रालजी, कच्छपिका तथा पाषाणगर्दभ रोग में पहले कफ-वात नाशक द्रव्यों के द्वारा स्वेदन करके देवदारु, मैनसिल और कूठ को समभाग में लेकर चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर सुखोष्ण लेप करना चाहिए। पाषाणगर्दभ में कफ-वातघ्न द्रव्यों का अन्य लेप लगाना चाहिए।

वल्मीक चिकित्सा (च.द.)

शस्त्रेणोद्धृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ।
मनःशिलाऽऽलभल्लातसूक्ष्मैलाऽगुरुचन्दनैः ॥१०॥
जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ।
वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुद्रवम् ॥११॥

वल्मीकरोग में शस्त्र से वल्मीक को पकड़कर क्षार एवं अग्निकर्म से उसके पूतिमांसादि को नष्ट कर दें (जला दें) तथा मैनसिल, हरताल, भल्लातक, अगुरु, रक्तचन्दन और चमेली पत्र के मिलित कल्क से साधित निम्बतैल से रोपण करना चाहिए।

निम्बतैल १ लीटर तथा कल्क के ६ द्रव्य प्रत्येक ४० ग्राम लेकर एक साथ पीसें। कल्क बनने पर इससे तैल साधन करें। इस तैल में ४ लीटर जल देकर तैल सिद्ध करें। इस तैल को दिन में ३-४ बार लेप करने से बहुत छिद्रों एवं बहुत पूयादि द्रव से युक्त वल्मीक नष्ट हो जाता है।

असाध्य वल्मीक

सशोथं व्रणगन्धश्च प्रवृद्धं मर्मसु स्थितम् ।
हस्तपादस्थितश्चापि वल्मीकं परिवर्जयेत् ॥१२॥

शोथ एवं दुर्गन्ध से युक्त व्रण, बढ़ा हुआ, मर्म स्थान पर और हाथ-पैर में उत्पन्न वल्मीक क्षुद्ररोग असाध्य माना जाता हैं।

पाददारी चिकित्सा (च.द.)

पाददारीषु च शिरां वेधयेत्तलशोधिनीम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नो तु पादौ चालेपयेन्मुहुः ॥
मधूच्छिष्टवसामज्जघृतक्षारैर्विमिश्रयेत् ॥१३॥

पाददारीरोग में पैर के ऊपर जाने वाली सिरा का वेधन कर अशुद्ध रक्त निकाल देना चाहिए। ततः स्नेहन-स्वेदन कर मोम, वसा, मज्जा, घृत एवं यवक्षार को एक कटोरी में मिलाकर मृद्वग्नि पर गरम करें। जब अच्छी तरह पिघल जाय तो उतार लें और सुखोष्ण इस मिश्रण का लेप करने से पाददारी (व्यवाय) रोग नष्ट हो जाता है।

३. गुडादिलेप ( )

गुडलवणघृतं चेत्तिन्तिडीयुक्तमेतद्
द्विगुणमिह विदध्यान्मूत्रमेकत्र कृत्वा ।
दिनकतिचिदथेदं किञ्चिदाशोष्य लेपात् ।
स्फुटितपदतलं स्यात्पद्मपत्राभमाशु ॥१४॥

गुड़, सैन्धवलवण, घृत, इमली के पक्वफल—प्रत्येक १०-१० ग्राम और गोमूत्र २० मि. ली. लें। सभी को एक साथ पीसकर पेस्ट (मलहर) जैसा बना लें तथा विपादिका (फटे पैरों) पर लेप करने से पैर कमलपुष्प जैसा कोमल हो जाता है।

४. सर्जादिमलहर (च.द.)

सर्जाख्यसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृतप्लुतम् ।
निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जनम् ॥१५॥

राल एवं सैन्धवलवण समभाग में लेकर अच्छी तरह पीसें। उस मिश्रण में समभाग मधु एवं घृत मिलाकर मर्दन करें। अब इस मिश्रण में सरसों तैल के साथ मर्दन करें। इस मलहर को फटे पैर (विपादिका) में लेप करने से पाददारी रोग नष्ट हो जाता है।

५. उपोदिकादि क्षारतैल (च.द.)

उपोदिकासर्षपनिम्बमोच-
कर्कारुकैर्वारुकभस्मतोये ।
तैलं विपक्वं लवणं सकल्कं
तत्पाददारीं विनिहन्ति शीघ्रम् ॥१६॥

पोई शाक, सरसों, निम्बत्वक्, कदली पत्र तथा ककड़ी-लता—इन सभी को समभाग में लेकर सुखा लें। पुनः लोहे की कड़ाही में जलाकर भस्म कर लें। इस भस्म को महीन छननी से छानकर चौगुने जल में घोलकर मोटे कपड़े से छान लें। अब इस क्षारीय घोल को समभाग तिल्ल तेल में मिला दें तथा चौथाई सैन्धवलवणचूर्ण मिलाकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर तैल को छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को प्रतिदिन ३-४ बार पाददारी में लेप करने से विपादिका रोग नष्ट हो जाता हैं।

६. अलसरोग चिकित्सा (च.द.)

अलसेऽम्लैश्चिरं सिक्तौ चरणौ परिलेपयेत् ।
पटोलारिष्टकासीसत्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः ॥१७॥

अलसरोग में पैरों को सुखोष्ण काञ्जी से प्रक्षालन कर निम्न लिखित कल्क का पाद लेप करें। ऐसा दिन में ३-४ बार करने से अलसरोग शान्त हो जाता है। लेपनार्थ कल्क द्रव्य यथा— पटोलपत्र, निम्बपत्र, कासीस और त्रिफला (समभाग) इनका चूर्ण करें तथा जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें।

७. करञ्जबीजादिलेप (च.द.)

करञ्जबीजं रजनी कासीसं मधुकं मधु।
रोचना हरितालञ्च लेपोऽयमलसे हितः ॥१८॥

१. करञ्जबीजमज्जा, २. हल्दी, ३. कासीस, ४. मुलेठी, ५. मधु, ६. गोरोचन तथा ७. हरिताल (समभाग) लें। इनमें से मधु छोड़कर सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और एक खरल में मधु मिलाकर मलहर जैसा बना लें। मधु आवश्यकतानुसार मिलाना चाहिए। इस मलहर का पैरों में लेप करने से अलसरोग में हितकारी है।

८. लाक्षादिलेप (च.द.)

लाक्षाऽभयारसालेपः कार्यं रक्तस्य मोक्षणम्।
बृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ॥
शिलारोचनकाशीशचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत् ॥१९॥

१. लाक्षारस और हरीतकीक्वाथ समभाग का अलस युक्त पैरों पर लेप करना चाहिए। उस स्थान की सिरा का व्यध कर अशुद्ध रक्त का मोक्षण करना चाहिए।

२. बृहती पञ्चाङ्ग के कल्क एवं क्वाथ से सिद्ध तिलतैल का उक्त स्थान पर लेप कर मन:शिला, गोरोचन और कासीसचूर्ण छिड़कना चाहिए।

कदररोग चिकित्सा (च.द.)

दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥२०॥

पैरो के मांसल भाग पर कील रूप में उत्पन्न कदर रोग को शस्त्र से काट कर या उखाड़ कर उस पर खूब गरम तैल लगाना चाहिए या अग्नि से जला देना चाहिए।

चिप्पचिकित्सा (च.द.)

चिप्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुत्कृत्याभ्यज्य तं व्रणम्।
दत्त्वा सर्जरसं चूर्णं बुद्ध्वा व्रणवदाचरेत् ॥२१॥

चिप्परोग में पहले गरमपानी से स्वेदन कर सड़े-गले मांस या विकृत नख को काटकर तैल लगा लें और उस पर राल चूर्ण छिड़क देना चाहिए।

९. हरिद्रा-हरीतकी लेप (च.द.)

स्वरसेन हरिद्राया पात्रे कृष्णायसेऽभयाम्।
घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्पं मुहुर्मुहुः ॥२२॥

काले लौह के पात्र में हल्दी स्वरस या क्वाथ डालें और उस में समूचा ३-४ हरड़ डालकर हाथ से घिसें तथा उसी कल्क का वारंवार चिप्प ग्रस्त प्रदेश पर लेप करें।

कुनखचिकित्सा (भा.प्र.)

नखकोटि[1]प्रविष्टेन टङ्कणेन न शाम्यति।
कुनखश्चेत्तदा भ्रातः शैलोऽपि प्लवते जले ॥२३॥

कुनखरोग में विकृतनख के अग्रभाग के ऊपर जल में पिसा हुआ टङ्कण कल्क का गाढ़ा लेप करने से यदि कुनख रोग ठीक नहीं हो तो हे भाई समझना चाहिए कि पर्वत जल में तैर रहा है।

अङ्गुलीवेष्ट चिकित्सा

काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः।
अङ्गुलीवेष्टकः पुंसो ध्रुवमाशु व्यपोहति ॥२४॥

अंगुलीवेष्टक रोग में गम्भारीवृक्ष के ७ कोमल पत्ते रोगाक्रान्त अंगुली पर लपेटकर बाँधने से निश्चय ही अंगुलीवेष्टक रोग नष्ट हो जाते हैं।

पद्मिनीकण्टक चिकित्सा (च.द.)

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकण्टके हितम्।
निम्बोदककृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते ॥२५॥

पद्मिनीकण्टक रोग में आकण्ठ निम्ब क्वाथ पिलाकर वमन कराना हितकर है। ततः निम्ब क्वाथ से सिद्ध घृत में विषम मात्रा में मधु मिलाकर पिलाने से बहुत लाभ होता है।

पद्मनालादि क्षारद्रव लेप (च.द.)

पद्मनालकृतः क्षारः पद्मिनीं हन्ति लेपनात्।
निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्त्तनं हितम् ॥२६॥

पद्मिनीकण्टकरोग में पद्मनाल (कमलपुष्पदण्ड) जलाकर क्षार प्राप्त करें। उस क्षार में जल मिलाकर लेप करने से अथवा निम्बपत्र और अमलतास के कोमल पत्रों को सिल पर महीन पीसकर लेप करने पद्मिनीकण्टक रोग नष्ट हो जाता है।

जालगर्दभ चिकित्सा (च.द.)

नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम्।
जालगर्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनाम् ॥२७॥

नीलीमूल और पटोलमूल समभाग लेकर उनका सूक्ष्म चूर्ण करें तथा बराबर घृत मिलाकर खरल में मर्दन करें। मलहम जैसा होने पर जालगर्दभरोग में लेप करने से तत्क्षण वेदना नष्ट हो जाती है।

---

१. नखकोटी = नखाग्रभागम्।

अहिपूतनक चिकित्सा (च.द.)

अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत्।
त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां धावनं सदा ॥२८॥

दूध पीने वाले बच्चों के गुद प्रदेश में उत्पन्न होने वाले व्रण को अहिपूतनक कहते हैं। पहले दूध पिलाने वाली माता (या छात्री) के दूध की विशुद्धि पित्त, कफ और स्तन्य शोधक द्रव्यों से करनी चाहिए। तत्पश्चात् त्रिफला तथा खदिर के क्वाथ से गुद व्रणों का प्रक्षालन करना चाहिए।

१०. करञ्जादि घृत (च.द.)

करञ्जत्रिफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम्।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥२९॥

करञ्जत्वक्, त्रिफला तथा कटुकी आदि तिक्त द्रव्यों के कल्क एवं क्वाथ से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर दूध के साथ मिलाकर पिलाना चाहिएं तथा रसाञ्जन को दूध में घोल-छानकर पिलाना चाहिए या रसाञ्जन को जल में घोलकर छान लें और इस घोल का गुद प्रदेश पर पुनः-पुनः लेप करें।

गुदभ्रंश चिकित्सा (च.द.)

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याशु प्रवेशयेत्।
प्रविष्टे स्वेदयेच्चापि बद्धं गोष्फणया भृशम् ॥३०॥

गुदभ्रंश रोग में बाहर निकले हुए गुद में तैल-घृत-वसा आदि जो भी स्नेह उस समय उपलब्ध हो उसे गुदा में लगावें और निःसृत गुद को दबाकर भीतर प्रवेश करा दें। ततः शीघ्र ही गोफणाकृति बन्ध बाँध दें।

११. पद्मिनीपत्रयोग (च.द.)

कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्कराऽन्वितम्।
एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥३१॥

जो व्यक्ति प्रतिदिन कोमल कमलपत्र को चीनी के साथ चबाकर खाता है उसे कभी भी गुदभ्रंश रोग नहीं होता है।

१२. वृक्षाम्लादिचूर्ण (च.द.)

वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीविश्वपाठायवाग्रजम् ।
क्षारेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्त्तोऽनलदीपनम् ॥३२॥

१. वृक्षाम्ल (कोकम), २. चित्रक, ३. चाङ्गेरी, ४. सोंठ, ५. पाठा और ६. यवक्षार (समभाग)—इनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। २ से ३ ग्राम की मात्रा में इस चूर्ण को तक्र के साथ प्रतिदिन २ बार सेवन करने से गुदभ्रंश रोग नष्ट हो जाता है और पाचकाग्नि की वृद्धि होती है।

गुदप्रवेशविधि (च.द.)

गुदञ्च गव्यवसया म्रक्षयेदविशङ्कितः।
दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः ॥३३॥

बाहर निकली गुदा (भ्रंश गुदा) को परिचारक अपनी अँगुलियों में गाय का घृत लगाकर ऊपर की ओर जोर से प्रवेश करा दें। ऐसा करने से दुष्प्रवेश गुदा भी शीघ्र ही प्रविष्ट हो जाती है। इसमें कोई शंका नहीं है।

१३. मूषिक वसा-मांस प्रयोग (च.द.)

मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक् प्रलेपनम्।
स्विन्नमूषिकमांसेनाथवा संस्वेदयेद् गुदम् ॥३४॥

गुदभ्रंशरोगी की गुदा में चूहे की वसा लगाकर बाहर निकले गुद को दबाकर ऊपर प्रवेश करा दें। अथवा चूहे का पकाया हुआ गरम मांस से बाहर निकली गुदा को आवेष्टित कर स्वेदन करें। ततः वैद्य अपनी अँगुलियों से दबाकर गुदा को भीतर प्रवेश करा दें।

चर्मकील-जतुमणि-मषक-तिलकालक चिकित्सा (च.द.)

चर्मकीलं जतुमणिं मषकांस्तिलकालकान्।
उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥३५॥

चर्मकील, जतुमणि, मषक एवं तिलकालक रोगों में यन्त्र से पकड़कर तीक्ष्ण शस्त्र से काट दें तथा क्षारयोग या अग्निकर्म (तप्त शलाका) से समूल जलाकर नष्ट कर दें।

१४. मषक (मस्सा) नाशक योग (च.द.)

रुवुनालात्तु चूर्णेन घर्षान्मषकनाशनः।
निर्मोकभस्मघर्षाद्वा मषः शान्ति व्रजेद् द्रुतम् ॥३६॥

मषक (मस्सा) रोग में पहले मस्सा स्थल पर चूना लगावें। ततः एरण्ड पत्र के कोमल दण्ड से धीरे-धीरे घिसें तो मषक नष्ट हो जाता है। अथवा—सर्पनिर्मोक (साँप का कञ्चुक) भस्म लगाकर एरण्डपत्र दण्ड से घिसने से मषक नष्ट हो जाता है।

युवानपिडका-न्यच्छ-नीलिका-
व्यङ्ग-शर्करा चिकित्सा (च.द.)

युवानपिडकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः ।
शिरावेधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यञ्जनैस्तथा ॥३७॥

युवानपिडका, न्यच्छ, नीलिका, व्यङ्ग और शर्करा रोगों में पहले सिरावेध करके विविध मुखवैवर्ण्यकर द्रव्यों का लेप, पञ्चवल्कलादि द्रव्यों से सुपाचित तैलों का अभ्यङ्ग करना चाहिए।

१५. तारुण्यपिडकाहरलेप (च.द.)

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडकापहः ॥३८॥

लोध्रत्वक्, धनियाँबीज और वच (समभाग) लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। इसी चूर्ण को प्रतिदिन जल के साथ मिलाकर लेप करने से युवानपिडका रोग नष्ट हो जाता है।

१६. तारुण्यपिडकाहरलेप-२ (च.द.)

तद्वद् गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनम्।
वमनञ्च निहन्त्याशु पिडकां यौवनोद्भवाम् ॥३९॥

उसी प्रकार गोरोचन और मरिचचूर्ण समभाग जल के साथ तारुण्यपिडका पर लेप करने से पिडकाएँ नष्ट हो जाती हैं। वमन कराने से भी यौवनपिडकाएँ नष्ट हो जाती हैं।

१७. व्यङ्गहरलेप (च.द.)

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका।
लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वखुरजा मसी ॥४०॥

१. अर्जुनत्वक्चूर्ण मधु के साथ पीसकर लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट होता है। अथवा—

२. मञ्जिष्ठाचूर्ण मधु के साथ पीसकर लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट हो जाता है। अथवा—

३. श्वेत घोड़े के खुर की मसी (कालीभस्म) बनाकर मक्खन के साथ मिलाकर लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट हो जाता है। इन तीनों में से किसी का भी उपयोग करें।

१८. व्यङ्गहरलेप

व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च ॥४१॥

व्यंगरोग हरणार्थ खरगोश के रक्त का लेप करने से व्यंगरोग नष्ट हो जाता है।

१९. मुखकान्तिवर्धकलेप-१ (च.द.)

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठाकुष्ठलोध्रप्रियङ्गवः।
वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ॥४२॥

१. लालचन्दन, २. मंजीठ, ३. कूठ, ४. लोध्रत्वक् ५. प्रियङ्गुफूल, ६. वटप्ररोह और ७. मसूर की दाल (समभाग)— इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर बकरी या गोदुग्ध के साथ पीसकर कपोलों पर लेप करने से व्यङ्गरोग नष्ट हो जाता है तथा मुख की शोभा बढ़ जाती है। इस लेप को धीरे-धीरे गालों पर रगड़ना भी चाहिए।

२०. मुखकान्तिवर्धकलेप-२ (च.द.)

केवलान्पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णाञ्छाल्मलिकण्टकान्।
आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥४३॥

सेमल (शाल्मली) वृक्ष के तीक्ष्ण काँटों को दूध में पीसकर लेप करने से केवल तीन दिनों में ही मुख कमलपुष्प जैसा सुशोभित हो जाता है।

२१. मुखकान्तिवर्धकलेप-३ (च.द.)

मसूरैः सर्पिषा भृष्टैर्लिप्तमास्यं पयोऽन्वितैः।
सप्तरात्राद् भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलप्रभम् ॥४४॥

मसूर की दाल को घी में भूनकर दूध के साथ सिल पर पीसें। मुख कपोलों पर इसका लेप करने से केवल सात रात्रि में मुख कमलपुष्प जैसा शोभायमान हो जाता है।

२२. मुखकान्तिवर्धकलेप-४ (च.द.)

कालीयकोत्पलामयदधिसरबदरास्थिमध्यफलिनीभिः।
लिप्तं भवति हि वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥४५॥

१. पीतवर्ण का सुगन्धित काष्ठ या दारुहरिद्रा, २. नीलकमलपुष्प, ३. कूठ, ४. दही की मलाई, ५. बदरीफल-मज्जा तथा ६. प्रियंगुफूल (समभाग) लें। इन छः द्रव्यों को सिल पर सूक्ष्म पीसकर ७ दिनों तक मुख पर लेप करने से मुख की कान्ति देदीप्यमान होकर चन्द्र सदृश सुन्दर हो जाती है।

२३. मुखकान्तिवर्धकलेप-५ (च.द.)

तुषारहितमसृणयवचूर्णसमयष्टीमधुकलोध्रलेपेन।
भवति मुखं परिनिर्जितचामीकरचारुसौभाग्यम् ॥

भूसी रहित मुलायम जौ का चूर्ण, मुलेठीचूर्ण और लोध्रचूर्ण उपर्युक्त तीनों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण समभाग में लेकर सिल पर जल के साथ पीसकर ८ दिनों तक मुख पर लेप करें तो मुख की शोभा सुवर्ण सदृश सुन्दर एवं चमकीली हो जाती है।

२४. मुखकान्तिवर्धकलेप-६ (च.द.)

रक्षोघ्नशर्वरीद्वयमञ्जिष्ठागैरिकाज्यबस्तपयः।
सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद्विधुबिम्बवद्विभाति ॥४७॥

१. पीली सरसोंचूर्ण, २. हल्दीचूर्ण, ३. दारुहल्दीचूर्ण, ४. मंजीठचूर्ण, ५. गैरिकचूर्ण, ६. गोघृत और ७. बकरी का दूध —इन्हें समभाग में लेकर सिल पर महीन पीसें और मुख पर ८ दिनों तक २-३ बार प्रतिदिन लेप करने से मुख की शोभा उदित चन्द्र के समान सुन्दर हो जाती है।

२५. मुखकान्तिवर्धकलेप-७ (च.द.)

परिणतदधिशरपुङ्खैः कुवलयदलकुष्ठचन्दनोशीरैः।
मुखकमलकान्तिकारी भृकुटीतिलकालकाञ् जयति ॥

१. खट्टादही, २. शरपुंखाचूर्ण, ३. कमलपुष्पचूर्ण, ४. कूठचूर्ण, ५. रक्तचन्दनचूर्ण तथा ६. खसचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें एक साथ अच्छी तरह से सिल पर पीसकर ८ दिनों तक प्रतिदिन ३-४ बार मुखमण्डल पर लेप करने से कमलपुष्प जैसी मुख की कान्ति हो जाती है। साथ ही भृकुटी और तिल-कालक जैसे क्षुद्ररोग भी नष्ट हो जाते हैं।

२६. पिडका-तिलकालकहरलेप (च.द.)

मातुलुङ्गजटासर्पिः शिला गोशकृतो रसः।
मुखकान्तिकरो लेपः पिडकातिलकालजित् ॥४९॥

१. बिजौरानिम्बुमूलचूर्ण, २. गोघृत, ३. मैनसिल तथा ४. गोबर रस—इन्हें समभाग में लेकर सिल पर सूक्ष्म पीसें और मुख पर लेप करें। इस लेप का प्रतिदिन ३ बार १५ दिनों तक लेप करने से मुख-पिडका एवं तिलकालक रोग नष्ट हो जाते हैं।

२७. व्यङ्गहरलेप (च.द.)

नवनीतगुडक्षौद्रकोलमज्जप्रलेपनम् ।
व्यङ्गजिद् वरुणत्वग्वा छागीक्षीरप्रपेषिता ॥५०॥

१. मक्खन, २. गुड़, ३. मधु और ४. बदरीफल मज्जाचूर्ण—इन चारों द्रव्यो को समभाग सिल पर पीसकर मुख पर लेप करने से व्यङ्गरोग नष्ट हो जाता है। अथवा—वरुण त्वक् चूर्ण को बकरी दूध के साथ सिल पर पीसकर मुख पर लेप करने से व्यङ्गरोग नष्ट हो जाता है।

२८. नीली-व्यङ्गादिहरलेप (च.द.)

जातीफलकल्कलेपो नीलीव्यङ्गादिनाशनः ।
सायञ्च कटुतैलेनाभ्यङ्गो वक्त्रप्रसाधनः ॥५१॥

जायफलचूर्ण को दूध या जल के साथ सिल पर पीसकर मुख पर लेप करने से नीली एवं व्यङ्गरोग नष्ट हो जाते हैं। सायंकाल मुख पर सरसोंतैल की मालिश करने मुख चमकीला हो जाता है।

२९. मुख-काष्र्ण्यहरलेप

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा प्रलेपयेत् ।
मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥५२॥

आक का दूध तथा हल्दीचूर्ण (समभाग) लेकर खरल में पीसकर मुख पर लेप करने से बहुत दिनों से उत्पन्न मुखकार्ष्ण्य क्षुद्ररोग नष्ट हो जाता है।

३०. अरूंषिका चिकित्सा (च.द.)

अरुंषिकायां रुधिरेऽवसिक्ते
शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा।
निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो
देयोऽश्ववर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥५३॥

अरूंषिका रोग में सिरावेध अथवा जलौका द्वारा दूषित रक्त को पहले निकाल देना चाहिए। ततः शिर को निम्बत्वक् क्वाथ से प्रक्षालन करके घोड़े की लीद (अश्वपुरीष) का रस और सैन्धवलवण मिलाकर लेप करना चाहिए।

३१. पिण्याकादिलेप (च.द.)

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य वा।
मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरूंषिकाम् ॥५४॥

पुराने तिल की खली और मुर्गे का पुरीष—दोनों समभाग लें और गोमूत्र के साथ सिल पर पीसकर मुण्डित शिर पर लेप करना चाहिए। कार्यारम्भ के पहले उस्तरे से सिर के बालों का मुण्डन करना चाहिए। इस लेप से शीघ्र ही अरूंषिका रोग नष्ट हो जाता है।

३२. अरूंषिकाहरलेप (च.द.)

अरूंषीघ्नं भृष्टकुष्ठचूर्णं तैलेन संयुतम् ॥५५॥

कुष्ठचूर्ण को तवा पर हल्का भूनकर तिलतैल में मिलाकर लेप करने से अरूंषिकारोग नष्ट हो जाता है। दोनों द्रव्य समभाग लेना चाहिए।

दारुणक चिकित्सा (च.द.)

दारुणे तु शिरां विध्येत् स्निग्धस्विन्नां ललाटजाम् ।
अवपीडशिरोबस्तीनभ्यङ्गांश्चावचारयेत् ॥५६॥

दारुणकरोग में पहले स्नेहन-स्वेदन करके ललाट की सिरा का वेधन करना चाहिए तथा उसके अशुद्ध रक्त को बाहर निकालना चाहिए। ततः अवपीडन नस्य, शिरोबस्ति, कफवात नाशक तैलों से अभ्यङ्ग करना चाहिए।

कोद्रवक्षार से प्रक्षालन (च.द.)

कोद्रवाणां तृणक्षारपानीयं परिधावने ॥५७॥

कोदो (कुधान्य) के पुआल (डण्ठल) को जलाकर तैयार किये क्षार के घोल से दारुणक व्रण का प्रक्षालन करना चाहिए।

३३. प्रियालादिलेप (च.द.)

कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ।
पियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः ॥
काञ्जिकस्थास्त्रिसप्ताहं माषादारुणकापहाः ॥५८॥

१. चिरौंजी, २. मुलेठीचूर्ण, ३. कूठचूर्ण, ४. उड़ददाल चूर्ण, ५. सैन्धवलवणचूर्ण और ६. मधु (समभाग) लें। इन्हें खरल में एक साथ पीसकर सिर में २१ दिनों तक लेप करने से दारुणक रोग नष्ट हो जाता है। अथवा—केवल उड़ददाल को काञ्जी में भिंगोकर सिल पर पीस लें और सिर पर लेप करने से २१ दिनों मे दारुणक रोग नष्ट हो जाता है।

३४. नीलोत्पलादिलेप (च.द.)

सह नीलोत्पलकेशरयष्टीमधुतिलैः सममामलकम् ।
चिरजातमपि शीर्षे दारुणरोगं शमं नयति ॥५९॥

१. नीलकमलफूलचूर्ण, २. नागकेशरचूर्ण, ३. मुलेठीचूर्ण, ४. तिलचूर्ण तथा ५. आमलाचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें जल के साथ सिल पर पीसकर लेप करने से सिर में उत्पन्न दारुणकरोग नष्ट हो जाता है।

इन्द्रलुप्त चिकित्सा (च.द.)

इन्द्रलुप्ते शिरां विद्ध्वा शिलाकासीसतुत्थकैः ।
लेपयेत्परितः कल्कैस्तैलञ्चाभ्यञ्जने हितम् ॥
कुटन्नटशिखीजातीकरञ्जकरवीरजैः ॥६०॥

इन्द्रलुप्तरोग में सिराओं का वेधन करके अशुद्ध रक्त को निकाल देना चाहिए। ततः मैनसिल, कासीस और तूतिया समभाग में लेकर जल के साथ पीसकर कल्क बनाकर सिर में लेप करें। तदनन्तर मोथाचूर्ण, चित्रकचूर्ण, चमेलीपत्र, करञ्ज-बीजचूर्ण और कनेरमूलचूर्ण (समभाग किन्तु कुल मिलाकर तिल तैल से चतुर्थांश) के कल्क से सिद्ध तैल का सिर में अभ्यङ्ग करें। ऐसा कुछ दिन करने से इन्द्रलुप्त रोग नष्ट हो जाता है।

३५. गुञ्जाफललेप (च.द.)

अवगाढपदञ्चैव प्रच्छयित्वा पुनः पुनः ।
गुञ्जाफलैश्शिरं लिम्पेत् केशभूमिं समन्ततः ॥६१॥

गम्भीर धातुगत इन्द्रलुप्तरोग में सिर के रुग्ण स्थान में उस्तरे (शस्त्र) से बार-बार हल्का प्रच्छन्न या पाछ कर अर्थात् लेखन कर गुञ्जाबीजचूर्ण को जल के साथ पीस कर लेप करने से इन्द्रलुप्त रोग नष्ट हो जाता है। अर्थात् जब-जब इन्द्रलुप्त प्रदेश में लेप करें, तब-तब लेखन करना चाहिए।

३६. हस्तिदन्तमसी-रसाञ्जनलेप (च.द.)

हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यञ्चैव रसाञ्जनम् ।
लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि ॥६२॥

हाथीदाँत की काली भस्म (मसी) १ भाग तथा रसाञ्जनचूर्ण १ भाग जल में घोलकर इन्द्रलुप्त प्रदेश में लेप करने से इन्द्रलुप्त में नष्ट हुए बाल पुनः निकल जाते हैं। इसके प्रयोग से जहाँ बाल नहीं होते हैं, उन स्थानों (जैसे पाणितल) में भी बाल उग जाते हैं। तो इन्द्रलुप्त रोग की तो बात ही क्या है।

३७. हस्तिदन्तमसी लेप

हस्तिदन्तमसीं कृत्वा तैलेन सह योजयेत् ।
हस्तेष्वपि प्रजायन्ते केशा नास्त्यत्र संशयः ॥६३॥

हाथीदाँत की काली भस्म को तिलतैल में मिलाकर पूर्ववत् इन्द्रलुप्त स्थान का लेखन कर लेप करने से १ सप्ताह में इन्द्रलुप्त प्रदेश के बाल पुनः निकल आते हैं। इसके प्रयोग से जहाँ पर बाल उगने की सम्भावना नहीं हो, वहाँ पर भी बाल निःसन्देह उग जाते हैं। जैसे इसके प्रयोग से हाथ की तलहथी पर भी बाल उग जाते हैं।

३८. भल्लातकादिलेप (च.द.)

भल्लातकंबृहतीफलगुञ्जामूलफलेभ्यस्त्वेकेन ।
मधुसहितेन विलिप्तं सरपतिलुप्तं शमं याति ॥६४॥

शुद्ध भिलावाचूर्ण, बृहतीफल और गुञ्जाबीजचूर्ण (समभाग) लें। गुञ्जाबीज या गुञ्जामूल दोनों में से एक लेना चाहिए। इन्हें मधु के साथ सिल पर पीसकर लेप करने से इन्द्रलुप्त रोग नष्ट हो जाता है।

३९. बृहत्यादिलेप (च.द.)

बृहतीफलरसपिष्टं गुञ्जाफलमिन्द्रलुप्तस्य ।
कनकदलनिघृष्टस्य सतोयं दातव्यं प्रच्छितस्य सदा ॥

इन्द्रलुप्तरोग से प्रभावित स्थल को धत्तूरपत्र से घिसकर बृहतीफल के रस में गुञ्जाफलचूर्ण को पीसकर लेप करें। इस प्रकार १५ दिनों तक लेप करने से इन्द्रलुप्त रोग नष्ट हो जाता है। लेप लगाने से पूर्व हमेशा धत्तूरपत्र से उक्त स्थान को घिसना चाहिए।

४०. मरिचचूर्ण का अवचूर्णन (च.द.)

घृष्टस्य कर्कशैः पत्रैरिन्द्रलुप्तस्य गुण्डनम् ।
चूर्णितैर्मरिचैः कार्यमिन्द्रलुप्तविनाशनम् ॥६६॥

इन्द्रलुप्त रोग से प्रभावित स्थल को कर्कश (खुरदरे) पत्रों से (पारिजात=हरसिंगार के पत्रों) खुरच (लेखन) कर उस स्थान पर सूक्ष्म मरिचचूर्ण छिड़क दें। ऐसा दिन में ३-४ बार करने से इन्द्रलुप्त रोग नष्ट हो जाता है।

४१. खल्लीनाशकलेप (च.द.)

छागक्षीररसाञ्जनपुटदग्धगजदन्तमसीलिप्ताः ।
जायन्ते सप्तदिनात् खल्ल्यामपि कुञ्चिताश्चिकुराः ॥

रसाञ्जनचूर्ण तथा हस्तिदन्तमसी (समभाग) लेकर बकरी के दूध में मर्दन कर खल्ली रोग से ग्रसित (अर्थात् खल्वाट) व्यक्ति के सिर में सात दिनों तक लेप लगाने से घुँघराले बाल उग जाते हैं।

४२. मधुकादिलेप (च.द.)

मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन ।
अचिराद्भवन्ति केशा घनदृढमूलायतानृजवः ॥६८॥

१. मुलेठीचूर्ण, २. नीलकमलचूर्ण, ३. मूर्वामूलचूर्ण, ४. तिलचूर्ण, ५. घृत, ६. गोदुग्ध और ७. हरा भृङ्गराज (समभाग) लें। इन्हें गोदुग्ध के साथ सिल पर पीसकर सिर में लेप करने से खल्वाट व्यक्ति के सिर में भी घने, मजबूत, लम्बे और कोमल बाल उग आते हैं।

केशरञ्जन योग

४३. त्रिफलादिलेप (च.द.)

त्रिफला नीलिनीपत्रं लौहं भृङ्गरजः समम् ।
अविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥६९॥

१. आमलाचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. बहेड़ाचूर्ण, ४. नीलीवृक्षपत्र, ५. लौहभस्म तथा ६. भृङ्गराज (समभाग) लें। इन्हें सिल पर भेड़ी के मूत्र के साथ पीसकर शिर पर लेप लगाने से केश काले हो जाते हैं।

४४. दृढ़मूल केशार्थ लेप

धात्र्याम्रमज्जलेपात्स्यात् स्थिरोरुस्निग्धकेशता ॥७०॥

आमलाचूर्ण और आम की गुठली के अन्दर की मज्जा को समभाग में सिल पर जल से पीसकर शिर में लेप करने से कुछ ही दिनों में केश दृढ़मूल, लम्बे एवं स्निग्ध हो जाते हैं।

४५. कपालरञ्जन योग (च.द.)

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लोहचूर्णं विनिक्षिपेत्।
ईषत्पक्वे नारिकेले भृङ्गराजरसान्विते ॥७१॥
मासमेकन्तु निक्षिप्य सम्यग्गर्त्तात्समुद्धरेत्।
ततः शिरो मुण्डयित्वा लेपं दत्त्वा भिषग्वरः ॥७२॥
संवेष्ट्य कदलीपत्रैर्मोचयेत्सप्तमे दिने।
क्षालयेत् त्रिफलाक्वाथैः क्षीरमांसरसाशिनः।
कपालरञ्जनञ्चैतत्कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥७३॥

एक अर्धपक्व नारियलफल लें। उसमें कील गाड़कर छेद कर दें। उसमें त्रिफलाचूर्ण १२ ग्राम, लौहभस्म १२ ग्राम और भृङ्गराजस्वरस ५० मि.ली. भर कर उसके छिद्र को आँटे से बन्द करें। जमीन में १ फीट लम्बा, चौड़ा एवं गहरा गड्ढा खोदें और उसमें औषधिपूरित नारियल को सीधा रखें (जिसमें नारियल के छिद्र वाला भाग ऊपर रहे) और ऊपर से मिट्टी भर दें। १ महीना के बाद गड्ढा से नारियल को निकालें। छिलके हटाकर अन्दर का मज्जा भाग जो द्रवित हो गया होगा खुरचकर निकाल लें। प्रयोग कर्ता (पलित रोगी) व्यक्ति के शिर के शेष बालों की अस्तुरे से हजामत करा लें अर्थात् मुण्डन करा लें। तत्पश्चात् उक्त नारियल मिश्रित औषधि का शिर पर लेप करें और कोमल कदली पत्र से शिर को आवृत कर सात दिनों तक उसी तरह छोड़ दें। ८वें दिन कदली पत्र को हटाकर त्रिफलाक्वाथ से शिर को अच्छी तरह धो लें। ७ दिनों तक केवल दूध और मांस रस का भोजन दें। यह कपालरञ्जन क्रिया बाल काला करने की उत्तम विधि है।

४६. उत्पलादि लेप (च.द.)

उत्पलं पयसा सार्द्धं मासं भूमौ निधापयेत्।
केशानां कृष्णीकरणं स्नेहनञ्च विधीयते ॥७४॥

नीलकमलपुष्प को गोदुग्ध के साथ सिल पर पीसें। उक्त कल्क को लौहपात्र में रखकर उसका मुख बन्द कर १ बित्ता जमीन के अन्दर गड्ढा खोदकर उसमें कल्क पूरित लौहपात्र को रखकर मिट्टी से गड्ढे को भर दें। १ महीना के बाद गड्ढे से लौह पात्र निकालकर अन्दर से सूखे कल्क को निकाल लें और उसे पुनः दूध के साथ पीसकर शिर पर लेप करें तो कुछ ही दिनों में ही शिर के बाल काले एवं मुलायम हो जाते हैं।

४७. भृङ्गपुष्पादिलेप (च.द.)

भृङ्गपुष्पं जपापुष्पं मेषीदुग्धप्रपेषितम्।
तेनैवालोडितं लौहपात्रस्थं भूम्यधः कृतम् ॥७५॥
सप्ताहादुद्धृतं पश्चाद् भृङ्गराजरसेन तु।
आलोड्याज्येन च शिरो वेष्टयित्वा वसेन्निशाम् ॥७६॥
प्रातस्तु क्षालनं कार्यमेवं स्यान्मूर्द्धरञ्जनम्।
एवं सिन्दूरबालाम्रशङ्खभृङ्गरसैः क्रिया ॥७७॥

फूल के साथ भृङ्गराज या भृङ्गराज का फूल १ भाग तथा जपा पुष्प १ भाग—दोनों को सिल पर भेंड़ी के दूध के साथ महीन पीसें तथा एक लौहपात्र में रखकर भेंड़ी के दूध में आलोडित करें। लौहपात्र का मुख बन्दकर जमीन में १ फीट लम्बा-चौड़ा-गहरा गड्ढा खोदें और उसमें औषधि पूरित लौहपात्र को रखकर मिट्टी से गड्ढा भर दें। ७ दिनों के बाद गड्ढे की मिट्टी हटाकर लौह पात्र को निकालें और पात्र खोलें। औषधि को निकाल कर भृङ्गराजस्वरस के साथ आलोडन करें तथा उसमें थोड़ा घी मिलावें। अब पलित रोगी के शिर उस्तरे से मुण्डन कराकर उक्त मिश्रण का शिर पर लेप करें। पुनः कदली पत्र से शिर को लपेटकर कपड़े से बाँधें। उसी अवस्था में रात्रि में शयन करें। प्रातः कदलीपत्र हटाकर त्रिफला के शीतल क्वाथ से शिर का प्रक्षालन करें। ७ दिनों तक लगातार इस प्रकार लेप करने से बाल काले हो जाते हैं।

इसी प्रकार सिन्दूर, कच्चे छोटे आम्रफल और शंखभस्म समभाग में लेकर भृङ्गराजस्वरस के साथ पीसकर पूर्व विधि के अनुसार शिर पर लेप करें तथा कोमल कदली पत्र से आच्छादित कर कपड़े से बाँधें और दूसरे दिन कदली पत्र हटाकर त्रिफला के शीतल क्वाथ से शिर का प्रक्षालन करने से पके बाल सम्यक्-तया काले हो जाते हैं।

४८. नरादि लेप

नरदग्धशङ्खचूर्णकाञ्जिकरससंयुतं हि सीसकं घृष्ट्वा।
लेपात्कचानर्कदलाबद्धाञ्छुभ्रान् करोति नीलतरान्॥

१. नीलीवृक्षत्वक्चूर्ण, २. शंखभस्म, ३. शुद्ध पारद तथा शुद्ध नाग (समभाग) लें। एक साफ खरल मे पारद रखें तथा एक लौहदर्वी में नाग को डालकर आग पर द्रवित करें। इसके बाद द्रवित नाग को पारद के खरल में डालकर शीघ्रता से पारद का मर्दन करें। १० मिनट के मर्दन से जब पारद एवं नाग चूर्ण रूप हो जाय तब उस में नीलीवृक्षत्वक्चूर्ण और शंखभस्म मिलाकर मर्दन करें। कुछ देर के बाद श्याववर्ण का चूर्ण हो जायेगा। अब उस मिश्रित चूर्ण में थोड़ी-सी काञ्जी डालकर मर्दन करें। पेस्ट जैसा होने पर पलित रोगी के शिर का मुण्डन

कराकर उसके शिर पर इस पेस्ट का लेप करें और कोमल अर्कपत्रों से शिर को आच्छादित कर कपड़े से अच्छी तरह लपेट दें। १०-१२ घण्टे के बाद त्रिफलाक्वाथ से शिर का प्रक्षालन करें। कुछ दिनों (७ दिनों) तक इस योग का प्रयोग करने से पके बाल नीलवर्ण अर्थात् कृष्ण हो जाते हैं।

विमर्श—नरादि लेप में नर (पुरुषशव) की भस्म लेना अधिक प्रासंगिक लगता है, किन्तु नीलीवृक्ष का भी कृष्णीकरण के प्रसंग में अनेक स्थलों पर प्रयोग होता है। अतः यहाँ भी नीलिका (नीलीवृक्ष) भी केश-कृष्णीकरणार्थ प्रयुक्त है, जो उचित प्रतीत होता है।

४९. लौहमलादिउद्वर्तन (च.द.)

लौहमलामलकल्कैः सजवाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी।
पलितानीह न पश्यति गङ्गास्नायीव नरकाणि ॥७९॥

शुद्ध मण्डूरचूर्ण, आमलाचूर्ण और जपापुष्प (समभाग) लें। इन्हें सिल पर एक साथ महीन पीस लें। थोड़ा-सा जल मिलाकर रात्रि में शिर पर लेप करें। कपड़े से शिर को लपेटकर सो जाय। प्रातः त्रिफला जल से शिर को धो लें तथा बाद में स्नान करें। ऐसा १ महीना तक प्रतिदिन करने से श्वेत केश सम्पूर्णतया काले हो जाते हैं। जैसे गंगास्नान के बाद मनुष्य नरक नहीं देखता है उसी तरह इस लेप के प्रयोग के बाद श्वेत केश नहीं दिखाई पड़ते हैं अर्थात् सभी केश काले हो जाते हैं।

५०. निम्बतैलप्रयोग-१ (च.द.)

निम्बस्य बीजानि हि भावितानि
भृङ्गस्ततो येन तथाऽशनस्य।
तैलन्तु तेषां विनिहन्ति नस्याद्
दुग्धाम्बुभोक्तुः पलितं समूलम् ॥८०॥

निम्बफलमज्जा (निम्बोली) १ किलो लेकर खरल में मर्दन करें। ततः भृङ्गराजस्वरस और असन (विजयसार) काष्ठ के क्वाथ से १-१ दिन भावना दें। सूखने के बाद इस भावित निम्बबीज से कोल्हूयन्त्र (Speller) द्वारा तैल निकाल लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे प्रतिदिन ३-३ बूँद दोनों नाकों में डालकर नस्य लें। ऐसा २-३ महीने तक प्रतिदिन करें। इस बीच केवल दूध-भात का ही सेवन करें। ऐसा करने से पके हुए बाल समूल कृष्णवर्ण के हो जाते हैं।

५१. निम्बतैलप्रयोग-२ (च.द.)

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव
नस्तो निषिक्तं विधिना यथावत्।
मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य
जराग्रदूतं पलितं निहन्ति ॥८१॥

निम्बतैल का नस्य १ मास तक प्रतिदिन २ बार लेने से तथा इस बीच केवल दुग्धाहार लेने से वृद्धावस्था का अग्रदूत सूचक पलित (सफेद बाल) रोग नष्ट हो जाता है।

५२. भृङ्गराज तैल (च.द.)

क्षीरात्समार्कवरसाद् द्विप्रस्थे मधुकात्पले।
तैलस्य कुडवं पक्वं तन्नस्यं पलितापहम् ॥८२॥

तिलतैल १८७ मि.ली (१ कुडव), गोदुग्ध १.५०० मि.ली., भृङ्गराजस्वरस १५०० मि.ली. और मुलेठी कल्क ४६ ग्राम—इन द्रव्यों से साधित तैल जिसे भृङ्गराजतैल कहते हैं, को प्रतिदिन दो बार ३-३ बूँद दोनों नाकों में डालकर नस्य लेने से पलित रोग नष्ट हो जाता है।

५३. शैलूतैलनस्य (च.द.)

काञ्जीपिष्टशेलुफलमज्जि सच्छिद्रलौहगे।
यदर्कतापात्पतति तैलं तन्नस्य प्रक्षणात् ॥८३॥
केशा नीलालिसङ्काशाः सद्यः स्निग्धा भवन्ति च।
नयनश्रवणग्रीवादन्तरोगांश्च हन्त्यदः ॥८४॥

शैलूफल=लिसोड़ा फल की बीज मज्जा को काञ्जी सें पीसकर लौहे की छननी में रखें। औषधियुक्त छननी को थाली जैसे पात्र में टेढ़ा रखकर तीक्ष्ण धूप में रख दें। धूप की गर्मी से तप्त होकर लिसोड़ाफलमज्जा का तैल टपककर थाली में जमा होगा, जिसे शीशी में सुरक्षित कर लें। इस तैल को प्रतिदिन २ बार १ महीना तक दोनों नाकों में ३-३ बूँद डालकर नस्य लेने से केश काले भौरे जैसा काला एवं स्निग्ध हो जाता है। इस नस्य से नेत्र, कर्ण, ग्रीवा एवं दन्तरोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—यदि इस विधि से तैलपात नहीं हो, तो लौह पात्र में जल भरें और उसी पात्र (हाँड़ी) में काञ्जी पिष्ट मज्जा डालकर उबालें। पात्र का मुख ढक दें। मज्जा का तैल जल की सतह पर तैरता रहेगा। उसे हाथ में लगाकर किसी कटोरे में हाथ से घिसकर तैल इकट्ठा करें। पुनः उसमें यदि जल आ गया हो तो जल को आग से जला लें और तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें।

वृषणकच्छवहिपूतना चिकित्सा

५४. कासीसादिलेप (च.द.)

कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः।
अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं वृषकच्छवहिपूतयोः ॥८५॥

१. कासीस, २. गोरोचन, ३. तुत्थ, ४. हरिताल और ५. रसाञ्जन (समभाग) लें। इन्हें काञ्जी के साथ खरल में पीसें। इस पिष्टि का वृषणकच्छु और अहिपूतना रोगों में प्रतिदिन लेप करने से दोनों रोग नष्ट हो जाते हैं।

शूकरदंष्ट्रक चिकित्सा

५५. रजन्यादिलेप (च.द.)

रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम्।
हन्ति विसर्पं लेपाद्वराहदशनाह्वयं घोरम् ॥८६॥

हल्दी तथा भृङ्गराजमूल (समभाग)—इन दोनों द्रव्यों को जल के साथ सिल पर पीसकर प्रतिदिन लेप करने से भयंकर विसर्प और शूकरदंष्ट्रक रोग नष्ट हो जाते हैं।

५६. नाडीच बीजकल्क (च.द.)

नाडीचबीजकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः।
शमयति शूकरदंष्ट्रं सदाहपाकज्वर घोरम् ॥८७॥

नाडीचबीज १२ ग्राम तथा गोघृत ४६ ग्राम लें। नाडीच बीज को पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः थोड़ा जल मिलाकर कल्क बना लें। अब इस कल्क को गोघृत में मिलाकर प्रतिदिन पीने से दाह-पाक और ज्वर आदि उपद्रवों से युक्त भयंकर शूकर दंष्ट्रक रोग नष्ट हो जाता है। विसर्पोक्त चिकित्सा शूकर दंष्ट्रक रोग में करें।

शूकरदंष्ट्रहरोपाय

विसर्पोक्तप्रतीकारः कार्यः शूकरदंष्ट्रके ॥८८॥

शूकरदंष्ट्र रोगी में विसर्परोगोक्त प्रतिकार करना लाभदायक होता है।

५७. चाङ्गेरीघृत गुदभ्रंशे (च.द.)

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् ।
घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥
शुण्ठीक्षारावत्र कल्कौ शिष्टन्तु द्रवमिष्यते ॥८९॥

गोघृत १ किलो लें।

क्वाथ—चाङ्गेरीस्वरस ४ लीटर, बदरीत्वक्क्वाथ ४ लीटर तथा खट्टा दही ४ किलो लें।

कल्क—सोंठ १२५ ग्राम और यवक्षार १२५ ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः चाङ्गेरीस्वरस डालें और सोंठ एवं यवक्षारचूर्ण को एक साथ पीसकर कल्क बना लें तथा घृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर बदरीत्वक्क्वाथ डालकर पुनः पाक करें। इसी तरह दही को मथकर तक्र जैसा बना लें और घृतपात्र में डालकर पुनः पाक करें। तक्र सूखने पर ४ ली. जल देकर पुनः पाक करें। जल सूखने पर घृतपाकविद् परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ३ से ६ ग्राम की मात्रा की में दूध के साथ सेवन करने से गुदभ्रंश रोग नष्ट हो जाता है।

५८. वर्णकघृत (मुखकान्तिवर्धनार्थ) (च.द.)

मधुकं चन्दनं कङ्गु सर्षपं पद्मकं तथा।
कालीयकं हरिद्रा च लोध्रमेभिश्च कल्कितैः ॥९०॥
विपचेद्धि घृतं वैद्यस्तत्पक्वं वस्त्रगालितम्।
पादांशं कुङ्कुमं सिक्थं क्षिप्त्वा मन्दानले पचेत् ॥९१॥
तत्सिद्धं शिशिरे नीरे प्रक्षिप्याकर्षयेत्ततः।
तदेतद्वर्णकं नाम घृतं वक्त्रप्रसादनम् ॥९२॥
अनेनाभ्यासलिप्तं हि बलीभूतमपि क्रमात्।
निष्कलङ्केन्दुबिम्बाभं स्याद्विलासवतीमुखम् ॥९३॥

१. मुलेठी, २. रक्तचन्दन, ३. कंगुधान्य (कौनी=कुधान्य), ४. सरसों, ५. पद्मकाष्ठ, ६. कालीयककाष्ठ, ७. हल्दी, ८. लोध्रत्वक् तथा ९. गोघृत १ किलो, १०. केशर १२५ ग्राम एवं ११. मोम १२५ ग्राम लें। सर्वप्रथम मुलेठी से लोध्रत्वक् तक के सभी ८ द्रव्य प्रत्येक ३१ ग्राम लें। इन्हें कूटकर चूर्ण करें ततः जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। मूर्च्छित घृत में कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर घृतपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान कर लें। इसके बाद केशर को गुलाबजल में पीसकर छने घृत में शीतल होने पर मिलावें तथा गरम अवस्था में ही मोम मिला दें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे वर्णकघृत कहते हैं। इस घृत का मुख पर लेप करने से व्यङ्ग, न्यच्छ, नीलिका आदि रोग नष्ट हो जाते हैं और विलासवती स्त्रियों का मुखमण्डल चन्द्रवत् कान्तिवाला हो जाता है।

५९. भृङ्गराजघृत (पलिते) (च.द.)

भृङ्गराजरसे पक्वं शिखिपित्तेन कल्कितम्।
घृतं नस्येन पलितं हन्यात्सप्ताहयोगतः ॥९४॥

गोघृत १८७ ग्राम, भृङ्गराजस्वरस ७५० मि.ली. और मयूर-पित्त ४६ ग्राम लें। इसे घृतपाक विधि (तैलमूर्च्छनादि) से मूर्च्छित घृत भृंगराजरस तथा कल्क रूप में मयूरपित्त मिलाकर घृत पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त चूल्हे से घृतपात्र को उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस भृङ्गराजघृत को १ सप्ताह तक प्रतिदिन २ बार २-२ बूँद नाकों में नस्य रूप में डालने से पलित रोग नष्ट हो जाता है।

६०. पटोलादि घृत (अहिपूतनायां) (च.द.)

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ।
पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रामप्यहिपूतनाम् ॥९५॥

गोघृत २०० ग्राम लें।

कल्क—१. पटोलपत्रचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकी-

चूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण और ५. रसाञ्जन (प्रत्येक १० ग्राम) लें। घृतपाक विधि से पहले घृत का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त पाँचों द्रव्यों का चूर्ण करें। ततः सिल पर जल के साथ पीसकर घृत में मिलावें और ८०० मि.ली. जल देकर मन्दाग्नि पर पाक करें। परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे यथानुपान पिलाने से अहिपूतना रोग नष्ट हो जाता है।

६१. क्षारघृत (मषक-तिलकालके)

मुष्ककं कुटजं गुञ्जां चित्रकं कदलीं वृषम्।
अर्कस्नुह्यावपामार्गमश्वमारं बिभीतकम् ॥९६॥
पलाशं पारिभद्रञ्च नक्तमालञ्च सन्दहेत्।
ततः प्रस्थं समादाय क्षारस्य षड्गुणाम्भसा ॥९७॥
त्रिःसप्तकृत्वो विस्राव्य पचेत्सर्पिस्तदम्बुना।
कल्कं क्षारत्रयं दत्त्वा नातितीव्रेण वह्निना ॥९८॥
क्षारसर्पिरिदं हन्यान्मषकं तिलकालकम्।
पद्मिनीकण्टकं चिप्पमलसं दद्रुसिधमनी ॥९९॥

१. घण्टापाढलवृक्षत्वक्, २. कुटजत्वक्, ३. गुञ्जापञ्चाङ्ग, ४. चित्रकमूल, ५. कदलीस्तम्भ, ६. वासापञ्चाङ्ग, ७. अर्कपञ्चाङ्ग, ८. थूहरपञ्चाङ्ग, ९. अपामार्गपञ्चाङ्ग, १०, कनेरमूलत्वक्, ११. बिभीतकफलदल, १२ पलाशत्वक्, १३. फरहदवृक्षत्वक् और १४. करञ्जमूलत्वक्—प्रत्येक द्रव्य १-१ किलो लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों को अच्छी तरह सुखा लें और लोहे की बड़ी कड़ाही में अच्छी तरह से जला लें। दूसरे दिन इसे छननी से छान लें। इस प्रकार जलाकर छानी हुई राख ७५० ग्राम लें। एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में उक्त राख और ४.५०० लीटर जल मिलाकर कपड़ा से छानकर निथरने के लिए उक्त पात्र को यूंही छोड़ दें। १२-१५ घण्टे के बाद उस पात्र का स्वच्छ एवं साफ जल किसी अन्य पात्र में डालकर पृथक् करें। १ किलो गोघृत को मूर्च्छित कर उसमें यह क्षारीय जल धीरे-धीरे मिला दें। तथा यवक्षार, सर्ज्जिक्षार और टंकणक्षार प्रत्येक ८० ग्राम लें और जल मिलाकर कल्क बना लें। घृत में क्षार कल्क भी मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृत को चूल्हे से उतारकर छान लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस क्षारघृत के प्रयोग से मषक, तिलकालक, पद्मिनीकण्टक, चिप्प, अलस, दद्रु और सिध्म रोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—इस क्षार घृत में क्षार की मात्रा अधिक है। अतः घृत-तैल का पाक करते समय स्नेह में अधिक फेनोद्गम होता है। अतः स्नेह गिरकर बर्बाद होने की सम्भावना है; साथ ही पाकोत्तर स्नेह साबुन जैसा गाढ़ा हो जाता है। इसलिए सावधानी से तैल पाक करें। यदि ऐसा हो जाय तो जल देकर उस स्नेह का पुनः पाक करना चाहिए। जल के ऊपर जो क्षार जमेगा जिसे बड़ी चम्मच से निकालते रहना चाहिए। अधिक क्षार निकलने के बाद तैल सामान्य हो जाता है।

६२. सहाचरघृत (न्यच्छादि रोगे)

सहाचरतुलाक्वाथे क्वाथे च दशमूलजे।
शिरीषस्य कषाये च घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥१००॥
कल्कान् दत्त्वा पञ्चकोलं कृमिघ्नं पटुपञ्चकम्।
क्षारत्रयं वृश्चिकालीं सिन्दूरमपि गैरिकम् ॥१०१॥
हन्यादेतद् घृतं न्यच्छं नीलिकां तिलकालकम्।
अङ्गुलीवेष्टकं पाददारीञ्च मुखदूषिकाम् ॥१०२॥

क्वाथ—१. सहचरपञ्चाङ्ग ५ किलो, २. दशमूलक्वाथ द्रव्य ५ किलो, ३. शिरीषत्वक् ५ किलो और ४. गोघृत ७५० ग्राम लें।

कल्क—१. पीपर, २. पीपरामूल, ३. चव्य. ४. चित्रकमूल, ५. सोंठ, ६. वायविडङ्ग, ७. सैन्धवलवण, ८. सौवर्चललवण, ९. सामुद्रलवण, १०. विडलवण, ११. औद्भिल्लवण, १२. यवक्षार, १३. सज्जिक्षार, १४. टङ्कणक्षार, १५. बिच्छू बूटी, १६. नागसिन्दूर और १७. गैरिक—प्रत्येक द्रव्य ११ ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः सहचरपञ्चाङ्ग को यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और मूर्च्छितघृत में डालकर पाक करें। पीपर से गैरिक तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बनावें। इस कल्क को भी घृत के साथ मिलाकर पाक करें। पूर्ववत् दशमूल को भी यवकुट कर १२ ली. जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छानकर घृतपात्र में मिलाकर पाक करें। इसी प्रकार शिरीषत्वक् का भी यवकुट कर क्वाथ करें तथा पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तब स्नेह-पाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत के प्रयोग से न्यच्छ, नीलिका, तिलकालक, अंगुलिवेष्टक, पाददारी एवं मुखदूषिकारोग नष्ट हो जाते हैं।

६३. कुङ्कुमादिघृत (नीलिकादिरोगे)

कुङ्कुमेन निशाभ्याञ्च कणया वह्निवारिणा।
घृतं पक्वं निराकुर्यान्नीलिकां मुखदूषिकाम् ॥१०३॥
सिध्मादींस्त्वग्गदान् सर्वान् व्याधीन्कफसमुद्भवान्।
शिरोऽर्त्तिं नाशयेदाशु लावण्यं जनयेत्परम् ॥१०४॥
जगतामुपकाराय दस्राभ्यां विहितन्त्विदम्।
पानेऽभ्यङ्गे तथा नस्ये युक्त्या योज्यं विचक्षणैः ॥१०५॥

गोघृत २५० ग्राम लें।

क्वाथ—चित्रकमूलक्वाथ १ लीटर लें।

कल्क—१. केशर, २. हल्दी, ३. दारुहल्दी एवं ४. पीपर—प्रत्येक १५ ग्राम लें। घृत का पहले मूर्च्छन करें। ततः १ किलो चित्रकमूल को यवकुट करें तथा ४ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई (१ लीटर) शेष रहने पर छानकर मूर्च्छितघृत में डालें। केशर छोड़कर पीपर एवं दोनों हल्दी का सूक्ष्म चूर्ण कर तीनों द्रव्यों को सिल पर पीसें और घृत के साथ कल्क-क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तब परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके प्रयोग से नीलिका, मुखदूषिका, सिध्म आदि त्वग्विकार के सम्पूर्ण रोग, शिरोरोग एवं कफ रोग नष्ट हो जाते हैं। मुख की सुन्दरता को प्रतिभाषित करता है। जगत् के कल्याणार्थ अश्विनी कुमारों ने इस घृत का निर्माण किया था। इस घृत का पान, अभ्यङ्ग तथा नस्य रूप में प्रयोग करना चाहिए।

६४. कुङ्कुमादितैल-१ (मुखकान्तिकर) (च.द)

कुङ्कुमं चन्दनं लाक्षा मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका।
कालीयकमुशीरञ्च पद्मकं नीलमुत्पलम् ॥१०६॥
न्यग्रोधपादाः प्लक्षस्य शुङ्गाः पद्मस्य केशरम्।
द्विपञ्चमूलसहितैः कषायैः पलिकैः पृथक् ॥१०७॥
जलाढकं विपक्तव्यं पादशेषमथोद्धरेत्।
मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा पत्तङ्गमधुयष्टिके ॥१०८॥
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत्।
अजाक्षीरं द्विगुणितं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥१०९॥
सम्यक् पक्वं परं ह्येतन्मुखवर्णप्रसादनम्।
नीलिकापिडकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥११०॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्काञ्चनसन्निभम्।
कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥१११॥

क्वाथ—१. केशर, २. रक्तचन्दन, ३. लाक्षा, ४. मंजीठ, ५. मुलेठी, ६. कालीयक चन्दन काष्ठ, ७. खस, ८. पद्मकाष्ठ, ९. नीलकमल, १० वटप्ररोह, ११. पाकड (प्लक्ष), १२ कमलकेशर प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम लें और १३. दशमूल—प्रत्येक द्रव्य भी ४६ ग्राम लें तथा जल ३ लीटर लें। परिभाषानुसार—केशर पाकान्त में स्नेह शीतल होने पर मिलाना चाहिए।

कल्क—१. मंजीठ, २. मुलेठी, ३. लाक्षा, ४. पतङ्ग (कुचन्दन), ५. मुलेठी—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम तथा ६. तिल तैल १८७ मि.ली. लेना चाहिए। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। केशर छोड़कर क्वाथ के सभी द्रव्यों का यवकुट कर ३ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर मूर्च्छित तैल में इस क्वाथ को मिलावें और कल्क के चारों द्रव्यों को पीसकर कल्क बना लें तथा तैल में डालकर मन्दाग्नि में पाक करें। जल सूखने पर ३७५ मि.ली. बकरी का दूध मिलाकर पुनः पकावें। दूध सूखने पर परिभाषानुसार सम्यक् पाकार्थ ७५० मि.ली. जल देकर फिर से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से तैल को छान लें तथा शीतल होने पर केशर का सूक्ष्म चूर्ण तैल में अच्छी तरह मिलावें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यह कुङ्कुमादितैल मुखवर्णप्रसादक है एवं नीलिका, पिडका, व्यङ्गादि रोग इसका अभ्यङ्ग करने से नष्ट हो जाते हैं। सात रात्रि तक इसके प्रयोग मात्र से मुख की कान्ति स्वर्ण के सदृश सुन्दर हो जाती है। इस तैल को श्री अश्विनी-कुमारों ने निर्मित किया था।

६५. कुङ्कुमादितैल-२ (मुखकान्तिकर) (च.द.)

कुङ्कुमं किंशुकं लाक्षा मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम्।
कालीयकं पद्मकं च मातुलुङ्गं सकेशरम् ॥११२॥
कुसुम्भं मधुयष्टी च फलिनी मदयन्तिका।
निशे द्वे रोचना पद्ममुत्पलञ्च मनःशिला ॥११३॥
काकोल्यादिसमायुक्तैरेतैरक्षसमैर्भिषक्।
लाक्षारसपयोभ्याञ्च तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥११४॥
कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्काञ्चनोपमम्।
करोति वदनं सद्यः पुष्टिलावण्यकान्तिदम्।
सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥११५॥

१. केशर, २. पलाशपुष्प, ३. लाक्षा, ४. मंजीठ, ५. रक्तचन्दन, ६. कालीयककाष्ठ (पीतचन्दन), ७. पद्मकाष्ठ, ८ बिजौरानिम्बुमूलत्वक्, ८. नागकेशर, १०. कुसुम्भफूल (बर्रे फूल), ११. मुलेठी, १२. प्रियंगुफल, १३. मेंहदीपत्र, १४. हल्दी, १५. दारुहल्दी, १६. गोरोचन, १७. रक्तकमल, १८. नीलकमल, १९. मैनसिल और २०. काकोल्यादिगण[1]—प्रत्येक द्रव्य १ कर्ष (१२ ग्राम) लें।

क्वाथ—लाक्षारस ३ लीटर, गोदुग्ध ३ लीटर तथा तिलतैल ७५० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः केशर छोड़कर पलाशपुष्प से लेकर काकोल्यादि गण के सभी द्रव्यों (प्रत्येक १२-१२ ग्राम) को १-१ कर्ष की मात्रा में लें। इन्हें कूटकर चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। तदनन्तर ६ गुने जल में लाक्षारस का निर्माण करें। अब लाक्षारस और कल्क को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। लाक्षारस सूखने

१. काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदामहामेदाच्छिन्नरुहाकर्कटशृंगीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौण्डरीकर्द्धिवृद्धिमृद्वीकाजीवन्त्यो मधुकं चेति। (सु.सू. ३८।३५)

पर गोदुग्ध मिलाकर पकावें। गोदुग्ध सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर केशर को अच्छी तरह पीसकर उक्त तैल के साथ मर्दन कर ठीक से मिला लें और काचपात्र में इस कुङ्कुमादितैल को संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग (मुखादि अङ्गों पर) करने से मुखाकृति सुवर्णमय देदीप्यमान हो जाती है। चेहरा पुष्ट होकर मुख सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है। यह तेल सौभाग्यजनक एवं वशीकरणार्थ उत्तम है।

६६. द्विहरिद्रादितैल (मुखकान्तिकर) (च.द.)

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकालीयककुचन्दनैः ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मपद्मककुङ्कुमैः ॥११६॥
कपित्थतिन्दुकप्लक्षवटपत्रैः पयोऽन्वितैः ।
लेपयेत्कल्कितैरेभिस्तैलञ्चाभ्यञ्जनं चरेत् ॥११७॥
पिप्लवं नीलिकां व्यङ्गांस्तिलकान्मुखदूषिकाम् ।
नित्यसेवी जयेत्क्षिप्रं मुखं कुर्यान्मनोरमम् ॥११८॥

१. हल्दी, २. दारुहल्दी, ३. मुलेठी, ४. कालीयक काष्ठ, ५. पीतचन्दन (कुचन्दन), ६. पुण्डरिया, ७. मंजीठ, ८. पद्मकाष्ठ, ९. कमलकेशर, १०. कैंतफलमज्जा (कपित्थ), ११. तिन्दुकपत्र, १२. प्लक्षपत्र (पाकड़) और १३. वटपत्र—प्रत्येक द्रव्य ५-५ ग्राम लें तथा १४. तिलतैल २५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः हल्दी से वटपत्र तक के सभी द्रव्यों को ५-५ ग्राम लेकर कूट-पीसकर दूध से पीसकर कल्क बना लें। कल्क को मूर्च्छिततैल में डालें। साथ ही १ किलो जल डालकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन इस तैल का स्थानिक अभ्यङ्ग करने से पिप्लव, नीलिका, व्यङ्ग, तिलकालक, मुखदूषिका आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मुख की कान्ति बढ़ाता है।

६७. मञ्जिष्ठादितैल (मुखकान्तिकर) (च.द.)

मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा मातुलुङ्गं सयष्टिकम् ।
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ॥११९॥
आजं पयस्तद्द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
नीलिकापिडकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥१२०॥
मुखं प्रसन्नोपचितं वलीपलितवर्जितम् ।
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसन्निभम् ॥१२१॥

१. मंजीठ, २. मुलेठी, ३. लाक्षा, ४. बिजौरानिम्बुमूलत्वक्, ५. यष्टिमधु—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम तथा ६. तिलतैल १८० मि.ली. और ७. गोदुग्ध ३७५ मि.ली. लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः मंजीठ से भारङ्गी तक के सभी छः द्रव्यों का चूर्ण कर सिल पर जल से पीसें और कल्क बनावें। मूर्च्छित तैल में कल्क और दूध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर ७५० मि.ली. जल मिलाकर पुनः पकावें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त चूल्हे से तैलपात्र को नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस मञ्जिष्ठादितैल का मुख एवं शिर में अभ्यङ्ग करने से नीलिका, पिडका तथा व्यङ्गरोग नष्ट हो जाते हैं। ७ रात्रि तक प्रयोग करने से मुख की कान्ति स्वर्णप्रभ हो जाती है।

६८. कनकतैल (मुखकान्तिकर) (च.द.)

मधुकस्य कषायेण तैलस्य कुडवं पचेत् ।
कल्कैः प्रियङ्गुमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलकेशरैः ॥१२२॥
कनकं नाम तत्तैलं मुखकान्तिकरं परम् ।
अभीरुनीलिकाव्यङ्गशोधनं परमार्च्चितम् ॥१२३॥

मुलेठीक्वाथ ७५० मि.ली. और तिलतैल १८७ मि.ली. लें।

कल्क—१. प्रियंगुफल ८ ग्राम, २. मंजीठ ८ ग्राम, ३. रक्तचन्दन ८ ग्राम, ४. कमलपुष्प ८ ग्राम तथा ५. नागकेशर ८ ग्राम लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः प्रियंगु आदि सभी पाँचों द्रव्यों का चूर्ण कर सिल पर जल से पीसें और कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में कल्क और ७५० मि.ली. जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त चूल्हे से पात्र को उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का मुख पर अभ्यङ्ग करने से अभीरु (जतुमणि), नीलिका, व्यङ्गादि रोग नष्ट हो जाते हैं तथा मुख की कान्ति बढ़ती है।

६९. सप्तच्छदादितैल

सप्तच्छदस्य वासायाः पिचुमर्दस्य चाम्भसा ।
तैलप्रस्थं पचेत्कल्कैर्निशादार्वीफलत्रिकैः ॥१२४॥
व्योषेन्द्रयवमञ्जिष्ठाखदिरक्षारसैन्धवैः ।
गोमूत्रस्याढकं दत्त्वा शनैश्च मृदुनाऽग्निना ॥१२५॥
पद्मिनीकण्टकं चिप्पं कदरं व्यङ्गनीलिके ।
जालगर्दभकञ्चैतत् त्वग्गदांश्च विनाशयेत् ॥१२६॥

१. सप्तपर्णवृक्षत्वक्, २. वासापञ्चाङ्ग और ३. निम्बत्वक्—इन सभी द्रव्यों को १-१ किलो लें। इन्हें यवकुट कर १२ लीटर जल में क्वाथ करें। ३ लीटर क्वाथ शेष रहने पर छान लें। तिल तैल ७५० मि.ली. को मूर्च्छित करें। ततः—

१. हल्दी, २. दारुहल्दी, ३. आमला, ४. हरीतकी, ५. बहेड़ा, ६. सोंठ, ७. पीपर, ८. मरिच, ९. इन्द्रयव, १०.

मंजीठ, ११. खदिरकाष्ठ, १२. यवक्षार तथा १३. सैन्धव—प्रत्येक द्रव्य १५ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में कल्क और ३ लीटर सप्तवर्णादिक्वाथ मिलाकर पाक करें। क्वाथ सूखने पर ३ ली. गोमूत्र धीरे-धीरे पकावें। गोमूत्र सूख जाय तो ३ लीटर जल मिलाकर पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से पद्मिनीकंण्टक, चिप्प, कदर, व्यङ्ग, नीलिका, जालगर्दभ जैसे क्षुद्ररोग नष्ट हो जाते हैं। तथा इस तैल के अभ्यङ्ग से त्वग् गत रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

७०. मूषिकाद्यतैल (च.द.)

क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकामन्त्रवर्जिताम्।
पक्त्वा तस्मिन् पचेत्तैलं वातघ्नौषधसंयुतम्।
गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्यङ्गात्प्रसाधयेत् ॥१२७॥

गोदुग्ध १५०० मि.ली. आन्त्ररहित चूहे का मांस ३७५ ग्राम, बृहत्पञ्चमूल तथा एरण्डादि वातघ्न द्रव्यों का यवकुट ३७५ ग्राम तथा जल ३००० मि.ली. लें। इन सभी द्रव्यों को एक बड़े पात्र में रखकर मन्दाग्नि से क्वाथ करें। चौथाई (१.५०० लीटर) शेष रहने पर छान लें। इसके बाद तिल तैल ३७५ मि.ली. लेकर उसका मूर्च्छन करें। ततः वातघ्न औषधों एरण्डादि (बृहत्पञ्चमूल) के ९० ग्राम चूर्ण को सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में उपर्युक्त दुग्धाधिक्वाथ १.५०० लीटर और कल्क ९० ग्राम मिलाकर पाक करें। जब दुग्धादि सूख जाय तब उसमें १.५०० लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को पीने या गुद प्रदेश में अभ्यङ्ग करने से गुदभ्रंश रोग नष्ट हो जाता है।

७१. द्विहरिद्रादितैल (च.द.)

हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलाऽरिष्टचन्दनैः ।
एतत्तैलमरूंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥१२८॥

कल्क—१. हल्दी, २. दारुहल्दी, ३. चिरायता, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. निम्बत्वक् और ८. लालचन्दन—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। तिलतैल ३७५ मि.ली. और जल १.५०० मि.ली. लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः हल्दी से लालचन्दन तक के सभी द्रव्यों का चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बनावें। मूर्च्छित तैल में कल्क और १.५०० लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से उतार लें। इस तैल को कपड़ा से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें ! शिर में अभ्यङ्ग करने से अरूंषिका रोग नष्ट हो जाता है।

७२. त्रिफलाद्यतैल (च.द.)

त्रिफलाऽयोरजोयष्टिमार्कवोत्पलशारिवैः ।
ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाद्रूक्षिकां जयेत् ॥१२९॥

तिलतैल ७५० मि.ली. लें।

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. लौहभस्म, ५. मुलेठी, ६. भृङ्गराज, ७. नीलकमल, ८. कृष्णसारिवा तथा ९. सैन्धवलवण—प्रत्येक द्रव्य २१ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः लौहभस्म से सैन्धव तक के सभी द्रव्यों को एक साथ चूर्ण करें। पुनः सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। अब इस कल्क और ३ लीटर जल को मूर्च्छित तिल तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से तैल को छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का शिंर में अभ्यङ्ग करने से रूक्षिका रोग नष्ट हो जाता है।

७३. चित्रकादितैल (च.द.)

चित्रकं दन्तिमूलञ्च कोषातकिसमन्वितम्।
कल्कं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशदद्रुविनाशनम् ॥१३०॥

१. तिलतैल १ लीटर, २. चित्रकमूल ८० ग्राम, ३. दन्तीमूल ८० ग्राम तथा ४. कड़वीनेनुआँबीज ८० ग्राम लें। प्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः चित्रकमूलादि तीनों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बना लें। यह कल्क और ४ लीटर जल मूर्च्छिततैल के साथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। शिर में इस तैल का अभ्यङ्ग करने से केशदद्रु रोग नष्ट हो जाता है।

७४. गुञ्जातैल (च.द.)

गुञ्जाफलैः पचेत्तैलं भृङ्गराजरसेन तु।
कण्डूदारुणजित्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥१३१॥

तिलतैल १ किलो, गुञ्जाफल २५० ग्राम और जल ४ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः गुञ्जाबीज का सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसें और कल्क बना लें। इस कल्क को ४ लीटर जल में घोलकर मूर्च्छिततैल में मिला लें और मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल के अभ्यङ्ग से कण्डू, दारुणक, कुष्ठ और शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं।

७५. भृङ्गराजतैल-१ (च.द.)

भृङ्गरजस्त्रिफलोत्पलशारि
लौहपुरीषसमन्वितकारि ।
तैलमिदं पच दारुणहारि
कुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ॥१३२॥

१. भृङ्गराजचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण, ५. नीलकमलचूर्ण, ६. अनन्तमूलचूर्ण, ७. मण्डूर-चूर्ण—प्रत्येक ३५ ग्राम और ८. तिलतैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम तैल का मूर्च्छन करें। ततः भृङ्गराजादि सभी चूर्णो को जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छित तैल में यह कल्क और ४ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का शिर में अभ्यंग करने से दारुणकरोग नष्ट हो जाता है तथा बाल काले, घुँघराले और मजबूत जड़ वाले हो जाते हैं।

७६. भृङ्गराजतैल-२

आनूपदेशसम्भूतं गृहीत्वा मार्कवं शुभम्।
सुधौतं जर्जरीकृत्य स्वरसं तस्य चाहरेत् ॥१३३॥
चतुर्गुणेन तेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
क्षीरपिष्टैरिमैर्द्रव्यैः संयोज्य मतिमान् भिषक् ॥१३४॥
मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रं चन्दनं गैरिकं बला।
रजन्यौ केशरञ्चैव प्रियङ्गु मधुयष्टिका ॥१३५॥
प्रपौण्डरीकं गोपी च पलिकान्यत्र दापयेत्।
सम्यक्पक्वं ततो नीत्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥१३६
केशपाते शिरोदुष्टे मन्यास्तम्भे गलग्रहे।
शिरःकर्णाक्षिरोगेषु नस्येऽभ्यङ्गे च योजयेत् ॥१३७॥
कुञ्चिताग्रानतिस्निग्धान् कचान्कुर्याद् बहूंस्तथा।
खालित्यमिन्द्रलुप्तञ्च तैलमेतद् व्यपोहति ॥१३८॥

जलीयप्रदेश का भृंगराजस्वरस ३ लीटर तथा तिलतैल ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. मंजीठचूर्ण, २ पद्मकाष्ठचूर्ण, ३. लोध्रचूर्ण, ४. रक्तचन्दनचूर्ण, ५. गैरिकचूर्ण, ६. बलामूलचूर्ण, ७. हल्दी-चूर्ण, ८. दारुहल्दीचूर्ण, ९. नागकेशरचूर्ण, १०. प्रियङ्गुचूर्ण, ११. मुलेठीचूर्ण, १२ पुण्डरियाकाष्ठचूर्ण और १३. श्यामालता—प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। उपर्युक्त सभी चूर्णों को सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। मूर्च्छिततैल में भृङ्गराजस्वरस और इस कल्क को मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। स्वरस सूखने पर ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का शिर पर मालिश करने एवं नस्य देने से खालित्य, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, शिर, कर्ण एवं नेत्ररोग में विशेष लाभ होता है। शिर में इस तैल के अभ्यङ्ग से केश घुँघराले, चिकने एवं सघन हो जाते हैं। यह तैल खालित्य और इन्द्रलुप्त रोगों का विशेष रूप से नाश करता है।

७७. प्रपौण्डरीकादितैल (च.द.)

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।
कार्षिकैस्तैलकुडवस्तैर्द्विरामलकीरसः ।
साध्यः सप्रतिमर्शः स्यात् सर्वशीर्षगदापहः ॥१३९॥

१. पुण्डरियाकाष्ठ, २. मुलेठी, ३. पिप्पली, ४. रक्तचन्दन तथा ५. नीलकमल (प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम) लें; ६. तिल तैल १८७ मि.ली. और ७. आमलकीस्वरस या क्वाथ ३७५ मि.ली लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः पुण्डरिया काठ आदि पाँचों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में कल्क और आमला का स्वरस या क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब आमलारस सूख जाय तो ७५० मि.ली. जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का दोनों नाकों में ३-३ बूँद प्रतिमर्श नस्य देने से सभी प्रकार के शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं।

७८. मालत्यादितैल (च.द.)

मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम् ।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम् ॥
इदं हि त्वरितं हन्ति दारुणं दारुणं नृणाम् ॥१४०॥

तिलतैल १ लीटर लें।

कल्क—१. चमेलीपत्र, २. कनेरमूलत्वक्, ३. चित्रकमूल तथा ४. करञ्जबीज लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः चमेलीपत्रादिकों का सूक्ष्म चूर्ण करके सिल पर जल से पीसें और कल्क बना लें। यह कल्क और ४ लीटर जल दोनों मूर्च्छित तैल में घोलकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से इन्द्रलुप्त एवं दारुणकरोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

७९. स्नुह्यादितैल (च.द.)

स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो लाङ्गली विषम्।
मूत्रमाजं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥१४१॥

सिद्धार्थं तीक्ष्णतैलश्च गर्भं दत्त्वा विचक्षणः।
वह्निना मृदुना पक्वं तैलं खालित्यानाशनम् ॥१४२॥
कूर्मपृष्ठसमानाऽपि रुज्या या रोमतस्करी।
दिग्धा साऽनेन जायेत ऋक्षशारीरलोमशा ॥१४३॥

१. थूहर का दूध, २. अर्कदूध, ३. भृङ्गराज, ४. कलिहारीमूल, ५. वत्सनाभविष, ६. गुञ्जा, ७. इन्द्रवारुणी, ८. पीली सरसों और ९. ज्योतिष्मतीफल—प्रत्येक द्रव्य २८ ग्राम लें; १०. तिलतैल १ लीटर, ११. बकरी का मूत्र २ लीटर तथा १२. गोमूत्र २ लीटर लें। सर्वप्रथम सरसोतैल का मूर्च्छन करें। ततः काष्ठौषधों का चूर्ण करें और सभी को सिल पर पीसकर कल्क बनावें। मूर्च्छिततैल में कल्क मिलाकर बकरी का मूत्र एवं गोमूत्र को थोड़ा-थोड़ा डालकर पाक करें। जब दोनों मूत्र सूख जाय तो मूत्र का सम्यक् पाक हेतु ४ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में तैल को संग्रहीत करें । रोमतस्करी=खल्वाट रोग में बाल झड़ जाने पर शिर कच्छप की पीठ जैसा हो जाता है। ऐसे चिकने शिर वाले व्यक्ति के शिर में अभ्यङ्ग करने से भालू के शरीर जैसे खूब घने एवं काले बाल हो जाते हैं। तीक्ष्णतैलं=कटुतैलम्।

८०. आदित्यपाक गुडूचीतैल (च.द.)

वटावरोहकेशिन्योश्चूर्णेनादित्यपाचितम् ।
गुडूचीस्वरसे तैलमभ्यङ्गात् केशरोहणम् ॥१४४॥

१. वटप्ररोह (वरोहर) १२५ ग्राम, २. जटामांसी १२५ ग्राम, ३. तिलतैल १ लीटर तथा गुडूचीस्वरस ४ लीटर लें। सर्वप्रथम वटप्ररोह और जटामांसी को कूट-पीसकर कल्क बना लें। एक बड़ी थाली में या परात या चौड़ी ट्रे में तैल, गुडूचीस्वरस एवं वटप्ररोह का कल्क—तीनों का मिश्रण करके वैसाख महीने की तीक्ष्ण धूप में २०-२५ दिन तक रखें। जब सूर्य की गर्मी से गुडूचीस्वरस सूख जाय, केवल तैल बचे तो कपड़ा से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन इस तैल की शिर में मालिश करने से गंजों के शिर में भी बाल उग जाते हैं।

८१. चन्दनादितैल (च.द.)

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम्।
कान्ता वटावरोहश्च गुडूचीबिसमेव च ॥१४५॥
लौहचूर्णं तथा केशा शारिवे द्वे तथैव च।
मार्कवस्वरसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥१४६॥
शिरस्युपचिताः केशा जायन्ते घनकुञ्चिताः।
स्निग्धाश्च दृढमूलाश्च तथा भ्रमरसन्निभाः॥
नस्येन कालपलितं निहन्यात्तैलमुत्तमम् ॥१४७॥

१. लालचन्दन, २. मुलेठी, ३. मूर्वामूल, ४. आमला, ५. हरीतकी ६. बहेड़ा, ७. नीलकमल, ८ प्रियङ्गुफूल, ९. वटप्ररोह, १०. गुडूची, ११. कमलनाल, १२ लौहभस्म, १३. जटामांसी, १४. श्वेतअनन्तमूल और १५. कृष्ण अनन्तमूल—प्रत्येक द्रव्य १६ ग्राम लें; १६. तिलतैल १ लीटर तथा १७. भृङ्गराजस्वरस ४ लीटर लें। सर्वप्रथम तिल तैल का मूर्च्छन करें। लालचन्दन से कृष्णअनन्तमूल तक के सभी १५ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब तैल में मूर्च्छित कल्क और भृङ्गराजस्वरस मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चन्दनादितैल का शिर में अभ्यङ्ग करने एवं नस्य लेने से शिर के बाल घने एवं घुँघराले, चिकने तथा चमकदार भौंरे के समान और दृढ़मूल अर्थात् मजबूत हो जाते हैं। साथ ही अकाल एवं सकाल बाल झड़ने वाला रोग भी नष्ट हो जाता है।

८२. यष्टिमध्वादितैल (च.द.)

तैलं सयष्टीमधुकैः क्षीरे धात्रीफलैः शृतम्।
नस्ये दत्तं जनयति केशाञ्श्मश्रूणि चाप्यथ ॥१४८॥

१. तिलतैल १ लीटर, २. गोदुग्ध ४ लीटर; ३. यष्टिमधु चूर्ण और ४. आमलाचूर्ण १२५-१२५ ग्राम लें। तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः मुलेठी एवं आमलाचूर्ण को जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इसके बाद मूर्च्छिततैल में कल्क और गोदुग्ध डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब दूध गाढ़ा हो जाय तो दूध एवं कल्क के सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जब जलयांश सूख जाय तो स्नेहपाक परीक्षाविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का प्रतिदिन शिर में अभ्यङ्ग एवं नस्य रूप में प्रयोग करने से दाढ़ी, मूँछ एवं शिर के बाल पुनः कृष्ण तथा सघन उत्पन्न हो जाते हैं।

८३. महानीलतैल (च.द.)

आदित्यवल्ल्या मूलानि कृष्णशैरीयकस्य च।
सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णशणस्य च ॥१४९॥
मार्कवः काकमाची च मधुकं देवदारु च।
पृथग्दशपलांशानि पिप्पल्यस्त्रिफलाऽञ्जनम् ॥१५०॥
प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा लोध्रं कृष्णागुरूत्पलम्।
आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥१५१॥
नीली भल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका।
सोमराज्यशनः शस्त्रं कृष्णौ पिण्डीतचित्रकौ ॥१५२॥
पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्योराम्रजम्बूफलानि च।
पृथक् पञ्चपलैर्भागैः सुपिष्टैराढकं पचेत् ॥१५३॥

बिभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् ।
कुर्यादादित्यपाकं वा यावच्छुष्को भवेद्रसः ॥१५४॥
लौहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमुपयोजयेत् ।
पाने नस्यक्रियायाञ्च शिरोऽभ्यङ्गे तथैव च ॥१५५॥
एतच्चक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत् ।
महानीलमिति ख्यातं पलितघ्नमनुत्तमम् ॥१५६॥

१. हुरहुरमूल, २. नीलपुष्पसहचर, ३. कृष्णतुलसीपत्र, ४. कृष्णशणबीज, ५. भृङ्गराज, ६. काकमाची (मकोय), ७. मुलेठी, ८. देवदारु—प्रत्येक द्रव्य ५०० ग्राम; ९. पीपर, १०. आमला, ११. हरीतकी, १२. बहेड़ा, १३. रसाञ्जन, १४. पुण्डरियाकाष्ठ, १५. मंजीठ, १६. लोध्रत्वक्, १७. कृष्ण अगुरु, १८. नीलकमल, १९. कच्चा आम्रस्थि, २०. कमलमूल के नीचे का पंक, २१. कमलनाल, २२. रक्तचन्दन, २३. नीलीमूल, २४. शुद्ध भल्लातक, २५. कासीस, २६. मेंहदी, २७. बाकुची, २८. असन (विजयसारकाष्ठ), २९. शस्त्र को शाण देते समय उनसे निकलने वाला चूर्ण (लौहचूर्ण), ३०. कृष्णमदनफल, ३१. चित्रकमूल, ३२. अर्जुनपुष्प, ३३. गम्भारीपुष्प, ३४. कच्चा आमफल (टिकोरा) तथा ३५. जामुन बीज—पीपर से जामुनबीज तक के सभी २७ द्रव्य प्रत्येक २५० ग्राम (पाँच-पाँच-पल) लें; ३६. बहेड़ाफलबीजमज्जातैल ३ लीटर (१ आढक) और ३७. आमलास्वरस १२ लीटर लें। सर्वप्रथम हुरहुरमूल से जामुनबीज तक के सभी ३५ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें और आमला का स्वरस या क्वाथ १२ लीटर बना लें। अब एक बड़े लौहपात्र में बिभीतक का तैल-कल्क-क्वाथ तीनों मिलाकर वैशाख मास की तीव्र धूप में १ महीना तक रखें। गर्मी से पक्व होकर जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त कपड़ा से छान लें। छानते समय यह ध्यान दीजिए कि कल्क में जलीयांश है या नहीं, यदि थोड़ा भी जल कल्क में है तो कल्क को दूसरे पात्र में निचोड़ें तथा उस पात्र को अलग से धूप में सुखा लें। कपड़ा से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'महानीलतैल' का पान, नस्य तथा शिरोऽभ्यङ्ग रूप में प्रयोग करने से शिर एवं नेत्र के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। यह तैल चक्षुष्य एवं आयुष्य है तथा पलितरोग में अत्युपयोगी है।

८४. चन्द्रप्रभारस

चन्द्रप्रभां तुगाक्षीरी सैन्धवञ्च शिलाजतु ।
कौशिकञ्चाक्षमानन्तु हेमारं रौप्यमभ्रकम् ॥१५७॥
माक्षिकं शाणमात्रञ्च मधुना परिमर्दयेत् ।
ततो द्विवल्लमानेन वटिकाः परिकल्पयेत् ॥१५८॥
अनुपानविशेषण योजितोऽयं महारसः ।
सर्वान् क्षुद्रगदान् हन्ति प्रमेहानपि दुस्तरान् ॥१५९॥
वातव्याधीनशेषांश्च पित्तजान् कफसम्भवान् ।
चिरप्रणष्टमग्निञ्च दीपयेज्जनयेद्बलम् ॥१६०॥

१. कर्पूर १२ ग्राम, २. वंशलोचन १२ ग्राम, ३. सैन्धवलवण १२ ग्राम, ४. शुद्ध शिलाजीत १२ ग्राम, ५. शुद्ध गुग्गुलु १२ ग्राम, ६. स्वर्णभस्म ३ ग्राम, ७. पीतलभस्म ३ ग्राम, ८. रजतभस्म ३ ग्राम, ९. अभ्रकभस्म ३ ग्राम, १० स्वर्णमाक्षिकभस्म ३-३ ग्राम तथा ११. मधु (यथावश्यक) लें। एक साफ खरल में सभी द्रव्यों को मर्दन करें और मधु की भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन करें और २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'चन्द्रप्रभारस' का अनुपान-भेद से सभी क्षुद्र रोगों में प्रयोग करना चाहिए। यह भयंकर प्रमेहों, सम्पूर्ण वातव्याधि, सभी कफ एवं सभी पित्त रोगों का नाश करता है तथा चिरकाल से नष्ट हुई अग्नि (मन्दाग्नि) और बल को बढ़ाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **गन्ध**—शिलाजतु (गोमूत्र) गन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—लवण एवं मधुर। **उपयोग**—सभी क्षुद्र रोगों में, सभी वात-कफ-पित्त रोगों एवं अग्निमांद्य में।

८५. अमृताङ्कुरवटी

अमृतं पारदं गन्धं लौहमभ्रं शिलाजतु ।
गुञ्जामात्रां वटीं कुर्यान्मर्दयित्वाऽमृताम्भसा ॥१६१॥
एषाऽमृताङ्कुरवटी पीता धात्र्यम्भसा सह ।
क्षुद्ररोगानशेषांस्तु गदान् पित्तास्त्रकोपजान् ॥१६२॥
ज्वरं जीर्णं प्रमेहञ्च कार्श्यमग्निक्षयं तथा ।
नाशयेज्जनयेत्पुष्टिं कान्तिं मेधां शुभां मतिम् ॥१६३॥

१. शुद्ध वत्सनाभविषचूर्ण, २. शुद्ध पारद, ३. शुद्ध गन्धक, ४. लौहभस्म, ५. अभ्रकभस्म और ६. शुद्ध शिलाजीत (समभाग) लें। सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर कज्जली बना लें। ततः उसी कज्जली के साथ अन्य विष—लौहभस्मादि द्रव्यों को एक साथ मिलाकर गुडूचीस्वरस की भावना देकर १२५ मि.ली. ग्राम (१-१ रत्ती) की वटी बना लें तथा सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'अमृताङ्कुरवटी' को १-१ वटी आमलकीस्वरस या क्वाथ से सेवन करने से समस्त क्षुद्ररोग, पित्त एवं रक्त प्रकोप जन्य समस्त रोग, जीर्णज्वर, प्रमेह, कृशता और अग्निमांद्यरोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से शरीर की पुष्टि, कान्ति, मेधाशक्ति और बुद्धि बढ़ती है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—आमलकीस्वरस या क्वाथ से। **गन्ध**—शिलाजतु (गोमूत्र) गन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**— सम्पूर्ण क्षुद्ररोगों एवं समस्त पित्त एवं रक्त रोगों, जीर्णज्वर, प्रमेह एवं अग्निमांद्य में।

शय्यामूत्ररोग चिकित्सा

कृतमूत्रार्द्रभूभागमृदमाकृष्य खोलके।
सम्भर्ज्य मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेन्मूत्रितं जनम्।
शय्यायां मूत्ररोधः स्यान्मूत्रितस्य न संशयः ॥१६४॥

जिस व्यक्ति को बिछावन पर सोये-सोये निद्रावस्था में पेशाब हो जाता है, उसकी चिकित्सा हेतु—उस बिछावन के नीचे की मूत्रार्द्र गीली मिट्टी २०-२५ ग्राम लेकर तवा पर हल्का भून लें। अब उस भूनी मिट्टी को खरल में पीसकर शीशी में संग्रह करें। २ से ३ ग्राम इस भूनी मिट्टी के चूर्ण में ३ ग्राम मधु और ४ ग्राम घी मिलाकर चटाने से शय्यामूत्रत्यागरोग कुछ ही दिनों में नष्ट हो जाता है।

शय्यामूत्र में

शय्यामूत्रविनाशाय बिम्बीमूलभवो रसः।
अहिफेनप्रयोगोऽपि दृष्टः सद्यः फलप्रदः॥१६५॥

त्रिकोललता के मूल का स्वरस या क्वाथ २५ मि.ली पिलाने से शय्यामूत्र बन्द हो जाता है। ८ दिनों तक इसका प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार शुद्ध अफीम ६० मि.ग्रा. की मात्रा में दूध में घोलकर पिलाने से २-४ दिनों में ही शय्यामूत्र रोग नष्ट हो जाता है। यह प्रयोग सद्यो दृष्ट है।

लोमशातन (पातन) विधि

लोमपातनलेप

तप्ताम्भसा सुधां तालं पिष्ट्वा द्वयमनुत्तमम्।
लेपनं विस्मयकरं सत्वरं लोमशातनम् ॥१६६॥

चूना कली (टुकड़े) १ भाग तथा हरताल १ भाग—दोनों को गरम जल के साथ पीसकर बालों में लेप करने से तुरन्त ही बाल आश्चर्य रूप से गिर जाते हैं।

लोमपातनलेप

कदल्याः स्वरसैरेव दग्धं शङ्खं तु पेषितम्।
सार्द्धं तुल्येन तालेन लेपितं लोमशातनम् ॥१६७॥

एक बार पुट देकर दग्ध किये हुए शंख के टुकड़े को केले के स्तम्भ स्वरस में निर्वापित करें। शंख की मात्रा के बराबर हरताल मिलाकर उस कदली रस से दोनों को भावना दें। उस पिसे हुए शंख एवं हरताल का बालों पर लेप लगाने से वहाँ के लोम (रोम) शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

लोमपातनलेप

पलाशरम्भाङ्घ्रिभवं तु भस्म
तालं च तुल्यं कदलीजलेन
पिष्टं च लिप्तं मुहुरङ्गनानां
गुह्याङ्गलोम्नामपुनर्भवेयुः ॥१६८॥

१. पलाशक्षार, २. कदलीकन्दक्षार और ३. हरताल—तीनों को समभाग में लेकर एक खरल में मर्दन करें तथा कदली कन्द को जल में मर्दन कर पेस्ट जैसा बना लें। ४-६ दिनों तक प्रमदाओं के गुह्य प्रदेश के लोम (बालों) पर लेप करने से बाल गिर जाते हैं जो फिर से नहीं उगते हैं।

लोमपातनलेप

स्यादेकभागो हरितालकस्य
शङ्खस्य भागा अपि पञ्चनूनम्।
भागास्तु षट् पर्णतरोः प्रदिष्टा
रम्भाम्भसा साधु विमर्दिताश्च ॥१६९॥
सप्ताहमेतन्ननु गुह्यदेशे
प्रलेपितं लोमविनाशकं स्यात्।
पुनर्न रोहन्ति विलासिनीना-
मनेन लोमानि कदाचिदेव ॥१७०॥

१. हरताल १ भाग, २. शंखभस्म ५ भाग तथा ३. पलाशक्षार ६ भाग लें। एक खरल में तीनों को एक साथ पीसें और कदलीकन्दस्वरस की भावना देकर विलासिनी स्त्रियों के योनि प्रदेश पर सप्ताह पर्यन्त प्रतिदिन लेप करने से गुह्य प्रदेश के बाल नष्ट हो जाते हैं जो फिर कभी नहीं उगते हैं।

लोमपातनलेप

रम्भाम्भसा सप्त दिनानि यावद्
विभाव्य कम्बूद्भवभस्मपूर्वम्।
ततः समं तालरजस्तु तस्मिन्
समिश्र्यलेपो लघुलोमलोपकः ॥१७१॥

शंखभस्म को कदलीकन्दस्वरस के साथ भावना दें तथा उतनी ही मात्रा में हरताल मिलावें। पुनः कदलीकन्दस्वरस से मर्दन कर गुह्यप्रदेश की लोमराशि पर लेप करने से वहाँ के बाल लोप अर्थात् नष्ट हो जाते हैं।

लोमशातनतैल

सत्कुसुम्भभवस्नेहाभ्यङ्गो लोम्नां सदाऽन्तकृत् ॥१७२

कुसुम्भ अर्थात् बर्रे के तैल की मालिश करने से गुह्याङ्ग प्रदेश (लिंग-योनि-गुदा) के बाल गिर कर नष्ट हो जाते हैं।

लोमपातनतैल

रक्ताञ्जनीपुच्छचूर्णं कटुतैलेन कल्कितम्।
सप्ताहमुषितं मूलाद्धन्तिलोमान्यसंशयम् ॥१७३॥

लालवर्ण के अञ्जनी नामक पक्षी के पुच्छ का चूर्ण करें तथा सरसो के तेल के साथ मर्दन कर ६ दिनों तक धूप में रखें। इस तैल को रोमपातनार्थ बालों पर लगाने से बाल निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

लोमपातनतैल

शशाङ्कभल्लातकशङ्खचूर्णं
यवाग्रजक्षारयुता मनःशिला ।
तालेन तैलं विधिवद्विपाचितं
क्षणेन रोम्णां प्रलयं करोति ॥१७४॥

१. तिलतैल २५० मि.ली., २. कर्पूर, ३. शुद्ध भिलावा, ४. शंखभस्म, ५. यवक्षार, ६. मनःशिला और ७. हरताल— प्रत्येक १२ ग्राम लें। तिल तैल गरम करें। कर्पूर छोड़कर अन्य पाँच द्रव्यों को चूर्ण कर पीस लें और जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। गरम तैल में यह कल्क और १ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर इस तैल में कर्पूर मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके लेप से लोमों का समूह तुरन्तं नष्ट हो जाता है।

लोमपातनार्थ-क्षारतैल

शुक्तिशम्बूकशङ्खानां दीर्घवृन्तात् समुष्ककात् ।
दग्ध्वा क्षारं समादाय खरमूत्रेण भावयेत् ॥१७५॥
क्षाराष्टभागं विपचेत्तैलं वै सार्षपं बुधः ।
इदमन्तःपुरे देयं तैलमात्रेषु पूजितम् ॥१७६॥
बिन्दुरेकः पतेद्यत्र तत्र लोमापुनर्भवः ।
मदनादिव्रणे तैलमश्विभ्यां परिकीर्त्तितम् ।१७७॥
अर्शसां कुष्ठरोगाणां पामादद्रुविचर्चिकाम् ।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं सर्वक्लेदरुजाऽपहम् ॥१७८॥

१. शुक्तिभस्म, २. घोंघाभस्म, ३. शंखभस्म, ४. सोना-पाठात्वग्भस्म और ५. पाटलात्वग्भस्म—प्रत्येक द्रव्यों की भस्म ५०-५० ग्राम लें। इन्हें एक साथ एक खरल में मर्दन करें और गदहे के मूत्र की भावना देकर कल्क बना लें। इसका आठ गुना सरसोंतैल २ लीटर में डालें और ८ लीटर जल मिलाकर तैलपाक विधि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। इसे शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को अन्तःपुर में अर्थात रनिवास में भेज दें, जहाँ सुन्दरियाँ इस तैल को अपनी कक्षा एवं गुह्य प्रदेश के बालों (भगप्रदेशोत्पन्न बालों) का नाश करने के लिए उपयोग करती हैं। इस तैल की १ बूँद भी यदि बालों पर पड़े तो वहाँ पर फिर से कभी बाल नहीं उगते हैं। यह तैल मदनादि गुह्य स्थानों के व्रणों पर लेप करने, अर्श, कुष्ठ, पामा, दद्रु, विचर्चिका आदि रोगों पर लेप करने से उपर्युक्त रोग नष्ट हो जाते हैं। इस क्षारतैल को अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था। इस तैल के लेप से सभी प्रकार के क्लेदज व्रण नष्ट हो जाते हैं।

लोमपातनार्थ आरग्वधादितैल

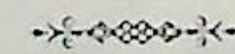
आरग्वधमूलपलं कर्षद्वितयं हि शङ्खचूर्णस्य ।
हरितालस्य च खरजे मूत्रप्रस्थे तु कटुतैलम् ॥१७९॥
पक्वं तैलं तदथो शङ्खहरितालचूर्णितं लेपात् ।
निर्मूलयति च लोम्नामन्येषां सम्भवो नैव ॥१८०॥

१. आरग्वधमूलत्वक्चूर्ण ४६ ग्राम, २. शंखभस्म २३ ग्राम, ३. हरताल २३ ग्राम, ४. सरसोतैल ३७५ मि.ली. और ५. गदहे का मूत्र ७५० मि.ली. लें। आरग्वधचूर्ण से हरताल तक के तीनों द्रव्यों को सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें और एक पात्र में सरसो तैल को गरम करें तथा उसमें कल्क और गदहे का मूत्र मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। और कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। उपयोग में लेते समय इस १२ मि.ली. तैल में १ ग्राम शंखभस्म और ५०० मि.ग्रा. हरतालचूर्ण मिलाकर बालों की जड़ में लगाने से बाल निर्मूल हो जाते है तथा फिर से उगने की सम्भावना ही नहीं रहती है।

क्षुद्र रोग में पथ्यापथ्य (यो.र.)

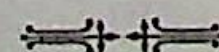
क्षुद्ररोगेषु सर्वेषु नानारोगानुकारिषु ।
दोषान्दूष्यानवस्थाश्च निरीक्ष्य मतिमान्भिषक् ॥१८१॥
तस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सर्वशः ।
यथादोषं यथादूष्यं यथावस्थं च कल्पयेत् ॥१८२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां क्षुद्ररोगाधिकारः ।



अनेक रोगों से समानता रखने वाले इन क्षुद्ररोगों में वात-पित्त-कफादि दोष, रस-रक्त-मांसादि दूष्य तथा रोग एवं रोगी की अवस्था देखकर विद्वान् वैद्य उन-उन रोगों में पथ्य एवं अपथ्य का दोष-दूष्य एवं अवस्थानुसार सेवन एवं वर्जन करने का रोगी को निर्देश करें।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य क्षुद्ररोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथ मुखरोगाधिकारः (६१)

ओष्ठरोग चिकित्सा (च.द.)

ओष्ठप्रकोपे वातोत्थे [१]शाल्वणेनोपनाहनम्।
मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरैः श्रृतम्॥
स्वेदोऽभ्यङ्गः स्नेहपानं रसायनमिहेष्यते॥१॥

वातज ओष्ठरोग में शाल्वण स्वेद की औषधों की पुल्टिस बाँधें तथा [२]भद्रदार्वादि गण की वातहर औषधों से सिद्ध तैलों के द्वारा शिरोबस्ति, नस्य एवं अभ्यङ्ग करना चाहिए। इसी तरह स्वेद, अभ्यङ्ग, स्नेहपान एवं च्यवनप्राशादि ब्राह्मरसायनों का प्रयोग करना चाहिए।

१. श्रीवेष्टकादि चूर्ण (च.द.)

श्रीवेष्टकं सर्जरसं गुग्गुलुं सुरदारु च।
यष्टीमधुकचूर्णं च विदध्यात्प्रतिसारणम्॥२॥

१. गन्धविरोजा, २. रालचूर्ण, ३. शुद्ध गुग्गुलु, ४. देवदारुचूर्ण और ५. मुलेठीचूर्ण (समभाग) लें। उपर्युक्त पाँचों द्रव्यों को मिश्रित कर चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ओष्ठ पर धीरे- धीरे मर्दन (प्रतिसारण) करने से वातज ओष्ठरोग नष्ट हो जाता है।

पित्तज-ओष्ठ रोग चिकित्सा (च.द.)

वेधं शिराणां वमनं विरेकं
तिक्तस्य पानं रसभोजनञ्च।

१. वातघ्नो भद्रदार्वादिः काकोल्यादिस्तु सौश्रुतः।
मांसेनात्रौषधं तुल्यं यावताऽम्लेन चाम्लता।
पट्वी स्यात् स्वेदनार्थञ्च काञ्जिकाद्यम्लमिष्यते।
चतुःस्नेहोऽत्र तावान् स्यात् सुस्विन्नत्वं यतो भवेत्॥
काकोल्यादिगण—
काकोल्यौ मधुका मेदे जीवकर्षभकौ सहे।
ऋद्धिर्वृद्धिस्तुगाक्षीरी पुण्डरीकं सद्मकम्॥
जीवन्ती सामृता श्रृङ्गी मृद्वीका चेति कुत्रचित्।
काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः॥
(चक्रदत्ते शिवदाससेनः वातव्याधौ)

२. **भद्रदार्वादिगण—**
भद्रदारु निशे भार्गी वरुणो मेषश्रृङ्गिका।
जटाझिण्टी चार्त्तगलो वरागोक्षुरतण्डुलाः॥
अर्कोश्वदंष्ट्रा गणिका धुस्तूरश्चाश्मभेदकः॥
वरीस्थिरा पाटला रुग् वर्षाभूर्वसुको यवः॥
भद्रदार्वादिरित्येष गणो वातविनाशनः।
(चक्रदत्ते शिवदाससेनः वातव्याधौ)

शीतान् प्रलेपान् परिषेचनञ्च
पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात्॥३॥

पित्तज ओष्ठरोग में ओष्ठ के समीप की शिराओ का वेधन, वमन, विरेचन, तिक्तरस वाले द्रव्यों से सिद्ध घृत एवं क्वाथ का पान तथा तिक्तरसप्रधान द्रव्यों का पान एवं भोजन अथवा मांसरस के साथ भोजन, ओष्ठ पर शीतल प्रलेप और पित्तघ्न द्रव्यों के शीतल क्वाथ का ओष्ठ पर सिञ्चन करना चाहिए।

जलौका प्रयोग (च.द.)

पित्तरक्ताभिघातोत्थाञ्जलौकाभिरुपाचरेत्।
पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां कुर्य्यादशेषतः॥४॥

पित्तज, रक्तज एवं अभिघातज ओष्ठरोग में जलौका द्वारा रक्तमोक्षण करें तथा बाद में पित्तज विद्रधि जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

कफज ओष्ठ रोग की चिकित्सा (च.द.)

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवलधारणम्।
हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके॥५॥

कफज ओष्ठरोग में रक्तमोक्षण के बाद शिरोविरेचन, धूमपान, स्वेद तथा कटु रसों से युक्त द्रव्यों का कवल धारण करना चाहिए।

२. त्रिकटुकादि प्रतिसारण (च.द.)

त्रिकटु स्वर्जिकाक्षारः क्षारश्च यवशूकजः।
क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम्॥६॥

कफज ओष्ठरोग में सोंठ, पीपर, मरिच, सज्जीक्षार तथा यवक्षार—इनके चूर्णों में मधु मिलाकर ओष्ठ के ऊपर प्रतिसारण (घर्षण) करना चाहिए।

३. मेदोज ओष्ठ रोग की चिकित्सा (च.द.)

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः।
प्रियङ्गु त्रिफलालोधं सक्षौद्रं प्रतिसारणम्॥
हितञ्च त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं प्रलेपनम्॥७॥

मेदोज ओष्ठरोग में विधिपूर्वक स्वेदन कर बढ़े हुए ओष्ठ का छेदन करके त्रिफलादि शोधन क्वाथों से शोधन (प्रक्षालन) कर दग्ध करना चाहिए। ततः प्रियंगुफल, त्रिफला, लोध्र के सूक्ष्म चूर्णों को मधु मिलाकर या केवल त्रिफलाचूर्ण तथा मधु मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिए।

४. सर्जरसादि लेप (च.द.)

**सर्जरसकनकगैरिकधन्याकतैलघृतसिन्धुसंयुक्तम् ।
सिद्धं सिक्थकमधरे स्फुटितोच्चटिते व्रणं हरति ॥८॥**

१. राल, २. स्वर्णगैरिक, ३. धनियाँ ४. तिलतैल, ५. गोघृत, ६. सैन्धवलवण और ७. मोम के साथ पकाकर मलहर बना लें तथा इसे ओष्ठ फटना, ओष्ठ व्रण आदि रोगों में लगाने से लाभ होता है।

५. दन्तरोग चिकित्सा

शीताद चिकित्सा

**शीतादे हतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान् ।
निक्वाथ्य त्रिफलाञ्चापि कुर्याद् गण्डूषधारणम् ॥
प्रियङ्गवश्च मुस्ता च त्रिफला च प्रलेपनम् ॥९॥**

शीताद नामक रोग में रक्तमोक्षण के बाद सोंठ, सरसो एवं त्रिफला के समभागीय क्वाथों का गण्डूष धारण करना चाहिए। प्रियङ्गु, नागरमोथा एवं त्रिफलाचूर्ण मिलाकर शीताद (दन्तरोग) में प्रलेप करने से रोग नष्ट हो जाता है ।

६. कुष्ठादि चूर्ण (च.द.)

**कुष्ठं दार्वी लोध्रमब्दं समङ्गा
तिक्ता पाठा तेजनी पीतिका च ।
चूर्णं शस्तं घर्षणं तद् द्विजानां
रक्तस्रावं हन्ति कण्डूं रुजाञ्च ॥१०॥**

१. कूठ, २. दारुहल्दी, ३. लोध्रत्वक्, ४. मुस्ता, ५. मंजीठ, ६. कटुका, ७. पाठा, ८. तेजबल और ९. हल्दी (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण का दाँतों पर प्रतिदिन २-३ बार मञ्जन करने से दाँतों से रक्तस्राव, दन्तशूल तथा दाँत के मसूढ़ों के कण्डू रोग नष्ट हो जाते हैं।

७. चलदन्त स्थिरकर योग (च.द.)

**चलदन्तस्थिरकरं कार्यं बकुलचर्वणम् ।
आर्त्तगलदलक्वाथगण्डूषो दन्तचालनुत् ॥
दन्तचाले हितं श्रेष्ठं तिलोग्राचर्वणं सदा ॥११॥**

१. मौलश्री वृक्ष की छाल को चबाते रहने से हिलते हुए दाँत मजबूत हो जाते हैं।

२. नीलपुष्पसहचर पत्र के क्वाथ को गण्डूष रूप में प्रतिदिन मुख में धारण करने से हिलते हुए दाँत मजबूत हो जाते हैं।

३. कालातिल या वच को हमेशा चबाते रहने से हिलते दाँत दृढ़ हो जाते हैं।

दातुन के लिए उपयोगी वृक्ष (च.द.)

**करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभासनाः[१] ।
शस्यन्ते दन्तपवने ये चाप्येवंविधा द्रुमाः ॥१२॥**

करञ्जवृक्ष, करवीर, अर्क, चमेलीकाण्ड, अर्जुनकाण्ड तथा असन (विजयसार)—उपर्युक्त वृक्षों की दातुन (दतुअन) से दन्त धावन करने से दाँत मजबूत हो जाते हैं।

विमर्श—इस दातुन वर्ग से करवीर और अर्कवृक्षों के दूध दाँतों के लिए हानिकर है। अत: इन दोनों को इस वर्ग से हटा देना चाहिए। इस प्रकार दन्तधावनार्थ प्रसिद्ध वृक्ष यथा—निम्ब बब्बूल तथा महुआ आदि वृक्षों का उपयोग करना अधिक उपयोगी होता है।

८. भद्रमुस्तादि वटी (भा.प्र.)

**भद्रमुस्ताभयाव्योषविडङ्गारिष्टपल्लवैः ।
गोमूत्रपिष्टैर्गुडिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥१३॥
तां विधाय मुखे सुप्याच्चलदन्तातुरो नरः ।
नातः परतरं किञ्चिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥१४॥**

१. नागरमोथा, २. हरीतकी, ३. सोंठ, ४. पीपर, ५. मरिच, ६. वायविडङ्ग तथा ७. निम्बपत्र (समभाग) लें। उपर्युक्त ७ द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण करें। तत: गोमूत्र के साथ १-२ दिन पीसकर ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। हिलते हुए दाँतों वाले रोगी इस वटी को मुख में रखकर रात्रि में सो जाय। ऐसा रोज १ महीना तक करने से हिलते दाँत दृढ़ हो जाते हैं। इससे बढ़कर हिलते हुए दाँतों की दूसरी कोई औषधि नहीं हैं।

९. दन्तपुप्पुट रोग की चिकित्सा (च.द.)

**दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ।
सपञ्चलवणक्षारं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥१५॥**

नया दन्त पुप्पुटक रोग में मसूड़ों से रक्तमोक्षण करने के बाद पञ्चलवण और यवक्षार चूर्ण को मधु से मिश्रित कर मसूड़ों एवं दाँतों पर प्रतिसारण करने से लाभ होता है।

दन्ततोद-दन्तहर्ष चिकित्सा (च.द.)

दन्तानां तोदहर्षे च वातघ्नाः कवला हिताः ॥१६॥

दन्ततोद और दन्तहर्ष रोग में वातघ्नतैल, वातघ्नघृत एवं दशामूलादिक्वाथ का मिश्रित कवल धारण करने से अत्यधिक लाभ होता है।

१०. मध्वादि कवलग्रह (च.द.)

**माक्षिकं पिप्पली सर्पिर्मिश्रितं धारयेन्मुखे ।
दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम् ॥१७॥**

मधु २० ग्राम, पीपरचूर्ण ५ ग्राम, घी ३० ग्राम—इन तीनों द्रव्यों को उल्लिखित मात्रा में मिश्रित कर मुख में धारण करने से दन्त शूल रोग में सद्यः लाभ होता है।

---
१. करञ्जनिम्बबब्बूलो......इति पाठोऽत्युचितः।

११. दन्तवेष्ट में प्रतिसारण (च.द.)

विस्राविते दन्तवेष्टं व्रणन्तु प्रतिसारयेत्।
लोध्रपत्तङ्गमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ॥
गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥१८॥

दन्तवेष्ट रोग में जलौकादि विधि से रक्तमोक्षण के बाद उस व्रण पर लोध्रचूर्ण, पीतचन्दनचूर्ण, मुलेठीचूर्ण और लाक्षाचूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिए। तथा बाद में क्षीरीवृक्ष, गूलर, वट, पीपल तथा प्लक्षादि वृक्षों के पृथक्-पृथक् या मिश्रित क्वाथ में मधु-घी और चीनी मिलाकर गण्डूष (असंचारि) रूप में मुख में धारण करना लाभदायक है।

१२. लोध्रादि लेप/ क्षीरीवृक्ष गण्डूष (च.द.)

सौशिरे हृतरक्तं तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः।
सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥१९॥

सौशिर नामक दन्तरोग में रक्तमोक्षण कराकर लोध्रचूर्ण, नागरमोथाचूर्ण और रसाञ्जनचूर्ण में मधु मिलाकर व्रण पर लेप करना या प्रतिसारण करना चाहिए। तथा गूलर आदि वृक्षों की त्वचा के क्वाथ में मधु मिलाकर गण्डूष (असंचारी) धारण करना चाहिए।

परिदर एवं उपकुश चिकित्सा (च.द.)

क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः।
संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपकुशे ततः ॥२०॥

परिदर नामक दन्त रोग में वमन-विरेचन द्वारा काय की शुद्धि तथा नस्य और शिरोविरेचन द्वारा ऊर्ध्वकाय की शुद्धि कराकर शीताद रोग में कही गई चिकित्सा करनी चाहिए। उपकुश रोग की भी इसी प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए।

१३. काकोदुम्बरिकादि पत्रघर्षण (च.द.)

काकोदुम्बरिकागोजीपत्रैर्विस्रावयेदसृक् ।
क्षौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥२१॥

परिदर एवं उपकुशरोग में कठगूलर तथा गोजिह्वा आदि कर्कश (रूक्ष) पत्रों से घर्षण कर रक्तस्राव कराकर सैन्धव, त्रिकटुचूर्ण समभाग और मधु (मिलाकर) से उक्त स्थान पर प्रतिसारण करना चाहिए।

१४. पिप्पल्यादि कवलग्रहं (च.द.)

पिप्पल्यः सर्षपाः श्वेता नागरं नैचुलं फलम्।
सुखोदकेन सम्मर्द्य कवलं तस्य योजयेत् ॥२२॥

पीपरचूर्ण, पीतसरसोंचूर्ण, सोंठचूर्ण और हिज्जफलचूर्ण— इन्हें गरम जल से पीसकर कवलधारण करने से परिदर एवं उपकुशरोग नष्ट हो जाते हैं।

दन्तवैदर्भ रोग की चिकित्सा

शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत्।
ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥२३॥

दन्तवैदर्भरोग में दन्तमूल में सञ्चित पूय एवं सड़े मांसादि को शस्त्र से निकालकर साफ कर लें। ततः क्षार का प्रतिसारण करना चाहिए और सभी तरह की शीत क्रिया करनी चाहिए। शीतल गण्डूषादि का प्रयोग उचित होता है।

अधिदन्त रोग की चिकित्सा (च.द.)

उद्धृत्याधिकदन्तन्तु ततोऽग्निमवचारयेत्।
कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता ॥२४॥

अधिदन्त रोग में शस्त्रों से छेदन कर यन्त्र (सन्दंश) से पकड़कर अधिक दाँतों को उखाड़ लें तथा उक्त स्थान को तप्तशलाका से जला देना (अग्निदग्ध कर्म करना) चाहिए। इसके बाद कृमिदन्त जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

१५. पाठादि चूर्ण (च.द.)

छित्त्वाऽधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत्।
पाठावचातेजवतीस्वर्जिकायावशूकजैः ।
क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवलश्चात्र कीर्तितः ॥२५॥

अधिमांस नामक दन्तरोग में बढ़े हुए अधिक मांस को शस्त्र से काट देना चाहिए। ततः पाठा, वच, तेजवती, सर्जिक्षार एवं यवक्षार के चूर्णों में मधु मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिए। ततः पिप्पली क्वाथ में मधु मिलाकर कवल धारण करावें।

१६. पटोलादि क्वाथ (च.द.)

पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावने।
शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च यः ॥२६॥

पटोलपत्र, निम्बत्वक् तथा त्रिफला (समभाग) क्वाथ बनाकर दन्त प्रक्षालन करावें। साथ ही अधिमांस रोग में शिरोविरेचन तथा शिरोविरेचनिक द्रव्यों द्वारा धूमपान कराने से लाभ होता है।

दन्तनाडी रोग की चिकित्सा (च.द.)

नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत्।
यं दन्तमधिजायेत नाडी तं दन्तमुद्धरेत् ॥२७॥
छित्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत्।
शोधयित्वा दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥२८॥

दन्तनाड़ी रोग में नाड़ीव्रणोक्त सभी तरह की चिकित्सा करें तथा जिस दाँत में नाड़ी बनी हो तो उसके ऊपर के मांस को काटकर निकाल दें तथा प्रभावित दाँत को निकाल देना चाहिए। किन्तु ऊपर के दाँत में यह रोग यदि हो, तो दृष्टि प्रभावित होने के भय से नहीं निकालें। मांस शुद्ध होने पर क्षार और अग्निकर्म से मांस को जला देना चाहिए।

दन्तनाडी में दन्तोत्पाटन (च.द.)

गतिर्हिनस्ति हन्वस्थि दशने समपेक्षिते ।
तस्मात्समूलं दशनं निर्हरेद् भग्नमस्थि च ॥२९॥

दन्तनाड़ी रोग में उपेक्षा करने से अर्थात् दाँत को न उखाड़ने से दोषों की गति बढ़कर हन्वस्थि को भी नष्ट कर देता है। अत: नीचे के दाँत मजबूत होने पर भी उसे मूल के साथ उखाड़ देना चाहिए।

उपर के दाँत नहीं उखाड़ने का आदेश (च.द.)

उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं सम्प्रसिच्यते ।
रक्तातियोगात् पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति च ।
चलमप्युत्तरं दन्तमतो नापहरेद्भिषक् ॥३०॥

ऊपर की पंक्ति के दाँतों को उखाड़ने पर अधिक रक्तस्राव होने से भयंकर रोग (शिरोऽभिघात, अर्दित एवं नेत्ररोग आदि) होने की सम्भावना रहती हैं। अत: ऊपर के हिलते दाँतों को नहीं निकालना चाहिए।

१७. जात्यादि तैल प्रतिसारण (च.द.)

कषायं जातिमदनकटुकस्वादुकण्टकैः ।
लोध्रखदिरमञ्जिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ॥
तैलं संशोधनं तद्धि हन्यादन्तर्गतां गतिम् ॥३१॥

१. चमेलीपत्र, २. मदनफलबीज, ३. कुटकी, ४. गोखरु, ५. लोध्रत्वक्, ६. खदिरकाष्ठ, ७. मंजीठ और ८. मुलेठी (समभाग) लें। इनके कल्क और क्वाथ से सिद्ध तैल का प्रतिसारण या कवलधारण करने से दन्तनाड़ी रोग नष्ट हो जाता है। इस तैल के प्रतिसारण या कवल धारण से दन्तनाड़ी का शोधन होता है और तैल हड्डियों के अन्दर प्रवेश कर रोग नष्ट करता है। तिलतैल १८७ मि.ली., क्वाथ ७५० मि.ली. तथा कल्क ४६ ग्राम लेकर तैल पाक करें।

१८. दन्तहर्ष में कवल (च.द.)

सुखोष्णाः स्नेहकवलाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य वा ।
निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ।
स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ॥३२॥

दन्तहर्ष रोग में मन्दोष्ण घृत एवं तैल का कवल धारण करावें। अथवा सुश्रुतोक्त अपतानक चिकित्सोक्त त्रैवृत घृत का सेवन तथा वातहर भद्रदार्वादि क्वाथ का कवल धारण करना चाहिए। साथ ही स्नैहिक धूम एवं नस्य भी दन्तहर्ष रोग में हितकर है।

१९. दन्तशर्करा चिकित्सा (च.द.)

अहिंसन् दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् ।
लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥
दन्तहर्षक्रियाश्चापि कुर्यान्निरवशेषतः ॥३३॥

दाँतों के मूल मसूड़ों को बचाते हुए दन्तशर्करा को शस्त्र से खुरचकर युक्तिपूर्वक निकाल देना चाहिए। तत: लाक्षाचूर्ण में मधु मिलाकर पुन:-पुन: दन्तमूल (मसूड़ों) में प्रतिसारण करना चाहिए। इसके बाद दन्तहर्ष में कही गई सभी चिकित्सा करें।

कपालिका चिकित्सा (च.द.)

कपालिका कृच्छ्रसाध्या तत्राप्येषा क्रिया हिता ॥३४॥

यद्यपि कपालिका कृच्छ्रसाध्य रोग है, तथापि इस रोग में दन्तहर्ष या दन्तशर्करा जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

२०. कृमिदन्त चिकित्सा (च.द.)

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम् ।
तथाऽवपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ॥३५॥

न हिलने वाले कृमिदन्त रोग में स्वेदन के बाद अशुद्ध रक्तमोक्षण करें तथा वातनाशक (भद्रदार्वादि) रस या क्वाथ से अवपीड़न नस्य तथा उसी वातघ्न गणौषधि (कल्क-क्वाथ) से सिद्ध तैल या घृत का गण्डूष धारण करें।

२१. कृमिदन्त चिकित्सा (च.द.)

भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ।
हिङ्गु सोष्णन्तु मतिमान् कृमिदन्तेषु दापयेत् ॥३६॥

कृमिदन्त रोग में भद्रदार्वादि द्रव्यों एवं पुनर्नवामूल के कल्क का लेप तथा स्निग्ध भोजन कराना चाहिए। तथा कृमि दूषित दन्तकोटर में भुनी हुई गरम हींग भरने से अत्यधिक लाभ होता है।

२२. बृहत्यादि क्वाथ (च.द.)

बृहतीभूमिकदम्बपञ्चाङ्गुलकण्टकारिकाक्वाथः ।
गण्डूषस्तैलयुतः कृमिदन्तकवेदनाशमनः ॥३७॥

१. कड़ी कटेरी, २. भूकदम्बक्षुप, ३. एरण्डमूल त्वक् तथा ४. कण्टकारी (समभाग)—इनके क्वाथ में तैल मिलाकर गण्डूष धारण करने से कृमिदन्त शूल रोग नष्ट हो जाता है।

२३. कृमिदन्त चिकित्सा (च.द.)

नीलीवायसजङ्घास्नुगदुग्धीनान्तु मूलमेकैकम् ।
सञ्चर्व्य दशनविधृतं दशनकृमिपातनं प्राहुः ॥३८॥

नीलीवृक्षमूल, काकजंघा मूल, स्नुहीमूल तथा दुद्धी मूल में से किसी एक को चबाने से कृमिदन्त रोग की कृमियाँ दाँतों से हटकर गिर जाती हैं और नष्ट हो जाती हैं।

दन्तोत्पाटन (च.द.)

चलमुद्धृत्य वा स्थानं दहेत्तु सुषिरस्य वा ॥३९॥

कृमियों से खाया हुआ दाँत यदि हिलता हो तो उस दाँत को

उखाड़ दें या दोषों की शुद्धि एवं रक्तस्राव को रोकने के लिए तप्त शलाका से दन्तकोटर को दग्ध कर देना चाहिए।

हनुमोक्ष रोग चिकित्सा (च.द.)

हनुमोक्षे समुद्दिष्टा कार्या चार्दितवत्क्रिया ॥४०॥

हनुमोक्ष नामक रोग में अर्दित रोग जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

२४. दन्तकृमिहर लेप (च.द.)

सप्तच्छदार्कक्षीराभ्यां पूरणं कृमिशूलजित्।
अथवा केवलेनार्क पयसाऽपि च शस्यते ॥४१॥

सप्तपर्ण के दूध और अर्कदूध दोनों को बराबर लेकर दन्तकोटर में भरने से दन्तकोटर शूल नष्ट हो जाता है। अथवा केवल अर्कदुग्ध उस कोटर में भरने से दन्तकृमि शूल नष्ट हो जाता है।

विमर्श—किन्तु अर्क दुग्ध का पूरण दन्तकोटर में करने से कालान्तर में (१-२ महीना बाद) दाँत के कई टुकड़े हो जाते हैं, बाद में मूल का भाग अन्दर ही रह जाता है जो कालान्तर में वेदना कारक होता है।

२५. दन्तशब्द (कटकटाना) चिकित्सा (च.द.)

कर्कटाङ्घ्रिक्षीरपक्वघृताभ्यङ्गेन नश्यति।
दन्तशब्दः कर्कटाङ्घ्रिलेपाद्वा दन्तयोजितात् ॥४२॥

केकड़े के पैरों द्वारा क्षीरपाक-विधि से सिद्ध दुग्ध से घृत साधित करें। उस घृत से अभ्यङ्ग या प्रतिसारण या कवल धारण करने से दन्तशब्द रोग नष्ट हो जाता है। अथवा केवल केकड़े के पैरों को सिल पर जल से पीसकर दाँतों की पंक्ति पर लेप करने से दन्तशब्द रोग नष्ट हो जाता है।

२६. कर्कट चरणसिद्ध दूध का लेप

चरणौ कर्कटकस्यापि गोक्षीरेण विपाचयेत्।
घनताञ्च गते तस्मिन् रात्रौ चरणलेपनात् ॥
दन्तानां कड्मडीं हन्ति सत्यं सत्यञ्च पार्वति ॥४३॥

२५ ग्राम केकड़े के पैर को दूध में पीसकर २०० मि.ली. गोदुग्ध मिलाकर पकावें। जब पकते-पकते गाढ़ा हो जाय तो सुरक्षित कर लें और रात में सोते समय पैरों को साफ कर पैर की तली में लेप लगाकर सो जायें। ऐसा ८-१० दिनों तक लेप करने से दन्तकड्मडी (दाँत कड़कड़ाना) रोग नष्ट हो जाता है।

दन्त शब्द रोग में उपचार

कृष्णवर्णाश्वपुच्छस्य सप्तकेशेन वेणिका।
तां बद्ध्वा च गले दन्तकड्मडीं हन्ति मानवः ॥४४॥

काले रंग के घोड़े की पूँछ के ७ बाल लेकर उसे चोटी जैसा गूँथकर गले में माला रूप में धारण करने से दाँतों का कड्मडी रोग (दाँतों का कड़कड़ाना) नष्ट हो जाता है।

जिह्वारोग चिकित्सा (च.द.)

जिह्वाकण्टक चिकित्सा

ओष्ठकोपे त्वनिलजे तदुक्तं प्राक् चिकित्सितम्।
कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥४५॥

वातज ओष्ठ रोग में बतायी गई चिकित्सा जिह्वाकण्टक रोग में भी करनी चाहिए।

पित्तज जिह्वाकण्टक चिकित्सा (च.द.)

पित्तजेषु निघृष्टेषु निस्रुते दुष्टशोणिते।
प्रतिसारणगण्डूषनस्यञ्च मधुरैर्हितम् ॥४६॥

पित्तज जिह्वाकण्टक रोग में पारिजात, शाखोट, गोजिह्वा आदि वनस्पतियों के रूक्ष पत्तों से जिह्वा को घिसकर दूषित रक्त निकाल लें। ततः काकोल्यादि गण में कही गई मधुरौषधियों के चूर्ण में मधु मिलाकर जिह्वा का प्रतिसारण करें तथा काकोल्यादि गण की औषधों के क्वाथ-कल्क से साधित घृत का गण्डूष एवं नस्य देना चाहिए।

२७. कफज जिह्वाकण्टक चिकित्सा (च.द.)

कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये।
पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यस्तु प्रतिसारणः ॥४७॥

कफज जिह्वाकण्टक रोग में शस्त्र से जिह्वा का लेखन कर अशुद्ध रक्त निकाल दें। ततः पिप्पल्यादि गण की औषधों के चूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिए।

२८. कफज जिह्वाकण्टक चिकित्सा (च.द.)

गृह्णीयात् कवलञ्चापि गौरसर्षपसैन्धवैः।
पटोलनिम्बवार्त्ताकुक्षारयूषैश्च भोजयेत् ॥४८॥

कफज जिह्वाकण्टक रोग में पीली सरसों एवं सैन्धवलवण को सिल पर जल से पीसकर कवल धारण करना चाहिए तथा पटोलपत्र, निम्नपत्र एवं बैंगन के यूष में यवक्षार मिलाकर भोजन करावें।

२९. जिह्वाजाड्य चिकित्सा (च.द.)

जिह्वाजाड्यं चिरजं माणभस्मलवणतैलघर्षणं हन्ति।
ईषत्स्नुक्क्षीराक्तं जम्बीराद्यम्लचर्वणं वाऽपि ॥४९॥

मानकन्द भस्म (मसी) में थोड़ा सैन्धवलवण तथा तिलतैल मिलाकर जिह्वा पर घर्षण करने से पुराना जिह्वाजाड्य रोग नष्ट हो जाता है।

अथवा—जम्बीरी के टुकड़े पर थोड़ा स्नुहीक्षीर डालकर चबाने से भी जिह्वाजाड्य रोग नष्ट हो जाता है।

उपजिह्वा रोग चिकित्सा (च.द.)

उपजिह्वान्तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत्।
शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनमुपाचरेत् ॥५०॥

उपजिह्वा (Ranula) रोग में शोथयुक्त जिह्वास्थान को कर्कश पत्र—पारिजात आदि वानस्पतिक पत्रों से घर्षण कर प्रतिसारणीय क्षार द्रव से प्रतिसारण करना चाहिए तथा नस्य द्वारा शिरोविरेचन देकर कफघ्न द्रव्यों के क्वाथ से गण्डूष तथा वैरेचनिक धूम्रपान के द्वारा चिकित्सा करें।

३०. व्योषादि चूर्ण (च.द.)

व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम्।
उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेतैस्तैलं विपाचयेत् ॥५१॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. यवक्षार चूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण और ६. चित्रकचूर्ण (समभाग) मिलाकर शोथयुक्त जिह्वा पर घिसने से उपजिह्वा रोग नष्ट हो जाता है। तथा इन औषधों के कल्क-क्वाथ से साधित तैल का प्रतिसारण या मर्दन करने से उपजिह्वा रोग नष्ट हो जाता है।

तालुरोग चिकित्सा (च.द.)

३१. गलशुण्डी रोग चिकित्सा

छिन्नां घर्षेद् गलशुण्डीं व्योषोग्राक्षौद्रसिन्धुजैः।
कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैरपि ॥
सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्ड्याः प्रघर्षणम् ॥५२॥

गलशुण्डी को मण्डलाग्र शस्त्र से काटकर त्रिकटु, वच, सैन्धवचूर्णों को मधु मिलाकर छिन्न स्थान का घर्षण करें। अथवा—कूठ, त्रिकटु, वच, सैन्धव, पीपर, पाठा और मोथा चूर्ण को मधु में मिलाकर घर्षण या प्रतिसारण करने से गलशुण्डी रोग नष्ट हो जाता है।

गलशुण्डी चिकित्सा (च.द.)

उपनासाव्यधो हन्ति गलशुण्डीं विशेषतः।
गलशुण्डीहरं तद्वच्छेफालीमूलचर्वणम् ॥५३॥

नाक के समीप वाली शिरा का वेधन कर अशुद्ध रक्त का निर्हरण करने से गलशुण्डी रोग नष्ट हो जाता है। पारिजात (हरसिंगार) त्वक् का चर्वण करने (चबाने) से गलशुण्डी रोग नष्ट हो जाता है।

३२. वचादि क्वाथ का कवल (च.द.)

वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम्।
निष्क्वाथ्य पिचुमर्दञ्च कवलं तत्र योजयेत् ॥
क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशने हितः ॥५४॥

१. वच, २. अतिविषा, ३. पाठा, ४. रास्ना, ५. कटुकी और ६. निम्बत्वक् (समभाग) लें। इनके क्वाथ का कवल धारण करने से तथा अपामार्गादि क्षार के घोल से सिद्ध मुद्ग यूष का पान करने से गलशुण्डी रोग नष्ट हो जाता है।

तुण्डीकेरी-अध्रुष-कूर्म-मांससंघात एवं तालुपुप्पुट चिकित्सा (च.द.)

तुण्डिकेर्य्यध्रुषे कूर्मे सङ्घाते तालुपुप्पुटे।
एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ॥५५॥

तुण्डीकेरी, अध्रुष, कूर्म, मांससंघात तथा तालुपुप्पुट रोगों में गलशुण्डी के जैसी ही चिकित्सा करें। किन्तु इसकी चिकित्सा में शस्त्रकर्म की विशेषता है। ये सभी रोग भेद्य हैं और गलशुण्डी रोग छेद्य है।

तालुपाक चिकित्सा (च.द.)

तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्तनाशनम्।
स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥५६॥

तालुपाक रोग में पित्तघ्न चिकित्सा करें। साथ ही पित्तजव्रण की चिकित्सा करें। तालुशोष रोग में वातघ्न चिकित्सा स्नेहन-स्वेदनादि उष्ण उपचार करें।

कण्ठरोग चिकित्सा

रोहिणी रोग (च.द.)

साध्यानां रोहिणीनान्तु हितं शोणितमोक्षणम्।
छर्दनं धूमपानञ्च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥५७॥

चार प्रकार के वातज, पित्तज, कफज एवं रक्तज साध्य रोहिणी रोग में रक्तमोक्षण, वमन, धूमपान, कवल, गण्डूष तथा नस्य कर्म से चिकित्सा करनी चाहिए।

वातज रोहिणी की चिकित्सा (च.द.)

वातिकान्तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत्।
सुखोष्णांस्तैलकवलान् धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥५८॥

वातज रोहिणी रोग में अशुद्ध रक्त का मोक्षणोपरान्त सैन्धव-लवणचूर्ण का प्रतिसारण करें। तथा सुखोष्ण तैल का पुनः-पुनः कवल धारण करावें।

३३. पित्तज रोहिणी की चिकित्सा (च.द.)

पत्तङ्गशर्कराक्षौद्रैः पैत्तिकीं प्रतिसारयेत्।
द्राक्षापरूषकक्वाथो हितश्च कवलग्रहे ॥५९॥

श्वेतचन्दनचूर्ण, चीनीचूर्ण तथा मधु मिलाकर पित्तज रोहिणी में पुनः-पुनः प्रतिसारण करना तथा द्राक्षा और फालसा के फल क्वाथ का कवल धारण करना लाभप्रद है।

३४. कफज रोहिणी की चिकित्सा (च.द.)

आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत्।
श्वेताविडङ्गदन्तीषु सिद्धं तैलं ससैन्धवम्।
नस्यकर्मणि दातव्यं कवलश्च कफोच्छ्रये ॥६०॥

गृहधूम (कार्बन), सोंठचूर्ण, पीपरचूर्ण एवं मरिचचूर्ण का प्रतिसारण करने से कफज रोहिणी रोग में लाभ होता है तथा अपराजिता, वायविडङ्ग, दन्तीमूल और सैन्धवलवण के कल्क से साधित तैल का नस्य और कवल धारण से कफज रोहिणी रोग नष्ट हो जाता है।

रक्तज रोहिणी की चिकित्सा (च.द.)

पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ॥६१॥

रक्तज रोहिणी रोग में पित्तज रोहिणी जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

कण्ठशालूक चिकित्सा (च.द.)

विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत्।
एककालं यवान्नञ्च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥६२॥

कण्ठशालूक रोग में दूषित रक्त का निर्हरण कर तुण्डिकेरी रोग सदृश शस्त्र क्रिया करें। इस अवधि में स्निग्ध यवान्न (यवागू–जौ की पेया, जौ का मण्ड, कृशरा आदि) का अल्पमात्रा में केवल १ बार भोजन देना चाहिए।

अधिजिह्वा रोग चिकित्सा (च.द.)

उपजिह्विकवच्चापि साधयेदधिजिह्विकाम्।
उन्नाम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनातिजिह्विकाम् ॥
छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादिभिः ॥६३॥

उपजिह्विका रोग जैसी ही चिकित्सा अधिजिह्विका रोग में करनी चाहिए। पहले जीभ को ऊपर उठाकर बडिश यन्त्र अधिजिह्वा को बाहर खींचकर मण्डलाग्र नामक शस्त्र से छेदन करें तथा अन्य दोषों के नाशनार्थ तीक्ष्ण एवं उष्ण औषध चूर्ण से घर्षण करें।

एकवृन्द एवं गिलायु रोग चिकित्सा (च.द.)

एकवृन्दन्तु विस्राव्य विधिं शोधनमारभेत्।
गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तञ्च शस्त्रेण साधयेत् ॥६४॥

एकवृन्द रोग में जलौकादि से अशुद्ध रक्त का निर्हरण करें। ततः प्रतिसारण, शिरोविरेचन, कवलग्रह आदि उपायों से कण्ठ के दोषों का तथा वमन-विरेचन उपायों से शारीरिक दोषों का शोधन करें। गिलायु रोग में भी शस्त्र चिकित्सा लाभदायक होती है। अतः यदि गिलायु स्पर्श में कठिन, अपक्व तथा अल्प वेदना वाला हो तो उसे शस्त्र से काट देना चाहिए और यदि पक्व गिलायु हो तो उसे चीरा लगाकर पूय निकालने के बाद व्रणवत् चिकित्सा करनी चाहिए।

गलविद्रधि चिकित्सा (च.द.)

अमर्मस्थं सुपक्वञ्च भेदयेद् गलविद्रधिम् ॥६५॥

मर्म के अतिरिक्त प्रदेश में उत्पन्न गलविद्रधि के पक जाने पर शस्त्र से भेदन कर व्रणोपचार करें।

३५. सभी कण्ठ रोगों की चिकित्सा (च.द.)

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादि कर्म च।
क्वाथपानन्तु दार्वीत्वङ्निम्बद्राक्षाकलिङ्गतः ॥
हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः ॥६६॥

सभी कण्ठरोगों मे रक्तमोक्षण तथा तीक्ष्ण द्रव्यों का नस्य देना चाहिए। साथ ही—१ दारुहल्दी, २. दालचीनी, ३. निम्बत्वक्, ४. द्राक्षा तथा ५. इन्द्रयव का समभागीय क्वाथ अथवा केवल हरीतकी के क्वाथ में मधु मिलाकर पिलावें।

३६. कटुकादि क्वाथ (च.द.)

कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिङ्गकाः।
गोमूत्रक्वथिताः पेयाः कण्ठरोगविनाशनाः ॥६७॥

१. कटुकी, २. अतीस, ३. देवदारु, ४. पाठा, ५. नागरमोथा और ६. इन्द्रयव (समभाग) लें। इन्हें यवकुटचूर्ण करें और काँचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर ४०० मि.ली. गोमूत्र में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर पिलाने से सभी प्रकार के कण्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं।

३७. यवक्षारादि वटी (च.द.)

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां
रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम्।
क्षौद्रेण कुर्याद् गुडिकां मुखेन
तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥६८॥

१. यवक्षारचूर्ण, २. तेजबलचूर्ण, ३. पाठात्वक्चूर्ण, ४. रसाञ्जनचूर्ण, ५. दारुहल्दीचूर्ण और ६. पीपरचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें मिलाकर मधु के साथ मर्दन करें और ५०० मि.ग्रा. (४ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को चूसते रहने से सभी प्रकार के कण्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं।

३८. कण्ठरोगे दशमूलक्वाथादि (च.द.)

दशमूलं पिबेदुष्णं यूषं मूलकुलत्थयोः ॥६९॥

कण्ठ रोगों में दशमूल का गरम क्वाथ तथा मूली और कुलथी का यूष पान कराना लाभप्रद है।

३९. कण्ठरोग में क्षीरादि कवल (च.द.)

क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः।
विदध्यात्कवलान् वीक्ष्य दोषं तैलघृतैरपि ॥७०॥

१. गोदुग्ध, २. इक्षुरस, ३. गोमूत्र, ४. दही, ५. दही का जल, ६. अम्लफलरस तथा ६. काञ्जी—इनमें से किसी एक द्रव में दोषानुसार मधु तथा घृत मिलाकर कवलधारण करने से सभी प्रकार के कण्ठरोग नष्ट हो जाते हैं।

४०. गोमूत्रसिद्ध हरीतक्यादि वटी (च.द.)

मूत्रसिद्धां शिवां तुल्यां मधुरीकुष्ठबालकैः ।
अभ्यस्य मुखरोगांस्तु जयेद्विरसतामपि ॥७१॥

१. गोमूत्र में पकायी हुई हरीतकी, २. सौंफ, ३. कूठ और ४. सुगन्धबाला—इन चारों द्रव्यों को समभाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ पीसकर ४ से ६ रत्ती (५००-७५० मि.ग्रा.) की वटी बनाकर धूप में अच्छी तरह सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को चूसते रहने से मुखरोग और मुख की विरसता दोनों नष्ट हो जाते हैं।

४१. वातज सर्वसर मुखरोग चिकित्सा (च.द.)

वातात्सर्वसरञ्चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ।
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥७२॥

वातज सर्वसर मुखरोग में पञ्चलवणचूर्ण को जल में द्रवित कर प्रतिसारण करें। तथा भद्रदार्वादि वातहर द्रव्यों के कल्क-क्वाथ से सिद्ध तैल का नस्य एवं गण्डूष या कवल धारण करना चाहिए।

पित्तज सर्वसर मुखरोग चिकित्सा (च.द.)

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ।
सर्वः पित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥७३॥

पित्तज सर्वसर रोग में वमन-विरेचनादि से शरीर की शुद्धि करें। ततः मधुरादिगण (काकोल्यादिगण) की औषधों के क्वाथ का पान और गण्डूष धारण करना चाहिए। साथ ही पित्तघ्न द्रव्यों द्वारा मधुर एवं शीतल क्रिया करनी चाहिए।

कफज सर्वसर मुखरोग चिकित्सा

प्रतिसारणगण्डूषान् धूमं संशोधनानि च ।
कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात् कफापहम् ॥७४॥

कफज सर्वसर मुखरोग में प्रतिसारण, गण्डूष, धूमपान, वमन, विरेचन, शिरोविरेचन, बस्ति आदि संशोधन तथा कफघ्न चिकित्सा करनी चाहिए।

४२. मुखपाक रोग की चिकित्सा (च.द.)

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेचनम् ।
कार्यञ्च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥७५॥

मुखपाक रोग में तालु या जिह्वा को ऊपर उठाकर नीचे के भाग की शिरा को बेधकर रक्तमोक्षण करना चाहिए। ततः चमेली के पत्तों को चबाने से अत्यधिक लाभ मिलता है।

४३. जात्यादि क्वाथ (च.द.)

जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥७६॥

१. चमेलीपत्र, २. गुडूची, ३. द्राक्षा ४. जवासा, ५. दारुहल्दी, ६. आमला, ७. हरीतकी और ८ बहेड़ा (समभाग) इनका क्वाथविधि से क्वाथ करें। शीतल होने पर इसमें मधु मिलाकर गण्डूष करने से मुखपाक नष्ट हो जाता है।

४४. पटोलादि क्वाथ (च.द.)

पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवैः ।
पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥७७॥

१. पटोलपत्र, २. निम्बपत्र, ३. जामुनपत्र, ४. आम के पत्ते तथा चमेली के नये पत्तों के क्वाथ से कुल्ला करने से मुखपाक रोग अच्छा हो जाता है। यह पञ्चपल्लव का क्वाथ मुख-प्रक्षालनार्थ बहुत उपयोगी है।

४५. पञ्चवल्कल क्वाथ (च.द.)

पञ्चवल्ककषायो वा त्रिफलाक्वाथ एव वा ।
मुखपाकेषु सक्षौद्रः प्रयोज्यो मुखधावने ॥७८॥

पञ्चवल्कल (वटत्वक्, गूलरवृक्षत्वक्, पीपलवृक्षत्वक्, प्लक्षत्वक् और वेतसवृक्षत्वक्—समभाग) का क्वाथ या त्रिफलाक्वाथ में मधु मिलाकर मुख गण्डूषार्थ उपयोग में लेने से मुखपाक में अत्यधिक लाभ होता है।

४६. दार्वी रसक्रिया (च.द.)

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया[1] ।
सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥७९॥

दारुहल्दी को यवकुट कर ८ गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ को पुनः पकाकर गाढ़ा कर लें। जब यह जम जाय तो इसे रसक्रिया कहते हैं। इसे रसाञ्जन कहते हैं। इस रसाञ्जन को ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर मुख में रखने से मुखरोग, रक्तरोग एवं नाड़ीव्रण रोग नष्ट हो जाते हैं।

'दार्वीक्वाथमजाक्षीरं पादं पक्वं यदा घनम् ।
तदा रसाञ्जनं ज्ञेयं तन्नेत्रयोः परमं हितम्' ॥
(आयुर्वेदप्रकाश २।२३४)

४७. त्रिफलादि क्वाथ (च.द.)

क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः ।
निषेव्या भक्षणीया वा त्रिफला मुखपाकहा ॥८०॥

१. त्रिफला, २. पाठा, ३. मुनक्का और ४. चमेलीपत्र (समभाग)—इन्हें मिश्रित रूप में यवकुट कर संग्रहीत करें। इस

१. क्वाथादीनां पुनः पाकाद् घनत्वं सा रसक्रिया। (शा.सं म.खं. ८/५)

यवकुट से क्वाथ करें। इस क्वाथ में या केवल त्रिफलाक्वाथ में मधु मिलाकर कवल-गण्डूष रूप में या कुल्ला करने से मुखपाक रोग नष्ट हो जाता है।

४८. कृष्णादि योग (व.द.)

कृष्णाजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहम् ।
मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥८१॥

१. पीपर, २. श्वेतजीरक, ३. कूठ तथा ४. इन्द्रयव (समभाग) मिलाकर दाँतों से चबाते रहने से ३ दिनों में मुख पाक, मुखव्रण, मुखक्लेद और मुखदौर्गन्ध्य रोग नष्ट हो जाते हैं।

४९. तिलादि गण्डूष (च.द.)

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ।
सक्षौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहपाकहा ॥८२॥

मुख में दाह-पाक होने पर या अत्यधिक गरम पदार्थ के सेवन जन्य दग्ध होने पर तिलचूर्ण, नीलकमलपुष्प, घी, चीनी, दूध एवं मधु का गण्डूष धारण करने से दाह एवं पाक की शान्ति होती है।

५०. चूना से मुखदाह की चिकित्सा (च.द.)

तैलेन काञ्जिकेनाथ गण्डूषश्चूर्णदाहहा ॥८३॥

ताम्बूल (पान) में अधिक चूना लग जाने के कारण जो मुख में दाह-पाक होता है, उसकी शान्ति के लिए तिलतैल में समभाग काञ्जी मिलाकर गण्डूष धारण करना चाहिए।

५१. घनादि क्वाथ कवल (च.द)

घनकुष्ठैलाधान्यकयष्टीमध्वेलबालुकाकवडः ।
वदनेऽतिपूतिगन्धं हरति सुरालशुनगन्धञ्च ॥८४॥

१. नागरमोथा, २. कूठ, ३. छोटीइलायची, ४. धनियाँ, ५. मुलेठी और ६. एलवालुक (समभाग) लें। इनके क्वाथ को कवल रूप में मुख में धारण करने से अथवा इनके चूर्ण को मुख में करने से मुखदौर्गन्ध्य तथा मद्य-लशुनादि के खाने से उत्पन्न दुर्गन्ध एवं अन्य मुखदुर्गन्ध नष्ट हो जाते हैं।

५२. सप्तच्छदादिक्वाथ (च.द.)

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्त-
हरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च
क्वाथं पिबेत् पाकहरं मुखस्य ॥८५॥

१. सप्तपर्णत्वक्, २. खस, ३. पटोलपत्र, ४. नागरमोथा, ५. हरीतकी, ६. कटुकी, ७. मुलेठी, ८. अमलतासफलमज्जा और ९. लालचन्दन (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर संग्रहीत करें। इस यवकुट से ५० ग्राम लेकर ८०० मि.ली. जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में मधु मिलाकर कवल, गण्डूष, कुल्ला करने तथा पीने से मुखपाक नष्ट हो जाता है।

५३. पटोलादिक्वाथ (च.द.)

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशाला-
त्रायन्ति तिक्ताद्विनिशामृतानाम् ।
पीतः कषायो मधुना निहन्ति
मुखे स्थितश्चास्यगदानशेषान् ॥८६॥

१. पटोलपत्र, २. सोंठ, ३. आमला, ४. हरीतकी, ५. बहेड़ा, ६. इन्द्रायणमूल, ७. त्रायमाण, ८. कटुकी, ९. हल्दी, १० दारुहल्दी और ११. गुडूची (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से ५० ग्राम यवकुट लेकर ८०० मि.ली. जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर सुखोष्ण इस क्वाथ का पान करने या मुख में कवल या गण्डूष रूप में धारण करने से सभी प्रकार के मुखरोग नष्ट हो जाते हैं।

५४. कालकचूर्ण (चरक)

गृहधूमो यवक्षारः पाठा व्योषं रसाञ्जनम् ।
तेजोह्वा त्रिफला लौहं चित्रकञ्चेति चूर्णकम् ॥८७॥
सक्षौद्रं धारयेदेतद् गलरोगविनाशनम् ।
कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥८८॥

१. गृहधूम (अभाव में—लकड़ी के कोयले का चूर्ण), २. यवक्षार, ३. पाठा, ४. सोंठ, ५. पीपर, ६. मरिच, ७. रसोत, ८. तेजबल, ९. आमला, १०. हरीतकी, ११. बहेड़ा, १२. लौहभस्म तथा १३. चित्रकमूल (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण में मधु मिलाकर मुख में धारण करने से गले के रोग नष्ट हो जाते हैं। साथ ही इस चूर्ण का मंजन करने से दन्त, मुख एवं गले के रोग नष्ट हो जाते हैं।

५५. पीतकचूर्ण (चरक)

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् ।
दार्वी त्वक् चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥८९॥
मूर्च्छितं घृतयोगेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्त्तितम् ॥९०॥

१. शुद्ध मैनसिल, २. यवक्षार, ३. शुद्ध हरताल, ४. सैन्धवलवण ५. दारुहल्दी और ६. दालचीनी—इन्हें समभाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर मधु में मिलावें तथा इसे मूर्च्छित घृत के साथ मुख में धारण करने से कण्ठरोग नष्ट हो जाता है। यह पीतकचूर्ण मुखरोग की श्रेष्ठ औषधि है।

५६. दशनसंस्कारचूर्ण

शुण्ठी हरीतकी मुस्ता खदिरं घनसारकम् ।
गुवाकभस्म मरिचं देवपुष्पं तथा त्वचम् ॥९१॥

एतेषां समभागेन चूर्णमेवं विनिर्दिशेत्।
तत्समं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं कठिनिसम्भवम्॥
एतद् दशनसंस्कारचूर्णं दन्तास्यरोगजित्॥९२॥

१. सोंठचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. नागरमोथाचूर्ण, ४. खदिरसारचूर्ण, ५. कर्पूरचूर्ण, ६. सुपारीमसीचूर्ण, ७. मरिच-चूर्ण, ८. लवङ्गचूर्ण, ९. दालचीनीचूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग तथा १० खटिकाचूर्ण ९ भाग लें। सभी चूर्णों को हाथ से अच्छी तरह से मिलाकर पुनः महीन छननी से छान लें और काँचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'दशनसंस्कारचूर्ण' कहते हैं। इस चूर्ण का मञ्जन (दाँतों पर घर्षण) करने से सभी प्रकार के दन्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से ३ ग्राम लेकर धीरे-धीरे दाँतों पर अँगुलियों से या दतुअन द्वारा प्रतिदिन २-३ बार घिसने से दन्त रोग नष्ट हो जाते हैं। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—श्वेताभ। २ माह का पुराना चूर्ण कत्थई वर्ण का हो जाता है। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—केवल दाँत के रोगों में।

५७. दन्तरोगाशनिचूर्ण

जातीपत्रपुनर्नवातिलकणाकौरुण्टमुस्तावचा-
शुण्ठीदीप्यहरीतकी च सघृतं चूर्णं मुखे धारयेत्।
वातघ्नं कृमिदन्तशूलदहनं सर्वामयध्वंसनं
दौर्गन्ध्यादिसमस्तदोषहरणं दन्तस्य रोगाशनि॥९३॥

१. चमेलीपत्र, २. पुनर्नवामूल, ३. तिल, ४. पीपर, ५. सहचर, ६. नागरमोथा, ७. वच ८. सोंठ, ९. अजवायन और १० हरीतकी (समभाग) लें। इन्हें एकसाथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १ से ३ ग्राम तक इस चूर्ण को घृत में मिलाकर धारण करने से वातज मुखरोग, कृमिदन्त, दन्तशूल, दन्तदाह तथा सभी प्रकार के दन्त एवं मुख रोग नष्ट हो जाते हैं। साथ ही मुखदुर्गन्ध आदि सभी प्रकार दोष इस दन्तरोगाशनि चूर्ण से दूर हो जाते हैं।

५८. क्षारगुटिका (च.द.)

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः।
पलाशमुष्ककक्षारयवक्षाराश्च चूर्णिताः॥९४॥
गुडे पुराणे क्वथिते द्विगुणे गुडिकाः कृताः।
कर्कन्धुमात्राः सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि॥
कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्याः स्युरमृतोपमाः॥८५॥

१. पीपर, २. पिपरामूल, ३. चव्य, ४. चित्रकमूल, ५. सोंठ, ६. तालीशपत्र, ७. छोटी इलायची, ८ दालचीनी, ९. पलाशक्षार, १०. घण्टापाटलीक्षार और ११. यवक्षार—सभी द्रव्य १-१ भाग लें तथा १२ पुराना गुड़ २२ भाग लें। इन्हें एक साथ सूक्ष्म चूर्ण करें। एक स्टील के पात्र में गुड़ एवं थोड़ा जल के साथ आग पर चासनी करें। जब वटी बनने लायक कड़ी चासनी (४-६ तार) बन जाय तो पात्र को चूल्हे से उतार लें और पीपर से यवक्षार तक के सभी ११ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण अच्छी तरह से मिला लें। अब इसे छोटी जंगली बेर जैसी वटी बनाकर एरण्डपत्र में लपेटकर घण्टापाटला वृक्ष की भस्म की राशि में १ सप्ताह तक रखें। ८वें दिन उसे निकालकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को मुख में धारण करने से सभी कण्ठरोगों में अमृत जैसा लाभ करता है। इसे चूसना चाहिए।

मात्रा—४ से ८ वटी प्रतिदिन चूसें, किन्तु १ बार में १ ही वटी लें। **अनुपान**—केवल चूसना है। **गन्ध**—सुगन्धित। **वर्ण**—गुड़ाभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सभी कण्ठ एवं मुख रोगों में।

५९. खदिरादि वटी-१ (च.द.)

खदिरस्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत्।
शेषेऽष्टभागे तत्रैव प्रतिवापं प्रदीपयेत्॥९६॥
जातिकर्पूरपूगानि कक्कोलफलकानि च।
इत्येषा गुडिका कार्य्या मुखसौभाग्यवर्द्धिनी।
दन्तौष्ठमुखरोगेषु जिह्वाताल्वामयेषु च॥९७॥

१. खदिरकाष्ठ का लाल भाग ५ किलो, २. जावित्री, ३. कर्पूर, ४. शीतलचीनी, ५. सुपारीफल और ६. जायफल—प्रत्येक ४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम खदिर काष्ठ के छोटे-छोटे टुकड़े कर यवकुटचूर्ण करें। एक बड़े कलईदार पात्र में इस यवकुट और $12\frac{1}{2}$ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पकावें। अष्टमांशावशेष रहने पर छान लें। अब छने हुए क्वाथ को छोटे स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखकर पुनः पकावें। जब पकाते-पकाते यह क्वाथ अर्धघन हो जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें तथा उसमें उपर्युक्त पाँच द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर जमने को छोड़ दें। जब वह शीतल हो जाय तो ३-३ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी चूसते रहने से दन्तरोग, ओष्ठरोग, मुखरोग, जिह्वा और तालु रोग नष्ट हो जाते हैं। इसे मुख में धारण करने से मुख सुगन्धित रहता है।

६०. खदिरादि वटी-२ (च.द.)

गायत्रिसारतुलयेरिमवल्कलानां
सार्द्धं तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भिः।
निक्वाथ्य पादमवशिष्टसुवस्त्रपूतं
भूयः पचेदथ शनैर्मृदुपावकेन॥९८॥

तस्मिन् घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां
श्लक्ष्णं क्षिपेच्च कवलग्रहभागिकानाम्।
एलामृणालसितचन्दनचन्दनाम्बु-
श्यामातमालविकषाघनलौहयष्टी॥९९॥

लज्जाफलत्रयरसाञ्जनधातकीनां
श्रीपुष्पगैरिककुटन्नटकट्फलानाम् ।
पद्माटलोध्रवटरोहयवासकानां
मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम् ॥१००॥
कंक्कोलजातीफलकोषलवङ्गकानि
चूर्णीकृतानि विदधीत फलांशिकानि ।
शीतेऽवतार्य्य घनसारचतुष्पलञ्च
क्षिप्त्वा कलायसदृशीर्गुडिकाः प्रकुर्यात् ॥१०१॥
शुष्कामुखे विनिहिता विनिवारयन्ति
रोगान् गलौष्ठरसनाद्विजतालुजातान् ।
कुर्युर्मुखे सुरभितां पटुतां रुचिञ्च
स्थैर्य्यं परं दशनगं रसनालघुत्वम् ॥१०२॥

कथ १ तुला (४.६०० ग्राम), विट् खदिरत्वक् ११.५०० ग्राम (सार्ध तुलायुगल) तथा जल ४ द्रोण (५० लीटर) लें।

प्रक्षेपद्रव्य—१. छोटी इलायची, २. खस, ३. श्वेतचन्दन, ४. लालचन्दन, ५. सुगन्धवाला, ६. प्रियंगु, ७. तमालपत्र, ८. मंजीठ, ९. नागरमोथा, १०. अगुरु, ११. मुलेठी, १२. लज्जालु, १३. आमला, १४. हरीतकी, १५. बहेड़ा, १६. रसाञ्जन, १७. धातकीपुष्प, १८. नागकेशर, १९. लवङ्ग, २०. शुद्ध गैरिक, २१. दारुहल्दी, २२. कट्फल, २३. पद्मकाठ, २४. लोध्रत्वक्, २५. वटप्ररोह, २६. जवासा, २७. जटामांसी, २८. हल्दी, २९. रास्ना और ३०. दालचीनी—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें; ३१. शीतलचीनी, ३२. जायफल, ३३. जावित्री तथा ३४. लौंग—ये चारों द्रव्य प्रत्येक ४६ ग्राम (१-१ पल) एवं ३५. कर्पूर ४ पल (१८७ ग्राम) लें। सर्वप्रथम खदिरसार (कथ) को चूर्ण कर लें। ततः विट्खदिरत्वक् का यवकुट करें और कलईदार पात्र में ५० लीटर जल के साथ खदिर त्वक् का क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर खदिर क्वाथ को २ बार कपड़े से छान लें। ततः छोटे स्टेनलेस स्टील के पात्र में छने हुए क्वाथ को रखकर पुनः पाक करें। इस क्वाथ में कथ चूर्ण ४६०० ग्राम डालकर अच्छी तरह से मिला लें। जब कथ चूर्ण पूर्णतया खदिर क्वाथ में घुल जाय तो पुनः इसे दो बार कपड़ा से छान लें। पात्र तल में यदि कथ का अवशिष्ट अपद्रव्य (बालू) आदि हो तो पात्र को साफ करें और फिर से छने हुए कथ मिश्रित खदिर क्वाथ को उस पात्र में डालकर मन्दाग्नि से घन करें। जब कथ मिश्रित खदिर क्वाथ मधु जैसा गाढ़ा हो जाय तो उसे चूल्हे से नीचे उतार लें और छोटी इलायची से लौंग तक के ३५ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करके घन हुए खदिर क्वाथ में प्रक्षिप्त कर चम्मच से अच्छी तरह मिला दें। जब पूरा द्रव्य ठण्डा हो जाय तो उसमें कर्पूर मिलाकर मशीन में पीस लें। यदि मशीन नहीं हो तो सिल पर पीस लें। ततः ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'खदिरादि वटी' को दिन में ४-५ बार मुख में रखकर चूसने से गला के रोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, दन्तरोग और तालुगत रोग नष्ट हो जाते हैं तथा मुख में सुगन्धी आ जाती है। यह वटी भोजन में रुचि उत्पन्न करती है। इससे दाँत की स्थिरता तथा जिह्वा में लघुता उत्पन्न होती है।

मात्रा—३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) दिन में ४-५ बार मुख में रख कर चूसना। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—गहरे कत्थई वर्ण की। **स्वाद**—कषाय, कटु एवं तिक्त। **उपयोग**—गला के रोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, दन्तरोग एवं तालुरोग में उपयोगी है। यह अरुचि नाशक है, दाँत की स्थिरता एवं मुखदुर्गन्धनाशक है।

६१. सहकार वटी

सहकारस्य निम्बस्य खदिरस्याशनस्य च ।
तुलां पृथग् विनिक्वाथ्य द्रोणमानेन चाम्बुना ॥१०३॥
एकीकृत्य कषायांश्च पादशिष्टान् पुनः पचेत् ।
तत्र क्षिपेन्मलयजं बालकं रक्तचन्दनम् ॥१०४॥
गैरिकं देवपुष्पञ्च धातकीं रजनीद्वयम् ।
लोध्रं जातीफलं श्यामां चातुर्जातं फलत्रयम् ॥१०५॥
वटप्ररोहमञ्जिष्ठामांसीरम्बुधरं बिडम् ।
कटुत्रयमयश्चन्द्रं प्रसृत्यर्द्धप्रमाणतः ॥१०६॥
ततः कलायसदृशीर्विदध्याद् गुडिका भिषक् ।
रोगान् कण्ठौष्ठरसनादन्ततालुसमुद्भवान् ॥१०७॥
सहकारवटी हन्यादाश्वेव वदने धृता ।
जनयेन्मुखसौरभ्यं सुरुचिं स्थिरदन्तताम् ॥१०८॥

क्वाथ द्रव्य—१. आमवृक्षत्वक्, २. निम्बवृक्षत्वक्, ३. खदिरकाष्ठ तथा ४. विजयसारकाष्ठ—ये चारों द्रव्य १-१ तुला (४६०० ग्राम) लें और जल ४ द्रोण (५० लीटर) लें।

प्रक्षेप द्रव्य—१. श्वेतचन्दन, २. सुगन्धबाला, ३. रक्तचन्दन, ४. शुद्ध गैरिक,५. लौंग, ६. धातकीपुष्प, ७. हल्दी, ८. दारुहल्दी, ९. लोध्रत्वक्, १०. जायफल, ११. अनन्तमूल, १२. छोटीइलायची, १३. दालचीनी, १४. तेजपात, १५. नागकेशर, १६. आमला, १७. हरड़, १८. बहेड़ा १९. वटप्ररोह, २०. मंजीठ, २१. जटामांसी, २२. नागरमोथा, २३. विडलवण, २४. सोंठ, २५. पीपर २६. मरिच, २७. लौहभस्म और २८. कर्पूर—सभी द्रव्य प्रत्येक १-१ पल (४६-४६ ग्राम) लें। सर्वप्रथम आम्रत्वक् से विजयसार काष्ठ तक के चारों द्रव्यों को पृथक्-पृथक् काट-कूटकर यवकुट करें और एक बड़े कलईदार पात्र में पृथक्-पृथक् १-१ द्रोण (१२½ लीटर) जल में क्वाथ करें। जब चौथाई ३ लीटर के करीब शेष रहे तो छान लें। इस प्रकार चारों द्रव्यों का क्वाथ

करें। अब इन चारों क्वाथों को एक साथ मिलाकर पुनः कपड़े से छान लें और एक पात्र में रखकर उस क्वाथ को घन रूप में पकावें। जब मधु जैसा अर्धघन हो जाय तो श्वेतचन्दन से मरिच तक के सभी २६ द्रव्यों का चूर्ण कर आम्रादि के अर्धघन क्वाथ में डालकर अच्छी तरह मिला लें। जब पात्र ठण्डा हो जाय तो लौहभस्म और कर्पूर मिलाकर २-२ रत्ती की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'सहकारवटी' को हमेशा मुख में रखकर चूसने से कण्ठरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, दन्तरोग और तालुरोग नष्ट हो जाते हैं। मुखदुर्गन्ध एवं अरुचि नष्ट कर मुख में सुगन्ध और भोजन में रुचि पैदा करता है तथा दाँतों को मजबूत करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा. (३ रत्ती) दिन में ४-५ बार चूसना चाहिए। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ (गहरा कत्थई वर्ण)। **स्वाद**—कषाय रस। **उपयोग**—मुखरोग, कण्ठरोग, जिह्वारोग, दन्तरोग, ओष्ठरोग और तालु रोग में।

६२. रसेन्द्र वटी

रसेन्द्रगन्धाश्मजतुप्रवाल-
लौहानि वैद्यः समभागकानि।
रसेन्द्रपादप्रमितञ्च हेम
विभाव्य निम्बाशनवह्नितोयैः ॥१०९॥
ततो वटीर्वल्लमिता विमर्द्य
विधाय बुद्ध्या बहुवारवारा।
फलत्रिकक्वाथजलेन वापि
प्रातः प्रयुञ्ज्यात् प्रकराम्बुना वा ॥११०॥
रसेन्द्रवट्यास्यगदान् निहन्ति
वातामयान् मेहगणान् ज्वरांश्च।
करोति वह्नेर्बलवीर्ययोश्च
पुष्टिं विशेषेण रसायनीयम् ॥१११॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग, ३. शुद्ध शिलाजीत १ भाग, ४. प्रवालभस्म १ भाग, ५. लौहभस्म १ भाग तथा ६. स्वर्णभस्म $\frac{१}{४}$ भाग लें।

भावना द्रव्य—निम्बत्वक्क्वाथ, विजयसारकाष्ठक्वाथ और चित्रकमूलक्वाथ।

एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः उस कज्जली में अन्य द्रव्यों (शिलाजीत, प्रवाल, लौह एवं स्वर्ण भस्मों) को मिलाकर निम्ब क्वाथ में १ दिन मर्दन करें। इसी तरह १-१ दिन विजयसार क्वाथ एवं चित्रक क्वाथ में मर्दन कर ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में अच्छी तरह सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। लिसोड़ाक्वाथ या त्रिफलाक्वाथ या अगुरु क्वाथ के साथ रसेन्द्रवटी १-१ वटी प्रातः-सायं लेने से मुखरोग, वातरोग, प्रमेह एवं ज्वर रोग नष्ट हो जाते हैं। यह वटी पाचकाग्नि को बढ़ाती है, बल एवं वीर्य को बढ़ाती एवं पुष्ट करती है और रसायनगुणप्रद है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—लिसोड़ाक्वाथ या त्रिफला क्वाथ या अगुरु क्वाथ के साथ। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—मुखरोग, वायुरोग, प्रमेह एवं ज्वर में तथा रसायन गुणयुक्त।

६६. मुखरोगहरी वटी (र.सा.सं.)

रसगन्धौ समौ ताभ्यां द्विगुणञ्च शिलाजतु।
गोमूत्रेण विमर्द्याथ सप्तधाऽर्कद्रवेण च ॥११२॥
जातीनिम्बमहाराष्ट्रीरसैः सिध्यति पाकहा।
कणामधुयुता हन्ति मुखपाकं सुदारुणम् ॥११३॥
अष्टगञ्जा धृता वक्त्रे सद्यो हन्ति वटी गदान्।
महाराष्ट्र्याश्च कल्केन मुखञ्च प्रतिसारयेत् ॥
धारणात्सेवनाच्चापि वटी हन्ति मुखामयान् ॥११४॥

शुद्ध पारद २ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग और शुद्ध शिलाजीत ८ भाग लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बना लें। ततः सात बार गोमूत्र की भावना दें। ततः अर्कपत्रस्वरस, चमेलीपत्रस्वरस, निम्बत्वक्क्वाथ और जलपिप्पलीस्वरस या क्वाथ की ७-७ भावना दें तथा ८-८ रत्ती (१ ग्राम) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'मुखरोगहरी वटी' को पिप्पली चूर्ण और मधु से लेने से या २-३ बार चूसने से मुखरोग, दन्तरोग, जिह्वारोग, तालुरोग और कण्ठरोग नष्ट हो जाते हैं। महाराष्ट्री = जलपिप्पलीस्वरस का प्रतिसारण भी करना चाहिए।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—पिप्पलीचूर्ण और मधु से। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी (गोमूत्रगन्धी)। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—समस्त मुख रोगों में।

६४. पथ्या वटी (र.सा.सं.)

पथ्याबालककुष्ठञ्च गोमूत्रेण प्रसाधयेत्।
एषा च वटिका हन्ति मुखदौर्गन्ध्य सन्ततिम् ॥११५॥

हरीतकीचूर्ण, सुगन्धबालाचूर्ण और कुष्ठचूर्ण (समभाग) लें। एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में उपर्युक्त तीनों द्रव्यों के सूक्ष्मचूर्ण डालें और चतुर्गुण गोमूत्र में मन्दाग्नि से पकावें। जब गोमूत्र सूख जाय तो सिल पर खूब पीस लें तथा ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर धूप में सुखा लें। इन वटियों को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को चूसने से मुख-दौर्गन्ध्य नष्ट हो जाता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मुख में केवल चूसना है। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—धूसर। **स्वाद**—कषाय एवं गोमूत्र जैसा तीक्ष्ण। **उपयोग**—मुखदौर्गन्ध्यनाशनार्थ।

६५. पार्वतीरस (र.सा.सं.)

पार्वतीशिवसम्भूतो दरदो मधुपुष्पकम्।
गुडूचीशाल्मलीद्राक्षाधान्यभूनिम्बमार्कवम् ॥११६॥
तिलमुद्गपटोलञ्च कूष्माण्डलवणद्वयम्।
यष्टिकाधान्यकं भस्म चान्तर्दग्धं समं समम् ॥११७॥
मुखरोगं निहन्त्याशु पार्वतीरस उत्तमः।
पित्तज्वरं चिरं हन्ति तिमिरञ्च तृषामपि ॥११८॥

१. शुद्ध गन्धक, २. शुद्ध पारद, ३. शुद्ध हिङ्गुल, ४. महुए का फूल, ५.गुडूची, ६. सेमर मुशली, ७. द्राक्षा, ८. धनियाँ, ९. चिरायता, १०. भृंगराज, ११. तिल, १२ मूँग, १३. पटोलपत्र, १४. कूष्माण्डफल, १५. सैन्धवलवण, १६. विड्लवण, १७. मुलेठी और १८. धनियाँ—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें। एक छोटी हाँडी में महुए के फूल से धनियाँ तक के सभी १५ द्रव्यों को डालकर शराव से मुख ढककर कपड़मिट्टी से बन्दकर कुक्कुटपुट में पाककर अन्तर्दग्ध भस्म (मसी) बना लें। स्वाङ्गशीत होने पर पुट से हँडिया निकालकर मसी भस्म निकाल लें और छननी से छानकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। छननी से छानकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। ततः एक बड़े खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मिलाकर अच्छी कज्जली बना लें। कज्जली में हिंगुल डालकर पुनः मर्दन करें। ततः इस मसी भस्म को कज्जली के साथ मिलाकर ३ घण्टे तक मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पार्वतीरस' कहते हैं। ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में इस पार्वती रस को मधु के साथ प्रातः-सायं सेवन करने से शीघ्र ही मुखरोग नष्ट हो जाता है, साथ ही पित्त ज्वर, तिमिर और तृषाधिक्य रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—राख जैसा। **उपयोग**—मुखरोग, पित्तज्वर और तिमिर में।

६६. सप्तामृत रस (रसरत्नाकर)

मृतसूताभ्रकं तुल्यं मृतलौहं शिलाजतु।
गुग्गुलुञ्च शिलां ताप्यं समांशं मधुना लिहेत्।
माषमात्रप्रयोगेण मुखरोगं विनाशयेत् ॥११९॥

१. रससिन्दूर, २. अभ्रकभस्म, ३. लौहभस्म, ४. शुद्ध शिलाजीत, ५. शुद्ध गुग्गुलु, ६. शुद्ध मनःशिला तथा ७. स्वर्णमाक्षिकभस्म (समभाग) लें। एक बड़े साफ खरल में पहले रससिन्दूर को मर्दन करें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को उसी खरल में मिलाकर जल की भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन करें और १ ग्राम (८-८ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काँचपात्र में संग्रहीत करें।

मात्रा—८०० मि.ग्रा. से १ ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—गोमूत्र गन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी मुखरोगों में।

६७. चतुर्मुख रस (र.सा. सं.)

मृतं सूतं मृतं स्वर्णं द्वाभ्यान्तुल्यां मनःशिलाम्।
विमर्दयेच्च तैलेन अतसीसम्भवेन च ॥१२०॥
तद्गोलं वस्त्रतो बद्ध्वा लेपयेच्च समन्ततः॥
अतसीफलकल्केन दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत्॥
उद्धृत्य धारयेद्वक्त्रे जिह्वादन्तास्यरोगनुत् ॥१२१॥

१. रससिन्दूर १ भाग, २. स्वर्णभस्म १ भाग तथा ३. शुद्ध मैनसिल २ भाग लें। एक साफ खरल में तीनों द्रव्यों को एक साथ मर्दन करें। ततः अतसी तैल की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। पुनः इस भावित औषधि का एक गोला बना लें। उस गोले को कपड़े से बाँधें और उस पर अतसी कल्क का १ अंगुल मोटा लेप कर सुखा लें। इसके बाद अतसीबीजक्वाथ में ३ दिनों तक मृद्वग्नि से दोलायन्त्र में उस गोले की पोटली बनाकर पकावें। चौथे दिन पोटली खोलें एवं औषधि निकालकर खरल में पीसें और १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसकी १ रत्ती की मात्रा मुख में रखने से यह जिह्वा, दाँत एवं मुख रोगों को नष्ट करता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से; मुख में धारण करना। **गन्ध**—निर्गन्ध तथापि तैलीय गन्ध। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तैलीय आर्द्रता युक्त स्वाद। **उपयोग**—दन्तरोग, मुख-रोग एवं जिह्वारोग में।

६८. मालत्यादि घृत

मालत्या द्रोणपुष्प्याश्च निम्बबब्बोलयोस्तथा।
सहाचरस्य सर्जस्य स्वरसेन पृथक् पृथक् ॥१२२॥
कल्कैर्मलयजोशीररक्तचन्दनचम्पकैः ।
अश्वत्थवटनीलीभी रजनीदारुसैन्धवैः ॥१२३॥
दार्व्या विश्वाह्वकुष्ठाभ्यां कणया च पचेद् घृतम्।
शनैस्ताम्रमये पात्रे कृतवङ्गविलेपने ॥१२४॥
मालत्याद्यमिदं सर्पिर्गदान् मुखसमुद्भवान्।
निहन्यान्नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥१२५॥

क्वाथ—१. चमेलीपत्रस्वरस, २. द्रोणपुष्पीस्वरस, ३. निम्बपत्रस्वरस, ४. बबूलपत्रस्वरस, ५. सहचरस्वरस और ६. सर्जस्वरस—प्रत्येक द्रव्य १-१ लीटर लें तथा गोघृत १ किलो ग्राम लें।

कल्क—१. श्वेतचन्दन, २. खस, ३. लालचन्दन, ४. चम्पक पुष्प, ५. पीपलत्वक्, ६. वटत्वक्, ७. नीलीवृक्षत्वक्, ८. हल्दी, ९. देवदारु, १०. सैन्धव, ११. दारुहल्दी, १२. सोंठ; १३. कूठ और १४. पीपर—प्रत्येक द्रव्य १८-१८ ग्राम लें।

सर्वप्रथम कलई किये हुए ताम्र पात्र में घृत का मूर्च्छन करें। ततः श्वेतचन्दन से पीपर पर्यन्त सभी १४ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। ततः मूर्च्छित घृत में कल्क और चमेली पत्र स्वरस या क्वाथ मिलाकर पाक करें। स्वरस सूखने पर द्रोणपुष्पी स्वरस का पाक करें। इसी प्रकार क्रमशः निम्बपत्र-स्वरस, बबूलपत्रस्वरस, सहचरस्वरस तथा सर्जस्वरस का पाक करें। अन्त में घृत में जब जलीयांश नहीं रहे तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में घृत को संग्रहीत करें। इसे 'माल- त्यादि घृत' कहते हैं। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध या गरम जल के साथ सेवन करने से निःसन्देह सभी प्रकार के मुखरोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्रा.। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के मुख रोग में।

६९. विदार्यादि तैल (च.द.)

ततो विदारीयष्ट्याह्वशृङ्गाटककशेरुभिः।
तैलं दशगुणैः क्षीरं सिद्धं नस्ये तु योजयेत् ॥१२६॥

तिल तैल १ लीटर तथा गोदुग्ध १० लीटर लें।

कल्क—१ विदारीकन्द, २. मुलेठी, ३. सिंघाड़ा तथा ४. कशेरुकन्द—प्रत्येक ६० ग्राम लें। इन्हें कूटें और सिल पर पीसकर कल्क बना लें। तिल तैल का पहले मूर्च्छन करें। ततः कल्क और गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छानें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का नस्य लेने से दन्तोत्पाटन जन्य वेदना शान्त हो जाती है।

मात्रा—३-६ बूँद नस्यार्थ। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—दन्तोत्पाटन जन्य वेदना में।

७०. सहचर तैल (च.द.)

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य
द्रोणेऽम्भसः संश्रपयेद् यथावत्।
पूते चतुर्भागरसे तु तैलं
पचेच्छनैरर्द्धपलप्रयुक्तैः ॥१२७॥
कल्कैरनन्ताखदिरेरिमेद-
जम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम्।
तत्तैलमाश्वेव धृतं मुखेन
स्थैर्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥१२८॥

क्वाथ—नीलपुष्प सहचर ५ किलो का १२½ लीटर जल में क्वाथ करें।

कल्क—१. अनन्तमूल, २. खदिरकाष्ठ, ३. इरिमेद (विट्खदिर) त्वक्, ४. जामुनवृक्षत्वक्, ५. आम्रत्वक्, ६. मुलेठी तथा ७. नीलकमलपुष्प—प्रत्येक द्रव्य ५४ ग्राम लें एवं ८. तिलतैल १५०० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम सहचर का यवकुट करें और एक बड़े पात्र में १२½ लीटर (१ द्रोण) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर उतारकर कपड़ा से छान लें। ततः अनन्तमूल से कमलपुष्प तक के सभी ७ द्रव्यों का चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इसके बाद तिलतैल का मूर्च्छन करें। तदनन्तर सहचरक्वाथ और कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस सहचरतैल का कवल या गण्डूष धारण करने से दाँत स्थिर एवं दृढ़ हो जाते हैं।

मात्रा—१ से २ तोले (१२ से २३ मिली.)। **अनुपान**—मुख धारणार्थ। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु-तिक्त। **उपयोग**—सभी मुख रोग में।

७१. इरिमेदादि तैल (च.द.)

इरिमेदत्वक्पलशतमभिनवमापोथ्य खण्डशः कृत्वा।
तोयाढकैश्चतुर्भिर्निक्वाथ्य चतुर्थशेषेण ॥१२९॥
क्वाथेन तेन मतिमांस्तैलस्यार्द्धाढकं शनैर्विपचेत्।
कल्कैरक्षसमांशैर्मञ्जिष्ठालोध्रमधुकानाम् ॥१३०॥
इरिमेदखदिरकट्फललाक्षान्यग्रोधमुस्तसूक्ष्मैला-
कर्पूरागुरुपद्मकलवङ्गकंक्कोलजातीफलानाम् ॥१३१॥
पतङ्गकोषगैरिकवराङ्गगजकुसुमधातकीनाञ्च।
सिद्धं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु ॥१३२॥
परिशीर्णदन्तविद्रधिसौषिरशीताददन्तहर्षेषु।
कृमिदन्तदालनचलितप्रहृष्टमांसावशीर्णेषु॥
मुखदौर्गन्ध्येषु कार्यं प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलमिदम् ॥१३३॥

क्वाथ—इरिमेद (विट्खदिर) त्वक् ४.६०० किलो और जल १२½ लीटर लें।

कल्क—१. मंजीठ, २. लोध्रत्वक्, ३. मुलेठी, ४.

विट्खदिरत्वक्, ५. खदिरकाष्ठ, ६. कट्फल, ७. लाक्षा, ८. वटत्वक्, ९. नागरमोथा, १० छोटी इलायची, ११. कर्पूर, १२. अगुरु, १३. पद्मकाष्ठ, १४. लौंग, १५. शीतलचीनी, १६. जायफल, १७. पीतचन्दन, १८. जातिफल, १९. गैरिक, २०. दालचीनी, २१. नागकेशर और २१. धातकीपुष्प—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें तथा २२. तिल तैल १५०० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम तैल का मूर्च्छन करें। ततः इरिमेदत्वक् को यवकुट कर १२½ लीटर जल में पाक करें। जब चौथाई जल शेष रहे तो उतारकर क्वाथ छान लें। ततः मंजीठ से धातकीपुष्प तक के सभी २१ द्रव्यों का चूर्ण बनाकर सिल पर जल से पीसकर कल्क बना लें। अब कल्क और क्वाथ को मूर्च्छिततैल में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर सम्यक् पाकार्थ ६ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेह-पाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। छानने के बाद इसमें कर्पूर मिलाना चाहिए। इस 'इरिमेदादितैल' का गण्डूष धारण करने या मुख प्रतिसारण करने से मुख के सभी प्रकार के रोग—ओष्ठ, दन्त, जिह्वा, तालु एवं कण्ठरोग तथा शीर्णदन्त, मुखविद्रधि, सौषिर, शीताद, दन्तहर्ष, कृमिदन्त, दालन, चलदन्त, अधिमांस आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **अनुपान**—मुखधारणार्थ। **गन्ध** = कर्पूरगन्धी। **वर्ण** = रक्ताभ। **स्वाद**-कटु-तिक्त। **उपयोग** = सभी मुख, जिह्वा, तालु, कण्ठ एवं दन्त रोगों में।

७२. लाक्षादि तैल (च.द.)

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक् प्रस्थं समं पचेत्।
चतुर्गुणेरिमक्वाथे द्रव्यैश्च पलसम्मितैः ॥१३४॥
लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेशरपद्मकैः ।
चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं गण्डूषधारणम् ॥१३५॥
दालनं दन्तचालञ्च दन्तमोक्षं कपालिकाम्।
शीतादं पूतिवक्त्रञ्च अरुचिं विरसास्यताम्।
हन्यादास्यगदानेतान् कुर्य्याद्दन्तानपि स्थिरान् ॥१३६॥

१. तिलतैल ७५० मि.ली., २. लाक्षारस ७५० मि.ली., ३ गोदुग्ध ७५० मि.ली. तथा ४. विटखदिरत्वक् क्वाथ ३ लीटर लें।

कल्क—१. लोध्रत्वक्, २. कट्फल, ३. मंजीठ, ४. कमलकेशर, ५. पद्मकाष्ठ, ६. रक्तचन्दन, ७. नीलकमल और ८. मुलेठी—प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः लोध्र से मुलेठी पर्यन्त सभी ८ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छित तैल में कल्क और लाक्षा मिलाकर मृद्वग्नि से पाक करें। लाक्षारस सूखने पर उसमें गोदुग्ध मिलाकर पकावें। दूध सूखने पर इरिमेदक्वाथ ३ लीटर डालकर पाक करें। क्वाथ सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'लाक्षादि तैल' का मुख में गण्डूष धारण करने से दालन, दन्तचालन, दन्तमोक्ष, कपालिका, शीताद, मुखदुर्गन्धिता, अरुचि, मुख-विरसता आदि दन्त रोग नष्ट हो जाते है तथा दाँत स्थिर एव दृढ़ हो जाते है।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **अनुपान**—मुखधारणार्थ। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु-तिक्त। **उपयोग**—दन्तरोग, शीताद एवं मुखदुर्गन्ध में।

७३. बकुलाद्य तैल (च.द.)

बकुलस्य फलं लोध्रं वज्रवल्ली कुरुण्टकम्।
चतुरङ्गुलबब्बोलवाजिकर्णेरिमाशनम् ॥१३७॥
एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम्।
स्थैर्यं करोति चलतां दन्तानां धावनेन च ॥१३८॥

१. मौलश्री फल, २. लोध्रत्वक्, ३. अस्थिसंहारी, ४. नीलसहचर, ५. अमलतास वृक्षत्वक्, ६. बबूल छाल, ७. शालभेद, ८ विजयसार काष्ठ और ९. विट्खदिरत्वक्—प्रत्येक द्रव्य ४७५ ग्राम लें। इसमें से ४४४ ग्राम क्वाथार्थ और २८ ग्राम कल्क के लिए ग्रहण करें। कुल ४२७५ ग्राम लें। तिल तैल १ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ४ किलो द्रव्य को यवकुट कर १६ लीटर जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर छान लें। ततः २५० ग्राम कल्कार्थ द्रव्य का चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छित तैल में क्वाथ एवं कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'बकुलादि तैल' का गण्डूष धारण करने से तथा नस्य लेने से हिलते हुए दाँत स्थिर एवं दृढ़ हो जाते हैं।

७४. जात्यादि तैल

जातीपल्लवतोयेन शङ्खपुष्पीरसेन च।
वकुलत्वक्कषायेण पचेत्तैलं तिलोद्भवम् ॥१३९॥
गायत्रीमाम्रबीजञ्च त्रिफलां कटुकत्रयम्।
चव्यं नीलोत्पलं कुष्ठं मधुकं रजनीद्वयम् ॥१४०॥
मुस्तकं बालकं लोध्रं सिन्दूरं स्वर्णगैरिकम्।
कल्कीकृत्य क्षिपेत्तत्र वटरोहमयोऽपि च ॥१४१॥
जात्याद्याख्यमिदं तैलं निखिलान् मुखजान् गदान्।
भगन्दरोपदंशौ च व्रणं दुष्टं निहन्ति च ॥१४२॥

क्वाथ—१. चमेलीपत्रस्वरस ४ लीटर, २. शंखपुष्पीक्वाथ ४ लीटर, ३. मौलसरीत्वक् क्वाथ ४ लीटर और ४. तिलतैल १ लीटर लें।

कल्क—१ खदिरकाष्ठ, २. आम की गुठली की मज्जा, ३. आमला, ४. हरीतकी, ५. बहेड़ा, ६. सोंठ, ६. पीपर, ८. मरिच, ९. चव्यकाण्ड, १०. नीलकमल, ११. कूठ, १२. मुलेठी, १३. हल्दी, १४. दारुहल्दी. १५. नागरमोथा, १६. सुगन्धबाला, १७. लोध्रत्वक्, १८. नागसिन्दूर, १९. गैरिक, २० वटप्ररोह और २१. लौहभस्म—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः खदिरक्वाथ से लौहभस्म पर्यन्त सभी २१ द्रव्यों का चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छित तैल में चमेली स्वरस और कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो शंखपुष्पीक्वाथ डालकर पाक करें। तथा शंखपुष्पी क्वाथ सूखने पर मौलसरीक्वाथ देकर तैल पाक करें। क्वाथ का जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'जात्यादि तैल' कहते हैं। इसका गण्डूष धारण करने से समस्त मुखरोग नष्ट हो जाते हैं। इसके साथ ही इसके उपयोग से भगन्दर, उपदंशज व्रण और दूषित व्रण (नाड़ी व्रण) आदि नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **अनुपान**—कवल-गण्डूषादि
गन्ध = तैलगन्धी। **वर्ण** = रक्ताभ। **स्वाद**–कटु-तिक्त।
उपयोग = मुखरोग, भगन्दर, उपदंशजव्रण, नाड़ीव्रण में।

मुखरोग में पथ्य (यो.र.)

स्वेदो विरेको वमनं गण्डूषः प्रतिसारणम्।
कवलोऽसृक्स्रुतिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्मणी ॥१४३॥

तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गलो रसः।
बहुपत्री कारबेल्लं पटोलं बालमूलकम् ॥१४४॥
कर्पूरनीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो घृतम्।
कटुतिक्तौ च वर्गोऽयं मित्रं स्यान्मुखरोगिणाम् ॥१४५॥

स्वेदन, विरेचन, वमन, गण्डूष, प्रतिसारण, कवलग्रह, रक्तमोक्षण, नस्य, धूम, शस्त्रकर्म, अग्निकर्म, कोदो, सावाँ, कंगुनी आदि क्षुद्र धान्य, जौ, मूँग, कुलथी, जंगली पशु-पक्षियों के मांस रस, शतावर, करैला, परवल, बालमूली, कर्पूर का जल, गरम पानी, ताम्बूल, कथ, घृत, कटु एवं तिक्तरस प्रधान द्रव्य मुखरोग में हितकर है।

मुखरोग में अपथ्य (यो.र.)

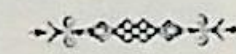
दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम्।
दधि क्षीरं गुडं माषं रूक्षान्नं कठिनाशनम् ॥१४६॥
अधोमुखेन शयनं गुर्वभिष्यन्दकारि च।
मुखरोगेषु सर्वेषु दिवानिद्रां विवर्जयेत् ॥१४७॥

दतुअन से दाँत साफ करना, स्नान करना, अम्ल पदार्थ का सेवन, मछली, जलीय मांस, दही, दूध, गुड़, उड़द, रूक्ष अन्न, कठिन द्रव्यों को चबाकर भक्षण करना, नीचे मुख कर सोना, गुरु एवं अभिष्यन्दी पदार्थों का भोजन तथा सभी प्रकार के मुखरोगों में दिन में सोना—ये सभी वर्जित हैं।

दन्तरोग में अपथ्य (भा.प्र.)

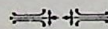
फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम्।
तथाऽतिकठिनान् भक्ष्यान् दन्तरोगी विवर्जयेत् ॥१४८॥

इति भैषज्यरत्नावली मुखरोगाधिकारः।



खट्टे फल, शीतल जल, रूक्ष अन्न, दन्तुअन करना और अतिकठिन द्रव्यों का भोजन दाँत के रोगी को छोड़ देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य मुखरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ कर्णरोगाधिकारः (६२)

कर्णशूल चिकित्सा (च.द.)

कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गबेररसैः शुभैः ।
सुखोष्णैः पूरयेत् कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥१॥

कपित्थ (कैंत) फल स्वरस, बिजौरानिम्बुस्वरस तथा आर्द्रक स्वरस—इन्हें मिलाकर आग में गरम कर सुखोष्ण द्रव कान में ३-४ बूंद डालने से कर्णशूल रोग नष्ट हो जाता है।

१. शृङ्गबेरादि योग (च.द.)

शृङ्गबेरञ्च मधु च सैन्धवं तैलमेव च ।
कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥२॥

१. आर्द्रकस्वरस ३ मि.ली, २. मधु १ ग्राम, ३. सैन्धवलवण १२५ मि.ग्रा तथा तिलतैल ३ मि.ली. लें। इन चारों द्रव्यों को मिलावें और थोड़ा गरम करें। कदुष्ण इस द्रव को कानों में डालने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

२. लशुनादि योग (च.द.)

लशुनार्द्रकशिग्रूणां स्वरसो मूलकस्य च ।
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥३॥

१. लशुनस्वरस, २. आर्द्रकस्वरस, ३. सहिजनत्वग्रस, ४. मूलीकन्दस्वरस और ५. कदलीकन्दस्वरस—पाँचों समभाग लेकर एक साथ मिलावें और गरम कर सुखोष्ण द्रव कानों में डालने से (पाँचों को एक साथ मिलाकर डालें या अकेले १-१ स्वरस को गरम कर डालने से) कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

३. समुद्रफेनचूर्ण पूरण (च.द.)

समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या वाऽप्यवचूर्णयेत् ॥४॥

युक्तिपूर्वक पहले समुद्रफेन के सूक्ष्म चूर्ण को कान में डालने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

४. आर्द्रकादि स्वरस पूरण (च.द.)

आर्द्रकसूर्यावर्त्तकशोभाञ्जनमूलकस्वरसाः ।
मधुतैलसैन्धवयुताः पृथगुक्ताः कर्णशूलहराः ॥५॥

१. आर्द्रकस्वरस, २. हुरहुर (सूर्यावर्त्त) स्वरस, ३. सहिजनत्वग्रस, ४. मूलीस्वरस, ५. मधु, ६. तिलतैल और ७. सैन्धवलवण लें। स्वरस १-१ मि.ली., तैल ३ मि.ली., मधु १ ग्राम तथा सैन्धव १२५ मि.ग्रा. मिलाकर गरम करें और कदुष्ण द्रव डालने से या पृथक्-पृथक् १-१ रस के साथ मधु-तैल-सैन्धव मिलाकर डालने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

५. शोभाञ्जन रस प्रयोग (च.द.)

शोभाञ्जनकनिर्यासस्तिलतैलेन संयुतः ।
व्यक्तोष्णः पूरणः कर्णे कर्णशूलोपशान्तये ॥६॥

सहिजनस्वरस और तिलतैल दोनों समभाग मिलाकर गरम करें। ततः सुखोष्ण इस द्रव को ४-४ बूंद कान में डालने से कर्णशूल रोग शान्त हो जाता है।

६. कर्णशूल में अष्टमूत्र प्रयोग (च.द.)

अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन च ।
कोष्णेन पूरयेत्कर्णौ कर्णशूलोपशान्तये ॥७॥

कर्णशूल रोग से पीड़ित व्यक्ति के कान में [1]अष्टमूत्रों (भेड़ीमूत्र, बकरीमूत्र, गोमूत्र, भैंसमूत्र, हाथीमूत्र, ऊँटमूत्र, घोड़ामूत्र एवं गदहामूत्र) में से किसी एक मूत्र को थोड़ा गरम कर डालने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

७. तप्त तैल प्रयोग (च.द.)

अश्वत्थपत्रखल्वं वा विधाय बहुपत्रकम् ।
तैलाक्तमङ्गारपूर्णं विदध्याच्छ्रवणोपरि ॥८॥
यत्तैलं च्यवते तस्मात् खल्लादङ्गारतापितात् ।
तत्प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥९॥

पीपल के ३-४ पत्तों को एक सीध में रखकर एक दोना बना लें और उस दोने में एक छिद्र करें। उसमें जलता हुआ १ अंगार खण्ड रखें और उस पर तिलतैल की १०-२० बूँद डालें। इस गरम तैल को कर्णशूल से पीड़ित व्यक्ति के कान में ४-५ बूँद टपकावें। ऐसा करने से कर्णशूल रोग तुरन्त नष्ट हो जाता हैं।

८. अर्क-स्नुहीपत्र पुटपाक रस पूरण (च.द.)

अर्कपत्रपुटे दग्धः स्नुहीपत्रभवो रसः ।
कदुष्णः पूरणादेव कर्णशूलनिवारणः ॥१०॥

सेहुण्ड पत्रों को मन्दार (अर्क) के पत्र में लपेटकर पुटपाक करें। ततः पुट खोलकर उन पत्रों को कपड़ा में रखकर निचोड़कर गरम-गरम सुखोष्ण रस डालने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

---

१. अवीमूत्रमजामूत्रं गोमूत्रं माहिषं च यत् ।
हस्तिमूत्रमथोष्ट्रस्य हयस्य च खरस्य च ॥

९. सपक्व अर्कपत्र स्वरस पूरण (च.द.)

अर्कस्य पत्रं परिणामपीत-
माज्येन लिप्तं शिखिनाऽवतप्तम्।
आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं
निहन्ति शूलं बहुवेदनञ्च ॥११॥

अर्क के पके हुए पीले पत्तों पर गोघृत का लेप करके उसे आग पर पकाकर (सेंककर) हाथ से दबाकर उसका रस निकाल लें। उस सुखोष्ण रस को कान में डालने से असह्य पीड़ा से युक्त कर्णशूल रोग नष्ट हो जाता है।

कर्णशूलहरोपाय (च.द.)

तीव्रशूलान्विते कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि।
बस्तमूत्रं क्षिपेत्कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम् ॥१२॥

जिस व्यक्ति के कानों में अत्यधिक वेदना हो, कर्णनाद अथात् कानों में आवाज होती हो तथा कर्णस्राव से युक्त रोगी के कानों को साफ कर बकरी के गरम मूत्र में थोड़ा सैन्धवचूर्ण मिलाकर दिन में ३-४ बार डालने से लाभ होता है।

१०. वंशादि तैल (च.द.)

वंशावलेखसंयुक्ते मूत्रे वाजाविके भिषक्।
तैलं पचेत्तेन कर्णं पूरयेत्कर्णशूलिनः ॥१३॥

१. तिलतैल २५० मि.ली., २. हरे बाँस के ऊपर का हरा छिलका ६० ग्राम, ३. बकरी का मूत्र ५०० मि.ली. तथा ४. भेड़ी का मूत्र ५०० मि.ली. लें। बाँस के छिलके को कूटकर सिल पर पीसकर कल्क बना लें। तिलतैल का पहले मूर्च्छन कर लें ततः कल्क और दोनों (बकरी एवं भेड़ी) मूत्रों को मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब मूत्र सूख जाय तो कल्क के सम्यक् पाकार्थ १ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल से कर्णपूरण करने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

११. हिंग्वादि तैल (च.द.)

हिङ्गुतुम्बुरुशुण्ठीभिः साध्यं तैलन्तु सार्षपम्।
कर्णशूले प्रधानन्तु पूरणं हितमुच्यते ॥१४॥

१. सरसो तैल १ लीटर; २. हींग ८५ ग्राम, ३. धनियाँ चूर्ण ८५ ग्राम और ४. सोंठचूर्ण ८५ ग्राम लें। सर्वप्रथम सरसों तैल का मूर्च्छन करें। ततः हींग आदि,तीनों द्रव्यों को सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें तथा १ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काँचपात्र में संग्रहीत करें। कर्णशूल रोग से पीड़ित व्यक्ति के कान में इस तैल का पूरण करने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

१२. दीपिका तैल-१ (च.द.)

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च।
क्षोमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥१५॥
यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तत् प्रयोजयेत्।
ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥१६॥

बृहत् पञ्चमूल के वृक्षों (बेल, अग्निमन्थ, सोनापाठा, पाढल और गम्भार) में से किसी एक वृक्ष की ८ अंगुल की पतली सूखी लकड़ी लें। उसमें रेशमी वस्त्र लपेट दें और उसे तिलतैल में डुबा दें। पुनः उसमें आग लगा दें। इस लकड़ी से चूते हुए तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे सुखोष्ण कान में डालने से कर्णशूल रोग तुरन्त नष्ट हो जाता है।

विमर्श—सुश्रुतसंहिता उत्तरतन्त्र (२१/२०-२१) में १८ अंगुल की बिल्वादि किसी लकड़ी लेने को कहा है। यथा—

'महतः पञ्चमूलस्य काण्डमष्टादशाङ्गुलम्।
क्षौमेनावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः'॥.......

चक्रदत्त में आचार्य श्रीशिवदास सेन ने कहा है कि 'बिल्वादीनामन्यतमस्य एकस्य काष्ठस्येति भावः। अष्टाङ्गुलानीति अग्रभागे अष्टाङ्गुलानि व्याप्य क्षौमेन वेष्टनं कार्यमित्यर्थः। तेन तत्काष्ठमष्टाङ्गुलाधिकं कार्यम्। वृद्धास्तु अष्टादशाङ्गुलमिति पञ्चमूलकाष्ठं गृहीत्वा तस्याऽग्रभागे अष्टाङ्गुलं व्याप्य तैलाक्तं वस्त्रं बद्ध्वा प्रज्वाल्य ततो गलिततैलेन कर्णपूरणं कुर्वन्ति। स्वल्प वाग्भटे (अष्टाङ्गहृदये) तु अष्टाङ्गुलादि परिमाणं यथा—

महतः पञ्चमूलस्य काष्ठात् क्षौमेण वेष्टितात्।
तैलसिक्तात् प्रदीपाग्रात् स्नेहः सद्यो रुजापहः'॥
(अ.हृ.उ.१८/४)

अतः लकड़ी १८ अंगुल की लेनी चाहिए। क्योंकि ८ अंगुल रेशमी वस्त्र लिपटी लकड़ी जलानी है तो शेष हाथों में पकड़ने के लिए (कुछ) लकड़ी का अंश चाहिए।

१३. दीपिका तैल-२ (च.द.)

एवं कुर्याद् भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले।
मतिमान् दीपिकातैलं कर्णशूलनिवारणम् ॥१७॥

इसी प्रकार दीप जैसा लकड़ी को प्रज्वलित कर दूसरी दीपिका तैल बनाने का विधान आचार्यों ने कहा है। देवदारु, कूठ और सरलकाष्ठ को एक साथ पूर्ववत् क्षौम वस्त्र में लपेटकर तिलतैल में डुबोकर प्रज्वलित कर बूँदशः टपके तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल की सुखोष्ण बूँद कान में डालने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है।

१४. क्षारतैल (च.द.)

बालमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गु सनागरम्।
शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शिग्रु रसाञ्जनम् ॥१८॥

सौवर्चलं यवक्षारः स्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम् ।
भूर्जग्रन्थिं विडं मुस्तं मधुशुक्तं चतुर्गुणम् ॥१९॥
मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च।
तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥२०॥
बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयास्रावश्च दारुणः।
पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णसंश्रिताः ॥२१॥
क्षिप्रं विनाशं गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात्।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ॥२२॥

१. तिलतैल १ लीटर, २. बिजौरानिम्बुरस ४ लीटर, ३. कदलीकन्दरस ४ लीटर तथा ४. मधुशुक्त ४ लीटर लें।

कल्क—१. बालमूलीक्षार (छोटी एवं मुलायम मूली) २. शुण्ठीक्षार, ३. हींग, ४. सोंठचूर्ण, ५. सौंफचूर्ण, ६. वचचूर्ण, ७. कूठचूर्ण, ८. देवदारुचूर्ण, ९. सहिजनत्वक्, १०. रसाञ्जनचूर्ण, ११. सौवर्चललवण, १२. यवक्षार १३. सज्जीक्षारचूर्ण, १४. औद्भिदलवण, १५. सैन्धवलवण १६. भूर्जवृक्ष की गाँठ, १७. विडलवण और १८ नागरमोथा—प्रत्येक द्रव्य १५ ग्राम लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः सभी १८ द्रव्यों का चूर्ण बनाकर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बना लें। तदनन्तर कल्क और बिजौरानिम्बुस्वरस को तैल के साथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। निम्बुस्वरस सूख जाय तो कदलीकन्द रस देकर पाक करें। जब कदलीकन्द सूख जाय तो मधुशुक्त डालकर पाक करें। जब यह भी सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त चूल्हे से तैलपात्र को नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'क्षारतैल' कहते हैं। इस तैल को सुखोष्ण ५-६ बूंद कान में डालने से कर्णशूल, बाधिर्य, कर्णनाद, पूयस्राव, कृमिकर्ण तथा मुख में प्रतिसारण या कवल-गण्डूषादि धारण से मुखरोग और दन्तरोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इस तैल का निर्माण कृष्णात्रेय ने किया था।

१५. मधुशुक्तनिर्माण विधि (च.द.)

मधुप्रधानं शुक्तन्तु मधुशुक्तं तथा परम्।
जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीमूलसंयुतम् ॥२३॥
मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत्।
मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥२४॥

मधु प्रधान शुक्त को मधुशुक्त कहते हैं। विधि इस प्रकार है—जम्बीरीनिम्बुफलरस ३२ पल (१५०० मि.ली.), पिपरामूल ४ पल (१८७ ग्राम) तथा मधु ८ पल (३७५ ग्राम) लें। एक छोटे मिट्टी के घड़े में निम्बु स्वरस, मधु तथा पिप्पलीमूलचूर्ण मिलाकर सन्धानार्थ मुखबन्द कर १ महीना तक एकान्त स्थान में धान की राशि के अन्दर रखकर छोड़ दें। १ माह के बाद छानकर किसी काचपात्र में संग्रहीत करें तथा आवश्यकतानुसार प्रयोग करें। इसे मधुशुक्त कहते हैं।

१६. कर्णनाद-कर्णक्ष्वेड में सरसों तैल पूरण (च.द.)

कर्णनादे कर्णक्ष्वेडे कटुतैलेन पूरणम्।
नादबाधिर्ययोः कुर्याद् वातशूलोक्तमौषधम् ॥२५॥

कर्णनाद और कर्णक्ष्वेड रोग में सुखोष्ण सरसों तैल का पूरण करें। इसी प्रकार कर्णनाद और कर्णबाधिर्य रोग में वातघ्न औषधों से सिद्ध तैल से कर्णपूरण करना चाहिए।

१७. अपामार्गक्षारतैल (च.द.)

मार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम्।
अपहरति कर्णनादं बाधिर्यञ्चापि पूरणतः ॥२६॥

अपामार्गक्षारीय जल ४ लीटर, तिलतैल १ लीटर और अपामार्गक्षार २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः उसमें अपामार्गक्षार कल्क का क्षारीय घोल डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। परीक्षोपरान्त तैल को छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का सुखोष्ण ५-६ बूंद कान में पूरण करने से कर्णनाद एवं बाधिर्य रोग नष्ट हो जाता है।

विमर्श—इस अपामार्गक्षार तैल का पाक करते समय क्षाराधिक्य होने से तैल गाढ़ा एव कृष्णाभ हो जाता है। अतः इसे सुधारने के लिए छने हुए तैल में ४ गुना जल डालकर पुनः पाक करते हैं। जब तैल उबलने लगता है तो तैल के ऊपरी सतह पर क्षारांश मैल रूप में इकट्ठा होने लगता है, उसे चम्मच से बाहर निकालते रहना चाहिए। जब अधिकांश क्षार निकल जाता है तो तैल अपने वास्तविक रूप में किञ्चिद् रक्ताभ मिलता है। मूर्च्छित होने के बाद तैल किञ्चित् लाल और घृत किञ्चित् पीला हो जाता है। क्योंकि तैल-मूर्च्छन में मंजीठ प्रधान द्रव्य और घृत में हल्दी प्रधान द्रव्य रहता है।

१८. सर्जिकाक्षारतैल (च.द.)

सर्जिका मूलकं शुष्कं हिङ्गु कृष्णा महौषधम्।
शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्तचतुर्गुणम् ॥
प्रणादशूलबाधिर्यं स्रावञ्चाशु व्यपोहति ॥२७॥

तिलतैल १ लीटर तथा शुक्त ४ लीटर लें।

कल्क—१. सर्जिकाक्षार, २. सूखीमूली, ३. हींग, ४. पीपर, ५. सोंठ और ६. सौंफ—प्रत्येक द्रव्य ४०-४० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। सर्जिक्षार से सौंफ पर्यन्त छः द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। तदनन्तर शुक्त और कल्क मूर्च्छिततैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र

को चूल्हे से नीच उतार लें और कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस सर्जिकाक्षारतैल को सुखोष्ण ५-६ बूँद कानों में डालने से कर्णनाद, कर्णशूल, बाधिर्य और कर्णस्राव शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

१९. दशमूलतैल (च.द.)

दशमूलीकषायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
एतत्कल्कं प्रदायैव बाधिर्ये परमौषधम्॥२८॥

तिलतैल १ लीटर, दशमूलक्वाथ ४ लीटर तथा दशमूल कल्क २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। अब दशमूलक्वाथ और कल्क मिलाकर मूर्च्छिततैल का पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस दशमूली तैल को सुखोष्ण ५-६ बूँद कानों में डालने से बाधिर्य रोग नष्ट हो जाता है। यह बाधिर्य रोग की परमौषध है।

२०. बिल्वतैल (च.द.)

फलं बिल्वस्य मूत्रेण पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्।
साजक्षीरं तद्धि हरेद् बाधिर्ये कर्णपूरणे॥२९॥

१. तिलतैल १ लीटर, २. बेलसोंठ २५० ग्राम, ३. बकरी का दूध ४ लीटर तथा ४. गोमूत्र २५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः बेलसोंठ का चूर्ण कर सिल पर गोमूत्र के साथ पीसें और कल्क बना लें। अब मूर्च्छित तैल में उक्त कल्क और बकरी का दूध डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब दूध सूख जाय तो कल्क एवं तैल के सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस बिल्व तैल का सुखोष्ण ५-६ बूँद कानों में पूरण करने से बाधिर्य रोग नष्ट हो जाता है।

२१. कर्णनाद में गुडादि नस्य (च.द.)

एष एव विधिः कार्यः प्रणादे नस्यपूर्वकः।
गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुभयोरपि॥३०॥

कर्णनाद और बाधिर्य रोगों में गुड़ और शुण्ठीक्वाथ के मिश्रण से नस्य देना चाहिए तथा बाधिर्योक्त चिकित्सा करनी चाहिए।

२२. लशुनादि तैल (च.द.)

लशुनामलकं तालं पिष्ट्वा तैले चतुर्गुणे।
तैलाच्चतुर्गुणं क्षीरं पाच्यं तैलावशेषकम्।
तत्तैलं पूरयेत्कर्णे बाधिर्यं परिनाशयेत्॥३१॥

तिलतैल १ लीटर तथा गोदुग्ध ४ लीटर लें।

कल्क—लशुन छिलका रहित, आमलाचूर्ण तथा हरताल (प्रत्येक ८० ग्राम) लेना चाहिए। सर्वप्रथम तिंलतैल का मूर्च्छन करें। ततः लशुन आदि के तीनों द्रव्यों को पीसकर कल्क बना लें और मूर्च्छिततैल में कल्क तथा गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस लशुनादितैल की ५-६ बूँद प्रतिदिन २ बार कान में डालने से बाधिर्य रोग नष्ट हो जाता है।

बाधिर्य चिकित्सा (च.द.)

वातोक्तं माषतैलादि बाधिर्यादौ तु योजयेत्।
वर्जयेन्मैथुनं क्रोधं रूक्षं बाधिर्यपीडितः॥३२॥

बाधिर्यरोग में पहले वातरोगोक्त माषतैलादि कान में रोज डालकर चिकित्सा करनी चाहिए। इस रोग के रोगी को मैथुन, क्रोध एवं रूक्ष भोजन बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि ये तीनों कर्म वातवर्धक हैं।

२३. पञ्चवल्कलचूर्णादि पूरण (च.द.)

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरससंयुतम्।
कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह॥३३॥

पञ्चवल्कल (वट, पीपल, गूलर, पाकड़ और वेतस) के समभागीय सूक्ष्म चूर्ण में कपित्थ (कैंत) फल स्वरस और मधु मिलाकर कर्णपूरण करने से कर्णस्रावरोग नष्ट हो जाता है।

२४. मालत्यादि रस पूरण (च.द.)

मालतिदलरसमधुना पूरितमथवा गवां मूत्रैः।
दूरेण मुच्यते वै श्रवणयुगलं पूतिरोगेण॥
हरितालं सगोमूत्रं पूरणं पूतिकर्णजित्॥३४॥

चमेली के पत्रस्वरस में मधु मिलाकर प्रतिदिन दो बार कान साफकर कानों में डालने से पूतिकर्ण (दुर्गन्धयुक्तकर्ण) रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है अथवा—सुखोष्ण गोमूत्र २-३ बार प्रतिदिन कानों में डालने से पूतिकर्णरोग नष्ट हो जाता है। अथवा—गोमूत्र मे अष्टमांश हरताल मिलाकर कर्णपूरण करने से पूतिकर्ण्परोग नष्ट हो जाता है।

२५. कार्पासफलरसादि कर्णपूरण (च.द.)

सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः।
मधुना संयुतः साधु कर्णस्रावे प्रशस्यते॥३५॥

कार्पास (कपास) के कच्चे फल के रस में अष्टमांश सर्ज वृक्षत्वक् चूर्ण और मधु मिलाकर कर्णपूरण करने से कर्णस्राव रोग नष्ट हो जाता है।

२६. जम्ब्वादितैल (च.द.)

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं
कपित्थकार्पासफलञ्च सार्द्रम्।
क्षुत्वा रसं तं मधुना विमिश्रं
स्रावापहं तं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
एतैः शृतं निम्बकरञ्जतैलं
ससार्षपं स्रावहरं प्रदिष्टम् ॥३६॥

जामुन के कोमल पत्तों एवं आम के कोमल पत्तों के स्वरस तथा कपित्थ और कार्पास फल के स्वरस (चारों स्वरसों को मिलाकर) में मधु मिलाकर कर्णपूरण करने से कर्णस्राव रोग नष्ट हो जाता है। ऐसा प्रतिदिन २-३ बार करना चाहिए। अथवा—उपर्युक्त जामुनपत्रस्वरस, आम्रपत्रस्वरस, कपित्थफलस्वरस एवं कार्पासफलस्वरसों तथा कल्कों से साधित (समभागीय) निम्ब-तैल, करञ्जतैल, सरसोंतैल के मिश्रित तैल का कर्णपूरण करने से (प्रतिदिन ३-४ बार कर्णपूरण करें) कर्णस्राव रोग नष्ट हो जाता है।

२७. कर्णस्रावहर तैल (च.द.)

पुटपाकविधिस्विन्नहस्तिविड्जातगोण्डकः।
रसः सतैलसिन्धूत्थः कर्णस्रावहरः परः ॥३७॥

हाथी के पुरीष की ढेर पर उगने वाला छत्रक (गोबरछत्ता) का संग्रह कर उसे हाथ से मसलकर पुटपाक विधि से स्वरस निकालें। इस प्रकार हस्तिविडोत्पन्न छत्र का पुटपाकस्वरस १ लीटर, सरसोतैल २५० मि.ली. तथा सैन्धवलवण ८० ग्राम लें। तैलपाक विधि से तैल सिद्ध करें। छानकर तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को सुखोष्ण कर कानों में प्रतिदिन ३-४ बार डालने से कर्णस्राव रोग नष्ट हो जाता है। अथवा उपर्युक्त पुटपाक छत्रक स्वरस एवं कटुतैल समभाग तथा सैन्धव अष्टमांश मिलाकर कर्णपूरण करने से कर्णरोग नष्ट हो जाता है।

२८. शम्बूक तैल (च.द.)

शम्बूकस्य च मांसेन कटुतैलं विपाचितम्।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥३८॥

सरसोतैल में चौथाई शम्बूक (घोंघा=क्षुद्रशंख) मांस को विधिवत् सुपाचित कर छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस शम्बूकतैल को प्रतिदिन ३-४ बार कानों में सुखोष्ण डालने से कर्णनाडीरोग नष्ट हो जाता है।

२९. धुस्तूरादि तैल (च.द.)

निशागन्धपले पक्वं कटुतैलं पलाष्टकम्।
धुस्तूरपत्रजरसे कर्णनाडीजिदुत्तमम् ॥३९॥

१. सरसोतैल ८ पल (३७५ मि.ली.), २. हल्दीचूर्ण ४६ ग्राम, ३. गन्धक ४६ ग्राम (दोनों द्रव्य १-१ पल) और ४. धत्तूरपत्रस्वरस ३२ पल (१५०० मि.ली.) लें। सर्वप्रथम कटुतैल का मूर्च्छन करें। ततः हल्दीचूर्ण और गन्धक को जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनावें। इसके बाद धत्तूरपत्रस्वरस और हल्दी आदि के कल्क मूर्च्छित तैल में मिलाकर मन्दाग्नि में पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस धुस्तूरादि तैल का सुखोष्ण कर्णपूरण करने से कर्णनाड़ी रोग नष्ट हो जाता है।

विशेष—यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि आचार्य शिवदास सेन ने चक्रदत्त की व्याख्या में तैल के बराबर धत्तूरपत्रस्वरस लेने का निर्देश दिया है। यथा—'निशागन्धपले इत्यादि। चूर्णेन गन्धकशिलारजनी भवेन, मुष्ट्यंकेन कटुतैलपलाष्टकं च। धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदन्तु सिद्धं नाडीं जयेच्चिरभवाभवामपि कर्ण-जातामिति'।

३०. कुष्ठादि तैल (च.द.)

कुष्ठहिङ्गुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः।
पूतिकर्णापहं तैलं बस्तमूत्रेण साधितम् ॥४०॥

तिलतैल २५० मि.ली., बकरी का मूत्र १ लीटर तथा जल १ लीटर लें।

कल्क—१. कूठचूर्ण, २. हींगचूर्ण, ३. वचचूर्ण, ४. देवदारुचूर्ण, ५. सौंफचूर्ण और ६. सैन्धवलवणचूर्ण—प्रत्येक १०-१० ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः कूठचूर्ण से सैन्धव तक के ६ द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण बनाकर सिल पर बकरीमूत्र से पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छिततैल में यह कल्क और बकरी का मूत्र मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। मूत्र सूखने पर सम्यक् पाकार्थ १ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस कुष्ठादितैल को सुखोष्ण कानों में डालने से पूतिकर्णरोग नष्ट हो जाते हैं।

कर्णप्रतिनाह की चिकित्सा (च.द.)

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत्।
ततो विरिक्तशिरसः क्रियां प्राप्तां समाचरेत् ॥४१॥

कर्णप्रतिनाहरोग में पहले स्नेहन-स्वदेन करके नस्य एवं शिरोविरेचन करने के बाद दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

कर्णपाक एवं कर्णकण्डू चिकित्सा (च.द.)

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात् क्षतविसर्पवत्।
नाडीस्वेदोऽथ वमनं धूमो मूर्द्धविरेचनम् ॥
विधिश्च कफहा सर्वः कर्णकण्डुं व्यपोहति ॥४२॥

कर्णपाक की चिकित्सा क्षतज विसर्प जैसी करनी चाहिए। नाडीस्वेद, वमन, धूम एवं मूर्द्धविरेचन करना चाहिए। इसी प्रकार कर्णकण्डू में सभी प्रकार की कफहर चिकित्सा करनी चाहिए।

कर्णगूथ चिकित्सा (च.द.)

क्लेदयित्वा तु तैलेन स्वेदेन प्रविलाप्य च।
शोधयेत्कर्णगूथन्तु भिषक् सम्यक् शलाकया ॥४३॥

कर्णगूथरोग में पहले कानों में सुखोष्णतैल डालकर जमे हुए कर्णमैल को स्वेदित कर ढीला (प्रविलाप्य) करे। ततः दूसरे-तीसरे दिन शलाका में रूई आदि लपेटकर कर्णगूथ (कान के मैल) को बाहर निकाल लें।

३१. निर्गुण्ड्यादि तैल (च.द.)

निर्गुण्डीस्वरसस्तैलं सिन्धुधूमरजो गुडः।
पूरणात् पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः ॥४४॥

१. निर्गुडीपत्रस्वरस २०० मि.ली., २. तिलतैल ५० मि.ली., ३. सैन्धव ४ ग्राम, ४. गृहधूम ४ ग्राम और ५. गुड़ ४ ग्राम लें। इन्हें एक सार्थ छोटे पात्र में स्नेहपाक विधि से पाक करके छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल में थोड़ा-सा मधु मिलाकर सुखोष्णतैल की ५-६ बूँदें कानों में डालने से पूतिकर्णरोग नष्ट हो जाता है। अथवा—इन सभी द्रव्यों के ताजा स्वरस में तैल, सैन्धव, गृहधूम, गुड़ और मधु मिलाकर कर्णपूरण करने से पूतिकर्ण रोग नष्ट हो जाता है।

३२. जाती तैल (च.द.)

जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ॥४५॥

तिलतैल २५० मि.ली., चमेलीपत्रस्वरस १ लीटर तथा चमेलीपत्र कल्क ६० ग्राम लें। इन्हें एक पात्र में तैलपाक विधि से पाक करें और काचपात्र में रखें। इस तैल को सुखोष्ण ५-६ बूँद कानों में डालने से पूतिकर्ण रोग नष्ट हो जाता है।

३३. वरुणादि तैल (च.द.)

वरुणार्ककपित्थाम्रजम्बूपल्लवसाधितम्।
पूतिकर्णापहं तैलं जातीपत्ररसेन वा ॥४६॥

१. तिलतैल २५० मि. ली.; २. वरुणवृक्षपत्र, ३. अर्कपत्र, ४. कपित्थपत्र, ५. आम्रपत्र और ६. जामुनपत्र—प्रत्येक १२-१२ ग्राम लें। तैल साधन विधि से तैल सिद्ध कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को ५-६ बूंद कानों में डालने से पूतिकर्ण रोग नष्ट हो जाता है। अथवा—केवल चमेलीपत्र स्वरस कान में डालने से पूतिकर्ण रोग नष्ट हो जाता है।

३४. कृमिकर्ण रोग में सूर्यावर्त्तादि रस प्रयोग (च.द.)

सूर्यावर्त्तकस्वरसं सिन्धुवाररसं तथा।
लाङ्गलीमूलजरसं त्र्यूषणेनावचूर्णितम् ॥
पूरयेत्कृमिकर्णन्तु जन्तूनां नाशनं परम् ॥४७॥

कृमिकर्णरोग में सूर्यावर्त्तरस या निर्गुण्डीपत्ररस या कलिहारीमूल क्वाथ में थोड़ा-सा त्रिकटुचूर्ण मिलाकर कानों में डालने से कृमियाँ मर जाती हैं।

३५. कृमिनाशनोपाय (च.द.)

कृमिकर्णविनाशार्थं कृमिघ्नं योजयेद्विधिम्।
वार्त्ताकुधूमश्च हितः सर्षपस्नेह एव च ॥४८॥

कानों की कृमियों को नष्ट करने के लिए बैंगन पञ्चाङ्ग को सुखाकर यवकुट करें। कोयले की निर्धूम अग्नि पर बैंगन पञ्चाङ्ग का यवकुट डालें (चिलम पर आग रखें और उस पर वार्त्ताकु पञ्चाङ्ग यवकुट डालें)। उससे जो धूम निकले उसे किसी नली की सहायता से कानों में डालें। ततः कान में सरसोतैल का पूरण करें। इस प्रयोग से कान की कृमियाँ नष्ट हो जाती हैं।

३६. लाङ्गल्यादि स्वरस प्रयोग (च.द.)

हलिसूर्यावर्त्तव्योषस्वरसेनातिपूरिते।
कर्णे पतन्ति सहसा सर्वास्तु कृमिजातयः ॥४९॥

कलिहारी और सूर्यावर्त्त स्वरस में त्रिकटुचूर्ण मिलाकर कानों में डालने से तुरन्त ही कान की सभी प्रकार की कृमियाँ बाहर गिर जाती हैं।

३७. कर्णपूय में राजवृक्षादि क्वाथ प्रक्षालन (च.द.)

राजवृक्षादितोयेन[1] सुरसादिजलेन[2] वा।
कर्णप्रक्षालनं कुर्याच्चूर्णैरेतैः प्रपूरणम् ॥५०॥

आरग्वधादिगण के क्वाथ या सुरसादिगण के क्वाथ से कानों का प्रक्षालन कर पूयादि साफ करें। ततः इन दोनों गणों के सूक्ष्म चूर्णों को या किसी एक गण के सूक्ष्म चूर्ण को कान में भरकर रूई से कान को बन्द कर दें। ऐसा रोज करने से पूयकर्णरोग नष्ट हो जाता है।

३८. रसाञ्जनादि स्तन्य मिश्रण (च.द.)

घृष्टं रसाञ्जनं नार्य्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम्।
प्रशस्यते चिरोत्थेऽपि सास्त्रावे पूतिकर्णके ॥५१॥

स्त्री के दूध में रसाञ्जन घिसकर गरम करें। उस घोल में मधु

---

१. **आरग्वधादिगण**—आरग्वधमदनगोपघोण्टाकण्टकीकुटजपाठापाटलामूर्वेन्द्रयवसप्तपर्णनिम्बकुरुण्टकदासीकुरुण्टकगुडूचीचित्रकशार्ङ्गष्टाकरञ्जद्वयपटोलकिराततिक्तकानि सुषवी चेति। (सु.सू. ३८।६)

२. **सुरसादिगण**—सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुखकालमालकुठेरककासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फलसुरसीनिर्गुण्डीकुलाहलोन्दुरुकर्णिकाफञ्जीप्राचीबलकाकमाच्यो विषमुष्टिकश्चेति। (सु.सू.३८।१८)

मिलाकर सुखोष्ण द्रव कानों में प्रतिदिन ३-४ बार डालने से पुराना कर्ण स्राव और पूतिकर्णरोग नष्ट हो जाता है।

कर्णविद्रधिहरोपाय (च.द.)

विद्रधौ चापि कुर्वीत विद्रध्युक्तं हि भेषजम् ॥५२॥

कर्णविद्रधि रोग में सामान्य विद्रधिवत् चिकित्सा करनी चाहिए।

कर्णपालीवृद्धिकर योग

३९. शतावर्यादि तैल (च.द.)

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः ।
तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ॥५३॥

१. तिलतैल २५० मि.ली., २. गोदुग्ध १ लीटर, ३. शतावरीचूर्ण, ४. अश्वगन्धाचूर्ण, ५. क्षीरकाकोली तथा ६. एरण्डबीजमज्जा लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः शतावरी से एरण्डबीजमज्जा तक के सभी द्रव्यों को सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। तदनन्तर दूध और कल्क दोनों को मूर्च्छिततैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ जल १ लीटर मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस शतावरीतैल को कर्णपाली पर प्रतिदिन २-३ बार मालिश करने से कर्णपाली बढ़ती है।

४०. गुञ्जानवनीत प्रयोग (च.द.)

गुञ्जाचूर्णयुते जाते माहिषे क्षीर उद्गतम् ।
नवनीतं तदभ्यङ्गात् कर्णपालिविवर्द्धनम् ॥५४॥

भैंस के दूध में अष्टमांश गुञ्जाबीजचूर्ण डालकर उबालें। शीतल होने पर उस दूध का दही बना लें। ततः उसे मथानी से मथकर उससे मक्खन निकालें। उस मक्खन का कर्णपाली में मर्दन करें। ऐसा दिन में ३-४ बार करने से कर्णपाली बढ़ जाती है।

४१. तिक्ततुम्ब्यादि तैल (च.द.)

विषगर्भं तिक्ततुम्बीतैलमष्टगुणे खरात् ।
मूत्रे पक्वं तदभ्यङ्गात् कर्णपालीविवर्द्धनम् ॥५५॥

कटुतुम्बी (कड़वी लौकी) के बीज से तैल निकाल लें। यह तितलौकीतैल २५० मि.ली. और वत्सनाभचूर्ण ६० ग्राम तथा गदहे का मूत्र १ लीटर लें। इन्हें तैलपाक विधि से कल्क और गदहे के मूत्र से तैल सिद्ध करें। मूत्र सूखने पर १ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'तिक्ततुम्ब्यादि तैल' का मालिश करने से कर्णपाली बढ़ती है।

४२. जीवनीयादि तैल (च.द.)

कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि साधितम् ।
आनूपमांसक्वाथेन पालीपोषणवर्द्धनम् ॥५६॥

तिलतैल ५०० मि.ली., जीवनीयगण की औषधियों का चूर्ण १२५ ग्राम और गोदुग्ध २ लीटर लें। इन तीनों को मिलाकर एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखकर पाक करें। जब दूध सूख जाय तो उसमें २ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस जीवनीयादि तैल की कान पर मालिश करने से कर्णपाली बढ़ती है।

४३. माहिष नवनीतादि योग (च.द.)

माहिषनवनीतयुक्तं सप्ताहं धान्यराशिपरिनिहितम् ।
नवमूषलिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥५७॥

भैंस के दूध से निकाला हुआ मक्खन ५० ग्राम तथा नया श्वेतमुशलीचूर्ण ५० ग्राम लें। दोनों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और वटपत्र के दोने में बन्द कर धान की राशि में १ सप्ताह पर्यन्त रखें। ८वें दिन निकालकर मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन इस योग को कर्णपाली पर ३-४ बार लगाकर मर्दन करें। ऐसा १ महीना तक करने से कर्णपाली बढ़ जाती है।

४४. दुर्विद्ध कर्ण चिकित्सा (च.द.)

कर्णस्य दुर्व्यधे भूते संरम्भो वेदना भवेत् ।
तत्र दुर्व्यधरोहार्थं लेपो मध्वाज्यसंयुतः ॥
मधूकयवमञ्जिष्ठारुबुमूलैः समन्ततः ॥५८॥

कान के दुर्विद्ध होने पर (अर्थात् उचित रीति से व्यध नहीं होने पर) पीड़ा एवं शोथ उत्पन्न हो जाती है। इसे शान्त करने के लिए मुलेठी, यव, मंजीठ और एरण्डमूल समभाग में लेकर इनके सूक्ष्म चूर्ण को मधु एवं घी मिलाकर लेप करना चाहिए।

४५. छिन्नकर्णपाली चिकित्सा (च.द.)

अनेकधा तु च्छिन्नस्य सन्धिः कर्णस्य वै भिषक् ।
यथो यथा विनिविष्टः स्यात्तं तथा विनियोजयेत् ॥
धान्याम्लोष्णोदकाभ्यान्तु सेको वातेन दूषिते ।
रक्तपित्तेन पयसा श्लेष्मणा तूष्णवारिणा ॥६०॥
ततः सीव्य स्थिरं कुर्यात् सन्धिं बन्धेन वा पुनः ।
मध्वाज्येन ततोऽभ्यज्य पिचुना सन्धिवेष्टकम् ।
कपालचूर्णेन ततश्चूर्णयेत्पथ्ययाऽथवा ॥६१॥

यदि कान की सन्धियाँ कई स्थानों पर कट गई हों तो उन्हें स्वाभाविक रूप से अपने स्थानों पर जोड़ देना चाहिए। कर्ण पाली में यदि वातप्रकोप जन्य छिद्र हुआ हो तो गरम काञ्जी या

उष्णोदक से सेंक करना चाहिए। यदि रक्त एवं पित्त का प्रकोप हो तो शीतल दूध से सेंक करें तथा कफ का प्रकोप हो तो उष्ण जल से सेंक करना चाहिए। इसके बाद रेशमी धागे से सीवन कर मधु-घी का लेप करें तथा रूई आदि लगाकर व्रणबन्धन करें। दो दिन बाद घटखर्परचूर्ण या हरीतकीचूर्ण का उस पर अवचूर्णन कर पट्टी बाँधें। इस प्रकार की चिकित्सा से छिन्न कर्णपाली फिर से ठीक हो जाती है।

४६. मधुकादि तैल

मधुकं दशमूलं च तथा दारुनिशोत्तमा।
त्रिभिरेभिः कषायैस्तु रम्भायाः स्वरसेन च ॥६२॥
शतपुष्पावचाकुष्ठशोभाञ्जनरसाञ्जनैः ।
सुरदारुविडस्वर्जियावशूकैः ससैन्धवैः ॥६३॥
कल्कैरेतैः प्रस्थमितं तिलतैलं विपाचितम्।
मधुकाद्यमिदं तैलं सदा कर्णे प्रपूरितम् ॥६४॥
कर्णस्रावं कर्णकण्डूं कर्णक्ष्वेडं भयङ्करम्।
पूतिकर्णं कर्णपाकं कृमिकर्णमशेषतः ॥६५॥
कर्णशूलं कर्णनादं श्वयथुं कर्णसम्भवम्।
प्रतीनाहं च बाधिर्यं हन्ति निःसंशयं नृणाम् ॥६६॥

क्वाथ—१. मुलेठीक्वाथ ३ लीटर, २. दशमूलक्वाथ ३ लीटर, ३. दारुहल्दीक्वाथ ३ लीटर, ४. कदलीकन्दरस ३ लीटर और ५. तिलतैल ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. सौंफचूर्ण, २. वचचूर्ण, ३. कुष्ठचूर्ण, ४. शिग्रुत्वक्चूर्ण, ५. रसाञ्जनचूर्ण, ६. देवदारुचूर्ण, ७. विड्-लवण, ८. सर्जिक्षार, ९. यवक्षारचूर्ण और १०. सैन्धवचूर्ण—प्रत्येक १९-१९ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः सौंफ से सैन्धवलवण तक के सभी १० द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छिततैल में कल्क और मुलेठीक्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर पुनः दशमूलक्वाथ देकर पकावें। इस क्वाथ के सूखने पर पुनः दारुहल्दीक्वाथ देकर पाक करें। इस क्वाथ से सूखने पर कदलीकन्दस्वरस देकर स्नेहपाक करें। स्वरस सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छाने और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करे। इसे 'मधुकादितैल' कहते हैं। इस तैल का कर्णपूरण करने से कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णक्ष्वेड, पूतिकर्ण, कर्णपाक, कृमिकर्ण, कर्णशूल, कर्णनाद, कर्णशोथ, कर्णप्रती-नाह और बाधिर्यरोग नष्ट हो जाते हैं।

४७. भैरव रस (र. सा. सं.)

सूतं गन्धं विषं चैव टङ्कणं सकपर्दकम्।
मरिचेनं समायुक्तमार्द्रतोयेन भावितम् ॥६७॥
वह्निमान्द्यञ्चामरोगं श्लेष्माणं ग्रहणीगदम्।
सन्निपातं तथा शोथं हन्ति श्रोत्रोद्भवं गदम् ॥६८॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. शुद्ध वत्सनाभचूर्ण, ४. शुद्ध सुहागा, ५. वराटिकाभस्म और ६. मरिचचूर्ण—प्रत्येक ५०-५० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक का एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः उसमें अन्य सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर मर्दन करें और आर्द्रकस्वरस की भावना देकर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके सेवन से अग्निमान्द्य, आमदोष, कफरोग, ग्रहणीरोग, सन्निपातज्वर, शोथ और कर्णरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु तथा दोषानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—सन्निपातज्वर, अग्निमांद्य एवं कर्णरोग में।

४८. सारिवादि वटी

सारिवां मधुकं कुष्ठं चातुर्जातं प्रियङ्गुकम्।
नीलोत्पलं गुडूचीञ्च देवपुष्पं फलत्रिकम् ॥६९॥
अभ्रं सर्वसमञ्चाभ्रसमं लौहं विभावयेत्।
केशराजाम्बुना पार्थक्वाथेन यवजाम्भसा ॥७०॥
काकमाचीरसेनापि गुञ्जामूलद्रवेण च।
षड्गुञ्जाप्रमिताः पश्चाद् विदध्याद्वटिका भिषक् ॥७१॥
धारोष्णेनापि पयसा शतमूलीरसेन वा।
एकैकां योजयेत् प्रातः श्रीखण्डसलिलेन वा ॥७२॥
निखिलान् कर्णजान् रोगान् प्रमेहानपि विंशतिम्।
रक्तपित्तं क्षयं श्वासं क्लैब्यं जीर्णज्वरं तथा ॥७३॥
अपस्मारमदार्शांसि हृद्रोगञ्च मदात्ययम्।
सारिवादिवटी हन्यात् स्त्रीगदानखिलानपि ॥७४॥

१. अनन्तमूलचूर्ण १० ग्राम, २. मुलेठीचूर्ण १० ग्राम, ३. कूठचूर्ण १० ग्राम, ४. तेजापात १० ग्राम, ५. छोटी इलायची १० ग्राम, ६. दालचीनीचूर्ण १० ग्राम, ७. नागकेशर १० ग्राम, ८. प्रियङ्गुफूल १० ग्राम, ९. नीलकमलफूल १० ग्राम, १०. गुडूचीचूर्ण १० ग्राम, ११. लौंग १० ग्राम, १२. आमला १० ग्राम, १३. हरीतकीचूर्ण १० ग्राम, १४. बहेड़ाचूर्ण १० ग्राम, १५. अभ्रकभस्म १४० ग्राम और १६. लौहभस्म १४० ग्राम लें।

भावना द्रव्य—१. केशराजस्वरस, २. अर्जुनक्वाथ, ३. यवक्षारजल, ४. काकमाचीरस तथा ५. गुञ्जामूलक्वाथ लें।

एक बड़े खरल में अनन्तमूल से बहेड़ा तक के सभी १४ द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण मिलावें। उसमें अभ्रक और लौहभस्म मिला-कर केशराजस्वरस की १ भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें।

इसी प्रकार अन्य चारों द्रव्यों की भी १-१ भावना देकर १-१ दिन तक मर्दन करें। तत्पश्चात् ६-६ रत्ती (७५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर अच्छी तरह सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'सारिवादिवटी' की १-१ वटी प्रातः-सायं धारोष्ण गोदुग्ध से या शतावरीस्वरस से या श्वेतचन्दन (मलयज) हिम से सेवन करने से सभी प्रकार के कर्णरोग, २० प्रकार के प्रमेहरोग, रक्तपित्त, क्षय, श्वास, नपुंसकता, जीर्ण-ज्वर, अपस्मार, उन्माद, अर्श, हृद्रोग, मदात्यय और सभी प्रकार के स्त्रीरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—७५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—धारोष्ण गोदुग्ध से, शतावरीस्वरस या चन्दनहिम से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी कर्णरोग, सभी प्रमेह, सभी स्त्रीरोग एवं हृद्रोग में।

४९. इन्दुवटी

शिलाजत्वभ्रलोहानि समानि हेम पादिकम्।
काकमाचीवरीधात्रीपद्मानामम्भसा पृथक् ॥७५॥
भावयित्वा वटीः कुर्याद् द्विगुञ्जाफलमानतः।
धात्रीतोयेन सम्मर्द्य प्रातः प्रातः प्रयोजयेत् ॥७६॥
कर्णनादादयः सर्वे गदा वातोद्भवाश्च ये।
प्रमेहा विंशतिश्चापि नश्यन्त्येतन्निषेवणात् ॥७७॥
सुधाविस्रावणादिन्दुर्जगतां तापहृद्यथा।
तथैवेन्दुवटी नाम रोगतापनिषूदनी ॥७८॥

१. शुद्ध शिलाजतु, २. अभ्रकभस्म, ३. लौहभस्म—ये तीनों द्रव्य ४०-४० ग्राम और ४. स्वर्णभस्म १० ग्राम लें। एक खरल में चारों द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें। ततः काकमाची (मकोय) स्वरस, शतावरीस्वरस, आमलास्वरस और कमलपुष्पस्वरस की पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर १-१ दिन तक प्रत्येक स्वरस के साथ मर्दन करें और २५० मि.ग्रा. (२-२ रत्ती) की मात्रा में वटी बना लें और छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। आमलास्वरस के साथ १ वटी मर्दन कर प्रातःकाल सेवन करने से कर्णनाद आदि वातज कर्ण रोग एवं सभी प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं। जैसे चन्द्रमा अमृतवर्षा कर समूचे पृथ्वीवासियों के सन्ताप को नष्ट करता है, उसी प्रकार यह इन्दुवटी रोग रूपी सन्ताप को नष्ट करती है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—आमलकीस्वरस से। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—कर्णनाद आदि वातज कर्ण रोग तथा सभी प्रमेहों में।

कर्णरोग में पथ्य (योगरत्नाकर)

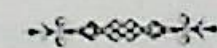
स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः।
गोधूमाः शालयो मुद्गा यवाश्च प्रतनं हविः ॥७९॥
लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरो वनकुक्कुटः।
पटोलं शिग्रु वार्ताकुं सुनिषण्णं कठिल्लकम् ॥८०॥
रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम्।
उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णामये हितम् ॥८१॥

स्वेदन, विरेचन, वमन, नस्य, धूमपान, रक्तमोक्षण, गेहूँ, शालिचावल, मूँग, यव, पुराना घी, लावक पक्षी, मयूरमांस, हरिणमांस, तित्तिर मांस, वनमुर्गा, पटोल, सहिजन फली, बैगन, करैला या पुनर्नवा शाक, सुनिषण्ण शाक, सभी प्रकार का रसायन सेवन, ब्रह्मचर्य और अत्यल्प बोलना—ये सभी कर्ण रोगी के लिए हितकर हैं।

कर्ण रोग में अपथ्य (यो.र.)

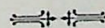
विरुद्धान्यन्नपानानि वेगरोधं प्रजल्पनम्।
दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरु ॥
कण्डूयनं तुषारञ्च कर्णरोगी परित्यजेत् ॥८२॥

इति भैषज्यरत्नावली कर्णरोगाधिकारः।



दतुअन चबाना, शिर से स्नान करना, व्यायाम करना, कफ कारक एवं गुरु पदार्थों का भोजन, कान खुजलाना और शीतवायु एवं शीतल जल का स्पर्श करना कान के रोगी को छोड़ देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य कर्णरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ नासारोगाधिकारः (६३)

पीनस रोग की चिकित्सा (अ.हृ.)

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निर्वातागारगो भवेत्।
स्नेहस्वेदप्रधमनं धूमगण्डूषधारणम् ॥१॥

सभी प्रकार के पीनस रोगों में वायु एवं कफ की प्रधानता रहती है। अतः इन दोषों के प्रशमनार्थ निर्वात स्थान (निर्वात आगारगः=वातरहितगृहम्) में रहना चाहिए। ततः रोगी को स्नेहन, स्वेदन, प्रधमन, धूमपान एवं गण्डूष धारण करना चाहिए।

पीनस रोग में आहार-विहार (अ.हृ.)

वासो गुरूष्णं शिरसः सुघनं परिवेष्टनम्।
लघूष्णं लवणस्निग्धमुष्णं भोजनमद्रवम् ॥२॥

पीनसरोग में वात-कफ प्रशमनार्थ गरम-भारी-मोटे (ऊनी) वस्त्रों का उपयोग करना चाहिए तथा शिर को ऊनी मफलर या ऊनी टोपी (मंकी कैप) से सुरक्षित एवं गरम रखना चाहिए जिससे शिर में वायु एवं शीत का स्पर्श नहीं हो। हल्का, गरम लवणीय (नमकीन), स्निग्ध तथा द्रव्य रहित भोजन करना लाभकारी है।

पीनस रोग चिकित्सा (च.द.)

पञ्चमूलीशृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी।
सर्पिर्गुडः षडङ्गश्च यूषः पीनसशान्तये ॥३॥

लघुपञ्चमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कण्टकारी, बृहती और गोखरु) को यवकुट कर उसे क्वाथ करें और उस क्वाथ से सिद्ध दूध का पान, चित्रकहरीतकी, राजयक्ष्माधिकारोक्त सर्पिर्गुड़ तथा षडङ्गयूष का सेवन करने से पीनसरोग नष्ट हो जाता है।

विशेष—आचार्य निश्चलकर के अनुसार लघुपञ्चमूल लेने की परम्परा चली आ रही है। कुछ अन्य आचार्य पञ्चमूल शब्द से बृहत्पञ्चमूल भी लेते हैं। अतः अधिकांश लोग आचार्य निश्चलकर की मान्यता से प्रेरित हैं।

१. व्योषादि चूर्ण (च.द.)

व्योषचित्रकतालीशतिन्तिडीकाम्लवेतसम्।
सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम् ॥४॥
व्योषादिकं चूर्णमिदं पुराणगुडसंयुतम्।
पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥५॥

१. सोंठचूर्ण, २. मरिचचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. चित्रकमूलचूर्ण, ५. तालीशपत्रचूर्ण, ६. इमलीफल की गूदा, ७. अम्लवेतसचूर्ण, ८. चव्यचूर्ण, ९. जीराचूर्ण—ये सभी द्रव्य प्रत्येक १००-१०० ग्राम लें; १०. छोटीइलायचीचूर्ण २५ ग्राम तथा ११. तेजपातचूर्ण २५ ग्राम लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण बनाकर फिर से छननी से छानकर काचपात्र में संग्रह करें। इस व्योषादिचूर्ण को २ से ३ ग्राम को पुराना गुड़ के साथ मिलाकर सेवन करें। इसके सेवन से पीनस, श्वास एवं कास नष्ट हो जाते हैं तथा यह भूख और स्वर को बढ़ाता है।

२. कलिङ्गादि अवपीड एवं तैलनस्य (च.द.)

कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः।
[1]कुष्ठोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥६॥
तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कटुतैलं विपाचयेत्।
अपीनसे पूतिनस्ये शमनं परिकीर्त्तितम् ॥७॥

सरसोतैल ५०० मि.ली., गोमूत्र २ लीटर तथा जल २ लीटर लें।

कल्क-द्रव्य—१. इन्द्रयव, २. हींग, ३. मरिच, ४. लाक्षा, ५. तुलसीबीज, ६. कट्फल, ७. कुष्ठ, ८. वच, ९. सहिजन और १०. वायविडङ्ग—प्रत्येक द्रव्य १५ ग्राम लें। सर्वप्रथम कटु तैल का मूर्च्छन करें। ततः इन्द्रयव से विडङ्ग पर्यन्त सभी १० द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इसे वस्त्र में रखकर पीडन कर ३-४ बूँद नाकों में अवपीडन करें तथा इन्हीं द्रव्यों से तैलसिद्ध कर नस्य दें। अब मूर्च्छित तैल में कल्क और थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र दे-देकर पाक करें। थोड़ा गोमूत्र देकर पाक करने पर भी तैल में अत्यधिक फेनोद्गम होता हैं। अतः धीरे-धीरे पाक करना चाहिए। जब २ लीटर गोमूत्र सूख जाय तो २ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का नस्य (अवपीड) लेने से अपीनस और पूतिनस्य आदि नासा रोग ठीक हो जाते हैं।

नासापाक चिकित्सा (च.द.)

नासापाके पित्तहृत् संविधानं
कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरञ्च।
हरेद् रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च
योज्याः सेके सर्पिषश्च प्रदेहाः ॥८॥

---

१. कुष्ठोग्रा इति चक्रदत्ते पाठः किन्तु भैषज्यरत्नावली-विनोदिनीटीकायां व्योषोग्रा एव भणितम्।

पूयास्रे रक्तपित्तघ्नाः कषाया नावनानि च ॥९॥

नासापाक रोग में बाह्य (लेपादि) एवं आभ्यन्तर (स्नेहपानादि) पित्तशामक सभी क्रिया करनी चाहिए। तदनन्तर रक्तमोक्षण करके क्षीरीवृक्ष (गूलर, वट, पीपर, प्लक्ष एवं महुआ) की त्वचा के क्वाथ से परिसेक तथा इनके चूर्णो को घी मिलाकर लेप करना चाहिए तथा नासा से पूय एवं रक्तस्राव तथा रक्तपित्तनाशक क्वाथ एवं नस्य का प्रयोग करना चाहिए।

३. शुण्ठ्यादि तैल/घृत (च.द.)

शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत् ।
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं क्षवथुरुक्प्रणुत् ॥१०॥

तिलतैल ५०० मि.ली. या गोघृत ५०० ग्राम लें।

कल्क-क्वाथ—१. सोंठ ३५५ ग्राम, २. कूठ ३५५ ग्राम, ३. पीपर ३५५ ग्राम, ४. बिल्वफलमज्जा ३५५ ग्राम और ५. मुनक्का ३५५ ग्राम (इसमें से प्रत्येक द्रव्य ३३५ ग्राम क्वाथार्थ और २० ग्राम कल्कार्थ) लें। सर्वप्रथम तिलतैल और घृत का अपनी-अपनी विधि से मूर्च्छन करें। ततः क्वाथ द्रव्यों को यवकुट कर चौगुने जल में क्वाथ कर चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। इसी प्रकार कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म बनाकर जल के साथ पीसें और कल्क बना लें। इसके बाद मूर्च्छिततैल या घृत में कल्क और क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक विद् वैद्य परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल या घृत का प्रयोग क्षवथु (छींक अधिक आना) रोग और नासापुट रोग में करने से रोग नष्ट हो जाता है।

दीप्त और नासानाह चिकित्सा (च.द.)

दीप्ते रोगे पैत्तिके संविधानं
कार्यं कुर्यात्स्वादु यच्छीतलञ्च ।
नासानाहे स्नेहपानं प्रधानं
स्निग्धा धूमा मूर्द्धबस्तिश्च नित्यम् ॥११॥

दीप्त नामक पैत्तिक नासा रोग में पित्तघ्न मधुर एवं शीतल चिकित्सा करनी चाहिंए। नासानाह रोग में स्नेहपान, स्नैहिक धूमपान और शिरोबस्ति का प्रयोग करना चाहिए।

प्रतिश्याय चिकित्सा (च.द.)

वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत्सर्पिर्यथाक्रमः ।
पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च ॥
नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतार्दितेरितम् ॥१२॥

वातज प्रतिश्याय रोग में पञ्चलवण से साधित घृत बलानुसार पिलावें। अथवा विदार्यादिगण की औषधियों से सिद्ध घृत से स्नेहन, स्वेदन, लेप, पान एवं नस्यादि कर्म कराना चाहिए तथा अर्दित रोगोक्त समस्त चिकित्सा करनी चाहिए।

विशेष—अष्टाङ्गहृदयकार ने पहले ही वातज प्रतिश्याय की चिकित्सा में विदार्यादिगण से सिद्ध घृत का पान-नस्यादि चिकित्सा कही है अतः तभी से चक्रदत्त में भी वातज प्रतिश्याय में उसी विदार्यादिगण से साधित घृत के प्रयोग का विधान बतलाया गया है। चक्रदत्त की व्याख्या में आचार्य शिवदास सेन ने इसे और भी प्रस्फुटित किया है। यथा—

'पिबेद्वातप्रतिश्याये सर्पिर्वातघ्नसाधितम्।
पटुपञ्चकसिद्धं वा विदार्यादिगणेन वा'।।
(अ.हृ.उ. २०/१०)

विदार्यादिगण[1] में कुल २० औषधियाँ हैं। यथा— विदारीकन्द, एरण्डमूलत्वक्, वृश्चिकाली, श्वेतपुनर्नवा, देवदारु, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, कपिकच्छू, [2]जीवनादिगण के पाँच द्रव्य, लघुपञ्चमूल (बृहती, कण्टकारी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी और गोक्षुर), अनन्तमूल तथा हंसपदी। विदार्यादि गण के इस पाठ में 'द्वे पञ्चके' से जीवनपञ्चमूल की पाँच औषधियाँ तथा लघुपञ्चमूल की पाँच औषधों का समावेश है।

पित्तज प्रतिश्याय चिकित्सा (च.द.)

पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ।
परिषेकान् प्रदेहांश्च कुर्य्यादपि च शीतलान् ॥१३॥

पित्तज तथा रक्तज प्रतिश्याय में काकोल्यादि गणोक्त पित्तघ्न मधुर द्रव्यों के कल्क-क्वाथ से सिद्ध घृत का पान करें तथा न्यग्रोधादि एवं उत्पलादि गणोक्त द्रव्यों के कल्क-क्वाथ से साधित रक्तस्तम्भक एवं शीतल घृत से परिसेक एवं लेप करना चाहिए। न्यग्रोधादि एवं काकोल्यादि तथा उत्पलादि गणों के क्वाथ का भी परिषेक करना चाहिए।

कफज प्रतिश्याय की चिकित्सा (च.द.)

कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया ।
यवाग्वा वामयित्वा वा कफघ्नं क्रममाचरेत् ॥१४॥

कफज प्रतिश्याय में पहले स्नेहन-स्वेदन करके तिल एवं उड़द से बनायी कृशरा अथवा इनके कल्क से सिद्ध यवागू में मदनफलबीजचूर्ण मिलाकर वमनार्थ पिलावें पश्चात् कफनाशक पेया-कृशरा आदि का सेवन करावें।

---

१. **विदार्यादि गण**—
विदारिपञ्चाङ्गुलवृश्चिकालीवृश्चीवदेवाह्वयशूर्पपर्ण्यः ।
कण्डूकरी जीवनहस्वसंज्ञे द्वे पञ्चके गोपसुता त्रिपादी ॥

२. अभीरुवीराजीवन्तीजीवकर्षभकैः स्मृतम्।
जीवनाख्यं तु चक्षुष्यं वृष्यं पित्तानिलापहम् ॥
अभीरु = शतावरी, वीरा = काकोली, जीवन्ती = शाकविशेषः, जीवकः ऋषभकौ तु प्रसिद्धौ।

४. दार्व्यादि धूमवर्त्ति (च.द.)

दार्वीङ्गुदीनिकुम्भैश्च किणिह्या सुरसेन च।
वर्त्तयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि ॥१५॥

१. दारुहल्दी, २. इङ्गुदीफल, ३. दन्तीमूल, ४. अपामार्गबीज और ५. तुलसीपत्र—इन्हें समभाग लें। इनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनायें तथा इस कल्क से वर्त्ति (४ अंगुल लम्बी वर्त्ति) बनाकर सुखा लें। इस वर्ति को सिगरेट जैसा जलाकर धूमपान करने से प्रतिश्याय नष्ट हो जाता है।

५. यवशक्तू धूम (च.द.)

अथवा सघृतान् शक्तून् कृत्वा मल्लिकसम्पुटे।
नवप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रयोजयेत् ॥१६॥

जौ के सत्तू में घृत मिलाकर एक मिट्टी के शराव में रखें तथा उस शराव पर वैसे ही सच्छिद्र शराव से ढककर सन्धिबन्धन करें। ततः उस सम्पुटित शराव को निर्धूम अंगार पर रखें। शराव के छिद्र से जो धूम निकले उसे प्रतिश्याय का रोगी अपनी नाक से सूघे अर्थात् नाक से ऊपर खींचें।

पीनस में शीतल जल पान (च.द.)

यः पिबति शयनकाले शयनारूढः सुशीतलं भूरि।
सलिलं पीनसयुक्तो मुच्यते तेन रोगेण ॥१७॥

जो पीनस का रोगी रात्रि में सोते समय बिस्तर पर बैठकर प्रचुर मात्रा में शीतल जल पान करता है, उसका पीनस रोग नष्ट हो जाता है।

६. जयापत्रादि पुटपाक रस (च.द.)

पुटपक्वं जयापत्रं सिन्धुतैलसमायुतम्।
प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥१८॥

जयन्तीपत्र या भाँगपत्र में सैन्धवलवण और तिलतैल मिलाकर पुटपाट विधि से जो मिश्रण प्राप्त हो उसका नस्य, लेप एवं पान करने से सभी प्रतिश्यायों में लाभ होता है।

७. स्निग्धाम्लदधि-गुड-मरिच प्रयोग (च.द.)

सोषणं गुडसंयुक्तं स्निग्धदध्यम्लभोजनम्।
नवप्रतिश्यायहरं विशेषात् कफपाचनम् ॥१९॥

स्निग्ध (मक्खनयुक्त) एवं खट्टा दही में मरिचचूर्ण और गुड़ मिलाकर खिलाने से नया प्रतिश्याय नष्ट हो जाता है और कफ का पाचन होता है।

८. चिञ्चापत्र यूष (च.द.)

प्रतिश्याये नवे शस्तो यूषश्चिञ्चादलोद्भवः।
ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः ॥२०॥
शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्वम्लभोजनैः।
वमनैर्घृतपानैश्च तान् यथास्वमुपाचरेत् ॥२१॥

नवीन प्रतिश्याय में इमलीपत्र का यूष बनाकर (नमक-हिंगु-मरिचचूर्ण से संस्कृत कर) पिलाना चाहिए। ऐसा यूष पान करने से कफ पक जाता है। अतः (पीपर, अपामार्ग, पीतसरसों, कट्फल आदि) तीक्ष्णौषधों के चूर्ण से नस्य देकर पक्व कफ का शिरोविरेचन करावें। ततः कफनिःसारक द्रव्यों से सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग, स्वेद, नस्य, कटु-अम्ल द्रव्यों का सेवन, वमन एवं घृतपान आदि विधियों से पके हुए कफ का निर्हरण करना चाहिए।

९. सुस्विन्न माष-लवण भक्षण (च.द.)

भक्षयेति भुक्तमात्रे सलवणसुस्विन्नमाषमत्युष्णम्।
स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातञ्च प्रतिश्यायम् ॥२२॥

भोजन के बाद उबले हुए गरम उड़द में सैन्धवलवण मिलाकर खाने से त्रिदोषज तथा पुराना प्रतिश्याय नष्ट हो जाता है।

१०. पिप्पल्यादि नस्य (च.द.)

पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि च।
अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः ॥२३॥

१. पीपरचूर्ण, २. सहिजनबीजचूर्ण, ३. वायविडङ्गचूर्ण और ४. मरिचचूर्ण—इन चारों द्रव्यों के समभागीय सूक्ष्म चूर्ण का नस्य लेने से प्रतिश्याय रोग नष्ट हो जाता है।

११. नासाकृमि में सुरसादिगण (च.द.)

समूत्रपिष्टास्तोद्दिष्टाः क्रियाः कृमिषु योजयेत्।
नावनार्थं कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥
शेषाणान्तु विकाराणां यथास्वं स्याच्चिकित्सितम् ॥

प्रतिश्याय या किसी अन्य कारण यदि नाक में कीड़े पड़ जाय तो कृमिरोग प्रकरण में कहे गए [1]सुरसादिगण की औषधों को गोमूत्र में पीसकर नस्य देना चाहिए। साथ ही सुरसादिगण की औषधों के क्वाथ से नासा-प्रक्षालन एवं छींक कराने वाली औषधों (कट्फल-अपामार्ग) का प्रयोग करना चाहिए तथा शेष विकारों—नासार्श एवं नाशार्बुद रोग में अर्श और अर्बुद जैसी चिकित्सा करनी चाहिए।

---

१. **सुरसादिगण**—सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुखकालमालकुठेरककासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फलसुरसीनिर्गुण्डीकुलाहलोन्दुरुकर्णिकाफञ्जीप्राचीबलकाकमाच्यो विषमुष्टिकश्चेति। (सु.सू. ३८।१८)

अन्ये च—
सुरसयुगफणिज्झं कालमाला विडङ्गं खरवुषवृषकर्णीकट्फलं कासमर्दः।
क्षवकसरसि भार्गी कामुका काकमाची कुलहदविषमुष्टी भूस्तृणो भूतकेशी ॥

१२. चित्रकहरीतकी (च.द.)

चित्रकस्यामलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम्।
शतं शतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात् ॥२५॥
शतं पचेद् घनीभूते पलद्वादशकं क्षिपेत्।
व्योषत्रिजातयोः क्षारात् पलार्द्धमपरेऽहनि ॥२६॥
प्रस्थार्द्धं मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्यादतन्द्रितः।
वृद्धयेऽग्ने क्षयं कासं पीनसं दुस्तरं कृमीन्।
गुल्मोदावर्त्तदुर्नामश्वासान् हन्ति रसायनम् ॥२७॥

क्वाथ—१. चित्रकमूलक्वाथ, २. आमलकीक्वाथ, ३. गुडूचीक्वाथ, ४. दशमूलक्वाथ, ५. गुड़ ५ किलो और ६. हरीतकीचूर्ण ३ किलो (ऊपर के चारों क्वाथ ५-५ लीटर) लें।

प्रक्षेप—१. सोंठ १८७ ग्राम, २. पीपर १८७ ग्राम, ३. मरिच १८७ ग्राम, ४. छोटी इलायची १८७ ग्राम, ५. नागकेशर १८७ ग्राम, ६. दालचीनी १८७ ग्राम, तेजपात १८७ ग्राम तथा यवक्षार २३ ग्राम लें। चित्रक से दशमूल तक के सभी द्रव्यों को पृथक्-पृथक् यवकुट करें तथा चौगुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। अब ताम्र के बड़े कलईदार पात्र में चारों क्वाथ मिलाकर पाक करें तथा उसमें ५ किलो गुड़ डालकर चासनी करें। जब दो तार की चासनी (अवलेह की चासनी) हो जाय तो परीक्षोपरान्त चूल्हे से पात्र को नीचे उतार लें और हरीतकीचूर्ण डालकर अच्छी तरह मिला लें। ततः प्रक्षेप द्रव्य में त्रिकटु आदि चूर्ण डालें तथा सावधानीपूर्वक ठीक से मिला लें। जब औषधि ठण्डी हो जाय तो ३७५ ग्राम मधु भी उसमे अच्छी तरह मिला लें। ततः काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'चित्रकहरीतकी' को ३ से १२ ग्राम की मात्रा में अवस्था, बल एवं अग्नि की मात्रानुसार प्रतिदिन अग्निवृद्ध्यर्थ सेवन करने से क्षय, कास, पीनस, भयंकर कृमि, गुल्म, उदावर्त्त, अर्श और भयंकर श्वास रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध से। **गन्ध**—गुड के पाक जैसी सुगन्ध। **वर्ण**—गुडाभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—अग्निवर्धक है। क्षय, कास, श्वास, पीनस एवं कृमि में।

१३. पाठादि तैल (च.द.)

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।
दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं सम्पगपीनसे ॥२८॥

कल्क—१. पाठा, २. हल्दी, ३. दारुहल्दी,४. मूर्वामूल, ५. पीपर, ६. चमेलीपत्र और ७. दन्तीमूल—प्रत्येक द्रव्य १८ ग्राम लें। तिलतैल ५०० मि.ली. तथा जल २ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः पाठा से दन्तीमूल तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। तदनन्तर मूर्च्छिततैल में कल्क और २ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का प्रतिदिन अनेक बार नस्य लेने से पक्व पीनस रोग नष्ट हो जाता है।

१४. व्याघ्री तैल (च.द.)

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसव्योषसैन्धवैः ।
पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदं जयेत् ॥२९॥

१. कण्टकारी, २. दन्तीमूल, ३. वच, ४. सहिजनत्वक्, ५. तुलसी पञ्चाङ्ग, ६. सोंठ, ७. पीपर, ८. मरिच तथा ९. सैन्धवलवण—प्रत्येक द्रव्य १५ ग्राम लें; और तिलतैल ५०० मि.ली. एवं जल २ लीटर लें। सर्वप्रथम तिल का मूर्च्छन करें। ततः कण्टकारी से सैन्धव तक के सभी ९ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसें और कल्क बना लें। अब मूर्च्छिततैल में कल्क और जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का प्रतिदिन अनेक बार नस्य लेने से 'पूतिनासा' रोग नष्ट हो जाता है।

१५. त्रिकट्वादि तैल (च.द.)

त्रिकटुविडङ्गसैन्धववृहतीफलशिग्रुसुरसदन्तीभिः।
तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात्पूतिनस्यस्य ॥३०॥

कल्क—१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. वायविडङ्ग, ५. सैन्धवलवण, ६. बृहतीफल, ७. शिग्रुत्वक्, ८. तुलसी पञ्चाङ्ग तथा ९. दन्तीमूल—प्रत्येक द्रव्य १५ ग्राम लें; १०. गोमूत्र २ लीटर, ११. तिलतैल ५०० मि.ली. और जल २ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः सोंठ से दन्तीमूल तक के सभी ९ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बना लें। अब इस कल्क और थोड़ा गोमूत्र को मूर्च्छिततैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र देकर पाक करें अन्यथा अत्यधिक फेनोद्गम होगा। गोमूत्र सूखने पर २ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से तैल छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का प्रतिदिन ३-४ बार नस्य लेने से 'पूतिनासा' रोग नष्ट हो जाता है।

१६. करवीराद्य तैल (च.द.)

रक्तकरवीरपुष्पं जात्यशनमल्लिकायाश्च ।
एतैः समन्तु तैलं नासाऽर्शोनाशनं श्रेष्ठम् ॥३१॥

तिलतैल ५०० मि.ली. तथा जल २ लीटर लें। १. लाल कनेर का फूल, २. चमेलीफूल, ३. विजयसारफूल और ४. चमेलीफूल—प्रत्येक द्रव्य (फूल) ३१-३१ ग्राम लें। पहले तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः इन फूलों को सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब इस कल्क और जल को मूर्च्छिततैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से तैल को छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का प्रतिदिन ३-४ बार नस्य लेने से 'नासार्श' रोग नष्ट हो जाता है।

१७. शिखरि तैल (च.द.)

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ।
सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥३२॥

तिलतैल ५०० मि.ली. तथा जल २ लीटर लें। १. अपामार्गबीज, २. गृहधूम (लकड़ी के क़ोयले का चूर्ण), ३. पीपर, ४. देवदारु, ५. यवक्षार, ६. करञ्ज और ७. सैन्धवलवण—प्रत्येक द्रव्य १८ ग्राम लें । पहले तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः गृहधूम से सैन्धव तक के सभी ७ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छिततैल में कल्क और जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का प्रतिदिन ३-४ बार नस्य लेने से नासार्श रोग नष्ट हो जाता है।

विमर्श—गृहधूम के अभाव में (चूँकि आज गृहधूम बिल्कुल नहीं मिलता है) मेरे गुरूपदेशानुसार लकड़ी के कोयले का चूर्ण लेने की परम्परा है।

१८. चित्रक तैल (च.द.)

चित्रकचविकादीप्यकनिदिग्धिकाकरञ्जलवणार्कैः ।
गोमूत्रयुक्तं सिद्धं तैलं नासार्शसां विहितम् ॥३३॥

१. चित्रकमूल, २. चव्यकाण्ड, ३. अजवायन, ४. कण्टकारी, ५. करञ्जबीज, ६. सैन्धवलवण और ७. अर्कमूल—प्रत्येक द्रव्य १८ ग्राम लें; तिलतैल ५०० मि.ली., जल २ लीटर तथा गोमूत्र २ लीटर लें। सर्वप्रथम तिल का मूर्च्छन करें। ततः चित्रकमूल से अर्कमूल तक के सभी ७ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बना लें। अब मूर्च्छिततैल में कल्क और ५०० मि.ली. गोमूत्र मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब गोमूत्र सूख जाय तो पुनः-पुनः ५०० मि.ली. गोमूत्र दे-देकर पाक करें। एक साथ २ लीटर गोमूत्र मिलाकर पाक करने से तैल में अत्यधिक फेनोद्गम होकर तैल बाहर गिरता है। अतः थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र देकर स्नेहपाक का विधान है । गोमूत्र सूखने पर सम्यक् पाकार्थ २ लीटर जल देकर पुनः पकावें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीच उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का प्रतिदिन ३-४ बार नस्य लेने से 'नासार्श' रोग नष्ट हो जाता है।

१९. पञ्चामृत रस (र.सा. सं.)

शुद्धसूतं समादाय गन्धभागद्वयं ततः ।
त्रिभागं टङ्कणं चापि विषं भागचतुष्टयम् ॥३४॥
पञ्चभागं तथा देयं मरिचस्य प्रयत्नतः ।
शृङ्गबेररसैः पिष्ट्वा गुडिका पञ्चरक्तिका ॥३५॥
अनुपानं हितं योज्यं सर्वरोगप्रशान्तये ।
जलदोषोद्भवे रोगे महत्युग्रे जलोदरे ॥३६॥
सन्निपातेषु रोगेषु नासाव्याधौ सपीनसे ।
व्रणशोथे व्रणे चैव उपदंशे भगन्दरे ॥३७॥
नाडीव्रणे ज्वरे चैव नखदन्तविषातुरे ।
पञ्चामृतरसो योज्यः सर्वरोगप्रशान्तये ॥३८॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध गन्धक २ भाग, ३. शुद्ध सुहागा ३ भाग, ४. शुद्ध वत्सनाभचूर्ण ४ भाग तथा ५. मरिच चूर्ण ५ भाग लें। एवं भावनार्थ आर्द्रकस्वरस रस लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का खूब मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य सभी द्रव्यों के चूर्णों को मिलाकर आर्द्रकस्वरस की १ भावना देकर ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा की वटी बना लें और छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। दोषानुसार अनुपान से इस पञ्चामृतरस का सेवन करने से जल दोष से उत्पन्न अत्यधिक भयंकर जलोदर रोग, सन्निपातज्वर, नाक के रोग, पीनस, व्रणशोथ, उपदंश, भगन्दर, नाड़ीव्रण, ज्वर तथा नख और दाँत से काटे हुए व्रण रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु-घी तथा रोगानुसार। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **उपयोग**—नासारोग, जलोदररोग, पीनस एवं नाडीव्रण में।

नासा रोग में पथ्य (यो.र.)

स्वेदः स्नेहः शिरोऽभ्यङ्गः पुराणा यवशालयः ।
कुलित्थमुद्गयोर्यूषः ग्राम्या जाङ्गलजा रसाः ॥३९॥
वार्ताकुं कुलकं शिग्रुं कर्कोटं बालमूलकम् ।
लशुनं दधि तप्ताम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥४०॥
कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णञ्च लघुभोजनम् ।
नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथाबलम् ॥४१॥
स्थितिर्निर्वातनिलये प्रगाढोष्णीषधारणम् ।

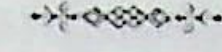
गण्डूषो लङ्घनं नस्यं धूमश्छर्दिः शिराव्यधः।
कटुचूर्णं नासारन्ध्रे निक्षिप्यान्तः प्रवेशितम् ॥४२॥

स्नेहन, स्वेदन, शिरोऽभ्यङ्ग, पुराना जौ, पुराना शालिचावल, कुलथी और मूँग का यूष, ग्राम्य एवं जंगली पशु-पक्षियों का मांसरस, बैंगन, परवल, सहिजन फली, कर्कोटक (बन्ध्या कर्कोटक) या केकड़ा, बालमूली, लशुन, दही, गरम जल, वारुणी, त्रिकटु, कटु-अम्ल-लवण रस, स्निग्ध एवं लघु भोजन नासा एवं पीनस रोग में हमेशा लाभप्रद है। निर्वात गृह में रहना, शिर पर भारी पगड़ी बाँधना, गण्डूष, लंघन, नस्य, धूम, वमन, शिराव्यध तथा नाक में कटु औषधियों को डालकर सूँघना हितकर है।

नासा रोग में अपथ्य (यो.र.)

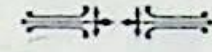
विरुद्धानि दिवास्वप्नमभिष्यन्दि गुरूणि च।
स्नानं क्रोधं शकृन्मूत्रवातवेगाञ् शुचं द्रवम्।
भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगे परित्यजेत् ॥४३॥

इति भैषज्यरत्नावली नासारोगाधिकारः।



विरुद्ध अन्न, दिन में सोना, अभिष्यन्दि एवं गुरु पदार्थों का सेवन, स्नान करना, क्रोध करना, पुरीष, मूत्र एवं वातवेगों को रोकना, शोक करना, तरल आहार और भूमि में सोना—ये सब अपथ्य नासा रोगी को छोड़ देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य नासारोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ नेत्ररोगाधिकारः (६४)

अभिष्यन्द का चिकित्सासूत्र (च.द.)

लङ्घनालेपनस्वेदशिराव्यधविरेचनैः ।
उपाचरेदभिष्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः ॥१॥

लंघन (उपवास), लेप, स्वेदन, शिरामोक्ष (रक्तस्राव), शिरोविरेचन तथा कायविरेचन, नेत्राञ्जन और आश्च्योतन (अक्षिपूरण) तथा आदि शब्द से तर्पण, पुटपाक, प्रक्षालन, सेचन आदि द्वारा नेत्ररोगों की चिकित्सा करनी चाहिए।

१. श्रीवासादि अवचूर्णन (च.द.)

श्रीवासातिविषालोध्रैश्चूर्णितैरल्पसैन्धवैः ।
अव्यक्तेऽक्षिगदे कार्यं प्रोतस्थैर्गुण्डनं बहिः ॥२॥

१. देवदारु १ भाग, २. अतीस १ भाग, ३. लोध्र १ भाग तथा ४. सैन्धव $\frac{1}{8}$ भाग लें। इन्हें एक साथ चूर्ण कर कपड़े में रख पोटली बना लें। इस पोटली के द्वारा रोगी के नेत्र बन्दकर अवगुण्डन (अवचूर्णन) करने से अव्यक्त नेत्ररोग (होने की सम्भावना) में रोकथाम (Prevention) के रूप में काम करता है। अर्थात् अवचूर्णन करने से नेत्ररोग होने की सम्भावना नहीं रहती है।

पाँच रात्रि उपवास फल (च.द.)

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः ।
पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रशमं यान्ति लङ्घनात् ॥३॥

अभिष्यन्दादि नेत्ररोग, उदररोग, प्रतिश्यायरोग, व्रणरोग एवं ज्वररोग—ये सभी पाँचों रोग पाँच दिन-रात तक उपवास करने से नष्ट हो जाते हैं।

आमज नेत्रनाशक षड्विध उपाय (च.द.)

स्वेदः प्रलेपस्तिक्तान्नं सेको दिनचतुष्टयम् ।
लङ्घनञ्चाक्षिरोगाणामामानां पाचनानि षट् ॥४॥

स्वेदन, प्रलेप, तिक्तरस साधित अन्न का भोजन, सेंक (आश्च्योतन), रोगारम्भ से ४ दिन का समय पूरा हो जाना और लंघन (उपवास)—इन ६ उपायों से आमजन्य नेत्ररोग नष्ट हो जाता है। चार दिनों तक रोग की आमावस्था रहती है तथा पाँचवें दिन रोग निरामावस्था में चला जाता है।

आमजनेत्र रोगों में त्रिविधकार्यवर्ज्य (च.द.)

अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते ॥५॥

नेत्ररोगों की आमावस्था में नेत्राञ्जन, नेत्रपूरण तथा क्वाथपान नहीं कराना चाहिए।

२. आमलारसादि आश्च्योतन (च.द.)

धात्रीफलनिर्यासो नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः ।
सक्षौद्रसैन्धवो वा शिग्रूद्भवपत्ररससेकः ॥६॥

नेत्रों में आमला स्वरस की २-३ बूँद डालने से अथवा सहिजनपत्रस्वरस ३ ग्राम, मधु ५०० मि.ग्रा तथा सैन्धवलवण १२५ मि.ग्रा. मिलाकर डालने से नया नेत्राभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है।

३. रसाञ्जनादि द्रव आश्च्योतन (च.द.)

दार्वीरसाञ्जनञ्चापि स्तन्ययुक्तं प्रपूरणम् ।
निहन्ति शीघ्रं दाहाश्रुवेदनाः स्यन्दसम्भवा ॥७॥

दारुहरिद्राक्वाथ से निर्मित रसाञ्जन १२५ मि.ग्रा को स्त्री के दूध २ मि.ली. में घोलकर नेत्रों में २-३ बूँद डालने से नेत्राभिष्यन्दजन्य दाह, अश्रुपात एवं नेत्रवेदना शान्त हो जाती है।

४. करवीपत्र रस पूरण (च.द.)

करवीरतरुणकिशलयछेदोद्भवसलिलसम्पूर्णम् ।
नयनयुगं भवति दृढं सहसैव तत्क्षणात् कुपितम् ॥८॥

लाल कनेर के नये पत्तों का स्वरस दिन में २ बार नेत्रों में टपकाने से नेत्राभिष्यन्द रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

५. अपामार्गाञ्जन (च.द.)

शिखरिजमूलं ताम्रभाजने स्तोकसैन्धवोन्मिश्रम् ।
मस्तुनिघृष्टं भरणाद्धरति च नवलोचनोत्कोपम् ॥९॥

अपामार्ग के मूल को जल से धोकर ताम्र की थाली पर थोड़ा सैन्धव तथा मस्तु जल डालकर घिसने से काला अञ्जन जैसा जो द्रव तैयार होगा उसे नेत्रों में आञ्जने से नवीन अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है।

६. सैन्धवादि लेप (च.द.)

सैन्धवदारुहरिद्रागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टैः ।
दत्तो बहिः प्रलेपो भवत्यशेषाक्षिरोगहरः ॥१०॥

१. सैन्धवलवण, २. दारुहल्दी, ३. शुद्ध गैरिक, ४. हरीतकी और ५. रसाञ्जन (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर पीसें और जल में मिलाकर गरम करें। इसे नेत्र के बाहरी पलकों पर लेप करने से सभी प्रकार के नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं।

७. लोध्रहरीतकी विडालक (च.द.)

तथा शावरकं लोध्रं घृतभृष्टं विडालकः ।
कार्या हरीतकी तद्वद् घृतभृष्टा विडालकः ॥११॥

लोध्रचूर्ण या हरीतकीचूर्ण को घृत में हल्का भूनकर जल में घोलें तथा गरम कर नेत्रों की पलकों पर लेप करें। इससे अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है।

बिडालक की परिभाषा (च.द.)

शालाक्येऽक्ष्णोर्बहिर्लेपो बिडालक उदाहृतः ॥१२॥

शालाक्य रोग (नेत्ररोग) में आँखों की पलकों पर सुखोष्ण लेप करना ही बिडालक है।

८. गैरिकादि लेप (च.द.)

गिरिमृच्चन्दननागरखटिकांशयोजितो बहिर्लेपः ।
कुरुते वचया मिश्रो लोचनमगदं न सन्देहः ॥१३॥

१. शुद्ध गैरिक, २. लालचन्दनचूर्ण, ३. सोंठचूर्ण, ४. खटिकाचूर्ण तथा ५. वचचूर्ण (समभाग) लें। इन सभी चूर्णों को एक साथ मिलावें और जल में घोलकर आग पर गरम करें। इस सुखोष्ण अगद (औषध) का नेत्रों की पलकों पर लेप करने से निःसन्देह नेत्ररोग नष्ट हो जाता है।

९. भूम्यामलकादि लेप (च.द.)

भूम्यामलकी घृष्टा सैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे ।
याता घनत्वमक्ष्णोर्जयति बहिर्लेपतः पीडाम् ॥१४॥

भूँई आमला का मूल, थोड़ा सैन्धवलवण तथा काञ्जी—इन्हें ताँबे की थाली पर घिसें और इस अञ्जन का नेत्र-पलकों पर गाढ़ा लेप करने से अभिष्यन्द जन्य पीड़ा नष्ट हो जाती है।

१०. बिल्वादि क्वाथ आश्च्योतन (च.द.)

आश्च्योतनं मारुतजे क्वाथो बिल्वादिभिर्हितः ।
कोष्णः सैरण्डबृहतीतर्कारीमधुशिग्रुभिः ॥१५॥

बिल्वादि बृहत्पञ्चमूल (बिल्वमूलत्वक्, अग्निमन्थमूल त्वक्, सोनापाठामूलत्वक्, पाटलामूलत्वक् और गम्भारमूल त्वक्) तथा एरण्डमूलत्वक्, बृहतीपञ्चाङ्ग, जयन्तीमूलत्वक् और सहिजन-मूलत्वक् के समभागीय क्वाथ में मधु मिलाकर सुखोष्ण आश्च्योतन करने से वातज अभिष्यन्द नेत्ररोग में अत्यधिक लाभ होता है।

११. एरण्डादि क्षीरपाक (च.द.)

एरण्डपल्लवे मूले त्वचि चाजपयः शृतम् ।
कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम् ॥१६॥

एरण्डपत्र, एरण्डमूलत्वक् तथा कण्टकारीमूल (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम इस यवकुट को लेकर १५ गुना (३७५ मि.ली.) दूध तथा ३७५ मि.ली. जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्षीरावशेष[1] रहने पर उतार लें। इस मन्दोष्ण क्षीर का नेत्रों पर सेचन करना वातज अभिष्यन्द रोग में हितकर है।

नेत्ररोग में अञ्जन का काल (च.द.)

सम्पक्वेऽक्षिगदे कार्यमञ्जनादिकमिष्यते ॥१७॥

नेत्ररोग (अभिष्यन्दादि) के परिपक्वावस्था में अञ्जनादि से चिकित्सा करनी चाहिए।

नेत्ररोग-परिपक्वावस्था के लक्षण (च.द.)

प्रशस्तवर्त्मता चाक्ष्णोः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ।
मन्दवेदनता कण्डूः पक्वाक्षिगदलक्षणम् ॥१८॥

नेत्रों का निर्मल दिखाई देना, शोथ का अभाव, नेत्रों से आसुँओं का नहीं निकलना, नेत्रों में पीड़ा नहीं होना तथा नेत्रों में कण्डू होना—इन लक्षणों से युक्त नेत्र परिपक्वावस्था का परिचायक है।

१२ बृहत्यादि वर्त्ति (च.द.)

बृहत्येरण्डमूलत्वक् शिग्रोर्मूलं ससैन्धवम् ।
अजाक्षीरेण पिष्टं स्याद् वर्त्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥१९॥

१. बृहतीमूल, २. एरण्डमूलत्वक्, ३. सहिजनमूलत्वक् और सैन्धवलवण—इन्हें समभाग में लें तथा सूक्ष्म चूर्ण करें। अब एक खरल में इस चूर्ण को बकरी के दूध की भावना देकर १-१ इञ्च लम्बी वर्ति बनाकर धूप में अच्छी तरह से सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्ति को बकरी के दूध में घिसकर अञ्जन लगाने से वातज अभिषयन्द रोग नष्ट हो जाता है।

१३. हरिद्राद्यवर्त्ति (च.द.)

हरिद्रे मधुकं द्राक्षां देवदारु च पेषयेत् ।
आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥२०॥

१. हल्दीचूर्ण, २. दारुहल्दीचूर्ण, ३. मुलेठीचूर्ण, ४. द्राक्षा और ५. देवदारुचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलावें और खरल में बकरी के दूध की भावना देकर मर्दन करें तथा वर्त्ति बनाकर धूप में सुखा लें एवं काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्ति को बकरी के दूध में घिसकर नेत्रों में अञ्जन लगाने से वातज अभिष्यन्द रोग में अत्यधिक लाभ होता है। यह श्रेष्ठ अञ्जन है।

१४. गैरिकाद्य गुटिकाञ्जन (च.द.)

गैरिकं सैन्धवं कृष्णा लगरञ्च यथोत्तरम् ।
पिष्टं द्विरंशतोऽद्भिर्वा गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥२१॥

---

१. क्षीरपाक—
द्रव्यात्तिथिगुणं क्षीरं क्षीरात्नीरं समं मतम् ।
क्षीरावशेषं कर्त्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ (आचार्य यादवजी)

१. शुद्ध गैरिक १ भाग, २. सैन्धवलवणचूर्ण २ भाग, ३. पीपरचूर्ण ४ भाग तथा ४. तगरचूर्ण ८ भाग लें। इस तरह उत्तरोत्तर द्विगुण लेकर पुनः सूक्ष्मचूर्ण कर खरल में बकरी दूध या जल की भावना दें तथा १-१ इञ्च की वर्ति या गुटिका बनाकर सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे जल के साथ घिसकर अञ्जन करने से वातज अभिष्यन्द नेत्ररोग नष्ट हो जाता है। आचार्य निश्चलकर ने तगर के स्थान पर शुण्ठी पढ़ा है।

पित्तज नेत्ररोग अभिष्यन्दादि चिकित्सा

१५. प्रपौण्डरीकादि सेक (च.द.)

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वनिशामलकपद्मकैः ।
शीतैर्मधुसमायुक्तैः सेकः पित्ताक्षिरोगनुत् ॥२२॥

१. पुण्डरियाकाष्ठ, २. मुलेठी, ३. हल्दी, ४. आमला तथा ५. नीलकमलपुष्प (समभाग) लें। इनको यवकुट कर क्वाथ करें। जब क्वाथ शीतल हो जाय तो उसे २-३ बार कपड़ा से छानकर उसमें मधु मिलाकर शीतल बूँदों से नेत्र पर सेचन करने से पित्तज अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है।

१६. द्राक्षादि आश्च्योतन (च.द.)

द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः ।
प्रातराश्च्योतनं शस्तं शोथशूलाक्षिरोगिणाम् ॥२३॥

१. द्राक्षा, २. मुलेठी, ३. मंजीठ तथा ४. जीवनीय गणोक्तद्रव्य—इन्हें समभाग लेकर गोदुग्ध में क्षीरपाक विधि से पाक करें और कपड़ा से छान लें। जब दूध शीतल हो जाय तो पित्तज नेत्ररोग जन्य शोथ एवं शूल में आश्च्योतन (बूँद-बूँद टपकाने) से अत्यन्त लाभ होता है।

१७. निम्बादि पुटपाक आश्च्योतन (च.द.)

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं
स्वेद्याग्निना चूर्णमथापि कल्कम् ।
आश्च्योतनं मानुषदुग्धमिश्रं
पित्तास्रवातापहमग्र्यमुक्तम् ॥२४॥

निम्बपत्रकल्क के अन्दर लोध्रत्वक् कल्क रखें और उस कल्क को एरण्डपत्र से लपेटें। उस पर मिट्टी का लेपकर सुखा लें और पुटपाक विधि से पुटपाक करें। ततः पुटपाक खोलकर कपड़ा में रखकर रस निचोड़ लें। इस पुटपाकस्वरस में स्त्रीदुग्ध समभाग मिलाकर नेत्रों में बूँद-बूँद टपकाने (आश्च्योतन) से पित्तज, रक्तज एवं वातज नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं।

कफज नेत्ररोग चिकित्सा

कफज नेत्ररोग का चिकित्सासूत्र (च.द.)

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तान्नभोजनम् ।
तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैश्चैवोपनाहनम् ॥२५॥

कफज नेत्ररोग में लंघन, स्वेदन, नस्य, तिक्त रसों से युक्त अन्न का भोजन, तीक्ष्ण प्रधमन नस्य (इस नस्य में कट्फल या मरिचचूर्ण आदि भरकर नाक में नली का एक भाग रखें तथा दूसरे भाग को मुख से जोर से फूँककर ऊपरी नासा में चूर्ण को पहुँचाना ही प्रधमन नस्य है) तथा उपनाह (तीक्ष्ण लेप) द्वारा चिकित्सा करें।

१८. फणिज्झकादि स्वेद (च.द.)

फणिज्झकास्फोतकपित्थबिल्व-
पत्तूरपीलूसुरसार्जभृङ्गैः ।
स्वेदं विदध्यादथवा प्रलेपं
बर्हिष्ठशुण्ठीसुरदारुकुष्ठैः ॥२६॥

१. मरुवकपत्र (तुलसीभेद = मरुआदाना), २. आस्फोतापत्र, ३. कपित्थपत्र, ४. बिल्वपत्र, ५. शालिञ्चशाक, ६. पीलुपत्र, ७. तुलसीपत्र और ८. कृष्णतुलसी, ९. भृङ्गराजपत्र—समभागीय इन द्रव्यों के पत्रों को (भृङ्गैः पत्रैरिति विनोदिनी टीकायां) पीसकर कल्क बना लें और पुटपाक विधि से कल्क का पाक कर वस्त्रबद्ध गरम कल्क से नेत्रों के ऊपरी भाग का स्वेदन करें। अथवा सुगन्धबाला, सोंठ, देवदारु तथा कूठ (समभाग) चूर्ण को जल में घोलकर गरम कर इसे नेत्रों की पलकों पर लेप करने से कफज नेत्र रोग में लाभ होता है।

१९. शुण्ठ्यादि लेप (च.द.)

शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डः सुखोष्णैः स्वल्पसैन्धवैः ।
धार्यश्चक्षुषि संक्षेपाच्छोथकण्डूव्यथापहः ॥२७॥

सोंठचूर्ण १ भाग, निम्बपत्रकल्क $\frac{१}{२}$ भाग तथा सैन्धवलवण $\frac{१}{२}$ भाग—इन्हें एक साथ मिलावें और थोड़ा जल मिलाकर पीसें। इसे गाढ़ा होने पर्यन्त आग में पकावें। ततः नेत्र पर स्वच्छ पतला कपड़ा रखें और इस सुखोष्ण पिण्ड को नेत्रों पर रखकर स्वेदन करें।

२०. पारिजातादि अञ्जन

वल्कलं पारिजातस्य[१] तैलकाञ्जिकसैन्धवम् ।
कफोद्भूताक्षिशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा ॥२८॥

१. पारिभद्र (फरहद) त्वक् ३ ग्राम, २. सैन्धव २५० मि.ग्रा., ३. तिलतैल और ४. काञ्जी लें। इन द्रव्यों को ताँबे की उलटी थाली पर रखकर १ घण्टे तक हाथ से घिसें। काले अञ्जन के समान हुए मलहर जैसे इस अञ्जन को आँखों में आँजने से कफजन्य नेत्रशूल उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्षों को नष्ट करता है।

१. पारिजातः पारिभद्रमिति शिवदाससेनः। किन्तु पारिजात से हरसिंगार पुष्प का ग्रहण अधिक होता है।

२१. लोध्रादि आश्च्योतन (च.द.)

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं
सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम्।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्
कण्डूञ्च दाहञ्च रुजाञ्च हन्यात् ॥२९॥

घृतभृष्ट लोध्रचूर्ण ३ ग्राम, सैन्धव १२५ मि.ग्रा. और काञ्जी यथावश्यक लें। इन तीनों द्रव्यों को सिल पर पीसकर आग पर गरम करें और श्वेत वस्त्र में पोटली जैसा बनावें और कफज अभिष्यन्द के रोगी की आँख पर सुखोष्ण रस को दबाकर टपकावें। ऐसा करने से आँखों की खुजली, दाह और पीड़ा शान्त हो जाती है।

रसानुसार दोष चिकित्सा (च.द.)

स्निग्धैरुष्णैश्च वातोत्थः पित्तजे मृदुशीतलैः।
तीक्ष्णरूक्षोष्णविशदैः प्रशाम्यन्ति कफात्मकाः॥
तीक्ष्णोष्णमृदुशीतानां व्यत्यासात् सान्निपातिकाः ॥३०॥

स्निग्ध और उष्ण पदार्थों से वातज, मृदु तथा शीतल द्रव्यों से पित्तज एवं तीक्ष्ण, रूक्ष, उष्ण तथा विशद द्रव्यों से कफज और तीक्ष्ण, उष्ण, मृदु, शीतल द्रव्यों के परस्पर व्यत्यास से सन्निपातज रोग नष्ट हो जाता है।

२२. तिरीटादि कल्क आश्च्योतन (च.द.)

तिरीटत्रिफलायष्टीशर्कराभद्रमुस्तकैः।
पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥३१॥

१. लोध्रत्वक्, २. आमला, ३. हरीतकी, ४. बहेड़ा, ५. मुलेठी, ६. चीनी और ७. नागरमोथा (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से १२ ग्राम चूर्ण को सिल पर जल से पीसकर कपड़े की पोटली बना लें। रक्तज अभिष्यन्द रोग में इस शीतल पोटली को दबाकर नेत्रों में रस टपकावें। ऐसा करने से रक्तज अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है।

२३. कशेरुकादि आश्च्योतन (च.द.)

कशेरुमधुकानाञ्च चूर्णमम्बरसंयुतम्।
न्यस्तमप्स्वान्तरीक्षासु हितमाश्च्योतनं भवेत् ॥३२॥

कशेरुकन्द ३ ग्राम, मुलेठीचूर्ण ३ ग्राम तथा जल १२ मि.ली. लें। कशेरुकन्द को छीलकर साफ करें। ३ ग्राम ऐसे कन्द को मुलेठीचूर्ण के साथ सिल पर पीसें तथा इस कल्क में १२ मि.ली. शीतल जल मिलाकर साफ एवं श्वेतवस्त्र में बद्ध कर पोटली बना लें। इस पोटली को आँख के ऊपर रखें और अङ्गुलियों से दबाकर ५-६ बूँद टपकावें। इस तरह से आश्च्योतन करने से रक्ताभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है।

२४. दार्व्यादि रसक्रिया (च.द.)

दार्वीपटोलमधुकं सनिम्बं पद्मकोत्पलम्।
प्रपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥३३॥
विपाच्य पादशेषन्तु तत् पुनः कुडवं पचेत्।
शीतीभूते तत्र मधु दद्यात्पादांशिकं ततः॥
रसक्रियैषा दाहाश्रुरागशोथरुजापहा ॥३४॥

१. दारुहल्दी, २. पटोलपत्र, ३. मुलेठी, ४. निम्बपत्र, ५. पद्मकाठ, ६. नीलकमलपुष्प और ७. पुण्डरियाकाठ—प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम लें। इन्हें यवकुट कर चौगुने (१३०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और उस क्वाथ को पुनः घन कर १ कुडव (१८७ मि.ली.) शेष रहने पर उसमें चौथाई मधु ४६ ग्राम (१ पल) मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करे। इस 'रसक्रिया' का नेत्र में प्रयोग (लेप) करने से नेत्रदाह, अधिक अश्रुपात, शोथ एवं वेदना नष्ट हो जाती है।

नेत्राभिष्यन्द चिकित्सासूत्र (च.द.)

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम्।
अक्ष्णोरपि समन्ताच्च पातनन्तु जलौकसः॥
पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥३५॥

तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत (पटोलादि घृत) का पान, बार-बार विरेचन, आँख के चारों ओर जलौका लगाकर रक्तमोक्षण तथा पित्ताभिष्यन्द नाशक चिकित्सा करनी चाहिए।

२५. शिग्रु पल्लवरस-अञ्जन (च.द.)

शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसम्पुटे।
घृतेन धूपितो हन्ति शोथघर्षाश्रुवेदनाः ॥३६॥

सहिजन के कोमल पत्तों को सिल पर पीसकर २५ मि.ली. रस निचोड़ लें। उस रस को ताम्र के शरावाकृति पात्र में रखें। इस शराव में उस रस को चारों ओर लिप्त कर सुखा लें। अब मोटी बत्ती वाला बड़ा घृत का दीपक जलावें। दीपक के ऊपर सहिजन पत्र रस से लिप्त शराव को युक्तिपूर्वक स्थिर करें। दीपक की लौ से सहिजन पत्र पर कालिमा (कज्जली) चिपकेगी। उसी कज्जली में घृत लिप्त अंगुली लगाकर आँखों में आञ्जने से नेत्रशोथ, पोथकी जन्य अश्रुपात एवं नेत्रशूल नष्ट हो जाते हैं।

२६. निम्बादिपत्र कल्क स्वेद (च.द.)

पिष्टैर्निम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैर्जातिसिन्धूत्थमिश्रै-
रन्तर्गर्भं दधाना पटुतरगुडिका पिष्टलोध्रेण भृष्टा।
तूलैः सौवीरसान्द्रैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्ता-
च्चक्षुः कोपप्रशान्ति चिरमुपरि दृशोर्भ्राम्यमाणा करोति ॥

निम्बपत्र के (कोमल पत्ते) १२ ग्राम, चमेलीपत्र १२ ग्राम और सैन्धवलवण ३ ग्राम लें। तीनों को एक साथ सिल पर

पीसकर कल्क बनावें। ततः ६ ग्राम लोध्रचूर्ण को जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। उक्त निम्ब कल्क में लोध्रकल्क को भरकर गोला बना लें। ततः उक्त गोले को मिट्टी के तवा में रखकर अग्नि द्वारा भूनें या गरम करें। पुनः उस गरम गोले को काञ्जी में आप्लुत करें और गोले को रूई का पतला आवरण चढ़ाकर अर्थात् रूई से लपेटकर बन्द आँख की पलकों पर घुमावें। ऐसा करने से नेत्र रोग का प्रकोप नष्ट हो जाता है।

२७. बिल्वपत्राद्यञ्जन-१ (च.द.)

बिल्वपत्ररसः पूतः सैन्धवाज्येन चान्वितः।
शुल्वे वराटिकाघृष्टो धूपितो गोमयाग्निना ॥३८॥
पयसालोडितश्चाक्ष्णोः पूरणाच्छोथशूलनुत्।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च स्रावे रक्ते च शस्यते ॥३९॥

पुटपाक विधि से बिल्वपत्र का रस निकालें। एक ताम्र की थाली को उलटकर जमीन पर रखें। थाली पर बिल्वपत्ररस ६ मि.ली., सैन्धव १ ग्राम, गोघृत ६ ग्राम और २-३ साबुत (सम्पूर्ण) कौड़ी रखकर चारों को एक साथ घिसें। पुनः अपूर्ण सूखे वन्योपल को प्रज्वलित करें और उसके धुँए को अञ्जन घिसे ताम्रपात्र पर लगावें। जब पात्र काला हो जाय तो उस पर जमे हुए अंजन को खुरचकर कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस अञ्जन को स्त्रीदुग्ध या गोदुग्ध में थोड़ा सा मिलाकर नेत्र में डालने से नेत्रशोथ, नेत्रशूल, अभिष्यन्द, अधिमन्थ और नेत्र से रक्तस्राव रोग नष्ट हो जाते हैं।

२८. बिल्वपत्राद्यञ्जन-२ (च.द.)

बिल्वपत्ररसं साम्लं निघृष्टं ताम्रभाजने।
सिन्धूत्थकटुतैलाक्तं कुर्यान्नेत्रस्रवादिषु ॥४०॥

१. पुटपाक विधि से निकाले बिल्वपत्र का स्वरस ६ मि.ली., २. सैन्धव $\frac{1}{2}$ ग्राम, ३. सरसोतैल और ४. काञ्ज २-२ मि.ली. ये सभी द्रव्य ताम्र की थाली के पृष्ठ भाग पर रखकर हाथ की हथेली से घिसें और अञ्जन तैयार करें। इसे काचपात्र में संग्रहीत करें। इस अञ्जन को नेत्रों में आंजने से नेत्रस्राव आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

२९. लवणाद्यञ्जन (च.द.)

सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे
घनमुपलसुघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ।
सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं
जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम् ॥४१॥

सैन्धवलवण $\frac{1}{2}$ ग्राम, काञ्जी २ मि.ली. तथा कौड़ी—तीनों को ताम्र की थाली के पृष्ठ भाग पर रखकर हथेली से घिसकर अञ्जन तैयार करें। पुनः उस पर गोमयाग्नि का धुआँ लगावें। जब काला हो जाय तो उसे हाथ से खुरचकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस अञ्जन को बकरी के दूध में मिलाकर प्रतिदिन ३ बार नेत्र में डालने से नेत्रशूल, स्राव, शोथ तथा लालिमा रोग नष्ट हो जाते हैं।

३०. आमलकीरसादि प्रयोग (च.द.)

तरुस्थविद्धामलकीरसः सर्वाक्षिरोगनुत्।
पुराणं सर्वथा सर्पिः सर्वनेत्रामयापहम् ॥४२॥

वृक्ष में लगे हुए आमलाफल में सूई या चाकू से छिद्र करें तथा उससे निकले स्वरस को नेत्र में टपकाने से सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह से पुराना घृत (कौम्भघृत) (१० या १०० वर्ष पुराना) को नेत्र में डालने या अभ्यङ्ग करने से नेत्ररोग नष्ट हो जाता है।

अधिमन्थचिकित्सा

अधिमन्थ रोग में दग्धकर्म (च.द.)

अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते।
अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥४३॥

अधिमन्थरोग में वातादि अभिष्यन्द में कही गई सभी चिकित्सा करें। यदि उस कार्य से शान्ति नहीं मिले तो भौंह के ऊपरी भाग में तप्त शलाका से दग्ध करें।

नेत्रपाक में जलौका (च.द.)

जलौकापातनं शस्तं नेत्रपाके विरेचनम्।
शिरावेधं प्रकुर्वीत सेकलेपांश्च शुक्रवत् ॥४४॥

नेत्रपाक रोग में जलौका लगाकर अशुद्ध रक्त का मोक्षण तथा शिरावेध एवं विरेचन कराना और शुक्र रोग की तरह परिषेक एवं प्रलेप करना चाहिए।

३१. षडङ्गक्वाथ गुग्गुलु (च.द.)

बिभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः।
क्वाथे गुग्गुलुना पेयः शोथपाकाक्षिशूलहा॥
पिल्लञ्च सव्रणं शुक्रं रागादींश्चापि नाशयेत् ॥४५॥

१. बहेड़ा, २. हरीतकी, ३. आमला, ४. पटोलपत्र, ५. निम्बपत्र और ६. वासापत्र (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम इस यवकुट को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर ५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर सुखोष्ण क्वाथ पिलाने से नेत्रशोथ, नेत्रपाक, नेत्रशूल, पिल्ल, सव्रणशुक्र एवं आँख की लालिमा आदि सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

३२. षडङ्ग गुग्गुलुघृत (च.द.)

एतैश्चापि घृतं पक्वं रोगास्तांश्च व्यपोहति ॥४६॥

उपर्युक्त 'षडङ्ग क्वाथ गुग्गुलु' के सभी द्रव्यों के कल्क-क्वाथ से सिद्ध घृतपान कराने से नेत्रशोथ, नेत्रशूल, पिल्ल, सव्रण शुक्र एवं नेत्र की लालिमा रोग नष्ट हो जाते हैं।

१. गोघृत १ किलो, २. आमला ७५० ग्राम, ३. हरीतकी ७५० ग्राम, ४. बहेड़ा ७५० ग्राम, ५. पटोलपत्र ७५० ग्राम, ६. निम्बपत्र ७५० ग्राम और ७. वासापत्र ७५० ग्राम (प्रत्येक द्रव्य क्वाथार्थ ७०८ ग्राम तथा कल्कार्थ ४२ ग्राम) लें। पहले क्वाथ के द्रव्यों को यवकुट कर चार गुना जल में क्वाथ करें तथा कल्कार्थ द्रव्यों का चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें। अब घृत का मूर्च्छन करें और मूर्च्छितघृत में कल्क-क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जीलयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें।

३३. वासकादि क्वाथ (च.द.)

आटरूषाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षकूलकैः ।
रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥४७॥

१. वासामूल, २. हरीतकी, ३. निम्बत्वक्, ४. आमला, ५. नागरमोथा, ६. बहेड़ा और ७. पटोलपत्र (समभाग) लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई रहने पर छान लें। इस क्वाथ को प्रतिदिन सुबह-शाम पीने से रक्तस्राव एवं कफ विकार नष्ट हो जाते है। इसका पान करने और नेत्रों पर सेचन करने से नेत्र रोग का नाशक होता है एवं नेत्र के लिए हितकर है।

३४. त्रिफलादि क्वाथ (च.द.)

पथ्यास्तिस्रो बिभीतक्यः षड् धात्र्यो द्वादशैव तु ।
प्रस्थार्द्धे सलिले क्वाथमष्टभागावशेषितम् ॥४८॥
पीत्वाऽभिष्यन्दमास्रावं रागञ्च तिमिरं जयेत् ।
सरम्भरागशूलास्त्रनाशनं दृक्प्रसादनम् ॥४९॥

हरीतकी ३ नग, बहेड़ा ६ नग तथा आमला १२ नग लें। इन्हें निरस्थि कर यवकुट करें और ३७५ मि.ली. जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष (४६ मि.ली. = १ पल) रहने पर छान लें और रोगी को पिलावें। इसके पान से नेत्राभिष्यन्द, नेत्रस्राव, नेत्र की लालिमा, तिमिर, नेत्रशोथ, नेत्रशूल और रक्तविकार नष्ट हो जाते हैं। यह दृष्टिप्रसादक है।

३५. वासकादि क्वाथ बृहत् (यो.र.)

वासा घनं निम्बपटोलपत्रं
तिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक् ।
कलिङ्गदार्वीदहनं सनागरं
भूनिम्बधात्र्यावभयाबिभीतम् ॥५०॥
श्यामा यवः क्वाथमथाष्ट भागं
पिबेदिमं पूर्वदिने कषायकम् ।
तैमिर्य्यकण्डूपटलार्बुदञ्च
शुक्रं तथा सव्रणमव्रणञ्च ॥
दाहं सरागं सरुजं सपिल्लं
हन्यात् समस्तानपि नेत्ररोगान् ॥५१॥

१. वासामूल, २. नागरमोथा, ३. निम्बत्वक्, ४. पटोल पत्र, ५. कटुकी, ६. गुडूची, ७. लालचन्दन, ८. कुटजत्वक्, ९. इन्द्रयव, १० दारुहल्दी, ११. चित्रकमूल, १२. सोंठ, १३. चिरायता, १४. आमलकी, १५. हरड़, १६. बहेड़ा, १७. निशोथ और १८. जौ (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों को यवकुट कर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें और अष्टमांशावशेष रहने पर प्रतिदिन प्रातः-सायं कुछ दिनों तक पिलाने से तिमिर, कण्डू, पटलरोग, अर्बुद, सव्रण शुक्र, अव्रण शुक्र, नेत्रदाह, नेत्रलालिमा, नेत्रशूल, पिल्ल आदि सभी नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

अभिघातज नेत्ररोग चिकित्सा (च.द.)

नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्च्योतनादिकम् ॥५२॥

नेत्र में किसी प्रकार (पत्थर, लोहा, लकड़ी अथवा अन्य किसी प्रकार) से चोट लगने से नेत्र में सिञ्चन, आश्च्योतन, परिषेक, तर्पण एवं शीतोपचार द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

दृष्टिप्रसादजननोपाय (च.द.)

दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्
स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ।
स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाभितापै-
रभ्याहतानपि तथैव भिषक् चिकित्सेत् ॥५३॥

चिकित्सार्थ अत्यधिक स्वेद, अग्नि, धूम, भय, शोक तथा ताप आदि क्रियाओं से यदि दृष्टिपथ बाधित हो जाय तो पुनः दृष्टिनिर्मलीकरणार्थ स्निग्ध, शीतल एवं मधुर द्रव्यों का लेप, आश्च्योतन, परिषेचन आदि शीतोपचार करना चाहिए।

आगन्तुज नेत्रशूल में मुखवाष्प स्वेदन (च.द.)

आगन्तुदोषं प्रसमीक्ष्य कार्यं
वक्त्रोष्मणा स्वेदनमादितश्च ।
आश्च्योतनं स्त्रीपयसा च सद्यो
यच्चापि पित्तक्षतजापहं स्यात् ॥५४॥

रास्ते में चलते समय कभी अधिक धूलि, धुआँ अथवा कोई अन्य आगन्तुक पदार्थ नेत्रों में प्रविष्ट हो जाय तो तुरत स्वच्छ वस्त्र (रूमाल-गमछा) आदि को लपेटकर गोला बनाकर मुख पर

रखकर श्वास छोड़ें और वाष्पयुक्त उस गरम रूमाल को नेत्र पर रखकर स्वेदन करें। ऐसा जल्दी-जल्दी ४-५ बार करें। साथ ही स्त्री के तुरन्त के निकाले हुए दूध से नेत्र में पूरण करें तथा पित्तज एवं क्षतज अभिष्यन्दोक्त चिकित्सा भी करें।

सूर्यादि से अभिहत नेत्र चिकित्सा (च.द.)

सूर्योपरागानलविद्युतादि-
विलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।
सन्तर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं
सायं निषेव्यास्त्रिफलाप्रयोगाः ॥५५॥

सूर्य की ओर सीधे देर तक देखने से, सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण देखने से, तेज अग्नि का प्रकाश देखने से, बिजली के तेज प्रकाश (आजकल लोहा या अन्य धातुओं को जोड़ने हेतु वेल्डिंग प्रक्रिया) को देखने से नेत्र की दृष्टिशक्ति (देखने में) यदि बाधित (उपहत) हो तो तुरन्त नेत्र में तर्पण (त्रिफला घृत) द्वारा, स्नेहन, शीतल द्रवों (बर्फ का जल या फ्रीज का जल) से नेत्र प्रक्षालन, आश्च्योतन, परिसेचन बार-बार करे तथा शाम को त्रिफलाक्वाथ (शीतल) से नेत्र-प्रक्षालन एवं शिर-प्रक्षालन करना चाहिए।

३६. निशादि नेत्र द्रव (च.द.)

निशाऽब्दत्रिफलादार्वीसितामधुकसंयुतम् ।
अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥५६॥

१. हल्दी, २. नागरमोथा, ३. आमला, ४. हरड़, ५. बहेड़ा ६. चीनी तथा ७. मुलेठी (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से १२५ मि.ग्रा. चूर्ण लेकर स्त्री दूध में घोलकर नेत्र पूरण करने (डालने) से अभिघातज नेत्र शूल नष्ट हो जाता है।

३७. मधुकादि अजाघृत (च.द.)

आजं घृतं क्षीरपात्रं मधुकं चोत्पलानि च ।
जीवकर्षभकौ चापि पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥५७॥

बकरी का घृत ७५० ग्राम (१ प्रस्थ) तथा बकरी का दूध ३ लीटर (१ आढक) लें।

कल्क—१. मुलेठी, २. नीलकमल, ३. जीवक और ४. ऋषभक—प्रत्येक १-१ पल (४६-४६ ग्राम) लें। सर्वप्रथम बकरी घृत का (गोघृत के जैसा) मूर्च्छन करें। कल्क के चारों द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छित घृत में कल्क और बकरी दूध मिलाकर गन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर ३ लीटर मीठा जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'अजाघृत' का पान करने या नेत्र में २-२ बूँद डालने से सभी तरह के अभिघातज नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

अन्यतोवात एवं वातपर्यय चिकित्सा (च.द.)

वाताभिष्यन्दवच्चान्यद्वाते मारुतपर्यये ।
पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरञ्चाऽप्यथ भोजने ॥५८॥

अन्यतोवात एवं वातपर्यय नामक नेत्ररोग में वाताभिष्यन्द जैसी चिकित्सा करें। विशेषकर इन दोनों रोगों में भोजन से पूर्व घृतपान (त्रिफला घृत अथवा अभाव में सामान्य गोघृत) तथा भोजन में गोदुग्ध का अधिक प्रयोग करना लाभदायक है।

३८. सैन्धवाद्यञ्जन (च.द.)

सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो घृतम् ।
स्तन्योदकाभ्यां कर्त्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम् ॥५९॥

१. सैन्धव, २. देवदारु, ३. सोंठ ४. बिजौरानिम्बु रस तथा ५. गाय का घी (प्रत्येक १०-१० ग्राम) लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण करें और घृत मिलाकर एक काँचपात्र संग्रहीत करें। इसे 'शुष्काक्षिपाक' नेत्ररोग में डालने या अञ्जन करने से अत्यधिक लाभ होता है।

३९. वृक्षादन्यादि घृत (च.द.)

वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि ।
सक्षीरे कर्कटरसे सिद्धञ्चापि पिबेद् घृतम् ॥६०॥

१. वृक्षादनी (वृक्ष की वान्दा), २. कपित्थवृक्षत्वक्, ३. बिल्वमूलत्वक्, ४. अग्निमन्थत्वक्, ५. सोनापाठामूलत्वक्, ६. पाटलात्वक् और ७. गम्भारमूलत्वगादि बृहत्पञ्चमूल—प्रत्येक द्रव्य ३५ ग्राम लें। गोघृत १ किलो, गोदुग्ध १ लीटर तथा काकड़ासिंगीक्वाथ ३ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः वृक्षादनी (वृक्ष को नष्ट करने वाली—'अद भक्षणे' धातु से अदनी बनता है) से लेकर गम्भारमूलत्वक् का चूर्ण करके सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। कल्क और गोदुग्ध मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। गोदुग्ध सूखने पर काकड़ासिंगी क्वाथ मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृत पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरस जल के साथ मिलाकर पिलाने से वातपर्यय और अन्यतोवात नामक नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—इस घृत में वृक्षादनी (वृक्ष की बन्दा) आदि सातों द्रव्यों का कल्क जो घृत से चौथाई लेना है और क्वाथ और दूध स्नेह से चार गुना लेना चाहिए था। किन्तु आचार्य शिवदास सेन ने स्नेह के बराबर दूध और कर्कटशृङ्गी क्वाथ स्नेह से तीन गुना

लेने के लिए श्रीकण्ठ को उद्धृत किया है। आगे श्री सेन ने गयादास को भी उद्धृत किया है। गयादास ने वृक्षादनी आदि ७ द्रव्यों का क्वाथ द्विगुण मात्रा में लेकर घृत साधन बतलाया है। उन्होंने दूध-कर्कटशृङ्गी क्वाथ स्नेह के बराबर लेने को कहा है। इस तरह पञ्चगुण पाक हो जाता है।

अभिष्यन्दादि रोग में शिरावेध (च.द.)

अभिष्यन्दमधीमन्थं रक्तोत्थमथवाऽर्जुनम्।
शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यांश्चास्त्रभवान् गदान्॥
स्निग्धस्याज्येन कौम्भेन शिरावेधैः समं नयेत्॥६१॥

अभिष्यन्द, अधिमन्थ, रक्तज नेत्ररोग, अर्जुन, शिरोपात, शिराहर्ष, अथवा अन्य रक्तदुष्टिजन्य नेत्ररोग में पहले कौम्भघृत (१०० वर्ष पुराना घृत) से स्नेह करें। ततः शिरावेध करने से नेत्र विकारों की शान्ति होती है।

अम्लाध्युषित चिकित्सा (च.द.)

अम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्याल्लेपान् सुशीतलान्।
तैल्वकं त्रैफलं सर्पिर्जीर्णं वा केवलं हितम्।
शिराव्यधं विना कार्यः पित्तस्यन्दहरो विधिः॥६२॥

अम्लाध्युषित नेत्ररोग-शान्त्यर्थ शीतल लेपों, तिल्वकघृत, त्रिफलाघृत अथवा कौम्भघृत का नेत्रों में प्रयोग से लाभ होता है। पित्ताभिष्यन्द रोगोक्त चिकित्सा करें, किन्तु शिरावेध नहीं करना चाहिए।

४०. शिरोत्पात चिकित्सा (च.द.)

सर्पिः क्षौद्राञ्जनं च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम्।
तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टं च पूजितम्॥६३॥

(१) घृत, मधु और सौवीराञ्जनचूर्ण तीनों एक साथ मिलाकर कांसे की थाली पर १ प्रहर घिसकर अञ्जन तैयार करें। इस अञ्जन को नेत्र में आंजने से शिरोत्पात रोग में लाभ होता है। इसी प्रकार—(२) सैन्धवलवण और शुद्धकासीस (हीरा-कासीस) प्रत्येक १२५ मि.ग्रा. तथा ५ मि.ली. स्त्री का दूध मिलाकर नेत्रों में डालने को शिरोत्पात रोग में श्रेष्ठ औषधि माना गया है।

४१. शिराहर्ष चिकित्सा (च.द.)

शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात् फाणितं मधुसंयुतम्।
मधुना तार्क्ष्यशैलं वा कासीसं वा समाक्षिकम्॥६४॥

शिराहर्ष नामक रोग में गुड़ विकार (राब-चोटा) फाणित (द्रव गुड़) में समभाग (दोनों २-२ बूँद) मधु मिलाकर अञ्जन लगाना चाहिए। अथवा—मधु में रसाञ्जन घिसकर नेत्रों में अञ्जन करना चाहिए। अथवा मधु में शुद्ध कासीस चौथाई भाग मिलाकर अञ्जन करने से शिराहर्ष नामक नेत्ररोग में लाभ होता है।

४२. सव्रणशुक्र चिकित्सा (च.द.)

व्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं षडङ्गं गुग्गुलुं पिबेत्।
कतकस्य फलं शङ्खं तिन्दुकं रूप्यमेव च।
कांस्ये निघृष्ट स्तन्येन क्षतशुक्रार्त्तिरोगजित्॥६५॥

सव्रणशुक्र रोग की शान्ति के लिए नेत्ररोग में पहले कहा गया 'षडङ्गगुग्गुलुक्वाथ' पिलाना चाहिए। निर्मलीफलमज्जा, शंखनाभिभस्म, तिन्दुकफलचूर्ण तथा रजतभस्म—प्रत्येक ३-३ ग्राम लें। एक काँसे की थाली को उलटकर जमीन पर रखें तथा उस उलटी थाली पर सभी औषधों को रखें और स्त्री दुग्ध के साथ हाथ की तलेथी से ३ घण्टे तक घिसकर अञ्जन तैयार करें। इसे आँखों में आंजने से सव्रणशुक्र रोग नष्ट हो जाता है।

४३. सव्रणशुक्रहरी वर्त्ति (च.द.)

चन्दनं गरिकं लाक्षा मालतीकलिका समा।
व्रणशुक्रहरी वर्त्तिः शोणितस्य प्रसादनी॥६६॥

१. शुद्ध गैरिकचूर्ण, २. लालचन्दनचूर्ण, ३. लाक्षाचूर्ण और ४. चमेली की कोमल कलिकाएँ (चमेली के अधखिला फूल) इन्हें समभाग लें। एक खरल में रखकर स्त्री दुग्ध या गुलाब जल के साथ मर्दन कर वर्ति बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्ति को स्त्रीदुग्ध या गुलाबजल में घिसकर नेत्रों में आञ्जने से सव्रणशुक्र नष्ट हो जाता है। इस वर्त्ति के उपयोग से लालनेत्र (नेत्र की लालिमा) भी नष्ट हो जाता है।

४४. सव्रणशुक्रहराञ्जन (च.द.)

शिरया वा हरेद्रक्तं जलौकाभिश्च लोचनात्।
अक्षमज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन शुक्रनाशनम्॥६७॥

नेत्र की बाह्यशिरा पर जलौका (जोंक) लगा कर रक्तमोक्षण कराने से या बहेड़ाबीजमज्जा को स्त्री दुग्ध में घिसकर नेत्र में लगाने से सव्रणशुक्र रोग नष्ट हो जाता है।

४५. पुण्डरीकादि द्रव पूरण (च.द.)

एकं वा पुण्डरीकं च छागीक्षीरावसेचितम्।
रागाश्रुवेदनां हन्यात् क्षतपाकात्ययाजकाः॥६८॥

पुण्डरियाकाठ लें और सिल पर बकरी दूध में पीसें तथा ४ गुना बकरीदूध मिलाकर कपड़ा से छान लें। इस दूध को बार-बार नेत्र में डालने से सव्रणशुक्र (नष्ट हो जाता है तथा) नेत्र की लालिमा, नेत्रशूल, अश्रुपात, पाकात्यय और अजकाजात रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—आचार्य शिवदास सेन और आचार्य विनोदलाल सेन ने अपने ग्रन्थ में इस श्लोक की व्याख्या में पुण्डरीक का अर्थ कमल न कर प्रपौण्डरी (पुण्डरिया काष्ठ) किया है। इस काष्ठ को चूर्ण कर कपड़े की पोटली में बाँधकर बकरी के शीतल

दूध में उक्त पोटली को रखें। जब दूध पीली होने लगे तब इस दूध को नेत्र में डालना चाहिए। 'प्रबलरक्तदुष्टौ योगोऽयम्'।

४६. तुत्थादि द्रव (च.द.)

तुत्थकं वारिणा युक्तं शुक्रं हन्त्यक्षिपूरणात् ॥६९॥

परिस्रुत जल में १ से २ भाग शुद्ध तुत्थ मिलाकर नेत्रो में डालने से सव्रण-अव्रण शुक्र नष्ट हो जाता है।

४७. समुद्रफेनादि वर्त्ति (च.द.)

समुद्रफेनदक्षाण्डत्वक्सिन्धूत्थैः समाक्षिकैः।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्त्तिः शुक्रघ्नी शिग्रुवारिणा ॥७०॥

१. समुद्रफेनचूर्ण, २. मुर्गी के अण्डे का छिलका, ३. सैन्धवलवणचूर्ण, ४. मधु तथा ५. सहिजनबीजचूर्ण (इन्हें समभाग) लें। एक खरल में पहले अण्डे के छिलके का चूर्ण करें या भस्म बनाकर भी डाला जा सकता है। सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को शिग्रुपत्ररस के साथ पत्थर पर घिसकर नेत्रों में लगाने से नेत्र शुक्र नष्ट हो जाता है।

विमर्श—आचार्य शिवदास सेन और आचार्य विनोदलाल सेन ने कहा है कि कुछ लोग माक्षिक से स्वर्णमाक्षिक भस्म लेते हैं और 'माक्षिकैः सशंखकैः' ऐसा पढ़ा है। ऐसा पाठ होने पर शंखनाभिभस्म लेना चाहिए तथा सहिजनत्वग् रस में मर्दन कर वर्ति बनानी चाहिए।

४८. धात्रीफलादि क्वाथ (च.द.)

धात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं
यष्ट्याह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च।
क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तः
सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥७१॥

१. आमला, २. निम्बपत्र, ३. कपित्थपत्र, ४. मुलेठी, ५. लोध्रत्वक्, ६. खदिरकाष्ठ और ७. तिल (समभाग) लें। इन्हें पृथक्-पृथक् यवकुट कर मिला लें और चार गुना जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस शीतल क्वाथ का आँखों में सिञ्चन करने से सभी प्रकार के सव्रण एवं अव्रणशुक्र नष्ट हो जाते हैं।

नेत्रपुष्पहर (फुल्ली) चिकित्सा

क्षुण्णपुंनागपत्रेण परिभावितवारिणा।
श्यामाक्वाथाम्बुना वाऽथ सेचनं कुसुमापहम् ॥७२॥

नागकेशर के पत्तों को पीसकर शीतल जल मिलाकर छोड़ दें। कुछ देर बाद हाथ से मसलकर कपड़ा से छानकर इस शीतल द्रव को नेत्र में डालने से; अथवा—कृष्ण अनन्तमूल का स्वरस या क्वाथ शीतल होने पर नेत्रों में डालने से नेत्रपुष्प (फुल्ली) नष्ट हो जाता है।

४९. दक्षाण्डत्वगाद्यञ्जन (च.द.)

दक्षाण्डत्वक्शिलाशङ्खकाचचन्दनगैरिकैः।
तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः ॥७३॥

१. मुर्गी के अण्डे का छिलका भस्म, २. मैनसिल, ३. शंख भस्म, ४. काचलवण ५. लालचन्दनचूर्ण तथा ६. शुद्ध गैरिक (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण का अञ्जन करने से फुल्ली-अर्म आदि का लेखन होकर उसका नाश हो जाता है।

५०. शिरीषबीजादि अञ्जन (च.द)

शिरीषबीजमरिचपिप्पलीसैन्धवैरपि।
शुक्रे प्रघर्षणं कार्यमथवा सैन्धवेन च ॥७४॥

१. शिरीषबीजचूर्ण, २. मरिचचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण तथा ४. सैन्धवलवण—इनका सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। अथवा केवल सैन्धवचूर्ण का अव्रणशुक्र (फुल्ली) पर घर्षण करने से अव्रणशुक्र नष्ट हो जाता है।

५१. करञ्जीबीजादि वर्त्ति (च.द.)

बहुशः पलाशकुसुमस्वरसैः परिभाविता जयत्यचिरात्।
नक्ताह्वबीजवर्त्तिः कुसुमचयं दृक्षु चिरजमपि ॥७५॥

करञ्जबीज मज्जा का चूर्ण कर उसमें पलाशपुष्पस्वरस की ७ बार भावना देकर वर्ति बनाकर सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्ति को साफ पत्थर पर गुलाबजल में घिसकर नेत्र में अञ्जन करने से पुरानी फुल्ली नष्ट हो जाती है।

५२. सैन्धवादि वर्त्ति (च.द.)

सैन्धवं त्रिफला कृष्णा कटुका शङ्खनाभयः।
सताम्ररजसो वर्त्तिः पिष्टा शुक्रविनाशिनी ॥७६॥

१. सैन्धवलवण, २. त्रिफलाचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. कटुकीचूर्ण, ५. शंखनाभिभस्म तथा ६. ताम्रभस्म (समभाग) लें। इन्हें एक खरल में डालकर जल के साथ मर्दन कर वर्ति बनाकर धूप में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। बाद में इसको चन्दन घिसने वाले पत्थर पर गुलाबजल के साथ घिसकर नेत्र में अञ्जन करने से अव्रण शुक्र की फुल्ली नष्ट हो जाता है।

५३. चन्दनादिचूर्ण (च.द.)

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम्।
क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रार्मादिविलेखनम् ॥७७॥

१. लालचन्दनचूर्ण १ भाग, २. सैन्धवलवण २ भाग, ३. हरीतकीचूर्ण ३ भाग तथा ४. पलाशवृक्ष की लाल गोंद ४ भाग

लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को मधु में मिलाकर चाँदी की शलाका से अञ्जन करने से अव्रणशुक्र तथा अर्म का लेखन होकर इनका नाश हो जाता है।

५४. शंखाद्यञ्जन (च.द.)

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्द्धेन मनःशिला।
मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम् ॥७८॥
एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेषु च।
पिच्चिटे मधुना योज्यमर्बुदे मस्तुना तथा ॥७९॥

१. शंखभस्म ४ भाग, २. शुद्ध मैनसिल २ भाग, ३. मरिच चूर्ण १ भाग और ४. सैन्धवलवणचूर्ण $\frac{1}{2}$ भाग लें। एक खरल में उपर्युक्त चारों द्रव्यों को एक साथ मिलाकर मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। शलाका से नेत्र में प्रतिदिन लगाने से अव्रण शुक्र एवं तिमिर नष्ट हो जाते हैं। पिच्चिट रोग में मधु में मिलाकर लगावें, नेत्रार्बुद में दही के पानी (मस्तु) में मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

५५. ताप्याद्यञ्जन (च.द.)

ताप्यं मधुकसारो वा बीजमक्षस्य सैन्धवम्।
मधुनाऽञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रशान्तये ॥८०॥

१. स्वर्णमाक्षिकभस्म, २. मुलेठीसत्त्व, ३. बहेड़ाबीजमज्जा और ४. सैन्धवलवण (समभाग)—इन्हें खरल में एक साथ मिलाकर मर्दन करें तथा सूक्ष्म चूर्ण कर किसी काचपात्र में संग्रहीत करें। इन चारों द्रव्यों को एक साथ या इनमें से किसी एक का सूक्ष्मचूर्ण मधु में मिलाकर अञ्जन लगाने से शुक्र रोग नष्ट हो जाता है।

५६. कर्पूराद्यञ्जन (च.द.)

वटक्षीरेण संयुक्तं शलक्ष्णं कर्पूरजं रजः।
क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रं चापि घनोन्नतम् ॥८१॥

शुद्ध कर्पूर या भीमसेनी कर्पूर में वटक्षीर मिलाकर मर्दन करें। इसकी वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को साफ पत्थर पर जल के साथ घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से उठा हुआ एवं बड़ा फुल्ला नष्ट हो जाता है।

५७. त्रिफलाद्यञ्जन (च.द.)

त्रिफलामज्जमङ्गल्यामधुकं रक्तचन्दनम्।
पूरणं मधुसम्मिश्रं क्षतशुक्राजकाश्रुजित् ॥८२॥

१. हरीतकीबीजमज्जाचूर्ण, २. बहेड़ाबीजमज्जाचूर्ण, ३. आमलाचूर्ण, ४. गोरोचनचूर्ण, ५. रक्तचन्दनबीजमज्जाचूर्ण—इन द्रव्यों के चूर्णो को एक साथ मिलाकर वस्त्रपूत सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे मधु मिलाकर नेत्र में अञ्जन करने से क्षतज शुक्र (सव्रणशुक्र), अजकाजात एवं अश्रुपात—ये रोग नष्ट हो जाते हैं।

५८. तालादि क्षाराञ्जन (च.द.)

तालस्य नारिकेलस्य तथैवारुष्करस्य च।
करीरस्य तु वंशानां कृत्वा क्षारं परिस्रुतम् ॥८३॥
करभास्थिकृतं चूर्णं क्षारेण परिभावितम्।
सप्तकृत्वोऽष्टकृत्वो वा श्लक्ष्णचूर्णं तु कारयेत् ॥८४
एतच्छुक्रेषु साध्येषु कृष्णीकरणमुत्तमम्।
यानि शुक्राण्यसाध्यानि तेषां परममञ्जनम् ॥८५॥

१. तालवृक्ष की वल्लरी, २. नारिकेल फलास्थि, ३. भिलावा फल, ४. करीर और ५. बाँस—इन्हें समभाग में लेकर एक बड़ी कड़ाही में पूर्णरूपेण जलाकर राख करें। पुन: इस राख को ६ गुने जल में घोलकर कपड़ा से छान लें। इस पानी को १ दिन तक निथरने के लिए छोड़ दें। तत: उपरी क्षारीय स्वच्छ जल को निथारकर वस्त्रपूत करें और अब इस क्षार जल को काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके बाद ऊँट की हड्डी का सूक्ष्म चूर्ण करें। इस चूर्ण को खरल में रखकर उपर्युक्त क्षारजल से ७ या ८ बार भावना दें और सूखने पर सूक्ष्म चूर्ण प्राप्त करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस अञ्जन को नेत्रों में आंजने से असाध्य शुक्र (फुल्ला) कृष्णवर्ण का हो जाता है। यह साध्य शुक्र (फुल्ला) को नष्ट करने के लिए सबसे अच्छा अञ्जन है।

अजका चिकित्सा (च.द.)

अजकां[1] पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्राव्य चोदकम्।
व्रणं गोमयचूर्णेन पूरयेत्सर्पिषा सह ॥८६॥

अजकाजात रोग में स्वच्छ (स्टेरिलाइज्ड) सूई से पार्श्व भाग से वेधकर उसके अन्दर का दूषित द्रव निकाल दें और उसके अन्दर सूखा गोबरचूर्ण और घृत मिलाकर भर दें। सुश्रुत ने इस योग में 'व्रणं गोमांसचूर्णेन' ऐसा पढ़ा है। अत: गोबर के स्थान पर गोमांस चूर्ण भरने का विधान बताया है।

५९. सैन्धवाद्यञ्जन (च.द.)

सैन्धवं वाजिपादं च गोरोचनसमन्वितम्।
शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम् ॥८७॥

सैन्धवलवण, घोड़े के पैर (खुर) की भस्म और गोरोचन—ये तीनों द्रव्य समभाग में लें। एक खरल में तीनों द्रव्यों को मिलाकर लिसोढात्वक् क्वाथ की ७ भावना देकर सुखा लें। इस सूक्ष्म अञ्जन को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को यशद शलाका में लगाकर अञ्जन करने से अजकाजात नेत्ररोग नष्ट हो जाता है। (वाजिपादोऽश्वखुरः, अश्वगन्धामूलमिति केचित्। शिवदास:)

---

१. अजापुरीषप्रतिमो रुजावान् स लोहितो लोहितपिच्छिलास्रः।
विदार्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥
(सु.उ. ५।१०)

चक्षुष्यवर्गोक्त द्रव्य (च.द.)

त्रिफला घृतं मधु यवाः पादाभ्यङ्गः शतावरी मुद्गाः ।
चक्षुष्यः संक्षेपाद्वर्गः कथितो भिषग्भिरयम् ॥८८॥

त्रिफला, गोघृत, मधु, यव (जौ), पैर के तलवे (पादतल) में तैल की मालिश करना, शतावरी और मूँग—ये सभी द्रव्य एवं क्रिया नेत्र के लिए हितकर है। इसे वैद्यों ने संक्षेप में नेत्र्य (चक्षुष्य) वर्ग के रूप में कहा है।

६०. तिमिर में त्रिफला प्रयोग-१ (च.द.)

लिह्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां
घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे ।
समीरजे तैलयुतां कफात्मजे
मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ॥८९॥

पित्तज तिमिररोग में त्रिफलाचूर्ण को घृत में मिलाकर चाटें, वातज तिमिर में तिलतैल मिलाकर चाटें और कफज तिमिर में मधु मिलाकर चाटें तो नेत्र के लिए (विशेषकर तिमिर के लिए) हितकर है।

६१. तिमिर में त्रिफला प्रयोग-२ (च.द.)

कल्कः क्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् ।
मधुना सर्पिषा वाऽपि समस्ततिमिरापहम् ॥९०॥

सभी प्रकार के तिमिररोग को नष्ट करने के लिए त्रिफला कल्क, त्रिफलाक्वाथ अथवा त्रिफलाचूर्ण को मधु या घृत मिलाकर सेवन करना चाहिए।

सभी नेत्ररोगों की त्रिफला औषधि (च.द.)

यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जी
सायं समश्नाति हविर्मधुभ्याम् ।
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारै-
र्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः ॥९१॥

जो व्यक्ति सभी प्रकार के अपथ्य को त्यागकर सायंकाल त्रिफलाचूर्ण ३ से ५ ग्राम की मात्रा में तथा विषम मात्रा में घृत और मधु मिलाकर प्रतिदिन चाटता है, उसके सभी प्रकार के नेत्ररोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे कि धन घटने पर सेवक स्वामी का साथ छोड़कर चले जाते हैं।

६२. तिमिरघ्न त्रिफलाक्वाथ (च.द.)

सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी ॥९२॥

त्रिफलाक्वाथ में घृत मिलाकर सेवन करने से तिमिररोग नष्ट हो जाता है।

नेत्ररोगप्रतिकारार्थ त्रिफलाक्वाथ (च.द.)

जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ।
त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥९३॥

त्रिफलाक्वाथ से प्रतिदिन प्रातः नेत्र प्रक्षालन करने से उत्पन्न हुए समस्त नेत्ररोग नष्ट हो जाते है तथा फिर से कभी नहीं होते हैं।

तिमिर-प्रतिकारार्थ (च.द.)

जलगण्डूषैः प्रातर्बहुशोऽम्भोभिः प्रपूर्य मुखरन्ध्रम् ।
निर्दयमुक्षन्नक्षि क्षमयति तिमिराणि ना सद्यः ॥९४॥

प्रातःकाल प्रतिदिन मुख में शीतल जल भरकर शीतल जल का ही छींटा नेत्रों पर मारने से कुछ ही दिनों में तिमिररोग से मुक्त हो जाता है।

नेत्ररोग-प्रतिकारार्थ (च.द.)

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्दीयते यदि ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥९५॥

भोजन करने के बाद दोनों हाथ धोकर उसी भींगे हाथों की दोनों तलेथी को आपस में घिसकर यदि प्रतिदिन अपने नेत्रों को ४-५ बार स्पर्श करता है (एक-एक हाथ दोनों नेत्रों पर) तो तिमिररोग नष्ट हो जाता है।

६३. नीलोत्पलाद्यञ्जन (च.द.)

नीलोत्पलं विडङ्गानि पिप्पली रक्तचन्दनम् ।
अञ्जनं सैन्धवं चैव सद्यस्तिमिरनाशनम् ॥९६॥

१. नीलकमलचूर्ण, २. वायविडङ्गचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. लालचन्दनचूर्ण, ५. रसाञ्जनचूर्ण और ६. सैन्धवलवणचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें मिलाकर वस्त्रपूतचूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। रजत शलाका से प्रतिदिन २ बार नेत्रों में अञ्जन करने से तिमिररोग नष्ट हो जाता है।

६४. पत्राद्यञ्जन (च.द.)

पत्रगैरिककर्पूरयष्टीनीलोत्पलाञ्जनम् ।
नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरापहम् ॥९७॥

१. तेजपातचूर्ण, २. शुद्ध गैरिकचूर्ण, ३. भीमसेनीकपूर, ४. मुलेठीचूर्ण, ५. नीलकमलचूर्ण, ६. रसाञ्जनचूर्ण तथा ७. नागकेशरचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें पुनः वस्त्रपूतचूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को रजत शलाका में लगाकर नेत्र में अञ्जन करने से तिमिररोग नष्ट हो जाता है।

६५. शंखाद्यञ्जन (च.द.)

शङ्खस्य चतुरो भागास्तदर्द्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन पिप्पली ॥९८॥
वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना ।
पिच्चिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुत्तमम् ॥९९॥

१. शंखभस्म ४ भाग, २. शुद्ध मैनसिल २ भाग, ३. मरिचचूर्ण १ भाग और ४. पिप्पलीचूर्ण $\frac{1}{2}$ भाग लें। इन्हें एक

खरल में अच्छी तरह से जल के साथ पीसकर वर्त्ति बना लें और छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। चन्दन घिसने वाले साफ पत्थर पर इसे जल के साथ पीसकर नेत्र में अञ्जन करने से तिमिररोग, मस्तु में घिसकर अञ्जन करने से नेत्रार्बुद, मधु में घिसकर अञ्जन करने से पिच्चिटरोग नष्ट हो जाते हैं। इस शंखाद्यञ्जन को स्त्री दूध के साथ मर्दन कर अञ्जन करना सभी रोगों के लिए उत्तमोत्तम है।

६६. हरिद्रादि वर्त्ति (च.द.)

हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च।
भद्रमुस्तं विडङ्गानि सप्तमं विश्वभेषजम् ॥१००॥
गोमूत्रेण गुडी कार्या छागमूत्रेण चाञ्जनात्।
ज्वरांश्च निखिलान् हन्ति भूतावेशं तथैव च ॥१०१॥
वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना पटलं तथा।
नक्तान्ध्यं भृङ्गराजेन नारीक्षीरेण पुष्पकम् ॥
शिशिरेण परिस्त्रावमर्बुदं पिच्चिटं तथा ॥१०२॥

१. हल्दीचूर्ण, २. निम्बपत्रचूर्ण, ३. पिप्पलीचूर्ण, ४. मरिचचूर्ण, ५. नागरमोथाचूर्ण, ६. वायविडङ्गचूर्ण और ७. सोंठचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर पुनः वस्त्रपूत चूर्ण करें। शेष को कूटकर पुनः वस्त्रपूत करें। एक खरल में इस चूर्ण को डालकर गोमूत्र के साथ मर्दन कर वर्त्ति बना लें और छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को बकरी के मूत्र में घिसकर नेत्रों में अञ्जन लगाने से सभी प्रकार के ज्वर तथा भूतावेश (भूत-प्रेतादि बाधा) नष्ट हो जाते हैं। जल में घिसकर अञ्जन करने से तिमिर, मधु में घिसकर अञ्जन करने से पटलस्थित रोग, भृङ्गराज के साथ घिसकर अञ्जन करने से नक्तान्ध (रतौंधी), स्त्री दूध में घिसकर अञ्जन करने से फुल्ली तथा ओषकण (जल) में घिसकर अञ्जन करने से अश्रुस्राव, नेत्रार्बुद तथा पिच्चिट रोग नष्ट हो जाते हैं।

अंगुली घृष्टाञ्जन (च.द.)

भूमौ निघृष्ट्याऽङ्गुल्या अञ्जनं शमनं तयोः।
तिमिरकाचार्महरं धूमिकायाश्च नाशनम् ॥१०३॥

साफ-शुद्ध एवं कठिन भूमि पर तर्जनी अङ्गुली घिसकर सीधे उसी अंगुली का नेत्र में अञ्जन करने से तिमिर, काच, अर्म तथा धूमदृष्टि रोग नष्ट हो जाते हैं।

६७. सीसक शलाकाञ्जन-१ (च.द.)

त्रिफलाभृङ्गमहौषधमध्वाज्यच्छागपयसि गोमूत्रे।
नागं सप्त निषिक्तं करोति गरुडोपमं चक्षुः ॥१०४॥

१. त्रिफलाक्वाथ, २. भृङ्गराजस्वरस, ३. सोंठक्वाथ, ४. मधु, ५. गरमघृत, ६. बकरीदूध और ७. गोमूत्र—प्रत्येक ५०० मि.ली. लें। पहले एक लौह दर्वी में ५० ग्राम नाग को द्रवित करें। द्रवित होने पर प्रत्येक द्रव्य में ७-७ बार निषेचन करें। इसी प्रकार ७×७=४९ बार पुनः-पुनः द्रवित कर निषेचन करें। पुनः इस शुद्ध नाग से नेत्रशलाका बना लें। इस सीसकशलाका को चन्दन घिसने वाले साफ पत्थर पर जल के साथ घिसकर प्रतिदिन अञ्जन करने से मनुष्य की दृष्टि गरुड़ जैसी हो जाती है।

६८. सीसक शलाकाञ्जन-२ (च.द.)

त्रिफलसलिलयोगे भृङ्गराजद्रवे च
हविषि च विषकल्के छागदुग्धे आज्ये मधूग्रे।
प्रतिदिनमथ तप्ते सप्तधा सीसमेकं
प्रणिहितमथ पश्चात् कारयेत्तच्छलाकाम् ॥१०५॥
सवितुरुदयकाले साञ्जना व्यञ्जना वा
करकरिकसमेतानर्मपैच्चिटयरोगान्।
असितसितसमुत्थान् सन्धिवर्त्माभिजातान्।
हरति नयनरोगान् सेव्यमाना शलाका ॥१०६॥

१. त्रिफलाक्वाथ, २. भृङ्गराजस्वरस, ३. वत्सनाभविषयुक्त घृत, ४. बकरी का दूध और ५. मधूग्रे = प्रचुरमधुनि इति श्री विनोदलालसेनः या यष्टिमधु केचित्—प्रत्येक द्रव्य ५०० मि.ली. लें तथा ६. नाग ५० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक दर्वी में नाग रखकर अग्नि पर द्रवित करें। ततः इस द्रवित नाग का त्रिफलाक्वाथ में निषेचन करें। इसी प्रकार क्रमशः प्रत्येक द्रव में पुनः-पुनः द्रवित नाग का सेचन करें। अर्थात् ७×५=३५ बार द्रवित नाग को निर्वापित करना चाहिए। इस नाग को आवश्यकतानुसार लेकर १-२ नेत्रशलाका बना लें। इस शलाका से सूर्योदय के समय में किसी भी तिमिरहराञ्जन को नेत्र में लगाने से या बिना अञ्जन के केवल शलाका को ही नेत्र में लगाने से नेत्र में बालुका जैसी करकराहट वाली वेदना, अर्म, पिच्चिट एवं नेत्र के कृष्ण तथा श्वेत भाग, सन्धि भाग और वर्त्म भाग में उत्पन्न नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं।

६९. सैन्धवाञ्जन (च.द.)

चित्राषष्ठी योगे सैन्धवममलं विचूर्ण्य तेनाक्षि।
समञ्जनेन तिमिरं गच्छति वर्षादसाध्यमपि ॥१०७॥

चित्रा नक्षत्र यदि षष्ठी तिथि को हो तो उस दिन स्वयं स्नानादि से पवित्र होकर निर्मल साफ सैन्धवलवण (सैन्धवलवण को जल से धोकर कपड़ा से पोंछकर सुखा लें) का अतिसूक्ष्म चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण का प्रतिदिन १ वर्ष पर्यन्त तक अञ्जन करते रहने से असाध्य तिमिर रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

७०. चिञ्चापत्राद्यञ्जन (च.द.)

चिञ्चापत्ररसं निधाय विमले चौदुम्बरे भाजने
मूलं तत्र निघृष्य सैन्धवयुतं गौञ्जं विशोष्यातपे।

तच्चूर्णं विमलाञ्जनेन सहितं नेत्रामये शस्यते
काचार्मार्जुनपिच्चिटे सतिमिरे स्रावं च निर्णाशयेत् ॥

सर्वप्रथम ताम्र की बड़ी थाली (औदुम्बरे भाजने = ताम्रपात्रे) को समतल जमीन में उल्टा कर रखें। उसी थाली पर इमलीपत्र रस २५ मि.ली., सैन्धवलवण १२ ग्राम, गुञ्जामूलचूर्ण १२ ग्राम तथा सौवीराञ्जन १२ ग्राम रखें और हाथ से इन चारों को १ प्रहर तक घिसें। पुनः इस अंजन को काचपात्र में संग्रहीत करें। यह श्रेष्ठ अंजन है। प्रतिदिन इस अञ्जन को शलाका से नेत्र में लगाने से काच, अर्म, अर्जुन, पिच्चिट, तिमिर एवं नेत्रस्राव रोग नष्ट हो जाते हैं।

७१. कणाद्यञ्जन (च.द.)

दद्यादुशीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम्।
तत्स्रुतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं क्षिपेद् घने ॥
शीते तस्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरेऽञ्जनम् ॥१०९॥

१. खस का यवकुट ९३ ग्राम, २. पिप्पलीचूर्ण ६ ग्राम, ३. सैन्धवलवणचूर्ण ६ ग्राम, ४. गोघृत १२ ग्राम, ५. मधु १२ ग्राम तथा क्वाथार्थ जल ४ शराव (१५०० मि.ली.) लेना चाहिए। ऐसा आचार्य श्री शिवदास सेन का विचार है। खस यवकुट को ताम्रपात्र में १५०० मि.ली. जल में क्वाथ करें। १६ वां भाग शेष रहने पर कपड़ा से छान लें। ततः उस क्वाथ में पिप्पलीचूर्ण, सैन्धवलवणचूर्ण एवं घृत मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर अग्नि से पात्र को हटा लें और शीतल होने पर मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे शलाका में लिप्त कर प्रतिदिन नेत्रों में अञ्जन करने से तिमिर नष्ट हो जाता है।

७२. धात्र्याद्यञ्जन (च.द.)

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तु रसक्रिया।
पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा ॥११०॥

१. आमला यवकुट ९३ ग्राम, २. रसाञ्जनचूर्ण ५ ग्राम, ३. घृत ५ ग्राम, ४. मधु ५ ग्राम तथा क्वाथार्थ जल १५०० मि.ली. लें। सर्वप्रथम आमला यवकुट को १५०० मि.ली. जल में क्वाथ करें। जब चौथाई (३७५ मि.ली.) क्वाथ शेष रहे तो छान लें और छोटे स्टेनलेस स्टी.ल के पात्र में रसाञ्जन एवं घृत मिलाकर रसक्रिया जैसा घन करें। जब गाढ़ा हो जाय तो पात्र को आग से नीचे उतार लें और शीतल होने पर उसमें मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसका अञ्जन करने से पैत्तिक एवं वातिक नेत्ररोग, तिमिर एवं पटलगत रोग नष्ट हो जाते हैं।

७३. शृङ्गबेरादि तैल नस्य (च.द.)

शृङ्गवेरं भृङ्गराजं यष्टीतैलेन मिश्रितम्।
नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥१११॥

१. तिलतैल १ लीटर, २. शुण्ठीचूर्ण १२५ ग्राम, ३. मुलेठीचूर्ण १२५ ग्राम और ४. भृङ्गराजस्वरस ४ लीटर लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः शुण्ठी एवं मुलेठीचूर्ण को जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। कल्क और भृङ्गराजस्वरस के साथ मन्दाग्नि से तैल पाक करें। स्वरस का जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को ३ या ४ बूँद दोनों नाक में नस्य रूप में प्रतिदिन डालने से भयंकर नेत्रपटलगत रोग नष्ट हो जाते हैं।

लिङ्गनाश चिकित्सा (च.द.)

लिङ्गनाशे[1] कफोद्भूते यथावद्विधिपूर्वकम्।
विद्ध्वा दैवकृते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन पूरयेत् ॥११२॥
ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः।
नयनं सर्पिषाऽभ्यज्य वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥११३॥
ततो गृहे निराबाधे शयीतोत्तान एव च।
उद्गारकासक्षवथुष्ठीवनोत्कम्पनानि च ॥११४॥
तत्कालं नाचरेदूर्ध्वं यन्त्रणा स्नेहपीतवत्।
त्र्यहात् त्र्यहाद्धारयेत्तु कषायैरनिलापहैः ॥११५॥
वायोर्भयात् त्र्यहादूर्ध्वं स्वेदयेदक्षिपूर्ववत्।
दशरात्रं तु संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम् ॥
पश्चात् कर्म च सेवेत लघ्वन्नं चापि मात्रया ॥११६॥

कफज लिङ्गनाश में पहले कृष्णमण्डल से श्वेतमण्डल की ओर दो हिस्से छोड़कर अपाङ्गप्रदेश स्थित प्राकृत छिद्र (दैवकृत छिद्र) में ताम्र निर्मित तीक्ष्णाग्र शलाका से वेधकर स्त्री-दुग्ध से नेत्र को भर दें। कुछ देर के बाद दिखाई देने लगे तो शलाका निकालकर आँख में गोघृत डालकर रूई एवं गाज रखकर नेत्र पर बैण्डेज बाँधें और रोगी को एकान्त घर में मच्छरदानी आदि से सुरक्षित बिस्तर पर चित्त लिटा दें। धूप, धूलि, धुआँ आदि से सुरक्षित घर में तीन दिनों तक वैसे ही चित्त लिटाये रखें। इस बीच रोगी को डकार, कास, छींक, थूकना (कफ फेंकना), शरीर को इधर-उधर हिलाना, जोर से बोलना आदि कार्य नहीं करना चाहिए। इस अवधि में रोगी का आहार-विहार पीतस्नेह व्यक्ति के अनुसार होना चाहिए। ततः ४थे दिन से नेत्र में बँधी पट्टी खोलकर साफ करके वातनाशक द्रव्यों के कई बार छने हुए क्वाथ से नेत्र पर सूक्ष्म साफ वस्त्रखण्ड रखकर नेत्र का स्वेदन करें। वायु वृद्धि के भय से ३-३ दिनों पर नेत्र का स्वेदन करना चाहिए। ऐसा १० दिनों तक करना चाहिए। ततः निर्मल दृष्ट होने पर दृष्टिप्रसादाञ्जन का प्रयोग करना चाहिए एवं भोजन में हल्का, तरल तथा मृदु आहार देना चाहिए।

---

१. लिङ्ग्यते ज्ञायतेऽनेनेति, लिङ्गं = दृष्टिस्तस्य नाशो लिङ्गनाशः !

गलत वेधन से उपद्रव

रागश्चोषोऽर्बुदं शोथो बुद्बुदं केकराक्षिता।
अधिमन्थादयश्चान्ये रोगाः स्युर्दुष्टवेधजाः।
अहिताचारतो वाऽपि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥११७॥

इस कर्म में उपद्रव स्वरूप—नेत्र में लालिमा, चोष, अर्बुद, शोथ, बुद्बुद, वक्रदृष्टि तथा अधिमन्थ आदि होते हैं। ऐसा होने पर तत्काल उनका उपचार करना चाहिए।

विमर्श—इन दिनों Cauching method से आँख का आपरेशन (Cataract operation) प्रायः नहीं होता है। अब Intraocular method से अधिकांश मोतियाबिन्द का आपरेशन होता है।

७४. दूर्वादि लेप (च.द.)

रुजायामक्षिरागे वा भूयो योगान्निबोध मे।
कल्किताः सघृता दूर्वायवगैरिकशारिवाः॥
सुखालेपा प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ॥११८॥

किसी प्रकार के नेत्ररोगों में यदि नेत्रपीड़ा, नेत्र में लालिमा आदि उत्पन्न हो जाय तो उसके शान्त्यर्थ—१. दूर्वाकल्क, २. जौ चूर्ण, ३. शुद्ध गैरिक, ४. अनन्तमूलचूर्ण तथा ५. गोघृत (समभाग) लेकर एक छोटे स्टेनलेस स्टील के पात्र में रखें। (सब के बराबर गोदुग्ध में घोलकर) मृद्वग्नि पर पकावें तथा गाढ़ा होने पर नेत्रों पर सुखोष्ण लेप करें। इसके २-३ दिनों तक प्रयोग से उपर्युक्त व्यथा नष्ट हो जाती है।

७५. पयस्यादि लेप (च.द.)

पयस्याशारिवापत्रमञ्जिष्ठामधुकैरपि।
अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते ॥११९॥

१. क्षीरकाकोली, २. अनन्तमूल, ३. तेजपात, ४. मंजीठ और ५. मुलेठी (समभाग) लें। इन्हें सूक्ष्मचूर्ण करें। इस चूर्ण को बकरी के दूध से सिल पर पीसें तथा अधिक दूध मिलाकर मृद्वग्नि पर पाक करें, थोड़ा गाढ़ा होने पर सुखोष्ण लेप करें। इसका लेप करने से नेत्रशूल एवं नेत्र लालिमा नष्ट हो जाते हैं।

७६. काकोल्यादिगण घृत (च.द.)

वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे।
काकोल्यादिप्रतीवापं तद् युञ्ज्यात्सर्वकर्मसु ॥१२०॥

गोघृत १ किलो, वातघ्न औषधि सिद्ध गोदुग्ध ४ लीटर तथा काकोल्यादिगण की मिलित औषधि २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम वातघ्न (गण के) द्रव्यों के क्वाथ से दुंग्ध को सिद्ध करें। ततः [1]काकोल्यादि गण के द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। अब गोघृत का मूर्च्छन करें और कल्क एवं साधित दूध को मूर्च्छित घृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर ४ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से उतारें और कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत का पान, नस्य एवं अंजन करने से सभी प्रकार के नेत्ररोगों में लाभ होता है।

नेत्रशूल चिकित्सा (च.द.)

शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत्।
ततः शिरां दहेच्चापि मतिमान् कीर्त्तितं यथा ॥१२१॥

यदि उपर्युक्त लेप, घृतपान, नस्यादि क्रिया से नेत्रशूल शान्त नहीं हो तो रोगी को स्नेहपान कराकर उसके ललाट प्रदेश को स्वेदित कर ललाट प्रदेश की शिरा को वेधकर रक्तमोक्षण करें तथा उस शिरा को दग्ध करें। पुनः दृष्टिप्रसादाञ्जन का प्रयोग करें।

७७. दृष्टिप्रसादाञ्जन (च.द.)

दृष्टेरथ प्रसादार्थमञ्जनं शृणु मे शुभे।
मेषशृङ्गस्य पुष्पाणि शिरीषधवयोरपि ॥१२२॥
मालत्याश्चापि पुष्पाणि मुक्तावैदूर्यमेव च।
अजाक्षीरेण सम्पिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत्।
प्रविधाय तु तद्वर्तिर्योजयेदञ्जने भिषक् ॥१२३॥

१. मेषशृङ्गीचूर्ण, २. शिरीषपुष्पचूर्ण, ३. धातकीपुष्पचूर्ण, ४. चमेलीपुष्पचूर्ण, ५. मुक्तापिष्टी और ६. वैदूर्य्य भस्म (समभाग) लें। इन्हें ताम्र धातु की खरल में एक साथ बकरी के दूध में ७ दिनों तक (७ भावना) देकर मर्दन करें और वर्ति बनाकर छाया में सुखावें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को चन्दन घिसने वाले पत्थर पर जल से घिसकर अञ्जन करना चाहिए।

७८. स्रोतोऽञ्जनादि वर्त्ति (च.द.)

स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिला।
मरिचानि च तां वर्त्तिं कारयेत् पूर्ववद्भिषक् ॥१२४॥

१. शुद्ध स्रोतोऽञ्जन, २. प्रवालभस्म, ३. समुद्रफेन, ४. शुद्ध मैनसिल तथा ५. मरिचचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें ताम्र के खरल में एक साथ मिलाकर पहले जैसी वर्त्ति बना लेनी चाहिए। इसके प्रयोग से सभी प्रकार के नेत्ररोगों का नाश होता है।

७९. रसाञ्जनादि वर्त्ति (च.द.)

रसाञ्जनं घृतं क्षौद्रं तालीशं स्वर्णगैरिकम्।
गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥१२५॥

१. रसाञ्जनचूर्ण, २. गोघृत, ३. मधु, ४. तालीशपत्रचूर्ण, और ५. स्वर्णगैरिकचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें एक साथ ताम्र खरल में मिलाकर गोबर के रस के साथ भावना देकर वर्त्ति बनावें

१. **काकोल्यादिगण**—काकोलीक्षीरकोलीजीवकर्षभकमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौण्डरीकर्धिवृद्धिमृद्वीकाजीवन्त्यो मधुकञ्चेति। (सु.सू. ३८।३५)

तथा सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। नेत्रों में इसका अञ्जन करने से पित्तदूषित नेत्ररोग दूर हो जाते हैं।

८०. नीलोत्पलादि वर्त्ति (च.द.)

नलिनोत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम्।
गुडिकाञ्जनमेतत् स्याद् दिनरात्र्यन्धयोर्हितम्॥१२६॥

नीलकमलपुष्प की केशर को एक खरल में मर्दन करें और गोबररस की भावना देकर दृढ़ मर्दन करें। ततः वर्त्ति बनाकर सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्ति को जल के साथ घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से दिवान्ध्य तथा रात्र्यन्ध्य (रतौंधी) रोग नष्ट हो जाते हैं।

८१. नदीजादि वर्ति (गुडिका) (च.द.)

नदीजशङ्खत्रिकटून्यथाञ्जनं[१]
मनःशिला द्वे च निशे गवां शकृत्[२]।
सचन्दनेयं गुडिकाऽथवाऽञ्जनं
प्रशस्यते रात्रिदिनेष्वपश्यताम्॥१२७॥

१. सैन्धवलवण, २. शंखनाभिभस्म, ३. सोंठचूर्ण, ४. पीपरचूर्ण, ५. मरिचचूर्ण, ६. रसाञ्जन, ७. शुद्ध मैनसिल, ८. हल्दीचूर्ण, ९. दारुहल्दीचूर्ण, १०. गोबररस और ११. लालचन्दनचूर्ण (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को गोबररस में मर्दन करें और वर्ति बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्ति को चन्दन घिसने वाले साफ पत्थर पर घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से रात्र्यन्ध्य तथा दिवान्ध्य रोग नष्ट हो जाता है। अथवा इसे वर्ति रूप में न बनाकर चूर्ण रूप में भी बनाया जा सकता है और इसे शलाका से अञ्जन रूप में लगाया जा सकता है।

८२. कणा-मरिचादि प्रयोग

कणा छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता।
अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत् सक्षौद्रमूषणम्॥१२८॥

बकरे के यकृत् में छिद्रकर १२ ग्राम पिप्पली अथवा मरिच रखकर उसे पट्टी से लपेटें और कपड़े की पोटली में बाँध कर जलपूरित दोलायन्त्र में ३ घण्टे तक स्वेदन करें। जल सूखने पर पुनः-पुनः जल पूरित करते रहें। तीन घण्टे बाद पोटली बाहर निकालें तथा उसमें भरे पीपर या मरिच को पृथक् करें और अवशिष्ट यकृद्रस की भावना देकर वर्ति बना लें। तत्पश्चात् धूप में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। एक साफ पत्थर पर मधु से घिसकर अञ्जन करने से शीघ्र ही रतौंधी (रात्र्यन्ध्य) रोग नष्ट हो जाता है।

१. नदीजम् = सैन्धवलवणम्।
२. गवांशकृत् = स्थाने गवं यकृदपि पाठः। इति तत्वचन्द्रिकायाम् आचार्य श्रीशिवदाससेनः।

८३. गोधायकृदञ्जन

पचेत्तु गौधं हि यकृत्प्रकल्पितं
सुपूरितं मागधिकाभिरम्बुना।
निषेधितं तद्यकृदञ्जनेन
निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु॥१२९॥

गोधा (गोह) प्राणि के यकृत् में छिद्र करें और पूर्ववत् पिप्पली टुकड़े भरें तथा कपड़े में बाँधकर पोटली बना लें और जलपूरित दोलायन्त्र में २ घण्टे तक मन्दाग्नि में पाक करें। इस यकृत् को खाने से तथा पूर्ववत् पिप्पली की वर्त्ति बनाकर अञ्जन करने से निश्चित ही रतौंधी (रात्र्यन्ध्य) रोग नष्ट हो जाता है।

८४. मरिचाद्यञ्जनादि योग (च.द)

दध्ना निघृष्टं मरिचं रात्र्यान्ध्याञ्जनमुत्तमम्।
ताम्बूलयुक्तं खद्योतभक्षणं च तदर्थकृत्॥१३०॥

१. मरिचचूर्ण को गाय के दही के साथ ३ घण्टे तक मर्दन कर धूप में सुखाकर सूक्ष्मवस्त्र में छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे नेत्रशलाका में लगाकर नेत्रों में अञ्जन करने से रात्र्यन्ध्य रोग नष्ट हो जाते हैं।

२. पान के १ बीड़ा में (ताम्बूल, कथ, चूना तथा सुपारी के टुकड़े) १ खद्योत (जुगुनु) को रखकर मोड़कर रोगी को चबाने को दें। ऐसे प्रतिदिन १-१ बीड़ा पान का सेवन करने से १० दिन में रात्र्यन्ध्य रोग नष्ट हो जाता है।

८५. शफरीमत्स्य क्षाराद्यञ्जन (च.द.)

शफरीमत्स्यक्षारो नक्तान्ध्यमञ्जनाद्विनिहन्ति।
तद्वद्रामठटङ्कणकर्णमलं चैकैकशोऽञ्जनान्मधुना॥१३१॥

शफरी नामक छोटी मछली (इलीश मछली) जो काफी चमकती है, को शरावसम्पुट कर गजपुट में पाक करें। इसे खरल में पीसें और सूक्ष्म वस्त्रगालित चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस मछली क्षार का प्रतिदिन अञ्जन करने से रात्र्यन्ध्य रोग नष्ट हो जाता है। अञ्जन रात्रि में लगावें। इसी प्रकार हींग, शुद्ध सुहागा एवं कर्णमल समभाग मिलाकर नेत्राञ्जन करने से रात्र्यन्ध्य रोग नष्ट हो जाता है।

८६. रोहितमत्स्याण्ड सेवन (च.द.)

केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याण्डं हन्ति भक्षितम्।
नक्तान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात् पथ्यसेविनाम्॥१३२॥

रोहू मछली के अण्डों को (रोहू मछली के पेट से पोस्तादाना जैसे अण्डों से भरी बड़ी थैली होती है) को केशराज (भृङ्गराज जैसे पीले पुष्प) के स्वरस में पकाकर १ सप्ताह तक पथ्यपूर्वक सेवन करने से रात्र्यन्ध्य रोग नष्ट हो जाता है।

अर्म चिकित्सा (च.द.)

अर्म तु छेदनीयं स्यात् कृष्णप्राप्तं भवेद्यदा।
बडिशविद्धं समुन्नम्य त्रिभागं चात्र वर्जयेत् ॥१३३॥

अर्म रोग यदि कृष्णमण्डल तक फैल जाय तो सूचिका के अग्र भाग से उसे उठाकर बडिश यन्त्र से उस उठे अर्म को विद्ध कर मण्डलाग्र शस्त्र से काट दें। इस क्रिया के समय कृष्णभाग (कनीनिका) का तृतीय भाग वर्जित करना चाहिए।

८७. पिप्पल्यादि गुडिकाञ्जन (च.द.)

पिप्पली त्रिफला लाक्षा लौहचूर्णं ससैन्धवम्।
भृङ्गराजरसे पिष्टं गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥१३४॥
अर्म सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तदर्जुनम्।
अजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥१३५॥

१. पीपरचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ा चूर्ण, ५. लाक्षाचूर्ण, ६. लौहभस्म और ७. सैन्धवचूर्ण (समभाग) लें। एक खरल में इन चूर्णो को मिलाकर पुनः वस्त्रपूत चूर्ण करें। ततः भृङ्गराजस्वरस के साथ मर्दन कर गुडिका बना लें तथा छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस गुटिका को साफ पत्थर पर जल से घिसकर नेत्र में अञ्जन करने से अर्म, तिमिर, काच, नेत्रकण्डू, नेत्रशुक्र, अर्जुन, अजकाजात आदि नेत्ररोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

८८. पुष्पकासीसाञ्जन (च.द.)

पुष्पाख्यताक्ष्र्यजसितोदधिफेनशङ्ख-
सिन्धूत्थगैरिकशिलामरिचैः समांशैः।
पिष्टैस्तु माक्षिकरसेन रसक्रियेयं
हन्त्यर्मकाचतिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥१३६॥

१. पुष्पकासीस, २. रसाञ्जनचूर्ण, ३. चीनी, ४. समुद्रफेन चूर्ण, ५. शंखनाभिभस्म, ६. सैन्धवलवण, ७. शुद्धगैरिक, ८. शुद्धमैनसिल और ९. मरिचचूर्ण (समभाग) लें। इन सूक्ष्म चूर्णों को एक खरल में मिलाकर मर्दन करें। ततः मधु मिलाकर १ दिन तक मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस का अञ्जन नेत्रों में करने से अर्मरोग, काच, तिमिररोग, अर्जुनरोग और वर्त्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

शुक्तिका रोग चिकित्सा

८९. कौम्भघृत प्रयोग (च.द.)

कौम्भस्य सर्पिषः पानैर्विरेकालेपसेचनैः।
स्वादुशीतैः प्रशमयेच्छुक्तिकामञ्जनैस्ततः ॥१३७॥

कौम्भघृत (१० वर्ष का पुराना घृत या १०० वर्ष का पुराना घृत) का पान, इसे पिलाकर विरेचन कराना, नेत्र पर लेप, इस घृत से नेत्र का सेचन और मधुर रस युक्त शीतल द्रव्यों के साथ मिलाकर नेत्र में अञ्जन करने से शुक्तिका रोग नष्ट हो जाता है।

९०. प्रवालादि वर्त्ति (च.द.)

प्रवालमुक्तावैदूर्यशङ्खस्फटिकचन्दनम्।
सुवर्णरजतक्षौद्रमञ्जनं शुक्तिकापहम् ॥१३८॥

१. प्रवालभस्म, २. मोतीभस्म, ३. वैदूर्यभस्म, ४. शंखनाभिभस्म, ५. स्फटिकभस्म, ६. रक्तचन्दनचूर्ण, ७. सुवर्णभस्म, ८. रजतभस्म और ९. मधु (समभाग) लें। एक खरल में इन सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें। आवश्यकतानुसार थोड़ा जल मिलाकर छोटी-छोटी वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को चन्दन घिसने वाले पत्थर पर जल के साथ घिसकर अञ्जन करने से शुक्तिका नामक नेत्ररोग नष्ट हो जाता है।

अर्जुन नेत्ररोग चिकित्सा

९१. शंखादि तीन अञ्जन (च.द.)

शङ्खः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन वा।
सितायाऽर्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने॥
पैत्तं विधिमशेषेण कुर्यादर्जुनशान्तये ॥१३९॥

(१) शंखनाभिभस्म में मधु मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करने से; (२) निर्मलीफल एवं सैन्धवलवण (समभाग) दोनों का सूक्ष्म चूर्ण कर नेत्रों में अञ्जन करने से; (३) चीनी और समुद्रफेन का सूक्ष्मचूर्ण कर नेत्रों में अञ्जन करने से अर्जुन नामक रोग नष्ट हो जाता है। साथ ही अर्जुन रोग का नाश करने के लिए सभी प्रकार की पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिए।

९२. वैदेह्याद्यञ्जन (च.द.)

वैदेहीश्वेतमरिचं सैन्धवं नागरं समम्।
मातुलुङ्गरसैः पिष्टमञ्जनं पिष्टकापहम् ॥१४०॥

१. पीपरचूर्ण, २. सहिजनबीजचूर्ण, ३. सैन्धवचूर्ण और ४. सोंठचूर्ण (समभाग) लें। एक खरल में इन चारों द्रव्यों को एक साथ मर्दन करें और बिजौरानिम्बुस्वरस की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। इसे सूक्ष्म चूर्ण कर पुनः वस्त्रपूत चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस अञ्जन चूर्ण को शलाका पर उठाकर नेत्रों में अञ्जन करने से 'पिष्टक' नामक नेत्ररोग नष्ट हो जाता है।

उपनाह नेत्र रोग चिकित्सा

भित्त्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवैः।
विलिखेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः ॥१४१॥

कफज उपनाह रोग में पहले व्रीहिमुख शस्त्र से (उपनाह का) भेदन कर मण्डलाग्र शस्त्र से लेखन करना चाहिए। अथवा उसे

प्रच्छित (पाछ) कर उस स्थान में पीपरचूर्ण, सैन्धवलवण, एवं मधु मिलाकर धीरे-धीरे घर्षण करना चाहिए।

९३. त्रिफलाफल मज्जावर्त्ति (च.द.)

पथ्याऽक्षधात्रीफलमध्यबीजै-
स्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्त्तिम्।
तयाऽञ्जयेदस्त्रमतिप्रगाढ-
मक्ष्णोर्हरेत् कोपमपि प्रवृद्धम् ॥१४२॥

हरीतकीबीज मज्जा ३ भाग, बहेड़ाबीज मज्जा २ भाग तथा आमलाफलबीज मज्जा १ भाग लें। एक खरल में जल के साथ पीसकर वर्त्ति बना लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को साफ पत्थर पर जल के साथ घिसकर अञ्जन करने से नेत्र से अधिक अश्रुस्राव, नेत्र की लाली आदि प्रकोप नष्ट हो जाते हैं।

९४. नेत्रस्राव (अश्रुपात) चिकित्सा (च.द.)

स्रवेषु त्रिफलाक्वाथं यथादोषं प्रयोजयेत्।
क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं विध्येच्छिरां तथा ॥१४३॥

सभी प्रकार के नेत्ररोगों की चिकित्सा में दोषों की कल्पनानुसार त्रिफलाक्वाथ में मधु, घृत एवं पिप्पलीचूर्ण मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। जैसे—वातज नेत्र रोग में त्रिफला क्वाथ में मधु मिलाकर पान एवं नेत्रसिञ्चनादि कर्म करना चाहिए। पित्तज नेत्ररोग में त्रिफला क्वाथ में घृत मिलाकर और कफज नेत्र रोग में पिप्पली चूर्ण मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। इस उपचार से अश्रुस्राव बन्द नहीं होने पर शिरावेधन कर अशुद्ध रक्त का निर्हरण करें। इससे अधिक शान्ति मिलती है।

९५. त्रिफलादि रसक्रिया (च.द.)

त्रिफलातुत्थकासीससैन्धवैः सरसाञ्जनैः।
रसक्रिया कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥१४४॥

१. त्रिफलायवकुट १८७ ग्राम, २. गोमूत्र १८७ मि.ली. ३. शुद्ध कासीस २० ग्राम, ४. सैन्धवलवण ५ ग्राम और ५. रसाञ्जन २० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक स्टेनलेस के स्टीलपात्र में त्रिफलायवकुट का ७५० मि.ली. जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। अब १८७ मि.ली. क्वाथ में १८७ मि.ली. गोमूत्र मिलाकर घन करें। जब गाढ़ा होने लगे तो उसमें शुद्ध कासीस, शुद्ध रसाञ्जनचूर्ण एवं सैन्धवचूर्ण मिलाकर रसक्रिया विधि से घन करें। इस रसक्रिया को जल में घोलकर 'कृमिग्रन्थि' नामक नेत्ररोग में प्रतिसारण करने से कृमिग्रन्थि रोग नष्ट हो जाता है।

अञ्जननामिका चिकित्सा (च.द.)

स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम्।
शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥१४५॥

अञ्जननामिकारोग में स्वेदन करने के बाद मृदु होने पर भेदन करें और निष्पीडन करें। जब अन्दर के सभी दोष बाहर आजाय तो साफ करके शुद्ध मैनसिल, छोटी इलायचीबीजचूर्ण तथा सैन्धवलवणचूर्ण समभाग में मिलाकर मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करने से बहुत लाभ होता है।

अञ्जननामिका में कर्म (च.द.)

रसाञ्जनमधुभ्यां च भिन्नां वा शस्त्रकर्मवित्।
प्रतिसार्याञ्जनैर्युञ्ज्यादुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ।
स्वेदयेद् घृष्टयाऽङ्गुल्या हरेद्रक्तं जलौकसा ॥१४६॥

नेत्र की शस्त्रक्रिया में निष्णात वैद्य 'अञ्जननामिका' में भेदन करके रसाञ्जन और मधु मिलाकर प्रतिसारण करें। ततः तिल तैल पूर्ण दीपक से काजल बनाकर नेत्रों में अञ्जन करें। साथ ही अंगुली को दूसरे हाथ की तलेथी पर घिसें तथा गरम होने पर नेत्रों का स्वेदन करें। पुनः जलौका से रक्तमोक्षण करें।

लगणनेत्ररोग चिकित्सा

९६. गोरोचनाद्य प्रतिसारण (च.द.)

रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च।
प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण इष्यते ॥१४७॥

१. गोरोचन, २. यवक्षार, ३. शुद्ध तुत्थ. ४. पिप्पलीचूर्ण तथा ५. मधु—गोरोचन से पिप्पलीचूर्ण तक सभी द्रव्य १-१ भाग लें। सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार थोड़े चूर्ण को मधु में मिलाकर द्रव जैसा बना लें। इस द्रव से प्रतिसारण करने से भेदन किया हुआ लगण नामक नेत्ररोग ठीक हो जाता है।

निमेष चिकित्सा (च.द.)

निमेषे नासया पेयं सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥१४८॥

निमेष नामक नेत्ररोग में गोघृत का नस्य लें तथा सुखोष्ण गोघृत से नेत्रपूरण करें।

बिसग्रन्थि चिकित्सा (च.द.)

स्वेदयित्वा बिसग्रन्थिं छिद्राण्यस्य निराश्रयम्।
पक्वं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावचूर्णयेत् ॥१४९॥

पके हुए बिसग्रन्थि नामक नेत्ररोग में पहले स्वेदन कर शस्त्र द्वारा समूल काटकर निकाल दें और इनके छिद्रों में सैन्धवलवणचूर्ण भर कर नष्ट कर दें। लवण का अवचूर्णन करें।

पिल्लरोग चिकित्सा (च.द.)

वर्त्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम्।
पुनः पुनर्विरेकं च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥१५०॥

पिल्ल नामक नेत्ररोग में कर्कश एवं रूक्ष पत्रों (हरसिंगार या सिहाड़ा पत्र) से नेत्रपलकों का घर्षण (लेखन) करके रक्तमोक्षण करें तथा रोगी को बार-बार विरेचन करावें।

पिल्लघ्न योग (च.द.)

पिल्ली स्निग्धो वमेत्पूर्वं शिरावेधस्रुतेऽसृजि ।
शिलारसाञ्जनव्योषगोपित्तैश्चक्षुरञ्जयेत् ॥१५१॥

पिल्लरोग में पहले स्नेहन कराकर वमन करावें। तत: ललाटप्रदेश स्थित सिरा का वेधन कर अशुद्ध रक्त का मोक्षण करें। इसके बाद—१. शुद्ध मैनसिल, २. रसाञ्जनचूर्ण, ३. सोंठचूर्ण, ४. पीपरचूर्ण, ५. मरिचचूर्ण और ६. गोरोचनचूर्ण (समभाग) लें। इनके श्लक्ष्ण चूर्ण को गाय के पित्त से मर्दनकर सुखा लें और नेत्र में अञ्जन करें।

९७. तालादि वर्त्ति (च.द.)

हरितालवचादारुसुरसारसपेषितम् ।
अभयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम् ॥१५२॥

१. शुद्ध हरिताल, वचचूर्ण तथा देवदारुचूर्ण (समभाग) लें। एक खरल में तीनों द्रव्यों को मिलाकर तुलसीस्वरस की भावना देकर वर्त्ति बनाकर सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। अथवा

२. तगरचूर्ण में हरीतकी क्वाथ की भावना देकर वर्त्ति बना लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे जल में घिसकर अञ्जन करने से पिल्लरोग नष्ट हो जाता है।

पिल्लघ्न धूप (च.द.)

भावितं बस्तमूत्रेण सस्नेहं देवदारु च ।
काकमाचीफलैकेन घृतयुक्तेन बुद्धिमान् ।
धूपयेत् पिल्लरोगार्त्तं पतन्ति कृमयोऽचिरात् ॥१५३॥

१. देवदारुचूर्ण में बकरे के मूत्र की भावना दें और सूखने के बाद उसमें घृत मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। निर्धूम अग्नि पर इसे जलाकर पिल्लरोग ग्रसित नेत्र में धूपन लें। इससे कृमियाँ नष्ट हो जाती हैं।

२. काकमाची (मकोय) फल को घृत में मिलाकर धूपन लेने से पिल्लरोग से कृमियाँ गिर जाती हैं।

९८. रसाञ्जनाद्यञ्जन (च.द.)

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला ।
समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥१५४॥
एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि ।
अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥१५५॥

१. रसाञ्जनचूर्ण, २. रालचूर्ण, ३. चमेलीपुष्पचूर्ण, ४. शुद्ध मैनसिल, ५. समुद्रफेनचूर्ण ६. सैन्धवचूर्ण, ७. शुद्ध गैरिक तथा ८. मरिचचूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग लें और ९. मधु ८ भाग लें। उपर्युक्त आठों द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण एक साथ मिलाकर मधु से अच्छी तरह मर्दन करें। इसे काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे प्रक्लिन्न वर्त्म में अञ्जन करने से क्लेद और कण्डू नष्ट हो जाता है। इसे कुछ दिनों तक लगातार अञ्जन करने से पुन: पलकों के बाल निकल आते हैं और 'पक्ष्मशात' रोग नष्ट हो जाता है।

९९. चुचुल्यस्थ्यञ्जन (च.द.)

मस्तकास्थि चुलुक्यास्तु तुषोदलवणान्वितम् ।
ताम्रपात्रेऽञ्जवद्घृष्टं पिल्ले प्रक्लिन्नवर्त्मनि ॥१५६॥

चुलुकी मछली के शिर की हड्डी को सैन्धवलवण एवं काञ्जी के साथ ताम्र की उलटी थाली पर रखकर हाथ की हथेली से १-२ घण्टे तक घिसें। अञ्जन जैसा बनने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे नेत्रों में अञ्जन जैसा लगाने से प्रक्लिन्नवर्त्म से युक्त पिल्लरोग नष्ट हो जाता है।

१००. गुहामूलाद्यञ्जन (च.द.)

ताम्रपात्रे [1]गुहामूलं सिन्धूत्थं मरिचान्वितम् ।
आरनालेन संघृष्टमञ्जनं पिल्लनाशनम् ॥१५७॥

पृश्निपर्णीमूल, सैन्धवलवण तथा मरिचचूर्ण—तीनों समभाग लें। इन्हें चूर्ण करें और ताम्र की थाली को उलटकर उसके पीठ पर रखें तथा काञ्जी देकर १ प्रहर तक मर्दन कर अञ्जन बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। नेत्रों में इसका अञ्जन करने से पिल्ल रोग नष्ट हो जाता है।

१०१. हरिद्रादि वर्त्ति (च.द.)

हरिद्रे त्रिफला लोध्रं मधुकं रक्तचन्दनम् ।
भृङ्गराजरसे पिष्ट्वा घर्षयेल्लोहभाजने ॥१५८॥
तथा ताम्रे च सप्ताहं कृत्वा वर्त्तिं रजोऽथवा ।
पिच्चिटी धूमदर्शी च तिमिरोपहतेक्षणः ॥
प्रतिनिश्यञ्जयेन्नित्यं सर्वनेत्रामयापहम् ॥१५९॥

१. हल्दीचूर्ण, २. दारुहल्दीचूर्ण, ३. आमलाचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. लोध्रचूर्ण, ७. मुलेठीचूर्ण और ८. लालचन्दनचूर्ण (समभाग) लें। इन चूर्णों को पुन: वस्त्रगालित चूर्ण करें। लोहे के एक खरल में इन्हें रखकर भृङ्गराजस्वरस की ७ भावना देकर मर्दन करें। तत: ताम्र खरल में पुन: ७ भावना देकर ७ दिनों तक मर्दन करें। पुन: वर्त्ति बनाकर या चूर्ण रूप में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को चन्दन घिसने वाले साफ पत्थर पर जल के साथ घिसकर नेत्रों में प्रतिदिन अञ्जन करने से पिच्चिटु, धूमदर्शी, तिमिरादि से उपहत दृष्टिवाले रोगों को नष्ट करता है। तथा अन्य सभी नेत्र रोगों का नाश करता है।

---

१. गुहामूलं = पृश्निपर्णीमूलं।

१०२. चूर्णाञ्जन (च.द.)

मञ्जिष्ठामधुकोत्पलोदधिकफत्वक्सेव्यगोरोचना-
मांसीचन्दनशङ्खपत्रगिरिमृत्तालीशपुष्पाञ्जनैः ।
सर्वैरेव समांशमञ्जनमिदं शस्तं सदा चक्षुषोः
कण्डूक्लेदमलाश्रुशोणितरुजापिल्लार्मशुक्रापहम् ॥

१. मंजीठचूर्ण, २. मुलेठीचूर्ण, ३. नीलकमलचूर्ण. ४. समुद्रफेनचूर्ण, ५. दालचीनीचूर्ण. ६. खसचूर्ण, ७. गोरोचन चूर्ण, ८. जटामांसीचूर्ण, ९. लालचन्दनचूर्ण, १०. शंखनाभि भस्म, ११. तेजपातचूर्ण, १२. शुद्धगैरिकचूर्ण, १३. तालीश-पत्रचूर्ण तथा १४. शुद्ध पुष्पाञ्जन (समभाग) लें। इनका सूक्ष्म चूर्ण अर्थात् वस्त्रगालित चूर्ण बनाकर एक खरल में रखकर जल की भावना देकर १ दिन मर्दन करें। ततः सूखने पर पुनः कूट-कर १०० नम्बर की छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे आँखों में प्रतिदिन अञ्जन करने से नेत्रकण्डू, नेत्रों से क्लेद आना, नेत्रों से कीचड़ (सफेद मल=काची) निकलना, नेत्रों से अश्रुपात, रक्तस्राव, नेत्रशूल, पिल्लरोग, अर्म और नेत्रशुक्र आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

१०३. तुत्थाद्य नेत्र द्रव (च.द.)

तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः ।
त्रिंशता काञ्जिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥१६१॥
पिल्लानपिल्लान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि ।
तत्सेकेनोपदेहाश्रुकण्डूशोथांश्च नाशयेत् ॥१६२॥

शुद्ध तुत्थ ४६ ग्राम (१ पल), सहिजनबीज २० नग तथा काञ्जी १४०० लीटर लें। एक खरल में श्वेत मरिच (सहिजन बीज) का सूक्ष्म चूर्ण करें और शुद्ध तुत्थ के साथ दृढ़ मर्दन कर विशुद्ध छने हुए काञ्जी में घोल दें तथा वस्त्रपूत कर ताम्रपात्र में संग्रहीत करें। इस नेत्र द्रव को प्रतिदिन १ या २ बूँद दोनों नेत्रों में डालने से पुराना पिल्ल रोग, उपदेह (नेत्रमल), अश्रुस्राव, नेत्र, कण्डू और नेत्रशोथ नष्ट हो जाते हैं।

पक्ष्मोपरोध चिकित्सा (च.द.)

याप्यः पक्ष्मोपरोधश्च रोमोद्धरणलक्षणैः ।
वर्त्मन्युपचिते लेख्यं स्राव्यमुत्क्लिष्टशोणितम् ॥१६३॥

पक्ष्मोपरोध (उपपक्ष्म) नामक नेत्ररोग जो याप्य तरह का रोग हैं; इस रोग में नेत्र के अन्दर जाने वाली बरौनियों (बालों) को उखाड़कर पक्ष्मों के पास लेखन कर सञ्चित अशुद्ध रक्त को निकाल देना चाहिए।

पक्ष्मकोप चिकित्सा (च.द.)

प्रवृद्धान्तर्मुखं रोम सहिष्णोरुद्धरेच्छनैः ।
सन्दंशेनोद्धरेद् दृष्ट्यां पक्ष्मरोमाणि बुद्धिमान् ॥१६४॥
रक्षन्नक्षि दहेत्पक्ष्म तप्तहेमशलाकया ।
पक्ष्मरोगे पुनर्नैवं कदाचिद्रोमसम्भवः ॥१६५॥

पक्ष्मकोपरोग में नेत्र के अन्तर्मुखी पक्ष्म रोमों को सन्दंश (चिमटी) से पकड़कर धीरे-धीरे निकाल देना चाहिए तथा नेत्रों की रक्षा करते हुए सुवर्ण की प्रतप्त शलाका से लोम स्थल को दग्ध कर दें जिससे पुनः वहाँ पर लोमोद्‌गम नहीं हो।

कफ़ानाह चिकित्सा (च.द.)

घृतसैन्धवचूर्णेन कफानाहं पुनः पुनः ।
विलिखेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः ॥१६६॥

कफानाह नामक नेत्ररोग में घृत मिश्रित सैन्धवलवणचूर्ण पुनः पुनः नेत्र में लगाना चाहिए तथा मण्डलाग्रशस्त्र से लेखन कर्म करें तथा चारों ओर प्रच्छित करें।

पोथकीहर योग (च.द.)

पटोलामलकक्वाथैराश्च्योतनविधिर्हितः ।
फणिज्झकरसोनस्य रसैः पोथकिनाशनः ॥१६७॥

१. पटोलपत्र तथा आमलकीयवकुट अथवा २. तुलसीपत्र रस एवं रसोन कल्क रस लें। पटोलपत्र ओर आमलकीयवकुट क्वाथ का पुनः-पुनः दिन में ४ बार आश्च्योतन करने से अथवा तुलसीपत्रस्वरस तथा रसोनकल्क रस का मिश्रित आश्च्योतन करने से पोथकी नामक नेत्ररोग नष्ट हो जाता है।

आनाहपिडका आदि रोगों की चिकित्सा (च.द.)

आनाहपिडकां स्विन्नां तिर्यग् भित्त्वाऽग्निना दहेत् ।
अर्शस्तथा वर्त्म नाम्ना शुष्कार्शोऽर्बुदमेव च ।
मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन मूले छिन्द्याद्भिषक् शनैः ॥१६८॥

आनाहपिडका को स्विन्न कर तिर्यग् भेदन कर सुवर्ण शलाका को अग्नितप्त कर उससे दग्ध करें। साथ ही नेत्रार्श, वर्त्मरोग, शुष्कार्श तथा वर्त्मार्बुद रोगों में तीक्ष्ण मण्डलाग्र शस्त्र से कुशल वैद्य जड़ से धीरे-धीरे काट दें।

१०४. सैन्धवादि वर्त्ति

सिन्धूत्थपिप्पलीकुष्ठपर्णिनीत्रिफलारसैः ।
सुरामण्डेन वर्त्तिः स्याच्छ्लेष्माभिष्यन्दनाशिनी ।
पोथकीवर्त्मोपरोधकृमिग्रन्थिकुकूणके ॥१६९॥

१. सैन्धवलवण, २. पिप्पली, ३. कूठ, ४. शालपर्णी, ५. पृश्निपर्णी, ६. माषपर्णी, ७. मुद्‌गपर्णी, ८. त्रिफलाक्वाथ और ९. मद्य (प्रसन्ना-सुरामण्ड)—इन्हें समभाग लें। सैन्धव से मुद्‌गपर्णी तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण करें और त्रिफला-क्वाथ के साथ एक दिन तक मर्दन करें। पुनः सुरामण्ड के साथ मर्दन कर छोटी-छोटी वर्त्ति बना लें तथा छाया में सुखाकर

काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को साफ पत्थर पर घिसकर नेत्रों में अंजन करने से कफज नेत्राभिष्यन्दरोग, पोथकी, वर्त्मोपरोध, कृमिग्रन्थि और कुकूणक रोग नष्ट हो जाते हैं।

१०५. कज्जल (काजल) (च.द.)

संगृह्योपरतानलक्तकरसेनामृज्य गण्डूपदान्
लाक्षारञ्जिततूलवर्त्तिनिहितान् यष्टीमधून्मिश्रितान्।
प्रज्वाल्योत्तमसर्पिषाऽनलशिखासन्तानजं कज्जलं
दूरासन्ननिशान्ध्यकाचतिमिरप्रध्वंसकृच्चोदितम् ॥

मरे हुए भूनाग (केचुए) को लाक्षारस में भावित करें तथा उस में समभाग यष्टीमधु चूर्ण मिलावें। ततः ३-४ इञ्च स्वच्छ रूई के टुकड़े को लाक्षा रस में डुबोकर सुखा लें। उस रूई खण्ड पर उपर्युक्त भूनाग एवं यष्टिमधु चूर्ण का मिश्रण फैलाकार वर्ति (बत्ती) बना लें। ततः उस वर्त्ति को सुखोष्ण घृत में डुबाकर मिट्टी के एक बड़े दीपक में रखें और उसमें घृत भरकर दीपक जलावें। दीपक की लौ के ऊपर ताम्र या कांस्य पात्र रखें । ३-४ घण्टे तक दीपक जलाकर कज्जल एकत्र करें। दीपक में पुनः-पुनः घृत डालते रहें। सम्पूर्णवर्त्ति (बत्ती) जल जाने पर कज्जली को इकट्ठा करें। इस काजल में घृत मिलाकर अञ्जन तैयार कर लें। इस काजल को नेत्रों में प्रतिदिन आंजने से दूरान्ध्य, समीपान्ध्य, रात्र्यन्ध्य, काच, तिमिर आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

१०६. नागार्जुन वर्त्ति (च.द.)

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थयष्टीतुत्थरसाञ्जनम् ।
प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं लोध्रं ताम्रं चतुर्दश ॥१७१॥
द्रव्याण्येतानि सञ्चूर्ण्य वर्त्तिः कार्या नभोऽम्बुना ।
नागार्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके ॥१७२॥
नाशिनी तिमिराणां च पटलानां विशेषतः ।
सद्यः प्रकोपं स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम् ॥१७३॥
किंशुकस्वरसेनाथ पिल्लपुष्पकरक्तताः ।
अञ्जनाल्लोध्रतोयेन चासन्नतिमिरं जयेत् ॥१७४॥
चिरमाच्छादिते नेत्रे बस्तमूत्रेण संयुता ।
उन्मीलयत्यकृच्छ्रेण प्रसादं चाधिगच्छति ॥१७५॥

१. आमलाचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. बहेड़ाचूर्ण, ४. सोंठ चूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. मरिचचूर्ण, ६. सैन्धवलवण, ८. मुलेठीचूर्ण, ९. शुद्ध तुत्थ, १० रसाञ्जनचूर्ण, ११. पुण्डरिया काष्ठचूर्ण १२. वायविडङ्गचूर्ण, १३. लोध्रचूर्ण और १४. ताम्रभस्म (समभाग) लें। इन सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को एक साथ मिलाकर पुनः वस्त्रपूतचूर्ण करें। ततः एक बड़े खरल में इन चूर्णों को डालें और वर्षा जल की भावना देकर ३-४ दिनों तक दृढ़ मर्दन करें और छोटी-छोटी वर्त्ति बना छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को चन्दन घिसने वाले साफ पत्थर पर जल से घिसकर नेत्रों में लगाने से तिमिर और पटल के रोगों का नाश होता है। इसी प्रकार स्त्री दूध के साथ इस वर्त्ति को घिसकर नेत्र में लगाने से नवीन नेत्र प्रकोप रोग नष्ट हो जाते हैं । पलाशपुष्परस के साथ घिसकर नेत्रों में लगाने से पिल्ल, पुष्प एवं नेत्र लालिमा; लोध्र क्वाथ के साथ घिसकर नेत्रों में लगाने से आसन्न तिमिररोग नष्ट हो जाता हैं तथा भेंड़ के मूत्र को साथ घिसकर नेत्रों में लगाने से कठिनाई से खुलने वाली बन्द आँख आसानी से खुलने लग जाती हैं। इस योग को महात्मा नागार्जुन ने पाटलिपुत्र (पटना) के लौहस्तम्भ पर अंकित किया था।

१०७. कोकिला वर्त्ति (च.द.)

व्योषायश्चूर्णसिन्धूत्थत्रिफलाऽञ्जनसंयुता ।
त्रिफलाजलसम्पिष्टा कोकिला तिमिरापहा ॥१७६॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. लौहभस्म, ५. सैन्धव-लवण, ६. आमला, ७. हरीतकी, ८. बहेड़ा तथा ९. रसाञ्जन (समभाग) लें। इन्हें वस्त्रगालित सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः इस चूर्ण को खरल में डालकर त्रिफलाक्वाथ के साथ १ दिन तक मर्दन करें और छोटी-छोटी वर्त्ति बना लें तथा छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को जल में घिसकर आंजने से तिमिररोग नष्ट हो जाता है। कोकिल (कोयल) जैसा काला होने के कारण इसे 'कोकिलावर्त्ति' कहा जाता है।

१०८. जनरञ्जनक अञ्जन (च.द.)

त्रीणि कटूनि करञ्जफलानि
द्वे च निशे सहसैन्धवकं च
बिल्वतरोर्वरुणस्य च मूलं
वारिचरं दशमं प्रवदन्ति ॥१७७॥
हन्ति तमस्तिमिरं पटलं च
पिच्चिटशुक्रमथार्बुदकं च
अञ्जनकं जनरञ्जनकं च
दृङ् न विनश्यति वर्षशतं च ॥१७८॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. करञ्जफलमज्जाचूर्ण, ५. हल्दीचूर्ण, ६. दारुहल्दीचूर्ण, ७. सैन्धवचूर्ण, ८. बिल्ववृक्षमूलचूर्ण, ९. वरुणमूलत्वक् तथा १०. शंखनाभिभस्म (समभाग) लें। एक साथ सभी चूर्णो को मिलाकर १०० नम्बर की महीन छननी से छान लें। पुनः कूटकर सूक्ष्म चूर्ण कर खरल में एक साथ मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस सूक्ष्म चूर्ण का प्रतिदिन नेत्रों में अञ्जन करने से नेत्रों की अंधेरी, तिमिर, नेत्रपटल, पिच्चिट, शुक्र, अर्बुद आदि नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। इस 'जनरञ्जनक' अञ्जन को प्रतिदिन २ बार वर्षो तक लगाते रहने से एक सौ वर्षो तक नेत्रज्योति बनी रहती है। अर्थात् १०० वर्षो तक नेत्र की रोशनी नष्ट नहीं होती है।

१०९. सौगताञ्जन (च.द.)

निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णाविचूर्णिताः ।
सर्वनेत्रामयान् हन्यादेतत् सौगतमञ्जनम् ॥१७९॥

१. हल्दीचूर्ण, २. दारुहल्दीचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. जटामांसीचूर्ण, ५. कूठचूर्ण तथा ६. पीपरचूर्ण (समभाग) लें। इन्हें आपस में मिलाकर १०० नम्बर की छनना से छानकर मोटे अंश को पुनः कूट-छानकर अच्छी तरह से खरल में मिला लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस सूक्ष्म चूर्ण का प्रतिदिन २ बार अञ्जन करने से सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

११०. पिप्पल्यादि वर्त्ति (च.द.)

पिप्पलीं सतगरोत्पलपत्रां
वर्त्तयेत्समधुकां सहरिद्राम् ।
एतया सततमञ्जयितव्यं
यः सुपर्णसममिच्छति चक्षुः॥१८०॥

१. पीपरचूर्ण, २. तगरचूर्ण, ३. नीलकमलपुष्प, ४. मुलेठीचूर्ण, और ५. हल्दीचूर्ण (समभाग) लें। इन चूर्णों को एक साथ मिलाकर १०० नम्बर की महीन छनना से छानकर अवशिष्ट अंश को पुनः कूटें और सूक्ष्म चूर्ण कर खरल में मर्दन करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन २ बार इस सूक्ष्म चूर्ण को शलाका से नेत्रों में अञ्जन करने से गरुड़ के समान तेज दृष्टि हो जाती है।

१११. दन्तवर्त्ति (अ.हृ.)

दन्तैर्हस्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः ।
सशङ्खमौक्तिकाम्भोधिफेनैर्मरिचपोदिकैः ।
क्षतशुक्रमपि व्याधिं दन्तवर्त्तिर्निवर्त्तयेत् ॥१८१॥

१. हाथी के दाँत की भस्म, २. सूअर के दाँत की भस्म, ३. ऊँट के दाँत की भस्म, ४. गाय के दाँत की भस्म, ५. घोड़े के दाँत की भस्म, ६. बकरे के दाँत की भस्म, ७. गदहे के दाँत की भस्म, ८. मोतीभस्म, ९. शंखनाभिभस्म और १०. समुद्रफेन चूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग तथा ११. मरिचचूर्ण $२\frac{१}{२}$ भाग लें। उपर्युक्त भस्मों तथा अन्य द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को मिलाकर एक खरल में जल के साथ मर्दन करें और यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को चन्दन घिसने वाले साफ चिकने पत्थर पर जल के साथ घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से व्रणशुक्ररोग नष्ट हो जाता है।

विमर्श—आचार्य वाग्भट और आचार्य चक्रदत्त तथा इनके टीकाकारों (अरुणदत्त, हेमाद्रि तथा आचार्य शिवदाससेन) ने कहीं पर यह स्पष्टता नहीं की है कि इन दाँतों के चूर्ण या भस्म का उपयोग इस वर्त्ति में करें। हिन्दी टीकाकारों ने भी कोई ऐसी स्पष्टता नहीं की है। अतः मैंने निर्माण के सुगमतार्थ तथा गुणवृद्धयर्थ इनकी सामूहिक भस्म बनाकर उपयोग करना बताया है।

११२. सुखावती वर्त्ति (च.द.)

कतकस्य फलं शङ्खं त्र्यूषणं सैन्धवं सिता ।
फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ॥१८२॥
कुक्कुटाण्डकपालानि वर्त्तिरेषा व्यपोहति ।
तिमिरं पटलं काचमर्मशुक्रं तथैव च ॥
कण्डूक्लेदार्बुदं हन्ति मलं चाशु सुखावती ॥१८३॥

१. निमर्लीफलचूर्ण, २. शंखनाभिभस्म, ३. सोंठचूर्ण, ४. पीपरचूर्ण, ५. मरिचचूर्ण, ६. सैन्धवलवणचूर्ण, ७. चीनीचूर्ण, ८. समुद्रफेनचूर्ण, ९. रसाञ्जनचूर्ण, १०. मधु ११. विडङ्गचूर्ण, १२. शुद्धमैनसिल और १३. कुक्कुटाण्डत्वक्चूर्ण (समभाग) लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मिलाकर जल की भावना दें और यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को चन्दन घिसने वाले साफ चिकने पत्थर पर मधु के साथ घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से तिमिर, पटलरोग, काचरोग, अर्म, शुक्र, नेत्रकण्डू, नेत्रक्लेद, अर्बुद और नेत्रमल रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

११३. चन्द्रोदया वर्त्ति-१ (च.द.)

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ।
बिभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥१८४॥
सर्वमेतत्समाहृत्य छागीक्षीरेण पेषयेत् ।
नाशयेत्तिमिरं कण्डूं पटलान्यर्बुदानि च ॥१८५॥
अधिकानि च मांसानि यच्च रात्रौ न पश्यति ।
अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन नश्यति ।
वर्त्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिप्रसादनी ॥१८६॥

१. हरीतकीचूर्ण, २. वचचूर्ण, ३. कूठचूर्ण, ४. पिप्पली चूर्ण, ५. मरिचचूर्ण, ६. बहेड़ाफलमज्जा, ७. शंखनाभिभस्म तथा ८. शुद्ध मैनसिल समभाग लें। इन्हें एक साथ मिलाकर १०० नम्बर की छनना से पुनः छानकर शेष बचे हुए अवशिष्ट भाग को पुनः चूर्ण करें तथा एक खरल में रखकर मर्दन करें और बकरी दूध की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें और यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें एवं काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वर्त्ति को चन्दन घिसने वाले साफ चिकने पत्थर पर घिसकर नेत्रों में प्रतिदिन अञ्जन करने से तिमिर, नेत्रकण्डू, नेत्रपटलरोग, नेत्रार्बुद, अधिमांस, रतौंधी तथा दो वर्षों का पुष्प (फुल्ली) इसके एक महीना के प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं। यह 'चन्द्रोदया वर्त्ति' मनुष्यों की दृष्टि को निर्मल कर देती है।

११४. चन्द्रोदया वर्त्ति-२

रसाञ्जनमथैला च कुङ्कुमं समनःशिलम्।
शङ्खनाभिः शिग्रुबीजं शर्करा चात्र सप्तमी ॥१८७॥
एषा चन्द्रोदया नाम वर्तिश्चक्षुःप्रसादनी।
हन्यात्पिच्छञ्च कण्डूं च तिमिरं चापकर्षति ॥१८८॥

१. रसाञ्जनचूर्ण, २. छोटीइलायचीचूर्ण, ३. केशरचूर्ण, ४. शुद्ध मैनसिल, ५. शंखनाभिभस्म, ६. शिग्रुबीजचूर्ण और ७. चीनीचूर्ण (समभाग) लें। इन सातों द्रव्यों को एक साथ खरल में मिलाकर जल की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। ततः यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे चन्द्रोदया वर्त्ति कहते हैं। चन्दन घिसने वाले साफ एवं चिकने पत्थर पर इस वर्त्ति को घिसकर नेत्रों अञ्जन करने से यह नेत्रों को निर्मल करती है तथा पिच्छ, नेत्रकण्डू और तिमिर रोगों का नाश करती है।

११५. हरीतक्यादि वर्त्ति (च.द.)

हरीतकी हरिद्रा च पिप्पल्यो लवणानि च।
कण्डूतिमिरजिद्वर्त्तिर्न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥१८९॥

१. हरीतकीचूर्ण, २. हल्दीचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण तथा ४. सैन्धवलवणचूर्ण (समभाग) लें। इन चारों द्रव्यों को खरल में जल के साथ वर्त्ति बनाकर सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। साफ एवं चिकने पत्थर पर घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से नेत्रकण्डू एवं तिमिर नष्ट हो जाते हैं। इस वर्त्ति के प्रयोग से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है।

११६. चन्द्रप्रभा वर्त्ति (च.द.)

अञ्जनं श्वेतमरिचं पिप्पलीं मधुयष्टिका।
बिभीतकस्य मध्यं तु शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥१९०॥
एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत्।
छायाशुष्कां कृतां वर्त्तिं नेत्रेषु च प्रयोजयेत् ॥१९१॥
अर्बुदं पटलं काचं तिमिरं रक्तराजिकाम्।
अधिमांसार्मणी चैव यच्च रात्रौ न पश्यति।
वर्त्तिश्चन्द्रप्रभा नाम जातान्ध्यमपि नाशयेत् ॥१९२॥

१. रसाञ्जनचूर्ण, २. सहिजनबीजचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. मुलेठीचूर्ण, ५. बिभीतकमज्जाचूर्ण, ६. शंखनाभिभस्म और ७. शुद्ध मैनसिल (समभाग) लें। इन चूर्णों को एक साथ मिलाकर पुनः १०० नम्बर की छननी से छान लें। खरल में इन्हें मिलाकर बकरी दूध की भावना दें और यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चन्द्रप्रभा वर्त्ति को साफ एवं चिकने पत्थर पर जल से घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से नेत्रार्बुद, नेत्रपटल के रोग, काच, तिमिर, रक्तराजिका, अधिमांस, अर्म, रतौंधी और जातान्ध्य अर्थात् तिमिर-जन्य अन्धता नष्ट हो जाती है।

११७. कुमारिका वर्त्ति (च.द.)

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः।
जातीपुष्पाणि पञ्चाशन्मरिचानि च षोडश।
एषा कुमारिका वर्त्तिर्गतं चक्षुर्निवर्त्तयेत् ॥१९३॥

१. तिल के फूल ८० नग, २. पिप्पली के कण (दाने) ६० नग, ३. चमेलीफूल ५० नग और ४. मरिच १६ नग लें। इन्हें एक खरल में एक साथ जल के साथ पीसकर यवाकृति वर्ति बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'कुमारिका वर्त्ति' कहते हैं। इस वर्त्ति को साफ एवं चिकने पत्थर पर जल से घिसकर प्रतिदिन आंजने से नष्ट हुई नेत्र की दृष्टि पुनः लौट आती है।

११८. दृष्टिप्रदा वर्त्ति (च.द.)

त्रिफला कुक्कुटाण्डत्वक् काशीशमयसो रजः।
नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनं च सरितां पतेः ॥१९४॥
आजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने।
सप्तरात्रस्थितं भूयः पिष्टं क्षीरेण वर्त्तयेत्।
एषा दृष्टिप्रदा वर्त्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ॥१९५॥

१. आमलाचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. बहेड़ाचूर्ण, ४. मुर्गे के अण्डे के छिलके, ५. शुद्ध कासीस, ६. लौहभस्म, ७. नीलकमलपुष्प, ८. वायविडङ्गचूर्ण तथा ९. समुद्रफेनचूर्ण (समभाग) लें। ताम्र के खरल में इन सूक्ष्म चूर्णों को डालें और बकरी दूध में आप्लावित कर सात दिनों तक इस खरल में यों ही रहने दें। आठवें दिन पुनः बकरी दूध के साथ मर्दन कर यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे दृष्टिप्रदा वर्ति कहते हैं। इस वर्त्ति को साफ एवं चिकने पत्थर पर घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से नष्ट हुई दृष्टि पुनः लौट आती है।

११९. चन्दनाद्य वर्त्ति (च.द.)

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः।
जलपिष्टैरियं वर्त्तिरशेषतिमिरापहा ॥१९६॥

१. लालचन्दनचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण ४. बहेड़ाचूर्ण, ५. सुपारीचूर्ण तथा ६. पलाश की गोंद (समभाम) लें। इन चूर्णों को एक साथ मिलाकर पुनः १०० नम्बर की छननी से छान लें। अवशिष्ट मोटे भाग को पुनः कूटकर छान लें और सभी को एक खरल में मिलाकर जल की भावना दें और यवाकृति वर्ति बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे जल के साथ साफ पत्थर पर घिसकर नेत्रों में अञ्जन करने से सम्पूर्ण तिमिर रोग नष्ट हो जाते हैं।

१२०. त्र्यूषणाद्य वर्त्ति (च.द.)

त्र्यूषणत्रिफलावक्रसैन्धवानि मनःशिला ।
क्लेदोपदेहकण्डूघ्नी वर्त्तिः शस्ता कफापहा ॥१९७॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. आमला चूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ६. तगरमूलचूर्ण, ८. सैन्धवचूर्ण, ९. शुद्ध मनःशिला (सम-भाग) लें। इनके सूक्ष्म चूर्णों को एक साथ खरल में मिलाकर जल के साथ मर्दन कर यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे जल से घिसकर अञ्जन करने से नेत्रक्लेद, नेत्रमल, नेत्रकण्डू तथा कफज नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

१२१. व्योषाद्य वर्त्ति

व्योषोत्पलाभयाकुष्ठताक्ष्यैर्वर्त्तिः कृता हरेत् ।
अर्बुदं पटलं काचं तिमिरार्माश्रुनिःस्रुतिम् ॥१९८॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. नीलकमल चूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. कुठचूर्ण तथा ७. रसाञ्जनचूर्ण (समभाग) लें । इन सातों द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णो को खरल में जल के साथ मर्दन करें और यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र संग्रहीत करें। इसे साफ एवं चिकने पत्थर पर जल से घिसकर प्रतिदिन नेत्रों में अंजन करने से नेत्रार्बुद, नेत्रपटल के रोग, काच, तिमिर तथा अधिक अश्रुस्राव रोग नष्ट हो जाते हैं।

१२२. नयनसुख वर्त्ति (च.द.)

एकगुणा मागधिका
द्विगुणा च हरीतकी सलिलपिष्टा ।
वर्त्तिरियं नयनसुखा
तिमिरार्मपटलकाचाश्रुहरी ॥१९९॥

पीपरचूर्ण १ भाग तथा हरीतकीचूर्ण २ भाग दोनों को एक साथ खरल में जल के साथ भावना देकर मर्दन करें और यवाकृति वर्त्ति बना लें तथा छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। साफ पत्थर पर जल के साथ घिसकर प्रतिदिन नेत्रों में अञ्जन करने से तिमिर, अर्म, पटल, काच और नेत्रों से अधिक अश्रुपातरोग नष्ट हो जाते हैं।

१२३. पञ्चशतिका वर्त्ति

नीलोत्पलपत्रशतं मुद्गशतं यवशतं च निस्तुषं ग्राह्यम् ।
मालत्याः कुसुमशतं पिप्पलीतण्डुलशतं च ॥२००॥
पञ्चशतैर्वर्त्तिर्विहिताञ्जनं कुर्यात्सर्वात्मके नयने ।
तिमिराश्रुकाचपटलानां नास्त्यपरः साधनोपायः ॥

१. नीलकमलापुष्पपत्र १०० नग, २. निस्तुषमूँग १००, ३. निस्तुषजौ १००, ४. चमेलीफूल १०० नग और ५. पिप्पलीतण्डुल १०० कण लें। इन सभी ५०० नगों (सम्मिलित द्रव्यों) को पीसकर यवाकृति वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। चन्दन घिसने वाले साफ चिकने पत्थर पर जल के साथ इस वर्ति को घिसकर प्रतिदिन अञ्जन करने से वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातज नेत्र रोगों में लाभ होता है। विशेष कर तिमिर, नेत्रपटल के रोग, काचरोग और अधिक अश्रुपात रोग नष्ट हो जाते हैं।

१२४. रसाञ्जनादि वर्त्ति

रसाञ्जनं च रजतं खर्परं सीसकं तथा ।
कर्पूरं शङ्खनाभिश्च पारदस्ताम्रकांस्यके ॥२०२॥
हंसपादीद्रवैरेकं दिनं सर्वं विमर्दयेत् ।
ततो वर्त्तिर्विधातव्या यथाविधि भिषग्वरैः।
अञ्जनाद्विलयं यान्ति सर्वेऽप्यक्षिभवा गदाः ॥२०३॥

१. रसाञ्जनचूर्ण, २. रजतभस्म, ३. खर्परभस्म, ४. नाग भस्म, ५. कर्पूर, ६. शंखनाभिभस्म, ७. रससिन्दूर, ८. ताम्र भस्म और ९. कांस्यभस्म (समभाग) लें तथा हंसपदीस्वरस यथावश्यक लें। एक खरल में सभी ९ द्रव्यों को एक साथ मर्दन करें और हंसपदीस्वरस के साथ १ एक दिन मर्दन कर तथा यवाकृति वर्त्ति कर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन इस वर्ति को जल से घिसकर नेत्रों मे अञ्जन करने से नेत्र के सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं।

१२५. नयनामृताञ्जन (रसमञ्जरी)

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ तयोर्द्विगुणमञ्जनम् ।
सूततुर्यांशकर्पूरमञ्जनं नयनामृतम् ॥२०४॥
तिमिरं पटलं काचं शुक्रमर्मार्जुनानि च ।
क्रमात्पथ्याशिनो हन्ति तथाऽन्यानपि दृग्गदाः ॥२०५॥

१. शुद्ध पारद १ भाग, २. शुद्ध नाग १ भाग, ३. शुद्ध सौवीराञ्जन ४ भाग तथा ४. भीमसेनीकर्पूर $\frac{1}{2}$ भाग लें। एक खरल में शुद्ध पारद रखें। १ लोहदर्वी में नाग डालकर आग पर पिघलावें । जब पिघल जाय तो पारद वाले खरल में पिघले नाग को डालकर जल्दी-जल्दी दोनों को मर्दन करें। १० मिनट के मर्दन के बाद पारद एवं नाग का चूर्ण हो जायेगा। ततः शुद्ध सौवीराञ्जन और कर्पूर डालकर १ से २ दिन तक मर्दन करें। तदनन्तर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस कृष्णवर्ण के श्लक्ष्णचूर्ण अञ्जन से कर्पूर की सुगन्ध आयेगी। प्रतिदिन इस नयनामृताञ्जन को शलाका से दो बार आँखों में अञ्जन करने से एवं पथ्यपूर्वक भोजन करने से तिमिर, नेत्रपटल के रोग, काच, शुक्र, अर्म और अर्जुन रोग एवं नेत्र के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

१२६. मुक्तादि महाऽञ्जन (भा प्र.)

मुक्ताकर्पूरकाचौगुरुमरिचकणासैन्धवैलाप्रवालं
शुण्ठीकक्कोलकांस्यत्रपुरजनिशिलाशङ्खनाभ्यभ्रतुत्थम् ।

दक्षाण्डत्वक् च साक्षं क्षतजमथ शिवाक्लीतकं राजवर्त्तो
जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजमस्यास्तथैव ॥
पूतीकनिम्बार्जुनभद्रमुस्तं
सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् ।
प्रत्येकमेषां खलु माषकैकं
पाषाणपिष्टं मधुना च सूक्ष्मम् ॥२०७॥
भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये
नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् ।
विधीयते शान्तिरवश्यमेव
मुक्तादिनाऽनेन महाञ्जनेन ॥२०८॥

१. मोतीपिष्टी, २. भीमसेनीकर्पूर, ३. काचलवण, ४. अगरुचूर्ण, ५. मरिचचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. सैन्धवलवण, ८. छोटीइलायची, ९. प्रवालभस्म, १०. सोंठचूर्ण, ११. शीतलचीनीचूर्ण, १२. कांस्यभस्म, १३. वङ्गभस्म, १४. हल्दीचूर्ण, १५. शुद्धमैनसिल, १६. शंखनाभिभस्म, १७. अभ्रकभस्म, १८. तुत्थशुद्ध, १९. मुर्गी के अण्डे या छिलका २०. बहेड़ाचूर्ण, २१. केशरचूर्ण, २२. हरीतकीचूर्ण, २३. मुलेठीचूर्ण, २४. राजवर्त्तभस्म, २५. चमेलीफूल, २६. तुलसी के नये फूल, २७. तुलसीबीज नया २८. करञ्जफल मज्जा, २९. निम्बबीजमज्जा, ३०. अर्जुनत्वक्चूर्ण, ३१. नागरमोथाचूर्ण, ३२. ताम्रभस्म और ३३. रसाञ्जनचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। इन सूक्ष्म चूर्णों एवं भस्मों को एक साथ खरल में मिलाकर खूब दृढ़ मर्दन करें। ततः मधु मिलाकर पुनः १ दिन तक मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। सोते समय इस 'मुक्तादि महाञ्जन' को प्रतिदिन नेत्रों में लगाने से नेत्र के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

१२७. नयनशोणाञ्जन (भा.प्र.)

कणा सलवणोषणा सहरसाञ्जना साञ्जना
सरित्पतिकफः सितासितपुनर्नवा शर्करा ।
रजन्यरुणचन्दनं मधुकतुत्थपथ्याशिला
अरिष्टदलशाबरस्फटिकशङ्खनाभीन्दवः ॥२०९॥
इमानि तु विचूर्णयेन्निविडवाससा शोधयेत्
तथाऽयसि विमर्दयेत्समधु ताम्रदण्डेन तत् ।
इदं मुनिभिरीरितं नयनशोणनामाञ्जनं
करोति तिमिरक्षयं पटलपुष्पनाशं बलात् ॥२१०॥

१. पीपरचूर्ण, २. सैन्धवलवण, ३. मरिचचूर्ण, ४. रसाञ्जनचूर्ण ५. शुद्धसौवीराञ्जन, ६. समुद्रफेन, ७. श्वेतपुनर्नवा, ८. रक्तपुनर्नवा, ९. शर्करा (चीनी), १०. हल्दीचूर्ण, ११. लालचन्दनचूर्ण, १२. मुलेठीचूर्ण, १३. शुद्ध तुतिया, १४. हरीतकीचूर्ण, १५. शुद्ध मैनसिल, १६. निम्बपत्रचूर्ण, १७. लोध्रचूर्ण, १८. शुद्ध फिटकरी, १९. शंखनाभि भस्म और २०. भीमसेनीकपूर (समभाग) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर पुनः १०० नम्बर की छननी या महीन कपड़े से छान लें। इन्हें लोहे के खरल में मिलावें और मधु से आर्द्र कर ताम्र दण्ड से १ दिन तक मर्दन करें। ततः काचपात्र में संग्रहीत करें। ऋषियों ने इसका नाम 'नयनशोणाञ्जन' कहा है। प्रतिदिन इस अञ्जन को नित्य दो बार आँखों में लगाने से तिमिर और नेत्रपटल तथा पुष्प रोगों का बलपूर्वक नाश हो जाता है।

१२८. लोहादि गुग्गुलु (योगरत्नाकर)

अयः सयष्टित्रिफलाकणानां
चूर्णानि तुल्यानि पुरेण नित्यम् ।
सर्पिर्मधुभ्यां सह भक्षितानि
शुक्लानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रम् ॥२११॥

१. लौहभस्म, २. मुलेठीचूर्ण, ३. आमलाचूर्ण, ४. हरीतकीचूर्ण, ५. बहेड़ाचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग और ७. शुद्ध गुग्गुलु ६ भाग लें। इन सभी चूर्ण द्रव्यों को मिलाकर पुनः १०० नम्बर की छननी से छानकर अवशिष्ट द्रव्यों को पृथक् कर पुनः कूटकर छान लें। अब शुद्ध गुग्गुलु को गरम पानी में पिघलाकर उसमें उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर इमामदस्ते से खूब कूटकर ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १ से २ वटी की मात्रा में मधु और घृत के साथ सेवन करने से कुछ दिनों में सभी प्रकार के शुक्लगत रोग नष्ट हो जाते हैं।

१२९. नेत्राशनि रस (र.सा.सं.)

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं माक्षिकञ्च रसाञ्जनम् ।
पातनायन्त्रसंशुद्धं गन्धकं नवनीतकम् ॥२१२॥
पलप्रमाणं प्रत्येकं गृह्णीयाच्च विधानवित् ।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं वैद्यैः कुशलकर्मभिः ॥२१३॥
ततस्तु भावना कार्या त्रिफलाभृङ्गराजकैः ।
ततः प्रक्षिप्य चूर्णञ्च पिप्पलीमूलयष्टिका ॥२१४॥
एला पुनर्नवा दारु पाठा भृङ्गशटी वचा ।
उत्पलं चन्दनं चैव श्लक्ष्णचूर्णं प्रदापयेत् ॥२१५॥
माषमेकं प्रदातव्यं घृतमाक्षिकमर्दितम् ।
मर्दनं लौहदण्डेन पात्रे लौहमये दृढे ॥२१६॥
उष्णोदकं चानुपानं प्रयोक्तव्यं सुखावहम् ।
यावतो नेत्ररोगांश्च पानादेव विनाशयेत् ॥२१७॥
सरक्ते रक्तपित्ते च रक्ते चक्षुःस्रुतेऽपि च ।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ॥२१८॥
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पिष्टे चैव चिरन्तने ।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ।
युञ्जीत तान् हिन्त्येव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥२१९॥

१. अभ्रकभस्म, २. ताम्रभस्म, ३. लौहभस्म, ४. स्वर्णमाक्षिकभस्म, ५. रसाञ्जनचूर्ण तथा ६. शुद्धगन्धक—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें।

भावना—त्रिफलाक्वाथ और भृङ्गराजस्वरस की भावना दें।

१. पीपरमूलचूर्ण, २. मुलेठीचूर्ण, ३. छोटीइलायचीचूर्ण, ४. पुनर्नवामूलचूर्ण, ५. देवदारुचूर्ण, ७. पाठाचूर्ण, ८. भृङ्गराजचूर्ण, ९. कचूरचूर्ण, १०. वचचूर्ण, ११. नीलकमलचूर्ण तथा १२. रक्तचन्दनचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ ग्राम लें। एक साफ पत्थर के खरल में अभ्रकभस्म से शुद्ध गन्धक तक के ६ द्रव्यों (प्रत्येक ५० ग्राम) को लेकर मर्दन करें। ततः त्रिफलाक्वाथ और भृङ्गराजस्वरस की पृथक्-पृथक् ७-७ भावना दें। ततः उसमें पीपरचूर्ण से रक्तचन्दनचूर्ण तक—प्रत्येक १-१ ग्राम मिलाकर मधु एवं घृत के साथ लौहखरल में लौह दण्ड से मर्दन करें। सूखने पर काचपात्र में संग्रह करें। इसे 'नेत्राशनि रस' कहते हैं। इसे १ ग्राम उष्णोदकानुपान से सेवन करना सुखकारक होता है। प्रतिदिन २ बार इसका सेवन करने से समस्त नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। नेत्र की लालिमा, रक्तपित्त, लाल नेत्रस्राव, नक्तान्ध्य, तिमिर, काच, नीलिका, पटलरोग, नेत्रार्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, पुराना पिष्ट रोग तथा वातज, पित्तज एवं कफज नेत्ररोग नाशक हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम तक। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—श्याववर्ण। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के नेत्र रोग में।

१३०. तिमिरहर लौह (र.सा.सं.)

त्रिफलापद्मयष्ट्याह्वयुक्तं सारं निषेवितम्।
लौहं तिमिरकं हन्ति सुधांशुस्तिमिरं यथा ॥२२०॥

१. आमलाचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. बहेड़ाचूर्ण ४. नीलकमलचूर्ण, ५. मुलेठीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम लें और ६. लौहभस्म ६० ग्राम लें। इन्हें एक खरल में ६ घण्टे तक अच्छी तरह से मिलाकर मर्दन करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'तिमिरहर लौह' कहते हैं। प्रतिदिन ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में इसे मधु के साथ सेवन करने से तिमिररोग उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे चन्द्रमा अन्धकार का नाश करता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—लौहभस्माभ। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—नेत्ररोगतिमिरहर।

१३१. नयनामृत लौह (र.सा.सं.)

त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी शटी रास्ना महौषधम्।
द्राक्षा नीलोत्पलं चैव काकोली मधुयष्टिका ॥२२१॥
वाट्यालं केशराजञ्च कण्टकारीद्वयं पलम्।
लौहाभ्रयोः पलं दत्त्वा वक्ष्यमाणेन भावयेत् ॥२२२॥
त्रिफलायाश्च तोयेन भृङ्गराजरसेन वा।
भावयित्वा वटी कार्या बदरास्थिनिभा शुभा ॥
यावतो नेत्ररोगांश्च निहन्यान्नात्र संशयः ॥२२३॥

१. सोंठचूर्ण, २. पीपरचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. आमलाचूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बहेड़ाचूर्ण, ६. काकड़ासिंगीचूर्ण, कचूरचूर्ण, ९. रास्नाचूर्ण, १० सोंठचूर्ण, ११. द्राक्षाकल्क, १२ नीलकमलचूर्ण, १३. काकोलीचूर्ण, १४. मुलेठीचूर्ण, १५. बलाचूर्ण, १६. केशराजचूर्ण, १७. कण्टकारीचूर्ण, १८. बृहतीचूर्ण—ये सभी द्रव्य प्रत्येक ९३ ग्राम और १९. लौहभस्म तथा २०. अभ्रकभस्म—ये दोनों ४६-४६ ग्राम लें। इन सभी चूर्णों एवं भस्मों को एक साथ खरल में मिलावें तथा त्रिफलाक्वाथ या भृङ्गराजस्वरस की भावना देकर ४-४ रत्ती (५०० मि.ली.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'नयनामृत लौह' को प्रतिदिन प्रातः-सायं जल के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कपोताभ। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—नेत्र रोग में।

१३२. मधुकादि लौह

मधुकं त्रिफलाचूर्णं लौहचूर्णं तथैव च।
भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यामक्षिरोगप्रशान्तये ॥२२४॥

१. मुलेठीचूर्ण, २. आमलाचूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण, ४. बहेड़ाचूर्ण और ५. लौहभस्म (समभाग) लें। इन पाँचों द्रव्यों को एक खरल में एक साथ मिलाकर ३ घण्टे तक मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। १ ग्राम की मात्रा में इस औषधि को १ ग्राम मधु और २ ग्राम घृत के साथ मिश्रित कर प्रतिदिन २ बार चाटने से सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—यह सप्तामृत लौह ही है। वे ही पाँचों द्रव्य इसमें भी हैं तथा अनुपान भी वही है। इसे १ ग्राम मात्रा में दीजिए।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—मधु एवं घृत। **गन्ध**—निर्गन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—नेत्ररोग में।

१३३. सप्तामृत लौह

त्रिफलारज आयसं च चूर्णं
सह यष्टीमधुकं समांशयुक्तम्।
मधुना हविषा सदा दिनान्ते
पुरुषो निष्परिहारमाददीत ॥२२५॥
तिमिरक्षतरक्तराजिकण्डू-
क्षणदान्ध्यार्बुदतोददाहशूलान्।

पटलं सह काचपिल्लकं
शमयत्येव निषेवितः प्रयोगः ॥२२६॥
न च केवलमेव लोचनानां
विहितो रोगनिबर्हणाय पुंसाम्।
दशनश्रवणोर्ध्वकण्ठजानां
प्रशमे हेतुरयं महागदानाम् ॥२२७॥
पलितानि विनाशयेत्तथाऽग्निं
चिरनष्टं कुरुते रविप्रचण्डम्।
दयिताभुजपञ्जरोपगूढः
स्फुटचन्द्राभरणासु यामिनीषु ॥२२८॥
सुरतानि चिरं निषेवतेऽसौ
पुरुषो योगवरं निषेवमाणः।
मुखेन नीलोत्पलचारुगन्धिना
शिरोरुहैरञ्जनमेचकप्रभैः ।
भवेच्च गृध्रस्य समानलोचनः
सुखैर्नरो वर्षशतञ्च जीवति ॥२२९॥

१. आमलाचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. बहेड़ाचूर्ण, ४. मुलेठीचूर्ण तथा ५. लौहभस्म—प्रत्येक द्रव्य १०० ग्राम लें। इन पाँचो द्रव्यों को एक साथ खरल में मिलाकर ३ से ६ घण्टे तक मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। ततः आवश्यकतानुसार १ से १$\frac{1}{2}$ ग्राम की मात्रा में इस औषधि को लेकर १ ग्राम मधु तथा २ ग्राम घृत मिलाकर चाटने से तिमिर, क्षत, रक्तराजिका, कण्डू, रात्र्यन्ध्य, नेत्रार्बुद, नेत्रतोद, नेत्रदाह, नेत्रशूल, उदर-शूल, नेत्रपटलगतरोग, काच, पिल्ल आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह 'सप्तामृत लौह' केवल मनुष्यों के नेत्र रोगों को ही नष्ट करने के लिए कहा गया हो, ऐसी बात नहीं है; अपितु दन्तरोग, कर्णरोग, ऊर्ध्वजत्रुगतरोग, कण्ठरोग तथा अन्य महारोगों एवं पलित रोग का भी नाश करता है। चिरकाल से नष्ट हुई पाचकाग्नि को मध्याह्नकालीन सूर्य के प्रखर तेज के सदृश प्रदीप्त करता है। इसके सेवन से मनुष्य शुक्लपक्षीय रात्रि की शीतल चाँदनी में कामिनी स्त्रियों को बाहुपाश में आबद्ध कर बहुत देर तक सम्भोग करता है। इस लौह के सेवन से मुख नीलकमल जैसा सुगन्धित हो जाता है। केश अञ्जन के समान काले हो जाते हैं। व्यक्ति गृध्र जैसी सुदीर्घ एवं तीक्ष्ण दृष्टि से युक्त हो जाता हैं तथा अनेक प्रकार के शांरीरिक एवं मानसिक सुखों से परिपूर्ण हो जाता है।

मात्रा—१ से १$\frac{1}{2}$ ग्राम तक। **अनुपान**—मधु एवं घृत मिलाकर। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कषाय-मधुर। **उपयोग**—सभी प्रकार के नेत्ररोगों, उदरशूल एवं पाण्डु रोग में।

१३४. माक्षिकादि वटी

माक्षिकं तोलकमितं तदर्द्धं गन्धकं रसम्।
तथाऽभ्रञ्च समादाय मुक्तास्वर्णौ च पादिकौ ॥२३०॥
काकमाचीपत्ररसैस्त्रिधा सम्भाव्य यत्नतः।
रक्तिद्वयमिता कार्या माक्षिकादिवटी शुभा ॥२३१॥
वेष्टिता पद्मपत्रेण धान्यराशौ निधापिता।
यथायोगानुपानेन सेविता संहरेन्नृणाम्।
नेत्ररोगांश्च निखिलान् नानोपद्रवसंयुतान् ॥२३२॥

१, स्वर्णमाक्षिकभस्म १२ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ६ ग्राम ३. शुद्ध पारद ६ ग्राम, ४. अभ्रकभस्म ६ ग्राम, ५. मोती पिष्टी ३ ग्राम तथा स्वर्णभस्म ३ ग्राम लें। भावना—काकमाचीस्वरस की ३ बार।

सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उसमें अन्य सभी द्रव्यों की भस्मों को मिलाकर मर्दन करें और काकमाची (मकोय) के पत्र या पञ्चाङ्गस्वरस की ३ भावना देकर ३ दिनों तक मर्दन करें तथा २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें। ततः इन वटियों को कमलपत्र में लपेटकर धानराशि में १ सप्ताह तक रख दें। पुनः काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'माक्षिकादि वटी' कहते हैं। रोगानुसार अनुपान से (प्रायः मधु या घृत से) प्रतिदिन १-१ वटी सेवन करने से उपद्रवों के साथ सभी नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा। **अनुपान**—रोगानुसार (सामान्यतः मधु एवं घृत से)। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ। **स्वाद**—कषाय। **उपयोग**—सोपद्रव सभी नेत्र रोगों में।

१३५. पटोलादि घृत (च.द.)

पटोलं कटुकां दार्वीं निम्बं वासां फलत्रिकम्।
दुरालभां पर्पटकं त्रायन्तीं च पलोन्मिताम् ॥२३३॥
प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि।
पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥२३४॥
कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः ।
सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्रयोर्हितम् ॥२३५॥
घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम् ।
कामलाकुष्ठवीसर्पगण्डमालापहं परम् ॥२३६॥

गोघृत ७५० ग्राम लें।

क्वाथ—१. पटोलपत्र, २. कटुकी, ३. दारुहल्दी, ४. निम्बत्वक्, ५. वासा, ६. आमला, ७. हरीतकी, ८. बहेड़ा, ९. जवासा, १०. पित्तपापड़ा, ११. त्रायमाण—प्रत्येक ४६ ग्राम और १२. आमला ७५० ग्राम तथा क्वाथार्थ जल १२$\frac{1}{2}$ लीटर लें।

कल्क—१. चिरायता, २. कुटजत्वक्, ३. नागरमोथा, ४. मुलेठी, ५. लालचन्दन तथा ६. पीपर—प्रत्येक द्रव्य ३०-३० ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः पटोलपत्र से आमला तक के सभी ११ द्रव्यों को यवकुट कर १२$\frac{1}{2}$ लीटर जल में क्वाथ करें। जब चौथाई शेष रहे तो छानकर मूर्च्छितघृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। इसी बीच कल्क के ६ द्रव्यों को कूटकर सिल पर जल से पिसें और कल्क बनने पर घृतपात्र में मिलाकर पकावें। क्वाथ के सूखने पर ३ लीटर जल मिलाकर कल्क का सम्यक् पाक करें। पाकपरीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ५ से १० ग्राम की मात्रा में गरम दूध या गरम पानी में मिलाकर सेवन करें अथवा इस घृत का नेत्रों में प्रतिदिन अञ्जन करने से चक्षुष्य है। यह सव्रण नेत्रशुक्र एवं अव्रणशुक्र (फुल्ली) के लिए हितकर है। साथ ही इसके प्रयोग से नाशारोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, वर्त्मगत नेत्ररोग, त्वग्-रोग, मुखरोग, व्रण, कामला, कुष्ठ, विसर्प और गण्डमाला रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५ से १० ग्राम या १-२ बूंद नेत्र में आश्च्योतन। **अनुपान**—गरम जल, गरम दूध या नेत्रपूरण। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के नेत्र रोगों में।

१३६. शशक घृत (च.द.)

शशकस्य शिरःकल्के शेषाङ्गक्वथिते जले।
घृतस्य कुडवं पक्वं पूरणं चाजकापहम् ॥२३७॥

गोघृत १ कुडव (१८७ ग्राम) लें।

कल्कार्थ—खरगोश के शिर का मांस ४६ ग्राम।

क्वाथार्थ—खरगोश के शिर के अतिरिक्त अङ्गों का मांस ७५० ग्राम और जल १ आढक (३ लीटर) लें।

पहले घृत का मूर्च्छन करें। ततः खरगोश के शिर का मांस पीसकर कल्क बना लें। इसे मूर्च्छितघृत में मिलावें। तदनन्तर खरगोश के शेष अङ्गों के मांस के छोटे-छोटे टुकड़े कर ३ लीटर जल में क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें तथा इस मांसरस को मूर्च्छितघृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। मांसरस सूखने पर ७५० मि.लीं. जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को प्रतिदिन नेत्रों में पूरण करने से अजकाजात नेत्र रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१ से २ बूंद (नेत्रपूरण)। **अनुपान**—कोई अनुपान नहीं केवल बाल प्रयोग। **गन्ध**—घृत एवं मांसगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—घृतवत् मधुर। **उपयोग**—अजकाजात नामक नेत्ररोग में।

१३७. शशकाद्य घृत (च.द.)

शशकस्य कषाये च सर्पिषः कुडवं पचेत्।
यष्टीप्रपौण्डरीकस्य कल्केन पयसा समम् ॥२३८॥
छागल्याः पूरणाच्छुक्रक्षतपाकात्ययाजकाः।
हन्ति भ्रूशङ्खशूलं च दाहरोगानशेषतः ॥२३९॥

गोघृत १ कुडव (१८७ ग्राम) तथा खरगोश का मांस ७५० ग्राम लें।

कल्क—यष्टिमधु २३ ग्राम, पुण्डरियाकाष्ठ २३ ग्राम और बकरी का दूध ७५० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। खरगोश मांस को चतुर्गुण जल में क्वाथ करें, चौथाई शेष रहने पर छानकर मांसरस को मूर्च्छितघृत में मिलावें। ततः यष्टिमधु एवं पुण्डरियाकाष्ठ का चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनावें तथा मूर्च्छितघृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब मांसरस सूख जाय तो उसमें बकरी दूध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब दूध सूख जाय तो कल्क के सम्यक् पाक के लिए ७५० मि.ली. जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करे। इस घृत का नेत्रों में प्रतिदिन १ से २ बूँद पूरण करने से सव्रण एवं अव्रणशुक्र, नेत्रक्षत, अक्षिपाकात्यय, अजकाजात, भ्रूशूल, शंखप्रदेश का शूल और नेत्रदाहरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से २ बूँद नेत्रपूरण। **अनुपान**—केवल बाह्य प्रयोग। **गन्ध**—घृत एवं मांसगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—सव्रण-अव्रणशुक्र, अजकाजात एवं अक्षिपाकात्यय में।

१३८. त्रिफलादि घृत (च.द.)

त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम्।
तिमिराण्यचिराद्धन्ति पीतमेतन्निशामुखे ॥२४०॥

गोघृत १ किलो, गोदुग्ध ४ लीटर, त्रिफलाकल्क २५० ग्राम और त्रिफलाक्वाथ ४ लीटर लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः त्रिफलाचूर्ण को जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें और त्रिफला यवकुट को १६ लीटर जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर ४ लीटर क्वाथ कपड़ा से छान लें। अब इस क्वाथ-कल्क को मूर्च्छितघृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर गोदुग्ध देकर पुनः मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर दूध एवं कल्क के सम्यक् पाकार्थ ४ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर इस त्रिफलादिघृत को सायं काल ६ से १२ ग्राम की

मात्रा में गरम गोदुग्ध या गरम जल में मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से शीघ्र ही तिमिररोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम पानी से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—कषायाम्ल। **उपयोग**—तिमिर रोग में।

१३९. त्रिफलादि घृत (बृहत्) (च.द.)

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥२४१॥
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥२४२॥
कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम्।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥२४३॥
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत्।
ऊर्ध्वपानमधः पानं मध्ये पानं च शस्यते ॥२४४॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकर्षति।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ॥२४५॥
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे च दारुणे।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ॥२४६॥
अदृष्टिं मन्ददृष्टिं च कफवातप्रदूषिताम्।
स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक् ॥२४७॥
गृद्धदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम्।
सर्वनेत्रामयं हन्यात् त्रिफलाद्यं महद् घृतम् ॥२४८॥

१. गोघृत ७५० ग्राम, २. त्रिफलाक्वाथ ७५० मि.ली. ३. भृङ्गराजस्वरस ७५० मि.ली., ४. वासास्वरस ७५० मि.ली.. ५. गुडूचीक्वाथ ७५० मि.ली., ६. शतावरीक्वाथ ७५० मि.ली., ७. आमलाक्वाथ ७५० मि.ली., ८. बकरीदूध ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. पीपर, २. चीनी, ३. द्राक्षा, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. नीलकमल, ८. मुलेठी, ९. क्षीरकाकोली, १०. गम्भारीत्वक् और ११. कण्टकारी—प्रत्येक द्रव्य १७ ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः कल्क वर्ग के सभी ११ द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण करें और जल से साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छित घृत में कल्क और त्रिफलाक्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। त्रिफलाक्वाथ सूखने पर क्रमशः भृंगराजस्वरस, वासास्वरस, गुडूचीक्वाथ, शतावरीक्वाथ एवं आमलाक्वाथ से पृथक्-पृथक् पाक करें। इस प्रकार छः क्वाथों को पकाने के बाद अजादुग्ध मिलाकर पाक करें। दूध सूख जाने के बाद दूध कल्क के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल मिलाकर पुनः घृत का पाक करें। द्रवांश सूखने के बाद पाक परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें तथा कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर घृत को काचपात्र में संग्रहीत करें।

इस 'महात्रिफलादि घृत' को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में सेवन करने से सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। विशेषकर रात्र्यन्ध्य, तिमिर, काच, नीलिका, अर्बुद, नेत्रपटल के रोग, अभिष्यन्द, अधिमन्थ तथा भयंकर पक्ष्मकोप नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज नेत्ररोगों में नहीं दिखाई देना या कम दिखाई देना, वात-कफज प्रदूषित नेत्ररोग, नेत्र स्राव, पित्त-वातज नेत्रकण्डू नष्ट हो जाते हैं तथा कम दिखने वाले गिद्ध की तरह तेज दृष्ट से युक्त हो जाते हैं। इस घृत का लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से रोगी के बल, वर्ण एवं अग्नि की वृद्धि हो जाती है। इसके प्रयोग से सभी प्रकार नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या गरम पानी से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ किञ्चित् हरिताभ। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—सभी प्रकार के नेत्र रोगों में।

१४०. त्रिफलादि घृत (च.द.)

फलत्रिकाभीरुकषायसिद्धं
कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम्।
सर्पिः समं क्षौद्रचतुर्थभागं
हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम् ॥२४९॥

१. गोघृत १ किलो, २. त्रिफलाक्वाथ २ लीटर, ३. मधु २५० ग्राम, ४. शतावरीक्वाथ २ लीटर और ५. मुलेठीकल्क २५० ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः त्रिफलाक्वाथ एवं मुलेठी कल्क को मूर्च्छितघृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। त्रिफलाक्वाथ सूखने के बाद शतावरीक्वाथ मिलाकर पुनः मन्दाग्नि से पाक करें। शतावरी क्वाथ सूखने के बाद परीक्षोपरान्त घृत पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर उसमें २५० ग्राम मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे त्रिफलादि घृत कहते हैं। ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध या गरम जल में मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से बढ़ा हुआ त्रिदोषज तिमिर रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—प्रवृद्ध त्रिदोषज तिमिर में।

१४१. त्रैफल घृत (च.द.)

त्रिफला त्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी।
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥२५०॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम्।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥२५१॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजाऽपहम्।
तिमिरं दोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम् ॥२५२॥

विसर्प प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च।
खालित्यं पलितं चैव केशानां पतनं तथा ॥२५३॥
विषमज्वरमर्माणि शुक्रं चाशु व्यपोहति।
अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ॥२५४॥
तान् सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
न चैतस्मात्परं किञ्चिदृषिभिः काश्यपादिभिः।
दृष्टिप्रसादनं दृष्टं यथा स्यात्त्रैफलं घृतम् ॥२५५॥

गोघृत ७५० ग्राम, त्रिफलाक्वाथ तीन गुना २२५० मि.ली., गोदुग्ध ७५० मि.ली. तथा मीठा जल ३ लीटर लें।

कल्क—१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. सोंठ, ५. पीपर, ६. मरिच, ७. द्राक्षा, ८. मुलेठी, ९. कटुकी, १०. पुण्डरियाकाठ, ११. छोटी इलायची, १२. वायविडङ्ग, १३. नागकेशर, १४. नीलकमल, १५. कृष्णअनन्तमूल, १६. श्वेतअनन्तमूल, १७. लालचन्दन, १८. श्वेतचन्दन, १९. हल्दी और २० दारुहल्दी (प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम) लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः आमला से दारुहल्दी तक के सभी २० द्रव्यों का चूर्ण कर सिल पर जल से पीसकर कल्क बना लें। ततः मूर्च्छितघृत में यह कल्क और त्रिफला क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पकावें। ततः गोदुग्ध मिलाकर पकावें। गोदुग्ध सूखने पर ३ लीटर मीठा जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से घृत को छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'त्रिफलादि घृत' कहते हैं। ६ से १२ ग्राम की मात्रा में इस घृत को गरम दूध या गरम जल में मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं। विशेषकर तिमिर, नेत्रस्राव, कामला, काच, अर्बुद, विसर्प, प्रदर, कण्डू, रक्तदुष्टि, शोथ, खालित्य, पलित, केशों का झड़ना, विषमज्वर, सभी प्रकार के अर्म, सव्रणशुक्र, अव्रण-शुक्र शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे जो वर्त्मगत रोग हैं, वे सभी उसी प्रकार शीघ्र नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। काश्यपादि अनेक ऋषियों की ऐसी मान्यता है कि इस त्रैफल घृत से बढ़कर कोई अन्य नेत्र रोग की औषधि नहीं है। यह त्रैफल घृत सभी नेत्र रोगों में दृष्टिप्रसादनार्थ श्रेष्ठ है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—तिक्त-कषाय। **उपयोग**—सभी प्रकार के नेत्र रोगों में हितकर है।

१४२. नृपतिवल्लभ तैल/घृत (च.द.)

जीवकर्षभकौ मेदे द्राक्षांऽशुमती निदिग्धिका बृहती।
मधुकं बला विडङ्गं मञ्जिष्ठा शर्करा रास्ना ॥२५६॥
नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवा लवणम्।
पिप्पल्यः सर्वेषां भागैरक्षांशिकैः पिष्टैः ॥२५७॥
तैलं वा यदि सर्पिर्दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणं पक्वम्।
आत्रेयनिर्मितमिदं तैलं नृपवल्लभं सिद्धम् ॥२५८॥
तिमिरं पटलं काचं नक्तान्ध्यं चार्बुदं दिवान्ध्यं च।
श्वेतं च लिङ्गनाशं च नाशयति नीलिकाव्यङ्गम्॥
मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितं चाकालजं हनुस्तम्भम्।
श्वासं कासं शोषं हिक्कां स्तम्भं तथाऽत्ययं नेत्रे॥
मुखजैह्म्यमर्द्धभेदं रोगं बाहुग्रहं शिरःस्तम्भम्।
रोगानथोर्ध्वजत्रोः सर्वानचिरेण नाशयति ॥२६१॥
पक्तव्यं कुडवं तैलं नस्यार्थं नृपवल्लभे।
अक्षांशैः शाणिकैः कल्कैरन्यैर्भृङ्गादितैलवत् ॥२६२॥

तिलतैल १ लीटर अथवा—गोघृत १ किलो और गोदुग्ध ४ लीटर लें।

कल्क—१. जीवक, २. ऋषभक, ३. मेदा, ४. महामेदा, ५. द्राक्षा, ६. शालपर्णी, ७. कण्टकारी, ८. बृहती, ९. मुलेठी, १०. बला, ११. वायविडङ्ग, १२. मंजीठ, १३. शर्करा, १४. रास्ना, १५. नीलकमल, १६. गोखरु १७. पुण्डरियाकाठ, १८ पुनर्नवामूल, १९. सैन्धवलवण और २०. पीपर—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें।

आप नृपतिवल्लभ तैल अथवा नृपतिवल्लभ घृत जो भी बनाना चाहते हों उसी हिसाब से तैल या घृत का संग्रह करें। तैल या घृत का मूर्च्छनविधि से मूर्च्छित करें। ततः जीवक से पीपर तक के सभी २० द्रव्यों का चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीस कर कल्क बना कर मूर्च्छिततैल या घृत में मिलावें तथा गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब दूध सूख जाय तो दूध के सम्यक् पाक के लिए ४ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल या घृत पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें।

महर्षि आत्रेय द्वारा निर्मित इस सिद्ध नृपतिवल्लभ तैल या घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध या गरम जल में मिलाकर सेवन करने से तिमिररोग, नेत्रपटल के रोग, काचरोग, रात्र्यन्ध्य, नेत्रार्बुद, दिवान्ध्य, नेत्रश्वेत, लिङ्गनाशरोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त नीलिका, व्यङ्ग, मुखनासा-दौर्गन्ध्य, अकालपलित, हनुस्तम्भ, श्वास, कास, शोष, हिक्का, मन्यास्तम्भ, अक्षिपाकात्यय, शिरःस्तम्भ, मुख-जिह्वा-(अर्दित) रोग, अर्धावभेदक, बाहुस्तम्भ तथा जत्रुकास्थि से ऊपर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। इस तैल या घृत को सिद्ध करने के निम्न दो मत हैं—

(१) तैल १ कुडव, दूध ४ कुडव तथा कल्क के प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेना चाहिए। तथा

(२) अन्य मतवाले भृङ्गादि तैल की तरह कल्क १-१ कर्ष ऊपरि लिखित जैसा निर्मित करते हैं।

इस तैल का प्रयोग नस्य रूप में करना चाहिए तथा घृत का प्रयोग ६ से १२ ग्राम की मात्रा में पानार्थ गरम दूध या गरम जल से करना चाहिए। घृत का प्रयोग पैत्तिक तिमिर में करना चाहिए।

मात्रा—नस्यार्थ तैल ३-६ बूँद तक तथा पानार्थ ६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल से। **गन्ध**—घृतगन्धी/तैल गन्धी। **वर्ण**—तैल का रक्ताभ तथा घृत का पीताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—सभी प्रकार के नेत्र रोगों में।

१४३. भृङ्गराज तैल (च.द.)

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च।
तैलस्य कुडवं पक्वं सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत्।
नस्याद्वलीपलितघ्नं मासेनैतन्न संशयः ॥२६३॥

तिलतैल १८७ मि.ली. भृङ्गराजस्वरस ७५० मि.ली. और यष्टिमधुचूर्ण ४६ ग्राम लें। तिलतैल का मूर्च्छन करें। मूर्च्छित तैल में भृङ्गराजस्वरस मिला दें और यष्टिमधु का कल्क बनाकर मूर्च्छिततैल में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल के नस्य एवं शिरोऽभ्यङ्ग से दृष्टि बढ़ती है। १ महीने तक नस्य रूप में ३-६ बूँद तक प्रयोग एवं शिरोऽभ्यङ्ग से करने से वलित-पलित रोग नष्ट हो जाते हैं।

वर्ण—हरित। **गन्ध**—तैलगन्धी। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—दृष्टिप्रद, वली-पलित में।

१४४. अभिजित तैल (च.द.)

तैलस्य पचेत् कुडवं मधुकस्य पलेन कल्कपिष्टेन।
आमलकरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थेन संयुक्तम् ॥२६४॥
कृत्वाऽभिजितं नाम्ना तैलं तिमिरं हन्यान्निमिप्रोक्तम्।
विमलां कुरुते दृष्टिं नष्टामप्यानयेत्तद्वत् ॥२६५॥

तिलतैल १८७ मि.ली., मुलेठीचूर्ण कल्क ४६ ग्राम, आमलास्वरस या क्वाथ ७५० मि.ली. और गोदुग्ध ७५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः मुलेठीचूर्ण को जल से सिल पर पीसकर कल्क बना लें और आमला का स्वरस या क्वाथ निर्मित कर दोनों कल्क एवं क्वाथ को मूर्च्छित-तैल में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर गोदुग्ध मिलाकर पुनः पाक करें। दूध सूखने पर दूध और कल्क के सम्यक् पाकार्थ ७५० मि.ली. मीठा जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाक की परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। महर्षि निमि के द्वारा कथित इस 'अभिजित तैल' के नस्य एवं शिरोऽभ्यङ्गादि के रूप में प्रयोग करने से तिमिर नष्ट हो जाता है, दृष्टि विमल हो जाती है, नष्ट हुई दृष्टि भी पुनः प्राप्त हो जाती है।

मात्रा—नस्यार्थ ३-६ बूँद एवं शिरोऽभ्यङ्ग रूप में। **गन्ध**—तैलगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कषायाम्ल। **उपयोग**—तिमिर नाशनार्थ।

१४५. गोमय तैल (च.द.)

गवां शकृत्क्वाथविपक्वमुत्तमं
हितं च तैलं तिमिरेषु नस्ततः।
घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके
तथाऽणुतैलं पवनासृगुत्थयोः ॥२६६॥

तिलतैल १८७ मि.ली., गोबर ५०० ग्राम तथा जल ४ लीटर लें। तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः गोबर में ४ लीटर जल मिलाकर क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर कपड़ा से छान लें। अब मूर्च्छिततैल में गोबर रस मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब जलीयांश नहीं रहे तो कपड़ा से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का नस्य रूप में प्रयोग करने से तिमिर रोग नष्ट हो जाता है।

आचार्य डल्हण ने कहा है—'सामान्यस्नेहपाकपरिभाषया गोशकृत्क्वाथेन तैलमकल्कं पक्तव्यमिति' (सु.उ. १७।३२)। पित्तज तिमिर में केवल सामान्य गोघृत का नस्य लेना चाहिए तथा वातज एवं रक्तज नेत्र तिमिर में वातरोगोक्त अणुतैल का नस्य लेना हितकर है।

मात्रा—नस्यार्थ २ से ६ बूँद। **गन्ध**—गोमय गन्धी। **वर्ण**—हरिताभ। **उपयोग**—तिमिर में।

नेत्ररोग में पथ्य (यो.रत्ना.)

आश्च्योतनं लङ्घनमञ्जनं च
स्वेदो विरेकः प्रतिसारणं च।
प्रपूरणं नस्यमसृग्विमोक्षः
शस्त्रक्रियालेपनभोज्यपानम् ॥२६७॥
सेको मनोवृत्तिरथाङ्घ्रिपूजा
मुद्गा यवा लोहितशालयश्च।
लावो मयूरो वनकुक्कुटश्च
कूर्मः कुलिङ्गोऽथ कपिञ्जलश्च ॥२६८॥
कौम्भं हविर्वन्यकुलत्थयूषः
पेयाविलेपीलशुनं पटोलम्।

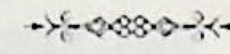
वार्ताकुकर्कोटककारवेल्लं
नवीनमोचं नवमूलकञ्च ॥२६९॥
पुनर्नवामार्कवकाकमाची-
पत्तूरशाकानि कुमारिका च ।
द्राक्षा च कुस्तुम्बुरुमाणिमन्थ-
लोध्रं वराक्षौद्रमुपानहौ च ॥२७०॥
नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं
तिक्तानि सर्वाणि लघूनि चापि ।
विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं
यथामलं दोषचयं निहन्ति ॥२७१॥

नेत्ररोगों में—आश्च्योतन, लंघन, अञ्जन, स्वेदन, विरेचन, प्रतिसारण, नेत्रपूरण, नस्य, रक्तमोक्षण, शस्त्रक्रिया, लेपन, घृतभोजन, घृतपान, सेचन, मनःशान्ति, गुरुपादपूजा करनी चाहिए । मूँग, जौ, लालशाली चावल, लावक पक्षी, मयूरमांस, जंगली मुर्गा, कच्छपमांस, चटक (गौरैया पक्षी), चातक या पपीहा पक्षी—इन पक्षियों के मांस या मांस सेवन करना चाहिए । सौ वर्ष पुराना घृत, कुलत्थयूष, पेया, विलेपी, लसुन, पटोलफलशाक, बैंगन, खेखसा (कर्कोटक), करैलाफल, कच्चा केला, कोमलमूली, पुनर्नवापत्रशाक, भृङ्गराज, काकमाची, पत्तूर (शालिञ्च) शाक, घृतकुमारी, द्राक्षाफल, धनियाँ, सैन्धव, लोध्रत्वक्, त्रिफला, मधु, जूता, स्त्रीदुग्ध से नेत्रपूरण, रक्त-श्वेत चन्दन, कर्पूर—इनका सेवन एवं धारण नेत्र रोगियों के लिए हितकारक है । सभी प्रकार के तिक्त रसयुक्त द्रव्य एवं लघु पदार्थ नेत्र के लिए हितावह है । अतः बुद्धिमान् वैद्य रोग के दोषों एवं रोगी की प्रकृति के तारतम्य का विचार करके यथादोष हितकर पथ्य द्वारा नेत्ररोगी की चिकित्सा करें ।

नेत्ररोग में अपथ्य

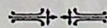
क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायु-
विण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधान् ।
सूक्ष्मेक्षणं दन्तविघर्षणञ्च
स्नानं निशाभोजनमातपञ्च ॥२७२॥
द्रवं रजोधूमनिषेवणं च
दृक्स्वेदनं चापि विरुद्धमन्नम् ।
प्रजल्पनं चन्दनमम्बुपानं
मधूकपुष्पं दधि वेत्रशाकम् ॥२७३॥
कालिन्दपिण्याकविरूढकानि
मत्स्यं सुरां मांसमजाङ्गलं च ।
ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि
तीक्ष्णं कटूष्णं गुरु चान्नपानम् ॥
नरो न सेवेत हिताभिलाषी
रोगेषु सर्वेषु दृगाश्रयेषु ॥२७४॥

इति भैषज्यरत्नावली नेत्ररोगाधिकारः ।



क्रोध करना, शोक करना, अधिक मैथुन, अधिक अश्रुपात करना एवं अपानवायु, पुरीष, मूत्र, निद्रा, वमन के वेगों को रोकना, सूक्ष्म निरीक्षण, दाँतों का परस्पर घर्षण या कटकटाना, स्नान, धूप में घूमना या बैठना, रात्रि में भोजन, द्रवाधिक भोजन, धूलि एवं धूम सेवन, आँखों में स्वेदन, विरुद्ध अन्नपान का सेवन, अधिक बोलना, वमन, अधिक जलपान, महुए का फूल, दही, वेतस का शाक सेवन, वेत्रशाक, तरबूज फल, तिल का खली, अंकुरित अन्न, मछली, सुरा, जाङ्गल पशु-पक्षियों के मांस, ताम्बूल भक्षण, अम्ल द्रव्य, लवण, विदाहि पदार्थ, तीक्ष्ण एवं कटु पदार्थ और गुरु अन्नपान का सेवन नेत्ररोगियों के अहितकर है ।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य नेत्ररोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता ।



अथ शिरोरोगाधिकारः (६५)

वातिक शिरोरोग चिकित्सा

वातिके शिरसो रोगे स्नेहस्वेदान् सनावनान्।
पानान्नमुपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥१॥

वातजन्य शिरोरोग में वातघ्न स्नेह, स्वेद, नस्य, पान, अन्न तथा उपनाह का प्रयोग करना चाहिए।

कुष्ठादि शिरोलेप (चक्रदत्त)

कुष्ठमेरण्डमूलं च लेपात् काञ्जिकयोजितम्।
शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याशु चूर्णं वा मुचकुन्दजम् ॥२॥

कुष्ठमूल तथा एरण्डमूल का चूर्ण करें। ततः सिल पर काञ्जी के साथ पीसकर सुखोष्ण लेप लगाने से वातज शिरो (शूल) रोग नष्ट हो जाता है। अथवा मुचकुन्द (मेखचन्द) पुष्प को काञ्जी के साथ पीसकर लेप करने से शिरःशूल नष्ट हो जाता है।

शिरःशूल में नस्य (चक्रदत्त)

पञ्चमूलीशृतं क्षीरं नस्यं दद्याच्छिरोगदे ॥३॥

पञ्चमूल (शालपर्णी-पृश्निपर्णी-कण्टकारी-बृहती-गोक्षुर) की औषधों के क्वाथ से साधित गोदुग्ध का नस्य देने से शिरोरोग नष्ट हो जाता है।

शिरोरोग में शिरोबस्ति (चक्रदत्त)

आशिरो व्यायतं चर्म कृत्वाऽष्टाङ्गुलमुच्छ्रितम्।
तेनावेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ॥४॥
निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैरुष्णैः प्रपूरयेत्।
धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्द्धमेव वा ॥५॥
शिरोबस्तिर्जयत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम्।
हनुमन्याऽक्षिकर्णार्त्तिमर्दितं मस्तकम्पनम् ॥६॥

शिर के व्यास जितनी लम्बी और आठ अंगुल चौड़ी चमड़े की पट्टी लेनी चाहिए। रोगी को आराम से कुर्सी पर सीधा बैठा देना चाहिए। शिर के बाल का मुण्डन करा लें तो अधिक अच्छा रहता है। शिर पर चर्म पट्ट रखकर उड़द के सूक्ष्म चूर्ण (आँटा) को जल से सान (बाँध) कर पिट्ठी जैसा बनाकर सन्धिबन्धन करना चाहिए। इसके पूर्व रोगी मल-मूत्र के वेग से निवृत्त हो जाय। अब रोगी के शिर पर वातघ्न द्रव्यों से साधित तैल (नारायण या विष्णुतैल) को सुखोष्ण कर भर देना चाहिए। १ योग (३ घण्टे) या इससे आधी देर तक अथवा रोगी की वेदना शान्त होने तक इसे धारण करना चाहिए। पुनः सावधानी से शिर को टेढ़ाकर तैल को किसी पात्र में निकाल लेना चाहिए। शिरोबस्ति से वातज शिरोरोग, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, नेत्ररोग, कर्णरोग, अर्दित तथा शिरःकम्परोग नष्ट हो जाते हैं।

विशेष—शिरोबस्ति प्रयोग से शिर में स्वेदाधिक्य निकलता है।

शिरोबस्ति में तैल धारण काल (चक्रदत्त)

तैलेनापूर्य मूर्द्धानं पञ्चमात्राशतानि च।
तिष्ठेच्छ्लेष्मणि पित्तेऽष्टौ दश वाते शिरोगदी।
एष एव विधिः कार्यस्तथा कर्णाक्षिपूरणे ॥७॥

शिरोबस्ति में तैल भर देने के बाद कफज शिरोरोग में ५०० मात्रा, पित्तज शिरोरोग में ८०० मात्रा तथा वातज शिरोरोग में १००० मात्रा उच्चारण काल तक तैल धारण करना चाहिए। कान एवं नेत्र में औषधि-पूरण का काल भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

पैत्तिक शिरोरोग चिकित्सा (चक्रदत्त)

पैत्ते घृतं पयः सेको शीतलेपाः सनावनाः।
जीवनीयानि सर्पींषि पानान्नञ्चापि पित्तनुत् ॥८॥

पित्तज शिरोरोग में गोघृत एवं गोदुग्ध का पान, शीतल परिषेक, शीतलेप, नस्य तथा पित्तहर पेय एवं खाद्य पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए।

जीवनीयगण से साधित घृत का प्रयोग (चक्रदत्त)

पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्धं सम्यग् विरेचयेत्।
मृद्वीकात्रिफलेक्षूणां रसैः क्षीरैर्घृतैरपि ॥९॥

पित्तज शिरोरोग में रोगी को सर्वप्रथम स्नेहन एवं विरेचन कराना चाहिए। ततः द्राक्षा, त्रिफला, इक्षुमूल (समभाग) के क्वाथ तथा त्रिवृतादि विरेचक द्रव्यों के कल्क से सिद्ध घृत एवं दूध से विरेचन कराना चाहिए।

दाहशान्त्यर्थ लेप-स्नानादि विधि (चक्रदत्त)

शतधौतघृताभ्यङ्गः शीतवातादिसेवनम्।
शीतस्पर्शाश्च संसेव्याः सदा दाहार्त्तिशान्तये ॥१०॥

पित्तज शिरोरोग में दाह एवं वेदना के शमनार्थ शतधौत घृत का सर्वाङ्ग शरीर में लेप, अभ्यङ्ग, खस आदि सुगन्धित द्रव्यों के आर्द्र पंखे का उपयोग, शीतल स्पर्श, कमलपुष्प-पत्र पर शयन, कदली-स्तम्भ का स्पर्श, मणि-मुक्तादि की माला का धारण करना चाहिए।

पित्तज शिरोरोग में शीत लेप एवं परिषेचन (चक्रदत्त)

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ।
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याच्छृतैर्वा परिषेचनम् ॥११॥

१. श्वेतचन्दन, २. खस, ३. मधुयष्टि, ४. बलामूल, ५. व्याघ्रनख तथा ६. नीलकमल—इन्हें समभाग में लेकर सूक्ष्मचूर्ण कर सिल पर दूध के साथ पीसकर प्रदेह (लेप) करने या इन्हीं द्रव्यों के जल से परिषेचन करने से दाह आदि उपद्रव नष्ट हो जाता है।

शिरोरोग में दाहशमनार्थ लेप (चक्रदत्त)

मृणालबिसशालूकचन्दनोत्पलकेशरैः ।
स्निग्धशीतैः शिरो दिह्यात्तद्वदामलकोत्पलैः ॥१२॥

१. मृणाल (कमलपुष्पदण्ड), २. मृणालतन्तु, ३. पद्मकन्द (कशेरुकन्द), ४. श्वेतचन्दन, ५. नीलकमल एवं ६. कमल-केशर—इन्हें समभाग लेकर जल के साथ सिल पर पीसें। इसमें थोड़ा-सा घृत मिलाकर लेप करने से दाह नष्ट हो जाता है। अथवा केवल नीलकमल एवं आमलकी समभाग में पीस कर लेप करने से दाह नष्ट हो जाता है।

कफज शिरोरोग चिकित्सा (चक्रदत्त)

कफजे लङ्घनं स्वेदो रूक्षोष्णैः पाचनात्मकैः ।
तीक्ष्णावपीडधूमाश्च तीक्ष्णोष्णकवला हिताः ॥१३॥

कफज शिरोरोग में उपवास, स्वेदन, रूक्ष-उष्ण एवं आमदोष तथा कफ का पाचन करने वाले दशमूलादि द्रव्यों के क्वाथादि, धूमपान और तीक्ष्ण एवं उष्ण क्वाथ का कवल धारण करना लाभप्रद है।

कफज शिरःशूलहर लेप (चक्रदत्त)

कृष्णाब्दशुण्ठीमधुकशताह्वोत्पलपाकलैः ।
जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शूलनिवारणः ॥१४॥

१. पीपर, २. नागरमोथा, ३. सोंठ, ४. मुलेठी, ५. सौंफ, ६. नीलकमल तथा ७. कूठ (समभाग)—इन्हें जल के साथ सिल पर पीसकर गरम कर लें और सुखोष्ण लेप करने से शिरः-शूल नष्ट हो जाता है।

कफज शिरोरोगहर लेप (चक्रदत्त)

देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् ।
लेपः काञ्जिकसम्पिष्टस्तैलयुक्तः शिरोऽर्त्तिनुत् ॥१५॥

१. देवदारु, २. तगर, ३. कुष्ठ, ४. खस एवं ५. सोंठ—इन्हें समभाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः सिल पर काञ्जी के साथ पीसें और थोड़ा तिलतैल मिलाकर गरम करें। इसे सुखोष्ण लेप करने से कफज शिरःशूल नष्ट हो जाता है।

रक्तज शिरोरोग चिकित्सा (चक्रदत्त)

रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम् ।
शीतोष्णयोश्च व्यत्यासो विशेषो रक्तमोक्षणम् ॥१६॥

रक्तज शिरोरोग में पित्तज शिरोरोग जैसी सभी चिकित्सा करनी चाहिए। यथा—शीतलभोजन, शीतलेप, शीतल क्वाथ, जल सेचन करना चाहिए। शीत एवं उष्ण चिकित्सा की व्यत्यास (विपरीत) क्रिया करनी चाहिए। अर्थात् शीत क्रिया के बाद तुरन्त उष्ण क्रिया करें। जैसे शीत लेप-परिषेक के बाद तुरन्त उष्ण लेप एवं उष्ण परिषेक करना चाहिए। इसे ही व्यत्यास (विपरीत) क्रिया कहते हैं। विशेष रूप से रक्तमोक्षण करना हितकर है।

त्रिदोषज शिरोरोग चिकित्सा (चक्रदत्त)

सन्निपातभवे कार्या दोषत्रयहरा क्रिया ।
सर्पिष्पानं विशेषेण पुराणं त्वादिशन्ति हि ॥१७॥

सन्निपातज शिरोरोग में त्रिदोषशामक चिकित्सा करनी चाहिए। पुराने गोघृत का पान विशेष रूप से हितकर है।

त्रिदोषज शिरःशूलहर क्वाथ (चक्रदत्त)

त्रिकटुकपुष्कररजनीजीवकरास्नातुरङ्गगन्धानाम् ।
क्वाथः शिरोऽर्त्तिजालं नासापीतो निवारयति ॥१८॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. पुष्करमूल, ५. हल्दी, ६. जीवक, ७. रास्ना तथा ८. अश्वगन्धा—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से २५ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। यह क्वाथ ५० मि.ली. की मात्रा में नाक से पीने से (नासापीतो) शिरोरोग समूह को नष्ट करता है। कुछ विद्वान् नासापीतो शब्द से नस्य (नावन) विधि से ३-४ बूँद नाक में डालने को कहते हैं।

त्रिदोषज शिरोरोगहर लेप (चक्रदत्त)

नतोत्पलं चन्दनकुष्ठयुक्तं
शिरोरुजायां सघृतं प्रदेहः ।
प्रपौण्डरीकं सुरदारुकुष्ठं
यष्ट्याह्वमेला कमलोत्पले च ॥
शिरोरुजायां सघृतः प्रदेहो
लौहैरकापद्मकचोरकैश्च ॥१९॥

इसमें दो योग हैं; यथा—(१) १. तगर, २. नीलकमल, ३. श्वेतचन्दन एवं ४. कुष्ठ—ये चारों द्रव्य (समभाग) लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसें तथा थोड़ा घृत मिलाकर शिरःप्रदेश (ललाट) पर लेप करने से सन्निपातज शिरोरोग नष्ट हो जाता है। (२) १. प्रपौण्डरीक (पुण्डरिया

काष्ठ), २. देवदारु, ३. कुष्ठ, ४. मुलेठी, ५. छोटी इलायची, ६. कमलपुष्प, ७. नीलकमलपुष्प, ८. अगरुकाष्ठ, ९. एरका (गन्धतृण), १०. पद्मकाष्ठ तथा ११. चोरक। इन्हें समभाग में लेकर सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण में से आवश्यकतानुसार थोड़े चूर्ण को जल के साथ सिल पर पीसें और घृत मिलाकर त्रिदोषज शिरःशूल से पीड़ित रोगी के ललाट पर लेप करने से शिरःशूल नष्ट हो जाता है।

क्षयज शिरोरोग की चिकित्सा (चक्रदत्त)

क्षयजे क्षयमासाद्य कर्त्तव्यो बृंहणो विधिः।
पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ॥२०॥

क्षयज शिरोरोग में पहले क्षयरोगनाशनार्थ बृंहण चिकित्सा करनी चाहिए। पानार्थ एवं नस्यार्थ वातघ्न एवं मधुरौषधि से साधित घृत एवं दुग्ध का पान करना चाहिए।

कृमिज शिरोरोग चिकित्सा (व.से.)

कृमिजे व्योषनक्ताह्वशिग्रुबीजैश्च नावनम्।
अजामूत्रयुतं नस्यं कृमिजित् परमं मतम् ॥२१॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. करञ्जबीज तथा ५. शिग्रुबीज—इन सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार उपर्युक्त चूर्ण को बकरी के मूत्र में घोलकर नस्य देने से शिर की कृमियाँ नष्ट हो जाती हैं।

सूर्यावर्त शिरःशूल में घृतपूरभक्षण (चक्रदत्त)

सूर्यावर्त्ते विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम्।
पाययेत् सगुडं सर्पिर्घृतपूरांश्च भक्षयेत् ॥२२॥

सूर्यावर्तरोग में नस्य एवं लेप द्वारा चिकित्सा करें। प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व घृतपूर (घेवर—एक तरह की मिठाई) या पूप खाना चाहिए तथा गुड़ में घृत मिलाकर सुबह खाना चाहिए। इस क्रिया से बहुत लाभ होता है।

सूर्यावर्त्त की चिकित्सा (चक्रदत्त)

सूर्यावर्त्ते शिरावेधो नावनं क्षीरसर्पिषा।
हितः क्षारघृताभ्यासस्ताभ्याञ्चैव विरेचनम् ॥२३॥

सूर्यावर्तरोग में लेप एवं नावन (नस्य) से लाभ न होने पर शिरावेध करके रक्तमोक्षण करें तथा दूध में घृत मिलाकर नावन (नस्य) करें। तथा प्रतिदिन घृत में यवक्षार मिलाकर योग्य मात्रा में सेवन करावें तथा इसी यवक्षार और घृत में रेचक औषधि मिलाकर विरेचन कर्म भी कराते रहें।

सूर्यावर्त्त चिकित्सा (चक्रदत्त)

कृतमालपल्लवरसे खरमञ्जरिकल्कसिद्धनवनीतम्।
नस्येन जयति नियतं सूर्यावर्त्तं सुदुर्वारम् ॥२४॥

१. आरग्वध (अमलतास) पत्रस्वरस १ लीटर, २. अपामार्गबीज कल्क ६५ ग्राम, ३. गाय का मक्खन २५० ग्राम लेकर स्नेहपाक विधि से घृतपाक करें। जल निःशेष होने पर कपड़ा से छानकर और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत का दिन में ३ बार नस्य देन से कष्टसाध्य सूर्यावर्त्त रोग नष्ट हो जाता है।

सारिवादि लेप (चक्रदत्त)

सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्लपेषितम्।
सर्पिस्तैलयुतो लेपः सूर्यावर्त्तार्धभेदयोः ॥२५॥

१. अनन्तमूल, २. नीलकमलपुष्प, ३. कूठ, ४. यष्टिमधु—इन्हें समभाग में लेकर कूटकर सूक्ष्मचूर्ण करें। इसमें २५ ग्राम चूर्ण को सिल पर काञ्जी के साथ पीसें और इस कल्क में थोड़ा-सा घृत एवं तिल मिलाकर शिर पर लेप करने से सूर्यावर्त्त और अर्द्धावभेदक रोग नष्ट हो जाते हैं।

सूर्यावर्त्तबीज लेप

सूर्यावर्त्तभवं बीजं तद्रसेन सुपेषितम्।
वेदनानाशनो लेपः सूर्यावर्त्तार्द्धभेदयोः ॥२६॥

सूर्यावर्त्त (हुरहुर) बीज का चूर्ण करें और सिल पर सूर्यावर्त्त (हुरहुर) पत्र स्वरस के साथ पीसकर शिर पर लेप करने से सूर्यावर्त्त एवं अर्द्धावभेदक नामक शिरःशूल नष्ट हो जाता है।

दशमूल क्वाथ नस्य (च.द.)

दशमूलीकषायन्तु सर्पिः सैन्धवसंयुतम्।
नस्यमर्द्धावभेदघ्नं सूर्यावर्त्तशिरोऽर्त्तिजित् ॥२७॥

दशमूलक्वाथ १० मि.ली. में गोघृत ३-४ बूँद और सैन्धव-लवणचूर्ण १ ग्राम मिलाकर दिन में ३-४ बार नस्य देने से अर्द्धावभेदक और सूर्यावर्त्त रोग की वेदना नष्ट हो जाती है।

शिरीषमूल/बीज नस्य (च.द.)

शिरीषमूलकबीजैरवपीडञ्च योजयेत्।
अवपीडो हितो वा स्याद्वचापिप्पलिभिः कृतः ॥२८॥

शिरीषमूलत्वक्चूर्ण या शिरीषबीजचूर्ण को जल से पीसकर कल्क बना लें और वस्त्र में रखकर अवपीडन कर (दबाकर) ३-३ बूँद दोनों नाकों में डालें। अथवा वच और पिप्पली ५-५ ग्राम लेकर जल के साथ पीसकर पूर्ववत् अवपीडन कर ३-३ बूँद दोनों नाकों में डालें। ऐसा दिन में ३-४ बार करने से सूर्यावर्त्त रोग में हितकर है।

जाङ्गल मांस का उपनाह (च.द.)

जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम्।
तेनास्य शाम्यति व्याधिः सूर्यावर्त्तः सुदारुणः ॥२९॥

जंगली पशु-पक्षियों के मांस को अस्थिविहीन कर महीन छोटे-छोटे टुकड़े करें और वातघ्न द्रव्यों के क्वाथ से अग्नि पर पका लें तथा उसमें सैन्धवलवण एवं तिलतैल मिलाकर ललाट प्रदेश पर

एक पतला कपड़ा फैलाकर उस पर गरम सिद्ध उपनाह (लेप जैसा) करें। ऐसा करने से भयंकर सूर्यावर्त्तरोग नष्ट हो जाता है।

सूर्यावर्त्तहर नस्य (यो.र.)

भृङ्गराजरसश्छागक्षीरतुल्योऽर्कतापितः ।
सूर्यावर्त्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट् ॥३०॥

भृङ्गराजस्वरस एवं बकरी का दूध दोनों समभाग लें और एक पात्र में दोनों को रखकर हाथ से अच्छी तरह मिलाकर सूर्यताप (धूप) में गरम करें। इस गरम द्रव का ४-४ बूँद दोनों नाकों में नस्य देने से सूर्यावर्त्तरोग नष्ट हो जाता है।

अर्द्धावभेदक चिकित्सा (यो.र.)

एष एव विधिः कृत्स्नः कार्यश्चार्द्धावभेदके ॥३१॥

सूर्यावर्त्तरोग में कही गई नस्य, उपवाह, लेप आदि समस्त चिकित्सा अर्द्धावभेदक रोग में भी करें।

सूर्यावर्त्त एवं अर्द्धावभेदक रोग में चार कर्म (च.द.)

पिबेत् सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम्।
सुशीतं वाऽपि पानीयं सर्पिर्वा नस्यतस्तयोः ॥३२॥

सूर्यावर्त्त एवं अर्द्धावभेदक रोग में—१. शर्करा मिश्रित गोदुग्ध, २. चीनी मिश्रित नारियलजल, ३. केवल शीतलजल तथा ४. गोघृत का नस्य—ये चारों कर्म लाभप्रद हैं।

अर्द्धावभेदकहर लेप

तिलात्कल्कं सनलदं सक्षौद्रलवणान्वितम्।
तेनास्य लेपयेच्छीर्षमर्द्धभेदं व्यपोहति ॥३३॥

निस्तुष कृष्णतिल तथा जटामांसी का पृथक्-पृथक् सूक्ष्म चूर्ण करें। इन दोनों के समभाग चूर्ण को जल के साथ सिल पर पीसें। इस कल्क में थोड़ा-सा सैन्धवलवण और मधु मिलाकर शिर एवं ललाट प्रदेश पर लेप करने से अर्द्धावभेदक रोग नष्ट हो जाता है।

अर्द्धावभेदकहर नस्य

सविडङ्गं तिलं कृष्णं समं कृत्वा प्रपेषयेत्।
नस्यकर्मणि दातव्यमर्द्धभेदं विनाशयेत् ॥३४॥

विडङ्गचूर्ण एवं कृष्णतैलकल्क समभाग में लेकर जल के साथ सिल पर पीसें और कपड़े म दबाकर रस निकाल लें। इस रस को थोड़ा गरम करें। अब सुखोष्ण इस द्रव को दोनों नाकों में डालकर नस्य देने से अर्द्धावभेदकरोग नष्ट हो जाता है।

अर्द्धावभेदकहर नस्य

दग्धचुल्लीमृत्तिकायाश्चूर्णं च मरिचस्य च।
नस्यमर्द्धावभेदघ्नं सत्यं योगिमतं स्मृतम् ॥३५॥

चूल्हे की जली हुई मिट्टी का चूर्ण और मरिचचूर्ण (समभाग) दोनों को एक साथ मिलाकर वस्त्रपूत चूर्ण बना लें। इस चूर्ण का नस्य देने से अर्द्धावभेदकरोग नष्ट हो जाता है। यह सत्य है। योगी के द्वारा बनाया गया यह योग है।

अर्द्धावभेदकहर दारु विष (सोमल) प्रयोग

प्रयोज्यं दारुगरलमर्द्धभेदप्रशान्तये।
विरतौ तत्प्रयोक्तव्यं न प्रकोपे कदाचन ॥३६॥

अर्द्धावभेदक रोग के निवारणार्थ अल्प मात्रा में शुद्ध संखिया का प्रयोग लाभप्रद है। जब अर्द्धावभेदक का प्रकोप शान्त हो जाय तब संखिया का प्रयोग करना चाहिए। जब अर्द्धावभेदक का रोग बढ़ा हुआ हो तब संखिया का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

विमर्श—संखिया का सेवन किसी अनुभवी वैद्य की उपस्थिति में ही करना चाहिए। सर्वप्रथम रोगी को विरेचन देकर कोष्ठ शुद्धि कर लेनी चाहिए। ततः दो दिनों तक ५०-५० ग्राम सुखोष्ण घी पिलाना चाहिए। शुद्ध संखिया की लम्बी एक डली (टुकड़े) को चाकू से घिसकर पेंसिल जैसा नुकीला कर लेना चाहिए। इसके बाद रोगी को १० ग्राम घी पिलायें। तदनन्तर रुमाल से रोगी की जीभ पकड़कर थोड़ा बाहर खीचें और उस पर नुकीली संखिया से जीभ पर २ इञ्च लम्बी लाइन खींच दें एवं १५ ग्राम सुखोष्ण घी पिला दें। पहले दिन एक लाइन, दूसरे दिन दो लाइन, तीसरे दिन तीन लाइन खींचकर घी पिलाते जायें। इस प्रकार २० दिनों तक रोज १-१ लाइन बढ़ाते रहना चाहिए। ततः पोस्ता दाना जितनी मात्रा में जीभ पर रखकर घी से निगल जाना चाहिए। ऐसा २१वें दिन से करना चाहिए। इस अवधि में दूध एवं घी का अधिक सेवन करना चाहिए।

अनन्तवात चिकित्सा (च.द.)

अनन्तवाते कर्त्तव्यः सूर्यावर्त्तहितो विधिः।
शिरावेधश्च कर्त्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥३७॥

अनन्तवातरोग में सूर्यावर्त्तरोग जैसी ही (नस्य-उपनाह द्वारा) चिकित्सा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त रोग की शान्ति हेतु सिरावेध (ललाट प्रदेश की सिरा) करनी चाहिए।

अनन्तवात रोग में आहार (च.द.)

आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः।
मधुमस्तकसंयावसर्पिः पूरैश्च यः क्रमः ॥३८॥

अनन्तवातरोग में वात-पित्तघ्न द्रव्यों का भोजन कराना चाहिए। मधुमस्तक[1] (घृत, मधु एवं गेहूँ के आँटा की मिठाई), संयाव (गेहूँ का हलवा), घृतपूर (घेवर) मिठाई खाने से अत्यधिक लाभ होता है।

---

१. मधुमस्तक–समिता वेष्टिता मध्ये मधु दत्त्वा श्रिताश्रिते।
मधुमस्तकमुद्दिष्टं तद् वृष्यं गुरु दुर्जरम् ॥ (राजनि.)
मधुना उपलिप्ते मस्तके = मधुमस्तकम्।

शंखक चिकित्सा (च.द.)

सूर्यावर्त्ते हितं यत्तच्छङ्खके स्वेदवर्जितम्।
क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्तपानञ्च शङ्खके ॥३९॥

शंखक नामक शिरोरोग में स्वेदन कर्म छोड़कर सूर्यावर्त्त में कही गई सभी चिकित्सा करनी चाहिए। शंखकरोग में घृत मिश्रित दुग्ध का नस्य एवं घृत मिश्रित दूध में चीनी मिलाकर पिलाना अधिक लाभप्रद है।

शंखकहर लेप (च.द.)

शतावरीकृष्णतिलान् मधुकं नीलमुत्पलम्।
दूर्वां पुनर्नवाञ्चापि लेहं साध्ववचारयेत् ॥४०॥

१. शतावरी, २. कृष्णतिल, ३. यष्टिमधु, ४. नीलकमल, ५. दूर्वा, ६. पुनर्नवामूल—इन्हें समभाग में लेकर सूक्ष्मचूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर शंख प्रदेश में सुशीतल लेप करें।

शंखकहर लेप (च.द.)

शीततोयावसेकांश्च क्षीरसेकांश्च शीतलान्।
कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शङ्खकस्य प्रलेपनम् ॥४१॥

शंखकरोग में शीतल जल तथा कच्चा एवं शीतलदूध से भी सेचन करें। क्षीरी वृक्षों (अश्वत्थ-वट-उदुम्बर-प्लक्ष-मधूप) के मूलत्वक् कल्क का लेप भी शंखक की पीड़ा शान्त करता है।

शंखक रोग में सिरावेध (च.द.)

क्रौञ्चकादम्बहंसानां शरार्याः कच्छपस्य च।
रसैः संबृंहितस्याथ तस्य शङ्खकसन्धिजाः॥
ऊर्ध्वं तिस्त्रः शिराः प्राज्ञो भिन्द्यादेव न ताडयेत् ॥४२॥

क्रौञ्च-कादम्ब-हंस-शरारी जाति के जलीय पक्षियों के तथा कछुआ के मांसरस सेवन जन्य पुष्ट (बृंहित) हुए रोगी के शंखक सन्धि के ऊपर की ३ सिराओं का व्यध करके वहाँ के अशुद्ध रक्त को निकाल देना चाहिए, किन्तु वहाँ मर्म स्थान होने से तथा सन्धिभङ्ग होने के भय से कुठारिकादि से ताड़न नहीं करना चाहिए।

शंखकजन्य शिरःशूलहर नस्य

गिरिकर्णीफलरसं मूलञ्च नस्यमाचरेत्।
मूलं वा बन्धयेत् कर्णे शीघ्रं हन्ति शिरोव्यथाम् ॥४३॥

अपराजिता के फलरस या मूलरस का नस्य देने से अथवा अपराजिता के मूल को कान में बाँधने से शंखकजन्य शिरःशूल नष्ट हो जाता है।

बहुदोषज शिरःशूलहर नस्य

नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम्।
नानादोषोद्भूतां शिरोरुजां हन्ति तीव्रतराम् ॥४४॥

शुण्ठीचूर्ण २ ग्राम में २-४ बूँद दूध डालकर कल्क बनाकर २ ग्राम कल्क २५ मि.ली. गोदुग्ध में घोलकर नाकों में नस्य देने से बहुदोषज शिरःशूल नष्ट हो जाता है।

शिरःशूलहर नस्य

आर्द्रं यच्छुक्तिकाचूर्णं चूर्णितं नवसादरम्।
उभयं योजितं तस्य गन्धान्नश्यति शीर्षरुक् ॥४५॥

शुक्तिभस्म (अथवा चूना) ५ ग्राम में २-४ बूँद जल देकर एक काँच की शीशी में रखें। ततः नवसादर ५ ग्राम चूर्ण करके उक्त चूने की शीशी में मिलाकर कार्क बन्द करें। जब नस्य किसी को देनी हो तो सावधानी से शीशी को खोलकर नस्य लेने से तुरन्त शिरःशूल नष्ट हो जाता है।

शिरःशूलहर लेप

गुञ्जाकरञ्जबीजं च तयोः कल्को जले कृतः।
मरिचैर्भृङ्गराजैश्च शीघ्रं हन्ति शिरोव्यथाम् ॥४६॥

गुञ्जाबीज एवं करञ्जबीजमज्जा को समभाग में लेकर चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर शिर या ललाट प्रदेश में लेप करने से शिरःशूल नष्ट हो जाता है। अथवा—मरिचचूर्ण और भृङ्गराजचूर्ण समभाग मिलाकर सिल पर पीसें और कल्क बनाकर ललाट पर लेप करने से शिरःशूल शान्त हो जाता है।

शिरःशूलहर लेप

क्षुद्रतीक्ष्णं तथा तीक्ष्णं स्नुहीक्षीरेण पेषयेत्।
लेपनादस्य नश्यन्ति वेदनाः सर्वसम्भवाः ॥४७॥

काली मरिच और लाल मिर्च को समभाग में लें और जल के साथ सिल पर पीसकर शिरःप्रदेश पर लेप लगाने से सभी प्रकार के शिरःशूल नष्ट हो जाते हैं।

१. अर्द्धनारीश्वररस

वराटं टङ्कणं शुद्धं पञ्चभागसमन्वितम्।
नवभागं मरीचस्य विषं भागत्रयं मतम् ॥४८॥
स्तन्येन वटिकां कृत्वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः।
शिरोविकारान् विविधान् हन्ति श्लेष्मोत्तरानपि ॥४९॥

१. कौड़ीभस्म ५ भाग, २. शुद्ध टङ्कण ५ भाग, ३. मरिचचूर्ण ९ भाग, ४. शुद्ध वत्सनाभविष ३ भाग—इन्हें चूर्ण कर खरल में मर्दन करें और स्त्री के दूध की भावना देकर ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को जल में घिसकर नस्य देने से श्लेष्म-प्रधान शिरःशूल रोग नष्ट हो जाता है।

२. चन्द्रकान्तरस (र.सा.सं.)

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं ताम्रं गन्धं समं समम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं ततस्तु माषमात्रकम् ॥५०॥

मधुना मर्दितं सेव्यं लौहपात्रे दिने दिने।
सूर्यावर्त्तादिकान् तूर्णं शिरोरोगान् विनाशयेत् ॥५१॥

१. पारदभस्म के अभाव में रससिन्दूर, २. अभ्रकभस्म, ३. तीक्ष्णलौहभस्म, ४. ताम्रभस्म एवं ५. शुद्ध गन्धक—समभाग में लें। इन्हें खरल में एक साथ मर्दन कर स्नुहीक्षीर में १ दिन तक मर्दन करें और ६५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसकी १ से २ वटी लोहे के छोटे खरल में मधु के साथ मर्दन कर प्रातः-सायं चाटें। इसके सेवन करने से शीघ्र ही सूर्यावर्त्त आदि शिरोरोग को नष्ट कर देता है।

मात्रा—१ से २ वटी। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुमान**—मधु। **स्वाद**—निःस्वादु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूर्यावर्त्त, अनन्तवात, अर्द्धावभेदक एवं शंखक।

३. शिरो वज्ररस (र.सा.सं.)

पलं सूतं पलं गन्धं पलं लौहं पलं रविः।
गुग्गुलोः पलचत्वारि तदर्द्धं त्रिफलारजः ॥५२॥
यष्टीमधु कणा शुण्ठी गोक्षुरं कृमिनाशनम्।
दशमूलञ्च प्रत्येकं तोलकं परिकल्पयेत् ॥५३॥
क्वाथेन दशमूल्याश्च यथास्वं परिभावयेत्।
घृतयोगेन कर्त्तव्या माशैकप्रमिता वटी ॥५४॥
छागीदुग्धेन वा सेव्या मधुना पयसाऽथवा।
वातिकीं पैत्तिकीञ्चैव श्लैष्मिकीं सान्निपातिकीम् ॥५५॥
शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याशु वज्रं मुक्तमिवासुरम्।
शिरोवज्ररसो नाम चन्द्रनाथेन भाषितः ॥५६॥

१. शुद्ध पारद ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम, ३. लौहभस्म ५० ग्राम, ४. ताम्रभस्म ५० ग्राम, ५. शुद्ध गुग्गुल २०० ग्राम, ६. त्रिफलाचूर्ण १०० ग्राम, ७. यष्टिमधु १२ ग्राम, ८. पीपरचूर्ण १२ ग्राम, ९. सोंठचूर्ण १२ ग्राम, १०. गोक्षुरचूर्ण १२ ग्राम, ११. विडङ्गचूर्ण १२ ग्राम, १२. दशमूलचूर्ण १२ ग्राम तथा १३. दशमूलक्वाथ ५०० मि.ली. और १४. गोघृत २० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक पत्थर के कठिन खरल में पारद तथा गन्धक मिलाकर अच्छी तरह दृढ़ मर्दन करें और कज्जली बना लें। ततः कज्जली युक्त खरल में दोनों भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर गुग्गुलु छोड़कर अन्य सभी चूर्णों को उसी खरल में मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद छोटी लोहे की कड़ाही में गुग्गुलु और दशमूल क्वाथ के साथ मन्दाग्नि पर गरम करें और चम्मच से हिलाते रहें। जब सम्पूर्ण गुग्गुलु पिघलकर द्रवित हो जाय तो कज्जली तथा काष्ठौषधियों से मिश्रित चूर्ण मिला दें। पुनः दशमूल की भावना देकर मर्दन करें। घृत के सहयोग से (सिर्फ अंगुली में लगाकर ही घृत का उपयोग करें) १-१ ग्राम की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसका निर्माण आचार्य श्री चन्द्रनाथ ने किया था। इसका नाम 'शिरो वज्ररस' है। इसे मधु या बकरी के दूध के साथ सेवन करने से वातज, पित्तज, कफज एवं त्रिदोषज शिरःशूल या शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१-१ ग्राम। **वर्ण**—श्याववर्ण। **अनुपान**—मधु एवं बकरीदूध। **स्वाद**—कटु-कषाय। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सभी प्रकार के शिरोरोग में लाभदायक है।

४. महालक्ष्मीविलासरस (र.सा.सं.)

लौहमभ्रं विषं मुस्तं फलत्रयकटुत्रयम्।
धुस्तूरं वृद्धदारञ्च बीजमिन्द्राशनस्य च ॥५७॥
गोक्षुरकद्वयञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च।
एतत्सर्वं समं ग्राह्यं रसे धुस्तूरकस्य च ॥५८॥
भावयित्वा वटी कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
महालक्ष्मीविलासोऽयं सन्निपातनिवारकः ॥५९॥

१. लौहभस्म, २. अभ्रकभस्म, ३. शुद्धवत्सनाभविष चूर्ण, ४. नागरमोथाचूर्ण, ५. सोंठचूर्ण, ६. पिप्पलीचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण, ८. आमलाचूर्ण, ९. हरीतकीचूर्ण, १०. बिभीतकचूर्ण, ११. शुद्ध धत्तूरबीजचूर्ण, १२. विधाराबीजचूर्ण, १३. शुद्ध भाँगचूर्ण, १४. बड़ागोक्षुरचूर्ण, १५. छोटागोक्षुरचूर्ण, १६. पिप्पलीमूलचूर्ण—इन्हें समभाग लें। इन्हें एक साथ खरल में मिलाकर धतूरपत्रस्वरस की भावना दें और २५० मि.ग्रा. (२-२ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'महालक्ष्मीविलास रस' कहते हैं। यह सभी शिरोरोगों का नाश करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्याववर्ण। **अनुपान**—मधु से। **रस**—कटु-कषाय। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सभी शिरोरोग में।

५. रसचन्द्रिकावटी (र.सा.सं.)

त्रैलोक्यविजयाबीजं बीजमुन्मत्तकस्य च।
कण्टकारीबीजकञ्च बीजं हैज्जलमेव च ॥६०॥
बीजञ्च वृद्धदारस्य समौ गन्धकपारदौ।
आर्द्रकैर्वटिका कार्या कलायपरिमाणतः ॥६१॥
एषा तोयानुपानेन प्रातः खाद्या हिताशिना।
चिरजं सर्वजञ्चैव शिरोरोगं सुदारुणम् ॥६२॥
आमवातं शिरोरोगं मन्यास्तम्भं गलग्रहम्।
ग्रहणीं श्लीपदं हन्ति ह्यन्त्रवृद्धिं भगन्दरम् ॥६३॥
कामलां शोथपाण्डुत्वं पीनसार्शोगुदामयान्।
वासुदेवेन कथिता वटिका रसचन्द्रिका ॥६४॥

१. भाँग के बीज, २. शुद्ध धत्तूरबीज, ३. कण्टकारीबीज, ४. समुद्रफल (हिज्जल), ५. विधाराबीज, ६. शुद्ध पारद तथा ७. शुद्ध गन्धक—इन्हें समभाग में लें। सर्वप्रथम एक पत्थर के साफ खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में उपर्युक्त पाँचों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण डालकर मर्दन करें। आर्द्रकस्वरस के साथ मर्दन कर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातः-सायं १-१ वटी जल के साथ सेवन करें तथा हितकर भोजन करें। इसके सेवन से सभी प्रकार के पुराने रोग, भयंकर सन्निपात, आमवात, शिरोरोग, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, ग्रहणी, श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, भगन्दर, कामला, शोथ, पाण्डु, पीनस, अर्श एवं अन्य गुदारोग नष्ट हो जाते हैं। इस 'चन्द्रिका वटी' को आचार्य वासुदेव ने निर्मित किया था।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्याव। **अनुपान**—जल से। **स्वाद**—कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—शिरोरोग एवं आमवात रोग में लाभदायक है।

६. शिरोरोगहररस

रसं गन्धकमभ्रञ्च लौहं कर्षमितं पृथक्।
स्वर्णं शाणमितं चैव दार्वाख्यं च विषं तथा ॥६५॥
भृङ्गराजाम्भसा सम्यङ् मर्दयित्वा विचक्षणः।
रक्तिकार्द्धमिता कुर्याद्वटीश्छण्डांशुशोषिताः ॥६६॥
शिरोरोगहरो नाम रसोऽयं हरनिर्मितः।
हरेत् सर्वशिरोरोगान् विरामे यदि सेवितः ॥६७॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. अभ्रकभस्म, ४. लौहभस्म—प्रत्येक १-१ भाग तथा ५. स्वर्णभस्म और ६. शुद्ध संखिया—प्रत्येक चौथाई भाग लें। सर्वप्रथम एक स्वच्छ खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः उस कज्जली में शुद्ध शंखियाचूर्ण मिलाकर १ दिन तक मर्दन करें। तदनन्तर तीनों भस्मों को उक्त कज्जली में मिलाकर मर्दन करें और भृङ्गराजस्वरस की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। पुनः आधी-आधी रत्ती (६५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर कड़ी धूप में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। शिरो रोग नष्ट करने के लिए आचार्य हर ने इसे निर्मित किया है।

मात्रा—आधा रत्ती (६५ मि.ग्रा.)। **वर्ण**—कृष्ण। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सभी प्रकार के शिरोरोग।

७. शिरोरोगहररस

नावनाच्चूर्णरूपेण कर्पूरः स्फटिकारिका।
नासाऽस्रस्रुतिमार्त्तिं च शिरसो हन्त्यसंशयम् ॥६८॥

कर्पूर एवं स्फटिकाचूर्ण को समभाग में मिलाकर नस्य लेने से शिरःशूल नष्ट हो जाता है तथा नासा रक्तस्राव में रक्त निकलना बन्द हो जाता है।

८. मयूराद्य घृत-१ (चक्रदत्त)

दशमूलीबलारास्नामधुकैस्त्रिपलैः सह।
मयूरं पक्षपित्तान्त्रशकृत्पादास्यवर्जितम् ॥६९॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत्।
मधुरैः कार्षिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥७०॥
कर्णनासाऽक्षिजिह्वाऽऽस्यगलरोगविनाशनम्।
मयूराद्यमिदं सर्पिरूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥७१॥
आखुभिः कुक्कुटैर्हंसैः शशैश्चापि हि बुद्धिमान्।
कल्केनानेन विपचेत् सर्पिरूर्ध्वगदापहम् ॥७२॥
दशमूलादिना तुल्यो मयूर इह गृह्यते।
अन्ये त्वाकृतिमानेन मयूरग्रहणं विदुः ॥७३॥

१. मूर्च्छित गोघृत ७५० (१ प्रस्थ), २. दशमूल मिश्रित ३० पल (१४०० ग्राम), ३. बलामूल १४० ग्राम, ४. रास्ना १४० ग्रा., ५. यष्टिमधु १४० ग्राम, ६. मयूरमांस (जिसमें पक्ष, पित्त, अन्त्र, विष्ठा, पैर एवं चोंच वर्जित होना चाहिए) १४०० ग्राम तथा (मधुरैः शब्द से गृहीत) जीवनीयगण की सभी १२ औषधियाँ (जीवक-ऋषभक-काकोली-क्षीर-कोकोली-मेदा-महामेदा-ऋद्धि-वृद्धि-यष्टिमधु-जीवन्ती-मुद्-गपर्णी-माषपर्णी) प्रत्येक द्रव्य १५ ग्राम लेना चाहिए। गोदुग्ध ७५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम दशमूल एवं बला आदि चारों द्रव्यों का यवकुट करें तथा मांस के भी छोटे-छोटे टुकड़े कर लें। ये कुल द्रव्य ३.२२० ग्राम हैं। इसे २ द्रोण (२५ लीटर) जल (चूँकि मांस कठिन द्रव्य है, अतः अष्टगुण जल लेना चाहिए) में पकायें और अष्टमांशावशेष अर्थात् ३२२० मि.ली. जल शेष रहने पर छान लें। ततः जीवणीय गण की औषधियों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। अब १० लीटर की क्षमता वाले स्टेनलेस स्टील के पात्र में पहले मूर्च्छितघृत को गरम करें ततः दशमूल एवं मांस का क्वाथ डालें। पुनः उसमें कल्क डालकर अच्छी तरह दर्वी से मिला लें और मन्दाग्नि पर पाक करें। जब क्वाथ सूखने लगे तब उसमें गोदुग्ध मिलाकर पाक करें। गोदुग्ध सूखने पर दुग्धकल्क के सम्यक् पाक होने के लिए ७५० मि.ली. जल देकर पुनः पकावें। जल सूखने पर स्नेह पाक की परीक्षा करके घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तुरन्त कपड़ा से घृत छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'मयूराद्यघृत' कहते हैं। इसे १० मि.ग्रा. सुखोष्ण गोदुग्ध में या गरम पानी में मिलाकर दिन में २ बार पीने से सभी प्रकार के शिरोरोग (कर्ण-नासा-नेत्र-जिह्वा-मुख) एवं गलरोग नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् यह घृत ऊर्ध्वजत्रुगत सभी रोगों के लिए अत्युत्तम औषधि है।

इस घृत को मूषक (चूहा), मुर्गा, हंस, खरगोश के मांसों में

से किसी एक मांस से पकाया जा सकता है। दशमूलादि के जितना ही मयूर का मांस लेना चाहिए। अन्य विद्वान् के अनुसार मयूर की दुर्लभतावश जितना मयूर मांस उपलब्ध हो सके उसी से यह घृतपाक कर लेना चाहिए।

मात्रा—१०-१५ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम पानी। **रस**—मधुर। **गन्ध**—घृत गन्धी। **उपयोग**—शिरोरोग एवं उर्ध्वजत्रु के रोग।

९. मयूराद्य घृत-२ (चक्रदत्त)

शतं मयूरमांसस्य दशमूलबलातुलाम्।
द्रोणेऽम्भसः पचेत् क्षुत्त्वा तस्मिन् पादस्थिते ततः ॥७४॥
निषिच्य पयसो द्रोणं पचेत्तत्र घृताढकम्।
प्रपौण्डरीकं वर्गोक्तैर्जीवनीयैश्च भेषजैः ॥७५॥
मेधाबुद्धिस्मृतिकरमूर्ध्वजत्रुगदापहम्।
मायूरमेतन्निर्दिष्टं सर्वानिलहरं परम् ॥७६॥
मन्याकर्णशिरोनेत्ररुजाऽपस्मारनाशनम्।
विषवातामयश्वासविषमज्वरकासनुत् ॥७७॥

मयूरमांस (पंख-चञ्चु-पद-अन्त्र-मल-पित्त रहित) १ तुला (४६७० ग्राम) एवं दशमूलक्वाथ का यवकुटचूर्ण ४६७० ग्राम तथा बलामूल यवकुट ४.६७० ग्राम दोनों को एक बड़े पात्र में एक साथ रखकर २५ लीटर (२ द्रोण) जल देकर पाक करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। गोघृत ३ किलो तथा गोदुग्ध १ द्रोण (१२.५०० लीटर) लेना चाहिए। **कल्क द्रव्य**—१. प्रपौण्डरीक, २. ऋषभक, ३. जीवक, ४. काकोली, ५. क्षीरकाकोली, ६. मेदा, ७. महामेदा, ८. ऋद्धि, ९. वृद्धि, १०, मुलेठी, ११. माषपर्णी, १२. मुद्‌गपर्णी और १३. जीवन्ती—प्रत्येक द्रव्य ५८-५८ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः कल्क के सभी द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। अब एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में मूर्च्छित गोघृत तथा मयूरमांस, दशमूलादि का क्वाथ और कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर उसमें गोदुग्ध मिलाकर पाक करें। जब दूध भी सूखने लगे तो दुग्ध के सम्यक् पाक हेतु उसमें १२ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जब जल सूख जाय तो स्नेहपाक की परीक्षा कर सिद्ध होने पर स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तुरन्त कपड़े से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'मयूराद्य घृत' कहते हैं। इसकी ६ से १२ ग्राम तक की मात्रा गरम गोदुग्ध या गरम जल से लेना चाहिए। इसे प्रतिदिन दो बार लेना चाहिए। इसके सेवन से मेधा, बुद्धि, स्मृतिवर्धक है। यह ऊर्ध्वजत्रुगत सभी रोगों का नाश करता है। सभी प्रकार के वायु रोगों का शामक है। मन्यास्तम्भ, कर्णरोग, शिरोरोग, नेत्ररोग एवं अपस्माररोग नाशक है। विषदोष, वातव्याधि, श्वास, कास एवं विषमज्वरनाशक है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल से। **रस**—मधुर। **गन्ध**—घृत एवं मांसगन्धी। **उपयोग**—शिरोरोग एवं उर्ध्वजत्रु के रोगों में।

१०. षड्‌बिन्दु तैल (च.द.)

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा
जीवन्ति रास्ना सह सैन्धवञ्च।
शृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च
विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥७८॥
आजं पयस्तैलविमिश्रितञ्च
चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम्।
षड्‌बिन्दवो नासिकयोर्निधेया
निहन्ति शीघ्रं शिरसो विकारान् ॥७९॥
च्युतांश्च केशांश्चलितांश्च दन्तान्
दुर्बद्धमूलांश्च दृढीकरोति।
सुपर्णदृष्टिप्रतिमञ्च चक्षु-
र्बाह्वोर्बलञ्चाप्यधिकं ददाति ॥८०॥

१. मूर्च्छित कृष्ण तिलतैल ३ लीटर, २. बकरी का दूध ३ लीटर, ३. भृङ्गराज स्वरस १२ लीटर।

कल्क—१. एरण्डमूल, २. तगर, ३. सोयाबीज, ४. जीवन्ती, ५. रास्ना, ६. सैन्धवलवण, ७. कर्कटशृंगी, ८. विडङ्गबीज, ९. यष्टिमधु, १०. सोंठ—प्रत्येक द्रव्य ७५ ग्राम (तैल का चतुर्थांश) लेना चाहिए। कल्क के सभी १० द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में मूर्च्छिततिलतैल और भृङ्गराजस्वरस तथा कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब भृङ्गराजस्वरस सूख जाय तो उसमें दूध मिलाकर पुनः पाक करना चाहिए। दूध सूखने पर कल्क के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जब जलीयांश सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में सिद्ध तैल को संग्रहीत करें। इसे 'षड्‌बिन्दु तैल' कहते हैं। इस तैल को दोनों नाकों में ३-३ बूँद इस प्रकार कुल छः बूँद डालें। इसीलिए इसका नाम षड्‌बिन्दु पड़ा है। ४-६ दिनों तक डालने से ही शीघ्र ही शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं। गिरते हुए (झड़ते हुए) बाल दृढ़ हो जाते हैं, हिलते दाँत स्थिर हो जाते हैं तथा नेत्र की दृष्टि गरुड़ जैसी दूरगामी हो जाती है और बाहु (भुजा) मजबूत हो जाती है।

मात्रा—६ बूँद। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—पके तैल जैसा। **उपयोग**—शिरोरोग, हिलते दाँतों एवं झड़ते बालों में हितकर है।

११. दशमूलतैल-१

दशमूलक्वाथकल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
चतुर्गुणं पयो दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥८१॥
दशमूलमिति ख्यातं शोथं हन्ति सुदारुणम्।
नस्येनाकालपलितं ज्वरारोचकनाशनम्।
अभ्यङ्गेनैव सर्वञ्च शिरःशूलं विनाशयेत् ॥८२॥

१. तिलतैल ७५० मि.ली. २. दशमूलक्वाथ ३ लीटर, ३. दशमूलकल्क १८७ ग्राम तथा गोदुग्ध ३ लीटर लेना चाहिए। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में मूर्च्छिततैल, क्वाथ एवं कल्क को मिलाकर पाक करें। क्वाथ के सूखने पर उसमें गोदुग्ध मिलाकर पुनः पकायें। गोदुग्ध सूखने पर ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जब जल सूख जाय तो स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेहपाक की परीक्षा कर तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'दशमूल तैल' कहते हैं। इसके प्रयोग से भयंकर शोथ नष्ट हो जाता है। इस तैल के नस्य से अकाल पलित रोग (बाल सफेद होना), ज्वर एवं अरुचि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसका शिर में अभ्यङ्ग करने से शिरःशूल रोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—तैल गन्धी। **उपयोग**—शिरोरोग, नस्य से अकाल पलित रोग।

१२. दशमूलतैल-२ (धन्वन्तरि सं.)

दशमूलीकषायेण अष्टाङ्गकल्कसंयुतम्।
क्षीरञ्च द्विगुणं दत्त्वा तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥८३॥
शिरोऽर्त्तिं नाशयेदेतद् भास्करस्तिमिरं यथा।
वातशूलं पित्तशूलं कफशूलं त्रिदोषजम् ॥८४॥
सूर्यावर्त्तमभिष्यन्दं जलदोषञ्च नाशयेत्।
दशमूलमिदं तैलं शिरोरोगनिषूदनम् ॥८५॥

१. तिलतैल १ प्रस्थ (७५० मि.ली.), २. गोदुग्ध १५०० मि.ली., ३. दशमूलक्वाथ ३ लीटर तथा अष्टवर्ग (जीवक-ऋषभक-काकोली-क्षीरकाकोली-मेदा-महामेदा-ऋद्धि-वृद्धि) का कल्क प्रत्येक २५ ग्राम (कुल १९० ग्राम) लेना चाहिए। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें, ततः अष्टाङ्ग से अष्टवर्ग लिया जाता है। अतः उन औषधियों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। दशमूलक्वाथ ३ लीटर और कल्क मिलाकर स्नेहपाक करें। क्वाथ सूखने पर उक्त तैलपात्र में गोदुग्ध मिलाकर पुनः पकायें। दुग्ध सूखने पर १.५०० लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेह-पाकविद् वैद्य स्नेह सिद्ध की परीक्षा कर चूल्हे से तैलपात्र को नीचे उतारकर तुरन्त कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'दशमूल तैल' कहते हैं। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से वातज शिरःशूल, पित्तज शिरःशूल, कफज शिरःशूल और त्रिदोषज शिरःशूलरोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अभ्यङ्ग से सूर्यावर्त्त, अभिष्यन्द एवं जलदोष तथा सभी शिरो रोगों का नाश होता है।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—सुपक्व तैल-गन्धी। **उपयोग**—समस्त शिरोरोगों में।

१३. दशमूलतैल-३ (धन्वन्तरि सं.)

दशमूलक्वाथकल्कैः कटुतैलं विपाचयेत्।
सन्निपातज्वरश्वासकासान् हन्ति सुदारुणान् ॥८६॥

१. कटुतैल ७५० मि.ली. (१ प्रस्थ), २. दशमूलक्वाथ ३ लीटर, ३. दशमूलकल्क १९० ग्राम। सर्वप्रथम कटुतैल का मूर्च्छन करें। ततः दशमूलक्वाथ एवं कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'दशमूल तैल' कहते हैं। इस तैल का अभ्यङ्ग करने से सन्निपात ज्वर, कास, श्वास नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—पीताभ। **गन्ध**—पक्व तैल गन्धी। **उपयोग**—सन्निपातज्वर, कास-श्वास।

१४. दशमूलतैल-४ (धन्वन्तरि सं.)

दशमूली करञ्जश्च निर्गुण्डी च जयन्तिका।
धुस्तूरः षट्पलान् भागाञ् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥८७॥
पादशेषे रसे तैलं कटुप्रस्थं विपाचयेत्।
तत्कल्कान् दापयेत्तत्र भागान् षट् तोलकान् पृथक् ॥८८॥
वातश्लेष्मसमुद्भूतं शिरोरोगं व्यपोहति।
कासं पञ्चविधं शोथं जीर्णज्वरमपोहति ॥८९॥
दशमूलमिदं तैलं शिरःकर्णाक्षिरोगनुत्।
मन्यास्तम्भमन्त्रवृद्धिं श्लीपदं च विनाशयेत्।
दशमूलमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥९०॥

क्वाथ द्रव्य—१. दशमूल, २. करञ्जबीज, ३. निर्गुण्डीपत्र, ४. जयन्तिपत्र, ५. धत्तूरपञ्चाङ्ग—दशमूल के सभी द्रव्य के साथ अन्य चारों द्रव्य भी प्रत्येक ६-६ पल (प्रत्येक २४० ग्राम) लेकर १२$\frac{1}{2}$ लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई रहने पर छान लें। **कल्क**—कटुतैल (सरसोतैल) ७५० मि.ली. लेकर इसे मूर्च्छित करें। ततः उपयुक्त क्वाथ द्रव्यों (१४ द्रव्यों) में से प्रत्येक द्रव्य ६ तोला (७० ग्राम) लेकर यवकुट कर कल्क बना लें। **विधि**—एक लोहे की कड़ाही में मूर्च्छिततैल, क्वाथ एवं कल्क देकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य तैलपाक की परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तैल को छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे दशमूल तैल कहते हैं। अश्विनीकुमारों ने इस तैल का निर्माण किया था। इस तैल का

अभ्यङ्ग करने से कफ-वातज शिरोरोग नष्ट हो जाता है। इसके अभ्यङ्ग से ५ प्रकार के कास, शिरोरोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, मन्यास्तम्भ, अन्त्रवृद्धि, श्लीपद, रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—पीताभ। **गन्ध**—कटुतैल पाक जैसी। **उपयोग**—शिरोरोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, मन्यास्तम्भ।

१५. दशमूलतैल-५

पञ्च पञ्चपलं नीत्वा पञ्चमूलीयुगात् पृथक्।
विपाचयेज्जलद्रोणे चाष्टभागावशेषितम् ॥९१॥
आर्द्रकस्य रसप्रस्थं निर्गुण्ड्यास्तत्समं भवेत्।
त्र्यूषणं पञ्चकोलञ्च जीरकद्वयसर्षपम् ॥९२॥
सैन्धवञ्च यवक्षारं त्रिवृता च निशाद्वयम्।
तोयञ्च द्विगुणं दत्त्वा कल्कमक्षसमं विदुः ॥९३॥
सर्वैरेभिः पचेत्तैलं शिरोरोगं व्यपोहति।
ऊर्ध्वजत्रुगरोगघ्नं वातश्लेष्मगदापहम् ॥९४॥
एकजे द्वन्द्वजे चैव तथैव सान्निपातिके।
अर्द्धावभेदके चैव सूर्यावर्त्ते प्रशस्यते॥
पानाभ्यञ्जननस्ये च कर्णरोगे च शस्यते ॥९५॥

१. बिल्वत्वक्, २. अग्निमन्थत्वक्, ३. सोनापाठात्वक्, ४. गम्भारमूलत्वक्, ५. पाटलामूलत्वक्, ६. कण्टकारी, ७. बृहतीपञ्चाङ्ग, ८. शालपर्णी, ९. पृश्निपर्णी, १०. गोक्षुर (दोनों पञ्चमूल अर्थात् दशमूल)—प्रत्येक ६० ग्राम लें। इन्हें यवकुट कर १२½ लीटर जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रखें। आर्द्रकस्वरस ७५० मि.ली., निर्गुण्डीपत्रस्वरस ७५० मि.ली. तथा तिलतैल ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. त्रिकटु ३५ ग्राम, २. पञ्चकोल ५८ ग्राम, ३. जीरा, ४. स्याहजीरा, ५. सरसो, ६. सैन्धव, ७. यवक्षार, ८. निशोथ, ९. हल्दी, १०. दारुहल्दी—प्रत्येक द्रव्य १२ ग्राम लें। इन्हें कूट-पीसकर कल्क बना लें।

विधि—सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः इस मूर्च्छिततैलपात्र में दशमूलक्वाथ, आर्द्रकस्वरस, निर्गुण्डीस्वरस तथा कल्क मिलाकर मन्दाग्नि में पाक करें। द्रवांश सूखने पर इसके सम्यक् पाक हेतु तैल से दुगुना जल १५०० मि.ली. देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। इसे दशमूल तैल कहते हैं। इस तैल का पान और अभ्यङ्ग रूप में प्रयोग करना चाहिए। इस तैल के प्रयोग से सम्पूर्ण शिरोरोग नष्ट हो जाते हैं। ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, वात-कफज रोग भी नष्ट हो जाते हैं। एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज रोग भी इसके प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं। इस तैल के प्रयोग से सूर्यावर्त एवं अर्धावभेदक तथा कर्णरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५ से ५० मि.ली. तथा अभ्यङ्गार्थ। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—सुपक्व तैलगन्धी। **उपयोग**—समस्त शिरोरोग एवं ऊर्ध्वजत्रुज रोग।

१६. दशमूलतैल-६ (धन्व. सं.)

दशमूलीशतं ग्राह्यं तथा धुस्तूरकस्य च।
शतं पुनर्नवायाश्च निर्गुण्ड्याश्च शतं तथा ॥९६॥
एतैः कषायैर्विपचेत्कटुतैलाढकं भिषक्।
वासा वचा देवदारु शटी रास्ना सयष्टिका ॥९७॥
मरिचं पिप्पली शुण्ठी कारवी कट्फलं तथा।
करञ्जशिग्रुकुष्ठं च चिञ्चा च वनशिम्बिका ॥९८॥
चित्रकञ्च पृथग्भागान् दत्त्वा चैषां पलोन्मितान्।
श्लैष्मिकं सन्निपातोत्थं वातश्लेष्मोद्भवं तथा ॥९९॥
कर्णशूलं शिरःशूलं नेत्रशूलञ्च दारुणम्।
निहन्ति दशमूलाख्यं तैलमेतन्न संशयः ॥१००॥

क्वाथ द्रव्य—१. दशमूलक्वाथ द्रव्य ४६७० ग्राम, २. धत्तूरपञ्चाङ्ग ४६७० ग्राम, ३. पुनर्नवापञ्चाङ्ग ४६७० ग्राम, ४. निर्गुण्डीपत्र ४६७० ग्राम लें। इन्हें यवकुट कर चतुर्गुण (७२ लीटर) जल में क्वाथ करें। चतुर्थांशावशेष रहने पर छान लें। सरसों तैल ३ लीटर (१ आढक) लें।

कल्क द्रव्य—१. वासा, २. वच, ३. देवदारु, ४. कचूर, ५. रास्ना, ६. यष्टिमधु, ७. मरिच, ८. पीपर, ९. सोंठ, १०. कारवी (मंगरैला), ११. कट्फल, १२. करञ्जबीज, १३. शिग्रुमूल-त्वक्, १४. कूठ, १५. इमलीफल, १६. जंगली शिम्बी, १७. चित्रकमूल—ये प्रत्येक द्रव्य ५० ग्राम लें। इन्हें कूट-पीसकर कल्क बना लें।

विधि—पहले सरसोंतैल का मूर्च्छन करें। ततः स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र में मूर्च्छिततैल, क्वाथ और कल्क को मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे दशमूल तैल कहते हैं। इसके अभ्यङ्ग से कफज, वात-कफज, सन्निपातजरोग, कर्णरोग, शिरःशूल एवं भयंकर नेत्रशूलरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—पीताभ। **गन्ध**—सरसोंतैलगन्धी। **उपयोग**—शिरःशूल, कर्णशूल, नेत्रशूल में।

१७. दशमूलतैल-७ (धन्व. सं.)

दशमूलं पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्।
तेन पादावशेषेण कटुतैलाढकं पचेत् ॥१०१॥
जम्बीरार्द्रकधुस्तूरस्वरसं तैलतुल्यतः।
कल्कः कणाऽमृता दार्वी शतपुष्पा पुनर्नवा ॥१०२॥

शिग्रु पिप्पलिका तिक्ता करञ्जं कृष्णजीरकम् ।
सिद्धार्थकं वचा शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शटी ॥१०३॥
देवदारु बला रास्ना सूर्यावर्त्तककट्फलम् ।
निर्गुण्डी चविका गैरि ग्रन्थिकं शुष्कमूलकम् ॥१०४॥
यमानी जीरकं कुष्ठमजमोदा च ताडकम् ।
एतेषां पलिकैर्भागैर्विपचेन्मतिमान् भिषक् ॥१०५॥
हन्ति श्लेष्माणमभ्यङ्गात् पानात् कासं व्यपोहति ।
निहन्ति विविधान् व्याधीन् कफवातसमुद्भवान् ।
शिरोमध्यगतान् रोगाञ् शोथान् हन्ति व्रणानपि ॥१०६॥

क्वाथ द्रव्य—१. दशमूल ४६७० ग्राम, २. जल १२$\frac{1}{2}$ लीटर (१ द्रोण), ३. जम्बीरीस्वरस ३ लीटर, ४. आर्द्रकस्वरस ३ लीटर, ५. धत्तूरपत्रस्वरस ३ लीटर तथा ६. कटुतैल ३ लीटर।

कल्क तैल—१. पीपर, २. गुडूची, ३. दारुहल्दी, ४. सौंफ, ५. पुनर्नवामूल, ६. शिग्रुत्वक्, ७. पीपर, ८. कटुकी, ९. करञ्जबीज, १०. कारबी (मंगरैला), ११. पीतसरसो, १२. वच, १३. सोंठ, १४. पिप्पली, १५. चित्रकमूल, १६. कचूर, १७. देवदारु, १८. बलामूल, १९. रास्ना, २०. सौवर्चल, २१. कट्फल, २२. निर्गुण्डी, २३. चव्य, २४. गैरिक, २५. पिप्पलीमूल, २६. सूखीमूली, २७. अजवाइन, २८. जीरा, २९. कूठ, ३०. अजमोदा, ३१. विधाराबीज—ये सभी ३१ द्रव्य प्रत्येक ५०-५० ग्राम लेना चाहिए।

सर्वप्रथम दशमूल को यवकुट कर १२$\frac{1}{2}$ लीटर जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। ततः कटुतैल का मूर्च्छन करें। तदनन्तर पीपर से विधाराबीज तक के सभी द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। इसके बाद बड़े पात्र में मूर्च्छित सरसोंतैल में कल्क एवं दशमूलक्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर क्रमशः जम्बीरीस्वरस, आर्द्रकस्वरस तथा धत्तूरपत्रस्वरस देकर पाक करें। ये तीनों द्रव सूखने पर ३ लीटर जल देकर पुनः पकायें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे दशमूल तैल कहते हैं। इसका अभ्यङ्ग करने से कफज रोग एवं कफ का नाश होता है। पान करने (पीने) से कास का नाश होता है तथा विविध कफज एवं वातज रोग नष्ट होते हैं। शिरोरोग, शोथरोग एवं व्रणरोग भी नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ, पानार्थ ५० मि.ली.। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम पानी से। **रस**—कटु। **गन्ध**—सरसोंतैल गन्धी। **उपयोग**—कफज एवं वातज रोग शिरोरोग एवं शोथ।

१८. दशमूलतैल-८

दशमूलक्वाथकल्काभ्यां निर्गुण्डीरससंयुतम् ।
कटुतैलं समादाय पचेत्प्रस्थं भिषग्वरः ॥१०७॥
सन्निपातं हरेदेतच्छिरोरोगं तथैव च ।
अस्थिसन्धिकफप्रायान् रोगान् हन्ति न संशयः ॥१०८॥

१. दशमूलक्वाथ ३ लीटर, २. दशमूलकल्क १८७ ग्राम, ३. निर्गुण्डीस्वरस ३ लीटर तथा ४. सरसोतैल ७५० मि.ली. लें। दशमूल को कूट-पीसकर कल्क बना ले। कटुतैल का मूर्च्छन करें। ततः मूर्च्छित तैल में क्वाथ एवं कल्क मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे दशमूल तैल कहते हैं। इसका अभ्यङ्ग करने से सन्निपात, शिरोरोग, अस्थिसन्धिशूल एवं कफज रोगों का निःसन्देह नाश होता है।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—पीताभ। **गन्ध**—सरसोतैल जैसा। **उपयोग**—शिरोरोग एवं कफजरोग।

१९. अपामार्गतैल (च.द.)

अपामार्गफलव्योषनिशाक्षवकरामठैः ।
सविडङ्गं शृतं मूत्रे तैलं नस्यं कृमिं जयेत् ॥१०९॥

१. अपामार्गबीज, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. हल्दी, ६. क्षवक (नकछिकनी), ७. हींग, ८. विडङ्ग—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम तथा गोमूत्र ३ लीटर तथा पाकार्थ जल ३ लीटर लें। तिलतैल ७५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः अपामार्गबीज से विडङ्गचूर्ण तक के सभी द्रव्यों को कूट-पीसकर सिल पर कल्क बनायें। मूर्च्छिततैल में कल्क एवं १ लीटर गोमूत्र देकर पाक करें। जब गोमूत्र सूखने लगे तो पुनः १ लीटर गोमूत्र देकर पाक करें। सूखने पर पुनः गोमूत्र देकर पकायें। गोमूत्र सूखने पर ३ लीटर जल देकर पुनः पकायें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में तैल को संग्रहीत करें। इसे 'अपामार्ग तैल' कहते हैं। इसे नासा द्वारा नस्य देने से शिरःशूल एवं शिर की कृमियाँ नष्ट हो जाती हैं।

विमर्श—इस तैल का पाक करते समय थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र देकर पाक करें। इस तैल में गोमूत्र एक साथ (३ लीटर) डाल देने पर तैल में उफान आकर तैल गिरने लगेगा और बार-बार उफान आकर सभी तैल नष्ट हो जायेगा। फलतः गोमूत्र थोड़ा-थोड़ा डालना चाहिए। गोमूत्र सूखने पर गोमूत्र एवं कल्क के सम्यक् पाक हेतु गोमूत्र के बराबर जल देकर पकाना ही गुणकारी है।

मात्रा—३-४ बूँद। **वर्ण**—रक्ताभ। **रस**—क्षारीय। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **उपयोग**—शिरोरोग, शिर:कृमि तथा कर्णशूल में।

२०. कनकतैल-१

कनकार्कबला दूर्वा वासको वैजयन्तिका।
निर्गुण्डीपूतिकाभार्गीशाखोटकपुनर्नवा: ॥११०॥
बदरीविजयापत्रं श्रीफलं बृहती तथा।
चित्रकञ्च स्नुहीमूलमग्निमन्थो व्यडम्बकम् ॥१११॥
त्रिवृद्दण्डी गोमठी च पत्रमारग्वधस्य च।
प्रत्येकं द्विपलञ्चैषां गृह्णीयात्तत्क्षणादपि ॥११२॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम्।
प्रस्थञ्च कटुतैलस्य पाचयेत् तीव्रवह्निना ॥११३॥
द्रव्याण्येतानि सर्वाणि कल्कितानि प्रदापयेत्।
चक्षु:शूलं शिर:शूलं श्लीपदं मांसरक्तजम् ॥११४॥
आमवातञ्च हृच्छूलं वृद्धिञ्च गलगण्डकम्।
शोथं बाधिर्यमुदरं कासं हन्ति न संशय: ॥११५॥
दूर्वायां पतिते बिन्दौ शुष्कतां याति तत्क्षणात्।
कनकाख्यमिदं तैलं कफरोगकुलान्तकम् ॥११६॥

१. धत्तूरपत्र, २. अर्कपत्र, ३. बलामूल, ४. दूर्वा, ५. वासा पत्र, ६. जयन्तिपत्र, ७. निर्गुण्डीपत्र, ८. पूतिकरञ्जबीज, ९. भार्गी, १०. शाखोट, ११. पुनर्नवामूल, १२. बदरीपत्र, १३. भांगपत्र, १४. बिल्वफलमज्जा, १५. बृहती, १६. चित्रकमूल, १७. स्नुहीमूल, १८. अग्निमन्थ, १९. एरण्डमूल, २०. निशोथ, २१. मंजीठ, २२. त्रायमाण, २३. आरग्वधपत्र—प्रत्येक द्रव्य १०० ग्राम लें। इन्हें यवकुट कर १२$\frac{1}{2}$ लीटर जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर छान लें। इसी यवकुट से महीन चूर्ण छानकर १९० ग्राम चूर्ण कल्क के लिए पृथक् रखें। इसे जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। अब सरसोतैल ७५० मि.ली. लेकर इसे मूर्च्छित करें। तत: मूर्च्छित-तैल में कल्क एवं क्वाथ देकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब द्रवांश सूख जाय तो परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तैल को कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल के अभ्यङ्ग से नेत्रशूल, शिर:शूल, मांसज एवं रक्तज श्लीपद, आमवात, हृच्छूल, वृद्धि, गलगण्ड, शोथ, बाधिर्य, उदररोग एवं कास रोगों को नि:सन्देह दूर करता है। इस तैल की २-४ बूँदें यदि दूर्वा पर गिर जाय तो दूर्वा सूख जाती है। यह कफज रोगसमूह को नष्ट करता है। इसे कनकतैल कहते हैं।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—कटुतैल गन्धी। **उपयोग**—बाधिर्य।

२१. कनकतैल-२

कनकस्य रसप्रस्थं प्रस्थं वर्षाभुवस्तथा।
निर्गुण्डीस्वरसप्रस्थं दलमूलरसस्य च ॥११७॥
पारिभद्ररसप्रस्थं प्रस्थं वरुणकस्य च।
तैलप्रस्थं समादाय भिषग्यत्नाद्विपाचयेत् ॥११८॥
कल्कैरर्द्धपलैरेतै: शुण्ठीमरिचसैन्धवै:।
पुनर्नवाकर्कटकशेलुत्वक्पिप्पलीयुगै: ॥११९॥
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे पात्रे निधापयेत्।
वातश्लेष्मकृतं सर्वमामवातं भगन्दरम् ॥१२०॥
सन्निपातभवं रोगं शोथमाशु विनाशयेत्।
ये केचिद् व्याधय: सन्ति श्लैष्मिका: सान्निपातिका: ॥
तान् सर्वान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदित: ॥१२१॥

१. धत्तूरपत्रस्वरस, २. पुनर्नवापञ्चाङ्गस्वरस, ३. निर्गुण्डी-पत्रस्वरस, ४. दशमूलक्वाथ, ५. फरहद (पारिभद्र) रस, ६. वरुणत्वक्क्वाथ—उपर्युक्त इन सभी ६ द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ १-१ प्रस्थ (७५० मि.ली.) लें। तिलतैल १ प्रस्थ (७५० मि.ली.) लें।

कल्क द्रव्य—१. सोंठ, २. मरिच, ३. सैन्धव, ४. पुनर्नवा मूल, ५. कर्कटशृंगी, ६. लिसोड़ात्वक्, ७. पीपर, ८. गजपिप्पली—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लें। इन सभी द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बनायें।

विधि—सर्वप्रथम तैल का मूर्च्छन करें। तत: उस मूर्च्छित तैल में १-१ स्वरस एवं कल्क को मिलाकर पाक करें। एक स्वरस सूखने पर ही दूसरा स्वरस देकर पाक करें। इसी प्रकार सभी द्रव (स्वरस-क्वाथ) सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल के अभ्यङ्ग से वात-कफज रोग नष्ट हो जाते हैं। सभी आमवात, भगन्दर, सन्निपात जन्य रोग, शोथरोग नष्ट हो जाते हैं। कफज एवं सान्निपातिक सभी व्याधियाँ उसी प्रकार शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। इसे कनकतैल कहते हैं।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—तैलगन्धी। **उपयोग**—कफज एवं सन्निपातज रोग।

२२. रुद्रतैल

जैपालद्रोणधुस्तूरशिग्रुशक्राशनस्य च।
सूर्यावर्त्तस्य सूर्यस्य पत्राणां स्वरसं पृथक् ॥१२२॥
जम्बीरशृङ्गबेरस्य रसं दत्त्वा समं समम्।
कटुतैलस्य पात्रन्तु शोधयित्वा पचेद् भिषक् ॥१२३॥
रजनीद्वयमञ्जिष्ठाकट्फलं कृष्णजीरकम्।
त्रिकटु पिप्पलीमूलं शारिवे द्वे विडङ्गकम् ॥१२४॥

रास्ना दारु बला निम्बं मुस्तकं चन्दनं तथा।
परशू द्वौ स्नुहीमूलमूर्वाऽपामार्गमूलकम् ॥१२५॥
स्वरसद्रव्यमेतेषां कल्कं दत्त्वा तु पादिकम्।
मृत्पात्रे सुदृढे चैव पाचयेत्तीव्रवह्निना ॥१२६॥
बलासमूर्ध्वगञ्चैव नाशयेत् त्रिदिनाद् ध्रुवम्।
मुखनासाक्षिरोगांश्च कफशोणितसंस्रवान् ॥१२७॥
शिरोरोगं सन्निपातं श्लीपदं गलगण्डकम्।
अभ्यङ्गान्नाशयेदेतान् पानात् कासं व्यपोहति।
कालाग्निरुद्रसम्प्रोक्तं रुद्रतैलमिदं पुरा ॥१२८॥

सरसोतैल ३ ली.।

१. दन्तीमूलक्वाथ, २. द्रोणपुष्पीस्वरस, ३. धत्तूरपत्रस्वरस, ४. शिग्रुत्वक्क्वाथ, ५. भांगपत्रस्वरस, ६. सूर्यावर्त्त (हुरहुर) क्वाथ, ७. अर्कपत्रस्वरस, ८. जम्बीरीस्वरस, ९. आर्द्रकस्वरस—प्रत्येक द्रव (स्वरस/क्वाथ) ३-३ ली. लें।

कल्क द्रव्य—१. हल्दी, २. दारुहल्दी, ३. मंजीठ, ४. कट्फल, ५. स्याहजीरा, ६. सोंठ, ७. पीपर, ८. मरिच, ९. पिपरामूल, १०. कृष्ण अनन्तमूल, ११. श्वेतअनन्तमूल, १२. विडङ्ग, १३. रास्ना, १४. देवदारु, १५. बलामूल, १६. निम्बत्वक्, १७. मुस्ता, १८. श्वेतचन्दन, १९. परशू द्वौ (द्रव्य विशेष), २०. स्नुहीमूल, २१. मूर्वा तथा २२. अपामार्ग—ये प्रत्येक द्रव्य ३५-३५ ग्राम लें। अर्थात् तैल का चतुर्थांश कुल १ प्रस्थ (७५० ग्राम) लें।

विधि—कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। ततः एक पात्र में मूर्च्छितसरसोतैल, दन्तीमूलक्वाथ एवं कल्क मिलाकर पाक करें। जब क्वाथ द्रव सूख जाय तो द्रोणपुष्पी का क्वाथ देकर पाक करें। इसके सूखने पर क्रमशः धत्तूरस्वरस, शिग्रुक्वाथ, भाँगस्वरस, हुरहुरक्वाथ, अर्कपत्ररस, जम्बीरीस्वरस एवं आर्द्रकस्वरस देकर पाक करें। स्नेहपाकविद् वैद्य स्नेहपाक की परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को 'रुद्रतैल' कहते हैं। इसे आचार्य कालाग्निरुद्र ने निर्मित किया था। इस तैल का अभ्यङ्ग एवं पान करने से अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अभ्यङ्ग से निश्चित रूप से तीन दिनों में ही ऊर्ध्वजत्रुगतरोग, कफजरोग, मुखरोग, नासारोग, नेत्ररोग, कफस्राव, रक्तस्राव, शिरोरोग, सन्निपातज रोग, श्लीपद, गलगण्ड नष्ट हो जाते हैं तथा इस तैल को पीने से कासरोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ, पानार्थ ५० मि.ली.। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम पानी से। **रस**—कटु। **गन्ध**—सरसोतैल गन्धी। **उपयोग**—ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में।

२३. तप्तराज तैल-१

लवलीनां रसप्रस्थं शिग्रुधुस्तूरयोस्तथा।
वासकस्य रसप्रस्थं तथा निर्गुण्डिकार्कयोः ॥१२९॥
दशमूलरसप्रस्थं करञ्जबलयोस्तथा।
पृथगेतैः पचेद्धीमांस्तैलप्रस्थञ्च सार्षपम् ॥१३०॥
कल्कैः कणा बला शुण्ठी पिप्पलीमूलचित्रकम्।
कट्फलं कनकं चव्यं जीरकं शतपुष्पिका ॥१३१॥
पुनर्नवा हरिद्रा च देवदारु च लाङ्गली।
शुष्कमूलककुष्ठञ्च यासकं कृष्णजीरकम् ॥१३२॥
स्नुह्यर्कक्षीरं जैपालमूलं नागदलं तथा।
विडङ्गं सैन्धवं क्षारं चन्दनं शिग्रुमुत्पलम् ॥१३३॥
मरिचं मधुकं रास्ना शृङ्गी व्याघ्री वरुणकम्।
एतेषां कार्षिकैः कल्कैर्विपचेत्पाकविद् भिषक् ॥१३४॥
अभ्यङ्गाच्छ्लैष्मिकं हन्ति पानात्कासं व्यपोहति।
श्वयथुञ्चोदरं शूलं शिरोरोगं सुदुस्तरम् ॥१३५॥
शिरःशूलं नेत्रशूलं कर्णशूलञ्च दारुणम्।
त्रयोदशसन्निपातान् वातश्लेष्मगलग्रहान् ॥१३६॥
एकजं द्वन्द्वजं चैव तथैव सान्निपातिकम्।
सर्वशोथं निहन्त्येव ज्वरं प्लीहानमेव च ॥१३७॥
श्लेष्मरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
तप्तराजमिदं तैलमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥१३८॥

क्वाथ द्रव्य—१. हरफरौड़ीत्वक्क्वाथ, २. शिग्रुक्वाथ, ३. धत्तूरपत्रस्वरस, ४. वासापत्रस्वरस, ५. निर्गुण्डीपत्ररस, ६. दशमूलक्वाथ, ७. करञ्जत्वक्क्वाथ, ८. बलामूलक्वाथ, ९. अर्कपत्रस्वरस—प्रत्येक द्रव ७५० मि.ली. लें। सरसोतैल १ प्रस्थ (७५० मि.ली.) लें।

कल्क द्रव्य—१. पीपर, २. बलामूल, ३. शुण्ठी, ४. पिपरामूल, ५. चित्रकमूल, ६. कट्फल, ७. धत्तूरबीज, ८. चव्य, ९. जीरा, १०. सौंफ, ११. पुनर्नवामूल, १२. हल्दी, १३. देवदारु, १४. लाङ्गली, १५. सूखीमूली, १६. कूठ, १७. जवासा, १८. स्याहजीरा, १९. स्नुहीक्षीर, २०. दन्तीमूल, २१. नागदमनी, २२. विडङ्ग, २३. सैन्धव, २४. यवक्षार, २५. श्वेतचन्दन, २६. सहिजन, २७. नीलकमल, २८. मरिच, २९. यष्टिमधु, ३०. रास्ना, ३१. कर्कटशृंगी, ३२. कण्टकारी, ३३. वरुणत्वक्—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। इन्हें कूट-पीस कर कल्क बना लें।

विधि—सर्वप्रथम सरसोतैल को मूर्च्छन करें। ततः उक्त मूर्च्छिततैल में कल्क और हरफरौड़ी का क्वाथ देकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब क्वाथ सूख जाय तो क्रमशः शिग्रु, धत्तूर, वासा, निर्गुण्डी, अर्कपत्र, दशमूल, करञ्ज, बलामूलस्वरस का क्वाथ

दे-देकर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'तप्तराज तैल' कहते हैं।

उपयोग—इसके अभ्यङ्ग से कफजरोग तथा पान करने से कासरोग नष्ट होते हैं। शोथ, उदररोग, शूलरोग, भयंकर शिरोरोग, शिरःशूल, नेत्रशूल, कर्णशूल, १३ प्रकार सन्निपात, वातश्लेष्मरोग, गलग्रह, एकदोषज, द्विदोषज एवं त्रिदोषज—सभी प्रकार के शोथ, ज्वर, प्लीहारोग और कफजरोग उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। यह ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों का भी नाश करता है।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ, पानार्थ ५० मि.ली.। **वर्ण**—पीताभ। **रस**—किञ्चित् तिक्तरस। **गन्ध**—सरसोतैलगन्धी। **उपयोग**—ऊर्ध्वजत्रुगत रोग।

२४. तप्तराज तैल-२

धुस्तूरं पूतिकं पीता जयन्ती सिन्धुवारकम्।
शिरीषं हिज्जलं शिग्रु दशमूलं समं भवेत् ॥१३९॥
प्रस्थं प्रस्थं समादाय कटुतैलं समांशकम्।
जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥१४०॥
गोमूत्रञ्चाढकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
मदनं त्र्यूषणं कुष्ठमजाजी विश्वभेषजम् ॥१४१॥
कट्फलं वरुणं मुस्तं हिज्जलं बिल्वमेव च ।
हरितालं जपापुष्पममृतं कुटकी तथा ॥१४२॥
कर्कटं चन्दनं शिग्रु यमानी व्याघ्रपादपि।
एतेषां कार्षिकैर्भागैः समभागं प्रकल्पयेत् ॥१४३॥
तप्तराजमिति ख्यातं महादेवेन निर्मितम्।
सन्निपातं महाघोरं शिरोरोगं महोत्तरम् ॥१४४॥
शिरःशूलं नेत्ररोगं कर्णशूलञ्च दारुणम्।
ज्वरं दाहं महाघोरं स्वेदञ्चैव महोत्तरम् ॥१४५॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च हलीमकमपीनसम्।
त्रयोदश सन्निपातान् हन्ति सद्यो न संशयः ॥१४६॥

१. धत्तूरपञ्चांग, २. करञ्जबीज, ३. हरिद्रा, ४. जयन्तीपत्र, ५. निर्गुण्डीपत्र, ६. शिरीषत्वक्, ७. समुद्रफलत्वक्, ८. शिग्रुत्वक्, ९. दशमूल का मिलित द्रव्य—प्रत्येक द्रव्य ७५० ग्राम (१-१ प्रस्थ) लें। कटु (सरसो) तैल ७५० मि.ली. तथा गोमूत्र ३ लीटर लें।

कल्क द्रव्य—१. मदनफल, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. कूठ, ६. जीरा, ७. सोंठ, ८. कट्फल, ९. वरुण त्वक्, १०. मुस्ता, ११. समुद्रफल, १२. बिल्वफल, १३. हरताल, १४. जपापुष्प, १५. गुडूची, १६. कटुकी, १७. काकड़ासिंगी, १८. श्वेतचन्दन, १९. शिग्रुत्वक्, २०. अजवाइन तथा २१. व्याघ्रपाद—ये सभी २१ द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

विधि—इन कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर जल से सिल पर पीसकर कल्क बना लें तथा तैल का सबसे पहले मूर्च्छन कर लें। ततः उपर्युक्त सभी क्वाथ्य द्रव्यों को २ द्रोण (२५ लीटर) जल में पकाकर चतुर्थांशावशेष रखकर क्वाथ छान लें। फिर उक्त मूर्च्छित तैल में कल्क एवं क्वाथ देकर पाक करें। तैल में जलीयांश नहीं रहने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतार कर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर तैल को काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'तप्तराज तैल' कहते हैं। इसका निर्माण भगवान् श्री महादेव ने किया था। इस तैल के अभ्यङ्ग से भयंकर सन्निपात, दारुणशिरोरोग, शिरःशूल, नेत्ररोग, दारुण कर्णशूल, ज्वर, घोरदाह, अत्यधिकस्वेद, कामला, पाण्डु, हलीमक, अपीनस और १३ प्रकार के सन्निपातज्वर निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ। **वर्ण**—पीताभ। **रस**—कटु। **गन्ध**—सरसोतैलगन्धी। **उपयोग**—ऊर्ध्वजत्रुगतरोग, सन्निपात ज्वरादि में।

२५. किङ्किणी तैल

किङ्किनीप्रस्थमेकञ्च प्रस्थं सहचरस्य च।
कृष्णधुस्तूरकप्रस्थं प्रस्थञ्च सिन्धुवारकम् ॥१४७॥
पचेत् पात्रं जलं दत्त्वा पादशेषं समुद्धरेत्।
तैलप्रस्थं विपक्तव्यं द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥१४८॥
यष्टी कणा पयोदञ्च गन्धकं कुष्ठमेव च।
समुद्रान्ता तथा शृङ्गी किङ्किनीराजहेमकम् ॥१४९॥
रास्ना मधुरिका झिण्टीमूलमीश्वरमेव च।
विषमाधूकमञ्जिष्ठा वल्कलं शिग्रुसम्भवम् ॥१५०॥
एषां कर्षद्वयञ्चैव पिष्ट्वा चात्र समावपेत्।
निहन्ति पूतिकर्णञ्च कर्णस्रावं सकण्डुकम् ॥१५१॥
कर्णनादं कर्णशोथं बाधिर्यं दारुणं तथा।
शिरोरोगं नेत्ररोगं मन्यास्तम्भं गलग्रहम् ॥
एतान् रोगान्निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥१५२॥

क्वाथ द्रव्य—१. किङ्किणी (विकंकत वृक्ष = स्रुवा वृक्ष), २. सहचर, ३. कृष्णधत्तूर, ४. निर्गुण्डी—ये प्रत्येक ७५० ग्राम लें। इन्हें $१२\frac{१}{२}$ लीटर जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर कपड़ा से छान लें। तिलतैल ७५० मि.ली. (१ प्रस्थ) लें।

कल्क—१. मुलेठी, २. पीपर, ३. नागरमोथा, ४. गन्धक, ५. कूठ, ६. दुरालभा, ७. [illegible] काकडासिंगी, ८. किङ्किणी, ९. धत्तूर, १०. रास्ना, ११. सौंफ, १२. सहचर,

१३. ईश्वरमूल, १४. विषमाधूक, १५. मंजीठ तथा १६. शिग्रुत्वक्—इन सभी द्रव्यों को २३-२३ ग्राम लें।

विधि—सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः चारों क्वाथ द्रव्यों को यवकुट कर १२½ लीटर जल में रात्रिपर्यन्त भिगोकर क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर छान लें और मूर्च्छिततैल में मिलायें। ततः कल्क के सभी १६ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बनायें और तैलपात्र में मिलाकर अच्छी तरह चलाते रहें। जब तैल से जलीयांश सूख जाय तो परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से तैल को छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को दोनों कानों में ५-६ बूँद डालने से पूतिकर्ण, कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णनाद, कर्णशोथ, भयानक बाधिर्य, शिरोरोग, नेत्ररोग, मन्यास्तम्भ, गलग्रह आदि रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे इन्द्र के वज्र से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५-६ बूँद कानों में। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—गन्धक जैसी। **उपयोग**—ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में लाभदायक है।

२६. गुञ्जातैल

विशुद्धं तिलतैलञ्च तत्समं काञ्जिकं भवेत्।
आरनालसमं भृङ्गद्रवं कृत्वा प्रदापयेत् ॥१५३॥
मन्दाग्निना ततः पाच्यं यावत्तैलस्थितिर्भवेत्।
तैलमध्ये प्रदातव्यं पिष्ट्वा गुञ्जापलद्वयम् ॥१५४॥
उत्तार्य तैलशेषन्तु दिनैकं तत्तु रक्षयेत्।
शिरोरोगेषु दुष्टेषु अर्द्धशीर्षे सुदारुणे ॥१५५॥
भ्रूशङ्खकर्णपीडाश्च नश्यन्ति नात्र संशयः।
गुञ्जातैलमिति ख्यातं दत्तं हन्ति शिरोव्यथाम् ॥१५६॥

१. तिलतैल ३७५ मि.ली., २. काञ्जी ३७५ मि.ली., ३. भृङ्गराजस्वरस ३७५ मिली. तथा ४. गुञ्जाफल ९३ ग्राम लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। गुञ्जाबीज को चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसें और कल्क बना लें। इस कल्क और काञ्जी को मूर्च्छित तिलतैल में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। काञ्जी सूखने पर भृङ्गराजस्वरस देकर पुनः पकायें। स्वरस का जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का नस्य लेने से दूषित शिरोरोग, भयानक अर्द्धावभेदक, भ्रू, शंख, कर्ण प्रदेश का शूल और शिरोरोग निःसन्देह नष्ट हो जाते है। इसे 'गुञ्जातैल' कहते हैं।

मात्रा—नस्यार्थ ४-४ बूँद, कर्णपूरणार्थ ५-६ बूँद। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—अम्लीय। **उपयोग**—ऊर्ध्वजत्रुगत रोग।

२७. कुमारीतैल (भा.प्र.)

कुमार्याः स्वरसे प्रस्थे धुस्तूरस्य रसे तथा।
भृङ्गराजस्य च रसे प्रस्थद्वयसमायुते ॥१५७॥
चतुःप्रस्थमिते क्षीरे तैलं प्रस्थं विपाचयेत्।
कल्कैर्मधुकह्रीबेरमञ्जिष्ठाभद्रमुस्तकैः ॥१५८॥
नखकर्पूरभृङ्गैलाजीवन्तीपद्मकुष्ठकैः।
मार्कवासकतालीशसर्जनिर्यासपत्रकैः ॥१५९॥
विडङ्गशतपुष्पाऽश्वगन्धागन्धर्वहस्तकैः।
शोकहृन्नारिकेलाभ्यां कर्षमानैर्विपाचितम् ॥१६०॥
उत्तार्य वस्त्रपूतं च शुभे भाण्डे सुधूपिते।
त्रिरात्रमथ गुप्तं च धारयेद् विधिवद्भिषक् ॥१६१॥
ततस्तु तैलमभ्यङ्गे मूर्ध्नि क्षेपे नियोजयेत्।
शमयेदर्दितं गाढं मन्यास्तम्भं शिरोगदान् ॥१६२॥
तालुनासाऽक्षिजातं तु शोषं मूर्च्छां हलीमकम्।
हनुग्रहगदार्त्तिं वा बाधिर्यं कर्णवेदनाम् ॥१६३॥

१. घृतकुमारीस्वरस ७५० मि.ली., २. धत्तूरपत्रस्वरस ७५० मि.ली., ३. भृङ्गराजस्वरस १५०० मि.ली., ४. गोदुग्ध ३ लीटर, ५. तिलतैल ७५० मि.ली.।

कल्क द्रव्य—१. मुलेठी, २. सुगन्धबाला, ३. मंजीठ, ४. नागरमोथा, ५. नख, ६. कर्पूर, ७. भृङ्गराज, ८. छोटी इलायची, ९. जीवन्ती, १०. पद्मकाष्ठ, ११. कूठ, १२. भृङ्गराज, १३. वासा, १४. तालीशपत्र, १५. राल, १६. तेजपात, १७. विडङ्ग, १८. सौंफ, १९. अश्वगन्धा, २०. एरण्डपत्र, २१. अशोकत्वक् तथा २२. नारियल की गिरी—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

विधि—सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः मुलेठी से लेकर नारियल की गिरी तक के सभी २२ द्रव्यों का चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें और मूर्च्छिततैल में कल्क और घृतकुमारीस्वरस मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। कुमारीस्वरस सूखने पर धत्तूरपत्रस्वरस देकर पाक करें। धत्तूरपत्र सूखने पर भृङ्गराजस्वरस देकर पाक करें। भृङ्गराजरस सूखने पर गोदुग्ध देकर पाक करें। गोदुग्ध सूखने पर ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। ततः परीक्षोपरान्त स्नेह सिद्ध समझकर चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर धूपित पात्र में या काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'कुमारी तैल' कहते हैं। इस तैल को जमीन में १ हाथ गहरा गड्ढा खोदकर तैलपात्र सहित गड्ढे में रखकर ऊपर से मिट्टी भर दें। ३ दिनों के बाद इस तैल को निकालकर सुरक्षित कर लें। इस तैल का सर्वाङ्ग में अभ्यङ्ग एवं शिर में डालने से अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, तालुरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शोष, मूर्च्छा, हलीमक, हनुग्रह, बाधिर्य एवं कर्णशूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—सर्वाङ्ग अभ्यङ्ग, नस्य तथा कान में ५-५ बूँद। **वर्ण**—रक्ताभ। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—गोदुग्धपाक गन्धी।

उपयोग—ऊर्ध्वजत्रुगत रोग।

२८. धुस्तूरतैल

धुस्तूरक्वाथकल्काभ्यां कटुतैलं विपाचयेत्।
सन्निपातज्वरश्लेष्मशोथशीर्षार्त्तिदाहनुत्।
कर्णग्रहहरं चास्थिसन्धिग्रहविनाशनम्॥१६४॥

१. कटुतैल (सरसोतैल) ३७५ मि.ली. २. धत्तूरपत्रस्वरस १५०० मि.ली., ३. धत्तूरपत्रकल्क ९३ ग्राम।

सर्वप्रथम कटुतैल का मूर्च्छन करें। ततः उक्त तैल में धत्तूर-पत्रस्वरस एवं कल्क मिलाकर पाक करें। स्वरस सूखने पर १५०० मि.ली. जल मिलाकर पुनः पाक करें। द्रव्यांश सूख जाने पर स्नेहपाकविद् परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'धुत्तूरतैल' कहते हैं। इस तैल के अभ्यङ्ग से सन्निपातज्वर, कफजशोथ, शिरःशूल, शिरोदाह, कर्णशूल एवं अस्थि-सन्धिशूल का नाश होता है।

मात्रा—अभ्यङ्ग, नस्य, कर्णपूरण। **वर्ण**—पीताभ। **गन्ध**—सरसोतैल की गन्ध। **रस**—कटु।

शिरोबस्ति में पथ्य

आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्यादयोऽपि च।
मुद्गान्माषान्कुलत्थांश्च खादेद्वा निशि केवलान्॥
कटुकोष्णान् ससर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा॥१६५॥

जंगली पशु-पक्षियों के मांस, शालि आदि धान्य के चावल, मूँग, उड़द तथा कुलत्थ का सेवन करें। गोघृत को त्रिकटु आदि से संस्कृत कर केवल रात्रि के समय लेना हितकर है। साथ ही सुखोष्ण गोदुग्ध भी शिरोबस्ति के प्रयोग के समय में हितकर है।

शिरोरोग में पथ्य

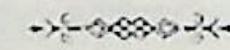
स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको
लेपश्छर्दिर्लङ्घनं शीर्षबस्तिः।
रक्तोन्मुक्तिर्वह्निकर्मोपनाहो
जीर्णं सर्पिः शालयः षष्टिकाश्च॥१६६॥
यूषो दुग्धं धन्वमांसं पटोलं
शिग्रुर्द्राक्षा वास्तुकं कारवेल्लम्।
आम्रं धात्री दाडिमं मातुलुङ्गं
तैलं तक्रं काञ्जिकं नारिकेलम्॥१६७॥
पथ्या कुष्ठं भृङ्गराजः कुमारी
मुस्तोशीरं चन्द्रिका गन्धसारः।
कर्पूरश्च ख्यातिमानेष वर्गः
सेव्यो मर्त्यैः शीर्षरोगे यथास्वम्॥१६८॥

स्वेदन, नस्य, धूमपान, विरेचन, लेप, वमन, लंघन, शिरोबस्ति, रक्तमोक्षण, वह्निकर्म, उपनाह, पुराणघृत, शालि चावल, साठीचावल, यूष, गोदुग्ध, जङ्गली पशु-पक्षियों के मांस, पटोल, शिग्रु (सहिजन), द्राक्षा, बथुआ, करैला, आम, आमला, अनार, मातुलुङ्गनिम्बु, तिलतैल, तक्र, काञ्जी, नारियल, हरीतकी, कूठ, भृङ्गराज, घृतकुमारी, मुस्ता, खस, चाँदनीरात, सुगन्ध द्रव्य एवं कर्पूर—ये शिरोरोग में पथ्य के रूप में प्रसिद्ध द्रव्य कहे गये हैं।

शिरोरोग में अपथ्य

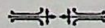
क्षवजृम्भामूत्रबाष्पनिद्राविड्वेगमञ्जनम् दुष्टनीरं
विरुद्धान्नं सह्यबिन्ध्यसरिज्जलम्।
दन्तकाष्ठं दिवानिद्रां शिरोरोगी परित्यजेत्॥१६९॥

इति भैषज्यरत्नावली शिरोरोगाधिकारः।



छींक, जृम्भा, मूत्र, निद्रा एवं पुरीष—इनके वेगों को रोकना तथा दूषितजल, विरुद्धअन्न, सह्य पर्वत एवं विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली नदियों का पानी नहीं पीना चाहिए। दन्तधावन (दतुअन) तथा दिन में सोना शिरोरोगी को छोड़ देना चाहिए। अर्थात् ये सभी कर्म अपथ्य माने गये हैं।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य शिरोरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ प्रदररोगाधिकारः (६६)

१. वातज प्रदररोग चिकित्सा (च.द.)

दध्ना सौवर्चलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम्।
पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥१॥

गाय का दही ५० ग्राम, सौवर्चललवण २ ग्राम; जीराचूर्ण, मुलेठी, नीलकमल—चारों का चूर्ण ३-३ ग्राम एवं मधु १० ग्राम—इन सबको मिलाकर दिन में २-३ बार सेवन करने से वातज प्रदर नष्ट हो जाता है।

२. वातज प्रदर में मृगरक्त पान (च.द.)

पिबेदैणेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् ॥२॥

रक्तप्रदर की रुग्णा को हरिन का रक्त १० मि.ली., शर्करा १० ग्राम तथा मधु १० ग्राम मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे रक्तप्रदर नष्ट हो जाती है।

विमर्श—शिवदास सेन के मतानुसार दशमूलक्वाथ में रक्त मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे रक्त में स्त्यानता नहीं उत्पन्न होती है।

३. प्रदरनाशक कुशमूल प्रयोग (च.द.)

कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना।
एतत्पीत्वा त्र्यहान्नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥३॥

कुशमूल को उखाड़कर जल से धोकर साफ करें और सिल पर तण्डुलोदक से पीसकर तण्डुलोदक मिलाकर छान लें और दिन में ३-४ बार पिलाने से तीन दिन में स्त्रियों का प्रदररोग नष्ट हो जाता है।

४. अशोकत्वक् क्षीरपाक (च.द.)

अशोकवल्कलक्वाथशृतं दुग्धं सुशीतलम्।
यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥४॥

अशोकत्वक् २५ ग्राम को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। उस क्वाथ को समभाग दूध में मिलाकर चीनी मिलाकर शीतल होने पर प्रातः यथाबल पीने से रक्तप्रदर नष्ट हो जाता है। इसे दिन में २-३ बार पिलाना चाहिए।

५. रक्तप्रदरहर प्रयोग (च.द.)

क्षौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोदुम्बरजं पिबेत्।
असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥५॥

काष्ठोदुम्बर (कठगूलर = अंजीर) के फल का रस २५ मि.ली. में मधु १० ग्राम मिलाकर दिन में २-३ बार पिलाने से रक्तप्रदर नष्ट हो जाता है। पथ्य में चीनी मिला दूध-भात खिलाना चाहिए।

६. रक्तप्रदरहर प्रयोग (च.द.)

प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन संयुतं पीतम्।
कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम् ॥६॥

बलामूल को साफकर सिल पर गोदुग्ध से पीसकर वस्त्रपूत कर पीने से रक्तप्रदर नष्ट हो जाता है। इस दूध को दिन में ३-४ बार पीना चाहिए। **अथवा**—कुशमूल और बलामूल का चूर्ण करें और सिल पर तण्डुलोदक से पीसें तथा तण्डुलोदक मिलाकर कपड़ा से छानकर दिन में २-३ बार पिलाने से रक्तप्रदररोग नष्ट हो जाता है।

७. प्रदरनाशक ४ योग (च.द.)

गुडेन बदरीचूर्णं मोचमामं तथा पयः।
पीता लाक्षा च सघृता पृथक् प्रदरनाशनाः ॥७॥

१. समभाग गुड़ के साथ बदरीफलचूर्ण ३ ग्रा., २. कच्चा कदलीफलचूर्ण ३ ग्रा. तथा ३. सिर्फ गोदुग्ध पीना तथा ४. लाक्षाचूर्ण और घृत का सेवन—इन चारों योगों में से किसी भी एक का सेवन करने से प्रदर रोग नष्ट हो जाता है।

८. प्रदरनाशक योग (च.द.)

रक्तपित्तविधानेन प्रदरांश्चाप्युपाचरेत्।
रक्तातिसारवद्वाऽथ रक्तार्शोवत्तथैव च ॥
असृग्दरे विशेषेण कुटजाष्टक इष्यते ॥८॥

रक्तपित्त या रक्तातिसार एवं रक्तार्शरोग नष्ट करने वाली औषधियों के द्वारा भी रक्तप्रदर की चिकित्सा करनी चाहिए। रक्तातिसार का कुटजाष्टक क्वाथ का प्रयोग विशेष हितकर है।

९. रक्तप्रदरहर ३ योग (च.द.)

रोहीतकमूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरे पिबेत्।
जलेनामलकीबीजकल्कं वा ससितामधु ॥९॥
धातक्याश्चाक्षमात्रं वा आमलक्या मधुद्रवम्।
काकजानुकमूलं वा मूलं कार्पासमेव वा ॥
पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥१०॥

(१) रक्तप्रदरजन्य पाण्डुता में रोहीतक मूलत्वक् को चूर्ण को सिल पर तण्डुलोदक से पीसकर कल्क बनायें। इस कल्क को

१२ ग्राम की मात्रा में तण्डुलोदक के साथ सेवन करने से रक्त प्रदररोग नष्ट हो जाता है। (२) आमलकीबीजमज्जा १ तोला (१२ ग्राम) सिल पर पीस लें और उसमें मधु और शर्करा मिलाकर तण्डुलोदक से सेवन करने से रक्तप्रदर नष्ट हो जाता है। (३) धातकीपुष्प, काकजंघामूल, आमलकीफलचूर्ण तथा कपासमूल—इन चार द्रव्यों में से किसी एक का १२ ग्राम चूर्ण मधु एवं शर्करा के साथ लेहन कर तण्डुलोदक ५० मि.ली. पीने से रक्तप्रदर रोग नष्ट हो जाता है। इसे दिन में २-३ बार करें।

१०. वातज प्रदरहर पेय

शर्करा मधुकं शुण्ठी तैलं दधि च तत्समम्।
खजेन मथितं पीतं हन्याद्वातोत्थितं रजः ॥११॥

गोदधि २५० ग्राम, शर्करा ५० ग्राम, मधुयष्टि ५ ग्राम तथा शुण्ठी ५ ग्राम—इन्हें एक पात्र में रखकर मथानी (खज) से मथकर दिन में दो बार पिलाने से वातज प्रदर रोग शान्त हो जाता है।

११. पित्तज प्रदरहर स्वरस

वासकस्वरसं पित्ते गुडूच्या रसमेव वा ॥१२॥

पित्तज प्रदर में वासापत्रस्वरस अथवा गुडूचीस्वरस २५-२५ मि.ली. मधु एवं चीनी मिलाकर दिन में ३ बार पिलाने से अत्यधिक लाभ होता है।

१२. योनिदाहहर स्वरस

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहापहं पिबेत् ॥१३॥

आमलकीस्वरस २५ मि.ली. में चीनी १० ग्राम मिलाकर दिन में ३ बार पिलाने से अत्यधिक लाभ होता है।

१३. प्रदररोगहर उपाय (यो.रत्ना.)

भूम्यामलकचूर्णन्तु पीतं तण्डुलवारिणा।
दिनत्रयान्तरेणैव स्त्रीरोगं नाशयेद्ध्रुवम् ॥१४॥

भूमिआमलाचूर्ण ३ ग्राम को तण्डुलोदक ५० मि.ली. के साथ दिन में ३ बार पीने से स्त्रियों का प्रदररोग ३ दिन में नष्ट हो जाता है।

रक्तप्रदररोग में क्रिया

रक्तपित्तहरः सर्वः प्रदरे रक्तजे विधिः।
रक्तातिसारयोगांश्च सर्वमत्र प्रयोजयेत् ॥१५॥

रक्तजप्रदर में रक्त-पित्त का नाश करने वाले तथा रक्तातिसारनाशक सभी योगों का प्रयोग करना चाहिए।

१४. रक्तप्रदरहर प्रयोग

मूलञ्च शरपुङ्खायाः पेषयेत्तण्डुलाम्बुना।
पीत्वा च कर्षमात्रन्तु अतिरक्तं प्रशान्तये त् ॥१६॥

शरपुंखा (शरफोंका) ३ ग्राम के चूर्ण को सिल पर तण्डुलोदक के साथ पीसें और ५० मि.ली. तण्डुलोदक मिला कर दिन में ३ बार पिलाने से रक्तप्रदर अथवा शरीर के किसी भी भाग से होने वाला रक्तस्राव रुक जाता है।

१५. रक्तप्रदरहर प्रयोग

धात्र्यञ्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत्।
शेलुच्छदमिश्रपिष्टभक्षणं च तदर्थकृत् ॥१७॥

आमलाचूर्ण, रसाञ्जनचूर्ण तथा हरीतकीचूर्ण—उन्हें समभाग में ३-४ ग्राम की मात्रा में जल के साथ दिन में ३ बार पीने से रक्तप्रदर नष्ट हो जाता है। अथवा लिसोड़ापत्रचूर्ण को समभाग चावल के चूर्ण के साथ मिलाकर ३ बार पीने से ३ दिन में रक्तप्रदर नष्ट हो जाता है।

१६. रक्तप्रदरहर पारद भस्म प्रयोग

वासाकषायसहितं रसभस्भ प्रयोजितम्।
प्रदरं हन्ति वेगेन सक्षौद्रं नात्र संशयः ॥१८॥

पारद भस्म या रससिन्दूर १ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) मधु में मिलाकर चाट जायें तथा अनुपान रूप में ५० मि.ली. वासापत्र क्वाथ पिलाने से शीघ्र ही प्रदररोग नष्ट हो जाता है।

१७. दार्व्यादि क्वाथ (च.द.)

दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिरातबिल्व-
भल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः।
पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं
पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥१९॥

१. दारुहल्दी, २. रसाञ्जन, ३. वासा, ४. नागरमोथा, ५. चिरायता, ६. बिल्वफलमज्जा तथा ७. शुद्ध भल्लातक—इन्हें समभाग में लेकर यवकुटचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। ५० मि.ली. की मात्रा में इसे दिन में २ बार मधु मिलाकर पिलाने से अतिवेग वाला एवं शूल से युक्त जिसमें पीला, काला, लाल, नीला एवं श्वेतस्राव होता हो प्रदररोग नष्ट हो जाता है।

१८. चन्दनादि चूर्ण (च.द.)

चन्दनं नलदं लोध्रमुशीरं पद्मकेशरम्।
नागपुष्पञ्च बिल्वञ्च भद्रमुस्तञ्च शर्करा ॥२०॥
ह्रीबेरञ्चैव पाठा च कुटजस्य फलं त्वचम्।
शृङ्गबेरं सातिविषा धातकी च रसाञ्जनम् ॥२१॥
आम्रास्थि जम्बुसारास्थि तथा मोचरसोद्भवः।
नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैला दाडिमोद्भवम् ॥२२॥
चतुर्विंशति चैतानि समभागानि कारयेत्।
तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत् ॥२३॥
चतुष्प्रकारं प्रदरं रक्तातीसारमुल्वणम्।

रक्तार्शांसि निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥
अश्विन्योः सम्मतो योगो रक्तपित्तनिबर्हणः ॥२४॥

१. श्वेतचन्दन, २. जटामांसी, ३. लोध्र, ४. खस, ५. कमलकेशर, ६. नागरकेशर, ७. बिल्वत्वक्, ८. नागरमोथा, ९. चीनी, १०. नेत्रबाला, ११. पाठा, १२. इन्द्रयव, १३. कुटजत्वक्, १४. सोंठ, १५. अतीस, १६. धातकीपुष्प, १७. रसाञ्जन, १८. आम्रास्थिमज्जा, १९. जामुनफलमज्जा, २०. मोचरस, २१. नीलकमल, २२. मञ्जिष्ठा, २३. छोटी इलायची, तथा २४. अनारबीज—इन्हें समभाग में लें। इन २४ द्रव्यों का एक साथ सूक्ष्म चूर्ण करें तथा सूक्ष्म छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहोत करें। इसे 'चन्दनादिचूर्ण' कहते हैं। इसे दिन में ३-४ बार ३-३ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ चाटकर ऊपर से ५० मि.ली. तण्डुलोदक पीना चाहिए। इसके सेवन करने से ४ प्रकार के प्रदर, उग्र रक्तातिसार एवं रक्तार्श उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है। इसे अश्विनीकुमारों ने रक्त-पित्तनाशनार्थ बनाया है।

मात्रा—३ ग्राम। **वर्ण**—खाकी वर्ण। **अनुपान**—तण्डुलोदक एवं मधु। **रस**—कषायरस। **गन्ध**—चन्दनगन्धी। **उपयोग**—रक्तप्रदर, रक्तार्श एवं रक्तातिसार और रक्तपित्त में।

१९. पुष्यानुगचूर्ण (च.द.)

पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदं रसाञ्जनम्।
अम्बष्ठकी मोचरसः समङ्गा पद्मकेशरम् ॥२५॥
वाह्लीकातिविषा मुस्तं बिल्वं लोध्रं सगैरिकम्।
त्रिफलां मरिचं शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम् ॥२६॥
कट्वङ्गवत्सकानन्ताधातकीमधुकार्जुनम् ।
पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥२७॥
तानि क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
असृग्दरातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥२८॥
दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत्।
योनिदोषं रजोदोषं श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥२९॥
स्त्रीणां श्यावारुणं तच्च तत्प्रसह्य निवर्त्तयेत्।
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम्।
अम्बष्ठा दक्षिणे ख्याता गृह्णन्त्यन्ये तु लक्ष्मणाम् ॥३०॥

१. पाठा, २. जामुनबीजमज्जा, ३. आम्रफलमज्जा, ४. पाषाणभेद, ५. रसाञ्जन, ६. अम्बष्ठा, ७. मोचरस, ८. मंजीठ, ९. कमलकेशर, १०. केशर, ११. अतीस, १२. नागरमोथा, १३. बिल्वफलमज्जा, १४. लोध्रत्वक्, १५. शुद्ध गैरिक, १६. त्रिफला, १७. मरिच, १८. सोंठ, १९. द्राक्षा, २०. लालचन्दन, २१. सोनापाठात्वक्, २२. कुटजत्वक्, २३. अनन्तमूल, २४. धातकीपुष्प, २५. यष्टिमधु तथा २६. अर्जुनत्वक्—इन २६ द्रव्यों को पुष्यनक्षत्र में ग्रहण करें। इन्हें समान भाग में एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे दिन में ३ बार कुल ३ ग्राम की मात्रा मे मधु मिलाकर चाटें तथा ऊपर से ५० मि.ली. तण्डुलोदक पियें। ऐसा ३-४ दिन प्रयोग करने से रक्तप्रदर, रक्तातिसार, बालकों के आगन्तुक दोष, स्त्रियों के योनि दोष, श्वेत-नील-पीत कृष्ण तथा अरुणवर्ण वाले प्रदररोग अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

विशेष—दक्षिण देश में अम्बष्ठा नाम की औषधि प्रसिद्ध है। उसके अभाव में अन्य लोग लक्ष्मणा या श्वेत कण्टकारी ग्रहण करते हैं।

मात्रा—३ ग्राम। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—मधु एवं तण्डुलोदक। **स्वाद**—कषाय। **गन्ध**—सुगन्ध। **उपयोग**—सभी प्रकार के प्रदर, रक्तप्रदर, रक्तातिसार, रक्तपित्त एवं योनिरोग।

२०. उत्पलादिचूर्ण

कन्दं रक्तोत्पलस्याथ रक्तकार्पासमूलकम्।
करवीरस्य मूलानि तथा रक्तोड्रमूलकम् ॥३१॥
बकुलस्य तथा मूलं गन्धमातृकजीरकौ।
रक्तचन्दनकञ्चैव समभागञ्च कारयेत् ॥३२॥
तण्डुलोदकसम्पिष्टं रक्तमूत्राय दापयेत्।
योनिशूलं कटीशूलं कुक्षिशूलञ्च नाशयेत् ॥
योनिशूलहरः प्रोक्त उत्पलादिर्न संशयः ॥३३॥

१. रक्तकमलकन्द, २. रक्तकार्पासमूल, ३. करवीरमूल लाल, ४. रक्तजपापुष्पमूल, ५. मौलसरीमूलत्वक्, ६. गन्धकमातृक, ७. श्वेतजीरा, ८. रक्तचन्दन—इन्हें समभाग में लें। इन्हें एक साथ मिलाकर सूक्ष्मचूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'उत्पलादिचूर्ण' कहते हैं। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में तण्डुलोदक के साथ लेने से रक्तप्रदर, योनिशूल, कटिशूल, कुक्षिशूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

२१. मधुकाद्यवलेह

मधुकं चन्दनं लाक्षा रक्तोत्पलरसाञ्जनम्।
कुशवीरणयोर्मूलं बलावासकयोस्तथा ॥३४॥
कोलमज्जाम्बुदं बिल्वं पिच्छा दार्वी च धातकी।
अशोकवल्कलं द्राक्षा जपाकुसुममस्फुटम् ॥३५॥
आम्रजम्बूकिशलयं कोमलं नलिनीदलम्।
शतमूली विदारी च रजतं लोहमभ्रकम् ॥३६॥
एषां कोलमितं चूर्णं द्विगुणा सितशर्करा।
वरीरसस्य प्रस्थार्द्धं पचेन्मन्देन वह्निना ॥३७॥
घनीभूते क्षिपेच्चूर्णं शीतीभूते पलं मधु।
मधुकाद्यवलेहोऽयं महादेवेन भाषितः ॥३८॥
दुस्तरं प्रदरं हन्ति नानावर्णं सवेदनम्।
योनिशूलं कुक्षिशूलं बस्तिशूलं सुदुःसहम् ॥३९॥

रक्तातिसारं रक्तार्शो रक्तपित्तं चिरोद्भवम् ।
मूत्ररोगानशेषांश्च दाहं मोहं वमिं भ्रमिम् ॥
नाशयेन्नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥४०॥

१. यष्टिमधु, २. लालचन्दन, ३. लाक्षा, ४. रक्तकमल, ५. रसाञ्जन, ६. कुशमूल, ७. खस, ८. बलामूल, ९. वासामूल, १०. बदरीफलमज्जा, ११. मुस्ता, १२. बिल्वफलमज्जा, १३. मोचरस, १४. दारुहल्दी, १५. धातकीपुष्प, १६. अशोकत्वक् १७. द्राक्षा, १८. जपापुष्पकली, १९. आम्रपत्र, २०. जामुनपत्र, २१. कोमलकमलपत्र, २२. शतावरी, २३. विदारीकन्द, २४. रजतभस्म, २५. लौहभस्म, २६. अभ्रकभस्म—इन सभी २६ द्रव्यों को ६-६ ग्राम की मात्रा में लें और चीनी मिलित चूर्ण से दुगुनी अर्थात् ३१२ ग्राम लें। इन सभी २६ द्रव्यों को कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। तदनन्तर ३७५ मि.ली. शतावरी-स्वरस में चीनी मिलाकर पाक करें। २ तार की चासनी हो जाय तब चूल्हे से पात्र को नीचे उतारकर उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह मिश्रित करें। शीतल होने पर इस लेह में ५० ग्राम मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'मधुकाद्यवलेह' कहते हैं। इसे आचार्य महादेव ने निर्मित किया है। इस अवलेह को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में दूध के साथ दिन में २ बार लेने से भयंकर रक्तप्रदर का नाश हो जाता है। इसके सेवन से रक्त-पीत-कृष्ण एवं श्वेत वर्ण के प्रदर नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से योनिशूल, कुक्षिशूल, दुःसह बस्तिशूल, रक्तातिसार, रक्तार्श, पुराना रक्तपित्त, सभी प्रकार के मूत्ररोग, हाथ-पैर में दाह, मोह, वमन और भ्रम निःसन्देह उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस तरह सूर्य से अन्धकार नष्ट हो जाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—च्यवनप्राशावलेह जैसा। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **रस**—मधुर, अनुरस तिक्त। **गन्ध**—सुगन्धित पाक जैसा। **उपयोग**—प्रदर, रक्तप्रदर, रक्तार्श, रक्तातिसार, रक्तपित्त।

२२. पुष्करलेह (र.सा.सं.)

रसाञ्जनं शुभा श्रृङ्गी चित्रकं मधुयष्टिकम् ।
धान्यतालीशगायत्रीद्विजीरं त्रिवृता बला ॥४१॥
दन्तीत्र्यूषणकञ्चापि पलार्द्धञ्च शिलाजतु ।
चतुष्पलं माक्षिकस्यामलस्य च क्षिपेत्ततः ॥४२॥
जातीकोषलवङ्गञ्च कक्कोलं मृद्विकाऽपि च ।
चातुर्जातकखर्जूरं कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥४३॥
प्रक्षिप्य मर्दयित्वा च स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ।
एष लेहवरः श्रीदः सर्वरोगकुलान्तकः ॥४४॥
यत्र यत्र प्रयोज्यः स्यात् तत्तदामयनाशनः ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं देशकालानुसारतः ॥४५॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तं प्रदरं सर्वसम्भवम् ।
द्वन्द्वजं चिरजञ्चैव रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥४६॥
कासश्वासाम्लपित्तञ्च क्षयरोगमथापि वा ।
सर्वरोगप्रशमनो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥
पुष्कराख्यो लेहवरः सर्वत्रैवोपयुज्यते ॥४७॥

१. रसाञ्जन, २. वंशलोचन, ३. कर्कटशृङ्गी, ४. चित्रकमूल, ५. मुलेठी, ६. धनियाँ, ७. तालीशपत्र, ८. कथ (खदिरसार), ९. जीरा, १०. स्याहजीरा, ११. निशोथ, १२. बलामूल, १३. दन्तीमूल, १४. सोंठ, १५. पीपर, १६. मरिच तथा १७. शुद्ध शिलाजतु—ये प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लें; १८. मधु १९० ग्राम; १९. जावित्री, २०. लवङ्ग, २१. शीतल चीनी, २२. द्राक्षा, २३. छोटी इलायची, २४. दालचीनी, २५. तेजपात, २६. नागरकेशर तथा २७. छोहाड़ा (खर्जूर)। प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। पहले शुद्ध शिलाजतु को गरम पानी में घोल लें। ततः रसाञ्जन से छोहाड़ाचूर्ण तक के द्रव्यों में शिलाजीत मिलाकर धूप में सुखा लें। पुनः मधु डालकर हाथ से अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पुष्करलेह' कहते हैं। इसे ६ से १२ ग्राम की मात्रा में रोगों के अनुसार अनुपान (विशेषकर सुखोष्ण गरम दूध) के साथ सेवन करें। यह अवलेह शरीर की शोभा को बढ़ाता है। सभी रोगों के समूह को नाश करता है। सभी उपद्रवों से युक्त और सभी दोषों से उत्पन्न प्रदर समूह को नष्ट करता है। द्वन्द्वज, चिरकालज रक्तपित्त को नष्ट करता है। कास, श्वास, अम्लपित्त, राजयक्ष्मा तथा सभी रोगों को नाश करता है। इस अवलेह का सेवन से बल-वर्ण एवं अग्नि की वृद्धि होती है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—रक्ताभ अवलेह। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध। **रस**—मधु एवं तिक्त और कटु। **गन्ध**—सुगन्धयुक्त, **उपयोग**—सभी प्रदर में, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तपित्त, कास, श्वास एवं क्षय में।

२३. प्रदरान्तक रस (र.सा.सं.)

शुद्धसूतं तथा गन्धं गन्धतुल्यञ्च रूप्यकम् ।
खर्परञ्च वराटञ्च शाणमानं पृथक् पृथक् ॥४८॥
तोलकत्रितयं चैव लौहचूर्णं क्षिपेत्सुधीः ।
दिनैकं कन्यकानीरैर्मर्दयेच्च भिषग्वरः ।
असाध्यं प्रदरं हन्ति भक्षणान्नात्र संशयः ॥४९॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. वङ्गभस्म, ४. रजत भस्म, ५. खर्परभस्म तथा ६. कौड़ीभस्म—प्रत्येक १-१ भाग तथा ७. लौहभस्म १२ भाग लें। सर्वप्रथम पत्थर के एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक मिलाकर मर्दन करें और अच्छी कज्जली बनायें। उसी खरल में शेष सभी भस्मों को मिलाकर

मर्दन करें। ततः घृतकुमारीस्वरस के साथ १ दिन मर्दन कर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'प्रदरान्तकरस' निःसन्देह असाध्य प्रदर को भी नष्ट करता है। खर्परभस्म के अभाव में यशदभस्म लेना चाहिए।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्याव वर्ण। **अनुपान**—मधु से। **रस**—तिक्त रस। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **उपयोग**—असाध्य सभी प्रकार के प्रदर।

२४. सर्वाङ्गसुन्दररस

गगनं शोधितं ग्राह्यं पलैकमिष्टकासमम्।
टङ्कणं स्याच्चतुर्थांशं शाणार्द्धं त्रिसुगन्धिकम् ॥५०॥
कर्पूरं नलदञ्चैव जातीकोषं जलं घनम्।
नागेश्वरलवङ्गञ्च कुष्ठं सत्रिफलं तथा ॥५१॥
जलेन वटिका कार्या छायया शोषयेत्तु ताम्।
प्रदरं नाशयेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ॥५२॥
अशीतिर्वातजान् रोगान् मन्दाग्निमतिदारुणम्।
सज्वरग्रहणीं चैव रक्तपित्तमरोचकम्।
कासान् पञ्च प्रतिश्यायं श्वासं हृद्रोगमेव च ॥५३॥

१. अभ्रकभस्म (इष्टकाचूर्ण के वर्ण का) ५० ग्राम, २. शुद्ध टंकण १२ ग्राम, ३. छोटीइलायची, ४. दालचीनी, ५. तेजपात, ६. कर्पूर, ७. खस, ८. जावित्री, ९. सुगन्धवाला, १०. नागरमोथा, ११. नागकेशर, १२. लवङ्ग, १३. कूठ, १४. आमला, १५. हरीतकी तथा १६. बहेड़ा—संख्या ३ से १६ तक के प्रत्येक द्रव्य १५०० मि.ग्रा. लें। इन्हें एक साथ मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें और एक खरल में अभ्रकभस्म तथा शुद्ध टङ्कण और ये सभी चूर्ण मिलाकर जल के साथ मर्दन करें एवं २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यह सभी प्रकार के प्रदर का नाश करता है। साथ ही अंगमर्द, ८० प्रकार के वातज रोग, मन्दाग्नि, ज्वर, संग्रहणी, रक्तपित्त, अरुचि, पाँच प्रकार के कास, प्रतिश्याय, श्वास एवं हृद्रोग को नष्ट करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—मधु से। **रस**—कटु-कषाय। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **उपयोग**—प्रदर एवं वात विकारों में।

२५. प्रदराररिस

वङ्गायःफणिफेनञ्च सूतः षड्गुणजारितः।
मूलं रक्तोत्पलभवं रक्तचन्दनमेव च ॥५४॥
समं सर्वमशोकस्य क्वाथैः सम्मर्द्य यत्नतः।
चणकाभा वटी कार्याऽशोकक्वाथं पिबेदनु ॥५५॥
प्रदरारिरसो हन्ति द्विविधं प्रदरामयम्।
बस्तौ च वेदनां रक्तस्रावं घोरज्वरं तथा ॥५६॥
मूत्राधिक्यादिकांश्चैव भास्करस्तिमिरं यथा।
अथवा त्वगशोकस्य गुडूची वासकत्वचः ॥५७॥
रसाञ्जनं मुस्तकञ्च रक्तचन्दनमेव च।
एषामनुपिबेत् क्वाथं सर्वप्रदरशान्तये ॥५८॥

१. वङ्गभस्म, २. लोहभस्म, ३. शुद्ध अफीम, ४. षड्गुणगन्धकजीर्णपारद, ५. रक्तकमलचूर्ण तथा ६. रक्तचन्दन चूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में षड्गुणगन्धकजारित रससिन्दूर को खरल में मर्दन करें। तत्पश्चात् अन्य पाँचो द्रव्यों को उस खरल मे मिलाकर मर्दन करें। ततः अशोकत्वक्क्वाथ की भावना देकर एक दिन तक मर्दन कर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'प्रदरारि रस' कहते हैं। प्रदर दो प्रकार का होता है—१. श्वेतप्रदर, २. रक्तप्रदर। जिस प्रदर में बस्ति प्रदेश में पीड़ा हो, अत्यधिक रक्तस्राव हो, भयंकर ज्वर हो, मूत्राधिक्य हो उसे भी नष्ट करता है, जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है। अथवा—प्रदरारि रस को मधु के साथ सेवन कर अनुपान रूप में अशोक त्वक् क्वाथ, गुडूची, वासा त्वक्, रसाञ्जन, नागरमोथा एवं रक्तचन्दन का ५० मि.ली. क्वाथ पिलाने से सभी प्रकार के प्रदर शीघ्र शान्त होते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—मधु से। **रस**—कषाय। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **उपयोग**—प्रदररोग में।

२६. प्रदररिपु (योगरत्ना.)

रसं गन्धं सीसं मृतमिति समं तैस्तु रसकं
समानं सर्वैः स्यात्तुलितमपि लोध्रं वृषरसैः।
दिनं पिष्टं नाम्ना प्रदररिपुरेषोऽपहरति-
द्विवल्लः क्षौद्रेण प्रदरमपि दुःसाध्यमपि च ॥५९॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. नागभस्म—ये तीनों द्रव्य १-१ भाग; रसाञ्जनचूर्ण ३ भाग तथा लोध्रचूर्ण ६ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः शेष सभी द्रव्यों को कज्जली के साथ मिलाकर मर्दन करें और वासापत्रस्वरस की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। ६-६ रत्ती (७५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। मधु के साथ इस औषधि को चाटें। इससे दुःसाध्य प्रदररोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्याव वर्ण। **अनुपान**—मधु से। **रस**—कषाय एवं तिक्त। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—प्रदर में।

२७. रत्नप्रभावटिका

स्वर्णं मौक्तिकमभ्रञ्च नागं वङ्गञ्च पित्तलम् ।
माक्षिकं रजतं वज्रं लौहं तालञ्च खर्परम् ॥६०॥
कदल्याः काकमाच्याश्च वासकस्योत्पलस्य च ।
स्वरसेन जयन्त्याश्च कर्पूरसलिलेन च ॥६१॥
भावयित्वा यथाशास्त्रमहोत्तत्रमतः परम् ।
सम्मर्द्यातन्द्रितः कुर्याद् भिषग् गुञ्जामिता वटीः ॥६२॥
एकैकाञ्च प्रयुञ्जीत प्रातराशं बलाम्बुना ।
उष्णेन पयसा वाऽपि केशराजरसेन वा ॥६३॥
इयं रत्नप्रभा नाम्नी वटिका सर्वसिद्धिदा ।
सर्वस्त्रीरोगहन्त्री च बल्या वृष्या रसायनी ॥६४॥

१. सुवर्णभस्म, २. मोतीभस्म, ३. अभ्रकभस्म, ४. नाग भस्म, ५. वङ्गभस्म, ६. पित्तलभस्म, ७. सुवर्णमाक्षिकभस्म, ८. रजतभस्म, ९. हीरकभस्म, १०. लोहभस्म, ११. शुद्ध हरताल, १२. खर्परभस्म—इन्हें समभाग लें।

भावना—१. कदलीकन्दस्वरस, २. काकमाचीस्वरस, ३. वासास्वरस, ४. कमलपुष्पस्वरस, ५. जयन्तीस्वरस, ६. कर्पूरजल ।

उपर्युक्त सभी द्रव्यों को एक कठिन पत्थर के खरल में मर्दन कर उपर्युक्त कदलीकन्दादि ६ द्रव्यों से १ दिन और रात तक मर्दन करें और १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'रत्नप्रभावटी' कहते हैं। इसे १ वटी प्रातः बलामूलक्वाथ, गरम दूध, भृङ्गराजस्वरस के साथ सेवन करने से सभी प्रकार की सफलता देती है। स्त्रियों के सभी रोगों को नष्ट करती है। यह बल्य, वृष्य एवं रसायन है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्यावाभ। **अनुपान**—बला क्वाथादि से। **रस**—किञ्चित् तिक्त। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—प्रदर तथा स्त्रियों के सभी रोगों में।

२८. शिलाजतुवटिका

शुद्धसूतं समं गन्धं रक्तोत्पलदलद्रवैः ।
कौटजेनाम्भसा चापि मर्दयेद्दिवसद्वयम् ॥६५॥
शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा ।
त्वक्क्षीरी पिप्पली धात्री कर्कटाख्या पलोन्मिता ॥६६॥
निदिग्धाफलमूलाभ्यां पलं युञ्ज्यात् त्रिजातकम् ।
मधुनः पलसंयुक्तं कुर्यान्माषसमान् गुडान् ॥६७॥
दाडिमाम्बु पयः पक्षिरसं तोयं सुवासितम् ।
तां भक्षयित्वाऽत्र पिबेन्निरन्नो भुक्त एव वा ॥६८॥
पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमकार्शोभगन्दरम् ।
पूतिविण्मूत्रशुक्रादिदोषमेहमहोदरम् ॥६९॥
कासासृग्रक्तपित्तञ्च प्रदरं रक्तसम्भवम् ।
तान् सर्वान् सुतरां हन्ति सर्वदोषहरी शिवा ॥७०॥

१. शुद्ध पारद ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम, ३. शुद्ध शिलाजतु ४०० ग्राम, ४. चीनी ४०० ग्राम; ५. वंशलोचनचूर्ण, ६. पीपरचूर्ण, ७. आमलाचूर्ण, ८. काकडासिंगी, ९. कण्टकारीफल, १०. कण्टकारी मूल, ११. दालचीनी, १२. छोटी इलायची, १३. तेजपत्र, १४. मधु वंशलोचन से मधु तक के सभी द्रव्य—प्रत्येक ५० ग्राम लें।

सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः उक्त कज्जली को लाल कमल-पुष्परस और कुटजत्वक् क्वाथ या स्वरस की भावना देकर १-१ दिन मर्दन करें। तदनन्तर शिलाजतु को थोड़े गरम जल में घोलकर उक्त कज्जली में मिलायें। ततः चीनी से तेजपत्र तक के सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण कर कज्जली के साथ मिलायें और मधु मिलाकर मर्दन करें। बाद में थोड़ा जल मिलाकर अच्छी तरह से मर्दन कर १-१ ग्राम की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'शिलाजतु वटी' कहते हैं। इसे अनारस्वरस, गोदुग्ध से, पक्षियों के मांस रस से, पुष्पवासित जल से खाली पेट या भोजन के बाद सेवन करें। इसके सेवन से पाण्डु, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहवृद्धि, तमकश्वास, अर्श, भगन्दर, दुर्गन्धिपूर्ण अपानवायु का निःसरण, दुर्गन्धित मूत्र एवं शुक्र, प्रमेह, उदररोग, कास, रक्तस्राव, रक्तपित्त, रक्तप्रदर आदि सभी रोगों को यह शिलाजतु वटिका नष्ट करती है।

मात्रा—१ ग्राम। **वर्ण**—कृष्ण। **अनुपान**—अनाररस, गोदुग्ध, मांसरस। **रस**—मधुर। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **उपयोग**—समस्त प्रदररोगों में।

२९. प्रदरारिलौह

वत्सकस्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टन्तु कषायमवतारयेत् ॥७१॥
वस्त्रपूते घनीभूते द्रव्याणीमानि दापयेत् ।
समङ्गा शाल्मलं पाठा बिल्वं मुस्तञ्च धातकी ॥७२॥
अरुणा व्योमकं लौहं प्रत्येकन्तु पलं पलम् ।
कोलमात्रं प्रयुञ्जीत कुशमूलं पयो ह्यनु ॥७३॥
श्वेतं रक्तं तथा नीलं पीतं प्रदरदुस्तरम् ।
कुक्षिशूलं कटीशूलं देहशूलञ्च सर्वगम् ॥७४॥
प्रदरारिरयं लौहो हन्ति रोगान् सुदुस्तरान् ।
आयुःपुष्टिकरश्चैव बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥७५॥

१. कुटजत्वक् १ तुला (४६७० ग्राम), २. मंजीठ, ३. सेमलमूल, ४. पाठा, ५. बिल्वफलमज्जा, ६. नागरमोथा, ७. धातकीपुष्प, ८. अतीस, ९. अभ्रकभस्म, १०. लोहभस्म—ये

सभी ९ द्रव्य ५०-५० ग्राम लें; तथा जल १२$\frac{1}{2}$ लीटर लें। सर्वप्रथम कुटज त्वक् का यवकुट करें। तत्पश्चात् एक बड़े पात्र में १२$\frac{1}{2}$ लीटर जल के साथ कुटजत्वक् यवकुट डालकर पकायें। अष्टमांशावशेष होने पर स्टेनलेस स्टील के पात्र में छान लें। इस क्वाथ को पुनः अग्नि पर पकायें। ततः मञ्जीठ से अतीस तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें तथा इस चूर्ण में अभ्रक एवं लोह भस्म मिलाकर उपर्युक्त पकते हुए क्वाथ में अच्छी तरह मिला दें। जब घन हो जाय तो सिल पर अच्छी तरह पीसकर कोल प्रमाण = ६-६ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'प्रदरारि रस' कहते हैं। इसे मधु के साथ १-१ वटी मिलाकर चाटें तथा ६ ग्राम कुशमूल को ५० मि.ली. जल में पीसकर पीयें। इस औषधि का कुछ दिनों तक सेवन करने से प्रदर के सभी प्रकार (यथा—श्वेत, रक्त, पीत, नील एवं असाध्य प्रदर) नष्ट हो जाते हैं। इससे कुक्षिशूल, कटीशूल एवं सर्वाङ्गशूल नष्ट हो जाते हैं। यह आयुर्वर्धक, शरीरपुष्टिकर, बल, वर्ण और अग्निवर्धक है।

मात्रा—१ से ३ ग्राम। **वर्ण**—कत्थईवर्ण का। **अनुपान**—मधु एवं कुशमूलस्वरस। **रस**—कषाय। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सभी प्रदरों में।

३०. प्रदरान्तकलौह (रसे.सा.सं.)

हरितालं लौहताम्रे वङ्गमभ्रं वराटिका।
त्रिकटु त्रिफला चित्रं विडङ्गं पटुपञ्चकम् ॥७६॥
चविका पिप्पली शङ्खं वचा हवुषपाकलम्।
शटी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम् ॥७७॥
एतानि समभागानि सञ्चूर्ण्य वटिकां कुरु।
शर्करामधुसंयुक्तां घृतेन भक्षयेत्पुनः ॥७८॥
रक्तं श्वेतं तथा पीतं नीलं प्रदरदुस्तरम्।
कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलञ्च संहरेत् ॥७९॥
मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृच्छ्रश्वासञ्च कासनुत्।
आयुःपुष्टिकरं बल्यं रजोवर्णप्रसादनम् ॥८०॥

१. शुद्ध हरताल, २. लौहभस्म, ३. ताम्रभस्म, ४. वङ्गभस्म, ५. अभ्रकभस्म, ६. कौड़ीभस्म, ७. सोंठचूर्ण, ८. पीपरचूर्ण, ९. मरिचचूर्ण, १०. आमलाचूर्ण, ११. हरीतकीचूर्ण, १२. बहेड़ाचूर्ण, १३. चित्रकमूलचूर्ण, १४. विडङ्गचूर्ण, १५. सैन्धवलवण, १६. सामुद्रलवण, १७. विडलवण, १८. सौवर्चललवण, १९. औद्भिल्लवण, २०. चव्यचूर्ण, २१. पिप्पलीचूर्ण, २२. शंखभस्म, २३. वचचूर्ण, २४. हाउबेरचूर्ण, २५. कुष्ठचूर्ण, २६. शटी (कचूर) चूर्ण, २७. पाठाचूर्ण, २८. देवदारुचूर्ण, २९. छोटीइलायचीचूर्ण, ३०. विधाराचूर्ण—ये सभी ३० द्रव्य समभाग लें।

इन सभी भस्मों एवं काष्ठौषधों के सूक्ष्म चूर्णों को एक साथ मिलाकर पुनः छन्नी से छान लें। इसके बाद एक खरल में मर्दन करें और जल की भावना देकर १-१ ग्राम की मात्रा में वटी बना कर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'प्रदरान्तकलौह' कहते हैं। इसे चीनी, मधु एवं घृत मिलाकर १ से २ वटी तक सेवन करें। उसके सेवन से सभी प्रकार श्वेत, रक्त, नील एवं पीत तथा असाध्य प्रदर नष्ट हो जाते हैं। यह कुक्षिशूल, कटीशूल, योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, श्वास एवं कास को नष्ट करता है। यह आयुर्वर्धक है, शरीरपुष्टिकर है, बल्य है तथा स्त्रियों के रज के वर्ण को स्वाभाविक स्वरूप में लाता है।

मात्रा—१ से २ ग्राम। **वर्ण**—किञ्चित् रक्ताभ। **अनुपान**—मधु-शर्करा एवं घी के साथ। **रस**—लवणीय। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—समस्त प्रदरों में।

३१. लक्ष्मणालौह

लक्ष्मणायाः[1] पलशतं क्वाथयित्वा यथाविधि।
क्वाथे पूते पुनः पक्वे घनीभूते च निक्षिपेत् ॥८१॥
अशोकं कुशमूलञ्च मधूकं मधुकं बलाम्।
पाठां बिल्वं पलोन्मानं लौहं सर्वसमं तथा ॥८२॥
लक्ष्मणालौहनामेदं भेषजं स्त्रीगदापहम्।
जगतामुपकाराय दस्राभ्यां परिनिर्मितम् ॥८३॥

अभाव में—श्वेतकण्टकारी ४६७० ग्राम (१ तुला) तथा जल क्वाथार्थ १२$\frac{1}{2}$ लीटर लें। प्रक्षेप—१. अशोकत्वक्चूर्ण, २. कुशमूल चूर्ण, ३. महुआ के फूल, ४. यष्टिमधुचूर्ण, ५. बलामूलचूर्ण, ६. पाठाचूर्ण तथा ७. बिल्वफलमज्जाचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम तथा ८. लोहभस्म ३५० ग्राम लें।

श्वेतकण्टकारी पञ्चाङ्ग को यवकुट कर १२$\frac{1}{2}$ लीटर जल में क्वाथ करें। अष्टमांशावशेष रहने पर क्वाथ को एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में छान लें और उस क्वाथ को पुनः अग्नि पर पकायें। जब क्वाथ गाढ़ा होने लगे तब अशोक से लौहभस्म तक के सभी द्रव्यों को अच्छी तरह मिलाकर उक्त क्वाथ पात्र में डालकर अच्छी तरह मर्दन करें। जब पूरी औषधि कल्क जैसी गाढ़ी हो जाय तो ३ घण्टे तक सिल पर पीसें और ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में (४-४ रत्ती) की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'लक्ष्मणा लोह' कहते हैं। यह

१. लक्ष्मणा पुस्तक तक ही सीमित है। बाजार में कहीं उपलब्ध नहीं है। कहीं-कहीं अभाव में श्वेत कण्टकारी लेने की चर्चा की गई है। श्वेत कण्टकारी भी कभी-कभी ही उपलब्ध होने वाला द्रव्य है। अतः यदि अभाव में श्वेत कण्टकारी मिलता है तभी इस औषधि का निर्माण करें, अन्यथा इसे बनाने का प्रयत्न नहीं करें। ऐसा मेरा निवेदन है।

स्त्रियों के समस्त विकार को नष्ट करता है। विश्वोपकारार्थ इसे देववैद्य अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—स्त्रियों के सम्पूर्ण रोगों में।

३२. शीतकल्याणकघृत (च.द.)

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमं रक्तशालयः।
मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥८४॥
बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्।
विदारी शतपुष्पा च शालपर्णी सजीरका ॥८५॥
फलं त्रपुषबीजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम्।
एषामर्द्धपलान् भागान् गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥८६॥
पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥८७॥
बहुरूपञ्च यत्पित्तं कामलायाञ्च शोणिते।
अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥८८॥
तरुणी चाल्पपुष्पा या या च गर्भं न विन्दति।
अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् ॥८९॥

गोघृत ७५० ग्राम, गोदुग्ध ३ लीटर तथा जल ६ लीटर लें। **कल्क**—१. कुमुद (श्वेतपुष्पकमल), २. कमललालपुष्प, ३. खस, ४. गेहूँ, ५. लालशाली, ६. मुद्गपर्णी, ७. क्षीरकाकोली, ८. गम्भारीत्वक्, ९. मुलेठी, १०. बलामूल, ११. अतिबला, १२. नीलकमल, १३. तालमूली (श्वेतमुशली), १४. विदारीकन्द, १५. सौंफ, १६. २४. शालपर्णी, १७. श्वेतजीरा, १८. आमला, १९. हरीतकी, २०. बहेड़ा, २१. खीरा के बीज, २२. कच्चा कदलीफल—प्रत्येक द्रव्य २३-२३ ग्राम लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः कुमुद से कच्चा केला तक के सभी २२ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। इसके बाद एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में मूर्च्छितघृत, कल्क, दुग्ध एवं जल डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'शीतकल्याणकघृत' कहते हैं। गरमदूध के साथ ६ से १२ ग्राम की मात्रा में दिन में २ बार लेना चाहिए। इस घृत के सेवन से स्त्रियों के सभी प्रकार प्रदर, रक्तजगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, अनेक प्रकार के पित्तज विकार, कामला, रक्तदुष्टि, अरुचि, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, मद एवं भ्रमरोग नष्ट हो जाते हैं। जिन स्त्रियों को युवा होने पर भी रजःस्राव नहीं होता है अथवा गर्भधारण नहीं होता उन दोनों के लिए यह घृत बहुत ही अच्छा है। इस घृत के सेवन से स्त्रियों का पूर्ण विकास होता है जिससे परिवार के प्रति उनका प्रेम बढ़ता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम दूध में चीनी मिलाकर। **रस**—मधुर। **गन्ध**—सुसाधित घृत गन्धी। **उपयोग**—रक्तप्रदर एवं स्त्रियों के सभी रोगों में, पुत्रप्रद एवं स्त्रियों के पूर्ण विकास हेतु।

३३. न्यग्रोधाद्य घृत

न्यग्रोधाश्वत्थपार्थामृतवृषकटुकाप्लक्षजम्बूप्रियालाः
श्योणाकोदुम्बराख्या मधुकतरुबला वेतसं केन्दुनीपम्।
रोहीतं पीतसारं विधिविहितहितं सर्वमेषां तरूणां
प्रत्येकं वल्कलं तद्युगपलमखिलं क्षोदयित्वाभिषग्भिः ॥
क्वाथं द्रोणाम्भसा तद्दृढविमलकटाहेऽपि पादावशेषं
सर्पिःप्रस्थन्तु पाच्यं पचनकुशलिना मन्दमन्दानलेन।
प्रस्थं धात्रीरसानां विधिविहितजलप्रस्थमेकच्च शाले-
र्दत्त्वा त्र्यक्षन्तु कल्कं मधुकमपि मधोः पुष्पखर्जूरदार्वी ॥
जीवन्तीकाश्मरीणां फलमपि युगलं क्षीरकाकोलियुग्मं
रक्ताख्यं चन्दनं यत्तदपरममलं काञ्चनं शारिवा च ॥
न्यग्रोधाद्यं घृतं ह्येतद्देहं प्राप्यामृतायते।
दुस्तरं प्रदरं हन्ति नील रक्तं सितासितम् ॥९३॥
योनिशूलं कुक्षिशूलं बस्तिशूलं सुदुःसहम्।
अङ्गदाहं योनिदाहमक्षिकुक्षिभवञ्च यत् ॥९४॥
मन्ददृष्टिमश्रुपातं तिमिरं वातसम्भवम्।
अध्मानानाहशूलघ्नं वातपितप्रकोपजित् ॥९५॥
अम्लपित्तञ्च पित्तञ्च योनिरोगं विनाशयेत्।
दृष्टिप्रसादजननं बलवर्णाग्निकारकम् ॥९६॥

१. वटत्वक्, २. अश्वत्थमूलत्वक्, ३. अर्जुनत्वक्, ४. गुडूची, ५. वासापञ्चाङ्ग, ६. कटुकी, ७. पर्कटी (पाकड) मूलत्वक्, ८. जामुनछाल, ९. चिरौंजीफल, १०. सोनापाठा, ११. उदुम्बरत्वक्, १२. महुआछाल, १३. बलामूल, १४. वेतसमूल, १५. केन्दुत्वक्, १६. कदम्बत्वक्, १७. रोहितकत्वक्, १८. अंकोलमूलत्वक्—इन प्रत्येक को ९३ ग्राम लेकर यवकुट करें और १ द्रोण (१२$\frac{१}{२}$ लीटर) जल के साथ क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर छान लें। गोघृत ७५० ग्राम, आमला स्वरस १ प्रस्थ (७५० मि.ली.) तथा शालीचावल का तण्डुलोदक १ प्रस्थ (७५० मि.ली.) लें।

कल्क—१. यष्टिमधु, २. महुआ के फूल, ३. छोहाड़ा, ४. दारुहरिद्रा, ५. जीवन्ती, ६. गम्भारीफल, ७. काकोली, ८. क्षीरकाकोली, ९. रक्तचन्दन, १०. श्वेतचन्दन, ११. नागकेशर पुष्प, १२. अनन्तमूल—प्रत्येक द्रव्य ३-३ कर्ष (३५ ग्राम प्रत्येक) लें। इन्हें कूटकर सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसें और कल्क बना लें।

सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः उपर्युक्त क्वाथ और

कल्क घृत में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब क्वाथ सूखने लगे तो आमलस्वरस देकर पुनः पाक करें। जब आमलास्वरस सूखने लगे तो तण्डुलोदक देकर पुनः मन्दाग्नि से पकायें। तण्डुलोदक के सूखने पर स्नेहपाक परीक्षाविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से घृत को छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'न्यग्रोधाद्य घृत' कहते हैं। यह घृत स्त्रियों के लिए अमृत के समान गुणकारी है। इसे गरम दूध या गरम जल से लेना चाहिए। यह दुस्तर (कठिन) प्रदररोग, नीलरक्त, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, कृष्णप्रदर, योनिशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, असह्य अङ्गदाह (हस्त-पाद एवं सर्वाङ्गदाह), योनिदाह, नेत्रदाह, कुक्षिदाह, दृष्टिमान्द्य, अश्रुपात, वातजतिमिर, आध्मान, आनाह, शूलरोग, वातज रोग, पित्तजरोग, अम्लपित्त, पित्तरोग और योनिरोग नाशक है। यह दृष्टिप्रसादक है एवं बल-वर्ण तथा अग्नि को बढ़ाता है।

मात्रा— ६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल। **रस**—कषायतिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—समस्त प्रदररोग एवं योनि विकार में।

३४. विश्ववल्लभ घृत

केशराजस्य निर्गुण्ड्याः शतावर्याः कुशस्य च।
विदार्याः स्वरसेनापि च्छागेन पयसाऽथवा ॥९७॥
कल्कैर्दाडिमबिल्वाब्दैर्लवङ्गैलाफलत्रिकैः ।
महता पञ्चमूलेन द्राक्षाचन्दनचम्पकैः ॥९८॥
निशादारुनिशाभ्यां च वह्निना लवणैरपि।
तोयपिष्टैः पचेत्सर्पिः पात्रे मृत्परिनिर्मिते।
विश्ववल्लभनामेदं घृतं स्त्रीगदसूदनम् ॥९९॥

१. गोघृत १ प्रस्थ (७५० ग्राम), २. बकरीदूध ७५० मि.ली., ३. भृङ्गराजस्वरस, ४. निर्गुण्डीपत्ररस, ५. शतावरीस्वरस, ६. कुशक्वाथ, ७. विदारीकन्दस्वरस—प्रत्येक स्वरस ७५० मि.ली. लेना चाहिए। **कल्क**—१. दाडिमफलत्वक्, २. बिल्वफलमज्जा, ३. नागरमोथा, ४. लौंग, ५. छोटी इलायची, ६. आमलाफलत्वक्, ७. हरीतकीफलत्वक्, ८. बिभीतकफलत्वक्, ९. बृहत्पञ्चमूल (बेलछाल, अग्निमन्थत्वक्, सोनापाठात्वक्, पाटलात्वक्, गम्भारीत्वक्), १०. द्राक्षा, ११. चन्दनश्वेत, १२. चम्पकपुष्प, १३, दारुहल्दीत्वक्, १४. हल्दी, १५. चित्रकमूल, १६. पञ्चलवण—प्रत्येक द्रव्य ८-८ ग्राम और पाँचों लवण भी ८-८ ग्राम लें।

सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः कल्क के सभी द्रव्यों को चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसें और कल्क बना लें। कल्क को तथा भृङ्गराजस्वरस को मूर्च्छितघृत में मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब भृङ्गराजस्वरस सूखने लगे तो बकरी का दूध मिलाकर पाक करें। दूध सूखने पर क्रमशः निर्गुण्डीस्वरस, शतावरीस्वरस, कुशक्वाथ एवं विदारीकन्दस्वरस देकर पाक करते रहें। पाक पूर्ण होने पर स्नेहपाक ही परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'विश्ववल्लभ घृत' कहते हैं। यह स्त्रीरोग तथा विशेषकर प्रदररोग में अधिक लाभप्रद है। इसे मिट्टी के पात्र में आचार्यश्री ने पकाने का निर्देश दिया है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध या गरम जल। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—विशेषकर प्रदररोग में।

३५. अशोकघृत

अशोकवल्कलप्रस्थं तोयाढकविपाचितम्।
पादस्थेन घृतप्रस्थं जीरकक्वाथसंयुतम् ॥१००॥
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं घृततुल्यं प्रदापयेत्।
तथैव केशराजस्य प्रस्थमेकं भिषग्वरः ॥१०१॥
जीवनीयैः प्रियालैस्तु परूषैः सरसाञ्जनैः।
यष्ट्याह्वाशोकमूलञ्च मृद्वीका च शतावरी ॥१०२॥
तण्डुलीयकमूलञ्च कल्कैरेभिः पलार्द्धकैः।
शर्कराया पलान्यष्टौ सिद्धशीते प्रदापयेत् ॥१०३॥
पीतमेतद् घृतं हन्ति सर्वदोषसमुद्भवम्।
श्वेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरं हन्ति दुस्तरम् ॥१०४॥
कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलञ्च सर्वजम्।
मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृशतां श्वासकासकम् ॥१०५॥
आयुःपुष्टिकरं बल्यं बलवर्णप्रसादनम्।
देयमेतत्परं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्त्तितम् ॥१०६॥

अशोकत्वक् ७५० ग्राम को ३ लीटर जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर छान लें। गोघृत ७५० ग्राम, जीरक क्वाथ ७५० मि.ली., तण्डुलोदक ७५० मि.ली., बकरी का दूध ७५० मि.ली. तथा भृङ्गराजस्वरस ७५० मि.ली. लें।

कल्क द्रव्य—जीवनीयगण के १२ द्रव्य; यथा—१. जीवक, २. ऋषभक, ३. काकोली, ४. क्षीरकाकोली, ५. मेदा, ६. महामेदा, ७. ऋद्धि, ८. वृद्धि, ९. मुलेठी, १०. जीवन्ती, ११. माषपर्णी, १२. मुद्गपर्णी; १३. चिरौंजी, १४. फालसाफल, १५. रसाञ्जन, १६. यष्टिमधु, १७. अशोकमूलत्वक्, १८. द्राक्षा, १९. शतावरी एवं २०. तण्डुलीयमूल—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम लें तथा चीनी ३७५ ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर (सिल पर जल के साथ पीसकर) कल्क बना लें। अब मूर्च्छितघृत में कल्क और बकरी का दूध देकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर क्रमशः अशोकक्वाथ, जीरकक्वाथ,

तण्डुलोदक तथा भृङ्गराजस्वरस देकर पकायें। एक द्रव सूखने पर दूसरे द्रव का पाक करें। घृत से जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें और चीनी पीसकर उस गरम घृत में अच्छी तरह मिला दें और शीतल होने पर घृत को काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'अशोकघृत' कहते हैं। इस घृत को ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध या गरम जल से दिन में २ बार लें। कुछ दिनों तक इसे लेने से सभी दोषों से उत्पन्न भयंकर (रक्त-नील-श्वेत-कृष्ण) प्रदर को नष्ट करता है तथा कुक्षिशूल, कटीशूल, योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृशता, श्वास, कास का नाश करता है। साथ ही आयुर्वर्धक है। यह शरीर के बल और वर्ण को बढ़ाता है। इस अशोकघृत को सर्वप्रथम भगवान् विष्णु ने निर्मित किया था।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—उष्ण दुग्ध एवं उष्णोदक। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—प्रदर एवं स्त्रियों के रोगों में।

३६. प्रियङ्ग्वादि तैल

प्रियङ्गूत्पलाष्ट्याह्वफलत्रिकरसाञ्जनैः ।
चन्दनद्वयमञ्जिष्ठाशताह्वासर्जसैन्धवैः ॥१०७॥
मुस्तमोचरसानन्तावायसीबिल्वबालकैः ।
कल्कैः करिकणाकृष्णाकाकोलीयुगलैस्तथा ॥१०८॥
गन्धद्रव्यैश्च निखिलैश्छागीक्षीरेण मस्तुना ।
दार्वीक्वाथेन च पचेत् तैलं तिलसमुद्भवम् ॥१०९॥
प्रियङ्ग्वाद्यमिदं तैलं प्रदरं योनिजान् गदान् ।
ग्रहणीमतिसारञ्च हन्याद् गर्भस्य रक्षणम् ॥११०॥

तिलतैल ७५० मि.ली., बकरी का दूध ७५० मि.ली., मस्तु (दही जल) ७५० मि.ली. तथा दारुहल्दी क्वाथ ७५० मि.ली. लें।

कल्क—१. प्रियंगु, २. नीलकमल, ३. मुलेठी, ४ आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. रसाञ्जन, ८. रक्तचन्दन, ९. श्वेतचन्दन, १०. मंजीठ, ११. सौंफ, १२. राल, १३. सैन्धव, १४. मुस्ता, १५. मोचरस, १६. अनन्तमूल, १७. काकमाची, १८. बिल्वफल, १९. सुगन्धबाला, २०. गजपीपर, २१. पीपर, २२. काकोली, २३. क्षीरकाकोली—प्रत्येक द्रव्य ८-८ ग्राम लें। ये सभी द्रव्य तैल का चतुर्थांश (१८७ ग्राम के लगभग) होना चाहिए।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः सभी कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। अब कल्क और बकरी का दूध मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। दूध सूखने पर क्रमशः मस्तु (दही का पानी) मिलाकर तथा बाद में दारुहल्दी क्वाथ मिलाकर पाक करें। जब क्वाथ भी सूख जाय तो दुग्ध कल्क (खोवा) के सम्यक् पाकार्थ ७५० मि.ली. जल मिलाकर पाक करें। ततः गन्ध द्रव्यों का कल्क बनाकर इस तैल में मिलाकर पाक करना चाहिए। पाक की परीक्षा कर तैल को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे प्रियङ्ग्वादि तैल कहते हैं। इस तैल का उपयोग प्रदर रोग एवं योनिरोग में करना चाहिए। यह तैल गर्भ रक्षक है, अतः यह गर्भिणी के ग्रहणी एवं अतिसार रोग का भी नाश करता है।

मात्रा—अभ्यङ्ग-पिचु, **वर्ण**—रक्ताभ, **अनुपान**—अभ्यङ्ग-पिचु, **रस**—तिक्त-कषाय, **गन्ध**—सुगन्धित तैल, **उपयोग**—प्रदर एवं योनि रोग।

३७. अशोकारिष्ट

अशोकस्य तुलामेकाञ्चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम् ॥१११॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिकं मतम् ।
अजाजीं मुस्तकं शुण्ठी दार्व्युत्पलफलत्रिकम् ॥११२॥
आम्रास्थि जीरकं वासां चन्दनञ्च विनिक्षिपेत् ।
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ॥११३॥
मासादूर्ध्वञ्च पीत्वैनमसृग्दररुजां जयेत् ।
ज्वरञ्च रक्तपित्तार्शोमन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
मेहशोथादिकहरस्त्वशोकारिष्टसंज्ञितः ॥११४॥

अशोक की छाल १ तुला (४६७० ग्राम) का ५० लीटर (४ द्रोण) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। गुड़ ९३४० ग्राम लें।

प्रक्षेप—१. धातकीपुष्प ७५० ग्राम, २. कृष्णजीरा, ३. नागरमोथा, ४. सोंठ, ५. दारुहल्दी, ६. नीलकमल, ७. आमला, ८. हरीतकी, ९. बहेड़ा, १०. आम्रास्थिमज्जा, ११. जीरा, १२. वासा, १३. श्वेतचन्दन—प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम लेना चाहिए।

विधि—एक मिट्टी का बड़े एवं नये घड़ा में पानी भरकर रात्रि पर्यन्त छोड़ दें। प्रातः पानी गिराकर पोंछ लें। ततः उक्त घड़े में अशोक क्वाथ और गुड़ मिलाकर अच्छी तरह घोल दें। धातकी-पुष्प को धूप में सुखा लें और उसे कूटे नहीं। ततः अन्य प्रक्षेप द्रव्य (कृष्ण जीरा से श्वेतचन्दन तक के सभी १२ द्रव्य) को मोटा यवकुट करें और उक्त घड़े में मिला दें। घड़े का मुख बन्दकर उसे निर्वात गृह में रखें। घड़ा पर अशोकारिष्ट एवं निर्माण तिथि भी चाक से लिख दें। घड़े की तली में पुआल (धान के डण्ठल) की मोटी गद्दी बनाकर रख दें। गर्मी के दिनों में १५ दिन बाद तथा शीतकाल में २५ दिनों बाद घड़े का मुख खोलकर परीक्षा करें। यदि किण्वन (Fermentation) हो गया होगा तो पूरा कमरा मद्यगन्धी हो जायेगा। घड़े का मुख खोलकर उसके अन्दर

जलती हुई सलाई की तिल्ली ले जायें। यदि सलाई जलती रहेगी तो अरिष्ट तैयार समझें और बुझ जाती है तो फर्मेण्टेशन हो रहा है, ऐसा समझना चाहिए। यदि गन्ध-वर्ण-रसोत्पत्ति पूर्ण हो गई हो तो उसे कपड़े से छान लें तथा उक्त घड़े को कपड़ा से पोंछकर उसी में छना हुआ आसव रखकर ८-१० दिनों के लिए उसी प्रकार रहने दें। इससे आसव-अरिष्ट का अवशेष (Sediments) भाग तली में बैठा रह जायेगा और स्वच्छ भाग ऊपर रहेगा, जिसे १० दिनों बाद घड़े को टेढ़ाकर किसी अन्य पात्र में निकाल लें और उसे पुनः बोतलों में भरकर कार्क एवं लेबल लगा दें। लेबल में निर्माण तिथि, ग्रन्थ नाम, रोगाधिकार, बैच तथा मुख्य घटक तथा किस रोग में उपयोगी है अवश्य लिखें।

नोट—अरिष्ट एवं आसव १ वर्ष के बाद में ही प्रयोग में लेना चाहिए।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली. तक। **वर्ण**—रक्ताभद्रव। **अनुपान**—जल के साथ। **रस**—मधुर एवं तीक्ष्णमद्य जैसा। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **उपयोग**—प्रदर एवं अन्य स्त्री रोगों में।

३८. लक्ष्मणारिष्ट

लक्ष्मणायाः पलशतं चतुर्द्रोणजले पचेत्।
पादशेषे कषायेऽस्मिन् क्षिपेद् गुड़तुलाद्वयम् ॥११५॥
धातकीं षोडशपलां मुस्तकं मधुकं बलाम्।
फलत्रयं निशाद्वन्द्वं जीरकं चन्दनद्वयम् ॥११६॥
अजमोदां यमानीञ्च बिल्वञ्च पलमानतः।
मासादूर्ध्वन्तु सिद्धोऽयमरिष्टः स्त्रीगदान्तकृत् ॥११७॥

१. लक्ष्मणा १ तुला (४६७० ग्राम), २. गुड़ २ तुला (९३४० ग्राम), ३. धातकीपुष्प ७५० ग्राम तथा ४. मुस्ता, ५. यष्टिमधु, ६. बलामूल, ७. आमला, ८. हरीतकी, ९, बहेड़ा, १०. हल्दी, ११. दारुहल्दी, १२. जीरा, १३. रक्तचन्दन, १४. श्वेतचन्दन, १५. अजमोदा, १६. अजवाइन, १७. बिल्वफलमज्जा—ये सभी १४ द्रव्य ४६-४६ ग्राम लें।

लक्ष्मणा को यवकुट कर ५० लीटर जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस छने हुए क्वाथ में गुड़ को घोल दें। अब मिट्टी के एक नये एवं बड़े घड़े में गुड़ घोला हुआ द्रव रख दें तथा धूप में सुखाया हुआ धातकीपुष्प उक्त द्रव में मिला दें। ततः मुस्ता से बेलसोंठ तक के सभी १४ द्रव्यों को मोटा यवकुट कर उक्त द्रव में मिला दें। उसका मुख बन्दकर निर्वात घर में रखें। घड़े की तली में पुआल की गद्दी बनाकर रख दें। घड़ा पर लक्ष्मणारिष्ट तथा निर्माण तिथि लिख दें। १५ दिनों के बाद घर में घुसते ही मद्यगन्धी की प्रतीति होने पर घड़ा का मुख खोलकर उसके अन्दर जलती दियासलाई की तिल्ली ले जाने पर ऑक्सीजन की उपस्थिति के कारण जलती रहेगी। यदि अग्नि बुझ जाती है तो कार्बन डाई आक्साइड की उपस्थिति जानें तथा अभी निर्माण-प्रक्रिया चालू है यह समझना चाहिए। उक्त निर्माण प्रक्रिया के सम्पन्न होने पर अरिष्ट को कपड़े से छान लेना चाहिए। खाली घड़े को कपड़ा से पोंछकर छना हुआ अरिष्ट उसी घड़े में ८-१० दिनों के लिए रख दीजिए। जब उसमें तलछट (Sediments) बैठ जाय तो १० दिनों के बाद टेढ़ाकर सारा स्वच्छ द्रव निकालकर बोतलों में बन्दकर कार्क एवं लेबल लगा देना चाहिए। लेबल में औषधि का नाम, ग्रन्थ, रोगाधिकार, मात्रा एवं अनुपान आदि लिख देना चाहिए। इस आसव-अरिष्ट को १ वर्ष के बाद ही प्रयोग में लाना चाहिए। यह स्त्रियों के सभी रोगों के लिए हितावह है।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—बराबर जल से। **रस**—मधुर एवं मद्य का स्वाद। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **उपयोग**—स्त्रियों के गर्भाशयगत विकार।

३९. पत्राङ्गासव

पत्राङ्गं खदिरं वासा शाल्मलीकुसुमं बला।
भल्लातकं शारिवे द्वे जपाकुसुममस्फुटम् ॥११८॥
आम्रास्थि दार्वी भूनिम्ब आफूकफलजीरकम्।
लौहं रसाञ्जनं बिल्वं केशराजस्त्वचं तथा ॥११९॥
कुङ्कुमं देवकुसुमं प्रत्येकं पलसम्मितम्।
सर्वं सुचूर्णितं कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥१२०॥
धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत्।
शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यार्द्धतुलां तथा ॥१२१॥
एकीकृत्य क्षिपेद् भाण्डे निदध्यान्मासमात्रकम्।
हन्त्युग्रं प्रदरं सर्वं श्वेतारुणं सवेदनम्॥
ज्वरं पाण्डुं तथा शोफं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥१२२॥

१. पत्राङ्ग (रक्तचन्दनं कुचन्दनञ्च वा), २. खदिरकाष्ठ, ३. वासा, ४. शाल्मलीपुष्प, ५. बलामूल, ६. शुद्ध भिलावा, ७. अनन्तमूलकृष्ण, ८. अनन्तमूलश्वेत, ९. जपापुष्पकली, १०. आम्रास्थिमज्जा, ११. दारुहल्दी, १२. चिरायता, १३. अफीमफल (डोंडा), १४. जीरा, १५. लौहभस्म, १६. रसाञ्जन, १७. बिल्वफलमज्जा, १८. भृङ्गराज, १९. दालचीनी, २०. केशर, २१. लौंग—ये प्रत्येक द्रव्य ४६-४६ ग्राम लें। २२. द्राक्षा २० पल (९५० ग्राम), २३. धातकीपुष्प ७५० ग्राम, २४. शर्करा ४६७० ग्राम, २५. मधु २३४० ग्राम तथा जल २५ लीटर लें।

एक नये एवं बड़े मिट्टी के घड़ा में रात्रि पर्यन्त जल भरकर छोड़ दें। प्रातः उक्त जल को निकालकर दूसरा २५ लीटर मीठा जल डालें। ततः उस जल में चीनी एवं मधु मिलाकर अच्छी तरह घोल लें। तदनन्तर पत्राङ्ग से लौंग तक के सभी २० द्रव्यों को

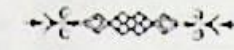
यवकुट कर उक्त जल में मिला लें। केशर को पृथक् से महीन पीसकर उक्त जल में मिलाकर घड़े का मुख बन्द कर दें और औषधि का नाम तथा तिथि आदि लिखकर निर्वात गृह में घड़े की तली में पुआल की गद्दी बनाकर रखें। २५ दिनों बाद जब निर्वात गृह से बाहर भी गन्ध आने लगे तो घड़े का मुख खोलकर प्रज्वलित दियासलाई की तिल्ली उक्त घड़े के अन्दर ले जाकर देखें। यदि अग्नि जलती रहती है तो औषधि तैयार है ऐसा समझकर कपड़ा से औषधि द्रव को छान लें। घड़ा को कपड़ा से साफ कर लें और उक्त छने हुए द्रव को १० दिनों के लिए पुन: उसी घड़े में रखकर छोड़ दें। १० दिनों बाद आसन की तलछट (Sediments) तली में बैठी मिलेगी। अब घड़ा को टेढ़ाकर सारा स्वच्छ द्रव किसी दूसरे पात्र में निकाल लें और बोतलों में भरकर कार्क एवं लेबल लगा दें। लेबल में औषधि नाम, निर्माण तिथि, ग्रन्थ-नाम, रोगाधिकार, मात्रा एवं अनुपानादि लिख दें। इसे १ वर्ष बाद में प्रयोग करना चाहिए। इसके सेवन से स्त्रियों के सभी प्रकार के प्रदर, गर्भाशय जन्य विकृति, ज्वर, पाण्डु, शोथ, मन्दाग्नि एवं अरुचि को नष्ट करता है। इसे जल के साथ भोजनोपरान्त २ बार लेना चाहिए।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—बराबर जल से। **रस**—मधुर एवं तीक्ष्ण मद्य। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **उपयोग**—स्त्रियों के सभी प्रदर एवं गर्भाशय गत रोग में।

प्रदररोग में पथ्यापथ्य

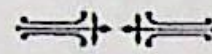
यत्पथ्यं यदपथ्यं च रक्तपित्तेषु कीर्त्तितम्।
प्रदरेऽपि यथादोषं तत्तन्नारी भजेत्त्यजेत्॥१२३॥

इति भैषज्यरत्नावली प्रदररोगाधिकारः।



रक्तपित्त रोग में जो पथ्य तथा अपथ्य कहा गया है, उन्हीं को दोषानुसार प्रदर की रुग्णाओं को भी सेवन करना और त्याग करना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य प्रदररोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ योनिव्यापद्रोगाधिकारः (६७)

योनिव्यापद् रोग में कर्म (च.द.)

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित्।
बस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपः पिचुधारणम् ॥१॥

योनिव्यापद् रोगों में प्रायः वातघ्नकर्म, उत्तरबस्ति, अभ्यङ्ग, परिषेक, प्रलेप तथा पिचुधारण करना हितकर है। सिद्धतैल, घृत, औषधिस्वरस, वटादि क्षीरीवृक्षों के दूध एवं स्फटिका द्रव में रूई या वस्त्रों को भिगोकर छोटी पोटली बनाकर योनि में धारण करते हैं।

१. वचादि चूर्ण (च.द.)

वचोपकुञ्चिकाऽजाजी कृष्णा वृषकसैन्धवम्।
अजमोदायवक्षारचित्रकं शर्कराऽन्वितम् ॥२॥
पिष्ट्वा प्रसन्नयाऽऽलोड्य खादेत्तद् घृतभर्जितम्।
योनिव्यापत्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥३॥

१. वच, २. स्याहजीरा, ३. जीरा, ४. पीपर, ५. वासा, ६. सैन्धव, ७. अजमोदा, ८. यवक्षार, ९. चित्रकमूल, १०. शर्करा—इन्हें समभाग लें। चीनी को पृथक् पीस लें। शेष ९ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और चीनी मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण से ३ ग्राम की मात्रा में १० मि.ली. प्रसन्ना (सुरा का ऊपरी स्वच्छ अंश) में सिल पर पीसें। ततः ३ ग्राम घी में भर्जित कर दिन में २ बार सेवन करें। एक मात्रा ३ ग्राम की है। कुछ दिनों तक इस चूर्ण का सेवन करने से योनि-व्यापत्, हृद्रोग, गुल्म एवं अर्शरोग नष्ट हो जाते हैं।

२. योनिपरिषेचन (च.द.)

गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम् ॥४॥

१. गुडूची, २. त्रिफला एवं ३. दन्तीमूल के मिश्रित क्वाथ से योनि का परिषेचन अर्थात् धोने से लाभ होता है।

३. तगरादि पिचु (च.द.)

नतवार्त्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ।
तैलात् प्रसाधिताद्धार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ॥५॥

१. तगर, २. बृहती, ३. कूठ, ४. सैन्धवलवण. ५. देवदारु—उपर्युक्त पाँच द्रव्य प्रत्येक ९० ग्राम लें। तिलतैल ३७५ मि.ली. तथा जल १५०० मि.ली. लें।

तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः तगरादि पाँचों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनाकर मूर्च्छिततैल में कल्क और जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार-कर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को स्वच्छ वस्त्र या स्वच्छ रूई में डुबोकर योनि के अन्दर पिचु रूप में धारण करें। इससे योनि रोग नष्ट होते हैं।

पित्तज योनिरोग में कर्म (चरक)

पित्तलानान्तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ।
शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥६॥

पित्तप्रधान योनिव्यापत् में पित्तघ्न द्रव्य साधित क्वाथ एवं स्नेहों से परिषेक, अभ्यङ्ग तथा पिचु धारण कर्म करना चाहिए तथा योनि को स्निग्ध करने के लिए शीतौषध सिद्ध घृत का प्रयोग करना चाहिए।

कफज योनिरोग में कर्म (च.द.)

योन्यां बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् ॥७॥

कफ से दूषित योनिरोग में रूक्ष तथा उष्णऔषधों से चिकित्सा करनी चाहिए।

४. पिप्पल्यादि वर्ति (च.द.)

पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ।
वर्त्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधिनी ॥८॥

१. पीपर, २. मरिच, ३. उड़द, ४. सौंफ, ५. कूठ, ६. सैन्धवलवण—इन छः द्रव्यों को समभाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें और जल के साथ सिल पर खूब अच्छी तरह पीस लें। इस कल्क से तर्जनी अंगुली जितनी मोटी एवं लम्बी योनिवर्त्ति बनाकर छाया में सुखा लें। रात्रि में इस वर्ति को सोते समय कफ दुष्ट योनि वाली स्त्री अपनी योनि में रखे। १ सप्ताह तक योनि में इस वर्ति को रखने से योनि शुद्ध हो जाती है।

५. वातज, पित्तज एवं कफज योनिरोगों में पिचु (च.द.)

हिंस्राकल्कन्तु वातार्त्ता कोष्णमभ्यज्य धारयेत्।
पञ्चवल्कस्य पित्तार्त्ता श्यामादीनां कफोत्तरा ॥९॥

(१) वात से दूषित योनिरोग में कण्टकारीमूल को सिल पर श्लक्ष्ण पीसकर कल्क बना लें तथा इस कल्क में थोड़ा घृत डालकर गरम करें। सुखोष्ण इस कल्क को साफ स्वच्छ वस्त्र में बाँधकर छोटी पोटली बनाकर योनि में ३ घण्टे तक धारण करना चाहिए। इस क्रिया में पहले नारायणादितैल से योनि को भी स्निग्ध करना चाहिए। (२) पित्त से दूषित योनिरोग में पञ्चवल्कल (वट-उदुम्बर-पीपल-पर्कटी एवं पारस पीपल) का श्लक्ष्ण कल्क धारण

करें तथा (३) कफ से दूषित योनिरोग में श्यामादि-गणोक्त[१] औषधियों का कल्क बनाकर थोड़ा गरमकर पोटली में रखें और पोटली को योनि मे पिचु जैसा ३ घण्टे तक धारण करें।

६. मूषिकामांसतैल प्रयोग (च.द.)

मूषिकामांससंयुक्तं तैलमातपभावितम्।
अभ्यङ्गाद्धन्ति योन्यर्शः स्वेदस्तन्मांससैन्धवैः ॥१०॥

तिलतैल २५० मि.ली. तथा मूषकमांस २५० ग्राम लें। एक कटोरा में तैल और मूषक मांस को तीक्ष्ण धूप में १ सप्ताह तक रखें। ततः मांस को हटाकर तैल को छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को योनिप्रदेश में अन्दर-बाहर मर्दन करने से या उक्त मूषिकमांस में थोड़ा सैन्धव मिलाकर अग्नि में गरम कर और एरण्डपत्र में लपेटकर योनि प्रदेश में स्वेदन करने से योन्यर्श नष्ट हो जाता है।

७. अचरणा योनिरोग में पिचु (च.द.)

गोपित्ते मत्स्यपित्ते वा क्षौमं त्रिःसप्तभावितम्।
मधुना किण्वचूर्णं वा दद्यादचरणापहम्॥
स्रोतसां शोधनं कण्डूक्लेदशोषहरञ्च यत्॥११॥

स्वच्छ रेशमीवस्त्र या स्वच्छ पतले सूती वस्त्र को गोपित्त या रोहितमत्स्य के पित्त में ७ दिनों तक भावना दें और आर्द्र वस्त्र को ही पिचु बनाकर योनि में धारण करने से अचरणा योनिरोग नष्ट हो जाता है। या सुराबीज (किण्व) को मधु में पीसकर योनि में लेप करने से अचरणा योनि ठीक हो जाती है। इन प्रयोगों से योनि का शोधन हो जाता है और योनिकण्डू, योनिक्लेद तथा योनिशोष नष्ट हो जाते हैं।

वामिनी तथा पूतियोनि चिकित्सा (च.द.)

वामिन्याः पूतियोन्याश्च कर्त्तव्यः स्वेदनोऽपि वा।
क्रमः कार्यस्ततः स्नेहपिचुभिस्तर्पणं भवेत्॥१२॥

वामिनी तथा पूतियोनि रोग में पहले स्वेदन करना चाहिए। ततः स्निग्ध पिचु के धारण से सन्तर्पण क्रिया करनी चाहिए। आचार्य शिवदास सेन पूतियोनि से उपप्लुता और परिप्लुता योनि का ग्रहण करते हैं।

८. विप्लुतायोनिहर पिचु (च.द.)

शल्लकीजिङ्गिनीजम्बूधवत्वक्पञ्चपल्लवैः।
कषायैः साधितः स्नेहः पिचुः स्याद्विप्लुतापहः ॥१३॥

१. शल्लकी, २. जिङ्गिनी, ३. जामुनत्वक्, ४. धववृक्षत्वक् तथा ५. पञ्चक्षीरीवृक्ष (वट-उदुम्बर-पीपल-पारसपीपल-प्लक्ष) के कोमल पत्ते—इनके क्वाथ एवं कल्क से सिद्ध तैल से पिचु धारण करने से विप्लुता योनिरोग नष्ट हो जाता है। शल्लकी आदि सभी द्रव्य समभाग लेना चाहिए।

९. कर्णिनीयोनिहर पिचु (च.द.)

कर्णिन्यां वर्त्तिका कुष्ठपिप्पल्यर्काग्रसैन्धवैः।
बस्तमूत्रकृता धार्य्या सर्वञ्च कफहृद्धितम्॥१४॥

१. कूठ, २. पीपर, ३. अर्कपत्र, ४. सैन्धव के समभाग सूक्ष्म चूर्ण को बकरा के मूत्र में सिल पर पीसकर वर्ति बनाकर सुखा लें। इस वर्ति को कर्णिनीयोनिरोग में धारण करने से रोग नष्ट हो जाता है। साथ ही कर्णिनीयोनि रोग में कफघ्न एवं रूक्षोष्ण उपचार करना चाहिए।

१०. उदावृत्ता-महायोनि-परिस्रस्ता में कर्म (च.द.)

त्रैवृतं स्नेहनं स्वेद उदावृत्तानिलार्त्तिषु।
तदेव च महायोन्यां स्रस्तायाञ्च विधीयते॥१५॥

उदावृत्तायोनिरोग में तथा अन्य वातज योनिरोगों में निशोथ कल्क-क्वाथ से सिद्धतैल से स्नेहन एवं स्वेदन करना चाहिए। इसी तरह की चिकित्सा महायोनि और परिस्रस्ता योनिरोगों में भी करनी चाहिए।

११. गर्भाशयभ्रंशहरोपाय (च.द.)

आखोर्मांसं सपदि बहुधा खण्डखण्डीकृतं यत्
तैले पाच्यं द्रवति नियतं यावदेतन्न सम्यक्।
तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधाना
हन्ति व्रीडाकरभगफलं नात्र सन्देहबुद्धिः ॥१६॥

तत्काल मारे गये चूहे का मांस—क्वाथार्य १५०० ग्राम तथा कल्कार्थ ९३ ग्राम, तिलतैल ३७५ मि.ली. तथा जल ६ लीटर लेना उचित है।

चूहे का अन्त्र-रोम रहित मांस १५०० ग्राम लेकर ६ लीटर जल में क्वाथ करें। जब पूरा मांस द्रवित होकर जलमय हो जाय तो क्वाथ को कपड़े से छान लें। कल्क के मांस को शस्त्र से कूटकर सूक्ष्म टुकड़े करें। अब तैल का मूर्च्छन करके मांस क्वाथ और मांस कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। क्वाथ सूखने पर १.५०० लीटर जल देकर कल्क का पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को स्वच्छ वस्त्र तथा रूई में भिगोकर योनि में रखने से लज्जोत्पादक योनिकन्द (व्रीडाकर = लज्जोत्पादक, भगफलं = योनिकन्द) रोग शान्त हो जाता है।

१२. भिन्नयोनि-शमनोपाय (च.द.)

शतपुष्पातैललेपाद्बदरीदलजात्तथा।
पेटिकामूललेपेन योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति॥१७॥

१. श्यामा-महाश्यामा-त्रिवृद्-दन्ती-शंखिनी-तिल्वक-कम्पिल्लक-रम्यक-क्रमुक-पुत्रश्रेणी-गवाक्षी-राजवृक्ष-करञ्जद्वय-गुडूची-सप्तलाच्छगलान्त्री-सुधाः सुवर्णक्षीरी चेति। (सु.सू. ३८।२९)

सौंफ, बदरीपत्र के पत्ते तथा पेटिकामूल (कुबेराक्षमूल) को सिल पर सूक्ष्म पीसें और उस कल्क में थोड़ा तिलतैल को मिलाकर भिन्नयोनि स्थल पर लेप करने से भिन्नयोनिरोग शान्त हो जाता है। अर्थात् योनि जुड़ जाती है।

१३. योनिभ्रंश एवं योनिच्युति हरोपाय (च.द.)

सुषवीमूललेपेन प्रविष्टान्तर्बहिर्भवेत्।
योनिर्मूषावसाऽभ्यङ्गान्निःसृता प्रविशेदपि ॥१८॥

करैला के मूल को जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को योनि के अन्दर लेप करने से अन्तः- प्रविष्ट गर्भाशय बाहर आ जाता है अर्थात् अपने स्थान में हो जाता है। तथा योनि में चूहे की वसा का अभ्यङ्ग करने से बाहर निकला गर्भाशय स्वस्थान में आ जाता है।

१४. योनिदार्ढ्यकृत लेप (च.द.)

लोध्रतुम्बीफलालेपो योनिदार्ढ्यं करोति च।
वेतसमूलनिःक्वाथक्षालनेन तथैव च॥
मूषिकावागुलिवसाम्रक्षणं योनिदार्ढ्यकृत् ॥१९॥

लोध्रत्वक् और कटुतुम्बी फल (समभाग) को सिल पर पीस-कर योनि में लेप करने से शिथिल योनि दृढ़ हो जाती है। अथवा वेतसमूलक्वाथ से योनि का प्रक्षालन करने से योनि दृढ़ हो जाती है। इसी तरह चूहे की वसा या वागुलि (चिमगादड़) की वसा का योनि में अभ्यङ्ग करने से शिथिलयोनि दृढ़ हो जाती है।

१५. योनिदृढीकरण लेप (च.द.)

वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरिचानि तथैव च।
अश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणमुत्तमम् ॥२०॥

१. वच, २. नीलकमल, ३. कूठ, ४. मरिच, ५. अश्वगन्धा, ६. हरिद्रा—इन्हें समभाग में लेकर कूट-पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क का लेप करने से शिथिलयोनि दृढ़ हो जाती है।

१६. योनिदृढीकरण लेप (ग.नि.)

पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम्।
मधुना योनिमालिप्य गाढीकरणमुत्तमम् ॥२१॥

पलाशबीज एवं गूलर के फल को पीसकर कल्क बना लें। अब कल्क में थोड़ा तिलतैल एवं मधु मिलाकर योनि में लेप करने से शिथिलयोनि दृढ़ हो जाती है।

१७. योनिदृढीकरण लेप (च.द.)

मदनफलमधुककर्पूरपूरितं भवति कामिनीजनस्य।
चिरगलितयौवनस्य च वराङ्गमतिगाढसुकुमारम् ॥२२॥

१. मदनफल पिप्पली (मदनफलबीज), २. यष्टिमधु, ३. कर्पूर—तीनों द्रव्य समभाग लें। मैनफल और मुलेठी का पहले चूर्ण कर लें। पुनः कर्पूर मिलाकर सिल पर जल के साथ पीसें और योनि में लेप करने से बहुत दिनों से शिथिलयोनि अर्थात् वृद्धाओं की योनि भी कुछ दिनों में दृढ़ हो जाती है।

१८. योनिदृढीकरणार्थ प्रक्षालन (ग.नि.)

वेतसस्य तु मूलानि क्वाथयेन्मृदुनाऽग्निना।
भगः प्रक्षालितस्तेन गाढं समुपजायते ॥२३॥

वेतसमूल के मृदु अग्नि पर यथाविधि निर्मित क्वाथ से योनि प्रक्षालन करने पर कुछ ही दिनों में योनि दृढ़ हो जाती है।

योनौ इन्द्रगोपलेपः (च.द.)

स्याच्छिथिलाऽपि च गाढा
सुरगोपाज्याभ्यङ्गतो योनिः ॥२४॥

इन्द्रगोपकीट (बीरबहूटी) को समभाग घृत के साथ सिल पर पीसकर योनि में लेप करने से शिथिलयोनि भी दृढ़ हो जाती है।

१९. योनिदुर्गन्धिहर घृत (च.द.)

पञ्चपल्लवयष्ट्याह्वमालतीकुसुमैर्घृतम्।
रविपक्वमन्यथा वा योनिगन्धनिवारणम् ॥२५॥

पञ्चपल्लव (आम्रपत्र-जामुनपत्र-कैंतपत्र-बिजौरानिम्बुपत्र एवं बिल्वपत्र), यष्टिमधु एवं मालती (चमेली) पुष्प को (समभाग) लें। इन्हें सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इन प्रत्येक द्रव्य को १३ ग्राम लें और गोघृत ३७५ ग्राम लेना चाहिए। एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में घृत और कल्क दोनों को हाथ से अच्छी तरह मिलाकर तीक्ष्ण धूप में १ सप्ताह तक रखें। अर्थात् रवि-पाक करें। अथवा स्नेहपाकविधि से घृत को मूर्च्छित कर कल्क और चतुर्गुण जल देकर पाक करें। जल सूख जाने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत का योनि में लेप या मर्दन करने से योनि की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है।

२०. स्त्रियों का कटिभाग क्षीणकर क्वाथ (च.द.)

सुतनूकरोति मध्यं पीतं सलिलेन माधवीमूलम् ॥२६॥

माधवीलता मूलत्वक् को जल के साथ सूक्ष्म पीसें और जल में घोलकर छान लें। इस जल को प्रतिदिन पीने से स्त्रियों के कटि प्रदेश पतले हो जाते हैं।

२१. आर्त्तव प्रवर्त्तक योग (च.द.)

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनफलकिण्वयष्ट्याह्वैः।
सस्नुक्क्षीरैर्वर्त्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥२७॥

१. कटुतुम्बी (तितलौकी) बीज, २. जयपाल, ३. पीपर, ४. गुड़, ५. मदनफलबीज, ६. किण्व (सुराबीज), ७. यष्टिमधु, ८. स्नुहीक्षीर—समभाग लें। इन्हें जल के साथ सिल पर सूक्ष्म पीसकर वर्ति जैसा बना लें। इस वर्ति को सूखने के बाद योनि में रखने से नष्ट हुआ आर्त्तव पुनः आने लगता है।

२२. आर्त्तव प्रवर्त्तक योग (च.द.)

सकाञ्जिकं जपापुष्पं भृष्टं ज्योतिष्मतीदलम्।
दूर्वापिष्टञ्च सम्प्राश्य वनिता त्वार्त्तवं लभेत् ॥२८॥

जपापुष्प (ओडहुलपुष्प) को काञ्जी के साथ सिल पर पीसकर पीने से अथवा ज्योतिष्मती (मालकांगनी) के पत्रों को घृत में भृष्ट कर दूर्वा स्वरस से सिल पर पीसकर पीने से नष्ट आर्त्तव पुनः प्रवर्तित होने लगता है।

२३. आर्त्तव प्रवर्त्तक योग

पीतं ज्योतिष्मतीपुष्पस्वर्जिकोग्रासनं त्र्यहम्।
शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद् ध्रुवम् ॥२९॥

१. ज्योतिष्मतीपुष्प, २. सज्जीखार (सर्जिक्षार), ३. वच, ४. असनकाष्ठ—इन चारों द्रव्यों को समभाग लेकर कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें। इस चूर्ण को ३-४ ग्राम की मात्रा में शीतलजल के साथ दिन में २ बार पीने से तीन दिनों में निश्चित रूप से रजः प्रवृत्ति होने लगती है।

२४. गर्भरोधक योग (यो.रत्ना.)

पिप्पलविडङ्गटङ्कणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा।
ऋतु समये नहि तस्या गर्भः सञ्जायते क्वापि ॥३०॥

जो स्त्री अपने ऋतुकाल में पीपरचूर्ण, विडङ्गचूर्ण, शुद्ध टङ्कण (समभाग) मिलाकर ३-४ ग्राम की मात्रा में गोदुग्ध के साथ लेती है, उसे गर्भ नहीं रहता है। इसे १२ दिनों तक प्रतिदिन पीना चाहिए।

२५. गर्भरोधक योग (यो.रत्ना.)

आरनालपरिपेषितं त्र्यहं
या जपाकुसुममत्ति पुष्पिणी।
सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी
सा दधाति नहि गर्भमङ्गना ॥३१॥

जो स्त्री ऋतुकाल में (रजःस्राव के ३ दिन के बाद १२ दिनों तक ऋतुकाल कहा जाता है) जपापुष्प (ओडहुल का लाल फूल) को काञ्जी के साथ पीसकर तीन दिन तक पीती है और ५० ग्राम पुराना गुड़ रोज खाती है, उसे कदापि गर्भ नहीं रहता है।

२६. गर्भरोधक योग

पाठापत्रमृतुस्नाता पीत्वा गर्भं न धारयेत् ॥३२॥

जो स्त्री मासिक स्राव के बाद स्नान कर पाठा के पत्रों को जल के साथ पीसकर पीती है उसे गर्भ धारण नहीं होता है।

२७. रजोनिवृत्तिकर योग (चक्रदत्त)

धात्र्यर्जुनाभयाचूर्णं[1] तोयपीतं रजो हरेत्।
शेलुच्छदमिश्रपिष्टं भक्षणञ्च तदर्थकृत् ॥३३॥

१. आमलाचूर्ण, २. अर्जुनत्वक्चूर्ण, ३. हरीतकीचूर्ण—इन्हें समभाग में मिलाकर पानी के साथ पीने से असमय में ही रजोनिवृत्ति हो जाती है। अथवा—लिसोड़े के पत्ते और चावल समभाग में लेकर जल के साथ पीसकर पीने से रजोनिवृत्ति हो जाती है।

२८. रजोनिवृत्तिकर योग

रसाञ्जनं हैमवती वयःस्था
चूर्णीकृतं शीतजलेन पीतम्।
रजोविनाशं नियतं करोति
शङ्काऽत्र का गर्भसमागमस्य ॥३४॥

१. रसाञ्जन, २. हरीतकी, ३. आमलकी—इन तीनों द्रव्यों का पृथक्-पृथक् चूर्ण कर समभाग में मिलाकर ३ ग्राम शीतल जल से लेने पर असमय में ही रजोनिवृत्ति हो जाती है। यहाँ पर सम्भोग के बाद गर्भधारण की शंका कहाँ से होगी।

२९. पुत्रप्रद योग (चक्रदत्त)

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणायाश्चक्राङ्कायास्तु कन्यया।
पिष्टं मूलं दुग्धघृतपीतमृतौ तु पुत्रदम् ॥३५॥

पुष्य नक्षत्र में लक्ष्मणा बूटी को उखाड़कर जल से साफ करें तथा कन्या के हाथों से सिल पर जल के साथ पीसकर ऋतु स्नान के बाद तीन दिनों तक पीने से तथा दूध में घृत मिलाकर अनुपान रूप में पीने से निश्चित रूप से गर्भधारण होकर पुत्र उत्पन्न होता है।

३०. गर्भस्थापक योग (चक्रदत्त)

सुवर्णस्य रूप्यकस्य चूर्णे ताम्रस्य चाज्यसम्मिश्रे।
पीते शुद्धे क्षेत्रे भेषजयोगाद् भवेद् गर्भः ॥३६॥

जो स्त्री सुवर्णभस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती, रौप्यभस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती तथा ताम्रभस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती—इन तीनों को मिलाकर घृत से मिश्रित कर ऋतुस्नान के पश्चात् ७ दिनों तक प्रतिदिन सेवन करती है तो वह निश्चित रूप से गर्भधारण करती है।

३१. पुत्रप्रद योग (चक्रदत्त)

कृत्वा शुद्धौ स्नानं विलङ्घ्य दिवसान्तरे ततः प्रातः
स्नात्वा द्विजाय दत्त्वा भक्त्या सम्पूज्य लोकनाथेशम्
श्वेतबलाङ्घ्रिकयष्टी कर्षं कर्षं पलन्तु शर्करायाः ॥३७॥
पिष्ट्वैकवर्णजीवद्वत्साया गोस्तु दुग्धेन।
समधिकघृतेन पेयं नात्र दिने देहमन्नमन्यच्च ॥३८॥
क्षुधिते सदुग्धमन्नं दद्यादापुरुषसन्निधेस्तस्याः।
समदिवसे शुभयोगे दक्षिणपार्श्वावलम्बिनी धीरा ॥३९॥
त्यक्तस्त्र्यन्तरसङ्गः प्रहृष्टमनसोऽतिवृद्धधातोश्च।
पुरुषस्य सङ्गमात्राल्लभते पुत्रं ततो नियतम् ॥४०॥

आर्त्तव शुद्धि के बाद स्नान करके उस दिन उपवास करें। दूसरे दिन प्रातः स्नान कर भगवान् सूर्य का अर्घ्यादि से पूजन कर ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा से सन्तुष्ट करें। ततः श्वेत बलामूल १२ ग्राम तथा मुलेठी १२ ग्राम को कूटकर चूर्ण बना लें। अब इस

[1] धात्र्यञ्जनाभयाचूर्णं—यहाँ अर्जुन के स्थान पर रसाञ्जन लेना पाठान्तर है।

चूर्ण को एक किसी वर्ण की जीवित बछड़े वाली गाय के दूध से सिल पर पीसें तथा उसमें २५० मि.ली. गोदुग्ध, ५० ग्राम मिश्री तथा १५ ग्राम गोघृत मिलाकर पिलाना चाहिए तथा उस दिन दूसरा किसी प्रकार का भोजन नहीं करें। दूसरे दिन भूख लगने पर केवल दूध एवं भात मिलाकर खिलाना चाहिए। ततः सम दिवस ४-६-८-१०-१२ वें दिन शुभयोग में प्रसन्न मन से अपने पति के साथ समागम करें। जिस पति का शुक्रधातु अत्यधिक पुष्ट एवं गाढ़ा हो ऐसे पुरुष से सम्भोग होने पर पुत्र की प्राप्ति होती है।

३२. पुंसवन विधि (च.द.)

गोष्ठजातवटस्य प्रागुत्तरशाखजे शुभे।
शुङ्गे माषौ तथा गौरसर्षपौ दधियोजितौ॥
पुष्यपीतौ द्रुतापन्नसत्त्वायाः पुत्रकारकौ॥४१॥

गोष्ठ (गोशाला) में उत्पन्न हुए वट वृक्ष के पूर्व तथा उत्तर दिशाओं की शाखाओं से २ शुङ्ग (पत्राङ्कुर) पुष्यनक्षत्र में तोड़ें तथा २ उड़द तथा २ श्वेत सरसों (पीतसरसों)—तीनों को स्वच्छ सिल पर पीसकर गाय के दही में मिलाकर गर्भस्थिति के २ महीने के अन्दर पुष्यनक्षत्र में पिलाने से पुत्र ही उत्पन्न होता है।

विमर्श—गर्भस्थिति होने के पश्चात् दो माह के भीतर जब पुष्यनक्षत्र आता हो, उसी दिन इस प्रयोग को करना चाहिए। सिर्फ उसी दिन इस क्रिया को करने का सम्प्रदाय भी है। एक ऐसा भी सम्प्रदाय है कि उस दिन (पुष्य नक्षत्र) से प्रारम्भ कर जब तक २ माह पूरा नहीं हो तब तक प्रतिदिन इस प्रयोग को करना चाहिए। क्योंकि दो माह के अन्दर गर्भ में लिङ्ग का निर्धारण नहीं होता है। अतः २ माह की समाप्ति तक इसे प्रतिदिन लेना अधिक लाभप्रद है। गाय का दही भी एक वर्णा गौ तथा बछड़ा (पुंलिग) वाली गाय का लेना सम्प्रदायोक्त है। यदि लाल वर्णा गाय तथा प्रथम बियाई गाय मिले तो अधिक लाभप्रद है। गाय का दूध एवं गाय का दही या गाय का घृत लेने की जो परम्परा है वह ब्रह्मर्षि वशिष्ठ की नन्दिनी गाय से प्रारम्भ होती है जिसे राजा दिलीप ने अपनी सेवा से प्रसन्न किया था। वह गाय लाल वर्ण की थी। ऐसा कविकुलगुरु कालिदास ने रघुवंशम् नामक महाकाव्य में कहा है; यथा—प्रभाप्रतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः।

३३. पुंसवन की अन्य विधि (वङ्गसेन)

पुष्ये पुत्तलिकां हैमीं वह्निप्रतापिताम्।
क्षीरे निर्वाप्य सन्तप्तं पिबेत् दुग्धं पलाष्टकम्॥४२॥

शुद्ध सुवर्ण के पतले पत्र (१×१ इञ्च) पर सुवर्णकार से पुरुषाकृति (फोटो) बनवा लें। उस पुरुषाकृति सुवर्णपत्र को पुष्यनक्षत्र में (दो महीने के अन्दर की गर्भिणी के लिए) निर्धूम अग्नि में प्रतप्त करें। पूर्वोक्त लाल वर्ण की सवत्सा गाय के ८ पल (३७५ मि.ली.) दूध में निर्वापित कर गर्भिणी को पिलाना चाहिए। ऐसा करने से निश्चित ही पुत्र प्रसव होता है।

३४. पुंसवन की अन्य विधि

पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणी पयसाऽन्वितम्।
पीत्वा च लभते पुत्रं रूपवन्तं न संशयः॥४३॥

पलाशवृक्ष के एक कोमल पत्ते को एक वर्णा (विशेषकर लाल वर्ण की) सवत्सा गाय के दूध के साथ प्रतिदिन २ मास की गर्भिणी तथा तृतीय मास आरम्भ होने तक अर्थात् पूरा दूसरा महीना पर्यन्त पीने से निश्चित ही पुत्र की प्राप्ति होती है। ८ पल (३७५ मि.ली.) दूध पीना चाहिए।

३५. गर्भप्रद योग (च.द.)

क्वाथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयः।
ऋतुस्नाताऽबला पीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः॥४४॥

अश्वगन्ध[1] २५ ग्राम, जल ८०० मि.ली., गोदुग्ध २०० मि.ली.—इन्हें मन्दाग्नि से पकाकर क्षीरावशेष रहने पर छान लें तथा उसमें थोड़ा घृत (१२ ग्राम) और थोड़ी मिश्री मिलाकर ऋतुस्नान के बाद पिलाने ने स्त्रियाँ अवश्य ही गर्भधारण करती हैं।

३६. गर्भप्रद योग (च.द.)

पिप्पली शृङ्गबेरञ्च मरिचं नागरकेशरम्।
घृतेन सह पातव्यं बन्ध्याऽपि लभते सुतम्॥४५॥

१. पिप्पलीचूर्ण, २. सोंठचूर्ण, ३. मरिचचूर्ण, ४. नागरकेशरचूर्ण—ये चारों द्रव्य समभाग लेकर मिलाकर ३ ग्राम गोघृत के साथ ऋतुस्नान के बाद १५-२० दिनों तक प्रातः सेवन करने से बन्ध्या स्त्री भी गर्भ धारण करती है।

३७. गर्भप्रद योग

नीलापराजितामूलं बस्तीक्षीरेण सम्पिबेत्।
ऋतुस्नाता त्र्यहं या तु बन्ध्या गर्भवती भवेत्॥४६॥

नीलपुष्पवाली अपराजितामूल १२ ग्राम को जल से साफ कर सिल पर बकरी के दूध के साथ पीसकर ऋतु स्नान के बाद तीन दिनों तक पीने से बन्ध्या स्त्री भी गर्भिणी हो जाती है।

३८. गर्भप्रद योग

काकोल्यौ लक्ष्मणामूलं तथा षष्टिकतण्डुलम्।
नार्येकवर्णापयसा पीत्वा गर्भवती ऋतौ॥४७॥

१. काकोली, २. क्षीरकाकोली, ३. लक्ष्मणामूल, ४. साठी चावल (समभाग में) लेकर एक वर्णा गाय के दूध के साथ

---

१. अपि च-क्षीरमष्टगुणं दद्यात् क्षीरात्नीरं चतुर्गुणम्।
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत्॥
(शार्ङ्गधरसंहिता, मध्यम. २।१६१)

अपि च-क्षीरं तिथिगुणं द्रव्यात् क्षीरात्नीरं समं मतम्।
क्षीरावशेषं कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः॥

अपि च-द्रव्याच्चतुर्गुणं क्षीरं क्षीरात्नीरं चतुर्गुणम्। (यादवजी)

अपि च-द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्। (भै.रत्ना.)

पीसकर ऋतु स्नान के बाद तीन दिनों तक पीने से स्त्रियाँ अवश्य ही गर्भ धारण करती हैं।

३९. गर्भप्रद योग

गोक्षुरस्य तु बीजन्तु पिबेन्निर्गुण्डिकारसैः।
त्रिरात्रं सप्तरात्रं वा बन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥४८॥

गोक्षुरबीज २५ ग्राम को निर्गुण्डीस्वरस के साथ पीसकर ऋतु-स्नान के बाद जो स्त्री ३ या ७ दिनों तक पीती है वह निश्चित ही पुत्रवती होती है।

४०. गर्भप्रद योग

पुष्यार्कयोगोद्धृतलक्ष्मणाया
मूलं तथा श्वेतबलान्तु पिष्ट्वा।
अप्येकवर्णा पयसा निपीतं
स्त्रियः स्मृतं पुत्रकरं मुनीन्द्रैः ॥४९॥

पुष्यनक्षत्र युक्त रविवार को लक्ष्मणामूल तथा श्वेत बलामूल समभाग (५० ग्राम) के सूक्ष्म चूर्ण को सिल पर एक वर्णा गौ के दूध के साथ पीसकर ऋतुस्नान के बाद ३ दिनों तक पीने से स्त्री निश्चित रूप से पुत्रवती होती है।

४१. गर्भप्रद योग

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणमेव चूर्णं
पुसां निपिष्टं सघृतं निपीय।
क्षीरौदनं प्राश्यपतिप्रसङ्गाद्
गर्भं विदध्यात्तरुणी न चित्रम् ॥५०॥

पुष्यनक्षत्र में स्त्री का पति लक्ष्मणामूल उखाड़कर लाये। उसे सुखाकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में गोघृत के साथ ऋतुस्नान के बाद लगातार ७ दिनों तक स्त्री लेहन करें तथा एक वर्णा गाय का दूध और भात-मिश्री के साथ खाये तथा ८वें दिन पति के साथ रमण करें तो निश्चित ही वह स्त्री गर्भवती होती है।

४२. नष्टपुष्पान्तकरस (रसचण्डाशु)

रसेन्द्रगन्धकं लौहं वङ्गं सौभाग्यमेव च।
रजतं चाभ्रताम्रं च प्रत्येकं च पलं पलम् ॥५१॥
गुडूची त्रिफला दन्ती शेफाली कण्टकारिका।
दारु जीवन्ती कुष्ठं च बृहती काकमाचिका ॥५२॥
नक्तं तालीसवेत्राग्रं श्वदंष्ट्रा वृषकं बला।
एतेषां स्वरसैर्भाव्यं त्रिवारं च पृथक् पृथक् ॥५३॥
सैन्धवं मधुकं दन्ती लवङ्गं वंशलोचनम्।
रास्नां गोक्षुरबीजं च शाणमानं विचूर्णयेत् ॥५४॥
सर्वमेकीकृतं पेष्यं जयन्तीतुलसीरसैः।
मर्दयित्वा कटीः कुर्यान्नष्टपुष्पकयोषिताम् ॥५५॥
नष्टपुष्पे नष्टशुक्रे योनिशूले च शस्यते।
ऋतुशूले क्लेदयोन्यां विशेषे चाममारुते।
एतान् रोगान्निहत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥५६॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लोहभस्म, ४. वङ्ग भस्म, ५. शुद्ध टंकण, ६. रजतभस्म, ७. अभ्रकभस्म, ८. ताम्रभस्म—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें। भावना द्रव्य—१. गुडूचीस्वरस, २. त्रिफलाक्वाथ, ३. दन्तीमूलक्वाथ, ४. हरसिंगार त्वक् क्वाथ, ५. कण्टकारीक्वाथ, ६. दारुहल्दी, ७. जीवन्ती, ८. कूठ, ९. बृहती, १०. काकमाची (मकोय), ११. हल्दी, १२. तालीशपत्र, १३. वेत्राग्र (कोपल), १४. गोक्षुर, १५. वासा, १६. बलामूल—इन १६ द्रव्यों के क्वाथ से पृथक्-पृथक् उपर्युक्त औषधि में ३-३ भावना देना चाहिए।

तदुपरान्त—१. सैन्धवलवण, २. मुलेठीचूर्ण, ३. दन्ती मूल-चूर्ण, ४. लवङ्गचूर्ण, ५. वंशलोचनचूर्ण, ६. रास्नाचूर्ण तथा ७. गोक्षुरबीजचूर्ण—इन सात द्रव्यों (प्रत्येक) का ३-३ ग्राम चूर्ण लें।

सर्वप्रथम एक स्वच्छ एवं बड़े खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उसमें क्रमशः भस्मों को मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। तदनन्तर गुडूचीस्वरस आदि १६ द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ से प्रत्येक से ३-३ भावना दें। इसके बाद सैन्धवलवण चूर्णादि सात द्रव्यों के ३-३ ग्राम चूर्ण को मिलाकर मर्दन करें। ततः जयन्ती स्वरस एवं तुलसी पत्र स्वरस के साथ मर्दन कर (२-२ भावना देकर) २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'नष्टपुष्पान्तकरस' कहते हैं। इसे १-१ वटी मधु के साथ प्रातः-सायं लेने से नष्टार्त्तव, कष्टार्त्तव, नष्ट-शुक्र, योनिशूल, ऋतुशूल, क्लेदयोनि तथा आमवात में लाभ करता है। जैसे सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी तरह इसके सेवन से उपर्युक्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१ से २ वटी। **वर्ण**—कृष्णाभ। **अनुपान**—मधु से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—नष्टार्त्तव, कष्टार्त्तव।

४३. रजःप्रवर्तनी वटी

टङ्कणं हिङ्गु कासीसं कन्यासारं समांशकम्।
कुमारीस्वरसेनैव चणकप्रमिता वटी ॥५७॥
रजोरोधं कष्टरजो वेदनाश्च तदुद्भवाः।
रजःप्रवर्त्तिनी नाम वटी तूर्णं विनाशयेत्।
भाषिता नीलकण्ठेन वह्निः काष्ठचयं यथा ॥५८॥

१. शुद्ध टङ्कण, २. घृतभृष्टहींग, ३. शुद्ध कासीस, ४. ऐलेयक—इन्हें समभाग में लेकर खरल में मर्दन करें और घृत-कुमारीस्वरस की एक भावना देकर ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें एवं काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'रजःप्रवर्त्तनी वटी' कहते हैं। इसे १-१ वटी प्रातः-सायं एवं दोपहर को जल के साथ लेने से रजोरोध, कष्टार्त्तव, रजोवेदना रोग उसी तरह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं जैसे काष्ठ समूह को अग्नि नष्ट कर देती है। इसे नीलकण्ठ (भगवान्) शिव ने या नीलकण्ठ नामक किसी आचार्य ने कहा है।

मात्रा—१ से २ वटी। **वर्ण**—कृष्णाभ ऊपर श्वेत टंकण। **अनुपान**—उष्णोदक। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—हिङ्गु गन्धी। **उपयोग**—रजोरोध, कष्टार्त्तव एवं रजोवेदना में।

४४. अपामार्गादि वर्त्ति

अपामार्गस्य मूलस्य गोधूमस्य च चूर्णकम्।
खदिरं फणिफेनं च प्रत्येकं च त्रिमाषकम् ॥५९॥
सर्वमेकत्र नीरेण सम्पिष्य घृतसंयुता।
वर्त्तिः कृता योनिमध्ये घृताऽस्रस्रुतिजित् परा ॥६०॥

१. अपामार्गमूलचूर्ण, २. गोधूमचूर्ण, ३. कत्था (खदिरसार), ४. अफीम—ये चारों द्रव्य प्रत्येक ३-३ ग्राम लें और खरल में जल के साथ मर्दन करें तथा ६-६ ग्राम की दो वर्त्ति बना लें तथा छाया में सुखाकर सुरक्षित रख लें। योनि मार्ग से रक्तस्राव वाली रुग्णा की योनि में इसे घृताभ्यक्त कर रखने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

मात्रा—६ ग्राम। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—घृताभ्यक्त कर। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—अफीमगन्धी। **उपयोग**—रक्तप्रदर।

४५. कुमारिका वटी

कुमारिका सारमथोऽहिफेनकं
कासीसकं वङ्गसुरप्रिये च।
समं समं साधु विमर्द्य वारिणा
द्विरक्तिमाना वटिका विदध्यात् ॥६१॥
कुमारिका नाम वटीयमुत्तमा-
ऽम्भसाऽनुपानेन निषेविता सदा
मक्कल्लशूलं च जरायुशूलं
योनेश्च शूलं च रुजः समस्ताः।
सुदारुणा बाधकरोगसंयुता-
विनाशयत्येव तृणं यथाऽग्निः ॥६२॥

१. ऐलेयक (मुसब्बर), २.अफीम, ३. शुद्ध कासीस, ४. वङ्गभस्म, ५. अगस्त्यपुष्पवृक्षत्वक्—इन्हें समभाग लेकर कूट-पीसकर खरल में जल के साथ मर्दन करें और २५० मि.ग्रा. (२-२ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'कुमारिका वटी' कहते हैं। इसे १-१ वटी जल के साथ सेवन करने से मक्कलशूल (प्रसवशूल), अपरापातजन्य शूल, योनिशूल आदि दारुणशूल नष्ट हो जाते हैं। सभी योनि विकार में यह औषधि लाभकर है। जैसे अग्नि तृणसमूह को जला देती है उसी तरह यह औषधि उपर्युक्त रोगों को नष्ट कर देती है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्याम। **अनुपान**—जल से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—अफीमगन्धी। **उपयोग**—मक्कलशूल, अपराशूल, योनिशूल में।

४६. विजयादि वटी

विजयाकन्यकासारौ मूलं रक्तोत्पलोद्भवम्।
अपामार्गोद्भवं तद्वत् समं सर्वं तु वारिणा ॥६३॥
सम्मर्द्य रक्तियुगलोन्मिताः कुर्याद्वटीः शुभाः।
सेवनाद्विलयं यान्ति सत्वरं कटिजा रुजः ॥६४॥
जरायुशूलं बाधा च कृच्छ्रा कृच्छ्ररजःस्रुतिः।
विजयादि वटी ह्येषा महादेवेन भाषितम् ॥६५॥

१. भाँगपत्र, २. ऐलेयक (मुसब्बर), ३. रक्तकमलमूल, ४. अपामार्गमूल—समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें तथा जल के साथ खरल में मर्दन कर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'विजयादि वटी' कहते हैं। इसका निर्माण भगवान् महादेव ने किया है। इस वटी को (१-१ वटी) जल के साथ सेवन करने से कटिवेदना, जरायुजशूल, रजःकृच्छ्र, विषम रजःस्राव तथा कष्टार्त्तव वेदना नष्ट हो जाती है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्याम। **अनुपान**—जल से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—अफीम गन्धी। **उपयोग**—रजःकृच्छ्र, कष्टार्त्तव, कटिवेदना, जरायुज शूल।

४७. संविदासार

संविदामञ्जरीपत्रस्वरसं वस्त्रशोधितम्।
जलस्वेदनयन्त्रेण गाढमेव प्रकल्पयेत् ॥६६॥
यावन्मुद्राङ्कनं तत्र भवेद्वा गोलकं तथा।
रक्तिपादमितादर्द्धरक्तिमात्रं प्रदापयेत् ॥६७॥
द्वित्रिवारं सेवनेन स्त्रीणां शूलं जरायुजम्।
योनिशूलं द्रुतं हन्यात् संविदासारनामकः ॥६८॥
प्रोक्तो गहननाथेन फलवर्त्तिप्रयोगतः।
मात्रया रक्तिमितया योनिव्यापत्प्रणश्यति ॥६९॥
आमवातश्च दुःसाध्यस्तमकश्वास एव च।
तथा चायामकः शीघ्रं सिंहाक्रान्तो यथा करी ॥७०॥
संविदामञ्जरीपत्रस्वरसाभावतोऽथवा।
शुष्कमञ्जरीपत्राणां क्वाथो देयो यथाविधिः ॥७१॥

संविदामञ्जरी (गाँजा) की जटा एवं पत्र का स्वरस निकालकर जलस्वेदनयन्त्र में पकाकर घन कर लें। जब इतना घन हो जाय कि अंगुलियों की रेखाएँ उस घन पर उग जायें तो उसकी $\frac{1}{2}$ रत्ती (३० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें। इस संविदासार नामक वटी को आचार्य गहननाथ ने रोगियों के लिए निर्मित किया है। इसे दिन में २-३ बार जल के साथ सेवन करने से स्त्रियों के जरायुजशूल, योनिशूल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसे स्त्रियों की योनि में रखने के लिए एक रत्ती की फलवर्त्ति रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। इस वर्त्ति को योनि में धारण करने से समस्त योनिव्यापत् रोग नष्ट हो जाते हैं। इस वटी का प्रतिदिन अन्तःप्रयोग करने से दुःसाध्य आमवात, तमकश्वास, अन्तरायाम, बहिरायाम आदि रोग भी नष्ट हो जाते हैं। यदि गांजे के ताजे पत्र स्वरस नहीं मिले तो सूखे पत्तों के क्वाथ से घनवटी बनाकर औषधि तैयार कर लेनी चाहिए।

मात्रा—३०-६० मि.ग्रा.। **वर्ण**—कृष्ण। **अनुपान**—जल से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—उग्रगन्धी। **उपयोग**—जरायुजशूल में।

४८. फलघृत (शा.सं.)

त्रिफलां द्वे सहचरे गुडूचीं सपुनर्नवाम्।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम्॥७२॥
कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत् क्षीरं चतुर्गुणम्।
तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिशूलनिपीडिताम्॥७३॥
पिण्डिता चलिता या च निःसृता विवृता च या।
पित्तयोनिश्च विभ्रान्ता षण्ढयोनिश्च या स्मृता॥७४॥
प्रपद्यन्ते हि ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत्।
एतत् फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम्॥७५॥

गोघृत ७५० ग्राम, गोदुग्ध ३ लीटर तथा जल ३ लीटर लें।

कल्क—१. आमला, २. हरीतकी, ३. बहेड़ा, ४. सहचर (श्वेतपुष्प, नीलपुष्प दोनों), ५. गुडूची, ६. पुनर्नवा, ७. सोनापाठा, ८. हल्दी, ९. दारुहल्दी, १०. रास्ना, ११. मेदा, १२. शतावरी—प्रत्येक द्रव्य १३-१३ ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः कल्क के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसें और कल्क बना लें। अब एक बड़े पात्र में मूर्च्छितघृत, कल्क एवं गोदुग्ध डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'फलघृत' कहते हैं। यह योनिदाह शान्ति के लिए परमोत्कृष्ट है। योनिदोष से पीड़ित स्त्री को यह घृत १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध के साथ दिन में २ बार पिलाने से योनिशूल, पिण्डिताचलिता, निःसृता, विवृता, पित्तयोनि, निस्रस्ता तथा षण्ढयोनि आदि सभी योनिरोग नष्ट हो जाते हैं तथा योनि अपने स्थान में आ जाती है। इस घृत के प्रभाव से स्त्री अनेकों बार गर्भ धारण करती है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम दूध या गरम जल। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—समस्त योनिरोगों में।

४९. फलकल्याण घृत (च.द.)

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला।
मेदा पयस्या काकोलीमूलञ्चैवाश्वगन्धजम्॥७६॥
अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गु कटुकरोहिणी।
उत्पलं कुमुदं द्राक्षाकाकोल्यौ चन्दनद्वयम्॥७७॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
शतावरीरसं क्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम्॥७८॥
सर्पिरेतन्नरः पीत्वा नित्यं स्त्रीषु वृषायते।
पुत्राम् सञ्जनयेन्नारी मेधाढ्यान् प्रियदर्शनान्॥७९॥
या चैवास्थिरगर्भा स्याद्या च वा जनयेन्मृतम्।
अल्पायुषं वा जनयेद् या च कन्यां प्रसूयते॥८०॥
योनिदोषे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते।
प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम्॥८१॥
नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्त्तितम्।
अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः॥८२॥
जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतमत्र तु गृह्यते।
आरण्यगोमयेनापि वह्निज्वाला प्रदीयते॥८३॥

१. मंजीठ, २. मुलेठी, ३. कूठ, ४. त्रिफला, ५. शर्करा, ६. बलामूल, ७. मेदा, ८. क्षीरविदारी, ९. काकोली, १०. अश्वगन्धा, ११. अजमोदा, १२. हल्दी, १३. दारुहल्दी, १४. घृतभृष्ट हींग, १५. कटुकी, १६. नीलकमल, १७. कुमुदपुष्प, १८. द्राक्षा, १९. काकोली, २०. क्षीरकाकोली, २१. रक्त चन्दन, २२. श्वेतचन्दन—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

गोघृत ७५० ग्राम, शतावरीस्वरस ३ लीटर तथा गोदूध ३ लीटर।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः मंजीठ से श्वेतचन्दन तक के सभी २२ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छितघृत में कल्क और दूध देकर पाक करें। दूध सूखने पर शतावरीस्वरस देकर पुनः पाक करें। शतावरीस्वरस सूखने पर दूध के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर घृत को काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'फलघृत' कहते हैं। इसे देवभिषग् अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था। यद्यपि इस पाठ में लक्ष्मणामूल डालने को नहीं कहा गया है तथापि यदि लक्ष्मणामूल डालें तो अत्यधिक लाभ होता है। इस घृत के निर्माण हेतु एक वर्णा तथा जीवित वत्सा गाय का दूध एवं घृत लेना चाहिए। इंधन में वन्योपल या गाय के गोबर से बने उपलों का ही प्रयोग करना चाहिए। इसे ६ से १२ ग्राम गरम गोदुग्ध या गरम जल के साथ लेना चाहिए। इस घृत को स्त्री-पुरुष दोनों को सेवन करना चाहिए। पुरुष इस घृत का पान कर स्त्रियों के प्रति मैथुन में वृषभ (सांड़) के जैसा शक्तिशाली हो जाता है। स्त्रियाँ मेधावी एवं स्वरूपवान् पुत्रों को जन्म देती हैं। जिस स्त्री का गर्भपात हो जाता है या पुत्रोत्पन्न होकर मर जाता है या अल्पायु सन्तान होती है या जिन्हें मात्र कन्या ही उत्पन्न होती है, उन्हें इस घृत के प्रयोग से अत्यधिक सफलता मिलती है। साथ ही इस घृत के प्रयोग से योनिदोष, रजोदोष तथा योनिस्राव में अत्यधिक लाभ होता है। यह पुत्रादि सन्तान की वृद्धि करता है तथा आयुष्कर है। यह सभी ग्रह दोषो का नाश करने वाला है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—पुत्रोत्पादनार्थ एवं समस्त स्त्री विकार नाशक।

५०. सोमघृत (सुश्रुत)

सिद्धार्थकं वचा ब्राह्मी शङ्खपुष्पी पुनर्नवा।
वयस्यामयस्यष्ट्याह्वं कटुका च फलत्रयम् ॥८४॥
शारिवे रजनी पाठा भृङ्गदारुसुवर्चलाः।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्यामा वृषपुष्पं सगैरिकम् ॥८५॥
धीमान् पक्त्वा घृतप्रस्थं सम्यङ्मन्त्राभिमन्त्रितम्।
द्विमासगर्भिणी नारी षण्मासानुपयोजयेत् ॥८६॥
सर्वज्ञं जनयेत्पुत्रं सर्वामयविवर्जितम्।
अस्य प्रयोगात् कुक्षिस्थः स्फुटवाग्व्याहरत्यपि ॥८७॥
योनिदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः।
स्त्रीणां पुंसां दोषहरं घृतमेतदनुत्तमम् ॥८८॥
बन्ध्याऽपि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम्।
जडगद्गदमूकत्वं पानादेवापकर्षति ॥८९॥
सप्तरात्रप्रयोगेण नरः श्रुतिधरो भवेत्।
नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रमुपहन्ति च ॥
न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते सोमसंज्ञितम् ॥९०॥

गोघृत ७५० ग्राम तथा मीठा जल ३ लीटर। कल्क— १. श्वेत सरसो, २. वच, ३. ब्राह्मी, ४. शंखपुष्पी, ५. पुनर्नवा, ६. क्षीर-काकोली, ७. कूठ, ८. मुलेठी, ९. कटुकी, १०. द्राक्षा, ११. गम्भारीफल, १२. फालसाफल, १३. श्वेत अनन्तमूल, १४. कृष्ण अनन्तमूल, १५. हल्दी, १६. पाठा, १७. भृङ्गराज, १८. देवदारु, १९. सौवर्चल (हुरहुर), २०. मंजीठ, २१. आमला, २२. हरड़, २३. बहेड़ा, २४. प्रियङ्गु, २५. वासा पुष्प, २६. शुद्ध गैरिक— ये सभी २६ द्रव्य प्रत्येक ७ ग्राम लेकर कूट-पीसकर कल्क बना लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः मूर्च्छितघृत में कल्क और ३ लीटर मधुर जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर पाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे शिव मन्त्र से अभिमन्त्रित करें। २ मास की गर्भिणी स्त्री इसे ६ माह तक (२–६ मास तक) सेवन करे। इस घृत को 'सोमघृत' कहते हैं। इसे ६ से १२ ग्राम की मात्रा में गरम गोदुग्ध के साथ सेवन करना चाहिए। इस घृत के सेवन से स्त्री विद्वान् एवं बुद्धिमान् तथा नीरोग (सर्वरोग रहित) और स्पष्ट उच्चारण करने वाले पुत्र को जन्म देती है। योनिदोष या दुष्ट-योनि से पीड़ित स्त्रियाँ तथा शुक्रदोष से पीड़ित पुरुष दोनों इस घृत के प्रयोग से लाभान्वित होते हैं। बन्ध्या स्त्रियाँ भी इस घृत के प्रयोग से शूरवीर, विद्वान् और सम्माननीय पुत्र को जन्म देती हैं। इस घृत के पान से जड़ता, गद्‌गदत्व (हकलाकर बोलना) एवं गूंगापन नष्ट हो जाता है। सात रात्रि तक इस घृत का पान करने से व्यक्ति श्रुतिधर हो जाता है अर्थात् उसकी धारणा शक्ति बढ़ जाती है। जिस घर में यह घृत रहता है उस घर को अग्नि नहीं जला सकती है तथा इन्द्र का वज्र भी उसे नष्ट नहीं कर सकता है और उस घर के बच्चों की मृत्यु भी टल जाती है।

मात्रा— ६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **रस**—किञ्चित् तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**— स्त्रियों के समस्त रोग एवं पुरुष के शुक्र दोष का नाशक।

५१. शिशुकल्पद्रुम घृत

पञ्चाशच्छागमांसस्य दशमूल्यास्तथैव च।
जलमष्टगुणं दत्त्वा क्वाथयेन्मृदुनाऽग्निना ॥९१॥
चतुर्भागावशेषञ्च क्वाथं गृह्यप्रयत्नतः।
गव्यं प्रस्थद्वयं सर्पिर्गृह्णीयात् कुशलो भिषक् ॥९२॥
क्षीरं घृतसमं दद्यान्नारायण्या रसं तथा।
ताम्रे वा मृन्मये पात्रे तदेकत्र पचेच्छनैः ॥९३॥
कुष्ठं शटी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा।
प्रियङ्गु त्रिफला दारु पत्रमेला शतावरी ॥९४॥
काश्मरी मधुकं क्षीरकाकोली मुस्तमुत्पलम्।
श्वेतवाट्यालजं मूलं मूलञ्च शरपुङ्खगम् ॥९५॥
जीवन्ती चन्दनञ्चैव काकोली शारिवायुगम्।
विदारीद्वयमञ्जिष्ठापर्णिनीद्वयमेव च ॥९६॥
नागपुष्पं तथा दारुहरिद्रा रेणुकं तथा।
ज्योतिष्मतीभवं मूलं शङ्खिनी नीलिनी वचा ॥९७॥
अगुरुत्वग् लवङ्गञ्च कुङ्कुमं निक्षिपेत्ततः।
एतेषां कार्षिकं कल्कं दत्त्वा शुभदिने सुधीः ॥९८॥
शुभनक्षत्रयोगे च सम्पूज्य गणनायकम्।
शङ्करञ्च मृडानीञ्च नमस्कृत्यातिभक्तितः ॥९९॥
पाकं कुर्यात्प्रयत्नेन विजानन् मन्त्रपूर्वकम्।
सिद्धशीते क्षिपेत्तत्र पारदं परिनिर्मलम् ॥१००॥
सुजीर्णं शोधितञ्चाभ्रं गन्धकं कार्षिकं न्यसेत्।
ततः पुष्पररसं तत्र प्रस्थार्द्धञ्च विनिक्षिपेत् ॥१०१॥
काचसम्पुटके चान्यपात्रे वा स्थापयेत् सुधीः।
पराशरमुनिः प्रीतिकरुणावारिधिर्मुदा ॥१०२॥
बन्ध्यामयविनाशाय शिशुकल्पद्रुमं घृतम्।
चकारास्य प्रसादेन जन्मबन्ध्या लभेत् सुतम् ॥१०३॥
खादेत् कर्षमितं सर्पिर्दत्त्वा विप्राय सादरम्।
अनुपानं प्रकुर्वीत पयश्छागं विशेषतः ॥१०४॥
गव्यं वाऽपि पिबेत् क्षीरं शीतं पलयुगं तथा।
घृतस्यास्य सुसिद्धस्य गुणाञ्छ्रणु समाहितः ॥१०५॥
अस्य प्रसादात्षण्ढोऽपि बन्ध्यायां जनयेत्सुतान्।
रजोदोषेण या दुष्टा शुक्रदोषेण योऽपि च ॥१०६॥
स्त्री भगस्थगदेनैव पीडिता या च सर्वदा।
या च पुष्पं न विन्देत ऋतुना पीडिता च या ॥१०७॥
भूत्वा भूत्वा च नश्यन्ति सुता यासां मुहुर्मुहुः।
अनेकौषधयोगेन मन्त्रयोगेन वा पुनः ॥१०८॥
अनेकव्रतयोगेन यासां पुत्रो न जायते।
तासां कामसमः पुत्रा जायन्ते चिरजीविनः ॥१०९॥
एतद् घृतं गृहे यस्य न तस्य कुलिशाद्भयम्।

न राक्षसैः पिशाचैश्च गृह्यते तस्य बालकः ॥
नोपसर्पति सर्पोऽपि दर्पात्तस्य गृहान्तरम् ॥११०॥

बकरे का मांस २३३५ ग्राम (५० पल) तथा दशमूल २३३५ ग्राम (५० पल) को आठ गुना (३७.३६० लीटर) जल में क्वाथ कर चौथाई शेष रखें। गोघृत १५०० ग्राम, गोदुग्ध १५०० मि.ली. तथा शतावरीस्वरस १५०० मि.ली. लें।

कल्क द्रव्य—१. कूठ, २. कचूर, ३. मेदा, ४. महामेदा, ५. जीवक, ६. ऋषभक, ७. प्रियङ्गुफूल, ८. आमला, ९. हरीतकी, १०. बहेड़ा, ११. देवदारु, १२. तेजपत्र, १३. छोटी इलायची, १४. शतावरी, १५. गम्भारीफल, १६. मुलेठी, १७. क्षीरकाकोली, १८. मुस्ता, १९. नीलकमल, २०. श्वेतबलामूल, २१. शरपुंखामूल, २२. जीवन्ती, २३. श्वेतचन्दन, २४. काकोली, २५. श्वेतसारिवा, २६. कृष्णसारिवा, २७. विदारीकन्द, २८. क्षीरविदारीकन्द, २९. मंजीठ, ३०. शालपर्णी, ३१. पृश्निपर्णी, ३२. नागरकेशर, ३३. दारुहल्दी, ३४. रेणुकाबीज, ३५. ज्योतिष्मतीमूल, ३६. शंखपुष्पी, ३७. नीली वृक्ष, ३८. वच, ३९. अगरु, ४०. दालचीनी, ४१. लवङ्ग तथा ४२. केशर—ये सभी प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक तथा अभ्रक भस्म प्रत्येक १२-१२ ग्राम लेना चाहिए।

शुभ दिन एवं शुभ नक्षत्र में श्रीगणेश, भगवान् महेश्वर एवं माता पार्वती की पूजा-अर्चना एवं नमस्कार के बाद इनके मन्त्रों का जाप करते हुए घृत की साधना करनी चाहिए। सर्वप्रथम घृत की मूर्च्छना करनी चाहिए। ततः कूठ से लवङ्ग तक के सभी ४१ द्रव्यों का चूर्ण कर सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छित घृत में कल्क और गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। इसी क्रम में पृथक् पात्र में मांस और दशमूल के यवकुट को आठ गुना ($३७\frac{१}{२}$ लीटर) जल में क्वाथ बनायें, चौथाई जल शेष रहने पर छान लें। घृत का दुग्ध सूखने पर उस घृत में पुनः मांसादि क्वाथ देकर पाक करें। मांसादि क्वाथ के सूखने पर उसमें शतावरीस्वरस देकर पुनः पाक करना चाहिए। शतावरीस्वरस सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य घृतपाक की परीक्षा कर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। शीतल होने पर एक खरल में केशर को पीसकर उसे थोड़ा घृत के साथ मर्दन करें और सम्पूर्ण घृत में मिला दें। एक पृथक् खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। उसी कज्जली में अभ्रकभस्म भी मिलाकर मर्दन करें और सिद्ध घृत में मिला दें। अब आधा प्रस्थ (३७५ ग्राम) मधु भी उक्त घृत में मिला दें। सभी द्रव्यों के मिश्रण तथा घृत को हाथ से अच्छी तरह मिला दें और काचपात्र में संग्रहीत करें। ततः इस सिद्ध घृत की पूजा करें। सद् विप्रों की पूजा करें, स्नेह एवं कृपा के सागर पाराशर मुनि ने बन्ध्या रोग का नाश करने के लिए 'शिशुकल्पद्रुम' नामक इस घृत का निर्माण किया था। इस घृत के प्रयोग से आजन्म बन्ध्या स्त्रियाँ भी पुत्रोत्पन्न करती हैं। इसे १२ ग्राम की मात्रा में १०० मि.ली. बकरी के गरम दूध या गाय के गरम दूध के साथ मिलाकर दिन में २ बार पान करना चाहिए। इस घृत के प्रयोग से नपुंसक पुरुष भी स्त्री के साथ संभोग कर पुत्रोत्पन्न करता है। रजोदोष से दूषित स्त्री एवं शुक्रदोष से पीड़ित पुरुष, योनिरोग से पीड़ित स्त्री एवं जिस स्त्री को रजःप्रवृत्ति नहीं होती है तथा जो स्त्री कष्टार्त्तव से पीड़ित है, जिस स्त्री को बार-बार पुत्रोत्पति होकर सन्तान मर जाती हो, अनेक औषधों को खाने तथा अनेक मन्त्रों का पुनः-पुनः जाप करने तथा अनेक व्रत एवं योग करने पर भी जिसे पुत्र नहीं उत्पन्न होता हो, उन्हें कामदेव के जैसा चिरञ्जीवी पुत्र उत्पन्न होता है। यह घृत जिस घर में रहता है उसे इन्द्र के वज्र, राक्षस एवं पिशाच तथा सर्प आदि का कोई भय नहीं होता।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—बकरी एवं गाय का दूध। **रस**—मधुर। **गन्ध**—घृत एवं पक्व मांस गन्धी। **उपयोग**—स्त्री-पुरुष के बन्ध्या एवं षण्ढ दोष में, पुत्रोत्पादक।

५२. सुधाकर तैल

बलायाः केशराजस्य दूर्वायाश्च धवस्य च।
पारिभद्रस्य पद्मस्य स्वरसेन च मस्तुना ॥१११॥
तण्डुलस्य च तोयेन लाक्षायाः सलिलेन च।
काञ्जिकेन तथा कल्कैर्धात्रीधान्यकमुस्तकैः ॥११२॥
काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकोत्पलैः ।
वाजिगन्धातुगाक्षीरीशिलाजतुरसाञ्जनैः ॥११३॥
यष्टिमधुकमञ्जिष्ठामुरामांसीयवासकैः ।
गन्धद्रव्यैश्च निखिलैः पचेत्तैलं तिलोद्भवम् ॥११४॥
सुधाकराभिधं तैलमेतत् स्त्रीगदसूदनम्।
बल्यं रसायनं वृष्यमायुष्यं स्मरदीपनम् ॥११५॥

१. बलामूलक्वाथ, २. भृङ्गराजस्वरस, ३. दूर्वास्वरस, ४. धवत्वक्क्वाथ, ५. पारिभद्र (फरहद) त्वक्क्वाथ, ६. कमलस्वरस, ७. मस्तु (दधिजल), ८. तण्डुलोदक, ९. लाक्षारस, १०. काञ्जीद्रव, ११. तिलतैल—प्रत्येक द्रव ७५० मि.ली. लें। **कल्क द्रव्य**—१. आमला, २. धनियाँ, ३. मुस्ता, ४. काकोली, ५. क्षीरकाकोली, ६. जीवक, ७. ऋषभक, ८. नीलकमल, ९. अश्वगन्ध, १०. वंशलोचन, ११. शिलाजीत, १२. रसाञ्जन, १३. मुलेठी, १४. मंजीठ, १५५. मुरामांसी, १६. जवासा—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः आमला से जवासा तक के सभी १६ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। तदनन्तर मूर्च्छिततैल में कल्क और बलाक्वाथ डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर क्रमशः भृङ्गराज से दूर्वास्वरसादि द्रव डालकर पाक करें। अन्त

में काञ्जी देकर पाक करें। द्रवांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। ततः वातव्याधि अधिकार में उद्धृत गन्ध द्रव्यों[1] का कल्क देकर पुनः पाक कर तैल को कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें।

५३. हिंग्वादि तैल

हिङ्गुकासीससिन्धूत्थैः शुण्ठीपत्रकचित्रकैः।
सहासाराब्धिफेनेन्दुक्षारत्रयनिशायुगैः ॥११६॥
विपक्वं सार्षपं तैलं पुष्पसञ्जननं परम्।
रजःकृच्छ्रहरञ्चापि योनिशूलनिवारणम् ॥११७॥

सरसोतैल ७५० मि.ली. तथा जल ३ लीटर लें। कल्क—१. हिङ्गु, २. कासीस, ३. सैन्धव, ४. शुण्ठी, ५. तेजपात, ६. चित्रक, ७. सहासार, ८. समुद्रफेन, ९. कर्पूर, १०. यवक्षार, ११. सज्जिक्षार, १२. टङ्कणक्षार, १३. हल्दी, १४. दारुहल्दी—प्रत्येक द्रव्य १४-१४ ग्राम लें।

सर्वप्रथम सरसोतैल का मूर्च्छन करें। ततः हिंगु से दारुहल्दी तक के सभी १४ द्रव्यों को कूट-पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छिततैल में कल्क और जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को रूई या वस्त्र में भिंगाकर योनि में पिचु रूप में धारण करने से सद्यः रजःप्रवृत्ति हो जाती है। इसके प्रयोग से रजःकृच्छ्र एवं योनिशूलरोग नष्ट हो जाते हैं।

५४. हयमारादि तैल

हयमारामृताव्योषसिन्धूत्थैः सरसाञ्जनैः।
त्रिवृद्दन्तीनिशाभिश्च पथ्याकट्फलमुस्तकैः ॥११८॥
इन्द्रवारुणिकापाठानागकेशरचित्रकैः।
सिद्धं तैलं निहन्त्याशु योनिकण्डूं सुदारुणाम् ॥११९॥
भगाङ्कुरस्य संवृद्धिं स्मरोन्मादञ्च योषिताम्।
योनिव्रणञ्च तत् क्लेदं तदर्शांसि च सर्वथा ॥१२०॥

१. कनेरमूल, २. गुडूची, ३. सोंठ, ४. पीपर, ५. मरिच, ६. सैन्धवलवण, ७. रसाञ्जन, ८. त्रिवृत्, ९. दन्तीमूल, १०. हल्दी, ११. हरीतकी, १२. कट्फल, १३. मुस्ता, १४. इन्द्रवारुणि, १५. पाठामूल, १६. नागरकेशर, १७. चित्रकमूल। प्रत्येक द्रव्य ११ ग्राम लें।

सरसोतैल ७५० मि.ली. तथा जल ३ लीटर।

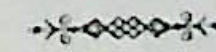
सर्वप्रथम एक कड़ाही में सरसोतैल का मूर्च्छन करें। ततः कनेरमूल से चित्रकमूल तक के सभी १७ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनायें। अब मूर्च्छित तैल में उक्त कल्क और जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल की योनिप्रदेश में मालिश करना या पिचु धारण करने से भयंकर योनिकण्डू, कामाङ्कुर की वृद्धि, स्त्रियों में कामोन्माद, योनिव्रण, योनिक्लेद और योन्यर्श रोग शान्त हो जाते हैं।

मात्रा—योनि में पिचु धारण या योनि का अभ्यङ्ग। **वर्ण**—पीताभ। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—सरसोतैल जैसी। **उपयोग**—योनिरोगों में।

योनिरोग में पथ्यापथ्य

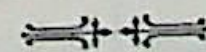
पृथक् सर्वमलोत्थासु योनिव्यापत्सु विंशतौ।
यानि पथ्यान्यपथ्यानि तानि तानि यथामलम्।
योजयेद्वर्जयेच्चापि क्रमेण मतिमान् भिषक् ॥१२१॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां योनिव्यापद्रोगाधिकारः।



२० प्रकार के कह गये योनिव्यापत् रोगों की दोषानुसार उत्पत्ति के अनुसार तत्तद् दोषानुसार सेवन एवं वर्जन (त्याग) कर बुद्धिमान् व्यक्ति योनिरोगों में पथ्य तथा अपथ्य की व्यवस्था करे।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य योनिव्यापद्रोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



१. एलाकुङ्कुमचन्दनागुरुमुराकंक्कोलमांसीशटी-
श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षोणीघ्नजोशीरकम्।
कस्तूरीनखपूतिशैलजलमुङ्मेथीलवङ्गादिकं
गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु ॥ (भैषज्यरत्ना.)

अथ गर्भिणीरोगाधिकारः (६८)

१. मासानुमासिक गर्भरक्षाकर योग

प्रथमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना।
चन्दनं शतपुष्पा च शर्करा मदयन्तिका॥१॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा।
पाययेत् पयसाऽऽलोड्य गर्भिणीं मात्रया भिषक्॥२॥

गर्भ के प्रथम माह में यदि गर्भिणी के गर्भ प्रदेश एवं पेडू में वेदना हो तो १. श्वेतचन्दन, २. सौंफ, ३. चीनी, ४. चमेली-पत्र—प्रत्येक ६-६ ग्राम लेकर सिल पर तण्डुलोदक के साथ पीसकर चीनी युक्त गोदुग्ध में मिलाकर दिन में दो बार पिलाना चाहिए। इस प्रकार ३ दिनों तक पिलाने से अच्छा लाभ होता है।

२. प्रथम मास में गर्भरक्षाकर योग

तथा तिलान् पद्मकञ्च शालूकं शालितण्डुलान्।
क्षीरेण पिष्ट्वा क्षीरेण सिताक्षौद्रान्वितेन च॥३॥
आलोड्य पाययेन्नारीं ततः सम्पद्यते शुभम्।
तस्मिन् सुजीर्णे दातव्यं भोजनं क्षीरसंयुतम्॥४॥

१. तिल, २. पद्मकाष्ठ, ३. पद्ममूल, ४. शालिचावल—प्रत्येक द्रव्य ६-६ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और दूध के साथ सिल पर पीसकर पुनः उसमें दूध-चीनी एवं मधु मिलाकर दिन में २ बार पिलायें। इस औषधि के जीर्ण होने पर दूध-भात या दूध-रोटी का मिश्री के साथ भोजन करायें। ऐसा ३-४ दिनों तक करने से गर्भ स्थिर हो जाता है।

३. द्वितीय मास में गर्भरक्षाकर योग

द्वितीये मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना।
तदोत्पलस्य कल्कन्तु शृङ्गाटककशेरुकम्॥५॥
तण्डुलोदकपिष्टन्तु पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
निवार्य गर्भशूलञ्च स्थिरं गर्भं करोति च॥६॥

यदि गर्भ के दूसरे महीने में गर्भाशय एवं पेडू गत वेदना हो तो कमलपुष्प, सिंघाड़ा तथा कशेरुकन्द को समभाग में लेकर सिल पर तण्डुलोदक के साथ पीसकर कल्क बनायें। इस कल्क को तण्डुलोदक में घोलकर पिलाने से गर्भाशयगत शूल नष्ट हो जाता है और गर्भ स्थिर हो जाता है।

४. द्वितीय मास में गर्भरक्षाकर योग

तृतीये क्षीरकाकोली काकोल्यामलकीफलम्।
पिष्टमुष्णोदकेनैतत्पाययेद् गर्भिणीं भिषक्॥
शाल्यन्नं पयसा जीर्णं भोजयेदनु गर्भिणीम्॥७॥

यदि तीसरे महीने में गर्भाशयगत वेदना हो तो क्षीरकाकोली, काकोली एवं आमला तीनों को समभाग लेकर सिल पर उष्णोदक के साथ पीसकर कल्क बनायें और उष्णोदक में घोलकर गर्भिणी को पिलाना चाहिए। इसके जीर्ण होने के बाद शालिचावल का भात और गोदुग्ध मिश्री मिलाकर सेवन करना चाहिए।

५. तृतीय मास में गर्भरक्षाकर उपाय

तथा पद्मोत्पलं कुष्ठं शालूकञ्च समांशिकम्।
सितोदकेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य पाययेत्॥
तेन मूलं निवर्त्तेत न गर्भो व्यथते ध्रुवम्॥८॥

तृतीय महीने में लाल कमलपुष्प, नीलोत्पल, कूठ, पद्ममूल को समभाग में लेकर चूर्ण कर शीतल जल से पीसें और कल्क बना लें। इसे चीनी युक्त दूध में मिलाकर दिन में २ बार गर्भिणी को पिलाने से गर्भशूल नष्ट हो जाता है तथा यह निश्चित है कि गर्भ में पीड़ा नहीं होती है।

६. चतुर्थ मास में गर्भरक्षाकर उपाय

चतुर्थे तु विधानज्ञः पाययेदिदमौषधम्।
पिष्ट्वोत्पलञ्च शालूकं कण्टकारीं त्रिकण्टकम्॥
यथाग्निमात्रया काले गर्भिणीं पयसा सह॥९॥

चौथे महीने में १. नीलकमल, २. कमलमूल, ३. कण्टकारी मूल तथा ४. गोक्षुर—प्रत्येक द्रव्य ६-६ ग्राम लें। कूटकर सिल पर जल के साथ पीसें और कल्क बना लें। इस कल्क को २०० मि.ली. चीनी युक्त दूध में मिलाकर दिन में दो बार २-३ दिनों तक पिलाने से गर्भवेदना नष्ट हो जाती है।

७. गर्भशूलनिवारणार्थ योग

तथा गोक्षुरकं सिंहीं बालकं नीलमुत्पलम्।
पिष्ट्वा क्षीरेण पातव्यं गर्भशूलनिवारणम्॥१०॥

चौथे महीने में यदि गर्भशूल होता है तो १. गोक्षुरबीज, २. बृहतीमूल, ३. सुगन्धबाला, ४. नीलकमल पुष्प—प्रत्येक द्रव्य ६-६ ग्राम लेकर कूट-पीसकर सिल पर कल्क बना लें। इस कल्क को चीनी मिले गोदुग्ध में मिलाकर पिलाने से गर्भशूल नष्ट हो जाता है।

८. पञ्चम मास में गर्भशूलरक्षाकर उपाय

पञ्चमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना।
तत्र नीलोत्पलं वीरां पिष्ट्वा क्षीरेण पाचनम्।
घृतक्षौद्रान्वितं पीत्वा गर्भस्य च रुजं हरेत्॥११॥

पाँचवें महीने में गर्भ-व्यथा दूर करने के लिए नीलकमल तथा क्षीरकाकोली प्रत्येक १२-१२ ग्राम सिल पर पीसकर कल्क बना लें और २५० मि.ली. दूध, ५०० मि.ली. उक्त कल्क तथा जल मिलाकर पाक कर सम्पूर्ण जल के सूखने पर २५० मि.ली. दूध छानकर उसमें २५ ग्राम गोघृत तथा ५० ग्राम मधु मिलाकर दिन में दो बार पिलाना चाहिए।

९. गर्भशूलरक्षाकर उपाय

तथा नीलोत्पलं नारी काकोलीं समभागिकाम्।
शीततोयेन पिष्ट्वा च क्षारेणालोड्य पाययेत्॥
अनेन विधिना गर्भः स्थिरः स्याद्रुक् प्रशाम्यति ॥१२॥

१. नीलकमल, २. प्रियङ्गु तथा ३. काकोली—तीनों १०-१० ग्राम लेकर शीतल जल से सिल पर पीसकर कल्क बना लें तथा चीनी युक्त सुखोष्ण दूध में मिलाकर दिन में २ बार पिलाने से पाचवें मास का गर्भशूल नष्ट हो जाता है।

१०. षष्ठ मास में गर्भरक्षाकर उपाय

षष्ठे मासि यदा गर्भे वेदना जायते तदा।
मातुलुङ्गस्य बीजानि प्रियङ्गु चन्दनोत्पलम्।
क्षीरेणालोड्य पातव्यं गर्भशूलनिवारणम् ॥१३॥

छठें महीने में गर्भवेदना होने पर १. मातुलुङ्गनिम्बुबीज, २. प्रियङ्गुफूल, ३. रक्तचन्दन, ४. नीलकमलपुष्प—प्रत्येक ६-६ ग्राम लेकर दूध के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। २५० मि.ली. सुखोष्ण तथा चीनी मिले हुए दूध में कल्क को घोलकर दिन में २ बार पिलाना चाहिए। इस पेय से २-३ दिनों में गर्भवेदना समाप्त हो जाती है।

११. सप्तम मास में गर्भरक्षाकर उपाय

तथा प्रियालबीजानि मृद्वीका लाजशक्तवः।
एतत् सुशीतलं काले पीत्वा च सुखमश्नुते ॥१४॥

१. चिरौंजीबीज १० ग्राम, २. द्राक्षा १० ग्राम तथा लाज-सक्तु १० ग्राम—इन्हें सिल पर शीतल जल से पीसें तथा शीतलजल में मिलाकर दिन में २ बार पिलाने से ६ठे मास की गर्भवेदना समाप्त हो जाती है।

१२. सप्तम मास में गर्भरक्षाकर उपाय

सप्तमे शतपुत्रीञ्च मृणालसहितां पिबेत्।
पिष्ट्वा क्षीरेण शूलार्त्ता गर्भिणी या सुखार्थिनी ॥१५॥

सप्तम माह में गर्भशूल-शान्त्यर्थ शतावरी १० ग्राम तथा कमलपुष्प-दण्ड १० ग्राम सिल पर दूध से पीसकर कल्क बनायें तथा चीनी युक्त २५० मि.ली. सुखोष्ण गोदुग्ध में मिलाकर दिन में २ बार पिलाना चाहिए।

१३. गर्भरक्षाकर उपाय

कपित्थं क्रमुकामूलं सलाजं शर्करायुतम्।
शीततोयेन सम्पिष्टं क्षीरेणालोड्य पाययेत्॥
पीत्वा हन्त्यबला शीघ्रं शूलं गर्भसमुद्भवम् ॥१६॥

१. कपित्थफल (कैंथ फल), २. सुपारीमूल, ३. धान की लाज—प्रत्येक १०-१० ग्राम लेकर सिल पर शीतल जल से पीसकर कल्क बनाये। चीनी मिश्रित २५० मि.ली. सुखोष्ण दूध में इस कल्क को अच्छी तरह से घोलकर दिन में दो बार पिलाने से गर्भिणी की ७वें माह की वेदना नष्ट हो जाती है और गर्भ स्थिर हो जाता है।

१४. अष्टम मास में गर्भरक्षाकर उपाय

अष्टमे तु यदा मासि गर्भे भवति वेदना।
तदा पिष्ट्वा तु धन्याकं पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
शूलं निवर्त्तते तेन गर्भः सन्धार्यते स्त्रियः ॥१७॥

२५ ग्राम धनियाबीज को तण्डुलोदक के साथ सिल पर पीसकर पुनः २०० मि.ली. तण्डुलोदक मिलाकर दिन में २ बार पिलाने से गर्भिणी की आठवें माह की वेदना नष्ट हो जाती है और गर्भ स्थिर हो जाता है।

१५. नवम मास में गर्भरक्षाकर उपाय

गर्भिण्या नवमे मासि यदा भवति वेदना।
एरण्डमूलं काकोलीं पिष्ट्वा शीतोदकेन च।
पीत्वा शूलाद्विमुच्येत तदा नारी न संशयः ॥१८॥

नवम मास में गर्भिणी को वेदना होने पर एरण्डमूलत्वक् १० ग्राम तथा काकोली १० ग्राम दोनों को शीतलजल से सिल पर पीसकर कल्क बना लें तथा इस कल्क को शीतलजल में घोलकर पिलाने से वेदना दूर हो जाती है और गर्भिणी स्वस्थ हो जाती है।

१६. गर्भरक्षाकर उपाय

एवं पलाशस्य दलं सुपिष्टं
सम्पीय तोयेन सुशीतलेन।
अत्यन्तघोराष्टममासगर्भ-
व्यथातुरा यान्ति सुखं तरुण्यः ॥१९॥

पलाश के कोमल पत्ते २५ ग्राम लेकर सिल पर शीतल जल से पीसकर दिन में २-३ बार पिलाने से अत्यन्त घोर व्यथा से पीड़िता ८वें माह की गर्भिणी की गर्भ-पीड़ा समाप्त हो जाती है तथा गर्भिणी सुख का अनुभव करती है।

१७. गर्भरक्षाकर उपाय

तथा पलाशबीजञ्च सकाकोलीकुरण्टकम्।
भक्तेन वारिणा पिष्ट्वा गर्भशूलं व्यपोहति ॥२०॥

१. पलाशबीज, २. काकोली, ३. सहचरमूल—प्रत्येक

१०-१० ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को सिल पर मण्ड से पीसें। इसे भक्त मण्ड में घोलकर दिन में २ बार पिलाने से गर्भशूल नष्ट हो जाता है।

१८. दशम मास में गर्भरक्षाकर उपाय

अथवा दशमे मासि वेदना जायते यदा।
तदा नीलोत्पलं यष्टीमधुकं मुद्गसंयुतम्॥२१॥
ससितं चाम्भसा पिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य पाययेत्।
दोषञ्च नाशयेदेष शूलं गर्भसमुद्भवम्॥२२॥

१. नीलकमल, २. यष्टिमधु, ३. मूँग—तीनों १०-१० ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर शीतलजल से पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को चीनी मिले हुए सुखोष्ण दूध २५० मि.ली. में घोलकर दिन में २ बार पिलाने से गर्भकृत दोष तथा गर्भशूल नष्ट हो जाते हैं।

१९. एकादश मास में गर्भरक्षाकर उपाय

तथा चैकादशे मासि गर्भे भवति वेदना।
मधुकं पद्मकञ्चैव मृणालं नीलमुत्पलम्॥२३॥
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य पाययेत्।
तेनैव वेदनाऽतीव नाशमायाति सत्वरम्॥२४॥

१. मुलेठी चूर्ण, २. पद्मकाष्ठचूर्ण, ३. कमलपुष्पदण्ड—प्रत्येक १०-१० ग्राम लेकर सिल पर शीतल जल से पीसकर कल्क बना लें और चीनी मिश्रित २५० मि.ली. सुखोष्ण गोदुग्ध में मिलाकर दिन में २ बार पीने से शीघ्र ही अत्यधिक गर्भ वेदना शान्त हो जाती है।

२०. गर्भरक्षाकर उपाय

क्षीरिकामुत्पलं कुष्ठं समङ्गामूलकं सिता।
पिबेदेकादशे मासि गर्भिणीशूलशान्तये॥२५॥

१. क्षीरिका (खिरनी), २. नीलकमल, ३. कूठ, ४. लज्जालूमूल—प्रत्येक ८-८ ग्राम लेकर शीतल जल से सिल पर पीसकर कल्क बना लें। चीनी मिले हुए सुखोष्ण गोदुग्ध २५० मि.ली. में इस कल्क को मिलाकर दिन में २ बार पीने से ११ वें महीने का गर्भशूल नष्ट हो जाता है।

२१. द्वादश मास में गर्भरक्षाकर उपाय

सिता विदारी काकोली तथा क्षीरविदारिका।
गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम्॥२६॥

१२वें महीने में गर्भशूल होने पर—१. विदारीकन्द, २. काकोली, ३. क्षीरविदारीकन्द १०-१० ग्राम लेकर सिल पर शीतल जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को चीनी मिले २५० मि.ली. सुखोष्ण गोदुग्ध में मिलाकर दिन में दो बार पिलाना चाहिए।

विमर्श—प्राय: गर्भ १० महीने तक ही मातृ गर्भ में रहता है कभी-कभी गर्भिणी में अन्य रोग या कुपोषण के कारण गर्भ मातृ कुक्षि में ११ या कभी १२ महीनों तक भी रह जाता है। यथा—उपविष्टक, नागोदर आदि।

२२-२८. मासानुमासिक रक्तस्रावहर प्रयोग

मधुकं शाकबीजञ्च पयस्या सुरदारु च।
अश्मन्तकं कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी॥२७॥
वृक्षादनी पयस्या च तथैवोत्पलशारिवा।
अनन्ता शारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च॥२८॥
बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशुङ्गास्त्वचो घृतम्।
पृथक्पर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका॥२९॥
शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कशेरु मधुकं सिता।
मासेषु सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापनाः।
यथाक्रमं प्रयोक्तव्या रक्तस्रावे पयोयुताः॥३०॥

(१) १. यष्टिमधु, २. शाकबीज (सागौन बीज), ३. क्षीरकाकोली, ४. देवदारु—समभाग। (२) १. पाषाणभेद, २. कृष्णतिल, ३. मंजीठ, ४. शतावरी—समभाग। (३) १. वन्दाक, २. क्षीरकाकोली, ३. नीलकमल, ४. अनन्तमूल—समभाग। (४) १. श्वेत अनन्तमूल, २. कृष्ण अनन्तमूल, ३. रास्ना, ४. कमलपुष्प, ५. मुलेठी—समभाग। (५) १. बृहती, २. कण्टकारी, ३. गम्भारीफल, ४. क्षीरी वृक्षों (वट-पीपल-पर्कटी-उदुम्बर) के शुङ्ग तथा त्वचा एवं घृत—समभाग। (६) १. पृश्निपर्णी, २. बलामूल, ३. शिग्रुत्वक्, ४. गोक्षुर, ५. मुलेठी समभाग। (७) १. सिंघाड़ा, २. कमलदण्ड, ३. द्राक्षा, ४. कशेरुकन्द, ५. मुलेठी, ६. चीनी—समभाग।

प्रथम से सप्तम मास में—ये आधे-आधे श्लोक में कहे गए ७ योग क्रमशः सातों महीने में गर्भ सम्बन्धी रक्तस्राव एवं शूल होने पर चूर्ण रूप में या क्षीरपाक रूप में चीनी मिलाकर देना चाहिए। अथवा इन चूर्णों को दूध में मिलाकर शक्कर के साथ पिलाना चाहिए। इन योगों के प्रयोग से रक्तस्राव एवं शूल पीड़ा शान्त हो जाती है।

२९. अष्टम मास का रक्तस्रावहर योग

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलसुनिदिग्धिकाः।
मूलानि क्षीरपिष्टानि दापयेद् भिषगष्टमे॥३१॥

अष्टम मास में—१. कपित्थफल, २. बिल्वत्वक्, ३. बृहतीमूल, ४. पटोलपत्र, ५. इक्षुमूल, ६. कण्टकारी मूल—प्रत्येक ६-६ ग्राम लेकर कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें। इस चूर्ण को २५ ग्राम लेकर २०० मि.ली. चीनी मिलाये हुए सुखोष्ण दूध में मिलाकर दिन में २ बार पिलाना चाहिए। इससे आठवें महीने का रक्तस्राव एवं गर्भशूल नष्ट हो जाते हैं।

३०. नवम मास का रक्तस्रावहर योग

नवमे मधुकानन्तापयस्याशारिवाः पिबेद्॥३२॥

नवम मास में—नवें महीने में रक्तस्राव एवं गर्भशूल होने पर १. मुलेठी, २. कृष्ण अनन्तमूल, ३. क्षीरकाकोली, ४. श्वेत अनन्तमूल—इनका समभाग में चूर्ण करें। इस चूर्ण में से ६ ग्राम चूर्ण लेकर चीनी मिश्रित २०० मि.ली. सुखोष्ण दूध में मिलाकर दिन में २ बार पिलाना चाहिए। इस पेय से उपर्युक्त व्यथा शान्त हो जाती है।

३१. दशम मास के रक्तस्रावहर योग

पयस्तु दशमे शुण्ठ्याः श्रृतशीतं प्रशस्यते ॥३३॥

दशम मास में—दसवें महीने गर्भरक्तस्राव एवं गर्भशूल में शुण्ठी क्वाथ से सिद्ध गोदुग्ध में चीनी मिलाकर पिलाना चाहिए।

३२. गर्भपोषक योग

सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च।
एवमापूर्यते गर्भस्तीव्रा रुक् च प्रशाम्यति ॥३४॥

१. शुण्ठी, २. मुलेठी, ३. देवदारु से साधित गोदुग्ध (क्षीर पाक) में चीनी मिलाकर पिलाने से गर्भ का पोषण होता है तथा तीव्र गर्भशूल नष्ट हो जाता है।

३३. गर्भिणीशूलहर योग

कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च
श्रृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥३५॥

१. कुशमूल, २. काशमूल, ३. एरण्डमूलत्वक्, ४. गोक्षुरबीज का समभाग में सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को ६ ग्राम की मात्रा में गरम दूध में मिलाकर चीनी डालकर पिलाने से गर्भिणी के गर्भशूल नष्ट हो जाते हैं।

३४. कशेरुकादिपयः-१

कशेरुश्रृङ्गाटकजीवनीय-
पद्मोत्पलैरण्डशतावरीभिः।
सिद्धं पयः शर्करया विमिश्रं
संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णवेगम् ॥३६॥

१. कशेरुकन्द, २. सिंघाड़ा, ३. जीवक, ४. ऋषभक, ५. काकोली, ६. क्षीरकाकोली, ७. मेदा, ८. महामेदा, ९. ऋद्धि, १०. वृद्धि, ११. मुलेठी, १२. जीवन्ती, १३. मुद्गपर्णी, १४. माषपर्णी, १५. रक्तकमल, १६. नीलकमल, १७. एरण्डमूल, १८. शतावर—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट कर इनके क्वाथ से गोदुग्ध सिद्ध कर उस दूध को वस्त्रपूत कर चीनी मिलाकर दिन में पिलाने से पतनोन्मुख गर्भ स्थिर हो जाता है।

३५. कशेरुकादिपयः-२

कशेरुश्रृङ्गाटकपद्मकोत्पलं
समुद्गपर्णीमधुकं सशर्करम्।
सशूलगर्भस्रुतिपीडिताऽङ्गना
पयोविमिश्रं पयसाऽन्नभुक् पिबेत् ॥३७॥

१. कशेरुकन्द, २. सिंघाड़ा, ३. लालकमल, ४. नीलकमल, ५. मुद्गपर्णी तथा ६. मुलेठी को समभाग में लेकर सूक्ष्मचूर्ण करें। इस चूर्ण को ६ ग्राम लेकर चीनी मिश्रित दूध में मिलाकर इस दूध का पान करने से गर्भस्रुति-गर्भशूल से पीड़ित स्त्री को सद्यः लाभ होता है और गर्भ स्थिर हो जाता है।

३६. कुलालकरकर्दमयोग

मधुना छागदुग्धेन कुलालकरकर्दमः।
अवश्यं स्थापयेद् गर्भं चलितं पानयोगतः ॥३८॥

कुम्हार द्वारा घड़े आदि बर्तन के निर्माण करते समय जब चक्र (चाक) पर जलयुक्त हाथों से पात्र को आकार देता है तब पहले से एक हाँडी में पानी रखता है। बार-बार उसमें हाथ डालकर जलयुक्त हाथ से पात्र को आकार देता है और हाथ में लगी हुई मिट्टी को उसी जलयुक्त हाँडी में पोंछता है। वह मिट्टी कीचड़ बहुल शीतल होती है। (जिसे 'गाविस' मिट्टी कहते हैं) सुखोष्ण एवं चीनी मिलाये हुए बकरी के दूध में घोलकर दिन में ३-३ बार पिलाने से स्रावयुक्त गर्भ स्थिर हो जाता है।

३७. ह्रीबेरादिक्वाथ

ह्रीबेरातिविषामुस्तामोचशक्रैः श्रृतं जलम्।
दद्याद्गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥३९॥

१. सुगन्धबाला, २. अतीस, ३. मुस्ता, ४. मोचरस तथा ५. इन्द्रयव समभाग लेकर यवकुट करें तथा २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर छानकर १०० मि.ली. क्वाथ को ५०-५० मि.ली. की मात्रा में दो बार पिलाना चाहिए। इसे प्रचलित गर्भ अर्थात् गर्भस्राव में पिलाने से यह गर्भस्राव, गर्भशूल (कुक्षिशूल) एवं प्रदररोग में लाभ करता है।

३८. योनिशूलनिवारणार्थ पान

उपकुञ्चिकां पिप्पलीञ्च मदिरा लाभतः पिबेत्।
सौवर्चलेन संयुक्तां योनिशूलनिवारिणीम् ॥४०॥

१. कलौंजी (मंगरैला), और २. पिप्पलीचूर्ण ३-३ ग्राम, ३. कालानमक १ ग्राम को ५० मि.ली. मद्य में घोलकर गर्भिणी को पिलाने से गर्भिणी का योनिशूल नष्ट हो जाता है।

३९. गर्भशोष चिकित्सा

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानाञ्चापि शुष्यताम्।
सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः ॥४१॥

वायु के प्रकुपित होने से गर्भ के सूखने पर गर्भ के पोषणार्थ चीनी मिलाये हुए सुखोष्ण गोदुग्ध में मुलेठीचूर्ण तथा गम्भारी

फल चूर्ण ५-५ ग्राम मिलाकर पिलाना चाहिए। अथवा इन द्रव्यों से सिद्ध (क्षीरपाक) गोदुग्ध पिलाना चाहिए। इससे गर्भ शरीर (बालक का शरीर) पुष्ट होता है। इस योग को प्रतिदिन पिलायें।

४०. गर्भिणी ज्वरशान्त्यर्थ क्वाथ और दुग्ध

सिंहास्यादिर्गुडूच्यादिः पञ्चमूलीरसोऽपि वा।
मधुना शमयन्त्येते गर्भिण्या ज्वरमाशु च॥
पञ्चमूलीशृतं क्षीरं गर्भिण्या ज्वरशान्तये॥४२॥

चक्रदत्त के ज्वराधिकार में उल्लिखित सिंहास्यादि क्वाथ, गुडूच्यादिक्वाथ या लघुपञ्चमूलक्वाथ में मधु मिलाकर पिलाने से अथवा लघुपञ्चमूलक्वाथ साधित दुग्ध का पान करने से गर्भिणी का ज्वर शान्त हो जाता है।

४१. एरण्डमूलादिक्वाथ

एरण्डमूलममृता मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम्।
दारुपद्मयुतः क्वाथो गर्भिण्या ज्वरनाशकः॥४३॥

१. एरण्डमूल, २. गुडूची, ३. मंजीठ, ४. रक्तचन्दन, ५. पद्मकाष्ठ—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट करें। २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में चीनी मिलाकर पिलाने से गर्भिणी का ज्वर नष्ट हो जाता है।

४२. चन्दनादिक्वाथ

चन्दनं शारिवा लोध्रं मृद्वीका शर्करान्वितम्।
क्वाथं कृत्वा प्रदातव्यं गर्भिण्या ज्वरनाशनम्॥४४॥

१. रक्तचन्दन, २. अनन्तमूल, ३. लोध्रत्वक्, ४. द्राक्षा, ५. शर्करा। चीनी छोड़कर चारों द्रव्यों को समभाग लेकर यवकुट करें तथा २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ में चीनी ६ ग्राम मिलाकर पिलाने से गर्भिणी का ज्वर नष्ट हो जाता है।

४३. मधूकादिक्वाथ

मधूकचन्दनोशीरशारिवापद्मपत्रकैः।
शर्करामधुसंयुक्तैः कषायो गर्भिणीज्वरे॥४५॥

१. महुआफूल, २. रक्तचन्दन, ३. खस, ४. अनन्तमूल, ५. रक्तकमल पुष्प—समभाग लेकर यवकुट करें। इस २५ ग्राम यवकुट को १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहे पर छानकर दिन में २ बार (५०-५० मि.ली.) पिलाने से गर्भिणी का ज्वर नष्ट हो जाता है।

४४. आम्र-जम्बुक्वाथ

आम्रजम्बूत्वचः क्वाथं लेहयेल्लाजशक्तुभिः।
अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत्॥४६॥

आम्र वृक्ष की त्वचा एवं जामुन वृक्ष की त्वचा ३-३ ग्राम तथा लाज शक्तु १० ग्राम को जल के साथ मिलाकर चाटने से गर्भिणी का संग्रहणीरोग नष्ट हो जाता है।

४५. ह्रीबेरादिक्वाथ

ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधन्याकवत्सादनी-
मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथं पिबेद् गर्भिणी।
नानावर्णरुजातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामये शस्यते॥४७॥

१. सुगन्धबाला, २. अरलु, ३. रक्तचन्दन, ४. बलामूल, ५. धनियाबीज, ६. गुडूची, ७. मुस्ता, ८. खस, ९. जवासा, २०. पित्तपापड़ा, ११. अतीस—समभाग लेकर यवकुट करें और क्वाथ विधि से क्वाथ बनाकर पीने से अनेक वर्ण के मल से युक्त रक्तातिसार एवं ज्वर से युक्त गर्भिणी एवं प्रसूता के रोगों में श्रेयस्कर है।

४६. लवङ्गादिचूर्ण

लवङ्गं टङ्कणं मुस्तं धातकी बिल्वधान्यकम्।
जातीफलं सर्जकञ्च शताह्वा दाडिमं तथा॥४८॥
जीरकं सैन्धवं मोचं नीलोत्पलरसाञ्जनम्।
अभ्रकं वङ्गकञ्चैव समङ्गा रक्तचन्दनम्॥४९॥
चव्यं चातिविषा शृङ्गीः खदिरं बालकं समम्।
भृङ्गराजरसैः प्लाव्यं भावयित्वा दिनत्रयम्॥५०॥
छागीदुग्धेन मतिमान् गर्भिणीमनुपानतः।
एतच्चूर्णं प्रदातव्यं सङ्ग्रहग्रहणीहरम्॥५१॥
नानावर्णमतीसारं ज्वरं चैव नियच्छति।
आमरक्तातिसारघ्नं शूलशोथनिषूदनम्॥५२॥

१. लौंग, २. शुद्ध टङ्कण, ३. मुस्ता, ४. धातकीपुष्प, ५. बिल्वमज्जा, ६. धनियाँ, ७. जायफल, ८. राल, ९. सौंफ, १०. अनारदाना, ११. जीरा, १२. सैन्धवलवण, १३. मोच-रस, १४. नीलकमल, १५. रसाञ्जन, १६. अभ्रकभस्म, १७. वङ्गभस्म, १८. मंजीठ, १९. रक्तचन्दन, २०. चव्य, २१. अतीस, २२. काकड़ासिंगी, २३. खदिरसार, २४. सुगन्ध-बाला—सभी द्रव्य समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः उक्त चूर्ण में अभ्रक एवं वङ्गभस्म मिलाकर भृङ्गराजस्वरस की भावना देकर तीन दिन तक मर्दन करें। सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण का १ से ३ ग्राम की मात्रा में बकरी के दूध के साथ प्रातः-सायं सेवन करने से संग्रहणी एवं अनेक वर्ण के अतिसार आमातिसार, रक्तातिसार, शूल और शोथरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१-३ ग्राम। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—बकरी के दूध से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—निर्गन्ध। **उपयोग**—संग्रहणी, अतिसार।

गर्भ की लिङ्ग परीक्षा

रोमराजी भवेद्यस्या वामपार्श्वे समुच्छ्रिता ।
कन्यां तस्यां विजानीयाद् दक्षिणेन तथा सुतम् ॥५३॥

जिस गर्भिणी स्त्री के उदर के वाम पार्श्व में रोमराजी उठी हो तो गर्भ में कन्या है तथा दक्षिण पार्श्व में रोमराजी उठी हो तो पुत्र है, ऐसा जानना चाहिए ।

अष्टममास प्रारम्भ होते ही मैथुन त्याग दे

धन्वन्तरिमतेनैव साध्वाज्ञातश्च शास्त्रवित् ।
सम्प्राप्ते चाष्टमे मासे मैथुनं परिवर्जयेत् ॥५४॥
यदि गच्छति दुर्मेधाः काममोहादचेतनः ।
विपद्यते तदा गर्भो गर्भिणी च विनश्यति ॥
अन्धमूकादिबधिरो जायते कुब्ज एव वा ॥५५॥

भगवान् धन्वन्तरि का ऐसा मत है कि जब गर्भिणी का आठवाँ महीना प्रारम्भ हो जाय तो सज्जन तथा विद्वान् पुरुष को गर्भवती स्त्री के साथ सम्भोग करना त्याग देना चाहिए। यदि दुर्बुद्धि पुरुष उक्त गर्भिणी स्त्री के साथ संभोग करता रहेगा तो गर्भ एवं गर्भवती दोनों के नाश होने की सम्भावना है । यदि दैववशात् गर्भ एवं गर्भिणी का नाश नहीं हुआ तो अन्धी-मूक-बहरी एवं कुब्ज सन्तान होगी ।

४७. सुखप्रसवकरयोग

पाठालाङ्गलिसिंहास्यमयूरकजटैः पृथक् ।
नाभिबस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रसूयते ॥५६॥

१. पाठामूल, २. कलिहारी, ३. वासामूल, ४. अपामार्ग-मूल—इन चारों में से कोई एक को श्लक्ष्ण पीसकर (सिल पर कल्क बनाकर) नाभि-बस्ति-भग तीनों में लेप करने से सुख प्रसव होता है । अर्थात् कोई विशेष पीड़ा नहीं होती है ।

४८. सुखप्रसवकरयोग

मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।
घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥५७॥

मातुलुङ्ग (बिजौरानिम्बु) के मूल तथा मुलेठी दोनों के समभाग चूर्ण को मधु एवं घृत के साथ चाटने से गर्भिणी स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है ।

४९. सुखप्रसवकरयोग

पोतकीमूलकल्केन तिलतैलयुतेन वा ।
योनेरभ्यन्तरं लिप्त्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥५८॥

पोई शाक के मूल को सिल पर पीसकर कल्क बना लें । उस कल्क में तिलतैल मिश्रित कर गर्भिणी की योनि में लेप करने से सुखपूर्वक प्रसव होता है ।

सुखप्रसवकरमन्त्र

इहामृतञ्च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनी ।
उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥५९॥
इहममृतपां समुद्धृतं वै
भव लघु गर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्री ।
तदनलपवनार्कवासवास्ते
सह लवणम्बुधरैर्दिशंतु शान्तिम् ॥६०॥
मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येन्दुरश्मयः ।
मुक्तः सर्वभयाद् गर्भ एह्येहि मा चिरं स्वाहा ॥६१॥

'इहामृतञ्च' इत्यादि मन्त्रों का प्रसविनी के पास बैठकर उच्चारण करने से सुखपूर्वक प्रसव होता है ।

च्यावनमन्त्रेणाभिमन्त्रितजलं पाययेत्

जलं च्यावनमन्त्रेण सप्तवाराभिगन्त्रितम् ।
पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ।
तथोभयपञ्चदशदर्शनं सुखसूतिकृत् ॥६२॥

च्यावन मन्त्र—'ओम् क्षिप निक्षप उन्मथ प्रमय मुञ्च मुञ्च स्वाहा' । इस मन्त्र से जल को सात बार अभिमन्त्रित कर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से सुखपूर्वक प्रसव होता है । इसी तरह कहे गये 'उभयत्रिंशक यन्त्र' अथवा 'उभयपञ्चदश यन्त्र' को खड़िया (चाक) से नये शराब में लिखकर प्रसविनी को दिखाने से सुखपूर्वक प्रसव होता है ।

उभयपञ्चदश यन्त्र

८	३	४
१	५	९
६	७	२

दोनों तरफ से जोड़ेने पर १५ अंक ही आता है । अतः उभयपञ्चदश यन्त्र कहलाता है ।

उभयत्रिंशक यन्त्र

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

दोनों तरफ से जोड़ेने पर ३० अंक ही आता है । अतः उभयत्रिंशक यन्त्र कहलाता है ।

वसुगुणाब्ध्येकबाणनवषटसप्तयुगैः क्रमात् ।
सर्वं पञ्चदश द्विस्तु त्रिंशकं नवकोष्ठके ॥६३॥
नाड्यृतुवसुभिः सह पक्षदिगष्टादशभिरेव च ।
अर्कभुवनाब्धिसहितैरुभयत्रिंशकमाश्चर्यम् ॥६४॥

वसु ८, गुण ३, अब्धि ४, एक १, बाण ५, नव ९, षट् ६, सप्त ७, द्वि २, नाड़ी १६, ऋतु ६, वसु ८, पक्ष २, दिग् १०, अष्टादश १८, अर्क १२, भुवन १४, अब्धि ४ ।

राक्षसी के स्मरण मात्र से शीघ्र प्रसव

गङ्गाया उत्तरे तीरे जम्भला नाम राक्षसी।
तस्याः स्मरणमात्रेण सद्यो नारी प्रसूयते ॥६५॥

गङ्गा के उत्तरी तट पर जम्भला नाम की राक्षसी रहती है, उसके स्मरण मात्र से गर्भिणी स्त्री सद्यः प्रसव करती है।

सुखप्रसवकरप्रयोग

गृहाम्बुना गेहधूमपानं गर्भापकर्षणम्।
गृहाम्बुना हिङ्गुसिन्धुपानं गर्भापकर्षणम् ॥६६॥

गृहधूम को काञ्जी के साथ पीने से अथवा काञ्जी में सैन्धवलवण एवं हिंगु मिलाकर पिलाने से गर्भिणी स्त्री शीघ्र ही प्रसव कर देती है।

५०. मूढगर्भहराञ्जन

पुटदग्धसर्पकञ्चुकमसृणमसीकुसुमसारसहिताक्षी।
झटिति विशल्या जायते गर्भिणी मूढगर्भाऽपि ॥६७॥

सर्पनिर्मोक (सर्पकेचुली) को शरावसम्पुट कर पुट दग्ध करें। स्वाङ्गशीत होने पर खरल में श्लक्ष्ण मर्दन कर मधु से मिलाकर अञ्जन करने से गर्भिणी स्त्री मूढ़ गर्भ की पीड़ा से तुरन्त विशल्य (मुक्त) हो जाती है।

५१. मृतगर्भपातनप्रयोग

स्नुहीक्षीरं तथा स्तोकं गर्भिण्याः शिरसि क्षिपेत्।
मृतगर्भं तदा सूते गर्भिणी रमणी द्रुतम् ॥६८॥

थूहर (स्नुहीक्षीर) के दूध को गर्भिणी स्त्री के शिर में डालने से गर्भिणी का मृत गर्भ शीघ्र ही बाहर निकल जाता है।

५२. मृतगर्भपातन प्रयोग

करिदमनदहनमूलपिष्टं सलिलेन पानतः सद्यः।
चिरमचिरजं गर्भं मृतममृतं वा निपातयति ॥६९॥

नागदमनमूल एवं चित्रकमूल १०-१० ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। इसे जल में घोलकर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से चिरकालीन या जल्दी का मृत गर्भ अथवा जीवित गर्भ शीघ्र ही बाहर निकल जाता है और गर्भिणी सुखी हो जाती है।

विलम्ब प्रसव की चिकित्सा

वातेन गर्भसङ्कोचात्प्रसूतिसमयेऽपि वा।
गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः शृणु चिकित्सितम् ॥७०॥
कुट्टयेन्मुशलेनैषा कृत्वा धान्यमुदूखले।
विषमं चाशनं पानं सेवेत प्रसवार्थिनी ॥७१॥

वायु के कारण यदि गर्भ संकुचित हो जाय तथा प्रसव का समय होने पर भी प्रसव नहीं हो तो उस गर्भिणी की चिकित्सा सुनो। उस (गर्भिणी) स्त्री से ओखली में धान भरकर मूशल से कूटने को कहे तथा उत्कट आसन से बैठने और सोने, विषम सवारी तथा विषम भोजन और पान करने को कहें।

५३. प्रसव के विलम्ब में योनिधूप

प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम्।
कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ॥७२॥

प्रसव में विलम्ब होने पर गर्भिणी स्त्री की योनि के चारों ओर कृष्ण सर्पनिर्मोक का धुँआ (धूपन) देना चाहिए। अथवा मदन फल का धूपन करना चाहिए।

५४. अपरापातनधूप

कटुतुम्ब्यहिनिर्मोककृतवेधनसर्षपैः।
कटुतैलान्वितैर्धूपो योनौ पातयतेऽपराम् ॥७३॥

१. कटुतुम्बीबीज, २. सर्पकेंचुली, ३. अमलतास फलमज्जा, ४. सरसों समभाग लेकर यवकुट कर संग्रहीत करें। इस यवकुट से योनि धूपन करने से शीघ्र ही अपरा (Placenta) बाहर निकल जाती है।

अपरापातन के उपाय

कचवेष्टितयाऽङ्गुल्या घृष्टे कण्ठे पतत्यपरा।
मूलेन लाङ्गलिक्याः संलिप्ते हस्तपादे च ॥७४॥

स्त्रियों के बड़े बाल या पुरुष के भी बड़े बाल को अंगुली में लपेटकर प्रसवा स्त्री के कण्ठ देश (भीतर) में घर्षण करने से, अथवा कलिहारी (लाङ्गली) मूल को जल से सिल पर पीसकर हस्त या पादतल में लेप करने से शीघ्र ही अपरापातन हो जाता है। अपरापातन के बाद लेप को तुरन्त हटा देना चाहिए।

५५. अपरापातनोपाय

अपरापातनं मद्यैः पिप्पल्यादिरजः पिबेत्।
शालिमूलाक्षमात्रं वा मद्येनाम्लेन वा प्लुतम् ॥७५॥

पिप्पल्यादिगण (सुश्रुतोक्त) यथा—१. पिप्पली, २. पिप्पलीमूल, ३. चव्य, ४. चित्रकमूल, ५. शुण्ठी, ६. मरिच, ७. गजपिप्पली, ८. हरेणुक, ९. छोटीइलायची, १०. अजमोदा, ११. इन्द्रयव, १२. पाठा, १३. ज़ीरक, १४. सरसों, १५. महानिम्बफल, १६. हिंगु, १७. भार्गी, १८. मूर्वा, १९. अतीस, २०. वचा, २१. विडङ्गबीज, २२. कटुकी—इन सभी २२ द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। इसे १२ ग्राम की मात्रा में ५० मि.ली. मधु में घोलकर पिलाने से; अथवा शालि धान्य मूल का सूक्ष्म चूर्ण १२ ग्राम को किसी मद्य या काञ्जी में घोलकर पिलाने से शीघ्र ही अपरा बाहर आ जाती है।

५६-५७. गर्भविलासरस/गर्भचिन्तामणिरस

रसगन्धकतुत्थञ्च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम्।
त्रिर्भावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ॥७६॥

गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु केवलम्।
तुत्थस्थाने यदि स्वर्णं चिन्तामणि रसः स्मृतः ॥७७॥

गर्भविलासरस—१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. शुद्ध तुत्थ समभाग लें। एक पत्थर के स्वच्छ खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः शुद्ध तुत्थ मिलाकर जम्बीरी स्वरस से ३ भावना देकर ३ दिनों तक मर्दन करें। पुनः त्रिकटु क्वाथ से ३ भावना देकर ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसकी १-१ वटी की मात्रा में गर्भिणी के गर्भशूल, विष्टम्भ एवं अजीर्ण में देने से लाभ होता है।

गर्भचिन्तामणि रस—गर्भविलासरस में तुत्थ के स्थान पर सुवर्णभस्म (समभाग) मिलाकर जम्बीरी स्वरस तथा त्रिकटुक्वाथ की ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी गर्भिणी के उदरशूल, विष्टम्भ एवं अजीर्ण में देने से लाभ होता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **वर्ण**—कृष्ण। **अनुपान**—मधु एवं उष्णोदक से। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **उपयोग**—गर्भिणीशूल। आजकल १२५ मि.ग्रा. की मात्रा में देना चाहिए।

५८. गर्भचिन्तामणिरस-१

जातीफलं टङ्कणं च व्योषं दैत्येन्द्ररक्तकम्।
तच्चूर्णं समभागेन मर्दितं प्रहरद्वयम् ॥७८॥
जम्बीररसयोगेन वटीं कुर्याद्विचक्षणः।
गुञ्जाद्वयप्रमाणां तु खलु वैद्यः प्रयत्नतः ॥७९॥
आर्द्रकस्य रसेनैव भक्षयेदुष्णवारिणा।
निहन्ति सर्वरोगं च भास्करस्तिमिरं यथा ॥८०॥

१. जायफल, २. शुद्ध टङ्कण, ३. शुण्ठीचूर्ण, ४. पिप्पलीचूर्ण, ५. मरिचचूर्ण, ६. शुद्ध हिङ्गुल समभाग लेकर एक खरल में सभी द्रव्यों को रखकर मर्दन करें और जम्बीर स्वरस के साथ ६ घण्टे तक मर्दन कर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे आर्द्रक स्वरस एवं मधु अथवा उष्णोदक से दिन में २ बार प्रातः सायं लेने से गर्भिणियों के सभी रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्तवर्ण। **अनुपान**—आर्द्रक स्वरस एवं मधु या उष्णोदक से। **रस**—कट्वम्ल। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—गर्भिणी में।

६०. गर्भचिन्तामणिरस-२ (र.सा.सं.)

रसं तारं तथा लौहं प्रत्येकं कर्षमात्रकम्।
कर्षद्वयं तथा चाभ्रं कर्पूरं वङ्गताम्रकम् ॥८१॥
जातीफलं तथा कोषं गोक्षुरञ्च शतावरी।
बलाऽतिबलयोर्मूलं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥८२॥
वारिणा वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
सन्निपातं निहन्त्याशु स्त्रीणाञ्चैव विशेषतः।
गर्भिण्या ज्वरदाहञ्च प्रदरं सूतिकामयम् ॥८३॥

१. रससिन्दूर, २. रजतभस्म, ३. लोहभस्म—प्रत्येक १२-१२ ग्राम, ४. अभ्रकभस्म २३ ग्राम; ५. कर्पूर, ६. वङ्ग भस्म, ७. ताम्रभस्म, ८. जायफलचूर्ण, ९. जावित्रीचूर्ण, १०. गोक्षुरचूर्ण, ११. शतावरीचूर्ण, १२. बलामूलचूर्ण, १३. अतिबलामूलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर को पीस लें, ततः सभी भस्मों को उसमें मिलायें। तदनन्तर जायफलादिचूर्णों को मिलायें। इसके बाद जल की भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके प्रयोग से गर्भिणी स्त्री के सन्निपात ज्वर, दाह, प्रदर एवं सूतिकाजन्य कष्ट (रोग) नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—मधु एवं उष्णोदक। **रस**—किञ्चित्कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—गर्भिणी एवं सूतिका रोगों में।

६१. गर्भचिन्तामणिरस-३ (र.सा.सं.)

सूतं गन्धं तथा स्वर्णं लौहं रजतमाक्षिकम्।
हरितालं वङ्गभस्माप्यभ्रकं समभागिकम् ॥८४॥
भावना खलु दातव्या रसैरेषां पृथक् पृथक्।
ब्राह्मीवासाभृङ्गराजपर्पटं दशमूलकम् ॥८५॥
सप्तधा भावयेद्वैद्यो गुञ्जामानां वटीं चरेत्।
गर्भचिन्तामणिरसः पूर्ववद् गुणकारकः ॥८६॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. सुवर्णभस्म, ४. लोह भस्म, ५. रजतभस्म, ६. स्वर्णमाक्षिकभस्म, ७. शुद्ध हरताल, ८. वङ्गभस्म, ९. अभ्रकभस्म—समभाग लें। एक स्वच्छ खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनायें। ततः उक्त कज्जली में हरताल मिलाकर १ दिन मर्दन तक करें। ततः उसमें अन्य सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें और भावना दें।

भावना द्रव्य—१. ब्राह्मी, २. वासा, ३. भृङ्गराज, ४. पर्पट क्वाथ, ५. दशमूल क्वाथ—इन पाँचों द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ से प्रत्येक से ७-७ भावना अर्थात् कुल ३५ भावना दें। ततः १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में गोली बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'गर्भ चिन्तामणिरस' कहते हैं। यह रसौषधि पूर्ववत् समस्त गर्भिणी एवं सूतिकारोग में लाभकारी है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **वर्ण**—कृष्णाभ। **अनुपान**—मधु एवं आर्द्रकस्वरस। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—गर्भिणी एवं सूतिका रोग।

६२. गर्भविनोदरस (र.सा.सां.)

जातीकोषं लवङ्गं च प्रत्येकं च त्रिकार्षिकम्।
देयं त्रिभागं त्रिकटु चतुर्भागश्च हिङ्गुलम्॥८७॥
सुवर्णमाक्षिकञ्चैव पलार्द्धं प्रक्षिपेद् बुधः।
जलेन मर्दयित्वाऽथ चणमात्रा कृता वटी॥
निहन्ति गर्भिणीरोगं भास्करस्तिमिरं यथा॥८८॥

१. जावित्रीचूर्ण तथा २. लौंगचूर्ण प्रत्येक ३५-३५ ग्राम, ३. त्रिकटुचूर्ण १०५ ग्राम, ४. शुद्ध हिङ्गुल ४६ ग्राम, ५. स्वर्णमाक्षिकभस्म २३ ग्राम लें। एक खरल में पहले हिङ्गुल का मर्दन करें, ततः स्वर्णमाक्षिक भस्म मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर काष्ठौषधि चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें और जल की भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन करें और २५० मि.ग्रा. (२-२ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'गर्भविनोद रस' कहते हैं। इसके प्रयोग से सभी गर्भिणी रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—लाल। **अनुपान**—मधु। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **उपयोग**—गर्भिणी रोग।

६३. इन्दुशेखररस

शिलाजत्वभ्रसिन्दूरप्रवालायोरजांसि च।
माक्षिकञ्च तथा तालं समभागानि मर्दयेत्॥८९॥
भृङ्गराजस्य पार्थस्य निर्गुण्ड्या वासकस्य च।
स्थलपद्मस्य पद्मस्य कुटजस्य च वारिणा॥९०॥
भावयित्वा वटीः कृत्वा कलायपरिमाणतः।
यथादोषानुपानेन गर्भिणीषु प्रयोजयेत्॥९१॥
गर्भिणीनां ज्वरं घोरं श्वासं कासं शिरोरुजम्।
रक्तातिसारं ग्रहणी वान्तिं वह्नेश्च मन्दताम्॥९२॥
आलस्यमपि दौर्बल्यं हन्यादेव न संशयः।
कलेरादौ ससर्जेमं भगवानिन्दुशेखरः॥९३॥

१. शुद्ध शिलाजतु, २. अभ्रकभस्म, ३. रससिन्दूर, ४. प्रवालभस्म, ५. लोहभस्म, ६. सुवर्णमाक्षिकभस्म, ७. शुद्ध हरताल—इन्हें समभाग में लें।

भावना द्रव्य—१. भृङ्गराजस्वरस, २. अर्जुनत्वक्क्वाथ, ३. निर्गुण्डीपत्रस्वरस, ४. वासापत्ररस, ५. स्थलकमलरस, ६. लालकमलपुष्परस, ७. कुटजत्वक्क्वाथ।

विधि—एक खरल में पहले रससिन्दूर का मर्दन करें। ततः हरताल मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर शिलाजतु छोड़कर अन्य सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद अर्जुनत्वक् के गरम क्वाथ में शिलाजतु घोलकर छान लें और उसी से भावना दें। सूखने पर भृङ्गराजस्वरस तथा अन्य स्वरस/क्वाथ की १-१ भावना देकर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'इन्दुशेखर रस' कहते हैं। कलियुग के प्रारम्भ में इसे भगवान् शंकर (इन्दुशेखर) ने निर्मित किया था। इसे यथादोष एवं यथानुपान प्रयोग करना चाहिए। इसके प्रयोग से गर्भिणी के ज्वर, भयंकर श्वास, कास, शिरःशूल, रक्तातिसार, संग्रहणी, वमन, अग्निमान्द्य, आलस्य एवं दुर्बलतारोग निःसन्देह दूर हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **स्वाद**—तिक्त। **अनुपान**—यथारोग। **उपयोग**—गर्भिणी विकार।

६४. गर्भपालरस (वै.चि.म.)

हिङ्गुलं नागवङ्गौ च त्रिजातं च कटुत्रयम्।
धान्यकं कृष्णजीरञ्च चव्यं द्राक्षा सुरद्रुमः॥९४॥
कर्षमानं पृथक् सर्वं कर्षार्द्धं लोहभस्मकम्।
सप्ताहं मर्दयेत्खल्वे विष्णुक्रान्तारसेन च॥९५॥
गुञ्जा मात्रा च वटिका द्राक्षाक्वाथेन योजयेत्।
मासप्रथममारभ्य नवमासान्तमेव च॥
गर्भिणीरोगनाशार्थं गर्भपालस्सुसंस्मृतः॥९६॥

१. शुद्ध हिङ्गुल, २. नागभस्म, ३. वङ्गभस्म, ४. छोटी इलायचीचूर्ण, ५. दालचीनीचूर्ण, ६. तेजपत्रचूर्ण, ७. शुण्ठीचूर्ण, ८. पिप्पलीचूर्ण, ९. मरिचचूर्ण, १०. धनियाँचूर्ण, ११. स्याहजीराचूर्ण, १२. चव्यचूर्ण, १३. द्राक्षाकल्क, १४. देवदारुचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ कर्ष (१२-१२ ग्राम); १५. लौहभस्म आधा कर्ष (६ ग्राम) लें।

विधि—एक पत्थर के बड़े खरल में सभी द्रव्यों को रखकर अपराजितास्वरस के साथ ७ दिनों तक ७ भावना देकर मर्दन करें। ततः १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'गर्भपालरस' कहते हैं। गर्भिणियों में १ मास से ९ मास पर्यन्त इस गर्भपालरस को प्रतिदिन प्रातः-सायं १-१ वटी द्राक्षाक्वाथ से सेवन कराने से गर्भिणियों के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं और गर्भ का पूर्णतः विकास एवं संरक्षण होता है। यह निरापद है तथा इसके प्रयोग से गर्भिणी की सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं तथा यह गर्भस्थापक है।

मात्रा—१२५-२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु-तिक्त। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **अनुपान**—द्राक्षाक्वाथ। **उपयोग**—गर्भिणीरोग में।

६५. गर्भविलासतैल

विदारी दाडिमं पत्रं रजनी च फलत्रयम्।
शृङ्गाटकस्य पत्रञ्च जातीकुसुममेव च ॥९७॥
वरी नीलोत्पलं पद्मं तैलमेतैः पचेत् सुधीः।
एतद् गर्भविलासाख्यं गर्भसंस्थापनं परम् ॥९८॥
निहन्ति गर्भशूलञ्च शोणितस्त्रुतिसंहरम्।
परं वृष्यतरं ह्येतत्काशिराजेन निर्मितम् ॥९९॥

मूर्च्छिततिलतैल ७५० मि.ली. तथा जल ३ लीटर लें। १. विदारीकन्द, २. अनारदाना, ३. तेजपात, ४. हल्दी, ५. त्रिफला, ६. सिंघाड़ापत्र, ७. चमेलीफूल, ८. शतावरी, ९. नीलकमल तथा १०. लाल कमल—प्रत्येक द्रव्य १६ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनायें। अब मूर्च्छिततैल में कल्क एवं जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'गर्भविलासतैल' कहते हैं। यह तैल परम गर्भस्थापक है। इसका पिचु धारण एवं गर्भ प्रदेश पर लेप करने से गर्भशूल एवं गर्भ से रक्तस्राव को शान्त करता है। यह वृष्य है। इसका निर्माण काशिराज ने किया था।

मात्रा—बाह्यप्रयोग-पिचु। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—हल्का सुगन्ध। **उपयोग**—गर्भशूल-रक्तस्राव।

गर्भिणी के लिए पथ्य

शालयः षष्ठिका मुद्गा गोधूमा लाजशक्तवः।
नवनीतं घृतं क्षीरं रसाला मधु शर्करा ॥१००॥
पनसं कदलं धात्री द्राक्षाऽऽम्रं स्वादुशीतलम्।
कस्तूरी चन्दनं माला कर्पूरमनुलेपनम् ॥१०१॥
चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलः।
सन्तर्पणं प्रिया वाचो विहाराश्च मनोरमाः।
प्रियङ्करं चान्नपानं गर्भिणीभ्यो हितं भवेत् ॥१०२॥

शालिचावल, साठी चावल, मूँग, गेहूँ, लाजशक्तु, नवनीत, गोघृत, गोदुग्ध, रसाला, मधु, शर्करा, पनस (कटहल), कदली, आमला, द्राक्षा, पका एवं स्वादिष्ट आमफल, कस्तूरी, श्वेतचन्दन, सुगन्धित पुष्पमाला, कर्पूर का लेप, चाँदनी रात का सेवन, स्नान, तैलाभ्यङ्ग, संतृप्तिकार्य, प्रियवचन, मनोरम विहार, रुचिकर एवं प्रियकर अन्नपान भोजनादि—ये सभी गर्भिणी के लिए हितकर है।

गर्भिणी के लिए अपथ्य

स्वेदनं वमनं क्षारं कलहं विषमाशनम्।
असात्म्यं नक्तसञ्चारं चौर्यं चाप्रियदर्शनम् ॥१०३॥
अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु।
अकालजागरस्वप्नं कठिनोत्कटकासनम् ॥१०४॥
शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धाविधारणम्।
उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णं गुरु विष्टम्भि भोजनम् ॥१०५॥
नक्तं निरशनं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम्।
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छन्ति तत्त्यजेत् ॥१०६॥
तथा रक्तस्त्रुतिं शुद्धिं बस्तिमामासतोऽष्टमात्।
एभिर्गर्भः स्त्रवेदामः कुक्षौ शुष्येन्म्रियेत वा ॥१०७॥
भजेन्न नित्यं तिक्ताम्लकटूषणकषायकान्।
वातलैश्च भवेद् गर्भः कुब्जान्ध्यजडवामनः ॥१०८॥
पित्तलैः खालती पिङ्गः श्वित्री पाण्डुः कफात्मभिः।
अपथ्यमिदमुद्दिष्टं गर्भिणीनां महर्षिभिः ॥१०९॥

स्वेदन, वमन, क्षार, कलह, विषमभोजन, असात्म्य आहार विहार, रात्रि में घूमना, चोरी, अप्रिय वस्तु को देखना, अत्यन्त मैथुन, परिश्रम, भार उठाना, भारी वस्त्रों का ओढना, अकाल में जागना, देर से सोना, कठिन आसन तथा उत्कट (उकडू) बैठना, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, मल-मूत्रादि वेगों को रोकना, श्रद्धा को दबाना, उपवास, मार्गगमन, तीक्ष्ण-उष्ण-गुरु एवं विष्टम्भि भोजन करना, रात्रि में भूखे रहना, गड्ढे-कूप में झाँकना, मद्य एवं मांस सेवन करना, उत्तान लेटना तथा गर्भिणी को जो पसन्द न हो उसे करना—ये सभी गर्भिणी स्त्रियों को त्याग देना चाहिए। इसके अतिरिक्त अष्टममास में रक्तस्राव, वमन, विरेचनादि से शरीर का संशोधन तथा बस्तिकर्म गर्भिणी स्त्रियों को त्याग देना चाहिए। ये सभी कार्य करने से असमय में ही गर्भस्राव, गर्भशुष्क या गर्भ में ही बालक मर जाता है। गर्भिणी स्त्री नित्य तिक्त, अम्ल, कटु, उष्ण, कषाय पदार्थों का सेवन नहीं करें। वातकारक पदार्थों के अधिक भक्षण से गर्भ कुबड़ा, अन्धा, जड़ और वामन होता है। अधिक पित्तकारक पदार्थों के भक्षण से गर्भ खल्वाट, पिङ्गलवर्ण एवं श्वित्री होता है तथा कफकारक पदार्थों का अधिक भक्षण करने से गर्भ पाण्डुवर्ण का होता है। इस प्रकार महर्षियों ने गर्भिणी स्त्रियों के लिए अपथ्य कहा है।

गर्भिणी का प्रसवकालीन पथ्य

गर्भसङ्गे तु कृष्णाहित्वग्भस्म मधुनाऽञ्जनम्।
कट्यामास्फोटनं पार्ष्ण्योः स्फिचोर्गाढनिपीडनम् ॥११०॥
वेण्याः स्पर्शस्तालुकण्ठे मूर्ध्नि स्नुक्क्षीरलेपनम्।
भूर्जलाङ्गलिकीतुम्बीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपाः ॥१११॥
पृथग् द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिधूपनलेपनम्।
नारीणां प्रसवे पथ्यमिदमाहुर्मनीषिणः ॥११२॥

जब प्रसव में रुकावट हो तो सर्पकंचुकी (केंचुल) जलाकर मसी बना लें और उसे मधु में मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करें। कमर एवं एड़ियों में थपकी लगाना, स्फिक् (कमर) को जोर से दबाना,

तालु एवं कण्ठ प्रदेश में बालों की वेणी का स्पर्श कराना, शिर पर स्नुहीक्षीर का लेप करना, भूर्जपत्र-कलिहारी-कटुतुम्बीबीज-सर्पनिर्मोक-कुष्ठ-सरसों—पृथक्-पृथक् २-२ अथवा सभी (समभाग) को एक साथ मिश्रित कर योनिधूपन करना चाहिए। बुद्धिमान् वैद्यों द्वारा प्रसव काल में यह आसन्न प्रसवा स्त्री के लिए पथ्य बताया गया है।

गर्भिणी का प्रसवकालीन अपथ्य

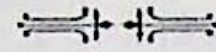
श्रमं नस्यं रक्तमुक्तिं मैथुनं विषमाशनम्।
विरुद्धान्नं वेगरोधमसात्म्यमतिभोजनम् ॥११३॥
दिवानिद्रामभिष्यन्दि विष्टम्भिगुरुभोजनम्।
योषितां प्रसवे प्राहुरपथ्यानि महर्षयः ॥११४॥

इति भैषज्यरत्नावली गर्भिणीरोगाधिकारः।



परिश्रम, नस्यकर्म, रक्तमोक्षण, मैथुन, विषमभोजन, विरुद्ध अन्न, मल-मूत्रादि वेगों को रोकना, असात्म्य पदार्थों का अधिक भोजन करना, दिन में सोना, अभिष्यन्दी, विष्टम्भि एवं गुरु पदार्थों का भोजन महर्षियों ने प्रसव काल में स्त्रियों के लिए अपथ्य कहे हैं।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य गर्भिणीरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ सूतिकारोगाधिकारः (६९)

चिकित्सासूत्र (च.द.)

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद् वातहरीं क्रियाम् ॥१॥

सूतिकारोग की शान्ति के लिए वातशामक चिकित्सा करनी चाहिए।

१. मक्कल्लशूल चिकित्सा (च.द.)

सूताया हृच्छिरोबस्तिशूलं मक्कल्लसंज्ञितम्।
यवक्षारं पिबेत्तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥२॥

प्रसव के बाद प्रसूता के हृदय, शिर एवं बस्ति प्रदेश में भयंकर वेदना (शूलविद्धवत् पीड़ा) होती हो तो उसे 'मक्कल्ल' कहते हैं। ऐसी अवस्था में उस स्त्री को २५ ग्राम सुखोष्ण घृत, अथवा ५० मि.ली. मन्दोष्ण जल में २ ग्राम यवक्षार मिलाकर पिलाना चाहिए। इस क्रिया से बहुत लाभ होता है।

२. मक्कल्लशूलहर क्वाथ (च.द.)

पिप्पल्यादिगणक्वाथं पिबेद्वा लवणान्वितम् ॥३॥

सुश्रुतोक्त (सू.अ. ३८) पिप्पल्यादिगणक्वाथ में सैन्धवलवण मिलाकर पिलाना लाभप्रद है। क्वाथ १०० मि.ली. तथा लवण २ ग्राम मिलाकर पिलाने से मक्कल्लशूल शान्त हो जाता है।

३. रक्तातिस्राव निरोधक योग (च.द.)

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवारिणा।
गर्भपातानन्तरोत्थरक्तस्रावविधारणम् ॥४॥

शालिचावल से तण्डुलोदक बनाकर ५० मि.ली. लें तथा उसमें कबूतर का शुष्क विट् १ ग्राम मिलाकर पिलाने से गर्भ-पातन या प्रसव के बाद अत्यधिक रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

४. गर्भिण्योदरे किक्किश (मांसदारण) योग (च.द.)

जलपिष्टवरुणपत्रैः सघृतैरुद्वर्त्तनालेपौ।
किक्किशरोगं हरतो गोमयघर्षादथो विहितौ ॥५॥

वन्योपल (सूखे गोबर) से किक्किशस्थल का घर्षण कर वरुणवृक्ष के पत्र को सिल पर जल से पीसें। उसमें थोड़ा घृत मिलाकर उक्त स्थल पर उद्वर्त्तन अथवा लेप करने से किक्किश व्रण शान्त हो जाता है।

५. सहचर क्वाथ-१

सहाचरकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः।
दीपनो ज्वरदोषामसूतिकारोगनाशनः ॥६॥

५० मि.ली. सहचर (पञ्चाङ्ग) के क्वाथ मे पिप्पलीचूर्ण २ ग्राम मिलाकर पिलाने से ज्वर, आमदोष और सूतिकारोग नष्ट हो जाते हैं। यह अग्निदीपक है।

६. सहचर क्वाथ-२

पीतकुरण्टक्वथितं रजनीपर्युषितं पीतमपहरति।
सूतीरोगसहस्रं तन्मूलं चर्वितं तद्वत् ॥७॥

पीले पुष्पवाले सहचर का पञ्चाङ्ग लेकर क्वाथ विधि से क्वाथ कर सन्ध्या में रख लें और प्रातःकाल वासी (पर्युषित) उस क्वाथ को पीने से प्रसूता को हजारों रोग क्यों न हों सभी नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार यदि प्रसूता रुग्णा सहचरमूल को सिर्फ चबाती रहे तो भी प्रसूता के हजारों रोग नष्ट हो जाते हैं।

७. दशमूल क्वाथ (च.द.)

दशमूलीकृतः क्वाथः साज्यः सूतीरुजापहः ॥८॥

दशमूल के द्रव्यों के ५० मि.ली. क्वाथ में १० ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से समस्त सूतिका रोग नष्ट हो जाते हैं।

८. अमृतादि क्वाथ (च.द.)

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलदजलम्।
पीतं मधुसंयुक्तं निवारयति सूतिकातङ्कम् ॥९॥

१. गुडूची, २. शुण्ठी, ३. सहचर, ४. नागरमोथा, ५. लघु पञ्चमूल, ६. मुस्तक, ७. सुगन्धबाला, ८. उत्कट (शरमूल= सरपतमूल)—ये सभी द्रव्य समान भाग लेकर यवकुट करें और क्वाथविधि से क्वाथ कर छान लें। इस ५० मि.ली. क्वाथ में १२ ग्राम मधु मिलाकर पिलाने से समस्त सूतिकारोग नष्ट हो जाते हैं।

९. सहचरादि क्वाथ-१ (च.द.)

सहचरपुष्करवेतसमूलं
विकङ्कतदारुकुलत्थसमम्।
जलमत्र ससैन्धवहिङ्गुयुतं
सद्योज्वरसूतिकशूलहरम् ॥१०॥

१. सहचरमूल, २. पुष्करमूल, ३. वेतसमूल, ४. विकङ्कत (स्रुवावृक्ष), ५. देवदारु, ६. कुलत्थबीज—इन्हें समभाग लेकर यवकुट करें और क्वाथ विधि से क्वाथ करें। इस ५० मि.ली. क्वाथ में २५० मि.ग्रा. भर्जित हींग और २ ग्राम सैन्धवचूर्ण मिलाकर दिन में २ बार पिलाने से सूतिकाज्वर एवं सूतिकाशूल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

१०. सहचरादि क्वाथ-२

सहचरमुस्तगुडूचीभद्रोत्कटविश्वबालकैः क्वथितम्।
पेयमिदं मधुमिश्रं सद्योज्वरशूलनुत्सूत्याः ॥११॥

१. सहचरमूल, २. मुस्ता, ३. गुडूची, ४. नागरमोथा, ५. सोंठ, ६. सुगन्धबाला—इन्हें समभाग लेकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम यवकुट और १६ गुना (४०० मि.ली.) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और ५०-५० मि.ली. क्वाथ में १२ ग्राम मधु मिलाकर दिन में २ बार पिलाने से प्रसूतज्वर एवं शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

११. लघुपञ्चमूलादि क्वाथ

शालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
दासी प्रसारणी विश्वं गुडूची मुस्तकं तथा ॥
निहन्ति सूतिकारोगं ज्वरं दाहसमन्वितम् ॥१२॥

१. शालपर्णी, २. पृश्निपर्णी, ३. बृहती, ४. कण्टकारी, ५. गोक्षुर, ६. पीतसहचर, ७. गन्धप्रसारणी, ८. सोंठ, ९. गुडूची, १०. मुस्ता—इन दसों द्रव्यों को समभाग में लेकर यवकुट करें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। २५ ग्राम यवकुट को ४०० मि.ली. जल में क्वाथ कर चौथाई शेष रहने पर छानकर दिन में २ बार पिलाने से ज्वर एवं हस्त-पादादि दाह से युक्त सूतिकारोग नष्ट हो जाता है।

१२. देवदार्वादि क्वाथ (भा.प्र.)

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम्।
भूनिम्बः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यं हरीतकी ॥१३॥
गजकृष्णा सुदुःस्पर्शा गोक्षुरो धन्वयासकः।
बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः ॥१४॥
समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम्।
क्वाथमष्टावशेषन्तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥१५॥
शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोऽर्त्तिभिः ।
युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥१६॥
निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम्।
कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥१७॥

१. देवदारु, २. वच, ३. कूठ, ४. पीपर, ५. सोंठ, ६. चिरायता, ७. कट्फल, ८. मोथा, ९. कटुकी, १०. धनियाँ, ११. हरीतकी, १२. गजपीपर, १३. कण्टकारी, १४. गोखरु, १५. धमासा, १६. बृहती, १७. अतीस, १८. गुडूची, १९. काकड़ासिंगी, २०. स्याहजीरा—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट क्वाथ में से २५ ग्राम लेकर १६ गुना (४०० मि.ली.) जल के साथ मन्दाग्नि पर क्वाथ करें तथा अष्टमांशावशेष रहे तो छान लें। इसमें १ ग्राम सैन्धवलवण और ५०० मि.ली. घृतभृष्टहिंगु मिलाकर प्रसूता स्त्री को पिलाने से शूल, कास, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, शिरःशूल, प्रलाप, पिपासा, दाह, तन्द्रा, अतिसार, वमन और वातज-पित्तज एवं कफज सूतिका रोग नष्ट हो जाते हैं। यह देवदार्वादि क्वाथ प्रसूता स्त्रियों के समस्त रोगों को नष्ट करने वाली परमौषध है।

१३. वज्रकाञ्जिक (च.द.)

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यमानिका।
जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं सौवर्चलं तथा ॥१८॥
एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत्।
आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम् ॥१९॥
काञ्जिकं वज्रकं नाम स्त्रीणामग्निविवर्द्धनम्।
मक्कल्लशूलशमनं परं क्षीराभिवर्द्धनम् ॥
क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥२०॥

१. पीपर, २. पिपरामूल, ३. चव्यकाण्ड, ४. सोंठ, ५. अजवाइन, ६. जीराश्वेत, ७. स्याहजीरा, ८. हल्दी, ९. दारुहल्दी, १०. विडलवण, ११. सौवर्चललवण—ये सभी द्रव्य समभाग लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह चूर्ण १२ ग्राम, ९५ मि.ली. काञ्जी तथा जल १९० मि.ली. तीनों एक स्टील के पात्र में रखकर चूल्हे पर पकायें, जब सिर्फ काञ्जी ही शेष बचे तो प्रसूता स्त्री को पिलायें। यह 'वज्रकाञ्जिक' आमदोष नाशक है, वृष्य है, कफनाशक है, अग्निदीपक है, स्त्रियों के अग्निवर्द्धक है, मक्कलशूल नाशक है तथा प्रसूता में दुग्धवर्धक है। इसे क्षीरपाक-विधान के अनुसार पाक करते हैं।

१४. भद्रोत्कटाद्यवलेह

भद्रोत्कटतुलाक्वाथे पादशेषे विनिःक्षिपेत्।
शर्करायाः पलत्रिंशच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥२१॥
वत्सकं धान्यकं मुस्तमुशीरं बिल्वमेव च।
शाल्मलीवेष्टकञ्चैव पिप्पली मरिचानि च ॥२२॥
बला चातिबला मांसी ह्रीबेरं सदुरालभम्।
एषाञ्च पलिकैर्भागैश्चूर्णैरिनं समाचरेत् ॥२३॥
सङ्ग्रहग्रहणीं हन्ति सूतिकां च सुदुस्तराम्।
वह्निञ्च कुरुते दीप्तं शूलानाहविबन्धनुत् ॥२४॥

क्वाथ—१. नागरमोथा ४६७० ग्राम, जल १२$\frac{१}{२}$ ली. तथा चीनी १४०० ग्राम।

प्रक्षेप—१. कुटजत्वक्, २. धनियाँ, ३. मुस्ता, ४. खस, ५. बिल्वफलमज्जा, ६. मोचरस, ७. पीपर, ८. मरिच, ९. बलामूल, १०. अतिबलामूल, ११. जटामांसी, १२. सुगन्धबाला, १३. जवासा—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः नागरमोथा को यवकुट कर क्वाथ करें। चौथाई जल शेष रहने पर छान लें। ततः एक स्वच्छपात्र

में क्वाथ और चीनी मिलाकर चासनी करें। जब अवलेह की २ तार की चासनी हो जाय तो चासनी पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर उसमें प्रक्षेप के सभी चूर्ण डालकर अच्छी तरह से मिला लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसकी १२ ग्राम की मात्रा गोदुग्ध के साथ लेने से यह प्रसूताओं की भयंकर संग्रहणी, अग्निमान्द्य, शूल, आनाह एवं विबन्ध को नष्ट करता है तथा अग्नि प्रदीप्त करता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम दूध या जल से। **गन्ध**—सुगन्ध। **वर्ण**—काफी का रंग। **रस**—मधुर-तिक्त। **उपयोग**—सूतिकाओं के संग्रहणी, ज्वर, शूल एवं विबन्ध में।

१५. सौभाग्यशुण्ठी-१

कशेरुशृङ्गाटवराटमुस्तं
द्विजीरकं जातिफलं सकोषम्।
लवङ्गशैलेयसनागपुष्पं
पत्रं वराङ्गं शटि धातकी च॥२५॥
एला शताह्वा धनिकेभपिप्पली
सपिप्पली सोषणका सभीरुः।
प्रत्येकमेषामिह कर्षयुग्मं
लौहं तथाभ्रं पलभागयुक्तम्॥२६॥
महौषधाच्चूर्णपलानि चाष्टौ
पलानि त्रिंशत्सितशर्करायाः।
पलानि चाष्टावपि सर्पिषश्च
प्रस्थद्वयं क्षीरमिह प्रयुक्तम्॥२७॥
पचेद्विधिज्ञः परमादरेण
खादेदिदं कर्षमथार्द्धकर्षम्।
कर्षद्वयं वापि समीक्ष्य शस्तं
सौभाग्यशुण्ठी कथिता भिषग्भिः।
अग्निप्रदा सूतिगदापहा च
सर्वातिसारग्रहणीहरा च॥२८॥

१. कशेरुकन्द, २. सिंघाड़ा, ३. कमलगट्टा (कमलबीज), ४. मुस्ता, ५. श्वेत जीरा, ६. स्याहजीरा, ७. जायफल, ८. जावित्री, ९. लवङ्ग, १०. छरीला, ११. नागरकेशर, १२. तेजपात, १३. दालचीनी, १४. गन्धशटी, १५. धातकीपुष्प, १६. छोटीइलायची, १७. सौंफ, १८. धनियाँ, १९. गजपीपर, २०. पीपर, २१. मरिच, २२. शतावरी—प्रत्येक द्रव्य २३-२३ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें।

लौहभस्म ४६ ग्राम, अभ्रकभस्म ४६ ग्राम, सोंठचूर्ण ३७५ ग्राम, चीनी १४०० ग्राम (३० पल), गोघृत ३७५ ग्राम, गोदुग्ध १५०० मि.ली. लें।

सर्वप्रथम स्टेनलेस स्टील के पात्र में दूध को उबालें। उबले दूध में शुण्ठीचूर्ण मिलाकर पकायें। जब दूध सूखकर खोआ (मावा) जैसा हो जाय तो उस मावा को घृत में भर्जित करें। ततः चीनी एवं जल मिलाकर चासनी करें। जब ४-५ तार (मोदक) की चासनी हो जाय तो उपर्युक्त सभी २२ द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर पुनः छननी से छान लें और उक्त चासनी मे डालकर अच्छी तरह से मिलाकर १२ ग्राम का मोदक बना लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'सौभाग्यशुण्ठी' कहते हैं। इसे ६ ग्राम से १२ ग्राम तक की मात्रा में सुखोष्ण दूध के साथ सेवन करें। यह अग्निप्रद है। इससे सूतिकारोग, संग्रहणी, अतिसाररोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—ब्राउन रंग। **अनुपान**—सुखोष्ण दूध। **रस**—मधुर। **गन्ध**—सुगन्धयुक्त पाक। **उपयोग**—सूतिकारोग, संग्रहणी एवं अतिसार में।

१६. सौभाग्यशुण्ठी-२

त्रिकटुत्रिफलाजाजीचातुर्जातकमुस्तकम्।
जातीकोषफलं धान्यं लवङ्गं शतपुष्पिका॥२९॥
नलिका मदनफलं यमानीद्वयधातकी।
शतावरी तालमूली लोध्रं वारणपिप्पली॥३०॥
प्रियालबीजममृता कर्पूरं चन्दनद्वयम्।
कर्षप्रमाणान् एतेषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥३१॥
नागरस्य च चूर्णस्य प्रस्थद्वयमितं क्षिपेत्।
घृतमष्टपलं दद्यात् क्षीरप्रस्थद्वयं तथा॥३२॥
सार्द्धप्रस्थद्वयं चात्र शर्करायास्ततः क्षिपेत्।
दृढे च मृन्मये पात्रे पाचयेन्मृदुनाऽग्निना॥३३॥
यत्नतः पाकविद्वैद्यो गुडिकां कारयेत्ततः।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय अजाक्षीरं पिबेदनु॥३४॥
आमवातं निहन्त्याशु कासं श्वासं सपीनसम्।
ग्रहणीमम्लपित्तञ्च रक्तपित्तं क्षतक्षयम्॥३५॥
स्त्रीरोगान् विंशतिं चैव तत्क्षणादेव नाशयेत्।
अहन्यहनि च स्त्रीणां स्तनदार्ढ्यकरं परम्।
सौभाग्यजननं स्त्रीणां पुष्टिदं धातुवर्द्धनम्॥३६॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. श्वेतजीरा, ८. नागरकेशर, ९. तेजपात, १०. दालचीनी, ११. छोटीइलायची, १२. मुस्ता, १३. जावित्री, १४. जायफल, १५. धनियाँ, १६. लौंग, १७. सौंफ, १८. नलिका, १९. मदनफल, २०. अजवाइन, २१. अजमोदा, २२. धातकीपुष्प, २३. शतावरी, २४. श्वेत मुशली, २५. लोध्रत्वक्, २६. गजपीपर, २७. चिरौंजी, २८. गुडूची, २९. कर्पूर, ३०. श्वेतचन्दन, ३१. रक्तचन्दन—प्रत्येक द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण १२-१२ ग्राम लें। सोंठचूर्ण १५०० ग्राम, गोघृत ३७५ ग्राम, गोदुग्ध १५०० मि.ली., चीनी १८७५ ग्राम लें।

सर्वप्रथम मिट्टी के बड़े पात्र में दूध को उबालें, ततः उस दूध में शुण्ठीचूर्ण मिलाकर पकायें। दूध सूखने पर उसमें घी देकर भून लें। ततः चीनी की चासनी करें। ५-६ तार की चासनी होने पर चूल्हे से उतारकर परीक्षोपरान्त सोंठ से रक्तचन्दन तक के सभी द्रव्यों के चूर्णो तथा घृत भर्जित शुण्ठी को डालकर अच्छी तरह से मिला लें और १२-१२ ग्राम का मोदक बना लें तथा शीतल होने पर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इस मोदक को प्रातः-सायं १-१ खाकर ऊपर से चीनी मिलाया सुखोष्ण बकरी का दूध पीयें। इसके कुछ दिनों तक सेवन करने से प्रसूता स्त्रियों के सभी कष्ट दूर हो जाते हैं। आमवात, कास, श्वास, पीनस, संग्रहणी, अम्लपित्त, रक्तपित्त, उरःक्षत, राजयक्ष्मा एवं समस्त स्त्री रोगों को तत्क्षण नष्ट कर देता है। स्त्रियों का स्तन पुष्ट करता है, स्त्रियों का सौभाग्यदायक है, पुष्टकर एवं धातुओं को बढ़ाता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम, **वर्ण**—ब्राउन रंग, **अनुपान**—बकरी का गरम दूध, **रस**—मधुर सुगन्धित, **गन्ध**—सुगन्धयुक्त पाक, **उपयोग**—स्त्रियों के समस्त रोगों में विशेषकर प्रसूताओं के सभी उपद्रव में।

१७. सौभाग्यशुण्ठी-३

बृहच्छुण्ठीं समादाय चूर्णयित्वा विधानतः।
पलषोडशिकां नीत्वा क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥३७॥
क्रमेण पाकशुद्धिः स्याद् घृतप्रस्थे च भर्जयेत्।
लघुपाकः प्रकर्त्तव्यो न खरो मोदकेष्वपि ॥३८॥
शतावरी विदारी च मूषली गोक्षुरो बला।
छिन्नासत्त्वं शताह्वा च जीरकौ व्योषचित्रकौ ॥३९॥
त्रिसुगन्धि यमानी च तालीशं कारवी मिशिः।
रास्ना पुष्करमूलं च वांशी दारु शताह्वयम् ॥४०॥
शटी मांसी वचा मोचं त्वक्पत्रं नागकेशरम्।
जीवन्ती मेथिका यष्टी चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥४१॥
कृमिघ्नं तोयसिंहास्यधन्याकं कट्फलं घनम्।
कर्षद्वयमितं भागं प्रत्येकं पट्टघर्षितम् ॥४२॥
सर्वचूर्णाद् द्विगुणिता प्रदेया सितशर्करा।
युक्त्या पाकविधानज्ञो मोदकं परिकल्पयेत् ॥४३॥
शुद्धे भाण्डे निधायाथ खादेन्नित्यं यथाबलम्।
वीक्ष्याग्निबलकोष्ठञ्च नारीणाञ्च विशेषतः ॥४४॥
क्षौद्रानुपानतः प्रातर्गुरुदेवान् समाचरेत्।
तद्वर्ण्यं बल्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम् ॥४५॥
वयसः स्थापनं प्रोक्तमग्निदीप्तिकरं परम्।
वृष्याणामतिवृष्यञ्च रसायनमिदं शुभम् ॥४६॥
विशेषात् स्त्रीगदे प्रोक्तं प्रसूतानां यथाऽमृतम्।
विंशतिर्व्यापदो योनेः प्रदरं पञ्चधाऽपि च ॥४७॥
योनिदोषहरं स्त्रीणां रजोदोषहरन्तथा।
पापसंसर्गजं दोषं नाशयेन्नात्र संशयः ॥४८॥
आमवातहरञ्चैव शिरःशूलनिवारणम्।
सर्वशूलहरञ्चैव विशेषात् कटिशूलनुत् ॥४९॥
वीर्यवृद्धिकरं पुंसां सूतिकातङ्कनाशनम्।
वातपित्तकफोद्भूतान् द्वन्द्वजान् सन्निपातजान् ॥५०॥
हन्ति सर्वगदानेषा शुण्ठी सौभाग्यदायिनी।
सौभाग्यदायिनी स्त्रीणामतः सौभाग्यशुण्ठिका ॥५१॥

सौभाग्यशुण्ठी-३

शुण्ठीचूर्ण ७५० ग्राम, गोघृत ७५० ग्राम, गोदुग्ध ७५०० मि.ली.। १. शतावरी, २. विदारीकन्द, ३. श्वेत मुशली, ४. गोक्षुर, ५. बलामूल, ६. गुडूचीसत्त्व, ७. सौंफ, ८. श्वेत जीरा, ९. स्याह जीरा, १०. त्रिकटु, ११. चित्रक, १२. दालचीनी, १३. छोटीइलायची, १४. तेजपात, १५. अजवाइन, १६. तालीशपत्र, १७. मंगरैला, १८. सोआदाना, १९. रास्ना, २०. पुष्करमूल, २१. वंशलोचन, २२. देवदारु, २३. सौंफ, २४. कचूर, २५. जटामांसी, २६. वच, २७. मोचरस, २८. दालचीनी, २९. तेजपत्र, ३०. नागकेशर, ३१. जीवन्ती, ३२. मेथी, ३३. यष्टीमधु, ३४. श्वेतचन्दन, ३५. रक्तचन्दन, ३६. विडङ्ग, ३७. सुगन्धबाला, ३८. वासापत्र, ३९. धनियाँ, ४०. कट्फल तथा ४१. नागरमोथा—प्रत्येक द्रव्य का सूक्ष्म चूर्ण २३-२३ ग्राम लें। शर्करा १.८८६ ग्राम लें।

सर्वप्रथम एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में दूध को गरम करें। दूध उबलने लगे तो उसमें शुण्ठीचूर्ण मिलाकर मृदु अग्नि पर धीरे-धीरे पाक करें। जब दूध गाढ़ा होकर खोवा (मावा) जैसे हो जाय तो उसी पात्र में घृत डालकर इस शुण्ठीचूर्ण मावा को शनैः-शनैः मृदु अग्नि पर भर्जन करें। खर पाक नहीं करें। जब रक्ताभ वर्ण हो जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर औषधि को किसी दूसरे पात्र में रखें तथा उस भर्जित पात्र को साफ कर उसमें चीनी एवं अन्दाजन २५० मि.ली. मीठा जल देकर पुनः मृदु अग्नि पर पाक करें। ४-५ तार की मोदक की चासनी हो जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर प्रक्षेप द्रव्यों शतावरी से नागरमोथा तक के सभी ४१ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण उक्त पाक में अच्छी तरह से मिलाकर १-१ तोला के मोदक बनाकर काच के जार में सुरक्षित रख लें।

स्त्री के अग्निबल एवं कोष्ठ का विचार करते हुए विरेचनादि से शुद्ध शरीर होने पर भगवान् शिव, गुरु एवं औषधि की पूजा कर प्रातःकाल मधु के अनुपान से १-१ मोदक नित्य सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से स्त्री का वर्ण, बल, आयु का वर्धन करता है। वली-पलित रोगनाशक है। वयःस्थापक एवं अग्निदीपक है। सभी वृष्य औषधियों में सर्वोत्कृष्ट वृष्य है, रसायन गुणयुक्त है। स्त्रीरोगी के लिए विशेष उपयोगी है, प्रसूताओं के लिए अमृत जैसा

है, २० प्रकार के योनिरोग, ५ प्रकार के प्रदर, योनिरोग, रजोदोषहर पापज या संसर्गज रोग (फिरङ्ग, उपदंश) को नष्ट करता है। आमवात, शिर:शूल, सभी तरह के शूल, कटिशूलनाशक है। पुरुषों का वीर्यवृद्धिकारक है, सूतिकारोगनाशक है, वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज एवं सन्निपातज रोगनाशक है। यह औषधि सभी रोगों का नाश करता है। यह शुण्ठी स्त्रियों को सौभाग्यदाता है। अत: इसका नाम 'सौभाग्यशुण्ठी' है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—ब्राउन रंग। **अनुपान**—सुखोष्ण बकरी एवं गोदुग्ध से। **रस**—मधुर। **गन्ध**—सुगन्ध। **उपयोग**—स्त्रियों के सूतिका एवं समस्त रोग में।

१८. पञ्चजीरक गुड (चक्रदत्त)

जीरकं हबुषा धान्यं शताह्वा बदराणि च।
यमानी क्रुष्टिका हिङ्गुपत्रिका कासमर्दकम्॥५२॥
पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदाऽथ बार्ष्पिका।
चित्रकं च पलांशानि तथाऽन्यच्च चतुष्पलम्॥५३॥
कशेरुकं नागरं च कुष्ठं दीप्यकमेव च।
गुडस्य च शतं दद्याद् घृतप्रस्थं तथैव च॥५४॥
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
पञ्चजीरक इत्येष सूतिकानां प्रशस्यते॥५५॥
गर्भार्थिनीनां नारीणां बृंहणीये समारुते।
विंशतिर्व्यापदो योनेः कासं श्वासं ज्वरं क्षयम्॥५६॥
हलीमकं पाण्डुरोगं दौर्गन्ध्यं मूत्रकृच्छ्रताम्।
घ्नन्ति पीनोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः।
उपयोगात् स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीमलवर्जिताः॥५७॥

१. जीराचूर्ण, २. हाउबेरचूर्ण, ३. धनियाँचूर्ण, ४. सौंफ चूर्ण, ५. बदरीफलचूर्ण, ६. अजवाइनचूर्ण, ७. राईचूर्ण, ८. हिङ्गुपत्रीचूर्ण, ९. कासमर्द (कसौंदी), १०. पीपरचूर्ण, ११. पिपरामूलचूर्ण, १२. अजमोदाचूर्ण, १३. राई, १४. चित्रकमूल-चूर्ण—इन सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण ४६-४६ ग्राम तथा १५. कशेरुकमूल, १६. सोंठचूर्ण, १७. कूठचूर्ण, १८. अजवाइन-चूर्ण—प्रत्येक १९० ग्राम लें। गुड़ ४६७० ग्राम, गोघृत ७५० ग्राम तथा गोदुग्ध १५०० मि.ली.।

जीरा से अजवाइन तक के सभी १८ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। पुन: स्टेनलेस स्टील के पात्र में उपर्युक्त चूर्णों तथा गोदुग्ध को एक साथ मिलाकर मन्दाग्नि में पाक करें। जब दूध सूख जाय तो इसे गोघृत में भूनें। तत: किसी दूसरे पात्र में थोड़ा जल और गुड़ डालकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब ४-५ तार की चासनी हो जाय तो चूल्हे से नीचे उतारकर उसमें घृतभृष्ट दुग्ध पक्व औषध को डालकर अच्छी तरह से मिला दें और १२-१२ ग्राम का मोदक बना लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पञ्चजीरकगुड़' कहते हैं। यह प्रसूता स्त्रियों के लिए अत्यन्त श्रेष्ठ है। यह गर्भिणी स्त्रियों के लिए तथा वायु कोपजन्य गर्भ का बृंहण करता है। २० प्रकार के योनिव्यापत्, कासश्वास, ज्वर, क्षय, हलीमक, पाण्डु, शरीर-दुर्गन्धता, मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रयोग से स्त्रियों के स्तन कठिन एवं बड़े हो जाते हैं तथा नेत्र भी सुन्दर, बड़े एवं आकर्षक हो जाते हैं। इनके सतत प्रयोग से स्त्रियों (प्रसूताओं) के शरीर की कुरूपता एवं मल नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—गुडाभ। **अनुपान**—चीनी युक्त बकरी अथवा गोदुग्ध से। **रस**—मधुर। **गन्ध**—सुगन्ध पाक। **उपयोग**—सूतिकारोग तथा स्त्रियों के समस्त रोग में।

१९. जीरकादिमोदक

जीरकस्य पलान्यष्टौ शुण्ठी धान्यं पलत्रयम्।
शतपुष्पा यमानी च कृष्णजीरं पलं पलम्॥५८॥
क्षीरं द्विप्रस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्द्धशतं पलम्।
घृतस्यापि पलान्यष्टौ शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥५९॥
व्योषं त्रिजातकञ्चैव विडङ्गं चव्यचित्रकम्।
मुस्तकञ्च लवङ्गञ्च पलांशं सम्प्रकल्पयेत्॥६०॥
मन्देन वह्निना पक्त्वा मोदकं कारयेद्भिषक्।
सर्वयोषिद्विकाराणां नाशनं वह्निदीपनम्॥
सूतिकारोगशमनं विशेषाद् ग्रहणीहरम्॥६१॥

१. श्वेतजीराचूर्ण ३७५ ग्राम, २. सोंठचूर्ण १४० ग्राम, ३. धनियाँचूर्ण १४० ग्राम; ४. सौंफचूर्ण, ५. अजवाइनचूर्ण, ६. कृष्णजीरा—प्रत्येक ४६ ग्राम। गोदुग्ध १५०० मि.ली., मिश्री २३४० ग्राम तथा गोघृत ३७५ ग्राम।

प्रक्षेप द्रव्य—१. सोंठचूर्ण, २. मरिचचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. तेजपत्रचूर्ण, ५. दालचीनीचूर्ण, ६. छोटीइलाइचीचूर्ण, ७. विडंगचूर्ण, ८. चव्यचूर्ण, ९. चित्रकमूलचूर्ण, १०. मुस्ताचूर्ण, ११. लवंगचूर्ण—प्रत्येक ४६ ग्राम लें।

उपर्युक्त श्वेतजीराचूर्ण से कृष्णजीराचूर्ण तक के सभी ६ द्रव्यों के चूर्णों को गोदुग्ध में डालकर पाक करें। जब गोदुग्ध सूख जाय तब उसमें घृत मिलाकर हलका भूनें। तदनन्तर मिश्री में थोड़ा जल मिलाकर चासनी करें। ३-४ तार की चासनी होने पर पात्र को नीचे उतारकर प्रक्षेप द्रव्यों के सभी ११ चूर्णों को डालकर अच्छी तरह मिला लें और १२-१२ ग्राम का मोदक बनाकर शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'जीरकादि मोदक' कहते हैं। स्त्रियों के सभी प्रकार के रोगों में विशेषकर सूतिकारोग में इसका प्रयोग लाभप्रद है। यह संग्रहणी रोग को भी नष्ट करता है। इसे चीनीयुक्त सुखोष्ण बकरी अथवा गाय के दूध के अनुपान से लेना चाहिए।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—ब्राउन कलर। **अनुपान**—चीनी युक्त सुखोष्ण बकरी/गोदुग्ध से। **रस**—मधुर। **गन्ध**—सुगन्ध। **उपयोग**—समस्त स्त्रीरोग एवं सूतिकारोगों में।

२०. सूतिकाविनोदरस (रसे.सा.सं.)

रसगन्धकतुत्थं च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम्।
त्रिर्भावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम्॥
गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु योजयेत्॥६२॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक तथा ३. शुद्ध तुत्थ—इन तीनों द्रव्यों को समभाग में लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उस कज्जली में शुद्ध तुत्थ मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर जम्बीरीस्वरस की भावना देकर ३ दिनों तक मर्दन करें अर्थात् ३ भावना दें। पुनः त्रिकटुक्वाथ की ३ भावना दें। ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) वटी बना लें तथा सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। मधु के साथ सेवन करें। इसके सेवन से गर्भिणियों के शूल, विष्टम्भ, ज्वर एवं अजीर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा। **वर्ण**—श्याम। **अनुपान**—मधु। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—गर्भिणियों के शूलादि में।

२१. सूतिकाविनोदरस (र.सा.सं.)

शुण्ठ्या भागो भवेदेको द्वौ भागौ मरिचस्य च।
पिप्पल्याश्च त्रिभागाः स्युरर्द्धभागश्च रोमकम्॥६३॥
जातीकोषस्य भागौ द्वौ द्वौ भागौ तुत्थकस्य च।
सिन्धुवारजलेनैव मर्दयेदेकयामतः।
मधुना सह सेवेत सूतिकातङ्कनाशनः॥६४॥

शुण्ठीचूर्ण १ भाग, मरिचचूर्ण २ भाग, पिप्पलीचूर्ण ३ भाग, रोमकलवण $\frac{1}{2}$ भाग, जावित्रीचूर्ण २ भाग, शुद्ध तुत्थ २ भाग।

सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को एक खरल में मिलाकर निर्गुण्डीस्वरस की भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी मधु के साथ प्रातः-सायं सेवन करने से सूतिकारोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२-२ रत्ती। **वर्ण**—धूसर। **अनुपान**—मधु से। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग में।

२२. सूतिकारिरस-१ (रसे.सा.सं.)

रसगन्धककृष्णाभ्रं तदर्द्धं ताम्रभस्मकम्।
चूर्णितं मर्दयेद्यत्नाद् भेकपर्णीरसेन च॥६५॥
छायाशुष्का गुडी कार्या कलायसदृशी ततः।
मात्रया कटुना देया सूतिकातङ्कनाशनी।
ज्वरतृष्णाऽरुचिहरी शोथघ्नी वह्निदीपनी॥६६॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म—तीनों २०-२० ग्राम तथा ताम्रभस्म १० ग्राम लें। एक पत्थर के खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उस कज्जली में अभ्रक एवं ताम्रभस्म मिलाकर मण्डूकपर्णीस्वरस की १ भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १-१ वटी मधु एवं आर्द्रकस्वरस के साथ सेवन करने से सूतिकारोग तथा उसके अन्य लक्षण ज्वर, तृष्णा, अरुचि और शोथ नष्ट हो जाते हैं। यह अग्निप्रदीपक है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—कृष्ण। **अनुपान**—मधु एवं आर्द्रकस्वरस। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग।

२३. सूतिकारिरस-२ (र.सा.सं.)

टङ्कणं मूर्च्छितं सूतं गन्धकं हेम तारकम्।
जातीफलं तथा कोषं लवङ्गैला च धातकी॥६७॥
वत्सकेन्द्रयवः पाठा शृङ्गी विश्वाजमोदिका।
गुडी प्रसारणीरसैश्चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः॥६८॥
भक्षयेत्तद्रसैः प्रातः सूतिकातङ्कशान्तये।
जीर्णज्वरं हन्ति शोथं ग्रहणीप्लीहकासनुत्॥६९॥

१. शुद्ध टङ्कण, २. रससिन्दूर, ३. शुद्ध गन्धक, ४. सुवर्ण भस्म, ५. रजतभस्म, ६. जायफलचूर्ण, ७. जावित्रीचूर्ण, ८. लौंगचूर्ण, ९. छोटीइलायचीचूर्ण, १०. धातकीपुष्पचूर्ण, ११. कुटजत्वक्चूर्ण, १२. इन्द्रयवचूर्ण, १३. पाठाचूर्ण, १४. काकड़ासिंगीचूर्ण, १५. सोंठचूर्ण, १६. अजमोदाचूर्ण। सभी द्रव्य १-१ भाग ग्रहण करें। सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर को पीस लें। पुनः उसमें गन्धक मिलाकर मर्दन करें। ततः अन्य भस्मों एवं सभी चूर्णों को उसमें मिलाकर गन्धप्रसारणी के स्वरस की भावना देकर ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को मधु एवं गन्धप्रसारणी स्वरस के साथ सेवन करने से सूतिकारोग, जीर्णज्वर, शोथ, संग्रहणी, प्लीहारोग एवं कासरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—मधु एवं गन्धप्रसारणी रस। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायन गन्धी। **उपयोग**—सूतिका रोग।

२४. सूतिकाघ्नरस (र.सा.सं.)

रसगन्धकलौहाभ्रं जातीकोषं सुवर्चलम्।
समांशं मर्दयेत् खल्ले छागीदुग्धेन पेषयेत्॥७०॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन सूतिकातङ्कनाशनः।

ज्वरातिसाररोगघ्नः कासश्वासातिसारनुत् ॥
सूतिकाघ्नो रसो नाम ब्रह्मणा परिकीर्त्तितः ॥७१॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. अभ्रकभस्म, ५. जावित्रीचूर्ण, ६. सौवर्चललवण—समभाग लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः इस कज्जली में अभ्रक एवं लोहभस्म मिलायें। पुनः जावित्रीचूर्ण एवं सौवर्चललवण मिलाकर मर्दन करें। पुनः बकरी दूध की १ भावना देकर मर्दन करें और २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'सूतिकाघ्नरस' कहते हैं। इसे ब्रह्मा ने निर्मित किया है। मधु के साथ इसका प्रयोग करने से सूतिकारोग नष्ट हो जाता है तथा साथ ही ज्वर, अतिसार, श्वास एवं कासरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—कृष्णवर्ण। **अनुपान**—मधु। **रस**—लवणीय। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग।

२५. सूतिकाहररस (र.सा.सं.)

लवङ्गं रसगन्धौ च यवक्षारं तथाऽभ्रकम्।
लौहं ताम्रं सीसकञ्च पलमानं समाहरेत् ॥७२॥
जातीफलं केशराजं वरा भृङ्गैलमुस्तकम्।
धातकीन्द्रयवं पाठा शृङ्गी बिल्वञ्च बालकम् ॥७३॥
कर्षमानञ्च सञ्चूर्ण्य सर्वमेकत्र कारयेत्।
बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥७४॥
गन्धालिकापत्ररसैरनुपानं प्रदापयेत्।
सर्वातीसारशमनः सर्वशूलनिवारणः।
सूतिकाहरनामाऽयं सूतिकां नाशयेद् ध्रुवम् ॥७५॥

१. लौंगचूर्ण, २. शुद्ध पारद, ३. शुद्ध गन्धक, ४. यवक्षार चूर्ण, ५. अभ्रकभस्म, ६. लोहभस्म, ७. ताम्रभस्म, ८. सीस (नागभस्म)—प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम तथा १०. जायफलचूर्ण, ११. केशराजचूर्ण, १२. त्रिफलाचूर्ण, १३. भृङ्गराजचूर्ण, १४. छोटीइलायचीचूर्ण, १५. मुस्ताचूर्ण, १६. धातकीपुष्पचूर्ण, १७. इन्द्रयवचूर्ण, १८. पाठाचूर्ण, १९. काकड़ासिंगीचूर्ण, २०. बिल्वफलमज्जाचूर्ण, २१. सुगन्धबालाचूर्ण—ये १४ द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। इस कज्जली में अभ्रकादि सभी भस्मों एवं अन्य काष्ठौषधियों के सूक्ष्म चूर्णों को मिलाकर जल की भावना दें और ३ घण्टे तक मर्दन करें तथा ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'सूतिकाहररस' कहते हैं। इसे मधु और गन्धप्रसारणीस्वरस के साथ दिन में २ बार सेवन करने से सूतिकारोग निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के अतिसार एवं सभी प्रकार के शूलरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्याववर्ण। **अनुपान**—मधु एवं गन्धप्रसारणीस्वरस से। **रस**—किञ्चित् कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग।

२६. सूतिकाहररसः-२

हिङ्गुलं हरितालञ्च शङ्खभस्मायसो रजः।
खर्परं धूर्त्तबीजञ्च यवक्षारञ्च टङ्गणम् ॥७६॥
बिभीतककषायेण भावयित्वा विधानतः।
मर्दयित्वा विदध्याच्च कलायसदृशीर्वटीः ॥७७॥
यथादोषानुपानेन प्रयुक्तोऽयं रसोत्तमः।
निहन्यात् सूतिकातङ्कान् वह्निस्तृणगणानिव ॥७८॥

१. शुद्ध हिङ्गुल, २. शुद्ध हरताल, ३. शंखभस्म, ४. लौह भस्म, ५. खर्परभस्म (अभाव में यशदभस्म), ६. शुद्ध धत्तूरबीज, ८. शुद्ध टङ्कण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। एक खरल में सभी द्रव्यों को एक साथ मर्दन करें और बिभीतक क्वाथ की ३ भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। दोषानुसार अनुपान से इसे सूतिकारोग में प्रयोग करने से सूतिका रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे तृण समूह को अग्नि नष्ट कर देती है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—दोषानुसार। **रस**—कषाय। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग।

२७. रसशार्दूलरस-१ (र.सा.सं.)

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं राजपट्टं रसस्तथा।
गन्धटङ्गमरीचञ्च यवक्षारं समांशकम् ॥७९॥
तथाऽत्र तालकञ्चैव त्रिफलायाश्च तोलकम्।
तोलकञ्चामृतञ्चैव गुञ्जाद्वयमिता वटी ॥८०॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्यापि नागवल्लीरसेन च।
भावयेत् सप्तधा हन्ति ज्वरकासाङ्गसङ्ग्रहम्।
सूतिकातङ्कशोथादिस्त्रीरोगञ्च विनाशयेत् ॥८१॥

१. अभ्रकभस्म, २. ताम्रभस्म, ३. लौहभस्म, ४. राजपट्ट (कान्तपाषाण भस्म) भस्म, ५. शुद्ध पारद, ६. शुद्ध गन्धक, ७. शुद्ध टङ्कण, ८. मरिचचूर्ण, ९. यवक्षार, १०. शुद्ध हरताल, ११. आमलाचूर्ण, १२. हरीतकीचूर्ण, १३. बहेड़ाचूर्ण, १४. शुद्ध वत्सनाभचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को उक्त कज्जली में मिलाकर

मर्दन करें। पुनः ग्रीष्मसुन्दरपत्रस्वरस एवं ताम्बूलपत्रस्वरस की १-१ भावना देकर २-२ रत्ती की वटी बनाकर छाया में सुखायें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १-१ वटी दिन में २ बार मधु एवं ताम्बूलस्वरस के साथ कुछ दिनों तक नियमित लेने से सूतिकारोग, ज्वर, कास, अङ्गग्रहण (जकड़न), शोथ एवं स्त्री रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्याम। **अनुपान**—मधु एवं ताम्बूलपत्ररस। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग।

२८. रसशार्दूलरस-२ (र.सा.सं.)

अभ्रकं पुटितं ताम्रं स्वर्णं गन्धञ्च पारदम्।
शिला टङ्गं यवक्षारं त्रिफलायाः पलं पलम् ॥८२॥
गरलस्य तथा ग्राह्यमर्द्धतोलकसम्मितम्।
त्वगेलापत्रकञ्चैव जातीकोषलवङ्गकम् ॥८३॥
मांसी तालीशपत्रञ्च माक्षिकञ्च रसाञ्जनम्।
एषां द्विकार्षिकं भागं देयञ्चापि विचक्षणैः ॥८४॥
द्रवे किञ्चित् स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत्।
भावना च प्रदातव्या पूर्वोक्तेन रसेन च ॥८५॥
निहन्ति विविधान् रोगाञ् ज्वरान् दाहान् वमिं भ्रमिम्।
तथाऽर्तिसारकञ्चैव वह्निमान्द्यमरोचकम्।
विशेषाद् गर्भिणीरोगं नाशयेदचिरेण च ॥८६॥

१. अभ्रकभस्म, २. ताम्रभस्म, ३. सुवर्णभस्म, ४. शुद्ध गन्धक, ५. शुद्धपारद, ६. शुद्धमैनसिल, ७. शुद्धटङ्कण, ८.यवक्षार, ९. आमलाचूर्ण, १०. हरीतकीचूर्ण, ११. बहेड़ा चूर्ण—प्रत्येक द्रव्य ४६-४६ ग्राम तथा १२. शुद्ध वत्सनाभ-चूर्ण ६ ग्राम लें। १३. दालचीनीचूर्ण, १४. छोटीइलायचीचूर्ण, १५. तेजपत्रचूर्ण, १६. जावित्रीचूर्ण, १७. लौंगचूर्ण, १८. जटामांसीचूर्ण, १९. तालीशपत्रचूर्ण, २०. सुवर्णमाक्षिकभस्म, २१. लौहभस्म, २२. रसाञ्जनचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य २३-२३ ग्राम तथा २३. मरिचचूर्ण ४६ ग्राम लें।

एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उस कज्जली में अन्य भस्मों को तथा समस्त काष्ठौषधिचूर्णो को मिलाकर ग्रीष्मसुन्दर तथा ताम्बूलपत्रस्वरस की ७-७ भावना दें। जब कुछ गीला रहे तो मरिचचूर्ण ४६ ग्राम मिलाकर मर्दन करें और २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे मधु एवं ताम्बूलपत्रस्वरस के साथ सेवन करने से अनेक प्रकार के ज्वर, दाह, वमन, भ्रम, अतिसार, अग्निमान्द्य, अरुचि तथा विशेषकर गर्भिणीरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा— २५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्यामवर्ण। **अनुपान**—मधु एवं ताम्बूलपत्ररस। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—गर्भिणी के ज्वर एवं वमन में।

२९. सूतिकान्तकरस (र.सा.सं.)

रसाभ्रगन्धकं व्योषं सुवर्णमाक्षिकं विषम्।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं खादेद् रक्तिचतुष्टयम् ॥८७॥
सूतिकाग्रहणीरोगं वह्निमान्द्यञ्च नाशयेत्।
अतीसारञ्च शमयेदपि वैद्यविवर्जितम् ॥
कासश्वासातिसारघ्नो वाजीकरण उत्तमः ॥८८॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. अभ्रकभस्म, ४. सोंठचूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. मरिचचूर्ण, ७. सुवर्णमाक्षिकभस्म, ८. शुद्ध वत्सनाभचूर्ण। उपर्युक्त सभी द्रव्य १-१ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उक्त कज्जली में अन्य सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करें तथा जल की भावना देकर ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १-१ वटी गरम पानी से लेने से यह सूतिका-रोग, ग्रहणीरोग, अग्निमान्द्य, अतिसार, श्वास-कास नाशक है, परम वाजीकरण है। वैद्य द्वारा त्यागे हुए असाध्य अतिसार को भी नष्ट करता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा.। **वर्ण**—कृष्णाभ। **अनुपान**—गरम पानी से। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूतिका रोग तथा अतिसार।

३०. सूतिकावल्लभरस

सूतं गन्धं माक्षिकञ्च व्योमेन्दुं हेमतालकम्।
रजतं फणिफेनञ्च जातीकोषफले तथा ॥८९॥
मुस्तकस्य बलायाश्च शाल्मल्याः स्वरसेन च।
भावयित्वा वटीः कुर्याद् द्विगुञ्जापरिमाणतः ॥९०॥
सूतिकावल्लभो नाम प्रयुक्तोऽयं महान् रसः।
निहन्यात् सूतिकारोगान् दुर्वारान् ग्रहणीगदान् ॥९१॥
अतीसारं सुघोरञ्च दौर्बल्यं वह्निमन्दताम्।
जनयेदाशु पुष्टिञ्च कान्तिं मेधां धृतिं तथा ॥९२॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. सुवर्णमाक्षिकभस्म, ४. अभ्रकभस्म, ५. कर्पूर, ६. सुवर्णभस्म, ७. शुद्ध हरताल, ८. रजतभस्म, ९. शुद्ध अफीम, १०. जायफलचूर्ण, ११. जावित्रीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। भावना—मुस्ता-क्वाथ, बलामूलक्वाथ तथा सेमलत्वक्क्वाथ की १-१ भावना।

एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः इस कज्जली में अन्य सभी भस्मों एवं चूर्णों को मिलाकर मुस्ता, बलामूल एवं सेमलत्वक्क्वाथ की १-१ भावना देकर २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें

तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'सूतिकावल्लभरस' कहते हैं। इस महान् रस का प्रयोग करना चाहिए। १-१ वटी मधु एवं रोगानुसार क्वाथ के साथ प्रयोग करने से सूतिकारोग नष्ट हो जाता है। दुर्निवार संग्रहणीरोग, भयंकर अतिसार, दुर्बलता, अग्निमान्द्यरोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधि के प्रयोग से शरीर की पुष्टि होती है, शरीर की कान्ति बढ़ती है, मेधा शक्ति एवं धारणाशक्ति में वृद्धि होती है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **वर्ण**—कृष्णाभ। **अनुपान**—मधु एवं रोगानुसार। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग।

३१. सूतिकाभरणरस (रसचण्डांशु)

सुवर्णं रजतं ताम्रं प्रवालं पारदं समम्।
गन्धकं चाभ्रकं तालं शिला त्रिकटु रोहिणी ॥९३॥
एतानि समभागानि रविक्षीरेण मर्दयेत्।
चित्रमूलकषायेण पौनर्नवरसेन च ॥९४॥
दिनं गजपुटे पाच्यं मूषायां धारयेत्पृथक्।
अनुपानविशेषेण देयं गुञ्जार्द्धकं च तत् ॥९५॥
सूतिकारोगमतुलं धनुर्वातं विशेषतः।
त्रिदोषोत्थान् हरेद्व्याधीनिच्छापथ्यं प्रदापयेत्।
सूतिकाभरणं नाम सर्वरोगहरञ्च तत् ॥९६॥

१. स्वर्णभस्म, २. रजतभस्म, ३. ताम्रभस्म, ४. प्रवाल-भस्म, ५. शुद्ध पारद, ६. शुद्ध गन्धक, ७. अभ्रकभस्म, ८. शुद्ध हरताल, ९. शुद्ध मैनसिल, १०. सोंठचूर्ण, ११. पीपरचूर्ण, १२. मरिचचूर्ण, १३. कटुकीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। एक खरल में पारद-गन्धक का एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनावें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को उसमें मिलाकर अर्कदुग्ध, चित्रकक्वाथ एवं पुनर्नवाक्वाथ की १-१ भावना देकर मर्दन करें। ततः चक्रिका बनाकर सुखाकर शरावसम्पुट कर गजपुट में पाक करें। तदनन्तर स्वाङ्गशीत होने पर सम्पुट खोलकर औषधि निकाल लें। ततः खरल में मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'सूतिकाभरणरस' कहते हैं। यह सभी रोगों को नाश करने वाला है। इसे अनुपान विशेष से $\frac{१}{२}$ रत्ती से १ रत्ती (६५ से १२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में प्रयोग करने पर भयंकर सूतिकारोग, धनुर्वात (Tetanus) तथा त्रिदोषजरोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधि के सेवन काल में इच्छानुसार पथ्य लेना चाहिए।

मात्रा—६५ से १२५ मि.ग्रा.। **वर्ण**—राख वर्ण (कपोतवर्ण) **अनुपान**—मधु एवं दोषानुसार। **रस**—किञ्चित्तिक्त-रस। **गन्ध**—निर्गन्ध। **उपयोग**—सूतिका एवं धनुर्वातरोग में।

३२. लक्ष्मीनारायणरस (यो.र.)

शुद्धगन्धकमेतञ्च टङ्कणं विषहिङ्गुलम्।
रोहिण्यतिविषा कृष्णा वत्सकाभ्रकसैन्धवम् ॥९७॥
एतानि समभागानि खल्वमध्ये विनिक्षिपेत्।
दन्तीद्रावैः फलद्रावैर्मर्दयेच्च दिनत्रयम् ॥९८॥
वल्लद्वयीं वटीं कृत्वा ह्यार्द्रकस्य जलैर्ददेत्।
दोषज्वरे सन्निपाते विसूच्यां विषमज्वरे ॥९९॥
अतिसारे ग्रहण्यां च रक्तामे मेहशूलजित्।
सूतिकावातदोषघ्नो लङ्केशमिव राघवः ॥१००॥
इष्टान्नं भोजयेत्पथ्यमभ्यङ्गं स्नानमाचरेत्।
कर्पूरमिश्रं ताम्बूलं प्रसूनं हरिचन्दनम् ॥१०१॥
नारिकेलोदकं पीत्वा नारीणां सङ्गमेव च।
लक्ष्मीनारायणो नाम रसानामुत्तमो रसः ॥१०२॥

१. शुद्ध गन्धक, २. शुद्ध टङ्कण, ३. शुद्ध वत्सनाभचूर्ण, ४. शुद्ध हिङ्गुल, ५. कटुकीचूर्ण, ६. अतीसचूर्ण, ७. पीपरचूर्ण, ८. कुटजत्वक्चूर्ण, ९. अभ्रकभस्म, १०. सैन्धवलवण—इन सभी द्रव्यों को १-१ भाग लें। एक खरल में हिंगुल और गन्धक का एक साथ मर्दन करें। ततः उसमें अभ्रक टंकण मिलाकर मर्दन करें। तदन्तर अन्य काष्ठौषधियों के चूर्णों को मिलाकर दन्तीमूलक्वाथ की भावना देकर ३ दिन मर्दन करें। इसी प्रकार त्रिफलाक्वाथ से भी ३ भावना देकर मर्दन करें। इसके बाद ६-६ रत्ती (७५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें। २ वल्ल अर्थात् ६-६ रत्ती (७५० मि.ग्रा.) की मात्रा अधिक होगी। अतः ३ रत्ती की वटी बनायें तथा छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे आर्द्रकस्वरस एवं मधु के साथ दें। यह ज्वर, सन्निपातज्वर, विसूचिका, विषमज्वर, अतिसार, संग्रहणी, रक्तातिसार, आमातिसार, प्रमेह, शूल, सूतिकारोग, वातव्याधि रोगों का उसी तरह नाश करता है जैसे भगवान् राम ने लंकेश रावण का नाश किया था। भूख लगने पर रोगों के अनुकूल भोजन, अनुकूल पथ्य, अभ्यङ्ग-स्नान आदि का प्रयोग करना चाहिए। कर्पूर युक्त ताम्बूल का सेवन, सुगन्धित पुष्पमाला का धारण, मलयागिरि चन्दन का शरीर में लेप और नारिकेल जल का पान करना तथा स्त्रियों के साथ संभोग करना रोगी के लिए हितकर (पथ्य) है। यह लक्ष्मीनारायणरस सभी रसों में उत्तम है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—मधु एवं आर्द्रकस्वरस। **रस**—कषाय रस। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग, वातव्याधि तथा वृष्यकर्मार्थ।

३३. महाभ्रवटी-१ (र.सा.सं.)

अभ्रकं पुटितं ताम्रं लौहं गन्धकपारदम्।
कुनटी टङ्कणं क्षारं त्रिफला च पलं पलम् ॥१०३॥
गरलं च तथा माषचतुष्कं चैव चूर्णितम्।
तत्सर्वं भावयेदेषां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥१०४॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्याटरूषकस्य क्रमेण तु।
रसैस्ताम्बूलवल्ल्याश्च दलोत्थैर्भावितं पृथक् ॥१०५॥

द्रवे किञ्चित्स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत्।
सर्वातीसारशमनं सर्वशूलनिवारणम् ॥१०६॥
सूतिकाशोथपाण्डुघ्नं सर्वज्वरविनाशनम्।
नाशयेत् सूतिकातङ्कं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥१०७॥

१. अभ्रकभस्म, २. ताम्रभस्म, ३. लोहभस्म, ४. शुद्ध गन्धक, ५. शुद्ध पारद, ६. शुद्ध मैनसिल, ७. शुद्ध टङ्कण, ८. यवक्षार, ९. आमलाचूर्ण, १०. हरीतकीचूर्ण, ११. बहेड़ाचूर्ण —प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम; १२. शुद्ध वत्सनाभविषचूर्ण ४ ग्राम तथा मरिचचूर्ण ४६ ग्राम लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः अन्य भस्मों तथा काष्ठौषधचूर्णों को मिलाकर मर्दन करें और ग्रीष्मसुन्दरपत्रस्वरस, वासापत्रस्वरस और ताम्बूलपत्ररस की १-१ भावना दें। कुछ सूखने पर मरिचचूर्ण मिलाकर १ घण्टा मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु एवं ताम्बुलपत्रस्वरस से दिन में २ बार सेवन करने पर सूतिका रोग नष्ट हो जाता है। इसके प्रयोग से सभी तरह के अतिसार, सभी तरह के शूल, पाण्डु एवं ज्वररोग नष्ट हो जाते हैं। जैसे इन्द्र के वज्र प्रहार से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं उसी तरह यह औषध सूतिकारोग को नष्ट करती है। अन्य रोगों में अनुपान रोगानुसार दें।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **वर्ण**—श्याव। **अनुपान**—मधु एवं ताम्बुलरस। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग।

३४. महाभ्रवटी-२ (र.सा.सं.)

मृतमभ्रञ्च लौहञ्च कुनटी ताम्रकस्तथा।
रसगन्धकटङ्गञ्च यवक्षारफलत्रिकम् ॥१०८॥
प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यमूषणं पञ्चतोलकम्।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं प्रत्येकेन विभावयेत् ॥१०९॥
ग्रीष्मसुन्दरसिंहास्यनागवल्ल्या रसेन च।
रक्तिकैकप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥
योजयेत्सर्वथा वैद्यः सूतिकारोगशान्तये ॥११०॥

१. अभ्रकभस्म, २. लौहभस्म, ३. शुद्धमैनसिल, ४. ताम्रभस्म, ५. शुद्धपारद, ६. शुद्धगन्धक, ७. शुद्धटङ्कण, ८.यवक्षार, ९. आमलाचूर्ण, १०. हरीतकीचूर्ण, ११. बेहड़ा चूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें और १२. मरिचचूर्ण ५८ ग्राम लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः अन्य भस्मों और चूर्णों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद ग्रीष्मसुन्दरपत्ररस, वासापत्ररस तथा ताम्बूलपत्र-स्वरस की १-१ भावना दें और १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे हमेशा ही सूतिकारोग में मधु एवं लक्षणानुसार अनुपान के साथ दिन में २ बार प्रयोग करने से सूतिकारोग नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **वर्ण**—कृष्णवर्ण। **अनुपान**—मधु एवं लक्षणानुसार द्रव्य से। **रस**—कटु। **उपयोग**—सूतिकारोग।

३५. भद्रोत्कटाद्यघृतम्

समूलपत्रशाखन्तु शतं भद्रोत्कटस्य च।
वारिद्रोणेन संसाध्य स्थाप्यं पादावशेषितम् ॥१११॥
घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गर्भं दत्त्वा तु कार्षिकम्।
सव्योषं पिप्पलीमूलं चित्रकं जीरकं तथा ॥११२॥
पञ्चमूलं कनिष्ठञ्च रास्नैरण्डसमन्वितम्।
बला सिन्धुर्यवक्षारं सर्जिका कृष्णजीरकम् ॥११३॥
सिद्धमेतद् घृतं सद्यो निहन्यात्सूतिकामयान्।
ग्रहणीं पाण्डुरोगञ्च अर्शांसि विविधानि च।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं स्त्रीणां स्तन्यविशोधनम् ॥११४॥

भद्रोत्कट (गन्धप्रसारणी या नागरमोथा) १०० पल (४६७० ग्राम) को १२$\frac{1}{2}$ लीटर जल में चौथाई शेष रहने तक क्वाथ करें। गोघृत ७५० ग्राम लें। **कल्क**—१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. पिपरामूल, ५. चित्रकमूल, ६. जीराश्वेत, ७. शालपर्णी, ८. पृश्निपर्णी, ९. बृहती, १०. कण्टकारी, ११. गोखरु, १२. रास्ना, १३. एरण्डमूल, १४. बलामूल, १६. सैन्धवलवण, १७. यवक्षार, १८. सर्जिकाक्षार, १९. स्याहजीरा—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः सोंठ से स्याहजीरा तक के सभी १८ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को मूर्च्छितघृत मे डालें और भद्रोत्कट क्वाथ भी घृत में डालकर अच्छी तरह से मिला लें और मन्दाग्नि पर पाक करें। क्वाथ सूखने पर परीक्षा कर घृत पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ६ से १२ ग्राम की मात्रा में २०० मि.ली. शर्करायुक्त गरम गोदुग्ध में मिलाकर प्रसूता स्त्रियों को पिलाना चाहिए। १०-१५ दिनों तक दिन में २ बार पिलाने से प्रसूताओं का सूतिकारोग नष्ट हो जाता है साथ ही ग्रहणी, पाण्डु, अर्शरोग नष्ट हो जाते हैं। यह अग्नि प्रदीप्त करता है तथा स्त्रियों का स्तन्य शोधन करता है, अर्थात् स्त्रियों के दूध को शुद्ध करता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग।

३६. धातक्यादि तैल

धातकीधवधन्याकधात्रीधुस्तूरधूपनैः।
नीलीनीपनतैर्निम्बनिम्बूनीरदनागरैः ॥११५॥

पथ्यापद्मपृथापुत्रैः पत्रपत्रोर्णपूतिकैः ।
फणिज्झकफलेन्द्राभ्यां फञ्जिकाफेनफेनिहैः ॥११६॥
कल्कैः कोलकपित्थाभ्यां कृष्णाकन्याकसेरुभिः ।
पिष्टैः पचेत्पयस्विन्या पयसा पाकपण्डितः ॥११७॥
तैलं तिलभवं तिष्ये तिष्यातोयेन तन्मनाः ।
पूजयित्वा परानन्दां प्रयतः परमेश्वरीम् ॥११८॥
सुरसूनूदितमिदं सूतिकामयसूदनम् ।
सेवेत सततं सूता सुखदं सुखसेविनी ॥११९॥

तिलतैल १५०० मि.ली., बकरी का दूध (पयस्विनी पयसा) ६ लीटर, आमलकीस्वरस (तिष्य) या क्वाथ ६ लीटर, सम्यक् पाकार्थ जल ६ लीटर।

१. धातकीपुष्प, २. धातकीवृक्षत्वक्, ३. धनियाँ, ४. आमला, ५. धत्तूरपञ्चाङ्ग, ६. देवदारुकाष्ठ, ७. नीलीमूल, ८. कदम्बत्वक्, ९. तगर, १०. निम्बत्वक्, ११. निम्बु, १२. मुस्ता, १३. सोंठ, १४. हरीतकी, १५. लालकमलफूल, १६. अर्जुनत्वक्, १७. तेजपत्र, १८. अरलुत्वक्, १९. करञ्जत्वक्, २०. तुलसीपत्र, २१. जम्बुत्वक्, २२. भारङ्गी, २३. समुद्रफेन, २४. रीठाफल, २५. बदरीफल, २६. कपित्थ, २७. पीपर, २८. धृतकुमारी, २९. कशेरुमूल—इन सभी २९ द्रव्यों को प्रत्येक १२-१२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः सभी कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें और मूर्च्छिततैल में मिलायें तथा उसमें दूध मिलाकर पाक करें। दूध सूखने पर आमलकीस्वरस या क्वाथ मिलाकर पाक करें। क्वाथ सूखने पर दूध के सम्यक् पाकार्थ ६ लीटर जल मिलाकर पाक करें। जल सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा करके तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। तैलपाकविद् वैद्य परमानन्दस्वरूपा भगवती की तथा तैल की पूजा कर सुर सूनु (अश्विनीकुमारों) द्वारा बताये गये 'धातक्यादितैल' का प्रयोग (अभ्यङ्ग) करने से सूतिकारोग से विमुक्त होकर स्त्रियाँ सुखी हो जाती हैं।

मात्रा—अभ्यङ्गार्थ। **वर्ण**—रक्ताभ। **गन्ध**—सुगन्धिततैल। **उपयोग**—सूतिकारोग।

३७. सूतिकादशमूलतैल

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम्।
दासी प्रसारणी विश्वगुडूचीमुस्तकं तथा ॥१२०॥
एतानि समभागानि प्रस्थं च कटुतैलकम्।
चतुर्गुणं पयो दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
निहन्ति सूतिकारोगं ज्वरदाहसमन्वितम् ॥१२१॥

१. शालपर्णी, २. पृश्निपर्णी, ३. बृहती, ४. कण्टकारी, ५. गोक्षुर, ६. सहचर, ७. गन्धप्रसारणी, ८. सोंठ, ९. गुडूची, १०. मुस्ता—प्रत्येक द्रव्य २०-२० ग्राम लें। कटु (सरसो) तैल ७५० मि.ली. का मूर्च्छन करें। शालपर्णी से मुस्ता तक के सभी द्रव्यों को कूट-पीस कर कल्क बनायें। मूर्च्छित तैल में कल्क और जल देकर पाक करें। जल सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके अभ्यङ्ग से ज्वर-दाह से युक्त सूतिकारोग नष्ट हो जाता है।

३८. जीरकाद्यरिष्ट

जीरकस्य तुलाद्वन्द्वं चतुर्द्रोणजले पचेत्।
द्रोणशेषे क्षिपेत्तत्र तुलात्रयमितं गुडम् ॥१२२॥
धातकीं षोडशपलां शुण्ठीञ्च द्विपलोन्मिताम्।
जातीफलं मुस्तकञ्च चातुर्जातं यमानिकाम् ॥१२३॥
कक्कोलं देवपुष्पञ्च पलमानेन निक्षिपेत्।
मासं संस्थाप्य भाण्डे च मृत्तिकापरिनिर्मिते ॥१२४॥
ततः कल्कान् विनिर्हृत्य पाययेत् कर्षमात्रया।
अरिष्टो जीरकाद्योऽयं निहन्यात् सूतिकामयान् ॥
ग्रहणीमतिसारञ्च तथा वह्नेश्च वैकृतम् ॥१२५॥

क्वाथद्रव्य—श्वेतजीरा ९३४० ग्राम, जल ५० लीटर, अवशेष क्वाथ १२$\frac{१}{२}$ लीटर तथा गुड़ १४ किलो। प्रक्षेप—१. धातकीपुष्प ७५० ग्राम, २. सोंठ ९३ ग्राम, ३. जायफल ४६ ग्राम; ४. मुस्ता, ५. तेजपत्र, ६. दालचीनी, ७. छोटी इलायची, ८. नागरकेशर, ९. अजवाइन, १०. शीतलचीनी, ११. लौंग—प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम लें।

जीरा को थोड़ा यवकुट कर ५० लीटर जल में क्वाथ करें, चौथाई (१२$\frac{१}{२}$ लीटर) शेष रहने पर छान लें। मिट्टी के नये घड़े में जीरा क्वाथ रखें और उसमें गुड़ डालकर हाथ से मसलकर अच्छी तरह से मिला लें। दूसरे दिन धातकीपुष्प को यवकुट नहीं करें, उसे केवल धूप में अच्छी तरह से सुखा लें। जायफल से लौंग तक के सभी द्रव्यों का मोटा यवकुट उक्त घड़े में डालकर हाथ से अच्छी तरह मिला लें। धातकीपुष्प भी घड़ा में मिला लें। अब उक्त घड़ा को निर्वात स्थान में तली के नीचे धान की भूसी या पुआल की गद्दी बनाकर रखें। घड़ा पर जीरकाद्यरिष्ट तथा निर्माण तिथि भी चाक से लिख दें। घड़ा का मुख शरावसम्पुट से ढककर कपड़मिट्टी कर बन्द कर दें। इसे १ माह के बाद खोलकर परीक्षा करें। सबसे प्रमुख परीक्षा तो यही है कि अरिष्ट तैयार हो जाने पर वह कमरा तथा उसके बाहर भी मद्य गन्ध से युक्त रहेगा। घड़ा खोलकर दियासलाई जलाकर घड़े के अन्दर तक ले जाय, यदि वह जलती है तो ऑक्सीजन पूर्ण रूप से घड़ा में आ गया है जो औषधि तैयार होने का द्योतक है। यदि बत्ती बुझ जाती है तो कार्बन डाईआक्साइड अभी है अतः दवा

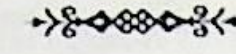
तैयार नहीं है। इसके साथ ही गन्ध (मद्य गन्ध), वर्ण (रक्ताभ), रस (कटु-तीक्ष्ण मद्य स्वाद) होना भी औषधि की तैयारी का चिह्न है। इसे पुनः हाथ से मिलाकर छान लीजिए। उक्त पात्र को कपड़े से पोंछ-साफ कर पुनः छना हुआ द्रव उसी घड़े में रखकर १० दिनों तक स्थिर छोड़ दें जिससे घड़े की तली में गाद बैठ जायेगी। १० दिनों बाद घड़े को टेढ़ाकर सभी स्वच्छ द्रव निकाल लें और गाद को छोड़ दें। ततः बोतल में भरकर लेबल लगा दें। लेबल में औषधि नाम, ग्रन्थनाम, रोगाधिकार, निर्माण तिथि लिखना चाहिए। इसे जीरकाद्यरिष्ट कहते हैं। इसकी १२ से २५ मि.ली. तक की मात्रा समान भाग में जल मिलाकर भोजन के बाद (दोपहर एवं रात्रि में) पिलाना चाहिए। इसके प्रयोग से सूतिकारोग, अतिसार तथा संग्रहणीरोग नष्ट हो जाते हैं। यह अग्नि को प्रदीप्त करता है। इसे बनाने के १ वर्ष बाद प्रयोग करें।

मात्रा—१२-२५ मि.ली.। **वर्ण**—रक्ताभ द्रव। **अनुपान**—बराबर जल से। **रस**—तीक्ष्ण। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **उपयोग**—सूतिकारोग एवं स्त्रीरोग विकार में।

सूतिकारोग में पथ्य

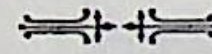
लङ्घनानि मृदुस्वेदो गर्भकोष्ठविशोधनम्।
अभ्यञ्जनं तैलपानं कटुतीक्ष्णोष्णसेवनम् ॥१२६॥
दीपनं पाचनं मद्यं पुराणाः शालिषष्टिकाः।
कुलत्थो लशुनं शिग्रु वार्त्ताकुं बालमूलकम् ॥१२७॥
पटोलं मातुलुङ्गं च ताम्बूलं दाडिमद्वयम्।
यानि श्लेष्मानिलघ्नानि विधातव्यानि तानि च ॥१२८॥
सप्ताहाद् बृंहणं किञ्चिद् द्वादशाहात्तथामिषम्।
सार्द्धमासे व्यतिक्रान्ते त्याज्याऽऽहारादियन्त्रणा ॥१२९॥
सूतिकाख्येषु रोगेषु वातश्लेष्मोचितानि च।
तत्तद्रोगानुकूल्येन पथ्यापथ्यानि निर्दिशेत् ॥१३०॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां सूतिकारोगाधिकारः।



लंघन, मृदुस्वेद, गर्भकोष्ठ की शुद्धि, अभ्यङ्ग, तैलपान, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण पदार्थों का सेवन, दीपन, पाचन, पुराना मद्य, पुराना शालि एवं साठी चावल के भात, कुलत्थ, लशुन, शिग्रु के फल, बैंगन, बालमूली, पटोलफल, मातुलुङ्गनिम्बु, ताम्बूल, खट्टा एवं मीठा अनार, कफ एवं वात नाशक द्रव्यों का सेवन करना, ७ दिन बाद बृंहण पदार्थ तथा १२ दिन के बाद मांस सेवन करना सूतिका रोग में हितावह है। डेढ़ महीना बाद आहार-विहार में पथ्य पालन त्याग देना चाहिए। सूतिकारोग में कफ-वात से उत्पन्न हुए जो रोग हैं उनके अनुकूल पथ्यापथ्य का सेवन करना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य सूतिकारोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ स्तनरोगाधिकारः (७०)

१. स्तन्य(दुग्ध)वर्धनोपाय (च.द.)

वनकार्पासिकेक्षुणां मूलं सौवीरकेण वा।
विदारीकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्द्धनम् ॥१॥

जंगली कार्पास मूल और इक्षुमूल (समभाग) लेकर चूर्ण करें और काञ्जी के साथ सिल पर पीसकर पिलाने से अथवा विदारीकन्दचूर्ण को मद्य में घोलकर पिलाने से प्रसूताओं का दूध बढ़ता है।

२. शालितण्डुलचूर्ण दुग्धपान (च.द.)

दुग्धेन शालितण्डुलचूर्णपानं विवर्द्धयेत्।
स्तन्यं सप्ताहतः क्षीरसेविन्यास्तु न संशयः ॥२॥

गोदुग्ध के साथ सिल पर शालिचावल पीसें और दूध में चीनी मिलाकर पीने से स्त्रियों का दूध बढ़ता है।

३. हरिद्रादि/वचादिगण का पान (च.द.)

हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेत् स्तन्यस्य वृद्धये ॥३॥

हरिद्रादिगण[1] (हल्दी–दारुहल्दी–पृश्निपर्णी–इन्द्रयव–मुलेठी) या वचादिगण[2] (वच-मोथा-अतीस-हरीतकी-देवदारु-नागरकेशर)—इनका क्वाथ कुछ दिनों तक पीने से सूतिकाओं का दूध बढ़ता है।

४. धात्रीस्तन्यवर्द्धन योग (च.द.)

धात्रीस्तन्यविवृद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी।
भार्गीदारुवचापाठाः पिबेत्सातिविषाः शृताः ॥४॥

१. भारङ्गी, २. देवदारु, ३. वच, ४. पाठा, ५. अतीस—इन्हें समभाग लेकर यवकुट कर संग्रहीत करें। इस यवकुट में से २३ ग्राम लेकर ४०० मि.ली. (१६ गुना जल) जल में क्वाथ कर चौथाई शेष रहे पर छान लें। इस क्वाथ को धात्री को पिलाने से तथा मुद्ग यूष (मूँग की दाल) एवं मांस रस पिलाने से दूध बढ़ता है।

५-७. वातादि दोषदूषित दुग्ध की चिकित्सा (च.द.)

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीजलं पिबेत्।
पित्तदुष्टेऽमृता भीरु पटोलं निम्बचन्दनम् ॥५॥

१. हरिद्रादारुहरिद्राकलशीकुटजबीजानि मधुकञ्चेति। (सु.सू. ३८।२७)
२. वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारुणि नागरकेशरञ्चेति। (सु.सू. ३८।२६)
एतौ वचाहरिद्रादी गणौ स्तन्यविशोधनौ।
आमातिसारशमनौ विशेषाद्दोषपाचनौ ॥ (सु.सू. ३८।२८॥

धात्री कुमारश्च पिबेत्क्वाथयित्वा सशारिवम्।
कफे वा त्रिफलां मुस्तं भूनिम्बं कटुरोहिणीम् ॥६॥

(१) वातप्रकुपित स्तन्य दुष्टि में प्रसूता को दशमूलक्वाथ पिलाने से स्तन्य शुद्ध हो जाता है। (२) पित्तप्रकुपित स्तन्यदुष्टि में गुडूची, शतावरी, पटोलपत्र, निम्बत्वक्, लालचन्दन तथा अनन्तमूल का समभागीय क्वाथ धात्री एवं बालक को पिलाने से पित्तदुष्ट स्तन्य शुद्ध हो जाता है। (३) कफ प्रकुपित स्तन्य दुष्टि में त्रिफला, मुस्ता, चिरायता, कटुकी का समभागीय क्वाथ पिलाने से प्रसूता का कफदुष्ट स्तन्य शुद्ध हो जाता है।

८. स्तनकील (विद्रधि) हरोपाय

कुक्कुरमेञ्चुकमूलं चर्वितमास्येन धारितं जयति।
सप्ताहात् स्तनकीलं स्तन्यं चैकान्ततः कुरुते ॥७॥

कुक्कुरमेञ्चुक (नागबला = गंगेरन) के मूल को एक सप्ताह तक मुख में रखकर चबाते रहने से स्तनकील रोग नष्ट हो जाता है।

स्तनशोथ चिकित्सा (च.द.)

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग् विदध्याद्-
यद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम्।
आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं
तस्याः स्तनौ सततमेव हि निर्दुहीत ॥८॥

प्रसूता स्त्रियों के स्तनों में शोथ उत्पन्न होने पर कुशल चिकित्सक विद्रधि की तरह विचार करते हुए चिकित्सा करें। आम, पच्यमान एवं पक्व इन तीनों अवस्थाओं में स्तनों का दोहन (निर्दुहीत) कर्म अर्थात् ब्रेस्ट पम्प से दूध निकालते रहना चाहिए।

९. स्तनपीडाहर लेप (च.द.)

विशालामूललेपस्तु हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम्।
निशाकनकमूलाभ्यां लेपश्चापि स्तनार्त्तिहा ॥९॥

इन्द्रायणमूल का सूक्ष्म चूर्ण करें, ततः सिल पर उस चूर्ण को पीसकर गरम करें और स्तनों पर सुखोष्ण लेप करने से स्तन पीड़ा शान्त हो जाती है। अथवा—हल्दी, धतूरमूल को सिल पर पीसें तथा थोड़ा जल देकर गरम करें और स्तनों पर सुखोष्ण लेप करने से स्तन पीड़ा शान्त हो जाती है।

१०. स्तनकठिनीकरण (च.द.)

महिषीभवनवनीतं व्याधिबलोग्रा तथैव नागबला ।
पिष्टा मर्दनयोगात् पीनं कठिनं स्तनं कुरुते ॥१०॥

कूठ, बलामूल, वच, नागबलामूल—इन चारों द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। इस चूर्ण को भैंस के मक्खन में मिलाकर स्तनों पर लेप कर धीरे-धीरे मर्दन करने से स्तन मोटे, बड़े एवं कठिन हो जाते हैं।

११. स्तनकठिनीकरण (च.द.)

मूषिकवसया शौकरमाहिषराजमांसचूर्णसंयुतया ।
अभ्यङ्गमर्दनाभ्यां सुकठिनपीनस्तनौ भवतः ॥११॥

सूअर का मांस, भैंस का मांस, हाथी का मांस—तीनों को पीसकर चूहे की वसा में मिलावें और स्तनों पर लेप, अभ्यङ्ग एवं मर्दन करने से स्तन कठिन एवं मोटे हो जाते हैं।

१२. स्तनकठिनीकरण (च.द.)

प्रथमर्त्तौ तण्डुलाम्भो नस्यं कुर्यात् स्तनौ स्थिरौ ॥१२॥

जब लड़कियों को प्रथम बार रजःस्राव (मासिकधर्म) हो तो उस ३ दिन में कभी भी तण्डुलोदक का नस्य लेने से स्त्रियों के स्तन कभी ढीले नहीं होते हैं। अर्थात् हमेशा कठिन ही रहते हैं।

१३. स्तनकठिनीकरण (च.द.)

गोमहिषीघृतसहितं तैलं श्यामाकृताञ्जलिवचाभिः ।
त्रिकटुनिशाभिः सिद्धं नस्यं स्तनवर्द्धनं परमम् ॥१३॥

गोघृत ११५ ग्राम, भैंसघृत ११५ ग्राम एवं तिलतैल ११५ मि.ली. लें। कल्क—१. प्रियङ्गुफूल, २. लाजवन्ती लजानी), ३. वच, ४. सोंठ, ५. पीपर, ६. मरिच, ७. हल्दी—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। घृत एवं तिलतैल का मूर्च्छन कर लें। मूर्च्छित घृत-तैल में कल्क और १५८० मि.ली. जल देकर मन्दाग्नि पर स्नेहपाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक की परीक्षा कर स्नेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का नस्य लेने से स्तनों की वृद्धि होती है। साथ ही इसे स्तनों पर शनैः-शनैः मर्दन भी करें।

१४. कासीसाद्यतैल (च.द.)

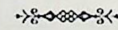
कासीसतुरगगन्धाशावरगजपिप्पलीविपक्वेन ।
तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्णवराङ्गलिङ्गानि ॥१४॥

तिलतैल २५० मि.ली. तथा कासीस, अश्वगन्ध, लोध्र तथा गजपीपर—ये चारों द्रव्य १५-१५ ग्राम लें। पहले तिलतैल का मूर्च्छन करें। पुनः इन चारों कल्क द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में कल्क और १ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का स्तनों, कर्णपाली, योनि एवं लिङ्ग पर धीरे-धीरे मालिश करने से ये सभी प्रत्यङ्ग बढ़ते हैं।

१५. श्रीपर्णी तैल (च.द.)

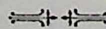
श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम् ।
तत्तैलं तूलकेनैव स्तनस्योपरि धारयेत् ॥
पतितावुत्थितौ स्त्रीणां भवेयातां पयोधरौ ॥१५॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां स्तनरोगाधिकारः ।



श्रीपर्णी (गम्भारीत्वक्) क्वाथ १ लीटर, श्रीपर्णीत्वक् कल्क ६० ग्राम तथा तिलतैल २५० मि.ली. लें। सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें तथा श्रीपर्णी के त्वक् को कूट-पीसकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छिततिलतैल में गम्भारीकल्क एवं क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। रूई में तैल को भिगोकर स्तनों पर तैल लगाकर धीरे-धीरे कुछ दिनों तक मर्दन करने से लटके हुए अत्यन्त ढीले स्तन भी कठिन हो जाते हैं।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य स्तनरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ बालरोगाधिकारः (७१)

बालक के तीन प्रकार (वङ्गसेन)

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्त्तकः ।
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः ॥१॥

(१) केवल माता के दूध पर पोषित होने वाले । (२) दुग्ध एवं अन्न पर पोषित होने वाले तथा (३) केवल अन्न पर पोषित होने वाले—ये तीनों बालक दुग्ध एवं अन्न के दूषित होने पर रुग्ण हो जाते हैं । यदि दुग्ध एवं अन्न शुद्ध है तो बालक स्वस्थ रहते हैं ।

धात्री एवं बालक की चिकित्सा (वङ्गसेन)

क्षीरपस्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य चोभयोः ।
अन्नेन वा शिशौ देयं भेषजं भिषजा सदा ॥२॥

दूध पीने वाला बालक यदि रुग्ण हो तो उसकी धात्री (दूध पिलाने वाली) की चिकित्सा करनी चाहिए अर्थात् उसे औषध देनी चाहिए । यदि दूध एवं अन्न दोनों सेवन करने वाला बालक रुग्ण हो तो बालक एवं धात्री दोनों को औषध सेवन कराना चाहिए तथा जो बालक केवल अन्न का सेवन करता हो उसे औषध सेवन कराना चाहिए ।

धात्री का लंघन करायें/शिशु का नहीं (भा.प्र.)

मात्रया लङ्घयेद्धात्रीं शिशोर्नेष्टं विशोषणम् ।
सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं तु न निवार्यते ॥३॥

यदि आवश्यकता हो तो धात्री का लंघन करायें, किन्तु शिशु को कभी लंघन नहीं कराना चाहिए। क्योंकि बच्चे से सब कुछ त्याग कराया जा सकता है किन्तु दूध का त्याग कभी नहीं कराना चाहिए ।

ज्वरादि रोगों में वर्णित औषधि बालकों को दें (च.द.)

भेषजं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु ।
कार्यं तदेव बालानां मात्रा चात्र कनीयसी ॥४॥

ज्वरादि रोगों में युवा मनुष्यों के लिए जो औषधि कही गई है, उन्हीं औषधों को उन रोगों में अल्प मात्रा में बालकों को भी देना चाहिए ।

बालकों के लिए औषधि की मात्रा (च.द.)

प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका ।
अवलेह्या तु कर्त्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥५॥
एकैकां वर्द्धयेत्तावद् यावत्संवत्सरो भवेत् ।
तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद् यावदाषोडशाब्दिकः ॥६॥

१ मास तक के बच्चों के लिए औषधि की मात्रा १ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) तक देनी चाहिए तथा इसी मात्रा में दोषानुसार मधु, मातृदुग्ध, मिश्रीचूर्ण या घृत में मिलाकर चटानी चाहिए । प्रत्येक माह में १-१ रत्ती तक मात्रा बढ़ानी चाहिए । १ वर्ष से ऊपर के बालक को १ माशा तक बढ़ायें । यह क्रम १६ वर्ष तक बालक में भी रहना चाहिए ।

विमर्श—यह मात्रा सिर्फ सामान्य काष्ठौषधियों की है । रसौषधियों के लिए यह मात्रा नहीं है ।

१. स्तनपराङ्मुख बालक चिकित्सा (वङ्गसेन)

यो बालोऽचिरजातः स्तन्यं न गृह्णाति तस्य सहसैव ।
धात्री मधुघृतपथ्याकल्केनाघर्षयेज्जिह्वाम् ॥७॥

सद्योजात (तुरंत का जनमा हुआ शिशु) माता का स्तनपान नहीं करता (मुँह फेर लेता है) तो तत्क्षण आमलाचूर्ण एवं हरीतकीचूर्ण (सूक्ष्मचूर्ण) दोनों के १ रत्ती मिश्रित चूर्ण को घृत एवं मधु में मिलाकर अंगुली से बालक की जिह्वा पर घर्षण करना चाहिए ।

२. बालक का आयु-वर्णदायक लेह (च.द.)

कुष्ठं वचाभयाब्राह्मीकनकक्षौद्रसर्पिषा ।
वर्णायुःकान्तिजननं लेहं बालस्य दापयेत् ॥८॥

कूठचूर्ण, वचचूर्ण, हरीतकीचूर्ण, ब्राह्मीचूर्ण, स्वर्णभस्म—कुष्ठ से ब्राह्मी तक चारों द्रव्य १०-१० ग्राम तथा स्वर्णभस्म १२५ मि.ग्रा. को खरल में अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें तथा इस चूर्ण को १ रत्ती की मात्रा में विषमघृतमधु में मिलाकर प्रतिदिन चटाने से शरीर का वर्ण, आयु और कान्ति की वृद्धि होती है ।

३. माता के दूध के अभाव में अन्य दूध (च.द.)

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ।
ह्रस्वेन पञ्चमूलेन स्थिरया वा सितायुतम् ॥९॥

किसी कारण से माता के दूध के अभाव होने पर बकरी या गाय के दूध को तद्गुण पानी मिलाकर हल्का बनाकर (उबालकर शीतल होने पर) पिलाना चाहिए अथवा लघु पञ्चमूल या केवल शालपर्णी के क्वाथ को दूध में मिलाकर उबालकर थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए ।

४. कण्ठगत उल्ब (कफ संचय) हर चिकित्सा (च.द.)

तर्क्वधोगुडिकां तप्तां निर्वाप्य कटुतैलके ।
तत्तैलं पानतो हन्ति बालानामुल्वमुल्वणम् ॥१०॥

सूत कातने वाली लोहे की तकली के नीचे की चक्रिका को अग्नि में तप्त कर सरसोतैल में निर्वापित करें। उस सरसोतैल को १ माशा की मात्रा में पिलाने से उसके गले में अटका हुआ उल्व दोष (कण्ठगत कफ का संचय) नष्ट हो जाता है।

५. नाभिशोथ चिकित्सा (च.द.)

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा।
स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥११॥

नवीन ईंटे के टुकड़े को तप्त कर गोदुग्ध में निर्वापित करें और किञ्चिदुष्ण ईंटे के उस टुकड़े को नाभि पर रखकर स्वेदन करने से नाभिशोथ नष्ट हो जाता है।

६. नाभिपाक चिकित्सा (च.द.)

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः शृतम्।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाऽप्यवचूर्णनम् ॥१२॥

तिलतैल २५० मि.ली. तथा हल्दी, लोध्रत्वक्, प्रियङ्गु, मुलेठी—प्रत्येक १५-१५ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। ततः तैल मूर्च्छित करें और उस तैल में उक्त कल्क और १ लीटर जल देकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का नाभिपाक पर लेप करें तथा उपर्युक्त हल्दी आदि चारों द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण का नाभि पर अवचूर्णन करने से नाभिपाक ठीक हो जाता है।

७. आहिण्डिका चिकित्सा (च.द.)

सोमग्रहणे विधिवत् केकिशिखामूलमुद्धृतं बद्धम्।
जघनेऽथ कन्धरायां क्षपयत्याहिण्डिकां नियतम् ॥१३॥

चन्द्रग्रहण के एक दिन पूर्व अपामार्ग दिव्यौषधि को निमन्त्रण देकर चन्द्रग्रहण के समय उखाड़ लें। मूल को जल से धोकर धागे में बाँधकर बच्चे की जाँघ अथवा गले में बाँधने से आहिण्डिका (बालशोष) रोग नष्ट हो जाता है।

८. अहितुण्डिकाहरोपाय (च.द.)

सप्तदलपुष्पमरिचं पिष्टं गोरोचनासहितम्।
पीतं तद्वत्तण्डुलभक्तकृतो दग्धपिष्टकप्राशः ॥१४॥

१. सप्तपर्णपुष्प, २. मरिच, ३. गोरोचन—इन तीनों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और १ रत्ती की मात्रा में जल में घोलकर बालक को पिलाने से अहितुण्डिका रोग नष्ट हो जाता है। अथवा चावल के भात को कदलीपत्र में लपेट कर ऊपर से मुलतानी मिट्टी से लपेटें और उसको सुखा लें तथा अग्नि में पकायें। पुनः उस भात को निकालकर पीसें और जल में मिलाकर पिलाने से पूर्ववत् लाभ होता है।

आहिण्डिकायाश्चिकित्सा (च.द.)

जम्बूकनासा वायसजिह्वा नाभिर्वराहसम्भूता।
कांस्यं रसोऽथ गरलं प्रावृड्भेकस्य वामजङ्घास्थि ॥१५॥
इत्येकशोऽथ मिलितं विधृतं ग्रीवादिकटिदेशे।
आहिण्डिकाप्रशमनमभ्यङ्गो नातिपथ्यविधिः ॥१६॥

शृगाल की नाक, कौए की जीभ, सूअर की नाभि, कांस्य-धातु, शुद्ध पारद, वत्सनाभविष, वर्षाकालीन मेढक की वाम जंघा की हड्डी—इनमें से एक अथवा सभी को एक साथ कपड़े में बाँधकर बालक के गला या कमर में बाँधने से आहिण्डिका रोग नष्ट हो जाता है। पोटली धारण करने से पूर्व बालक के शरीर में तैल की मालिश करनी चाहिए। इस क्रिया में किसी प्रकार के पथ्य की आवश्यकता नहीं हैं।

९. अनामक बालरोग चिकित्सा (च.द.)

अनामके घुर्घुरिकाबुक्कामरिचरोचनाः।
नवनीतञ्च सम्मिश्र्य खादेत्तत्कोपनाशनम् ॥१७॥

अनामकरोग में घुर्घुरिका (भौंरा) नामक कीट विशेष का अग्रमांस (हृदयान्तर्गत मांसवृद्धि), मरिचचूर्ण और गोरोचन—तीनों को समभाग में पीसकर काचपात्र में रखें तथा इस चूर्ण को १ रत्ती की मात्रा में मक्खन के साथ मिलाकर शिशु को चटाने से अनामकरोग नष्ट हो जाता है।

१०. अनामक रोग बाधाहरोपाय (च.द.)

तैलाक्तशिरसस्तालुनि सप्तदलार्कस्नुहीक्षीरम्।
दत्त्वा रजनीचूर्णे दत्ते न स्यादनामाख्यम् ॥१८॥

शिशु के शिर पर तिलतैल देकर धीरे-धीरे मालिश करनी चाहिए। ततः सप्तपर्णदूध, अर्कदुग्ध एवं स्नुहीक्षीर मिश्रित कर तालु प्रदेश में लगायें और उस पर हल्दीचूर्ण का लेप करने से अनामकरोग नहीं होता है।

११. अनामक रोग बाधाहरोपाय (च.द.)

लेहयेच्च शुना बालं नवनीतेन लेपितम्।
स्फुटकीपत्रजरसेनोद्वर्त्तनञ्च तद्धितम् ॥१९॥

बालक के शरीर पर सर्वत्र मक्खन का लेपकर अपने कुत्ते से चटवाकर सारे शरीर में ज्योतिष्मतीपत्ररस का लेप या उद्वर्तन करने से अनामकरोग नहीं होता है।

१२. माता के दूध के अभाव में अन्य दूध (च.द.)

तैलस्य भागमेकं मूत्रस्य द्वौ द्वौ च शिम्बिदलरसस्य।
गव्यं पयश्चतुर्गुणमेवं दत्त्वा पचेत्तैलम् ॥
तेनाभ्यङ्गः सततं रोगमनामाख्यमपहरति ॥२०॥

मूर्च्छिततिलतैल २५० मि.ली., गोमूत्र ५०० मि.ली., शिम्बिपत्ररस ५०० मि.ली., गोदुग्ध १ लीटर, जल १ लीटर

लें। सर्वप्रथम मूर्च्छित तिलतैल को स्टेनलेसस्टील के पात्र में मन्दाग्नि पर गरम करें तथा उसमें गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब दूध सूखने लगे तो उसमें सेमपत्रस्वरस डालकर पाक करें, ततः गोमूत्र १०० मि.ली. देकर पाक करें। ५०० मि.ली. गोमूत्र एक साथ देकर पाक करने से तैल में तेजी से उफान आता है फलतः तैल नीचे गिर जाता है। अतः थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र देकर पकायें। अन्त में दुग्ध कल्क के सम्यक् पाकार्थ १ लीटर जल देकर पकायें। जल सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का सतत अभ्यङ्ग करने से बच्चों के शरीर से अनामकरोग नष्ट हो जाता है।

१३. अनामकरोगहर-अञ्जन (च.द.)

आर्कं तूलकमाविकरोमाण्यादाय केशराजस्य।
स्वरसेनाक्ते वस्त्रे कृत्वा वर्त्तिञ्च तैलाक्ताम् ॥२१॥
तज्जातकज्जलाञ्छितलोचनयुगलोऽप्यलङ्कृतो बालः।
कष्टमनामकरोगं क्षपयति भूतादिकञ्चापि ॥२२॥

एक हाथ लम्बा-चौड़ा नया वस्त्र खण्ड को भृङ्गराजस्वरस में आर्द्र कर छाया में सुखा लें। अब वस्त्र को फैलाकर उस पर अर्क फल की रूई एवं भेंड़ के बालों को फैलावें तथा वर्त्ति (बत्ती) जैसा लपेट दें और बत्ती को धागे से आवृत कर तिलतैल में उक्त बत्ती को डुबोकर रात्रि पर्यन्त रहने दें। दूसरे दिन सन्दंश यन्त्र से बत्ती का एक छोर पकड़ें और लटकते छोर में अग्नि प्रज्वलित करें। बत्ती जलते समय उससे जो घूम ज्वाला निकलेगी उसे किसी कटोरी (शराव) में संग्रह करें। उस काजल को किसी पात्र में संग्रह करें। उस काजल का बच्चे की दोनों आँखों में अञ्जन करने से कष्टसाध्य अनामकरोग तथा भूत-पिशाचादि बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं।

अनामकरोगहरस्नान (च.द.)

चालनिकातलसंस्थितबालं सम्प्लाव्य गव्यमूत्रेण।
ओकोदशालिकायां रजकक्षारोदकस्नानम् ॥२३॥

ओकोदशालिका (स्नानगृह) में शिशु को बैठाकर बायें हाथ में लोहे की चलनी तथा दाहिने हाथ में गोमूत्र से भरा हुआ १ लोटा लें। शिशु के शिर के ५-७ अङ्गुल ऊपर एक चलनी में गोमूत्र डालकर उसे स्नान करायें। ततः धोबी जिस ऊषर (क्षार) से कपड़ा धोता है उस क्षार (रेह) मिश्रित जल का स्नान कराने से अनामकरोग नष्ट हो जाता है।

अनामकहरोपाय (च.द.)

दासक्रयणश्रावणवराटिका रसेन्द्रपूरिता धृताकण्ठे।
नलिनीदले च शयनं दृष्टमनामकाख्यरोगहरम् ॥२४॥

अपने सेवक द्वारा सन्यासी एवं अन्य पाखण्डी साधुओं से खरीदी हुई कौड़ियों में पारद भरकर उसके मुखों को मोम (मधूच्छिष्ट) से बन्द करें। ऐसी ४-५ कौड़ियों को कपड़े में बाँधकर बालक के गले में बाँधने से अथवा कमलपत्र पर बालक को सुलाने से बालक का अनामकरोग नष्ट हो जाता है।

१४. बालक के रात्रिरोदनहर धूप (वङ्गसेन)

छुच्छुन्दरभवो मांसो हरिद्रा निम्बपत्रकम्।
इन्द्रसुरीषपत्रञ्च धूपेनैतत्प्रयोजितम् ॥
निहन्ति रोदनं रात्रौ बालकस्य न संशयः ॥२५॥

छुछुन्दर (गन्धमूषिक) का मांस, हल्दीचूर्ण, निम्बपत्रचूर्ण, निर्गुण्डीपत्रचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। इन्हें एक साथ मिलाकर निर्धूम अग्नि में धूपित करने से बालक का रात्रि रोदन बन्द हो जाता है।

१५. बालकों का ब्राह्मणयष्टि (व्रण) हर लेप (वङ्गसेन)

तिलतण्डुलनाडीचमूलाभ्यां लेपनाद् द्रुतम्।
बालानां ब्राह्मणयष्टीरोगः शाम्यति साम्प्रतम् ॥२६॥

तिलक्षुप, तण्डुलमूल (धानमूल), नाडीञ्चशाकमूल—इन तीनों द्रव्यों को कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें तथा इस चूर्ण को जल के साथ पीसकर बालक के शरीर में लेप करने से ब्राह्मणयष्टि (व्रण) रोग नष्ट हो जाता है।

१६. भद्रमुस्तादिक्वाथ (यो. रत्ना.)

भद्रमुस्ताऽभयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः।
क्वाथः कोष्णशिशोरेष निःशेषज्वरनाशनः ॥२७॥

१. नागरमोथा, २. हरीतकी निर्बीज, ३. निम्बत्वक्, ४. पटोलपत्र, ५. यष्टिमधु—इन्हें समभाग लें। इन्हें यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट में से १० ग्राम लेकर १६ गुना जल में क्वाथ करें तथा चौथाई शेष रहने पर बच्चे को १०-१० मि.ली. क्वाथ दिन में ३ बार पिलाने से ३-४ दिन में ज्वर नष्ट हो जाता है।

१७. बालज्वर में कुटकी प्रयोग (वङ्गसेन)

शर्कराक्षौद्रसंयुक्ता तिक्ता लीढा ज्वरं जयेत्।
लिम्पेन्मुहुर्मुहुर्बालं तत्कल्केन च बुद्धिमान् ॥२८॥

कटुकीचूर्ण ४ रत्ती में मिश्रीचूर्ण १ ग्राम एवं मधु २ ग्राम मिलाकर बालक को दिन में २-३ बार चटाने से ज्वर नष्ट हो जाता है तथा इसी कल्क का बालक के शरीर में बारम्बार लेप करने से बालक का ज्वर नष्ट हो जाता है।

१८. पलंकषादिधूप (च.द.)

पलङ्कषा वचा कुष्ठं गजचर्माविचर्म च।
निम्बस्य पत्रं माक्षीकं सर्पिर्युक्तं तु धूपनम्।

ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालानां तु विशेषतः ॥२९॥

१. गुग्गुलु, २. वच, ३. कूठ, ४. हाथी का चमड़ा, ५. भेड़ का चर्म, ६. निम्बपत्र, ७. मधु, ८. घृत—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। उक्त चमड़े के कैंची आदि शस्त्रों से छोटे-छोटे टुकड़े कर लें तथा सभी को एक साथ मिलाकर किसी पात्र में संग्रहीत करें। इसे निर्धूम अग्नि पर बालक के पास रखें जिससे धूम बालक को लगे। इस धूम से बच्चों के ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

१९. मध्वादिधूम (वङ्गसेन)

मध्वरिष्टदलश्वेतसर्षपैर्योजितो ज्वरम्।
बालानां शमयेद् धूपो मृतगोकुक्षिरोमजः ॥३०॥

१. मधु, २. निम्बपत्र, ३. श्वेत (पीत) सरसो—समभाग मिलाकर निर्धूम अग्नि पर डालने तथा उस धूम को ज्वर पीड़ित बालक के शरीर में लगाने से बालकों का ज्वर शान्त हो जाता है। अथवा मृत गाय के पेट के रोम को जलाकर इस धुएँ को बालक को लगाने से बालक का ज्वर एवं बालग्रह शान्त हो जाता है।

२०. सर्पत्वगादिधूप (च.द.)

सर्पत्वग्लशुनं मूर्वासर्षपारिष्टपल्लवाः।
विडालविडजालोम मेषशृङ्गी वचा मधु ॥
धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः ॥३१॥

१. साँप की केंचुल (निर्मोक), २. लशुन, ३. मूर्वा, ४. पीत सरसो, ५. निम्बपत्र, ६. विडाल (बिल्ली) का पुरीष, ७. बकरी के बाल, ८. मेषशृंगी, ९. वच एवं १०. मधु—ये १० द्रव्य १-१ भाग लें। बिल्ली का सूखा पुरीष लें। इन्हें यवकुट कर निर्धूम अग्नि पर धूपन करने से जो धुँआ निकलेगा, उसे ज्वर एवं ग्रह पीड़ित बालक के शरीर पर लगने दें। इससे बालक का ज्वर एवं सर्वग्रह बाधा शान्त हो जाती है।

बालकों के ज्वरातिसार चिकित्सा

२१. हरिद्रादि क्वाथ (च.द.)

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तन्यदोषनुत् ॥३२॥

१. हल्दी, २. दारुहल्दी, ३. मुलेठी, ४. वासा, ५. इन्द्रयव—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस यवकुट से १० ग्राम लेकर १६० मि.ली. (सोलह गुना) जल में क्वाथ करें। चौथाई (४० मि.ली.) शेष रहने पर छान कर मधु एवं मिश्री मिलाकर बच्चों को ६ से १२ मि.ली. तक क्वाथ पिलायें। इससे ज्वर, अतिसार, ज्वरातिसार नष्ट हो जाते हैं। इसी क्वाथ को माता या धाई को पिलाने से स्तन्य दोष भी नष्ट हो जाते हैं।

२२. रजन्यादिचूर्ण (च.द.)

रजनी सरलं दारु श्रेयसी बृहतीद्वयम्।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ॥३३॥
ग्रहणीदीपनं हन्ति मारुतार्त्तिं सकामलाम्।
ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वरोगजित् ॥३४॥

१. हल्दी, २. सरलकाष्ठ, ३. देवदारु, ४. गजपीपर, ५. बृहतीमूल, ६. कण्टकारीमूल, ७. पृश्निपणी, ८. सौंफ—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ४ से ६ रत्ती (५०० से ७५० मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु एवं घृत मिलाकर सेवन कराने से ग्रहणी प्रदीप्त होती है। इससे वातवेदना, कामला, ज्वर, अतिसार एवं पाण्डु प्रभृति शिशु के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

२३. कर्कटादिचूर्ण

कर्कटातिविषा शुण्ठी धातकी बिल्वबालकम्।
मुस्तं मज्जा च कोलस्य मधुना सह लेहयेत् ॥३५॥
हन्ति ज्वरमतीसारं दुर्वारं ग्रहणीगदम्।
छर्दिं रक्तस्रुतिं कासं श्वासं पश्चाद्रुजं तथा ॥३६॥

१. काकड़ासिंगी, २. अतीस, ३. सोंठ, ४. धातकीपुष्प, ५. बिल्वफलमज्जा, ६. सुगन्धबाला, ७. मुस्ता, ८. बदरी-फलमज्जा—इन्हें समभाग में लेकर वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण का ५०० से ७५० मि.ग्रा. की मात्रा में मधु से आप्लुत कर लेहन करने से ज्वरातिसार, दुर्निवार, संग्रहणीरोग, वमन, रक्तस्राव, कास-श्वास तथा बालकों के पश्चाद्रुज[1] (व्रण विशेष) रोग नष्ट हो जाते हैं।

२४. अनामकरोगहराञ्जन (च.द.)

धातकीबिल्वधन्याकलोध्रेन्द्रयवबालकैः।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवान्तिजित् ॥३७॥

१. धातकीपुष्प, २. बिल्वफलमज्जा, ३. धनियाँ, ४. लोध्र, ५. इन्द्रयव, ६. सुगन्धबाला—इन्हें समभाग में लेकर वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण कर लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस $\frac{1}{2}$ ग्राम से १ ग्राम तक चूर्ण को मधु के साथ दिन में २-३ बार सेवन करने से बालकों के ज्वर, अतिसार एवं वमन नष्ट हो जाते हैं।

---

१. दुष्टमम्लादिभिर्मातुः स्तन्यं सम्पितः शिशोः।
यदा प्रकुपितं पित्तं गुदं समभिधावति ॥
तदा सञ्जायते तत्र जलौकोदरसन्निभः।
व्रणः सदाह आरक्तः ज्वरः कार्श्यकरः परः ॥
हरितं पीतकं वापि वर्चस्तेन भवेद् ध्रुवम्।
व्रणः पश्चाद्रुजो नाम व्याधिः परमदारुणः ॥
(वैद्यकशब्दसिन्धुः, पृ. सं. ६४८)

२५. बालचातुर्भद्रचूर्ण (च.द.)

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम्।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं श्वासकासवमीहरम् ॥३८॥

१. नागरमोथा, २. पीपर, ३. अतिविषा, ४. काकड़ासिंगी—इन्हें समभाग लेकर वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे $\frac{1}{2}$ से १ ग्राम की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर चटाने से बालकों के ज्वर, अतिसार, कास, श्वास एवं वमन नष्ट हो जाते हैं।

२६. पेटीपाठादिपिण्डधारण (च.द.)

पेटीपाठामूलाज्जम्ब्वाः सहकारवल्कतः कल्कः।
इत्येकशश्च पिण्डो विधृतो हृन्नाभिताल्वादौ ॥
छर्द्यतिसारजवेगं प्रबलं धत्ते तदेव नियमेन ॥३९॥

१. पेटी (कुबेराक्ष), मूल, २. पाठामूल, ३. जामुनत्वक्, ४. आम्रवृक्षत्वक्—इन्हें समभाग में लेकर सिल पर कूट-पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को पिण्डाकृति बनाकर बच्चों की नाभि, हृदय एवं सिर के ऊपर (तालुभाग में) रखने से प्रबल अतिसार और वमन रुक जाता है।

२७. बदरीपत्रादिलेप (वङ्गसेन)

पत्रैर्बदरचाङ्गेरीकाकमाचीकपित्थजैः।
शिरोरुग्वम्यतीसारनाशनं मूर्द्धलेपनम् ॥४०॥

१. बेर के पत्ते, २. चाङ्गेरीपत्र, ३. काकमाचीपञ्चाङ्ग तथा ४. कपित्थपत्र—समभाग में इनके पत्रों को पीस कर बच्चों के मूर्द्ध पर लेप करने से शिरःशूल, वमन, अतिसार नष्ट हो जाते हैं।

आमातिसार चिकित्सा (वङ्गसेन)

क्षीरादस्य शिशोरामं शुष्कं दृष्ट्वा तु दारुणम्।
माषयूषं पिबेद्धात्री पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥४१॥

दुग्ध पीने वाले बच्चों के मल सूख जाने तथा आमदोष से युक्त होने पर उसकी माँ तथा धाय को पिप्पलीचूर्ण युक्त माषयूष पिलाना चाहिए।

धात्रीलंघन

स्तन्यपस्य कुमारस्य सर्वस्यामातिसारिणः।
धात्रीं विलङ्घयेद्धीमान् देहदोषाद्यपेक्षया।
पञ्चकोलकसिद्धं वा पेयादिश्च प्रयोजयेत् ॥४२॥

दुग्ध पान करने वाले बच्चों को आमातिसाररोग होने पर उसकी माता अथवा धाय को देहबल एवं दोषबल देखकर लंघन करायें। अथवा यदि लंघन नहीं करा सकें तो पञ्चकोलफाण्ट सिद्ध पेया-कृशरा आदि का प्रयोग कराना चाहिए।

२८. वचादि-हरिद्रादिगणक्वाथ (सुश्रुत)

वचामुस्तभद्रदारुनागरातिविषागणः।
हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ॥४३॥
इमौ वचाहरिद्रादिगणौ स्तन्यविशोधनौ।
आमातिसारशमनौ कफमेदोविशोषणौ ॥४४॥

१. वच, २. मुस्ता, ३. देवदारु, ४. सोंठ, ५. अतीस—इस वचादिगणक्वाथ को अथवा—६. हल्दी, ७. दारुहल्दी, ८. मुलेठी, ९. वासा, १०. इन्द्रयव—इस हरिद्रादिगणक्वाथ को बच्चे की माता या धाय को पिलाने से बच्चों का प्रवृद्ध आमातिसाररोग नष्ट हो जाता है तथा प्रवृद्ध कफ एवं मेद का शोषण होता है।

२९. मुस्तकादिक्वाथ (भा.प्र.)

मुस्तकातिविषाशुण्ठीबालकेन्द्रयवैः कृतम्।
क्वाथं शिशुः पिबेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥४५॥

१. मुस्ता, २. अतीस, ३. सोंठ, ४. सुगन्धबाला, ५. इन्द्रयव—समभाग के क्वाथ को बच्चे को पिलायें। इसके पान से बच्चों के सभी प्रकार के अतिसार नष्ट हो जाते हैं। इस क्वाथ को माता या धाय को भी पिलायें।

३०. बिल्वादिक्वाथ (च.द.)

बिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनां
जलं सलोध्रं गजपिप्पली च।
क्वाथावलेहौ मधुना विमिश्रौ
बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥४६॥

१. बिल्वफलमज्जा, २. धातकीपुष्प, ३. मुस्ता, ४. लोध्रत्वक्, ५. गजपीपर—इन्हें समभाग लेकर क्वाथ विधि से क्वाथ बनाकर या अवलेह विधि से अवलेह बनाकर मधु मिलाकर बच्चे तथा उसकी माता या धाय को पिलाने से बच्चे का अतिसार नष्ट हो जाता है।

३१. आम्रातकादिचूर्ण

आम्रातकाम्रजम्बूनां त्वचमादाय चूर्णयेत्।
मधुना लेहयेद् बालमतीसारविनाशनम् ॥४७॥

१. आम्रातक (आमड़ा), २. आम्रवृक्षत्वक्, ३. जामुनवृक्षत्वक्—समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। ३-४ रत्ती इस चूर्ण को मधु मिलाकर चटाने से बच्चों का अतिसार नष्ट हो जाता है।

३२. आमातिसारहरचूर्ण (च.द.)

सितजीरसर्जचूर्णं बिल्वदलोत्थाम्बुमिश्रितं पीतम्।
हन्त्यामरक्तशूलं गुडसहितः श्वेतसर्जो वा ॥४८॥

श्वेतजीराचूर्ण ३ रत्ती एवं सर्जरसचूर्ण ३ रत्ती मिश्रित कर बिल्वपत्रस्वरस एवं मधु मिलाकर दिन में २-३ बार सेवन कराने से, अथवा—केवल सर्जरसचूर्ण ४ रत्ती गुड़ में मिलाकर ३-४ बार सेवन कराने से आमातिसार, रक्तातिसार एवं आमशूल नष्ट हो जाते हैं।

३३. समङ्गादिक्वाथ (च.द.)

समङ्गाधातकीलोध्रशारिवाभिः श्रृतं जलम्।
दुर्द्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम्॥४९॥

१. मंजीठ, २. धातकीपुष्प, ३. लोध्रत्वक्, ४. अनन्तमूल—इनको समभाग लेकर यवकुट करें और क्वाथ विधि से क्वाथ कर छान लें। इस २५ मि.ली. क्वाथ में ६ ग्राम मधु मिलाकर थोड़ा-थोड़ा करके बालक को पिलाना चाहिए। इससे बच्चों का असाध्य अतिसार नष्ट हो जाता है।

३४. नागरादिक्वाथ (च.द.)

नागरातिविषामुस्तबालकेन्द्रयवैः श्रृतम्।
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम्॥५०॥

१. सोंठ, २. अतीस, ३. मुस्ता, ४. सुगन्धबाला, ५. इन्द्रयव—समभाग लेकर यवकुट करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें से १२ ग्राम यवकुट लेकर १६ गुना जल के साथ क्वाथ करें और चौथाई शेष रहने पर छान लें। २५ मि.ली. क्वाथ में ६ ग्राम मधु मिलाकर अतिसार पीड़ित शिशु को थोड़ा-थोड़ा पिलाने से सभी प्रकार के अतिसार नष्ट हो जाते हैं।

३५. बिल्वादिकषाय (च.द.)

बिल्वचूतकषायेण लाजांश्चैव सशर्करान्।
आलोड्य पाययेद्बालं छर्द्यतीसारनाशनम्॥५१॥

बिल्वफलमज्जा तथा आम्रत्वक् का समभाग क्वाथ बना लें। ५० मि.ली. क्वाथ में लाजचूर्ण १२ ग्राम तथा चीनी १२ ग्राम मिलाकर पिलाने से बच्चों के वमन एवं अतिसाररोग नष्ट हो जाते हैं।

३६. प्रियंग्वादिकल्क (च.द.)

कल्कः प्रियङ्गुकोलास्थिमध्यमुस्तरसाञ्जनैः।
क्षौद्रलीढः कुमारस्य च्छर्दितृष्णातिसारनुत्॥५२॥

१. प्रियङ्गु, २. बदरीफलबीजमज्जा, ३. मुस्ता, ४. रसाञ्जन—इनका समभाग चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। ५०० मि.ग्रा. चूर्ण को मधु मिलाकर कल्क जैसा बनाकर बच्चे को चटाने से बच्चों के वमन, प्यास और अतिसार नष्ट हो जाते हैं।

३७. मोचरसादियवागू (च.द.)

मोचरसः समङ्गा च धातकी पद्मकेशरम्।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी॥५३॥

१. मोचरस, २. मंजीठ, ३. धातकीपुष्प, ४. कमलकेशर—इन्हें समभाग में पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें। यवागू बनाते समय जल में इस चूर्ण को मिलाकर यवागू सिद्ध कर लें। इस यवागू को बच्चों को पिलाने से रक्तातिसाररोग नष्ट हो जाता है।

विमर्श—यवागू ६ गुना पानी में बनाते हैं—'यवागूः षड्गुणेऽम्भसि' (सुश्रुत)। 'यवागू बहुसिक्था स्यात्' (सुश्रुत) (यवागू त्रिविधा प्रोक्ता मण्डपेयाविलेपी च)।

३८. समङ्गादियवागू (च.द.)

समङ्गा धातकी पद्मं वयस्था कच्छुरा तथा।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्यादतीसारविनाशिनी॥५४॥

१. मंजीठ, २. धातकीपुष्प, ३. कमलपुष्प, ४. आमला, ५. कौंचबीज—इन्हें समभाग में लेकर ६ गुना जल में क्वाथ करें तथा अन्न (चावलकण) मिलाकर यवागू सिद्ध कर बच्चों को पिलाने से अतिसाररोग नष्ट हो जाता है।

बालप्रवाहिका चिकित्सा

३९. तिलयष्ट्यादिचूर्ण (च.द.)

लेहस्तैलसिताक्षौद्रतिलयष्ट्याह्वकल्कितः।
बालस्य रुन्ध्यान्नियतं रक्तस्रावं प्रवाहिकाम्॥५५॥

तिल एवं यष्टिमधुचूर्ण के कल्क में तिलतैल, मधु एवं शक्कर मिलाकर खिलाने से बालकों का सरक्त प्रवाहिकारोग नष्ट हो जाता है।

४०. लाजादिचूर्ण (च.द.)

लाजासयष्टीमधुकशर्कराक्षौद्रमेव च।
तण्डुलोदकसंयुक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम्॥५६॥

लाजाचूर्ण एवं यष्टिमधुचूर्ण समभाग लेकर शर्करा एवं मधु मिलाकर बच्चों को चटाकर ऊपर से तण्डुलोदक २५ मि.ली. पिलाने से प्रवाहिका नष्ट हो जाती है।

४१. बालग्रहणी चिकित्सा (च.द.)

अङ्कोठमूलमथवा तण्डुलसलिलेन कुटजमूलं वा।
पीतं हन्त्यतिसारं ग्रहणीरोगञ्च दुर्वारम्॥५७॥

अंकोलमूलत्वक् अथवा कुटजमूलत्वक्चूर्ण को तण्डुलोदक के साथ मिलाकर पिलाने से बच्चों का असाध्य संग्रहणीरोग नष्ट हो जाता है।

४२. मरिचादिचूर्ण (च.द.)

मरिचमहौषधकुटजं द्विगुणीकृतमुत्तरोत्तरं क्रमशः।
गुडतक्रयुक्तमेतद् ग्रहणीरोगं निहन्त्याशु॥५८॥

मरिचचूर्ण १ रत्ती, सोंठचूर्ण २ रत्ती, कुटजत्वक्चूर्ण ४ रत्ती—इन्हें एक साथ मिलाकर २५ मि.ली. तक्र, ६ ग्राम गुड़ के साथ दिन में २-३ बार कुछ दिनों तक पिलाने से संग्रहणीरोग शीघ्र नष्ट हो जाता है।

४३. बिल्वादिक्षीरपाक (च.द.)

बिल्वशक्राम्बुमोचाब्दसिद्धमाजं पयः शिशोः।
सामां सरक्तां ग्रहणीं पीतं हन्यात् त्रिरात्रतः ॥५९॥

१. बिल्वफलमज्जा (बेलसोंठ), २. इन्द्रयव, ३. मुस्ता, ४. मोचरस, ५. सुगन्धबाला—इन्हें समभाग में लेकर यवकुट बनायें। पुनः क्षीरपाकविधि[1] से बकरी के दूध में क्षीरपाक करें। क्षीरावशेष रहने पर छानकर उसमें चीनी मिलाकर शीतल होने पर बच्चों को पिलायें। तीन दिनों तक इस क्षीरपाक को पिलाने से आम एवं रक्तयुक्त ग्रहणीरोग नष्ट हो जाता है। द्रव्य से आठ गुना दूध और दूध से चार गुना जल तथा क्षीरावशेष।

४४. जम्बुत्वचादिक्षीरपाक (च.द.)

तद्वदजाक्षीरसमो जम्बूत्वक्सम्भवो रसः ॥६०॥

जामुनत्वक् के यवकुट से उपर्युक्त क्षीरपाकविधि से क्षीरपाक बनाकर बालक को पिलाना चाहिए।

४५. यमानीपञ्चकवटी

यमानीजीरकं देवपुष्पं जातीफलं विडम्।
भर्जितं चूर्णमेतेषां समांशं वारिपाचितम् ॥६१॥
रक्तिद्वयमितं बाल्ये यूनि माषकसम्मितम्।
यमानी पञ्चकं नाम वारिणा सह योजयेत्।
अग्निमान्द्यमतीसारं ग्रहणीं हन्ति दुस्तराम् ॥६२॥

१. अजवाइनचूर्ण, २. श्वेतजीरा, ३. लौंग, ४. जायफल, ५. विडलवण—उपर्युक्त पाँचों द्रव्यों का समभाग में चूर्ण करें। पुनः लोहे के तवा पर हल्का भून लें। पुनः उसमें चूर्ण के बराबर जल मिलाकर चम्मच से हिलाते रहें। जब जल सूख कर हलवा जैसा हो जाय तो चूल्हे से नीचे उतारकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा (बच्चों की मात्रा) में वटी बनाकर धूप में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। युवा व्यक्तियों के लिए १-१ ग्राम की वटी बनाकर संग्रहीत करें। इसे यमानीपञ्चकवटी कहते हैं। इसे जल के साथ लेने से अग्निमान्द्य, अतिसार एवं भयंकर ग्रहणीरोग नष्ट हो जाते हैं।

छर्दि चिकित्सा

४६. मिष्यादिचूर्ण (च.द.)

मिषिकृष्णाञ्जनं लाजा श‍ृङ्गीमरिचमाक्षिकैः।
लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासज्वरापहः ॥६३॥

१. सौंफ, २. पीपर, ३. रसाञ्जन, ४. लाजा, ५. काकड़ासिंगी, ६. मरिच—इनके समभाग चूर्ण को एक साथ मिलाकर रखें। इसे ४ रत्ती मधु में मिलाकर बच्चों को चटाने से वमन, कास एवं ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

[1] क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम्।
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत् ॥ (शार्ङ्ग.म. ५।१६१)

४७. द्विवार्त्ताकीफलरस प्रयोग (च.द.)

पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तन्मधुसर्पिषा।
द्विवार्त्ताकीफलरसं पञ्चकोलञ्च लेहयेत् ॥६४॥

जो बालक माता का दूध पीकर पुनः-पुनः वमन कर देता हो उसे छोटीकटेरीफल एवं बृहतीफलों के रस में पञ्चकोलचूर्ण, मधु एवं घृत मिलाकर बार-बार पिलाने से वमन होना बन्द हो जाता है।

४८. आम्रास्थ्यादिलेह (च.द.)

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थैर्लेहः क्षौद्रेण छर्दिनुत् ॥६५॥

आम्रास्थिमज्जाचूर्ण एवं लाजचूर्ण १-१ भाग तथा सैन्धवलवणचूर्ण $\frac{1}{4}$ भाग लेकर मधु के साथ मिलाकर बच्चों को चटाने से वमन बन्द हो जाता है।

४९. पिप्पल्यादिलेह (च.द.)

पिप्पलीमरिचानां च चूर्णं समधुशर्करम्।
रसेन मातुलुङ्गस्य हिक्काच्छर्दिनिवारणम् ॥६६॥

१. पीपरचूर्ण, २. मरिचचूर्ण, ३. मधु, ४. चीनी—प्रत्येक २-२ रत्ती मधु-चीनी एवं जम्बीरीनिम्बुस्वरस १-१ ग्राम मिलाकर बच्चे को चटाने से हिचकी और वमन नष्ट हो जाता है।

५०. श‍ृङ्ग्यादिलेह (च.द.)

श‍ृङ्गीं समुस्तातिविषां विचूर्ण्य
लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम्।
कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां
समाक्षिकां वाऽतिविषामथैकाम् ॥६७॥

१. काकड़ासिंगी, २. नागरमोथा, ३. अतिविषा—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। इसे मधु के साथ चटाने से बच्चों के कास, ज्वर, वमन नष्ट हो जाते हैं। अथवा अकेले अतीसचूर्ण को ही मधु में मिलाकर चटाने से उपर्युक्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

५१. पञ्चमूलीघृत (च.द.)

पञ्चमूलीकषायेण सघृतेन पयः श‍ृतम्।
सश‍ृङ्गबेरं सगुडं शीतं हिक्कार्दितः पिबेत् ॥६८॥

गोघृत १ भाग, पञ्चमूलक्वाथ ४ भाग और गोदुग्ध ४ भाग लेकर घृत साधन विधि से घृत सिद्ध कर छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ६ ग्राम, सोंठचूर्ण २५० मि.ग्रा. तथा गुड़ २ ग्राम मिलाकर बच्चे को २-३ बार पिलाने से हिचकी मिट जाती है।

५२. स्वर्णगैरिकप्रयोग (च.द.)

सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह!
लीढ्वा सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हिक्कार्दितः शिशुः ॥६९॥

शुद्ध सुवर्णगैरिकचूर्ण २ रत्ती मधु के साथ मिलाकर बारम्बार बच्चों को चटाने से उनका हिचकी आना बन्द हो जाता है।

कासश्वास चिकित्सा

५३. चित्रकादिचूर्ण (च.द.)

चित्रकं शृङ्गबेरञ्च तथा दन्ती गवाक्ष्यपि ।
चूर्णं कृत्वा तु सर्वेषां सुखोष्णेनाम्बुना पिबेत् ।
कासं श्वासमथो हिक्कां कुमाराणां प्रणाशयेत् ॥७०॥

१. चित्रकमूल, २. सोंठ, ३. दन्तीमूल, ४. इन्द्रायणमूल —इन सभी के समभाग चूर्णों को मिलाकर पुनः छननी से छानकर काचपात्र में संग्रह करें। इसे ४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु से मिलाकर चटा दें और बाद में सुखोष्ण जल पिलाने से बच्चों के कास, श्वास, हिचकी नष्ट हो जाते हैं।

५४. द्राक्षादिलेह (च.द.)

द्राक्षायासाभयाकृष्णाचूर्णं सक्षौद्रसर्पिषा ।
लीढं कासं निहन्त्याशु श्वासञ्च तमकं तथा ॥७१॥

द्राक्षाकल्क, हरीतकीचूर्ण, पीपरचूर्ण, मधु एवं घी के साथ मिलाकर दिन में २ बार चटाने से कास, श्वास, तमकश्वास नष्ट हो जाते हैं।

५५. पुष्करादिचूर्ण (च.द.)

पुष्करातिविषाशृङ्गीमागधीधन्वयासकैः ।
तच्चूर्णं मधुना लीढं शिशूनां पञ्चकासनुत् ॥७२॥

१. पुष्करमूल, २. अतीस, ३. काकड़ासिङ्गी, ४. पीपर, ५. जवासा। इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ४ रत्ती लेकर मधु में मिलाकर बच्चों को चटाने से ५ प्रकार के कास नष्ट हो जाते हैं।

५६. दाडिमादिचूर्ण (च.द.)

दाडिमस्य च बीजानि जीरकं नागकेशरम् ।
चूर्णितं शर्कराक्षौद्रलीढं तृष्णानिवारणम् ॥७३॥

१. अनारदानाचूर्ण, २. जीराचूर्ण, ३. नागरकेशरचूर्ण—इन्हें समभाग मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। चीनी और मधु मिलाकर ४ रत्ती इस चूर्ण को बच्चों को चटायें। ऐसा करने से बच्चों की प्यास शान्त हो जाती है।

५७. तृष्णाहरयोग (च.द.)

मायूरपक्षभस्मव्युषितजलं तेन भावितं पेयम् ।
तृष्णाघ्नं वटकाष्ठजभस्मजलं वक्त्रशोषजिद् धृतं वक्त्रे ॥

मयूरपिच्छभस्म १० ग्राम को ४० मि.ली. जल में घोल लें। रात्रि पर्यन्त उसे इसी प्रकार छोड़ दें। वटवृक्ष की लकड़ी की भस्म को भी पूर्व मात्रा में जल में घोलकर दोनों जल को एक साथ मिलाकर ७ बार पुनः-पुनः महीन वस्त्र से छानकर बच्चों के मुख में धारण कराने से प्यास मिट जाती है।

विमर्श—यह योग बच्चों को मुख में धारण करने को कहा गया है जो सम्भव नहीं है क्योंकि बच्चे के मुख में डालते ही बच्चा इसे पी जायगा। बड़े बच्चे इसे मुख में धारण कर सकते हैं।

५८. गुदपाक चिकित्सा (च.द.)

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम् ।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥७५॥

बच्चों के गुदपाक में पित्तनाशन क्रिया करनी चाहिए। रसाञ्जन के २०% घोल को पिलाना तथा उससे गुदा का प्रक्षालन करना हितकर होता है।

पश्चाद्गुजव्रणलक्षण (वङ्गसेन)

दुष्टमन्नादिभिर्मातुः स्तन्यं सम्पिबतः शिशोः ।
यदा प्रकुपितं पित्तं गुदं समभिधावति ॥७६॥
तदा सञ्जायते तत्र जलौकोदरसन्निभः ।
व्रणः सदाहो व्यक्तोष्मा तदास्य स्याज्ज्वरः परः ॥७७॥
हरितं पीतकं वाऽपि वर्च्चस्तेन भवेद् ध्रुवम् ।
व्रणः पश्चाद्गुजो नाम व्याधिः परमदारुणः ॥७८॥

बासी अन्न-पान, रूक्ष, अम्ल, कटु, विदाही एवं गरिष्ट खाद्य एवं पेय पदार्थों के अधिक सेवन करने से दूषित हुए माता के दूध को पीने वाले बच्चे का पित्त प्रकुपित होकर गुद भाग में जाकर सञ्चित हो वहाँ की मांसादि धातुओं को दूषित कर जोंक (जलौका) के उदर के आकार का शोथ युक्त व्रण उत्पन्न कर देता है। साथ ही उस गुद स्थान में जलन, सर्वाङ्गदाह एवं ज्वरादि लक्षणों को भी उत्पन्न करता है तथा बच्चा हरा, पीला वर्ण का पुरीष करता है। इस प्रकार के लक्षणों वाले इस रोग को पश्चाद्गुजव्रण कहते हैं। यह रोग अत्यन्त कष्टकारक है।

५९. चन्दनादिलेप

चन्दनं शारिवे द्वे च शङ्खिनीति समायुतैः ।
पश्चाद्गुजे प्रलेपोऽयमवलेहस्तु शस्यते ॥७९॥

१. लालचन्दन, २. कृष्णअनन्तमूल, ३. श्वेतअनन्तमूल, ४. शंखपुष्पी—इन चारों द्रव्यों का समान भाग में सूक्ष्मचूर्ण कर मधु के साथ मिलाकर गुदा पर लेप करें तथा इसी को बालक को चटायें तो बहुत लाभ होता है।

६०. कणादिलेह (च.द.)

कणोषणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः ।
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥८०॥

१. पीपर, २. मरिच, ३. चीनी, ४. मधु, ५. छोटी इलायची, ६. सैन्धवलवण—इनका समभाग में सूक्ष्म चूर्ण कर मधु से मिलाकर बच्चे को चटाने से मूत्रग्रह (मूत्र का रुक जाना) रोग नष्ट हो जाता है।

६१. सैन्धवादिचूर्ण (च.द.)

घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिङ्गुभार्गीरजो लिहन्।
आनाहं वातिकं शूलं जयेत्तोयेन वा शिशुः ॥८१॥

सैन्धवलवण, सोंठचूर्ण, छोटी इलायचीचूर्ण, घृतभृष्टहिङ्गु, भारंगीचूर्ण के समभाग चूर्णों को एक साथ मिलाकर पुनः छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) लेकर घृत के साथ मिलाकर बच्चों को चटाने से बच्चे का आनाह एवं वातज शूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

६२. हरीतक्यादिचूर्ण (च.द.)

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम्।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुपातनात् ॥८२॥

हरीतकीचूर्ण, वचचूर्ण एवं कूठचूर्ण समभाग लेकर एक साथ मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में मधु या मातृदुग्ध में मिलाकर पिलाने से बच्चों के तालुपात रोग नष्ट हो जाता है।

६३. बालमुख पाक चिकित्सा (च.द.)

मुखपाके तु बालानां साम्रसारमयोरजः।
गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥८३॥

बालकों के मुखपाक रोग होने पर आम्रसार, लौहभस्म, शुद्ध गैरिकचूर्ण, रसाञ्जनचूर्ण—इन्हें समभाग लेकर मधु में मिश्रित कर मुख में लेप करने से बच्चों का मुखपाक नष्ट हो जाता है।

विमर्श—आम्रसार के ग्रहण में लोगों में भ्रम है। आम्रसार से आम्र की गुठली का अन्तर्भाग मज्जा (कोयल) का ग्रहण करना श्रेष्ठ है। कुछ लोग आम्र-वृक्ष की त्वचा के क्वाथ का घन भाग भी लेते हैं।

६४. अश्वत्थत्वगादि/दार्व्यादिलेप (च.द.)

अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम्।
दार्वीयष्ट्याभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तथा परम् ॥८४॥

१. अश्वत्थत्वक्चूर्ण एवं अश्वत्थपत्र के २-२ रत्ती चूर्ण को मधु से मिलाकर बच्चे को चटाने से अथवा—दारुहल्दी, मुलेठी, हरीतकी, चमेलीपत्र—इनके समभाग चूर्णों को मधु से मिलाकर बच्चे का चटाने से मुखपाक ठीक हो जाता है।

६५. मुखपाकहर योग (च.द.)

सह जम्बीररसेन स्नुग्दलसङ्घर्षणं सद्यः।
कृतमपहन्ति हि पाकं मुखजं बालस्य चाश्वेव ॥८५॥

थूहरपत्रस्वरस और जम्बीरीनिम्बुस्वरस दोनों को मिलाकर धीरे-धीरे जिह्वा पर घर्षण करने से बच्चों का मुखपाक रोग शीघ्र ठीक हो जाता है।

दन्तोद्भव के उपाय (च.द.)

लावतित्तिरिवल्लूररसः पुष्परसान्वितः।
द्रुतं करोति बालानां दन्तकेशरवन्मुखम् ॥८६॥

लावा पक्षी एवं तित्तिर पक्षियों के सूखे मांस (वल्लूरः = शुष्कमासं) का चूर्ण बनाकर मधु में मिलाकर मसूड़ों पर धीरे-धीरे घर्षण करने से बच्चों के सुन्दर दाँत शीघ्र ही निकल जाते हैं।

६६. बालक में लालास्रावहर उपाय

शारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च।
संस्राविणि मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ॥८७॥

१. अनन्तमूल, २. तिल, ३. लोध्रत्वक्—इन तीनों को समभाग में पृथक्-पृथक् यवकुट कर एक साथ मिला लें। इसका विधिवत् क्वाथ बनाकर बच्चों के मुख में डालकर बारम्बार मुख प्रक्षालन करने से बच्चों का लालास्राव रुक जाता है।

दन्तोद्भेद रोगों में बच्चों पर अंकुश नहीं (च.द.)

दन्तोद्भेदोत्थरोगेषु न बालमतियन्त्रयेत्।
स्वयमेवोपशाम्यन्ति जातदन्तस्य ते गदाः ॥८८॥

दन्तोद्भेद जन्य रोगों में बालकों पर औषधि एवं पथ्यादि हेतु अधिक अंकुश नहीं लगायें। क्योंकि दाँत निकल जाने पर तज्जन्य ज्वर, अतिसार, वमनादि रोग स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

६७. बिभीतकादि तैल (वङ्गसेन)

बिभीतकफलं कुष्ठं हरितालं मनःशिला।
एभिस्तैलं विपक्तव्यं बालनां पूतिकर्णके ॥८९॥

मूर्च्छिततिलतैल १९० मि.ली., जल ७५० मि.ली. तथा बिभीतक (बहेड़ा) फलदल, कूठ, हरताल, मैनसिल—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। इन्हें चूर्ण बनाकर जल से सिल पर पीसकर कल्क बना लें। मूर्च्छिततैल में कल्क और चौगुना जल मिलाकर पाक करें। जल सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें। शीतल होने पर काचपात्र मे संग्रहीत करें। बालकों के पूतिकर्ण रोग मे ४-४ बूँद इस तैल को डालने से पूतिकर्ण रोग नष्ट हो जाता है।

६८. नेत्ररोग चिकित्सा (च.द.)

पिष्टैश्छागेन पयसा दार्वीमुस्तकगैरिकैः।
बहिरालेपनं शस्तं शिशोर्नेत्रामयार्त्तिजित् ॥९०॥

दारुहल्दीचूर्ण, मुस्ताचूर्ण एवं गैरिकचूर्ण को एक साथ मिलायें और बकरीदूध की भावना देकर बच्चों के नेत्र के बाहरी भाग पर लेप करें तो बच्चों के सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

६९. मनःशिलाद्य वर्त्ति (च.द.)

मनःशिला शङ्खनाभिः पिप्पल्योऽथ रसाञ्जनम्।
वर्त्तिः क्षौद्रेण संयुक्ता बाले सर्वाक्षिरोगनुत् ॥९१॥

१. शुद्ध मैनसिल, २. शंखनाभिभस्म, ३. पीपर, ४. रसाञ्जन—इन्हें समभाग लें। पीपर और रसाञ्जन का चूर्ण करें। इन सभी चूर्णों को मधु की भावना देकर यवाकृति वर्ति बना लें तथा धूप में सुखाकर संग्रह करें। इस वर्ति को मधु में घिसकर बच्चों की आँख में आंजने से बच्चों के सभी नेत्ररोग ठीक हो जाते हैं।

सुखोष्ण मातृस्तन्यादि नेत्रस्वेद (च.द.)

मातृस्तन्यकटुस्नेहकाञ्जिकैर्भावितो जयेत्।
स्वेदाद्दीपशिखोत्तप्तो नेत्रामयमलक्तकः ॥९२॥

लाक्षारस को खरल में रखकर मातृदुग्ध, कटुतैल (सरसो तैल) एवं काञ्जी द्रव समभाग मिलाकर मर्दन करें। ततः इस द्रव को दीप शिखा पर गरम कर बच्चों के नेत्र का स्वेदन करने से बच्चों के नेत्ररोग ठीक हो जाते हैं।

७०. कुकूणक-पोठकीहरोपाय (च.द.)

शुण्ठीभृङ्गनिशाकल्कः पुटपाकः ससैन्धवः।
कुकूणकेऽक्षिरोगेषु तद्रसाश्च्योतनं हितम् ॥९३॥

सोंठ, भृङ्गराज, हल्दी—प्रत्येक द्रव्यों का चूर्ण २-२ ग्राम तथा सैन्धव २ रत्ती लें। चारों द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को जल से सिल पर पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क पर वटपत्र लपेटकर १ अंगुल चिकनी मिट्टी का लेपकर पुटपाक विधि से ४-८ कण्डों की अग्नि पर पुटपाक करने और बाद में पुटपाक रस को नेत्र में आश्च्योतन करने से बच्चों के कुकूणक एवं अन्य नेत्ररोग नष्ट हो जाते हैं।

७१. कुकूणक-पोथकीहर उपाय (च.द.)

कृमिघ्नालशिलादार्वीलाक्षाचन्दनगैरिकैः ।
चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्याच्छिशूनां पोथकीषु च ॥९४॥

१. वायविडङ्गचूर्ण, २. शुद्ध हरताल, ३. शुद्ध मैनसिल, ४. दारुहल्दी, ५. लाक्षाचूर्ण, ६. रक्तचन्दनचूर्ण, ७. गैरिकचूर्ण—इन सबों को वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण कर मिश्रित कर बच्चों के नेत्र में अञ्जन करने से बच्चों के कुकूणक और पोथकीरोग नष्ट हो जाते हैं।

७२. कुकूणक चिकित्सा (च.द.)

सुदर्शनामूलचूर्णादञ्जनं स्यात्कुकूणके ॥९५॥

सुदर्शना नामक क्षुप के मूल का सूक्ष्म चूर्ण कर अञ्जन करने से बालकों का कुकूणक नामक नेत्ररोग नष्ट हो जाता है।

७३. गृहधूमादि लेप (च.द.)

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः।
लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥९६॥

१. गृहधूम, २. हल्दीचूर्ण, ३. कूठचूर्ण, ४. राईचूर्ण, ५. इन्द्रयवचूर्ण—इन्हें समभाग लेकर तक्र के साथ पीसें। इसे बच्चे के शरीर पर लेप करने से बालकों के सिध्म, पामा एवं विचर्चिका जैसे चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

७४. लवङ्गचतुःसमचूर्ण

जातीफलं त्रिदशपुष्पसमन्वितञ्च
जीरञ्च टङ्गणयुतं चरकैः प्रयुक्तम्।
चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा
सामातिसारमखिलं गुरु हन्ति शूलम् ॥९७॥

१. जायफल, २. लौंग, ३. भुना हुआ जीरा, ४. शुद्ध टङ्कण—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर कपड़ा से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। यह चूर्ण ५ रत्ती (६२५ मि.ग्रा.) चीनी एवं मधु २-२ ग्राम सबको मिलाकर दिन में ४-५ बार बच्चे को चटाना चाहिए। इसके प्रयोग से बच्चों के अतिसार, वमन, उदरशूल तथा दन्तोद्भव जन्य कष्ट दूर हो जाते हैं। इस योग का महर्षि चरक ने प्रयोग किया था।

७५. दाडिमचतुःसमचूर्ण

एतद् द्रव्यचतुष्कञ्च दाडिमीफलमध्यगम्।
पुटपक्वं पयःपिष्टं तद्दाडिमचतुःसमम् ॥९८॥

उपर्युक्त लवङ्गचतुःसम (जायफल, लौंग, भुनाजीरा एवं शुद्ध टङ्कण) ५० ग्राम चूर्ण को अनारफल को फाड़कर उसके बीज पर डालकर फटे अनारफल को पुनः सटाकर ऊपर से ४-५ वटपत्र लपेटकर धागा से बन्धन कर उसके ऊपर १ अंगुल मोटी मिट्टी का लेप करें। ततः सुखाकर पुटपाक विधि से पाक करें। पुनः शीतल होने पर पुटपाक की मिट्टी एवं अनार के जले छिलके हटाकर अनारदाने एवं लवङ्गचतुःसमचूर्ण को पृथक् निकालकर बकरी दूध या गोदुग्ध या जल में पीसकर सुखा लें। पुनः सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे दाडिमचतुः-समचूर्ण कहते हैं। इसे १ ग्राम की मात्रा में मधु से मिलाकर बच्चे को सेवन कराने से बच्चों के अतिसारादि रोग नष्ट हो जाते हैं।

७६. कुटजावलेह

मूलत्वचं वत्सकस्य पलमेकं सुकुट्टितम्।
अष्टभागं जलं दत्त्वा चतुर्भागावशेषितम् ॥९९॥
अतिविषा च पाठा च जीरकं बिल्वमेव च।
आम्रास्थिशतपुष्पा च धातकी मुस्तकं तथा ॥१००॥
जातीफलं च सञ्चूर्ण्य निक्षिपेत्तत्र यत्नतः।
बालानामामशूलघ्नो रक्तस्रावं सुदारुणम्।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तं जयेदेतन्न संशयः ॥१०१॥

कुटजमूलत्वक् १ पल (५० ग्राम) को कूटकर ८ पल जल

में क्वाथ करें तथा १०० मि.ली. (चौथाई) शेष रहने पर छान लें। १. अतीसचूर्ण, २. पाठाचूर्ण, ३. श्वेतजीराचूर्ण, ४. बिल्वफलमज्जाचूर्ण, ५. आम्रास्थिमज्जाचूर्ण, ६. शतपुष्पाचूर्ण, ७. नागरमोथाचूर्ण, ८. धातकीपुष्पचूर्ण, ९. जायफलचूर्ण— प्रत्येक द्रव्य ४-४ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें और इसको उपर्युक्त क्वाथ में मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जब अवलेह जैसा गाढ़ा हो जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस अवलेह को ३ ग्राम की मात्रा में चटाने से बच्चों के आमातिसार, आमशूल, भयंकर रक्तातिसार एवं असाध्य कहकर १०० वैद्यों द्वारा त्यागे हुए अतिसार के रोगी बच्चे स्वस्थ हो जाते हैं। छोटे बच्चों में इसे अल्प मात्रा में दें।

७७. शिवामोदक

शिवा तामलकी मूर्वा शतपुष्पा निशाद्वयम्।
आत्मगुप्ता बला बिल्वं देवपुष्पं शतावरी ॥१०२॥
मुरा मधुरिका मांसी विदारी विश्वभेषजम्।
अनन्ताऽऽमलकी श्यामा भार्गी करिकणा कणा ॥१०३॥
चातुर्जातं चतुर्बीजं चन्दनं रक्तचन्दनम्।
मुशली वाजिगन्धा च बीजं गोक्षुरसम्भवम् ॥१०४॥
सर्वाण्येतानि तुल्यानि द्राक्षा सर्वसमा मता।
सिता द्राक्षा समा चैवेत्येतानि मधुना सह ॥१०५॥
सम्मर्द्य मोदकान् कृत्वा माषकप्रमितान् भिषक्।
एकैकमेषां पयसा प्रातः प्रातः प्रयोजयेत् ॥१०६॥
बालानां सर्वरोगघ्नं पुष्टिकृद् बलवर्द्धनम्।
परं वह्निकरं मेध्यमायुष्यं ग्रहदोषहृत् ॥१०७॥
भगवत्यै समुदितं शिवायै लोकमङ्गलम्।
एतन्मोदकमीशेन युगे भगवता कृते ॥१०८॥

१. हरीतकी, २. भूमिआमला, ३. मूर्वा, ४. सौंफ, ५. हल्दी, ६. दारुहल्दी, ७. केंवाचबीज, ८. बलामूल, ९. बिल्वफलमज्जा, १०. लौंग, ११. शतावरी, १२. मुरामांसी, १३. सोआबीज, १४. जटामांसी, १५. विदारीकन्द, १६. सोंठ, १७. अनन्तमूल, १८. आमला, १९. प्रियङ्गुफल, २०. भारंगी, २१. गजपीपर, २२. पीपर, २३. तेजपत्र, २४. छोटी इलायची, २५. दालचीनी, २६. नागरकेशर, २७. मेथी, २८. चन्द्रसूर, २९. कालाजीरा, ३०. अजवाइन, ३१. श्वेतचन्दन, ३२. रक्तचन्दन, ३३. श्वेत मुशली, ३४. असगन्ध, ३५. गोखरुबीज—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें और द्राक्षा तथा चीनी ३५-३५ भाग लें। मधु आवश्यकतानुसार जिससे मोदक बन सके उतना ही लें।

हरीतकी से गोखरु बीज तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः द्राक्षा को सिल पर या मिक्सी में पीसें, चीनी को भी महीन पीसें। अब एक बड़े स्टेनलेस स्टील के बर्तन में काष्ठौषधियों का चूर्ण, पिसी हुई चीनी और पिसी हुई द्राक्षा तीनों को एक साथ डालकर हाथ से मसलकर अच्छी तरह मिला लें। आवश्यकतानुसार उसमें मधु मिलाकर १-१ ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखा लें। १-१ वटी (मोदक) प्रातः गोदुग्ध से सेवन करने से बालकों के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मोदक शरीर को पुष्ट करता है, बल को बढ़ाता है, अत्यन्त वह्निदीपक है, मेध्य है, आयुर्वर्द्धक है, बालकों के ग्रहदोष का नाशक है। भगवान् शिव ने लोककल्याणार्थ सतयुग में भगवती शिवा से कहा था, अतः इसका नाम 'शिवामोदक' है।

विमर्श—मोदक की मात्रा १ तोला है। यहाँ १-१ ग्राम का मोदक है। आचार्य बालरोग के प्रारम्भ ही कह आये हैं कि युवा और बच्चों के रोगों की औषधियाँ वही हैं किन्तु उनकी मात्रा न्यून रहती है। अतः बच्चों का मोदक १ से २ ग्राम का ठीक है।

७८. बालरोगान्तकरस (रसे.सा.सं.)

पलं सूतस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च तत्समम्।
सुवर्णमाक्षिकस्यापि चार्द्धभागं विनिक्षिपेत् ॥१०९॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा लौहपात्रे दृढे नवे।
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः पत्रसम्भवः ॥११०॥
स्वरसः काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरकस्य च।
सूर्यावर्त्तकशालिञ्चभेकपर्णीरसस्तथा ॥१११॥
श्वेतापराजितायाश्च मूलं दद्याद्विचक्षणः।
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥११२॥
शुभे शिलामये पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत्।
शुष्कमातपसंयोगाद् वटिकां कारयेद् भिषक् ॥११३॥
प्रमाणं सर्षपस्यैव बालानां विनियोजयेत्।
हन्ति त्रिदोषजञ्चैव ज्वरमामं सुदारुणम् ॥११४॥
कासं पञ्चविधञ्चापि सर्वरोगं निहन्ति च।
शिशूनां रोगनाशाय निर्मितोऽयं महारसः ॥११५॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १-१ भाग, सुवर्णमाक्षिकभस्म $\frac{१}{२}$ भाग तथा मरिचचूर्ण $\frac{१}{२}$ भाग। भावना या मर्दन द्रव—१. केशराजस्वरस, २. भृङ्गराजस्वरस, ३. निर्गुण्डीपत्ररस, ४. काकमाचीस्वरस, ५. ग्रीष्मसुन्दरस्वरस, ६. सौवर्चलस्वरस, ७. शालिञ्चशाकस्वरस, ८. मण्डूकपर्णीस्वरस, ९. श्वेतापराजिता-स्वरस।

सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उसमें स्वर्णमाक्षिकभस्म मिलाकर मर्दन करें। ततः लोहे की एक छोटी-सी नई कड़ाही में इस कज्जली को रखें और क्रमशः केशराज, भृङ्गराज, निर्गुण्डीपत्र, काकमाची, ग्रीष्मसुन्दर, सौवर्चला, शालिञ्चशाक, मण्डूकपर्णी और श्वेतापराजिता स्वरस की १-१ भावना देकर लौह मुसली से मर्दन करें। तदनन्तर सभी मर्दित औषधि में मरिचचूर्ण मिलाकर मर्दन करें और सरसों प्रमाण की वटी बनाकर धूप में सुखा लें

और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके प्रयोग से बच्चों के त्रिदोषजज्वर, भयंकर आम, पाँच प्रकार के कास तथा बच्चों के सभी रोगों का नाश होता है। बच्चों के रोगों के नाशनार्थ ही इस महारस का निर्माण हुआ है।

मात्रा—१५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु। **वर्ण**—कृष्ण। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **रस**—तिक्त। **उपयोग**—बालकों के सम्पूर्णरोग।

७९. कुमारकल्याणरस

सिन्दूरं मौक्तिकं हेम व्योमायो हेममाक्षिकम्।
कन्यारसेन सम्मर्द्य कुर्यान्मुद्गमिता वटी ॥११६॥
वटिकां वटिकार्द्धं वा वयोऽवस्थां विविच्य च।
क्षीरेण सितया सार्द्धं बालेषु विनियोजयेत् ॥११७॥
कुमाराणां ज्वरं श्वासं वमनं पारिगर्भिकम्।
ग्रहदोषांश्च निखिलान् स्तन्यस्याग्रहणं तथा ॥११८॥
कामलामतिसारश्च कृशतां वह्निवैकृतम्।
रसः कुमारकल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः ॥११९॥

१. रससिन्दूर, २. मुक्ताभस्म, ३. सुवर्णभस्म, ४. अभ्रक भस्म, ५. लोहभस्म, ६. सुवर्णमाक्षिकभस्म—इन्हें समभाग लें। एक खरल में सबसे पहले रससिन्दूर को खरल करें। ततः सभी भस्मों को उसमें मिलाकर घृतकुमारीस्वरस की भावना देकर मूँग के बराबर ($\frac{1}{2}$ रत्ती = ६५ मि.ग्रा. की मात्रा में) वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। आधी से १ वटी की मात्रा में बच्चों को मधु में मिलाकर चटायें और बाद में चीनी युक्त सुखोष्ण दूध पिलायें। इसके प्रयोग से बच्चों के ज्वर, श्वास, वमन, परिगर्भिक रोग, सभी प्रकार के ग्रहदोष, दूध के प्रति अरुचि, कामला, अतिसार, कृशता और पाचकाग्नि विकृति आदि सभी रोगों का नाश होता है। इसे 'कुमारकल्याणरस' कहते हैं।

मात्रा—६५ मि.ग्रा.। **वर्ण**—रक्ताभ। **अनुपान**—मधु। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—समस्त बाल रोगों में।

८०. दन्तोद्भेदगदान्तकरस

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
अजमोदायमानीभ्यां निशया मधुकेन च ॥१२०॥
दारुदार्वीविडङ्गैलानागरकेशरनीरदैः ।
शटीशृङ्गीविडैर्व्योम्ना शङ्खायोहेममाक्षिकैः ॥१२१॥
विधाय पयसा पिष्टैर्वटिका वल्लसम्मिताः।
दन्तघर्षेऽभ्यवहृतौ योजयेच्च प्रयोगवित् ॥१२२॥
प्रयोगादस्य दन्तानां त्वरयोद्गमतो गदाः।
ज्वराक्षेपातिसाराद्या निवर्त्तन्ते न संशयः ॥१२३॥

१. पीपरचूर्ण, २. पिपरामूलचूर्ण, ३. चव्यचूर्ण, ४. चित्रकमूलचूर्ण, ५. सोंठचूर्ण, ६. अजमोदाचूर्ण, ७, अजवाइनचूर्ण, ८. हल्दीचूर्ण, ९. मुलेठीचूर्ण, १०. देवदारुचूर्ण, ११. दारुहल्दीचूर्ण, १२. विडङ्गचूर्ण, १३. छोटीइलायचीचूर्ण, १४. नागरकेशरचूर्ण, १५. नागरमोथाचूर्ण, १६. कचूरचूर्ण, १७. काकड़ासिंगीचूर्ण, १८. विडलवणचूर्ण, १९. अभ्रकभस्म, २०. शंखभस्म, २१. लोहभस्म, २२. सुवर्णमाक्षिकभस्म—ये सभी २२ द्रव्य समान भाग लें और जल की १ भावना देकर ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी का चूर्ण कर बच्चों के मसूड़ों पर धीरे-धीरे घर्षण करने से बच्चों के दाँत शीघ्र निकलते हैं। इसे मधु के साथ बच्चों को चटाने से ज्वर, आक्षेप, अतिसार आदि रोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **वर्ण**—कत्थई। **अनुपान**—मधु से। **रस**—कटु। **गन्ध**—हल्की सुगन्ध। **उपयोग**—दन्तोद्गम।

८१. बालरस (र.सा.सं.)

पलं शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्य पलं तथा।
सुवर्णमाक्षिकस्यापि भागार्द्धं सम्प्रकल्पयेत् ॥१२४॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा लौहपात्रमये दृढे।
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥१२५॥
शुभे शिलामये पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत्।
राजिकासदृशीश्चैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥१२६॥
एकैकां वटिकां खादेन्नागवल्लीदलद्रवैः।
हन्ति त्रिदोषसम्भूतं ज्वरञ्चैव सुदारुणम् ॥१२७॥
चिरज्वरञ्च कासञ्च शूलं सर्वभवं तथा।
शिशूनां रोगनाशाय शिवेन परिकीर्तितः ॥१२८॥

१. शुद्ध पारद ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम, ३. सुवर्णमाक्षिकभस्म २५ ग्राम। भावना द्रव्य—१. केशराजस्वरस, २. भृङ्गराजस्वरस, ३. निर्गुण्डीपत्रस्वरस। एक पत्थर के खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उस कज्जली में सुवर्णमाक्षिकभस्म मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर क्रमशः केशराज, भृङ्गराज एवं निर्गुण्डीपत्रस्वरस की भावना देते हुए लोह मुशल से मर्दन करें। बाद में सरसो प्रमाण की वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। १-१ वटी ताम्बूलस्वरस एवं मधु के साथ प्रातः-सायं सेवन करने से बच्चों के भयंकर सन्निपातज्वर, पुराना ज्वर, कास तथा सभी प्रकार के शूलरोग नष्ट हो जाते हैं। बच्चों के रोगों को नाश करने के लिए भगवान् आशुतोष शिव ने इसे निर्मित किया था।

मात्रा—१० मि.ग्रा.। **वर्ण**—कृष्ण। **अनुपान**—ताम्बूलरस एवं मधु। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **उपयोग**—बच्चों के ज्वरादि सभी रोगों के लिए।

नोट—पीछे वर्णित 'बालरोगान्तक रस' ठीक इसी प्रकार का

है। औषधियाँ एवं उनकी मात्रा भी वही है, मात्र भावना द्रव्य इसमें कम है। बालरोगान्तक में मरिच भी है।

८२. अश्वगन्धाघृत (च.द.)

पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरे दशगुणे पचेत्।
घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद् बलवर्द्धनम् ॥१२९॥

गोघृत १ किलो, अश्वगन्धाचूर्ण २५० ग्राम, गोदुग्ध १० लीटर, मधुरजल १० लीटर। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः अश्वगन्धाचूर्ण में थोड़ा जल मिलाकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छितगोघृत में कल्क और १० लीटर दूध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने लगे तो दूध के सम्यक् पाकार्थ दूध जितना मीठा जल मिलाकर पुनः पकायें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकवत् परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत की ३ से ६ ग्राम की मात्रा चीनी मिले हुए सुखोष्णदूध में मिलाकर बच्चों को प्रातः-सायं पिलाना चाहिए। इस घृत का कुछ दिनों तक नियमित पान करने से बच्चों का शरीर पुष्ट होता है तथा बल की वृद्धि होती है।

मात्रा—२ से ३ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—सुखोष्ण गोदुग्ध में। **रस**—मधुर-तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—बच्चों के शरीर पुष्ट्यर्थ एवं बलकृत।

८३. चाङ्गेरीघृत (च.द.)

चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिश्छागक्षीरसमं पचेत्।
कपित्थव्योषसिन्धूत्थसमङ्गोत्पलबालकैः ॥१३०॥
सबिल्वधातकीमोचैः सिद्धं सर्वातिसारनुत्।
ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति बालानान्तु विशेषतः ॥१३१॥

गोघृत १ किलो, चाङ्गेरीस्वरस ४ लीटर, बकरी का दूध १ लीटर। **कल्क**—१. कैंथफल, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. सैन्धव, ६. मंजीठ, ७. नीलकमल, ८. सुगन्धबाला, ९. बिल्वफलमज्जा १०. धातकीपुष्प, ११. मोचरस—प्रत्येक द्रव्य २३-२३ ग्राम लें। सभ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। मूर्च्छित घृत में कल्क और दूध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर चाङ्गेरीस्वरस मिलाकर पाक करें। चाङ्गेरी सूखने पर दूध के बराबर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार-कर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत को ३ से ६ ग्राम की मात्रा में चीनी युक्त गरम गोदुग्ध में मिलाकर दिन में २ बार पिलाने से बच्चों के अतिसार एवं ग्रहणीरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२-३ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—चीनी युक्त सुखोष्ण दूध से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—बच्चों के अतिसार-ग्रहणी।

८४. अष्टमङ्गलघृत (च.द.)

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि वा।
शारिवा सैन्धवञ्चैव पिप्पली घृतमष्टमम् ॥१३२॥
मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यञ्च दिने दिने।
दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भवेत् ॥१३३॥
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः।
प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम् ॥१३४॥

१. वच, २. कूठ, ३. ब्राह्मी, ४. पीत सरसों, ५. सारिवा, ६. सैन्धव, ७. पीपर—प्रत्येक द्रव्य ३६-३६ ग्राम लें। गोघृत १ किलो लें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः वच आदि सातों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर जल से पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क को मूर्च्छितघृत में मिलाकर ४ लीटर जल देकर मन्दाग्नि से पाक करें। इसे 'अष्टमंगलघृत' कहते हैं। इस घृत में ८ मंगलकारी द्रव्य होने से इसका नाम 'अष्टमङ्गलघृत' पड़ा है। इसे ३-६ ग्राम की मात्रा में चीनी युक्त सुखोष्ण गोदुग्ध के साथ मिलाकर बच्चों को पिलाना चाहिए। यह घृत मेध्य है, स्मरणशक्ति को दृढ़ करता है तथा बुद्धिवर्धक है। इस घृत का सेवन करने वाले बच्चों पर पिशाच, भूत, ग्रहों, राक्षस और मातृकाओं का दुष्प्रभाव नहीं होता है।

मात्रा—२-३ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—चीनी युक्त सुखोष्ण दूध से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—मेध्य, बुद्धिवर्द्धक, ग्रहबाधानाशनार्थ।

८५. कुमारकल्याणघृत (च.द.)

शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह।
द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीवकं बला ॥१३५॥
शटी दुरालभा बिल्वं दाडिमं सुरसा स्थिरा।
मुस्तं पुष्करमूलञ्च सूक्ष्मैला गजपिप्पली ॥१३६॥
एषां कर्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
कषाये कण्टकार्याश्च क्षीरे तस्मिंश्चतुर्गुणे ॥१३७॥
एतत्कुमारकल्याणं घृतरत्नं सुखप्रदम्।
बलपुष्टिकरं धन्यं पुष्ट्यग्निबलवर्द्धनम् ॥१३८॥
छायासर्वग्रहालक्ष्मीकृमिदन्तगदापहम्।
सर्वबालामयहरं दन्तोद्भेदं विशेषतः ॥१३९॥

१. शंखपुष्पी, २. वचा, ३. ब्राह्मी, ४. कूठ, ५. आमला, ६. हरीतकी, ७. बहेड़ा, ८. द्राक्षा, ९. चीनी, १०. सोंठ, ११. जीवन्ती, १२. जीवक, १३. बलामूल, १४. कचूर, १५. जवासा, १६. बिल्वफलमज्जा, १७. अनारदाना, १८. तुलसी, १९. शालपर्णी, २०. मुस्ता, २१. पुष्करमूल, २२. छोटी

इलायची, २३. गजपीपर—सभी द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। गोघृत ७५० ग्राम, कण्टकारीक्वाथ ३ लीटर तथा गोदुग्ध ३ लीटर से घृतपाक करें। सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। शंखपुष्पी से गजपीपर तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर कल्क बना लें। मूर्च्छितघृत में कल्क और कण्टकारीक्वाथ देकर पाक करें, क्वाथ सूखने पर गोदुग्ध देकर मन्दाग्नि से पाक करें तथा दूध सूखने पर ३ लीटर जल देकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस घृत की ३ से ६ ग्राम की मात्रा चीनी युक्त सुखोष्ण दूध में मिलाकर बच्चे को पिलानी चाहिए। इसे 'कुमारकल्याणघृत' कहते हैं। बच्चों को यह घृत बल्य है, शरीर पुष्ट करने वाला है, अग्नि एवं बलवर्धक है। यह घृत छायादोष, ग्रहदोष, अलक्ष्मी (कुरूपता) तथा बालकों के सभी रोगों का नाश करता है, विशेषकर यह दन्तोद्भेदकष्टनिवारक है।

मात्रा—२-३ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—चीनी युक्त सुखोष्ण दूध से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—दन्तोद्भेद।

८६. पिप्पल्यादिघृत

पिप्पलीधातकीपुष्पधात्रीफलकशेरुभिः।
वचामूर्वाऽमृतापाठाकटुकातिविषाघनैः ॥१४०॥
जीवनीयैर्घृतं सिद्धं शस्तं दशनजन्मनि।
सुखोष्णेन यथामात्रं पयसैतत्प्रयोजयेत् ॥१४१॥

१. पिप्पली, २. धातकीपुष्प, ३. आमला, ४. कशेरुकन्द, ५. वच, ६. मूर्वा, ७. गुडूची, ८. पाठामूल, ९. कटुकी, १०. अतीस, ११. नागरमोथा, १२. जीवक, १३. ऋषभक, १. मेदा, १५. महामेदा, १६. काकोली, १७. क्षीरकाकोली, १८. ऋद्धि, १९. वृद्धि, २०. यष्टिमधु, २१. जीवन्ती, २२. मुद्‌गपर्णी, २३. माषपर्णी—प्रत्येक द्रव्य ८ ग्राम लें (कुल वजन १८४ ग्राम) तथा गोघृत ७५० ग्राम। सर्वप्रथम पिप्पली से माषपर्णी तक के सभी २३ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। ततः घृत का मूर्च्छन करें। पुनः मूर्च्छितघृत में कल्क और ३ लीटर जल मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य द्वारा परीक्षोपरान्त घृतपात्र को नीचे उतारकर छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। चीनी युक्त सुखोष्ण गोदुग्ध में ३ से ६ ग्राम की मात्रा में मिलाकर बच्चों को सुबह-शाम पिलाना चाहिए। इससे दाँत निकलने में सुविधा हो जाती है।

मात्रा—२-३ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—चीनी युक्त सुखोष्ण गोदुग्ध से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्ध। **उपयोग**—दाँत निकलने में।

८७. कण्टकारिघृत

कण्टकार्या बृहत्याश्च भार्गीवासकयोरपि।
स्वरसेन तथा छागीक्षीरेण विपचेद् घृतम् ॥१४२॥
कल्कैः करिकणाकृष्णामरिचैर्मधुकेन च।
वचाग्रन्थिकमांसीभिश्चव्यचित्रकचन्दनैः ॥१४३॥
मुस्तामृतामलयजैर्यमान्या जीरकेण च।
बालाविश्वौषधाभ्यञ्च द्राक्षादाडिमदारुभिः ॥१४४॥
सिद्धमेतद् घृतं सद्यः शिशूनां श्वासकासहृत्।
ज्वरारोचकशूलघ्नं कफनुद् बलवह्निकृत् ॥१४५॥

१. कण्टकारी, २. बृहती, ३. भारङ्गी, ४. वासा स्वरस या क्वाथ १-१ लीटर तथा ५. गोघृत १ किलो एवं ६. बकरी का दूध १ लीटर लें। सम्यक् पाकार्थ जल ४ लीटर लें। **कल्क**—१. गजपीपर, २. पीपर, ३. मरिच, ४. यष्टिमधु, ५. वच, ६. पिपरामूल, ७. जटामांसी, ८. चव्य, ९. चित्रकमूल, १०. रक्त-चन्दन, ११. मुस्ता, १२. गुडूची, १३. श्वेतचन्दन १४. अज-माइन, १५. जीरा, १६. सुगन्धबाला, १७. सोंठ, १८. द्राक्षा, १९. अनारदाना, २०. देवदारु—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। सर्वप्रथम कल्क द्रव्यों को कूट-पीसकर सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः चूर्ण में जल देकर सिल पर पीसकर कल्क बना लें। तदनन्तर गोघृत का मूर्च्छन करें। मूर्च्छितघृत में कल्क और बकरी का दूध मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। दूध सूखने पर क्रमशः कण्टकारीक्वाथ, बृहतीक्वाथ, भारङ्गीक्वाथ तथा वासास्वरस क्रमशः देकर पाक करें। अन्त में दूध के सम्यक् पाकार्थ १ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त चूल्हे से घृतपात्र को नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसकी ३ से ६ ग्राम की मात्रा शर्करा मिश्रित सुखोष्ण दूध में मिलाकर बच्चे को दिन में २ बार पिलाना चाहिए। इस घृत को पिलाने से बच्चों का श्वास, कास, ज्वर, अरुचि, शूल और कफ नष्ट हो जाते हैं तथा यह घृत बल एवं पाचकाग्नि को बढ़ाता है।

मात्रा—२-३ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—चीनी युक्त सुखोष्ण गोदुग्ध से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—घृतगन्धी। **उपयोग**—श्वास, कास, ज्वर तथा अरुचिनाशक है। मल एवं पाचकाग्निवर्द्धक है।

८८. भूतवार घृत

त्रिकटुकदलकुङ्कुमग्रन्थिकक्षारसिंही-
निशादारुसिद्धार्थयुग्माम्बुशक्राह्वयैः।
सितलशुनफलत्रयोशीरतिक्ताावचा-
तुत्थयष्टीबलालोहितैलाशिलापद्मकैः ॥१४६॥

दधितगरमधुसारप्रियाह्वानिशाख्या-
विषाताक्ष्यर्यशैलैः सचव्यामयैः कल्कितैः ।
घृतमभिनवमशेषमूत्रांशसिद्धं मतं
भूतवाराह्वयं पानतस्तद् ग्रहघ्नं परम् ॥१४७॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. तेजपत्र, ५. केशर, ६. पिपरामूल, ७. यवक्षार, ८. वासा, ९. हल्दी, १०. देवदारु, ११. पीतसरसो, १२. लालसरसो, १३. सुगन्धबाला, १४. इन्द्रयव, १५. श्वेतलशुन, १६. आमला, १७. हरीतकी, १८. बहेड़ा, १९. खस, २०. कटुकी, २१. वचा, २२. तुत्थ, २३. मुलेठी, २४. बलामूल, २५. लालचन्दन, २६. छोटी इलायची, २७. शुद्धमैनसिल, २८. पद्मकाष्ठ, २९. दधि, ३०. तगर, ३१. महुआफूल, ३२. प्रियङ्गु, ३३. हल्दी, ३४. अतीस, ३५. रसाञ्जन, ३६. छरीला, ३७. चव्य, ३८. कूठ—प्रत्येक द्रव्य ७-७ ग्राम लें। गोघृत १ किलो, आठ प्रकार के मूत्र[1] ८ लीटर तथा जल ४ लीटर लें। सर्वप्रथम कल्क द्रव्य के ३८ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें फिर उसमें थोड़ा जल देकर सिल पर पीसकर कल्क बना लें। तदनन्तर गोघृत का मूर्च्छन करें। अब घृतपात्र में कल्क और गोमूत्र १ लीटर देकर मन्दाग्नि से पाक करें। मूत्र से स्नेह साधन में अत्यधिक फेनोद्गम होता है। अत: सावधानी से मृदु अग्नि में थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र देकर पाक करना चाहिए। जब आठों मूत्रों को घृत में सुखा लें तो घृत से ४ गुना जल देकर पुन: स्नेहपाक करना चाहिए। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। अशेष मूत्रांशं का अर्थ अशेषः = सम्पूर्णः अर्थात् आठों मूत्र लें। इसकी ३ ग्राम की मात्रा चीनी युक्त सुखोष्ण दूध में मिलाकर पिलाना चाहिए। इस घृत के अभ्यङ्ग, नस्य एवं धूपन कर्म से भूत-पिशाचादि एवं ग्रहादि नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—३ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ। **अनुपान**—चीनी युक्त सुखोष्ण दूध में। **रस**—तीक्ष्ण मूत्र जैसा। **गन्ध**—मूत्रगन्धी। **उपयोग**—भूत, पिशाच एवं ग्रहबाधा में।

८९. महाभूतवार घृत

नतमधुककरञ्जलाक्षापटोलीसमङ्गावचापाटली-
हिङ्गुसिद्धार्थसिंहीनिशायुगलतारोहिणी-
बदरकटुफलत्रिकाकान्तदारुकृमिघ्नाजगन्धा-
भङ्गाङ्कोलकोषातकीशिग्रुनिम्बाम्बुदेन्द्रयवैः ॥१४८॥
गदशुकतरुपुष्पबीजोग्रयष्ट्यद्रिकर्णी-
निकुम्भाग्निबिल्वैः समैः कल्कितैर्मूत्रवर्गेण सिद्धं घृतं
विधिविनिहितमाशु सर्वैः क्रमैर्योजितं हन्ति
सर्वग्रहोन्मादकुष्ठज्वरांस्तन्महाभूतवारं स्मृतम् ॥१४९॥

गोघृत १ किलो, अष्टमूत्र यथा—गाय, महिष, अजा, अवि, हस्ति, अश्व, ऊँट, गदहा—प्रत्येक १-१ लीटर लेना है।

१. तगर, २. मुलेठी, ३. करञ्जत्वक्, ४. लाक्षा, ५. पटोलपत्र, ६. मंजीठ, ७. वचा, ८. पाटला, ९. हींग, १०. पीतसरसों, ११. कण्टकारी, १२. हल्दी, १३. दारुहल्दी, १४. गम्भारीत्वक्, १५. बदरीफल, १६. कटुकी, १७. आमला १८. हरीतकी, १९. बहेड़ा, २०. केशर, २१. देवदारु, २२. विडङ्ग, २३. अजमोदा, २४. भाँग, २५. अंकोल, २६. कोषातकी (कड़वी तोरई), २७. सहिजनत्वक्, २८. निम्बत्वक्, २९. नागरमोथा, ३०. इन्द्रयव, ३१. कूठ, ३२. शिरीषपुष्प एवं ३३. बीज, ३४. वच, ३५. अपराजिता, ३६. दन्तीमूल, ३७. चित्रकमूल तथा ३८. बिल्वमूलत्वक्—प्रत्येक द्रव्य ७-७ ग्राम लें। सर्वप्रथम तगर से बिल्वमूलत्वक् के सभी ३८ द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। पुन: सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। तत: घृत का मूर्च्छन करें और मूर्च्छितघृत में कल्क तथा २५० मि.ली. गोमूत्र देकर पाक करें। थोड़ा-थोड़ा आठों गोमूत्र देकर पाक करना चाहिए। ८ लीटर गोमूत्र का पाक हो जाय तो ४ लीटर जल देकर पुन: पाक करना चाहिए। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें तथा शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ३ ग्राम की मात्रा में चीनी युक्त सुखोष्ण दूध में मिलाकर पिलाना चाहिए। इसका नस्य, अभ्यङ्ग एवं धूप करके भी बच्चों में उपयोग कर सकते हैं। इसके सेवन से बच्चों के सभी प्रकार के ग्रहदोष, उन्माद, कुष्ठ एवं ज्वररोग नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—उक्त दोनों भूतवारघृत प्राय: एक ही जैसे हैं। दोनों में २-३ कल्क द्रव्यों का किञ्चित् फर्क है।

मात्रा—३ ग्राम। **वर्ण**—पीताभ किन्तु मैल। **अनुपान**—चीनी युक्त सुखोष्ण दूध से। **रस**—तीक्ष्ण। **गन्ध**—मूत्रगन्धी घृत। **उपयोग**—उन्माद, कुष्ठ एवं ग्रह दोष में।

९०. लाक्षादि तैल (च.द.)

लाक्षारससमं सिद्धं तैलं मस्तु चतुर्गुणम्।
रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुगैः ॥१५०॥
शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः ।
बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यङ्गाद्बलवर्णकृत् ॥१५१॥

तिलतैल १ लीटर, लाक्षास्वरस १ लीटर तथा मस्तु ४ ली.। **कल्क**—१. रास्ना, २. रक्तचन्दन, ३. कूठ, ४. नागरमोथा, ५. अश्वगन्ध, ६. हल्दी, ७. दारुहल्दी, ८. सौंफ, ९. देवदारु,

---
१. अष्टमूत्रं यथा—अविमूत्रमजामूत्रं गोमूत्रं माहिषञ्च यत्।
हस्तिमूत्रमथोष्ट्रस्य हयस्य च खरस्य च॥ (च.सू. १।९५)

१०. मुलेठी, ११. मूर्वा, १२. कुटकी, १३. रेणुका—प्रत्येक द्रव्य १९-१९ ग्राम लें। इन्हें एक साथ कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें। पुनः जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बना लें। ततः तिलतैल का मूर्च्छन कर कल्क और लाक्षास्वरस मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। तदनन्तर मस्तु द्रव देकर पाक करें। पुनः ४ लीटर जल देकर पाक करें। द्रवांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को बच्चों को अभ्यङ्ग करने से ज्वर एवं भूतादि ग्रह बाधा नष्ट हो जाती है तथा बल एवं वर्ण की वृद्धि होती है।

९१. व्याघ्रीतैल

व्याघ्रीवासकबिल्वानां केशराजस्य चाम्बुना।
काञ्जिकेन तथा कल्कैर्मुस्तमोचरसाञ्जनैः ॥१५२॥
शताह्वादारुयष्ट्याह्वबलारास्नानिशायुगैः।
चन्दनद्वयमञ्जिष्ठाप्रियङ्गूत्पलकेशरैः ॥१५३॥
शालपर्णीपृश्निपर्णीचातुर्जातकबालकैः।
मृदः पात्रे पचेत्तैलमरिष्टेन्धनवह्निना ॥१५४॥
श्वासं कासञ्च बालानां ज्वरं वह्नेश्च वैकृतम्।
व्याघ्रीतैलमिदं हन्यात् त्वग्दोषान्निखिलानपि ॥१५५॥

१. कण्टकारीक्वाथ २. वासास्वरस, ३. बिल्वमूलत्वक्-क्वाथ, ४. केशराजस्वरस, ५. काञ्जी, ६. तिलतैल—प्रत्येक १-१ लीटर लें। **कल्क**—१. मुस्ता, २. मोचरस, ३. रसाञ्जन, ४. सौंफ, ५. देवदारु, ६. मुलेठी, ७. बलामूल, ८. रास्ना, ९. हल्दी, १०. दारुहल्दी, ११. श्वेतचन्दन, १२. रक्त चन्दन, १३. मंजीठ, १४. प्रियङ्गुपुष्प, १५. कमल, १६. केशर, १७. शालपर्णी, १८. पृश्निपर्णी, १९. तेजपत्र, २०. दालचीनी, २१. छोटीइलायची, २२. नागरकेशर, २३. सुगन्धबाला—प्रत्येक द्रव्य ११-११ ग्राम लें। सर्वप्रथम मुस्ता से सुगन्धबाला तक के सभी २३ द्रव्यों का (केशर छोड़कर) सूक्ष्मचूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बनायें। ततः तिलतैल का मूर्च्छन करें और मूर्च्छिततैल में कल्क एवं कण्टकारी रस या क्वाथ मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। यह क्वाथ सूखने पर क्रमशः वासास्वरस, बिल्वमूलक्वाथ, केशराजस्वरस तथा काञ्जी देकर पाक करें। जलीयांश सूख जाने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर तैल को कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर के[illegible]र मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें।

विशेष—इस [illegible] को मिट्टी के पात्र में निम्ब की लकड़ी से पाक करें तो अधिक लाभ होगा। इसे व्याघ्रितैल कहते हैं। यह बच्चों के त्वग् विकारों का नाश करता है। इसके अतिरिक्त बच्चों के श्वास, कास, ज्वर एवं अग्निमांद्य में लाभप्रद है।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—रक्ताभ। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—तैलगन्धी (चन्दनगन्धी)। **उपयोग**—चर्मरोग, श्वास, कास तथा ज्वरहर है।

९२. शंखपुष्पीतैल

शङ्खपुष्पीमहानिम्बवासानामर्जुनस्य च।
स्वरसेनारनालेन लाक्षातोयेन मस्तुना ॥१५६॥
कल्कैश्च दाडिमीदारुनिशायुगफलत्रिकैः।
चन्दनोशीरबालैश्च श्रीखण्डमधुकाम्बुदैः ॥१५७॥
श्यामाशैवालशेफालीरक्तोत्पलरसाञ्जनैः।
गनधद्रव्यैश्च निखिलैः पचेत् तैलं तिलोद्भवम् ॥१५८॥
प्रयोगादस्य नश्यन्ति बालानामखिला गदाः।
कान्तिर्मेधा धृतिः पुष्टिर्वर्द्धते नात्र संशयः ॥१५९॥
कल्याणाय कुमाराणां कपर्दी करुणाकरः।
ससर्जेदं शङ्खपुष्पीतैलं भुवनमङ्गलम् ॥१६०॥

१. शंखपुष्पीक्वाथ, २. महानिम्बत्वक्क्वाथ, ३. वासापत्र स्वरस, ४. अर्जुनत्वक्क्वाथ, ५. काञ्जी, ६. लाक्षारस, ७. मस्तु—प्रत्येक क्वाथ/स्वरस १-१ लीटर लें तथा तिलतैल १ लीटर। **कल्क**—१. अनारत्वक्, २. देवदारु, ३. हल्दी, ४. दारुहल्दी, ५. आमला, ६. हरीतकी, ७. बहेड़ा, ८. रक्तचन्दन, ९. खस, १०. सुगन्धबाला, ११. श्वेतचन्दन, १२. मुलेठी, १३. मुस्ता, १४. प्रियङ्गूफूल, १५. शैवाल (जल के सेवार), १६. हरसिंगार, १७. लालकमल, १८. रसाञ्जन—प्रत्येक १४-१४ ग्राम लें तथा गन्ध द्रव्यों[1] से अन्त में इस तैल का पाक करें। सर्वप्रथम अनारत्वक् से रसाञ्जन तक के सभी १८ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें तथा तिलतैल का मूर्च्छन करें। अब इस कल्क को मूर्च्छित-तैल में मिलायें तथा शंखपुष्पीक्वाथ देकर मन्दाग्नि से पाक करें। शंखपुष्पीक्वाथ सूखने पर क्रमशः महानिम्बत्वक् क्वाथ, वासास्वरस, अर्जुनत्वक्क्वाथ, काञ्जी, लाक्षास्वरस तथा अन्त में मस्तु क्रमशः देकर तैल पाक करें। एक द्रव सूखने पर ही दूसरा द्रव डाल कर पाक करें। स्नेहपाक की परीक्षोपरान्त चूल्हे से तैलपात्र को नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। ततः गन्ध द्रव्यों के कल्क एवं १ लीटर जल देकर पुनः पाक करें तथा जलीयांश सूखने पर चूल्हे से स्नेहपात्र को नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीत होने पर काचपात्र में संग्रह करें।

इसके प्रयोग से बालकों को होने वाले सम्पूर्ण रोग नष्ट हो

---

१. एलाकुङ्कुमचन्दनागरुमुराकङ्कोलमांसीशटी-
श्रीवासच्छदग्रन्थिपर्णशशभृत्क्षोणीघ्नजोशीरकम्।
कस्तूरीनखपूतिशैलजलमुङ्मेथीलवङ्गादिकं
गन्धद्रव्यमिदं प्रदेयमखिलं श्रीविष्णुतैलादिषु॥ (भै.र. वातव्याधि)

जाते हैं। इसके अभ्यङ्ग से कान्ति, मेधा, धारणाशक्ति एवं शरीर की पुष्टि में निःसन्देह वृद्धि होती है। बालकों के कल्याणार्थ करुणानिधि भगवान् शंकर ने लोकमङ्गलकारी इस शंखपुष्पीतैल का निर्माण किया था।

मात्रा—अभ्यङ्ग। **वर्ण**—पीताभ। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—अति सुगन्ध। **उपयोग**—बालकों के सम्पूर्ण रोगहरणार्थ।

९३. अरविन्दासव

अरविन्दमुशीरञ्च काश्मरी नीलमुत्पलम्।
मञ्जिष्ठैलाबलामांसीरम्बुदं शारिवां शिवाम् ॥१६१॥
बिभीतकवचाधात्रीः शटीं श्यामां सनीलिनीम्।
पटोलं पर्पटं पार्थं मधूकं मधुकं मुराम् ॥१६२॥
पलमानेन सङ्गृह्य द्राक्षायाः पलविंशतिम्।
धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ॥१६३॥
शर्करायास्तुलां तत्र तुलार्द्धं माक्षिकस्य च।
मासं संस्थापयेद् भाण्डे मृत्तिकापरिनिर्मिते ॥१६४॥
बालानां सर्वरोगघ्नो बलपुष्ट्यग्निवर्द्धनः।
अरविन्दासवः प्रोक्तः आयुष्यो ग्रहदोषहृत् ॥१६५॥

१. मीठा जल २५ लीटर, गुड़ ४६७० ग्राम, मधु २३३५ ग्राम, द्राक्षा ९४० ग्राम, धातकीपुष्प ७५० ग्राम।

प्रक्षेप—१. कमलपुष्प, २. खस, ३. गम्भारीत्वक्, ४. नीलकमल, ५. मंजीठ, ६. छोटी इलायची, ७. बलामूल, ८. जटामांसी, ९. नागरमोथा, १०. अनन्तमूल, ११. हरीतकी, १२. बहेड़ा, १३. वच, १४. आमला, १५. कचूर, १६. प्रियङ्गुफूल, १७. नीलीमूल, १८. पटोलपत्र, १९. पित्तपापड़ा, २०. अर्जुनत्वक्, २१. महुआफूल, २२. मुलेठी, २३. मुरामांसी—प्रत्येक द्रव्य ४६ ग्राम (अर्थात् १-१ पल) लेकर एक साथ यवकुट करें। एक मिट्टी के बड़े घड़े में रातभर पानी भरकर छोड़ दें। अब रात के पानी को फेंक दें और घड़ा को पत्र एवं पुआल से रगड़कर २-३ बार जल से साफ करें। अब उस घड़े को निर्वात स्थान में उसकी तली के नीचे भूसी या धान का पुआल आदि रखकर उसमें २५ लीटर जल रखें तथा उसमें गुड़ और मधु को हाथ से मिला दें। द्राक्षा को कूटकर उसमें डालें। धातकी पुष्प को धूप में सुखाकर बिना कूटे डाल दें। ततः कमलफूल से मुरामांसी तक के सभी द्रव्यों का मोटा यवकुट घड़े में डालकर हाथ से अच्छी तरह मिला दें और एक नये शराव से घड़े का मुख ढककर कपड़मिट्टी से सन्धिबन्धन कर १ महीना तक छोड़ दें। १ महीना बाद जब सन्धान पूरा हो जायेगा तो कमरे में तथा उसके आस-पास का वातावरण मद्यगन्धी हो जायेगा। ततः उस शराव की मिट्टी हटाकर परीक्षोपरान्त कपड़ा से छानकर तथा घड़ा को भी कपड़ा से पोंछकर छना हुआ द्रव उसी घड़ा में भरकर पुनः सन्धिबन्धन कर १० दिनों के लिए छोड़ दें। ऐसा करने से आसव/अरिष्ट की गाद नीचे बैठ जायेगी और १० दिनों बाद घड़ा को टेढ़ाकर ऊपरी स्वच्छ द्रव निकालकर कपड़ा से छानकर बोतलों में भरकर कार्क लेबल आदि लगाकर भींगे कपड़ा से बोतल को साफ कर सुरक्षित रख लें। लेबल में आसव/अरिष्ट का नाम, ग्रन्थ नाम, रोगाधिकार, निर्माण तिथि, मुख्य द्रव्य आदि लिखें।

परीक्षा—आसव/अरिष्ट तैयार है इसकी परीक्षार्थ दियासलाई जलाकर घड़ा के अन्दर ले जायें यदि तिल्ली जलती है तो आसव तैयार है और बुझने पर अभी तैयार नहीं हुआ है, ऐसा समझना चाहिए।

बच्चों को यह ८ से १० बूँद बराबर पानी मिलाकर कुछ खिलाकर पिलाना चाहिए। खाली पेट इसे नहीं पिलाना चाहिए। इसे 'अरविन्दासव' कहते हैं। इसके सेवन से बच्चों के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। बच्चों की बलवृद्धि, शरीरपुष्टि और अग्नि की वृद्धि होती है। यह बच्चों के लिए आयुष्यकर है। ग्रहबाधा नाशक है।

मात्रा—८ से १० बूँद। **वर्ण**—रक्ताभतरल (द्रव)। **अनुपान**—बराबर जल मिलाकर। **रस**—मधुर-तीक्ष्ण। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **उपयोग**—बच्चों के सभी रोगों में देना चाहिए।

बालग्रहशान्ति के उपाय

बालग्रहहर दैवव्यपाश्रय कर्म (च.द.)

बलिशान्तीष्टकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये।
मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यस्तत्रादौ सार्वकार्मिकः ॥१६६॥

ॐ नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्बकाय सद्यःस्तबस्तुतः स्वाहा।
ॐ कं टं यं गं वैनतेयाय। ॐ ह्रां ह्रीं क्षः॥

बालकों के ग्रह-शान्त्यर्थ तथा इष्टकर्म आदि उपाय करने चाहिए। 'ओऽम् नमो भगवते' इत्यादि मन्त्र से चौराहे पर बलिदान और कुमारतन्त्रोक्त विधान से शान्त्यादि कर्म करना चाहिए।

गरुडबलिविधान (च.द.)

बालदेहप्रमाणेन पुष्पमालान्तु सर्वतः।
प्रगृह्य मृच्छिकाभक्तं बलिर्देयस्तु शान्तिकः॥
ॐकारि सुपर्णपक्षीश बालकं रक्ष रक्ष स्वाहा ॥१६७॥

बालक के शरीर की ऊँचाई के बराबर श्वेतपुष्पों की एक माला बना लें तथा एक मिट्टी के शराव में भात रखकर उसे उक्त माला से आवृत कर सन्ध्या के समय 'ॐकारि सुपर्णपक्षीश' आदि मन्त्र का उच्चारण करते हुए चौराहा पर रख दें। ऐसा लगातार ३ दिनों तक करने से बालक नीरोग हो जाता है।

सर्वौषधि स्नान

मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम्।
शटी चम्पकमुस्तञ्च सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥१६८॥
सर्वौषध्यम्बुना स्नानं बालानां गदनाशनम्।
ग्रहरक्षःप्रशमनमायुष्यं कान्तिवर्द्धनम् ॥१६९॥

१. मुरामांसी, २. जटामांसी, ३. वच, ४. कुष्ठ, ५. छरीला, ६. हल्दी, ७. दारुहल्दी, ८. कचूर, ९. चम्पाफूल, , १०. मुस्ता—ये १० औषधियाँ सर्वौषधि गण की है। इसके अर्धावशेष क्वाथ से बालक को स्नान कराने से बच्चों के सभी ग्रहों से युक्त रोग नष्ट हो जाते हैं। ग्रह-राक्षस आदि शान्त हो जाते हैं। यह आयुष्य एवं कान्तिवर्धक है।

ग्रहदोषहर स्नान और अनुलेपन (च.द.)

सहामुण्डितिकोदीच्यक्वाथस्नानं ग्रहापहम्।
सप्तच्छदनिशाकुष्ठचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥१७०॥

माषपर्णी, मुण्डी, सुगन्धबाला—इनके अर्धावशेष क्वाथ से स्नान कराना बच्चों का ग्रहनाशक है तथा सप्तपर्ण, हल्दी, कूठ, रक्तचन्दन के चूर्णो से बालक के शरीर में लेप करने से ग्रहदोष नष्ट हो जाते हैं।

हिंग्वादि द्रव्यसिद्धस्नेह चूर्ण-गुटिका-कल्कादि प्रयोग

हिङ्गुव्योषालनेपालीलशुनार्कजटाजटाः ।
अजलोमी सगोलोमी भूतकेशीवचालताः ॥१७१॥
कुक्कुटी सर्पगन्धाख्या तिलाः फालविषाणिके।
वज्रप्रोक्ता वयःस्था च शृङ्गी मोहनवल्ल्यपि ॥१७२॥
स्रोतोजाञ्जनरक्षोघ्नो रक्षोघ्नं चान्यदौषधम्।
खराश्वश्वाविदुष्ट्रर्क्षगोधानकुलशल्यकान् ॥१७३॥
द्वीपिमार्जारगोसिंहव्याघ्रसामुद्रसत्त्वतः ।
चर्मपित्तद्विजनखा वर्गेऽस्मिन् साधयेद् घृतम् ॥१७४॥
पुराणमथवा तैलं नवं तत् पाननस्ययोः।
अभ्यङ्गे च प्रयोक्तव्यमेषां चूर्णञ्च धूपने ॥१७५॥
एभिश्च गुटिकां युञ्ज्यादञ्जनं सावपीडने।
प्रलेपे कल्कमेतेषां क्वाथञ्च परिषेचने।
प्रयोगोऽयं ग्रहोन्मादापस्मारांश्च विनाशयेत् ॥१७६॥

हींग, त्रिकटु, शुद्ध हरताल, शुद्ध मनःशिला, लशुन, अर्कमूल, जटामांसी, कपिकच्छु बीज, श्वेत दूर्वा, भूतकेशी, वच, लता (गुडूची), कुक्कुटी, सर्पगन्धा, तिल, काकोली, क्षीरकाकोली, वज्रप्रोक्तो = केलिकदम्ब = सेहुण्ड, हरीतकी, कर्कटशृंगी, मोहनवल्ली (ब्रह्मबन्दाक), स्रोतोऽञ्जन, गुग्गुलु, सरसो (एवं अन्य यथामति रक्षोघ्न द्रव्य), गदहे, घोड़े, भेड़ी, ऊँट, भालू, गोह, नेवला, साहिल, बाघ विशेष, बिल्ली, गाय, सिंह, बाघ एवं समुद्री प्राणियों के चर्म, पित्त, दाँत एवं नख—ये सभी द्रव्य समभाग में मिलाकर कल्क बना कर चतुर्गुण घृत अथवा तैल द्वारा स्नेहसाधन विधि से सिद्ध कर छान लेवें। इस घृत अथवा तैल का अभ्यङ्ग, पान, नस्य के रूप में प्रयोग करना चाहिए। इनका चूर्ण अथवा वटी बनाकर भी प्रयोग किया जा सकता है। इन द्रव्यों के कल्क से भी बालक के शरीर में उद्वर्तन करना चाहिए तथा इनके क्वाथ से बालक का स्नान या परिमार्जन करना चाहिए। इस औषधि के प्रयोग से बालकों के ग्रहदोष, उन्माद, अपस्मार प्रभृति समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं।

बालग्रहविघाताय विधेया भिषजाऽनिशम्।
कुमारतन्त्रसम्प्रोक्ता बलिपूजादिका क्रिया ॥१७७॥

बालकों की ग्रहबाधा-शमनार्थ रावणोपदिष्ट कुमारतन्त्रानुसार बलि-पूजादि कर्म करना चाहिए।

रावणकृत कुमारतन्त्रम्

ॐ नारायणाय नमः प्रथमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति नन्दा नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। अशुभं शब्दं मुञ्चति। आत्कारञ्च करोति, स्तन्यं न गृह्णाति।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि तेन सम्पद्यते शुभम्।

नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लौदनं शुक्लपुष्पं, सप्त ध्वजाः, सप्त प्रदीपाः, सप्त स्वस्तिकाः, सप्त वटकाः, सप्त शष्कुलिकाः, सप्त जम्बुलिकाः, सप्तमुस्तकाः, गन्धं, पुष्पं, ताम्बूलं, मत्स्यं, मांसं, सुरां अग्रभक्तञ्च पूर्वस्यां दिशि चतुष्पथे मध्याह्ने बलिर्दातव्यः। ततोऽश्वत्थपत्रं जलकुम्भे निक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नापयेत्। रसोनसिद्धार्थकमेषशृङ्गनिम्बपत्रशिवनिर्माल्यैर्बालकं धूपयेत्। 'ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा।' एवं दिनत्रयं बलिं दत्त्वा चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान्भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम् ॥१७८॥

बच्चे के जन्म के पहले दिन, पहले मास अथवा पहले वर्ष के प्रथम दिन में **नन्दा** नाम की मातृका बालक को पकड़ती है। उसके द्वारा पकड़े जाने पर बालक को सर्वप्रथम ज्वर होता है। बालक अशुभ शब्द करता है, आ-आ कर डकारें करता है, माँ का दूध नहीं पीता है। अतः उस मातृका को प्रसन्न करने के लिए तथा बालक के शुभ के लिए बलि देनी चाहिए। नदी के दोनों किनारों की मिट्टी ग्रहण करें तथा उस मिट्टी में जल देकर उससे पुत्तलिका बनानी चाहिए। श्वेत चावल के भात, श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र से ७ पताका (झण्डी), ७ दीपक, ७ स्वस्तिक, ७ वटक, ७ पूड़ियाँ, ७ जलेबियाँ, ७ मुस्तक, गन्ध, पुष्प, ताम्बूल, मछली, मांस, सुरा, हाँडी का ऊपर का भात, पूर्व दिशा में

मध्याह्न में बलि देनी चाहिए। तदनन्तर जलपूर्ण मिट्टी के घड़े में अश्वत्थ पत्र डालकर उस शान्तिकारक जल से बालक को स्नान कराना चाहिए। ततः रसोन, पीत सरसो, मेषशृङ्गी, निम्बपत्र और शिवनिर्माल्य से बालक को धूपित करना चाहिए। ततः "ओऽम् नमो रावणाय अमुकस्य बालकस्य व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा" इस प्रकार मन्त्रोच्चारण कर ३ दिनों तक बलि देनी चाहिए और चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। यह बालक के लिए शुभ होता है।

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति सुनन्दा नाम मातृका, तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। चक्षुरुन्मीलयति, गात्रमुद्वेजयति, न शेते, क्रन्दति, स्तन्यं न गृह्णाति, आत्कारञ्च करोति।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

तण्डुलं हस्तमुष्टयैकं गृहीत्वा दधि गुडघृतञ्च मिश्रितं शरावैकं गन्धं ताम्बूलं, पीतपुष्पं, पीताः सप्तध्वजाः, सप्त प्रदीपाः, दश स्वस्तिकाः, मत्स्यं मांसं सुराग्रभक्तं तिलचूर्णञ्च पश्चिमायां दिशि चतुष्पथे दिवा बलिर्दातव्यः दिनानि त्रीणि सन्ध्यायाम्। ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिव-निर्माल्यसिद्धार्थकमार्जाररोमोशीरवासकघृतैर्धूपं दद्यात्। 'ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा' चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम् ॥१७९॥

बालक के जन्म के दूसरे दिन, दूसरे माह, या दूसरे वर्ष के प्रारम्भ के दिन **सुनन्दा** नाम की मातृका बच्चे को पकड़ लेती है। उसके द्वारा पकड़े जाने से बालक को पहले ज्वर होता है, बालक अपनी आँखें बन्द कर लेता है, शरीर को कम्पन (चलाता) करता है, सोता नहीं है, रोता है, माँ का दूध नहीं पीता है, आ-आ कर डकारता है। अतः सुनन्दामातृका-कोप के शान्त्यर्थ निम्नलिखित रूप में बलि देनी चाहिए। बलि देने से बालक सुखी हो जाता है।

बलि विधान—एक हाथ में आने लायक चावल का भात जिसे नये मिट्टी के शराव में रखकर उसमें दही, गुड़ एवं घृत मिलाकर उस पर कर्पूर, लवङ्ग, एलादि सुगन्धित द्रव्य युक्त ताम्बूल पीत पुष्प, पीत वस्त्र की ७ ध्वजा (पताका), ४ दीपक, १० स्वस्तिका, मछली, मांस, मद्य, भात निर्मित नयी हाँडी के ऊपर का भात, तिल चूर्ण, सन्ध्या में पश्चिम दिशा की ओर चौहारे पर बलि देनी चाहिए। इस प्रकार ३ दिनों तक बलि दें। बलि पात्र रखते समय यह मन्त्र रोज पढ़ना चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय अमुकस्य बालकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा"। इसके बाद शान्तिदायक जल से बालक को स्नान कराना चाहिए। शिवनिर्माल्य सिद्धार्थक (श्वेत सरसों), मार्जार (बिल्ली) की रोम, उशीर, सुगन्धबाला इनमें घृत मिलाकर बालक के पास धूपन करें। चौथे दिन ब्राह्मणों का भोजन करावे। इसके बाद उस बालक का कल्याण होता है।

तृतीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति पूतना नाम मातृका, तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः, गात्रमुद्वेजयति, स्तन्यं न गृह्णाति, मुष्टिं बध्नाति, क्रन्दति, ऊर्ध्वं निरीक्षिते।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा रक्तचन्दनं, गन्धं, ताम्बूलं, सप्त रक्तध्वजाः, सप्त प्रदीपाः, सप्त स्वस्तिकाः, पक्षिमांससुराग्रभक्तञ्च दक्षिणस्यां दिशि अपराह्णे चतुष्पथे बलिर्दातव्यः। शिवनिर्माल्यगुग्गुलुसर्षपनिम्बपत्रमेषशृङ्गैर्दिनत्रयं धूपयेत्। 'ओं नमो रावणाय बालस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रासय ह्रासय स्वाहा'। एवं दिनत्रयं कार्यम्। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम् ॥१८०॥

बालक के जन्म के तीसरे दिन, तीसरे महीने या तीसरे वर्ष के प्रथम दिन बालक को **पूतना** नाम की मातृका पकड़ती है। उस मातृका द्वारा पकड़े जाने पर बालक को ज्वर होता है, शरीर में कम्पन होता है, बालक माँ का दूध नहीं पीता है, अपने हाँथों की मुट्ठी बाँधे रहता है, रोता है और ऊपर देखता है। बाल के इस दोष को दूर करने के लिए नीचे कही गई विधि से बलि देनी चाहिए।

बलि विधान—नदी की दोनों किनारों की मिट्टी लेकर उससे मातृका की कल्पित प्रतिमा बनावें, उस प्रतिमा पर लाल चन्दन, सुगन्धित लवङ्ग, एला, कर्पूर युक्त ताम्बूल अर्पित करें। ७ रक्तवस्त्र की ध्वजा, ७ प्रज्वलित दीपक, ७ स्वस्तिक एवं पक्षी का मांस, सुरा, नई हाँडी में निर्मित ऊपर का भाँत, दक्षिण दिशा में, अपराह्न में चौराहे में निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर बलि देनी चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय अमुकस्य बालकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा"। ततः शिवनिर्माल्य (शिव पर चढ़ाया हुआ बिल्वपत्र-पुष्प-प्रसादादि), गुग्गुलु, सरसो, निम्बपत्र, मेषशृङ्गी को समभाग में लेकर इनसे बालक को ३ दिन तक धूपित करें। चौथे दिन ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए। इस बलि विधि से बालक का कल्याण होता है।

चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति मुखमुण्डितिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। ग्रीवां नामयति, चक्षुरुन्मीलयति, स्तन्यं न गृह्णाति, रोदिति, स्वपिति, मुष्टिं बध्नाति।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा उत्पलपुष्पं, गन्धं, ताम्बूलं, दश शुक्लध्वजाः,

दीपाश्चत्वारः, त्रयोदश स्वस्तिकाः, मत्स्यं मांसं सुरां अग्रभक्तश्च उत्तरस्यां दिशि, अपराह्ने बलिर्देयश्चतुष्पथे। 'ओं नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा'। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्॥१८१॥

बालक के जन्म के चौथे दिन, चौथे महीने या चौथे वर्ष के प्रारम्भ के दिन **मुखमुण्डिका** नाम की मातृका पकड़ती है। उस मातृका द्वारा पकड़े जाने पर बालक को ज्वर होता है, बालक की गर्दन टेढ़ी हो जाती है, वह नेत्रों को बन्द रखता है, माँ का दूध नहीं पीता है, रोता रहता है तथा अपने हाँथों की मुट्ठी बाँधे रहता है। इस कष्ट से मुक्ति के लिए निम्न प्रकार बलि देनी चाहिए।

बलि विधान—नदी की दोनों किनारों की मिट्टी ग्रहण करें और उससे उक्त मातृका की कल्पित प्रतिमा बनाकर एक पात्र में रखें। उस प्रतिमा पर लाल कमल पुष्प, लवङ्ग, एला, कर्पूर से युक्त ताम्बूल रखें, १० ध्वजायें, ४ प्रज्वलित दीपक, १३ स्वस्तिक तथा मछली, मांस, मद्य, नई हाँडी में निर्मित ऊपर का भात—इनसे अपराह्न में उत्तर दिशा में चौराहे पर निम्न मन्त्र पढ़कर बलि देनी चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय अमुकस्य बालकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा"। इस प्रकार ३ दिनों तक बलि देनी चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावें। इसके बाद बालक का कल्याण होता है।

पञ्चमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति कटपूतना नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्वेजयति, स्तन्यं न गृह्णाति, मुष्टिं बध्नाति।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

कुम्भकारचक्रस्य मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा गन्धताम्बूलं, शुक्लपुष्पं, शुक्लौदनं, पञ्च ध्वजाः, पञ्च प्रदीपाः, पञ्च वटकाः, ऐशान्यां दिशि बलिर्दातव्यः। ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यसर्पनिर्मोकगुग्गुलु-निम्बपत्रवासकघृतैर्धूपं दद्यात्। 'ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा'। चतुर्थदिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्॥१८२॥

बालक के जन्म के पाँचवें दिन, पाँचवें महीने या पाँचवें वर्ष के प्रथम दिन बालक को **कटपूतना** नाम की मातृका पकड़ती है। उस मातृका द्वारा पकड़े जाने पर बालक को ज्वर होता है, शरीर में कम्पन होता है, माँ का दूध नहीं पीता है, अपने हाँथों की मुट्ठी बाँधे रहता है। इन लक्षणों की मुक्ति के लिए बलि कर्म करते हैं।

बलि विधान—कुम्हार के चक्र (चाक) से मिट्टी लेकर उक्त मातृका की कल्पित प्रतिमा बनाकर किसी बड़े मिट्टी के पात्र में रखें। उसमें लवङ्ग, एला, कर्पूर युक्त ताम्बूल, श्वेत पुष्प, श्वेत चावलों का भात, ५ शुक्ल ध्वज, ५ प्रज्वलित दीपक, ५ वारा (पकौड़ी विशेष) से ईशान दिशा में निम्नलिखित बलिमन्त्र पढ़कर ३ दिनों तक बलि देनी चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय अमुकस्य बालकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा"। इसके बाद प्रतिदिन शान्ति उदक से बालक को स्नान करावें। पुनः प्रतिदिन शिवनिर्माल्य, सर्पनिर्मोक, गुग्गुलु, निम्बपत्र, सुगन्धबाला एवं घृत मिलाकर बालक को धूपित करें। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करावें। इसके बाद बालक का शुभ (कल्याण) होता है।

षष्ठे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति शकुनिका नाम मातृका। तथा गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्र-भेदञ्च दर्शयति। मुष्टिं बध्नाति। रात्रौ उत्तानौ भवति, ऊर्ध्वं निरीक्षते।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येनं सम्पद्यते शुभम्।

पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लौदनं, रक्तपुष्पं, गन्धताम्बूलं, दश दीपाः, दश पीतध्वजाः, दश स्वस्तिकाः दश वटकाः, क्षीरजम्बुलिकाः, मत्स्यमांससुरा आग्नेय्यां दिशि निशि निष्क्रान्ते मध्याह्ने बलिर्दातव्यः। शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यरसोनगुग्गुलुसर्पनिर्मोकनिम्ब-पत्रघृतैर्धूपं दद्यात्। 'ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा'। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम्॥१८३॥

बालक के जन्म के छठे दिन, छठे महीने या छठे वर्ष के प्रारम्भ के दिन में **शकुनिका** नाम की मातृका पकड़ती है। उसके द्वारा पकड़े जाने पर बालक को ज्वर होता है, शरीर में वेदना होती है, बालक अपने हाँथों की मुट्ठी बाँधे रहता है, रात-दिन उठ-उठकर बैठना चाहता है एवं ऊपर की ओर देखता है। बालक के इन कष्टों की शान्ति के लिए निम्नलिखित बलि देनी चाहिए।

बलि विधान—चावल के आँटा से उक्त मातृका की कल्पित प्रतिमा बनाकर एक बड़े मिट्टी के पात्र में रखनी चाहिए। उस प्रतिमा पर श्वेत भात, पीत पुष्प, रक्तपुष्प, लवङ्ग, एला, कर्पूर से युक्त ताम्बूल रखें, १० प्रज्वलित दीपक, १० पीत वस्त्र का ध्वज, १ स्वस्तिक, उड़द के १० वटक (वारा), दूध की जलेबी, मछली, मांस से युक्त मध्याह्न के पश्चात् आग्नेय दिशा में निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर ३ दिनों तक बलि देनी चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय अमुकस्य बालकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा"। तदनन्तर बालक को शान्तिदायक जल से स्नान कराकर शिवनिर्माल्य, रसोन, गुग्गुलु, सर्पनिर्मोक, निम्बपत्र एवं घृत मिलाकर बालक के शरीर का धूपन करें। चौथे

दिन ब्राह्मणों को भोजन करावें। इस पूरी विधि से बलि कर्म कराने से बालक का कल्याण होता है।

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्णाति शुष्करेवती नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्वेजयति मुष्टिं बध्नाति, रोदिति।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

रक्तपुष्पं, शुक्लपुष्पं, गन्धताम्बूलं, रक्तौदनं, कृशराः, त्रयोदश स्वस्तिकाः, त्रयोदश शष्कुलिकाः, जम्बुलिकाः, मत्स्यमांससुराः, त्रयोदश ध्वजाः, पञ्च प्रदीपाः, पश्चिमायां दिशि ग्रामनिष्काशेऽपराह्णे वृक्षमाश्रित्य बलि-र्दातव्यः, शान्त्युदकेन स्नापयेत्, गुग्गुलुमेषशृङ्गसर्षपोशी-रबालकघृतैर्धूपं दद्यात्। 'ॐ नमो रावणाय दीप्ततेजसे अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा'। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम् ॥१८४॥

बालक के जन्म के सातवें दिन, सातवें मास या सातवें वर्ष के प्रथम दिन में **शुष्करेवती** नाम की मातृका बालक को पकड़ती है। उसके द्वारा पकड़े जाने पर बालक को पहले ज्वर होता है, शरीर में कम्पन होता है, बालक अपने दोनों हाँथों की मुट्ठी बाँधे रखता है एवं रोता है। इन कष्टों से मुक्ति के लिए निम्नलिखित बलि देनी चाहिए।

बलि विधान—एक मिट्टी के नये एवं बड़े शराव में लाल पुष्प, श्वेत पुष्प, लवङ्ग, एला एवं कर्पूर से युक्त ताम्बूल, लाल भात (शालिचावल), कृशरा, १३ स्वस्तिक, १३ पूड़ियाँ, जलेबी, मछली, मांस, मद्य, १३ ध्वजा, ५ प्रज्वलित दीपक, पश्चिम दिशा में गाँव के समीप अपराह्न के समय किसी वृक्ष के समीप निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर ३ दिनों तक वलि देनी चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय अमुकस्य बालकस्य दीपतेजसे हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा"। इस मन्त्र से ३ दिनों तक बलि देनी चाहिए। ततः शान्ति उदक से बालक को स्नान कराकर शिव-निर्माल्य, रसोन, गुग्गुलु, सर्पनिर्मोक, निम्बपत्र एवं घृत मिलाकर बालक को धूपन कराना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार बलि कर्म कराने से बालक का कल्याण होता है।

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति अर्य्यका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः, गृध्रगन्धः पूतिगन्धश्च जायते। आहारं न गृह्णाति, गात्राण्युद्वेजयति।

बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि यतः सम्पद्यते शुभम्।

रक्तपीतध्वजाः, चन्दनं, पीतपुष्पं, शष्कुल्यः, पर्पटिकाः, मत्स्यमांससुराः, जम्बुलिकाः, प्रत्यूषे बलिं दद्यात्। 'ओं नमो रावणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय चतुर्दिश-मोक्षणाय व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ज्वल ज्वल दह दह ओं ह्रीं फट् स्वाहा'। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ १८५॥

बालक के जन्म से आठवें दिन, आठवें मास या आठवें वर्ष के प्रथम दिन में बालक को **अर्य्यका** नाम की मातृका पकड़ती है। उसके द्वारा पकड़े जाने पर बालक को पहले ज्वर होता है, बाल के शरीर से गृध्र पक्षी जैसी दुर्गन्धि निकलती है। बालक आहार नहीं लेता है तथा शरीर में कम्पन होता है। इस सभी लक्षणों को नष्ट करने के लिए बलि कर्म करना चाहिए, जिससे बालक का कल्याण होता है।

बलिकर्म—मिट्टी के एक बड़े एवं नये पात्र में कुछ रक्तवस्त्र के ध्वज, कुछ पीतवस्त्र के ध्वज, चन्दन, पीतपुष्प, पूड़ियाँ, पापड़, मछली, मांस, मद्य तथा जलेबी रखकर प्रातःकाल निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर ३ दिनों तक बलि देनी चाहिए—"ॐ नमो रावणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय चतुर्दिशमोक्षाय व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च दह दह ॐ ह्रीं फट् स्वाहा"। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए जिससे उक्त ज्वरादि कष्ट बालक को छोड़कर चले जाते हैं और बालक स्वस्थ हो जाता है। इस प्रकार बलिकर्म करने से बालक का कल्याण होता है।

नवमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति सूतिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। नित्यं छर्दयति, गात्रभेदं दर्शयति, मुष्टिं बध्नाति, निद्राऽतितरां स्यात्।

बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां निर्माय शुक्ल-वस्त्रेण वेष्टयेत्। शुक्लपुष्पं, शुक्लौदनं, गन्धताम्बूलं, त्रयोदशशुक्लध्वजाः, त्रयोदश प्रदीपाः, त्रयोदश स्व-स्तिकाः, त्रयोदश पुत्तलिकाः, मत्स्यमांससुराः, उत्तर-दिग्विभागे ग्रामनिष्काशे बलिं दापयेत्। शान्त्युदकेन स्नापयेत्। गुग्गुलुनिम्बपत्रगोधूमगोशृङ्गश्वेतसर्षपघृतैर्धूपं दद्यात्। 'ॐ नमो रावणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा'। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम् ॥१८६॥

बालक के जन्म से ९वें दिन, ९वें महीने या ९वें वर्ष के प्रथम दिन में बालक को **सूतिका** नाम की मातृका पकड़ती है। उसके द्वारा बालक को पकड़े जाने पर बालक को पहले ज्वर होता है, प्रतिदिन वमन होता है, शरीर में टूटने जैसी पीड़ा होती है, बालक अपनी मुट्ठी बाँधे रहता है, बालक अत्यन्त निद्रा में रहता है। इन कष्टों को नाश करने के लिए वलि कर्म करना चाहिए।

बलिकर्म—मिट्टी के एक बड़े एवं नये पात्र में नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लेकर उससे सूतिका मातृका की कल्पित प्रतिमा

बनाकर श्वेत वस्त्र में लपेट कर रखें। इसके साथ शेत पुष्प, श्वेत चावल के भात, लौंग, एला, कर्पूर से युक्त ताम्बूल, १३ श्वेत वस्त्र का ध्वज, १३ प्रज्वलित दीपक, १३ स्वस्तिक, १३ पुत्तलिका तथा मछली, मांस, मद्य से युक्त पात्र को गाँव की उत्तर दिशा में गाँव निकास स्थल पर निम्नलिखित मन्त्र से वलि देनी चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा"। इसी प्रकार ३ दिनों तक बलि देनी चाहिए। वलि देने के बाद प्रतिदिन बालक को शान्त्युदक से स्नान कराना चाहिए। स्नान के बाद रोज गुग्गुलु, निम्बपत्र, गोधूम, गोशृङ्ग, पीतसरसो एवं घृत से युक्त बालक का धूपन कराना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। ऐसा करने से सूतिका मातृका बालक को मुक्त कर देती है और बालक स्वस्थ हो जाता है और बालक का कल्याण होता है।

दशमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति निर्ऋता नाम-मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्र-मुद्वेजयति, आत्कारं करोति, रोदिति, मुष्टिं बध्नाति, मूत्रं पुरीषञ्च भवति।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

पारावारमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा, गन्ध-ताम्बूलं, रक्तपुष्पं, रक्तचन्दनं, पञ्च पञ्चवर्णध्वजाः, पञ्च प्रदीपाः, पञ्च स्वस्तिकाः, पञ्च पुत्तलिकाः, मत्स्यमांस-सुराः, वायव्यां दिशि बलिं दद्यात्। काकविष्ठागोमांस-गोशृङ्गरसोनमार्जाररोमनिम्बपत्रघृतैर्धूपयेत्। 'ॐ नमो रावणाय चूर्णितहस्ताय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा'। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्॥१८७॥

बालक के जन्म के दसवें दिन, दसवें मास या दसवें वर्ष के प्रथम दिन में बालक को **निर्ऋता** नाम की मातृका पकड़ती है। उससे द्वारा पकड़े जाने पर सर्वप्रथम बालक को पहले ज्वर होता है। शरीर में कम्पन होता है, आ-आ कर डकारता है, बालक रोता है, अपनी दोनों हाँथों की मुट्ठी बाँधे रहता है, उसे रोते-रोते पेशाब-पखाना हो जाता है। इन लक्षणों से मुक्ति के लिए बलि देनी चाहिए। जिससे बालक का कल्याण होता है।

बलिकर्म—इसके लिए समुद्र के किनारे की मिट्टी लेकर उससे निर्ऋता नाम की मातृका की कल्पित प्रतिमा बनाकर मिट्टी के बड़े एवं नये पात्र में उक्त प्रतिमा को रखें। उसमें लवङ्ग, एला एवं कर्पूर से युक्त ताम्बूल, रक्तपुष्प, रक्तचन्दन, पाँच पृथक् वर्ण के वस्त्रों की ५-५ ध्वजायें, ५ प्रज्वलित दीपक, ५ स्वस्तिक, ५ पुत्तलिका तथा मछली, मांस, मद्य रखकर निम्नलिखित मन्त्र से वलि देनी चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय चूर्णित हस्ताय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा"। इस मन्त्र और उपर्युक्त साधन से ३ दिनों तक बलि देनी चाहिए। बलि कर्म के बाद काकबिष्ठा, गोमांस, गोशृङ्ग, रसोन, मार्जार रोम, निम्बपत्र एवं घृत मिलाकर बालक को धूपन करना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार बलि कर्म एवं ब्राह्मण भोजन से बालक का कल्याण होता है।

एकादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्णाति पिलिपिच्छिका नाम मातृका, तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। आहारं न गृह्णाति, ऊर्ध्वदृष्टिर्भवति, गात्रभङ्ग आत्कारश्च भवति।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्वा रक्तचन्दनं रक्तपुष्पं च तस्या मुखं दुग्धेन सिञ्चेत्। पीतपुष्पं, गन्धताम्बूलं, सप्त पीत-ध्वजाः, सप्त प्रदीपाः अष्टौ वटकाः, अष्टौ शष्कुलिकाः, अष्टौ पूपिकाः, मत्स्यमांससुराः पूर्वस्यां दिशि बलि-र्दातव्यः। शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यगुग्गुलु-गोशृङ्गसर्पनिर्मोकघृतैर्धूपयेत्।

'ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च स्वाहा'। चतुर्थे दिवसे विप्रान् भोजयेत्। ततः सुस्थो भवति बालकस्तेन सम्पद्यते शुभम्॥१८८॥

बालक के जन्म से ११वें दिन, ११वें महीने या ११वें वर्ष के पहले दिन जब बालक को **पिलिपिच्छिका** नाम की मातृका पकड़ती है तो सर्वप्रथम बालक को ज्वर होता है, क़िसी तरह का क्षीर-अन्न आहार नहीं लेता है, ऊपर देखता है, शरीर टूटने जैसी पीड़ा होती है एवं आ-आ कर डकारता है। बालक की इन लक्षणों से मुक्ति के लिए वलि देनी चाहिए। जिससे बालक का कल्याण होता है।

बलिकर्म—श्वेत चावल के आँटे से पिलिपिच्छिका मातृका की कल्पित प्रतिमा बनाकर उसे रक्तचन्दन एवं रक्तपुष्प से अलंकृत कर उसके मुख पर दूध का सिञ्चन करते हैं। पीत पुष्प, लवङ्ग-एला-कर्पूर युक्त ताम्बूल, ७ पीत वस्त्र के ध्वज, ७ प्रज्वलित दीपक, ८ उड़द के वटक, ८ पूड़ियाँ, ८ पूप (पुआ), मछली, मांस, मद्य से युक्त कर पूर्व दिशा में निम्नलिखित मन्त्र से वलि देनी चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय अमुकस्य बालकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च स्वाहा"। इस मन्त्र तथा उपर्युक्त सामग्री से ३ दिनों तक वलि देनी चाहिए। प्रतिदिन शान्त्युदक से बालक को स्नान कराना चाहिए। तथा शिवनिर्माल्य, गुग्गुलु, गोशृङ्ग, सर्पनिर्मोक एवं घृत मिलाकर बालक को शान्त्युदक स्नान के बाद धूपन करना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार बलिकर्म एवं ब्राह्मण भोजन कराने से बालक का कल्याण होता है।

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्णाति कालिका नाम

मातृका, तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। विहस्य वादयति, करेण तर्जयति, गृह्णाति, क्रामति, निश्वसिति मुहुर्मुहुश्छर्दयति, आहारं न करोति।

बलिं तस्याः प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

क्षीरेण पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लकुसुमं, गन्धताम्बूलं, सप्त शुक्लध्वजाः, सप्त शष्कुलिकाः, सप्त प्रदीपाः, करम्भकेण सर्वकर्मबलिं दद्यात्। शान्त्युदकेन स्नापयेत्। श्वेतसर्षपगुग्गुलुशिवनिर्माल्यघृतैर्धूपयेत्। 'ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा'। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम् ॥१८९॥

१२वें दिन, १२वें महीने अथवा १२वें वर्ष के पहले दिन जब बालक को **कालिका** नाम की मातृका पकड़ती है तो सर्वप्रथम बालक को ज्वर होता है। बालक हँसकर बोलता है, तर्जनी अंगुली दिखाकर पास के व्यक्तियों को डराता है, किसी को पकड़ता है, जोरों से निश्वास छोड़ता है, बारम्बार वमन करता है, किसी तरह का आहार नहीं लेता है। बालक की इन लक्षणों से मुक्ति के लिए वलि कर्म करना चाहिए, जिससे बालक का कल्याण होता है।

बलि कर्म—दूध पकाकर खोआ (मावा) बना लें और उससे कलिका मातृका की कल्पित प्रतिमा बना लें। मिट्टी के नये एवं बड़े पात्र में इस क्षीर निर्मित प्रतिमा को रखें, ततः श्वेत पुष्प, लवङ्ग-एला-कर्पूर से युक्त ताम्बूल, ७ पीत वस्त्र के ध्वज, ७ पूड़ियाँ, ७ प्रज्वलित दीपक, दही, श्वेत भात से युक्त निम्नलिखित मन्त्र से बलि देनी चाहिए—"ओऽम् नमो रावणाय अमुकस्य बालकस्य व्याधिं मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा"। इस मन्त्र एवं उपर्युक्त सामग्री से तीन दिनों तक वलि कर्म करना चाहिए। पुनः शान्त्युदक से बालक को तीनों दिन वलि के बाद स्नान कराना चाहिए। स्नान के बाद—श्वेत सरसो, गुग्गुलु, शिव-निर्माल्य एवं घृत से युक्त बालक को धूपित करना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार बलि कर्म, स्नान एवं धूपित करने से बालक का कल्याण होता है।

बालरोग में पथ्य

यत्पथ्यं यदपथ्यं च नृणामुक्तं ज्वरादिषु।
तत्तद्विधेयमौचित्याद्बालानां तेषु जानता ॥१९०॥

ज्वरादि रोगों में जो पथ्य एवं अपथ्य कहा गया उसे बुद्धिमान् चिकित्सक बालकों के रोगों में भी रोगानुसार उचित मात्रा में दें।

बालकों के पारिगर्भिक रोगों में पथ्यापथ्य

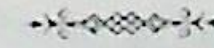
पूर्वं पथ्यमपथ्यं च मन्दाग्नौ यत् प्रकीर्त्तितम्।
औचित्यात्ते भवेतां हि बालानां पारिगर्भिके ॥१९१॥

मन्दाग्नि रोगों में पहले जो पथ्यापथ्य कहा गया है वही पथ्यापथ्य उचित रूप में बालकों को पारिगर्भिक रोग में देना चाहिए।

बालग्रह पीड़ित बालकों के लिए पथ्यापथ्य

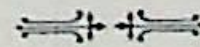
आगन्तन्मादिनां पथ्यमपथ्यं च यदीरितम्।
औचित्याद् योजयेत्तत्तद् बालेषु ग्रहरोगिषु ॥१९२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां बालरोगाधिकारः।



आगन्तुक उन्माद रोगियों के लिए जो पथ्यापथ्य कहा गया है, यह पथ्यापथ्य बालकों के ग्रहपीड़ित रोगों में उचित मात्रा में देना चाहिए।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य बालरोगाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ विषरोगाधिकारः (७२)

स्थावरविष चिकित्सा (भा.प्र.)

स्थावरेण विषेणार्त्तं नरं यत्नेन वामयेत्।
वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम् ॥१॥
विषमत्यन्तमुष्णं च तीक्ष्णं च कथितं यतः।
अतः सर्वविषे युक्तः परिषेकस्तु शीतलः ॥२॥
औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याद् विशेषेण विषं पित्तं प्रकोपयेत्।
वमितं सेचयेत्तस्माच्छीतलेन जलेन च ॥३॥
पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विषघ्नं भेषजं द्रुतम्।
भोक्तुमन्नरसं दद्यात् सितया च समन्वितम् ॥४॥

स्थावरविष से पीड़ित व्यक्ति को पहले वमन कराना चाहिए। वमन के जैसी स्थावरविष-नाशनार्थ कोई अन्य चिकित्सा नहीं है। विष स्वभाव से ही अति उष्णवीर्य एवं तीक्ष्ण होता है। अत: सभी विषों में परिषेक आदि शीतल क्रिया (शीतोपचार) करनी चाहिए। विष अपने उष्ण एवं तीक्ष्ण गुणों के द्वारा पित्त को प्रकुपित करता है। अत: वमन कराने के बाद रोगी को शीतल जल से सेचन करना चाहिए तथा शीघ्र ही मधु एवं घृत के साथ विषघ्न औषधों का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही चीनी के साथ अम्लरस युक्त पदार्थ खिलाना चाहिए।

जङ्गमविष चिकित्सा (चक्रदत्त)

अरिष्टाबन्धनं मन्त्रप्रयोगश्च विषापहः।
दंशनं दंशकस्याहेः फलस्य मृदुनोऽपि वा ॥५॥

सर्प काटने पर तुरन्त काटे हुए स्थान से ४ अंगुल ऊपर सूती मोटे धागे एवं रेशमी धागे आदि से कसकर बाँधना चाहिए तथा सर्पविष मन्त्र-विशेषज्ञ द्वारा मन्त्रों के प्रयोग से विषनाशन करना चाहिए। यदि सर्प पास में ही बैठा हो तो सर्पदष्ट व्यक्ति उस साँप के पूँछ आदि भाग में काटे। यदि ऐसा नहीं कर सकता हो अथवा साँप काटकर भाग गया हो तो मृदु कदली फल, कमल-नाल आदि मृदु फलों को सर्पदष्ट व्यक्ति काट लें।[१]

जङ्गमविष चिकित्सा

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः।
दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाश्चतुरङ्गुले ॥६॥
न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम्।
दहेद् दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते ॥७॥

शाखाओं (दोनों हाथ एवं दोनों पैर) में यदि सर्प ने काटा हो, तो दंश स्थान से चार अंगुल ऊपर कपास या रेशम के मजबूत धागे (डोरी) से कसकर बाँधना चाहिए। बन्धन लगाने से विषसर्वशरीर में नहीं फैलता है तथा उस स्थान को तेज चाकू या ब्लेड से काटकर रक्त निकाल देना चाहिए तथा जहाँ बन्धन नहीं लगा सकते हैं उस स्थान का मांस जला देना चाहिए।

प्रत्यङ्गिरामूल प्रयोग (चक्रदत्त)

मूलं तण्डुलवारिणा पिबति यः प्रत्यङ्गिरासम्भवं
निष्पिष्टं शुचिभद्रयोगदिवसे तस्याहिभीतिः कुतः।
दर्पादिव फणी यदा दशति तं मोहान्वितो मूलपं
स्थाने तत्र स एव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात् ॥८॥

प्रत्यङ्गिरा (कण्टकशिरीष) वृक्षमूल की त्वचा को जो व्यक्ति आषाढ मास के उत्तम (पुष्य, अनुराधा, श्रवण, मृगशिरा आदि) नक्षत्रों में तण्डुलोदक के साथ सिल पीसकर पीता है, उसे सर्पदष्ट का भय नहीं रहता है। क्रोधवश यदि किसी सर्प ने उस व्यक्ति को काटा भी हो तो वह सर्प उसी स्थान पर शीघ्र ही मर जाता है।

सर्पविष से रक्षा का उपाय (चक्रदत्त)

मसूरं निम्बपत्राभ्यां योऽत्ति मेषगते रवौ।
अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषात् तस्य न संशयः ॥९॥

मेष राशि में सूर्य स्थित होने पर अर्थात् वैशाख महीना में १ मसूर (एक नग) और दो निम्ब पत्र को एक साथ चबाकर खाता है, उसे एक वर्ष तक सर्प काटने का भय नहीं रहता है।

सर्पविष से रक्षा का उपाय (चक्रदत्त)

धवलपुनर्नवजटया तण्डुलजलपीतया च पुष्यर्क्षे।
अपहरति खलु विषधरोपद्रवमावत्सरं पुंसाम् ॥१०॥

पुष्यनक्षत्र में १ तोला (१२ ग्राम) श्वेत पुनर्नवा के मूल को जल के साथ सिल पर अतिसूक्ष्म पीसें और ८ तोले तण्डुलोदक में मिलाकर छान लें तथा व्यक्ति को पिला दें तो पीने वाले व्यक्ति को एक वर्ष तक सर्पविष के उपद्रव का भय नहीं रहता है।

१.(क) दशस्योपरि बन्धनीयादरिष्टां चतुरङ्गले।
क्षौमादिभिर्वेणिकया सिद्धैर्मन्त्रैश्च मन्त्रवित् ॥
(अ.हृ.उ. ३६।४२)
(ख) बन्धेन हि विषं स्तभ्यते। जलं यथा सेतुबन्धेन। अस्य च दष्टस्य, सिरा विषं बन्धनपीडिता न वहन्ति। (अरुणदत्त)

सर्पविष चिकित्सा-१ (चक्रदत्त)

गृहधूमो हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम्।
अपि वासुकिना दष्टः पिबेद्दधिघृताप्लुतम् ॥११॥

गृहधूम, हल्दी, दारुहल्दी, तण्डुलीयक (चौलाई शाक) समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और इस चूर्ण से दुगुनी मात्रा में घृत एवं गोदधि में मिलाकर पिलाने से वासुकीसाँप से दष्ट व्यक्ति भी शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।

सर्पविष चिकित्सा-२ (चक्रदत्त)

कूलिकामूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥१२॥

कुचिलामूलचूर्ण को ४ गुना जल में घोलकर कपड़ा से छानकर दोनों नाकों में नस्य देने से काल रूपी सर्प ने यदि काटा हो तो भी वह व्यक्ति जीवित रहता है।

सर्पविष चिकित्सा-३ (चक्रदत्त)

श्लेष्मणः कर्णगूथस्य वामानामिकया कृतः।
लेपो हन्याद्विषं घोरं नृमूत्रसेचनं तथा ॥१३॥

बायें हाथ की अनामिका अंगुली से मुख की श्लेष्मा (कफ) और कान का मैल (कर्णगूथ) मिलाकर सर्पदष्ट स्थल पर लगाकर तुरन्त नरमूत्र से सिञ्चन करने से भयंकर सर्प से काटा हुआ व्यक्ति भी जीवित हो जाता है।

सर्पविष चिकित्सा-४ (चक्रदत्त)

शिरीषपुष्पस्वरसे भावितं श्वेतमरिचम्।
सप्ताहं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जने हितम् ॥१४॥

शिरीषपुष्पस्वरस से एक सप्ताह तक भावित श्वेतमरिच (सहिजनफल) चूर्ण का नेत्रों में अञ्जन लगाने से या १ से ३ ग्राम चूर्ण को ५० मि.ली. जल में घोलकर पिलाने से सर्पविष से पीड़ित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

सर्पविष चिकित्सा-५ (चक्रदत्त)

द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रं चतुष्पलम्।
अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत् सुखप्रदम् ॥१५॥

तगर और कूठ १-१ पल (४६-४६ ग्राम) चूर्ण को गोघृत ९३ ग्राम एवं मधु ९३ ग्राम में घोलकर पिलाने से तक्षक सर्प से काटा हुआ व्यक्ति भी शीघ्र ही निर्विष हो जाता है।

सर्पविष चिकित्सा-६ (चक्रदत्त)

वन्ध्याकर्कोटजं मूलं छागमूत्रेण भावितम्।
नस्यं काञ्जिकसम्पिष्टं विषोपहतचेतसः ॥१६॥

जंगली ककोंटज (खेखसा) मूल को सुखाकर चूर्ण करे और बकरी के मूत्र से भावित कर सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। ततः काञ्जी के साथ इस भावितचूर्ण को घोलकर वस्त्रपूत करें और सर्पविष से पीड़ित बेहोश व्यक्ति की नाकों में नस्य देने से बेहोशी दूर हो जाती है।

विषपान चिकित्सा (चक्रदत्त)

पीते विषे स्याद्वमनं त्वक्स्थे।
प्रदेहसेकादि सुशीतलञ्च ॥१७॥

विष (स्थावर या औद्भिद्) पान किये हुए रोगी को पहले वमन कराना चाहिए। यदि विष त्वचा में हो तो शीतलप्रदेह, प्रसेक आदि उपाय से चिकित्सा करनी चाहिए।

कण्ठगत एवं आमाशय विष चिकित्सा (चक्रदत्त)

कपित्थमांसं ससिताक्षौद्रं कण्ठगते विषे।
लिह्यादामाशयगते ताभ्यां चूर्णपलं नतात् ॥१८॥

कण्ठगत विष होने पर अर्थात् कण्ठ में विष रहने पर कपित्थ मांस (कपित्थमांसं = कपित्थफलमज्जा) २५ ग्राम को सिल पर जल के साथ पीसकर १२ ग्राम मधु एवं १२ ग्राम मिश्री मिलाकर पिलाने से तथा आमाशयगत विष रहने पर तगरमूलचूर्ण १२ ग्राम को ३० ग्राम मिश्रीचूर्ण और ३० ग्राम मधु मिलाकर चटाने से विषबाधा नष्ट हो जाती है।

पक्वाशयगत विष चिकित्सा (चक्रदत्त)

विषे पक्वाशयगते पिप्पलीं रजनीद्वयम्।
मञ्जिष्ठां च समं पिष्ट्वा गोमूत्रेण नरः पिबेत् ॥१९॥

पक्वाशयगत विषनाशनार्थ पिप्पली, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ—ये चारों द्रव्य १-१ भाग लेकर सूक्ष्मचूर्ण करें। १२ ग्राम लेकर सिल पर गोमूत्र के साथपीस कर ५० मि.ली. गोमूत्र में घोल पिला दें। ऐसा दिन में २ बार करना चाहिए। इस पेय से रोगी को लाभ होता है।

कन्द (मूल) विष पान एवं विषविद्ध बाण की चिकित्सा (चक्रदत्त)

रजनीसैन्धवक्षौद्रसंयुक्तं घृतमुत्तमम्।
पानं मूलविषार्त्तस्य दिग्धविद्धस्य चेष्यते ॥२०॥

कन्द या मूल विष खाने वाले तथा विष बिद्ध बाण से आहत व्यक्ति को हल्दीचूर्ण तथा सैन्धवचूर्ण ६-६ ग्राम तथा २३ ग्राम मधु एवं २३ ग्राम गोघृत मिलाकर दिन में २-३ बार पिलाने से बहुत लाभ होता है।

संयोगज विष की चिकित्सा (चक्रदत्त)

सितामधुयुतं चूर्णं ताम्रस्य कनकस्य वा।
लेहः प्रशमयत्युग्रं सर्वसंयोगजं विषम् ॥२१॥

२. रम्भाखण्डमृणालकोमलफलं दन्तैर्दशत्याशु यत्।
गच्छेत् तत्क्षणमेव तस्य गरलं तद्दृष्टवस्त्वन्तरम्।
दंशे नीरसतां नयेच्च बहुधा सम्बन्ध्य हस्तेन वै ॥ (वृन्दमाधव)

संयोगजविष से पीड़ित व्यक्ति को ताम्रभस्म या सुवर्णभस्म १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु एवं चीनीचूर्ण ३-३ ग्राम मिश्रित कर चटाने से अत्युग्र संयोगजविष नष्ट हो जाता है।

गर तथा अन्य विष चिकित्सा (चक्रदत्त)

अङ्कोठमूलनिक्वाथं फाणितं सघृतं लिहेत्।
तैलाक्तः स्विन्नसर्वाङ्गो गरदोषविषापहः ॥२२॥

अङ्कोलमूल के क्वाथ में फाणित (राब=गुड़ का एक प्रकार) तथा गोघृत मिलाकर पिलाने से तथा अङ्कोलमूलक्वाथ से साधित तिलतैल का अभ्यङ्ग कर सर्वाङ्ग स्वेदन करने से गरविष तथा अन्य विष नष्ट हो जाते हैं।

कीट-लूतादि विष चिकित्सा (चक्रदत्त)

कटभ्यर्जुनशैरीयशेलुक्षीरिद्रुमत्वचः ।
कषायकल्कचूर्णाः स्युः कीटलूताविषापहाः ॥२३॥

कटभी (कण्टकशिरीष) या ज्योतिष्मती, अर्जुनत्वक्, शैरेयक (कटसरैया), लिसोड़ा त्वक्, पञ्चक्षीरी वृक्ष (पीपर, वट, गूलर, पर्कटी एवं पारसपीपल) की छाल प्रत्येक समान भाग लेकर चूर्ण करें तथा कल्क एवं कषाय बनायें। इस चूर्ण का प्रक्षेपण, कल्क का लेपन तथा क्वाथ का व्रणों पर सेंचन करने से विषैले कीड़े-लूता आदि के दष्ट जन्य विष नष्ट हो जाते हैं।

मूषिक विष चिकित्सा (चक्रदत्त)

आगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ।
लेपो जयत्याखुविषं कणिकायाश्च पातनम् ॥२४॥

गृहधूम, मंजीठ, हल्दी एवं सैन्धवलवण—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। आवश्यकतानुसार जल से सिल पर पीसकर मूषिकदंश स्थान पर लेप लगाने से कुछ दिनों में मूषिकविष नष्ट हो जाता है और कर्णिका (दष्ट शोथ जन्य ग्रन्थि) को भी निकाल देता है।

नख-दन्त जन्य विष चिकित्सा (अष्टाङ्गहृदयम्)

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपादिका।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः ॥२५॥

बाकुचीबीज, शालवृक्षत्वक्, गोजिह्वा, हंसपदी, हल्दी, दारु-हल्दी एवं गैरिक—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। सिल पर जल के साथ पीसकर व्रणित या दष्ट स्थान पर लेप करने से कुत्ते, सियार (श्रृंगाल), बिली आदि से काटे हुए रोगी का विष नष्ट हो जाता है।

वृश्चिक विष चिकित्सा (चक्रदत्त)

यः कासमर्दपत्रं वदने निक्षिप्य कर्णफूत्कारणम्।
मनुजो ददाति शीघ्रं जयति विषं वृश्चिकानां सः ॥२६॥

कासमर्द (कसौंदी) के पत्ते को चबाकर वृश्चिकदंश से पीड़ित व्यक्ति के कान में फूँकने से वृश्चिकदंश नष्ट हो जाता है।

वृश्चिक विष चिकित्सा

उष्णं गव्यघृतं चापि सैन्धवेन समन्वितम्।
वृश्चिकस्य विषं हन्ति लेपनात्पर्वतात्मजे! ॥२७॥

हे पार्वती ! गरम गोघृत में सैन्धवलवण मिलाकर वृश्चिक दंश स्थल पर लेप करने से वृश्चिकविष नष्ट हो जाता है।

वृश्चिक विष चिकित्सा

सम्पिष्य वारिणैकत्र सतालं नवसादरम्।
वृश्चिकेन कृते दंशे लेपनं विषनाशनम् ॥२८॥

हरताल एवं नवसादर समभाग में सिल या खरल में जल के साथ पीसकर वृश्चिकदंश स्थल पर लेप करने से वृश्चिकविष नष्ट हो जाता है।

वृश्चिकदंश चिकित्सा (चक्रदत्त)

दंशे भ्रामणविधिना वृश्चिकविषहृत्कुठेरपादगुडिका।
पुरधूमपूर्वमर्कच्छदमिव पिष्ट्वा कृतो लेपः ॥२९॥

तुलसीमूल का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर जल के साथ भावना देकर १-१ ग्राम मात्रा की वटी बनाकर धूप में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी को वृश्चिकदंश स्थल पर घुमाने से वृश्चिकदंश नष्ट हो जाता है। जैसे कि वृश्चिकदंश पर गुग्गुलु का धूपन करने के बाद अर्कपत्र का लेप करने से वृश्चिकविष नष्ट होता है।

वृश्चिकविष वेदनाहर (चक्रदत्त)

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः।
सुखोष्णो वृश्चिकार्त्तानां सुलेपो वेदनापहः ॥३०॥

श्वेतजीरा एवं सैन्धवलवण समभाग लेकर सिल पर जल के साथ पीसें और उसे गरम कर लेप लगाने से वृश्चिकदंश की वेदना नष्ट हो जाती है।

गोधा (गोह) शरट (गिरगिट) विष चिकित्सा (चक्रदत्त)

कुङ्कुमकुनटीकर्कटपलहरितालैः कुसुम्भसम्मिलितैः।
कृतगुडिकाभ्रामणतो विदष्टगोधाशरटादिविषजित् ॥३१॥

केशर, मनःशिला, केकड़े का मांस, हरताल एवं कुसुम्भ पुष्प—सभी द्रव्य १-१ भाग लेकर पृथक्-पृथक् चूर्ण करें और जल के साथ पीसकर १-१ ग्राम की वटी बना कर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। गोह तथा गिरगिट आदि से दष्ट व्यक्ति के दंश स्थान पर घुमाने से इनका विषाक्त प्रभाव नष्ट हो जाता है।

गोधा-वरटी (बर्रे) विष चिकित्सा (चक्रदत्त)

अङ्कोठपत्रधूमो मीनविषं झटिति विघट्टयेच्छृङ्गी ।
गोधावरटीविषमिव लेपेन कूटकराणिजटा ॥३२॥

शृङ्गी मछली के दष्ट वाले रोगी को अङ्कोलपत्र का धूम देने से विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है तथा बङ्गाल में प्रसिद्ध 'कूटकराणि' नामक वनस्पति के मूल का लेप करने से गोधा और वरटी (बर्रे) विष नष्ट हो जाता है।

भेक (मेढक) विष चिकित्सा (चक्रदत्त)

लेप इव भेकगरलं शिरीषबीजैः स्नुहीपयःसिक्तैः ।
हरति गरलं त्र्यहमशिताऽङ्कोठजटा कुष्ठसम्मिलिता ॥३३॥

शिरीषबीज को स्नुहीदूध में पीसकर मेढक के दंश स्थान पर लेप करने से मेढकविष तुरन्त उतर जाता है तथा अङ्कोटमूल एवं कूठमूल को जल में पीसकर तीन दिनों तक लेप करने से मेढकविष नष्ट हो जाता है।

मक्षिकाविष चिकित्सा (चक्रदत्त)

मरिचमहौषधबालकनागाह्वैर्मक्षिकाविषे लेपः ।
लालाविषमपनयतो मूले मिलिते पटोलनीलिकयोः ॥३४॥

मरिच, सोंठ, सुगन्धबाला एवं नागकेशर—समभाग का सूक्ष्म चूर्ण करें और जल में घोलकर लेप करने से मक्षिकादंश नष्ट हो जाता है। पटोलमूल एवं नीलीमूलत्वक् समभाग लेकर जल से पीसकर लेप करने से लालाविष नष्ट हो जाता है।

कुत्ते के विष की चिकित्सा

शिरीषस्य तु बीजं वै स्नुहीक्षीरेण घर्षितम् ।
तल्लेपेन महादेवि ! नश्येत् कुक्कुरजं विषम् ॥३५॥

शिरीषबीज को स्नुहीक्षीर में पीसकर लेप करने से कुत्ते का विष नष्ट हो जाता है।

कुत्ते के विष की चिकित्सा

पिष्टतण्डुलमध्यस्थं भक्षितं मेषलोमकम् ।
कुक्कुरस्य विषं हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥३६॥

चावल को पीसें और जल मिलाकर (रोटी बनाने जैसा) कल्कवत् करें। उसमें भेंड़ के रोमों को रखकर गोल पिण्ड बना लें और कुत्ते द्वारा काटे हुए विषाक्त रोगी को निगला दें तो कुत्ते से काटा हुआ रोगी का विष नष्ट हो जाता है।

कुत्ते के विष की चिकित्सा (चक्रदत्त)

कनकोदुम्बरफलमिव तण्डुलजलपिष्टं पीतमपहरति ।
कनकदलद्रवघृतगुडदुग्धपलैकं शुनो गरलम् ॥३७॥

धतूरपत्र तथा गूलर के फल को समभाग लेकर तण्डुलोदक के साथ पीसकर घृत, गुड़ एवं गोदुग्ध ५०-५० मि.ली. मिलाकर पिलाने से कुत्ते का विष नष्ट हो जाता है।

लूताविष चिकित्सा (भा.प्र.)

रजनीयुग्मपत्तङ्गमञ्जिष्ठानागकेशरैः ।
शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूताविषं हरेत् ॥३८॥

हल्दी, दारुहल्दी, पत्तङ्गचन्दन, मंजीठ एवं नागकेशर—इन्हें समभाग में लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः शीतलजल में घोलकर लूता दष्ट स्थान पर लेप करने से लूताविष नष्ट हो जाता है।

दशाङ्गअगद (अष्टाङ्गहृदय)

वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ।
पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ।
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥३९॥

१. वच, २. हिङ्गु, ३. विडङ्ग, ४. सैन्धवलवण, ५. गजपिप्पली, ६. पाठा, ७. अतीस, ८. सोंठ, ९. पीपर तथा १०. मरिच—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम की मात्रा में जल के साथ सेवन करें। इसे दिन में २-३ बार लेना चाहिए। इसका निर्माण आचार्य काश्यप ने किया था।

जलौकाविष चिकित्सा (चक्रदत्त)

कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम् ॥४०॥

जो कीटदंश प्रकरण में उपाय हैं उसे ही जलौकाविष में प्रयोग करना चाहिए।

अजितअगद

विडङ्गपाठात्रिफलाऽजमोदा-
हिङ्गूनि वक्रं त्रिकटूनि चैव ।
तथैव वर्गो लवणस्य सूक्ष्मः
सचित्रकः क्षौद्रयुतो विधेयः ॥४१॥
शृङ्गे गवां शृङ्गमयेन चैव
प्रच्छादितः पक्षमुपेक्षितश्च ।
एषोऽगदः स्थावरजङ्गमानां
जेताविषाणामजितो हि नाम्ना ॥४२॥

१. विडङ्ग, २. पाठा, ३. आमला, ४. हरीतकी, ५. बहेड़ा, ६. अजमोदा, ७. हींग, ८. सुगन्धबाला, ९. सोंठ, १०. पीपर, ११. मरिच, १२. सैन्धवलवण, १३. सामुद्रलवण, १४. सौवर्चललवण, १५. विड्लवण, १६. औद्भिल्लवण, १७. चित्रकमूल—इन्हे समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें तथा मधु में मिश्रित कर गाय के शृङ्ग में भरें और गाय के शृङ्ग के ढक्कन से औषधि युक्त शृङ्ग का मुख ढक दें। १५ दिनों के बाद इस गोशृङ्ग से औषधि को निकालकर १-१ चम्मच गोदुग्ध या जल से सेवन करें। इसके सेवन से स्थावर एवं जङ्गमविष नष्ट हो जाता है। इसे 'अजित' अगद कहते हैं।

सप्तधातुगतविषनाशार्थअपराजिता अगद

अपराजिताया मूलं घृतेन त्वग्गतं विषम्।
पयसाऽसृग्गतं हन्ति मांसगं कुष्ठचूर्णतः ॥४३॥
अस्थिगं रजनीयुक्तं मेदोगं काकोलीयुतम्।
मज्जगं पिप्पलीयुक्तं चण्डालीकन्दसंयुतम्।
शुक्रगं हन्ति लौहित्यं तस्माद्देयाऽपराजिता ॥४४॥

(१) त्वचागत विषहरणार्थ अपराजितामूलचूर्ण ३ ग्राम घृत के साथ लेना चाहिए। (२) रक्तगत विषहरणार्थ अपराजितामूलचूर्ण को दूध से देना चाहिए। (३) मांसगत विषहरणार्थ ३ ग्राम अपराजितामूलचूर्ण में कुष्ठचूर्ण १ ग्राम मिलाकर देना चाहिए। (४) मेदोगत विषहरणार्थ ३ ग्राम अपराजितामूलचूर्ण में १ ग्राम काकोलीचूर्ण मिलाकर जल के साथ दिन में २-३ बार सेवन कराना चाहिए। (५) अस्थिगत विषहरणार्थ ३ ग्राम अपराजिता-मूलचूर्ण में १ ग्राम हल्दीचूर्ण मिलाकर दिन में २-३ बार जल से सेवन कराना चाहिए। (६) मज्जागत विषहरणार्थ ३ ग्राम अपराजितामूलचूर्ण में १ ग्राम पिप्पलीचूर्ण मिलाकर जल के साथ दिन में २-३ बार सेवन कराना चाहिए। (७) शुक्रगत विष में ३ ग्राम अपराजितामूलचूर्ण में १ ग्राम चाण्डालीकन्दचूर्ण (चमार-आलूचूर्ण) मिलाकर जल के साथ देना चाहिए। सभी धातुगत विषों में ७ दिनों तक औषधि देनी चाहिए।

महाद्भुद्विषघ्नयोग

द्वे हरिद्रे शिला तालं कुङ्कुमं मुस्तकं जलैः।
गुडिकालेपमात्रेण विषं हन्ति महाद्भुतम् ॥४५॥

हल्दी, दारुहल्दी, ३. मन:शिला, ४. हरताल, ५. केशर, ६. नागरमोथा—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और जल से पीसकर गुटिका बनाकर सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। दंश स्थान पर इस गुटिका को जल में घिसकर लेप करने से शीघ्र ही विष नष्ट होता है। इसे महाद्भुद्‌योग कहते हैं।

भयङ्करसर्पविष नाशक योग

घृतमधुनवनीतं पिप्पलीशृङ्गबेरं
मरिचमपि तु दद्यात् सप्तमं सैन्धवेन।
यदि भवति सरोषैस्तक्षकैर्वाऽपि दष्टो-
ऽगदमिह खलु पीत्वा निर्विषं तत्क्षणेन ॥४६॥

१. घृत, २. मधु, ३. नवनीत (मक्खन), ४. पीपर, ५. सोंठ, ६. मरिच, ७. सैन्धवलवण—इन्हें समभाग लें और सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। क्रुद्ध होकर भी यदि तक्षक (सर्पश्रेष्ठ) दंश किया हो तो भी बार-बार इस चूर्ण को ३-३ ग्राम की मात्रा में जल के साथ पिलाने भयंकर सर्पविष नष्ट हो जाता है।

सर्पविषजन्य मूर्च्छाहर अञ्जन (वङ्गसेन)

नक्तमालफलं व्योषं बिल्वमूलं निशाद्वयम्।
सौरसं पुष्पमाजं वा मूत्रं बोधनमञ्जनम् ॥४७॥

१. बृहत्करञ्जफल, २. सोंठ, ३. पीपर, ४. मरिच, ५. बिल्वमूलत्वक्, ६. हल्दी, ७. दारुहल्दी तथा ८. तुलसीमञ्जरी (पुष्प)—इन्हें समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। बकरे के मूत्र में इस चूर्ण को पीसकर अञ्जन करने से सर्पविष जन्य मूर्च्छा नष्ट हो जाती है।

सर्पविषहर उपाय

जलेन लाङ्गलीकन्दं नस्यं सर्पविषापहम्।
वारिणा टङ्गणं पीतमथवाऽर्कस्य मूलकम् ॥४८॥

लाङ्गलीकन्द (कलिहारीमूल) को जल के साथ पीसकर स्वरस का नस्य लेने से या शुद्ध टङ्कण को जल में घोलकर पीने से अथवा अर्कमूलत्वक् को जल से सिल पर पीसकर पीने से सर्प विष नष्ट हो जाता है।

कूलिकादिवटी (चक्रदत्त)

कूलिकः सप्तपर्णश्च कुष्ठं तोलकसम्मितम्।
माषमानं तथा दारु मर्दयेदर्कवारिणा ॥४९॥
सर्षपाभां वटीं कृत्वा योजयेत्पयसा सह।
अपि तक्षकदष्टञ्च मृतकल्पं हतस्वरम् ॥५०॥
पुनः सञ्जीवयेदाशु सर्वक्ष्वेडविनाशिनी।
कूलिकादिर्वटी हन्ति ज्वरांश्च विषमांस्तथा ॥५१॥

१. कूलिक (औषधिविशेष सर्पविषश्च या कालिया कड़ा मूल), २. सप्तपर्ण, ३. कूठ—तीनों द्रव्य १२-१२ ग्राम तथा सोमलविष (Arsenic oxide) १ ग्राम लें। तीनों काष्ठौषधों का सूक्ष्म चूर्ण करके एक खरल में रखें। ततः १ ग्राम संखिया मिलाकर अर्कपत्रस्वरस में मर्दन कर सरसों बराबर की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। भयङ्करसर्प द्वारा दष्ट अथवा तक्षकसर्प द्वारा दष्ट व्यक्ति जो मृतक जैसा अथवा दुर्बल स्वर से युक्त हो को १ वटी दूध के साथ पिलाने से वह शीघ्र ही जीवित होकर स्वस्थ हो जाता है। इसके प्रयोग से विषमज्वर भी नष्ट हो जाता है। इसे कूलिकादिवटी कहते हैं।

भीमरुद्ररस-१ (र.सा.सं.)

सूतराजस्य तोलैकं गन्धकस्य तथैव च।
अभ्रात् कर्षं ततो देयं तोलैकं कान्तलौहकम् ॥५२॥
परोक्तेनौषधेनैव भावयेच्च पृथक् पृथक्।
विशालाबृहतीब्राह्मी सौगन्धिकसुदाडिमैः ॥५३॥
मर्कट्याश्चात्मगुप्तायाः स्वरसेन पृथक् पृथक्।
एकरक्तिकमानेन वटिकां कारयेद् भिषक् ॥५४॥

वटीमेकां भक्षयित्वा पिबेच्छीतजलन्ततः।
भीमरुद्रो रसो नाम चासाध्यमपि साधयेत्।
कुक्कुरस्य शृगालस्य विषं हन्ति सुदुस्तरम् ॥५५॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. अभ्रकभस्म, ४. कान्तलौहभस्म—प्रत्येक १-१ भाग लें।

भावना—१. इन्द्रायणमूल, २. बृहतीमूल, ३. ब्राह्मी, ४. नीलकमल, ५. अनारदाना, ६. अपामार्ग, ७. केवाँचबीज—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें। सभी द्रव्यों के क्वाथ से पृथक्-पृथक् १-१ भावना देकर १२५ मि.ग्रा. (१-१ रत्ती) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। शीतल जल से १-१ वटी प्रातः- सायं सेवन करने से असाध्य एवं भयानक कुत्ते तथा शृगाल का विष नष्ट हो जाता है।

भीमरुद्ररस-२

मनःशिलालमरिचैर्दारुणा दरदेन च।
अपामार्गस्य हेम्नश्च हयमारशिरीषयोः ॥५६॥
मूलै रुद्राक्षतोयेन विष्णुक्रान्ताऽम्बुना ततः।
शतधा भावितैः कुर्याद् वटिका मुद्गसम्मिताः ॥५७॥
व्यालदष्टं पीतविषं निरिन्द्रियमचेतनम्।
पुनः सञ्जीवयेदेष भीमरुद्राभिधो रसः ॥५८॥

१. शुद्ध मनःशिला, २. शुद्ध हरताल, ३. मरिचचूर्ण, ४. शुद्ध संखिया, ५. शुद्ध हिङ्गुल, ६. अपामार्गमूलचूर्ण, ७. धत्तूरमूलचूर्ण, ८. करवीरमूलचूर्ण, ९. शिरीषमूलत्वक्चूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम लेकर खरल में मर्दन करें। ततः रुद्राक्षफल क्वाथ एवं अपराजिताक्वाथ की ५०-५० भावना इस प्रकार दोनों से कुल १०० भावना दें। मुद्ग (मूँग) के बराबर वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। सर्पदष्ट एवं विषपान के बाद अचेतन एवं इन्द्रिय ज्ञान शून्य होने पर १ वटी दूध के साथ लेने पर मनुष्य स्वस्थ एवं जीवित हो जाता है।

विषवज्रपातरस (र.सा.सं.)

निशां सटङ्कञ्च सजातिकोषं
तुत्थं समांशं कुरु देवदाल्याः।
रसेन पिष्ट्वा विषवज्रपातो
रसो भवेत् सर्वविषापहन्ता ॥५९॥
निष्कोऽस्य सञ्जीवयति प्रयुक्तो
नृमूत्रयोगेन च कालदष्टम्।
जटाविषेणाकुलितं तथाऽन्यै-
र्विषैर्नरं चाशु तथाऽऽतुरं च ॥६०॥

१. हल्दीचूर्ण, २. शुद्ध टङ्कण, ३. जावित्रीचूर्ण, ४. शुद्ध तुत्थ—सभी द्रव्य १-१ भाग लें। इन्हें एक खरल में मर्दन कर देवदालीस्वरस की भावना देकर १ दिन तक मर्दन कर निष्क प्रमाण = २४ रत्ती (३-३ ग्राम) की बड़ी-बड़ी गुटिका बनाकर धूप में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। सभी विषों को नष्ट करने वाली इस औषधि को नरमूत्र के अनुपान से १ वटी प्रयोग करना चाहिए। काल रूपी सर्प के दष्ट करने पर तथा मूल (कन्द) विष को खा लेने पर विषार्त मनुष्य शीघ्र ही स्वस्थ हो जाते हैं।

तण्डुलीयघृत (वङ्गसेन)

तण्डुलीयकमूलेन गृहधूमेन चैकतः।
क्षीरेण च घृतं सिद्धं समस्तविषरोगनुत् ॥६१॥

१. गोघृत ७५० ग्राम, २. तण्डुलीय (चौराईशाकमूल) स्वरस ३ लीटर तथा ३. गोदुग्ध ३ लीटर।

कल्क—१. तण्डुलीयमूल ९३ ग्राम तथा २. गृहधूम ९३ ग्राम लें। सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः सिल पर तण्डुलीय एवं गृहधूम चूर्ण दोनों को एक साथ पीसकर कल्क बना लें। कल्क एवं तण्डुलीयस्वरस के सूखने पर उक्त घृत में दूध के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें। शीतल होने पर घृत को काचपात्र में संग्रहीत करें। कल्क से भी थोड़ा घृत विधिपूर्वक निकाल लें।

मृत्युपाशच्छेदि घृत (भा.प्र.)

अभयां रोचनां कुष्ठमर्कपत्रं तथोत्पलम्।
नलवेतसमूलानि गरलं सुरसां तथा ॥६२॥
सकलिङ्गां समञ्जिष्ठामनन्ताञ्च शतावरीम्।
शृङ्गाटकं समङ्गाञ्च पद्मकेशरमित्यपि ॥६३॥
कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः पयो दद्याच्चतुर्गुणम्।
सम्यक् पक्वेऽवतीर्णे च शीते मधु विनिक्षिपेत् ॥६४॥
सर्पिस्तुल्यं भिषक् क्षौद्रं कृतरक्षं निधापयेत्।
विषाणि हन्ति दुर्गाणि गरदोषकृतानि च ॥६५॥
स्पर्शाद्धन्ति विषं सर्वं गरैरुपहतां त्वचम्।
योगजं तमकं कण्डूं मांससादं विसंज्ञताम् ॥६६॥
नाशयत्यञ्जनाभ्यङ्गपानवस्तिषु योजितम्।
सर्पकीटाखुलूतादिदष्टानां विषहृत्परम् ॥६७॥

१. गोघृत १ किलो, २. गोदुग्ध ४ लीटर, ३. मधु १ किलो तथा ४. जल ४ लीटर।

कल्क—१. हरीतकी, २. गोरोचन, ३. कूठ, ४. सुपक्व अर्कपत्र, ५. नीलकमल, ६. नलमूल, ७. वेतसमूल, ८. वत्सनाभविष, ९. तुलसीपत्र, १०. इन्द्रयव, ११. मंजीठ, १२. अनन्तमूल, १३. शतावरी, १४. सिंघाड़ा, १५. लज्जालुमूल, १६. कमलकेशर—प्रत्येक द्रव्य १५-१५ ग्राम लें। इन्हें कूट-

पीसकर चूर्ण करें और सिल पर जल के साथ पीस कर कल्क बना लें।

सर्वप्रथम घृत को मूर्च्छित करें। ततः कल्क और दूध के बराबर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेह-पाकविद् वैद्य परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें और कपड़ा से छान लें। घृत के शीतल होने पर इस सुपक्व घृत के बराबर अच्छी तरह से मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। पान मात्रा ६ से १२ ग्राम।

विशेष—१ किलो घृतपाक करने पर प्रायः २०० ग्राम घृत जल जाता है। किन्तु दूध देकर पाक करने पर दूध का क्रीम मिलने से प्रायः कमी नहीं होती है। यदि होती है तो पक्व घृत के बराबर ही मधु डालना चाहिए। इस घृत का अञ्जन, पान एवं अभ्यङ्ग के रूप में उपयोग करने से भयंकर विषाक्त व्यक्ति एवं गरविष से पीड़ित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। इस घृत का स्पर्श अर्थात् लेप करने मात्र से विषसंसर्ग से उपहत (नष्ट) हुई त्वचा ठीक हो जाती है। योगज विषजन्य तमक श्वास, कण्डू, मांसधातु का क्षय, बेहोश होना आदि रोग इसके प्रयोग से नष्ट हो जाते हैं। सर्पदष्ट, अन्य कीटदष्ट, मूषक (चूहा) एवं लूता आदि के काटने से उत्पन्न विष नष्ट हो जाते हैं।

शिखरि घृत

शिखरिस्वरसेनैव कल्कान् दत्त्वा च दाडिमम्।
कुष्ठमेलाद्वयं शृङ्गीं शिरीषममृतं वचाम् ॥६८॥
परशू पारिभद्रञ्च चन्दनं तगरं मुराम्।
पचेत्सर्पिस्त्वसलिलं मन्दमन्देन वह्निना ॥६९॥
घृतमेतन्निहन्त्याशु निखिलान् विषजान् गदान्।
सन्निपातज्वरं घोरं ज्वरांश्च विषमांस्तथा ॥७०॥

गोघृत १ किलो, अपामार्गस्वरस या क्वाथ ४ लीटर।

कल्क—१. अपामार्ग, २. दाडिमत्वक्, ३. कूठ, ४. छोटी इलायची, ५. बड़ी इलायची, ६. काकड़ासिङ्गी, ७. शिरीष-त्वक्, ८. वत्सनाभमूल, ९. वच, १०. कुदलिया, ११. फरहदत्वक्, १२. श्वेतचन्दन, १३. तगरमूल, १४. मुरामांसी —प्रत्येक द्रव्य १७-१७ ग्राम लें; इन्हें सूक्ष्म चूर्ण कर जल के साथ पीसें और कल्क बना लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः मूर्च्छितघृत में अपामार्गस्वरस एवं कल्क देकर मन्दाग्नि पर पाक करें। स्वरस सूखने पर परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। स्वरस सूखने के बाद इस घृतपाक के समय पुनः जल देकर नहीं पकाना चाहिए। क्योंकि आचार्य ने जल डालने का निषेध किया है। 'असलिलं' अर्थात् जल रहित घृत पाक करने का निर्देश दिया है। इस घृत के प्रयोग (पान, अभ्यङ्ग, अञ्जन, बस्ति) से सभी प्रकार के विषम ज्वर नष्ट हो जाते हैं। इसे गरम गोदुग्ध के अनुपान से ६ से १२ ग्राम की मात्रा में पिलाना चाहिए।

शिरीषाद्यरिष्ट

पचेत्तुलाऽर्द्धं द्विद्रोणे शिरीषस्य जले सुधीः।
पादशेषे कषायेऽस्मिन् क्षिपेद् गुडतुलाद्वयम् ॥७१॥
कृष्णाप्रियङ्गुकुष्ठैलानीलिनीनागकेशरम्।
रजन्यौ पलमानेन दद्यादत्र च नागरम् ॥७२॥
मासादूर्ध्वं जातरसं यथामात्रं प्रयोजयेत्।
शिरीषारिष्टमित्येतद् विषव्याधिविनाशनम् ॥७३॥

शिरीषमूलत्वक् २३३५ ग्राम, जल २६ लीटर, गुड़ ९३४० ग्राम।

प्रक्षेप—१. पीपर, २. प्रियंगुफूल, ३. कूठ, ४. छोटी इलायची, ५. नीलीमूल, ६. नागकेशर, ७. हल्दी, ८. दारुहल्दी, ९. सोंठ—प्रत्येक द्रव्य ४६-४६ ग्राम लें। सर्वप्रथम शिरीषमूलत्वक् को यवकुट कर २६ लीटर जल में क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें और क्वाथ में गुड़ डालकर अच्छी तरह से घोल लें। शीतल होने पर मिट्टी के बड़े, मजबूत और नये घड़े जिसमें २४ घण्टे तक जल भरा हो उस जल को गिराकर कपड़ा से पोंछ लें और गुड़ मिश्रित क्वाथ उसमें भरें। ततः पीपर से सोंठ तक के सभी द्रव्यों का मोटा यवकुट सबका पृथक्-पृथक् चूर्ण करके गुड़-मिश्रित घोल में डालकर हाथ से अच्छी तरह मिला लें। शीघ्र सन्धान के लिए धातकीपुष्प ९३ ग्राम कूटे बिना मिलाकर घड़ा का मुख बन्दकर निर्वात स्थान पर घड़े की तली में भूँसी या धान के डण्ठल की गद्दी बनाकर रख दें। घड़े पर औषधि का नाम एवं तिथि लिख दें। १ महीना के अन्दर परीक्षोपरान्त घड़े का मुख खोलकर परीक्षा करें। दियासलाई की तिल्ली जलाकर घड़े के अन्दर ले जायें। यदि तिल्ली जलती रहेगी तो तैयार समझकर हाथ से घड़े की तली में यदि जमा हुआ गुड़ हो तो पुनः मर्दन कर मिलाकर अरिष्ट छान लें तथा उस खाली घड़े को कपड़ा से पोंछकर छने हुए अरिष्ट को उसमें डालकर मुख बन्द करें और ८ दिनों तक उसी जगह रहने दें। ९ वें दिन घड़ा स्थित अरिष्ट का ऊपरी द्रव घड़े को टेढ़ाकर निकालकर कपड़ा से छानकर काच की बोतलों में भरकर लेबल एवं कार्क लगाकर रख दें। १ वर्ष के बाद उपयोग करें। १२ से २५ मि.ली. की मात्रा में समान जल मिलाकर भोजन के बाद सेवन करना चाहिए। इसके प्रयोग से सभी प्रकार के विष से उत्पन्न रोग नष्ट हो जाते हैं।

विषरोग में पथ्य

अरिष्टाबन्धनं मन्त्रक्रिया छर्दिविरेचनम्।
कर्षणं शोणिताकृष्टिः परिषेकोऽवगाहनम् ॥७४॥
हृदयावरणं नस्यमञ्जनं प्रतिसारणम्।
उद्वर्त्तनं प्रधमनं प्रलेपो वह्निकर्म च ॥७५॥
उपधानं प्रतिविषं धूपः संज्ञा प्रबोधनम्।
शालयः षष्टिकाश्चापि कोरदूषाः प्रियङ्गवः ॥७६॥
मुद्गा हरेणवस्तैलं सर्पिर्जीर्णं नवं तथा।
शिखितित्तिरिलावैणगोधाखुश्वाविदामिषम् ॥७७॥
वार्त्ताकुकुलकं धात्रीनिष्पावं तण्डुलीयकम्।
मण्डूकपर्णी जीवन्ती सुनिषण्णोऽप्युपोदिका ॥७८॥
कालशाकं सलशुनं दाडिमं च विकङ्कतम्।
प्राचीनामलकं पथ्या कपित्थं नागकेशरम् ॥७९॥
गोछागनरमूत्राणि तक्रं शीताम्बु शर्करा।
अविदाहीनि चान्नानि सैन्धवं मधुकुङ्कुमम् ॥८०॥
पश्चिमोत्तरवाताश्च हरिद्रा सितचन्दनम्।
मुस्तं शिरीषः कस्तूरी तिक्तानि मधुराणि च ॥८१॥
हेमचूर्णं च वर्गोऽयं यथाऽवस्थं यथाविषम्।
विषरोगेषु सर्वेषु प्रयोक्तव्यो विजानता ॥८२॥

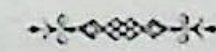
विहार—अरिष्टाबन्धन (रक्तसंचार को रोकना), मन्त्र-तन्त्र का प्रयोग, वमन-विरेचन द्वारा दोषों का कर्षण, रक्त निकालना (सिराव्यध), शीतल जल का परिषेचन, शीतल जल में अवगाहन, हृदय को ढककर रखना, नस्य, अञ्जन, प्रतिसारण, उद्वर्तन, प्रधमन, प्रलेप, दाहकर्म, तकिया के सहारे बैठना, विष का प्रतिविष (दूसरा कोई विष देना), या Autidot, धूपन देना, संज्ञा-प्रबोधन (यदि रोगी बेहोश है तो होश में लाने का उपाय करना), पश्चिम तथा उत्तर दिशा की वायु का सेवन।

आहार—शालिचावल का भात, साठी चावल का भात, कोदो चावल, प्रियङ्गु, मूँग, मटर, तिलतैल, पुराना या नया गोघृत, मयूर, तित्तिर, लावक, गोह, चूहा, श्वावित् (साहिल पशु या सेह जो बिल में रहता है तथा जिसके पीठ पर १०-१२ इञ्च के काँटे श्वेत-कृष्ण वर्ण के होते हैं) इनका मांस खाना चाहिए। बैंगन, परवल, आमला, राजमाष, चौराईशाक, मण्डूकपर्णी, जीवन्ती, सुनिषण्णकशाक, पोईशाक, कालशाक, लसुन, दाडिम (अनारदाना), कण्टकचौराई, पुराना आमला, हरीतकी, कपित्थफल, नागकेशर, गोमूत्र, बकरीमूत्र, नरमूत्र, तक्र, शीतल-जल, चीनी, अविदाहीअन्न, सैन्धवलवण, मधु, केशर, पश्चिम एवं उत्तर दिशा की वायु, हल्दी, श्वेतचन्दन, नागरमोथा, शिरीष, कस्तूरी, तिक्त एवं मधुर पदार्थ, सुवर्णभस्म—ये सभी द्रव्य विषाक्त रोगी की अवस्था, विष की उग्रता एवं न्यूनता के अनुसार विषरोग में प्रयोग करना चाहिए। ये सभी पथ्य हैं।

विषरोग में अपथ्य

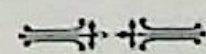
क्रोधं विरुद्धाध्यशनं व्यवायं
ताम्बूलमायासमपि प्रवातम्।
अम्लं च सर्वं लवणं च सर्वं
स्वेदं च नानाविधमासुतानि ॥
निद्रां भयं धूमविधिं क्षुधां च
विषातुरो नैव भजेत् कदाचित् ॥८३॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां विषरोगाधिकारः।



क्रोध करना, विरुद्धभोजन, अध्यशन (भुक्तस्योपरि यद्भुक्तम्), मैथुन, ताम्बूल, परिश्रम, तेजवायु का सेवन, सभी अम्ल एवं लवणपदार्थ, स्वेदन, अनेक प्रकार के अचार, शयन (सोना), भय, धूमपान तथा भूखा रहना विषाक्त व्यक्ति के लिए अहितकर है।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य विषरोगाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ रसायनाधिकारः (७३)

रसायन की परिभाषा (चक्रदत्त)

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ॥१॥

जो औषधि वृद्धावस्थारूपी रोग अथवा वृद्धावस्था और रोग नष्ट कर देता है उसे रसायनगुणसम्पन्न औषधि कहते हैं।

रसायन सेवन से पूर्व शरीर-शोधन (चक्रदत्त)

पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत्।
नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः।
न भाति वाससि म्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पितः ॥२॥

युवावस्था के आरम्भ में तथा युवावस्था एवं मध्य अवस्था में वमन-विरेचनादि के द्वारा शरीर का शोधन करने के पश्चात् रसायन औषध का सेवन करना चाहिए। जैसे मलिन वस्त्र को रंगने से उस पर रंग नहीं चढ़ता है उसी तरह मल युक्त शरीर में रसायन औषधि का प्रभाव नहीं होता है। अतः पञ्चकर्म से शरीर की शुद्धि के पश्चात् ही रसायन औषधि का सेवन करना चाहिए।

रसायन सेवन से लाभ (च.सं.)

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलोदयम् ॥३॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात्।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥४॥

रसायन औषधि सेवन से व्यक्ति दीर्घायु, तीव्रस्मरणशक्ति, उत्तमधारणाशक्ति, आरोग्य, तरुण अवस्था की प्राप्ति, उत्कृष्ट प्रभा, उत्तम वर्ण, स्वर का सुन्दर होना, उच्चकोटि का शारीरिक एवं इन्द्रियों का बल, वाक्सिद्धि (जो कहे वह फलीभूत हो) प्रणति (लोकवन्द्यता) और कान्ति को प्राप्त करता है। शरीर में प्रशस्त रस-रक्तादि धातुओं की उपलब्धि जिस उपाय या साधन से हो, उसे रसायन कहते हैं।

१. त्रिफलारसायन (चक्रदत्त)

जरणान्तेऽभयामेकां प्राग्भक्ताद् द्वे बिभीतके।
भुक्त्वा तु मधुसर्पिर्भ्यां चत्वार्यामलकानि च ॥५॥
प्रयोजयेत्समामेकां त्रिफलाया रसायनम्।
जीवेद् वर्षशतं पूर्णमजरोऽव्याधिरेव च ॥६॥

भोजन के जीर्ण होने पर १ हरीतकी का चूर्ण करके मधु एवं घृत के साथ तथा भोजन से पूर्व २ बहेड़े को चूर्ण कर घृत एवं मधु के साथ और भोजन के बाद ४ आँवले का चूर्ण घृत एवं मधु के साथ चाटना चाहिए। इन तीनों के बीज निकालकर फेंक देना चाहिए। एक वर्ष तक इस विधि से त्रिफला रसायन का सेवन करने वाला व्यक्ति जरा-व्याधि से रहित होकर १०० वर्ष तक जीवित रहता है।

२. भृङ्गराजरसायन (वङ्गसेन)

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति
दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम्।
क्षीराशिनस्ते बलवर्णयुक्ताः
समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति ॥७॥

जो व्यक्ति १ महीना तक प्रतिदिन ४६ मि.ली. (४ तोले) भृङ्गराजस्वरस का पान करता है तथा क्षुधा (भूख) लगने पर केवल गोदुग्ध ही पीता है, वह व्यक्ति बल और वर्ण से युक्त होकर १०० वर्ष तक जीवित रहता है।

३. चार द्रव्यों से रसायन प्रयोग (चक्रदत्त)

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः
क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम्।
रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः
कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्प्याः ॥८॥

१. मण्डूकपर्णीस्वरस २ तोला (२२ मि.ली.), २. यष्टि-मधुकाचूर्ण ५ ग्राम गोदुग्ध से, ३. गुडूचीस्वरस २३ मि.ली. (२ तोले), ४. मूल और पुष्प से युक्त शंखपुष्पी के सूक्ष्म चूर्ण का कल्क १ तोला (१२ ग्राम) प्रयोग करना चाहिए।

इन रसायन स्वरसादि के गुण (चक्रदत्त)

आयुःप्रदान्यामयनाशनानि
बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि
मेध्या विशेषेण तु शङ्खपुष्पी ॥९॥

ये चारों योग आयुर्वर्द्धक है, रोगों को नष्ट करने वाले हैं, बल, अग्नि, वर्ण, स्वर को बढ़ाने वाले हैं। ये चारों रसायन मेध्य है। इन चारों रसायनों में (विशेषकर) शंखपुष्पी अधिक मेध्य है।

४. अश्वगन्धारसायन (चक्रदत्त)

पीताऽश्वगन्धा पयसाऽर्द्धमासं
घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा।

कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते
बालस्य सस्यस्य यथाऽम्बुवृष्टिः ॥१०॥

अश्वगन्धा का सूक्ष्म चूर्ण ५ ग्राम को सुखोष्ण मिश्री मिलाये हुए २५० मि.ली. गोदुग्ध से या १० ग्राम घृत से या १० मि.ली. तिलतैल या सुखोष्ण जल से १५ दिनों तक सेवन करने से दुर्बल शरीर की इस प्रकार पुष्टि अर्थात् वृद्धि होती है जैसे प्रतिदिन की वर्षा से छोटे-छोटे धान्य (व्रीहि) के पौधों की वृद्धि होती है।

५. आमलकी-कृष्णतिल-भृङ्गराज रसायन (चक्रदत्त)

धात्रीतिलान् भृङ्गरजोविमिश्रान्
ये भक्षयेयुर्मनुजाः क्रमेण।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च
निर्व्याधयो वर्षशतं भवेयुः ॥११॥

जो व्यक्ति धात्रीफल (आमला) चूर्ण, कृष्णातिलचूर्ण एवं भृङ्गराजचूर्ण—प्रत्येक २-२ ग्राम प्रतिदिन जल के साथ सेवन करता है, उसके केश हमेशा के लिए काले हो जाते हैं, इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं तथा वह रोग रहित होकर १०० वर्ष तक जीवित रहता है।

६. वृद्धदारुकमूलरसायन (चक्रदत्त)

वृद्धदारकमूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
शतावर्या रसेनैव सप्तवारांश्च भावयेत् ॥१२॥
अक्षमात्रन्तु तच्चूर्णं सर्पिषा सह योजयेत्।
मासमात्रोपयोगेन मतिमाञ्जायते नरः।
मेधावी स्मृतिमांश्चैव वलीपलितवर्जितः ॥१३॥

विधारामूल के सूक्ष्म चूर्ण को शतावरीस्वरस या क्वाथ की ७ भावना देकर सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। १२ ग्राम (१ तोला) इस चूर्ण को १ तोला गोघृत के साथ मिलाकर प्रतिदिन १ महीना तक सेवन करने से मनुष्य बुद्धिमान्, मेधावी, स्मृतियुक्त तथा वली-पलितरोग वर्जित हो जाता है।

७. हस्तिकर्णपलाशरसायन (चक्रदत्त)

हस्तिकर्णरजः खादेत् प्रातरुत्थाय सर्पिषा।
यथेष्टाहारचारोऽपि सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥१४॥
मेधावी बलवान् कामी स्त्रीशतानि व्रजत्यसौ।
मधुना त्वश्ववेगः स्याद् बलिष्ठः स्त्रीसहस्रगः।
मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यो भिषजा चाभिमन्त्रणे ॥१५॥
ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष
मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा ॥१६॥

हस्तिकर्णपलाशमूलत्वक्चूर्ण ५ ग्राम को गोघृत १० ग्राम के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने और पथ्यपूर्वक आहार-विहार करने से व्यक्ति की आयु १००० (एक हजार) वर्ष की हो जाती है। व्यक्ति मेधावी, बलवान् तथा मैथुन शक्ति से अत्यधिक सम्पन्न होकर प्रतिदिन १०० प्रमदा स्त्रियों के साथ सम्भोग करता है। मधु के साथ इस हस्तिकर्ण रसायन के सेवन से बल-सम्पन्न होकर व्यक्ति १००० स्त्रियो के साथ घोड़े की भाँति वेगवान् होकर सम्भोग करता है। इस रसायन को सबसे पहले 'ॐ नमो महाविनायकाय' इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित कर सेवन करना चाहिए। यह मन्त्र १६ श्लोक में कहा गया है।

८. पथ्यारसायन (चक्रदत्त)

गुडेन मधुना शुण्ठ्या कृष्णया लवणेन वा।
द्वे द्वे खादेत् सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥१७॥

२ हरीतकीफलत्वक्चूर्ण को पुराने गुड़ से, मधु से, शुण्ठीचूर्ण से, पिप्पलीचूर्ण से या सैन्धवलवणचूर्ण में किसी एक के साथ सेवन करने से व्यक्ति सुखपूर्वक १०० वर्ष तक जीवित रहता है।

९. पिप्पलीरसायन (चक्रदत्त)

पञ्चाष्टौ सप्त दश वा पिप्पलीः क्षौद्रसर्पिषा।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत् ॥१८॥

अपनी प्रकृति के अनुसार ५,८,७ अथवा १० पिप्पलीचूर्ण को मधु तथा गोघृत के साथ १ वर्ष तक प्रतिदिन सेवन करने से व्यक्ति रसायनगुण से सम्पन्न हो जाता है।

१०. किंशुकक्षारभावित पिप्पली रसायन (चक्रदत्त)

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भुक्त्वाऽग्रे भोजनस्य च।
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः ॥१९॥
प्रयोज्या मधुसम्मिश्रा रसायनगुणैषिणा।
जेतुं कासं क्षयं शोषं श्वासं हिक्कां गलामयम् ॥२०॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुतां विषमज्वरम्।
वैस्वर्यं पीनसं शोथं गुल्मं वातबलासकम् ॥२१॥

रसायनगुणाभिलाषी व्यक्ति को चाहिए कि पिप्पली को पलाशक्षारीय जल में १ दिन तक डुबोकर रखे। दूसरे दिन उस पिप्पली को क्षार द्रव से निकालकर सुखा लें और उस पिप्पली को घृत में भर्जित कर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन भोजन के बाद ३ पिप्पलीचूर्ण कर मधु के साथ सेवन करना चाहिए। १-२ महीने तक इस तरह प्रतिदिन ३-३ पिप्पलीचूर्ण का सेवन करने से कास, क्षय, शोष, श्वास, हिक्वास, गलरोग (गले के सम्पूर्ण रोग—गलगण्ड, गण्डमाला, स्वरभेद आदि), अर्श, ग्रहणीविकार, पाण्डु, विषमज्वर, स्वरभेद, पीनस, शोथ, गुल्म तथा वातबलासकज्वररोग नष्ट हो जाते हैं।

११. मेध्यरसायन (चक्रदत्त)

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी-
वचाऽभयाकुष्ठशतावरी समा।

घृतेन लीढा प्रकरोति मानवं
त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम् ॥२२॥

१. गुडूचीचूर्ण, २. अपामार्गमूलचूर्ण, ३. विडङ्गचूर्ण, ४. शंखपुष्पीचूर्ण, ५. वचाचूर्ण, ६. हरीतकीचूर्ण, ७. कूठचूर्ण, ८. शतावरीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लेकर अच्छी तरह से मिलाकर पुनः महीन छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को ३ ग्राम विषम मात्रा में घृत एवं मधु के साथ मिलाकर चाटने से ३ दिन में ही स्मृति इतनी बढ़ जाती है कि मनुष्य हजार श्लोक याद कर लेता है।

जलनस्यरसायन (चक्रदत्त)

व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोथघ्नम्।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिजननञ्च ॥२३॥

रात्रि बीतने पर तथा सूर्योदय से पूर्व प्रतिदिन जल का नस्य लेने से व्यङ्ग, वली, पलित, पीनस, स्वर विकृति, श्वास एवं कास रोग नष्ट हो जाते हैं। साथ ही इस नस्य से दृष्टि शक्ति बढ़ती है तथा रसायन गुणों से व्यक्ति युक्त हो जाता है।

सूर्योदय पूर्व जलपान रसायन (वङ्गसेन)

अम्भसः प्रसृतान्यष्टौ रवावनुदिते पिबन्।
वातपित्तकफान् हत्वा जीवेद्वर्षशतं नरः ॥२४॥

सूर्योदय से पूर्व प्रातः (उषःकाल) में व्यक्ति यदि ८ प्रसृति अर्थात् १ प्रस्थ (७५० मि.ली.) जल प्रतिदिन पीता है तो उसके वात-पित्तज रोग नष्ट होकर वह १०० वर्ष तक जीवित रहता है।

विमर्श—प्रातःकाल उठकर मुख-प्रक्षालन कर जल पीना चाहिए। यदि ताम्रपात्र में रात्रि पर्यन्त ७५० मि.ली. जल रखें और प्रातःकाल उसे पिया जाय तो अधिक लाभ करता है।

१२. आमलकीरसायन (चक्रदत्त)

धात्रीचूर्णस्य कंसं स्वरसपरिगतं क्षौद्रसर्पिः समांशं
कृष्णामानी सिताऽष्टप्रसृतयुतमिदं रक्षितं भस्मराशौ।
वर्षान्ते तत्समश्नन् भवति विपलितो रूपवर्णप्रभावै-
र्निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिबलवचनस्थैर्यसत्त्वैरुपेतः ॥२५॥

आमलाचूर्ण ३ किलो (४ प्रस्थ), मधु ३ किलो, गोघृत ३ किलो, पिप्पलीचूर्ण ३७५ ग्राम तथा मिश्रीचूर्ण ३७५ ग्राम लें।

सर्वप्रथम आमला का सूक्ष्म चूर्ण करें। ततः एक बड़ी एनामिल ट्रे में आमलाचूर्ण को रखकर ताजे आमले के स्वरस से आप्लावित करें और हाथ से चूर्ण और स्वरस को अच्छी तरह मिलाकर धूप में रखें। सूखने पर पुनः चूर्ण कर पूर्ववत् आमला स्वरस से आप्लावित कर धूप में अच्छी तरह सुखा लें। इस प्रकार ७ बार पुनः-पुनः ताजे आमले के स्वरस से चूर्ण को आप्लावित कर सुखा लें और उसे महीन कर उसमें हाथ से मधु अच्छी तरह मिलायें। ततः गोघृत को भी अग्नि पर द्रवित कर अच्छी तरह से मिलायें। तदनन्तर बड़ी पिप्पलीचूर्ण और मिश्री चूर्ण भी मिलाकर काचपात्र या घी रखने वाले मिट्टी पात्र में अवलेहवत् इस औषधि को भरकर मुख को अच्छी तरह से बन्दकर वर्षा ऋतु में उपलों की भस्म समूह के अन्दर रखें। चारों ओर से भस्म राशि होनी चाहिए। वर्षा ऋतु के बाद भस्म राशि के अन्दर से इस आमलकीरसायन को निकालकर सुरक्षित रख लें। इस रसायन को १२-१२ ग्राम (१-१ तोला) की मात्रा में प्रतिदिन दूध अथवा जल के साथ प्रातः-सायं सेवन करें। इसके सेवन से व्यक्ति पलित रहित, स्वरूपवान्, वर्णकृत्, प्रतापी, बुद्धि-स्मृति-मेधायुक्त, वाक्-शक्ति सम्पन्न, बल एवं शरीर की स्थिरता तथा सत्त्वगुण से युक्त हो जाता है।

विमर्श—किसी भी रसायन को तथा विशेषकर इस आमलकीरसायन को वमन और विरेचन से शरीर शुद्धि के बाद सेवन करना चाहिए। वमन से भय ग्रस्त व्यक्ति केवल विरेचन से ही कोष्ठ की शुद्धि के बाद इसका सेवन कर सकता है।

१३. ऋतुहरीतकीरसायन (च.द.)

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्।
वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा ॥२६॥

हरीतकी में प्रमुख मात्रा में रसायन गुण हैं। अतः हरीतकी को ऋतुओं के अनुसार विभिन्न अनुपान के साथ सेवन करने से रसायन गुण प्राप्त होता है; यथा—(१) वर्षा ऋतु में हरीतकी चूर्ण ३ से ५ ग्राम तक इच्छानुसार सैन्धवलवण मिलाकर सेवन करें। (२) शरद् ऋतु में मिश्रीचूर्ण के साथ, (३) हेमन्त ऋतु में सोंठचूर्ण से, (४) शिशिर ऋतु में पिप्पलीचूर्ण से, (५) वसन्तु ऋतु में मधु से तथा (६) ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ हरीतकी रसायन का सेवन करना चाहिए।

१४. पूतना-हरीतकीरसायन (वङ्गसेन)

दुर्नामश्वासकासज्वरवमथुतृषापाण्डुतानेत्ररोगान्
हिक्काकुष्ठातिसारभ्रममदसदृशाऽजीर्णशूलप्रमेहान्।
तृष्णाशूलास्रपित्तं ज्वरविततजरारोचकानाहवातान्
हन्यादेतानवश्यं मधुनि परिगता पूतना चाम्लपित्तम् ॥२७॥

पूतना नाम की हरीतकी को जल के साथ उबाल लें, जब सिद्ध हो जाय तो शीतल होने पर हाथ से दबा-दबाकर हरीतकी का रस निचोड़कर चौड़े मुख वाले काचपात्र में रखकर उसमें इतना मधु डालें कि सभी हरीतकी डूब जाय तथा हरीतकी के ऊपर भी २-३ अंगुल मधु रहे। अब कोष्ठशुद्धि के बाद प्रतिदिन सुबह-शाम २-२ हरीतकी का सेवन कर थोड़ा जल पीना चाहिए। २-३ महीनों तक इन हरीतकी का सेवन करने वाले व्यक्ति के अर्श, श्वास, कास, ज्वर, वमन, पिपासा, पाण्डु,

नेत्ररोग, हिक्का, कुष्ठ, अतिसार, भ्रम, मद, अजीर्ण, शूल, प्रमेह, तृष्णा, शूल, रक्तपित्त, ज्वर, जरारोग, अरुचि, आनाह, दाह और अम्लपित्त रोग अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं।

१५. भृङ्गराजादिरसायन

श्लक्ष्णीकृतं भृङ्गरजस्य चूर्णं
तिलार्द्धकं चामलकार्द्धकञ्च।
सशर्करं भक्षयतो गुडैर्वा
न तस्य रोगा न जरा न मृत्युः ॥२८॥
अन्धः पश्येद् गमनरहितो मत्तमातङ्गगामी
मूको वाग्मी श्रवणरहितो दूरशब्दानुसारी।
नीरुङ्मर्त्यो भवति पलितो नीलजीमूलकेशो
जीर्णा दन्ताः पुनरपि नवाः क्षीरगौरा भवन्ति ॥२९॥

भृङ्गराजचूर्ण ५०० ग्राम, कृष्णतिलचूर्ण २५० ग्राम, आमलकीचूर्ण २५० ग्राम—इन तीनों चूर्णों को अच्छी तरह से मिलायें और महीन छननी से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। पित्तप्रकृति वाला व्यक्ति समभाग में मिश्रीचूर्ण मिलाकर सेवन करे तथा वात-कफ प्रकृति वाला व्यक्ति समभाग गुड़ मिलाकर प्रातः-सायं सेवन करे। उपर्युक्त तीनों द्रव्यों का चूर्ण ३ से ५ ग्राम तथा मिश्री एवं गुड़ भी उतनी ही मात्रा में मिलायें। इस रसायन को १ से २ माह तक सेवन करने से अन्धा व्यक्ति देखने लगता है, पङ्गु (लंगड़ा) मतवाले हाथी के जैसा चलने लगता है, गूँगा वाचाल हो जाता है, बहरा व्यक्ति सुनने लगता है, रोगी व्यक्ति नीरोग हो जाता है, पलित (पके बाल वाले) व्यक्ति के बाल काले एवं सघन मेघ के समान हो जाते हैं, पुराने दाँत गिरकर फिर से नये दाँत आ जाते हैं जो दूध के समान श्वेत होते हैं।

१६. अमृतवर्त्तिकारसायन

त्रिफला त्रिकटु ब्राह्मी गुडूची रक्तचित्रकम्।
नागकेशरचूर्णञ्च शृङ्गबेरं समार्कवम् ॥३०॥
सिन्दुवारो हरिद्रे द्वे शक्राशनगुडत्वचौ।
एला मधुकपर्णी च विडङ्गञ्चोग्रगन्धिका ॥३१॥
चूर्णं प्रत्येकमेतेषां समादाय पलद्वयम्।
कामरूपसमुद्भूतैर्गुडैः पञ्चाशतैः पलैः ॥३२॥
सषष्टिस्त्रिशती कार्या वर्त्तिस्तेन समानतः।
चन्द्रताराविशुद्धौ च पूजयित्वेष्टदेवताम् ॥३३॥
सुकृती प्रज्ञया प्रीतो वर्त्तिमेकान्तु भक्षयेत्।
ततोऽनुपानं पानीयं पानीयञ्च सुशीतलम् ॥३४॥
कट्वम्ललवणञ्चैव नातिमात्रं कदाचन।
यः प्रत्यहमिदं खादेत्कर्षमानं निरन्तरम् ॥३५॥
भोजनादौ प्रदोषे वा शृणु यादृक् फलं भवेत्।
नष्टवह्निस्तु दीप्ताग्निर्वडवानलसन्निभः ॥३६॥
इष्टाऽपि भास्वती कान्तिश्चन्द्रिकेव निशामुखे।
कासपुष्परुचः केशाः शिखिकण्ठमनोरमाः ॥३७॥
पटलावहतं चक्षुर्लक्षयोजनदर्शनम्।
जरातिशलथदेहोऽपि लेपनिर्माणशाद्वलः ॥३८॥
निर्व्याधिर्निर्जरः पङ्गुर्वेगेनोच्चैःश्रवा इव।
दिनेश इव तेजस्वी कन्दर्प इव रूपवान् ॥३९॥
सहस्त्रायुर्महासत्त्वो गन्धर्व इव गायनः।
स्त्रीशतं रमते नित्यं नावसादं व्रजत्यसौ ॥४०॥
न भजन्त्यापदः काश्चित् कामरूपी भवेदसौ।
पद्मगन्धि वपुस्तस्य सुपुष्पमिव कोमलम् ॥४१॥
जराचयैः सुजीर्णस्य नखकेशादयस्तथा।
प्रभवन्ति बलादुग्रादथ कन्दा इवाम्बुदात् ॥४२॥
हृष्टः पुष्टश्च पापघ्नः शान्तो भवति मानवः।
अमृतवर्त्तिका नाम मृत्युञ्जयमुखोदिता ॥
रसायनानां श्रेष्ठेयं सर्वव्याधिनिषूदनी ॥४३॥

१. आमला, २. हरीतकी, ३. बिभीतक, ४. शुण्ठी, ५. पिप्पली, ६. मरिच, ७. ब्राह्मी, ८. गुडूची, ९. रक्तचित्रकमूल, १०. नागकेशर, ११. सोंठ, १२. भृंगराज, १३. निर्गुण्डी, १४. हल्दी, १५. दारुहल्दी, १६. भांग, १७. दालचीनी, १८. छोटी इलायची, १९. गम्भारीमूलत्वक्, २०. विडंग, २१. वच—प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण २-२ पल (९३ ग्राम) लें। इन्हें एक साथ मिलाकर पुनः छननी से छान लें। असम के कामरूप क्षेत्र में होने वाला उत्तम गुड़ ५० पल (२३३५ ग्राम) लेकर इस चूर्ण के साथ अच्छी तरह से मर्दन कर १-१ तोला (१२ ग्राम) की कुल ३६० वटिका बना लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। चन्द्रमा और तारा आदि का शुभ योग होने पर अपने इष्ट देवता (भगवान् शंकर) का पूजन कर सुकृति एवं बुद्धिमान् पुरुष प्रसन्नचित्त से प्रतिदिन १-१ वटक शीतल जल के अनुपान से सेवन करे। इस रसायन औषधि के सेवनकाल में कटु, अम्ल एवं लवण पदार्थों का अधिक सेवन नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति इस (१ कर्ष) औषधि का निरन्तर सन्ध्याकाल अथवा भोजन से पूर्व सेवन करता है, उसकी मन्दाग्नि वडवाग्नि के समान प्रदीप्त हो जाती है। उसकी नष्ट हुई शरीर की कान्ति सन्ध्याकालीन (निशामुखे) चन्द्रिका (चन्द्रकिरण) जैसी चमकदार हो जाती है। कासपुष्पवत् श्वेत केश मयूर के कण्ठ जैसे सुन्दर हो जाते हैं। नष्ट हुई ज्योति वाला व्यक्ति एक लाख योजन तक देखने में समर्थ हो जाता है। वृद्धावस्था से अत्यन्त शिथिल शरीर वाला व्यक्ति जरा-व्याधि से रहित होकर अत्यन्त बलवान् हो जाता है। पंगु (लंगड़ा) व्यक्ति भी इन्द्र के घोड़े के समान वेगवान् हो जाता है। इसका सेवन करने वाला सूर्य के समान

तेजस्वी एवं कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। व्यक्ति १००० वर्ष की आयु वाला, सत्त्वगुणसम्पन्न तथा गन्धर्व के समान गायनकला में निपुण हो जाता है। वह प्रतिदिन १०० स्त्रियों के साथ रमण करता हुआ भी थकता नहीं है। किसी भी प्रकार की आपदा से ग्रस्त नहीं होता तथा कामरूपी हो जाता है। उसका शरीर कमलपुष्प जैसा सुगन्धित एवं पुष्पों के सदृश कोमल हो जाता है। वृद्धावस्था के कारण जीर्ण-शीर्ण हुए नख एवं केश पुनः उग्रवेग से ऐसे उग आते हैं जैसे मेघवृष्टि से सूखे हुए कन्दमूल पुनः उग जाते हैं। इस रसायन-सेवन से शरीर हृष्टपुष्ट हो जाता है। उसके पाप एवं अशुभ कर्म सभी नष्ट हो जाते हैं तथा व्यक्ति शान्त स्वभाव का हो जाता है। श्रीमृत्युञ्जय महादेव जी द्वारा कहा गया यह 'अमृतवर्तिका' सभी रोगों को नष्ट करने वाला तथा सभी रसायनों में श्रेष्ठ है।

१७. श्रीसिद्धमोदक

त्रिकटोस्त्रिपलं चूर्णं त्रिफलायाः पलत्रयम्।
गुडूच्याश्च विडङ्गानां ग्रन्थिकग्रन्थिपर्णयोः ॥४४॥
रक्तचित्राङ्घ्रिजं चूर्णं ग्राह्यञ्चापि पृथक्पृथक्।
प्रत्येकं द्विपलञ्चैषां गृह्णीयान्मतिमान्नरः ॥४५॥
कामरूपोद्भवा ग्राह्या गुडस्यार्द्धतुलां तथा।
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य सषष्टित्रिंशतं शुभम् ॥४६॥
मोदकं कारयेद्धीमान् समभागेन यत्नतः।
प्रत्यहं प्रातरेवैतत्पानीयेनैव भक्षयेत् ॥४७॥
एवं निरन्तरं कार्यं संवत्सरमतन्द्रितः।
प्रथमे मासि वाग्युक्तो द्वितीये बलवर्णवान् ॥४८॥
तृतीये नाशयेत्कुष्ठं श्वासकासौ तुरीयके।
पञ्चमे स्त्रीप्रियत्वं च षष्ठे च पलितक्षयः ॥४९॥
सप्तमे कान्तियुक्तश्च अष्टमे बलवान् भवेत्।
नवमे च शतायुः स्याद्दशमे च स्वरान्वितः ॥५०॥
महाबलस्त्वेकादशे ह्यदृश्यो द्वादशे भवेत्।
इच्छाहारविहारी स्यात्ततो दैत्यरिपोः समः ॥५१॥
षडूर्मिरहितो देही प्राप्नोति कल्पजीवितम्।
युवा निरन्तरं तिष्ठेद् यावत्कालञ्च जीवति ॥५२॥
भवन्ति सिद्धयोऽस्याष्टौ याश्चापि परिकीर्त्तिताः।
श्रीसिद्धमोदको ह्येष सिद्धादिषु निषेवितः ॥५३॥

१. सोंठ, २. पीपर, ३. मरिच, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. गुडूची, ८. विडङ्ग, ९. पिप्पलीमूल, १०. गठिवन, ११. रक्तचित्रकमूल—सोंठ से बहेड़ा तक के ६ द्रव्य १-१ पल तथा गुडूची से चित्रक तक के सभी द्रव्य २-२ पल (९३ ग्राम) लेकर सूक्ष्मचूर्ण करें। कामरूप क्षेत्र (असम प्रान्त) में उत्पन्न होने वाला अच्छा गुड़ २.३३५ किलो ($\frac{1}{2}$ तुला) लें। एक बड़ी परात (A large circular metal dish) में गुड़ को हाथ से मसलकर चूर्ण के साथ अच्छी तरह मर्दन कर मिलायें और ३६० वटक बना लें। ये मोदक ११$\frac{1}{2}$ ग्राम के अर्थात् १-१ तोला के बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें।

दूसरी विधि—इस गुड़ का जल के साथ आग पर पाक करें। ३ से ५ तार की चासनी होने पर गुड़ पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर उपर्युक्त सोंठ आदि चूर्ण मिलायें और थोड़ा शीतल (सह्य) होने पर १-१ तोले का मोदक बना लें। यह अधिक सुरक्षित एवं टिकाऊ है। शुभ दिन एवं नक्षत्र में भगवान् शिव की एवं इस मोदक की पूजा कर शरीर को वमन एवं विरेचन से शुद्ध करके प्रतिदिन प्रातःकाल १ मोदक शीतल जल के साथ सेवन करें। इस प्रकार आलस्य रहित होकर १ वर्ष तक रोज सेवन करना चाहिए। प्रथम मास से ही इस रसायन का प्रभाव व्यक्ति के शरीर में दिखाई देने लगता है। १. प्रथम महीना में व्यक्ति अधिक वाचाल हो जाता है, २. द्वितीय मास से बल-वर्ण युक्त हो जाता है, ३. तृतीय मास में कुष्ठ एवं ४. चतुर्थ मास में श्वास-कास नष्ट हो जाता है, ५. पञ्चम मास में व्यक्ति स्त्रीप्रिय अर्थात् सम्भोग शक्ति से युक्त हो जाता है, ६. षष्ठ मास में पलित रोग नष्ट हो जाता है, ७. सप्तम मास में व्यक्ति कान्तिवान् हो जाता है, ८. अष्टम मास में बलवान् हो जाता है, ९. नवम मास में शतायु हो जाता है, १०. दशम मास में स्वर मधुर हो जाता है, ११. एकादश मास में महाबली हो जाता है और १२. द्वादश मास में व्यक्ति को अदृश्य होने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। व्यक्ति इच्छानुसार आहार-विहार करने वाला हो जाता है। इस मोदक के प्रभाव से व्यक्ति इन्द्र के समान तथा छः पीड़ाओं से रहित होकर कल्पपर्यन्त जीवित रहता है। जब तक जीवित रहता है तब तक युवावस्था में रहता है। इसके सेवन से अष्ट सिद्धियाँ[1] प्राप्त हो जाती हैं। प्राचीनकाल में सिद्धों ने इस मोदक का सेवन किया था।

१८. निर्गुण्डीकल्प

ॐ सिद्धिः। पिङ्गलायोगिनीकथितम्।

निर्गुण्डीमूलचूर्णमष्टपलं गृहीत्वा षोडशपलमधुमिश्रितं मर्दयित्वा घृतभाण्डे कृत्वा शरावेणाच्छाद्य निबिडलेपनं दत्त्वा मासमेकं धान्यमध्ये स्थापयेत्। तन्मासमेकं भक्षितमात्रेण नरः कनकवर्णो गृध्रदृष्टिः सर्वरोगविवर्जितो वलीपलितहीनो भवति। संवत्सरं खादितं चन्द्रार्कौ यावज्जीवेद् बद्धशुक्रः स्त्रीशतं कामयितुं क्षमो भवति। शाकाम्लं विहाय यथेच्छया भोज्यम्। तच्चूर्णं गोमूत्रेण सह यः पिबति हन्त्यष्टादशकुष्ठानि पामाविच-

१. अष्ट सिद्धियाँ— अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्ति प्राकाम्यमीशत्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ॥
(अमरकोशः)

र्चिकादीनि नाडीव्रणगुल्मशूलप्लीहोदराणि च। तच्चूर्णं तक्रेण यः पिबति स सर्वरोगविवर्जितोगृध्रदृष्टिर्वराहबलो वलीपलितवर्जितः पवनवेगो दिव्यमूर्त्तिर्भवति मासद्वय-प्रयोगेण पण्डितश्च न संशयः ॥५४॥

निर्गुण्डी (सिन्दुवार) मूलत्वक् ८ पल (३७५ ग्राम) लेकर सूक्ष्मचूर्ण करें। ततः १६ पल (७५० ग्राम) मधु में अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र या घृतपात्र में रखकर शराव से ढककर दृढ सन्धिबन्धन कर धान की ढेर में छिपाकर १ मास तक रखें। ततः वमन-विरेचन द्वारा शुद्ध हुआ व्यक्ति इस रसायन लेह को ६ ग्राम से १० ग्राम तक प्रातः-सायं जल से सेवन करे। १ महीना में ही मनुष्य का शरीर सुवर्ण जैसा तथा गिद्ध जैसी तीक्ष्ण दृष्टि (दूर दृष्टि) वाला हो जाता है। वह सभी रोगों से रहित और वली-पलित से रहित हो जाता है। १ वर्ष तक जो व्यक्ति इस रसायन का सेवन करता है वह जब तक चन्द्र-सूर्य हैं तब तक जीवित रहता हुआ बद्धवीर्य होकर १०० स्त्रियों के साथ सम्भोग करने में समर्थ हो जाता है। इस रसायन सेवन काल में शाक और अम्ल द्रव्यों को छोड़कर सभी द्रव्यों को इच्छानुसार सेवन कर सकता है। इस रसायन को गोमूत्र के अनुपान से प्रतिदिन प्रातः-सायं सेवन करने से १८ प्रकार के कुष्ठ, पामा, विचर्चिका आदि रक्त विकार, नाड़ीव्रण, गुल्म, शूल एवं प्लीहोदर आदि नष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति इस रसायन को गाय के तक्र के अनुपान से सेवन करता है वह सभी रोगों से रहित, गृध्र दृष्टि तथा सूर्य के जैसा बलवान्, वली-पलित से रहित एवं वायु जैसा वेगवान् तथा दिव्य शरीर से युक्त हो जाता है। इस रसायन को २ महीने तक सेवन करने वाला व्यक्ति निःसन्देह विद्वान् हो जाता है।

१९. कार्श्यहरलौह (र.सा.सं.)

श्वेतापुनर्नवादन्तीवाजिगन्धात्रिकत्रयैः ।
शतमूलीबलायुक्तैरेभिर्लौहं प्रसाधितम् ॥५५॥
हिनस्ति नियतं कार्श्यमपि भृङ्गरसैः सह ।
नास्त्यनेन समं लौहं सर्वरोगान्तकं मतम् ।
दीपनं बलवर्णाग्नेर्वृष्यदं चोत्तमोत्तमम् ॥५६॥

१. श्वेतपुनर्नवा, २. दन्तीमूल, ३. अश्वगन्ध, ४. आमला, ५. हरीतकी, ६. बहेड़ा, ७. सोंठ, ८. पीपर, ९. मरिच, १०. नागरमोथा, ११. चित्रकमूल, १२. विडङ्ग, १३. शतावर, १४. बलामूल—प्रत्येक द्रव्य १०० ग्राम लें तथा लौहभस्म १४०० ग्राम लें। उपर्युक्त सभी १४ द्रव्यों को चूर्ण करने के बाद ग्रहण करें। पुनः एक खरल में लौहभस्म के साथ मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे प्रातः-सायं ५०० मि.ग्रा. की मात्रा में २५ मि.ली. भृङ्गराजस्वरस एवं ६ बूँद मधु के साथ सेवन करने से कृशता निश्चित ही नष्ट हो जाती है। समस्त रोगों को नष्ट करने वाला इसके समान अन्य दूसरा कोई लौहरसायन नही है। इसके सेवन से बल, वर्ण एवं अग्नि की वृद्धि होती है तथा यह उत्तम वृष्य भी है।

२०. अमृतार्णवरस (र.सा.सं.)

सूतभस्म चतुर्भागं लौहभस्म तथाऽष्टकम् ।
अभ्रभस्म च षड्भागं गन्धकस्य च पञ्चमम् ॥५७॥
भावयेत् त्रिफलाक्वाथैस्तत्सर्वं भृङ्गजैर्द्रवैः ।
शिग्रुवह्निकटुक्वाथैर्भावयेत्सप्तधा पृथक् ॥५८॥
सर्वतुल्या कणा योज्या गुडैर्मिश्रं पुरातनैः ।
निष्कमात्रं सदा खादेज्जरामृत्युनिवारणम् ॥५९॥
ब्रह्मायुः स्याच्चतुर्मासै रसोऽयममृतार्णवः ।
कौरुण्टकस्य पत्राणि गुडेन भक्षयेदनु ॥६०॥

१. पारदभस्म या रससिन्दूर ४ भाग, २. लौहभस्म ८ भाग, ३. अभ्रकभस्म ६ भाग, ४. शुद्ध गन्धक ५ भाग, ५. पीपर-चूर्ण २३ भाग तथा गुड़ ४६ भाग (अन्य सभी द्रव्यों के बराबर) लें।

भावना—१. त्रिफलाक्वाथ, २. भृङ्गराजस्वरस, ३. शिग्रु-(सहिजन) मूलत्वक्स्वरस, ४. चित्रकमूलक्वाथ, ५. कटुकी-क्वाथ—प्रत्येक द्रव से ७-७ भावना दें।

सर्वप्रथम एक बड़े खरल में पारद (रससिन्दूर) का मर्दन कर उसमें गन्धक मिलायें। ततः अभ्रक एवं लौहभस्म मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद त्रिफलाक्वाथ की ७ बार भावना दें। तदनन्तर क्रमशः भृङ्गराजादिस्वरस एवं क्वाथों की ७-७ भावना दें। कुल ५ द्रव्य के स्वरस/क्वाथ से कुल ३५ भावना देनी है। औषधि के सूखने पर भावित द्रव्य के बराबर पिप्पलीचूर्ण मिलाकर मर्दन करें और छननी से छान लें। इसके बाद पुराने गुड़ की कड़ी चासनी (४-५ तार की चासनी) कर गुड़पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर उपर्युक्त भस्मों एवं पिप्पलीचूर्ण को उस चासनी में अच्छी तरह मिलाकर २४ रत्ती (३-३ ग्राम) की वटिका बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। शरीर का शोधन (वमन-विरेचन से शुद्ध) कर प्रातः-सायं १-१ वटी प्रयोग करना चाहिए। इस रसायन के प्रयोग से जरा-मृत्यु नष्ट हो जाती है। इसे पीतपुष्प सहचर के क्वाथ में गुड़ (५० मि.ली. में गुड़ १० ग्राम) मिलाकर अनुपान रूप में प्रयोग करना चाहिए। इस रसायन औषधि का ४ महीने तक प्रयोग से मनुष्य की आयु भगवान् ब्रह्मा की आयु के समान हो जाती है अर्थात् अजर-अमर हो जाता है। इस अमृतार्णवरस कहते हैं।

विमर्श—बिना चासनी किये भी गुड़ के साथ सभी को अच्छी तरह हाथ से मसलकर १-१ ग्राम की वटी बनायी जा सकती है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. । **अनुपान**—सहचरपत्र एवं गुड़ से । **वर्ण**—रक्ताभ । **स्वाद**—मधुर । **गन्ध**—सुगन्ध । **उपयोग**—रसायनार्थ ।

२१. नीलकण्ठरस-१ (र.सा.सं.)

सूतकं गन्धकं लौहं विषं चित्रकपद्मकम् ।
वराङ्गरेणुकामुस्तं ग्रन्थ्येलानागरकेशरम् ॥६१॥
त्रिकटु त्रिफला चैव शुल्वभस्म तथैव च ।
एतानि समभागानि द्विगुणो गुड उच्यते ॥६२॥
सम्मर्द्य वटकं कृत्वा भक्षयेच्चणकोन्मितम् ।
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ॥६३॥
हिक्कायां ग्रहणीदोषे शोथे पाण्ड्वामये तथा ।
मूत्रकृच्छ्रे मूढगर्भे वातरोगे च दारुणे ॥६४॥
नीलकण्ठो रसो नाम ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ।
अनुपानविशेषेण सर्वरोगहरो भवेत् ॥६५॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लौहभस्म, ४. शुद्ध वत्सनाभविषचूर्ण, ५. पद्मकाष्ठचूर्ण, ६. चित्रकमूलचूर्ण, ७. दालचीनीचूर्ण, ८. रेणुकाबीजचूर्ण, ९. नागरमोथाचूर्ण, १०. पिपरामूलचूर्ण, ११. छोटीइलायची, १२. नागरकेशरचूर्ण, १३. सोंठचूर्ण, १४. पीपरचूर्ण, १५. मरिचचूर्ण, १६. आमलाचूर्ण, १७. हरीतकीचूर्ण, १८. बहेड़ाचूर्ण, १९. ताम्रभस्म—ये सभी द्रव्य १-१ भाग तथा पुराना गुड़ ३८ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का अच्छी तरह मर्दन कर सुन्दर कज्जली बनायें। ततः उक्त कज्जली में लौह एवं ताम्रभस्म मिलाकर मर्दन करें। पुनः अन्य सभी चूर्णों को उक्त कज्जली में अच्छी तरह मिश्रित करें। तदनन्तर एक बड़ी परात में गुड़ और कज्जली मिश्रित चूर्णों को हाथ से खूब दृढ़ मर्दन करें और २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) ग्राम की वटी बनाकर सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस नीलकण्ठ रस को भगवान् ब्रह्मा जी ने पहले निर्मित किया था। इस रसायन के प्रातः-सायं प्रयोग से श्वास, कास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, हिक्का, ग्रहणीरोग, शोथ, पाण्डुरोग, मूत्रकृच्छ्र, मूढगर्भ एवं भयंकर वातरोग नष्ट हो जाते हैं। अनुपान विशेष से यह सभी रोगों को नष्ट करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा. । **अनुपान**—मधु । **गन्ध**—रसायन-गन्धी । **वर्ण**—श्याववर्ण । **स्वाद**—मधुर । **उपयोग**—रसायन-कर्म ।

२२. नीलकण्ठरस-२ (र.सा.सं.)

पलैकं नागभस्माथ भावयेत्तिमिपित्ततः ।
तन्नागं सुमृतं स्वर्णं तोलैकं चापि मिश्रयेत् ॥६६॥
द्विपलं भस्म सूतस्य त्रिपलं मृतमभ्रकम् ।
त्रिपलं लौहभस्माथ सर्वमेकत्र कारयेत् ॥६७॥
भावयेच्च पृथक् कन्या ब्राह्मी निर्गुण्डिका शमी ।
मुण्डी शतावरीच्छिन्ना बीजमिक्षुरकस्य च ॥६८॥
मुशली वृद्धदारोऽग्निर्द्रवैरेषां भिषग्वरः ।
ततः सञ्चूर्णयेत्सर्वं तुल्यमेकादशाभिधम् ॥६९॥
वराव्योषाब्दवह्न्येलाजातीफललवङ्गकम् ।
पूजयेद्बिल्वपत्राद्यैर्नीलकण्ठं महेश्वरम् ॥७०॥
द्विगुञ्जं भक्षयेदस्य मृत्युञ्जयमनुस्मरन् ।
क्षयमेकादशविधं ग्रहणीं रक्तपित्तकम् ॥७१॥
विविधान् वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
हन्ति सर्वामयानेव कामिनीनां शतं व्रजेत् ॥७२॥
एकविंशतिरात्राणि परिहार्यं त्यजेदिह ।
यथेष्टाहारचेष्टो हि कन्दर्पसदृशो नरः ॥७३॥
मेधावी बलवान् प्राज्ञो बह्वाशी भीमविक्रमः ।
पुत्रार्थिनी तथा नारी रम्यं पुत्रं प्रसूयते ॥
अस्य सूतस्य माहात्म्यं वेत्ति शम्भुर्न चापरः ॥७४॥

एक खरल में नाग (Lead) भस्म ५० ग्राम लेकर तिमि नामक मछली के पित्त से एक भावना दें। ततः उस नागभस्म में सुवर्णभस्म १२ ग्राम, पारदभस्म या रससिन्दूर १०० ग्राम, अभ्रकभस्म १५० ग्राम, लौहभस्म १५० ग्राम मिलाकर मर्दन करें।

भावना—१. घृतकुमारीस्वरस, २. ब्राह्मीस्वरस, ३. निर्गुण्डीपत्रस्वरस, ४. शमीस्वरस, ५. मुण्डीक्वाथ, ६. शतावरीक्वाथ, ७. गुडूचीस्वरस, ८. तालमखानाक्वाथ, ९. मुशलीक्वाथ, १०. विधारक्वाथ, ११. चित्रकमूलक्वाथ—प्रत्येक द्रव से १-१ भावना दें। ततः १ आमलाचूर्ण, २. हरीतकीचूर्ण, ३. बहेड़ा- चूर्ण, ४. सोंठचूर्ण, ५. पीपरचूर्ण, ६. मरिचचूर्ण, ७. नागर-मोथाचूर्ण, ८. चित्रकमूलचूर्ण, ९. छोटीइलायची, १०. जायफलचूर्ण, ११. लवङ्गचूर्ण—उन ११ द्रव्यों के सूक्ष्मचूर्ण —प्रत्येक ४६२ ग्राम (उपर्युक्त नागभस्म से लौहभस्म तक के सभी पाँचों द्रव्यों को बराबर) लेकर उन भस्मों वाली खरल में मिलाकर जल की भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की वटी बना लें तथा छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। शुभ तिथि एवं नक्षत्र में भगवान् नीलकण्ठ (शंकर) की विधिवत् पुष्प, बिल्वपत्र, धूप, नैवेद्य, नमस्कार, प्रदक्षिणा आदि विधियों से पूजा करें तथा उसी स्थान पर इस 'नीलकण्ठरस' रसायन औषधि की भी पूजा करें। भगवान् शंकर को अर्पण कर प्रातः-सायं इस १-१ वटी का सेवन करें। इसके सेवन से ११ प्रकार का क्षयरोग, संग्रहणीरोग, रक्तपित्त, अनेकों प्रकार के वातजरोग एवं ४० प्रकार के पित्तजरोग नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार सभी तरह के रोग नष्ट हो

जाते हैं। २१ रात्रि तक नियमपूर्वक पथ्य का पालन करना चाहिए। ततः इच्छानुसार आहार-विहार करें। इस रसायन के सेवन से व्यक्ति कामदेव जैसा सुन्दर हो जाता है। वह व्यक्ति १०० स्त्रियों को मैथुन में तृप्त करता है। इस औषधि के प्रभाव से व्यक्ति मेधावी, बलवान्, बुद्धिमान्, बहुत भोजन करने वाला तथा भीम जैसा पराक्रमी हो जाता है। इसके प्रभाव से पुत्रार्थिनी स्त्री सुन्दर पुत्र को जन्म देती है। इस औषधि के प्रभाव को भगवान् शंकर के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु। **गन्ध**—रसायन-गन्धी। **वर्ण**—कॉफीवर्ण। **स्वाद**—कषाय-तिक्त। **उपयोग**—रसायन।

२३. नीलकण्ठरस-३

रसस्य भागाश्चत्वारो हेम्नो भागचतुष्टयम्।
अभ्रं लौहं तथा मुक्ता वैक्रान्तं युग्मभागिकम् ॥७५॥
रौप्यं प्रवालं ताप्यञ्च वङ्गमेकैकभागिकम्।
त्रिधा जीवन्तिलाक्षाऽग्निमूलक्वाथेन भावयेत् ॥७६॥
एरण्डपत्रैः संवेष्ट्य धान्यराशौ निधापयेत्।
ततो दिनत्रयादूर्ध्वमुद्धृत्य चणकप्रभाम् ॥७७॥
नीलकण्ठं समभ्यर्च्य शुचिः संयतमानसः।
प्रयुञ्ज्याद्वटिकां धीमान् यथाव्याध्यनुपानतः ॥७८॥
रसायनवरः श्रीदो वातव्याधिविनाशनः।
रसः श्रीनीलकण्ठाख्यो नीलकण्ठेन भाषितः॥७९॥
कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहान् विंशतिं तथा।
नेत्ररोगं तथा दोषान् रजःशुक्रसमुद्भवान् ॥८०॥
सन्निपातज्वरं घोरं हृन्नासामुखकर्णजान्।
रोगान् बहुविधान् हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥८१॥

१. रससिन्दूर ४ भाग, २. सुवर्णभस्म ४ भाग, ३. अभ्रक भस्म २ भाग, ४. लौहभस्म २ भाग, ५. मुक्तापिष्टि २ भाग, ६. वैक्रान्तभस्म २ भाग, ७. रजतभस्म १ भाग ८. प्रवालभस्म १ भाग, ९. सुवर्णमाक्षिकभस्म १ भाग, १०. वङ्गभस्म १ भाग लें।

भावना—जीवन्तीक्वाथ, लाक्षारस तथा चित्रकमूलक्वाथ से उपर्युक्त औषधि की ३-३ भावना दें। ततः १ बड़ा गोला बनाकर धूप में सुखा लें और एरण्डपत्र में लपेटकर धान की ढेर (राशि) में छिपाकर तीन दिनों तक रख दें। चौथे दिन उक्त औषधि गोलक को निकालकर खरल में मर्दन करें और २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे नीलकण्ठरस कहते हैं। भगवान् नीलकण्ठ शंकर एवं इस औषधि की विधिवत्, अक्षत, चन्दन, पुष्प, बिल्व पत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार एवं प्रदक्षिणा विधि से पूजा कर तथा वमन-विरेचन से शरीर का संशोधन कर प्रातः-सायं व्याधिहर अनुपानों से १-१ वटी सेवन करें। रसायन में श्रेष्ठ यह औषधि लक्ष्मीप्रद अथवा शरीर की सुन्दरता की वृद्धि करता है। यह वात-व्याधिनाशक है। इस नीलकण्ठरस को नीलकण्ठ महादेव जी ने ही बताया है। इसके सेवन से १८ प्रकार के कुष्ठ, २० प्रकार के प्रमेह, नेत्ररोग, स्त्रियों के रजोदोष एवं पुरुषों के शुक्रदोष से उत्पन्न रोग, भयंकर सन्निपातज्वर, हृदयरोग, नासारोग, मुखरोग, कर्णरोग तथा अन्य अनेकों प्रकार के रोगों को यह उसी नष्ट प्रकार करता है, जैसे सूर्य अन्धकार समूह को नष्ट करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **रस**—तिक्त। **उपयोग**—रसायन।

२४. मकरध्वजरसायन (र.सा.सं.)

स्वर्णभागौ च वङ्गं च मौक्तिकं कान्तलौहकम्।
जातीकोषफले रूप्यं कांस्यकं रससिन्दुरम् ॥८२॥
चन्द्रं प्रवालं कस्तूरी अभ्रकं चैकभागिकम्।
स्वर्णसिन्दूरतो भागांश्चतुरः कल्पयेद् बुधः ॥८३॥
नातः परतरः श्रेष्ठः सर्वरोगनिषूदनः।
सर्वलोकहितार्थाय शिवेन परिकीर्त्तितः ॥८४॥

१. सुवर्णभस्म २ भाग, २. वङ्गभस्म १ भाग, ३. मोतीपिष्टी १ भाग, ४. कान्तलौहभस्म १ भाग ५. जावित्रीचूर्ण १ भाग, ६. जायफलचूर्ण १ भाग, ७. रजतभस्म १ भाग, ८. कांस्यभस्म १ भाग, ९. रससिन्दूर ४ भाग, १०. कर्पूर १ भाग, ११. प्रवालभस्म १ भाग, १२. कस्तूरी १ भाग तथा अभ्रकभस्म १ भाग ग्रहण करें। सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर को पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। ततः अन्य सभी द्रव्यों को उसमें मिलाकर मर्दन कर १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। सभी रोगों को नष्ट करने के लिए इससे अच्छा कोई अन्य रसायन (रसौषधि) नहीं हैं। सम्पूर्ण विश्व के कल्याणार्थ भगवान् शंकर ने इसका निर्माण किया था।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु। **रस**—कटु। **गन्ध**—कस्तूरीगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—रसायन।

२५. सिद्धमकरध्वज

पलमानं रसं सम्यग् बहुसंस्कारसंस्कृतम्।
तथा पलद्वयं गन्धं शुद्धं हेम द्विकार्षिकम् ॥८५॥
कैलाशाचलसम्भूते सुदृढे च सुचिक्कणे।
शोणप्रस्तरजे खल्ले सर्वं संस्थाप्य मिश्रयेत् ॥८६॥
मर्दयेद् यत्नतो वैद्यो यामानष्टौ निरन्तरम्।
रक्तकार्पासपुष्पस्य श्वेताङ्कोठफलस्य च ॥८७॥
कुमार्याश्च रसैः सम्यग् भावयित्वा पृथक् पृथक्।
स्थापयित्वा काचकूपीमध्ये सर्वं प्रयत्नतः ॥८८॥

रक्ताङ्गसालसरलखदिरश्रीफलोद्भवाम् ।
काष्ठेनान्यतमेनैव नीरसेन प्रतापयेत् ॥८९॥
मृदुनाऽनलयोगेन प्राग् यामद्वितयं पचेत् ।
पुनर्यामद्वयं पाच्यं मध्यतापेन वह्निना ॥९०॥
अग्निप्रखरेणैव ततो यामद्वयं पचेत् ।
भूयो मन्दाग्निना पाच्यमवशिष्टद्वियामकम् ॥९१॥
स्वाङ्गशीतमथोद्धृत्य नवचूतदलोपमम् ।
भङ्गुरं लोहितं पिष्टं दाडिमकुसुमोपमम् ॥९२॥
ततोऽवतार्य गन्धेन द्विगुणेन विमर्दयेत् ।
भावयेत्पूर्ववद् भूयः पाचयेच्च प्रयत्नतः ॥९३॥
एवं वारद्वयं कुर्यात् सम्यगौषधसिद्धये ।
सन्निपातज्वरं घोरं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥९४॥
आमशूलं कटीशूलं हृच्छूलं पक्तिशूलकम् ।
कासं श्वासं च यक्ष्माणं शूलं कुष्ठमशेषतः ॥९५॥
गलोत्थानन्त्रवृद्धिं च तथाऽतिसारमेव च ।
श्लीपदं कफवातोत्थं चिरजं कुलजं तथा ॥९६॥
नाडीव्रणं तथा घोरं गुदामयभगन्दरम् ।
वायुं बहुविधं हन्ति ध्वजभङ्गं विशेषतः ॥९७॥
सेवनादस्य नश्यन्ति सर्वे रोगा न संशयः ।
करोत्यग्निं बलं वीर्यं वलीपलितनाशनः ॥९८॥
विधिवत् सेवितो ह्येष मुमूर्षुमपि जीवयेत् ।
स्वेच्छाहारविहारोऽपि न कदाचिद् विपद्यते ॥९९॥
मेधाऽऽयुःकान्तिजननः कामोद्दीपनकृन्महान् ।
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी स्त्रीसु चापि वृषायते ॥१००॥
सेवनादस्य सम्राज्ञो गच्छन्ति प्रमदाशतम् ।
त्रैलोक्ये शुभदं श्रीमदेतदेव महौषधम् ॥१०१॥
मृत्युञ्जयो यथाऽभ्यासान्मृत्युञ्जयति देहिनाम् ।
तथाऽयं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ॥१०२॥
स्वयं त्रैलोक्यनाथेन त्रैलोक्यहितमिच्छता ।
समर्पितोऽयं सिद्धेभ्यः करुणार्द्रेण वै यतः ॥१०३॥
अतोऽयं भुवने ख्यातः श्रीसिद्धमकरध्वजः ।
भास्वान् यथा तमो हन्ति केशरी करिणं यथा ।
तूलसङ्घं यथा वह्निस्तथा रोगानसौ हरेत् ॥१०४॥

१. अष्टसंस्कारित पारद ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक १०० ग्राम तथा ३. शुद्ध सुवर्णपत्र २५ ग्राम लें। कैलासपर्वत पर उत्पन्न होने वाले कठिन एवं लाल पत्थर से निर्मित सुन्दर एवं चिकने एक खरल में संस्कारित पारद को रखें तथा सुवर्ण के पत्र को कैंची से सूक्ष्म काटकर पारद में मिलायें और ४-५ दिनों तक दृढ़ मर्दन करें। जब मक्खन के जैसी पिष्टी बन जाय तो उसमें गन्धक मिलाकर कज्जली बनायें। कज्जली बनाने में भी ३ से ४ दिनों तक मर्दन करना चाहिए। ततः अच्छी कज्जली बनने पर रक्तकार्पासपुष्पस्वरस की १ भावना, श्वेतअङ्कोठफलरस की १ भावना तथा घृतकुमारीस्वरस की १ भावना देकर चूर्ण कर लें। ततः ७ बार कपड़मिट्टी की हुई काच की २० औंस के बोतल में उपर्युक्त कज्जली भरकर बोतल के मुख में कार्क लगा दें और लालशालवृक्ष, सरलवृक्ष, खदिरवृक्ष अथवा बिल्ववृक्ष की सूखी लकड़ियों की अग्नि से क्रमशः मृदु, मध्य, तीक्ष्णाग्नि से पाक करें। मृदु अग्नि से ६ घण्टे, मध्यमाग्नि से ६ घण्टे, प्रखराग्नि से ६ घण्टे तथा पुनः मन्दाग्नि से ६ घण्टे तक पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीत होने पर दूसरे दिन विधिपूर्वक काच की बोतल तोड़कर नए आम्र के रक्तपत्र के जैसा, भङ्गुर तथा पीसने पर अनारपुष्प के जैसा लाल वर्ण का मकरध्वज प्राप्त करें। तदनन्तर खरल में उस मकरध्वज को पीसें और उससे द्विगुण मात्रा में शुद्ध गन्धक देकर मर्दन करें तथा भावना देकर पूर्ववत् सात बार कपड़मिट्टी की हुई बोतल में भरकर पुनः पाक करें। इस प्रकार पुनः-पुनः दो बार पाक करें। बार-बार द्विगुण शुद्ध गन्धक देकर रक्तकार्पासपुष्पस्वरस; श्वेतअंकोलफलरस एवं कुमारीस्वरस की भावना देते रहें। कुल पारद से ६ गुना शुद्ध गन्धक का जारण करें। तीसरी बार जब मकरध्वज तैयार हो जाय तब उसे खरल में पीसकर काच की शीशी में सुरक्षित रख लें। इस सिद्धमकरध्वज को १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में रोगानुसार अनुपान एवं मधु के साथ लेने से भयंकर सन्निपात ज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, आमशूल, कटिशूल, हृदयशूल, पक्तिशूल, श्वास, कास, राजयक्ष्मा, शूल, सभी प्रकार के कुष्ठ, गलरोग, अन्त्रवृद्धि, अतिसार, कफज-वातज श्लीपद, पुराना श्लीपद, वंशपरम्परागतश्लीपद, नाड़ीव्रण, भगन्दर तथा भयंकर गुदरोग, अनेक प्रकार के वातरोग, विशेषकर ध्वजभङ्ग आदि सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। इसके सेवन से जाठराग्नि की वृद्धि, बल एवं वीर्य की वृद्धि होती है। वली-पलित रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि इसका विधिवत् सेवन किया जाय तो मरणासन्न व्यक्ति भी जीवित हो जाता है। स्वेच्छापूर्वक आहार-विहार करने पर भी कभी कष्ट नहीं होता है। यह मेधा (बुद्धि), आयु एवं कान्तिवर्धक है, अत्यन्त कामोद्दीपक है, वृद्ध व्यक्ति भी स्त्री सम्भोग में युवाओं से स्पर्धा करता है। राजा लोग इसके सेवन से सैकड़ों स्त्रियों को सम्भोग से सन्तुष्ट करते हैं। तीनों लोक में शुभदायक, शोभावर्धक यही औषध है। जैसे भगवान् शंकर की सेवाराधना से व्यक्ति मृत्यु को जीत लेता है उसी प्रकार इस औषधि रसायन की साधना करने से वह जरा-मृत्यु से रहित हो जाता है। स्वयं भगवान् शंकर ने करुणा से आर्द्र होकर इसे सिद्धों के लिए निर्मित किया था। अतः यह संसार में 'सिद्धमकरध्वज' नाम से विख्यात हुआ है। जैसे सूर्य अन्धकार को, सिंह हाथियों को एवं अग्नि रूईसमूह को नष्ट कर

देती है उसी प्रकार यह 'सिद्ध मकरध्वज' सभी प्रकार के रोगसमूह को नष्ट कर देता है।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु-मक्खन। **रस**—नीरस। **वर्ण**—रक्त। **गन्ध**—निर्गन्ध। **उपयोग**—रसायन।

२६. पूर्णचन्द्ररस (र.सा.सं.)

द्विकर्षं शुद्धसूतस्य गन्धकं च द्विकार्षिकम्।
लौहभस्म पलञ्चाभ्रं जारितं च पलांशकम् ॥१०५॥
द्वितोलं रजतञ्चैव वङ्गभस्म द्विकार्षिकम्।
सुवर्णं तोलकं चैव ताम्रं कांस्यं च तत्समम् ॥१०६॥
जातीफलं चेन्द्रपुष्पमेलां भृङ्गं च जीरकम्।
कर्पूरं वनितां मुस्तं कर्षं कर्षं पृथक् पृथक् ॥१०७॥
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यारसविमर्दितम्।
भावयित्वा वरातोयैः केबुकाणां रसैस्तथा ॥१०८॥
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम्।
उद्धृत्य मर्दयित्वा तु वटिकां चणसम्मिताम् ॥१०९॥
खादेच्च वटिकामेकां पर्णखण्डेन संयुताम्।
सर्वव्याधिविनाशाय काशिनाथेन भाषितः ॥११०॥
पूर्णचन्द्ररसो नाम सर्वरोगेषु योजयेत्।
बल्यो रसायनो वृष्यो वाजीकरण उत्तमः ॥१११॥
अयमष्ठीलिकां हन्ति कासश्वासमरोचकम्।
आमशूलं कटीशूलं हृच्छूलं पक्तिशूलकम् ॥११२॥
अग्निमान्द्यमजीर्णं च ग्रहणीं चिरजामपि।
आमवातं चाम्लपित्तं भगन्दरमपि द्रुतम् ॥११३॥
कामलां पाण्डुरोगं च प्रमेहं वातशोणितम्।
नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यते वाजिकर्मणि ॥११४॥

१. शुद्ध पारद २५ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक २५ ग्राम, ३. लौहभस्म ५० ग्राम, ४. अभ्रकभस्म ५० ग्राम, ५. रजतभस्म २५ ग्राम, ६. वङ्गभस्म २५ ग्राम, ७. सुवर्णभस्म १२ ग्राम. ताम्रभस्म १२ ग्राम, ९. कांस्यभस्म १२ ग्राम, १०. जायफल-चूर्ण १२ ग्राम, ११. लवङ्गचूर्ण १२ ग्राम, १२. छोटीइलायची-चूर्ण १२ ग्राम, १३. दालचीनीचूर्ण १२ ग्राम, १४. श्वेतजीरा-चूर्ण १२ ग्राम, १५. कर्पूर १५ ग्राम, १६. पियंगुफूलचूर्ण १२ ग्राम, १७. नागरमोथाचूर्ण १२ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः उस कज्जली में सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। इसके बाद सभी काष्ठौषधियों के चूर्णों को मिलाकर क्रमशः घृतकुमारी-स्वरस, त्रिफलाक्वाथ एवं एरण्डपत्रस्वरस की १-१ भावना देकर १ बड़ा-सा गोला बना लें। इसे सुखाने के बाद एरण्डपत्र में लपेटकर धान की ढेर में छिपाकर तीन दिनों तक रख दें। चौथे दिन निकालकर पुनः एरण्डपत्रस्वरस की भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'पूर्णचन्द्ररस' रसायन को वमन-विरेचनादि से शरीर की शुद्धि कर भगवान् शिव का स्मरण कर १-१ वटी ताम्बूलपत्र के साथ चबाकर प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। काशिनाथ ने सभी व्याधियों को नष्ट करने के लिए इस पूर्णचन्द्र रस को निर्मित किया था। यह बल्य है, रसायन है, वृष्य है, उत्तम वाजीकरण है। यह अष्ठीला, कास, श्वास, अरुचि, आमशूल, कटिशूल, हृच्छूल, पक्तिशूल, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, पुराना ग्रहणीरोग, आमवात, अम्लपित्त, भगन्दर, कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह तथा वातरक्तरोग का नाश करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताम्बूलपत्र। **रस**—कटु। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—रसायन।

२७. महालक्ष्मीविलासरस (र.सा.सं.)

पलं वज्राभ्रचूर्णस्य तदर्द्धो गन्धको भवेत्।
तदर्द्धं वङ्गभस्मापि तदर्द्धः पारदस्तथा ॥११५॥
तत्समं हरितालं च तदर्द्धं ताम्रभस्मकम्।
रसतुल्यं च कर्पूरं जातीकोषफले तथा ॥११६॥
वृद्धदारकबीजं च बीजं स्वर्णफलस्य च।
प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृतस्वर्णं च शाणकम् ॥११७॥
निष्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् सुदारुणान् ॥११८॥
गलोत्थानन्त्रवृद्धिं च तथाऽतीसारमेव च।
कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहान् विंशतिं तथा ॥११९॥
श्लीपदं कफवातोत्थं चिरजं कुलजं तथा।
नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदामयभगन्दरम् ॥१२०॥
कासपीनसयक्ष्मार्शःस्थौल्यदौर्गन्ध्यरक्तनुत्।
आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥१२१॥
उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैजात्यमेव च।
सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीरोगं च विनाशयेत् ॥१२२॥
वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम्।
अनुपानमिह प्रोक्तं मांसं पिष्टं पयो दधि ॥१२३॥
वारिभक्तं सुरासीधुसेवनात् कामरूपधृक्।
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥१२४॥
न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्वताम्।
नित्यं गच्छेच्छतं स्त्रीणां मत्तवारणविक्रमः ॥१२५॥
द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकं तथा।
प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥१२६॥
महालक्ष्मीविलासोऽयं वासुदेवो जगत्पतिः।
प्रसादादस्य भगवांल्लक्षनारीषु वल्लभः ॥१२७॥

१. अभ्रकभस्म ५० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक २५ ग्राम, ३. वङ्गभस्म १२ ग्राम, ४. शुद्ध पारद ६ ग्राम, ५. शुद्ध हरताल ६ ग्राम, ६. ताम्रभस्म ३ ग्राम, ७. कर्पूर ६ ग्राम, ८. जावित्रीचूर्ण ६ ग्राम, ९. जायफलचूर्ण ६ ग्राम, १०. विधाराबीजचूर्ण १२ ग्राम, ११. शुद्ध धत्तूरबीजचूर्ण १२ ग्राम तथा सुवर्णभस्म ३ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उस कज्जली में भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। ततः अन्य सभी चूर्णों को मिलायें और जल की भावना देकर (किन्तु प्रचलन में ताम्बूलस्वरस की १ भावना देनी चाहिए, जिसका कि ग्रन्थ में उल्लेख नहीं है) २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे रसायन रूप में वमन-विरेचन कराकर शरीर शुद्धि के बाद ही प्रयोग करें। इसके प्रयोग से भयंकर सन्निपात ज्वर, गलरोग, अन्त्रवृद्धि, अतिसार, १८ प्रकार के कुष्ठ, २० प्रकार के प्रमेह, वातज एवं कफज श्लीपद, पुराना श्लीपद तथा वंशानुगत श्लीपद, नाडीव्रण, व्रण, भयंकर गुदरोग, भगन्दर, कास, पीनस, यक्ष्मा, अर्श, स्थौल्य, शरीरदौर्गन्ध्य, रक्तविकार, सभी लक्षणों से युक्त आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, मुखरोग, सभी शूलरोग, शिरःशूल तथा स्त्री रोगों का नाश हो जाता है। इस रसौषधि की १-१ वटी प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। इस वटी के सेवन में अनुपान रूप में मांसरस, पिसा हुआ अन्न, द्रव, गोदुग्ध, गोदधि, काञ्जी, सुरा एवं सीधु का प्रयोग करना चाहिए। इस औषधि के प्रयोग से वृद्ध पुरुष भी स्त्रियों के साथ सम्भोग में तरुण (युवा) पुरुषों को भी जीत लेता है। उसके शुक्र का क्षरण नहीं होता है। पुरुष का लिङ्ग शिथिल नहीं होता है। केश नहीं पकते हैं। प्रतिदिन वह व्यक्ति हाथी के जैसा मदमस्त होकर सैंकड़ों स्त्रियों के साथ संभोग करता है। उस व्यक्ति को २ लाख योजन तक देखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। उसका शरीर पुष्ट हो जाता है। इस 'महालक्ष्मीविलासरस' को देवर्षि नारद ने जगत्पति भगवान् श्री कृष्ण (वासुदेव) के लिए बताया था। इस औषधि के प्रभाव से वे लाखों स्त्रियों के स्वामी बने थे।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **रस**—कटु। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—रसायन-कर्म।

२८. वसन्तकुसुमाकररस-१ (र.सा.सं.)

द्विभागं हाटकं चन्द्रं त्रयो वङ्गाहिकान्तकाः।
चतुर्भागं शुद्धमभ्रं प्रवालं मौक्तिकं तथा ॥१२८॥
भावयेद्गव्यदुग्धेन भावनेक्षुरसेन च।
वासालाक्षारसोदीच्यरम्भाकन्दप्रसूनकैः ॥१२९॥
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुङ्कुमोदकैः।
पश्चान्मृगमदैर्भाव्यं सुगन्धिरससम्भवैः ॥१३०॥
कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः।
गुञ्जाद्वयेन संसेव्यः सितामध्वाज्यसंयुतः ॥१३१॥
मेहघ्नः कान्तिदश्चैव कामदः पुष्टिदस्तथा।
वलीपलितहश्चैव स्मृतिभ्रंशविनाशयेत् ॥१३२॥
तुष्टिदो बल्यमायुष्यः पुत्रप्रसवकारकः।
प्रमेहान् विंशतिं चैव क्षयमेकादशं तथा।
तथा सोमरुजं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥१३३॥

१. सुवर्णभस्म २ भाग, २. रजतभस्म २ भाग, ३. वङ्गभस्म ३ भाग, ४. नागभस्म ३ भाग, ५. कान्तलौहभस्म ३ भाग ६. अभ्रकभस्म ४ भाग, ७. प्रवालभस्म ४ भाग, ८. मोतीभस्म ४ भाग तथा ९. कस्तूरी १० ग्राम।

भावना द्रव्य—१. गोदुग्ध, २. इक्षुरस, ३. वासास्वरस, ४. लाक्षारस, ५. सुगन्धबालाक्वाथ, ६. कदलीकन्दस्वरस, ७. कदलीपुष्परस, ८. गुलाबजल, ९. चमेलीपुष्परस, १०. केशर जल, ११. कस्तूरीजलद्रव। कस्तूरी एवं केशर १०-१० ग्राम लेना चाहिए।

सर्वप्रथम पत्थर के एक खरल में सभी भस्मों को मिलाकर गोदुग्ध की १ भावना दें। सूखने पर पुनः इक्षुरस की एक भावना दें। इसी प्रकार पूर्व भावना सूख जाय तब दूसरे द्रव की भावना देनी चाहिए। इसी प्रकार क्रमशः वासास्वरस, लाक्षारस, सुगन्धबालाक्वाथ, कदलीकन्दस्वरस, कदलीपुष्पस्वरस, गुलाबजल, चमेलीपुष्पस्वरस, केशरद्रव और अन्त में कस्तूरी द्रव की १-१ भावना देनी चाहिए। बाद में २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'वसन्तकुसुमाररस' कहते हैं। इसकी १ वटिका को मिश्री तथा विषममात्रा में मधु एवं घी के सात सेवन करें। यह २० प्रकार के प्रमेह, एकादश लक्षणों से युक्त राजयक्ष्मा तथा सोमरोग को नष्ट करता है। यह कान्तिप्रद है। सम्भोग एवं शक्तिवर्द्धक है, शरीर को पुष्ट करता है, वली-पलित नाशक है, स्मृतिभ्रंशनाशक है। तुष्टि (संतुष्टि) कृत, बल्य, आयुष्य और पुत्रप्रसवकारक है। यह साध्य अथवा असाध्य सभी प्रमेहों एवं सोम रोग को नष्ट करता है।

विमर्श—यदि १ भाग के लिए १० ग्राम का स्तर निर्धारण करते हैं तो कुल द्रव्य २५० ग्राम होता है। उसमें केशर द्रव के लिए १०० मि.ली. जल लेना चाहिए। उसी तरह कस्तूरी द्रव के लिए भी १०० मि.ली. जल लेना चाहिए। यदि केशर जल १०० मि.ली. अधिक लगे तो उससे २ बार भावना दें और कस्तूरी को ५० मि.ली. जल में ही घोलकर भावना दें।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताम्बूलपत्र में। **रस**—कटु-मधुर। **गन्ध**—कस्तूरीगन्धि। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—मधुमेह, रसायनकर्म।

२९. वसन्तकुसुमाकररस-२

प्रवालरसमौक्तिकाम्बरमिदं चतुर्भागभाक्।
पृथक् पृथक् स्मृते रजतहेमतो द्व्यंशके।
अयोभुजगवङ्गकं त्रिलवकं विमर्द्याखिलं
शुभेऽहनि विभावयेद् भिषगिदं धिया सप्तशः ॥१३४॥
द्रवैर्वृषनिशेक्षुजैः कमलमालतीपुष्पजैः
पयःकदलिकन्दजैर्मलयजैर्णनाभोद्भवैः ।
वसन्तकुसुमाकरो रसपतिद्विवल्लोऽशितः
समस्तगदहृद्भवेत् किल निजानुपानैरयम् ॥१३५॥

१. प्रवालभस्म, २. रससिन्दूर, ३. मोतीपिष्टि, ४. अभ्रकभस्म—प्रत्येक ४-४ भाग (४० ग्राम प्रत्येक), ५. रजतभस्म २ भाग, ६. सुवर्णभस्म २ भाग, ७. लौहभस्म ३ भाग, ८. नागभस्म ३ भाग, ९. वङ्गभस्म ३ भाग लें।

भावना द्रव्य—१. वासास्वरस, २. हल्दीस्वरस, ३. इक्षुरस, ४. कमलपुष्परस, ५. मालती (चमेली) स्वरस, ६. कदलीकन्दस्वरस, ७. चन्दनफाण्टरस तथा ८. कस्तूरीद्रव (कस्तूरी १० ग्राम को १०० मि.ली. जल में घोलकर द्रव करें)।

सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर को अच्छी तरह मर्दन कर सूक्ष्मचूर्ण करें। ततः उसी खरल में अन्य सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें और क्रमशः वासापत्रस्वरस से कस्तूरी तक के सभी द्रव्यों से ३-३ या ७-७ भावना दें। अन्त में कस्तूरी द्रव की भावना देकर ६-६ रत्ती (७५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातः-सायं एक-एक वटी मधु या ताम्बूल पत्र में लपेटकर सेवन करना चाहिए। रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन करने पर यह सभी रोगों को नष्ट करता है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताम्बूलपत्र में। **रस**—मधुर। **गन्ध**—कस्तूरीगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—रसायनकर्म।

३०. अष्टावक्ररस

पलैकं रसराजस्य द्विपलं गन्धकस्य च।
कोलमेकं सुवर्णस्य कोलार्द्धं रजतस्य च ॥१३६॥
नागं ताम्रं खर्परं च वङ्गं चैव समांशकम्।
प्रत्येकं रजतार्द्धं च सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥१३७॥
वटाङ्कुररसैर्यामं यामं कन्यारसैः सह।
कूप्यभ्यन्तर आस्थाप्य त्रिदिनं पाचयेत्सुधीः ॥१३८॥
दाडिमीकुसुमप्रख्यं जायते चाविकल्पतः।
वलीपलितविध्वंसि बलपुष्टिकरं महत् ॥१३९॥
आरोग्यजननं मेधाकान्तिकृच्छुक्रवर्द्धनम्।
महौषधवरं चैतदष्टावक्रेण निर्मितम् ॥१४०॥

१. शुद्ध पारद ४६ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ९३ ग्राम, ३. सुवर्णभस्म ६ ग्राम, ४. रजतभस्म ३ ग्राम; ५. नागभस्म, ६. ताम्रभस्म, ७. खर्परभस्म (यशदभस्म), ८. वङ्गभस्म—प्रत्येक १५०० मि.ग्रा. लें। एक साफ खरल में पारद एवं गन्धक को एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः अन्य सभी भस्मों को उस कज्जली में डालकर मर्दन करें और वटाङ्कुरस्वरस तथा घृतकुमारीस्वरस की १-१ भावना दें। सूखने पर चूर्ण करें तथा ७ बार कपड़मिट्टी की हुई बोतल में उपर्युक्त औषधि को डालकर बालुकायन्त्र में तीन दिनों तक पाक करें। चौथे दिन स्वाङ्ग शीतल होने पर बोतल से कपड़मिट्टी हटाकर बोतल तोड़ें और बोतल के ऊपर एवं तली से भी औषधि प्राप्त करें। फिर दोनों को पीसकर एक साथ मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'अष्टावक्ररस' कहते हैं। इस रसौषधि को अष्टावक्र ऋषि (विश्वामित्र के पुत्र) ने बनाया था। इसे १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु तथा रोगानुसार अनुपान से सेवन करने से यह वली-पलित नाशक है, बलकारक है, शरीर को पुष्टि करता है, आरोग्यदायक है, मेधा एवं शरीर कान्तिवर्धक है तथा शुक्र की वृद्धि करता है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **रस**—नीरस। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—रसायनकर्म।

३१. त्रैलोक्यचिन्तामणि

रसं वज्रं हेम तारं ताम्रं तीक्ष्णं मृताभ्रकम्।
मौक्तिकं गन्धकं शङ्खं प्रवालं तालकं शिला ॥१४१॥
शोधितं च समं सर्वं सप्ताहं मर्दयेद् दृढम्।
वह्निमूलकषायेण भानुदुग्धे दिनत्रयम् ॥१४२॥
निर्गुण्डीशूरणद्रावैर्वज्रीदुग्धैर्दिनत्रयम् ।
पीतवर्णवराट्याश्चानेन गर्भं प्रपूरयेत् ॥१४३॥
टङ्कणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा लिम्पेच्च तन्मुखम्।
रुद्ध्वा भाण्डमुखं पाच्यं स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥१४४॥
चूर्णतुल्यं मृतं सूतं वैक्रान्तं सूतपादिकम्।
शोभाञ्जनद्रवैः सर्वं सप्तवारान् विभावयेत् ॥१४५॥
वह्निमूलकषायेण भावनाद्वयमीहते।
एवं संशुद्धसूतेन्द्रः सर्वव्याधिकुलान्तकः।
गुञ्जैकेन निहन्त्याशु जरामृत्युं न संशयः ॥१४६॥
वातं विद्रधिशूलपाण्डुग्रहणीरक्तातिसाराञ्जयेद्
मेहप्लीहजलोदराश्मरितृषाशोथं हलीमोदरम्।
मूत्राघातभगन्दरज्वरगणान् सर्वाणि कुष्ठान्यपि-
साध्यासाध्यभवान्गदान्बहुतरान् संसाधयेद्योगतः ॥

१. शुद्ध पारद, २. हीरकभस्म, ३. सुवर्णभस्म, ४. रजतभस्म, ५. ताम्रभस्म, ६. तीक्ष्णलौहभस्म, ७. अभ्रकभस्म, ८. मोतीपिष्टि, ९. शुद्धगन्धक, १. शंखभस्म, ११. प्रवालभस्म, १२. शुद्धहरताल, १३. शुद्ध मन:शिला—ये सभी १३ द्रव्य १-१ भाग लें।

भावनाद्रव्य—चित्रकमूलक्वाथ तथा अर्कदुग्ध से ३-३ दिन तक मर्दन करें तत्पश्चात् निर्गुण्डीपत्ररस, सूरणकन्दरस तथा स्नुहीक्षीर से १-१ दिन मर्दन करें।

सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः शुद्ध हरताल एवं शुद्ध मन:शिला देकर मर्दन करें। तदनन्तर अन्य भस्मों को मिलाकर १ सप्ताह तक चित्रकमूलक्वाथ तथा अर्कदुग्ध प्रत्येक से २-२ दिन मर्दन करें। पुनः निर्गुण्डीपत्रस्वरस, सूरणकन्दद्रव एवं स्नुहीक्षीर से १-१ दिन मर्दन करें। औषधि के सूखने पर पीली कौड़ी में इस औषधिचूर्ण को भरकर उसके मुख को कच्चा टङ्कण तथा अर्कदुग्ध दोनों को मर्दित कर उस पेस्ट से कौड़ी का मुख बन्द करें और शरावसम्पुट कर गजपुट में पाक करें। टंकण पेस्ट जो काच जैसा हो जायगा उसे निकालकर पृथक् कर लें और कौड़ी सहित औषधि को तौल कर मर्दन करें। ततः उस कौड़ी सहित औषधि चूर्ण के बराबर रससिन्दूर लें और रससिन्दूर का चौथाई वैक्रान्त भस्म लेकर कौड़ीभस्म सहित औषधि के साथ मिलाकर मर्दन करें। शिग्रुत्वक्स्वरस तथा चित्रकमूलक्वाथ के साथ २ भावना दें। पुनः १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में अच्छी तरह सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'त्रैलोक्यचिन्तामणिरस' सभी व्याधियों के मूल भाग से नष्ट करता है। जरा एवं मृत्यु को निःसन्देह नष्ट करता है। इस औषधि के प्रयोग से समस्त वातरोग, विद्रधि, शूल, पाण्डुरोग, संग्रहणी, रक्तातिसार, प्रमेह, प्लीहारोग, जलोदर, अश्मरी, पिपासा, शोथ, हलीमक, उदररोग, मूत्राघात, भगन्दर, सभी प्रकार के ज्वर, सभी प्रकार के कुष्ठरोग तथा अन्य अनेक प्रकार के साध्यासाध्य रोग भी इस औषधि के रोगानुसार अनुपान से प्रयोग करने पर नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **रस**—कटु। **गन्ध**—रसायनगन्धि। **वर्ण**—रक्ताभ। **उपयोग**—रसायनकर्म।

३२. शिवागुटिका (चक्रदत्त)

काले तु रवितापाढ्ये कृष्णायसजं शिलाजतु प्रवरम्।
त्रिफलारससंयुक्तं त्र्यहं च शुष्कं पुनः शुष्कम् ॥१४८॥
दशमूलस्य गुडूच्या रसे बलायास्तथा पटोलस्य।
मधुकरसैर्गोमूत्रे त्र्यहं त्र्यहं भावयेत् क्रमशः ॥१४९॥
एकाहं क्षीरेण तु तत् पुनर्भावयेच्छुष्कम्।
सप्ताहं भाव्यं स्यात् क्वाथेनैषां यथालाभम् ॥१५०॥
काकोल्यौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा।
ऋद्धियुगर्षभवीरा मुण्डितिकाजीरकेऽशुमत्यौ च ॥१५१॥
रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकलिङ्गचव्याब्दाः।
कटुका शृङ्गी पाठा तानि पलांशिकानि कार्याणि ॥१५२॥
अब्द्रोणे साधितानां रसेन पादांशिकेन भाव्यानि।
गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलादि दश षट् च ॥१५३॥
द्विपलं च विश्वामागधिकाकटुकर्कटाख्यमरिचानाम्।
चूर्णं पलं विदार्यास्तालीशपलानि चत्वारि ॥१५४॥
षोडश सितापलानि चत्वारि घृतस्य माक्षिकस्याष्टौ।
तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णार्द्धपलानि पञ्चानाम् ॥१५५॥
त्वक्क्षीरिपत्रत्वङ् नागैलानां मिश्रयित्वा तु।
गिरिजस्य षोडशपलं गुडिकाः कार्यास्ततोऽक्षसमाः ॥१५६॥
ताः शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः।
तासामेका काले भक्ष्या पेयाऽपि वा सततम् ॥१५७॥

अनुपानम्

क्षीररसदाडिमरसाः सुरासवं मधु च शिशिरतोयानि।
आलोडनानि तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥१५८॥

भोजनम्

जीर्णे लघ्वन्नपयो जाङ्गलनिर्यूहयूषभोजी स्यात्।
सप्ताहं यावदतः परं भवेत् सर्वसामान्यम् ॥१५९॥
भुक्त्वाऽपि भक्षितेयं यदृच्छया नावहेद्भयं किञ्चित्।
निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारकैः कामिभिश्चैव ॥१६०॥

गुणाः

संवत्सरं प्रयुक्ता हन्त्येषा वातशोणितं प्रबलम्।
बहुवार्षिकमपि गाढं यक्ष्माणं चाढ्यवातं च ॥१६१॥
ज्वरयोनिशुक्रदोषप्लीहार्शःपाण्डुग्रहणीरोगान्।
ब्रध्नवमिगुल्मपीनसहिक्काकासारुचिश्वासान् ॥१६२॥
जठरं श्वित्रं कुष्ठं षाण्ढ्यं क्लैब्यं मदं क्षयं शोषम्।
उन्मादापस्मारौ वदनाक्षिशिरोगदान् सर्वान् ॥१६३॥
आनाहमतीसारं सासृग्दरं कामलाप्रमेहांश्च।
यकृदर्बुदानि विद्रधिं भगन्दरं रक्तपित्तं च ॥१६४॥
अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं स्वेदमथ श्लीपदं च विनिहन्ति।
दंष्ट्राविषं समौलं गराणि बहुप्रकाराणि ॥१६५॥
मन्त्रौषधियोगान् विप्रयुक्तान् भौतिकांस्तथा भावान्।
पापालक्ष्म्यौ चेयं शमयेद् गुडिका शिवा नाम्नी ॥१६६॥
बल्या वृष्या धन्या कान्तियशःश्रीप्रजाकरी चेयम्।
दद्यान्नृपवल्लभतां जयं विवादे मुखस्था च ॥१६७॥
श्रीमान् प्रकृष्टमेधाः स्मृतिबुद्धिबलान्वितोऽतुलशरीरः।
पुष्ट्योजोऽतिविमलेन्द्रियतेजोबलसम्पदुपेतः ॥१६८॥

वलीपलितरोगरहितो जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः।
संवत्सरप्रयोगाद् द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥१६९॥
सर्वामयजित् कथितं मुनिगणभक्ष्यं रसायनरहस्यम्।
शिवागुडिकेति रसायनमुक्तं गिरिशेन गणपतये ॥१७०॥
शिववदनविनिर्गता यस्मान्नाम्ना तस्माच्छिवा गुडिका॥
समुद्भभूवामृतमन्थनोत्थः
स्वेदः शिलाभ्योऽमृतवद्गिरेः प्राक्।
यो मन्दरस्यात्मभुवा हिताय
न्यस्तः स शैलेषु शिलाजरूपी ॥१७१॥

भगवान् सूर्य की प्रखर किरणों की अत्यधिक उष्मा से प्रतप्त कृष्ण वर्ण के पत्थरों से युक्त पर्वत से एक प्रकार का स्राव निकलता है, जिसे महर्षिगणों ने 'शिलाजीत' नाम से कहा है। उसे कंकड़-पत्थरों से रहित कर त्रिफलाक्वाथ में घोलकर वस्त्र पूत कर पुनः आग पर तपाकर उस द्रव को पूर्णरूप से सुखा लें। पुनः एक खरल में उस शिलाजतु को रखकर क्रमशः दशमूलक्वाथ, गुडूचीस्वरस या क्वाथ, बलामूलक्वाथ, पटोल पत्रस्वरस या क्वाथ, यष्टिमधुक्वाथ तथा गोमूत्र के साथ ३-३ दिनों तक मर्दन करें। ततः गोदुग्ध के साथ १ दिन मर्दन करें। तदनन्तर १. काकोली, २. क्षीरकाकोली, ३. मेदा, ४. महामेदा, ५. विदारीकन्द, ६. क्षीरविदारीकन्द, ७. शतावरी, ८. द्राक्षा, ९. ऋद्धि, १०. वृद्धि, ११. जीवक, १२. ऋषभक जटामांसी, १३. मुण्डी, १४. श्वेतजीरक, १५. शालपर्णी, १६. रास्ना, १७. पुष्करमूल, १८. चित्रकमूल, १९. दन्तीमूल, २०. गज-पीपर, २१. इन्द्रयव, २२. चव्य, २३. नागरमोथा, २४. कटुकी, २५. काकड़ासिंगी और २६. पाठा—ये सभी २६ द्रव्य लेकर यवकुट करें और १ द्रोण (१३ लीटर) जल में क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छान लें और इस क्वाथ से उपर्युक्त भावित शिलाजतु लेकर खरल में सात दिनों तक भावना दें। इस प्रकार निर्मित शुद्ध शिलाजतु १६ पल (७५० ग्राम), शुण्ठी-चूर्ण ९३ ग्राम, पीपरचूर्ण ९३ ग्राम, कटुकीचूर्ण ९३ ग्राम, काकडासिंगी मरिचचूर्ण ९३ ग्राम, विदारीकन्द ४६ ग्राम, तालीशपत्र १८५ ग्राम, मिश्रीचूर्ण ७५० ग्राम, गोघृत १८५ ग्राम, मधु ३७५ ग्राम, तिलतैल ९३ मि.ली.; वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर और छोटी इलायची—प्रत्येक द्रव्य २३-२३ ग्राम लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। शिलाजतु से लेकर छोटी इलायचीचूर्ण तक के सभी द्रव्यों को एक साथ हाथों से अच्छी तरह मिलाकर १०-१० ग्राम की गुडिका बनाकर मिट्टी के नये पात्र में संग्रहीत करें। पात्र के नीचे चमेली पुष्प रखकर उस औषधि को सुवासित करें। इस शिवा गुडिका को भगवान् शंकर ने श्रीगणेशजी के लिए कहा था। प्रतिदिन १ गुडिका दूध के साथ मांस रस के साथ, अनार स्वरस के साथ, मद्य के साथ, आसव के साथ, मधु के साथ अथवा शीतल जल के साथ सेवन करना चाहिए। इन द्रवों में से यथारुचि कोई एक द्रव में उक्त गुडिका को घोलकर भी सेवन किया जा सकता है। औषधि के जीर्ण होने पर भी लघु अन्न, पेया, जंगली पशु-पक्षियों के मांसरस तथा यूष का भोजन करना चाहिए। १ सप्ताह तक इस प्रकार पथ्य पालन के बाद सामान्य पथ्य का पालन करना चाहिए। यथेष्ट आहार-विहार करते हुए इस गुडिका का सेवन करने से उत्तम कोई दूसरी औषधि नहीं है। इसे सुकुमार एवं कामी व्यक्ति भी सेवन कर सकते हैं। १ वर्ष तक निरन्तर प्रयोग करने से यह प्रबल वातरक्त, पुराना यक्ष्मा, आढ्यवात, ज्वर, योनिरोग, शुक्रदोष, प्लीहारोग, अर्श, पाण्डु, संग्रहणी, ब्रध्न, वमन, गुल्म, पीनस, हिक्का, कास, अरुचि, श्वास, उदररोग, श्वित्रकुष्ठ, षाण्ढ्य, नपुंसकता, मदरोग, क्षय-रोग, शोष रोग, उन्माद, अपस्मार, मुखरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, आनाह, अतिसार, रक्तप्रदर, कामला, प्रमेह, यकृद्रोग. अर्बुद, विद्रधि, भगन्दर, रक्तपित्त, अत्यन्त कार्श्य (कृशता), अत्यन्त स्थौल्य, अतिस्वेद, श्लीपद, दंष्ट्राविष (सर्पविष, श्वानविषादि), मूल विष, अनेक प्रकार के गर विष, मन्त्र एवं औषधों के गलत प्रयोग से उत्पन्न दोषों का नाश करता है। इस गुटिका के प्रयोग से पाप एवं अलक्ष्मी आदि उपद्रव शान्त हो जाते हैं। यह 'शिवागुटिका' बल्य, वृष्य, धन्य (यश-कीर्ति एवं धन-धान्य से सम्पन्न करने वाला), शरीरकान्तिप्रद, यश, शोभाजनक तथा सन्तानोत्पादक है। इस गुटिका को मुख में धारण करने से व्यक्ति राजा का प्रिय हो जाता है तथा विवाद में विजय प्राप्त होती है। इससे शरीर की कान्ति बढ़ती है, बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है, स्मृति एवं बल में अतुल पराक्रम की प्राप्ति होती है। ओज की वृद्धि होती है, इन्द्रियाँ अत्यन्त निर्मल होकर तेज एवं बल से सम्पन्न हो जाती हैं। व्यक्ति इसके प्रभाव से वली-रहित होकर २०० वर्षों तक जीवित रहता है। जो व्यक्ति इस गुटिका को २ वर्ष तक सेवन करता है वह ४०० वर्षों तक जीवित रहता है। यह सभी रोगों को नष्ट करने वाला तथा मुनियों के लिए सेवन करने योग्य रसायन है। यह गुटिका शिव भगवान् के मुख से कही गयी है इसीलिए इसका नाम 'शिवागुडिका' रखा गया है। समुद्रमन्थन के समय मेरु पर्वत से अमृत युक्त जो स्नेह निकला था, उसी को ब्रह्मा जी ने पर्वतों में शिलाजीत रूप में रख दिया है।

मात्रा—१० ग्राम। **अनुपान**—दूध से। **रस**—तिक्त। **गन्ध**—गोमूत्रगन्धी। **वर्ण**—श्याव। **उपयोग**—रसायनकर्म।

३३. अमृतभल्लातक **(चक्रदत्त)**

सुपक्वभल्लातफलानि सम्यग्
द्विधा विदार्याढकसम्मितानि।

विपाच्य तोयेन चतुर्गुणेन
चतुर्थशेषे व्यपनीय तानि ॥१७२॥
पुनः पचेत्क्षीरचतुर्गुणेन
घृतांशयुक्तेन घनं यथा स्यात्।
सितोपलाषोडशभिः पलैस्तु
विमिश्र्य संस्थाप्य दिनानि सप्त ॥१७३॥
ततः प्रयोज्याग्निबलेन मात्रां
जयेद्गुदोत्थानखिलान् विकारान्।
कचान् सुनीलान् घनकुञ्चिताग्रान्
सुपर्णदृष्टिं सुकुमारतां च ॥१७४॥
जवं हयानां च मतङ्गजं बलं
स्वरं मयूरस्य हुताशदीप्तिम्।
स्त्रीवल्लभत्वं लभते प्रजां च
नीरोगमब्दद्विशतानि चायुः ॥१७५॥
न चान्नपाने परिहार्यमस्ति
न चातपे चाध्वनि मैथुने च।
प्रयोगकाले सकलामयानां
राजा ह्ययं सर्वरसायनानाम् ॥१७६॥
भल्लातकशुद्धिरिह प्रागिष्टचूर्णगुण्डनात्।
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं घृतस्य प्रस्थ इष्यते ॥१७७॥

सुपक्व भिलावाफल ३ किलो, मधुरजल १२ लीटर, अवशेषक्वाथ ३ लीटर, गोदुग्ध १२ लीटर, गोघृत ७५० ग्राम तथा चीनी ७५० ग्राम लें। सभी भिलावा को पानी से भरी एक बाल्टी में डालकर परीक्षा करें। अच्छा भिलावा पानी में डूब जाता है और कच्चा या अपक्व भिलावा पानी के ऊपर तैरता रहता है। तैरने वाले को फेंक दें और डूबे भिलावे को पानी से निकालकर कपड़ा से पोंछ लें। अब हाथों में दस्ताने पहनकर पैर को भी कपड़े से ढक लें तथा मुख पर भी कपड़ा बाँध लें। अब सरौते से सभी भिलावे को काटकर दो-दो टुकड़ा कर लें। ततः १२ लीटर जल में कटे भिलावे को डालकर एकान्त स्थान में मध्यमाग्नि पर पाक करें। जब चौथाई (३ लीटर) शेष रहे तो कपड़ा से क्वाथ को छानकर भिलावा के टुकड़ों को फेंक दें। क्वाथ शीतल होने पर ही छानें। गरम क्वाथ का वाष्प लगने से शरीर में कष्ट होने लगेगा। अब क्वाथ से ४ गुना गोदुग्ध मिलाकर पुनः मन्दाग्नि पर पाक करें। अर्धावशेष रहने पर उसमें गोघृत एवं चीनी मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब गाढ़ा होकर हलवा जैसा सूख जाय तो उतारकर किसी काचपात्र में १ सप्ताह तक छोड़ दें। इसे आठवें दिन से प्रयोग में लायें। अग्नि एवं बलानुसार ५ से १० ग्राम तक की मात्रा में गोदुग्ध के साथ प्रयोग करें। इसके प्रयोग से सभी प्रकार के गुदज रोग यथा—अर्श-भगन्दरादि नष्ट हो जाते हैं। श्वेतबाल नीलवर्ण के, घने एवं कुञ्चित हो जाते हैं। गरुड़ जैसी तीक्ष्ण दृष्टि हो जाती है। व्यक्ति सुकुमार हो जाता है। वह घोड़े जैसा वेगवान् तथा हाथी जैसे बल वाला, मयूर जैसा स्वर तथा अग्नि जैसी प्रदीप्त मुखाकृति हो जाती है। वह स्त्रियों का स्वामी हो जाता है तथा अनेक पुत्र-पौत्रादिकों से युक्त हो जाता है। रोग-रहित होकर २०० वर्षों तक जीवित रहता है। अन्नपान में कोई परहेज नहीं है, धूप में बाधा नहीं, मार्गगमन में बाधा नहीं तथा मैथुन में भी किसी तरह की बाधा नहीं होती है। यह सर्वरोग नाशक है तथा यह रसायनों का राजा है। भल्लातक का शोधन ईंट के चूर्ण करने की बात पहले कही गई है। घी १ प्रस्थ (७५० ग्राम) लेना चाहिए और घृत से ४ गुना दूध लेना चाहिए।

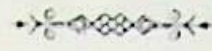
मात्रा—५-१० ग्राम। **अनुपान**—गोदुग्ध। **रस**—मधुर। **गन्ध**—पाकसुगन्धी। **वर्ण**—किञ्चिद्रक्ताभ। **उपयोग**—रसायन-कर्म।

३४. सारस्वतारिष्ट

समूलपत्रशाखाया ब्राह्म्या ब्राह्ममुहूर्त्तके।
गृहीत्वा विंशतिपलं पुष्ययोगे शतावरी ॥१७८॥
विदारिकाऽभयोशीराण्यार्द्रकञ्च तथा मिशिः।
पञ्च पञ्च पलान्येषां जलद्रोणे पचेद्भिषक् ॥१७९॥
पादावशेषे विस्त्राव्य रसं वस्त्रेण गालयेत्।
माक्षिकस्य दशपलं सितायाः पञ्चविंशतिः ॥१८०॥
धातकीपञ्चपलिका रेणुका त्रिवृता कणा।
देवपुष्पं वचा कुष्ठं वाजिगन्धा बिभीतकी ॥१८१॥
अमृतैला विडङ्गं त्वक् प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
क्वाथे तस्मिन् समस्तानि समाक्षिप्य प्रयत्नतः ॥१८२॥
स्वर्णकुम्भे निदध्याद्वा नवे मृद्भाजनेऽपि वा।
स्वर्णस्य तनु पत्रं च क्षिप्त्वाऽस्मिन् कर्षसम्मितम् ॥१८३॥
मासाज्जातरसं दृष्ट्वा हेमपत्रे क्षयं गते।
वाससा च परिस्त्राव्य स्थापयेद्घृतभाजने ॥१८४॥
सारस्वताभिधोऽरिष्ट एषोऽमृतसमः पुरा।
शिष्याणामुपकारार्थं धन्वन्तरिविनिर्मितः ॥१८५॥
आयुर्वीर्यं स्मृतिं मेधां बलं कान्तिं विवर्द्धयेत्।
वाग्विशुद्धिकरो हृद्यो रसायनवरः स्मृतः ॥१८६॥
बालकानां च यूनां च वृद्धानां च सदा हितः।
नरनारीहितो नित्यं परमोजस्करो मतः ॥१८७॥
वारयेत्स्वरकार्कश्यं तथा चास्पष्टभाषणम्।
स्वरं परभृतस्येव जनयेत्सेवनात् सदा ॥१८८॥
रजोदोषेण दुष्टानां योषितां शुक्रदोषिणाम्।
पुंसां चापि शुभकरः सर्वदोषहरो मतः ॥१८९॥
अत्यध्ययनगीतादिक्षीणस्मृतिबलो नरः।
लभन्ते चित्तसन्तोषं स्मृतिं चास्य निषेवणात् ॥१९०॥

पयसा सह पातव्योऽरिष्टोऽयं शाणमानतः।
मासाभ्यां रोगहृच्चायं शरदा सर्वसिद्धिदः ॥१९१॥
अकालमृत्योर्हरणे यदीच्छा
नारीप्रियत्वं यदि वाञ्छितं स्यात्।
वाक्शुद्धिधैर्यं स्मृतिलब्धिरिष्टा
निषेव्यतां तर्ह्यमृतं भवद्भिः ॥१९२॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां रसायनाधिकारः।



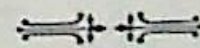
पुष्यनक्षत्र के ब्राह्ममुहूर्त्त में ब्राह्मी को मूल, पत्र एवं शाखा सहित के उखाड़ लें तथा छाया में सुखा लें। इस प्रकार १. सूखी ब्राह्मी २० पल (९३५ ग्राम), २. शतावरीमूल, ३. विदारी कन्द, ४. हरीतकीफलदल, ५. खस, ६. सोंठ, ७. सौंफ—प्रत्येक ५-५ पल (२३५ ग्राम) लें। मधु १० पल (४७० ग्राम), चीनी २५ पल (११७० ग्राम) तथा धातकीपुष्प २३५ ग्राम।

प्रक्षेप—१. रेणुकाबीज, २. त्रिवृत्, ३. पीपर, ४. लवङ्ग, ५. वच, ६. कूठ, ७. अश्वगन्ध, ८. बहेड़ाफलत्वक्, ९. गुडूची, १०. छोटी इलायची, ११. विडङ्ग, १२. दालचीनी—प्रत्येक द्रव्य १-१ कर्ष (१२-१२ ग्राम) लें।

ब्राह्मी से सौंफ तक के सातों द्रव्यों को यवकुट करें (प्रत्येक को पृथक्-पृथक् यवकुट करें)। ततः १ द्रोण (१३ लीटर) जल में इनका क्वाथ करें। चौथाई शेष रहने पर छानकर (सुवर्ण के घड़े में क्वाथ रखना चाहिए किन्तु आज सुवर्ण घट दुर्लभ है) अतः मिट्टी के नये घड़े में क्वाथ रखें। इस घड़े में १ तोला स्वर्णपत्र का तबक डाल दें। धातकीपुष्प को बिना कूटे ही धूप में सुखाकर रखें। इस क्वाथ में मधु एवं चीनी अच्छी तरह मिलायें। ततः धातकीपुष्प एवं रेणुकाबीज से दालचीनी तक के सभी १२ द्रव्यों को मोटा यवकुट कर उस घड़े में अच्छी तरह से मिलाकर शराव से मुख बन्दकर कपड़मिट्टी से अच्छी तरह लेप करें। घड़े पर निर्माणतिथि एवं सारस्वतारिष्ट लिख दें। १ माह के बाद इसे छान लें और बोतलों में भरकर कार्क लगा दें। इसे सारस्वतारिष्ट कहते हैं। यह अमृत के जैसा फलप्रद है। शिष्यों पर उपकारार्थ भगवान् धन्वन्तरि ने इसे कहा है। यह आयुष्य है, शुक्रल है, स्मृतिवर्धक है, मेधावर्धक है, बलवर्धक है, कान्तिवर्धक है, वाक्शुद्धिकर है, हृद्य है, रसायनों में श्रेष्ठ है। बालकों, युवाओं एवं वृद्धों के लिए समान रूप से हितकर है। पुरुषों एवं स्त्रियों के लिए समान रूप से हितकर है। परम ओजोवर्द्धक है। इसके सेवन से स्वर की कर्कशता, हकलाकर बोलना (अस्पष्ट बोलना) आदि नष्ट हो जाते हैं तथा स्वर में कोमलता आ जाती है। रजोदोष से दूषित स्त्रियाँ तथा शुक्रदोष से दूषित पुरुषों के लिए अधिक हितावह है। अधिक अध्ययन करने वाले छात्रों तथा गीत आदि गाने वाले गायकों की स्मृति एवं बल के क्षीण होने पर यह अत्यधिक लाभकर होता है। इसके सेवन से मन में सन्तोष एवं स्मृति की वृद्धि होती है। इस अरिष्ट को ६ मि.ली. की मात्रा में बराबर जल मिलाकर भोजनोत्तर २ बार लेना चाहिए। १ मास में उक्त सभी विकार नष्ट हो जाते हैं तथा १ वर्ष तक सेवन करने से सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जिन्हें अकाल मृत्यु से बचना हो, जो सदा स्त्रियों का प्रियपात्र बनना चाहते हो, उन्हें सारस्वतारिष्ट नामक अमृत का सदा सेवन करना चाहिए।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **अनुपान**—बराबर जल मिलाकर। **रस**—मधुर-तीक्ष्ण। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ द्रव। **उपयोग**—रसायनकर्म।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य रसायनाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ वाजीकरणाधिकारः (७४)

वाजीकरण की आवश्यकता

चिन्तया जरया शुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्षणात्।
क्षयं गच्छत्यनशनात् स्त्रीणां चातिनिषेवणात् ॥१॥

अनेक प्रकार की चिन्ता से, वृद्धावस्था के कारण, रोग से, व्यायामादिकर्म से अथवा पञ्चकर्म के हीन या अतियोग से अधिक दिनों तक भूखे रहने से, स्त्रियों के साथ अति सम्भोग करने से और अधिक मात्रा में शुक्र का क्षय होने से पुरुष प्रायः क्लैब्य (नपुंसक) हो जाता है, अतः उसे वाजीकरण औषधियों द्वारा पुनः पुंसत्व प्राप्त कराना चाहिए।

वाजीकरण की निरुक्ति (चरक)

येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः।
व्रजेच्चाप्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत् ॥२॥

जिस औषधि एवं आहार-विहार के द्वारा वीर्यहीन पुरुष स्त्रियों के साथ घोड़ा के समान सम्भोग करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है, उसे वाजीकरण कहते हैं। साथ ही वाजीकरण गुणयुक्त औषधियों के सेवन से वीर्य की अधिक वृद्धि होती है।

वाजीकरण पर्याय तथा निरुक्ति

वाजः = शुक्रं, तदस्यास्तीति वाजी,
अवाजी वाजी क्रियतेऽनेनेति वाजीकरणम् ॥३॥

(वाजः= शुक्रं, वाजः = प्राणः, वाजः = इन्द्रियः, वाजः = अश्वः, वाजः = मैथुनं, वाजः = पुंस्त्वः, वाजः = वेगः, वाजः = पक्षः, वाजः = अतिबलं, वाजः = स्त्रीवशीकरणं) जिस पुरुष में शुक्र हो, उसे वाजी कहते हैं, जिस पुरुष में शुक्र नहीं हो उसे अवाजी कहते हैं। ऐसे अवाजी (शुक्रहीन) पुरुष को जिस औषधादि योग से वाजी बनाया जाय, उस औषधि को वाजीकरण औषधि कहते हैं।

वाजो नाम प्रकाशत्वात्तच्च मैथुनसंज्ञितम्।
वाजीकरणसंज्ञाभिः पुंस्त्वमेव प्रचक्षते ॥४॥

वाज शब्द से मैथुन अर्थ ग्रहण करने पर 'वाजी' का अर्थ मैथुन शक्ति वाला पुरुष होगा। अतः जिस औषधि से अवाजी (मैथुनशक्ति रहित) पुरुष को वाजी (मैथुनशक्ति से युक्त) बनाया जाता है, वह वाजीकरण कहलाता है। अतः वाजीकरण संज्ञा से पुंस्त्व का ही बोध होता है। अतः पुंस्त्व को बढ़ाने वाली औषधि को ही वाजीकरण कहते हैं।

विमर्श—'अवाजी वाजीवात्यर्थं मैथुने शक्तः क्रियते येन तद्वाजीकरणम्'। उक्तं हि—'वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतः स्त्रियम्'। तथा च—'वाजीकरणमग्र्यञ्च क्षेत्रं स्त्री या प्रहर्षिणी'। (च. चि. २।१।४)

वाजीकरण औषधि की आवश्यकता

ग्लानिः कम्पोऽवसादस्तदनु च कृशता क्षीणता चेन्द्रियाणां
शोषोच्छ्वासोपदंशज्वरगुदजगदाः क्षीणता सर्वधातौ।
जायन्ते दुर्निवाराः पवनपरिभवाः क्लीबता लिङ्गभङ्गो
वामावश्यातियोगाद् भजत इह सदा वाजिकर्मच्युतस्य ॥५॥

वाजीकरण औषधि लिए बिना स्त्रियों के वशीभूत होकर अत्यधिक मैथुन करने से ग्लानि, शरीरकम्प, अवसाद (शिथिलता), कृशता, इन्द्रियों की क्षीणता, शरीर का शोष, श्वास, उपदंश, ज्वर, गुदरोग (अर्श-भगन्दरादि), सभी धातुओं (रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र) की क्षीणता, असाध्य एवं दुश्चिकित्स्य वातरोग, नपुंसकता, लिङ्गभङ्ग (ध्वजभङ्ग) आदि भयंकर रोग हो जाते हैं। वाजीकरण औषधियों के समुचित प्रयोग से स्त्रियाँ वश में रहती हैं। अतः हे पुरुष! वाजीकरण गुणयुक्त औषधियों का सेवन करो!

वृष्य की परिभाषा (चरक)

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु।
हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद् वृष्यमुच्यते ॥६॥

जो द्रव्य मधुर है, स्निग्ध है, जीवन के लिए हितकर है, बृंहण (शरीर को मोटा करने वाला) है, गुरु है, मन को प्रसन्न करने वाला है, उसे वृष्य गुण युक्त द्रव्य कहते हैं।

वाजीकरण औषध सेवन की विधि एवं आयु (भा. प्र.)

नरो वाजीकरान् योगान् सम्यक् शुद्धो निरामयः।
सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वं तु षोडशात् ॥७॥
आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्त्तुमर्हति।
न च वै षोडशादर्वाक् सप्तत्याः परतो न च ॥८॥

स्वस्थ पुरुष को वमन-विरेचनादि पञ्चकर्म के बाद अर्थात् शरीर की सम्यक् शुद्धि के बाद, १६ वर्ष की आयु के बाद से लेकर ७० वर्ष की आयु के पहले तक की अवस्था में ही वाजीकरण औषधों का प्रयोग करना चाहिए। दीर्घायु की कामना करने वाले पुरुष को चाहिए कि १६ वर्ष का अवस्था से पूर्व और ७० वर्ष की आयु के बाद मैथुन कर्म नहीं करें।

वाजीकरण के अनुकूल विषय (भा.प्र.)

भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च ।
गीतं श्रोत्राभिरामाश्च वाचः स्पर्शसुखास्तथा ॥९॥
यामिनी चन्द्रतिलका कामिनी नवयौवना ।
गीतं श्रोत्रमनोज्ञं च ताम्बूलं मदिरा स्रजः ॥१०॥
गन्धा मनोज्ञा रूपाणि चित्राण्युपवनानि च ।
मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥११॥

अनेकों प्रकार के सुस्वादु एवं विचित्र भोजन, विविध पान (विविध मद्य, दुग्ध, जल, मांसरस, फलरस आदि द्रव), मनोनुकूल एवं कर्णप्रिय गीत एवं संगीत, मधुर वचन (कामिनियों से मधुर प्रेमालाप), प्रिया का स्पर्श, सुखस्पर्शी वस्त्र-आभूषणादि, पूर्णचन्द्रमा युक्त चन्द्रकिरण, निरभ्रयुक्त चन्द्रमा, नवयौवना कामिनियों की संगति, वार्तालाप, स्पर्श-सुख, कर्णप्रिय संगीत, गीत, ताम्बूल, मदिरा, स्फटिक एवं अन्य रत्नों की माला, मन को प्रसन्न करने वाले सुगन्धित इत्र एवं सुन्दराकृति स्त्रियों के दर्शन, विचित्र एवं विभिन्न वर्णों वाले सुगन्धित तथा मनोहर पुष्पों की वाटिका (उपवन), जहाँ पर मन अशान्त नहीं हो अर्थात् मन को प्रेरित करने वाले सभी कामुक साधन उपस्थित हों, वे सभी भाव पुरुष को वाजीकरण के लिए अनुकूल है।

धातुवैषम्य भाव

योगान् संसेव्य वृष्यान् ससितमथपयः शीतलं चाम्बु पीत्वा
गच्छेन्नारीं रसज्ञां स्मरशरतरलां कामुकः काममाद्ये ।
यामे हृष्टः प्रहृष्टां व्यपगतसुरतस्तत्समुत्पाद्य सद्यः
कान्तः कान्ताऽङ्गसङ्गादमहदपि न वै धातुवैषम्यमेति ॥१२॥

कामी पुरुष को सफल एवं अनुभूत तथा सर्वोत्कृष्ट वृष्य योग का सेवन करना चाहिए तथा बाद में चीनी युक्त सुखोष्ण गाढ़ा दूध या शीतलजल पीना चाहिए। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर कामकला में प्रवीण तथा कामिनी स्त्री के साथ रात्रि के प्रथम प्रहर में सुखपूर्वक सम्भोग करें। इस प्रकार मैथुन करने से थोड़ी मात्रा में भी धातु की कमी नहीं होती है।

वृष्यतमा स्त्री (वङ्गसेन)

सुरूपा यौवनस्था च लक्षणैर्यदि भूषिता ।
वयस्या शिक्षिता या वै सा स्त्री वृष्यतमा मता ॥१३॥

जो स्त्री रूपवती हो, युवती हो, कामशास्त्र के लक्षणों से युक्त हो, अर्थात् नृत्य, गीत, वाद्य, संगीत, लास्य तथा कामशास्त्र की कलाओं से परिपूर्ण हो, अवस्था भी अनुकूल हो एवं सुशिक्षित हो, ऐसी स्त्री 'वृष्यतमा' कही जाती है।

महर्षि चरक ने भी कहा है; यथा—

'सुरूपा यौवनस्था या लक्षणैर्या विभूषिता ।
या वश्या शिक्षिता या च सा स्त्री वृष्यतमा मता ॥
नानाभक्त्या तु लोकस्य दैवयोगाच्च योषिताम् ।
तं तं प्राप्य विवर्धन्ते नरं रूपादयो गुणाः ॥
वयोरूपवचोहावैर्या यस्य परमाङ्गना ।
प्रविशत्याशु हृदयं दैवाद्वा कर्मणोऽपि वा ॥
....
गत्वा गत्वाऽपि बहुशो यां तृप्तिं नैव गच्छति ।
सा स्त्री वृष्यतमा तस्य नानाभावा हि मानवाः' ॥

(च.चि. २।१।७-१५)

महर्षि अग्निवेश ने विशेषरूप से 'वश्या' शब्द का प्रयोग किया है जो वश में रहने का संकेत है। जिसके साथ पुनः-पुनः सम्भोग करने पर पुरुष को तृप्ति नहीं मिलती हो; अपने रूप, लावण्य, सुन्दरता, वचन, हाव-भाव, भक्ति एवं वशीभूत के कारण पुरुष के हृदय में प्रविष्ट होकर स्वयं तथा पुरुष को भी कामासक्त बना देती है, वही स्त्री वृष्यतमा कहलाती है।

वाजीकरण के योग्य पुरुष (भा.प्र.)

स्त्रीष्वक्षयं मृगयतां वृद्धानाञ्च रिरंसताम् ।
क्षीणानामल्पशुक्राणां स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः ॥१४॥
विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम् ।
नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः ॥१५॥

स्त्रियों के साथ यथेच्छ सम्भोग करने वाले तथा सम्भोग करने की अधिक इच्छा वाले पुरुष, वृद्ध, क्षीण शरीर वाले, अल्पवीर्य वाले एवं सम्भोग की इच्छा रखने वाले, स्त्रियों के साथ सम्भोग जन्य शुक्रक्षीण वाले, विलासी पुरुषों, धनिकों, रूप तथा यौवन वाली अनेक स्त्रियों वाले पुरुषों के लिए वाजीकरण औषधों का प्रयोग उचित है।

वाजीकरण के योग्य पुरुष (भा.प्र.)

योषित्प्रसङ्गात्क्षीणानां क्लीबानामल्परेतसाम् ।
हिता वाजीकरा योगाः प्रीणयन्ति बलप्रदाः ।
एतेऽपि पुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥१६॥

अत्यधिक स्त्रियों से सम्भोग करने के कारण क्षीण शुक्र एवं क्षीण शरीर वाले, साध्य नपुंसकों के लिए, अल्प शुक्र वाले पुरुषों के लिए वाजीकरण योग का सेवन करना हितावह है। यह वाजीकरण योग शरीर को पुष्ट करता है तथा बलदायक है। परिपुष्ट शरीर वाले पुरुषों को भी देश-कालादि पर विचार कर वाजीकरण औषधों का सेवन करना चाहिए।

१. माषद्विदल-क्षीरपाक प्रयोग

घृतभृष्टमाषविदलं दुग्धं सिद्धं च शर्करामिश्रम् ।
भुक्त्वा सदैव कुरुते तरुणीशतमैथुनं पुरुषः ॥१७॥

माष (उड़द) की दाल को यवकुट कर घृतभृष्ट करें। ततः दुग्ध में अच्छी तरह पकाकर खीर बना लें और उसमें यथेच्छ मात्रा में

शर्करा डालकर सदा सेवन करना चाहिए। प्रतिदिन इस खीर का २५० मि.ली. की मात्रा में सेवन करने से शुक्र की वृद्धि होती है और वह पुरुष १०० स्त्रियों के साथ मैथुन कर सकता है।

२. शतावरी क्षीरपाक

शतावरीशृतं क्षीरं प्रपिबेत्सितया युतम्।
रममाणस्य विरतिं मृदुतां याति नेन्द्रियम् ॥१८॥

शतावरी २५ ग्राम, गोदुग्ध ४०० मि.ली., जल १२०० मि.ली. लें। पहले शतावरी का यवकुट करें। ततः एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में शतावरी, गोदुग्ध एवं जल मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। केवल दूध ही शेष रहने पर उक्त दूध को कपड़ा से छान लें और शर्करा मिलाकर सुखोष्ण दुग्ध का पान करें। इस क्षीरपाक को प्रतिदिन सेवन करने से मैथुनशक्ति बढ़ती है तथा सम्भोग काल में पुरुष लिङ्ग शिथिल नहीं होता है।

३. वृद्धशाल्मलीमूल रसपान

वृद्धशाल्मलिमूलस्य रसं शर्करया समम्।
प्रयोगादस्य सप्ताहाज्जायते रेतसोऽम्बुधिः ॥१९॥

पुराने सेमलवृक्ष के मूलत्वक् को कूट-पीसकर स्वरस निकालें और उसमें १० ग्राम चीनी मिलाकर प्रतिदिन प्रातः पीने से १ सप्ताह में ही शुक्र की अत्यधिक वृद्धि होती है। (रेतसोऽम्बुधि = शुक्र का समुद्र)। प्रतिदिन १० मि.ली. स्वरस का पान करना चाहिए।

४. लघुशाल्मलीमूल प्रयोग

लघुशाल्मलिमूलेन तालमूलीं सुचूर्णिताम्।
सर्पिषा पयसा पीत्वा रतौ चटकवद्द्रवेत् ॥२०॥

छोटे (२-३ वर्ष के) शाल्मलीमूल (जो २ हाथ लम्बा हो) को लेकर छोटे-छोटे टुकड़े कर सुखा लें। अब यह शुष्क सेमल मुशली (शाल्मलीमूल) १०० ग्राम, श्वेतमुशली १०० ग्राम तथा मिश्रीचूर्ण १०० ग्राम लें। इन तीनों द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण का ५ ग्राम की मात्रा में गोघृत के साथ लेहन (चाट) कर ऊपर से चीनी युक्त सुखोष्ण गोदुग्ध पियें। ऐसा प्रतिदिन करना चाहिए। १-२ सप्ताह तक सेवन करने पर वह पुरुष चटक (गौरैया-पक्षी) जैसा मैथुन कर्म करता है। इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है।

५. विदारीकन्द चूर्ण प्रयोग (चक्रदत्त)

विदारीकन्दचूर्णञ्च घृतेन पयसा पिबेत्।
उदुम्बररसेनैव वृद्धोऽपि तरुणायते ॥२१॥

विदारीकन्दचूर्ण ३ ग्राम, मिश्रीचूर्ण ३ ग्राम, गोघृत ५ ग्राम तथा गोदुग्ध २५० मि.ली. लें। विदारीकन्दचूर्ण में मिश्रीचूर्ण मिलाकर गोघृत के साथ चाटें और ऊपर से चीनी मिलाया हुआ सुखोष्णदूध पियें। अथवा उदुम्बरत्वक्स्वरस या क्वाथ ५० मि.ली. के साथ अनुपान रूप में प्रयोग करने से १ सप्ताह में ही वृद्ध पुरुष भी तरुण (युवा) पुरुष के जैसा सम्भोग में समर्थ हो जाता है। अर्थात् वृद्ध भी जवान हो जाता है।

६. आमलास्वरस भावित आमलाचूर्ण प्रयोग

सप्तधाऽऽमलकीचूर्णमामलक्यम्बुभावितम्।
घृतेन मधुना लीढ्वा पिबेत्क्षीरपलं नरः।
वाजीकरणयोगोऽयमुत्तमः परिकीर्त्तितः ॥२२॥

आमलाचूर्ण में ताजे आमले के स्वरस की ७ भावना दें और बाद में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रतिदिन ३ से ५ ग्राम की मात्रा में विषम मात्रा में मधु-घृत मिलाकर लेहन (चाट) कर ऊपर से मिश्री मिश्रित सुखोष्ण गोदुग्ध पियें। ऐसा प्रतिदिन करने से कामशक्ति प्रतिदिन बढ़ती है तथा यह उत्तम वाजीकरण योग है।

वाजीकरण में अपथ्य

अत्यन्तमुष्णकटुतिक्तकषायमम्लं
क्षारञ्च शाकमथवा लवणाधिकञ्च।
कामी सदैव रतिमान् वनिताभिलाषी
नो भक्षयेदिति समस्तजनप्रसिद्धिः ॥२३॥

जो पुरुष कामी हो, हमेशा ही सम्भोग करना चाहता हो, अहर्निश स्त्रियों को चाहने वाला हो, वह पुरुष अतिउष्ण, अतिकटुद्रव्य, अत्यन्तअम्लद्रव्य, अत्यन्तक्षारीयपदार्थ, अत्यन्त-लवण तथा अत्यन्तशाक (पत्रशाक) का सेवन नहीं करें। ऐसी मान्यता समस्त जनता में प्रसिद्धि है।

७. घृतभर्जित बस्ताण्ड प्रयोग-१ (च.द.)

पिप्पलीलवणोपेतौ बस्ताण्डौ क्षीरसर्पिषा।
साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ॥२४॥

बकरे के दोनों अण्डकोष को निकालकर उसे जल के साथ उबाल लें। बाद में उन दोनों अण्डों को दबाकर जलीयांश को निकाल दें तथा गोघृत में हल्का लाल होने तक भून लें। उसमें सैन्धवलवण और पिप्पलीचूर्ण मिलाकर प्रतिदिन २-२ अण्डे इसी प्रकार सेवन करें। ऐसा प्रतिदिन सेवन करने से १०० प्रमदाओं के साथ सम्भोग करने की शक्ति हो जाती है।

८. बस्ताण्डप्रयोग-२ (अ.हृ.)

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितांश्चासकृत्तिलान्।
यः खादेत्स नरो गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥२५॥

बकरे के दोनों अण्डकोष को ८ गुना गोदुग्ध तथा १६ गुना जल में क्षीरपाक विधि से पाक करें। जब जल नष्ट हो जाय और केवल दूध ही शेष रहे तो अण्डकोष को निकालकर दूध को वस्त्र

से छान लें। उस दूध से ४६ ग्राम कृष्णतिलचूर्ण में भावना देकर मर्दन करें। इस तिल कल्क को प्रतिदिन सेवन करने से पुरुष १०० स्त्रियों के साथ अपूर्ववत् मैथुन करता है।

९. विदारीचूर्ण प्रयोग (च.द.)

चूर्णं विदार्याः सुकृतं तद्रसेनैव भावितम्।
सर्पिः क्षौद्रयुतं कृत्वा शतं गच्छेन्नरोऽङ्गनाः ॥२६॥

विदारीकन्दचूर्ण में विदारीकन्दस्वरस की ७ बार भावना देकर धूप में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस भावित चूर्ण को ३ से ४ ग्राम की मात्रा में लेकर विषममात्रा में घृत एवं मधु में मिलाकर चाटें और ऊपर से चीनी युक्त सुखोष्ण गोदुग्ध २५० मि.ली. पान करें। ऐसा प्रातः-सायं दो बार करें। इसके सेवन से पुरुष १०० स्त्रियों के साथ संभोग की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है।

१०. आमला स्वरस भावित आमलकी चूर्ण (ग.नि.)

एवमामलकीचूर्णं स्वरसेनैव भावितम्।
शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत्॥
एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ॥२७॥

आमला के चूर्ण में ताजे आमलकीस्वरस की ७ बार भावना देकर धूप में अच्छी तरह सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ३ ग्राम की मात्रा में मिश्रीचूर्ण, मधु एवं घृत मिलाकर लेहन करें (चाटें) और बाद में सुखोष्ण गोदुग्ध पीना चाहिए। इस योग का प्रतिदिन प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। ऐसा १५ से २० दिनों तक नियमित करने से ८० वर्ष तक का वृद्ध व्यक्ति युवा पुरुष की तरह अनेक स्त्रियों के साथ संभोग कर उन्हें तृप्त करता है।

११. विदारीकन्द चूर्ण (कल्क) प्रयोग (च.द.)

विदारीकन्दकल्कन्तु घृतेन पयसा नरः।
उदुम्बरसमं खादेद् वृद्धोऽपि तरुणायते ॥२८॥

विदारीकन्दचूर्ण १० ग्राम, गोघृत १० ग्राम, सुखोष्ण गोदुग्ध २५० मि.ली. तथा उसमें शर्करा मिलाकर पीने से वृद्ध व्यक्ति भी युवा पुरुष के जैसा अनेक स्त्रियों के साथ सम्भोग करता है।

नोट—उदुम्बरस्तु तोलकपर्यायः।

१२. आत्मगुप्ता-इक्षुरकबीज प्रयोग (च.द.)

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्बीजं समधुशर्करम्।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥२९॥

कपिकच्छुबीज (वानरीबीज) तथा इक्षुरक (तालमखाना बीज) का चूर्ण प्रत्येक ५-५ ग्राम लेकर इसमें १० ग्राम शर्कराचूर्ण मिलायें तथा मधु से मिश्रित कर प्रातः-सायं लेहन करें तथा बाद में धारोष्ण गोदुग्ध २५० मि.ली. पियें। ऐसा २० दिनों से १ महीना तक सेवन करने वाले व्यक्ति के शुक्र का क्षय नहीं होता है। अर्थात् अनेक स्त्रियों के साथ सम्भोग करने से भी शुक्र की कमी नहीं होती है।

१३. उच्चटामूलचूर्ण-शतावरीमूलचूर्ण प्रयोग (च.द.)

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममुच्यते।
शतावर्य्युच्चटाचूर्णं पेयमेवं सुखार्थिना ॥३०॥

उच्चटामूलचूर्ण (रक्तगुञ्जामूल) ५ ग्राम को शर्करा मिश्रित गरम गोदुग्ध २५० मि.ली. के साथ प्रातः-सायं सेवन करने से अथवा गुञ्जामूलचूर्ण एवं शतावरीचूर्ण ३-३ ग्राम शर्करा मिश्रित सुखोष्ण गोदुग्ध के साथ प्रातः-सायं २० से २५ दिनों तक सेवन करने से कामशक्ति बढ़ती है।

१४. यष्टिमधु चूर्ण (च.द.)

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम्।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ॥३१॥

यष्टिमधुचूर्ण (मुलेठी) १० ग्राम, मधु १० ग्राम एवं गोघृत ५ ग्राम मिलाकर प्रातः-सायं लेहन कर शर्करा मिश्रित सुखोष्ण गोदुग्ध २५० मि.ली. पिलायें। ऐसा १ माह तक सेवन करने से पुरुष प्रतिदिन अनेक स्त्रियों के साथ सम्भोग करने का उत्सुक रहता है।

१५. मछली का मांस प्रयोग (च.द.)

आर्द्राणि मत्स्यमांसानि शफरीर्वा सुभर्जिताः।
तप्ते सर्पिषि यः खादेत् स गच्छेत् स्त्रीषु न क्षयम् ॥३२॥

ताजी पकड़ी गई रोहित (रोहू) मछली को मसालों के साथ मिश्रित कर घृत में पकाकर प्रतिदिन खाने (भूनकर खाना) अथवा—शफरी मछली को साफ कर घृत में भर्जित कर खाने से स्त्रीसम्भोगरत पुरुष का शुक्र क्षीण नहीं होता है।

विशेष—रोहू मछली प्रबल वाजीकरण है। स्त्री-सम्भोग करने वाले व्यक्ति को प्रतिदिन घृतभर्जित रोहू या शफरी मछली खानी चाहिए।

१६. गोक्षुरादिचूर्ण (चक्रदत्त)

गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूली
वानरिनागबलाऽतिबला च।

चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं
यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥३३॥

१. गोक्षुरबीज, २. इक्षुरक (तालमखाना) बीज, ३. शतावरीमूल, ४. कपिकच्छुबीज, ५. नागरबलामूल तथा ६. अतिबला—इन छः द्रव्यों को प्रत्येक १-१ भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'गोक्षुरादिचूर्ण' को रात्रि में ३ ग्राम की मात्रा में शर्करा मिश्रित सुखोष्ण गोदुग्ध के साथ सोते समय लें। जिसकी १०० के लगभग स्त्रियाँ हों उसे

उनको मैथुन में सन्तुष्ट करने हेतु इस योग का अवश्य सेवन चाहिए।

१७. घृतभृष्टमाषदुग्ध प्रयोग (च.द.)

घृतभृष्टमाषदुग्धपायसो वृष्य उत्तमः ॥३४॥

उड़द की दाल को जल से धोकर चतुर्गुण गोदुग्ध में डालकर रात्रि पर्यन्त भींगने दें। प्रातः दूध से दाल को निकालकर सिल पर पीसें। ततः गोघृत में भूनकर अवशिष्ट दूध में मिलाकर पकायें। तदनन्तर मिश्री मिलाकर प्रतिदिन १०० ग्राम की मात्रा में सेवन करायें।

१८. क्षेत्रीकरणार्थ वाजीकरणयोग (र.ह.त.)

माक्षीकधातुमधुपारदलोहचूर्ण-
पथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि लिह्यात्।
एकोनविंशति दिनानि गदार्दितोऽपि
रोऽशीतिकोऽपि रमयेत् प्रमदां युवेव ॥३५॥

१. सुवर्णमाक्षिकभस्म, २. रससिन्दूर (या पारदभस्म), ३. लोहभस्म, ४. मधु, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. शुद्ध शिलाजतु, ७. विडङ्गचूर्ण, ८. गोघृत—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें। एक पत्थर के खरल में रससिन्दूर को मर्दन करें तथा उसमें क्रमशः माक्षिकभस्म तथा लौहभस्म मिलाकर मर्दन करें। ततः उसमें हरीतकी एवं विडङ्गचूर्ण मिलायें। तदनन्तर शुद्ध शिलाजतु को थोड़ा जल में घोलकर खरल स्थित सभी द्रव्यों के साथ मिला दें। तदनन्तर मधु एवं घृत मिलाकर अच्छी तरह से मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। शरीर संशोधन के पश्चात् रसौषधों के सेवन के पूर्व २१ दिनों तक १-१ ग्राम की मात्रा में प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से विभिन्न रोगों से आक्रान्त व्यक्ति रोगमुक्त हो जाता है तथा ८० वर्ष की आयु वाला वृद्ध व्यक्ति भी युवा जैसा अनेक स्त्रियों के साथ रमण करता है।

विमर्श—इसी तरह के श्लोकों को अनेकों आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में शब्द-भिन्नता के साथ उल्लेख किया है। यथाह—

माक्षिकधातुमधुपारदलोहचूर्ण
पथ्या शिलाजतुघृतानि समानि योऽद्यात्।
सैकानि विंशतिरहानि जरान्वितोऽपि
सोऽशीति कोऽपि रमयत्यबलां युवेव ॥
(बृहत्संहिता ७५।३)

अपि च—
शिलाजतुक्षौद्रविडङ्गसर्पिर्लोहाभयापारदताप्यभक्षः।
आपूर्यते दुर्बलदेहधातुस्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः॥
(अ.सं.उ. ५०।२४५; रसार्णवम् १८।१४)

अपि च—
माक्षिकशिलाजतुलोहचूर्णपथ्याक्षविडङ्गघृतमधुभिः।
संयुक्तं रसमादौ क्षेत्रीकरणाय युञ्जीत॥
(र.ह.त. १९।१९)

इसी तरह के प्रमुख द्रव्यों से युक्त एक श्लोक आचार्य चरक ने भी कुष्ठ चिकित्सा प्रकरण में कहा है; यथाह—
श्रेष्ठं गन्धकयोगात्सुवर्णमाक्षिकयोगाद् वा।
सर्वव्याधिविनाशनमद्यात्कुष्ठी रसं च निगृहीतम्॥
(च.चि. ७।६९)

१९. नारसिंहचूर्ण (च.द.)

शतावरीरजः प्रस्थं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च।
वाराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिः ॥३६॥
भल्लातकानां द्वात्रिंशच्चित्रकस्य दशैव तु।
तिलानां शोधितानाञ्च प्रस्थं दद्यात् सुचूर्णितम् ॥३७॥
त्र्यूषणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्ततिः।
माक्षिकं शर्करार्द्धेन माक्षिकार्द्धेन वै घृतम् ॥३८॥
शतावरीसमं देयं विदारीकन्दजं रजः।
एतदेकीकृतं चूर्णं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥३९॥
पलार्द्धमुपयुञ्जीत यथेष्टं चास्य भोजनम्।
मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ॥४०॥
वलीपलितखालित्यमेहपाण्ड्वाढ्यपीनसान्।
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि तथाष्टावुदराणि च ॥४१॥
भगन्दरं मूत्रकृच्छ्रं गृध्रसीञ्च हलीमकम्।
क्षयञ्चैव महाव्याधिं पञ्चकासान् सुदारुणान् ॥४२॥
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वरिंशच्च पैत्तिकान्।
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चापि संसृष्टान् सान्निपातिकान्॥
सर्वानर्शोगदान् हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥४३॥
स काञ्चनाभो मृगराजविक्रम-
स्तुरङ्गमञ्चाप्यनुयाति वेगतः।
स्त्रीणां शतं गच्छति सातिरेकं
प्रहृष्टपुष्टश्च यथा विहङ्गः ॥४४॥
पुत्रान् सञ्जनयेद्वीरान् नरसिंहनिभाँस्तथा।
नारसिंहमिदं चूर्णं सर्वरोगहरं नृणाम् ॥४५॥
वाराहीकन्दसंज्ञस्तु चर्मकारालुको मतः।
पश्चिमे गृष्टिशब्दाख्यो वराहलोमवानिव ॥४६॥

१. शतावरीचूर्ण ७५० ग्राम, २. गोक्षुरचूर्ण ७५० ग्राम, ३. वाराहीकन्दचूर्ण ९३५ ग्राम, ४. गुडूचीचूर्ण ११२५ ग्राम, ५. शुद्ध भल्लातक १५०० ग्राम, ६. चित्रकमूलचूर्ण ४७० ग्राम, ७. तिलचूर्ण ७५० ग्राम, ८. त्रिकटुचूर्ण ३७५ ग्राम, ९. चीनी ३३०० ग्राम, १०. मधु १६५० ग्राम, ११. गोघृत ८२५ ग्राम, १२. विदारीकन्दचूर्ण ७५० ग्राम लें। एक बड़े पात्र में

सभी चूर्णों को अच्छी तरह मिलाकर पुनः छननी से छान लें। चीनी भी महीन पीसकर मिलायें। तदनन्तर मधु एवं घृत मिलाकर हाथों से रगड़कर अच्छी तरह से मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसको २३ ग्राम की मात्रा में प्रातः-सायं गोदुग्धानुपान से सेवन करना चाहिए। इसे एक महीना तक सेवन करने से जरा (वृद्धावस्था) एवं रोग नष्ट हो जाता है। वली-पलित-खालित्य, प्रमेह, पाण्डु, आढ्यवात (वातरक्त), पीनस, १८ प्रकार के कुष्ठ, आठ प्रकार के उदररोग, भगन्दर, मूत्रकृच्छ्र, गृध्रसी, हलीमक, क्षय, महाव्याधि,[1] ५ प्रकार के भयंकर कास, ८० प्रकार के वात रोग, ४० प्रकार के पित्त रोग, २० प्रकार के कफ रोग तथा सभी दोषों से मिले सन्निपातज रोग तथा सभी प्रकार के अर्श रोगों को तो ऐसे नष्ट करता है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्षों को नष्ट करता है। इसके सेवन से मनुष्य सुवर्ण सदृश आभा वाला हो जाता है। सिंह जैसा पराक्रमी हो जाता है तथा घोड़े के समान वेग से सम्भोग करने की शक्ति आ जाती है। वह पुरुष १०० स्त्रियों के साथ वेगपूर्वक मैथुन करने में समर्थ हो जाता है। उसका शरीर पुष्ट हो जाता है तथा गोरैया पक्षी के सदृश्य अत्यन्त प्रहर्ष के साथ पुनः-पुनः मैथुन करने में समर्थ हो जाता है। नरसिंह जैसा बलवान् पुत्रों को जन्म देता है। इसीलिए इस चूर्ण का 'नारसिंहचूर्ण' नामकरण किया गया है।

विशेष—चर्मकारालुक को ही वाराहीकन्द कहते हैं। पश्चिमी देशों में इसे गृष्टि कहते हैं। इस कन्द के बाहरी भाग में वाराह (सूअर) के जैसा रोम होता है, अतः इसे वाराहीकन्द कहते हैं।

मात्रा—६ ग्राम। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—काष्ठौषधि। **वर्ण**—श्वेताभ। **स्वाद**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरण।

२०. गन्धकामलकी योग

गन्धकामलकीचूर्णं धात्रीरसविभावितम्।
सप्तधा शाल्मलीतोयैः शर्करामधुयोजितम्॥४७॥
लीढ्वा चानु पयः पानं प्रत्यहं कुरुते तु यः।
एतेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते स्त्रिया॥४८॥

शुद्ध गन्धकचूर्ण ५०० ग्राम तथा आमलकीचूर्ण ५०० ग्राम लेकर उसमें आमलकीस्वरस एवं शाल्मली (सेमर) स्वरस की ७-७ भावना दें। भावित स्वरस सूखने पर पुनः सूक्ष्म चूर्ण करके काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को १ से २ ग्राम की मात्रा में समभाग शर्कराचूर्ण एवं मधु से १ महीना तक सेवन करने से अस्सी वर्ष का वृद्ध व्यक्ति भी सौ स्त्रियों को मैथुन में सन्तुष्ट करता है।

मात्रा—१-२ ग्राम। **अनुपान**—जल से। **गन्ध**—काष्ठौषधिवत्। **वर्ण**—पीताभ। **स्वाद**—। **उपयोग**—वाजीकरण, रसायन।

२१. शाल्मली-गन्धक योग

शाल्मल्यास्त्वचमादाय श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
शुद्धगन्धकचूर्णानि तद्रसेनैव भावयेत्॥४९॥
मासमात्रप्रयोगेण शृणु वक्ष्यामि ये गुणाः।
मकरध्वजरूपोऽपि स्त्रीशतानन्दवर्द्धनः॥५०॥
शतायुश्च भवेद् देवि वलीपलितवर्जितः।
तेजस्वी बलसम्पन्नो वेगेन तुरगोपमः॥
सततं भक्षयेद्यस्तु तस्य मृत्युर्न जायते॥५१॥

शाल्मलीमूलत्वक्चूर्ण ५०० ग्राम तथा शुद्ध गन्धक ५०० ग्राम।

भावना द्रव्य—शाल्मलीत्वक्स्वरस की ७ भावना दें।

एक बड़े खरल में शुद्ध गन्धक का सूक्ष्मचूर्ण कर समभाग सेमरमूलत्वक्चूर्ण मिलाकर मर्दन करें। ततः सेमलत्वक्स्वरस या क्वाथ की क्रमशः ७ भावना देकर सुखा लें। तदनन्तर सूक्ष्म चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को १ से २ ग्राम की मात्रा में शर्कराचूर्ण २ ग्राम तथा मधु २ ग्राम मिलाकर प्रातः-सायं चाटकर थोड़ा सुखोष्ण एवं मिश्री युक्त गाय का दूध पीना चाहिए। ऐसा १ महीना तक सेवन करने से कामदेव के समान स्वरूप हो जाता है। व्यक्ति सैकड़ों स्त्रियों के साथ सम्भोग कर उन्हें सन्तुष्ट करता है। वली-पलित रोग से रहित होकर वह १०० वर्ष का आयु का भोग करता है। तेजस्वी एवं बलवान् हो जाता है तथा घोड़े जैसा वेगवान् हो जाता है। इस चूर्ण का सतत् सेवन करने से मृत्यु भी निकट नहीं आती है।

२२. चाण्डालिनी योग

सितं पुनर्नवामूलं शाल्मलीरसभावितम्।
शाल्मलीसत्त्वनिर्यासं दद्यात्तत्र सम समम्॥५२॥
गन्धकं सर्वतुल्यञ्च खादेद्रक्तिचतुष्टयम्।
अनुपानं प्रकुर्वीत ततः क्षीरं पलद्वयम्॥५३॥
अयं चाण्डालिनीयोगोऽगम्याऽप्यत्र हि गम्यते।
निषेधान्निधनं याति करणात्कामरूपधृक्॥५४॥

घटक—श्वेतपुर्ननवामूलचूर्ण ५०० ग्राम, मोचरस (शाल्मली निर्यास) ५०० ग्राम तथा शुद्ध गन्धक १ किलो लें। श्वेतपुनर्नवामूलचूर्ण में शाल्मलीमूलत्वक्स्वरस की ७ भावना दें। सूखने पर उसमें मोचरसचूर्ण मिलायें। ततः उसमें शुद्ध गन्धकचूर्ण मिलाकर (तीनों चूर्णों को) पुनः महीन छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। १ से २ ग्राम की मात्रा में इस चूर्ण में समभाग शर्कराचूर्ण एवं मधु मिलाकर चाटें और १०० मि.ली. शर्करा मिश्रित सुखोष्ण गोदुग्ध पियें। इसके १ महीने के प्रयोग से

१. वातव्याधि ह्यपस्मारि कुष्ठी शोथि तथोदरी।
गुल्मी च मधुमेही च राजयक्ष्मि च यो नरः।
अचिकित्स्या भवन्त्येते महारोगाः सुदारुणा॥

भयंकर कामोत्तेजना होती है। इसे 'चाण्डालिनीयोग' इसलिए कहते हैं कि मनु आदि महापुरुषों ने अगम्य स्त्रियों का उल्लेख अपने-अपने शास्त्रों में किया है किन्तु इस औषधि के प्रयोग से अगम्य चाण्डालिनी स्त्रियों के साथ भी व्यक्ति सम्भोग कर सकता है। शास्त्र-भय से निषेध (सम्भोग नहीं) करने पर व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल चाण्डालिनी स्त्रियों से ही सम्भोग करना चाहिए। यह अभाव स्वरूप ग्रहण करना चाहिए। यदि कोई अपनी जाति की सुन्दरी उपलब्ध नहीं हो तो चाण्डालिनी को भी ग्रहण करना चाहिए। किन्तु पहले की ऐसी व्यवस्था थी कि कैसी भी स्थिति में उच्च वर्ग के लोग निकृष्ट जाती (चाण्डालिनी) को ग्रहण नहीं करते थे। सम्भोग के बाद व्यक्ति का स्वरूप कामदेव जैसा सुन्दर हो जाता है। यहाँ पर किसी अन्य स्त्री के अभाव में चाण्डाल-कन्या से भी सम्भोग करना चाहिए अन्यथा व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

२३. भूकूष्माण्डादियोग

भूकूष्माण्डं तालमूली धात्री चैव पुनर्नवा।
समभागं समाहृत्य भागार्द्धं गन्धकं तथा ॥५५॥
तदर्द्धं पारदं शुद्धं कज्जलीकृत्य निक्षिपेत्।
श्वेतशाल्मलितोयेन सप्तधा भावयेत्पुनः ॥५६॥
माहिषेण च दुग्धेन तच्चूर्णं भावयेत् पुनः।
शुष्कं तच्चूर्णयेद् यत्नाल्लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥५७॥
अनेनाशीतिवर्षोऽपि शतधा रमते स्त्रिया।
ऊर्ध्वलिङ्गः सदा तिष्ठेत् कामदेव इव स्वयम् ॥५८॥
ज्वरादिरोगनिर्मुक्तः संसारसुखमश्नुते।
माषमेकन्तु कर्त्तव्यं दुग्धमत्रानुपानकम् ॥५९॥

१. विदारीकन्दचूर्ण, २. श्वेतमुशलीचूर्ण, ३. आमलाचूर्ण, पुनर्नवामूलचूर्ण—प्रत्येक १०० ग्राम; ५. शुद्ध गन्धक ५० ग्राम तथा ६. शुद्ध पारद २५ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक स्वच्छ खरल में शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक का ३ दिनों तक मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः अन्य चूर्णों को उक्त कज्जली के साथ मिलाकर मर्दन करें और सेमल के त्वक् स्वरस या क्वाथ की ७ भावना दें। तदनन्तर १ भावना भैंस के दूध की दें। इसे सुखाकर चूर्ण करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे प्रातः-सायं १-१ ग्राम की मात्रा में मधु एवं गोघृत के साथ मिलाकर चाटें। इस प्रकार १ महीना तक नियमित रूप से सेवन करें। इसके सेवन से ८० वर्ष का वृद्ध व्यक्ति भी १०० स्त्रियों के साथ नियमित सम्भोग कर उनके आनन्द को बढ़ाता है। उसका लिङ्ग हमेशा उत्थित (दृढ़) ही रहता है। वह स्वयं कामदेव जैसा हो जाता है। वह व्यक्ति ज्वरादि रोगों से निर्मुक्त होकर १०० वर्ष पर्यन्त जीवित रहकर सुख प्राप्त करता है। इस औषधि को चाटने के बाद शर्करा मिश्रित सुखोष्ण गोदुग्ध पिलाना चाहिए।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं घृत। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—श्याव। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ।

२४. लक्ष्मणादिलौह

लक्ष्मणाहस्तिकर्णाभ्यां त्रिकत्रयसमन्वयात्।
अश्वगन्धासमायोगाल्लोहं पुंसवनं मतम् ॥६०॥
पुत्रोत्पत्तिकरं वृष्यं कन्यासूतिनिवर्त्तकम्।
कृशस्य बलदं श्रेष्ठं सर्वामयहरं परम् ॥६१॥

१. लक्ष्मणा (अभाव में श्वेतपुष्पकण्टकारी पञ्चाङ्ग) चूर्ण, २. पलाशमूलत्वक्, ३. आमलकीचूर्ण, ४. हरीतकीचूर्ण, ५. बिभीतकचूर्ण, ६. शुण्ठीचूर्ण, ७. मरिचचूर्ण, ८. पिप्पलीचूर्ण, ९. चित्रकमूलचूर्ण, १०. विडङ्गचूर्ण, ११. मुस्ताचूर्ण, १२. अश्वगन्धाचूर्ण—प्रत्येक १-१ भाग तथा लोहभस्म १२ भाग लें। उपर्युक्त सभी द्रव्यों के सूक्ष्मचूर्ण प्रत्येक १०० ग्राम लें तथा लौहभस्म १२०० ग्राम लेकर एक खरल में दृढ़ मर्दन कर छननी से पुनः छानकर एक काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १-१ ग्राम की मात्रा में गोदुग्धानुपान से प्रातः-सायं सेवन करायें। यह योग पुंसवन कारक है (पुत्र ही पैदा कराता है)। जिस स्त्री को पुनः-पुनः कन्याएँ ही पैदा होती है उसे यह योग अवश्य सेवन कराना चाहिए। इस सेवन से कन्या पैदा न होकर पुत्र पैदा होता है। यह वृष्य है, दुर्बल व्यक्ति को श्रेष्ठ बल प्राप्त होता है तथा सभी रोगों का नाश कराता है।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—मधु, गोदूध से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—लोहभस्मवर्ण। **स्वाद**—अम्लतिक्त। **उपयोग**—वृष्य, बल्य, वाजीकरण।

२५. पञ्चशररस (रसदीपिका)

रसेन सच्छाल्मलिजेन सूतं
त्रिःसप्तवाराणि बलिं विमर्द्य।
पृथक् तयोः कज्जलिकां विपक्वां
घृते रसः पञ्चशरोऽयमुक्तः ॥६२॥
बल्लोऽहिवल्लीदलसम्प्रयुक्तो
वीर्यातिवृद्धिं कुरुतेऽस्य नूनम्।
मांसान्नमद्यं गुरु पायसञ्च
पयःपिबेन्माहिषमत्र सिद्धम् ॥६३॥

शुद्ध पारद १ भाग तथा शुद्ध गन्धक १ भाग लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक का मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उस कज्जली में शाल्मलीत्वक्स्वरस की २१ भावना दें। तदनन्तर पर्पटी निर्माण की विधि से उक्त कज्जली की पर्पटी बना लें। एक लोहे की दर्वी में २-४ बूँद गोघृत देकर मन्दाग्नि पर गरम करें और उसमें १० ग्राम कज्जली डालकर छोटे चम्मच से हिलाते (चलाते) रहें। जब कज्जली द्रवित होकर

पिण्ड जैसी हो जाय तब गोबर की बेदी पर कदलीपत्र रखकर उस पर द्रवित कज्जली रखकर दूसरे कदली पत्र में रखे गोबर की पोटली से दबा दें। इस पर्पटी का चूर्ण कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पञ्चशररस' कहते हैं। इस पञ्चशररस का सूक्ष्म चूर्ण ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में ताम्बूलपत्र में रखकर प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। १ माह तक नियमित रूप से इसके सेवन से अत्यन्त मात्रा में वीर्य की वृद्धि होती है। इस औषधि के सेवन काल में मांस, मांसरस, अन्न, पिष्ट, गुरु पदार्थ, खीर तथा गाढ़ा किया हुआ एवं मिश्री मिला हुआ भैंस का दूध पीना चाहिए।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताम्बूलपत्र से। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कृष्णवर्ण पर्पटी। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—शुक्रल, वाजीकरण।

२६. कामिनीमदभञ्जनरस (रसमञ्जरी)

शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यहं कल्हारकद्रवैः।
मर्दितं बालुकायन्त्रे यामैः कूपीगतं पचेत्॥६४॥
रक्ताङ्गस्य द्रवैर्भाव्यं दिनैकन्तु सितायुतम्।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम्॥६५॥

शुद्ध पारद १ भाग तथा शुद्ध गन्धक १ भाग लें। खरल में पारद एवं गन्धक चूर्ण मिलाकर २-३ दिनों तक मर्दन करें और अच्छी कज्जली बना लें। तदनन्तर उक्त कज्जली में कमलफूल के स्वरस से ३ भावना देकर ३ दिनों तक मर्दन करें। इसे सूखने पर कपड़मिट्टी की हुई बोतल में रखकर बालकायन्त्र में ९ घण्टे (३ याम) तक पाक करें। दूसरे दिन बोतल से औषधि (जो एक प्रकार का रससिन्दूर ही है) निकालकर समभाग में केशर को पानी में घोलकर २ दिन तक भावना दें। सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १ से २ रत्ती (१२५ से २५० मि.ग्रा.) की मात्रा में मिश्री (खण्डशर्करा) चूर्ण के साथ दिन से १ से २ बार सेवन करें और यथेच्छ मनपसन्द भोजन करें। ऐसा व्यक्ति १०० कामिनी स्त्रियों के साथ सम्भोग कर उन्हें तृप्त करता है।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं घृत। **गन्ध**—केशरगन्धी। **वर्ण**—रक्तपीताभ। **स्वाद**—केशरस्वाद। **उपयोग**—वाजीकरण।

२७. अनङ्गसुन्दररस (र.सा.सं.)

शुद्धसूतं रसं गन्धं त्र्यहं कल्हारजैर्द्रवैः।
मर्दितं बालुकायन्त्रे यामं सम्पुटके पचेत्॥६६॥
रक्तागस्त्यद्रवैर्भाव्यं दिनमेकं सिताम्बुजैः।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम्॥६७॥

शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक समभाग लें और ३ दिनों तक ताजे कमल पुष्प के स्वरस की भावना दें। सूखने पर उस चूर्ण को कपड़मिट्टी की हुई बालुकायन्त्र में रखकर ९ घण्टे तक पाक करें। दूसरे दिन स्वाङ्ग शीत होने पर कूपी तोड़कर रससिन्दूर प्राप्त करें। ततः रक्त अगस्त्य पुष्प रस की १ भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। (पूर्व कामिनीमदभञ्जन में केशर की भावना है और यहाँ पर रक्त अगस्त्य पुष्प रस की भावना देनी है, यही दोनों में अन्तर है) इसे बलानुसार मात्रा में उचित अनुपान से कुछ दिनों तक सेवन करने से व्यक्ति में १०० कामिनी स्त्रियों के साथ पूर्ण सम्भोग करने की शक्ति आ जाती है।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं घृत। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—वाजीकरण।

२८. कामिनीमदविधूननरस (रसेन्द्रचि.)

कज्जलीकृतसुगन्धकशम्भो-
स्तुल्यमेव कनकस्य हि बीजम्।
मर्दयेत्कनकतैलयुतं स्यात्
कामिनीमदविधूनन एषः॥६८॥
रक्तिकाऽर्द्धमिह चास्य सिताढ्यं
सेवितं हरति मेहगदौघान्।
वीर्यदार्ढ्यकरणं कमनीयं
द्रावणं निधुवने वनितानाम्॥६९॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, शुद्ध धत्तूरबीज चूर्ण १ भाग तथा धत्तूरबीजतैल १ भाग लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक को अच्छी तरह मर्दन कर कज्जली बनायें। ततः उक्त कज्जली में धत्तूरबीजचूर्ण मिलाकर मर्दन करें और धत्तूरतैल की एक भावना देकर मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'कामिनीमदविधूननरस' कहते हैं। इसे $\frac{1}{2}$ रत्ती से १ रत्ती (६० से १२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में खण्डशर्करा (मिश्रीचूर्ण) के साथ सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से सभी प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं। यह शुक्र को गाढ़ा करता है तथा (निधुवने) रतिकाल में स्त्रियों को शीघ्र द्रवित कराता है।

मात्रा—६० से १२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—खण्डशर्करा चूर्ण (मिश्री चूर्ण) से। **गन्ध**—तैल गन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—तिक्त। **उपयोग**—प्रमेह, शुक्रप्रद, वाजीकरण।

२९. पुष्पधन्वारस (योगरत्नाकर)

हरजभुजगलौहं चाभ्रकं वङ्गचूर्णं
कनकविजययष्टी शाल्मली नागवल्ली।
घृतमधुसितदुग्धैः सेवितो वीर्यवृद्धिं
रमयति बहुकान्तां पुष्पधन्वारसः स्यात्॥७०॥

१. रससिन्दूर, २. नागभस्म, ३. लोहभस्म, ४. अभ्रक-भस्म, ५. वङ्गभस्म।

भावना—१. धत्तूरपत्रस्वरस, २. विजया (भांग) स्वरस, ३. यष्टिमधुक्वाथ, ४. शाल्मलीमूलक्वाथ, ५. ताम्बूलपत्रस्वरस की दें।

उपर्युक्त पाँचों भस्मों को एक बड़े खरल में मिलाकर मर्दन करें। ततः धत्तूरपत्रस्वरस, विजयापत्रस्वरस, यष्टिमधुक्वाथ, सेमलमूलत्वक्क्वाथ और ताम्बूलपत्रस्वरस की १-१ भावना दें और सूखने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पुष्पधन्वा रस' कहते हैं। इसे १ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु एवं घृत के साथ मिलाकर चाटें तथा बाद में चीनी मिलाया सुखोष्ण गोदुग्ध पियें। इसे प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से व्यक्ति अनेक कामिनी स्त्रियों से मैथुन कर उन्हें सन्तुष्ट करता है। इसके सेवन से बल एवं दीर्घायु प्राप्त होती है।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु-घृत एवं शर्करा युक्त गोदुग्ध। **गन्ध**—रसायनगन्धी। **वर्ण**—कत्थई वर्ण। **स्वाद**—तिक्तरस। **उपयोग**—वाजीकरण।

३०. पूर्णचन्द्ररस (र.सा.सं.)

सूताभ्रलौहं सशिलाजतु स्याद्
विडङ्गताप्ये मधुना घृतेन।
सम्मर्द्य सर्वं खलु पूर्णचन्द्रो
माषोऽस्य वृष्यो भवति प्रयुक्तः ॥७१॥

१. रससिन्दूर, २. अभ्रकभस्म, ३. लोहभस्म, ४. शुद्ध शिलाजतु, ५. विडङ्गचूर्ण, ६. स्वर्णमाक्षिकभस्म—ये सभी समभाग लें। सर्वप्रथम एक बड़े खरल में रससिन्दूर को पीसें। ततः अन्य भस्मों एवं विडङ्गचूर्ण को मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर शुद्ध शिलाजतु को हल्के गरम जल में घोलकर उक्त चूर्णों में मिलाकर मर्दन करें और १ ग्राम की वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'पूर्णचन्द्ररस' कहते हैं। इसे मधु एवं गोघृत के साथ प्रातः-सायं सेवन करने से यह परम वृष्य एवं वाजीकरण गुण प्रदान करता है।

मात्रा—५०० मि.ग्रा. से १ ग्राम। **अनुपान**—मधु एवं गोघृत से। **गन्ध**—शिलाजतुगन्धी। **वर्ण**—कॉफी वर्ण। **स्वाद**—तिक्त रस। **उपयोग**—वृष्य-वाजीकरण।

३१. अनङ्गकुसुमरस

निरुत्थं भस्म सौवर्णं मुक्ता कस्तूरिका तथा।
तालसत्त्वं च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत् ॥७२॥
कन्यारसेन सम्मर्द्य चतुर्गुञ्जामिता वटी।
वटिकां वटिकार्द्धं वा सर्वरोगेषु योजयेत् ॥७३॥
अनुपानादिकं दद्याद् बुद्ध्वा दोषबलाबलम्।
अथवा वीर्यपातेन शुक्रदोषादिभिस्तथा ॥७४॥
क्लीबत्वं ध्वजभङ्गं च रोगांश्चाशु तदुद्भवान्।
नाशयेदेष विख्यातोऽनङ्गकुसुमसंज्ञितः ॥७५॥

१. सुवर्णभस्म, २. मुक्तापिष्टी, ३. कस्तूरी, ४. हरताल सत्त्व—प्रत्येक द्रव्य १०-१० ग्राम लें। एक खरल में सभी को मिलाकर मर्दन करें और घृतकुमारीस्वरस की १ भावना देकर ४-४ रत्ती (५०० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे $\frac{1}{2}$ से १ रत्ती की मात्रा में सभी रोगों में विभिन्नानुपान से देना चाहिए। अनायास ही वीर्यक्षरण होना, शुक्रदोष, क्लीबता, ध्वजभङ्ग आदि रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसे 'अनङ्गसुन्दररस' कहते हैं।

मात्रा—२५० से ५०० मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार या मधु से। **गन्ध**—कस्तूरी गन्ध। **वर्ण**—श्वेताभ रक्त। **स्वाद**—तिक्त रस। **उपयोग**—शुक्रदोष, षण्ढ, वाजीकरण।

३२. हेमसुन्दररस (र.सा.सं.)

मृतसूतस्य पादांशं हेमभस्म प्रकल्पयेत्।
क्षीराज्यदधिसम्मिश्रं माषैकं कांस्यपात्रके ॥७६॥
लेहयेन्मासषट्कं तु जरामरणनाशनम्।
वागुजीचूर्णकर्षैकं धात्रीफलरसाप्लुतम् ॥
अनुपानं पिबेन्नित्यं स्याद्रसो हेमसुन्दरः ॥७७॥

रससिन्दूर १ भाग तथा स्वर्णभस्म $\frac{1}{4}$ भाग लें। एक छोटे खरल में रससिन्दूर को अच्छी तरह से पीसकर उसमें सुवर्ण भस्म मिलाकर १ घण्टा तक मर्दन करें और बाद में औषधि को काचपात्र में संग्रहीत करें। इस महौषधि को कांस्यपात्र में १ माशा = १ ग्राम की मात्रा में दूध, घी एवं दही के साथ मिलाकर रखें और प्रातः-सायं ६ महीने तक इसका सेवन करें। इसे 'हेम-सुन्दररस' कहते हैं। औषधि सेवन के बाद अनुपान रूप में ६ ग्राम बाकुचीचूर्ण को आमलकीस्वरस या क्वाथ १० मि.ली. में मिलाकर लेना चाहिए। इसकी मात्रा ग्रन्थ में ८ रत्ती (१ माशा) बतायी गयी है जो इन दिनों अत्यधिक है।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—घृत, दूध, दधि मिलाकर लें। पश्चात् आमलकीरस से बाकुचीचूर्ण लें। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्तवर्ण। **स्वाद**—निरस। **उपयोग**—रसायन, जरा एवं मृत्युनाशक।

३३. गन्धामृतरस (रसमंजरी)

भस्मसूतं द्विधा गन्धं कन्यकाद्भिर्विमर्दयेत्।
रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यमुद्धृत्य मधुसर्पिषा ॥
वल्लं खादेज्जरां मृत्युं हन्ति गन्धामृतो रसः ॥७८॥

रससिन्दूर १ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग लें। एक खरल में रससिन्दूर का मर्दन करें। ततः उसमें गन्धक मिलाकर मर्दन करें। इसे शरावसम्पुट कर लघुपुट (भूधर पुट) में पाक करें।

स्वाङ्गशीत होने पर औषधि निकाल कर पुनः औषधि का मर्दन करें। इसे ३७५ मि.ग्रा. (३-३ रत्ती) की मात्रा में घी एवं मधु से सेवन करें। इसे 'गन्धामृतरस' कहते हैं।

मात्रा—२५० से ३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्ण। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—वाजीकरण।

३४. भृङ्गराजादिरसायन

समूलं भृङ्गराजञ्च छायाशुष्कं विचूर्णयेत्।
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत्॥
तोलैकं भक्षयेच्चानु सेवनाच्च जरापहम्॥७९॥

भृङ्गराज पञ्चाङ्ग का छायाशुष्कचूर्ण १ भाग, त्रिफलाचूर्ण १ भाग तथा मिश्री (खण्डशर्करा) २ भाग लें। भृङ्गराज एवं त्रिफला दोनों को एक साथ मिलाकर उसमें मिश्री पीसकर अच्छी तरह मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १० ग्राम की मात्रा खाकर गोदुग्घ पीना चाहिए। इसके सेवन से जरा (रोग) नष्ट हो जाता है।

मात्रा—१० ग्राम। **अनुपान**—शर्करा मिश्रित गोदुग्ध से। **गन्ध**—वानस्पतिक गन्ध। **वर्ण**—हरिताभ। **रस**—मधुर-तिक्त कषाय। **उपयोग**—जरा नाशक है।

३५. सिद्धसूतरस (र.क.द्रु.)

मुक्ताफलं शुद्धसूतं सुवर्णं रूप्यमेव च।
यवक्षारञ्च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत्॥८०॥
रक्तोत्पलपत्रतोयैर्मर्दयेत्पत्तलीकृतम्।
मर्दयेच्च पुनर्दत्त्वा गन्धकं तदनन्तरम्॥८१॥
क्षिप्त्वा काचघटीमध्ये सन्निरुध्य त्रियामकम्।
सिकताख्ये पचेच्छीते सिद्धसूतन्तु भक्षयेत्॥८२॥
पञ्चरक्तिप्रमाणेन मुशलीशर्करान्वितम्।
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गञ्च नाशयेत्॥८३॥
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ।
मुद्गगर्भं घृतं क्षीरं शालयः स्निग्धमामिषम्।
पारावतस्य मांसञ्च तित्तिरेश्च सदा हितः॥८४॥

१. मोतीपिष्टी, २. शुद्ध पारद, ३. शुद्ध सुवर्णपत्र, ४. शुद्ध रजतपत्र, ५. यवक्षार तथा ६. शुद्ध गन्धक समभाग लें। सर्वप्रथम शुद्ध सुवर्ण एवं रजत पत्रों को कैंची से छोटे-छोटे सूक्ष्म टुकड़े कर लें। ततः एक खरल में पारद एवं सुवर्ण और रजत पत्रों के सूक्ष्म टुकड़ों को एक साथ मर्दन कर पिष्टि बनायें। तदनन्तर उसमें मोतीपिष्टि एवं यवक्षार मिलाकर पुनः मर्दन करें। पुनः उसमें गन्धकचूर्ण मिलाकर २ दिनों तक लगातार मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः इस कज्जली को कपड़मिट्टी की हुई बोतल में भरकर बालुकायन्त्र में ९ घण्टे तक मृदु, मध्य एवं तीक्ष्णाग्नि से पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर दूसरे दिन बोतल तोड़कर औषधि निकाल लें। बोतल के ऊपरी भाग में रससिन्दूर तथा तल भाग में स्वर्ण, रजत और मोती का मिश्रण रूप मिलेगा। इस प्रकार ऊपर-नीचे दोनों तरफ की औषधों को मिश्रित कर १ से २ रत्ती की मात्रा में श्वेतमुशलीचूर्ण एवं खण्डशर्करा (मिश्रीचूर्ण) मिलाकर प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। इसे 'सिद्धसूत रस' कहते हैं। इसके प्रयोग से शुक्रवृद्धि और बल की प्राप्ति होती है। यह ध्वजभङ्ग एवं नपुंसकता नष्ट करती है तथा शरीर को पुष्ट करती है। इस रस के सेवन काल में मूँग की दाल का हलुआ, गोदुध, घी, शालिचावल, घृत युक्त मांस, कबूतर एवं तित्तिर के मांस सदा हितकर है। (इस पाठ में मात्रा अत्यधिक (५ रत्ती) लिखी है, जो इन दिनों के लिए अधिक है। अतः १ से २ रत्ती की मात्रा उपयोग में लें)।

विमर्श—९ घण्टे की अग्नि से सुवर्ण एवं रजत की भस्म नहीं होती है। अतः पुनः पुट देकर सुवर्ण-रजत की भस्म बनाकर रससिन्दूर में मिलाकर प्रयोग करें।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—श्वेत मुशली चूर्ण एवं मिश्री। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **रस**—निरस। **उपयोग**—शुक्रल तथा बल्य है, ध्वजभङ्ग-क्लीबता-वाजीकरण।

३६. मकरध्वज वटी

सुवर्णं रजतं लौहं कस्तूरी मौक्तिकं तथा।
जातीफलं च सर्वेषां प्रत्येकं तुल्यभागिकम्॥८५॥
लौहाच्च द्विगुणं देयं भस्मसूतं भिषग्वरैः।
तत्तुल्यं चन्द्रसंज्ञं च प्रवालं च तथैव च॥८६॥
सहस्रपुटितं चाभ्रं लौहाच्चतुर्गुणं मतम्।
सर्वद्रव्यसमं देयं मकरध्वजचूर्णितम्॥८७॥
वारिणा वटिकाः कृत्वा भक्षयेच्च विधानतः।
सर्वरोगहरी ह्येषा नास्ति कार्या विचारणा॥८८॥
वातपित्तोद्भवं वाऽपि श्लेष्माणं च विशेषतः।
आर्द्रकस्य रसश्चानु सन्निपातविनाशनः॥८९॥
प्राकृतं वैकृतं द्वन्द्वं त्रिदोषं च विनाशयेत्।
उन्मादं चानेकविधमज्ञानं वाङ्निरोधकम्॥९०॥
कान्तिपुष्टिकरी ह्येषा वलीपलितनाशिनी।
मकरध्वजवटी ख्याता नाम्ना च भाषिता स्वयम्॥९१॥

१. स्वर्णभस्म १ भाग, २. रजतभस्म १ भाग, ३. लोहभस्म १ भाग, ४. कस्तूरी १ भाग, ५. मोतीपिष्टी १ भाग, ६. जायफलचूर्ण १ भाग, ७. रससिन्दूर २ भाग, ८. कर्पूर २ भाग, ९. प्रवालभस्म २ भाग, १०. सहस्रपुटित अभ्रकभस्म ४ भाग तथा ११. मकरध्वज १६ भाग। सर्वप्रथम एक बड़े खरल में रससिन्दूर को अच्छी तरह मर्दन करें। ततः मकरध्वज को भी अच्छी तरह पीस लें। तदनन्तर अन्य भस्मों को एवं चूर्ण को

मिलाकर जल की भावना दें और ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। विरेचन से कोष्ठ शुद्धि कर शुभ दिन एवं नक्षत्र को ध्यान में रखकर प्रातः-सायं १-१ वटी मधु के साथ विभिन्नानुपान एवं गोदुग्ध के साथ सेवन करें। यह 'मकरध्वज वटी' सभी रोगों का नाश करती है, इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वातज, पित्तज एवं कफज रोगों में एवं सन्निपातज रोग में आर्द्रकस्वरस से देना चाहिए। यह प्राकृत, वैकृत, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, ज्वर, उन्माद, मूर्च्छा, बोलने में असमर्थता आदि को भी दूर करती है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु। **गन्ध**—कस्तूरी गन्धी। **वर्ण**—रक्त। **रस**—कटु। **उपयोग**—वाजीकरण, बल्य, वृष्य, मूर्च्छा, सर्वज्वर।

३७. मन्मथरस (र.सा.सं.)

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं कर्षमेकं सुशोधितम्।
अभ्रं निश्चन्द्रकं दद्यात् पलार्द्धञ्च विचक्षणः ॥९२॥
कर्पूरं तोलकं दद्याद् वङ्गञ्च कोलसम्मितम्।
ताम्रं तोलार्द्धकं तत्र निःशेषं मारितं पुनः ॥९३॥
लौहकर्षं सुजीर्णञ्च वृद्धदारकजीरकम्।
विदारीं शतमूलीञ्चेक्षुरबीजं बलां तथा ॥९४॥
मर्कट्यतिबला चैव जातीकोषफले तथा।
लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्जं यमानिका ॥९५॥
एतेषां चूर्णमादाय प्रक्षिपेच्छाणसम्मितम्।
गुञ्जाद्वयन्तु भोक्तव्यं कोष्णं क्षीरं पिबेदनु ॥९६॥
गृहे यस्य शतं नार्यो विद्यन्तेऽतिव्यवायिनः।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यमौषधस्यास्य सेवनात् ॥९७॥
न च शुक्रं क्षयं याति न बलं ह्रासतां व्रजेत्।
कामरूपी भवेद्दिव्यो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥९८॥
रसायनवरो बल्यो वाजीकरण उत्तमः।
रसः श्रीमन्मथो नाम महेशेन प्रकाशितः ॥९९॥

१. शुद्ध पारद ४६ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ४६ ग्राम, ३. अभ्रकभस्म २३ ग्राम, ४. कर्पूर १२ ग्राम, ५. वङ्गभस्म ६ ग्राम, ६. ताम्रभस्म ६ ग्राम, ७. लोहभस्म १२ ग्राम, ८. विधाराबीजचूर्ण ३ ग्राम, ९. जीराचूर्ण ३ ग्राम, १०. विदारीकन्दचूर्ण ३ ग्राम, ११. शतावरीचूर्ण ३ ग्राम, १२. इक्षुरकबीज ३ ग्राम, १३. बलामूलचूर्ण ३ ग्राम, १४. कपिकच्छुबीजचूर्ण ३ ग्राम, १५. अतिबलाचूर्ण ३ ग्राम, १६. जायफलचूर्ण ३ ग्राम, १७. जावित्रीचूर्ण ३ ग्राम, १८. लवङ्गचूर्ण ३ ग्राम, १९. भांगबीजचूर्ण ३ ग्राम, २०. श्वेतसर्जरसचूर्ण ३ ग्राम तथा २१. अजवाइनचूर्ण ३ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक को मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः अन्य भस्मों एवं काष्ठौषधियों के चूर्णों को कज्जली में मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें और जल की भावना देकर २-२ रत्ती (२५० मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'मन्मथरस' कहते हैं। इसे आचार्य या भगवान् महेश ने निर्मित किया था। जिसके घर में अतिमदमत्त सम्भोगेच्छुक १०० स्त्रियाँ हों उन्हें इस औषधि को मधु एवं घृत के साथ प्रातः-सायं १-१ वटी सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से शर्करा युक्त सुखोष्ण गोदुग्ध पीना चाहिए। इस औषधि के सेवनकर्ता का लिङ्ग शिथिल नहीं होता है, शुक्र का क्षय तथा बल का ह्रास भी नहीं होता है। वह व्यक्ति वृद्ध होते हुए भी कामदेव रूपी १६ वर्ष के युवा जैसा वेग से सम्भोग करता है। यह श्रेष्ठ रसायन है, बल्य है, उत्तम वाजीकरण है। महेश द्वारा निर्मित इस 'मन्मथरस' के सेवन से ध्वजभङ्ग आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं सुखोष्ण गोदुग्ध से। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—कृष्णाभ। **रस**—कटु-तिक्त। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ, बल्य, वृष्य, बृंहण, रसायन एवं ध्वजभङ्गरोग नाशक है।

३८. कामदेवरस (र.सा.सं.)

पारदं पलमेकं स्याद् द्विपलं शुद्धगन्धकम्।
रक्तकार्पासतोयेन घृष्ट्वा काचस्य कूप्यके ॥१००॥
निक्षिप्य टङ्कणेनैव मुखं तस्य निरोधयेत्।
बालुकायन्त्रमध्यस्थं कूप्यं कुर्याच्च वै दृढम् ॥१०१॥
अहोरात्रं पचेदग्नौ शास्त्रवित्कुशलो भिषक्।
शीते चादाय पात्रस्थं कूपिकान्तरलम्बितम् ॥१०२॥
दरदेन समं रक्तं सोज्ज्वलं भस्म यद्भवेत्।
भक्षयेन्माषमेकं च घृतेन मधुना सह ॥१०३॥
पश्चाद् दुग्धं गुडञ्चाज्यं कृष्णेक्षुमपि शर्कराम्।
द्राक्षाखर्जूरमधुकप्रभृतीनथ भक्षयेत् ॥१०४॥
त्रिफलामधुना शान्तिं याति पित्तं चिरोद्भवम्।
निर्गुण्डिकारसेनात्र दुर्वारा वातवेदना ॥१०५॥
प्रशमं याति वेगेन नूतनञ्च वपुर्भवेत्।
अर्द्धावर्त्तितदुग्धेन गृह्यते यद्ययं रसः ॥१०६॥
बन्ध्याऽपि च भवत्येव जीवद्वत्सा सुपुत्रिका।
कामदेवमथो सूते कामिनां कामदः सदा।
यस्य प्रसादतो बल्यो रम्यश्च रमते स्त्रियम् ॥१०७॥

१. शुद्ध पारद १ भाग तथा २. शुद्ध गन्धक २ भाग लें। सर्वप्रथम एक साथ खरल में पारद एवं गन्धक का एक साथ मर्दन कर अच्छी कज्जली बना लें। ततः रक्तकार्पासपुष्पस्वरस की भावना दें। सूखने पर उक्त कज्जली को कपड़मिट्टी की हुई काचकूपी में रखकर टङ्कण (सोहागा) को पानी में घोलकर उस कूपी का मुख बन्द करें। तदनन्तर बालुकायन्त्र में २४ घण्टे (अहोरात्र) मृदु, मध्य, तीव्राग्नि से पाक करें। तीसरे दिन स्वाङ्ग

शीत होने पर अनुभवी वैद्य बालुकायन्त्र से कूपी निकालकर पहले कूपी से कपड़मिट्टी हटाकर कूपी तोड़ें और हिङ्गुल के जैसा चमकदार पारदभस्म (रससिन्दूर = मूर्च्छित पारद) निकालकर खरल में महीन पीसकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'कामदेव रस' कहते हैं। इस रसौषधि को $\frac{1}{2}$-१ रत्ती की मात्रा में मधु एवं घृत के साथ प्रातः-सायं प्रयोग करें। इस औषधि का लेहन करने के बाद गुड़ युक्त सुखोष्ण शर्करा मिश्रित गोदुग्ध या इक्षुरस, गुड़ एवं घृत, द्राक्षा, खर्जूर, यष्टिमधु प्रभृति द्रव्यों का सेवन करना चाहिए। पुराने पित्त विकार की शान्ति हेतु त्रिफलाचूर्ण एवं मधु के साथ लेना चाहिए। निर्गुण्डिकास्वरस से लेने पर असाध्य वात वेदना नष्ट हो जाती है और शरीर युवा पुरुष जैसा हो जाता है। अर्धावशेष गाढ़ा दूध के साथ देने पर बन्ध्या स्त्री भी दीर्घजीवी पुत्रों को जन्म देती है। यह बल्य एवं वृष्य है। इसके प्रभाव से व्यक्ति बलयुक्त सौष्ठव (सुन्दर) शरीर प्राप्त कर स्त्रियों के साथ मैथुन करता है तथा कामिनियों की सम्भोग कामनाओं को पूर्ण करता है।

मात्रा—६० से १२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु, गोदुग्ध। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्त। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—वाजीकरण, बल्य, वृष्य।

३९. मकरध्वज-१ (रसमञ्जरी)

स्वर्णादष्टगुणं सूतं मर्दयेत्त्रिकगन्धकम्।
रक्तकार्पासकुसुमैः कुमार्यद्भिर्विमर्दयेत् ॥१०८॥
शुष्कं काचघटीं रुद्ध्वा बालुकायन्त्रगं हठात्।
भस्म कुर्याद्रसेन्द्रस्य नवार्ककिरणोपमम् ॥१०९॥
भागोऽस्य भागाश्चत्वारः कर्पूरस्य सुशोभनाः।
लवङ्गं मरिचं जातीफलं कर्पूरमात्रया ॥११०॥
मेलयेद् मृगनाभिञ्च गद्याणकमितं ततः।
श्लक्ष्णपिष्टो रसो नाम जायते मकरध्वजः ॥१११॥
वल्लं वल्लद्वयं वाऽथ ताम्बूलीदलसंयुतम्।
भक्षयेन्मधुरं स्निग्धं मृदुमांसमवातलम् ॥११२॥
शृतशीतं सितायुक्तं दुग्धं गोभवमाज्यवत्कम्।
मध्वाद्यं मिष्टमपरं मद्यानि विविधानि च ॥११३॥
करोत्यग्निबलं पुंसां वलीपलितनाशनः।
मेधायुः कान्तिजननः कामोद्दीपनकृन्महान् ॥११४॥
अभ्यासात्साधकः स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः।
रतिकाले रतान्ते च पुनः सेव्यो रसोत्तमः ॥११५॥
मानहानिं करोत्यासां प्रमदानां सुनिश्चितः।
कृत्रिमं स्थावरविषं जङ्गमं वर्षवारि च ॥११६॥
न विकाराय भवति साधकानाञ्च वत्सरात्।
मृत्युञ्जयो यथाभ्यासान्मृत्युं जयति देहिनाम् ॥
तथाऽयं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ॥११७॥

१. शुद्ध स्वर्ण १ भाग, २. शुद्ध पारद ८ भाग, ३. शुद्ध गन्धक २४ भाग।

भावना—रक्तकार्पास (लाल कपास) के फूल का स्वरस और घृतकुमारीस्वरस की १-१ भावना दें।

सर्वप्रथम कैंची से शुद्ध स्वर्णपत्र के छोटे-छोटे (सूक्ष्म) टुकड़े काटकर एक खरल में रखें। ततः समभाग में पारद (१ भाग) मिलाकर २-३ दिनों तक दृढ़ मर्दन करें। जब अच्छी पिष्टि बन जाय अर्थात् सुवर्ण के कण नहीं दिखाई दें अर्थात् मक्खन जैसा हो जाय तो शेष शुद्ध पारद (७ भाग) भी डालकर मर्दन करें। तदनन्तर शुद्ध गन्धक का सूक्ष्म चूर्ण २४ भाग डालकर ३-४ दिनो क मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। कपड़मिट्टी की हुई २० औंस की बोतल में ४०० ग्राम उक्त कज्जली भरकर कार्क लगाकर मुख बन्द कर दें और बालुकायन्त्र में रखकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब बालू गरम हो जाय तो बोतल का कार्क हटा दें और मध्यमाग्नि में और कुछ देर के बाद तीव्राग्नि से पाक करें। तीव्राग्नि से पाक करने पर बोतल के मुख से ज्वाला निकलेगी जो २ से ३ फीट ऊँची भी हो सकती है। धीरे-धीरे अग्नि की ज्वाला शान्त हो जायेगी और बोतल (कूपी) की तली रक्तवर्ण दिखाई देने लगेगी। बोतल (कूपी) के मुख में मिट्टी का नवनिर्मित लेप लगाकर ऊपर से कपड़मिट्टी से बन्द कर दें। दूसरे दिन स्वाङ्गशीत होने पर बालुकायन्त्र से कूपी निकाल लें। चाकू से घिसकर कपड़मिट्टी निकाल दें। जहाँ तक मकरध्वज कूपी में जमा होगा देखकर किरोशन में १ हाथ सुतली भिंगोकर बोतल में लपेटकर उसमें अग्नि लगा दें। जब अग्नि बुझ जाय तो भींगे कपड़े से उस स्थान को पकड़ लें जिससे बोतल टूट जायगी। उन दोनों टुकड़ों को सावधानी से रखें। नीचे के भाग में सुवर्ण का जीर्ण चूर्ण मिलेगा जिसे पृथक् कर सुरक्षित रख लें और ऊपरी भाग से मकरध्वज प्राप्त कर लें। ततः मकरध्वज १२ ग्राम, भीमसेनी कर्पूर ४८ ग्राम, लवङ्ग ४८ ग्राम, मरिच ४८ ग्राम, जायफल ४८ ग्राम, मृगनाभि (कस्तूरी) ६ ग्राम लें। एक खरल में मकरध्वज को सूक्ष्म पींसे। ततः लवङ्ग, मरिचचूर्ण, जातिफल चूर्णों को मकरध्वज में मिलायें और भीमसेनी कपूर मिलाकर दृढ़ मर्दन करें। तदनन्तर कस्तूरी को भी मिलाकर अच्छी तरह मर्दन कर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे ३७५ से ६२५ मि.ग्रा. तक की मात्रा में ताम्बूलपत्र में रखकर चबाकर खाना चाहिए। ततः पथ्य रूप में मधुर पदार्थ, मांसरस, गोदुग्ध में गाय का घी एवं मिश्री मिलाकर पीना चाहिए। मधु आदि विभिन्न प्रकार के मधुर पदार्थ, विविध प्रकार के मद्य भी पथ्य रूप में लें। यह जाठराग्निवर्धक है तथा वली-पलित नाशक है। यह अत्यधिक कामोद्दीपक है। इसका अभ्यास करने पर व्यक्ति १०० स्त्रियों को सम्भोग कर नित्य जीत सकता है। रतिकाल में मैथुनोपरान्त इस

रसोत्तम मकरध्वज का पुनः सेवन करना चाहिए। इस मकरध्वज रस के सेवन से निश्चित रूप में प्रमदाओं (रत्युत्सुकाओं) का मान हानि (गर्व का नाश) करता है। १ वर्ष तक इस महौषधि के नित्य सेवन से सेवन कर्ताओं पर कृत्रिम विष, स्थावरविष, जङ्गमविष एवं दूषित जल का दुष्प्रभाव उसी प्रकार नहीं होता जिस प्रकार भगवान् शंकर की आराधना, पूजा, स्मरण एवं चिन्तन करने से अथवा मृत्युञ्जय मन्त्र का पुनः-पुनः जाप करने से शरीरधारियों की अकाल मृत्यु नष्ट हो जाती है।

मात्रा—३७५ से ६२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताम्बूलपत्र के साथ। **गन्ध**—कस्तूरीगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—वाजीकरण, रसायन, वली-पलित नाशक, जाठराग्निवर्धक।

४०. मकरध्वज-२

पलं रसेन्द्रस्य च गन्धकस्य
हेम्नोऽपि कर्षं परिगृह्य सम्यक्।
वटप्ररोहस्य रसेन यामं
यामं विमर्द्याथ कुमारिकायाः ॥११८॥
तत्काचकूप्यां निहितं प्रयत्नात्
पचेद् विधिज्ञः सिकताख्ययन्त्रे।
ततो रजश्चोर्ध्वगतं सुरम्यं
प्रगृह्य यत्नादरुणप्रभं यत् ॥११९॥
तद्योजयेत्सर्वगदेषु वीक्ष्य
धातुं बलं वह्निमथो वयश्च।
रसायनं वृष्यतरञ्च बल्यं
मेधाग्निकान्तिस्मरवर्द्धनञ्च ॥१२०॥

१. शुद्ध पारद ४८ ग्राम, शुद्ध गन्धक ४८ ग्राम, ३. शुद्ध सुवर्णपत्र १२ ग्राम।

भावना—वटप्ररोह स्वरस तथा घृतकुमारीस्वरस की १-१ भावना।

सर्वप्रथम तनु शुद्ध सुवर्णपत्र को कैंची से छोटे-छोटे सूक्ष्म टुकड़े करें। ततः एक खरल में १२ ग्राम सुवर्ण के छोटे टुकड़े एवं १२ ग्राम शुद्ध पारद मिलाकर २-३ दिनों तक मर्दन करें। नवनीत जैसी श्लक्ष्ण पिष्टि बनने पर इस पिष्टि में अवशिष्ट ३६ ग्राम शुद्ध पारद मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर शुद्ध गन्धकचूर्ण मिलाकर दृढ़ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। उक्त कज्जली को ७ बार कपड़मिट्टी की हुई कूपी (बोतल) में रख दें और कार्क लगाकर मुख बन्द रखें। बालुकायन्त्र में रखकर मृदु, मन्द एवं तीक्ष्ण अग्नि से पाक करें। थोड़ी अग्नि देने पर बोतल के मुख पर लगा कार्क निकाल दें। ३-४ घण्टे तक मध्यमाग्नि देने पर बोतल के मुख से धूम्र निकलना प्रारम्भ होगा। कुछ घण्टे के बाद बोतल से १-२ फीट ऊँची ज्वाला निकलना प्रारम्भ हो जायगी। धीरे-धीरे २ घण्टे बाद शिखा बन्द हो जायेगी तो समझें कि औषधि तैयार हो गई। बोतल की तली को अन्धेरे में देखने पर तली रक्त वर्ण की दिखाई देगी। ऐसा लक्षण होने पर बोतल के मुख में मिट्टी का कार्क लगाकर अच्छी तरह से कपड़मिट्टी से मुख बन्द कर दें। बोतल के कण्ठ भाग तक बालुकायन्त्र से बालू निकाल दें। स्वाङ्ग शीतल होने पर दूसरे दिन पूर्ववत् कूपी तोड़कर मकरध्वज प्राप्त करें। ऊपरी भाग में मकरध्वज तथा नीचे तली में जीर्ण स्वर्ण मिलेगा। इस सुवर्ण का सम्यक् भस्म बनाकर मकरध्वज पीसकर सुवर्णभस्म में मिला दें। इसे मकरध्वज कहते हैं। यह पीसने पर अधिक लाल रंग का होगा। इसे काचपात्र में संग्रहीत कर सुरक्षित कर लें। इसे $\frac{१}{२}$ से १ रत्ती (६५ से १२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में मधु या घृत या दुग्धानुपान से प्रातः-सायं सेवन करने से धातु, बल एवं जाठराग्नि की वृद्धि होती है। यह उत्तम रसायन है। श्रेष्ठ वृष्य है। मेध्य, कान्ति एवं स्मरणशक्ति वर्धक है तथा अत्यन्त बलकृत है।

मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु या घृत या दूध से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्त। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ वृष्य, बल्य, मेध्य, अग्निवर्धक एवं रसायन है।

४१. चन्द्रोदयरस (मकरध्वज)-३

जातीफलं लवङ्गं च कर्पूरं मरिचं तथा।
प्रत्येकं तोलकं दत्त्वा सुवर्णस्य च माषकम् ॥१२१॥
अण्डजं माषमानञ्च सर्वतुल्यमथेश्वरम्।
यत्नतो मर्दयेत् खल्ले द्विगुञ्जां तु वटीं चरेत् ॥१२२॥
एष चन्द्रोदयो नाम रसो वाजीकरः परः।
हन्ति रोगानशेषांश्च बलवीर्याग्निवर्द्धनः ॥१२३॥

१. जायफलचूर्ण १२ ग्राम, २. लवङ्गचूर्ण १२ ग्राम, ३. कर्पूर १२ ग्राम, ४. मरिचचूर्ण १२ ग्राम, ५. सुवर्णभस्म ३ ग्राम, ६. कस्तूरी ३ ग्राम, ७. रससिन्दूर ५४ ग्राम लें। सर्वप्रथम एक खरल में रससिन्दूर को अच्छी तरह से मर्दन कर उसमें जायफल, लवङ्ग, कर्पूर एवं मरिच के सूक्ष्मचूर्णों को मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। ततः उसमें सुवर्णभस्म और कस्तूरी मिलाकर ३ घण्टे तक मर्दन करें तथा जल की भावना देकर २५० मि.ग्रा. की वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'चन्द्रोदयरस' कहते हैं। यह रस अत्यन्त वाजीकरण रसौषधि है। यह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करती है। यह बल, वीर्य एवं जाठराग्निवर्धक है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु या घृत या दूध से। **गन्ध**—कस्तूरीगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—कटु। **उपयोग**—परम वाजीकरण।

४२. चन्द्रोदयरस (मकरध्वज)-४ (र.सा.सं.)

पलं मृदु स्वर्णदलं रसेन्द्रात्
पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य।
शोणैः सुकार्पासभवैः प्रसूनैः
सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाऽद्भिः ॥१२४॥
तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढं
मृत्कर्पटैस्तद्दिवसत्रयञ्च ।
पचेत् क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रे
ततो रसः पल्लवरागरम्यः ॥१२५॥
संगृह्य चैतस्य पलम्पलानि
चत्वारि कर्पूररजस्तथैव।
जातीफलं सोषणमिन्द्रपुष्पं
कस्तूरिकाया इह शाण एकः ॥१२६॥
चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य वल्लो
भुक्तोऽहिवल्लीदलमध्यवर्त्ती ।
मदोद्धतानां प्रमदाशतानां
गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यवश्यम् ॥१२७॥
शृतं घनीभूतमतीव दुग्धं
मृदूनि मांसानि समण्डकानि।
माषान्नपिष्टानि भवन्ति पथ्या-
न्यानन्ददायीन्यपराणि चात्र ॥१२८॥
वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयःस्तम्भनः
समस्तगदखण्डनः प्रचुररोगपञ्चाननः।
गृहे च रसराडयं भवति यस्य चन्द्रोदयः
स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां भवेद्वल्लभः ॥१२९॥

१. शुद्ध सुवर्णपत्र ४८ ग्राम, २. शुद्ध पारद ३७५ ग्राम, ३. शुद्ध गन्धक ७५० ग्राम।

भावना—१. रक्तकार्पासपुष्पस्वरस तथा २. घृतकुमारीस्वरस की १-१ भावना।

सर्वप्रथम कैंची से सुवर्णपत्र के सूक्ष्म टुकड़े करें। ततः एक खरल में यह ४८ ग्राम कटे हुए शुद्ध सुवर्ण के सूक्ष्म टुकड़े और ४८ ग्राम शुद्ध पारद रखकर दो दिनों तक दृढ़ मर्दन करें। जब नवनीत जैसी श्लक्ष्ण पिष्टी बन जाय तब अवशिष्ट शुद्ध पारद को उक्त पिष्टि में मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर शुद्ध गन्धक का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर २ दिनों तक मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। इस कुल ११७३ ग्राम कज्जली को ७ बार कपड़मिट्टी की हुई ३ बोतलों में बाँटकर भरकर बोतल में कार्क लगा दें। बालुकायन्त्र में बोतल रखकर बालू से भर दें। इसके बाद भगवान् शिव-शिवा की पूजा तथा रसाङ्कुशी का ध्यान तथा अग्नि की पूजा कर चूल्हे में अग्नि प्रज्वलित करें। पहले दीपाग्नि, ततः मध्यमाग्नि एवं ५ घंटे बाद प्रखराग्नि दें। पहले ५ घंटे के बाद बोतल के मुख से धूमोद्गम होगा और बोतल के मुख से ज्वाला (शिखा) निकलेगी। ज्वाला नील वर्ण की २ से ४ फुट ऊँची हो सकती है। जैसे-जैसे ज्वाला कम होती जायेगी, मकरध्वज का पाक सन्निकट होता जायेगा। ज्वाला के बिल्कुल समाप्त हो जाने पर आधा घण्टा के बाद बोतल की तली स्पष्ट रूप से लाल दिखाई देने लगेगी। जब तली रक्तवर्ण हो जाय तो मिट्टी से बनी कार्क लगाकर कपड़मिट्टी से मुख बन्द कर दें। बोतल के कण्ठ तक की बालू (बालुकायन्त्र से) हटा दें। स्वाङ्गशीतल होने पर दूसरे दिन पूर्व विधि से कपड़मिट्टी को चाकू से हटाकर बोतल तोड़ें। बोतल के ऊपरी भाग से रस-सिन्दूर जैसा चन्द्रोदय (मकरध्वज) प्राप्त करें तथा तल भाग से जीर्ण स्वर्ण निकाल लें। अब इस जीर्ण स्वर्ण से सुवर्णभस्म बना लें। गन्धक एवं पारद देकर निम्बुस्वरस की पुनः-पुनः भावना देकर १५ पुट देने से स्वर्ण की अच्छी गैरिकवर्ण की भस्म हो जाती है। इसे काचपात्र में संग्रहीत करें। इसमें ४८ ग्राम चन्द्रोदय लेकर खरल में सूक्ष्म पीस लें तथा उसमें कर्पूर ४८ ग्राम, जायफलचूर्ण ४८ ग्राम, मरिचचूर्ण ४८ ग्राम, लवङ्गचूर्ण ४८ ग्राम एवं कस्तूरी ३ ग्राम मिलाकर अच्छी तरह मर्दन कर जल की भावना दें और ३७५ मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चन्द्रोदय-वटी को १-१ वटी ताम्बूलपत्र के साथ चबाकर प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। कुछ दिनों तक इसका सेवन करने से व्यक्ति मदमत्त १०० प्रमदाओं को मैथुन से उनके गर्व को चूर करता है। अर्थात् प्रतिदिन १०० मदमत्त स्त्रियों से सम्भोग कर उन्हें श्लथ (खण्डित = परितुष्ट) करता है। इसके सेवन काल में गाय के घनीभूत (गाढ़ा) दूध में मिश्री मिलाकर सेवन करना, मांस रस का सेवन करना, माष (उड़द) की दाल की पिट्ठी से बने पदार्थ का सेवन पथ्यकर है। अन्य आनन्ददायक भोज्य, पेय, लेह्य पदार्थों का भी सेवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त इसके सेवन से यह वली-पलित का नाश करता है। यह वयःस्तम्भक है तथा समस्त रोगों का नाश करता है। यह भयंकर रोगों को नष्ट करने में सिंह के सदृश है। जिसके घर में यह रस (चन्द्रोदय रस) रहता है वह मनुष्य उस घर का स्वामी बनकर काम से पीड़ित मृग सदृश नेत्रों वाली स्त्रियों का वल्लभ बन जाता है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—ताम्बूलपत्र के साथ। **गन्ध**—कस्तूरी-कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—रक्त। **रस**—कटु। **उपयोग**—प्रबल वाजीकरण एवं रसायन तथा सभी रोगों का नाशक है।

विमर्श—नम्बर १ का मकरध्वज तथा यह चन्द्रोदय दोनों प्रायः एक जैसा ही है।

४३. माहेश्वररस (र.सा.सं.)

रसं भस्मीकृतं कोलं गन्धकं शोधितं समम्।
लौहं कर्षद्वयं ताम्रमर्द्धकोलकसम्मितम् ॥१३०॥

सुवर्णं जारितं दद्याच्छाणार्द्धं सुविचक्षणः ।
अभ्रं कर्षद्वयं दद्याच्छाणार्द्धं चन्द्रचूर्णकम् ॥१३१॥
श्यामाबीजं वरीञ्चैव बलामतिबलां तथा ।
एलाञ्च शङ्खपुष्पीञ्च शाणमानं विनिक्षिपेत् ॥१३२॥
जलेन वटिकां कृत्वा गुञ्जामात्रां प्रदापयेत् ।
सेवनादस्य कन्दर्परूपी भवति मानवः ॥१३३॥
सहस्त्रं याति नारीणामुत्साहो जायतेऽधिकः ।
नित्यं स्त्रीसेवनाद् यस्तु क्षीणशुक्रो भवेन्नरः ॥१३४॥
महाशुक्रो भवेत्सोऽपि सेवनादस्य नान्यथा ।
महाबलो महाबुद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥१३५॥
स्थूलानां कर्षकः श्रेष्ठः कृशानां पुष्टिकारकः ।
रसो विनाशयेद्रोगान् सप्तसप्ताहभक्षणात् ॥१३६॥

१. पारदभस्म या रससिन्दूर ६ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक ६ ग्राम, ३. लोहभस्म २३ ग्राम, ४. ताम्रभस्म ३ ग्राम, ४. सुवर्णभस्म १५०० मि.ग्रा., ६. अभ्रकभस्म २३ ग्राम, ७. कर्पूर १५०० मि.ग्रा., ८. विधाराबीज ३ ग्राम, ९. शतावरीचूर्ण ३ ग्राम, १०. बलामूलचूर्ण ३ ग्राम, ११. अतिबलामूलचूर्ण ३ ग्राम, १२. छोटी इलायचीचूर्ण ३ ग्राम तथा १३. शंखपुष्पीचूर्ण ३ ग्राम लें। एक खरल में रससिन्दूर को अच्छी तरह पीसकर शुद्ध गन्धकचूर्ण तथा स्वर्णादिभस्मों एवं अन्य काष्ठौषधि चूर्णों को अच्छी तरह मिलाकर जल की भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन करें और १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें तथा काचपात्र में संग्रहीत करें। इस वटी का सतत् सेवन करने से मनुष्य कामदेव के समान हो जाता है। वह अधिक उत्साह के साथ हजारों स्त्रियों के साथ सम्भोग करने में समर्थ हो जाता है। जो पुरुष नित्य स्त्री के सेवन से क्षीण शुक्र वाला हो गया हो, वह व्यक्ति भी इस माहेश्वररस के सेवन से अधिक शुक्र वाला, अतिबलवान् अत्यधिक बुद्धिमान् हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। मोटे व्यक्ति का शरीर कृश तथा कृश व्यक्ति शरीर पुष्ट हो जाता है। ७ सप्ताह (४९ दिनों तक) इस रसौषधि के सेवन से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—रोगानुसार। **वर्ण**—कत्थईवर्ण। **गन्ध**—कर्पूरगन्धी। **रस**—तिक्तरस। **उपयोग**—प्रबल वाजीकरण, शुक्रल, शरीरपुष्टिकर।

४४. कामाग्निसंदीपनरस (र.क.द्रु.)

पलपरिमितशुद्धं सूतकं गन्धतुल्यं
दरदकुनटितुल्यं भावितं शृङ्गबेरैः ।
तदनु कनकबीजैर्भावितं सप्तवारं
तदनु सितजयन्त्या भृङ्गराजैश्च सर्वम् ॥१३७॥
पुटितमुपरि शुष्कं काचकूप्यान्तु क्षिप्तं
षडहमुपरिपाच्यं बालुकायन्त्रकैश्च ॥१३८॥
एलाजातीशशाङ्कैर्मृगमदसहितैः सोषणैः साश्वगन्धै-
स्तुल्यैर्वल्लप्रमाणां प्रतिदिनमशितं प्रातरुत्थाय शुद्धैः ।
ओजः पुष्टिविवर्द्धनोऽतिबलकृत् सर्वेन्द्रियानन्दनः
सर्वातङ्कहरो रसायनवरः कामाग्निसन्दीपनः ॥१३९॥

१. शुद्ध पारद १०० ग्राम, २. शुद्ध गन्धक १०० ग्राम, ३. शुद्ध हिङ्गुल १०० ग्राम, ४. शुद्ध मनःशिला १०० ग्राम।

भावना—१. धत्तूरबीजक्वाथ, २. जयन्तीपत्रस्वरस, ३. भृङ्गराजस्वरस—प्रत्येक की ७-७ भावना देनी चाहिए।

एक खरल में पारद एवं गन्धक को दृढ़ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उक्त कज्जली में क्रमशः शुद्ध हिङ्गुल एवं शुद्ध मनःशिला मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर धत्तूरबीजक्वाथ की ७ भावना, जयन्तीपत्रस्वरस की ७ भावना और भृङ्गराज-स्वरस की ७ भावना दें। इसके बाद सूखने पर चूर्ण कर लें और ७ बार कपड़मिट्टी की हुई बोतल में ४०० ग्राम उक्त कज्जली भरकर मुख बन्द करें और बालुकायन्त्र में बोतल को स्थापित कर रसाङ्कुश एवं रसाङ्कुशी की विधिवत् पूजा कर अग्नि की भी पूजा करें। भट्ठी में अग्नि प्रज्ज्वलित करें। अग्नि देने के बाद बोतल के मुख में लगा कार्क निकालकर २-२ दिनों तक क्रमशः मृदु, मध्य एवं तीक्ष्णाग्नि दें। कुल छः दिनों तक अग्नि देनी चाहिए। इसके निर्माण की विधि एवं लक्षण रससिन्दूर के सदृश है। ७ वें दिन स्वाङ्गशीतल होने पर बोतल तोड़कर औषधि निकाल लें। इस रससिन्दूर को खरल में श्लक्ष्ण पीस लें तथा रस-सिन्दूर के बराबर निम्नलिखित द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को अच्छी तरह मिलाकर दृढ़ मर्दन करें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इलायचीचूर्ण, जायफलचूर्ण, कर्पूर, कस्तूरी, मरिचचूर्ण, अश्व-गन्धचूर्ण प्रत्येक द्रव्य रससिन्दूर के बराबर लें। किन्तु कस्तूरी रससिन्दूर का अष्टमांश ($\frac{1}{8}$) भाग लेना चाहिए। इसे 'कामाग्निसंदीपन रस' कहते हैं। इसे ३७५ मि.ग्रा. (३ रत्ती) की मात्रा में प्रतिदिन प्रातः मधु या ताम्बूलपत्र के साथ सेवन करना चाहिए। इसका सेवन ओजोवर्धक एवं शरीरपुष्टिकारक है। यह अत्यन्त बल-कृत, सर्वेन्द्रिय प्रसादक, सर्वरोगनाशक और श्रेष्ठ रसायन है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मधु एवं ताम्बूलपत्र से। **गन्ध**—कस्तूरीगन्धी। **वर्ण**—रक्त। **रस**—कटु। **उपयोग**—ओजस्कर, शरीरपुष्टिकृत, बल्य, सर्वेन्द्रिय प्रसादक, सर्वरोगहर-रसायन।

४५. सुरसुन्दरीगुटिका (रस.रत्ना.)

अभ्रकं माक्षिकं वज्रं कान्तं हेम समं समम् ।
सर्वाणि समभागानि सूतयुक्तानि कारयेत् ॥१४१॥
गोलकञ्च ततः कृत्वा पक्वं निचुलवारिणा ।
ततस्तं पुटपाकेन स्तम्भयित्वा प्रयत्नतः ॥१४२॥

बाह्ये चास्या विलिप्त्वा च वक्त्रस्था गुडिकोत्तमा ।
स्तम्भयेच्छस्त्रसङ्घातं विषरोगांश्च नाशयेत् ॥१४३॥
अब्देनैकेन वक्त्रस्था वयःस्तम्भं करोति च ।
वलीपलितहन्त्रीयं गुडिका सुरसुन्दरी ॥१४४॥

१. अभ्रकभस्म, २. माक्षिकभस्म, ३. हीरकभस्म, ४. कान्तलौहभस्म, ५. सुवर्णभस्म—प्रत्येक भस्म १-१ भाग लें।

भावना—निचुलत्वक्क्वाथ (हिज्जलत्वक् क्वाथ) की १ भावना दें।

एक खरल में उपर्युक्त पाँचों भस्मों को मिलाकर मर्दन करें और हिज्जलक्वाथ की १ भावना देकर बड़ा-सा गोला बना लें। सूखने पर उस गोले को एरण्ड पत्र में लपेटकर उस पर २ अंगुल मुलतानी मिट्टी का लेप कर सुखा लें और आठ कण्डों (वन्योपलों) की अग्नि देकर पुटपाक विधि से पाक करें। स्वाङ्गशीतल होने पर मिट्टी हटाकर औषधि निकाल लें। खरल में मर्दन कर जल की १ भावना देकर १-१ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'सुरसुन्दरी वटी' कहते हैं। इस वटी का मुख में लेप करने से या मुख में धारण करने से शस्त्रप्रहार जन्य कष्ट एवं विष बाधा स्वतः नष्ट हो जाती है। इसे १ वर्ष तक मुख में धारण करने से वयःस्तम्भक है तथा वली-पलित रोग नाशक है।

मात्रा—१२५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—मुख में धारण या लेपन। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ। **स्वाद**—निःस्वादु। **उपयोग**—शस्त्र एवं विषबाधाहर, वयःस्तम्भक, वली-पलित नाशक है।

४६. त्रिफलादिवटी

त्रिफलां पर्पटं कट्वीं त्रायन्तीं च समांशिकाम् ।
सर्वैः समं कुपीलुं च रक्तिद्वयमिता वटी ॥१४४॥
नाशयेच्छुक्रतारल्यं शोधयेच्छोणितं भृशम् ।
हरेदिन्द्रियशैथिल्यं बल्यं वह्निं च वर्धयेत् ॥१४५॥

१. त्रिफलाचूर्ण ५० ग्राम, २. पित्तपापड़ाचूर्ण ५० ग्राम, ३. कटुकीचूर्ण ५० ग्राम, ४. त्रायमाणचूर्ण ५० ग्राम, ५. शुद्ध कुपीलुचूर्ण २०० ग्राम लें। एक पत्थर के खरल में इन पाँचों द्रव्यों को एक साथ मिलाकर जल की भावना दें और २५० मि.ग्रा. की मात्रा में वटी बनाकर धूप में अच्छी तरह से सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'त्रिफलादि वटी' कहते हैं। इसे प्रातः-सायं १-१ वटी उष्णोदक के साथ सेवन करने से शुक्र की तरलता नष्ट हो जाती है तथा रक्त शुद्ध हो जाता है, ध्वजभङ्ग (इन्द्रिय शैथिल्य) रोग नष्ट हो जाता है। यह बल्य है तथा जाठराग्निवर्धक है।

मात्रा—२५० मि.ग्रा.। **अनुपान**—उष्णोदक से। **गन्ध**—निर्गन्ध। **वर्ण**—कृष्णाभ। **रस**—तिक्तरस। **उपयोग**—शुक्र वर्धक, शुक्रतारल्य एवं ध्वजभङ्गहर, बल्य एवं अग्निवर्धक है।

४७. खण्डाभ्रक

पक्वचूतरसो द्रोणः पात्रं स्याच्छुद्धखण्डतः ।
घृतमर्द्धं ततो ग्राह्यं चतुर्थांशञ्च नागरम् ॥१४६॥
तदर्द्धं मरिचं प्रोक्तं तदर्द्धा पिप्पली मता ।
तोयं खण्डसमं दद्यात् सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥१४७॥
विपचेन्मृन्मये पात्रे यदा दर्वीप्रलेपनम् ।
चूर्णान्येषां ततो दद्यात् पत्रं पलचतुष्टयम् ॥१४८॥
ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं धान्याकं जीरकद्वयम् ।
त्र्यूषणं जातितालीशं चूर्णमेषां पलं पलम् ॥१४९॥
त्वगेलाकेशराणाञ्च प्रत्येकञ्च पलं तथा ।
सिद्धशीते च मधुना प्रस्थं दत्त्वा विघट्टयेत् ॥१५०॥
तत्सर्वमेकतः कृत्वा शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
भोजनादावतः खादेत्तोलकद्वयमानतः ॥१५१॥
गच्छेत् कन्दर्पदर्पान्धो रागवेगाकुलेन्द्रियः ।
शतं वाऽपि तदर्द्धं वा रमेत् स्त्रीणां पुमानयम् ॥१५२॥
संसेव्य भेषजं ह्येतद् वन्ध्यायां जनयेत् सुतम् ।
वीरं सर्वगुणोपेतं शतायुश्च भवेदयम् ॥१५३॥
मृतवत्सा च या नारी या च गर्भोपघातिनी ।
साऽपि सूते सुतं रम्यं नारायणपरायणम् ॥१५४॥
बन्ध्याऽपि लभते पुत्रं वृद्धोऽपि तरुणायते ।
तुरङ्ग इव संहृष्टो मातङ्ग इव विक्रमी ॥१५५॥
सदा भेषजसंसेवी भवेन्मारुतवेगवान् ।
हन्ति सर्वामयं घोरं कासं श्वासं क्षयं तथा ॥१५६॥
दुर्नामाजीर्णकञ्चैव अम्लपित्तं सुदारुणम् ।
तृष्णां छर्दिञ्च मूर्च्छाञ्च शूलमष्टविधं जयेत् ॥१५७॥
खण्डाभ्रकमिदं प्रोक्तं भार्गवेण स्वयम्भुवा ।
वयस्यं मेध्यमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ॥१५८॥
ग्रहरक्षःपिशाचघ्नमपस्मारविनाशनम् ।
पाण्डुरोगं प्रमेहञ्च मूत्रकृच्छ्रञ्च नाशयेत् ॥१५९॥
वश्या योषिद् भवेत्पुंसां पुमान् वश्यश्च योषिताम् ।
दृष्टो वारसहस्रञ्च कथमत्र विचारणा ॥१६०॥

पका हुआ मीठा आम का रस १२.५०० किलो, मिश्री ३ किलो, गोघृत १.५०० किलो, शुण्ठीचूर्ण ७५० ग्राम, मरिचचूर्ण ३७५ ग्राम, पिप्पलीचूर्ण १८८ ग्राम तथा जल ३ लीटर।

प्रक्षेप द्रव्य—१. तेजपत्रचूर्ण १९० ग्राम; २. पिप्पलीमूलचूर्ण, ३. चित्रकमूलचूर्ण, ४. मुस्ताचूर्ण, ५. धनियाचूर्ण, ६. जीरकचूर्ण, ७. स्याह जीराचूर्ण, ८. शुण्ठीचूर्ण, ९. मरिचचूर्ण,

१०. पिप्पलीचूर्ण, ११. जायफलचूर्ण, १२. तालीशपत्रचूर्ण, १३. दालचीनीचूर्ण, १४. छोटी इलायचीचूर्ण, १५. नागरकेशरचूर्ण—प्रत्येक द्रव्यों के चूर्ण ४६-४६ ग्राम तथा मधु ७५० ग्राम लें।

एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में आम के रस से जल पर्यन्त सभी सातों द्रव्यों को मिलाकर मन्दाग्नि पर धीरे-धीरे पकायें। उसे बराबर चम्मच से हिलाते रहें। जब चम्मच में लिपटने अर्थात् चिपकने लगे तो प्रक्षेप द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को (सभी १५ द्रव्यों को एक साथ मिलाकर छननी से छानकर) अच्छी तरह से मिला लें। शीतल होने पर मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे भोजन के पूर्व २ तोले (२५ ग्राम) दूध के अनुपान से सेवन करें। इसे सुविधानुसार प्रात:-सायं सेवन कर दूध पीना चाहिए। कुछ दिनों तक इसके सेवन से व्यक्ति काम के मद से अन्धा (व्याकुल) होकर १०० अथवा ५० स्त्रियों को सम्भोग कर उन्हें सन्तुष्ट (तृप्त) करता है। इसके प्रयोग से बन्ध्या स्त्रियाँ भी वीर एवं सर्वगुणसम्पन्न तथा दीर्घजीवी पुत्रों को जन्म देती है। मृतवत्सा या बराबर गर्भपात हो जाने वाली स्त्रियाँ भी भगवान् विष्णु में भक्ति रखने वाले पुत्र को जन्म देती है। अत: इसे स्त्रियों और पुरुषों दोनों को सेवन कराना चाहिए। बन्ध्या स्त्रियाँ पुत्र जन्म देती हैं तथा वृद्ध पुरुष युवा जैसा मैथुन शक्ति से परिपूर्ण हो जाता है। यह परम वाजीकरण है और हाथी जैसा बलवान् बना देता है। इस औषधि को सेवन करने वाला व्यक्ति पवन देव जैसा वेगवान् हो जाता है। इसे 'खण्डाभ्ररसायन कहते हैं। इसे स्वयम्भू परशुराम (भार्गव) ने लोकोपकारार्थ कहा था। इसके प्रयोग से भयंकर कास, श्वास, क्षय, अर्श, अजीर्ण, भयंकर अम्लपित्त, तृष्णा, वमन, मूर्च्छा, आठ प्रकार के शूल रोग नष्ट हो जाते हैं। यह वय:स्थापक है, मेध्य है, आयुष्य है तथा सभी तरह के पापों को नष्ट करता है। यह ग्रहबाधा, राक्षसबाधा, पिशाचबाधा तथा अपस्मार का नाशक है। इसके सेवन से पाण्डु, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्ररोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से स्त्री-पुरुष परस्पर एक-दूसरे के वश में हो जाते हैं। इस योग को हजारों बार अनुभव के बाद ही कहा जा रहा है। अत: इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए। यह अनुभूत योग है।

मात्रा—२५ ग्राम। **अनुपान**—सुखोष्णगोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्ध। **वर्ण**—पीतावर्ण। **रस**—मधुर। **उपयोग**—प्रबल वाजीकरण।

४८. गुडकूष्माण्डखण्ड　　(चक्रदत्त)

कूष्माण्डकं पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम्।
प्रस्थञ्च घृततैलं च तस्मिंस्तप्ते प्रदापयेत्॥१६१॥
त्वक्पत्रधान्यकव्योषजीरकैलाद्वयानलम्　।
ग्रन्थिकं　चव्यमातङ्गपिप्पलीविश्वभेषजम्॥१६२॥
शृङ्गाटकं कशेरुञ्च प्रलम्बं तालमस्तकम्।
चूर्णीकृतं पलांशञ्च गुडस्य च तुलां पचेत्॥१६३॥
शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः सम्प्रदापयेत्।
कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनाञ्च शस्यते॥१६४॥
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम्।
प्रमदासु प्रसक्तानां ये च स्युः क्षीणरेतसः॥१६५॥
क्षयेण तु गृहीतानां परमेतद् भिषग्जितम्।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्ति च्छर्दिमरोचकम्॥१६६॥
गुडकूष्माण्डकं ख्यातमश्विभ्यां समुदाहृतम्।
खण्डकूष्माण्डवत् पात्रं स्विन्नकूष्माण्डकद्रवः॥१६७॥

१. निष्कुलीकृत (छिलका एवं बीज रहित) कूष्माण्ड ४६७० ग्राम, २. गोघृत ३७५ ग्राम, ३. तिलतैल ३७५ मि.ली., ४. दालचीनीचूर्ण, ५. तेजपत्रचूर्ण, ६. धनियाँचूर्ण, ७. त्रिकटुचूर्ण, ८. जीरकचूर्ण, ९. छोटी इलायचीचूर्ण, १०. बड़ी इलायचीचूर्ण, ११. चित्रकमूलचूर्ण, १२. पिप्पलीमूलचूर्ण , १३. चव्यचूर्ण, १४. गजपिप्पलीचूर्ण, १५. शुण्ठीचूर्ण, १६. सिंघाड़ाचूर्ण, १७. कशेरुचूर्ण, १८. त्रपुषबीजचूर्ण, १९. तालमस्तकचूर्ण—सभी १६ द्रव्य प्रत्येक ४६-४६ ग्राम लें। २०. गुड़ ४६७० ग्राम, २१. मधु ३७५ ग्राम लेना चाहिए। सर्वप्रथम कूष्माण्ड को अच्छी तरह छीलकर लम्बे-लम्बे टुकड़े कर उसके सभी बीजों को निकाल दें। इन्हें घिसकर (कद्दुकस पर घिसें) छोटे-छोटे टुकड़े करें। तत: उसे थोड़े जल के साथ पाक करें। जब अच्छी तरह सिद्ध हो जाय तो शीतल होने पर हाथों से दबाकर उसका जल निकाल दें। पुन: कपड़े पर रखकर हाथों से दबाकर शेष जल को भी निकाल लें। इसके बाद एक कड़ाही में घृत एवं तैल (यमक) मिलाकर मन्दाग्नि पर भून लें। जब जलीयांश (कूष्माण्ड से) नष्ट हो जाय अर्थात् जब कूष्माण्ड का वर्ण कुछ लाल हो जाय तब अग्नि से पात्र को उतार लें। गुड़ की चासनी पृथक् पात्र में करें[1]। जब चासनी कड़ी (मोदक वाली चासनी) हो जाय तो उसमें भुना हुआ कूष्माण्ड मिला दें तथा उपर्युक्त १६ द्रव्यों के सूक्ष्मचूर्णों को अच्छी तरह से मिला लें तथा शीतल होने पर मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस 'गुड़कूष्माण्डखण्ड' को देवभिषक् अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था। इसे प्रात:-सायं १-१ तोला (१२ ग्राम) की मात्रा में गोदुग्ध से सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से प्रवृद्ध वात-पित्त-कफ नष्ट हो जाते हैं। मन्दाग्नि के व्यक्तियों के लिए श्रेष्ठ है, दुर्बल व्यक्ति के शरीर का उपचय (बृंहण = मोटा) करता है। यह उत्तम वाजीकरण है। जो व्यक्ति हमेशा स्त्रियों में आसक्त है, क्षीणवीर्य का हो गया हो, क्षयग्रस्त हो उनके लिए परमौषध है। इसके

१. गुड़ की चासनी के लिए कूष्माण्ड के द्रव का प्रयोग करें। अर्थात् उसी जल में चासनी करनी चाहिए।

नियमित सेवन से कास, श्वास, क्षय, ज्वर, हिक्का छर्दि एवं अरोचक नष्ट हो जाते हैं।

विमर्श—एक से अधिक चूर्ण का प्रक्षेप हो तो उन्हें एक साथ अच्छी तरह से मिलाकर छननी से छानकर मिलायें। इसका पाकखण्ड कूष्माण्डावलेह के जैसा ही करना चाहिए।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—सुखोष्ण गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्ध। **वर्ण**—रक्ताभ (गुड़ाभ)। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरण एवं बृंहण है।

४९. कामेश्वरमोदक-१

धात्रीसैन्धवकुष्ठकट्फलकणाशुण्ठीयमानीद्वयं
यष्टीजीरकयुग्मधान्यकशटीशृङ्गीवचाकेशरम्।
तालीशं त्रिसुगन्धिकं समरिचं पथ्याऽक्षमेभिः समं
चूर्णीकृत्य मनाक् स्वबीजसहितं भृष्ट्वा तु शक्राशनम्॥
सर्वेषां द्विगुणां सितां सुविमलां यत्नाद् भिषङ्निक्षिपेत्
क्षौद्रं चापि घृतं प्रशस्तदिवसे कुर्याच्छुभान् मोदकान्।
कर्पूरैरवचूर्णितानपि हितान् दत्त्वा तिलान् भर्जितान्
गोप्योऽयं क्षितिमण्डले मितधियां पाखण्डिनामग्रतः॥
आधिव्याधिहरः परः क्षयहरः कुष्ठापहो बृंहणः
स्त्रीणां तोषकरो मुखद्युतिकरः शुक्राग्निवृद्धिप्रदः।
कासश्वासबलासरोगनिचयप्रध्वंसनः प्राणिनां
प्रोक्तो ब्रह्मसुतेन सर्वसुखदः कामेश्वरो मोदकः॥१७०॥
ग्रहगणपरिहीनः सर्वशास्त्रप्रवीणो
ललितविमलकीर्त्तिः प्राप्तकन्दर्पमूर्त्तिः।
विगतसकलभीतिर्गीतवाद्याङ्गप्रीति-
र्भवति भुवि स देवो येन भुक्तं प्रयत्नात्॥१७१॥
रहसि युवतिखेलासम्पुटाकर्षहर्षाद्
गमयति युवतीनां केलिकौतूहलेन।
यदि कथमपि भुक्तो भोजनादावथान्ते
सुरतरभसमुच्चैर्नष्टकामं प्रकामम्॥१७२॥
यस्मान्नव्यबृहस्पतिस्तनुधिया यस्मात्सदा वीर्यवान्
यस्मादुन्मददाक्षिणात्ययुवतीसम्भोगकौतूहली।
यस्मात्काव्यकुतूहली सुकविता सञ्जायते लीलया
श्रीमद्भिः प्रतिवासरं क्षितितले संसेव्यतां मोदकः॥१७३॥

१. आमलकी, २. सैन्धवलवण, ३. कुष्ठ, ४. कट्फल-त्वक्, ५. पिप्पली, ६. शुण्ठी, ७. अजवाइन, ८. अजमोदा, ९. यष्टिमधु, १०. जीरा, ११. स्याहजीरा, १२. धनियाँ, १३. कचूर, १४. कर्कटशृङ्गी, १५. वच, १६. नागरकेशर, १७. तालीशपत्र, १८. छोटीइलायची, १९. दालचीनी, २०. तेजपत्र, २१. मरिच, २२. हरीतकी, २३. बिभीतक—ये सभी द्रव्य प्रत्येक २५ ग्राम लें। २४. घृतभर्जित भाँग ५७५ ग्राम, २५. शर्करा ११५० ग्राम, २६. मधु २५० ग्राम, २७. गोघृत २५० ग्राम, २८. कर्पूर २५ ग्राम तथा २९. भृष्टतिलचूर्ण २५ ग्राम लें।

उपर्युक्त आमलकी से बिभीतक तक के सभी २३ द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण लें। ततः स्वल्प भर्जित भाँग का सूक्ष्म चूर्ण करके ही प्रयोग करना चाहिए। इन सभी चूर्णों को हल्का घृत भर्जित करें। ततः चीनी की मोदक वाली चासनी करें। चासनी होने पर उपर्युक्त चूर्णो एवं भाँग के चूर्ण को अच्छी तरह मिलायें। आवश्यकता-नुसार शीतल होने पर मधु मिलाकर १२-१२ ग्राम का मोदक बनाकर मोदकों पर कर्पूरचूर्ण एवं भुने हुए तिल का चूर्ण ऊपर से छिड़ककर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'कामेश्वरमोदक' कहते हैं। मूर्खों एवं पाखण्डियों के लिए यह योग गुप्त रखना चाहिए अर्थात् उन्हें नहीं बताना चाहिए। प्रातः अथवा सायं १ मोदक मिश्री मिला हुआ गरम दूध के साथ सेवन करना चाहिए। यह मोदक अनेक रोगों को दूर करता है। यह अत्यन्त क्षय एवं कुष्ठ का नाश करने वाला है तथा बृंहण है। यह स्त्रियों को मैथुन से सन्तुष्ट करता है, मुखकान्तिवर्धक है, शुक्र एवं पाचकाग्निवर्धक है, कास-श्वास एवं कफ विकार समूह का नाशक है तथा मनुष्यों को सर्व सुख देने वाला है। यह कामेश्वर मोदक भगवान् ब्रह्मा जी के पुत्र बह्मर्षि नारद जी के द्वारा कहा गया है। इसको सेवन करने वाला व्यक्ति सभी ग्रह-बाधाओं से मुक्त हो जाता है। सभी शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है। वह सुन्दर एवं विमल कीर्ति वाला, कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाला, सभी रोगों से भय मुक्त, गीत-वाद्य (अर्थात् संगीत) के सभी प्रत्यङ्गों से परिपूर्ण, एकान्त में युवतियों को लीला (कामशास्त्र की कलाओं से परिपूर्ण होकर) पूर्वक कामकेलि क्रीड़ा से युक्त करता है। यदि भोजन के अन्त में इसे रात्रि को सेवन किया जाय तो पुनः-पुनः मैथुन में समर्थ हो जाता है। नवीन बृहस्पति के समान बुद्धिमान्, सदा वीर्यवान्, कामोन्मत्त दाक्षिणात्य (दक्षिण प्रदेश की) स्त्रियों के साथ सम्भोग करने में कौतूहल (अत्यन्त कुशल) हो जाता है। अनायास सुन्दर साहित्यिक कविता करने में व्यक्ति समर्थ हो जाता है। अतः यह मोदक धनिकों एवं रसिकों को अवश्य सेवन करना चाहिए।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—मिश्री मिश्रित सुखोष्ण गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृतगन्धी एवं सुगन्धी। **वर्ण**—मलिनवर्ण। **रस**—मधुर। **उपयोग**—प्रायः वाजीकरणार्थ।

५०. कामेश्वरमोदक-२

चूर्णांशं गगनं घनार्द्धविमलं गन्धश्च कुष्ठामृता
मेथी मोचरसो विदारिमुषली गोक्षूरकञ्चेक्षुरः।
भीरुश्चैव कशेरुकं यमनिका तालाङ्कुरं धान्यकं
यष्टी नागबला तिला मधुरिका जातीफलं सैन्धवम्॥१७४॥
भार्गी कर्कटशृङ्गकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं

चातुर्जातपुनर्नवाकरिकणाद्राक्षाशटीकट्फलम् ।
शाल्मल्यङ्घ्रिफलत्रिकं कपिभवं बीजं समं चूर्णयेत् ॥१७५॥
चूर्णार्द्धाविजयासिताद्विगुणितामध्वाज्यमिश्रन्तुतत्
कर्षार्द्धा गुडिकाऽथकर्षमथवा सेव्या सता सर्वदा ।
पेयं क्षीरमनु स्ववीर्यकरणे स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम् ॥१७६॥

१. अभ्रकभस्म २ भाग, २. शुद्ध गन्धक १ भाग; ३. कुष्ठचूर्ण, ४. गुडूचीचूर्ण, ५. मेथीचूर्ण, ६. मोचरसचूर्ण, ७. विदारीकन्दचूर्ण, ८. श्वेतमुसलीचूर्ण, ९. गोक्षुरचूर्ण, १०. तालमखानाचूर्ण, ११. शतावरीचूर्ण, १२. कशेरुकचूर्ण, १३. अजवाइनचूर्ण, १४. तालाङ्कुरचूर्ण, १५. धनियाँचूर्ण, १६. यष्टिमधुचूर्ण, १७. नागरबलाचूर्ण, १८. तिल (भृष्ट) चूर्ण, १९. शतपुष्पाचूर्ण, २०. जायफलचूर्ण, २१. सैन्धवलवण-चूर्ण, २२. भारङ्गीचूर्ण, २३. कर्कटशृङ्गीचूर्ण, २४. शुण्ठीचूर्ण, २५. पिप्पलीचूर्ण, २६. मरिचचूर्ण, २७. श्वेतजीराचूर्ण, २८. कृष्णजीराचूर्ण, २९. चित्रकमूलचूर्ण, ३०. छोटी एलाचूर्ण, ३१. दालचीनीचूर्ण, ३२. तेजपत्रचूर्ण, ३३. नागरकेशरचूर्ण, ३४. पुनर्नवामूलचूर्ण, ३५. गजपिप्पलीचूर्ण, ३६, द्राक्षाकल्क, ३७. शटी (कचूर) चूर्ण, ३८. कट्फलचूर्ण, ३९. शाल्मली-मूलचूर्ण, ४०. आमलकीचूर्ण, ४१. हरीतकीचूर्ण, ४२. बिभी-तकचूर्ण, ४३. कपिकच्छुबीजचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग लें तथा भाँगचूर्ण २२ भाग चीनीचूर्ण ८८ भाग लें। अर्थात् सभी द्रव्यों का आधा भाग भाँग लें। सभी चूर्णों से द्विगुण भाग चीनी लेनी चाहिए।

इन सभी चूर्णों को आपस में एक साथ मिलाकर पुन: छननी से छान लें और चीनी की कड़ी चासनी बनाकर चासनी पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर सभी चूर्णों को उस चासनी में अच्छी तरह से मिला लें तथा घृत एवं मधु १०-१० भाग डाल कर ६-६ ग्राम की पात्रा में मोदक बना लें। इसे 'मदनानन्दमोदक' कहते हैं। दूध के अनुपान से इसे सेवन करना चाहिए। सुरताभिलाषी व्यक्तियों के काम एवं वीर्य को बढ़ाता है तथा वीर्य का स्तम्भन करता है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—सुखोष्ण गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्धपाकवत्। **वर्ण**—हरिताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरण-वृष्य।

५१. महाकामेश्वरमोदक

यथोक्तं द्रव्यसञ्चूर्णं प्रयोज्य मृतमभ्रकम्।
गगनार्द्धं शुद्धलौहं लौहार्द्धं वङ्गभस्मकम् ॥१७७॥
जातीकोषफले चैव सञ्चूर्ण्य तत्र दापयेत्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चातुर्जातकसैन्धवम् ॥१७८॥
भृङ्गजीरकयुग्मं च धान्यकं ग्रन्थिपर्णकम्।
मांसी शतावरी कुष्ठं तुगा द्राक्षा लवङ्गकम् ॥१७९॥
बलाऽतिबलयोर्मूलं चविका देवताडकम्।
यमानी शतपुष्पा च मर्कटीबीजबिल्वयोः ॥१८०॥
काकोली क्षीरकाकोली तालाङ्कुरं सटङ्गणम्।
शालपर्णी त्रिकण्टं च चित्रकं कुन्दुरुर्मुरा ॥१८१॥
पुनर्नवाऽश्वगन्धा च मोचकं गजपिप्पली।
कट्फलं तालमस्तं च यष्टीमधुकमेव च ॥१८२॥
मधुरिका तालीशं च अनन्ता च प्रियङ्गुकम्।
बालकं वृद्धदारं च शाल्मली पिण्डखर्जूरम् ॥१८३॥
विदारी पृश्निपर्णाङ्घ्रि पद्मकं क्षुरबीजकम्।
मेथी परूषकं चैव चन्दनं मरिचं तिलम् ॥१८४॥
शृङ्गी सरलकाष्ठं च कर्पूरं विश्वभेषजम्।
समभागानि चैतानि चूर्णमेषां प्रकल्पयेत् ॥१८५॥
शोधितं विजयाचूर्णं सर्वचूर्णार्द्धसंयुतम्।
सिता च द्विगुणा देया मोदकार्थं भिषग्वरैः ॥१८६॥
मध्वाज्यमिश्रितं कृत्वा कर्षमानं तु मोदकम्।
प्रातश्च भक्षयेन्नित्यं सर्वव्याधिविवर्जितम् ॥१८७॥
नानावर्णमतीसारं सङ्ग्रहग्रहणीहरम्।
प्रमेहं च महाव्याधिं यक्ष्माणं क्षयमेव च ॥१८८॥
नारीशतं च रमते न च शुक्रक्षयो भवेत्।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं वृद्धानां परमौषधम् ॥१८९॥
बल्यं वृष्यं वातहरं शुक्रस्य जननं परम्।
नैतत् परतरं किञ्चिद्विद्यते वाजिकर्मसु ॥१९०॥
स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानां च देहिनाम्।
क्षीणानामल्पशुक्राणां वृद्धानामल्परेतसाम् ॥१९१॥
ओजःस्थिरकरं चैव स्त्रीषु कामविवर्द्धनम्।
मृत्युसञ्जीवनीतन्त्रे पातञ्जलमुनेर्मतम् ॥१९२॥
महाकामेश्वरो ह्येष बलपुष्टिविवर्द्धनः।
रोगानेताञ्जयेत्तेन महादेवेन निर्मितम् ॥१९३॥

१. अभ्रकभस्म १२ ग्राम, २. लौहभस्म ६ ग्राम, ३. वङ्ग-भस्म ३ ग्राम; ४. जावित्रीचूर्ण, ५. जायफलचूर्ण, ६. शुण्ठी-चूर्ण, ७. पिप्पलीचूर्ण, ८. मरिचचूर्ण, ९. आमलाचूर्ण, १०. हरीतकीचूर्ण, ११. बहेड़ाचूर्ण, १२. मुस्ताचूर्ण, १३. दाल-चीनीचूर्ण, १४. छोटी इलायचीचूर्ण, १५. तेजपत्रचूर्ण, १६. नागकेशरचूर्ण, १७. सैन्धवचूर्ण, १८. भृङ्गराजचूर्ण, १९. श्वेत जीराचूर्ण, २०. स्याह जीराचूर्ण, २१. धनियाँचूर्ण, २२. ग्रन्थि-पर्णीचूर्ण, २३. जटामांसीचूर्ण, २४. शतावरीचूर्ण, २५. कुष्ठ-चूर्ण, २६. वंशलोचनचूर्ण, २७. द्राक्षाकल्क, २८. लवङ्गचूर्ण, २९. बलामूलचूर्ण, ३०. अतिबलाचूर्ण, ३१. चव्यचूर्ण, ३२. देवताड़वृक्षत्वक्चूर्ण, ३३. यमानीचूर्ण, ३४. सोआचूर्ण, ३५. कपिकच्छुबीजचूर्ण, ३६, बिल्वफलमज्जाचूर्ण, ३७. काकोली-चूर्ण, ३८. क्षीरकाकोलीचूर्ण, ३९. तालवृक्षअंकुरचूर्ण, ४०.

शुद्ध टङ्कण चूर्ण, ४१. शालपर्णीचूर्ण, ४२. गोक्षुरचूर्ण, ४३. चित्रकमूलचूर्ण, ४४. शल्लकीनिर्यासचूर्ण, ४५. मुरामांसीचूर्ण, ४६. पुनर्नवामूलचूर्ण, ४७. अश्वगन्धाचूर्ण, ४८. मोचरसचूर्ण, ४९. गजपिप्पलीचूर्ण, ५०. कट्फलचूर्ण, ५१. ताडवृक्षमस्तक मज्जा, ५२. यष्टिमधुचूर्ण, ५३. सौंफचूर्ण, ५४. तालीशपत्र-चूर्ण, ५५. सारिवाचूर्ण, ५६. प्रियंगुपुष्पचूर्ण, ५७. सुगन्ध-बालाचूर्ण, ५८. विधाराचूर्ण, ५९. शाल्मलीमूलचूर्ण, ६०. पिण्डखर्जूरकल्क, ६१. विदारीकन्दचूर्ण, ६२. पृश्निपर्णीमूल-चूर्ण, ६३. पद्मकाष्ठचूर्ण, ६४. तालमखानाचूर्ण, ६५. मेथी-चूर्ण, ६६. फालसाचूर्ण, ६७. श्वेतचन्दनचूर्ण, ६८. मरिचचूर्ण, ६९. तिलचूर्ण, ७०. कर्कटशृङ्गीचूर्ण, ७१. सरलकाष्ठचूर्ण, ७२. कर्पूर, ७३. शुण्ठीचूर्ण—इन प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण १२-१२ ग्राम लें। सभी द्रव्यों का आधा शुद्ध भाँग चूर्ण अर्थात् ४३८ ग्राम लें तथा चीनी उक्त सभी द्रव्यों से दूनी अर्थात् २६२४ ग्राम लें। मधु १०० ग्राम एवं गोघृत १०० ग्राम लेना चाहिए।

सभी चूर्णों को एक साथ मिलाकर छननी से पुनः छान लें। जो द्रव्य संदिग्ध है या उपलब्ध नहीं है उसे छोड़ देना चाहिए। चीनी की कड़ी चासनी करें और सभी चूर्णों एवं घृत को अच्छी तरह से मिला लें, शीतल होने पर मधु मिलाकर ६-६ ग्राम का मोदक (लड्डू) बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। प्रातः १ मोदक सुखोष्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करने से व्यक्ति के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। अनेक प्रकार के अतिसार, संग्रहणी, प्रमेह, महाव्याधि,[१] राजयक्ष्मा, क्षयादि सभी रोगों को नष्ट करता है। इस मोदक का सेवन करने वाला व्यक्ति एक सौ स्त्रियों के साथ सम्भोग करने पर भी उसके शुक्र का क्षय नहीं होता है। उस व्यक्ति का शिश्न शिथिल नहीं होता है। यह वृद्धों के लिए परमौषधि है। यह बल्य है, वृष्य है, वातहर है, शुक्रल है। इससे अच्छी दूसरी कोई औषधि वाजीकरण के लिए नहीं है। सन्तानेच्छु स्त्री-पुरुषों के लिए भी यह श्रेष्ठ औषधि है। दुर्बल व्यक्तियों, क्षीण शुक्र वालों, अल्प शुक्र वालों तथा वृद्धों के लिए यह श्रेष्ठतम औषधि है। यह ओज को स्थिर करने वाला है। स्त्रियों के साथ सम्भोगेच्छा को बढ़ाता है। मृत्युसञ्जीवनी तन्त्र में पातञ्जल मुनि का ऐसा ही मत है। यह 'महाकामेश्वरमोदक' बल एवं शरीर को पुष्ट करता है। इसके प्रयोग से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। इस औषधि को भगवान् शङ्कर महादेव ने निर्मित किया था।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—उष्ण गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्ध (पाक गन्धी)। **वर्ण**—हरिताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—प्रबल वाजीकरण एवं सर्वरोगहर।

१. वातव्याधि अपस्मारी कुष्ठी शोथी तथोदरी।
गुल्मी च मधुमेही च राजयक्ष्मि च यो नरः॥
अचिकित्स्या भवन्त्येते महाव्याधिः सुदारुणः।

५२. श्रीमदनानन्दमोदक

सूतो गन्धस्तथा लौहं त्रिसमं शुद्धमभ्रकम्।
कर्पूरं सैन्धवं मांसी धात्र्येला च कटुत्रयम्॥१९४॥
जातीकोषफलं पत्रं लवङ्गं जीरकद्वयम्।
यष्टीमधु वचा कुष्ठं हरिद्रा देवदारुकम्॥१९५॥
ऐज्जलं टङ्कणं भार्गीं नागरं पुष्पकेशरम्।
शृङ्गी तालीशपत्रञ्च द्राक्षाऽग्निदन्तिमूलकम्॥१९६॥
बला चातिबला चोचं धनिकेभकणा शटी।
सजलं जलदं गन्धा विदारी च शतावरी॥१९७॥
अर्कवानरीबीजञ्च गोक्षुरं वृद्धदारकम्।
त्रैलोक्यविजयाबीजं समांशं पेषयेद् भिषक्॥१९८॥
शतावरीरसं दत्त्वा श्लक्ष्णचूर्णं समाचरेत्।
शाल्मलीमूलचूर्णन्तु चूर्णाङ्घ्रिसममाहरेत्॥१९९॥
चूर्णार्द्धं विजयाचूर्णं विशुद्धं तत्र दापयेत्।
सर्वमेकत्र संयोज्य छागीक्षीरेण पेषयेत्॥२००॥
मोदकार्थे सिता देया पाकयोग्या तथा मधु।
नातिबाह्यञ्च धूमान्ते पाचयेन्मन्दवह्निना॥२०१॥
चातुर्जातं सकर्पूरं सैन्धवं सकटुत्रयम्।
सञ्चूर्ण्य च ततो देयं हव्यं किञ्चिन्निधापयेत्॥२०२॥
पाकं ज्ञात्वा शाणमिदं मोदकं परिकल्पयेत्।
भूतनाथे सुरपतौ रतिनाथे तथैव च॥२०३॥
हुतभुजि गणनाथे च मोदकाग्रं निवेदयेत्।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य हुताशने समर्पयेत्॥२०४॥
ततोऽभिमन्त्रितम्। 'ॐ ह्रीं शं सः अमृतं कुरु कुरु अमृते अमृतोद्भवाय नमः ह्रीं अमृतं कुरु कुरु अमृतेश्वराय स्वाहा। ॐ स्वाहा। 'इति मन्त्रेणाभिमन्त्रितं कृत्वा पात्रान्तरे स्थापयेत्॥२०५॥
काञ्चने राजते काचे मृद्भाण्डे वा निधापयेत्।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा हरगौरीं प्रपूजयेत्॥२०६॥
कालानलभवं बीजं सतिलं घृतसंयुतम्।
गव्यक्षीरं सितायुक्तमनुपेयञ्च पायसम्॥२०७॥
विलासार्थं प्रदोषे च मोदकं परिसेवयेत्।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण कामान्धो जायते नरः॥२०८॥
कामज्वरो भवेत्तावद्यावन्नारीं न गच्छति।
स सहस्त्रवरारोहा रमयत्यपि सोद्गमः॥२०९॥
न च लिङ्गस्य शैथिल्यं वेगवीर्यं विवर्द्धयेत्।
प्रमदाप्राणबाहुल्यं मत्तवारणविक्रमः॥२१०॥
वामावश्यकरो रम्य ऊर्ध्वरेता भवेन्नरः।
कामतुल्यं भवेद्रूपं स्वरः परभृतोपमः॥२११॥
खगतुल्या भवेद् दृष्टिर्वृद्धोऽपि तरुणायते।
अष्टोत्तरं सु भजेद्यस्तु भवेत्तस्य सुधोपमम्॥२१२॥

वीर्यवृद्धिकरं श्रेष्ठं जरामृत्युविनाशनम्।
अपस्मारज्वरोन्मादक्षयानिलगदापहम् ॥२१३॥
कासं श्वासं सशोथञ्च भगन्दरगुदामयम्।
अग्निमान्द्यमतीसारं विविधं ग्रहणीगदम् ॥२१४॥
बहुमूत्रं प्रमेहञ्च शिरोरोगमरोचकम्।
हन्ति सर्वगदान् घोरान् वातपित्तबलासजान् ॥२१५॥
बन्ध्या च मृतवत्सा च नष्टपुष्पा च या भवेत्।
बहुपुत्रा जीवेद्वत्सा भवेदस्य निषेवणात् ॥२१६॥
हरते सूतिकारोगं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।
मोदकं मदनानन्दं सर्वरोगे महौषधम् ॥
कथितं देवदेवेन रावणस्य हितार्थिना ॥२१७॥

१. शुद्ध पारद १२ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक १२ ग्राम, ३. लोहभस्म १२ ग्राम, ४. अभ्रकभस्म ३६ ग्राम, ५. कर्पूर, ६. सैन्धवलवण, ७. जटामांसीचूर्ण, ८. आमलकीचूर्ण, ९. छोटी इलायचीचूर्ण, १०. शुण्ठीचूर्ण, ११. पिप्पलीचूर्ण, १२. मरिचचूर्ण, १३. जावित्रीचूर्ण, १४. जायफलचूर्ण, १५. तेजपत्रचूर्ण, १६. लवङ्गचूर्ण, १७. जीरकचूर्ण, १८. स्याह-जीरकचूर्ण, १९. यष्टिमधुचूर्ण, २०. वचचूर्ण, २१. कुष्ठचूर्ण, २२. हरिद्राचूर्ण, २३. देवदारुचूर्ण, २४. हिज्जलचूर्ण, २५. शुद्ध टंकणचूर्ण, २६. भारङ्गीचूर्ण, २७. शुण्ठीचूर्ण, २८. कमलकेशरचूर्ण, २९. कर्कटशृङ्गीचूर्ण, ३०. तालीशपत्रचूर्ण, ३१. द्राक्षाकल्क, ३२. चित्रकमूलचूर्ण, ३३. दन्तीमूलचूर्ण, ३४. बलामूलचूर्ण, ३५. अतिबलमूलचूर्ण, ३६, दालचीनी-चूर्ण, ३७. धनियाँचूर्ण, ३८. गजपिप्पलीचूर्ण, ३९. कचूरचूर्ण, ४०. सुगन्धबालाचूर्ण, ४१. मुस्ताचूर्ण, ४२. गन्धा (अगरु) चूर्ण, ४३. विदारीकन्दचूर्ण, ४४. शतावरीचूर्ण, ४५. अर्कमूल-चूर्ण, ४६. कपिकच्छुबीजचूर्ण, ४७. गोक्षुरबीजचूर्ण, ४८. विधाराचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम तथा ४९. सभांग बीजचूर्ण २९० ग्राम लें। सर्वप्रथम एक साफ एवं सुदृढ़ खरल में पारद एवं गन्धक को २ दिनों तक दृढ़ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः उस कज्जली में लोह एवं अभ्रक भस्म मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करें। पुनः शेष सभी ४५ द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को कज्जली आदि के साथ अच्छी तरह से मिलाकर महीन छननी से छान कर सभी द्रव्य चूर्णों में शतावरीस्वरस की भावना दें। सभी औषधि चूर्णों का आधा भाग शुद्ध भाँगचूर्ण २९० ग्राम (अर्थात् ५८८ ग्राम का आधा) लेना चाहिए। सभी को एक साथ मिलाकर बकरी दूध की १ भावना देनी चाहिए। पाक बनाने के लिए चीनी सभी द्रव्यों की दुगुनी (१७६४ ग्राम), मधु २५० ग्राम तथा गोघृत २५० ग्राम लें।

एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में चीनी तथा २५० मि.ली. जल देकर मध्यमाग्नि से पाक करना चाहिए। कड़ी चासनी होने पर पाकपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर उपर्युक्त सभी ८८२ ग्राम चूर्ण उक्त चासनी में अच्छी तरह से मिलायें। ततः निम्नलिखित प्रक्षेप द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्णों को भी अच्छी तरह से मिलायें। प्रक्षेप द्रव्य—१. छोटी इलायची, २. दालचीनी, ३. तेजपत्र, ४. नागकेशर, ५. कर्पूर, ६. सैन्धवलवण, ७. शुण्ठी, ८. पिप्पली, ९. मरिच के सूक्ष्म चूर्ण—प्रत्येक द्रव्य ३-३ ग्राम लेना चाहिए। कुछ शीतल होने पर मधु एवं गोघृत मिलाकर १-१ तोला (१२-१२ ग्राम) के मोदक बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसके बाद भगवान् शंकर, इन्द्रदेव, कामदेव, अग्नि एवं श्रीगणेश को यह मोदक प्रसादरूप में अर्पण कर तथा ॐ ह्रीं शं सः अमृतं कुरु कुरु अमृते अमृतोद्भवाय नमः। ह्रीं अमृतं कुरु कुरु अमृतेश्वराय स्वाहा। 'ॐ स्वाहा'—इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर इस मोदक को पात्रान्तर (सुवर्ण-रजत-कांस्य या मृत्पात्र) में रखें। ततः इस मोदक को अग्नि में भी अर्पित करें। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र में स्नानादि से पवित्र होकर शिव-पार्वती की पूजा कर, सन्ध्या गायत्री से निवृत्त होकर प्रातःकाल १ तोले की मात्रा में इस मोदक को तिलचूर्ण एवं घृत मिश्रित सुखोष्ण गोदुग्ध में मिश्री मिलाकर पायस जैसा बनाकर अनुपान रूप में प्रयोग करना चाहिए। विलासी (मैथुनेच्छु) व्यक्तियों को सायं काल इस औषधि का सेवन करना चाहिए। १ सप्ताह के प्रयोग से ही व्यक्ति कामान्ध हो जाता है। वह जब तक स्त्रियों के साथ सम्भोग नहीं करता तब तक उसे कामज्वर सताता है। प्रबल वेग से युक्त होकर हजार स्त्रियों के साथ सम्भोग करने पर भी शिश्न (लिङ्ग) शिथिल नहीं होता है। इसे सेवन करने वाला व्यक्ति कामोन्मत्त हो जाता है, स्त्रियों का प्रिय पात्र हो जाता है, हाथी के जैसा बलवान्, स्त्रियों को वश में करने वाला, सुन्दर तथा ऊर्ध्वरेता[1] हो जाता है। कामदेव के जैसा सुन्दर स्वरूप वाला हो जाता है, गरुड़ के जैसी दूरदृष्टि वाला हो जाता है तथा इसके सतत सेवन से वृद्ध व्यक्ति भी युवा जैसा मैथुन में समर्थ हो जाता है। जो व्यक्ति १०८ मोदक सेवन कर लेता है, वह अमृत सेवन करने वाला जैसा दीर्घायु, बलवान् और सुन्दर हो जाता है। यह सद्यः वीर्य बढ़ाने वाली औषधों में श्रेष्ठ है, वृद्धावस्था और मृत्यु को दूर भगाता है अर्थात् निकट आने नहीं देता है। इस मोदक का सेवन अपस्मार, ज्वर, उन्माद, क्षय, वातरोग नाशक है। यह कास, श्वास, शोथ, भगन्दर एवं गुदरोग (अर्श आदि), अग्निमान्द्य, अतिसार, सभी प्रकार के संग्रहणीरोग, बहुमूत्र, प्रमेह, शिरोरोग, अरुचि तथा सभी प्रकार के वातज, पित्तज एवं

१. ऊर्ध्वरेता एक यौगिक क्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने शरीरस्थ शुक्र को नीचे से ऊपर शिर पर चढ़ा लेता है और सम्भोग के समय इच्छानुसार ही शुक्रच्युति होती है। भगवान् शङ्कर एवं भगवान् श्रीकृष्ण आदि महापुरुष ऊर्ध्वरेता थे तथा अन्य असंख्य योगी (ऋषि-मुनि) भी ऊर्ध्वरेता थे।

कफज रोग का नाशक है। बन्ध्यारोग, मृतवत्सारोग, नष्टपुष्पा रोग से ग्रसित स्त्री इसके सेवन से बहुपुत्र वाली हो जाती है। इसके सेवन से सूतिका रोग तो ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे इन्द्रदेव के असनि (वज्र) प्रहार से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं। यह 'मदनानन्द मोदक' सभी रोगों के लिए महौषध है। इसे लङ्कापति रावण के हितार्थ भगवान् शङ्कर ने निर्मित किया था।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—उबालकर गाढ़ा किये हुए गोदुग्ध में चीनी, गोघृत एवं मधु मिलाकर सेवन करें। **गन्ध**—सुगन्धपाकगन्धी। **वर्ण**—किञ्चित् हरिताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—प्रबल वाजीकरण एवं मृतवत्सा में सर्वरोगहर।

५३. रतिवल्लभमोदक

शक्राशनस्य बीजानां चूर्णानि पलपञ्च च।
हविषः कुडवञ्चैकं सिताप्रस्थं प्रगृह्य च ॥२१८॥
शतावरीरसप्रस्थं तथा शक्राशनस्य च।
गव्यमाजं पयःप्रस्थं ततः प्रस्थद्वयं पचेत् ॥२१९॥
धात्री द्विजीरकं मुस्तं त्वगेलापत्रकेशरम्।
आत्मगुप्ता चातिबला तालाङ्कुरकशेरुकम् ॥२२०॥
शृङ्गाटकं त्रिकटुकं धान्यमभ्रञ्च वङ्गकम्।
पथ्या द्राक्षा च काकोल्यौ खर्जूरं क्षुरकं तथा ॥२२१॥
कटुका मधुकं कुष्ठं लवङ्गं सारसैन्धवम्।
यमानी चाजमोदा च जीवन्ती गजपिप्पली ॥२२२॥
प्रत्येकं कर्षमेकन्तु चूर्णितानि शुभानि च।
कुडवार्द्धं पाकशेषे मधुनः प्रक्षिपेत्ततः ॥२२३॥
मृगाण्डजं सकर्पूरं यथालाभं विनिक्षिपेत्।
रतिवल्लभनामाऽयं सेव्यमानो महारसः ॥२२४॥
परमोजस्करो बल्यो वातव्याधिविनाशनः।
वातपित्तहरो वृष्यो दृष्टिसन्दीपनः परः ॥२२५॥
पित्तश्लेष्मास्रपित्तघ्नो विषगुल्मज्वरापहः।
पातव्य एष मन्दाग्निरोगाणां क्षयहेतुकः ॥२२६॥
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम्।
न भवेल्लिङ्गशैथिल्यं वृद्धानां पुष्टिवर्द्धनम् ॥२२७॥
यस्य गेहे सदा बह्व्यः पत्न्यः स्युः सुमनोहराः।
तस्य सेव्यः सदैवायं मोदको रतिवल्लभः ॥२२८॥

१. भाँग बीज के साथ का चूर्ण १४० ग्राम, २. गोघृत १९३ ग्राम, ३. चीनी ७५० ग्राम, ४. शतावरीस्वरस ७५० मि.ली., ५. शुद्ध भाँगचूर्ण ७५० ग्राम, ६. गोदुग्ध ७५० मि.ली. तथा ७. बकरी का दूध ७५० मि.ली.। प्रक्षेप—१. आमलाचूर्ण, २. श्वेत जीराचूर्ण, ३. स्याह जीराचूर्ण, ४. मुस्ताचूर्ण, ५. दाल-चीनीचूर्ण, ६. छोटी इलायचीचूर्ण, ७. तेजपत्रचूर्ण, ८. नाग-केशरचूर्ण, ९. कपिकच्छुबीजचूर्ण, १०. अतिबलामूलचूर्ण, ११. तालाङ्कुरचूर्ण, १२. केशरचूर्ण, १३. सिंघाड़ाचूर्ण, १४. शुण्ठीचूर्ण, १५. पिप्पलीचूर्ण, १६. मरिचचूर्ण, १७. धनियाँचूर्ण, १८. अभ्रकभस्म, १९. वङ्गभस्म, २०. हरीतकीचूर्ण, २१. द्राक्षा कल्क, २२. काकोलीचूर्ण, २३. क्षीरकाकोलीचूर्ण, २४. खर्जूर कल्क, २५. तालमखानाचूर्ण, २६. कटुकीचूर्ण, २७. यष्टिमधुचूर्ण, २८. कुष्ठचूर्ण, २९. लवङ्गचूर्ण, ३०. सैन्धवचूर्ण, ३१. अजवाइनचूर्ण, ३२. अजमोदाचूर्ण, ३३. जीवन्तीचूर्ण, ३४. गजपिप्पलीचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। मधु २३ ग्राम, कस्तूरी एवं कर्पूर क्रमशः ५ एवं २० ग्राम लें।

एक कड़ाही में घृत के साथ शनैः-शनैः भाँग के बीजचूर्ण को भर्जित करें। ततः भाँगपत्रचूर्ण को धीरे-धीरे घृत में भर्जित करें। ततः एक बड़े स्टेनलेस स्टील के पात्र में शतावरीस्वरस में मिलाकर धीरे-धीरे मन्दाग्नि पर पाक करें। जब थोड़ा गाढ़ा होने लगे तब दोनों दूध एवं चीनी मिलाकर धीरे-धीरे पाक करें। जब मधु जैसा गाढ़ा हो जाय तो चूल्हे से नीचे उतार कर प्रक्षेप द्रव्य के चूर्णों को आपस में मिलाकर पुनः छननी से छान कर उक्त पक्व दूध में अच्छी तरह मिला दें। जब शीतल हो जाय तो उक्त मात्रा में मधु, कस्तूरी और कर्पूर मिलाकर ६-६ ग्राम का मोदन बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'रतिवल्लभमोदक' कहते हैं। यह ओजस्कर है, बल्य है, दृष्टिवर्धक है, वातव्याधि नाशक है, वातपित्तहर है, पित्त, कफ एवं रक्तपित्त नाशक है। विष, गुल्म, ज्वर नाशक है। मन्दाग्नि एवं क्षयरोग नाशक है। दुर्बलों को मोटा करने वाला तथा मोटे को दुर्बल करने वाला है। यह उत्तम वाजीकरण है। इस मोदक के सेवन से वृद्धों की क्षीण धातु पुष्ट होती है। सम्भोग के समय लिङ्ग शिथिल नहीं होता है। वृद्धों के लिए शरीरपुष्टिकर है। जिसके घर में अनेक सुन्दरियाँ हो उनके लिए यह मोदक अत्युत्तम है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गोदुग्धानुपान से। **गन्ध**—कस्तूरीगन्धी। **वर्ण**—किञ्चिद् हरिताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ।

५४. कामाग्निसन्दीपनमोदक (यो.रत्ना.)

कर्षो रसो गन्धकमभ्रकञ्च
द्विक्षारचित्रं लवणानि पञ्च।
शटी यमानीद्वयकीटहारि
तालीशपत्राण्यपरं द्विकर्षकम् ॥२२९॥
जीरं चतुर्जातलवङ्गजाती-
फलञ्च कर्षत्रयमेवमन्यत्।
सवृद्धदारं कटुकत्रयञ्च
तथा चतुःकर्षमितं निबोध ॥२३०॥
धान्याकयष्टीमधुकं कशेरु-
कर्षाः पृथक् पञ्च वरी विदारी।

वरेभकर्णेभबलात्मगुप्ता-
बीजं तथा गोक्षुरबीजयुक्तम् ॥२३१॥
सबीजपत्रेन्द्ररजःसमानं
समा सिता क्षौद्रघृतञ्च तुल्यम्।
कर्षैकमिन्दोरथ मोदकं तत्
कामाग्निसन्दीपनमेतदुक्तम् ॥२३२॥
वृष्यन्त्वतः परतरं सततं न दृष्ट-
मेनं निषेव्य मनुजः प्रमदासहस्रम्।
गच्छन्न लिङ्गशिथिलत्वमवाप्नुयाच्च
नागाधिपं विजयते बलयः प्रमत्तम् ॥२३३॥
कान्त्या हुताशनमपि स्वरतो मयूरान्
वाहं जवेन नयनेन महाविहङ्गम्।
वातानशीतिमथ पित्तगदं समग्रं
श्लेष्मोत्थविंशतिरुजः परमग्निमान्द्यम् ॥२३४॥
दुर्नामकामलभगन्दरपाण्डुरोग-
मेहातिसारकृमिहृद्ग्रहणीप्रदोषान्।
कासज्वरश्वसनपीनसपार्श्वशूल-
शूलाम्लपित्तसहितांश्चिरजान्समस्तान् ॥२३५॥
हत्वा गदानपि च तत्पुमपत्यकारि
सर्वर्तुपथ्यमथ सर्वसुखप्रदायि।
वृष्यं वलीपलितहारि रसायनं स्या-
च्छ्रीमूलदेवकथितं परमं प्रशस्तम् ॥२३६॥

१. शुद्ध पारद १२ ग्राम, २. शुद्ध गन्धक १२ ग्राम, ३. अभ्रकभस्म १२ ग्राम, ४. सर्जिक्षार १२ ग्राम, ५. यवक्षार १२ ग्राम, ६. चित्रकमूलचूर्ण १२ ग्राम, ७. सैन्धवचूर्ण १२ ग्राम, ८. सौवर्चललवण १२ ग्राम, ९. विडलवण १२ ग्राम, १०. सामुद्रलवण १२ ग्राम, ११. औद्भिद्लवण १२ ग्राम, १२. कचूरचूर्ण, १३. यवानीचूर्ण १२ ग्राम, १४. अजमोदाचूर्ण १२ ग्राम, १५. विडङ्गचूर्ण १२ ग्राम, १६. तालीशपत्रचूर्ण १२ ग्राम, १७. जीराचूर्ण २४ ग्राम, १८. छोटा एलाचूर्ण २४ ग्राम, १९. दालचीनी २४ ग्राम, २०. तेजपत्रचूर्ण २४ ग्राम, २१. नागकेशरचूर्ण २४ ग्राम, २२. लवङ्गचूर्ण २४ ग्राम, २३. जायफलचूर्ण २४ ग्राम, २४. विधाराचूर्ण ३६ ग्राम, २५. शुण्ठीचूर्ण ३६ ग्राम, २६. मरिचचूर्ण ३६ ग्राम, २७. पिप्पलीचूर्ण ३६ ग्राम, २८. धनियाँचूर्ण ४८ ग्राम, २९. यष्टिमधुचूर्ण ४८ ग्राम, ३०. सौंफचूर्ण ४८ ग्राम, ३१. कशेरुचूर्ण ४८ ग्राम, ३२. शतावरीचूर्ण ६० ग्राम, ३३. विदारीकन्दचूर्ण ६० ग्राम, ३४. आमलाचूर्ण ६० ग्राम, ३५. हरीतकीचूर्ण ६० ग्राम, ३६. बिभीतकचूर्ण ६० ग्राम, ३७. पलाशत्वक्चूर्ण ६० ग्राम, ३८. नागबलाचूर्ण ६० ग्राम, ३९. कपिकच्छुबीजचूर्ण ६० ग्राम, ४०. गोक्षुरबीजचूर्ण ६० ग्राम— यहाँ तक की औषधियाँ कुल १२१२ ग्राम; ४१. भाँगबीजपत्र-चूर्ण १२२४ ग्राम, ४२. चीनी २४४८ ग्राम, ४३. मधु २४४८ ग्राम, ४४. गोघृत २४४८ ग्राम—इस प्रकार कुल द्रव्य ९७९२ ग्राम तथा ४५. कर्पूर १२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनायें। ततः उसमें अभ्रकभस्म तथा अन्य सभी द्रव्यों (सर्जिक्षार से भाँगचूर्ण तक) को मिलाकर पुनः छननी से छान लें। अब स्टेनलेस स्टील के पात्र में चीनी की कड़ी चासनी (मोदक की चासनी) करें। चासनी होने पर पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर सभी चूर्णो को घी में भूनकर अच्छी तरह मिला दें। तदनन्तर थोड़ा शीतल होने पर मधु मिलावें और १२-१२ ग्राम का मोदक बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस मोदक को 'कामाग्निसन्दीपन मोदक' कहते हैं। इस मोदक को आचार्य 'श्रीमूलदेव' ने कहा है। इस 'काम सन्दीपन मोदक' से बढ़कर अन्य कोई दूसरी औषधि वाजीकरणार्थ नहीं है। इसके सेवन से व्यक्ति १ हजार स्त्रियों को मैथुन में तृप्त एवं सन्तुष्ट करता है तथापि उसका लिङ्ग (शिश्न) शिथिल नहीं होता है। बल में मदोन्मत्त हाथी को, शरीर की कान्ति में अग्नि को, स्वर में मयूर को, वेग में घोड़े को, दृष्टि में गरुड़ को भी परास्त कर देता है। इसके सेवन से ८० प्रकार के वातरोग, ४० प्रकार के पित्तरोग एवं २० प्रकार के कफरोग नष्ट हो जाते हैं। यह अत्यन्त जाठराग्निवर्धक है। इसके अतिरिक्त इसके सेवन से अर्श, कामला, भगन्दर, पाण्डुरोग, प्रमेह. अतिसार, कृमि, हृद्रोग, संग्रहणी, कास, ज्वर, श्वास, पीनस, पार्श्वशूल, उदरशूल, अम्लपित्त तथा सभी तरह के पुराने रोग नष्ट हो जाते हैं और पुरुष सन्तान (पुत्र) उत्पन्न करता है। यह मोदक पथ्य पूर्वक सभी ऋतुओं में सेवन करने योग्य है। सभी तरह के सुखों (शारीरिक आरोग्यता) को देने वाला है। यह परम वृष्य है। वली-पलित रोग नाशक है तथा रसायन गुण सम्पन्न है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—मिश्री युक्त सुखोष्ण गोदुग्ध। **गन्ध**—सुगन्ध (कर्पूरगन्धी)। **वर्ण**—हरिताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ मुख्य है।

५५. शतावरीमोदक

शतावरी श्वदंष्ट्रा च बला चातिबला तथा।
मर्कटीक्षुरबीजञ्च विदारीकन्दजं रजः ॥२३७॥
एतानि समभागानि पलिकानि विचूर्णयेत्।
तस्माच्चतुर्गुणं देयं त्रैलोक्यविजयारजः ॥२३८॥
एतदेकीकृतं यावत्तदर्द्धं माहिषं पयः।
तावन्मात्रेण दातव्यः शतावर्या रसस्तथा ॥२३९॥
विदार्याः स्वरसप्रस्थं सितापलशतद्वयम्।
घोलयित्वा सिताश्चैव पात्रे ताम्रमये दृढे ॥२४०॥

पाचयेत् पाकविद्वैद्यो मोदकं परमं हितम्।
त्र्यूषणं त्रिफला दन्ती त्रिजातं सैन्धवं शटी ॥२४१॥
धान्यकं बालकं मुस्तं कस्तूरी गोस्तनी तुगा।
जातीकोषफले मांसी पत्रं वीरेन्द्रग्रन्थिकम् ॥२४२॥
शतपुष्पा चवी दारु प्रियङ्गु सलवङ्गकम्।
सरलं शैलजं कुम्भं जातीपुष्पं यमानिका ॥२४३॥
कट्फलं केशरं मेथी मधुकं सुरदारु च।
मिशितालीशपत्रञ्च खर्जूरं रसगन्धकौ ॥२४४॥
चन्दनं तगरं क्षारं प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
आलोड्य त्रिसुगन्धेन कर्पूरेणाधिवासयेत् ॥२४५॥
काञ्चने राजते पात्रे स्थाप्यमेतद्भिषग्वरैः।
कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं क्षीरं चानुपिबेत्पलम् ॥२४६॥
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु विचक्षणः।
प्रमदाशतञ्च भजते न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥२४७॥
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं शुक्रसञ्जननं परम्।
मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति न संशयः ॥२४८॥
बल्यं परं वातहरं शुक्रसञ्जननं परम्।
क्षयञ्चैव महाव्याधिं पञ्चकासान् सुदुस्तरान् ॥२४९॥
वातजान् पैत्तिकांश्चैव कफजान् सान्निपातिकान्।
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि वातरक्तादिकानि च ॥२५०॥
प्रमेहं श्लीपदं शोथं लक्ष्मीकान्तिविवर्द्धनम्।
सर्वानर्शोगदान् हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥२५१॥
व्याधीन् कोष्ठगतानन्यान् जनार्दन इवासुरान्।
नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मसु ॥२५२॥
स्त्रीणाञ्चैवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम्।
क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम् ॥
ओजस्तेजः स्वरं बुद्धिमायुः प्राणान् विवर्द्धयेत् ॥२५३॥

१. शतावरीचूर्ण, २. गोक्षुरचूर्ण, ३. बलामूलचूर्ण, ४. अतिबलामूलचूर्ण, ५. कपिकच्छुबीजचूर्ण, ६. विदारीकन्दचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम लें। ७. शुद्ध भाँगपत्रचूर्ण १२०० ग्राम, ८. भैंस का दूध ७५० मि.ली., ९. शतावरी-स्वरस ७५० मि.ली. १०. विदारीकन्दस्वरस ७५० मि.ली. तथा ११. चीनी ९३४० ग्राम लें। प्रक्षेप—१. शुण्ठीचूर्ण, २. मरिचचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. आमलाचूर्ण, ५. हरीतकीचूर्ण, ६. बिभीतकचूर्ण, ७. दन्तीमूलचूर्ण, ८. छोटी इलायचीचूर्ण, ९. तेजपत्रचूर्ण, १०. दालचीनीचूर्ण, ११. सैन्धवचूर्ण, १२. कचूरचूर्ण, १३. धनियाँचूर्ण, १४. सुगन्धबालाचूर्ण, १५. नागरमोथाचूर्ण, १६. कस्तूरी, १७. द्राक्षाकल्क, १८. वंशलोचनचूर्ण, १९. जावित्रीचूर्ण, २०. जायफलचूर्ण, २१. जटामांसीचूर्ण, २२. तेजपत्रचूर्ण, २३. उशीरचूर्ण, २४. इन्द्रयवचूर्ण, २५. पिप्पलीमूलचूर्ण, २६. सौंफचूर्ण, २७. चव्यचूर्ण, २८. दारुहरिद्राचूर्ण, २९. प्रियङ्गुफूलचूर्ण, ३०. लवङ्गचूर्ण, ३१. सरलवृक्षचूर्ण, ३२. शैलेयचूर्ण, ३३. शुद्ध गुग्गुलु, ३४. जातीपुष्पचूर्ण, ३५. अजवाइनचूर्ण, ३६. कट्फलचूर्ण, ३७. केशरचूर्ण, ३८. मेथीचूर्ण, ३९. यष्टिमधुचूर्ण, ४०. देवदारुचूर्ण, ४१. सोयादानाचूर्ण, ४२. तालीश पत्रचूर्ण, ४३. खर्जूर (छोहाड़ा) चूर्ण, ४४. शुद्ध पारद, ४५. शुद्ध गन्धकचूर्ण, ४६. श्वेतचन्दनचूर्ण, ४७. तगरचूर्ण, ४८. यवक्षारचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। ४९. छोटी इलायचीचूर्ण, ५०. दालचीनीचूर्ण, ५१. तेजपत्रचूर्ण, ५२. कर्पूर—ये चारों द्रव्य भी १२-१२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम एक खरल में पारद एवं गन्धक की अच्छी कज्जली बनायें। ततः अन्य सभी चूर्णों (शुण्ठीचूर्ण से कर्पूर तक सभी ५१ द्रव्यों) एवं द्राक्षा तथा गुग्गुलु आदि को अच्छी तरह से मिलाकर रख दें। उपर्युक्त शतावरीचूर्ण से भाँगपत्रचूर्ण तक के सभी द्रव्यों के चूर्णों को अच्छी तरह से मिलाकर पुनः छननी से छान लें। इन चूर्णों को पहले भैंस के दूध में पकायें। ततः शतावरीस्वरस एवं विदारीकन्दस्वरस के साथ क्रमशः पाक करें। तदनन्तर चीनी की कड़ी चासनी कर परीक्षा कर पहले दुग्धादि पक्व कल्क जैसे द्रव्यों को मिलायें। तदनन्तर शुण्ठीचूर्ण से तेजपत्र चूर्ण तक के सभी द्रव्यों के मिश्रित चूर्णों को मिला दें और १२-१२ ग्राम की मात्रा में मोदक बनाकर काचपात्र में सुरक्षित करें। आचार्य ने इसे स्वर्ण या रजत पात्र में संग्रहीत करने का आदेश दिया है, किन्तु आज के युग में उक्त पात्र सभी के लिए सुलभ नहीं है। अतः काचपात्र ठीक है। इसे प्रातः मिश्री युक्त गाढ़े एवं सुखोष्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करना चाहिए अथवा भोजन के बाद भी सेवन किया जा सकता है। इसके सेवन के कुछ काल के बाद एक सौ प्रमदा स्त्रियों के साथ व्यक्ति सम्भोग करता है तथा उसका शुक्र क्षय नहीं होता है और न ही लिङ्ग (शिश्न) शिथिल होता है। यह औषधि परम शुक्रोत्पादक है। १ महीना तक सेवन करने से निःसन्देह वृद्धावस्था (जरा) को नष्ट कर देती है। यह अत्यन्त बलकारक है, वातहर है, क्षयनाशक है, महाव्याधि, पाँचों भयंकर कास, सभी वातज, पित्तज एवं कफज सन्निपात रोगों को नष्ट करती है। इसके सेवन से १८ प्रकार के कुष्ठ, वातरक्तादिरोग, प्रमेह, श्लीपद, शोथ एवं अर्श उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे इन्द्र के वज्र प्रहार से वृक्ष नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त कोष्ठगत अन्य व्याधियाँ भी उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं, जैसे जनार्दन भगवान् विष्णु राक्षसों को नष्ट कर देते हैं। इससे बढ़कर वाजीकरणार्थ कोई दूसरी औषधि नहीं है। यह शरीर की शोभा एवं शरीर की कान्ति को बढ़ाती है। यह मोदक सन्तानहीन स्त्री-पुरुषों के लिए, दुर्बल, नपुंसक, अल्पवीर्य तथा वृद्धों के लिए अत्यन्त हितकर है। यह मोदक शरीर के ओज, तेज, स्वर, बुद्धि, आयु तथा प्राण को बढ़ाता है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—मिश्री युक्त गाढ़ा गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्ध एवं कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—हरिताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ मुख्यतः।

५६. गोक्षुरादिमोदक

गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी।
मूषली वानरीबीजं यष्टी नागबला बला ॥२५४॥
एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाज्येन भर्जितम्।
सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥२५५॥
चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम्।
सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदग्निबलं यथा ॥२५६॥
वाजीकराणि भूरीणि सङ्गृह्य रचितो यतः।
तस्माद् बहुषु योगेषु योगोऽयं प्रवरो मतः ॥२५७॥

१. गोक्षुरबीजचूर्ण, २. तालमखानाचूर्ण, ३. अश्वगन्धचूर्ण, ४. शतावरीचूर्ण, ५. श्वेतमुशलीचूर्ण, ६. कपिकच्छुबीजचूर्ण, ७. यष्टिमधुचूर्ण, ८. नागबलाचूर्ण, ९. बलामूलचूर्ण—प्रत्येक चूर्ण ५०-५० ग्राम लें। गोदुग्ध ३६०० मि.ली. (सभी चूर्णों का आठ गुना दूध) लें। गोघृत ४५० ग्राम (सभी चूर्णों में बराबर) लेना चाहिए। मिश्री ९.०० किलो अर्थात् उक्त सभी द्रव्यों से दुगुनी मात्रा से लें।

उपर्युक्त ९ द्रव्यों के चूर्णों को एक साथ मिश्रित कर पुनः छननी से छान लें तथा चूर्ण से आठ गुना गोदुग्ध में डालकर मन्दाग्नि पर शनैः-शनैः पाक करें। जब सम्पूर्ण दूध सूखकर खोआ (मावा) बन जाय तो उस मावा को ४५० ग्राम गोघृत में भूनें। हल्का गुलाबी वर्ण का बन जाय तो उसे अलग पात्र में निकाल लें। तदनन्तर एक स्टेनलेस स्टील के पात्र में मिश्री को चूर्ण कर थोड़ा जल देकर पाक करें। जब कड़ी (मोदक की) चासनी बन जाय तो घृत में भर्जित कल्क को अच्छी तरह से मिलाकर १२-१२ ग्राम का मोदक बनाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'गोक्षुरादिमोदक' कहते हैं। इसे अग्निबलानुसार प्रातः-सायं १-१ मोदक मिश्री मिले गरम गोदुग्ध के अनुपान से लेना चाहिए। यह मोदक अनेक प्रकार के वाजीकरण द्रव्यों से बनाया गया है। अतः यह प्रबल वाजीकरण है और अनेक वाजीकरण योगों से श्रेष्ठ है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—मिश्री मिले गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्धित (पाकगन्धी)। **वर्ण**—धूसर वर्ण का मोदक। **रस**—मधुर। **उपयोग**—प्रबल वाजीकरण है।

५७. वानरीवटिका (भा.प्र.)

बीजं कपिकच्छूनां कुडवमितानि स्वेदयेच्छनकैः।
प्रस्थे गोभवदुग्धे तावद्यावद् भवेद् गाढम् ॥२५८॥
त्वग्रहितानि च कृत्वा सूक्ष्मं सम्पेषयेत्तानि।
पिष्टिकया लघुवटिकाः कृत्वा गव्ये पचेदाज्ये ॥२५९॥
द्विगुणितशर्करया ता वटिकाः सम्पक्वया स्थाप्याः।
पञ्चटङ्कमितास्तास्तु प्रातः सायञ्च भक्षयेत् ॥२६०॥
अनेन शीघ्रद्रावी यो यश्च स्यात्पतितध्वजः।
सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्यमति वाजिवत्।
नानेन सदृशं किञ्चिद् द्रव्यं वाजीकरं परम् ॥२६१॥

१. कपिकच्छुबीज १९० ग्राम, २. गोदुग्ध ७५० मि.ली., ३. गोघृत १९० ग्राम, ४. चीनी (सभी द्रव्यों से दुगुनी) २२६० ग्राम तथा ५. मधु ३८० ग्राम लें। सर्वप्रथम आत्मगुप्ता (कपिकच्छु) बीज को गरम गोदुग्ध में रात्रिपर्यन्त डुबोकर रखें। प्रातः मन्दाग्नि पर १ घण्टा तक उबाल लें। ततः उसके छिलके को निकालकर कूट लें तथा सिल पर पीस लें। पुनः अवशिष्ट दूध में पिसे हुए कल्क को मिलाकर पका लें। जब दूध सूखकर मावा बन जाय तो ५-५ टंक (१५-१५ ग्राम) का मोदक बना लें और उपर्युक्त गोघृत में तल लें। तदनन्तर जल देकर चीनी की चासनी करें। सम्यक् चासनी हो जाने पर चासनी में मधु मिलायें और घृतपक्व गरम-गरम वटिका को उक्त चासनी एवं मधु मिश्रित द्रव में डालकर छोड़ दें। इसे 'वानरीवटिका' कहते हैं। प्रातः-सायं एक-एक वटिका गरम गोदुग्ध से खायें। अग्निबलानुसार २-२ वटिका भी खायी जा सकती है। इसके कुछ दिनों तक सेवन से शीघ्र शुक्रपात, ध्वज- भङ्ग एवं नपुंसकता नष्ट हो जाती है और व्यक्ति घोड़े जैसा वेग के साथ मैथुन करने की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है। इसके जैसी कोई अन्य औषधि वाजीकरण के लिए नहीं है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—मधुर-घृत गन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ वटिका। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ।

५८. गोधूमाद्यघृत (चक्रदत्त)

गोधूमात्तु पलशतं निःक्वाथ्य सलिलाढके।
पादशेषे च पूते च द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥२६२॥
गोधूमं युञ्जातफलं माषं द्राक्षा परूषकम्।
काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती च शतावरी ॥२६३॥
अश्वगन्धा सखर्जूरं मधुकं त्र्यूषणं सिता।
भल्लातकमात्मगुप्ता समभागानि कारयेत् ॥२६४॥
घृतप्रस्थं पचेदेकं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्।
मृद्वग्निना च सिद्धे तु द्रव्याण्येतानि निक्षिपेत् ॥२६५॥
त्वगेलापिप्पलीधान्यकर्पूरं नागकेशरम्।
यथालाभं विनिक्षिप्य सिताक्षौद्रं पलाष्टकम् ॥२६६॥
दत्त्वेक्षुदण्डेनालोड्य विधिवद्विनियोजयेत्।
शाल्योदनेन भुञ्जीत पिबेन्मांसरसेन वा ॥२६७॥
केवलस्य पिबेदस्य पलमात्रं प्रमाणतः।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥२६८॥

बल्यं परं वातहरं शुक्रसञ्जननं परम्।
मूत्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानाञ्चापि शस्यते ॥२६९॥
कोलैकं तु तदश्नीयाद्दशरात्रमतन्द्रितः।
स्त्रीणां शतञ्च भजते पीत्वा चानुपिबेत्पयः ॥२७०॥
अश्विभ्यां निर्मितं चैव गोधूमाद्यं रसायनम्।
जलद्रोणे तु गोधूमक्वाथं तच्छेषमाढकम् ॥२७१॥
युञ्जातकस्य स्थाने तु तद्गुणं तालमस्तकम्।
कल्कद्रव्यसमं मानं त्वगादेः साहचर्यतः ॥२७२॥

१. गेहूँ ४६७० ग्राम, २. जल १२५०० मि.ली. (अवशेष क्वाथ ३ लीटर), ३. गोघृत ७५० ग्राम, ४. गोदुग्ध ३ लीटर, ५. मधु ३७५ ग्राम तथा चीनी ३७५ ग्राम।

कल्क—१. गेहूँचूर्ण, २. युञ्जातफल अभावे (तालमस्तक), ३. उड़दचूर्ण, ४. द्राक्षा, ५. फालसा, ६. काकोली, ७. क्षीर-काकोली, ८. जीवन्तीचूर्ण, ९. शतावरीचूर्ण, १०. अश्वगन्धा-चूर्ण, ११. खर्जूरकल्क, १२. यष्टिमधुचूर्ण, १३. शुण्ठीचूर्ण, १४. पिप्पलीचूर्ण, १५. मरिचचूर्ण, १६. चीनी, १७. शुद्ध भिलावा, १८. कपिकच्छुबीजचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें। **प्रक्षेप**—१. छोटी इलायचीचूर्ण, २. दालचीनीचूर्ण, ३. पिप्पलीचूर्ण, ४. धनियाँचूर्ण, ५. कर्पूर, ६. नागकेशरचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। गोधूम को चतुर्गुण जल में क्वाथ कर चौथाई शेष रहने पर छान लें। ततः मूर्च्छितघृत में कल्क के सभी १८ द्रव्यों के चूर्ण में थोड़ा जल देकर कल्क बना लें और गोधूमक्वाथ तथा गोदुग्ध मिश्रित घृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब जलीयांश सूखने लगे तो दूध के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जब जलीयांश सूखने लगे तो पाकपरीक्षोपरान्त चूल्हे से घृतपात्र को उतारकर गरम-गरम घी को कपड़े से छानकर उसमें ३७५ ग्राम चीनी मिलाकर प्रक्षेप के सभी छः द्रव्यों के चूर्ण को अच्छी तरह से मिला लें। जब घृत शीतल हो जाय तो ३७५ ग्राम मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। ततः इक्षुदण्ड को जल से अच्छी तरह धो-साफ कर इसी से घृत को आलोडित करें। इसे सेवन से पूर्व विरेचन कराकर उदर (कोष्ठ) शुद्धि करनी चाहिए। इसकी मात्रा १२ से २४ ग्राम लेनी चाहिए। अनुपान के रूप में गरम तथा मिश्री मिला हुआ गोदुग्ध पीना चाहिए। इस घृत को 'गोधूमाद्यघृत' कहते हैं। इसे देव वैद्य अश्विनीकुमारों निर्मित किया था। इसके सेवन काल में पथ्य रूप में शालिचावल का भात तथा मांसरस दें। यह घृत वाजीकरण कार्य के लिए उत्तम है। इसके कुछ दिनों तक सेवन करने के बाद व्यक्ति अनेकों प्रमदाओं के मद का भञ्जन कर मैथुन में उन्हें सन्तुष्ट करता है। उस व्यक्ति का लिङ्ग (शिश्न) शिथिल नहीं होता है, शुक्रक्षय भी नहीं होता है। वृद्ध पुरुषों के लिए यह योग प्रशस्त है। मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है। इस घृत को १ कोल (६ ग्राम) की मात्रा में १० दिनों तक सेवन करने से व्यक्ति सौ स्त्रियों को मैथुन में सन्तुष्ट एवं तृप्त कर देता है। यह घृत बल्य है, वातनाशक है।

विमर्श—१ द्रोण जल में गेहूँ का क्वाथ करें और १ आढक (३ लीटर) शेष रहने पर छानकर उसी क्वाथ से घृत पाक करें। युञ्जातक के अभाव में तालमस्तक को ग्रहण करें। कल्क द्रव्य के बराबर ही प्रक्षेप (त्वगादि) द्रव्य लेना चाहिए।

मात्रा—६ से २५ ग्राम तक। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ।

भाँग-लोह-वङ्ग एवं अभ्रक की विशेषता

ये केचिद्विजयायोगा लोहवङ्गाभ्रसंयुताः।
युक्ताश्च रसगन्धाभ्यां रसायनवरा मताः ॥२७३॥

जिन भाँग प्रधान योगों में लौहभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक की कज्जली डाली गई हो उन्हें श्रेष्ठ रसायनवर्ग की श्रेणी में रखा गया है।

५९. अश्वगन्धाघृत

अश्वगन्धापलशतं शुभदेशसमुद्भवम्।
पुण्येऽहनि समाहृत्य साधयेच्छ्लक्ष्णकुट्टितम् ॥२७४॥
द्रोणेऽम्भसि पचेत्तावद्यावत्पादावशेषितम्।
सर्पिः प्रस्थं पचेत्तेन गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥२७५॥
कषायं छागमांसस्य दद्याच्छतद्वयस्य च।
कल्कानि श्लक्ष्णपिष्टानि तदाऽमूनि प्रदापयेत् ॥२७६॥
काकोलीयुग्ममृद्धी द्वे मेदे द्वे चाथ जीवकम्।
स्वयंगुप्तामृषभकमेलां मधुकमेव च ॥२७७॥
मृद्वीकां सूर्पपर्ण्यौ च जीवन्तीं चपलां बलाम्।
नारायणीं विदारीं च दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत् ॥२७८॥
सितामाक्षिकयोः शीते गृह्णीयात् कुडवौ पृथक्।
लीढ्वा पाणितलं भुञ्ज्यात् परिहारविवर्जितम् ॥२७९॥
क्षीणेन्द्रियाः क्षीणशुक्रा वृद्धा बालास्तथाऽबलाः।
हीनमांसाश्च ये केचित् प्राश्येदं मात्रया घृतम् ॥२८०॥
ओजः स्वास्थ्यञ्च तेजश्च प्रसादमिन्द्रियस्य च।
लभन्ते सूर्यसङ्काशा भ्राजन्ते विगतज्वराः ॥२८१॥
वृद्धो वृषायते स्त्रीषु नित्यं षोडशवर्षवत्।
नारीणां च शतं गच्छेन्न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥२८२॥
बन्ध्यां च लभते पुत्रं बुद्धिमेधासमन्वितम्।
माससमात्रप्रयोगेण वलीपलितनाशनम् ॥२८३॥
खालित्यं तिमिरं व्याधीन् वातिकान् कफपित्तजान्।

पञ्चकासान् क्षयं श्वासं हिक्काञ्चैव विषज्वरम्।
हन्ति सर्वान् गदाञ्छीघ्रमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥२८४॥

१. गोघृत ७५० ग्राम, २. अश्वगन्धा ४६७ ग्राम, ३. क्वाथार्थ जल १२.५०० लीटर (अवशेष क्वाथ ३ लीटर), ४. गोदुग्ध ३ लीटर, ५. बकरे का मांस ९३४० ग्राम, ६. मांस पाकार्थ जल ७४.७२० लीटर (अवशेष मांसरस ९.३४० लीटर)।

कल्क—१. काकोली, २. क्षीरकाकोली, ३. ऋद्धि, ४. वृद्धि, ५. मेदा, ६. महामेदा, ७. जीवक, ८. ऋषभक, ९. कपिकच्छुबीज, १०. छोटी एलायची, ११. यष्टिमधु, १२. द्राक्षा, १३. मुद्गपर्णी, १४. माषपर्णी, १५. जीवन्ती, १६. पिप्पली, १७. बलामूल, १८. शतावरी, १९. विदारीकन्द—प्रत्येक द्रव्य के चूर्ण १०-१० ग्राम लें। चीनी १९० ग्राम तथा मधु १९० ग्राम लें

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः उस मूर्च्छितघृत में अश्वगन्धा क्वाथ डालें। तदनन्तर कल्क के १९ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें एवं सिल पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें और मूर्च्छितघृत में डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। क्वाथ सूखने पर गोदुग्ध देकर पाक करें। गोदुग्ध सूखने पर मांसरस देकर पाक करें। गोदुग्ध एवं मांसरस के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त सिद्ध घृत समझकर घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर साफ एवं नये वस्त्र से तुरन्त घृत को छान लें। इस गरम घृत में चीनी मिला दें तथा शीतल होने पर उसमें मधु मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १२ ग्राम (१ तोला = पाणितल) की मात्रा में गोदुग्धानुपान से प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। इसके सेवन काल में अपथ्य कुछ नहीं है। क्षीणेन्द्रिय, क्षीणबल, क्षीणशुक्र, वृद्ध, बालक, स्त्री, क्षीण मांस वाले व्यक्ति सभी को इस घृत का सेवन करना चाहिए। इस घृत के सेवन से ओज, स्वास्थ्य, तेज तथा इन्द्रियों की प्रसन्नता और शरीर नीरोग होकर सूर्य के जैसा प्रकाशित होता है। इस घृत के प्रयोग से वृद्ध पुरुष भी १६ वर्ष के युवा के जैसा प्रहर्ष पूर्वक सम्भोग करता है। १०० स्त्रियों के साथ भी सम्भोग करने पर शुक्र का क्षरण नहीं होता है। इसके सेवन से बन्ध्या स्त्रियाँ बुद्धिमान् एवं स्मरणशक्ति सम्पन्न तथा मेधावी पुत्र को जन्म देती है। १ महीने तक प्रयोग करने से वली-पलित नष्ट हो जाते हैं। खालित्य, तिमिर, वातज, पित्तज, कफज रोग, पञ्च कास, क्षय, श्वास, हिक्का एवं विषम ज्वर नष्ट हो जाते हैं। इस घृत को देववैद्य श्रीअश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गोदुग्धापान से। **गन्ध**—घृत गन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ, पुत्रप्रद है।

६०. अमृतप्राश घृत

छागमांसतुलाञ्चैव वाजिगन्धां तथैव च।
जलद्रोणे विपक्तव्यं कुर्यात्पादावशेषितम् ॥२८५॥
घृतप्रस्थं पचेत्तेन अजाक्षीरं चतुर्गुणम्।
मूर्च्छनार्थे प्रदातव्यं कुङ्कुमञ्च द्विकार्षिकम् ॥२८६॥
बलामूलञ्च गोधूमञ्चाश्वगन्धा तथाऽमृता।
गोक्षुरञ्च कशेरुश्च त्रिकट्वपि सधान्यकम् ॥२८७॥
तालाङ्कुरं त्रैफलं च कस्तूरी बीजवानरी।
मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शटी ॥२८८॥
दार्वी प्रियङ्गु मञ्जिष्ठा नतं तालीशपत्रकम्।
एलापत्रत्वचं नागं जातीकुसुमरेणुकम् ॥२८९॥
सरलं जातिकोषश्च सूक्ष्मैलोत्पलसारिवा।
मूलं बिम्बस्य जीवन्ती ऋद्धिर्वृद्धिरुदुम्बरः ॥२९०॥
प्रत्येकं कर्षमात्राणि पेषयित्वा विनिक्षिपेत्।
वस्त्रपूते सुशीते च सितां दद्याच्छरावकम् ॥२९१॥
कर्षमात्रं ततः खादेदुष्णदुग्धानुपानतः।
बृंहणीयं विशेषेण बलपुष्टिकरं सदा ॥२९२॥
प्रमेहान् ध्वजभङ्गांश्च नाशयेदविकल्पतः।
एतद् वृष्यकरं सर्पिः काशिराजेन निर्मितम् ॥२९३॥
दृष्टं सिद्धफलं ह्येतद् वाजीकरणमुत्तमम्।
अमृतप्राशनमिदं सर्वामयनिषूदनम् ॥२९४॥
शिरोरोगे नष्टशुक्रे स्त्रीषु नष्टार्त्तवासु च।
न च शुक्रं क्षयं याति बलं ह्रासं न च व्रजेत् ॥२९५॥
दश स्त्रीणां रमेन्नित्यमानन्दमुपजायते।
कासार्श आमशूलघ्नं बद्धकोष्ठहरं परम्॥
सिद्धाज्यस्य प्रयोगेण स्थिरं भवति यौवनम् ॥२९६॥

१. गोघृत ७५० ग्राम, २. बकरी का दूध ३ लीटर, ३. बकरे का मांस ४६७० ग्राम, ४. क्वाथार्थ जल १२.५०० लीटर (अवशेष मांसरस ३ लीटर) तथा ५. मूच्छनार्थ केशर २३ ग्राम। **कल्क**—१. बलामूलचूर्ण, २. गेहूँचूर्ण, ३. अश्वगन्धाचूर्ण, ४. गुडूचीचूर्ण, ५. गोक्षुरचूर्ण, ६. कशेरुकचूर्ण, ७. शुण्ठीचूर्ण, ८. पिप्पलीचूर्ण, ९. मरिचचूर्ण, १०. धनिया-चूर्ण, ११. तालाङ्कुरचूर्ण, १२. आमलाचूर्ण, १३. हरीतकी-चूर्ण, १४. बिभीतकचूर्ण, १५. कस्तूरी, १६. कपकिच्छुबीज-चूर्ण, १७. मेदाचूर्ण, १८. महामेदाचूर्ण, १९. कुष्ठचूर्ण, २०. जीवकचूर्ण, २१. ऋषभकचूर्ण, २२. कचूरचूर्ण, २३. दारु-हरिद्राचूर्ण, २४. प्रियङ्गुचूर्ण, २५. मंजिष्ठाचूर्ण, २६. तगर-चूर्ण, २७. तालीशपत्रचूर्ण, २८. छोटी इलायचीचूर्ण, २९. तेजपत्रचूर्ण, ३०. दालचीनीचूर्ण, ३१. नागकेशरचूर्ण, ३२.

चमेली पुष्प, ३३. रेणुकाबीजचूर्ण, ३४. सरलकाष्ठचूर्ण, ३५. जावित्रीचूर्ण, ३६. छोटी इलायचीचूर्ण, ३७. नीलकमलचूर्ण, ३८. अनन्तमूलचूर्ण, ३९. त्रिकोलमूलचूर्ण, ४०. जीवन्तीचूर्ण, ४१. ऋद्धिचूर्ण, ४२. वृद्धिचूर्ण, ४३. उदुम्बर (गूलर) त्वक्चूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम लें तथा पिसी हुई चीनी ३७५ ग्राम (१ शराव = २ कुडव) लें।

सर्वप्रथम गोघृत का मूर्च्छन करें। ततः केशर एवं कस्तूरी छोड़कर बलामूल से उदुम्बरत्वक् के सभी द्रव्यों के सूक्ष्मचूर्ण को थोड़ा जल मिलाकर कल्क बना लें और मूर्च्छिततैल में यह कल्क और बकरीदूध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर ३ लीटर मांसरस बनाकर इस घृत में डालकर पकायें। मांसरस सूखने पर दूध एवं मांस रस के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल देकर पुनः पाक करें। जब जल सूख जाय तो परीक्षोपरान्त घृतपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़े से छान लें। ततः पिसी हुई चीनी डालकर दर्वी से अच्छी तरह से मिलायें। तदनन्तर केशरचूर्ण एवं कस्तूरी को पृथक्-पृथक् पीसकर उक्त घृत में मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इससे घृत में अच्छा वर्ण तथा सुगन्ध आयेगी। इसे 'अमृतप्राशघृत' कहते हैं। इस वाजीकरण घृत को काशीराज ने निर्मित किया है। इसे १२ ग्राम (१ कर्ष) की मात्रा में 'उष्ण तथा मिश्री मिले हुए गोदुग्ध में मिलाकर प्रातः-सायं सेवन करना चाहिए। यह घृत बृंहण है, बल्य है, शरीरपुष्टिकर है। इसके सेवन से सभी सभी प्रकार के प्रमेह एवं ध्वजभङ्ग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। इस घृत का प्रयोग सद्यःकर देखा गया है। यह उत्तम वाजीकरण है। इसके प्रयोग से शिरोरोग, शुक्रहीनता, स्त्रियों के नष्टार्त्तव, कास, अर्श, आमशूल, कोष्ठबद्धता आदि को नष्ट करने में उत्तमोत्तम है। इसके सेवन से शुक्रक्षय नहीं होता है तथा बल का ह्रास भी नहीं होता है। व्यक्ति प्रतिदिन १० मदोन्मत्त स्त्रियों के साथ आनन्दपूर्वक रमण करता है।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम एवं मिश्री मिला हुआ गोदुग्ध से। **गन्ध**—केशर-कस्तूरीवत्। **वर्ण**—पीत। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ।

विमर्श—आचार्य ने केशर से ही घृत को मूर्च्छित करने का आग्रह किया है जो उचित नहीं प्रतीत होता है।

६१. छागलादिघृत

छागमांसतुलां गृह्य दशमूल्याः पलं शतम्।
अश्वगन्धापलशतं वाट्यालकशतं तथा ॥२९७॥
घृताढकं पचेत्तोयैश्चतुर्भागावशेषितैः।
क्षीरं स्नेहसमं दद्याच्छतावर्या रसं तथा ॥२९८॥
ताम्रपात्रे दृढे चैव शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥२९९॥
जीवन्ती मधुकं द्राक्षा काकोल्यौ नीलमुत्पलम्।
मुस्तं सचन्दनं रास्ना पर्णिनीद्वयशारिवे ॥३००॥
मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शटी।
दार्वी प्रियङ्गु त्रिफला नतं तालीशपद्मकौ ॥३०१॥
एला पत्रं वरी नागं जातीकुसुमधान्यकम्।
मञ्जिष्ठा दाडिमं दारु रेणुकं सैलबालुकम् ॥३०२॥
विडङ्गं जीरकं चैव पेषयित्वा विनिक्षिपेत्।
वस्त्रपूते च शीते च शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥३०३॥
निधापयेत्स्निग्धभाण्डे मृन्मये भाजने शुभे।
अस्यौषधस्य सिद्धस्य शृणुवीर्यमतः परम् ॥३०४॥
देवदेवं नमस्कृत्य सम्पूज्य गणनायकम्।
पिबेत् पाणितलं तस्य व्याधिं वीक्ष्यानुपानतः ॥३०५॥
सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः।
उन्मादे पक्षघाते च आध्माने कोष्ठनिग्रहे ॥३०६॥
कर्णरोगे शिरोरोगे बाधिर्ये चापतन्त्रके।
भूतोन्मादे च गृध्रस्यां सोदरे चाक्षिपातजे ॥३०७॥
पार्श्वशूले च हृच्छूले बाह्यायामेऽर्दिते तथा।
वातकण्टकहृद्रोगमूत्रकृच्छ्रे सपङ्गुके ॥३०८॥
क्रोष्टुशीर्षे तथा खञ्जे कुब्जे चाध्मानमिन्मिने।
अपतानेऽन्तरायामे रक्तपित्ते तथोर्ध्वगे ॥३०९॥
आनाहेऽर्शोविकारेषु चातुर्थकज्वरेऽपि च।
हनुग्रहे तथा शोषे क्षीणे चैवावबाहुके ॥३१०॥
दण्डापतानके भग्ने दाहे चाक्षेपके तथा।
जीर्णज्वरे विषे कुष्ठे शेफःस्तम्भे मदात्यये ॥३११॥
आढ्यवातेऽग्निमान्द्ये च वातरक्तगदेषु च।
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे ॥३१२॥
हस्तकम्पे शिरःकम्पे जिह्वास्तम्भे ज्वरे भ्रमे।
क्षीणेन्द्रिये नष्टशुक्रे शुक्रनिःसरणे तथा ॥३१३॥
स्त्रीणां वातास्रपाते च पटले चाक्षिस्पन्दने।
एकाङ्गस्पन्दने चैव सर्वाङ्गस्पन्दने तथा ॥३१४॥
नगादिपतिते वाते स्त्रीणामप्राप्तिहेतुके।
आभिचारिकदोषे च मनःसन्ताप सम्भवे ॥३१५॥
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः।
शिरोमध्यगता ये च जङ्घापार्श्वादिसंस्थिताः ॥३१६॥
मातृग्रहाभिभूतश्च शिशुर्यश्च विशुष्यति।
प्रक्षीणबलमांसश्च न वर्त्मगमनक्षमः ॥३१७॥
घृतेनानेन सिद्ध्यन्ति वज्रमुक्तिरिवासुरान्।
निहन्ति सकलान् रोगान् घृतं परमदुर्लभम् ॥३१८॥
रसायनं वह्निबलप्रदं च
वपुःप्रकर्षं विदधाति रूपम्।
दत्त्वा बलं चेन्द्र समानतजो
दीर्घायुषं पुत्रशतं करोति ॥३१९॥

स्त्रीणां शतं गच्छति चातिरेकं
नयाति तृप्तिं सरसः समाङ्गः ।
अपुत्रिणीपुत्रशतं करोति
शतायुषं कामसमं बलिष्ठम् ॥३२०॥
महद् घृतं नामतु छागलाद्यं
विनिर्मितं वातनिषूदनं च ।
शिवं शुभं रोगभयापहं च
चकार हारीतमुनिर्विशिष्टः ॥३२१॥

१. गोघृत ३ किलो, २. बकरे का मांस ४६७० ग्राम, ३. दशमूलयवकुट ४६७० ग्राम, ४. अश्वगन्धायवकुट ४६७० ग्राम, ५. बलामूल यवकुट ४६७० ग्राम, ६. क्वाथार्थ जल ७४.७२० लीटर (अवशेष क्वाथ चतुर्थांश १८.६८० लीटर), ७. गोदुग्ध ३ लीटर तथा ८. शतावरीस्वरस ३ लीटर लें। **कल्क**—१. जीवन्ती, २. यष्टिमधु, ३. द्राक्षा, ४. काकोली, ५. क्षीरकाकोली, ६. नीलकमल, ७. मुस्ता, ८. रक्तचन्दन, ९. रास्ना, १०. माषपर्णी, ११. मुद्गपर्णी, १२. श्वेत अनन्तमूल, १३. कृष्ण अनन्तमूल, १४. मेदा, १५. महामेदा, १६. कुष्ठ, १७. जीवक, १८. ऋषभक, १९. कचूर, २०. दारुहरिद्रा, २१. प्रियङ्गुफूल, २२. आमला, २३. हरीतकी, २४. बिभीतक, २५. तगर, २६. तालीशपत्र, २७. पद्मकाष्ठ, २८. छोटी इलायची, २९. तेजपत्र, ३०. शतावरी, ३१. नागकेशर, ३२. चमेली के फूल, ३३. धनियाँ, ३४. मञ्जिष्ठा, ३५. दाडिमफलत्वक्, ३६. देवदारु, ३७. रेणुकाबीज, ३८. एलवालुक, ३९. विडङ्ग, ४०. जीरकश्वेत—प्रत्येक द्रव्य २३ ग्राम (१ शुक्ति) तथा ४१. चीनी ७५० ग्राम लेना चाहिए।

सर्वप्रथम घृत का मूर्च्छन करें। ततः जीवन्ती से श्वेतजीरा तक के सभी ४१ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करें तथा उसमें थोड़ा जल देकर कल्क बनायें। इसके बाद बकरे के मांस, दशमूल, अश्वगन्धा और बलामूल के छोटे-छोटे टुकड़े कर एक ताम्र पात्र में (जिसमें कलई किया हो) रखकर ७४.७२० लीटर स्वच्छ एवं मधुर जल देकर मन्दाग्नि पर क्वाथ करें। जब मांस के टुकड़े गल जायें और क्वाथ १८.६८० लीटर अवशेष रहे तो कपड़े से छान लें। अब मूर्च्छितघृत में उक्त चारों द्रव्यों के क्वाथ एवं कल्क मिलाकर पाक करें। जब जलीयांश शेष रहे तो गोदुग्ध डाल कर मन्दाग्नि से पाक करें। ततः शतावरीस्वरस देकर पाक करें। मांस एवं दूध के सम्यक् पाक हेतु ३ लीटर शुद्ध जल देकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर सिद्ध घृत की परीक्षोपरान्त घृत पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर नये वस्त्र से छान लें और शर्करा डालकर अच्छी तरह से मिलाकर काचपात्र में रखें। ततः शुभ दिन (सोमवार या गुरुवार) एवं शुभ नक्षत्र (पुष्य, अनुराधा, हस्त, श्रवण) में भगवान् देव देव महादेव तथा भगवान् श्रीगणेश का आवाहन कर सिद्ध घृत की पूजा करें और रोगानुसार १२ ग्राम (१ तोला) घृत को उष्ण एवं मिश्री मिला हुआ गोदुग्ध में मिलाकर प्रातः-सायं पीना चाहिए। अनुपान में मांसरस तथा अन्य अश्वगन्धादि क्वाथ के साथ भी इस घृत को पिलाया जा सकता है। इसके पीने से सभी प्रकार के वातरोग, विशेषकर अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात में सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से आध्मान, कोष्ठबद्धता, कर्णरोग, शिरोरोग, बाधिर्य, अपतन्त्रक, भूतोन्माद, गृध्रसी, उदररोग, अक्षिपातरोग, पार्श्वशूल, हृच्छूल, बाह्यायाम, अर्दित, वातकण्टक, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, पङ्गुता, क्रोष्टुशीर्ष, खञ्ज, कुब्ज, आध्मान, मूकमिन्मिन, अपतानक, अन्तरायाम, ऊर्ध्वग रक्तपित्त, आनाह, अर्शविकार, चातुर्थकज्वर, हनुग्रह, शोष, क्षीण, अवबाहुक, दण्डापतानक, अस्थिभग्न, दाह, आक्षेपक, जीर्णज्वर, विष, कुष्ठ, लिङ्गस्तम्भ, मदात्यय, आढ्यवात, अग्निमांद्य, वातरक्त, एकाङ्गरोग, सर्वाङ्गरोग, हस्तकम्प, शिरःकम्प, जिह्वास्तम्भ, ज्वर, भ्रम, क्षीणेन्द्रिय, नष्टशुक्रता, शुक्रस्राव, स्त्रियों के वातरक्तस्राव, नेत्रपटलगतरोग, नेत्रस्पन्दन, एकाङ्गस्पन्दन, सर्वाङ्गस्पन्दन (कम्प), स्त्रियों की अप्राप्ति, आभिचारिक (मन्त्र द्वारा मारण, वशीकरण या अन्य मन्त्र प्रयोग को आभिचारिक कहते हैं) दोष, मनःसन्तापज रोग, समस्त वातज, पित्तजरोग, शिर, जंघा एवं पार्श्वादि के रोग, मातृग्रहजन्य बाधा, बच्चों के शोष, क्षीणबल मांस के रोगी, मार्गगमन में असमर्थ व्यक्तियों के लिए यह घृत लाभदायक है। यह घृत सम्पूर्ण रोगों को ऐसे नष्ट करता है जैसे इन्द्र का वज्र असुरों को नष्ट करता है। यह घृत समस्त रोगों को नाश करता है अतः यह घृत अत्यन्त दुर्लभ है।

प्रशस्ति—यह घृत रसायन है, अग्निप्रद एवं बल्य है, शरीर को पुष्ट एवं स्वरूपवान् करता है, इन्द्र के जैसे बलवान् सौ पुत्रों को उत्पन्न करता है। सैकड़ों मदान्ध एवं कामान्ध स्त्रियों से सम्भोग करने पर शुक्रक्षरण नहीं होता है और तृप्ति भी नहीं होती है तथा और भी सम्भोग की इच्छा बनी रहती है। इस घृत के सेवन से शरीर का विकास समान रूप से होता है। पुत्र रहित व्यक्ति यदि इस घृत का सेवन करता है तो वह कामदेव जैसे सुन्दर एवं बलिष्ठ सौ पुत्रों को उत्पन्न करता है। इस घृत को 'बृहच्छागलादि घृत' कहते हैं। यह वातनाशक एवं कल्याण तथा शुभकारक है। रोग के भय को दूर करने के लिए हारीत मुनि ने इसका निर्माण किया था।

मात्रा—१२ ग्राम। **अनुपान**—गरम गोदुग्ध, मांसरस या अश्वगन्धदिक्वाथ से। **गन्ध**—घृतगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वातनाशनार्थ एवं वाजीकरणार्थ।

६२. पल्लवसारतैल

त्रिफलाया रसप्रस्थं भृङ्गराजरसं तथा।
प्रस्थैकं तिलतैलस्य पचेन्मृद्वग्निना भिषक् ॥३२२॥
शतावरीरसं क्षीरं कूष्माण्डस्य रसं पृथक्।
लाक्षारनालसिद्धाम्बु प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥३२३॥
कल्कं कणाशिवा द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम्।
मधुकं क्षीरकाकोली प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥३२४॥
कर्पूरञ्च नखं गन्धमण्डजं विरजासमम्।
जातीकोषं लवङ्गञ्च प्रतिकर्षद्वयं पचेत् ॥३२५॥
महावातहरं तैलं महापित्तविनाशनम्।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु अपस्मारेऽनिलामये ॥३२६॥
विद्रधिव्रणशोथघ्नं मेहदोषहरं परम्।
शूलरोगप्रशमनमानाहकृच्छ्रनाशनम् ॥३२७॥
गुल्मघ्नं हृदि शूलघ्नं मूत्राघातविनाशनम्।
प्रशस्तं ग्रहणीरोगे प्रमेहज्वरनाशनम् ॥
नाम्ना पल्लवसाराख्यं तैल विद्याद्भिषग्वरः ॥३२८॥

१. तिलतैल ७५० मि.ली., २. त्रिफलाक्वाथ ७५० मि.ली., ३. भृङ्गराजस्वरस, ७५० मि.ली., ४. शतावरीस्वरस ७५० मि.ली., ५. गोदुग्ध ७५० मि.ली., ६. कूष्माण्डस्वरस ७५० मि.ली., ७. लाक्षारस ७५० मि.ली. ८. काञ्जी ७५० मि.ली.। **कल्क**—१. पिप्पली, २. हरीतकी, ३. द्राक्षा, ४. त्रिफला, ५. नीलकमल, ६. यष्टिमधु, ७. क्षीरकाकोली—प्रत्येक द्रव्य ४६-४६ ग्राम लें। **सुगन्ध पाकार्थ**—१. कर्पूर, २. नखी, ३. कस्तूरी, ४. गन्धाविरोजा, ५. जावित्री, ६. लवङ्ग—प्रत्येक द्रव्य २३-२३ ग्राम लें।

सर्वप्रथम तिलतैल का मूर्च्छन करें। ततः पिप्पली से क्षीरकाकोली तक के सभी द्रव्यों का सूक्ष्मचूर्ण करें और उसमें थोड़ा जल देकर कल्क बना लें। इस कल्क को मूर्च्छिततैल में मिलायें, ततः गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। दूध सूखने पर त्रिफलाक्वाथ मिलाकर पाक करें। इस तरह एक द्रव्य सूखने पर क्रमशः भृङ्गराजस्वरस, शतावरीस्वरस, कूष्माण्डस्वरस, लाक्षारस तथा काञ्जी देकर शनैः-शनैः पाक करें। तैल सिद्ध होने पर गन्ध द्रव्यों में से कर्पूर एवं कस्तूरी छोड़कर सभी द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर कल्क बनाकर पकते तैल में डालकर तैल को छान लें। तैल के शीतल होने पर उसमें कस्तूरी को खरल में मर्दन कर मिलायें तथा कर्पूर भी उक्त तैल में मिलाकर सुगन्धित करें। ततः काचपात्र में संग्रहीत करें। यह तैल महावातनाशक तथा महापित्तनाशक है। सभी नेत्ररोगों के लिए हितकर है। अपस्मार नाशक है, विद्रधि, व्रणशोथ, प्रमेह दोषहर, शूल, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, हृच्छूल, मूत्राघात, संग्रहणी तथा प्रमेह ज्वर नाशक है।

मात्रा—बाह्य प्रयोग। **गन्ध**—कस्तूरी-कर्पूरगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **रस**—तिक्तरस। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ।

६३. चन्दनादितैल (महत्)

द्रव्याणि चन्दनादीनि चन्दनं रक्तचन्दनम्।
पत्तङ्गमथ कालीयागुरु कृष्णागुरूणि च ॥३२९॥
देवद्रुमः ससरलः पद्मकं तूणिकोऽपि च।
कर्पूरो मृगनाभिश्च लताकस्तूरिकाऽपि च ॥३३०॥
सिह्लकः कुङ्कुमं नव्यं जातीफलकमत्र च।
जातीपत्रं लवङ्गञ्च सूक्ष्मैला महती च सा ॥३३१॥
कक्कोलफलकं त्वक् च पत्रकं नागरकेशरम्।
बालकञ्च तथोशीरं मांसी दारुसिताऽपि वा ॥३३२॥
मुरा कर्पूरकश्चापि शैलेयं भद्रमुस्तकम्।
रेणुका च प्रियङ्गुश्च श्रीवासो गुग्गुलुस्तथा ॥३३३॥
लाक्षा नखञ्च रालश्च धातकीकुसुमं तथा।
ग्रन्थिपर्णञ्च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥३३४॥
एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः पचेत्।
तैलं प्रस्थमितं सम्यगेतत्पात्रे शुभे क्षिपेत् ॥३३५॥
अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतिसमोऽपि यः।
शुभ्रो भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तदुर्लभः ॥३३६॥
बन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते।
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥३३७॥
चन्दनादि महातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम्।
दाहप्रस्वेददौर्गन्ध्यकुष्ठं कण्डूं विनाशयेत् ॥३३८॥

मूर्च्छिततिलतैल ७५० मि.ली.।

१. श्वेतचन्दन, २. रक्तचन्दन, ३. पतङ्गकाष्ठ, ४. कालीयककाष्ठ, ५. अगरुकाष्ठ, ६. कृष्णअगरु, ७. देवदारु, ८. सरलवृक्षकाष्ठ, ९. पद्मकाष्ठ, १०. तूणीककाष्ठ, ११. कर्पूर, १२. कस्तूरी, १३. लताकस्तूरीबीज, १४. सिल्हक गन्धकाष्ठ, १५. केशर, १६. नव्य (रक्तपुनर्नवा), १७. जायफल, १८. जावित्री, १९. लवङ्ग, २०. छोटी इलायची, २१. बड़ी इलायची, २२. शीतलचीनी (कंकोल), २३. दालचीनी, २४. तेजपत्र, २५. नागकेशर, २६. सुगन्धबाला, २७. उशीर, २८. जटामांसी, २९. दालचीनी, ३०. मुरामांसी, ३१. कर्पूर, ३२. शैलेय (छरीला), ३३. नागरमोथा, ३४. रेणुकाबीज, ३५. प्रियङ्गुबीज, ३६. श्रीवास (सरलनिर्यास), ३७. गुग्गुलु, ३८. लाक्षा, ३९. नखी, ४०. राल, ४१. धातकीपुष्प, ४२. ग्रन्थिपर्णी, ४३. मंजिष्ठा, ४४. तगर, ४५. सिक्थ—ये सभी ४५ द्रव्य प्रत्येक द्रव्य ३-३ ग्राम लें।

कर्पूर, कस्तूरी एवं केशर—ये ३ द्रव्य छोड़कर शेष सभी ४२ द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण कर लें। कर्पूर एवं दालचीनी दो बार

पढ़ा गया है; अतः ४० द्रव्य ही हैं। इनमें थोड़ा जल मिलाकर कल्क बना लें। अब मूर्च्छिततैल में इस कल्क को तथा चतुर्गुण जल ३ लीटर (१ आढक) मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करें। जलीयांश सूखने पर स्नेहपाक परीक्षा करने के बाद तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से शीघ्र छान लें और शीतल होने पर तैल में केशर, कस्तूरी एवं कर्पूर पृथक्-पृथक् पीसकर मिला दें। इससे तैल सुवासित हो जायेगा और गुणों में वृद्धि हो जायेगी। इसे काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का केवल बाह्य प्रयोग करना चाहिए। इसके अभ्यङ्ग से ८० वर्ष का वृद्ध व्यक्ति भी बल एवं वीर्य से सम्पन्न हो जाता है। स्त्रियों के लिए यह तैल अत्यन्त दुर्लभ है। इससे बन्ध्या स्त्रियाँ भी गर्भवती हो जाती हैं तथा नपुंसक पुरुष भी पूर्ण पुरुष बन जाता है। पुत्र रहित पुरुष भी पुत्रवान् हो जाता है और १०० वर्ष तक जीवित रहता है। इस तैल का नाम 'महाचन्दनादितैल' है। इसके प्रयोग से रक्तपित्त, ज्वर, क्षय, दाह, प्रस्वेद, शरीरदौर्गन्ध्य, कुष्ठ एवं कण्डूरोग नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—बाह्यप्रयोग। **गन्ध**—केशर-कस्तूरी-कर्पूर गन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **रस**—तिक्त। **उपयोग**—वाजीकरण।

६४. भल्लातकाद्यतैल (च.द.)

भल्लातकबृहतीफलदाडिमफलवल्कलसाधितं कुरुते।
लिङ्गं मर्दनविधिना कटुतैलं वाजिलिङ्गाभम्॥३३९॥

१. मूर्च्छितसरसों तैल ६०० मि.ली. तथा २. शुद्ध भिलावा, ३. बृहतीफल, ४. दाडिमफलत्वक्—तीनों द्रव्य ५०-५० ग्राम लें। इन्हें चूर्ण-चूर्ण कर जल के साथ सिल पर पीसकर कल्क बनायें। मूर्च्छिततैल में इस कल्क को मिलायें तथा तैल से ४ गुना (२४०० मि.ली.) जल डालकर मन्दाग्नि से पाक करें। जलीयांश सूख जाने पर परीक्षोपरान्त तैलपात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर वस्त्र से तैल को छानकर शीतल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल को लिङ्ग (शिश्न) पर मालिश करने से लिङ्ग घोड़े के लिङ्ग जैसा मोटा हो जाता है। इसे कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। हानिकर है।

६५. अश्वगन्धातैल (च.द.)

अश्वगन्धावरीकुष्ठं मांसी सिंहीफलान्वितम्।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत्॥
स्तनलिङ्गकर्णपालीवर्द्धनं म्रक्षणादिदम्॥३४०॥

१. मूर्च्छिततिलतैल ७५० मि.ली., २. गोदुग्ध ३ लीटर तथा ३. अश्वगन्धाचूर्ण, ४. शतावरीचूर्ण, ५. कुष्ठचूर्ण, ६. जटामांसीचूर्ण, ७. बृहतीफलचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण ३८-३८ ग्राम लें। अश्वगन्धाचूर्ण से बृहतीफलचूर्ण तक के सभी पाँचों द्रव्यों में थोड़ा जल मिलाकर कल्क बना लें। मूर्च्छित तैल में कल्क एवं गोदुग्ध मिलाकर मन्दाग्नि से पाक करें। जब दूध सूखने लगे तो दूध के सम्यक् पाकार्थ ३ लीटर जल मिलाकर पुनः पाक करें। जलीयांश सूखने पर परीक्षोपरान्त तैल पात्र को चूल्हे से नीचे उतारकर कपड़ा से छान लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इस तैल का स्तनों, लिङ्ग एवं कर्णपालियों पर मालिश करने से ये तीनों बढ़ते हैं अर्थात् मोटे हो जाते हैं।

६६. दशमूलारिष्ट (शार्ङ्गधर)

(पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमन्थकोऽरलुः।
पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते॥३४१॥)
दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक्।
पञ्चविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा॥३४२॥
कुर्याद्विंशत्पलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत्।
पलैः षोडशभिर्धात्रीरविसङ्ख्यैर्दुरालभा॥३४३॥
खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक्पलैः।
अष्टभिर्गुणितैः कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारु च॥३४४॥
विडङ्गं मधुकं भार्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा।
चव्यं मांसी प्रियङ्गुश्च सारिवा कृष्णजीरकम्॥३४५॥
त्रिवृता रेणुकं रास्ना पिप्पली क्रमुकः शटी।
हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम्॥३४६॥
मुस्तमिन्द्रयवः शुण्ठी जीवकर्षभकौ तथा।
मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके॥३४७॥
कुर्यात्पृथग् द्विपलिकान् पचेदष्टगुणे जले।
चतुर्थांशं शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे सन्निधापयेत्॥३४८॥
ततः षष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे।
त्रिपादशेषं शीतञ्च पूर्वक्वाथे शृतं क्षिपेत्॥३४९॥
द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं दद्याद् गुडचतुःशतम्।
त्रिंशत्पलानि धातक्याः कङ्कोलं जलचन्दनम्॥३५०॥
जातीफलं लवङ्गञ्च त्वगेलापत्रकेशरम्।
पिप्पली चेति सञ्चूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक्॥३५१॥
शाणमात्राञ्च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत्।
भूमौ निखनयेद् भाण्डं ततो जातरसं पिबेत्॥३५२॥
कतकस्य पलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत्।
ग्रहणीमरुचिं श्वासं कासं गुल्मं भगन्दरम्॥३५३॥
वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पाण्डुरोगञ्च कामलाम्।
कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मन्दाग्निमुदराणि च॥३५४॥
शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत्।
कृशानां पुष्टिजननो बन्ध्यानां गर्भदः परः॥
अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजः शुक्रबलप्रदः॥३५५॥

१. शालपर्णी, २. पृश्निपर्णी, ३. कण्टकारी, ४. बृहती, ५. गोक्षुर, ६. बिल्वमूलत्वक्, ७. अग्निमन्थ, ८. सोनापाठामूल, ९. पाटलामूल, १०. गम्भारीमूल—ये प्रत्येक

द्रव्य २४० ग्राम (पाँच पल) लें। ये दशमूल कहे जाते हैं। ११. चित्रकमूल ११७० ग्राम, १२. पुष्करमूल ११७० ग्राम (प्रत्येक २५ पल); १३. लोध्रत्वक् ९४० ग्राम, १४. गुडूची ९४० ग्राम (प्रत्येक २० पल); १५. आमला ७५० ग्राम, १६. जवासा ५६५ ग्राम लें; १८. खदिरकाष्ठ, १८. विजयसार (असन), १९. हरीतकी—तीनों द्रव्य ८-८ पल (प्रत्येक ३७५ ग्राम); २०. कुष्ठ, २१. मञ्जिष्ठा, २२. देवदारु, २३. विडङ्ग, २४. यष्टिमधु, २५. भारङ्गी, २६. कपित्थत्वक्, २७. बिभीतकफल, २८. पुनर्नवामूल, २९. चव्य, ३०. जटामांसी, ३१. प्रियङ्गुफूल, ३२. अनन्तमूल, ३३. कृष्णजीरा, ३४. त्रिवृत, ३५. रेणुकाबीज, ३६. रास्ना, ३७. पिप्पली, ३८. सुपारी, ३९. शटी (कचूर), ४०. हरिद्रा, ४१. सौंफ, ४२. पद्मकाष्ठ, ४३. नागकेशर, ४४. मुस्ता. ४५. इन्द्रयव, ४६. कर्कटशृङ्गी, ४७. जीवक, ४८. ऋषभक, ४९. मेदा, ५०. महामेदा, ५१. काकोली, ५२. क्षीरकाकोली, ५३. ऋद्धि, ५४. वृद्धि—ये प्रत्येक द्रव्य २-२ पल (९३ ग्राम प्रत्येक) लें। [दशमूल १० × २४० = २४०० ग्राम। २५ पल = ११७० ग्राम × २ = २३४० ग्राम। २० पल = ९४० × २ = १८८० ग्राम। १६ पल = ७५० ग्राम, १२ पल = ५६५ ग्राम, ८ पल = ३७५ × ३ = ११२५ ग्राम, २ पल = ९३ × ३५ = ३२५५ ग्राम—कुल द्रव्यमान १२.३१५ किलो।] जल कुल द्रव्य का आठ गुना ९८.५०० लीटर, अवशेष क्वाथ २४६२५ मि.ली., मधु ३२ पल = १५०० ग्राम, गुड़ ४ तुला = १८.६८० किलो। प्रक्षेप—१. धातकीपुष्प ३० पल = १.४०७ ग्राम, २. कंकोल (शीतलचीनी), ३. सुगन्धबाला, ४. श्वेत चन्दन, ५. जायफल, ६. लवङ्ग, ७. दालचीनी, ८. छोटी इलायची, ९. तेजपत्र, १०. नागकेशर, ११. पिप्पली—प्रत्येक द्रव्य ९३-९३ ग्राम तथा १२. कस्तूरी ३ ग्राम लें।

उपर्युक्त दशमूल से अष्टवर्ग तक के सभी ५४ द्रव्यों को लिखित मात्रा में लेकर यवकुट कर ९८५०० मि.ली. (१०० लीटर) जल में मन्दाग्नि पर क्वाथ करें, चौथाई २५ लीटर शेष रहने पर छान लें। ततः २.८१३ किलो द्राक्षा लेकर ४ गुना (११.२७० लीटर) जल में क्वाथ करें, तृतीयांश (३.७६० लीटर) शेष रहने पर छान लें। एक बड़े मिट्टी के भाण्ड को पहले से मधुर जल से भर दें। दूसरे दिन भाण्ड का जल गिरा दें तथा सूखे कपड़े से भाण्ड का शेष जल पोंछकर उसे निर्वात स्थान में रखें। भाण्ड की तली में पुआल या भूसी या कोई अन्य द्रव्य रखकर भाण्ड को स्थिर करें। अब उक्त भाण्ड में २८ लीटर दशमूलादिक्वाथ तथा द्राक्षा का क्वाथ रखें। ततः उस भाण्ड के द्रव में गुड़ को अच्छी तरह से मिला दें। गुड़ अच्छी तरह घुल जाने पर धूप में सुखाया हुआ धातकीपुष्प डाल दें। ततः कंकोल से पिप्पली तक के सभी १० द्रव्यों को यवकुट कर उक्त भाण्ड में अच्छी तरह से मिलाकर भाण्ड का मुख बड़े शराव से ढककर कपड़मिट्टी लगाकर बन्द कर दें और २५ से ३० दिनों तक छोड़ दें। जब अरिष्ट पूर्ण रूप से तैयार हो जायगा तब पूरा कमरा मद्यगन्धी हो जाता है। ऐसे भाण्ड का मुख खोलकर दियासलाई जलाकर परीक्षा कर लें! यदि तिल्ली जलती रही तो समझें कि आसव-अरिष्ट तैयार हो गया है क्योंकि उस भाण्ड में आक्सीजन भर जाता है अतः तिल्ली जलती रहती है। भाण्ड की तली में बैठा गुड़ को अच्छी तरह घोलकर कपड़े से छानकर उक्त भाण्ड को साफ कर कपड़ा से सुखा लें और छना हुआ 'दशमूलारिष्ट' को पुनः डालकर १५ दिनों तक छोड़ दें। उस भाण्ड के तल में गाद बैठ जायेगी जिसे निथार लें और उसमें कस्तूरी मिलाकर बोतलों में पैक कर संग्रहीत कर लें। इसे 'दशमूलारिष्ट' कहते हैं। (अथवा निर्मलीबीज डालकर दशमूलारिष्ट को स्वच्छ कर सकते हैं)। इसे १ से २ तोले (१२ से २५ मि.ली.) तक बराबर जल मिलाकर भोजनोपरान्त २ बार पिलाना चाहिए। यह संग्रहणी, अरुचि, शूल, श्वास, कास, भगन्दर, वातव्याधि, क्षय, वमन, पाण्डुरोग, कामला, कुष्ठ, अर्श, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, मूत्रशर्करा, मूत्राश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा धातुक्षीणता रोग नाशक है। यह कृशों को बृंहण करता है, बन्ध्या स्त्रियों को पुत्र प्रसव करने की शक्ति देता है। यह 'दशमूलारिष्ट' तेज, शुक्र और बल प्रदान करता है।

मात्रा—१२ से २५ मि.ली.। **अनुपान**—बराबर जल मिलाकर। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—रक्ताभ। **रस**—मधुर एवं तीक्ष्ण। **उपयोग**—शुक्र, तेज, बलवर्धक एवं वाजीकरण है।

विमर्श—१. आचार्य ने इस मिट्टी के भाण्ड को जमीन में गड्ढा खोद कर रखने का निर्देश दिया है। किन्तु यह विधि अच्छी नहीं है। क्योंकि यदि मिट्टी का भाण्ड फूट गया तो सारा अरिष्ट जमीन में चला जाता है और व्यक्ति को आभास नहीं होता है। २. आचार्य ने कस्तूरी को सन्धान करते समय भाण्ड में डालने को कहा है किन्तु मेरे विचार से छानने के बाद कस्तूरी मिलाना अधिक उपयुक्त है।

६७. मृतसञ्जीवनी सुरा

नवं गुडं च सङ्गृह्य शतमेकपलं तथा।
वावरीत्वचमादाय बदरीत्वचमेव च ॥३५६॥
प्रस्थं प्रस्थं प्रदातव्यं पूगं देयं यथोचितम्।
लोधं च कुडवं दत्त्वा आर्द्रकं च पलद्वयम् ॥३५७॥
तोयमष्टगुणं दत्त्वा गुडं सङ्गोलयेत्सुधीः।
प्रथमे चार्द्रकं दद्याद् द्वितीये बावरीत्वचम् ॥३५८॥
तृतीये बदरीं दत्त्वा घोलयित्वा भिषग्वरः।

मुखे शरावकं दत्त्वा यत्नात्कृत्वा च बन्धनम् ॥३५९॥
मुखसम्बन्धनं कृत्वा स्थापयेद्दिनविंशतिम् ।
मृन्मये मोचिकायन्त्रे मयूराख्येऽपि यन्त्रके ॥३६०॥
यथाविधिप्रकारेण मन्दमन्देन वह्निना ।
चुल्लीमध्ये विधातव्यं मृत्तिकादृढभाजने ॥३६१॥
तदौषधं च तन्मध्ये समुद्धृत्य विनिक्षिपेत् ।
नलस्य युगलं दत्त्वा कुम्भौ च गजकुम्भवत् ॥३६२॥
कुम्भमध्ये निधातव्यं पूगं च सैलबालुकम् ।
देवदारु लवङ्गं च पद्मकोशीरचन्दनम् ॥३६३॥
शतपुष्पा यमानी च मरिचं जीरकद्वयम् ।
शटी मांसी त्वगेला च जातीफलं समुस्तकम् ॥३६४॥
ग्रन्थिपर्णी तथा शुण्ठी मिशी मेथी च चन्दनम् ।
एषां चार्द्धपलान् भागान् कुट्टयित्वा विनिःक्षिपेत् ॥३६५॥
यथाविधिप्रकारेण चानलं दापयेत् सुधीः ।
बुद्धिमान् स्त्रावणं कृत्वा उद्धरेद्विधिवत्सुराम् ॥३६६॥
एतन्मद्यं पिबेन्नित्यं यथाधातुवयःक्रमम् ।
आरोग्यजननं देहदार्ढ्यकृद्बलवर्द्धनम् ॥३६७॥
मेधाऽग्निस्मृतिकृद्वीर्यशुक्रकृद्वातनाशनम् ।
बलपुष्टिकरं चैव कामसन्दीपनं परम् ॥३६८॥
दश स्त्रियो रमेन्नित्यमानन्द उपजायते ।
रणे तेजोमयः सद्यो यथा भीमपराक्रमः ॥३६९॥
नातः परतरः किञ्चिद् रणोत्साहप्रदं महत् ।
देवासुरैर्युद्धकाले शुक्रेण परिनिर्मितम् ॥३७०॥

१. नया गुड़ ४.६७० किलो, २. बब्बूल त्वक् ७५० ग्राम, ३. बदरी त्वक् ७५० ग्राम, ४. सुपारी ७५० ग्राम, ५. लोध्रत्वक् १९० ग्राम, ६. आर्द्रक ९३ ग्राम—इन सभी द्रव्यों का आठ गुना (५८ लीटर) जल लें। एक मिट्टी के बड़े भाण्ड में ५८ लीटर जल डालें और पहले उस जल में गुड़ मिलाकर अच्छी तरह घोल दें। ततः आर्द्रक का कल्क पहले उसे भाण्ड में मिलायें। तदनन्तर बब्बूल त्वक् का यवकुट चूर्ण मिलायें। इसके बाद बदरी त्वक् का यवकुट चूर्ण मिलायें। पुनः सुपारी (पूग) का यवकुट चूर्ण तथा लोध्र त्वक् यवकुट मिलाकर हाथ से अच्छी तरह घोल दें। ततः भाण्ड का मुख शराव से ढककर कपड़मिट्टी कर निर्वात स्थान में रख दें। २० दिनों के बाद २१वें दिन भाण्ड का मुख खोलकर मोचिका यन्त्र या मयूर यन्त्र में रखकर शनैः-शनैः मृदु अग्नि पर गरम करें। फिर उस यन्त्र में दोनों ओर नली लगाकर सुपारी, एलवालुक, देवदारु, लवङ्ग, नीलकमल पुष्प, उशीर, श्वेत चन्दन, सौंफ, यमानी, मरिच, जीरा, स्याहजीरा, शटी (कचूर), जटामांसी, दालचीनी, छोटी इलायची, जायफल, मुस्ता, ग्रन्थिपर्णी, शुण्ठी, सौंफ, मेथी, रक्तचन्दन—सभी द्रव्य २३-२३ ग्राम लें। इन्हें चूर्ण कर उक्त मोचिका यन्त्र में डालकर सुरा को स्रवित कर लें। इसे पुनः काच की बोतलों में भर लें।

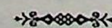
मद्य सन्धान की परीक्षा के लिए एक पतली लकड़ी या नारियल की झाड़ू की सीक को मद्य में डालकर प्रज्वलित करने से अल्कोहल जैसा जलता रहेगा। यदि अग्नि बुझ जाती है तो समझें कि अब जल मिश्रित स्राव आ रहा है। इस मद्य को दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने देवासुर संग्राम में बनाया था। इससे मृत दैत्य जीवित हो जाते थे, अतः इसका नाम 'मृतसञ्जीवनी सुरा' पड़ा है। इस मद्य को शरीर के रस-रक्तादि सभी धातुओं का तथा उम्र का विचार कर यथाशक्ति प्रतिदिन पीना चीहिए। यह आरोग्यप्रद है, शरीर को दृढ़ करता है तथा बल को बढ़ाता है। मेधा शक्ति, अग्नि (पाचकाग्नि एवं धात्वग्नि) वर्धक, स्मृतिप्रद है. शुक्रवर्धक है, वातनाशक है, शरीरपुष्टिकर है, कामशक्ति को बढ़ाता है। प्रतिदिन १० स्त्रियों के साथ सम्भोग कर आनन्द एवं सुख प्राप्त करता है। युद्ध में तेज युक्त भीमसेन जैसा पराक्रम उत्पन्न करता है। इससे बढ़कर दूसरी औषधि युद्ध में पराक्रम तथा उत्साह उत्पन्न करने वाली नहीं है।

मात्रा—२ पल अथवा अग्न्यानुसार। **अनुपान**—जल मिलाकर। **गन्ध**—मद्यगन्धी। **वर्ण**—तीक्ष्ण। **रस**—तिक्त। **उपयोग**—बल, तेज, पुष्टि प्रद है। **उपयोग**—बल, तेज, पुष्टिप्रद एवं वाजीकरण तथा युद्ध में पराक्रमप्रद।

६८. मोफरवा

जातीपल्लवं नागकेशरकणा कक्कोलमज्जाफलं
श्यामा कट्फलसारिवागुरु वचा मुस्तं शटी मस्तकी ।
मांसी शाल्मलि धातकी कटुलता गोक्षुरमेथीवरा
बीजं वानरि कोकिलाक्षि च गुहा धूर्तः परं पङ्कजम् ॥३७१॥
कुष्ठं चोत्पलकेशरञ्च मधुकं श्रीखण्डजातीफलं
चूर्णं कन्दविदारिमूषलियुता रम्भा प्रियङ्गोः फलम् ।
जीवद्वन्द्वसविश्वमूषणवरा एलात्वचो धान्यकं
चीनीचोपसमुद्रशोषशिखरं चाकारकरभं कचम ॥३७२॥
चेन्दुः कुङ्कुमनाभिजं सगगनं चूर्णं समं कारयेत्
स्वर्णं तारभुजङ्गवङ्गमयसा वज्रं तथा ताम्रकम् ।
मुक्ताशाम्भवतालकानि विधिना शुद्धं मृतं योजयेत् ॥३७३॥
तूर्यांशं विजयादलस्य विमलं चूर्णं ततो दापयेत् ॥
तेषामर्धांशयुक्ता विमलतरसिता क्षौद्रमेवं सितांशं
तोयं स्वल्पं प्रदेयं मृदुतरदहनैर्लेहसिद्धिर्विधेया ।
शीते क्षिप्त्वा तु चूर्णं घृतपरिलुलितं घट्टयेत्तच्च दर्व्या-
म्लेच्छेनोक्तः सुलेहो मुफर इति मतः सेव्यतां सर्वकालं
काम्यं वामाप्रमोदं सकलगदहरं राजयोग्यं प्रदिष्टम् ॥३७४॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वाजीकरणाधिकारः ।

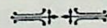


१. जावित्रीचूर्ण, २. नागकेशरचूर्ण, ३. पीपरचूर्ण, ४. शीतलचीनीचूर्ण, ५. माजुफलचूर्ण, ६. अनन्तमूलचूर्ण, ७. कट्फलचूर्ण, ८. श्वेतअनन्तमूलचूर्ण, ९. अगरुचूर्ण, १०. वचचूर्ण, ११. मुस्ताचूर्ण १२. कचूरचूर्ण, १३. रुमीमस्तकीचूर्ण, १४. जटामांसीचूर्ण, १५. मोचरसचूर्ण, १६. धातकीपुष्पचूर्ण, १७. कटुकीचूर्ण, १८. गोक्षुरचूर्ण, १९. मेथीचूर्ण, २०. त्रिफलाचूर्ण, २१. केवाँचबीजचूर्ण, २२. तालमखानाचूर्ण, २३. पृश्निपर्णीचूर्ण, २४. धत्तूरबीजचूर्ण, २५. नीलकमलपुष्पचूर्ण, २६. कूठचूर्ण, २७. कमलकेशरचूर्ण, २८. यष्टिमधुचूर्ण, २९. श्वेतचन्दनचूर्ण, ३०. जायफलचूर्ण, ३१. विदारीकन्दचूर्ण, ३२. श्वेतमुशलीचूर्ण, ३३. कदलीकन्दचूर्ण, ३४. प्रियङ्गुफलचूर्ण, ३५. जीवकचूर्ण, ३६. ऋषभकचूर्ण, ३७. शुण्ठीचूर्ण, ३८. मरिचचूर्ण, ३९. त्रिफलाचूर्ण, ४०. छोटीइलायचीचूर्ण, ४१. दालचीनीचूर्ण, ४२. धनियाँचूर्ण, ४३. चोपचीनीचूर्ण, ४४. समुद्रशोषचूर्ण, ४५. अकरकराचूर्ण, ४६. सुगन्धबालाचूर्ण, ४७. कपूर, ४८. केशर, ४९. कस्तूरी, ५०. अभ्रकभस्म, ५१. सुवर्णभस्म, ५२. रजतभस्म, ५३. नागभस्म, ५४. वङ्गभस्म, ५५. लौहभस्म, ५६. हीरकभस्म, ५७. ताम्रभस्म, ५८. मुक्ताभस्म, ५९. रससिन्दूर, ६०. शुद्ध हरताल—ये सभी द्रव्य १-१ भाग लें। शुद्ध भाँगचूर्ण सभी का चौथाई अर्थात् १५ भाग, मिश्री ३६ भाग (अर्थात् भाँग सहित सभी द्रव्यों का आधा) लें। मधु ३७ भाग (अर्थात् मिश्री के बराबर) तथा घृत १८ भाग लें।

कर्पूर, केशर, कस्तूरी, भीमसेनी कर्पूर और भस्मों को छोड़कर सभी काष्ठौषधिचूर्णों को घृत के साथ हल्का भर्जन करें। ततः मिश्री की चासनी (लेह की चासनी) करके लेहपात्र को चूल्हे से नीचे उतार कर सभी काष्ठौषधियों के भर्जित द्रव्यचूर्णों को चासनी में अच्छी तरह से मिलायें। ततः सभी भस्मों को आपस में मिलाकर उक्त अवलेह में मिलायें। शीतल होने पर उसमें मधु तथा दोनों कर्पूर भी मिलायें। ततः गुलाब जल में केशरचूर्ण का मर्दन कर मिलायें। ततः कस्तूरी को भी गुलाब जल में मर्दन कर अच्छी तरह से मिलाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। यह 'मुफ़र' नामक अवलेह मुसलमान हकीमों द्वारा बनाया है। इस 'मुफ़रलेह' को १ तोला (१२ ग्राम) तक की मात्रा में सेवन करने से स्त्रियों के साथ सम्भोग शक्ति बढ़ती है अर्थात् यह उत्तम वाजीकरण योग है। यह अवलेह अनुपान भेद से सभी रोगों को नष्ट करता है। स्त्रियों को कामसुख प्रदान करता है। यह अवलेह राजाओं के योग्य है।

मात्रा—६ से १२ ग्राम। **अनुपान**—गोदुग्ध। **गन्ध**—केशर, कस्तूरीगन्धी। **वर्ण**—पीताभ। **रस**—मधुर। **उपयोग**—वाजीकरण प्रधान है।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य वाजीकरणाधिकारस्य जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अथ वीर्यस्तम्भनाधिकारः (७५)

१. सूरणकन्दादि चर्वण (च.द.)

शूरणं तुलसीमूलं ताम्बूलैः सह भक्षयेत्।
न मुञ्चति नरो वीर्यमेककेन न संशयः ॥१॥

सूरणकन्द का साफ कर छिला हुआ शुष्क चूर्ण १ ग्राम एवं तुलसीमूलचूर्ण १ ग्राम दोनों को मिलाकर ताम्बूलपत्र में रखकर मैथुनकाल में मुख में रखने से बहुत देर में शुक्र क्षरण होता है।

२. कृष्णमार्जार अस्थिधारण

कृष्णमार्जारवामाङ्घ्रिसम्भवास्थि रतोद्यमे।
दक्षिणे ध्रियते येन तस्य वीर्यस्य न च्युतिः ॥२॥

काली बिल्ली के बायें पैर की हड्डी को पुरुष द्वारा दक्षिण हाथ एवं कटि में धागे से बाँधकर सम्भोग करने से वीर्यक्षरण नहीं होता है।

३. चटकाण्ड पादतल लेप (रसमञ्जरी)

चटकाण्डन्तु सङ्गृह्य नवनीतेन पेषयेत्।
तेन प्रलेपयेत् पादौ शुक्रस्तम्भः प्रजायते ॥
यावन्न स्पृशते भूमिं तावद्वीर्यं न मुञ्चति ॥३॥

चटकाण्ड (चटक = गौरैया) पक्षी के अण्डे को तोड़कर द्रवांश पृथक् करें तथा सम मात्रा में नवनीत (मक्खन) में मिलाकर पुरुष अपने दोनों पैरों के तलों में लेप कर पलङ्ग पर स्त्री के साथ मैथुन करे। जब तक पैर से जमीन का स्पर्श न होगा तब तक शुक्रक्षरण नहीं होता है।

४. नीलोत्पलादि नाभिलेप (च.द.)

नीलोत्पलसितपङ्कजकेशरमधुशर्करावलिप्तेन।
सुरते सुचिरं रमते दृढलिङ्गो नाभिविवरेण ॥४॥

१. नीलकमलकेशर, २. श्वेतकमलकेशर, ३. मधु एवं ४. शर्करा—समभाग लेकर इन्हें एक खरल में मर्दन कर स्निग्ध पीसें। इस श्लक्ष्ण पिष्टि का नाभि में तथा उसके आस-पास लेप कर सम्भोग करने से पुरुष का लिङ्ग सम्भोग काल में बहुत देर तक दृढ़ रहता है और शुक्रक्षरण नहीं होता है, जिससे पुरुष बहुत देर तक मैथुन करता है।

५. कुसुम्भतैलादि पादतल लेप (च.द.)

सिद्धं कुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते।
चरणाभ्यङ्गेन रते बीजस्तम्भाद् दृढं लिङ्गम् ॥५॥

कुसुम्भतैल में चतुर्थांश भूमिलता (केचुआ) के कल्क और तैल से चतुर्गुण जल मिलाकर पाक करें। जलीयांश जल जाने पर परीक्षोपरान्त तैल को वस्त्रपूत करें। शीलल होने पर काचपात्र में संग्रहीत करें। सम्भोग के समय इस तैल का पाद तल में लेप करने से शुक्र-स्खलन नहीं होता है और लिङ्ग बहुत देर तक दृढ़ रहता है जिससे मनुष्य बहुत देर तक सम्भोग करता है और स्त्री को पूर्ण सन्तुष्टि मिलती है।

६. करभवारुणीमूल लेप (च.द.)

सप्ताहं छागभवसलिलसंस्थितं करभवारुणीमूलम्।
गाढोद्वर्त्तनविधिना लिङ्गं स्तब्धं रतौ कुरुते ॥६॥

करभवारुणीमूल (ऊँटकटेलामूल) को सूक्ष्म चूर्ण कर बकरी के मूत्र में ७ दिनों तक भावना दें या डुबोकर रखें। ततः सम्भोग काल से ३० मिनट पहले पुरुष अपने लिङ्ग पर इसका गाढ़ा लेप करे। तदनन्तर अच्छी तरह कपड़े से साफ कर सम्भोग करने से बहुत देर तक शुक्रक्षरण नहीं होता है तथा लिङ्ग दृढ़ रहता है और स्त्री को भी बहुत तृप्ति मिलती है।

७. गोशृङ्ग त्वक् धूपित वस्त्र प्रयोग (च.द.)

गौरेकोन्नतशृङ्गत्वग्भवचूर्णेन धूपितं वस्त्रम्।
परिधाय भजल्ललनां नैकाण्डो भवति हर्षार्त्तः ॥७॥

यदि किसी गाय की १ शृङ्ग उन्नत (ऊपर) हो और दूसरी नीची हो तो ऊपर के शृङ्ग की थोड़ी त्वचा लेकर एक मिट्टी के शराव में निर्धूम अग्नि रखकर उस पर शृङ्ग चूर्ण डालें, इससे जो धुँआ निकले उसे ओढ़ने वाली चादर में लगने दें (इसी को धूपित वस्त्र कहते हैं)। जो इस चादर को ओढ़कर मैथुन करता है, उसका शुक्रक्षरण शीघ्र नहीं होता है तथा मैथुनकाल तक लिङ्ग दृढ़ रहता है।

८. कृकलासपुच्छमुद्रिका प्रयोग (रसमञ्जरी)

कृकलासस्य पुच्छाग्रं मुद्रिका प्रोततन्तुभिः।
वेष्ट्या कनिष्ठिका धार्या नरो वीर्यं न मुञ्चति ॥८॥

कृकलास[1] (Chameleon) अर्थात् गिरगिट की पूँछ के अग्र भाग (प्रायः ४ इञ्च) को पुष्यनक्षत्र में काटकर दाहिने हाथ की कनिष्ठा (छोटी) अंगुली में गोल अंगूठी बनाकर पतले धागे से बाँधकर धारण करने से शुक्रक्षरण नहीं होता है।

---

१. 'कृकं = ग्रीवां, लासयति = चालयति' इति कृकलासः, गिरगिट इति हिन्दीभाषायाम्।

९. पद्मबीज का नाभि पर लेप (रसमञ्जरी)

मधुना पद्मबीजानि पिष्ट्वा नाभि प्रलेपयेत् ।
यावत्तिष्ठत्यसौलेपस्तावद् वीर्यं न मुञ्चति ॥९॥

कमलबीज (कमलगट्टा) की मज्जा को मधु के साथ सिल पर पीसकर पुरुष अपनी नाभि में लेप करें और स्त्री के साथ मैथुन करे। जब तक यह लेप नाभी में रहेगा तब तक पुरुष का वीर्य क्षरण नहीं होगा।

१०. रक्त अपामार्गमूल कटि में धारण (रसमञ्जरी)

रक्तापामार्गमूलन्तु सोमवाराभिमन्त्रितम् ।
भीमे प्रातः समुद्धत्य कट्यां बद्ध्वा न वीर्यमुक् ॥१०॥

सोमवार के दिन प्रातः १ लोटा स्वच्छ जल लेकर उसे अभिमन्त्रित करें। मैं कल मंगलवार को प्रातः अमुक (जिस कार्य हेतु ले जाना हो उसे कहें) कार्य के लिए आपको ले जाऊँगा। ऐसा कहकर उक्त लोटा के जल को लाल अपामार्गमूल में डाल दें। मंगलवार को प्रातः मन्त्र[1] प्रयोग कर उस अपमार्ग को जड़ (मूल) से उखाड़ लें। इसे जल से धोकर साफ कर लें। जब भी स्त्री सम्भोग करें तो लाल धागे से उक्त मूल को कमर में बाँधकर मैथुन करने से चिरकाल तक शुक्रक्षरण नहीं होता है।

११. तिलगोक्षुरचूर्ण (च.द.)

समतिलगोक्षुरचूर्णं छागीक्षीरेण साधितं समधु ।
भुक्तं क्षपयति षाण्ढ्यं यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥११॥

साफ कृष्णतिलबीजचूर्ण तथा गोक्षुरबीजचूर्ण १०-१० ग्राम लें और चार गुना बकरी के दूध के साथ पाक करें। गाढ़ा होने पर उस पाक में मधु मिलाकर कुछ दिनों तक प्रातः-सायं खाने से (हस्तमैथुनादि दुष्कर्म) कुप्रयोग जन्य (षांढ्य दोष) नपुंसकत्व नष्ट हो जाता है।

१२. औषध प्रयोग जन्य षण्ढत्वहर योग (च.द.)

योगजवराङ्गबन्धं मथितेन क्षालितं हरति ।
उन्मुखगोशृङ्गोद्भवलेपो योगध्वजभङ्गहरः ॥१२॥

इसमें स्त्री-पुरुष दोनों के कृत्रिम षण्ढ्यत्व निवारणार्थ प्रयोग कहा गया है। (१) पहले स्त्रियों के लिए—इस दुष्ट प्रयोग को नष्ट करने के लिए स्त्री अपनी योनि को तक्र से ३-४ दिनों तक रोज प्रक्षालन करे। ऐसा करने से विद्वेषवश किया गया दुष्ट प्रयोग नष्ट हो जाता है। (२) पुरुषों के लिए—पुरुष को किसी दुष्ट प्रयोग (षाण्ढ्यकर या लिङ्गध्वस्तीकरण प्रयोग से) मैथुनच्छा या पुंसत्व नष्ट कर दिया जाता है। इसे दुष्ट प्रयोग कहते हैं। किसी तन्त्र-मन्त्र प्रयोग जन्य यह कष्ट होता है।

ऐसी गाय जिसकी एक शृङ्ग ऊँची हो और दूसरी नीची हो, उसके ऊँची शृङ्ग को छीलकर जल के साथ पीसें और पुरुष अपने लिङ्ग पर लेप करे। ऐसा करने से पुरुष का योगज (कृत्रिम) ध्वजभङ्ग नष्ट हो जाता है।

१३. नागवल्ल्यादि चूर्ण

नागवल्ली बला मूर्वा जाती कोषफलं मुरा ।
अपामार्गस्य बीजञ्च काकोलीयुगलं तथा ॥१३॥
कक्कोलोशीरयष्ट्याह्ववचाश्चैतानि मर्दयेत् ।
वीर्यस्तम्भकरं वृष्यं चूर्णमेतद्रसायनम् ॥१४॥

१. ताम्बूलदल, २. बलामूलचूर्ण, ३. मूर्वामूल, ४. जावित्रीचूर्ण, ५. जायफलचूर्ण, ६. अपामार्गबीजचूर्ण, ७. काकोलीचूर्ण, ८. क्षीरकाकोलीचूर्ण, ९. शीतलचीनीचूर्ण, १०. उशीरचूर्ण, ११. यष्टिमधुचूर्ण, १२. वचाचूर्ण—सभी द्रव्य १-१ भाग (अर्थात् प्रत्येक द्रव्य ५०-५० ग्राम) लें। इन्हें अच्छी तरह से चूर्ण बनाकर मिश्रित कर पुनः छननी से छानकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इस चूर्ण को २-३ ग्राम की मात्रा में शर्करा युक्त गोदुग्ध के साथ प्रातः-सायं सेवन करने से कुछ दिनों में ही वीर्य का स्तम्भन करता है। यह वृष्य है तथा रसायन गुणों से सम्पन्न है।

मात्रा—२ से ३ ग्राम एक मात्रा। **अनुपान**—शर्करा मिश्रित गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्ध जायफल जैसी। **वर्ण**—कत्थई वर्ण का। **रस**—कटु। **उपयोग**—वीर्यस्तम्भक, वृष्य एवं रसायन है।

१४. अर्जकादि वटी

मूलमर्जकशङ्खिन्योर्निर्गुण्डीकेशराजयोः ।
जातीफलं देवपुष्पं विडङ्गं गजपिप्पलीम् ॥१५॥
चातुर्जातं तुगाक्षीरीमनन्तां मूषलीं वरीम् ।
विदारीं गोक्षुरं बीजञ्चाभातोयेन मर्दयेत् ॥१६॥
माषमानां वटीं कृत्वा सुरामण्डेन योजयेत् ।
वीर्यस्तम्भकरी वृष्या वटिकेयं प्रकीर्त्तिता ॥१७॥

१. बर्बरीमूल (तुलसीभेदः, तुलसीवत् सुगन्धः), २. शंखपुष्पीपञ्चाङ्ग, ३. निर्गुण्डीमूल, ४. भृङ्गराजमूल, ५. जायफल, ६. लवङ्ग, ७. विडङ्गबीज, ८. गजपिप्पली, ९. छोटी इलायची, १०. दालचीनी, ११. तेजपत्र, १२. नागकेशर, १३. वंशलोचन, १४. अनन्तमूल, १५. श्वेतमुसली, १६. शतावरी, १७. विदारीकन्द, १८. गोक्षुरबीज, १९. कपिकच्छुबीज—इन्हें समभाग (प्रत्येक ५०-५० ग्राम) लें। इनका सूक्ष्मचूर्ण कर बब्बूलमूलत्वक्क्वाथ की भावना देकर १-१ ग्राम की वटी बनाकर धूप में सुखा लें और काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'अर्जकादि-

---

१. दुष्ट पुरुष द्वारा किसी स्त्री को द्वेष वश उसकी वासनात्मक प्रवृत्ति नष्ट करने के लिए ऐसा प्रयोग कभी-कभी किया जाता है।

वटी' कहते हैं। इसे प्रतिदिन प्रातः-सायं मद्य (सुरामण्ड) के साथ लेना चाहिए। इसके कुछ दिनों के प्रयोग से प्रबल शुक्रस्तम्भन करता है तथा प्रबल वृष्य (वाजीकरण) है।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—मद्य से। **गन्ध**—सुगन्ध। **वर्ण**—कत्थई (रक्ताभ)। **रस**—कषाय-तिक्त। **उपयोग**—शुक्रस्तम्भन तथा वृष्य है।

१५. शुक्रवल्लभ रस

रसगन्धकलौहाभ्ररौप्यहेमानि माक्षिकम्।
शाणमानेन सङ्गृह्य तुगाक्षीरीञ्च कार्षिकीम् ॥१८॥
पलप्रमाणं विजयाबीजञ्चैकत्र मर्दयेत्।
विजयावारिणा पश्चान्माषमानां वटीं चरेत् ॥१९॥
एकैका भक्षणीयैषा पेयञ्चानु पयः पलम्।
श्रीशुक्रवल्लभो नाम रसो वाजीकरः परः ॥२०॥
वीर्यस्तम्भकरोऽत्यर्थं प्रमदादर्पनाशनः।
गतो ह्यप्सरसां शक्रो वाल्लभ्यं यत्प्रसादतः ॥२१॥

१. शुद्ध पारद, २. शुद्ध गन्धक, ३. लोहभस्म, ४. अभ्रक भस्म, ५. रजतभस्म, ६. स्वर्णभस्म, ७. स्वर्णमाक्षिकभस्म—प्रत्येक ३-३ ग्राम; ८. वंशलोचनचूर्ण १२ ग्राम और भाँगचूर्ण ४८ ग्राम लें। एक खरल में पारद एवं गन्धक का दृढ़ मर्दन कर अच्छी कज्जली बनायें। ततः लोहभस्म से स्वर्णमाक्षिकभस्म तक की सभी भस्मों को मिलाकर मर्दन करें। तदनन्तर वंशलोचन और भाँग का चूर्ण कर मर्दन करें और भाँग के क्वाथ या स्वरस की भावना देकर १ दिन तक मर्दन करें। मर्दन के बाद १-१ माशा (१ ग्राम) की वटी बनाकर छाया में अच्छी तरह से सुखाकर काँचपात्र में संग्रहीत करें। इसे 'शुक्रवल्लभ रस' कहते हैं। इसे प्रातः-सायं १-१ वटी शर्करा मिश्रित गरम दूध से सेवन करें। कुछ दिनों तक इसका सेवन करने से यह परम वाजीकरण है। यह वीर्य का स्तम्भन भी करता है। प्रमदाओं (मदान्ध स्त्रियों) की कामान्धता को नष्ट करता है। इस रस का नियमित सेवन करने से ही इन्द्र अप्सराओं के वल्लभ बने थे।

मात्रा—१ ग्राम। **अनुपान**—शर्करामिश्रित गरम गोदुग्ध से। **गन्ध**—सुगन्ध। **वर्ण**—हरिताभ। **रस**—कटु-कषाय। **उपयोग**—वाजीकरण एवं वीर्यस्तम्भक है।

१६. कामिनीविद्रावण रस

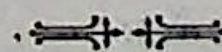
आकारकरभं शुण्ठीं लवङ्गं कुङ्कुमं कणाम्।
जातीफलं जातिकोषं चन्दनं कार्षिकं पृथक् ॥२२॥
हिङ्गुलं गन्धकं शाणं फणिफेनं पलोन्मितम्।
गुञ्जात्रयमितां कुर्यात् सम्मर्द्य वटिकां भिषक् ॥२३॥
पयसा परिपीतोऽयं शुक्रस्तम्भकरो रसः।
विद्रावणः कामिनीनां वशीकरण एव च ॥२४॥

इति भैषज्यरत्नावल्यां वीर्यस्तम्भनाधिकारः।

१. अकरकराचूर्ण, २. शुण्ठीचूर्ण, ३. लवङ्गचूर्ण, ४. केशरचूर्ण, ५. पिप्पलीचूर्ण, ६. जायफलचूर्ण, ७. जावित्रीचूर्ण, ८. श्वेतचन्दनचूर्ण—प्रत्येक द्रव्य १२-१२ ग्राम; ९. शुद्ध हिङ्गुल ३ ग्राम, १०. शुद्ध गन्धक ३ ग्राम तथा ११. शुद्ध अफीम ४६ ग्राम लें। एक खरल में हिङ्गुल में गन्धक मिलाकर अच्छी तरह १ घण्टा तक मर्दन करें। ततः अन्य चूर्णों को उसमें मिलाकर मर्दन करें। पुनः शुद्ध अफीम को जल में घोलकर उक्त द्रव्यों में १ भावना देकर ३ घण्टे तक मर्दन करें। तदनन्तर ३-३ रत्ती (३७५ मि.ग्रा.) की मात्रा में वटी बनाकर छाया में सुखाकर काचपात्र में संग्रहीत करें। इसे १-१ वटी प्रतिदिन शर्करा मिश्रित गरम गोदुग्ध से प्रतिदिन लें। इससे शुक्रस्तम्भन होता है। यह कामिनियों को शीघ्र द्रवित करता है।

मात्रा—३७५ मि.ग्रा.। **अनुपान**—गोदुग्ध से। **गन्ध**—अफीमगन्धी। **वर्ण**—श्याम। **रस**—तिक्त। **उपयोग**—वाजीकरणार्थ।

इति श्रीगोविन्ददाससेनसङ्कलितस्य भैषज्यरत्नावलीनामकभेषजग्रन्थस्य वीर्यस्तम्भनाधिकारस्य
जामनगरस्थ-गुजरात-आयुर्वेद-विश्वविद्यालयस्य औषधनिर्माणशालाया निदेशकेन
प्रोफेसर-सिद्धिनन्दनमिश्रेण कृता 'सिद्धिप्रदा' हिन्दीव्याख्या समाप्ता।



अकारादिक्रमेण प्रकरण-क्रम



अकारादिक्रमेण विषयानुक्रम

आ

द

प

ल

व

श

ष

स



भैषज्यरत्नावली आयुर्वेदीय औषध निर्माण-हेतु सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसे इतना बड़ा सम्मान सम्पूर्ण भारत में प्राप्त हुआ है । रसशास्त्र एवं भैषज्यकल्पना क्षेत्र में 50 वर्षों से अधिक अनुभवी विद्वान प्रोफेसर सिद्धिनन्द मिश्र कृत 'सिद्धिप्रदा' हिन्दी व्याख्या द्वारा 'भैषज्य-रत्नावली' की उपयोगिता और भी अधिक हो गई है । प्रोफेसर मिश्र ने इसमें वर्णित प्रायः सभी योगों का मूल स्रोत ढूँढ निकाला है तथा तत्तद् योगों को किन-किन आचार्यों ने पहली बार उद्धत किया है-इसका उल्लेख भी मिश्र जी ने अपनी व्याख्या में किया है । इस व्याख्या में औषधि-निर्माण की सरल प्रक्रिया का वर्णन तथा आदेशात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है, जिससे औषधि-निर्माता उस प्रकिया को आसानी से समझ सके । इसके अतिरिक्त सभी स्तरों पर सर्वत्र नये मानों (Metric Method Measurement जैसे-किलाग्राम, मिलीलीटर, मिलीमीटर आदि) का प्रयोग किया गया है तथा औषधि-सेवन की मात्रा, अनुपान, औषधि-ग्रन्थ, औषधि-स्वाद महत्वपूर्ण रोगों में उपयोग आदि का भी उल्लेख सभी योगों के साथ दिया गया है ।

अन्य महत्त्वपूर्ण संहिता-ग्रन्थ

- **अष्टाङ्गहृदयम्** । अरुणदत्त कृत 'सर्वाङ्गसुन्दरी' तथा हेमाद्रिकृत 'आयुर्वेदरसायन' व्याख्या सहित। **(Golden Binding)**
- **अष्टाङ्गहृदयम्** । हिन्दीव्याख्या,विशेष वक्तव्यादि संवलित। व्याख्याकार-ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- **अष्टाङ्गहृदयम्** । (सूत्रस्थान)। हिन्दीव्याख्या,विशेष वक्तव्यादि सहित। अनन्त राम शर्मा
- **चक्रदत्तः**। 'पदार्थबोधिनी' हिन्दी व्याख्या सहित। रविदत्त शास्त्री
- **चरकसंहिता**। 'चरक-चन्द्रिका' हिन्दी व्याख्या, विशेष वक्तव्यादि संवलित। ब्रह्मानन्द त्रिपाठी (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- **चरकसंहिता**। श्रीचक्रपाणिदत्तविरचित 'आयुर्वेददीपिका' व्याख्या। सम्पादक-वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य **(Golden Binding)**
- **धन्वन्तरी-निघण्टुः**। हिन्दी टीका सहित। डॉ. झारखण्डे ओझा एवं उमापति मिश्र
- **भेलसंहिता**। महर्षिभेलप्रणीता। विमर्शोपबृंहित'विनोदिनी'हिन्दीव्याख्यापरिशिष्टसहित। श्री अभयकात्यायन
- **माधवनिदानम्** । 'मधुकोष'व्याख्या। 'विमला''मधुधारा' हिन्दीव्याख्या। व्याख्याकार-डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- **योगतंरगिणी**। त्रिमल्लभट्ट। हिन्दी टीका सहित। टीकाकार-वैद्य दत्तराम चौबे। भूमिका लेखक-डॉ. चन्द्रभूषण झा
- **रसेन्द्रसारसंग्रह**। हिन्दी टीका सहित। श्रीरामतेज पाण्डेय
- **रसामृतम्** । यादवजी त्रिक्रमजीप्रणीतं। भाषाटीकासहित। सम्पादक एवं विमर्श-देवनाथ सिंह गौतम। भूमिका-डॉ. चन्द्रभूषण झा
- **वैद्यचिन्तामणिः**। श्रीबल्लभाचार्य विरचित। हिन्दीव्यख्याकार-डॉ. रामनिवास शर्मा एवं डॉ. सुरेन्द्र शर्मा
- **वैद्यजीवनम्** । रुद्रभट्टकृत 'दीपिका' व्याख्या एवं हिन्दीटीका सहित। प्रियव्रत शर्मा
- **शार्ङ्गधरसहिता**। 'दीपिका' हिन्दीटीका विशेषवक्तव्यादि संवलिता। डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- **शार्ङ्गधरसहिता**। आढमल्लविरचित 'दीपिका' तथा काशीरामवैद्य विरचित 'गूढार्थदीपिका' सहित। भूमिका चन्द्रभूषण झा
- **सहस्त्रयोगम्** । मूल संस्कृत एवं मलयात्मम तथा हिन्दी अनुवाद सहित। लेखक डॉ. रामनिवास शर्मा एव डॉ. सुरेन्द्र शर्मा
- **सुश्रुतसंहिता**। श्रीडल्हणाचार्य विरचित निबन्धसंग्रह व्याख्या सहित। सम्पादक-यादवजी त्रिकमजी आचार्य **(Golden Binding)**
- **सुश्रुतसंहिता**। 'सुश्रुतविमर्शिनी' हिन्दी व्याख्या, विशेषवक्तव्यादिसंवलित। डॉ. अनन्तराम शर्मा (1-3 भाग सम्पूर्ण)

चरकसंहिता

श्रीचक्रपाणिदत्तविरचितया आयुर्वेददीपिकाव्याख्यया

(तथा चिकित्सास्थानतः सिद्धिस्थानं यावत्)

श्रीवाग्भट्टशिष्य-आचार्यवरजज्जटविरचितया निरन्तरपदव्याख्यया च संवलिता

1850 Pages | **Rare Commentary - Reprinted After - 70 Year** | In 2 Vols.

सभी प्रकार की आयुर्वेद से सम्बन्धित पुस्तकों का स्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
4697/2, 21-ए, अंसारी रोड़,
दरियागंज नई दिल्ली - 110002
फोन न. 011-23286537, 32996391

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के - 37/117 गोपाल मंदिर लेन
वाराणसी-221001
फोन न. 0542-2335263, 2335264